हृदय की आवाज

●

इस विशेषांक को देख-पढ़कर निश्चय ही आपके हृदय में यह भावना उठेगी कि धन्वन्तरि आयुर्वेद का सर्वोत्तम मासिक पत्र है तथा यह पत्र अल्पतम मूल्य में प्रचुर उपयोगी सामग्री पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करता है, अतः इसे भविष्य में अधिक उपयोगी के लिए—

आपका भी कुछ कर्त्तव्य है

हृदय की इस आवाज को दबाइये नहीं और अपने कर्त्तव्य के प्रति थोड़े ... बनिये। यदि आप प्रयत्न करके दो नवीन ग्राहक बना देते हैं तो निश्चय ही हमको ... बल मिलेगा और आपका यह कर्त्तव्य पालन भविष्य में धन्वन्तरि को बहुत ऊंचा उठाने सहायक होगा। यह कार्य कठिन कदापि नहीं है। अपने किसी भी सहयोगी अथवा आयुर्वेद प्रेमी को यह विशेषांक दिखाकर धन्वन्तरि का ग्राहक बन जाने का थोड़ा आग्रह कीजिये। इस विशेषांक की सुन्दरता, महानता, उपयोगिता तथा विशालता देखकर कौन आयुर्वेद ... ऐसा होगा जो इसका ग्राहक न बनना चाहे।

५।।) वार्षिक मूल्य में

धन्वन्तरि वह अनुपम साहित्य ग्राहकों को देता है जिसे देख पढ़कर आयुर्वेद समाज आश्चर्य में पड़ जाता है। इतने पर भी यदि कोई वैद्य धन्वन्तरि का ग्राहक नहीं बनता निश्चय ही वह आयुर्वेद का प्रेमी नहीं अथवा उसे अपने पैसे का सदुपयोग करना नहीं आता

आशा है आप अपने कर्त्तव्य की ओर अवश्य ध्यान देंगे।

प्रकाशक
वैद्य देवीशरण गर्ग
धन्वन्तरि कार्यालय
विजयगढ़

नारीरोगाङ्क
फरवरी-मार्च
१९६०
वार्षिक मूल्य ५।।)

मुद्र...
वैद्य देवीशरण ग...
धन्वन्तरि प्रे...
पेज ...

धन्वन्तरि
नारीरोगाङ्क

स्त्रियों की सम्पूर्ण विशेष व्याधियों का
विस्तृत सचित्र क्रम-बद्ध साहित्य,
अनुभवपूर्ण चिकित्सा विधि
एवं सफल प्रयोग संग्रह

प्रधान सम्पादक

वैद्य देवीशरण गर्ग आयुर्वेदोपाध्याय

सहायक सम्पादक

ज्वालाप्रसाद अग्रवाल बी. एस-सी. दाऊदयाल गर्ग ए., एम. बी. एस.

वर्ष ३४
अङ्क २-३

फरवरी-मार्च
१९६०

वार्षिक मूल्य ५॥)
इस अङ्क का ८॥)

आवश्यक !

विशेषांक के ऊपर के रेपर को सम्भाल कर रखें या उस पर लिखा ग्राहक नम्बर व पोस्ट आफिस का नम्बर नोट करलें ।

२—भविष्य में पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर पत्र में अवश्य लिख दिया करें ।

३—कोई भी अंक मिलने पर देख लिया करें कि उससे पहिला अंक मिला है या नहीं । न मिला हो तो पोस्ट आफिस में तलाश करें उनके उत्तर के साथ हमको लिखें ।

४—धन्वन्तरि के नवीन ग्राहक बनाने का अवश्य प्रयत्न करें ।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः ॥ १ ॥

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा ॥ २ ॥

तस्मादेता सदा पूज्या भूषणाच्छादनशनैः ।
भूति कामै नरै नित्य सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ ३ ॥

पितृभि भ्रातृभिश्चैता। पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ४ ॥

(मनु० ३ । ५६, ५७, ५९, ५५,)

बिजली की मशीन

(Medico-electric-machine)

इस मशीन की विशेषताएं —

१—इसके मुख्य पुर्जे बिजली फेक्टरी कलकत्ता से निर्माण कराकर मंगाए जाते हैं अतएव—

२—यह मशीन अधिक टिकाऊ तथा पूर्ण विश्वस्त है।

३—इसमें ४ सैल (टार्च में पड़ने वाले) डाले जाते हैं, अतएव यह मशीन अधिक शक्तिशाली है।

४—यह मशीन २ सैल से भी काम में लाई जा सकती है, ४ सैल की ताकत यदि रोगी सहन न कर सके तो दो सैल लगा कर व्यवहार कर सकते हैं।

५—यह मशीन सुन्दर, आकर्षक तथा अनेक कष्टसाध्य रोगों में चमत्कारिक लाभ करने वाली है। अतएव—

६—आपकी डिस्पेंसरी की शोभा एवं रोगियों के लिए आकर्षक वस्तु है।

बाजार में अनेक प्रकार की मशीनें चल रही हैं लेकिन हम यह कह सकते हैं कि हमारी यह मशीन उन सबसे कहीं अधिक उत्तम और टिकाऊ है। अभी तक जिन्होंने इस मशीन को मंगाया है उन्होंने इसकी प्रशंसा की है। आप भी अपने चिकित्सालय में इस मशीन को मंगाकर अवश्य रखियेगा।

इसका मूल्य—

बिना सैल की इस मशीन का मूल्य ३५) है। ४ सैल रखने से वजन बढ़ता है और पोस्ट व्यय अधिक लगता है। यदि सैल साथ मंगाना चाहें तो १।।) अधिक भेजें। पोस्ट-व्यय ३।।), पोस्ट पैकिंग आदि सभी व्यय पृथक् देने होंगे। आर्डर के साथ ५) एडवांस अवश्य भेजें।

निर्माता—
धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

इस बिजली की मशीन के बारे में
कतिपय अनुभव

"आपने जो बिजली की मशीन भेजी है उसे मैं रोजाना प्रयोग करता हूँ जिसे पहले मैं औषधि द्वारा स्वस्थ करता था वह अब ६० प्रतिशत लाभ तो इस मशीन द्वारा ही प्राप्त कर लेता है। वात रोगों में तो यह मशीन जादू जैसा कार्य करती है। मैंने कई लकवे के रोगी इससे ठीक किये हैं।"

—श्री वैद्य रामानुज शांडिल मु० रसौय पो० बलौदा (बिलासपुर)

× × × ×

आपकी भेजी मशीन से जो अनुभव किया है उसे नीचे लिख रहा हूं—

१—एक २५ साल की स्त्री को लगभग ४ मास से वमन होती थी। कई डाक्टरों से इलाज कराया लेकिन कोई लाभ न हुआ। मैंने उस पर मशीन का प्रयोग किया तथा ६ दिन में ठीक हो गई।

२—एक लड़की की कमर में दर्द था। केवल एक दफा ही ५ मिनट मशीन लगाने से दर्द समाप्त होगया।

३—एक प्रौढ़ के अर्श के मस्सों पर प्रयोग करने से उसके मस्से शुष्क होगये।

४—स्वयं मेरी स्त्री के हाथ के टखने में ५ वर्ष से दर्द था अब इस मशीन के प्रयोग से वह बिल्कुल ठीक है तथा घर का सारा कार्य्य करती है।

५—एक आदमी दर्द से बेहोश था। मैंने थोड़ी देर मशीन का प्रयोग किया और वह व्यक्ति उठकर खड़ा होगया।

६—एक आदमी के गर्दन से ऊपर सिर कान में दर्द था। मैंने दस मिनट मशीन लगाई तथा वह ठीक हो गया।

७—एक आदमी का पेशाब बन्द था। मैंने उसकी इन्द्रिय पर औषधि का प्रयोग किया तथा पेडू पर १० मिनट तक मशीन लगाता रहा। उसे पेशाब आ गया तथा एक पथरी का टुकड़ा निकला।

यह मशीन बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है तथा यह मेरे चिकित्सालय की एक अत्यावश्यक वस्तु बन गई है। अब कई और चिकित्सक भी यह मशीन मंगवाना चाहते हैं। —श्री स्वामी छोटूराम वैद्य, कुतुबगढ़ पो० हलालपुर (देहली)

× × × ×

मशीन प्राप्त हुई, मैंने उसका प्रयोग किया, जैसा आपने लिखा था वैसी ही निकली। मशीन आपकी बहुत अच्छी है, इसलिए आपको धन्यवाद।

—श्री पं० देवीचरण वैद्य, लगलेसरा पो० रसूलाबाद (उन्नाव)

× × × ×

बिजली मशीन द्वारा बहुत से रोगियों की सेवा की, सब में कुछ न कुछ लाभ अवश्य हुआ है। एक गठिया का रोगी जिसका घुटना फुटबाल के समान फूल कर चल फिर नहीं सकता था उसको दो दिन लगाया चल-फिर रहा है, फूला हुआ भी कुछ कम हो गया है। एक बिजली मशीन बिना सैल की फिर भेज देंगे।

—श्री ललाटप्रसाद वैद्य, मौजा बोन्दा पो० छि० उमरिया (रायगढ़)

हमारी

मकरध्वज वटी अर्थात् निराशबन्धु—सिद्ध मकरध्वज नं० १ तथा अन्य मूल्यवान एवं प्रभावशाली द्रव्यों को इसमें डालकर इसका निर्माण किया जाता है। गोलियां भोजन को पचाकर रस रक्त आदि सप्त धातुएं क्रमशः सुधारती हुई वीर्य का निर्माण करतीं और शरीर में नव-जीवन व नवस्फूर्ति भर देती हैं। वीर्य विकार के साथ होने वाली खांसी, जुकाम, सर्दी, कमर का दर्द, मन्दाग्नि, स्मरण शक्ति का नाश आदि व्याधियां भी दूर होती हैं, क्षुधा बढ़ती है, शरीर हृष्ट-पुष्ट और निरोग बनता है। ४० वर्ष की आयु के बाद मनुष्य को अपने में एक प्रकार की कमी व शिथिलता का अनुभव होता है। मकरध्वज वटी इस शक्ति को पुनः उत्तेजित करती है और मनुष्य को स्वस्थ व सबल बनाये रखती है। मूल्य—१ शीशी (४१ गोलियों की) २।।=),

कुमारकल्याण घुटी—इसके सेवन से बालकों के समस्त रोग जैसे—ज्वर, हरे पीले दस्त, अजीर्ण, पेट का दर्द, अफरा, दस्त में कीड़े पड़ जाना, दस्त साफ न होना, सर्दी, कफ, खांसी, पसली चलना, दूध पलटना, सोते में चौंक पड़ना, दांत निकलने के रोग आदि सब दूर हो जाते हैं। शरीर मोटा ताजा और बलवान हो जाता है। पीने में मीठी होने से बच्चे आसानी से पी लेते हैं। मूल्य एक शीशी (आधा औंस) ।—)

कुमार रक्षक तैल—इस तैल को बच्चे के सम्पूर्ण शरीर पर धीरे-धीरे रोजाना मालिश करने से बच्चे में स्फूर्ति बढ़ेगी, मांस पेशियां सुदृढ़ हो जायगी, हड्डियों को ताकत पहुँचेगी, यह तैल इसी अभिप्राय से सर्वोत्तम निर्माण किया गया है। मूल्य १ शीशी (४ औंस) १।।), छोटी शीशी (२ औंस) ।।।=)

ज्वरारि—कुनीन रहित विशुद्ध आयुर्वेदिक, ज्वर जूड़ी को शीघ्र नष्ट करने वाली सस्ती एवं सर्वोत्तम महौषधि है। मूल्य—१० मात्रा की शीशी १)। २० मात्रा की बड़ी शीशी १।।)।

कासारि—हर प्रकार की खांसी को दूर करने वाली सर्वत्र प्रशंसित अद्वितीय औषधि। बांसा पत्र क्वाथ एवं पिप्पली आदि कासनाशक आयुर्वेदिक द्रव्यों से निर्मित शर्बत है। अन्य औषधियों के साथ इसको अनुपान रूप में देना भी उपयोगी है। मूल्य—१० मात्रा की शीशी १), ५ मात्रा की शीशी ।=),

श्वेतकुष्ठ हर सैट—इसमें श्वेतकुष्ठ हर अवलेह, वटी व घृत तीन औषधियां हैं। इन तीन औषधियों के विधिवत् सेवन करने से श्वेतकुष्ठ अवश्य नष्ट होता है। धैर्य के साथ इन औषधियों को अधिक दिन व्यवहार कीजिये अवश्य लाभ होगा। मूल्य—१५ दिन की तीनों औषधियों का ५)

रक्तदोषहर सैट—इसमें धन्वन्तरि आयुर्वेदीय सालसा परेला, तालकेश्वर रस, इन्द्रवारुणादि क्वाथ—ये तीन औषधियां हैं। इनके सेवन से सभी प्रकार के रक्त विकार जनित व्याधियां तथा चर्म रोग नष्ट होकर शरीर सुडौल बनता है। मूल्य—१५ दिन की तीनों दवाओं ६), पोस्ट व्यय ४।।)

अर्शान्तक सैट—इसमें वटी, मलहम तथा चूर्ण, तीन औषधियां हैं। इनके प्रयोग से दोनों प्रकार के अर्श अवश्य नष्ट होते हैं। अर्श से आने वाला रक्त २-१ दिन में बन्द हो जाता है। मूल्य—१५ दिन की तीनों दवाओं का ३)

कामिनीगर्भ रक्षक—बार बार गर्भस्राव हो जाना, बच्चों का छोटी आयु में ही मर जाना, इन भयङ्कर व्याधियों से अनेक सुकुमार स्त्रियां आजकल पीड़ित हैं। यदि आप कामिनी गर्भ रक्षक को गर्भ के प्रथम माह से नवम माह तक सेवन

पता—धन्वन्तरि कार्यालय

पेटेंट औषधियां

करावें तो न गर्भपात होगा और न गर्भस्राव। बच्चा स्वस्थ-सुन्दर और सुडौल उत्पन्न होगा। मूल्य—२ औंस की १ शीशी का २)

वल्लभ रसायन—किसी भी रोगी से किसी भी प्रकार का रक्तस्राव होता हो, यह विशेष लाभ करता है। रक्त को बन्द करने के लिये अव्यर्थ औषधि है। मूल्य—१ शीशी (२ औंस) १)

रक्त वल्लभ रसायन—इससे ज्वर के साथ होने वाला रक्तस्राव बन्द होता है। ज्वर को दूर करने और रक्त को बन्द करने के लिये उत्तम है। १ शीशी १)

सरलभेदो वटिका—हमने यह दवा उन लोगों के लिये बनाई है जिनको नित्य ही कब्ज की शिकायत हो और कई-कई बार दस्त जाना पड़ता हो। इसको रात्रि में सेवन करने से नित्य प्रात: दस्त होता है, तबियत साफ होजाती है तथा कार्य करने में उत्साह बढ़ता है। मूल्य – १ शीशी १)

कर्णामृत तैल—कान में सायं-सायं शब्द होना, दर्द, कान से मवाद बहना आदि कर्ण रोगों के लिये उत्तम तैल है। १ शीशी (आध औंस) ।|≈)

बालापस्मार वटी—बालक बेहोश होजाता है, हाथ-पैर एंठ जाते हैं मुख से लार (झाग) देने लगता है, दांती बन्द हो जाती है बालक की ऐसी हालत में यह दवा अक्सीर प्रमाणित होगी। १ शीशी ॥)

मधुमेहांतक रस—मधुमेह की यह प्रभावशाली उत्तम महौषधि है, बहुमूत्र व सोमरोग में भी विशेष लाभप्रद है। मूल्य १० गोली २≡)

पायरिया मंजन—पायरिया रोग बहुत प्रचलित है, यह अन्य अनेक रोगों को भी पैदा करता है इस मंजन के नित्य व्यवहार करने से दांत चमकीले होते हैं और दांतों से खून जाना, मवाद जाना, टीस मारना, पानी लगना आदि सभी कष्ट दूर होते हैं। १ शी. ।।)

नयनामृत सुरमा—नेत्र रोगों के लिए उपयोगी सुरमा है। दिन में एक बार लगने से धुंधला दीखना, पानी निकलना, खुजली चलना, आदि कष्ट शीघ्र नष्ट होते हैं। मूल्य ३ माशे की १ शीशी ।।)

अग्निसंदीपन चूर्ण—अग्नि को उत्तेजित करने वाला वाला मीठा व स्वादिष्ट चूर्ण है। भोजन के बाद ३-३ माशे ली जए, कब्ज दूर होगा तथा रुचि बढ़ेगी। १ शीशी (२ औंस) ।।)

मनोरम चूर्ण – स्वादिष्ट, शीतल व पाचक चूर्ण। एक बार चख लेने पर शीशी समाप्त होने तक आप खाते ही रहेंगे। गुण और स्वाद दोनों में लाजवाब है। १ शीशी (२ औंस) ।।), छोटी शीशी ।–)

अग्निवल्लभक्षार—इसके सेवन से अग्नि प्रज्वलित होती है। खाया हुआ खाना हजम होता है. भूख न लगना, दस्त साफ न होना, खट्टी डकारों का आना, पेट में दर्द तथा भारीपन होना, तबियत मचलना, अपान वायु का बिगड़ना इत्यादि सामयिक शिकायतें दूर होती हैं। १ शीशी १)

खाज रिपु खाज बहुत ही परेशान करने वाला तथा घृणित रोग है। इसे व्यवहार करने वाले इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। गीली तथा सूखी दोनों प्रकार की खाज के लिये यह अक्सीर प्रमाणित हुआ है। मूल्य १ शीशी १) छोटी शीशी ।।–)

दाद की दवा—यह दाद की अक्सीर दवा है। दाद की मालिश करें। स्नान करने के बाद रोजाना वस्त्र से अच्छी तरह पोंछ लिया करें। १ शीशी ।।)

अण्डवृद्धिहर लेप—इतना बड़ा कपड़ा लें जो बढ़े हुए फोते को ढंक सके और उस पर यह लेप लगा कर आग के कोयलों पर सेंक कर सुहाता सुहाता फोते पर चिपकावें। दिन-रात में एक बार लगावें. १-२ बार रूई के फाहे से सेंक दिया करें। इस लेप के कुछ दिनों के व्यवहार से फोते प्राकृतिक दशा को प्राप्त होते हैं। १ शीशी आध औंस १)

नेत्रबिन्दु—दुखती आंखों के लिये अत्युपयोगी प्रसिद्ध महौषधि, मूल्य आध औंस ।।।≈) ¼ औंस ।।)

विजयगढ़ (अलीगढ़)

वैद्यों के लिए उपयोगी

रोगी रजिस्टर—हर वैद्य के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने रोगियों का विवरण नियमित रूप से लिखें। यह चिकित्सक की अपनी सुविधा तथा कानूनी दृष्टि दोनों प्रकार से आवश्यक है। २०० पृष्ठों के ग्लेज कागज के सजिल्द 'रोगी रजिस्टर' हमने तैयार किये हैं जिनमें आवश्यक कालम (खाने) दिये हैं। मूल्य ३॥) पोस्ट व्यय पृथक्।

रोगी प्रमाणपत्र पुस्तिका—रोगियों को अवकाश प्राप्ति के लिए प्रमाणपत्र देने के फार्म ग्लेज कागज पर दो रङ्गों में तैयार किये हैं। ५० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १) मात्र। अंग्रेजी में बढ़िया कागज पर बड़े साइज में दो रङ्ग में छपे ४० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १)

स्वस्थ प्रमाणपत्र पुस्तिका—सरकारी कर्मचारी बीमार होने के कारण अवकाश लेते हैं। स्वस्थ होने पर अपने कार्य पर पहुँचने पर उन्हें 'वे स्वस्थ हैं' इस विषय का प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना होता है। वैद्य इस पुस्तिका को मंगाकर स्वस्थ-प्रमाणपत्र आसानी से दे सकेंगे। ५० प्रमाणपत्र की पुस्तिका का मूल्य १), अंग्रेजी में बढ़िया कागज पर बड़े साइज में दो रङ्ग में छपे ४० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १।)

रोगी व्यवस्थापत्र—रोगी के लक्षण, तारीख औषधि आदि इन फार्मों पर लिख कर रोगी को दे दीजिये। वे रोगी रोजाना या जब औषधि लेने आयेंगे आपको यह फार्म दिखा देंगे। इससे उनका पहिला पूरा हाल आपके सामने आजायगा। बड़े काम के फार्म हैं। साइज २०×३०=३२ पेजी, मूल्य ।≈) प्रति सैकड़ा।

आघात प्रमाणपत्र—चोट लग जाने पर चिकित्सक को प्रमाणपत्र देना होता है। इस फार्म पर आप यह प्रमाणपत्र सुगमता से दे सकेंगे। फुलस्केप साइज के २४ प्रमाणपत्रों की पुस्तिका मूल्य १)

तापमापक तालिका (टेम्परेचरचार्ट)—रोगियों का तापमान अंकित करने से बड़ी सुविधा रहती है। इस चार्ट पर दिन में ४ समय का तापमान १२ दिन तक अंकित किया जा सकेगा। अन्य निदान विषयक आंकड़े भी लिखे जा सकते हैं। मूल्य २५ चार्ट का १) मात्र।

पता-धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

टेबलेट-मशीन
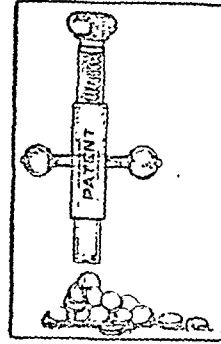
थोड़ी तादाद में टेबलेट (टिकिया) बनाने के लिए उपयोगी मशीन है। टेबलेट तीन साइज की बनाई जा सकती हैं। निकल पालिशयुक्त मशीन का मूल्य ११)

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

चिकित्सा की कुंजी

यह एक ऐसी पुस्तक है जो चिकित्सा-कार्य में सफलता प्राप्त कराने के लिये कल्पवृक्ष के समान हितकारी है। चिकित्सा सम्बन्धी तमाम गुप्त रहस्य जिन्हें बड़े-बड़े अनुभवी चिकित्सक भी पूरी तरह नहीं जानते, इस पुस्तक में निष्कपट भाव से प्रकट कर दिये हैं। नये और पुराने हर चिकित्सक को यह पुस्तक एक सच्चे गुरु और सहयोगी मित्र का काम देगी। जिन लोगों का चिकित्सा-व्यवसाय चलता नहीं है अथवा कम चलता है उन्हें तो यह पुस्तक जरूर ही मँगानी चाहिये, क्योंकि, इसमें लिखी हुई बातों को जान लेने के बाद कोई भी चिकित्सक अपने काम में असफल या बेकार नहीं रह सकता। औषधि को चलाने के एक से एक नये उपाय, नुस्खे और भेद भरी बातें जो इस पुस्तक में बताई गई हैं, दूसरी किसी भी पुस्तक में आज तक नहीं छपीं।

इसके अतिरिक्त हर रोग पर निश्चित लाभ करने वाले देशी-अंग्रेजी अनुभूत पेटेन्ट नुस्खे जिन्हें लोग मरते दम तक भी नहीं बताते, इस पुस्तक में दिल खोल कर लिखे गये हैं, यथा आयुर्वेद, यूनानी और एलोपैथी की उन समस्त दवाओं और इन्जेक्शनों का भी वर्णन अनुभव के आधार पर किया गया है जो प्रतिदिन के व्यवहार में अत्यधिक उपयोगी एवं चमत्कारिक प्रमाणित हुए हैं। पुस्तक अत्यन्त अद्भुत और महा उपयोगी है।

डाक खर्च सहित तीन रुपये पचास नये पैसों का मनिआर्डर भेज कर आप भी एक प्रति शीघ्र मँगाइये। चिकित्सकों के बड़े काम की चीज है। पुस्तक के साथ एक [illegible] उपहार भी भेजा जाएगा।

पता—चिकित्सा अनुसन्धान केन्द्र
पोस्ट—सतनाली (जिला महेन्द्रगढ़) पंजाब

औषधि निर्माणार्थ

कतिपय मुख्य वस्तुएँ एवं भस्मार्थ द्रव्य

आजकल बाजारों में मिलावट चलने लगी है जिससे चिकित्सों को औषधि निर्माण में अत्यन्त कठिनाई रहती है। हमने अत्यन्त परिश्रम से औषधि निर्माण में काम आने वाली कतिपय द्रव्यों का विश्वसनीय स्थानों से संग्रह किया है। इन पर विश्वास करके औषधि निर्माण में प्रयोग कर सफलता प्राप्त करें। नीचे दिये गये भाव कम से कम हैं अतएव इन पर किसी को किसी भी प्रकार का कमीशनादि नहीं दिया जायगा।

ालाजीत सूर्यतापी	१ सेर	५०)
,, ,,	१ तो.	॥≡)
,, अग्नितापी	१ सेर	२५)
,, ,,	१ तो.	।≡)
ष्टवर्ग (अत्युत्तम)	१ सेर	१०)
वद्गार	,,	१०)
ालोयसत्व असली	,,	२०)
सली मुलहठीसत्व	,,	१४)
असली ब्राह्मी	,,	२)
असली दशमूल	१ मन	४०)
असली तालीसपत्र	१ सेर	२॥)
अपंगन्धा	,,	१४)
ओमकल्प (सोमलता)	,,	३)
हिंगुल रूमी	,,	१००)
दशमूल सत्व	,,	१५)
अशोक छाल	,,	१॥)
असली वंशलोचन	,,	३५)
मूंगा की शाख	,,	४०)
उलट कम्बल	,,	६)
शुद्ध ताम्रचूर्ण	,,	८)

शुद्ध फौलाद चूर्ण	,,	४)
शुद्ध जस्ता	१ सेर	८)
वज्राभ्रक	,,	३)
शङ्ख के टुकड़े	,,	१।)
पीली कौड़ी	,,	३)
फौलादचूर्ण अशोधित	,,	३॥)
जस्ता अशोधित	,,	४)
शुद्ध बंग	,,	२०)
धान्याभ्रक (शु० अभ्रक)	,,	६)
मोतीसीप	,,	६)
गौदन्ती हरताल	,,	२)
अक़ीक़ दाना	५ तोला	२)
अकीक खड़	,,	१)
कहरवा	१ तोला	३)
जहरमोहरा खताई	,,	१)
खर्पर (खपरिया)	,,	२)
वैक्रान्त खड़	,,	२)
माणिक्य (याकूत)	,,	२)
पुखराज खड़	,,	३)
नीलम खड़	,,	३)

पिरोजा खड़	१ तोला	३)
कज्जली नं. १ सम गंधक पारद	१० तोला	१५)
शु. गंधक आंवलासार	१० तो.	३)
शु. जयपाल	,,	३)
शु. हरताल	,,	८)
शु. पारद (हिंगुलोत्थ)	,,	२५)
शु. वच्छनाग	,,	४)
शु. विषबीज (वस्त्रपूत)	,,	५)
शु. भल्लातक	,,	३)
शु. मैन्सिल (शिला)	,,	८)
शु. हिंगुल	,,	१५)
केशर (काश्मीरी मोंगरा)	१तो,	१८)
केशर (चूरा)	,,	८)
कस्तूरी असली	१ तोला	१००)
अम्बर	,,	३६)
गौलोचन	,,	४०)
चांदी के वर्क	,,	६)
सोने के वर्क (बाजार भाव)		
शहद असली	१ पौण्ड	३॥)

नोट—इन भावों में घट-बढ़ होना भी सम्भव है। आर्डर सप्लाई के समय जो भाव होगा वह लगाया जायगा।

मंगाने का पता—

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

२० **चिकित्सादर्श**—वैद्य राजेश्वरदत्त शास्त्री। औषध व्यवस्था लेखन अथवा नुसखा नवीसी का अनुपम ग्रन्थ ३-५०

२१ **जीवाणु विज्ञान**—डा० घाणेकर। इस पुस्तक में तृणाणु (Bacteria) कीटाणु (Protoza) विषाणु (Virus) इत्यादि जीवाणुओं के विभिन्न श्रेणियों का विवरण उनके प्रकार उनसे उत्पन्न होनेवाले रोग और उनकी सम्प्राप्ति तथा चिकित्सा इत्यादि विषयों का समावेश किया गया है। १०-००

२२ **तापमापन (थर्मामीटर)**—डा० राजकुमार द्विवेदी। इस पुस्तक में यन्त्र परिचय प्रकार तथा उनका पृथक्-पृथक् वर्णन, निर्माण, व्यवहार, तापक्रम सारिणी तथा ज्वरों में तापकम की सारिणी आदि वर्णित है। ०-२५

२३ **तुलसीविज्ञान**—विविध रोगों पर तुलसी के ४४२ सफल सुलभ प्रयोगों का संग्रह। ०-५०

२४ **दोषकारणत्वमीमांसा**—आचार्य प्रियव्रत शर्मा एम. ए., ए. एस. एस. १-००

२५ **द्रव्य-गुण-मंजूषा**—आचार्य शिवदत्त शुक्ल ए. एम. एस.। प्रथम भाग २-००

२६ **नव परिभाषा**—कविराज श्री उपेन्द्रनाथदास कृत हिन्दी टीका सहित। १-७५

२७ **नव्य रोग निदानम् (माधवनिदान-परिशिष्टम्)**—इसमें माधव-निदानादि ग्रन्थों में लिखित रोगों के अतिरिक्त सम्पूर्ण नवीन रोगों का निदान सम्प्राप्ति-पूर्वरूप-लक्षण-साध्यासाध्यता आदि का विवेचन है। ०-७५

२८ **नाड़ी परीक्षा**—श्री ब्रह्मशंकरमिश्र कृत वैद्यप्रिया हिन्दी टीका सहित। ०-३१

२९ **नाड़ी विज्ञानम्**—आयुर्वेदाचार्य प्रयागदत्त जोशी कृत विबोधिनी विस्तृत्त हिन्दी टीका सहित। ०-३१

३० **पञ्चविध-कषाय-कल्पना विज्ञान**—डा० अवधविहारी अग्निहोत्री ए० एम० एस०। स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम, फाण्ट इन पञ्चविध कषायों के अन्तर्गत आनेवाले तण्डुलोदक, यूषरस, यवागू, मण्ड, पेया, विलेयी आदि उपकषायों का प्राच्य, पाश्चात्य तथा युनानी मतानुसार विवेचन होने से छात्रों, अध्यापकों तथा सर्वसाधारण वैद्यों के लिए बड़े महत्त्वपूर्ण का यह ग्रन्थ है १-५०

३१ **पदार्थ विज्ञानम्**—आचार्य सत्यनारायण शास्त्री ३-००

३२ **परिभाषाप्रबन्ध**—आयुर्वेद बृहस्पति पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल। परिभाषा सम्बन्धी सभी आवश्यक विषयों का प्राच्य तथा पाश्चात्य दृष्टिकोण से ग्रन्थ में १७ अध्यायों में विस्तार के साथ विवेचन किया गया है। २-५०

३३ **प्रसूति विज्ञान**—(सचित्र) [A Text book of Midwifery] आ० बृहस्पति डा० रमानाथ द्विवेदी। अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक। ९-००

३४ **प्रारम्भिक उद्भिद् शास्त्र**—वनस्पति विशेषज्ञ प्रोफेसर बलवन्त सिंह एम. एस. सी.। आयुर्वेद के विद्यार्थियों एवं वैद्यों को उद्भिद शास्त्र का जितना ज्ञान होना चाहिए वह इस पुस्तक के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। शुद्ध वैज्ञानिक विषयों के अतिरिक्त वर्गीकरण के अध्याय में सभी चिकित्सोपयोगी वनस्पतियों का वर्णन किया गया है। ४-५०

३५ **प्रारम्भिक भौतिकी**—श्री निहालकरण सेठी। इसमें वैज्ञानिक नाप-तौल, द्रव्य के सामान्य गुण, गति, जड़त्व और गुरुत्व, वेग संयोग, काम सामर्थ्य एवं शक्ति, प्रकाश शब्द चुम्बक विद्युत, एक्सकिरण आदि विषयों का भौतिक दृष्टिकोण से विवेचन किया गया है। ५-५०

३६ **प्रारम्भिक रसायन**—प्रो० श्री फूलदेवसहाय वर्मा। यह उन प्रारम्भिक पुस्तकों में है जिनके द्वारा हिन्दी माध्यम से 'रसायन-विषय' का पठन-पाठन किया जाता है। सभी कालेजों में पढ़ाई जाती है। ४-५०

३७ **प्लीहा के रोग और उनकी चिकित्सा**—कविराज ब्रह्मानन्द चन्द्रवंशी। आयुर्वेदिक, एलोपैथी एवं यूनानी मतानुसार रोग का निदान लक्षण तथा चिकित्सा का सुन्दर वर्णन है। ०-३१

३८ **फलसंरक्षण विज्ञान (Fruit Preservation)**—डा० युगलकिशोर गुप्त आयुर्वेदाचार्य। अपने विषय की उत्तम पुस्तक है। फलों के संरक्षण-क्रिया के अतिरिक्त फलों की चटनी, अचार, मुरब्बा आदि बनाने और सुरक्षित रखने की विधि भी सरलता से समझाई गई है। १-००

३९ **वस्तिशलाकाप्रवेश (एनिमा और कैथेटर)**—पुस्तक छात्रों, वैद्यों तथा इस विषय के अभ्यासियों के लिए बहुत ही उपयोगी है। ०-३७

४० **भारतीय रसपद्धति**—कविराज अत्रिदेव गुप्त। भारतीय रस शास्त्र में धातुओं आदि का शोधन मारण एक महत्त्व का विषय है। इस छोटी सी पुस्तिका में यह सरलता के साथ उत्तम प्रकार से समझाया है। इसके सिवा ओज, भावना, पुट आदि संदिग्ध विषय पूर्णतः स्पष्ट कर दिए गए हैं। १-५०

४१ **भावप्रकाश**—मूल मात्र। मूल्य पूर्वार्द्ध ३–०० मध्यमोत्तर खण्ड ७–०० संपूर्ण १०–००

४२ **भावप्रकाश ज्वराधिकार**—नवीन वैज्ञानिक विद्योतिनी भाषा टीका परिशिष्ट सहित। ४–००

४३ **भावप्रकाश निघण्टु**—सम्पादक-आयुर्वेदाचार्य गंगासहाय पाण्डेय ए. एम. एस.। विद्योतनी भाषा टीका एवं बृहद् परिशिष्ट सहित। अपने ढंग की बेजोड़ पुस्तक है। द्वितीय संस्करण ७–००

४४ **भेल संहिता**—श्री गिरिजा दयालु शुक्ल कृत सटिप्पण शोधपूर्ण संस्करण १०–००

४५ **मदनपाल निघण्टु**—मूल टिप्पणी सहित। १–००

४६ **मर्म-विज्ञान-सचित्र**—आचार्य रामरक्ष पाठक आयुर्वेदाचार्य। मर्मों का वर्णन आयुर्वेद की विशेषता है। लेखक ने आयुर्वेद में वर्णित १०७ मर्मों की सचित्र विस्तृत व्याख्या की है। ३–५०

४७ **माधव निदानम्**—वैद्य उमेशानन्द शास्त्री कृत सुधालहरी संस्कृत टीका सहित। १–५०

४८ **माधव निदान**—सर्वाङ्गसुन्दरी हिन्दी टीका सहित ४–५०

४९ **माधव निदानम्**—मधुकोष संस्कृत व्याख्या मनोरमा हिन्दी टीका सहित। ६–००

५० **मूत्र के रोग**—डा० घाणेकर। (Diseases of urine, urinary system and allied diseases) मूत्र विज्ञान सम्बन्धि सर्वश्रेष्ठ नवीन प्रकाशन। ६–००

५१ **यकृत के रोग और उनकी चिकित्सा**—वैद्य श्री सभाकान्त झा। इसमें यकृत, उसकी रचना, क्रिया, उसके विकार, विकारों के निदान, पूर्वरूप, संप्राप्ति, चिकित्सा, पित्ताशय और उसके विकारों का वर्णन सरल भाषा में किया गया है २–००

५२ **योग-चिकित्सा**—अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार। रोग की कौन सी अवस्था में, उसके उपद्रव में कौन-कौन सी औषधियां किस अनुपान से किस समय सफलता पूर्वक व्यवहार की जा सकती हैं यह इस पुस्तक में बड़े ही उपयोगी ढंग से वर्णित है। चिकित्सकों के लिए बड़ी उपयोगी पुस्तक है। ३–५०

५३ **योगरत्नाकर**—मूल गुटका संस्करण। ६–००

५४ **योगरत्नाकर**—विद्योतिनी हिन्दी टीका सहित। चिकित्सा के उपलब्ध संग्रह ग्रन्थों में योगरत्नाकर सर्वोपरि माना गया है। काय चिकित्सा में जिन-जिन बातों का ज्ञान आवश्यक है उन विषयों की आश्रय निधि इस ग्रन्थ में भरी पड़ी है। ग्रन्थ बहुत सुन्दर नवीन चमकते टाईप में छपा है। १८–००

५५ **रक्त के रोग**—डा० घाणेकर। नवीन आवृत्ति। १०–००

५६ **रसरत्न समुच्चय**—सुरत्नोज्वला हिन्दी टीका सहित अभिनव संस्करण १०–००

५७ **रसरत्न समुच्चय**—मूल टिप्पणी सहित। मूल्य सुलभ संस्करण ३–०० उत्तम संस्करण ३–७५

५८ **रसादि परिज्ञान**—आयुर्वेद बृहस्पति पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल। पट् रसों के संबन्ध में पूर्व विवेचन, उसका क्रमिक विकाश सरल भाषा में वयोवृद्ध एवं अनुभवी लेखक ने इस पुस्तक में किया है। २–००

५९ **रसाध्याय**—संस्कृत टीका सहित। यह रसशास्त्र का अति प्राचीन छोटा किन्तु उपयोगी अद्भुत ग्रंथ है। ०–६२

६० **रसायन खण्ड (रसरत्नाकर का चतुर्थ खण्ड)**—इसमें रसायन तथा वाजीकरण इन दो तन्त्रों में बहुत से उपयोगी नूतन योगों का वर्णन किया गया है। ८–५०

६१ **रसार्णव नाम रसतन्त्रम्**—भागीरथी बृहद् टिप्पणी एवं विशेष विवरण से युक्त। कीमियागीरी, पारद के बंधन प्रयोग, यंत्र मूषाओं का वर्णन, पारद के संस्कार, रस-उपरस-महारस-रत्न-धातु-उपधातु का शोधन-मारण आदि बताने वाली प्राचीन पुस्तक है। २–००

६२ **रसेन्द्रसारसंग्रह**—बालबोधिनी-भागीरथी टिप्पणी सहित। १–५०

६३ **रसेन्द्रसारसंग्रह**—(सचित्र) नवीन वैज्ञानिक रसचन्द्रिका हिन्दी टीका विमर्श परिशिष्ट सहित ६–००

६४ **रसेन्द्रसारसंग्रह**—(सचित्र) गूढार्थसंदीपिका संस्कृत टीका सहित। टीकाकार-आयुर्वेदाचार्य अम्बिकादत्त शास्त्री ५–००

६५ **राजकीय ओषधियोग संग्रह**—आचार्य रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी ए. एम. एस. ७–००

६६ **राष्ट्रीय चिकित्सा सिद्ध योग संग्रह**—आचार्य श्री रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी ए. एम. एस.। इसमें सिद्ध कषाय, चूर्ण, तैल, घृत, अवलेह, गुटिका, रस आदि के गुण, अनुपान और निर्माण का पूर्ण विवरण है १–५०

६७ **रोगनामावली कोष**—डा० दलजीतसिंह आयुर्वेद बृहस्पति। इस ग्रन्थ में सभी आयुर्वेदीय, यूनानी, डाक्टरी रोगों के नाम और परिचय—संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अरबी, फार्सी, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं में अकारादि क्रमानुसार संग्रह किये गये हैं। जनता, ग्रन्थ लेखक, वैद्य, हकीम, डाक्टर सभी के लिए उपयोगी पुस्तक है। ३–५०

६८ **रोगनिवारण**—(Treatment) डा० शिवनाथ खन्ना एम. बी. बी. एस.। १४–००

६९ **रोग परिचय** (Clinical Medicine)—डा० शिवनाथ खन्ना एम. बी. बी. एस.। इसमें रोगों की व्याख्या वर्णन, कारक, मरक-विज्ञान, निदान, चिकित्सा आदि विषयों का बड़े विस्तार के साथ प्रतिपादन किया गया है १२–७५

७० **रोगी परीक्षा** (Physical Examinations)—डा० शिवनाथ खन्ना एम. बी. बी. एस.। पुस्तक में नवीन वैज्ञानिकपद्धति के आधारपर रोगीपरीक्षा की विधियों का विस्तारपूर्वक चित्रों तथा तालिकाओं द्वारा वर्णन है ६–००

७१ **वनौषधि चन्द्रोदय**—इस विशाल निघण्टु ग्रंथ में भारतवर्ष में पैदा होने वाली समस्त वनस्पतियों, खनिज-द्रव्यों, विष-उपविषों के गुण धर्मों का सर्वाङ्गीण विवेचन है। प्रत्येक वस्तु के भिन्न-भिन्न भाषाओं के नाम, उत्पत्ति स्थान आयुर्वेद, यूनानी और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से उनके गुण-धर्मों का वर्णन, भिन्न-भिन्न रोगों पर उसके उपयोग, उस वस्तु के मेल से बनने वाले सिद्ध प्रयोगों का विवेचन बहुत ही सुन्दर तथा विस्तार से किया गया है। अपने विषय का अद्वितीय ग्रंथ है। पृथक्-पृथक् प्रत्येक भाग का मूल्य ५–०० तथा १–१० भाग संपूर्ण ग्रंथ का मूल्य ४०–००

७२ **वनौषधि दर्शिका**—वनस्पति विशेषज्ञ प्रोफेसर बलवन्त सिंह एम. एस्-सी.। इसमें लगभग ३०० वनौषधियों का वैज्ञानिक विवरण संक्षिप्त रूप में किया गया है। २–५०

७३ **विषविज्ञान और अगदतन्त्र**—डा० युगलकिशोर गुप्त एवं डा० रमानाथ द्विवेदी। इसमें उन विषैले द्रव्यों का वर्णन है जिनसे प्रायः दुर्घटनायें होती हैं और जिनका आत्महत्या या परहत्या के लिए व्यवहार किया जाता है। पुस्तक हर वैद्य के लिए पठनीय है। १–७५

७४ **वैद्यक परिभाषा प्रदीप**—टीकाकार—श्री प्रयागदत्त जोषी आयुर्वेदाचार्य। द्वितीय संकरण। १–५०

७५ **वैद्यकीय सुभाषितावली**—डा० प्राणजीवन माणेकचन्द मेहता। वेद से लेकर वैद्यजीवन ग्रन्थ तक में आये हुये आयुर्वेदिक सुभाषितों का संग्रह। मूल संस्कृत, अंग्रेजी अनुवाद सहित। २–००

७६ **वैद्यजीवन**—अभिनव सुधा हिन्दी टीका टिप्पणी सहित। टीकाकार—श्री कालिकाचरणशास्त्री ए. एम. एस. १–२५

७७ **व्यवहारायुर्वेद-विषविज्ञान-अगदतन्त्र**—डा० युगल किशोर गुप्त एवं डा० रमानाथ द्विवेदी। हिन्दी में अपने विषय की सर्वोत्तम पुस्तक है। इण्डियन मेडीसिन बोर्ड, विद्यापीठ तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन आदि सभी आयुर्वेदिक संस्थाओं की परीक्षाओं के लिए स्वीकृत है। ४–५०

७८ **शल्य प्रदीपिका**—(सचित्र) डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा १२–५०

७९ **शल्य तन्त्र में रोगी परीक्षा**—(Clinical Methods in Surgery) डा० पी. जे. देश पाण्डे ७–००

८० **शार्ङ्गधर संहिता**—नवीन वैज्ञानिक विमर्शोपेत सुबोधिनी हिन्दी टीका सहित। परिष्कृत नवीन संस्करण ६–००

८१ **शालाक्य तन्त्र (निमितन्त्र)**—इस पुस्तक के ५ भागों में क्रमशः नासिका, शिर, कान, मुख एवं आँखों के रोगों के हेतु, निदान, सम्प्राप्ति आदि की विस्तृत विवेचना की गई है। जहां छात्रों के लिए यह पुस्तक पठनीय है वहां आधुनिक चिकित्सा के मर्मज्ञों के लिए यह अध्ययन-मनन योग्य ग्रन्थ है। ६–००

८२ **सिद्धभेषज संग्रह**—आचार्य युगल किशोर गुप्त तथा डा० गंगासहाय पाण्डेय ए. एम. एस.। राजसंस्करण ६–००
उत्तम संस्करण ८–०० सुलभ संस्करण ७–००

८३ **सुश्रुत संहिता**—आयुर्वेदतत्त्वसंदीपिका हिन्दी टीका वैज्ञानिक विमर्श सहित। टीकाकार–कविराज अम्बिकादत्त शास्त्री ए. एम. एस.। टीकाकार ने मूल संहिता के भावों को सरल भाषा में नवीन विज्ञान के साथ तुलना कर विषयों को अधिक स्पष्ट, तर्कसम्मत एवं बुद्धिग्राह्य बना दिया है, जिससे छात्र, अध्यापक एवं चिकित्सकों के लिए यह सटीक संस्करण समान रूप से उपयोगी सिद्ध हो गया है। **सूत्र–निदान स्थान** ७–०० **शारीर स्थान** ३–००
चिकित्सा स्थान ४–००, **कल्प स्थान** २–००, **उत्तरतन्त्र** १२–५०

८४ **सुश्रुत संहिता-सूत्र स्थान**—डा० घाणेकर कृत हिन्दी टीका सहित। परिष्कृत संस्करण। ६–००

८५ **सुश्रुत संहिता-शरीर स्थान**—डा० घाणेकर कृत हिन्दी टीका सहित। इस टीका की प्रशंसा करना सूर्य को दीपक दिखलाना है। द्वितीय संस्करण। ८–००

८६ **सुश्रुत संहिता-शरीर स्थान**—नवीन वैज्ञानिक 'प्रभा'–'दर्पण' विस्तृत हिन्दी टीका सहित। प्रभा व्याख्या से मूल के वास्तविक अर्थ तथा 'दर्पण' व्याख्या से गूढ अर्थों को विस्तृत रूप में दर्शाया गया है। ३–००

८७ **सूचीवेध विज्ञान**—डा० राजकुमार द्विवेदी। आविष्कृत परिष्कृत द्वितीय संस्करण १–५०

८८ **सौश्रुती**—आयुर्वेद बृहस्पति डा० रमानाथ द्विवेदी एम. ए., ए. एम. एस.। प्राचीन शल्यतंत्र पर लिखा हुआ यह ग्रन्थ अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में इस विषय की यत्र-तत्र बिखरी हुई सामग्री को क्रमबद्ध एवं आधुनिक विज्ञान से आलोकित सरलभाषा में प्रस्तुत किया है। द्वितीय संस्करण ८–५०

८९ **शिलाजीत विज्ञान**—इसमें शिलाजीत का परिचय, शोधन, मारण, परीक्षण, प्रयोग तथा महत्त्वपूर्ण अनुभूत योगों का विशद् वर्णन है ०–७५

९० **हैजा (विसूचिका) चिकित्सा**—इसमें हैजा का इतिहास, लक्षण, निदान, चिकित्सा और उससे बचने के उपाय तथा कुछ अनुभूत नवीन पेटेन्ट औषधियों का भी वर्णन किया गया है। पुस्तक सर्वसाधाराण के लिए उपयोगी है ०–७५

९१ **स्टेथिस्कोप तथा नाडी परीक्षा**—(सचित्र) इस पुस्तक में स्टेथिस्कोप की बनावट, परीक्षा, ध्वनिवर्णन आदि तथा नाड़ीपरीक्षा संबन्धी सभी ज्ञातव्य विषयों का वर्णन नवीन चिकित्सा पद्धति के अनुसार किया गया है ०–७५

९२ **स्वस्थवृत्त समुच्चय**—चरकाचार्य श्री राजेश्वरदत्त शास्त्री कृत हिन्दी टीका सहित। ६–५०

९३ **स्वास्थ्य संहिता**—हिन्दी टीका सहित। रचयिता-आयुर्वेदाचार्य कविराज नानकचन्द्र वैद्य शास्त्री। स्वास्थ्य विज्ञान के सभी सम्भावित प्रश्नों का विवेचन इस पुस्तक में स्पष्ट रूपेण दिया है। अनिवार्य पठनीय ग्रन्थ २–५०

आयुर्वेद-प्रदीप

(आयुर्वेदिक-एलोपैथिक गाइड)

(संशोधित, परिवर्धित, नवीन संस्करण)

डा० राजकुमार द्विवेदी डी. आई. एम. एस.

डा० गंगासहाय पाण्डेय ए. एम. एस.

पृ० सं० लगभग ९००, उत्तम कागज, नया टाइप, मनोरम आवरण। परिष्कृत संस्करण मूल्य १०–००

प्रस्तुत ग्रन्थ में प्राच्य तथा पाश्चात्य विषयों का समन्वय, उसका इतिहास, प्रसार तथा अन्यपद्धतिजनकत्व स्पष्ट वर्णित है। प्रत्येक अंग तथा धातूपधातुओं की रचना एवं कार्य, मल मूत्रादि विभिन्न परीक्षाएँ, विटामिन, संक्रामक रोग तथा उनसे बचने के उपाय, नाना प्रकार के पथ्य विधान, एलोपैथिकआयुर्वेदिक समस्त विधानों का अलग-अलग वर्णन, दोनों प्रकार की सम्पूर्ण औषधों के निर्माण, प्रयोग एवं गुण-धर्म विज्ञान, हिन्दी-अँगरेजी नामावली, समस्त रोगों की उभय-विध व्यवस्थित चिकित्सा, तत्संबंधी आवश्यक उपकरण, चिकित्सक के वैधानिक कर्त्तव्याधिकार, व्यवहारायुर्वेद, आदि सब अधिकतम ज्ञातव्य सामग्री सुबोध एवं सरल भाषा में वर्णित है। इसे पढ़ लेने के बाद आयुर्वेद तथा एलोपैथ से संबंधित कोई विषय अज्ञात नहीं रह जाता। चिकित्सा में सहस्रशोनुभूत योगों की प्रधानता है। हम-आप इसे 'गागर में सागर' कह सकते हैं।

द्रव्यगुण-विज्ञान

आचार्य प्रियव्रत शर्मा, एम. ए., ए. एम. एस.

प्रोफेसर, आयुर्वेदिक कॉलेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

इसके प्रथम भाग के द्रव्यखण्ड में द्रव्यों के स्वरूप तथा उनका रचनात्मक एवं कर्मात्मक वर्गीकरण-प्राचीन एवं नवीन दोनों दृष्टिकोणों से दिया गया है। गुणखण्ड में गुण, रस, विपाक, वीर्य तथा प्रभाव का विशद एवं तुलनात्मक वर्णन किया गया है। कर्मखण्ड में प्राचीन एवं आधुनिक विज्ञान में वर्णित द्रव्यों के लगभग १५० कर्मों का समन्वयात्मक विवेचन तथा वैज्ञानिक व्याख्या भी की गई है। कल्पखण्ड में भैषज्य कल्पना के सैद्धान्तिक पक्ष का स्पष्टीकरण है। द्वितीय भाग में औद्भिद और जांगम तथा तृतीय भाग में पार्थिव द्रव्यों का समावेश है। प्रत्येक द्रव्य का परिचय (शास्त्रीय गण, वानस्पतिक कुल, वैज्ञानिक नाम, विभिन्न प्रादेशिक नाम, स्वरूप, जातियाँ, उत्पत्तिस्थान, रासायनिक सङ्गठन), गुण (गुण-रस-विपाक-वीर्य-प्रभाव) कर्म (शरीर-दोषों एवं शरीर के विभिन्न संस्थानों पर होने वाले परिवर्तनों की सयुक्तिक व्याख्या) तथा प्रयोग (गुण-कर्म के आधार पर विभिन्न विकारों में उसके प्रयोग की विधि, प्रयोज्य अङ्ग, मात्रा, विशिष्ट योग, अहित प्रभाव, निवारण एवं प्रतिनिधि) विस्तार के साथ वर्णित है। यथास्थल सर्वत्र आधुनिक एवं यूनानी विचारों का भी अन्तर्भाव किया गया है। १–३ भाग, दो जिल्दों में १८–००

सचित्र-इन्जेक्शन

डॉ० शिवनाथ खन्ना एम. वी. वी. एस., पी. एच. डी.

आयुर्वेदिक कालेज, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

सूचीवेध क्रिया, भेदोपभेद, उनके द्वारा प्रयुक्त होनेवाली विभिन्न औषधियों के नाम, गुण-धर्म आदि, विटामिनों का परिचय, उनके अभाव से होनेवाले रोगों में सूचीवेध, रोगों की किस स्थिति में किस प्रकार के सूचीवेध का कैसे प्रयोग किया जाय, किन-किन स्थितियों में किस प्रकार की सावधानी वरती जाय, सूचीवेध से होने वाले दुष्परिणाम और उनसे सतर्क रहने तथा उन्हें सँभालने में विशेष ध्यान देने योग्य वातें आदि सूचीवेध से सम्बन्धित सभी ज्ञातव्य विषयों का उपयुक्त चित्रों की सहायता से विशद विवेचन किया गया है। विषय-विभाग के अनुसार पुस्तक ३ खण्डों में विभाजित है।

प्रथम खण्ड में इन्जेक्शन देने की सब विधियों का तथा साधारण इन्जेक्शन के अतिरिक्त एनिमा (Enema) लगाना, प्लूरा (Plura) से पीप निकालना, आदि चिकित्सक के प्रतिदिन की आवश्यक क्रियाओं का विस्तार-पूर्वक चित्रों सहित वर्णन किया गया है।

द्वितीय खण्ड में इन्जेक्शन देने की औषधियों का तथा पेटेण्ट (Patent) औषधियों की प्रकृति, प्रयोग, योग, विषाक्तता, विषाक्तता की चिकित्सा, मात्रा आदि का वर्णन है।

तृतीय खण्ड में प्रायः १०० प्रमुख रोगों की चिकित्सा का आधुनिक विधि (allopathy) से संक्षेपमें वर्णन है।

प्रत्येक छात्र तथा सामान्य चिकित्सक (General Practitioner) के लिए पुस्तक अत्यन्त उपयोगी एवं अवश्य संग्रहणीय है। आजकल सूचीवेध का ही अधिक प्रयोग होने लगा है। किन्तु इसमें जितनी सावधानी, विज्ञता और कुशलता की अपेक्षा है वह सभी चिकित्सकों में नहीं पाई जाती है। ऐसे महत्वपूर्ण विषय का सांगोपांग विवेचन प्रस्तुत पुस्तक का विषय है। मूल्य १०—००

एलोपैथिक मिक्श्चर्स

प्रस्तुत पुस्तक में अनुभवी चिकित्सकों द्वारा विभिन्न रोगों पर प्रयुक्त एवं अनुभूत सैकड़ों उत्तम मिश्रण दिये गये हैं। रोग-विवरण के आरम्भ में सामान्य लक्षण एवं मिश्रणों को विशिष्ट क्रम से रखा गया है। इंजेक्शन के प्रयोग, मात्रा आदि का स्पष्ट निर्देश है। संक्षेप में चिकित्सा के सभी अंगों का विशद वर्णन है। मिश्रण-निर्माण की विधि, स्थान, उपकरण तथा कम्पाउण्डर के जानने योग्य वातों का समावेश स्वतंत्र अध्याय में ही किया गया है। पुस्तक आधुनिक चिकित्सकों के लिए अत्यन्त उपादेय है। मूल्य २—००

पेटेण्ट प्रेस्क्राबर या पेटेण्ट मेडिसिन्स

डा०-रमानाथ द्विवेदी

(संशोधित परिवर्द्धित नवीन संस्करण)

५५० पृष्ठों के इस विशाल ग्रंथ में ४०० से अधिक रोगों पर हजारों पेटेण्ट दवाओं का प्रयोग वताया गया है। रोग का नाम, उस पर विविध कंपनियों के योग, कंपनियों के नाम, प्रयोगविधि और मात्रा स्पष्ट लिखी गई है ताकि नवीनतम ढंग से आप सरलतापूर्वक जटिल रोगों की भी चिकित्सा कर सकें। अंत में विष, उनके लक्षण तथा चिकित्सा आदि देकर पुस्तक की महत्ता और भी वढ़ा दी गई है। जनसामान्य के लिए उपयोगी प्रकाशन है। मूल्य ७—००

सचित्र
स्वास्थ्यविज्ञान और सार्वजनिक आरोग्य

डा० भास्करगोविन्द घाणेकर

(सपरिष्कृत परिवर्धित चतुर्थ संस्करण

इस संस्करण में सूक्ष्म दृष्टि से संशोधन करते हुए अनेक विषयों का परिवर्द्धन और रूपान्तरण किया गया है तथा मनःस्वास्थ्य और मनोविकार-प्रतिवन्धन जैसे महत्त्वपूर्ण नये विषय समाविष्ट किए गए हैं। विषय को सुस्पष्ट करने के लिये आयुर्वेद और प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थों के उद्धरण और तुलनात्मक टिप्पणियाँ अधिक संख्या में विस्तारपूर्वक दी गई हैं। स्थान-स्थान पर विषय से सम्बन्धित अनेक आवश्यक चित्र भी दिए गए हैं। परिभाषा सम्बन्धी कठिनाई दूर करने की दृष्टि से अंग्रेजी-हिन्दी कोष का रूप बदलकर हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोष दे दिया गया है।

नवीन चमकता टाइप, सफेद ग्लेज कागज, आधुनिक आकर्षक मनोरम पक्की जिल्द से विभूषित। मूल्य ७—५०

रसचिकित्सा

कविराज प्रभाकर चट्टोपाध्याय एम. ए.

इस ग्रन्थ में पारद के १८ संस्कारों का तथा पारद हरिताल आदि की भस्म निर्माण विधि, स्वर्ण घटित मकरध्वज निर्माण प्रकार, अभ्रकादि खनिज धातुओं का आश्चर्यजनक शोधन-मारण तथा सेवन विधि का विस्तृत विवेचन, सभी प्रकार के ज्वर तथा टायफाइड, न्यूमोनियाँ, इन्फ्युयेंजा, काला-जार, प्लेग, गैष्ठिक आलसार, गलस्टोन, हैजा, सुजाक, उपदंश आदि वर्तमानकाल के वहुप्रचलित दुःसाध्य रोगों की भी आधुनिक चिकित्सा विधि लिखी गई है। लेखक का दावा है कि इस पुस्तक से साधारण वैद्य भी सफल 'रसचिकित्सक' वनने का गौरव प्राप्त कर सकता है। मूल्य ६—००

प्राप्तिस्थान—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़, अलीगढ़, यू० पी०

नारीरोगाङ्क

की

—विषयानुक्रमणिका—

[सम्पूर्ण नारीरोगांक विषयानुक्रमानुसार छापा गया है। उसी प्रकार क्रमशः प्रकरण देते हुए विस्तृत विषय सूची प्रकाशित कर रहे हैं। इससे पाठकों को इच्छित लेख प्राप्त करने में सुविधा रहेगी। लेखकों के केवल मात्र नाम ही विस्तारभय के कारण कर सके हैं, उपाधि एवं पूरा पता प्रत्येक लेख के अन्त में प्रकाशित किया है।

—सम्पादक]

धन्वन्तरि-नारीरोगांक के

सम्माननीय-लेखक

(अकारादि क्रम से)

✻ पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें ✻

धन्वन्तरि के ग्राहकों की सेवा में

धन्वन्तरि के विशेषांक विशेष महत्वपूर्ण विशाल एवं परिश्रम साध्य होते हैं। हमारा प्रेस एवं कार्यालय ऐसे स्थान पर स्थित है जहां से ६-६ मील तक कोई सड़क या समुचित यातायात का साधन नहीं है, अतएव बहुत प्रयत्न करने पर भी विशेषांक के प्रकाशन में विलम्ब हो जाता है और इसलिए आगामी अंक भी कुछ देरी से प्रकाशित हो पाते हैं। इस वर्ष हमने विशेषांक जल्दी ही प्रकाशित करने का पूर्ण प्रयत्न किया है तथा आगामी अंक भी शीघ्र प्रकाशित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। फिर भी थोड़ा धैर्य रखने की प्रार्थना है तथा निवेदन है कि—

१. कोई भी अंक मिलने पर यह देखलें कि उससे पहिला अंक मिला है या नहीं। न मिला हो तो उसी समय पत्र लिखकर मंगालें।

२. वर्ष के अन्त में एक साथ अधिक अंकों के न मिलने की शिकायत लिखना असुविधाजनक एवं अनुचित है। और उस समय आपकी फाइल पूर्ण करने में सर्वथा असमर्थ रहेंगे।

३. थोड़े समय के लिए स्थान परिवर्तन करना हो तो अपने पोस्ट आफिस में प्रबन्ध करलें। स्थायी रूप से स्थान परिवर्तन करते समय ग्राहक नम्बर, पहिला पता और नवीन पता स्पष्ट लिखते हुये सूचित करें।

४. धन्वन्तरि के विषय में पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें तथा उत्तर के लिए कार्ड भेजें।

५. अंक बड़ी सावधानी से प्रत्येक ग्राहक को भेजे जाते हैं। अतः अंक न मिलने की शिकायत पहिले पोस्ट आफिस में करें, उसके उत्तर के साथ यहां पत्र लिखें।

धन्वन्तरि के मान्य लेखकों

के लिये लेख सम्बन्धी आवश्यक संकेत

१—लेख कागज की एक ओर थोड़ा मार्जन छोड़कर सुवाच्य अक्षरों में लिखियेगा।

२-लेख ऐसे विषय पर लिखें जो चिकित्सकों के लिए ज्ञानवर्द्धक एवं ज्ञातव्य हों। खोज एवं अनुभवपूर्ण लेख, सफल प्रयोग, वनस्पति विशेष पर अनुभव, रोग विशेष पर अनुभवपूर्ण चिकित्सा, कष्टसाध्य रोग से पीड़ित रोगी का सफल चिकित्सा विवरण आदि चिकित्सकों के लिये उपयोगी लेखों को प्राथमिकता दी जाती है।

३-धन्वन्तरि के अधिकांश पाठक अंग्रेजी भाषा नहीं जानते अतएव लेख में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग यथासम्भव न करें।

३-लेख संक्षिप्त एवं सारपूर्ण बनावें। अनावश्यक विस्तार न करें तथा आवश्यक बातों को लिखने में संकोच भी न करें।

५—लेख में आयुर्वेद ग्रन्थों के उद्धरण लिखते समय उनका संदर्भ अवश्य दें। तथा उद्धरण ध्यानपूर्वक शुद्ध व स्पष्ट लिखें।

६-प्रयोग लिखते समय प्रयोग के घटक, तोल, निर्माण विधि, अनुपान, मात्रा, प्रयोग विधि समझा कर लिखें। प्रयोग के वास्तविक गुण ही लिखें, बढ़ाचढ़ा कर न लिखें।

७-समाचार, विविध सम्मेलन समाचार, चुनाव समाचार, धन्वन्तरि जयन्ती समाचार आदि संक्षेप में लिखकर भेजें। यदि सम्मेलनादि के फोटो भेज सकें तो अवश्य भेजें।

८—व्यक्तिगत आक्षेपयुक्त या विवादास्पद समाचार एवं लेख धन्वन्तरि में प्रकाशित नहीं किये जाते हैं।

९—अपने लेख से सम्बन्धित कोई चित्र भी यदि आप भेज सकते हों तो अवश्य भेजें। हम ब्लाक बनवा कर आपके लेख के साथ प्रकाशित करेंगे।

इस विशेषांक

में

लेख-संख्या	११६ तथा अनेक उपयोगी प्रयोग
लेखक संख्या	१३७
चित्र संख्या	१६१
पृष्ठ संख्या	५८०°
मूल्य	(केवल विशेषांक का) ८॥)

(ग्राहकों को वार्षिक ५॥) में ही अन्य १० अंकों सहित प्राप्य)

विशेषांक-सम्पादन में ८ माह का कठिन परिश्रम

इस विशेषांक के सभी विषयों पर विद्वान एवं अनुभवी व्यक्तियों के अधिकार पूर्ण लेख प्राप्त करने, उनसे सम्बन्धित चित्रों का निर्माण कराने तथा उन लेखों को विषयानुसार क्रम-बद्ध लगाने में बहुत परिश्रम किया गया है। आप उपर्युक्त आंकड़ों से तथा इस विशेषांक को पढ़ने से निश्चय ही यह अनुभव करेंगे कि धन्वन्तरि के संचालक धन्वन्तरि द्वारा वैद्य समाज को कितने अल्प मूल्य में कितना विशाल एवं उपयोगी साहित्य दे रहे हैं और इस कार्य में कितना घाटा उठा रहे हैं। अतएव

धन्वन्तरि के प्रत्येक ग्राहक से

हमारी कर-बद्ध प्रार्थना है कि वे धन्वन्तरि के २-२, ४-४ नवीन ग्राहक बनाने का प्रयत्न अवश्य करें। इस विशेषांक को देखकर शायद ही कोई ऐसा वैद्य होगा जो धन्वन्तरि का ग्राहक बनने की इच्छा न करे। आपको थोड़ा उत्साहित करने की आवश्यकता है।

° विशेषांक का मैटर, सूची के पृष्ठ, प्रारम्भिक विज्ञापन एवं सूची विषय कुल मिलाकर।

आयुर्वेद साहित्य प्रकाशन

का

नवीन विशाल आयोजन

आयुर्वेद का प्राचीन एवं नवीन दोनों प्रकार का उत्कृष्ट साहित्य आयुर्वेद समाज को सुविधापूर्वक कम मूल्य में मिल सके इस उद्देश्य से हम एक विशाल योजना प्रस्तुत कर रहे हैं। वैद्य समाज से, तथा आयुर्वेद विद्वानों से सानुग्रह निवेदन है कि वे इस योजना को ध्यानपूर्वक पढ़ें तथा इस विषय में अपनी सम्मति एवं सुझाव प्रस्तुत करें।

जिस प्रकार गीताप्रेस गोरखपुर महाभारत नामक मासिक पत्र द्वारा धार्मिक प्राचीन ग्रन्थों का प्रकाशन कर रहा है उसी प्रकार आयुर्वेद साहित्य प्रकाशन के लिए "आयुर्वेद साहित्य" नामक मासिक पत्र प्रकाशित किया जाय तथा प्रति माह २०० पृष्ठों का अङ्क प्रकाशित किया जाय। इसके विषय में निम्न नियम प्रस्तावित करते हुए आपकी सम्मति प्राप्त करना चाहते हैं—

१—"आयुर्वेद साहित्य" मासिक पत्र ग्लेज कागज पर छापा जाय, जिससे कि इसमें प्रकाशित साहित्य पाठकों के पास अधिक समय तक सुरक्षित रहे।

२—"आयुर्वेद साहित्य" में पहिले आयुर्वेद के प्राचीन ग्रंथ—चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट माधवनिदान, शार्ङ्गधर संहिता आदि प्राप्य एवं दुष्प्राप्य ग्रन्थों की सरल सुबोध सचित्र टीका, व्याख्या एवं प्राच्य-पाश्चात्य समन्वयात्मक विवेचन प्रकाशित किया जाय।

३—एक ग्रन्थ समाप्त होने पर दूसरा और दूसरा समाप्त होने पर तीसरा, इस प्रकार सम्पूर्ण उत्तमोत्तम ग्रन्थों को क्रमशः प्रकाशित करने की योजना की जाय।

४—प्रत्येक अंक का मूल्य २।।) तथा वार्षिक मूल्य २४) रखा जाय। अङ्क भेजने का सामान्य पोस्टव्यय भी इसी मूल्य में शामिल होगा। जो ग्राहक अंकों को रजिस्ट्री से प्राप्त करना चाहेंगे उनको रजिस्ट्री व्यय पृथक् देना होगा।

५—इस प्रकार धन्वन्तरि साइज के २०० पृष्ठों में किताबी साइज के ४०० पृष्ठों का साहित्य प्रत्येक माह पोस्ट-व्यय सहित स्थायी ग्राहकों को केवल २) में मिलेगा। वैद्य समुदाय २४) प्रति वर्ष व्यय करते हुए कुछ वर्षों में अपने यहां एक अच्छी खासी आयुर्वेदिक पुस्तकों की लाइब्रेरी देखेंगे।

योजना की यह अति सूक्ष्म रूप-रेखा आपके समक्ष केवल विचारार्थ प्रस्तुत की जाती है तथा आशा है वैद्य समुदाय इस योजना के विषय में अपनी सम्मति तथा सुझाव अवश्य देंगे। यदि हमको उत्साहवर्द्धक सम्मतियां मिलीं तो फिर विस्तार से योजना बनाकर आपके समक्ष प्रस्तुत की जायगी तथा इसे क्रियान्वित करने का प्रयत्न करेंगे।

भवदीय

देवीशरण गर्ग

स्त्र्याश्रयो हीन्द्रियार्थो यः स प्रीति जनोऽधिकम् ।
स्त्रीषु प्रीतिविशेषेण स्त्रीष्वपत्यं प्रतिष्ठितम् ॥
धर्मार्थौ स्त्रीषु लक्ष्मीश्च स्त्रीषु लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥

—चरक चि० अ० २ पाद १

भाग ३४ अङ्क २-३ | सचित्र नारी-रोगाङ्क | फरवरी-मार्च सन् १९६० ई०

सम्पादकीय प्राक्कथन

अतीत काल—

..............नार्यो मूलमपत्यानाम् ।
उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ॥

मनु. अ. ९

मानव मात्र के आदि पुरुष आदि राजा या शासनकर्त्ता श्री मनु जी अपने शासनशास्त्र स्मृति शास्त्र में उक्त वचनों द्वारा सूचित करते हैं कि स्त्रियों के उत्कृष्ट कर्त्तव्य कर्मों में सन्तति, प्रजनन एवं तदुपरान्त सन्तति के स्वास्थ्यवर्धक प्रतिपालन की प्रधानता है । सन्तति-प्रजनन और सन्तति परिपालन इन दोनों विषयों का प्रतिपादन आयुर्वेद की अष्टांगात्मक चिकित्सा भागान्तर्गत कौमारभृत्य नामक अङ्ग में किया गया है ।

ऐसा कहना या मानना भूल है कि अतीतकाल की भारतीय नारियां स्वास्थ्य विषयक बातों से नितान्त ही अनभिज्ञ थीं, उन्हें रोग या चिकित्सा विषयक ज्ञान नहीं था । आज से २५-३० वर्ष पूर्व हमारी माताएं तथा घर की वृद्ध स्त्रियां प्रत्येक रोग की चिकित्सा घर में ही कर लिया करती थीं । इससे भी बहुत पहिले आयुर्वेदीय इतिहास से ज्ञात होता है कि भारतीय प्राचीनकाल का सुशिक्षित स्त्री वर्ग आयुर्वेदान्तर्गत केवल उक्त कौमारभृत्य

चिकित्सांग का ही नहीं, प्रत्युत वैद्यक के काय, वाजीकरण, रस-रसायन आदि अन्यान्य अंगों का भी पूर्ण ज्ञाता था। उनमें से भैरवी, गार्गी, मालावती, रत्नकला, पार्वती, उमा आदि के शुभ नाम उल्लेखनीय हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(१) भैरवी—यह श्री भैरव नामक ऋषि की पत्नी थी। भैरव जी ने इनकी प्रसन्नता के लिए आनन्दकन्द नामक ग्रन्थरत्न का निर्माण किया था। इस ग्रन्थ में रसशास्त्र विषयक उपयुक्त बातों का विस्तारपूर्वक विचार के साथ ही साथ कतिपय सिद्ध-योग एवं औषधि व्यवहार का भी उत्तम वर्णन किया गया है।

(२) मालावती—यह उपबर्हण नामक महर्षि की पत्नी थीं। इनके पिता का नाम चित्ररथ था। इनके पति (उपबर्हण जी) अकाल में ही दिवंगत हो जाने पर इन्होंने अपनी तपश्चर्या के बल से देवराज इन्द्र को प्रसन्न कर लिया। इन्द्र ने एक ब्राह्मण के रूप में इन्हें वैद्यकीय संहिता का जो उपदेश किया है वह पठनीय एवं मननीय है-देखिये—ब्रह्मवैवर्त पुराण ब्रह्मखंड अ. १५ और १६।

(३) गार्गी—प्रसिद्ध योगिराज श्री याज्ञवल्क्य जी ने अपनी विदुषी पत्नी श्रीमती गार्गी जी को उद्देशित कर याज्ञवल्क्य संहितान्तर्गत अध्याय ४ में सुषुम्नादि नाड़ियों का तथा अन्नपचन कार्य की उत्कृष्ट सिद्धता का एवं तज्जन्य रस, मल, मूत्रादि उत्पादन का विशद वर्णन किया है। ६ और ७ अध्यायों में विभिन्न रोगों में प्राणायाम की उपयोगिता का स्पष्टीकरण किया है। स्वयं गार्गी ने ७ वें अध्याय में भिन्न-भिन्न दोष प्रकृति पर प्राणायाम द्वारा होने वाले अनिष्ट परिणामों का तथा उनके परिहारार्थ उपायों की योजना का विशद वर्णन किया है।

(४) रत्नकला—वैद्यराज श्री लोलिम्बराज जी ने अपनी विदुषी पत्नी रत्नकला को भिन्न-भिन्न रोगों पर तत्काल लाभदायक प्रयोगों का वर्णन-प्रणयपूर्वक मधुर भाषा में किया है। यह ग्रन्थ वैद्यजीवन नाम से प्रसिद्ध है।

(५) उमा पार्वती—रसार्णव, रुद्रयामल तन्त्र, रसोपनिषद, नाड़ी विज्ञान आदि ग्रन्थों का निर्माण पार्वती, उमा नामक देवि या देवियों के प्रीत्यर्थ महादेव, महेश्वर या शिवजी ने किया है।

पूर्वकाल की प्रायः सब महिलायें जानती थीं कि षड्रसप्रधान वस्तुओं में कौन-कौन वस्तुएं भिन्न-भिन्न प्रकृति के अनुसार प्रिय या अप्रिय, पथ्य या अपथ्य होती हैं। स्वास्थ्य का सुधार किस प्रकार किया जाता है तथा तदनुसार ही वे अपने अपने घरों में खान पान या आहार-विहार की व्यवस्था रखती थीं। कहा है—

> किं प्रियं च किमाग्नेयं षड्साम्यन्तरेषु च।
> किं पथ्यं किमपथ्यं च स्वास्थ्यं वास्य कथं भवेत्॥
> इति यत्नात् विजानीयात् अनुष्ठेयं च यत्नतः।
> भर्तृराहारपानादि विदध्यात् अप्रमादतः॥
> स्वभावाभयकालानां वैपरीत्येन सर्वदा।
> सर्वमाहारपानादि प्रयोज्यं तद्विदो जगुः॥
>
> भविष्य पुराण, ब्राह्मपर्व अ. १३[०]

आधुनिक काल—

समय के प्रभाव से दूषित संसर्गवश शनैः शनैः विपरीत दशा प्राप्त हुई। भारतीय सुसंस्कार लुप्तप्रायः हो गये। भारतीय नारियां उपेक्षित हो गईं। "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः" (जहां नारी जाति का सम्मान होता है, वहां देवताओं का निवास या आनन्दवर्धक वातावरण, सुखसमृद्धि होती है) इस प्रकार की जो उच्च भावनायें नारियों

---

[०]प्राणाचार्य गोपाल शास्त्री जी गोड़बोले के 'प्राचीन काल की महिलाओं की वैद्यक विषयक जिज्ञासा' शीर्षक एक मराठी लेख (आरोग्य मन्दिर वर्ष २२ अङ्क ३) के आधार पर उक्त आवश्यक सामग्री संक्षेप में दी गई है। सम्पादक उनका आभारी है।

के प्रति थीं, वे सब विलुप्त सी हो गयीं। जिसके परिणामस्वरूप सुसन्तानोत्पादक क्षेत्र के विकृत हो जाने से नीरोग एवं निर्दोष संतति का अभाव सा हो गया। राष्ट्र की अवनति होने लगी।

अन्य उन्नत देशों की स्त्रियों की अपेक्षा भारतीय स्त्रियां वर्तमान समय में अत्यधिक हीनावस्था को प्राप्त हो गई हैं। उनके शारीरिक विकास का अभाव सा हो गया है। दीर्घजीवी एवं हृष्ट-पुष्ट सन्तान उत्पन्न होने की शक्ति क्षीण होगई है। योनिविकार, प्रदर, रजोविकार, हिस्टेरिया, गर्भाशय विकृति आदि रोगों ने उन्हें आक्रांत कर रक्खा है। रजोविकार बहुत बढ़ रहा है। अल्पावस्था में ही मासिक धर्म की प्रवृत्ति होकर ४० वर्ष के अन्दर ही बन्द हो जाता है। आयु कम हो रही है। कार्य करने की शक्ति का ह्रास हो रहा है। स्तनों में दुग्ध की कमी से बच्चों का पालन-पोषण ठीक प्रकार से नहीं हो पाता। बच्चे छोटी अवस्था में ही ऊपर के दूध से पाले जाते हैं। अतः वे उदर विकार आदि रोगों से ग्रस्त होकर विकलांग या अकाल समय में ही काल कवलित हो जाया करते हैं।

आधुनिक सभ्यता या फैशन में पली हुई नवमाताएं अपने दूध से बच्चों को वंचित रखने में ही अपना गौरव मानती हैं। यह उनकी भूल है, भ्रम है। इसका फल उनको एवं उनके बच्चों को समान रूप से भोगना पड़ता है। बच्चा निर्बल, मन्द, कायर एवं उदर के कतिपय विकारों से ग्रस्त हो जाता है। माता के स्तनों का स्वाभाविक विकास, आकृति और सौन्दर्य क्षीण होने लगता है, कभी-कभी स्तनों में सूजन तथा मर्मान्तक पीड़ा होने लगती है।

भारतीय नारियों में आजकल साहस, आत्मसम्मान, गौरव, उदारता, प्रतिष्ठा, धार्मिक पवित्र भावनायें नष्ट प्रायः हो रही हैं। पातिव्रत धर्म एवं सतीत्व का गौरव तो लुप्त ही हो गया है। भीरुत्व, निरुत्साह, नीचता एवं अपवित्रता बढ़ रही है।

राष्ट्र में शारीरिक एवं आत्मिक बल, सत्-साहस, श्रेष्ठाचार आदि सद् गुणों का संचार तथा विकास तो तब ही होता है, जब स्त्रियां पूर्ण सदाचारयुक्त एवं सुशिक्षित होती हैं। तभी भावी सन्तति पूर्ण नीरोग, सच्चरित्र सम्पन्न होती तथा कुल, समाज एवं राष्ट्र की सर्वाङ्गीण उन्नति होती है[०]।

आज का भारतीय नारी समाज, विशेषतः शहरों में और शहर से लगे हुये कस्बों में रहने वाला नारीवर्ग चटक-मटक की शिक्षा से प्रभावित होकर, शरीर स्वास्थ्य की दृष्टि से, अज्ञानान्धकार में पथभ्रष्ट हो रहा है, अपने स्वास्थ्य को नष्ट कर रहा है। प्रायः ६० प्रतिशत नारियां प्रदर, कामोन्माद (हिस्टेरिया) आदि कठिन रोगों से ग्रस्त हो कष्टमय जीवन व्यतीत कर रही हैं जिसका परिणाम यह हो रहा है कि भावी राष्ट्र के निर्माता, देश के नौ-निहाल बालक हीन वीर्य एवं अनेक रोगों से पीड़ित हैं तथा स्त्रियों के साथ ही साथ बाल-मृत्यु की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ रही है।

जनरल पब्लिक हेल्थ कमिश्नर की रिपोर्ट से पता चलता है कि कलकत्ता और लखनऊ में १५ से ४६ वर्ष की स्त्रियों की मृत्यु संख्या पुरुषों की अपेक्षा तिगुनी, बम्बई और पंजाब में लगभग दुगुनी और मद्रास में पुरुषों से लगभग २६ प्रतिशत अधिक हुई है। कुल भारतवर्ष में प्रसूता और गर्भिणी स्त्रियों की प्रतिवर्ष कम से कम दो लाख तक मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार प्रतिशत लगभग २० की संख्या में स्त्रियों की अकाल मृत्यु हो जाती है।

---

[०]स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च।
स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन् हि रक्षति॥
—मनु. अ. ६

एक साल से कम उम्र के बच्चे २४.८ प्रतिशत, ५ साल तक के बच्चे १८.६ प्रतिशत की संख्या में काल कवलित हो जाते हैं। यह संख्या सन् १९३९ की है, आजकल तो इस मृत्यु संख्या में कई गुना अधिक वृद्धि हुई है। खेद है कि शहरों और कस्बों में, चिकित्सा की सुविधा होते हुये भी यह मृत्यु संख्या गांवों की अपेक्षा अधिक होती हैं। ऐसी स्त्री-विषयक गम्भीर अवस्था में राष्ट्रोन्नति के इच्छुक एवं परिवार और समाज का मङ्गल एवं कल्याण की आकांक्षा करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपने घर की स्त्रियों के स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान देना परमावश्यक है। स्त्रियां स्वाभाविक लज्जावश अपने रोग को छिपाये रखती हैं। अपने गुप्त स्थानों में होने वाले विकारों को दूसरों पर प्रकट करने में हिचकिचाती हैं। परिणाम यह होता है कि छिपा हुआ रोग उनके कोमल शरीर को शनैः शनैः जर्जर बनाकर उन्हें संकटापन्न स्थिति में पहुँचा देता है तब उसका सुधार होना बहुत कठिन हो जाता है।

पुरुषों को चाहिये कि किसी प्रकार उनके गुप्त विकारों का परिज्ञान कर निवारणार्थ उपयुक्त उपाय करें तथा स्त्रियों को भी चाहिये कि वे अपने रोग की जानकारी प्रारम्भ से ही कर उसकी तत्काल लाभदायक औषधि योजना स्वयं कर लेवें या घर के पुरुषों द्वारा करा लेवें। इसके सरल भाषा में उपयुक्त साहित्य प्रकाशित करने की परमावश्यकता है जिसे पढ़कर स्त्रियां रोगारम्भ में ही या रोग ग्रस्त हो जाने पर, विशेष वैद्यकीय सहायता के अभाव में स्वयं अपनी विकृति या दुःख स्थिति को दूर कर सकें तथा उनका विकार भयानक रूप में परिणत न हो सके। अंग्रेजी आदि अन्यान्य भाषाओं के साहित्य की अपेक्षा हिन्दी में इस विषय के साहित्य का नितांत अभाव है। इस अभाव को दूर करने तथा देश में यथोचित प्रकार से स्त्री शिक्षा का सुधार करने की विशेष आवश्यकता है।

स्त्रियों के पाठ्यक्रम में इस विषय का साहित्य न होने से आजकल की बी. ए., एम. ए. पास स्त्रियां अत्यधिक रोगग्रस्त या दुर्बलांग देखी जाती हैं जिनके कारण गृहस्थाश्रम संकटपूर्ण एवं दुर्दशाग्रस्त होता जा रहा है। आजकल आधुनिक स्त्री शिक्षा एवं नाममात्र की सभ्यता की वृद्धि के साथ ही साथ ६८ प्रतिशत स्त्रियां श्वेत-प्रदर से तथा १० प्रतिशत नारियां हिस्टेरिया नामक विकार से पीड़ित होकर दुःखपूर्ण जीवन व्यतीत कर रही हैं। दुर्बल एवं दूषित प्रकृति की नवयुवतियों में ये विकार अधिकता से पाये जाते हैं। हिस्टेरिया जिसे योषापस्मार, आक्षेपवात, कामोन्माद या भूत बाधा भी कहते हैं, गांवों की या ग्रामवासी स्त्रियों में अधिक देखा जाता है। १८ वर्ष की सुकुमारी नवयुवतियों से लेकर २५ वर्ष तक की आयु की स्त्रियों में यह विकार अत्यधिक पाया जाता है। धनाढ्य घरानों की नवयुवतियां जिन्हें सब प्रकार की स्वच्छन्दता प्राप्त है तथा जो रामायण आदि धार्मिक पुस्तकों का तिरस्कार कर चटकीली, भड़कीली कहानियों की पुस्तकें या दूषित कामवासना को जागृत करने वाली पुस्तकें को बड़े चाव से पढ़ती रहती हैं या अश्लील सिनेमा आदि देखा करती हैं वे ही इस विकार की अधिक शिकार बनती हैं। खेद है आजकल ऐसी ही दूषित पुस्तकों एवं सिनेमा आदि दृश्यों का अत्यधिक प्रसार हो रहा है।

ध्यान रहे, जो धर्म और अर्थ की कुछ भी परवाह न कर इन्द्रियों के वशीभूत हो स्वेच्छाचार से कामपरायण होते हैं. वे शीघ्र ही धन, प्राण, स्त्री पुत्रादि से नष्ट हो जाते हैं। उनकी महान् दुर्गति होती है तथा वे भ्रष्टाचार को फैला कर राष्ट्र के अकल्याण में कारणीभूत होते हैं। कहा है—

धर्मार्थौ यः परित्यज्यस्यादिन्द्रिय वशानुगः।
श्रीप्राणधन दारेभ्यो क्षिप्रं स परिहीयते ॥ —मनु०

उक्त दुरावस्था के निराकरणार्थ गृहस्थी में निम्न प्रकार से व्यवहार की परमावश्यकता है —

जब भी जिस कारण से कामोत्तेजना होती हो उन सब (अश्लील साहित्य सिनेमा, नाटक, बात-चीत, रहन-सहन, खानपान आदि) से सर्वथा दूर रहना, कामवासना विषयक विचारों के आने पर ईश्वर का नाम जपना, प्राणायाम या सद्ग्रन्थों का पठन-पाठन, ऋतुकाल में ही केवल सन्तान निमित्त ही सहवास करना, गर्भावस्था से लेकर बच्चा जब तक कम से कम ३ वर्ष का न हो जाय तब तक भोग से बचते रहना, समय समय पर उपवास व्रत आदि करना चाहिए।

ब्रिटिश शासनकाल में जितना या जितने प्रमाण में नैतिक पतन नहीं हुआ और स्त्री विषयक दुराचरण का विस्तार नहीं हुआ उससे कहीं अत्यधिक प्रमाण में गत १३ वर्षों से भारतवर्ष में हो रहा है। खेद है कि आधुनिक गणतन्त्र के शासक तथा जनता की ओर से इस गम्भीर विषय पर कितना ध्यान दिया जाता है उसका नग्न रूप अश्लील एवं कामुकतापूर्ण पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों के प्रकाशन की बाढ़, गन्दे चित्रपट (सिनेमा) विज्ञापनों एवं दूकानदारों की सजावट में नित्यप्रति देखा जा रहा है। जनता और सरकार इन नैतिक पतन के कार्यों को दूर करने के लिये तथा इनमें रोक लगाने के लिये केवल प्रस्तावों को पास करके रह जाती है, क्रियात्मक रूप से कुछ भी नहीं किया जाता।

इसी खेदजनक अवस्था को दूर करने की दृष्टि से गोरखपुर के सुप्रसिद्ध गीता प्रेस ने कल्याण का विशाल 'नारी अङ्क' निकाला था और हमने अपने धन्वन्तरि कार्यालय से धन्वन्तरि के विशेषांक के रूप में सन् १९४० में नारी-रोगांक निकाला था। उसकी सब प्रतियां शीघ्र ही समाप्त हो जाने पर उसका द्वितीय संस्करण सन् १९४९ में निकाला गया। वह भी शीघ्र समाप्त हो गया। यहां तक कि कार्यालय में उसकी बड़ी मुश्किल से एक प्रति रह गई, या हमें उसे बचाकर किसी प्रकार रखना पड़ा। ग्राहकों की मांग कई वर्षों से लगातार जारी थी। हम कई कारणों से विवश थे। इसके प्रकाशन का सुअवसर ही हमें नहीं मिलता था। अब इस वर्ष अन्य-अनेक प्रकाशन कार्य को अलग रख कर हमने इसके प्रकाशन का निश्चय किया। तदनुसार इसकी सूचना धन्वन्तरि के गतांकों में देते रहे। गणमान्य, सुविज्ञ वैद्यवरों ने हमें प्रोत्साहित कर इस विशेषांक के लिए अपने सारगर्भित अमूल्य लेखों को कृपापूर्ण दृष्टि से भेजना प्रारम्भ कर दिया। हम चाहते थे कि प्रथम प्रकाशित नारीरोगांक के भी कुछ लेख संशोधित कर इसमें ले लिये जावें। किन्तु इस नूतन विशेषांक के लिए ही इतने उत्तमोत्तम लेख हमारे पास आ गये कि उनको ही पूर्ण रूप से इस ५२० पृष्ठ के विशाल अङ्क में हम प्रकाशित करने में असमर्थ हो गये। तथापि गत नारी-रोगांक की कृति व्यर्थ न जाने पावे, एतदर्थ हम सोच रहे हैं कि इस नारीरोगांक के द्वितीय भाग के रूप में उसे आगामी किसी वर्ष में प्रकाशित कर पाठकों की सेवा में समर्पित करने का प्रयत्न करें।

इस प्रस्तुत विशेषांक में प्रायः सर्व स्त्री रोगों की सरल एवं स्वानुभवपूर्ण चिकित्सा विशदरूप से लिखकर भेजने की महान उदारतायुक्त कृपा दृष्टि हम पर स्वनामधन्य लेखकों ने की है। हम उनके विशेष आभारी एवं कृतज्ञ हैं। आशा है हिन्दी भाषा से परिचित प्रत्येक गृहस्थ इस विशेषांक की एक-एक प्रति अपने घर में रखकर समय-समय पर इससे यथोचित लाभ उठावेगा तथा हमारे श्रम को सार्थक करेगा। साथ ही साथ आपने गृहस्थी के आधारभूत नारी वर्ग को सुस्वास्थ्य सम्पन्न कर भलीभांति पुष्पित एवं फलित करेगा।

इस विशेषांक के लिए हमारे पास अनपेक्षित इतने अधिक लेख आ चुके हैं कि उन सबको पूर्णतया स्थान हम नहीं दे सके। लेखकगण हमें क्षमा करेंगे। तथापि उनके सन्तोषार्थ, पिष्टपेषण से

बचते हुए उनके लेखों का आवश्यक भाग यथा-स्थान देने का हमने अत्यधिक प्रयत्न किया है।

हमारे पुराने प्रसिद्ध लेखकों का शुभ परिचय प्रायः कई बार पीछे के अङ्कों में दिया जा चुका है। अतः इस बार नहीं दिया गया। कुछ नूतन लेखकों का उनके लेख सहित अति संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(१) चि. दाऊदयाल गर्ग A., M.B.S.-ये ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज हरिद्वार के स्नातक तथा धन्वन्तरि के सहायक सम्पादक हैं। इनके दो लेखों (१–श्रोणि (*pelvis*) की रचना, २–औदरीय एवं योनि परीक्षा विधि) में विवरण उत्तम प्रकार से सचित्र दर्शाया गया है। वस्तुतः इस विशेषांक के सम्पादन एवं संकलन, चित्रों के चयन आदि का सम्पूर्ण श्रेय इन्हीं को है।

(२) श्रीमती शिवरात्रिदेवी—खेद है कि इन्होंने अपना शुभ परिचय देना स्वीकार नहीं किया। इनका लेख (स्त्री जननेन्द्रिय शारीर) उत्तम विवेचनात्मक है। गुप्तांग में लोम और रजोदर्शन का सम्बन्ध, कामसंवेदनी नाड़ी, कौमार्य परीक्षा आदि पर उत्तम प्रकाश डाला गया है।

(३) डा० सतीशचन्द्र जी गुप्ता M. B., B. S.—आप ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज में शल्य चिकित्सक के पद पर कार्य कर चुके हैं। आपने मासिक धर्म पर नलिकाहीन या अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्रावों का प्रभाव कैसा और किस प्रकार होता है इस क्लिष्ट विषय को उत्तम ढङ्ग से समझाया है।

(४) श्री पं० वागीशदत्त जी वैद्य—आप गाजियाबाद के प्रसिद्ध वैद्यों में से हैं। ऋतुकालचर्या के विषय में चरक सुश्रुत के प्रमाण देते हुए आपने अपने लेख को लिखा है।

(५) वैद्य श्री नागेशदत्त जी शुक्ल—ने उक्त ऋतुकालचर्या पर और भी विशद रूप से प्रकाश डाला है।

(६) श्रीमती सुषमा वर्मा—आपने अपना कोई विशेष परिचय नहीं दिया है। आपने अपने पिता श्री बदरीनारायण सेन जी से शिक्षा प्राप्त की है। आपका 'स्त्री रोग परीक्षा' लेख खोजपूर्ण, सचित्र एवं रोग परीक्षण में सरलतापूर्वक सहायक है।

(७) श्री प्रेमशंकर शर्मा—ऋषिकुल कालेज हरिद्वार में पञ्चम वर्ष के विद्यार्थी हैं। आपने 'कष्टार्तव' पर लेख लिखकर भेजने का कष्ट उठाया है। भविष्य में और भी उत्तमोत्तम लेख भेजा करेंगे ऐसी हमें आपसे आशा है।

(८) श्री शेखफय्याज खां—आपको विशारद एवं शास्त्री की पदवी प्राप्त है, किन्तु खेद है कि 'कष्टार्तव' शीर्षक लेख में आपने जो कुछ थोड़े से प्रयोग दिये हैं, वे सब होम्योपैथिक और ऐलोपैथिक चिकित्सा से सम्बन्ध रखते हैं। प्रसूत ज्वर सम्बन्धी आपका लेख उत्तम एवं स्वानुभवपूर्ण है। आप चित्र बनाने में सिद्धहस्त मालूम देते हैं। इस विशेषांक का तिरङ्गा मुख पृष्ठ आपके भेजे गये एक चित्र के अनुसार ही तैयार करवाया गया है। एतदर्थ हम आपके आभारी हैं।

(९) कुमारी मंजुला सेन—आप से कोई विशेष परिचय प्राप्त नहीं हुआ। आर्तव दोष शीर्षक लेख में आपने प्रायः आर्तव दोष के विभिन्न कारणों के ऊपर अच्छा प्रकाश डाला है तथा समुचित चिकित्सा भी लिखी है। लेख उत्तम है।

(१०) श्री अमरनाथ जी शर्मा L. M. S. H.-आपका भी कोई परिचय प्राप्त नहीं हुआ। रजोरोध शीर्षक लेख में आपने स्वर्ण जल और रौप्य जल नामक रक्तबर्धक जो स्वानुभूत प्रयोग दिये हैं वे उत्तम प्रतीत होते हैं। इनसे काफी लाभ उठाया जा सकता है। अन्य प्रयोग भी सरल एवं लाभदायक हैं।

(११) वैद्य श्री उमाशङ्कर जी दाधीच—आप साहित्यायुर्वेद विशारद हैं। आपका लेख 'प्रदर' साधारण ठीक है। आपसे और भी उत्तम लेखों की हमें आशा है।

(१२) डा. वसन्तलाल जी तिवारी—आप 'आयुर्वेद केसरी' हैं। आपने रक्त प्रदर की विशिष्ट चिकित्सा स्वानुभवपूर्ण लिखी है। योनि प्रक्षालन विधि अनुकरणीय है।

(१३) वैद्य श्री पं. सोमदेव शर्मा साहित्यायुर्वेदाचार्य B. A., A. M. S.—आप गवर्नमेंट आयुर्वेद कालिज रायपुर के रीडर एवं आयुर्वेद क्षेत्र के एक सुप्रसिद्ध महानुभाव हैं। आप कृपाकर कभी कभी अपने विद्वत्तापूर्ण लेख भेजकर धन्वन्तरि पर कृपा कर दिया करते हैं। आपका 'योनिव्यापद्विमर्श' लेख उत्तम एवं विवेचनापूर्ण है। यह लेख पाठकों का ज्ञानवर्धक है।

(१४) राजवैद्य डा. जी. के. दाधीच—आप महावीर आयुर्वेदिक औषधालय, करंजा (विदर्भ) के एक प्रतिष्ठित वैद्य हैं। "बन्ध्यत्व व चिकित्सा" शीर्षक लेख में आपने बन्ध्यत्व के कारणों का स्पष्ट दिग्दर्शन कराया है।

(१५) श्री राजवैद्य केशवलाल नानचन्द शाह—आप वैद्यरत्न, आयु. विशारद, आयु. विज्ञानाचार्य L. M. P. आदि उपाधियों से विभूषित हैं। सलालपुर, गुजरात के प्रतिष्ठित वैद्य हैं। हिन्दी के अच्छे जानकार न होते हुए भी आपने 'बन्ध्यत्व' शीर्षक लेख में पर्याप्त परिश्रम किया है।

(१६) श्री डा. धर्मपाल जी मित्तल A., M. B. S.—आप जगरांव (लुधियाना) पंजाब के उच्च श्रेणी के वैद्यराज हैं। आपका विशेष परिचय आपके लेख "गर्भपात एवं गर्भस्राव" के साथ ही छपा है। इस लेख में चिकित्सा सम्बन्धी आपके विचार उत्तम मार्गदर्शक हैं।

(१७) श्री कविराज बदरीनारायण सैन G. A. M. S.—"पुंसवन एवं गर्भ का क्रमिक विकास" आपका यह लेख विस्तीर्ण एवं विवेचनात्मक है। वर्णन शैली कुछ क्लिष्ट है। इसमें नर एवं नारी स्वभाव विषयक चर्चा विवादास्पद होते हुए भी विचारों को नवीन मोड़ देने वाली है।

(१८) डा. रमेशचन्द्र जी गर्ग A. M. S.—'गर्भाशय में गर्भ की स्थिति एवं क्रमिक विकास' शीर्षक आपके लेख में चित्रों की भरमार है। चित्रों द्वारा आपने गर्भ के क्रमिक विकास को दर्शाने का सफल प्रयत्न किया है। लेख उत्तम है।

(१९) श्री डा. ताराचन्द जी तोड़ा—आप किशनगढ़ (राजस्थान) के प्रतिष्ठित वैद्य तथा हमारे पुराने लेखकों में से हैं। आपका लेख 'मक्कलशूल' छोटा होते हुये भी सारगर्भित है। आपका 'इच्छित सन्तति' शीर्षक लेख काफी विवेचनापूर्ण, उत्तम है।

(२०) आचार्य श्री सुदेवचन्द्र पाराशरी शास्त्री D. I. M. S., प्रोफेसर गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज जयपुर। आपका "गर्भाशय विच्युति" लेख काफी विस्तृत, विवेचनापूर्ण, आधुनिक विज्ञान पर आधारित, सुचित्रित एवं उद्बोधक है।

(२१) श्री डा. सत्यनारायण जी A. M. S. आयुर्वेदाचार्य—आप आयुर्वेदिक कालेज, विश्वविद्यालय, वृन्दावन (मथुरा) के प्राध्यापक हैं।

आपने गर्भाशय भ्रंश पर विस्तृत समन्वयात्मक लेख भेजा था। किन्तु प्रारम्भ में लेख लिखने के विषय में आपसे दूसरे विषय के बारे में सूचना प्राप्त हुई थी। अतः उक्त श्री सुदेवचन्द्र जी पाराशरी से गर्भाशय भ्रंश विषयक लेख मंगवाया था जिसे उन्होंने शीघ्र ही भेजकर कृतार्थ किया। वह भी काफी विस्तृत होने से, स्थानाभाव से आपके लेख का केवल चिकित्सा भाग ही इस अंक में प्रकाशित किया गया है। आपका यह चिकित्सा भाग भी युक्ति युक्त एवं पाश्चात्य और पौर्वात्य (विशेषतः आयुर्वेद) चिकित्सा पद्धतियों के समन्वयरूप में, उसमें भी आयुर्वेद की श्रेष्ठता का निदर्शक बहुत ही उपादेय है।

(२२) सुश्री डा. उमाराय - डा. प्रभाकर चटर्जी द्वारा आपका लेख 'कैंसर रोग से बचने के उपाय" हमें प्राप्त हुआ। इस लेख में रस तलक, अश्वक्षार आदि कई वस्तुएं सन्देहास्पद है। शीघ्रता में

जैसा का तैसा यह लेख छापने में आगया है। इसका हमें खेद है।

(२३) श्री केशवदत्त मिश्र साहित्यायुर्वेदाचार्य M. A., B.I.M.S.—आप ऋषिकुल आयुर्वेद कालेज हरिद्वार में विशेषतः प्रसूति विज्ञान एवं स्त्री रोगों के प्राध्यापक हैं। आपका 'सोमरोग' विषयक लेख उत्कृष्ट विवेचनापूर्ण एवं सरल बुद्धिगम्य है। आपने यथायोग्य युक्ति के साथ सिद्ध किया है कि सोमरोग प्राचीन आर्ष ग्रन्थों का शुद्ध कफज, उदक-मेह का एक रूप (आधुनिक डायबिटीज इनसिपिडस) है, तथा चिकित्सा भी निजानुभवयुक्त बड़ी मार्के की बतलायी है। आशा है आगे भी आप ऐसे ही लेखों द्वारा धन्वन्तरि को आभारी करते रहने की कृपा करेंगे।

(२४) श्री डा० अनन्तराम जी शर्मा D. I. M. S. शास्त्री बी. ए. आयुर्वेदाचार्य। आप ऋषिकुल आयुर्वेद कालेज हरिद्वार में शल्य एवं द्रव्यगुण के प्रोफेसर हैं। आपके 'स्तन रोग' लेख में स्तन परीक्षण विशद रूप से वर्णित है तथा वृद्धि, शोथ आदि स्तन-विकारों पर पाश्चात्य एवं आयुर्वेदिक निदान सहित चिकित्सा संक्षिप्त में दी गई है। चिकित्सा यदि और भी विशद होती तो उत्तम होता। आशा है आप इसी प्रकार अपने अमूल्य लेखों से पाठकों को उपकृत करते रहेंगे।

(२५) श्री वैद्य मुन्नालाल जी गुप्त B. I. M.—कानपुर के प्रतिष्ठित वैद्य, तथा पुराने सुप्रसिद्ध लेखक हैं। आपने स्तन रोगों की चिकित्सा उत्तम प्रकार से संक्षेप में लिखी है। आप इसी वर्ष धन्वन्तरि के ग्रहणी रोग नामक लघु विशेषांक का सम्पादन कर रहे हैं। यह अङ्क जून-जौलाई के लगभग निकाला जावेगा।

(२६) श्री वैद्य माधवप्रसाद जी आचार्य—आप राष्ट्रीय चिकित्सा केन्द्र उदयपुर के सुविख्यात वैद्य एवं सुलेखक हैं। "नारी उपदंश" लेख में आपने प्रचुर चित्रों द्वारा रोग जन्य विकारों को सुस्पष्ट कर दिया है। चिकित्सा भी साधारणतः उत्तम दर्शाई गई है।

(२७) श्री जगदम्बा प्रसाद जी श्रीवास्तव—इस विशेषांक के लिये अनेक उपयोगी लेख, प्रयोग, शास्त्रीय प्रयोग, कविता आदि भेजने की कृपा की है लेकिन उनके लेख स्थानाभाव के कारण बहुत कम प्रकाशित कर सके हैं। अप्रकाशित लेख धन्वन्तरि के आगामी अङ्कों में प्रकाशित करेंगे।

(२८) श्री यशोदा देवी वैद्याचार्या देहली-ने एक विस्तृत लेख में अनेक विषयों पर प्रकाश डाला है, जिसमें से विषयानुसार अंश विभिन्न स्थानों पर प्रकाशित किए हैं। आपने कई उपयोगी चित्रों का संकेत भी भेजने की कृपा की है जिसके लिए हम आभारी हैं।

इस बार के विशेषांक के लिए हमको लेखकों ने अभूतपूर्व सहयोग दिया है। इतने अधिक लेख चित्रादि पहले कभी प्राप्त नहीं हुए थे। यदि शेष मैटर भी हम प्रकाशित कर सकते तो यह विशेषांक इससे दूने से भी अधिक बन जाता लेकिन वह हमारी सामर्थ्य से बाहर की बात थी और इसीलिए हमको विवश होकर प्रायः सभी लेखों को संक्षिप्त करना पड़ा है। बहुत से लेख छोड़ देने पड़े हैं। कई लेखकों ने अपने एक ही लेख में विभिन्न अनेक विषयों पर संक्षिप्त प्रकाश डाला है उनको हमने यत्रतत्र विषय क्रमानुसार प्रकाशित करने का प्रयत्न किया है, फिर भी अनेक उपयोगी लेख प्रकाशित नहीं किये जा सके जिसके लिए हम उन लेखकों से क्षमायाचना करते हुए निवेदन करते हैं कि उनके उपयोगी अंश आगामी अंकों में प्रकाशित करेंगे।

हमको आशा है कि आयुर्वेद विद्वत् जन हमारे आगामी विशेषांकों के लिए भी इसी प्रकार अपना कृपापूर्ण सहयोग देते रहेंगे।

स्त्रियोपयोगी आयुर्वेद शिक्षण-एक सूझ

श्री जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल आयुर्वेद वृहस्पति

श्री धन्वन्तरि के सञ्चालक गण प्रतिवर्ष धन्वन्तरि के जो विशेषांक निकालते हैं, वह आयुर्वेद की एक महान् सेवा की दृष्टि से बड़ा महत्व रखते हैं। विषय विशेष कर एक अच्छे साहित्य का उससे संकलन हो जाता है। आयुर्वेद की यह एक महान् सेवा है। इस वर्ष सन् १९६० के आरम्भ में धन्वन्तरि का 'नारीरोगांक' निकल रहा है। उसकी विषय सूची देखकर बहुत प्रसन्नता हुई क्योंकि उसमें स्त्री जीवन सम्बन्धी सभी समस्याओं की पूर्ति का दृष्टिकोण रखा गया है। इसे देखकर मेरे हृदय में एक विचार परम्परा का उदय हुआ। आयुर्वेद के साधारण शिक्षण और परीक्षण के लिये कई पाठ्यक्रम बने हैं और उनके द्वारा आयुर्वेद के चिकित्सक तैयार करने की महत्वपूर्ण तैयारी होने लग गयी है। किन्तु स्त्रियों के दृष्टिकोण से स्त्रियोपयोगी चिकित्सक, धात्री और उपचारिका तैयार करने के लिये अब तक सफल प्रयत्न नहीं हुआ है। आयुर्वेद महासम्मेलन ने विषयानुरोध से पाठ्यक्रम तैयार कर आयुर्वेद शिक्षण का जो मार्ग प्रदर्शन किया है उसका सुफल प्रत्यक्ष दीख रहा है। आयुर्वेद शिक्षण के लिये अब तक जो प्रयास हुए हैं उन सभी का मार्ग प्रदर्शन उसके द्वारा हुआ है। करांची के वैद्य सम्मेलन के समय यह विचार सामने आया था कि स्त्रियोपयोगी परीक्षा के लिये एक पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाय। इसकी ओर सम्मेलन का ध्यान भी एक प्रस्ताव के द्वारा आकर्षित किया गया था, परन्तु अब तक क्रियात्मक रूप से उस पर कुछ नहीं हुआ। यही नहीं प्रान्तों में इण्डियन मैडिसिन बोर्ड स्थापित हुए, उन्होंने आयुर्वेद और यूनानी के पाठ्यक्रम बनाये, विद्यालय संचालन का उपक्रम हुआ और परीक्षाऐं भी आरंभ हुईं। सरकार की ओर से भी प्रयत्न हुए, किन्तु अभी तक स्त्रियों के सम्बन्ध में इधर भी आवश्यक ध्यान नहीं गया। इस बात को समझ लेना चाहिए कि मानव जगत में पुरुष और स्त्री दो महत्वपूर्ण विभाग हैं। उद्योग की दृष्टि से पुरुष वर्ग का जो महत्व है वह स्वीकार करने पर भी यह मानना पड़ेगा कि स्त्री समाज उससे कम महत्व का नहीं बल्कि स्त्रियों के साथ बाल समाज होने के कारण स्त्रियों की उपयोगिता और महत्व कहीं अधिक है। अब तक के शिक्षण और परीक्षण में अधिक भाग पुरुष विद्यार्थियों का ही रहता आया है। स्त्रियों का आकर्षण इधर विशेष रूप से नहीं हुआ। यथार्थ में स्त्री शिक्षण का प्रबन्ध अलग होना चाहिए तभी स्त्रियों का सुविधाजनक आकर्षण हो सकता है। स्त्रियोपयोगी पाठ्यक्रम स्वतन्त्र होना चाहिये। स्त्रियां स्वभावतः लज्जाशील होती हैं, पुरुष चिकित्सकों से वे अपनी व्यथा दिल खोलकर नहीं कह सकतीं। योनि, गर्भाशय, स्तन आदि के विकारों और कठिनाइयों की बात, इसी प्रकार सम्भोगकालीन कष्टों और कठिनाइयों की बात वे पुरुष चिकित्सकों से किस प्रकार कहेंगी, यही नहीं निदान और रोग परीक्षण के लिये उन्हें स्त्री चिकित्सकों के द्वारा जो सुविधा होगी, वह पुरुष चिकित्सकों के द्वारा कदापि नहीं हो सकती। इस लिये बहुत आवश्यक है कि स्त्रियोपयोगी कम से कम तीन पाठ्यक्रम तैयार किये जांय। प्रथम धात्री शिक्षण सम्बन्धी, द्वितीय उपचारिका सम्बन्धी और तृतीय स्त्री चिकित्सका सम्बन्धी। यदि नारीरोगांक का विषय वर्णन भी इसी दृष्टिकोण से हो तो और भी सुविधा होगी। क्योंकि ऐसे पाठ्यक्रम के लिये जब तक स्वतन्त्र पुस्तकों की सुविधा न हो तब तक यह विशेषाङ्क शिक्षण के लिये भी उपयोगी होगा।

स्त्री चिकित्सक —

स्त्रियोपयोगी आयुर्वेदिक शिक्षण का पाठ्यक्रम अभी पांच या साढ़े पांच वर्ष से अधिक का नहीं होना चाहिये। साधारणतः स्त्री चिकित्सिका तैयार करने के लिये तीन या चार वर्ष का पाठ्यक्रम पर्याप्त होगा। इसके पश्चात् विशेष ज्ञान की प्राप्ति और क्रियात्मक अनुभव वृद्धि के लिये दो साल तक का पाठ्यक्रम अलग तैयार होना चाहिये। इन तीनों वर्षों में निम्नलिखित शिक्षण आवश्यक होगा—

(१) स्वास्थ्य विज्ञान—इसमें साधारणतः नित्य अनुष्ठेय कर्म, दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या, व्यायाम, ब्रह्मचर्य, व्यक्तिगत स्वास्थ्य, संक्रामक रोगों की रोक के अतिरिक्त गृहस्वास्थ्य विज्ञान, घरों की सफाई, पाखाना, नाली, रसोईघर, पशुशाला, शयनागृह आदि की सफाई, स्नान, जल आहार की वस्तुओं का ज्ञान, शाकशास्त्र, आहारशास्त्र, आहार के पौष्टिक द्रव्य आदि का ज्ञान अपेक्षित है। प्रज्ञापराध, प्रकृति भेद आदि का ज्ञान अपेक्षित है।

(२) आयुर्वेद के आधार भूत सिद्धान्त के अन्तर्गत त्रिदोष विज्ञान, पञ्चमहाभूत, पदार्थ विज्ञान, द्रव्यविज्ञान, गुण विज्ञान, प्रमाण विज्ञान आदि का अपेक्षित है।

(३) शरीर विज्ञान, शरीर के अंगों, आशयों, अस्थि, त्वचा, लोम, कला, स्नायु, नाड़ी धमनी पेशी, सिरा, स्रोतस, कोष्ठ, चर्म, रसरक्तादि धातु, मल-उपमल आदि की बनावट और कार्यों का ज्ञान विशेषकर स्त्रियों की योनि, गर्भाशय, कुच, रज, वीर्य, गर्भ आदि का विशेषज्ञान अपेक्षित है।

(४) द्रव्यगुण शास्त्र में रस, कर्म, वीर्य, विपाक, प्रभाव, द्रव्यों के भिन्न भिन्न गुण, वनस्पति-शास्त्र, आहारीय द्रव्य, रजवर्धक और रज शोधक द्रव्य, योनि रोगनाशक द्रव्य, गर्भाशयशोधक द्रव्य, गर्भस्थापक द्रव्य, गर्भपोषक द्रव्य, बालसंरक्षण द्रव्य आदि आवश्यक गुणों की कल्पना का ज्ञान अपेक्षित है।

(५) साधारण कैमिस्ट्री के ज्ञान के साथ रसशास्त्र का ज्ञान, पारद शोधन आदि रस उपरस, धातु उपधातु, रत्न-उपरत्न, विष-उपविष आदि के गुण, दोष, शोधन, मारण और प्रयोग का ज्ञान अपेक्षित है।

(६) औषधि निर्माण शास्त्र के अन्तर्गत मान परिभाषा, औषधि ग्रहणकाल, औषधियों के ग्राह्य अंग, सन्दिग्ध द्रव्यनिर्णय, उपयुक्त और त्याज्य द्रव्य ज्ञान, गुणदोष प्रभाव दर्शक परिभाषा, रसशाला निर्माण, निर्माण सम्बन्धी साधन समूह, पथ्यनिर्माण, कषायादि औषधि निर्माण, क्षार-सत्वादि निर्माण, औषधि कल्प निर्माण, आसव-अरिष्ट, घृत-तैल-अवलेह, पाक-चूर्ण, वटी तथा विविध रसौषधि निर्माण का ज्ञान होना अपेक्षित है।

(७) शरीरशोधन शास्त्र, प्राकृतिक स्वास्थ्य, आसन, स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, वस्ति कर्म आदि तथा विविध कल्प ज्ञान।

(८) आयुर्वेद के क्रमिक विकास इतिहास का साधारण ज्ञान, वन्ध्या निवारण, सन्तान-प्रदान, यौवन संरक्षण, गर्भपरिवर्तन, धात्री के कौशल आदि सम्बन्धी ऐतिहासिक एवं पौराणिक कार्यों का वर्णन जानना अपेक्षित है।

(९) चिकित्सा सम्बन्धी विषयों में कायचिकित्सा के साधारण रोगों का स्थान, निदान, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदि का ज्ञान।

(१०) कौमारभृत्य के अन्तर्गत गर्भस्थापन सम्बन्धी ज्ञान, गर्भ संरक्षण सम्बन्धी ज्ञान, विकृत गर्भ के विकार और उनका उपाय, स्वेच्छा से पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने का ज्ञान, प्रसूतिशास्त्र सम्बन्धी सम्पूर्ण ज्ञान, प्रसूतिका-गृह और प्रसूतिका तथा नवजात बालक के संरक्षण का ज्ञान, मूढ़गर्भ आदि का ज्ञान स्त्री और बालकों के रोगों का ज्ञान, निदान, चिकित्सादि का ज्ञान अपेक्षित है।

(११) ग्रह विज्ञान के अन्तर्गत कीटाणुशास्त्र, देव, राक्षस, गंधर्व, स्कन्द, शकुनी आदि के लक्षणोंयुक्त रोगों का ज्ञान, मानस रोगों का ज्ञान विवेचनापूर्वक जानने

के अतिरिक्त अपस्मार, हिस्टेरिया, मासिक अवरोध आदि विषयों का विशेष ज्ञान अपेक्षित है।

(१२) ऊर्ध्वांग चिकित्सा में मुख रोग, कर्ण रोग, नासिका रोग, नेत्र रोग और शिरोरोग का साधारण ज्ञान तथा अंजन, कर्णामृत तैल, नासिका दुर्गन्धि, शिरदर्द नाशक तैलों का ज्ञान अपेक्षित है।

(१३) शल्यशास्त्र के अन्तर्गत शल्यकर्मोपयोगी अस्त्र-शस्त्र और अन्य साधन सामग्री का ज्ञान, रक्त-मोक्षण, अग्निदाह, शृंगी, तुम्बी आदि का प्रयोग, घाव धोने और भरने के क्वाथ, मलहम, तैल पिचु आदि की जानकारी, मुख्य-मुख्य शल्यक्रियाओं का ज्ञान और विशेषकर योनिविकार, गर्भाशय-विकार, स्तनविकार और प्रसूतिका सम्बन्धी विकार और इनमें शल्य प्रयोग की जानकारी अपेक्षित है।

(१४) अगदतन्त्र के अन्तर्गत विष उपविष और कृत्रिम विषों को जानकारी, वनस्पतिजन्य विष, खनिज विष, जंगम विष, वाष्पविष, एसिड, क्षार, अगद, आहार दोष और रन्धनक्रियाजनित विषों का ज्ञान, शरीर पर उनका प्रभाव, मृत शरीर की परीक्षा द्वारा विष प्रयोग का ज्ञान और न्यायालय व्यवहार सम्बन्धी वार्ता की जानकारी अपेक्षित है।

(१५) रसायन शास्त्र के अन्तर्गत सौन्दर्यवर्धन और और संरक्षण, स्त्री पुरुषों के शरीरजन्य और प्रकृतजन्य भेद, यौवन संरक्षण तथा दीर्घायु और स्वास्थ्यवर्धन सम्बन्धी ज्ञान और कल्पों की जानकारी आवश्यक है।

(१६) वाजीकरण तन्त्र के अन्तर्गत वीर्य, ओज, जीवनी शक्ति सम्बन्धी विचार, स्थूलता और कृशता सम्बन्धी गुणदोष विचार, सन्धान शास्त्र, क्षीणता और वृषता सम्बन्धी ज्ञान, सन्तानोत्पादनी शक्ति के संरक्षण के उपाय आदि विषयों की जानकारी अपेक्षित है। इस प्रकार स्त्री चिकित्सिकाओं को षोड़शांग आयुर्वेद का शिक्षण प्राप्त होना अपेक्षित है। विशेषकर स्त्रियोपयोगी विषयों की जानकारी विशेषता के साथ होनी चाहिए। अभी इतना कार्य हो जाये तो आगे चलकर विशेष विषयों की विशेषता प्राप्ति के लिए पाठ्यक्रम और शिक्षण की व्यवस्था करनी पड़ेगी।

प्रसूति तन्त्र विशारद —

केवल स्त्री चिकित्सकों के द्वारा ही महिला समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होगी बल्कि धात्री ज्ञान प्राप्त प्रसूतितन्त्र विशारद स्त्रियों को तैयार करना पड़ेगा। अभी प्रसव कार्य के लिए अशिक्षित चमारिनों और दाइयों से काम लेना पड़ता है। परम्परा प्राप्त अनुभव के सहारे इनमें कुछ प्रसव क्रिया में चतुर भी मिल जाती हैं। किन्तु ये अशिक्षिता होने के कारण शास्त्र विधि से प्रसवकार्य करने में सर्वथा असमर्थ होती हैं। मालूम पड़ता है कि पौराणिक काल में कुछ विशेषज्ञ स्त्रियां भी होती थीं क्योंकि दो फांक में पैदा हुए जरासन्ध को मुरानामकी धात्री ने तुरन्त जोड़कर बालक सजीव कर दिया था। मायादेवी ने देवकी के गर्भ को निकालकर रोहिणी के गर्भाशय में डाल दिया था, जिससे बलदेव जी का जन्म हुआ था। गान्धारी के गर्भ से जरायु में भरे हुये सौ छोटे-छोटे बच्चे निकले थे, जिनका संरक्षण और संवर्द्धन कर दुर्योधन और दुःशासन जैसे सौ वीरों की तैयारी हुई थी। जो हो, अब स्वतन्त्र भारत में शिक्षिता धात्रियों की तैयारी नितान्त आवश्यक है। जहां तहां शहरों में और क्वचित उपनगरों में पाश्चात्य ढंग से शिक्षिता कुछ धात्री नर्सों की व्यवस्था हुई है किन्तु इनसे भारत का काम नहीं सधेगा। इन्हें न तो भारतीय ढंग के उपयुक्त प्रसूतिका गृहों की कल्पना होती है और न नवजात बालक के संस्कार और प्रसूतिका के रहन सहन खान पान की जानकारी होती है। आवश्यकता है कि आयुर्वेदीय आधार पर आधुनिक जानकारी से धात्री तैयार करने के लिए पाठ्यक्रम बनाया जाय। हमारी समझ में इनका शिक्षण काल एक साल का रहे और इस शिक्षण के लिए मिडिल पास स्त्रियां चुनी जांय। आरम्भ में अपर प्राइमरी पास से भी काम चलाया जा सकता है। ऐसी स्त्रियां को स्त्रियोक्त अंगों की विशेष जानकारी होनी चाहिये।

योनि और गर्भाशय की बनावट, उनके गुण दोष और विकार, गर्भ विकृति, मूढ़ गर्भ आदि विकार, अपरा सम्बन्धी तथा नाल सम्बन्धी जानकारी, सुख प्रसव के उपाय, औषधियों की जानकारी एवं गर्भ और प्रसव सम्बन्धी अन्य जानकारी तथा सौरि-गृह सम्बन्धी जानकारी तथा नवजात बालक और प्रसूता के उपचार का ज्ञान अपेक्षित है। इन्हें प्रत्यक्ष कर्माभ्यास की भी सुविधा रहनी चाहिये।

उपचारिका — आयुर्वेदिक चिकित्सा क्षेत्र के चार साधनाङ्गों में उपचारक एक महत्वपूर्ण अङ्ग है। रोगी, चिकित्सक, उपचारक और औषधि में से चिकित्सक के बाद या चिकित्सक के सहायक रूप में उपचारक का यह महत्व है। उपचारक बुद्धिमान कर्मदक्ष, चिकित्सक को रोगी सम्बन्धी सभी आवश्यक जानकारी प्राप्त कराने वाला और रोगी पर करुणापूर्ण दया भाव रखने वाला होना चाहिये। रोगी के कष्ट और परिस्थिति का सावधानी से निरीक्षण करते हुए चिकित्सक को उसकी जानकारी करावे और चिकित्सक की अनुपस्थिति के समय उसके योग क्षेम की चिन्ता रखे। किसी भी प्रकार के लालच या मनोविकार के वशीभूत हो रोगी का किसी भी प्रकार अनिष्ट चिन्तन न करे। ऐसा उपचारक पढ़ा लिखा बुद्धिमान ही उपयुक्त हो सकता है। यद्यपि उपचारक का काम पुरुष भी कर सकते हैं, किन्तु मातृभाव, भगिनीभाव, पुत्री भाव की सुलभ सहृदयता और कोमल भावना के द्वारा जितनी उत्तमता से यह काम स्त्री वर्ग के द्वारा हो सकता है, उतनी उत्तमता से पुरुषों के द्वारा नहीं हो सकता। पाश्चात्य चिकित्सा क्षेत्र में इसका प्रत्यक्ष अनुभव भी हो रहा है। अतएव उपचारिका वर्ग को प्रोत्साहन देना आवश्यक है। विशेषकर स्त्री रोगियों के लिये तो उपचारिका की नितान्त आवश्यकता है। इसके लिए कम से कम मिडिल पास स्त्रियां चुननी चाहिये और प्रत्यक्ष कर्माभ्यास सहित उनका शिक्षण काल डेढ़ वर्ष का रखना चाहिये। इनके लिए कुछ द्रव्य ज्ञान, अष्टविध रोग परीक्षा, सफाई, पथ्य निर्माण, क्वाथादि औषध योग निर्माण, तथा सेवा सम्बन्धी ज्ञान की अपेक्षा है। इस सम्बन्ध में कुछ पुस्तकें छपी हुई भी हैं और कुछ आवश्यक विषय पढ़ाते समय नोट कराने होंगे। इस प्रकार स्त्री वर्ग के कल्याण के लिए उनकी स्वास्थ्य रक्षा और चिकित्सा की सुविधा के लिए स्त्रियोपयोगी शिक्षण के प्रचार लिये आयुर्वेद महासम्मेलन, प्रान्तीय सम्मेलन, इण्डियन मेडिसन बोर्ड और सरकार के स्वास्थ्य विभाग को ध्यान देना चाहिये। पाठ्यक्रम निर्धारण कर शिक्षण संस्थाओं की स्थापना होनी चाहिये। पुरुषों के साथ सहशिक्षण द्वारा उतनी सफलता नहीं होगी जितनी इसकी स्वतन्त्र व्यवस्था करने से होगी। इस आवश्यक विषय का अनुमान करके ही मैंने नारीरोगांक में इस विचार को सबके सामने रखना उचित समझा है।

— श्री पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल आयुर्वेद वृहस्पति,
सुधानिधि कार्यालय, प्रयाग।

नारी ना जनन यन्त्र अविरल
नारी नर का जीवन सम्बल
नारी से नित नर का मंगल

नर के तप का फल नारी कल
यह नारी तप का मांसल वर।

—जगदम्बाप्रसाद

श्रोणि (Pelvis)

दाऊदयाल गर्ग A., M. B. S.

नारी जननेन्द्रिय रचना जानने के लिए प्रथम श्रोणि (pelvis) का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।
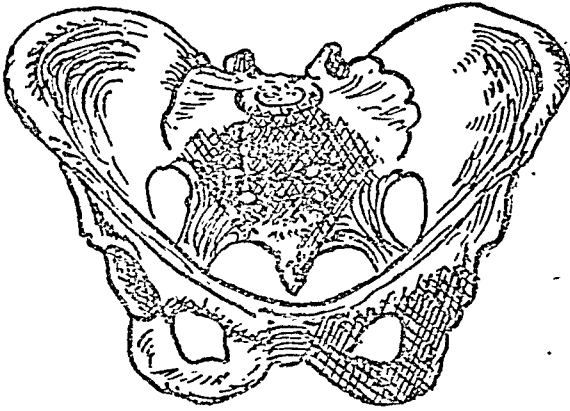
चित्र नं० १

श्रोणि के बनने में २ नितम्बास्थि (Hip bones), १ त्रिकास्थि (Sacral) तथा १ अनुत्रिकास्थि (Coccyx) भाग लेती हैं। वर्णन की सुविधा के लिए श्रोणि को २ भागों में बांट लिया जाता है। एक को कूट श्रोणि (False pelvis) तथा दूसरे को मुख्य श्रोणि (True pelvis) कहते हैं। यह विभाजन त्रिकास्थि के ऊर्ध्व भाग (Promontary of the sacrum), भग संधानिका तथा इन दोनों को मिलाने वाली एक रेखा से माना जाता है। इन तीनों को मिलाकर श्रोणि सीमा (pelvic brim) कहते हैं। इस रेखा के ऊपर कूट श्रोणि तथा नीचे मुख्य श्रोणि रहती है। यद्यपि श्रोणि शब्द से दोनों प्रकार की श्रोणियों का ग्रहण किया जा सकता है परन्तु उससे मुख्यतः मुख्य श्रोणि (True pelvis) का ही ग्रहण करना चाहिए।

कूट श्रोणि—

यह श्रोणि के अन्तःप्रवेश द्वार (pelvic inlet) के सामने तथा ऊपर की ओर फैला रहने वाला भाग है। यह अपने पार्श्वों में अनामिकास्थि (ilium) तथा पीछे की ओर त्रिकास्थि से सीमित है।

मुख्य श्रोणि—

यह श्रोणि के अन्तःप्रवेश द्वार से नीचे रहने वाला भाग है। इसके तीन भाग हैं—

१—अन्तःप्रवेश द्वार (Inlet)
२—बहिःनिर्गम द्वार (out let)
३—गह्वर (Cavity)

(१) अन्तःप्रवेश द्वार की अस्थि सीमा हृदयाकार है तथा इसको श्रोणि कण्ठ कहते हैं। इसकी कई माप होती हैं जो निम्न हैं—

पूर्व पश्चिमी माप (Conjugate diameter)—यह त्रिकास्थि के पूर्वोन्नत भाग से भगास्थि संधि तक होता है। यह लगभग ११०मिलीमीटर होता है। यहां भी प्रसूति शास्त्र दो माप मानते हैं। एक
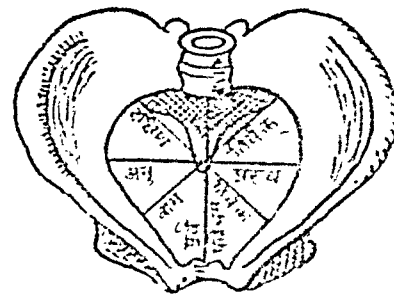
चित्र नं० २

तो भगास्थि संधि के पीछे के तल से तथा दूसरा भगास्थि संधि के ऊपर के भाग (Top) से होता है। भगास्थि संधि का ऊपर का भाग कुछ ढलवां होता है अतः इसमें लगभग ½ इञ्च का अन्तर पड़ जाता है। इन दोनों में से प्रथम माप को प्रामाणिक माना जाता है।

दूसरा माप अनुप्रस्थ माप (Transverse diameter) है। यह श्रोणि कण्ठ के दोनों पार्श्वों के बीच में अधिकतम अन्तर है। यह लगभग १३५ मिलीमीटर होता है।

तीसरा माप तिर्यक माप (Oblique diamemeter) है। यह भी दो हैं-एक वाम तिर्यक तथा दूसरी दक्षिण तिर्यक। वाम तिर्यक माप बाईं ओर की त्रिक श्रोणि संधि (left sacroiliac Joint) से दक्षिण श्रोणि भगास्थि अर्बुद (right iliopubic iminence) तक मापी जाती है। दाईं तिर्यक माप इन्हीं चिन्हों से इसके विपरीत मापी जाती है। यह लगभग १२५ मिलीमीटर होता है।

(२) श्रोणि गह्वर (Pelvic Cavity)—यह ऊपर की ओर अन्तःप्रवेश द्वार तथा नीचे की ओर बहिःनिर्गम द्वार के द्वारा सीमित है। यह सामने की ओर भगास्थि संधि तथा भगास्थि के प्रवर्द्धनों द्वारा निर्मित है। पीछे की ओर त्रिकास्थि तथा अनुत्रिकास्थि के श्रोणीय तल द्वारा निर्मित है। अपने पार्श्वों में यह अनामिकास्थि तथा कुकुन्दरास्थि (ischium) के श्रोणीय तलों द्वारा निर्मित है।

इस श्रोणि गह्वर में मलाशय, मूत्राशय, गर्भाशय, योनि आदि अंग रहते हैं। श्रोणि गह्वर की गहराई पीछे की ओर ४½ इञ्च, पार्श्वों में ३½ इञ्च तथा सामने १½ इञ्च होती हैं। श्रोणि गह्वर अंदर से गोल होता है तथा इसके तीनों माप एक समान ४½ इञ्च से ५ इञ्च तक होते हैं।

(३) बहिःनिर्गम द्वार (Out let)—श्रोणि का बहिःनिर्गम द्वार आकार में बहुत अनियमित सा होता है लेकिन त्रिकपिण्डीय तथा त्रिककण्टकीय स्नायुओं (Sacrotuberous तथा Sacrospinous ligaments) के कारण इसकी आकृति पलाण्डु जैसी हो जाती है। इस प्रकार इसकी सीमा आगे से पीछे की ओर क्रमशः भगास्थि संधि, भगास्थि के प्रवर्द्धन (rami), कुकुन्दरास्थि के प्रवर्द्धन, कुकुन्दरास्थि के पिण्ड (tuberosity), त्रिक पिण्डीय स्नायुओं तथा त्रिकास्थि शिखर (apex) है। इसके तीन माप निम्न प्रकार से हैं—

पूर्व-पश्चिम माप—यह भगास्थि सन्धि के निम्न तल के आगे की सीमा रेखा से लेकर त्रिकास्थि के शिखर तक पाया जाता है। यह लगभग ५ इञ्च होता है। प्रसव के समय अनुत्रिकास्थि पीछे को हट जाती है अतः उसका माप नहीं लिया जाता।

अनुप्रस्थ माप—यह कुकुन्दरास्थियों के पिण्डों के अन्दर की ओर के किनारों से लिया जाता है। यह लगभग ४ इञ्च होता है।

तिर्यक माप—यह एक ओर के त्रिक कंटकीय स्नायु से दूसरी ओर के भगास्थि एवं कुकुन्दरास्थि के प्रवर्द्धनों के सन्धि स्थान तक पाया जाता है। यह लगभग ४½ इञ्च होता है।

यह उपरोक्त सब माप मुख्यश्रोणि के दिए गये हैं। कूट श्रोणि (False pelvis) के माप निम्न लिखित हैं—

१—अन्तः श्रोणि कण्टकीय माप (Interspinous measurement)—यह श्रोणि फलकों के दो अग्रिम ऊर्ध्व श्रोणि कण्टकों (Ant. sup. iliac spines) के बीच का अन्तर है। यह ६½ इञ्च से १० ½ इञ्च तक पाया जाता है।

२—अन्तः श्रोणि स्थूलकीय माप (Intercrestal measurement)—यह श्रोणि फलक की

ऊर्ध्व सीमा के बाह्य भाग की स्थूलिकाओं (iliac crests) के मध्य का अधिकतम अनुप्रस्थ (transverse) माप है। यह लगभग १०½ से ११ इञ्च तक मिलता है।

उपरोक्त दोनों माप एक ही से हैं। विशेषत: इनका अन्तर १ इंच होता है। कुछ श्रोणियों में जिनके कि जोड़ ढीले हो जाते हैं यह दोनों माप एक बराबर भी पाये जा सकते हैं।

३ – पूर्व पश्चिमी माप (External Conjugate)–यह पंचम कटिकशेरुका के पश्चिम प्रवर्द्धन के पश्चिम शिखर (tip of the spine) से लेकर भगास्थि संधि के ऊर्ध्व तल के आगे के किनारे तक मापा जाता है। यह लगभग ७½ इंच होता है। यदि यह माप ७ इंच से कम है तो यह संकुचित श्रोणि का द्योतक है।

श्रोणि मापन (Pelvimetry)—

१—बाह्य श्रोणि मापन–अन्त: श्रोणि कण्टकीय, अन्त: श्रोणि स्थूलकीय आदि मापों को बाह्य श्रोणि मापक (कैलीपर्स) द्वारा मापा जाता है। इसके दोनों किनारों को दोनों हाथों में पकड़ लेते हैं। फिर उन किनारों को निश्चत स्थानों पर रख कर कस देते हैं जिन के कि बीच की दूरी ज्ञात करनी है। फिर दोनों के बीच का अन्तर मापक पर पढ़ लेते हैं।

श्रोणिमापकयन्त्र
चित्र नं०३

२—अन्त: श्रोणि मापन–इसके द्वारा श्रोणि से सम्बन्धित माप जो कि त्रिकास्थि के पूर्व भाग से प्रारम्भ होकर भगास्थि सन्धि के निचले किनारे के मध्य भाग तक होती है नापी जाती है। इसको नापने के लिए तर्जनी एवं मध्यमा अंगुली योनि के मार्ग से अन्दर तक पहुंचाते हैं तथा यह प्रयत्न करते हैं कि त्रिकास्थि के किसी को भाग को छू लिया जाय। दूसरे हाथ की तर्जनी अंगुली का नख भगास्थि संधि के नीचे के भाग पर रखते हैं। मध्यमा अंगुली और दूसरे हाथ की तर्जनी अंगुली के नख के बीच की जितनी दूसरी होती है वही यह माप है। यह लगभग ४¾ इंच होता है। इस माप में से भगास्थि सन्धि की मोटाई निकाल देने से शारीरिक माप आ जाता है।

३–क्ष-किरणीय श्रोणि मापन (Radiological pelvimetry)-इस विधि द्वारा समस्त मापों को मापा जा सकता है। इस विधि द्वारा न केवल स्थूल विकृतियों का ही ज्ञान होता है अपितु छोटी छोटी विकृतियों का भी पता चल जाता है।

स्त्री श्रोणि की विशेषतायें—

स्त्री एवं पुरुष की श्रोणि की अस्थियों में जितना अधिक अन्तर पाया जाता है उतना अधिक किसी भी अन्य अस्थि में नहीं पाया जाता। प्रकृति ने स्त्री की श्रोणि को विशेषत: इस प्रकार का बनाया है कि उसमें से गर्भ का सिर सुविधापूर्वक निकल जा सके और इसी कारण स्त्री श्रोणि कम गहरी लेकिन अधिक चौड़ी होती है। स्त्री श्रोणि में पुरुषों की अपेक्षा निम्न विशेषतायें पाई जा सकती हैं।

१—स्त्री श्रोणि की अस्थियां अधिक चिकनी एवं हल्की होती हैं तथा उन पर मांस पेशियों के चिन्ह भी कम स्पष्ट होते हैं।

२ —श्रोणि फलक (iliac crests) के बीच की दूरी पर्याप्त होती है तथा दोनों ओर पूर्वोन्नत श्रोणि कण्टकों (Ant.sup. iliac spines) के बीच की दूरी पुरुषों की अपेक्षा अधिक होती है।

३—स्त्रियों में मुख्य श्रोणि का अन्त: प्रवेश द्वार पुरुषों की अपेक्षा अधिक बड़ा होता है तथा यह लगभग गोल सा होता है जब कि पुरुषों में इसकी आकृति हृदयाकार होती है।

४—स्त्रियों की मुख्य श्रोणि का गह्वर कम गहरा तथा अधिक चौड़ा होता है । इसके निम्न कारण हैं—

अ–त्रिकास्थि छोटी लेकिन अधिक चौड़ी होती है तथा ऊपर की ओर यह सीधी होती है। ब–भगास्थि सन्धि उथली होती है तथा दो भगास्थि कण्टकों (pubic tubercles) के बीच की दूरी अधिक होती है । स—गृध्रसी द्वार (Sciatic notche) अधिक चौड़ा तथा उथला होता है ।

५–स्त्रियों में बहिःनिर्गमन द्वार भी अधिक चौड़ा होता है । इसके निम्न कारण हैं—

अ–भगास्थि तोरण (pubic arch) पुरुष में ७५° का कोण बनाते हैं परन्तु स्त्रियों में वे अधिक चौड़े होते हैं तथा ६०° का कोण बनाते हैं । ब-दोनों कुकुन्दर कूट (ischial tuberosities) पुरुषों की अपेक्षा अधिक दूरी पर होते हैं । स—स्त्रियों में अनुत्रिकास्थि गतिशील होती है तथा प्रसव के समय पीछे की ओर हट जाती है ।

६—पुरुषों में भगास्थि तोरण अधिक स्पष्ट एवं अधिक मुड़ी हुई होती हैं जिसका कि कारण यहां पर आकर शिश्न की पेशियों का लगना है ।

७—स्त्रियों के वंक्षणोदूखल (Acetabulam) छोटे तथा काफी दूर-दूर होते हैं ।

७—गवाक्ष (obturator foramen) स्त्रियों में कुछ छोटा तथा त्रिकोणाकार होता है जब कि पुरुषों में अण्डाकार होता है ।

६--स्त्रियों में त्रिक अनामिकास्थि संधि (Sacro-iliac joint) अधिक गति शील होती है ।

१०–स्त्रियों में त्रिकास्थि का सन्धि बनाने वाला तल प्रथम तथा द्वितीय त्रिक कशेरुका तक रहता है जब कि पुरुषों में यह नीचे की ओर तृतीय कशेरुका के मध्य तक पहुँच जाता है ।

—श्री० दाऊदयाल गर्ग सह-सम्पादक 'धन्वन्तरि' ।

नारी वन को राजमहल से भी सुन्दर बना देती है । —रामायण

● ●

नारी परमात्मा का सबसे बड़ा जादू है, इन्द्रजाल है, यन्त्र, तन्त्र, मन्त्र है । —आस्कर वाइल्ड

● ●

संसार में अन्य कोई वस्तु एसी मनोहर नहीं है जैसी कि सुशीला, पुण्यात्मा और सुन्दर स्त्री । —हन्ट

● ●

भारत का धर्म भारत के पुत्रों से नहीं, पुत्रियों की कृपा से स्थिर है । यदि भारत की नारियों ने अपना धर्म त्याग दिया होता तो भारत अब तक नष्ट हो गया होता । —स्वामी दयानन्द

● ●

—जगदम्बाप्रसाद—

स्त्री जननेन्द्रिय शारीर

शिवरात्रि देवी

स्त्रियों के गुप्तांग को देखने पर पहली दृष्टि में आने वाले अङ्ग को "भग स्थान" कहते हैं। यह
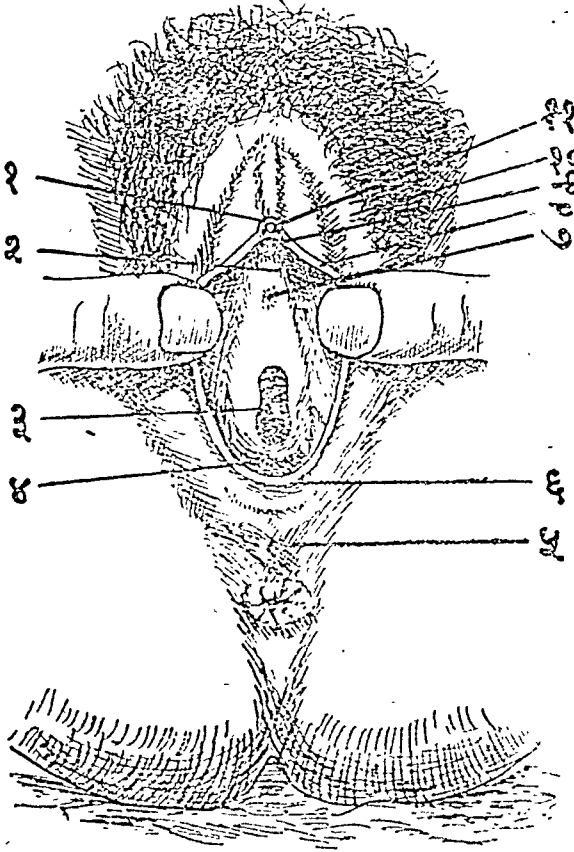
चित्र नं० ४

१. भगशिश्निका (Clitoris) २. भगालिन्द (Vestibule of Vagina) ३. योनिद्वार (Vaginal orifice) ४. भगालिन्दीय खात (Vasitibular fossa) ६.पश्चिम संधान (Posterior commissure) ७. मूत्र प्रसेक द्वार (External Urethral orifice) ८. लघुभगोष्ठ (Labia minora) ९.भगोष्ठ सेवनी (Frenulum Labiosum) १०. वृहद् भगोष्ठ (Labia majora) ११. भगशिश्निकाग्र (Glans clitoris)।

स्थान निम्नलिखित अवयवों का समूह है :—

१. लोम — २. वृहद् भगोष्ठ
३. लघुभगोष्ठ — ४. भगशिश्निका
५. भगशिश्निकाग्र — ६. भगालिन्द
७. मूत्र प्रसेक द्वार — ८. भगाञ्जलिका (भगालिन्दीय खात)
९. कुमारिच्छद्यवनिका (योनिच्छद्कला)
१०. भग द्वार — ११. भग पीठ
१२. योनी द्वारिका ग्रन्थि — १३. यवनिका खात
१४. पूती ग्रन्थि।

ये सभी उपांग मिलाकर भग स्थान कहलाते हैं। यदि भग स्थान के भीतर की ओर देखें तो निम्नलिखित उपांग मिलेंगे :—

१. योनि पथ — २. गर्भाशय
३. बीजवाहिनी द्वय — ४. बीज कुल्या
५. पुष्पित भाग — ६. बीजाधार

इसके अतिरिक्त दो और विशेपांग हैं, जिन्हें स्तन कहते हैं।

भग (Vulva)—यह लघु भगोष्ठ एवं वृहद् भगोष्ठ के दो जोड़ों से, भग शिश्निका तथा भगालिन्द को मिलाकर बनता है। वृहद् भगोष्ठ भग पीठ (Mons veneris) से प्रारम्भ होकर पीछे की ओर जाकर त्वचा में मूल पीठ (Perineum) पर मिलते हैं। वृहद् भगोष्ठ में त्वचा की कई तह सी रहती हैं जिनमें चर्बी की मात्रा अधिक होती है। वृहद् भगोष्ठ युवावस्था में पूर्ण विकसित हो जाते हैं। युवावस्था से पूर्व अथवा वृद्धावस्था में अपेक्षाकृत चर्बी की मात्रा कम रहती है। युवावस्था आने पर भग पीठ पर काले घुंघ-

राले बाल उत्पन्न हो जाते हैं जो कि बृ. भगोष्ठ के बाह्य भाग पर भी होते हैं तथा कभी कभी मूल पीठ तक भी उग आते हैं। बृहद् भगोष्ठ के अन्त: स्तर की त्वचा बाह्य स्तर की अपेक्षा लोम रहित, चिकिनी, मुलायम एवं गीली तथा गुलाबी होती है।

बृहद् भगोष्ठ में बार्थोलिन की ग्रन्थियां रहती हैं जिनकी नलिकाऐं सामने एवं अन्दर की ओर जाकर बृहद् भगोष्ठ के अन्त: स्तर पर कुमारीच्छद (Hymen) के बाहर की ओर खुलती हैं। ग्रन्थि लगभग ½ इञ्च के व्यास में होती है तथा बृहद् भगोष्ठ के मध्य एवं पश्चात् के तिहाई भागों के मिलने के स्थान पर स्थित होती है। जब तक कि यह अपने स्वाभाविक आकार से अधिक न बढ़ जाय उस समय तक यह हाथ द्वारा प्रतीत नहीं की जा सकती। यदि इस ग्रन्थि पर दबाव डाला जाय तो नलिका के मुख से एक श्लैष्मिक श्राव निकलता है। तीव्र उपदंश (Syphilis) की अवस्था में यह ग्रन्थियां तथा इसकी नलिकाऐं बुरी तरह संक्रमित होजाती हैं और ऐसी अवस्था में बृहद् भगोष्ठ पर इसकी नलिकाओं के मुख अपने रक्त वर्ण के कारण बहुत आसानी से पहचाने जा सकते हैं। इन ग्रन्थियों का कार्य मैथुन के समय एक चिकना श्लैष्मिक श्राव उत्पन्न कर घर्षण जन्य विकार यथा उष्णता को न होने देना है।

लोम—

जिस प्रकार सर के बाल जन्म से ही होते हैं, उस प्रकार गुप्तांग के बाल जन्म से नहीं होते हैं। यह एक अवस्था के आने के बाद जो १२ से १४ वर्ष की है प्रगट होते हैं। इनका सम्बन्ध परोक्ष रूप से ऋतुस्राव चक्र से है। प्राय: ये लोम भी उसी समय से प्रगट होते हैं जब कि ऋतु चक्र प्रथम बार आरम्भ होने वाला होता है। गुप्तांग पर लोमों का होना यौवनारम्भ का तथा लोमों का संघन तथा पुष्ट होना पूर्ण यौवन का लक्षण है। लोमों के प्रगट होने के साथ ही या कुछ पीछे ऋतु चक्र का आरम्भ होता है, कुमारियों में परिवर्तन होने लगता है, स्तन जो पहले समतल थे उभार पाने लगते हैं, विवेक शक्ति बढ़ने लगती है, आचार-विचारों में रहा अल्हड़पना दूर होने लगता है, लज्जा बढ़ने लगती है, कण्ठ स्वर बदल जाता है। यह अवस्था प्राय: १२ से १४ वर्ष की आयु से आरम्भ होती है और २०-२२ वर्ष की आयु तक रहती है। इसके बाद कुमारी पूर्ण युवती होती है।

एक विशेष अवस्था ऐसी भी है जिसके आने पर गुप्तांग के लोम पुन: विलीन होने लगते हैं और भग स्थान पहले जैसा निर्लोम होजाता है। यह अवस्था ५० वर्ष के लगभग आती है। वही समय ऋतु लोप का भी हुआ करता है। अत: ऐसा संदेह किया जाता है कि गुप्तांग के लोमों का सम्बन्ध ऋतु से भी है। मगर अभी तक यह पता नहीं चला है कि वास्तव में इन दोनों का सम्बन्ध कैसा है।

बहुधा ऐसा भी देखा जाता है कि अपवाद स्वरूप कुछ स्त्रियों में गुप्तांग के लोम होते ही नहीं हैं, यदि कुछ हुये भी तो बहुत कम। मगर उनके अन्य सभी अङ्ग पुष्ट रहते हैं। रजोदर्शन भी नियमित रूप से होता रहता है, रजोत्पादन भी नियमित रूप से होता रहता है, उनमें कोई अव्यवस्था नहीं होती है। अत: वैज्ञानिक रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि इन दोनों का सम्बन्ध क्या है।

बृहत् भगोष्ठ—

बृ. भगोष्ठ भग पीठ से आरम्भ होता है एवं मूलपीठ पर सीवनी की सीध में जा कर समाप्त होता है। (चित्र सं० ४) पेडू के समीप जहां से भगोष्ठ का आरम्भ होता है उस स्थान को भग पीठ एवं सीवनी की सीध में जहां समाप्त होता है उसे भग-

मूल या मूलपीठ कहते हैं। इसका पार्श्व भाग उरु सन्धिस्थल से सम्बद्ध है।

यह त्वचा के तहों से निर्मित है, जिसके नीचे वसा का जमाव होता है। वसा का जमाव १२ वर्ष की अवस्था के पहले एवं ४५ वर्ष की अवस्था के बाद इतना नहीं रहता जितना १६ से ३५ वर्ष की अवस्था में होता है। वसा के जमाव से भगोष्ठ विस्तृत, चौड़ा, मोटा तथा कोमल होता है और साथ ही साथ दृढ़ होता है जिसके कारण भग गह्वर को यह दृढ़तापूर्वक ढके रहता है। बालिकाओं में एवं ५० वर्ष की अवस्था के बाद जब कि वसा का जमाव कम रहता है, यह दृढ़ नहीं होता है और भग गह्वर को पूर्ण रूपेण ढक नहीं पाता।

वृ० भगोष्ठ एवं लघुभगोष्ठ के बीच के स्थान में सिरा धमनी तथा नाड़ी के जालक व्याप्त रहते हैं। काम संवेदनी नाड़ी की ही शाखायें इसमें भी व्याप्त रहती है। इसके अतिरिक्त इसमें दो बड़ी-बड़ी ग्रंथियां रहती हैं जिसे योनि-द्वारिक ग्रन्थि कहते हैं।

योनि द्वारिक ग्रन्थि वृ० भगोष्ठ के अन्तःभाग में रहती है। एक-एक ग्रन्थि वाम तथा दक्षिण भगोष्ठ में दोनों ओर रहती है। इस ग्रन्थि का व्यास ⅓ इञ्च है। इसके कोष की लम्बाई भी प्रायः इतनी ही है। मगर इस ग्रन्थि का अनुभव स्पर्श द्वारा तब तक नहीं हो पाता जब तक कि यह शोथ युक्त न हो। इस ग्रंथि का मुख कुमारिच्छद पर खुलता है। वृ० भगोष्ठ पर यदि दबाव पड़े या काम संवेदनी नाड़ी की उत्तेजना से भगोष्ठ दृढ़ हो जाये तो इस ग्रंथि पर दबाव पड़ता है और इस ग्रन्थि से एक प्रकार का चिपचिपा एवं पिच्छिल तरल स्राव कुमारिच्छद पर स्रवित होने लगता है, जिससे भग द्वार पिच्छिल एवं चिकना हो जाता है।

लघु भगोष्ठ—

यह भी वृ० भगोष्ठ की तरह त्वचा के स्तर से बना है। मगर यह उससे छोटी, पतली तथा परिवर्द्धनशील तन्तु का है। इसमें भी सिरा धमनी एवं नाड़ी जालक सर्वत्र व्याप्त रहता है। यौवनारम्भ होते ही इसके बाह्य तथा अन्तः दोनों स्तरों पर छोटी-छोटी फुन्सियों के आकार की अनेक ग्रंथियां प्रगट होती हैं। इन ग्रन्थियों का नाम पूति ग्रंथि है। इससे एक प्रकार का दुर्गन्धमय स्राव स्रवित होता है। ये ४५ वर्ष की अवस्था आते-आते नष्ट हो जाती हैं।

काम संवेदनी नाड़ी की उत्तेजना से इन ग्रन्थियों में भी उत्तेजना आती है, जिससे एक प्रकार की सुरसुराहट सी पैदा होती है, जिससे घर्षणेच्छा होती है और एक बार यदि ये उत्तेजित हो उठते हैं तो तब तक शान्त नहीं होते जब तक कि पर्य्याप्त घर्षण नहीं दिया जाये। इनके उत्तेजित होने से वृ० एवं लघु दोनों भगोष्ठों में रक्त संचाराधिक्य होता है जिससे त्वचा कड़ी एवं दृढ़ होजाती है।

भगाञ्जलिका तथा भगालिन्दीय खात—

दोनों ओर के लघु भगोष्ठ नीचे की ओर मिल कर सीवनी की सन्धि में एक हो जाते हैं। यहां पर इनकी त्वचा अत्यन्त पतली होती है। दोनों लघु भगोष्ठों के इस सन्धि स्थल का नाम भगाञ्जलिका है। यह प्रत्येक प्रसव के समय फट जाया करता है और प्रसवान्तर प्रकृत रूप से पुनः सट जाता है। किसी-किसी में यह काफी कड़ी एवं दृढ़ भी हुआ करती है। ऐसी स्त्रियों के प्रसव कष्ट कुछ अधिक होजाते हैं। कभी-कभी तो प्रसव के लिए इसे शस्त्र द्वारा फाड़ना पड़ता है। भगाञ्जलिका एवं कुमारीच्छद यवनिका के बीच एक पतला सा खात है जिसे यवनिका खात (भगालिन्दीय खात) कहते हैं।

भगशिश्निकाग्र तथा भगशिश्नका (Clitoris)

ऊपर की ओर जहां पर दोनों वृ. भगोष्ठ मिलते हैं और दोनों लघु भगोष्ठों का आरम्भ होता है, वहां पर त्वचा की तहों की सन्धि होने के कारण त्वचा किञ्चित् मोटी एवं उत्सेदित है इसे भगशिश्नकाग्र कहते हैं। इसी के ठीक नीचे जहां पर दोनों लघु भगोष्ठ पृथक होते हैं, बटशुङ्ग के तरह का एक निरन्ध्र छोटा सा अवयव है जो ठीक शिश्न के जैसा है इसे भगशिश्नका कहते हैं। यह एक काम संवेदनी नाड़ी जाल से व्याप्त है, एवं इसी में उसका स्थानीय केन्द्र भी अवस्थित है अतः यह तीक्ष्ण चेतना युक्त है। यह स्पर्श मात्र से ही उत्तेजित हो उठता है और प्रकृष्ट हो दण्डवत् कड़ा हो जाता है तथा समूचे काम संवेदनी नाड़ी को झनझना देता है, स्थानीय रक्त संचार को बढ़ाकर भग एवं योनि पथ आदि को दृढ़ कर देता है। यह इतना चेतनाशील है कि लगातार के स्पर्श से स्त्रियों में बिना भोग के ही स्वस्खलन ला देता है।

कभी-कभी रोग के रूप में यह बढ़ने भी लगता है और इतना बढ़ता है कि वास्तव में शिश्न का रूप धारण कर लेता है जिसे भगशिश्नकाभिवृद्धि कहते हैं।

भगालिन्द (Vestibule)—

दोनों ओर के लघु भगोष्ठ के बीच आने वाले प्रदेश का नाम भगालिन्द या भग गह्वर है। इसे ही लघु एवं वृ० भगोष्ठ दोनों मिलाकर ढके रहते हैं। इसी प्रदेश में ऊपर की ओर मूत्र प्रसेक द्वार तथा नीचे की ओर भगद्वार या योनि द्वार है। मूत्र प्रसेक द्वार के ठीक ऊपर भगशिश्नका है बल्कि यह कहना चाहिए कि भगशिश्नका के समीप से ही भगालिन्द आरम्भ होता है।

मूत्र प्रसेकद्वार —

मूत्र-प्रसेक द्वार भी कपाटवत् या पत्रवत् दो पतले ओष्ठों से ढका है जो मूत्र प्रवृति के समय बाहर की ओर खुल जाते हैं।

भगद्वार (vaginal orifice)—

भगालिन्द में सबसे नीचे ओर यह अवस्थित है। इस द्वार का व्यास लगभग ½ इञ्च है और गोल आकृति का है। इस पर एक पतली कला का परत पड़ा रहता है जिसे कुमारिकावस्था में ही देख सकते हैं। इस कला का नाम कुमारिच्छदयवनिका (Hymen) है। इसके बीच में एक छोटा सा छिद्र है जिसे भग द्वार कहते हैं।
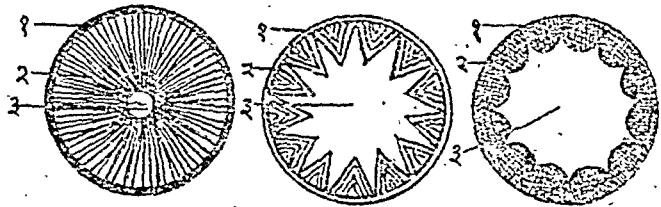
१. मुद्रिकातट २. यवनिका ३. भगद्वार

चित्र नं० ५

यह छिद्र इतना छोटा होता है कि कनिष्ठांगुली के अग्रभाग से भी छोटा होता है परन्तु भोग यदि एक बार भी हो जाय तो यवनिका वेतरतीब टूट कर इस द्वार का मुख बड़ा कर देता है। एक भोग के बाद यवनिका टूटता तो है मगर समूचा नहीं टूटता। उतना ही टूटता है जितना शिश्न प्रवेश के लिए आवश्यक है मगर यही अनेकानेक भोग के बाद, प्रसव से या गर्भपात से एक दम टूट जाता है और टूटा अंश सिकुड़ कर द्वार मुद्रिका (Ring) तट पर जम जाता है और त्वचा के मोटे गाढ़े रूप में रहता है।

कुमारीच्छद यवनिका भिन्न-भिन्न कुमारियों में भिन्न-भिन्न तरह के हुआ करते हैं। किसी-किसी में यह इतना कोमल होता है कि रजःस्राव के प्रवाह के कारण ही टूट जाता है, मगर इस दशा में यह सब ओर से बराबर (Symetrical) होगा और छिद्र के किनारे अस्त-व्यस्त से न होकर एक दम गोल होंगे। किसी-किसी में तो यह इतना कठोर होता है कि शिश्न प्रवेश से भी नहीं टूटता और

शिश्न प्रवेश नहीं होता है। इस अवस्था में या तो अंगुली डालकर इसे तोड़ना चाहिए या इससे भी नहीं टूटे तो शस्त्र चिकित्सा की सहायता ले इसे काट देना चाहिए। ऐसी यवनिका वाली युवतियों में भोग बहुत कष्टप्रद हुआ करता है। किसी किसी में तो यवनिका भी दृढ़ होता है और भगद्वार का छिद्र भी बहुत छोटा होता है—इतना कि रजःस्राव का रक्त बूंद-बूंद कर आता है। यह भी एक रोगावस्था है।

भगद्वार का मुद्रिकातट (Ring) परिवर्द्धन शील तन्तुओं का बना होता है जो भोग या प्रसव के समय आवश्यकतानुसार परिवर्द्धित होता है।

योनि पथ—

भगद्वार की मुद्रिका से उसी के बरावर में ऊपर की ओर एक मार्ग गया है, जिसे योनि मार्ग या योनि पथ कहते हैं। यह मार्ग भगद्वार से आरम्भ होता है, एवं वस्ति(मूत्राशय) तथा गुदा मार्ग इन दोनों के बीच से होता हुआ ऊपर की ओर गर्भाशय मुख तक है। यहमार्गकिंचित वक्र है। यह
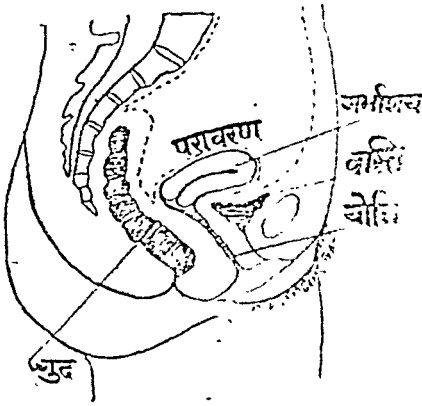
चित्र नं० ६

द्वार के समीप पतला तथा गर्भाशय मुख के समीप मोटा है। गर्भाशय मुख इसी में प्रविष्ट हुआ है एवं योनि पथ की मांसपेशियां दृढ़तापूर्वक इसे पकड़कर बांधे हुये हैं।

बाहर की ओर से इसकी लम्बाई लगभग ४½ इंच है, मगर भीतर पथ की लम्बाई ३½ इंच है। इसका प्राचीर वलिराजि युक्त मांस पेशी का है एवं संकोच विकास गुण युक्त है। यद्यपि इसके प्राचीर बराबर भीतर की ओर से सटे रहते हैं जिससे योनि पथ अवरुद्ध सा रहता है मगर उत्तेजना पाकर यह कड़ा हो जाता है और मार्ग खुल सा जाता है तथा आवश्यकतानुसार विकसित भी होता है। यह परिवर्द्धनशील तन्तुओं से निर्मित है।

योनिपथ के अन्तः प्राचीर में कोई रसग्रन्थि नहीं है फिर भी इसमें रसस्राव होता है। यह रसस्राव या तो गर्भाशय प्राचीर के आवरण तन्तु (Epithelial cells) द्वारा होता है या गर्भाशय के अन्तः प्राचीर की श्लेष्मिक कला के स्राव के इसमें आ जाने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि इसी का स्राव है। स्वस्थ स्त्रियों में यह दोनों स्राव बहुत कम होते हैं। यदि कभी थोड़ा बहुत हुआ भी तो इसका कोई महत्व नहीं है। यह स्राव गाढ़े जमे हुए तरल पदार्थ की तरह पिच्छिल एवं श्वेत वर्ण का होता है। इसी स्राव को अज्ञानवश स्त्रियां "धातु का आना" (लौकिक भाषा में) कहती हैं। रोगावस्था में यह स्राव अधिक होता है जिसे "श्वेत प्रदर" के नाम से जाना जाता है।

स्वस्थावस्था में यह स्राव बराबर होता है मगर इतना कम होता है कि बाहर नहीं आता। इस स्राव की प्रतिक्रिया अम्लीय होती है। इसकी अम्लीय प्रतिक्रिया के कारण इसमें साधारण रोगों के कीटाणु यदि प्रविष्ट हुये तो नष्ट होजाते हैं। एक तरह से यह स्राव रक्षक स्राव है। सूतिका सन्निपात, श्वेत प्रदर आदि रोगों में इसकी अम्लता नष्ट होजाती है और रोग के कीटाणु प्रदाह उत्पन्न कर रोगों को उत्पन्न करते हैं।

योनि पथ भीतर की ओर से तीन स्थान पर किंचित कड़ा होता (शेष स्थानों की अपेक्षा) है। एक ठीक मूत्र प्रसेक द्वार के नीचे, दूसरा इससे करीब १½ इञ्च ऊपर जहां पर यह किञ्चित वक्र हुआ है। इसी स्थान पर गवीनी एवं मूत्राशय का सन्धि स्थल है। इसी कारण यहां पर इसमें कड़ापन रहता है। तीसरा कड़ा स्थान दूसरे से किञ्चित ऊपर है, यहां पर मूत्राशय योनिपथ से सटता है।

भगाञ्जलिका–

यह त्वचा के पतले तहों से बना है। लघु भगोष्ठ सीवनी के समीप जहां पर मिल कर एक होते हैं उसी स्थान का नाम भगाञ्जलिका है। यह अञ्जलि के आकार का है इसी कारण इसे भगाञ्जलिका कहते हैं। प्रसव के समय यह विदीर्ण हो जाता है, जिसका चिन्ह बाद में भी रहता है। भगाञ्जलिका एवं भगद्वार के बीच एक खात है जो कुमारीच्छद यवनिका के निर्माण के कारण बन जाता है। इस खात का नाम यवनिका खात (Fossa navicularis) है।

कौमार्य परीक्षा–

कौमार्य परीक्षा यानी स्त्री अक्षत योनी है या क्षत योनी, उसके साथ भोग बलात्कार से हुआ है या इच्छापूर्वक, वह एक बार के भोग का है या अनेक बार के भोग का, इत्यादि बातों की परीक्षा कुमारीच्छद, भगद्वार, योनि पथ एवं भगाञ्जलिका की परीक्षा से हो जाती है।

एक बार के बलात्कार में कुमारीच्छद यवनिका बहुत अनियमित रूप से फटा होता है और स्वेच्छा से यदि प्रथम बार भोग होता है तो कुमारीच्छद यवनिका इतना अनियमित रूप से नहीं फटा होता है यद्यपि यह भी अनियमित ही होता है। मगर यदि कई बार के भोग का है और कुछ दिनों से भोग किया जा रहा है तब यह कुमारीच्छद यवनिका एक नियमित गोलाकार रूप धारण कर लेता है और उसके किनारे सिकुड़ कर ओष्ठवत् हो जाते हैं। किसी किसी में तो ये सिकुड़कर एक दम भगद्वार की परिधि पर आजाते हैं। योनि पथ की पेशियां कुछ ढ़ीली पड़ जाती हैं। स्त्रियों में जो कभी गर्भपात करा चुकी हैं (गैर कानूनी तरह से) और इसके पहले कभी प्रसव नहीं हुआ है उनमें भगाञ्जलिका विदीर्ण हो गया रहता है और उसका निशान विद्यमान रहता है। इसके अतिरिक्त जंघा एवं पेडू की त्वचा पर किकिस यानी श्वेत-श्वेत रेखाओं के निशान से पड़ जाते हैं। प्रसव के बाद तो यह निशान गहरे बन जाते हैं। किसी-किसी में यवनिका इतना कोमल होता है कि वह रजः स्राव से ही समूचा का समूचा गल जाता है, ऐसी अवस्था में कुमारीच्छद यवनिका प्रायः नहीं रहता मगर भगद्वार के परिधि तट पर सिकुड़े अंश नहीं होते, यह सम होता है।

गर्भाशय –

यह तुम्बी के आकार का एक कोषाकार अवयव है जो स्त्री शरीर की श्रोणी गुहा के अधःवस्ति प्रदेश में स्थित रहता है। कौमार्यावस्था में यह नासपाती के आकार का होता है। यह लगभग ४½ इञ्च से ५ इन्च लम्बा और ३ से ३½ इंच चौड़ा तथा एक इंच मोटा होता है। कौमार्यावस्था में इसका ऊपरी भाग सामने एवं पीछे की ओर से कुछ चपटा होता है। यह मुख के बल योनि-

चित्र नं० ७
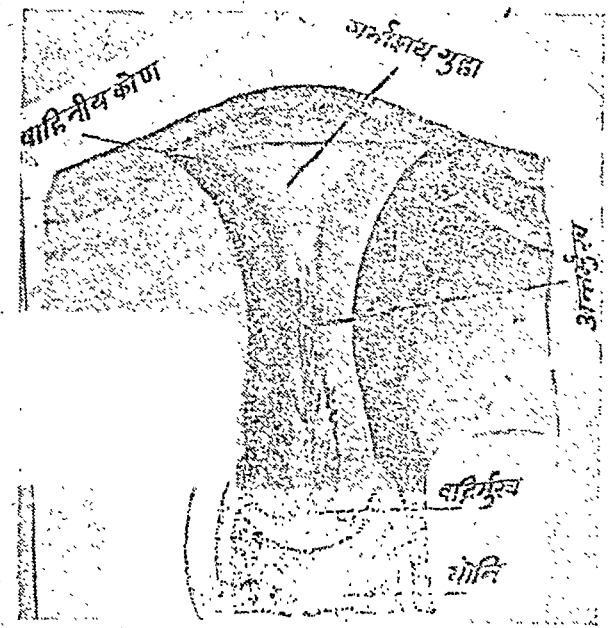
मार्ग पर आधारित है। इसका मुख भाग लगभग ½ इंच योनि मार्ग के भीतर प्रविष्ट है और योनि-मार्ग की पेशियां इसे दृढ़ता पूर्वक पकड़े हुए हैं। यह सामने की ओर मूत्राशय से पीछे की ओर

मलाशय से तथा ऊपर की ओर बृहद् आन्त्र कुण्डलिका से घिरा हुआ है।

इसका ऊपर का तुम्बी भाग चौड़े एवं गोल स्नायु रज्जुओं से बंधा हुआ है और नीचे का शीर्ष भाग वस्ति प्रदेश के सौत्रिक तन्तुओं से और समूचा का समूचा भाग उदर्याकला के ही एक भाग से लिपटा है। उदर्याकला का यह भाग समूचे गर्भाशय को लपेटता हुआ। योनि मार्ग के शीर्ष भाग को भी लपेटे हुये हैं ताकि गर्भाशय एवं योनिमार्ग का सम्बन्ध विच्छेद न हो सके। उदर्याकला का वह वृत्त जो गर्भाशय एवं मूत्राशय के बीच में है उसे वस्तिगर्भाशयान्तरीय वृत्त एवं जो गर्भाशय और मलाशय के बीच में है उसे गुद-गर्भाशयान्तरीय वृत्त कहते हैं।

गर्भ स्थिति होने के पश्चात् गर्भाशय में क्रमशः अन्तर आने लगता है। भ्रूण की वृद्धि के साथ गर्भाशय का भी आकार बड़ा होने लगता है और प्रसव के वाद पुनः अपने पूर्व आकार में आजाता है मगर अपने आकार से किञ्चित बड़ा रहता है, एक दम पूर्व आकार का नहीं होता।

गर्भाशय के चार विभाग किये जाते हैं १. तुम्बी भाग (Fundus) २. शरीर भाग (Body) ३. ग्रीवा भाग (Cervix) ४. शीर्ष भाग (Vaginal portion)

तुम्बी भाग (Fundus) वह भाग है जो एक दम ऊपर का भाग है, यानी पेंदे वाला हिस्सा। शरीर भाग वह भाग है जहां तक यह गोल वृत्ताकार है। ग्रीवा भाग वह भाग है जहां से शरीर भाग धंसकर लम्बा हुआ है, और जहां से यह लम्बे आकार का सुराही के मुख जैसा है उसे शीर्ष भाग कहते हैं। शरीर भाग एवं तुम्बी भाग प्रायः एक ही हैं। अतः इसके तीन ही प्रधान भाग हैं। शरीर भाग, ग्रीवा भाग एवं शीर्ष भाग।

शरीर भाग—

यह भाग गोल किन्तु ऊपर से कुछ चपटा है जो क्रमशः संकीर्ण होता हुआ ग्रीवा भाग तक आया है। ऊपर के हिस्से में दोनों पार्श्व में ठीक एक दूसरे की सीध में एक छिद्र है जिसे कोण द्वार (Cornua of the uterus) कहते हैं। बीज वाहिनी नलिका गर्भाशय से इसी स्थान पर संयुक्त होती है। (चित्र ७) कोण द्वार से ऊपर वाले भाग को तुम्बी भाग कहते हैं। यह भाग कुछ चपटा एवं गोल है। इस पर क्षुद्रान्त्र की श्रोणि कुण्डली एवं बृहदान्त्र की कुण्डली टिकी रहती है। कोण द्वार के नीचे गर्भाशय के गोल स्नायु रज्जु या वन्धन हैं और पीछे की ओर बीजाधार स्नायु वन्धन स्थान है। इस कारण कोण द्वार का भाग किञ्चित उत्सेदित सा रहता है।

ग्रीवा भाग (Cervix)—

गर्भाशय का वह भाग जहां से इसकी गोलाई क्रमशः कम होती हुई आती है और जहां पर से लम्बा सीधा भाग प्रारम्भ हो जाता है वह बीच का भाग ग्रीवा भाग कहलाता है क्योंकि इसका आकार ग्रीवा के आकार जैसा हो जाता है। जहां पर यह भाग नीचे की ओर समाप्त होता है, उसी के सामने भीतर की ओर गर्भाशय अन्तः द्वार है।

शीर्षभाग—

यह गर्भाशय का सिरोभाग या मुख भाग है। यह ग्रीवा भाग के नीचे से आरम्भ होकर नलिकाकार रूप धारण कर गर्भाशय वहिर्द्वार तक विस्तृत है। यह भाग लगभग २ इंच लम्बा है। यद्यपि यह भाग लम्बा है तथापि बीच से किंचित उभारयुक्त है, जिससे आकार पटोल फल जैसा मालूम पड़ता है। भीतर की ओर से तो वह एकदम पटोल फल सदृश है। योनि पथ से इसका मुख भाग दृढ़तापूर्वक सम्बद्ध है, इसलिए यह भाग अचल है मगर ग्रीवा भाग तथा शरीर भाग काफी गतिशील है। यही कारण है कि जिस रूप में शीर्ष भाग (सीधा) रहता है उस रूप में ग्रीवा एवं शरीर भाग नहीं रहता। इसका ग्रीवा भाग एवं शरीर भाग

सामने की ओर झुका रहता है। मगर गर्भस्थिति के बाद यह भी सीधा हो जाता है। शरीर भाग चूंकि सामने की ओर झुका रहता है इसलिए इसका ऊपरी भाग किंचित उन्नतोदर एवं निचला भाग किंचित नतोदर है। कभी तो यह भाग सामने की ओर इतना अधिक झुक जाता है कि नीचे का भाग शीर्ष भाग के समीप से एक कोण का निर्माण कर देता है।

योनि का वह भाग, जितनी दूर तक उसमें गर्भाशय का शीर्ष भाग धंसा रहता है, योनि का शीर्ष भाग कहाता है, शेष योनि का अधोभाग कहलाता है अर्थात् योनि दो हिस्सों में बट जाती है एक शीर्ष योनि, दूसरी अधो योनि।

गर्भाशय के शीर्ष भाग का मुख गोल एवं उन्नतोदर है जिसके बीच में एक छिद्र है जिसे गर्भाशय बहिर्द्वार कहते हैं। इसका मुख भाग ठीक उसी रूप का है जिस रूप का प्रस्फुटित होते पुष्प का आकार होता है। गर्भाशय बहिर्द्वार दो कपाटों से ढका रहता है जो ओष्ठवत् आकार का होता है इसे वहिर्द्वारोष्ठ कहते हैं। इसके दो ओष्ठ कपाटवत् एक पर एक चढ़ कर बन्द होते हैं। जो बाहर की ओर है वह मोटा एवं छोटा होता है, इसे बहिःओष्ठ या पुरः ओष्ठ कहते हैं और दूसरा जो भीतर की ओर होता है जो पतला एवं अपेक्षाकृत बड़ा होता है इसे अन्तः या पश्चात् ओष्ठ कहते हैं। पश्चात् ओष्ठ भीतर से समूचे द्वार को ढकता है और इसके ऊपर से बहिःओष्ठ उसे ढकता है। इस प्रकार यह द्वार भी दृढ़तापूर्वक बन्द रहता है।

यह द्वार कपाट या तो प्रसव वेदना के समय पूर्णतः खुलता है ताकि भ्रूण का निष्कासन हो सके या रजः स्राव के बाद किंचित सा खुला रहता है और यह अवस्था रजः स्राव की तिथि से लेकर १४-१५ दिनों तक रहती है। या यह द्वार अत्यधिक कामोत्तेजना के बाद उसकी पूर्ण तृप्ति के बाद भी थोड़ा सा खुलता है। मगर रजःस्राव के बाद से १४-१५ दिनों के लिए जो यह थोड़ा सा खुला रहता है वह प्राकृत रूप में रहता है। इसी लिए आयुर्वेद गर्भ स्थिति के लिए योग की ठीक यही अवधि मानता है, ताकि शुक्रकीट का प्रवेश सम्भव हो।

गर्भाशय भीतर की ओर से खोखला है। जिस प्रकार बाहर की ओर से यह तीन विभाग में बांटा गया है। इसी प्रकार भीतर की ओर से भी तीन हिस्सों में बांटा गया है—

(१) गर्भाशय कोष भाग (२) गर्भाशय स्रोत-भाग (३) गर्भाशय अन्तर्द्वार भाग।

गर्भाशय जितना लम्बा चौड़ा बाहर से है उतना भीतर की ओर से नहीं। गर्भाशय बर्हिद्वार से लेकर तुम्बी (fundus) तक भीतर-भीतर यह कुल २-२½ इञ्च लम्बा है। याने इसका तुम्बी भाग या तल भाग प्रायः १½-२ इंच मोटा है, और अन्दर से इसकी चौड़ाई १½-२ इंच ही है, जहां बाहर से इसकी २½–३ इंच है, अर्थात् चारों ओर प्राचीर लगभग ½ इञ्च मोटी है।

गर्भाशय के तुम्बी भाग से लेकर गर्भाशय के अन्तर्द्वार तक के भाग का नाम गर्भाशय कोष है। यह भाग ऊपर से अधिक चौड़ा और क्रमशः नीचे की ओर संकुचित होता हुआ पतला होता गया है और अन्त में एक द्वार के आकार का या मुख रूप में हो गया है जिसे गर्भाशय अन्तः द्वार कहते हैं। इसका आधार तुम्बी भाग है एवं शिखर गर्भाशय अन्तर्द्वार। गर्भाशय अन्तर्द्वार से लेकर गर्भाशय बहिर्द्वार तक का भाग क्रमशः विस्तृत होता हुआ फिर क्रमपूर्वक संकुचित हो गर्भाशय बहिर्द्वार का निर्माण करता है। इसका आकार इस कारण पटोलफल सदृश हो गया है—इसे गर्भाशय स्रोत कहते हैं।

गर्भाशय स्रोत का आकार एक छोटे पटोल फल जैसा है जिसके दोनों किनारे संकुचित एवं बीच का भाग विस्फारित रहता है। गर्भाशय स्रोत का अन्तः प्राचीर अनुलम्ब सिकुड़नों से युक्त है जिससे

खात जैसा बन जाता है। इसे गर्भाशय स्रोत खात कहते हैं। इन प्रत्येक खातों से छोटे-छोटे लम्बे लम्बे शृङ्ग के आकार के अंकुर निकलते हैं, ठीक उसी तरह जिस तरह वृक्ष से शाखायें निकलती हैं, इन्हें गर्भाशय स्रोतांकुर कहते हैं। गर्भाशय स्रोतांकुरों का निर्माण स्रोत के दोनों ओर की दीवालों पर इस प्रकार का है कि संकुचित अवस्था में जब कि दोनों ओर की दीवाल सही रहती हैं उस समय ये अंकुर एक दूसरे के गड्ढे में बिल्कुल ठीक बैठते हैं। इस व्यवस्था से यह लाभ होता है कि स्रोत का मार्ग एक दम बन्द हो जाता है, कोई भी वस्तु बाहर से भीतर प्रविष्ट नहीं हो सकती जब तक कि दीवाल उत्तेजित हो कठिन न हो जाय। दीवाल जब उत्तेजित हो कड़ी हो जाती है तो स्रोत भीतर की ओर से विस्फारित होते हैं और स्रोतांकुर ढीले पड़ जाते हैं तथा इनका मुख खुल जाता है। इनका निर्माण ऊपर से नीचे की ओर झुका होता है इस कारण भी यदि नीचे से कोई चीज दबाव डालकर ऊपर चढ़ाना चाहें तो इनका गह इस दबाव के कारण और दृढ़तापूर्वक बैठने लगता है और ठीक उल्टा प्रभाव तब होता है जब ऊपर से कोई चीज दबाव डाल बाहर निकलना चाहे। इस दबाव से यह ढीले पड़ते हैं।

रजःस्राव काल में कुछ तो गर्भाशय कोष के अन्तः प्राचीर के प्रदाह के कारण स्रोत की प्राचीर किञ्चित कड़ी होती है और कुछ स्राव के बाहर निकल जाने वाले दबाव के कारण कड़ी पड़ती है। इससे यह अंकुर थोड़ा खुल जाते हैं और स्राव बाहर निकल जाता है। गर्भाशय कोष एवं प्राचीर पुनः स्वस्थावस्था में तब तक नहीं आतीं जब तक कि उनका प्रदाह नष्ट नहीं हो जाता है। स्वाभाविक रूप से स्रोतांकुर कुछ ढीले रह जाते हैं और यह समय मासिक रजःस्राव के बाद से १४-१५ दिनों तक ही रहता है। इस अवधि में शुक्रकीट को भीतर प्रविष्ट होने में सुविधा रहती है। यह स्रोतांकुर या तो इस समय ही कुछ ढीले पड़ते हैं या कामोत्तेजना से ढीले पड़ जाते हैं। जब स्त्रियों की कामोत्तेजना परम शिखर पर पहुंचती है तो ये ढीले पड़ते हैं और जैसे ही उत्तेजना समाप्त होती है धीरे-धीरे कुछ मिनटों में स्रोत दीवार ढीले पड़ जाते हैं और स्रोतांकुर के गह कड़े हो जाते हैं। कामोत्तेजना जब अपने सीमा के शिखर पर पहुंचती है तभी स्रोत के दीवार कड़े होते हैं और चर्म सीमा पर पहुंच उत्तेजना एक दम गिर पड़ती है। इसी का नाम स्वस्खलन है।

गर्भाशय के आकार, स्थान आदि—

गर्भाशय के आकार, आकृति, स्थान आदि स्त्रियों में भिन्न-भिन्न अवस्था एवं परिस्थिति में भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं। बालिकाओं में गर्भाशय ऊपर की ओर एक दम सीधा होता है और गोल लम्बा सा होता है। इसका शरीर भाग श्रोणि प्रदेश से भी अधिक ऊपर निकला होता है। मगर जब बालिका यौवनावस्था में पदार्पण करती है तब गर्भाशय का आकार नासपाती के जैसा होता है। गर्भाशय का शरीर भाग श्रोणि प्रदेश के नीचे चला आता है और स्रोत खात स्पष्ट हो उठते हैं। यह बालिका जब मां बन जाती है तो गर्भाशय का शरीर भाग अधिक गोल एवं विस्तृत हो जाता है और सामने की ओर कुछ अधिक झुक जाता है। स्रोत भाग पूर्ण विकसित हो जाता है। गर्भाशय के अन्तर्द्वार एवं बहिर्द्वार अधिक स्पष्ट होजाते हैं।

मूत्राशय एवं मलाशय भी इसके स्थान परिवर्त्तन में एक कारण होते हैं। मूत्राशय जब खाली होता है तब गर्भाशय आगे की ओर कुछ अधिक झुका होता है। जब बद्धता की शिकायत होती है, मल के दबाव के कारण गर्भाशय आगे की ओर अधिक झुका रहता है।

रजःस्राव के समय में गर्भाशय का आकार बड़ा हो जाता है, भीतर से इसका कोष विस्तृत

होता है–बहिर्द्वार एक दम गोल होजाता है, बहिर्द्वार ओष्ठ शोथयुक्त हो जाते हैं, कोष भाग की अन्तः कला मोटी मुलायम एवं गहरे रंग की हो जाती है।

गर्भावस्था में इसका आकार बहुत बड़ा हो जाता है और यह सीधा होजाता है। इसका शरीर भाग काफी बड़ा हो जाता है इतना बड़ा कि यह हृदया के समीप तक पहुँच जाता है। प्रसवान्तर यह धीरे धीरे पुनः अपने प्राकृत रूप में आजाता है, तथापि इसका आकार एकदम पूर्वावस्था में नहीं आता अपितु कुछ न कुछ बड़ा ही रह जाता है।

इसका भार कुमारी अवस्था में कुल १½ तोला होता है। जब कि प्रथम प्रसव के बाद भार ४ से ५ तोला होजाता है। इसका कोष भाग कुमारी अवस्था की अपेक्षा अधिक बड़ा हो जाता है तथा इसकी पेशियां स्पष्ट हो जाती है। बहिर्द्वार इतना स्पष्ट हो जाता है कि इसके ओष्ठ के किनारे खात जैसे प्रतीत होने लगते हैं।

बृद्धावस्था में गर्भाशय मुर्झाया सा हो जाता है, रंग ईषत् पीत हो जाता है, आकृति मोटी हो जाती है ग्रीवा भाग स्पष्ट हो जाता है, बहिर्द्वार के ओष्ठ नष्ट हो जाते हैं और द्वार कपाट विहीन हो खुला रहता है, अन्तः द्वार भी खुला रहता है।

गर्भाशय की गति इसके ग्रीवा स्थान से ऊपर के भाग में है। बल्कि यह ग्रीवा स्थान ही वह स्थान है जहां से यह आगे पीछे दायें-बायें घूमता है। ग्रीवा स्थान से नीचे का भाग अचल रहता है। रोगावस्था में इसका व्यतिक्रमण होता है।

गर्भाशय रचना —

गर्भाशय का प्राचीर तीन स्तरों से बना है (१) बहिःस्तर (२) मध्यस्तर (३) अन्तःस्तर।

वहिःस्तर—

यह उदर्या कला (Peritoneum) का ही एक विस्तार है जो गर्भाशय को बाहर से आवृत करता हुआ योनि पथ के भी कुछ हिस्से को आवृत किये हुए है। इसी का एक हिस्सा गर्भाशय प्राचीर के बहिःस्तर को बनाता है।

मध्यस्तर —

गर्भाशय प्राचीर का यह प्रमुख स्तर है और समूचे गर्भाशय में चारों ओर से मोटी तहों में उपस्थित है। केवल कोण द्वार के समीप यह पतला है। कुमारी अवस्था में यह इतना सघन दृढ़ एवं भूरे रंग का होता है कि काटने पर तरुणास्थि की तरह कटता है। यह पेशी तन्तु, घन तन्तु, रक्त स्रोत, नाड़ी जालकों के संगठन से बना है। गर्भावस्था में इसके पेशी तन्तुओं का विकास इतना होता है कि यह बढ़कर काफी लम्बे-लम्बे हो जाते हैं। इस स्तर को भी तीन भागों में बांटा जा सकता है–प्रथम जो बाह्य स्तर से सटा है यह अनुलम्ब रूप में सजे पेशी सूत्रों से बना है, द्वितीय जो बीच का हिस्सा है अनुलम्ब, अनुप्रस्थ, एवं तिर्यक पेशी सूत्र तथा घन सूत्रों के मेल से बना है। इसमें रक्त स्रोत तथा नाड़ी जाल के सूत्र भी तमाम में बिखरे पड़े हैं और तीसरा जो अन्तःस्तर से सटा है अनुलम्ब एवं वृताकार पेशी सूत्रों से रचित है। यह एक पतला सा स्तर है अन्तर्द्वार के समीप यह केवल वृताकार पेशी सूत्रों से बना है, जिससे उस स्थान पर सिकुड़न युक्त एक पुट्ठे का निर्माण हो गया है। बल्कि इसी से अन्तर्द्वार का निर्माण हो गया है। गर्भाशय की तमाम रस ग्रन्थियों का मूल इसी मध्य स्तर के दूसरे हिस्से में रहता है।

अन्तः स्तर—

यह स्तर गर्भाशय का सबसे भीतरी स्तर है। यह समूचे गर्भाशय कोष एवं गर्भाशय स्रोत पर फैला हुआ है। इतना ही नहीं यह बढ़कर समूचे बीज वाहिनी स्रोत तथा उसके पुष्पित प्रान्त को आच्छादित किये हुए है। इसी स्तर का नाम गर्भधरा कला (Endometrium) भी है। यह स्तर गर्भाशय बहिर्द्वार से बाहर निकल योनिपथ के अन्तः

भाग में कुछ दूर तक फैला है। यह स्तर श्लेष्मिक कला की तरह का है।

इस अन्तः द्वार या गर्भधरा कला का काम गर्भ स्थिति तथा आर्त्तव चक्र में बहुत महत्व पूर्ण है। यह गर्भ का धारण, भ्रूण का पोषण करती है और आर्त्तव चक्र काल में स्राव की अधिकांश प्रक्रिया यहीं सम्पादित होती है।

यह कला कोप भाग में चिकनी एवं ईषत् पीत वर्ण की है। कुमारी अवस्था में यह एसे परमाणु तन्तुओं से आच्छादित रहता है जो रोमवत् रहते हैं मगर दो चार आर्तव चक्र के बाद यह नष्ट हो जाता है। ये तन्तु संधारक परमाणु के होते हैं। इसके नष्ट होने पर इसके स्थान पर परिवर्त्तन परमाणु के तन्तु आ जाते हैं।

गर्भधराकला भ्रूण कोप तन्तुओं से भरी रहती है। यह संयोजक जातीय या आधारिक जातीय तन्तु होते हैं। इसमें रक्तस्रोत एवं रसायनी स्रोतों की भरमार रहती है। इस कला में स्रोतमय रस ग्रन्थियां भी रहती हैं जिसे गर्भाशय रस ग्रन्थि कहते हैं। ये ग्रन्थियां सन्धारक तन्तुओं के आवरण से आच्छादित रहती हैं, जिसका मुख गर्भाशय कोप में खुलता है। अगर्भावस्था में ये ग्रन्थियां बहुत छोटी-छोटी रहती हैं मगर गर्भावस्था में क्रमशः ये इतनी बड़ी हो जाती हैं कि कोष का दृश्य उस समय लहरों (waves) से परिपूर्ण मालूम पड़ता है।

शीर्ष भाग के बीच में गर्भधराकला दो स्थानों पर एक दूसरे के सामने किंचित् उत्सेदित सी हो गई है। इस उत्सेद से ऊपर तथा नीचे दोनों ओर सिकुड़नें आरम्भ हुई हैं जिसे स्रोत सिकुड़न (palmate folds) कहते हैं। शीर्षभाग के ऊपरी दो तिहाई हिस्से में असंख्य ग्रन्थि सम्पुट हैं जिससे एक प्रकार का स्वच्छ पिच्छिल तरल स्राव स्रवित होता है। इसमें कुछ सम्पुट इस स्राव के संचय से कुछ फैल से गये हैं और गह्वर की तरह दिखाई देते हैं, जिसे डिम्ब इस गह्वर कहते हैं।

स्रोत भाग के निम्न आधे भाग में इस गर्भधरा कला पर असंख्य सूक्ष्म चञ्चू (Papillae) हैं। बहिर्द्वार स्तर समीप चौड़े आवरक परमाणुओं का धारीदार स्तर रहता है। गर्भधराकला का जो भाग योनि पथ तक चला गया है उसमें भी इसी धारीदार सौत्रिक परमाणुओं के स्तर रहते हैं।

गर्भधराकला का वह भाग जो गर्भाशय शरीर के अन्तः भाग को आवृत किये है, कुछ मोटा होता है। इसमें आवरक परमाणु के स्तर, रस ग्रन्थियों का स्तर तथा खातों का शिलशिला है। आर्तव चक्र के समय इसमें परिवर्तन होते हैं। आर्तव चक्र के आरम्भ में पहले यह शोथ युक्त हो जाता है जिसे प्रदाहावस्था कहते हैं, इसके बाद आवरक परमाणु स्तर में से परमाणु टूटने लगते हैं और रक्तस्रोत जालक जो इसमें सर्वत्र छाये रहते हैं फूट जाते हैं जिससे रक्त का स्राव होने लगता है। रसवाहिनी स्रोतों में भी यत्र तत्र यही होता है और रस का स्राव होता है। ये सभी मिलकर स्राव के रूप में स्रवित होते हैं। गर्भावस्था के आरम्भ में गर्भधराकला का यह भाग और अधिक शोथयुक्त होता है और अपरापोषका चञ्चू का का निर्माण करता है।

इसके आवरक परमाणु स्तर के परमाणु परिवर्तन या सन्धारक जातीय परमाणु होते हैं। इनकी गति नीचे की ओर होती है। इनकी रसग्रन्थियां नलिकाकार हैं। आर्तव स्राव के समय यह भी प्रदाहित एवं शोथयुक्त रहती हैं और एक पेचदार रूप ग्रहण करती हैं। इन रस ग्रन्थियों के तन्तु भी आवरक परमाणु के होते हैं। गर्भाशय के मध्य स्तर तथा गर्भधराकला के आवरक परमाणु के बीच एक खात जैसा है जिसमें रक्त स्रोत, रसवाहिनी, स्रोत आदि के जाल व्याप्त हैं। गर्भधराकला की एक विशेषता यह है कि यह अपने भग्न

स्थान का पुनः निर्माण तत्काल कर लेती है। गर्भधराकला के इस भाग पर एक श्लेष्मिक उपकला का भी आच्छादन रहता है।

शीर्ष भाग की गर्भधराकला और शरीर भाग की गर्भधराकला में थोड़ा सा अन्तर है। शीर्ष भाग की गर्भधराकला में उपश्लेष्मिककला नहीं होती, इसके आवरक तन्तु तथा रस ग्रन्थियां आदि गर्भाशय पेशी के मध्य स्तर से सीधे सम्पर्क में रहती हैं। इसकी ग्रन्थियों की रचना बड़ी उलझन दार है। इन ग्रन्थियों में से एक प्रकार का सान्द्र, पिच्छिल, स्वच्छ स्राव स्रवित होता रहता है जो जमकर गाढ़ा हो जाता है और स्रोत के स्रोतांकुरों में जमकर मार्ग का अवरोध करता है। आर्त्तवकाल में जिस प्रकार शरीर भाग की गर्भधराकला में परिवर्त्तन आता है उस प्रकार शीर्ष भाग की गर्भधराकला में नहीं होता है और न इसमें अपरा चञ्चू का ही निर्माण होता है। इसके तन्तुओं की गति नीचे की ओर ही होती है।

गर्भधराकला का वह भाग जो योनि मार्ग में फैला है, वह भी चौड़े आवरक तन्तुओं से बना है और योनि मार्ग के आवरक तन्तुओं से मिलता जुलता है। यह साधारण त्वचा से बहुत अधिक कोमल है। इसका ऊपरी रंग हल्के लाल रंग का है।

गर्भाशय बहिर्द्वार के चारों ओर वृत्ताकार पेशी सूत्रों का जमाव है। प्रसव के समय ये पेशी सूत्र फट कर दो तरफ हो जाते हैं, एक बाईं ओर दूसरे दाहिनी ओर। फटने का चिन्ह किंचित बांई ओर स्पष्ट रूप से दीख पड़ता है। इस फटने के कारण दोनों ओष्ठ स्पष्ट हो जाते हैं। जिनका अभाव कुमारियों में रहता है।

गर्भाशय के सिरा धमनी नाड़ी—

गर्भाशय को आप्लावित करने वाली धमनी संवाहिनी धमनी एवं उदर्य्या महाधमनी (Abdominal aorta) की बीजाधर शाखा (ovarian artery) की ही शाखा प्रशाखा हैं। ये धमनियां बहुत घुमाव फिराव के साथ इसमें व्याप्त हैं। सम्वाहिनी धमनी की ही एक शाखा है जिसका नाम गर्भाशयिक धमनी (uterine artery) दिया गया है और उदर्य्यामहा धमनी की ही एक शाखा है जिसका नाम बीजाधर धमनी दिया गया है। ये दोनों क्रमशः गर्भाशय एवं बीजाधर का मुख्य रूप से पोषण करती हैं। ये दोनों धमनियां एक स्थान पर मिल जाती हैं और एक मोटे स्रोत का रूप लेती हैं। इसी स्रोत से अनेक शाखायें निकल कर गर्भाशय की ओर गई हैं जो अनेक प्रशाखाओं में विभक्त होकर गर्भाशय को आप्लावित रखती हैं।

सिराओं का जाल भी धमनियों के समान ही है, मगर धमनी की अपेक्षा इनकी आकृति मोटी होती है। गर्भाशयिक सिरा कुण्डली में आकर सभी सिरायें मिल जाती हैं और गर्भाशयिक सिराकुण्डली अन्ततोगत्वा प्रतिहारिणी सिरा (portal vein) से आ मिलती है।

इसकी नाड़ी संवाहनी नाड़ी, अधिश्रोणिक नाड़ी कुण्डली तथा काम सम्वेदनी नाड़ी की शाखा प्रशाखा मात्र होती हैं। इसमें काम संवेदनी नाड़ी की शाखायें बहुत कम रहती हैं। जो रहती हैं वे केवल सहायक मात्र ही रहती हैं। काम संवेदनी नाड़ी की शाखायें अधिकतर भगशिश्निका, लघु भगोष्ठ, वृ० भगोष्ठ आदि भग स्थानों के उपांगों में गई है। संवाहनी नाड़ी की उत्तेजना से गर्भाशय के वृत्ताकार पेशी सूत्र संकुचित होते हैं एवं अनुलम्बीय पेशी सूत्र प्रसारित होते हैं जिससे गर्भाशय में अवस्थित किसी भी वस्तु का निष्कासन होता है। अधिश्रोणिक नाड़ी की उत्तेजना से ठीक इसका उल्टा प्रभाव पड़ता है। इससे गर्भाशय के वृत्ताकार पेशीसूत्र प्रसारित होते हैं और अनुलम्ब पेशी सूत्र आकुञ्चित होते हैं।

गर्भाशय के साधक
(Supports of the Uterus)

गर्भाशय स्व-स्थान में 'परावरण' (Parametrium) द्वारा सधा रहता है । परावरण गर्भाशय के बाहर की उस संयोजक धातु का नाम है जिसे हम श्रोणीय कोषीय धातु कहते हैं। इसमें तान्तव धातु (Fibrous tissue) के अतिरिक्त गर्भाशय पेश्यावरण का बाह्यस्तर, स्थितिस्थापक धातु, मेद, लसवाहिनी चक्र (lymphatic plexus) आदि रहते हैं। इसका अधिकांश तो अवकाशपूर्ण (areolar tissue) द्वारा निर्मित होता है जो अन्य अङ्गों को गर्भाशय से प्रथक् करता है। परावरण का ही कुछ भाग स्थूल रूप धारण करके स्नायुओं (ligaments) में परिवर्तित हो जाता है। इनमें गर्भाशय ग्रीवा की अनुदीर्घ स्नायु (transverse ligament of the cervix), त्रिक-गर्भाशयिक
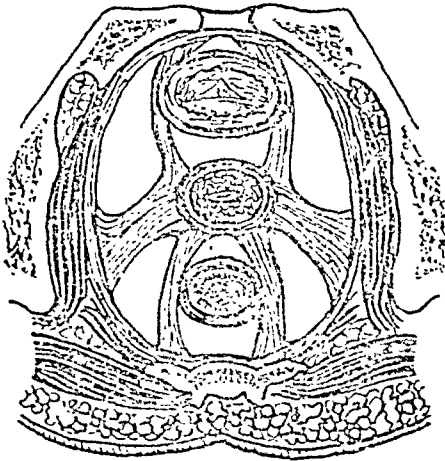
चित्र नं० ८

स्नायु (sacro-uterine ligament), वृत्तस्नायु (round ligament) महत्त्वपूर्ण हैं। इस परावरण से भग-ग्रैविक कला (pubo-cervical fascia), गुद-योनिक पटी (recto-vaginal septum) भी बनते हैं। ये सब श्रोणिकला (pelvic fascia) के ही अङ्ग हैं जिसका कि सम्बन्ध आगे और पीछे पूर्व-पश्चिमी उदर एवं उरु कलाओं से होता है। परावरण गर्भाशय ग्रीवा से घनिष्ट सम्बन्ध रखता है इसी कारण जब प्रसूति के समय गर्भाशय-ग्रीवा विदीर्ण हो जाती है उस समय परावरणिक धातु में भी शोथ (parametritis) देखा जाता है।

गर्भाशय के सधे रहने में परावरण द्वारा निर्मित कुछ विशेष स्नायुओं का बहुत महत्त्व रहता है। इन्हीं का विवरण नीचे किया जाता है :—

१–पक्षवन्धनी स्नायु (Broad ligament or mesometrium)–यह १ उदरावरणकला पर्त (fold) है जो एक पार्श्व से गर्भाशय के दूसरे पार्श्व तक जाकर त्रिकजघनकपाल संधि के सन्मुख लगता है।

इस स्नायु के दोनों स्तर (layers) एक दूसरे से सन्बद्ध होते हैं और पूर्वधार (anterior borders) का निर्माण करते हैं। यह धार अपने चार-पंचमांस में वीजवाहिनियों को धारण करता है तथा आगे श्रोणि के पार्श्व में बीजवाहिनी इस स्नायु के ऊपरी स्तर को खोलकर उदरावरणिक गुहा (paritoneal cavity) में खुल जाती है। बीजवाहिनी के अन्तिम भाग को वीजशंकु (infundibulum) कहते हैं अतः पूर्वधार के पार्श्विक (lateral) प्रथम पञ्चमांस को शङ्क्व-श्रोणिक स्नायु कहते हैं। यह स्नायु बाह्य जघनकपालिका वाहिनियों को भी आगे जाकर आवृत कर लेता है और इस उदरावरणिक कला से मिल जाता है जो उन्हें आवृत किए रहती है। इसी स्थान पर वीजकोषीय वाहिनियाँ (ovarian vessels) जघनकपालिक वाहिनियों को पार (cross) करके पक्षवन्धनी स्नायु के अन्दर प्रवेश करती हैं और वीजकोष में उतरती हैं।

पक्षवन्धनी स्नायु की पश्चिमधार योनिपार्श्व के ऊपरी भाग तथा पायुधारिणी पेशी के ऊपर अवस्थित मेद से निवेशित होती है। इस धार पर स्नायु के दोनों स्तर एक दूसरे से पृथक् हो जाते हैं और वे परगुद (para-rectal) एवं परवाहिनीक (para-vasical) खातों (fossae)

की उदरावरणिक कला से मिल जाते हैं। मूल (root) के नीचे से होकर गवीनी पार (pass) करती है। यह योनि के अति समीप आ जाती है। गर्भाशयिक धमनी अपनी सहवर्तिनी सिराओं के साथ इस स्नायु की मूल को पहुंचती है। पश्चिमी धार के दोनों स्तरों में होकर गवीनी के ऊपर मध्य की ओर मुड़कर गर्भाशय पार्श्व में सर्पगति से बहती है।

इस स्नायु की अन्तर्धार पर दोनों स्तर एक दूसरे से पृथक् होकर गर्भाशय के पार्श्व में सम्बद्ध हो जाते हैं तथा उदरावरणिक कला से मिल जाते हैं।

स्नायु की पार्श्वधार (Lateral border) श्रोणि की पार्श्व प्राचीरों से (गवीनी के सामने पर उसके १॰ इञ्च नीचे) सम्बद्ध हो जाती है और श्रोणि की उदरावरणिककला से सातत्य स्थापित कर लेती है। दोनों के सम्मिलन की रेखा बाह्य जघन-कपालिक वाहिनियों (*External iliaic vessels*) पर प्रारम्भ होती तथा नाभि धमनी (*umbilical-artery*) श्रोणिगवाक्षीय नाड़ी तथा वाहनियों (*obturator nerve and vessles*) को पार करती हैं।

इस स्नायु के निम्न धरातल का सम्पर्क आन्त्र के एक पाश (*loop*) से आता है पर यदि बस्ति भी हुई हों तो उससे आता है।

इस स्नायु के ऊपरी धरातल का सम्पर्क आन्त्र से आता है तथा इसी में श्रोणि की पार्श्व प्राचीर के समीप बीज कोष सम्बन्धित रहता है। बीज कोष और पक्षबन्धनी स्नायु को सम्बन्धित करने के लिए जो दो अति सूक्ष्म श्लेष्मलआवरण होते हैं उन्हें "बीजकोषावरण" (*Mesovarium*) कहते हैं। तथा बीज कोष के सम्बद्ध स्थल (*Attachement of ovary*) से बीज वाहिनी तक के इस स्नायु के भाग को मध्य गर्भनाल कहते हैं।

यह स्मरण रखना चाहिए कि ज्यों ही बस्ति भर जाती है गर्भाशय और यह स्नायु ऊपर की ओर तब तक ढकेले जाते हैं जब तक उनके धरातल निम्न के स्थान पर पूर्व और पश्चिम नहीं हो जाते हैं।

इस स्नायु में निम्न लिखित अङ्ग (*contents*) सन्निहित होते हैं—

१—उदरावरणातिरिक्त मेद (*extra-peritoneal fat*)—यह परावरण के अन्तर्गत आता है और गर्भाशय के पार्श्वों में अधिक मिलता है।

२—बीजवाहिनी (*uterine tube*) यह स्नायु के स्वतन्त्र किनारे में रहती है।

३—गर्भाशय का वृत्ताकार स्नायु-इसके कारण एक रेखा (*ridge*) पक्षबन्धनी स्नायु के निम्न धरातल पर बन जाती है।

४—बीजकोषीय स्नायु जिसकी एक रेखा दीर्घ स्नायु के ऊपर धरातल पर प्रगट होती है।

५—गर्भाशय के पार्श्व के निकट गर्भाशयिक वाहिनियां और वातनाड़ियां।

६—श्रोणि के पार्श्व के निकट बीजकोषीय वाहिनियां तथा नाड़ियां।

७—लस वाहिनियां और समीपस्थ सिराएं।

८—निर्माणकालीन अंगांश (*developmental vestiges*) जैसे मध्य वृक्काणु।

२—गर्भाशयग्रीवा की अनुदीर्घ स्नायु (*Transverse ligament of the cervix*)—पक्षबन्धनी स्नायु का निम्न भाग (*base*) सघन संयोजक धातु के कोषाओं से निर्मित होता है। सघनता के कारण वह गर्भाशय ग्रीवा गर्भाशयपिण्ड एवं योनि का ऊपरी आधा भाग इसी के कारण सधा रहता है। यही गर्भाशय ग्रीवा का अनुदीर्घ स्नायु है।

३—वृत्ताकार स्नायु (*round ligament or ligamentum tenes uteri*)—यह एक पतली, लम्बी रज्जु के सदृश अनैच्छिक पेशी तन्तु (*non-striped muscle*) एवं तान्तवधातु के तन्तुओं द्वारा निर्मित स्नायु है। इसे रज्जुबन्धनी भी कहते हैं।

यह गर्भाशय के बस्ति-धरातल (*vesical surface*) से सम्बद्ध रहता है। वहां से यह दीर्घ स्नायु के अन्दर होता हुआ श्रोणि पार्श्व की ओर जाता है। इसके कारण पक्ष-बन्धनी स्नायु के अन्दर निम्न धरातल पर रेखा (*ridge*) प्रगट होती हैं। श्रोणि की पार्श्व प्राचीर पर पहुंच कर यह पक्ष बंधनी को छोड़ देता है और गम्भीर वंक्षण वलय (*deep inguinal ring*) की ओर जाता है। इस समय यह उदरावरणिक कला के ठीक नीचे होता है और कला में ऊपर से ही देखा जा सकता है। यहां यह गवाक्ष (*Obturator*) वाहिनियों एवं वातनाड़ियों तथा नाभि-धमनी और बहि: जघन कपालिक सिरा को पार करता है। छिद्र में प्रवेश करने से ठीक पहले यह बहि: जघनकपालिक धमनी के ऊपर होता है और उसके पीछे अधः औदरिकी धमनी *inferior epigastric artery*) होती है। फिर यह औदरिकी धमनी के पार्श्व से घूम कर छिद्र में प्रवेश कर जाता है। फिर यह वंक्षण सुरङ्गा में होकर बाह्य वंक्षण छिद्र द्वारा बाहर निकल कर भग प्रदेश में बृहद् भगोष्ठ तक जाकर यह अनेक पतले पतले तारों में विभक्त हो जाता है और वे तार बृहद् भगोष्ठ की बाह्यकला और उसकी त्वचा में निवेश पा जाते हैं।

गर्भावस्था में इन स्नायुओं में अति पुष्टि होने लगती है। आगे चलकर प्रसवकाल में इनमें संकोच होता है जिससे प्रकृति द्वारा गर्भाशय पिण्ड नीचे की ओर बलपूर्वक खींचा जाता और गर्भ को बाहर निकाला जाता है।

बहुप्रसवाओं में कन्याओं की अपेक्षा ये स्नायु अधिक पुष्ट हो जाते हैं। निर्माणदृष्ट्या ये अण्डकोष चालक मार्ग भाग (*guburnaculum testis*) के सदृश होते हैं तथा रचना दृष्ट्या बीजकोषीय स्नायुओं से सातत्य (*continuity*) रखते हैं। क्योंकि गर्भकालीन बीजकोषीय एवं वृत्ताकार स्नायु सतत होते हैं और पूर्व बीजकोष (*primitive ovary*) के निचले सिरे (*lower pole*) को वंक्षण सुरङ्गा (*inguinal canal*) से सम्बद्ध करते हैं।

साधारणतया वृत्ताकारी स्नायु प्रसवकाल को छोड़कर सदैव ढीले रहते हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि गर्भाशय का स्वाभाविक पूर्ववर्त्तन और पूर्व संकोच (*anteversion and anteflexion*) इसके कारण नहीं हुआ करता। पर यदि गर्भाशय पीछे की ओर संकुचित हो गया हो तो शस्त्रकर्म द्वारा इन स्नायुओं को काटकर छोटा करके पूर्वोदर प्राचीर में सम्बद्ध कर देते हैं।

४–बीजकोषीय स्नायु (*Ovarian ligament*) यह भी एक पतला अनैच्छिक पेशी और तान्तव धातु का रज्जु (*band*) सदृश भाग है। इसकी लम्बाई १ से १½ इंच तक होती है। यह गर्भाशय के आन्त्र धरातल पर बीजवाहिनी के निकट वृत्ताकारी स्नायु के धरातल पर ही सम्बद्ध रहता है। यहां से यह बीजकोष गर्भाशय की ओर के सिरे तक जाता है। यह भी पक्षबन्धनी के अन्दर उसके ऊपरी स्तर पर एक रेखा के रूप में प्रगट होता है जो मध्यबीज से सातत्य रखता है।

बीजकोषीय स्नायु उदरावरण से बाहर होते हैं।

५–त्रिक-गर्भाशयीय (*utero-sacral*) ये गर्भाशय ग्रीवा से त्रिकास्थि तक गये हुए पट्ट (*bands*) हैं। यह तन्तु पेशीय होते हैं तथा वे श्रोणीय कोषीयधातु के संहत रूप होते हैं। ये गर्भाशयत्रिक पर्त के अन्दर होते हैं। ये गर्भाशय को अन्तरौदरिक पीड़न द्वारा नीचे जाने से रोकते हैं।

गर्भाशय के साधकों का ऊपर वर्णन किया गया है। उनको दृष्टि में रखकर अब हमें ज्ञात होगा कि गर्भाशय को अपनी स्थिति में रखने के लिए कौन-कौन साधक आवश्यक होते हैं। उनमें से मुख्य निम्न हैं—

१–गर्भाशय की स्नायुएं विशेष करके गर्भाशय ग्रीवा की अनुदीर्घ स्नायु एवं त्रिक गर्भाशयीय स्नायु।

२—श्रोणि-तल (*pelvic floor*) विशेष करके पायुधारिणी पेशियां जो गर्भाशय को अप्रत्यक्षतया साधती हैं।

३—अन्तरौदरिक पीड़न (*inter abdominal pressure*) जिसके कारण योनि के साथ गर्भाशय एक समकोण बनाता है।

४—वृत्ताकारी स्नायुऐं भी गर्भाशय को साधते हैं ऐसा जोंस्टन मानता है परन्तु वे स्वयं इतने ढीले होते हैं कि उनके द्वारा गर्भाशय के सधने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

बीजवाहिनी-नलिका

(Fallopian tube or uterine tube)—

बीजवाहिनी नलिका की आकृति ठीक वैसी ही है जैसी कि नालयुक्त कमल पुष्प की होती है। इसका पुष्प भाग पुष्पित प्रान्त कहलाता है और नालभाग नलिका प्रान्त। नलिका भाग का मोटा भाग पुष्पित प्रान्त की ओर एवं पतला भाग गर्भाशय की ओर है। इसका पतला भाग गर्भाशय में कोण द्वार के अन्दर प्रविष्ट हो गया है और इसका वह भाग जो द्वार के अन्दर प्रविष्ट है, बाहुभाग या बाहुप्रान्त (Interstitial portion) कहाता है। यह टेढ़ा मेढ़ा रूप धारण कर आगे बढ़ता है और अधोमुख पुष्पित भाग (Isthmus) से संयुक्त है। इस नलिका का जो भाग टेढ़ा मेढ़ा है उसे कुण्डली प्रान्त (ampulla) कहते हैं और जो भाग मोटा हो कीप की तरह होकर पुष्पित भाग से जुड़ा है उसे वृन्त प्रान्त (fimbriated end) कहते हैं और पुष्पित भाग को पुष्प प्रान्त। बाहुप्रान्त कुण्डली प्रान्त एवं वृन्त प्रान्त एक ही नलिका के भाग हैं। वृन्त प्रान्त जहां पर पुष्प प्रान्त से संयुक्त है वहां पर एक मुख का निर्माण होता है जिसे वृन्त द्वार कहते हैं। इसी द्वार के चारों ओर से पंखुड़ियों जैसे पुष्प पत्र (Fimbria) निकले हैं।

कोण द्वार पर जहां बीजवाहिनी नलिका गर्भाशय में प्रविष्ट हो गई है, वहां पर बाहर की ओर से तो उदर्या कला का वह भाग जो गर्भाशय को आवृत किये हुए है, वही इसे भी उस स्थान पर आवृत कर गर्भाशय से बांधे है और भीतर की ओर से गर्भधराकला का वह भाग जो लगातार बीजवाहिनी नलिका तक चला गया है, वह इसे बांधे हुए है। इस प्रकार यह भीतर एवं बाहर दोनों ओर से गर्भाशय से बंधा हुआ है।
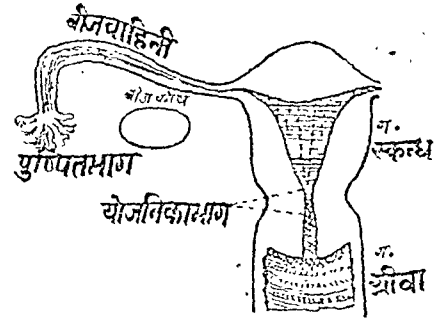
चित्र नं० ६

चूंकि स्त्री बीज डिम्ब इसी नलिका द्वारा बीजाधर (ovary) से गर्भाशय की ओर जाता है और पुरुष बीज (शुक्र कीट) इसी नलिका में आकर डिम्ब से मिल परमाणु भ्रूणघट का निर्माण करता है तथा पोषण प्राप्त कर गर्भाशय में भ्रूण का रूप लेता है इसी लिए इसका नाम "बीजवाहिनी नलिका" है। (चित्र नं० ६)

बीजवाहिनी संख्या में दो हैं—एक गर्भाशय के दाहिनी ओर, दूसरी बांई ओर। यह नलिका ४-५ इंच लम्बी है। नलिका का जो मुख गर्भाशय में खुलता है उसका व्यास $\frac{1}{8}$ इंच है और वृन्त भाग में इसका व्यास $\frac{1}{3}$ इंच है।

बाहु प्रान्त—

गर्भाशय में प्रविष्ट हुए भाग को बाहुप्रान्त (interstitial portion) कहते हैं। यह समूची नलिका का षोड़शांश ($\frac{1}{16}$) है याने $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{3}$ इंच है। नलिका का सबसे पतला अंश यही है।

कुण्डली प्रान्त एवं वृन्त प्रान्त—

गर्भाशय प्राचीर से लेकर यह नलिका टेढ़ी

मेढ़ी होती हुई एक स्थान पर आकर अधिक चौड़ी होकर नीचे की ओर झुक अधोमुख जैसी हो गयी है। नलिका का यह भाग जो टेढ़ा मेढ़ा होता हुआ आया है कुण्डली प्रान्त कहलाता है और इसके आगे का वृन्त प्रान्त जो आगे की ओर झुक अधोमुख हो गया है। यह समूची नलिका का $\frac{1}{3}$ भाग है याने $\frac{5}{3}$ इंच लम्बा है। वृन्त प्रान्त नलिका का सबसे मोटा भाग है और यह $1\frac{1}{2}$ इंच लम्बा है।

पुष्पित प्रान्त (Fimbriated end)—

नलिका के अन्तिम भाग पर पुष्प के आकार का जो भाग है उसे पुष्पित प्रान्त कहते हैं। यह नलिका से भिन्न अवयव नहीं बल्कि उसी का एक भाग है जिसका मुख पुष्प जैसा है। इसके किनारे कुछ इस प्रकार फूटते हैं कि पुष्प पंखड़ियों जैसे लगते हैं। इसकी लम्बाई लगभग १ इंच है। इन पंखड़ियों को बीज पत्र (fimbria) कहते हैं। इन पंखड़ियों में जो एक पंखड़ी बीजाधर की तरफ है और बीजकुल्या से सटी हुई है, वह पंखड़ी सबसे बड़ी पंखड़ी है। इसे बीज कुल्या पत्र कहते हैं। यह पुष्प अधोग रूप से उदर गुहा (abdominal cavity) में लटकता रहता है। अंत:नलिका का मुख (वृन्त द्वार) उदर गुहा में खुलता है।

इस पुष्प भाग की पंखड़ियों का निर्माण ऐसा है कि यह भीतर से खोखला या पोला रहता है, नलिका कार रहता है। प्रत्येक पंखड़ी में ऐसा रहता है। अत: पंखड़ियां दो स्तरों की कला से निर्मित होती हैं-एक स्तर तो नीचे वाला है, जो बीजवाहिनी नलिका के स्तर का ही विस्तार रहता है। और दूसरा स्तर ऊपर का है। यह ऊपर का स्तर वृन्त द्वार पर आकर समाप्त हो जाता है। इस प्रकार प्रत्येक पंखड़ी का ऊपरी स्तर वृन्त द्वार पर समाप्त हो एक मुद्रिका (ring) का निर्माण कर देता है। यह मुद्रिका ओष्ठवत दिखाई पड़ती है और संकोच विस्फार गुण युक्त है। इसे वृन्त ओष्ठ कहते हैं। यह ओष्ठ जब संकुचित रहता है तब वृन्त द्वार का मुख जो उदर गुहा में खुलता है बन्द रहता है और प्रत्येक पंखड़ी के भीतर ही भीतर पंखड़ी के छोर तक आकर समाप्त होता है। इस प्रकार बीज वाहिनी नलिका प्रत्येक पंखड़ी तक नलिका रूप में है।

यद्यपि कि कुल्या पत्र भी हर पंखड़ी की ही तरह भीतर से नलिका कार है, मगर अन्य पंखड़ियों से कुछ बड़ी एवं चौड़ी होने के कारण इसके भीतर की नलिका भी अन्यों की अपेक्षा बड़ी एवं चौड़ी है। बीज कुल्या की नलिका इसी पंखड़ी का भेदन कर इसी के खोखले या नलिका भाग में आकर खुलती है। सम्पुट बिस्फोट के बाद डिम्ब तथा सम्पुट रस इसी कुल्या पत्र से नलिका में बीज कुल्या द्वारा आता है और यहां से बीज बाहिनी के वृन्त भाग में आता है। सम्पुट रस तो बीज वाहिनी द्वारा गर्भाशय में आकर आर्तव चक्र के लिये गर्भाशय को प्रस्तुत करता है और डिम्ब तथा डिम्बाणु बीज वाहिनी नलिका के वृन्त भाग में पोषण प्राप्त कर पुष्ट होता है और शुक्रकीट से मिलने की प्रतीक्षा में रहता है।

प्रत्येक पंखड़ी पर अंगूर के छोटे फल के आकार की एक या इससे अधिक रक्त स्रोतों की गांठ होती हैं जिसे गोस्तनिका कहते हैं। इन पंखरियों में एक स्वाभाविक गति होती है जो नीचे से ऊपर की ओर यानी गर्भाशय की ओर जाती है। यह गति बीज वाहिनी नलिका में भी होती है। यह इसके भीतर के स्तर संधारक परमाणु तन्तुओं के कारण होती है। इसी गति के कारण बीजाधार के सम्पुट विस्फोट से निकले सम्पुट रस एवं डिम्ब आदि गर्भाशय की ओर चढ़ते चले जाते हैं।

डिम्ब कोष या बीजाधार (Ovary)—

स्त्रियों की जननेन्द्रियों में इसका स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। स्त्रियों का स्त्रीत्व इसी पर निर्भर करता है। आर्त्तव चक्र, गर्भ संधारण आदि स्त्रियों

के विशिष्ट गुण इसी पर निर्भर रहते हैं। इतना ही नहीं उनका स्वास्थ्य भी बहुत कुछ इसी पर निर्भर करता है।

बीजाधर दो हैं। एक गर्भाशय की दाहिनी ओर और दूसरा बांई ओर। यह चटकाण्ड के आकार का या कागजी बादाम के आकार का है। यह किञ्चित तिर्यक रूप से गर्भाशय एवं पुष्पित प्रान्त के बीच लटका हुआ है। यह लगभग २ इञ्च लम्बा एवं १ इञ्च चौड़ा है। अवस्थानुसार तथा आर्त्तव चक्र के समय इसके आकार में परिवर्त्तन आता है। ऊपर से देखने में यह उजले रंग का है। आर्त्तव निवृति काल आने पर यानी लगभग ४५ से ५० वर्ष की आयु आने पर यह शुष्क हो जाता है और सिकुड़ कर एक दम झुर्रीदार हो जाता है। पूर्ण वयस्क की अपेक्षा २५-४० वर्ष की आयु वाली स्त्रियों में यह पूर्ण विकसित रहता है। नव यौवना में यह अपेक्षाकृत कुछ छोटा रहता है और इसका आकार कुछ अधिक लम्बा होता है।

इसका स्थान भी सभी में एक नहीं रहता। यह गर्भाशय धरा कला तथा पक्षबंधिनी कला तथा बीजाधर बंधिनी कला के द्वारा बने खात में अवस्थित रहता है जो कटि प्रदेश के पश्चिम भाग में रहता है। यह आगे एवं पीछे की ओर से उदर्या धमनी एवं गवीनी (Ureter) से घिरा हुआ है। इसके खात का नाम बीजाधर खात है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि बीजाधर अपने खात से च्युत हो गर्भाशय के पीछे की ओर खिसक जाता है और शस्त्र चिकित्सा साध्य बीजाधर च्युति नामक कठिन रोग को उत्पन्न करता है।

बीजाधर का वह भाग जो गर्भाशय की ओर पड़ता है अन्तः प्रान्त कहलाता है और वह भाग जो पुष्पित प्रान्त की ओर पड़ता है बहिःप्रान्त कहलाता है। अन्तः प्रान्त एक चौड़ी एवं पतली स्नायु कला द्वारा गर्भाशय कोणद्वार से सम्बद्ध है और बहिः प्रान्त एक पतली नलिका द्वारा पुष्पित प्रान्त के कुल्या पत्र में प्रविष्ट हो उससे सम्बद्ध है। इस नलिका भाग का नाम बीज कुल्या है और बीज के हिस्से को शरीर प्रान्त कहते हैं। शरीर प्रान्त भीतर से छोटे छोटे कोष्ठों से भरा है और ऐसा दिखाई देता है जैसा अनार के फल का बीच का भाग जो दानों से भरा होता है।

बीजाधर की ऊपरी सतह संधारक जातीय परमाणु (Ciliated columnar tissues) के आवरण से बना है। इसका नाम बीजाधर संधारक कला है। इस कला से सटे ठीक नीचे एक प्रकार का सान्द्र श्वेत द्रव भरा है जिसे बीजाधर रस कहते हैं। बीजाधर के पोषणार्थ इसी भाग में सिरा धमनी रसायनी एवं नाड़ी जाल की शाखा प्रशाखा भरे रहते हैं। बीजाधर रस में रक्त स्रोतों के जाल इतने अधिक एवं स्पष्ट हैं कि नग्न नेत्रों से भी उन्हें देखा जा सकता है। बीजाधर के दो किनारे होते हैं—ऊपर का किनारा जिसे पुरः कूल कहते हैं और नीचे का किनारा जिसे पृष्ठ कूल कहते हैं। यदि अनुप्रस्थ रूप से पुरः कूल से काटते हुये पृष्ठ कूल तक चले आयें तो इसके दो फांक हो जायेंगे। काटने पर इसके भीतर दो प्रकार की वस्तु दिखाई देगी। एक स्पर्श में कड़ी है जिसे बीजाधर शीर्ष भाग (Cortex) कहते हैं और दूसरी स्पर्श में कोमल है जिसे बीजाधर सुषुम्ना भाग (Medulla) कहते हैं। सुषुम्ना भाग को शीर्ष भाग चारों ओर से आवृत किये हुए है।

सुषुम्ना भाग (Medulla)

इस भाग में केवल रक्त स्रोत (blood vessles) एवं रसायनी स्रोतों (Lymphatics) की भरमार है, अपितु यह कहा जाये कि इनके गुच्छों से ही यह भाग बना है। इसमें के स्रोत (vessels) शीर्ष भाग के स्रोतों की अपेक्षा अधिक मोटे हैं। इसके स्रोत बीजाधर को भीतर की ओर से पोषक तत्वों से आप्लावित रखते हैं। बाहर से बीजाधर रस भाग के स्रोत इसे पोषक तत्वों से आप्लावित रखते हैं।

शीर्ष भाग (Cortex)—

सुषुम्ना के बाद का यह भाग है। यह भाग सुषुम्ना को चारों ओर से घेरे हुए है। सुषुम्ना भाग तथा बीजाधर रस भाग के बीच में यह अवस्थित है। इसमें असंख्य कोषाकार निर्माण अनार के दानों की तरह के भरे पड़े हैं। ये कोष भाग ठीक अनार के दाने के आकार की तरह नीचे की ओर से पतले एवं ऊपर की ओर से मोटे होते हैं।

जिस प्रकार अनार के दानों में बाहर से रस भरा रहता है और उसके बीच में उसका बीज रहता है ठीक उसी प्रकार इन कोषों में एक रस भरा रहता है और उसके बीच में डिम्ब (स्त्री बीज) रहता है। अनार के फल के निर्माण से जरा सा अन्तर इसमें रहता है। अनार के दाने एक दूसरे से सटे अनेकों की संख्या में एक कोष में भरे रहते हैं और उसके भीतर अनेक कोष होते हैं। मगर बीजाधर में प्रत्येक कोष में एक अनार के दाने के आकार की एक चीज भरी रहती है और इस अनार दाने के आकार की चीज के भीतर रस तथा बीज भरा रहता है। इसके कोष को बीजाधर कोष कहते हैं। अनार के दाने के आकार की चीज को बीज सम्पुट कहते हैं। इसको ओज या सम्पुट ओज कहते हैं, बीज भाग को डिम्ब कहते हैं। कोष को बनाने वाली कला का नाम बीजाधर कोष कला है। बीजाधर कोष कला

१ सम्पुटावरण कला
२ सम्पुट
३ सम्पुट ओज
४ डिम्ब
५ कोष (बीजाधर कोष)
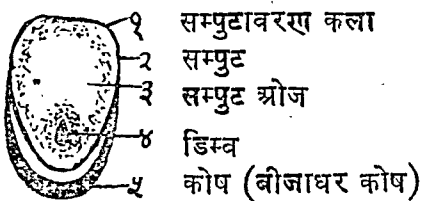
चित्र नं १०

में भी सूक्ष्म रक्तस्रोत पर्याप्त संख्या में विद्यमान रहते हैं। सम्पुट निर्माण करने वाली कला का नाम सम्पुटावरण कला है।

सम्पुट—

सम्पुट का ही नाम बीज सम्पुट है चूंकि बीज इसमें सम्पुटित रहता है। यह एक पतली कला से बना है जिसे सम्पुटावरण कला कहते हैं। इसके भीतर एक स्त्री बीज या डिम्ब रहता है और यह प्रत्येक सम्पुट में रहता है।

डिम्ब को चारों ओर त्रिकोणाकार अत्यन्त सूक्ष्म परमाणु जो रजःकण वत् है घेरे रहते हैं। इन्हे डिम्बाणु कहते हैं। आरम्भ में सम्पुटावरण कला इसी डिम्बाणु समूह को आवृत कर सम्पुट का निर्माण किये रहता है। सम्पुट की इस अवस्था का नाम आरम्भिक बीज सम्पुट है। ज्यों ज्यों अवस्था बढ़ती है आरम्भिक बीज सम्पुट विकास पाता जाता है और १२-१४ वर्ष की अवस्था आते आते बीजाधर विकसित हो जाता है। ऐसी बात भी नहीं है कि १२-१४ वर्ष की अवस्था आते आते सम्पूर्ण सम्पुट विकास पाजायें। हां कुछ सम्पुट विकास पा जाते हैं और कुछ धीरे-धीरे क्रमबद्ध रूप से विकास पाते रहते हैं। सम्पुटों का विकास पाने की परमायु ४० से ५० वर्ष तक की है, याने इस अवस्था तक सम्पुट एक के बाद दूसरा करके विकसित होता ही रहता है। इनकी संख्या अवस्थानुसार परिवर्तित होती रहती है। एक छोटी बच्ची में इनकी संख्या लगभग दो लाख (२०००००) की होती है। मगर युवावस्था आते आते इनकी संख्या बीस हजार (२००००) ही रह जाती है। आर्तव निवृत्ति काल आते आते ये एक दम नष्ट हो जाते हैं। आरम्भ में सम्पुट एवं सम्पुट कोष दोनों बहुत सूक्ष्म रहते हैं। जैसे जैसे अवस्था बढ़ती जाती है अंग पुष्ट होते हैं वैसे-वैसे सम्पुट भी पुष्ट होता जाता है। जिन सम्पुटों को पुष्ट होने पर पर्याप्त रूप से पोषण प्राप्त हो सका वे तो विकास पाने लगते हैं और जिन्हें पर्याप्त पोषण नहीं प्राप्त हो सका वे अपेक्षाकृत निर्बल पड़ते जाते हैं। इसकी निर्बलता से वे सम्पुट लाभ उठाते हैं जो पूर्ण रूपेण पोषण प्राप्त कर चुके होते हैं। अपने विकास के लिए इन्हें स्थान चाहिए, अतः निर्बल कोषों को दबा उनका स्थान स्वयं घेर लेते

हैं इस प्रकार इनकी संख्या घटती जाती है। औसतन ये अपने मूल संख्या के पंचमांश रह जाते हैं।

सम्पुट विकास—

आरम्भ में रजकरण के आकार के स्त्री बीज एक-एक की संख्या में प्रत्येक सम्पुट में रहते हैं और बीज के चारों ओर इससे भी छोटे आकार के परमाणु कण थोड़ी संख्या में रहते हैं। अर्थात् आरम्भ में प्रत्येक सम्पुट में रजकरण के आकार का एक स्त्री बीज एवं उससे भी छोटे आकार के कुछ परमाणु कण होते हैं, उसके अलावा कुछ नहीं होता है। अवस्था बढ़ने के साथ-साथ सम्पुट में भी परिवर्तन आता है। स्त्री बीज को घेरे रहने वाले परमाणु कणों की संख्या में वृद्धि होती है और धीरे-धीरे इनकी संख्या में इतनी वृद्धि होती है कि सम्पुटावरण विस्फार पाने लगता है और क्रमशः उसका आकार बढ़ने लगता है, सम्पुटकोष भी बढ़ने लगता है। इसके इर्द-गिर्द के कोष जो निर्बल होते हैं वे दब कर रह जाते हैं और उनका स्थान फैलकर यह ग्रहण कर लेता है। परमाणु कण जिन्हें डिम्बाणु कहते हैं, पहले तो संख्या में बढ़ा करते हैं, बाद में आकार में भी बढ़ने लगते हैं और सम्पुट को और अधिक फैलाते हैं। इनमें कुछ तो बढ़कर बड़े हो जाते हैं और कुछ छोटे ही रहते हैं। बड़े आकार वाले को सम्पुटाणु कहते हैं और छोटे को डिम्बाणु कहते हैं। बड़े आकार वाले सम्पुटावरण की तरफ चले जाते हैं और छोटे आकार वाले डिम्ब को ही घेरे रहते हैं। परमाणु कणों के इस विभाजन से दोनों के बीच एक स्थान का निर्माण हो जाता है जिसे सम्पुट गह्वर कहते हैं। इस गह्वर में धीरे-धीरे एक प्रकार का रस भरने लगता है जिसे सम्पुट ओज कहते हैं। सम्पुट ओज के इस गह्वर में एकत्रित होने से एक प्रकार का दबाव दोनों ओर के परमाणु कणों पर पड़ता है। इस दबाव के कारण ये परस्पर सटकर एक स्तर का निर्माण कर देते हैं जो डिम्ब के चारों तरफ होता है, उसे बीजाणु स्तर कहते हैं। बीजाणु स्तर का वह भाग जो डिम्ब से सटा रहता है डिम्बाणु स्तर कहाता है और जो सम्पुटावरण के चारों ओर भीतर की तरफ से जमता है उसे सम्पुटाणु स्तर कहते हैं।

चित्र नं० ११

सम्पुट गह्वर में धीरे-धीरे सम्पुट ओज भरता जाता है और सम्पुट फैलता जाता है। अन्त में इसमें सम्पुट ओज इतना भर जाता है कि सम्पुट का विस्फोट हो जाता है और डिम्ब तथा सम्पुट ओज तथा डिम्बाणु ये सभी इससे बीज कुल्या द्वारा बाहर निकल जाती हैं। यह बीज कुल्या से पत्रनलिका में तथा वहां से बीज वाहिनी में आता है।

सम्पुट विस्फोट योग्य १२ से १४ वर्ष की आयु के बाद होता है और रजोदर्शन इसी विस्फोट के परिणाम स्वरूप आरम्भ होता है। रजोदर्शन इसी का एक लक्षण मात्र है।

इसके साथ-साथ डिम्ब में भी परिवर्त्तन आने लगता है। डिम्ब जो रजकरणवत् रहता है वह बड़ा होने लगता है। उसे पोषण देने के लिए इसके चारों ओर ओजरस एकत्रित होता है, जिसे डिम्ब द्रव कहते हैं। यह डिम्ब के चारों ओर धीरे-धीरे इतना अधिक एकत्रित हो जाता है कि डिम्बाणुस्तर एवं डिम्ब के बीच पर्याप्त स्थान

बन जाता है। डिम्ब इसी रस से पोषण प्राप्त करता है।

यह परिवर्त्तन क्रमशः सभी सम्पुटों में आता है और १२ से १४ वर्ष की आयु में सभी सम्पुट इस अवस्था में आ गये होते हैं कि हर २८-२६ दिन पर एक के बाद दूसरा अपने विकास की चरम सीमा पर आता जाये और फूटता जाये। यह क्रम ४५ से ५० वर्ष की आयु तक चलता है इसके बाद एक भी सम्पुट बचा नहीं रहता है।

डिम्ब (Ovum)

यह एक गोल कोष (cell) होता है। इसका व्यास लगभग .०६४ इंच होता है। इसमें दो परत होते हैं—बाहरी परत पारदर्शक होता है और इसे जोना पैलूसिड़ा (Zona pellucida) या विटैलाइन मैम्ब्रेन (vitelline membrane) कहते हैं। दूसरा परत दाने दार होता है। इसे विटेलस या योक (vitellous or yolk) कहते हैं। यह पोषक तत्व है। भ्रूण को सर्व प्रथम इसी से पोषकतत्व प्राप्त होता है। इस पोषक तत्व के अन्दर एक सूक्ष्म बिन्दु होता है जो उत्पादक कोष (germinal vesicle) कहलाता है। इसके अन्दर भी एक अति सूक्ष्म बिन्दु होता है जिसे (germinal spot) कहते हैं। इसका व्यास .०००३ इंच होता है।
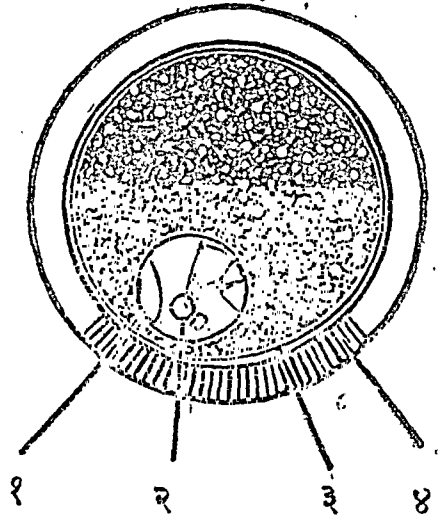
चित्र नं० १२

१. जोना पैलुसिड़ा—एक पारदर्शक कला
२. विटेलिस—एक प्रकार का दानेदार पदार्थ
३. जर्मीनल स्याह—एक स्वच्छ विन्दु
४. जर्मीनल वैसीकिल—एक दाने दार विन्दु

—शिवरात्रि देवी
कन्हौली, राम बाग रोड़
मुजफ्फर पर

२—नारी-जननेन्द्रिय—

श्री भंवरलाल गोठेचा

पुरुष की तरह स्त्री की जननेन्द्रियां भी दो प्रकार की होती हैं यथा—

१—वाह्य जननेन्द्रियां, २—आभ्यन्तर जननेन्द्रियां।

१—वाह्यजननेन्द्रियों की परिभाषा—वाह्य जननेन्द्रियां वे कहलाती हैं जो बाहर से नेत्र व अंगुलियों की सहायता से ही देखी जा सकती हैं। आयुर्वेद में इन्हें भग नाम से पुकारा जाता है। आयुर्वेदीय भग शब्द से निम्न प्रत्यङ्गों का बोध होता है। यथा—

(*i*) वृहत् भगोष्ठ (*Labium majus*) (*ii*) क्षुद्र भगोष्ठ (*Labium minus*) (*iii*) योनिद्वार (*Vaginal orifice*) (*iv*) योनिच्छद (*Hymen*) (*v*) मूत्र प्रसेक द्वार (*Meatus urinaris externus*) (*vi*) भगपीठ या कामाद्रि (*Mons veneris*) (*vii*) भगनासा (*Clitoris*)

यहां प्रसंगवश आयुर्वेदीय भग शब्द पर भी विचार करना उचित प्रतीत होता है। यह आप पढ़ चुके हैं कि जिस स्थान में पुरुषों में शिश्न

एवं अण्डकोष होते हैं नारियों में उसी स्थान में उपर्युक्त अङ्ग दिखाई देते हैं। आयुर्वेदीय परिभाषा में वे सब मिलकर भग कहलाते हैं। आचार्य सुश्रुत ने भगन्दर शब्द की निरुक्ति में भग शब्द को गुदा आदि अङ्गों का उपलक्षण मात्र माना है यथा—

"गुद भग वस्ति प्रदेश दारणात् भगन्दरा:"
(सुश्रुत निदान स्थान भगन्दर प्रकरणम्)

अर्थात्—गुद-भग-वस्ति प्रदेश में विदार होने को भगन्दर कहते हैं। यहां उक्त वाक्य से यह जाहिर होता है कि भग शब्द गुद-भग-बस्ति तीनों तथा आस पास के समस्त प्रदेश के लिए व्यवहृत होता है। अतएव स्त्री बाह्यजननेन्द्रियों के लिए प्रयुक्त भग शब्द युक्ति संगत है।

कइयों का मन्तव्य है कि भगन्दर रोग का आकार नारी भग की तरह होता है अतएव इस रोग का नाम "भगन्दर" इसी दृष्टि से रक्खा है। देखिये भोज के बचनों में—

भगं परिसमंताच्च, गुदवस्ति तथैव च,
भगवद् दारणोद्यस्मात्, तस्माज्ज्ञेयो भगन्दर:।
भोजवचनम्

(i) बृहत् भगोष्ठ—

यदि हम खड़ी हुई नारी के भग को गौर से देखें तो भग के बिलकुल मध्य एक दरार दिखाई देगी। दरार के दो ओष्ठ होते हैं ये "बृहत् भगोष्ठ" कहलाते हैं।

(ii) क्षुद्र भगोष्ठ—

यदि हम बृहत् भगोष्ठों को दरार के पास से अंगुली से हटाकर चौड़ा करें तो इन ओष्ठों के भीतर दो ओष्ठ और दिखाई देंगे। यह क्षुद्रभगोष्ठ कहलाते हैं।

(iii) योनिद्वार—

यदि हम दोनों भगोष्ठों को फैलावें तो दरार में (बिलकुल मध्य भाग में) दो छिद्र दिखाई देंगे एक ऊपर और एक नीचे। इनमें से नीचे का छिद्र जो बड़ा होता है वह "योनि द्वार" कहलाता है।

(iv) योनिच्छद—

बालिकाओं में प्रथम पुरुष समागम पूर्व त्वचा का एक पतला पर्दा उक्त योनि द्वार पर चढ़ा रहता है इसको "योनिच्छद" कहते हैं।

(v) मूत्र प्रसेक द्वार—

योनि द्वार के ½ इञ्च ऊपर की ओर जो एक छोटा छिद्र होता है वह "मूत्रप्रसेक द्वार" कहा जाता है।

(vi) भगपीठ या कामाद्रि—

जहां बृहद् भगोष्ठ एक दूसरे से मिलते हैं वह स्थान कुछ उभरा हुआ होता है इस भाग को भगपीठ कहते हैं। स्वर्गीय डाक्टर त्रिलोकीनाथ जी वर्मा ने इसका नाम कामाद्रि लिखा है। यहां दोनों भगास्थियों का जोड़ रहता है।

(vii) भग नासा—

भगपीठ के नीचे दोनों बृहत् ओष्ठों के बीच में और मूत्र प्रसेक द्वार के ऊपर एक छोटा सा अंकुर होता है इसको भगनासा या भगांकुर (Clitoris) कहते हैं। कई आचार्य इसको "भग-शिश्नका" नाम से भी पुकारते हैं। औरतों में यह भाग पुरुष शिश्न का प्रतिनिधि होता है। आकार में यह पुरुष शिश्न से छोटा होता है किन्तु बनावट व आकृति में पूर्ण सादृश्य होता है।

"श्री गोठेचा जी की मंजी लेखनी से लिखे इस विस्तृत निबन्ध के कतिपय अंश जो पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति पर आधारित थे हमने निकाल दिये हैं। इससे पूर्व प्रकाशित लेख में वह विवरण आ चुकने के कारण पुनरुक्ति दोष से यथासम्भव बचने के प्रयत्न हेतु यह अवांछित कार्य हमको करना पड़ा है। आशा है लेखक महोदय इसके लिए अन्यथा न समझेंगे।"

—सम्पादक।

शिश्न दंडिकाओं की तरह इसमें भी दो दंडे होते हैं जिनको भगनासा दंडिका कहते हैं। पुरुष शिश्न में और भगांकुर में उपर्युक्त सादृश्य होते हुए भी निम्नांकित अन्तर होता है—

१. भगांकुर ठोस होते हैं, और उसके अग्र भाग में कोई मार्ग नहीं होता, न इसमें मूत्र निकलता है और न शुक्र जैसी कोई चीज, क्योंकि स्त्रियों में मूत्र मार्ग पृथक होता है।

२. शिश्न में—मूत्र द्वार होने के कारण प्रणाली का रूप होता है, और पुरुषों में शुक्र निकलने का मार्ग भी शिश्न होता है।

मैथुन काल में महिला का भगांकुर रक्त से भर जाता है और उसमें शिश्न के समान उत्तेजना आ जाती है। मैथुन में शिश्न भगनासा से घर्षण करता है। इस घर्षण से स्त्री को अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है। मैथुन अवसान काल में रक्त लौट जाने के कारण भगनासा भी शिश्न की तरह शिथिल हो जाती है। भगनासा के ऊपर एक अत्युत्तेजनाशील ग्रंथि रहती है जिसे अर्बुदिका कहते हैं। इसके उत्तेजित होने का कारण वहां पर व्याप्त नाड़ी अग्रों की उपस्थिति है। स्त्रियों की भगनासा दंडिका भी पुरुषों की शिश्न दंडिका की तरह नितंबास्थि के महराव से जुड़ी रहती है। आगे आकर दोनों दंडिका एक दूसरे से मिल जाती हैं और उनसे भगनासा बनती हैं। प्रत्येक दंडिका से भगनासा प्रहर्षिणी पेशी लगी रहती है। भगनासा दंडिका सौत्रिक तंतु से बनती है। ये सूत्र श्वेत और पीले दोनों तरह के होते हैं, इनमें कुछ अनैच्छिक मांस भी मिला हुआ होता है।

आभ्यन्तर जननेन्द्रियों की परिभाषा—

महिलाओं की आभ्यन्तर जननेन्द्रियां वे कहलाती हैं जो वस्ति गह्वर के भीतर रहती हैं और बाहर से दिखाई नहीं देती। स्त्रियों की आभ्यन्तर जननेन्द्रियों से निम्न अङ्गों का बोध होता है—

(i) योनि (Vagina)
(ii) गर्भाशय (Uterus)
(iii) डिम्ब ग्रंथियां (Ovaries)
(iv) डिम्ब प्रणालियां (Fallopian tubes)
(v) गर्भाशय के संपर्क में रहने वाले अन्य अङ्ग यथा वस्ति, वस्ति प्रणाली आदि।

(i) योनि—यह वह मार्ग है जिसमें से होकर मासिक स्राव बहता है। इसी में व्यवाय काल में शिश्न प्रवेश करता है और इसी मार्ग से प्रसव काल में बच्चा गर्भाशय से बाहर आता है।

योनि की स्थिति—

योनि के पूर्व में ऊपर के भाग में सामने की ओर वस्ति का पिछला भाग तथा गवीनियों के अन्तिम सिरे रहते हैं। और योनि के पश्चिम में पश्चिमी दीवार का ऊपरी भाग उदरावरण कला (*Peritoneum*) द्वारा आवृत रहता है। उदरावरणकला ही वृहदंत्र को योनि से पृथक करती है। योनि की पश्चिमी दीवार में आघात होने से उदरावरणिक गुहा खुल सकती है। यहां यह भी स्मरणीय है कि पश्चिमी दीवार और मलाशय के मध्य में दोनों को रोकने वाला कोई साधन नहीं है अतः कई बार इन दोनों के मध्य में गर्भाशय जाकर गर्भाशय विच्युति का रूप ले सकता है। 'पार्श्वों में" गर्भाशय का पक्ष बंधनी स्नायु आकर ठहरता है। उनका सम्बन्ध गवीनियों से भी होता है, गवीनियों के ऊपर गर्भाशय में सम्बद्ध वाहिनियां भी इनसे सम्बद्ध रहती हैं। योनि को रक्त देने वाली धमनी योनि धमनी कहलाती है। इसके अतिरिक्त गर्भाशय धमनी आदि और भी कई धमनियां योनि में रक्त पहुंचाती हैं।

आयुर्वेदीय "योनि" शब्द पर कुछ आधुनिक विचारों का सामञ्जस्य—

आयुर्वेदीय आचार्यों ने योनि को तीन आवर्त वाली कहा है। यथा—

१—शंख नाभ्याकृतिर्योनि स्त्र्यावर्त्ता सा प्रकीर्तिता।
तस्यास्तृतीये त्वावर्त्ते, गर्भशय्या प्रतिष्ठिता ॥ १ ॥

२—यथा रोहित मत्स्यस्य, मुखं भवति रूपतः ।
तत्संस्थानां तथा रूपां गर्भशय्यां विदुर्बुधाः ॥ २ ॥

अर्थात् योनि शंख नाभि के आकार की तीन आवर्त वाली बतलाई है और उसी के तृतीय आवर्त में गर्भशय्या स्थित कही है। जिस प्रकार रोहित मत्स्य का चन्द्राकार मुख होता है उसी रूप की वैसी ही स्थिति योनि की कही है, जिसमें निम्न तीनों अङ्गों का ग्रहण होता है—

योनि, गर्भाशय ग्रीवा और गर्भाशय। क्योंकि उपर्युक्त प्रमाण से स्वतः सिद्ध है कि तृतीय आवर्त में गर्भशय्या (गर्भाशय) है, तो दूसरे में गर्भाशय ग्रीवा और प्रथम में योनि। आयुर्वेद ने त्र्यावर्त्ता योनि के रोगों का जो उल्लेख किया है उसमें पाश्चात्यों द्वारा कल्पित समस्त "गाइनोकालोजीकल" रोग आ जाते हैं। आयुर्वेद में 'प्रसूति' और 'योनि व्यापत्' जिन दो पृथक्-पृथक् विषयों का वर्णन मिलता है, वही आधुनिक "मिडवाईफरी" एवं "गाइनोकोलोजी" नाम से मानते हैं।

यहां हमने योनि में वैजाइना (vagina) मानकर उसी का वर्णन ऊपर किया है।

(ii) गर्भाशय-यह वह अङ्ग है जिसमें गर्भ रहता है। इसकी स्थिति महिलाओं में वस्ति गह्वर के अन्दर होती है। इसके सामने मूत्राशय और पीछे की ओर मलाशय रहता है जैसा कि नाम से स्पष्ट है। गर्भाशय को आयुर्वेद में आशय माना है तदर्थ निम्नांकित उद्धरणों को ध्यान से देखिये—

१—कफाम पित्तवातानामाशया मल-मूत्रयोः ।
पुरुषेभ्योऽधिकाश्चान्ये, नारीणामाशयास्त्रयः ॥
धरागर्भाशयः प्रोक्तः, पित्त पक्वाशयान्तरे ।
स्तनौप्रवृद्धौ तामेव, बुधैस्तन्याशयौमतौ ॥
वाग्भटः ।

२—स्त्रीणां गर्भाशयोऽष्टमः । इति

३—स्त्रीणां तु वस्तिपार्श्वगतो गर्भाशयः सन्निकृष्टः ।
सुश्रुत चि. स्था. ।

४—भगस्याधः स्त्रियाः वस्तिरूर्ध्वं गर्भाशयः स्थितः ।
गर्भाशयश्च वस्तिश्च, महास्रोतः समाश्रितौ ॥
"वैतरन्" डल्हण टीकायाम् ।

५—शङ्ख नाभ्याकृतिर्योनि स्त्र्यावर्त्ता सा प्रकीर्तिताः ।
तस्यास्तृतीये त्वावर्त्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता ॥
यथारोहित मत्स्यस्य मुखं भवतिरूपतः ।
तत्संस्थानां तथा रूपां, गर्भशय्यां विदुर्बुधाः ॥

उपर्युक्त वचनों से यह स्पष्ट है कि आयुर्वेद महिलाओं के आठ आशय मानता है। उनमें से गर्भाशय भी एक आशय है। यह योनि के तृतीय आवर्त्त में स्थित गर्भशय्या है अर्थात् गर्भ का निवास स्थान है। इसको पाश्चात्य चिकित्सक "यूटरस (uterus)" के नाम से पुकारते हैं। पुरुषों में ये आशय आठ से कम होते हैं।

गर्भाशय की रचना एवं स्थिति—

गर्भाशय का आकार त्रिकोण सम आकृति का छोटा सा अनैच्छिक मांस से बना हुआ है। मांस के बाहर उदर कला रहती है। गर्भाशय के भीतर श्लैष्मिक कला होती है जिसमें लम्बी लम्बी बहुत सी नलाकार ग्रन्थियां होती हैं।

अप्रजाताओं में इसकी लम्बाई ३ इञ्च, चौड़ाई २ इञ्च और मोटाई १ इञ्च होती है। इसका भार २½ से ३½ तोले तक होता है। चौड़ाई धीरे-धीरे नीचे की ओर घटती जाती है। गर्भाशय के ऊपर का भाग मोटा होता है। नीचे का भाग जहां योनि से सटा रहता है पतला होता है। नीचे के भाग में एक छिद्र होता है जिसको गर्भाशय का "वहिर्मुख" (External os) कहते हैं। गर्भाशय बहिर्मुख को योनि में अंगुलि देकर स्पर्श किया जा सकता है। इसके आगे पीछे दो ओष्ठ होते हैं। वे भी स्पष्ट किये जा सकते हैं। अप्रजाताओं में यह मुख गोल और छोटा होता है किन्तु प्रजाताओं में अनुप्रस्थ दरार जैसा होता है। गर्भाशय ग्रीवा जहां गर्भाशय गात्र से मिलती है वहां के

संकुचित भाग स्थित द्वार को गर्भाशय का "अंत-मुख (Internal os)" कहते हैं। जैसा कि आप पढ़ चुके हैं कि गर्भाशय के ऊपर का भाग मोटा और नीचे का भाग पतला होता है। यह मोटा भाग गर्भाशय गात्र कहलाता है और पतला भाग गर्भाशय ग्रीवा कहलाता है। गर्भाशय गात्र के ऊपर के हिस्से में दोनों तरफ कुछ स्वतन्त्र भाग है। उसको "गर्भाशय स्कन्ध" कहते हैं। इसके दोनों पार्श्वों से गर्भाशय प्रणालियां या बीज वाहिनियां जाती हैं। इन प्रणालियों के सिरों के पास डिम्ब ग्रन्थियां लगी रहती हैं।
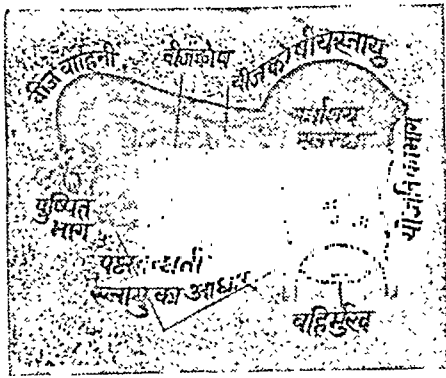
चित्र १३

(*iii*) डिम्ब ग्रंथियां—

जिस प्रकार पुरुष में दो शुक्र ग्रन्थियां होती हैं वैसे ही स्त्री में भी दो अंग होते हैं, इनमें डिम्ब बनते हैं इस निमित्त इनको डिम्ब ग्रन्थियां कहते हैं। यह सर्व विदित है कि स्त्री के डिम्ब (बीज) और पुरुष के शुक्राणु से ही गर्भ स्थिति होती है। डिम्ब ग्रंथियां वस्ति गह्वर में उसकी पार्श्विक दीवारों से लगी हुई रहती हैं। ये ग्रंथियां गर्भाशय के दोनों तरफ दक्षिण वाम स्कंध की ओर १-१ रहती हैं। वैसे उनकी आकृति विभिन्न प्रकार की होती है किन्तु तज्ज्ञों का कथन है कि ग्रंथि का आकार और परिमाण कपोत अण्डवत् होता है। इसकी लम्बाई १ से १¼ इञ्च और चौड़ाई ¾ इञ्च एवं मोटाई ½ इञ्च के लगभग होती है, और प्रत्येक ग्रंथि का भार ६ से ८ मासे तक होता है।

(*iv*) बीज वाहिनियां—

गर्भाशय के दांई और बांई तरफ दो डिम्ब ग्रंथि होती हैं। उनसे प्रतिमास ऋतुकाल में जब स्त्री ऋतुमती होती है तब डिम्ब निकलता है। यह डिम्ब डिम्बकोष (बीज कोष) से निकल कर जिन प्रणालियों द्वारा गर्भाशय में आता है वे प्रणालियां "डिम्ब प्रणालियां" या 'बीज वाहिनियां' कहलाती हैं। ये संख्या में दो २ होती हैं, गर्भाशय के बांई ओर और दाहिनी ओर। प्रणाली की लम्बाई ४ इन्च और चौड़ाई गर्भाशय के पास $\frac{1}{6}$ इन्च और डिम्ब ग्रन्थि के पास $\frac{1}{3}$ इन्च के लगभग होती है। प्रणाली भीतर से बहुत तंग होती है यहां तक कि गर्भाशय के पास यह व्यास $\frac{1}{24}$ इन्च और डिम्ब ग्रंथि के पास $\frac{1}{12}$ इन्च के लगभग होता है। वर्णनात्मक दृष्टि से आचार्यों ने प्रणाली के चार भाग माने हैं[1]। (चित्र नं० ५ में देखें)

बीज संवहन—

निश्चित समय पर डिम्बकोष से परिपक्व डिम्ब (बीज) फूटकर डिम्बकोष के धरातल पर आजाता है। उसके साथ में जल निकलकर बीज को बहा देता है, बीज कोष के स्फुटित होने के कुछ काल पूर्व रक्तावरण (*Vascular congestion*) होता है जो डिम्ब प्रणाली के झालर सम भाग में भी देखा जाता है। इसके कारण इस झालर सम भाग का आकर्षण (झुकाव) बीज की तरफ होजाता है, और बीज के निकलते ही झालर द्वारा बीज वाहिनी में प्रविष्ट कर दिया जाता है और वहां से प्रणाली की आंतरिक झिल्ली की गति से वह गर्भाशय की ओर बढ़ता जाता है। यदि बीज में शुक्राणु मिल गया तो दोनों ओर का संयोग होकर डिम्ब प्रणाली में होकर गर्भ बीज गर्भाशय में आकर स्थिर हो जाता है। और यदि शुक्राणु और डिम्ब का संयोग नहीं हुआ तो स्त्री डिम्ब गर्भाशय में उतर

---

[1]इनका विस्तृत विवरण पूर्व लेख में देखें। (सम्पादक)

कर आर्तव स्राव के साथ साथ गर्भाशय के बाहर वह जाता है।

गर्भाधान—

ऊपर वर्णित योनि और गर्भाशय में प्रबीज (शुक्राणु) कई दिन तक जीवित रह सकते हैं। गर्भाशय में शुक्राणु शनैः शनैः बीज बाहिनी (डिम्ब प्रणाली) में पहुँचते हैं। शुक्राणु को डिम्ब से चुंबकीय आकर्षण होता है, अतएव जिस डिम्ब प्रणाली में डिम्ब होता है उसी में पुंबीज (शुक्राणु) भी प्रवेश करते हैं। सिर्फ सबल शुक्राणु ही बीज तक पहुंच पाते हैं। ये डिम्ब से चिपट जाते हैं और उसके चारों ओर लगी सेलों में से होकर डिम्ब के भीतर घुसने की कोशिश करते हैं। गर्भाधान के लिए सिर्फ एक ही शुक्राणु की आवश्यकता होती है। एक बार के शुक्रस्राव में लाखों शुक्राणु होते हैं, इन बहुत से शुक्राणुओं में से जो बलवान होता है वही डिम्ब के भीतर घुस पाता है। इसी शुक्राणु और डिम्ब के संयोग को "गर्भाधान" कहते हैं। गर्भाधान से जो वस्तु बनती है उसे "गर्भ" नाम से पुकारा जाता है।
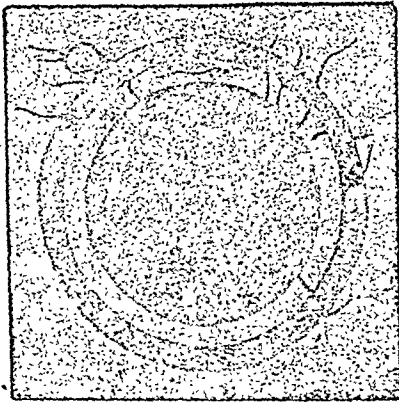
चित्र नं० १४

डिम्ब (ovum) पर अनेकों पुरुष शुक्र कीटाणु चारों ओर से आक्रमण कर रहे हैं। इनमें से केवल एक सबल शुक्राणु अन्दर प्रवेश कर गर्भ स्थित कर देता है।

नोट—

प्रत्येक मैथुन क्रिया से शुक्राणु सहित 'शुक्र' गर्भाशय के भीतर पहुँचता हो यह जरूरी नहीं है। प्रायः यह योनि से बाहर निकल जाता है। जब वीर्य अन्दर रुके तब ही गर्भाधान हो सकता है, गर्भाधान के लिए एक शुक्राणु का रहना ही सिद्धिकर है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि गर्भाशयादि अङ्गों में शुक्राणु बहुत समय तक जीवित रह सकता है अतएव यह जरूरी नहीं कि मैथुन के दिन ही गर्भाधान हो। अतः मैथुन क्रिया के कई दिन पश्चात् भी लगभग २० रात्रि तक (प्रथमार्त्तव दिन से) गर्भाधान हो सकता है। साधारणतया एक शुक्रकीट का एक ही डिम्ब से संयोग होता है और स्त्री एक बार में एक ही बच्चा पैदा करती है। यदा-कदा एक ही साथ या कुछ अन्तरों से दो कीटों का दो डिम्बों से योग हो जाता है तब दो गर्भ भी उत्पन्न होते हैं और स्त्री एक साथ या थोड़ी देर पश्चात् दो बच्चे जनती हैं। कई आचार्य तो यह भी मानते हैं कि यदा-कदा दो से अधिक सन्तान भी पैदा होती देखी गई हैं किन्तु दो से अधिक प्रायः जिन्दा नहीं रहती हैं।

गर्भाशय के सम्पर्क में रहने वाले अन्य अङ्ग—

उपर्युक्त गर्भाशय स्थिति से यह विदित हो गया है कि गर्भाशय के पास ही स्थित वस्ति (मूत्राशय) एवं मूत्र प्रणाली का गर्भाशय के साथ काफी सम्बन्ध है। वस्तुतः इस अङ्ग का यहां वर्णन अप्रासङ्गिक होगा किन्तु गर्भकाल में जब गर्भाशय वृद्धि होती है और समयानुसार कभी गर्भ की परीक्षा करनी पड़े या शल्य क्रिया की जाय उस समय इन अवयवों को पूर्ण ध्यान में रखना निहायत जरूरी है।

—वैद्य भँवरलाल गोठेचा भिषगाचार्य
चिकित्सक जयपुर जिलाबोर्ड औषधालय,
मु० पो० बाँसखोह वाया बस्सी

नारी जननेन्द्रिय की जन्मजात विकृतियां तथा उभयलिंगी और यौन परिवर्तन

आचार्य दौलतराम रसशास्त्री
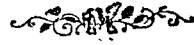
साधारणतः मनुष्यों के अंगों की बनावट एक जैसी ही पायी जाती है किन्तु सैंकड़ों पीछे एक-दो व्यक्ति ऐसे भी पाये जाते हैं जिनके किसी या किन्हीं अंगों में जन्म से ही कोई अस्वाभाविकता होती है। किसी के अधिक अंगुलियां होती हैं तो किसी के कम, किसी का कोई अंग क्षीण होता है तो किसी का कोई अंग अत्यन्त पुष्ट होता है, इत्यादि। इसी प्रकार के विकार प्रजनन अंगों में भी पाये जाते हैं—कोई अंग अनुपस्थित अथवा अत्यन्त क्षीण [अविकसित] दशा में हो सकता है अथवा अत्यन्त पुष्ट हो सकता है अथवा संख्या में अधिक हो सकता है। इस प्रकार के विकार अत्यन्त थोड़े मामलों में पाये जाते हैं किन्तु प्रत्येक चिकित्सक के पास इस प्रकार के कुछ न कुछ मामले चिकित्सा के लिए आते ही हैं इसलिए इन विकारों का ज्ञान चिकित्सक के लिए परमावश्यक है। अतएव यहां इस प्रकार के विकारों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। पाश्चात्य वैद्यों ने इन विकारों के कारणों के सम्बन्ध में भी पर्याप्त छानबीन की है किन्तु चूंकि उनसे इनके प्रतिरोध अथवा चिकित्सा में किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलती इसलिए विस्तारभय से उन कारणों पर इस लेख में प्रकाश नहीं डाला जावेगा। पाठकों को मोटे तौर से यह मान लेना चाहिए कि ये केवल बनावट के विगाड़ हैं। तथापि जो लोग इस विषय में अधिक जानकारी चाहते हों वे विकृति विज्ञान (Pathology) और स्त्री रोग विज्ञान (Gynaecology) के अंग्रेजी के वृहद् ग्रंथ देखें।

डिम्ब-ग्रन्थियां-बीज कोष, (Ovaries)—

(१) डिम्ब ग्रन्थियों की पूर्ण अनुपस्थिति अत्यन्त विरल मामलों में पायी जाती है। ऐसे अधिकांश मामलों में डिम्ब-नलिकाएं और गर्भाशय भी अनुपस्थित रहते हैं।

(२) कुछ मामलों में एक ओर की डिम्ब-ग्रंथि अनुपस्थित रहती है। ऐसी दशा में उस ओर की डिम्ब-नलिका एवं गर्भाशय का कोना भी अनुपस्थित रहता है।

(३) कुछ मामलों में एक अथवा दोनों डिम्ब-ग्रंथियां अविकसित (अत्यन्त क्षीण) दशा में रहती हैं। ऐसी दशा में अविकसित ग्रंथि से सम्बन्धित डिम्ब-नलिका एवं गर्भाशय-कोण भी अविकसित ही पाये जाते हैं। इसी प्रकार के कुछ मामलों में एक अथवा दोनों डिम्ब-ग्रन्थियां अत्यन्त छोटे भागों में विभक्त होकर बिखरी हुई पायी जाती हैं।

लेखक

(४) कुछ मामलों में एक या दोनों डिम्ब-ग्रंथियों में सौत्रिक-धातु की अधिकता पायी जाती है जिसके फलस्वरूप ग्रंथियों का आकार तो अपेक्षाकृत बड़ा रहता है किन्तु क्रियाशीलता का पूर्ण अथवा आंशिक अभाव रहता है।

उपर्युक्त सभी दशाओं में यदि दोनों डिम्ब-ग्रन्थियां विकृत हों तो मासिक धर्म नहीं होता, स्तनों की वृद्धि नहीं होती अथवा कम होती है और मासिक-धर्म नहीं होता—षण्डी। ऐसे मामलों में स्त्रीत्व के परिचायक बाह्य लक्षणों में कमी पायी जा सकती है। भग (बाह्य-स्त्री जननेन्द्रिय) और योनि की रचना बहुत से मामलों में यथावत् पायी जाती है तथापि उत्तेजना अल्प या अनुपस्थित रहती है; किन्तु कुछ मामलों ये अंग भी छोटे या विकृत पाये जाते हैं।

यदि एक ही डिम्ब-ग्रंथि विकृत हो और दूसरी पूर्ण स्वस्थ हो तो मासिक-धर्म और गर्भधारण होता है तथा ऊपरी तौर से कोई गड़बड़ी नहीं दिखाई देती। किन्तु ऐसे अधिकांश मामलों में मासिक-धर्म अनियमित एवं कष्टप्रद होता है और गर्भ धारण की संभावना कम रहती है। यदि गर्भ धारण हुआ भी तो अधिकतर गर्भपात या गर्भस्राव हो जाता है और यदि गर्भ पूरे समय तक रुका रहा तो प्रसव में कठिनाई होती है।

५. सामान्यतः स्त्री के शरीर में दो डिम्ब-ग्रंथियां पायी जाती हैं। एक गर्भाशय के बायें तरफ और दूसरी दाहिने तरफ। किन्तु कुछ मामलों में इनके अतिरिक्त कुछ और भी डिम्ब-ग्रन्थियां पाई जाती हैं। अधिकतर इनकी संख्या १ या २ ही हुआ करती हैं किन्तु एक मामले, में ६ पाई गई थीं। इनका आकार अधिकतर छोटा ही रहता है किन्तु कुछ मामलों में ये स्वाभाविक डिम्ब-ग्रंथि के बराबर भी पाई गई हैं। अधिकतर अतिरिक्त डिम्ब-ग्रन्थियों के साथ अतिरिक्त डिम्ब-नलिकाएं भी पाई जाती हैं। उससे स्त्री के स्वास्थ्य पर किसी भी प्रकार का अच्छा या बुरा प्रभाव नहीं पड़ता।

६. कुछ मामलों में डिम्ब-ग्रन्थियां अपने स्थान से हटी हुई पाई जाती हैं। ये उदर के किसी भी भाग में पाई जा सकती हैं। यदि डिम्ब-नलिका द्वारा इसका सम्बन्ध गर्भाशय से हो तो कोई गड़बड़ी नहीं होती अन्यथा डिम्ब-ग्रन्थियों की निष्क्रियता के लक्षण पाये जाते हैं।

इस प्रकार के मामलों में सबसे महत्वपूर्ण प्रकार वह है जिसमें एक या दोनों डिम्ब-ग्रंथियां अन्त्र-वृद्धि के समान वंक्षणसुरंगा में से उतरकर वंक्षण में अथवा वृहत् भगोष्ठ में स्थित हो जाती हैं। वंक्षण में स्थित होने पर वंक्षण-ग्रन्थि की वृद्धि का और वृहत् भगोष्ठ में स्थित होने पर अण्डकोष का भ्रम होता है। इस प्रकार निकली हुई ग्रन्थियों में मासिक-धर्म के समय पर रक्ताधिक्य-जन्य शोथ और पीड़ा होती है।

डिम्ब नलिकाएं-बीजवाहिनियां,
(*Fallopian Tubes*)

डिम्ब-नलिकाओं का डिम्ब-ग्रन्थियों और गर्भाशय से बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। हम ऊपर बतला चुके हैं कि डिम्ब-ग्रन्थियों की अनुपस्थिति की दशा में डिम्ब-नलिकाएं भी अनुपस्थित रहती हैं, डिम्ब-ग्रन्थियों के अविकसित होने की दशा में डिम्ब-नलिकाएं भी अविकसित रहती हैं और डिम्ब-ग्रन्थियों की संख्या अधिक होने की दशा में डिम्ब-नलिकाओं की संख्या भी बढ़ जाती (उतनी ही) है। इसी प्रकार अकेली डिम्ब-नलिकाएं स्थान भ्रष्ट नहीं होतीं; गर्भाशय अथवा डिम्ब-ग्रन्थियों के स्थानभ्रष्ट होने पर ये भी उन्हीं के साथ स्थान-भ्रष्ट पाई जाती हैं।

डिम्ब नलिकाओं के २ महत्वपूर्ण विकार निम्नलिखित हैं—

१. कुछ मामलों में डिम्ब-नलिकाओं के छिद्र बन्द अथवा अत्यन्त सकरे होते हैं जिससे मासिक धर्म नहीं होता अथवा कष्ट के साथ होता है। छिद्र बन्द होने की दशा में वन्ध्यत्व अनिवार्य है;

छिद्र सकरे होने की दशा में गर्भधारण संभव है।

२. कुछ मामलों में डिम्ब-नलिकाओं के छिद्र आवश्यकता से अधिक बड़े होते हैं। ऐसी दशा में डिम्ब-नलिकाओं में गर्भधारण होने की संभावना अधिक रहती है किन्तु हमेशा ऐसा नहीं होता।

गर्भाशय (*Uterus*)

१. गर्भाशय की पूर्ण अनुपस्थिति अत्यन्त विरल है। इस दशा में योनि अनुपस्थित अथवा अत्यन्त छोटी पाई जाती है किन्तु भग प्रायः सामान्य दशा में पाई जाती है। डिम्ब-ग्रन्थियां और डिम्ब-नलिकाएं अत्यन्त छोटी पाई जाती हैं और मासिक धर्म नहीं होता अथवा मुख, नासिका, गुदा आदि से विकृत मासिक धर्म होता है किन्तु स्तनों की वृद्धि एवं स्त्रीत्व के अन्य लक्षण पाये जा सकते हैं।

२. बहुत से मामलों में गर्भाशय अविकसित दशा में पाया जाता है (देखिये चित्र नं. १४) इस प्रकार का गर्भाशय अत्यन्त छोटा होता है और कुछ मामलों में तो वह इतना सूक्ष्म होता है कि सामान्य उपायों से उसे खोज पाना प्रायः असंभव ही हुआ करता है। अधिकतर ऐसे ही मामलों में मान लिया जाता है कि गर्भाशय अनुपस्थित है। अधिक छोटा गर्भाशय प्रायः ठोस हुआ करता है। इस प्रकार के कुछ मामलों में गर्भाशय दो

चित्र नं० १४—अविकसित गर्भाशय

अलग अलग भागों में फटा हुआ पाया जाता है। अविकसित गर्भाशय के साथ भी वे ही सब
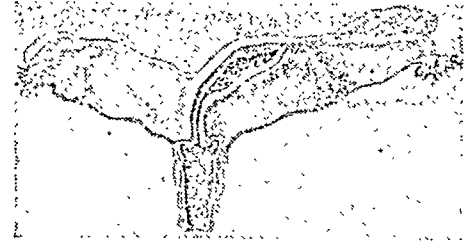
चित्र नं० १५

लक्षण पाये जाते हैं जो गर्भाशय की अनुपस्थिति में पाये जाते हैं।

३. कुछ मामलों में गर्भाशय की रक्ताभिसरण क्रिया विकृत रहती है जिससे गर्भाशय का पूर्ण विकास नहीं होता। इस प्रकार के कुछ मामलों में गर्भाशय काफी छोटा (द्वितीय प्रकार की अपेक्षा बड़ा) रहता है, कुछ में मुख विकसित रहता है किन्तु शेष भाग कमजोर एवं सामने की ओर झुका हुआ रहता है तथा कुछ में गर्भाशय का आकार सामान्य की अपेक्षा बड़ा होता है किन्तु दीवारें अत्यन्त कमजोर एवं पतली रहती हैं। इन सभी दशाओं में मासिक धर्म एवं गर्भधारण नहीं होता। इन में से कुछ मामलों में मासिक-काल में पेडू में तनाव एवं पीड़ा के साथ वमन, अतिसार, हृदय की धड़कन, सिर दर्द, अन्य स्थानों से रक्त-स्राव (vicarious menstruation) आदि उपद्रव होते हैं। जिन मामलों में गर्भाशय की विकृति अल्प होती है उन्हें कष्ट के साथ थोड़ा थोड़ा मासिक धर्म होता है।

४. बहुत से मामलों में गर्भाशय के मुख की रचना में विकृति पाई जाती है। कुछ मामलों में मुख (external os) अनुपस्थित रहता है, कुछ में मुख योनि में उभरा हुआ न होकर योनि की दीवार में छिपा हुआ होता है और योनि-गुहा से उसका सम्बन्ध
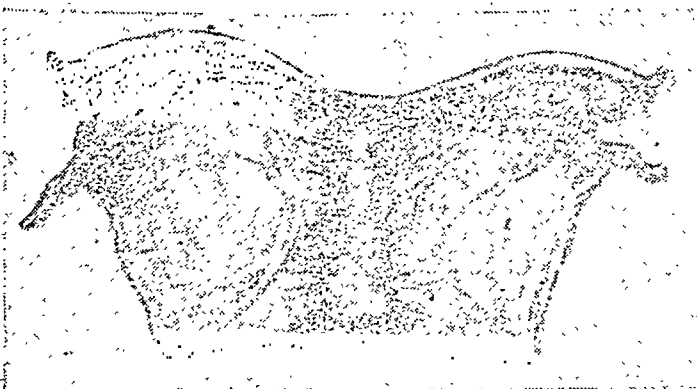
नाड़ीव्रण सदृश एक छिद्र के द्वारा रहता है, तथा कुछ मामलों में मुख छोटा, सकरा, एवं नुकीला रहता है और उसका छिद्र अत्यन्त छोटा रहता है अथवा अनुपस्थित रहता है। इन सभी दशाओं में गर्भधारण नहीं होता किन्तु यदि विकृति अल्प हो तो हो भी सकता है तथापि गर्भस्राव या गर्भपात होने की संभावना रहती है।

कुछ मामलों में गर्भाशय-मुख सामान्य की अपेक्षा बड़ा होता है। इस श्रेणी के कुछ मामलों में वह इतना बड़ा हो सकता है कि योनि के बाहर निकला रहे। थोड़ी वृद्धि से कोई गड़बड़ी नहीं होती किन्तु यदि वृद्धि अत्यधिक हो तो मैथुन असंभव होता है। (देखिये) चित्र न० १६
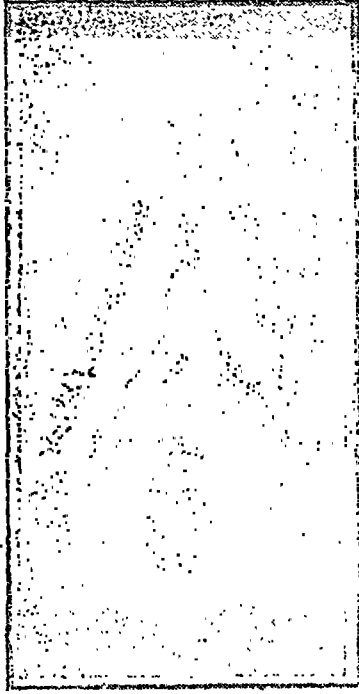
चित्र १६—बढ़ा हुआ गर्भाशय—मुख योनि के बाहर निकला है।

५. जिन मामलों में एक ओर की डिम्ब-ग्रन्थि एवं डिम्ब-नलिका अनुपस्थित रहती हैं उनमें गर्भाशय का उस ओर का कोना भी अनुपस्थित रहता है जिसके फलस्वरूप गर्भाशय ऊपर चौड़ा होने के बजाय क्रमशः सकरा होकर उपस्थित डिम्ब-नलिका पर समाप्त होता है। इस प्रकार का गर्भाशय कमजोर एवं एक ओर को झुका हुआ रहता है तथापि वह यथा-शक्ति अपना कार्य करता है और उसमें गर्भधारण भी होता है। भ्रूण गर्भाशय में सीधा रहता है और प्रसव के समय पर गर्भाशय फटने की तथा प्रसव के पश्चात् अत्यधिक रक्तस्राव होने की संभावना रहती है।

६. जिन मामलों में एक ओर की डिम्ब नलिका एवं डिम्ब-ग्रन्थि अविकसित होती है उनमें उस ओर का गर्भाशय कोण अनुपस्थित या अविकसित पाया जाता है। (देखिये चित्र नं. १७) कुछ
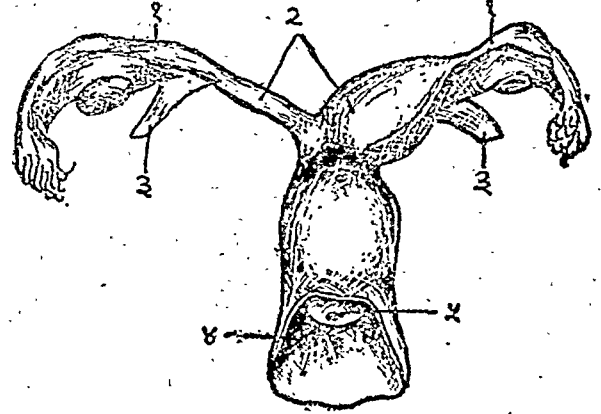
चित्र नं० १७—एक डिम्ब ग्रन्थि और डिम्ब नलिका के अविकसित होने के कारण गर्भाशय का उस ओर का कोण अनुपस्थित है। (१— बीज वाहिनी नलिका २—अविकसित गर्भाशय, ३—बीज ग्रन्थि का स्नायु, ४—योनि ५—गर्भाशय का वहिर्मुख)

मामलों में अविकसित कोना ठोस रहता है और कुछ मामलों में पोला रहता है। कोण अनुपस्थित एवं ठोस रहने की दशाऐं उपर्युक्त नं. ५ के समान ही रहती हैं। पोले कोण का आकार अधिकतर एक पृथक थैली के समान होता है। यदि इसका मुख संकीर्ण हो तो उसमें मासिक-स्राव रुका रह सकता है। यदि इस पोले कोण में गर्भधारण हो जावे तो गर्भ गिरने का भय रहता है। यदि गर्भ पूरे समय तक रहा आवे तो प्रसव के समय गर्भाशय फटने की संभावना अधिक रहती है

७. कुछ मामलों में दोहरे गर्भाशय पाये जाते हैं (चित्र नं. १८, १९, २०) इस प्रकार के कुछ मामलों में मुख एक ही रहता है किन्तु ऊपरी भाग दो भागों में विभक्त रहता है। कुछ में मुख से लेकर शीर्ष तक पूरा गर्भाशय एक पर्दे के द्वारा दो भागों में विभक्त रहता है और कुछ में दो अलग

अलग गर्भाशय अलग अलग मुखों के साथ पाये जाते हैं। योनि की रचना भी अक्सर इनके अनु-

चित्र नं० १८—दो अलग-अलग गर्भाशय दो अलग-अलग योनियों में।
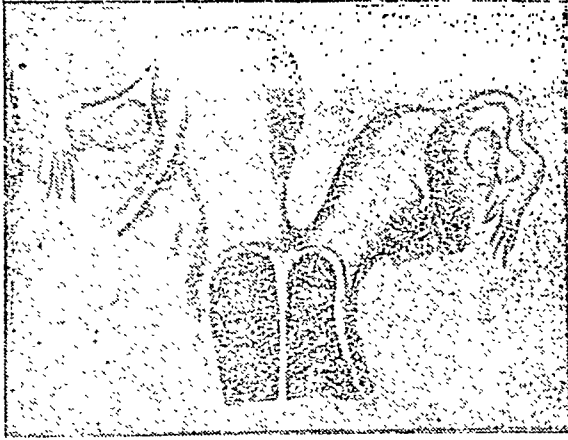
रूप ही पाई जाती है-प्रथम और द्वितीय प्रकारों में योनि सीवन-सदृश उभार या एक सकरी पट्टी के द्वारा दो भागों में विभक्त पाई जाती है किन्तु तृतीय प्रकार में पूरी योनि एक पर्दे के द्वारा दो पृथक्-पृथक् योनियों में विभक्त पाई जा सकती है। इस प्रकार के गर्भाशयों का सम्बन्ध एक एक डिम्ब-नलिका से होता है। अधिकांश मामलों में एक ही गर्भाशय क्रियाशील रहता है और दूसरा अविकसित अथवा अल्प विकसित एवं सुषुप्त अथवा अल्प क्रिया-

चित्र नं० १९ चित्र नं० २०

शील रहता है किन्तु कुछ मामलों में दोनों समान रूप से विकसित एवं क्रियाशील पाये जाते हैं। दोनों गर्भाशय क्रियाशील होने की दशा में मासिक-धर्म अनियमित रहता है-माह में दो बार हो सकता है। अधिकतर एक बार में एक ही गर्भाशय में गर्भ धारण होता है किन्तु कभी-कभी दोनों में साथ ही साथ गर्भधारण हो सकता है। ऐसी दशा में प्रसव में कष्ट होना स्वाभाविक ही है। साधारण जुड़वां बच्चों के प्रसव से यह दशा भिन्न रहती है। एक गर्भाशय में गर्भधारण होने पर अधिकतर दूसरे गर्भाशय से भी मासिक धर्म होना बन्द हो जाता है किन्तु कुछ मामलों में चालू भी रह सकता है।

योनि (Vagina)—

१—कुछ मामलों में योनि पूर्णतया अनुपस्थित हो सकती है। ऐसे मामलों में गर्भाशय आदि आभ्यन्तर अवयव भी अधिकतर अनुपस्थित ही पाये जाते हैं तथापि बाह्य अवयव (भग) अधिकतर सामान्य दशा में पाये जाते हैं (देखिये चित्र नं० २१)

चित्र नं. २१—योनि अनुपस्थित है किन्तु भग सामान्य है।

२—कुछ मामलों में योनि अवरुद्ध होती है अर्थात् योनि के किसी भी भाग में एक आड़ा परदा रहता है जो योनि की लम्बाई को दो भागों में विभक्त करता है। यह परदा पतला या मोटा एवं छिद्रहीन या छिद्रयुक्त होता है तथा योनि के किसी भी भाग में हो सकता है। यदि यह परदा योनि मुख के पास ही हो तो मैथुन संभव नहीं होता किन्तु यदि मुख से काफी दूर अर्थात् गर्भाशय के पास हो तो मैथुन में कोई कठिनाई नहीं होती। यदि यह परदा छिद्रयुक्त हो तो

मासिक धर्म होता है किन्तु यदि परदे में छिद्र न हो तो मासिक-धर्म भीतर ही रुका रह कर संचित होता रहता है और अनेक प्रकार से कष्ट देता है। (देखिये चित्र नं० २२) कुछ मामलों में इस प्रकार का परदा सम्पूर्ण गुलाई में न होकर थोड़े से ही भाग में रहता है और कुछ मामलों में सम्पूर्ण गुलाई में एक सकरी झालर सी होती है। इनसे प्रायः कोई गड़बड़ी नहीं होती।

३. कुछ मामलों में योनि अत्यन्त सकरी (सूचीवक्त्रा) रहती है। इस प्रकार के कुछ मामलों में पूरी योनि समान रूप से सकरी रहती है और कुछ मामलों में योनि का कुछ ही भाग सकरा रहता है। इस विकृति के रहते मैथुन असम्भव होता है किन्तु शल्य क्रिया द्वारा इसे दूर किया जा सकता है।

४. कुछ मामलों में योनि का एक तरफ का आधा भाग अनुपस्थित रहता है, दूसरी तरफ का आधा भाग सामान्य अवस्था में रहता है। इस प्रकार की योनि अर्धचन्द्राकार एवं सकरी होती है। इस विकार से मैथुन एवं प्रसव में थोड़ी कठिनाई होने के अतिरिक्त और कोई गड़बड़ी नहीं होती।

५. कुछ मामलों में योनि की पूरी लम्बाई को २ भागों में विभक्त करता हुआ एक परदा योनि मुख से लेकर गर्भाशय तक पाया जाता है। इस प्रकार २ पृथक्-पृथक् योनियां बन जाती हैं। (देखिये चित्र नं० २२) दोनों के मुखों पर पृथक्-पृथक् सतीच्छद् पाये जाते हैं और अधिकांश मामलों में दोनों में पृथक्-पृथक् गर्भाशय पाये जाते हैं। इस दशा में मैथुन, मासिक-धर्म एवं प्रसव में कोई कठिनाई नहीं होती। मैथुन एवं प्रसव के समय पर एक योनि को भलीभांति प्रसारित होने देने के लिए दूसरी योनि की दीवारें परस्पर सट जाती हैं।

इस प्रकार के कुछ मामलों में उक्त विभाजक परदा
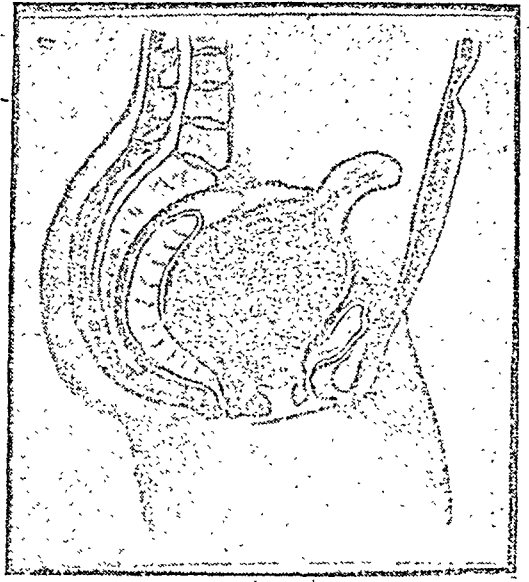
चित्र २२—योनि एक आड़े परदे के द्वारा अवरुद्ध है और मासिकस्राव संचित होने से प्रसारित हो गयी है। गर्भाशय भी रक्त संचय के कारण प्रसारित है।

खण्डित पाया जाता है और कुछ मामलों में यह परदा अविकसित अवस्था में एक सकरी झालर या सीवन के रूप में पाया जाता है। खण्डित परदा प्रसव एवं मैथुन में रुकावट डाल सकता है ऐसी दशा में इसे शस्त्र द्वारा काट दिया जाता है।

६—कुछ मामलों में मूत्र द्वार योनि के भीतर होता है। इससे थोड़ी असुविधा एवं अस्वच्छता के अतिरिक्त कोई कष्ट नहीं होता।

इसी प्रकार कुछ विरल मामलों में योनि के भीतर गुदा-द्वार पाया जाता है। इससे घोर असुविधा एवं अस्वच्छता होती है।

७—कुछ मामलों में मूत्राशय, गुद-नलिका अथवा आन्त्र का कुछ भाग योनि के भीतर अर्बुद के समान उभरा हुआ पाया जाता है। यह दशा अन्त्र-वृद्धि (Hernia) के समान है। प्रसव काल में कभी-कभी इस विकार के कारण बड़ी कठिनाई उत्पन्न हो सकती है।

बाह्य स्त्री जननेन्द्रियां—भग (External female genital organs)—

(१) कुछ मामलों में मूत्रद्वार अनुपस्थित रहता है अथवा योनि में खुलता है ।

(२) कुछ मामलों विटप देश–मूलपीठ (Perineum) अनुपस्थित रहता है और गुदा भगालिंद (vestibule) में योनि से कुछ नीचे पायी जाती है (देखिये चित्र नं० २३) अथवा योनि में ही खुलती है ।

चित्र नं० २३–दो योनियां पृथक्-पृथक् गर्भाशयों के साथ-यन्त्र द्वारा फैलाकर दिखलायी गयी हैं ।

(३) कुछ मामलों में दो गुदाऐं पायी जाती हैं—एक स्वाभाविक स्थान पर और दूसरी योनि में—सहज भगन्दर ।

(४) कुछ मामलों में भगशिश्निका (Clitoris) काफी बड़ी पायी जाती है जिससे शिश्न का भ्रम रहता है ।

(५) सतीच्छद (Hymen) की रचना में अनेक प्रकार की विकृतियां पायी जाती हैं । कुमारी युवती के सामान्य सतीच्छद के बीचों-बीच अंगुली जाने लायक छेद रहता है किन्तु कुछ मामलों में छिद्र अनुपस्थित रहता है अथवा एक या कई अत्यन्त छोटे छेद रहते हैं । कुछ में दो या अधिक, बड़े छेद रहते हैं । छिद्र न होने की दशा में मासिक-स्राव पूर्णतया रुका रह कर कष्ट देता है । छिद्र अत्यन्त छोटे होने की दशा में मासिक-स्राव का कुछ अंश रुका रह सकता है ।

सामान्यत: सतीच्छद अत्यन्त पतला एवं भंगुर रहता है और प्रथम समागम में बिना किसी विशेष कष्ट के फट जाता है । किन्तु कुछ मामलों में वह इतना मजबूत एवं मोटा रहता है कि जब तक शस्त्रद्वाराइसका छेदन न किया जावे तब तक मैथुन संभव नहीं होता । इसके विपरीत कुछ मामलों में सतीच्छद इतना लचीला होता है कि मैथुन तो क्या, प्रसव के बाद भी सुरक्षित रह सकता है । डा० हर्स्ट (Hirst) ने एक वैश्या का सतीच्छद सुरक्षित दशा में पाया था ।

२४–गुदा भगालिन्द में योनि से कुछ नीचे है ।

सामान्यत: सतीच्छद फटने पर २-४-१० बूंद या १-२ तोला तक रक्त निकलता है किन्तु कुछ मामलों में भयंकर रक्तस्राव भी हो सकता है। इस प्रकार के रक्तस्राव से मृत्यु होने के अनेक उदाहरण पाये गये हैं ।

स्तन (Mammary Glands)—

(१) दोनों स्तनों की अनुपस्थिति अत्यन्त विरल

किन्तु एक की अनुपस्थिति और दूसरे की सामान्य आकार में उपस्थिति अनेकों मामलों में पायी गयी है। कुछ मामलों में स्तनों की वृद्धि नहीं होती अथवा अत्यल्प होती है।

(२) कुछ नव-युवतियों के दोनों स्तन बिना किसी स्पष्ट कारण के इतने अधिक बढ़ जाते हैं कि शल्य-क्रिया द्वारा उन्हें छोटा करना अनिवार्य हो जाता है। इस प्रकार के मामलों में एक स्तन का वजन ५० पौंड तक पाया गया है।

(३) सामान्यतः दोनों स्तन बराबर आकार के होते हैं किन्तु बहुत से मामलों में एक बड़ा और दूसरा अपेक्षाकृत छोटा पाया जाता है।

(४) सैकड़ों पीछे एकाध स्त्री के शरीर में अतिरिक्त स्तन भी पाये जाते हैं। इनकी संख्या सामान्यतः १-२ ही रहती है किन्तु एक मामले में १० पाये गए थे। इनकी रचना हूबहू स्तन के समान ही होती है किन्तु आकार में ये प्रायः अत्यन्त छोटे होते हैं। यौवनकाल (Puberty) और सगर्भावस्था में इनकी वृद्धि होती है और प्रसव के बाद इनमें दूध भर जाता है। उस समय यदि इन्हें निचोड़ा जाय तो दूध निकलता है। यदि इनकी ओर ध्यान नहीं दिया जावे तो ये क्रमशः सूख जाते हैं और कोई कष्ट नहीं देते। इनकी उपस्थिति धड़ और जांघों में कहीं भी हो सकती है किन्तु अधिकतर ये स्तनों के आस-पास ही पाये जाते हैं।

उभयलिंगी (Hermaphrodite)—

जिस व्यक्ति के शरीर में स्त्री और पुरुष की जननेन्द्रियां साथ ही साथ पायी जाती हैं उसे उभयलिंगी कहते हैं। पाश्चात्य चिकित्सकों ने उभयलिंगियों की बहुत बड़ी संख्या का अध्ययन किया है। इनमें कुछ की जननेन्द्रियां पूरे आकार की और कुछ की छोटी होती हैं। इनके शिश्न की बनावट सामान्य पुरुषों के शिश्न के समान ही होती है किन्तु उसमें छिद्र नहीं होता। मूत्र द्वार शिश्नमूल से कुछ नीचे पाया जाता है। शिश्न की सींवन झालर के समान चौड़ी होती है और मूत्र द्वार पर समाप्त होती है। मूत्रद्वार के दोनों ओर की त्वचा अगोष्ठों के समान होती है किन्तु कुछ मामलों में ये दोनों अण्ड-कोष के समान लटकते हुए पाये जाते हैं और दोनों में अथवा केवल एक में वृषण ग्रंथि अथवा स्थानभ्रष्ट डिम्ब ग्रन्थि पायी जाती है। (देखिये चित्र नं० २२ और २३) मूत्र द्वार योनि के समान चौड़ा रहता है और

२५—उभयलिंगी
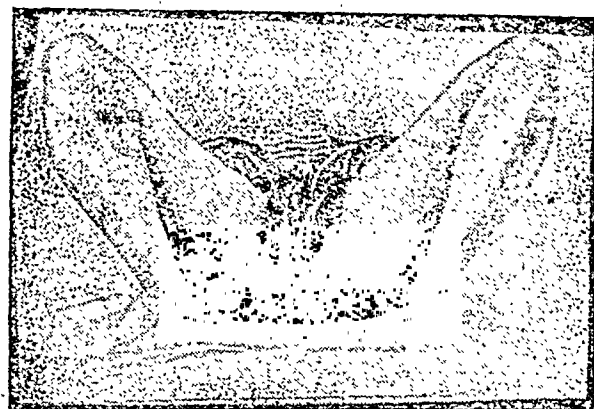
२६—उभयलिंगी (चित्र संख्या ६ का ही व्यक्ति योनि फैलाकर दिखाकर रहा है)

कुछ मामलों में उसके भीतर गर्भाशय भी पाया जाता है। किन्तु कुछ मामलों में मूत्रद्वार स्त्रियों के मूत्रद्वार के समान छोटा होता है और उसके कुछ नीचे योनि

रहती है। इस प्रकार की योनि ऊपर सतीच्छद एवं भीतर गर्भाशय और डिम्ब नलिकाऐं पायी जाती हैं तथा मासिक धर्म भी हो सकता है। एक मामले में शिश्न मूल से कुछ ऊपर योनि थी। कुछ मामले ऐसे भी पाये गये हैं जिनमें शिश्न पूर्ण विकसित एवं छिद्रयुक्त था और भीतर पौरुषग्रन्थि के क्षेत्र में गर्भाशय-सहित योनि थी।

अधिकांश उभयलिङ्गियों के शरीर की रचना स्त्रियों के समान होती है। कमर पतली और कूल्हे चौड़े होते हैं। स्तन स्त्रियों के स्तनों की भांति बढ़ते हैं। गुप्तांग के बाल स्त्रियों के समान होते हैं। स्वर जनाना होता है और दाढ़ी-मूंछ नहीं उगते। किन्तु कुछ उभयलिंगियों की शरीर रचना इसके विपरीत अर्थात् पुरुषों के समान होती है। सिर के बाल एवं पोशाक के विषय में कोई नियम नहीं है। यदि उक्त व्यक्ति का पालन लड़कों के समान किया गया है तो ये चीजें पुरुषों के समान होंगी और यदि लड़की समझकर पालन किया गया है तो स्त्रियों के समान होंगी।

जितने उभयलिंगियों का अध्ययन किया गया है प्रायः उन सभी का पालन पोषण लड़की मान कर ही किया गया था। उनमें से अनेक के विवाह पुरुषों के साथ हो चुके थे और वे स्त्रियों का सा जीवन व्यतीत करते रहे। कुछ में युवावस्था आने पर दाढ़ी-मूछों का उगना प्रारम्भ हो गया, आवाज मर्दानी हो गयी और वे स्त्रियों के प्रति आकर्षित होने लगे। इस प्रकार के कुछ उभयलिंगियों ने स्त्रियों के साथ विवाह किये। कुछ उभयलिंगी मैथुन करने में असमर्थ रहते हैं और कुछ एक प्रकार से मैथुन कर सकते हैं। किन्तु कुछ उभयलिङ्गी दोनों प्रकार से मैथुन करने में समर्थ होते हैं। इस श्रेणी में कार्ल लौहमैन (Carl Lohman) का मामला विशेष रूप से स्मरणीय है। यह व्यक्ति ४६ वर्ष की आयु तक स्त्री के रूप में रहा और फिर उसने पुरुष के रूप में एक स्त्री से विवाह किया।

वैज्ञानिक दृष्टि से उभयलिंगी उसे ही कहेंगे जिसके शरीर में दोनों ही लिंगों की ग्रन्थियां अर्थात् वृषण-ग्रंथियां और डिम्ब-ग्रन्थियां साथ ही साथ उपस्थित हों किन्तु एक दो मामलों को (जो विवाद ग्रस्त हैं) छोड़कर अन्य सभी में केवल एक ही प्रकार की ग्रन्थियां पाई गई हैं। ग्रन्थियों की परीक्षा के बाद स्पष्ट रूप से मालूम हो जाता है कि वह व्यक्ति वस्तुतः स्त्री है अथवा पुरुष। किन्तु इसके लिए ग्रन्थि को निकालकर सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से देखना आवश्यक होता है अतएव अधिकांश मामलों में यह परीक्षा सम्भव नहीं होती। तथापि जितने भी परीक्षण किये गये हैं उन सभी में उभयलिंगित्व मिथ्या ही प्रमाणित हुआ है।

मिथ्या उभयलिङ्गी
(Pseudo-hermaphrodite)

यद्यपि उपर्युक्त उभयलिंगी भी नवीन वैज्ञानिक मतानुसार मिथ्या-उभयलिङ्गी ही माने जाते हैं तथापि मिथ्या-उभयलिंगी वस्तुतः उन स्त्री-पुरुषों को कहते हैं जिनकी बाह्य-जननेन्द्रियां उनके वास्तविक लिंग के विपरीत होती है। वास्तविक लिंग के अनुसार इनके दो भेद हैं—

(१) पुरुषवत्-स्त्री (Gynandroid)—ये वस्तुतः स्त्री हैं क्योंकि इनमें डिम्ब-ग्रन्थियां पायी जाती हैं तथापि इनकी आकृति से पुरुष होने का भ्रम होता है। इनकी भगशिश्निका बढ़ी हुई रहती हैं जिससे शिश्न का भ्रम होता है। भगोष्ठ जुड़े हुए एवं किञ्चित लटके हुए होते हैं जिससे वृषण-रहित अण्डकोष का भ्रम होता है। कुछ मामलों में इस प्रकार के अण्डकोष में स्थान भ्रष्ट डिम्ब ग्रंथियां अथवा बार्थोलिन की ग्रन्थि (बढ़ी हुई) पायी जाती हैं उससे उक्त भ्रम और भी पक्का हो जाता है। भगोष्ठों के जोड़ में एक छोटा-सा छिद्र रहता है जिसमें छोटी सी योनि रहती है। योनि के भीतर गर्भाशय रहता है। मूत्र द्वार योनि में ही खुलता है। स्तनों और दाढ़ी-मूछों के सम्बन्ध में कोई नियम नहीं है। सामान्यतः ऐसे व्यक्तियों की जननेन्द्रिय को देखने पर

पृथक् सूत्रद्वार वाले (Hypospadiac) पुरुष का ही भ्रम होता है।

(२) स्त्रीवत् पुरुष (Androgynoid)—ये वस्तुतः पुरुष हैं क्योंकि इनमें वृषण-ग्रन्थियां रहती हैं तथापि इनकी आकृति स्त्रियों के समान होती है। इनका शिश्न छोटा होता है और वृषण वंक्षणीय सुरंगा में ही रुके हुए होते हैं। वृषणहीन खाली अण्डकोष भगोष्ठ का भ्रम कराता है। कुछ मामलों में सूत्रद्वार शिश्न में से ही होता है किन्तु कुछ में शिश्न छिद्रहीन होता है और सूत्रद्वार लिंगमूल से कुछ नीचे की तरफ होता है जिससे योनि का भ्रम होता है किन्तु कुछ मामलों में यह सूत्रद्वार
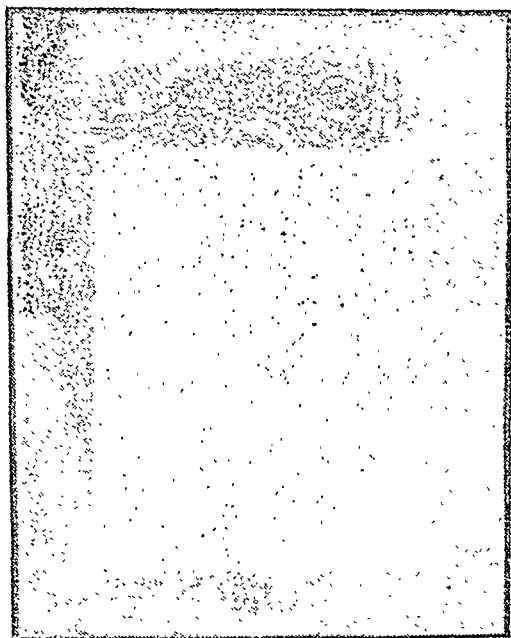
चित्र २७

२७—स्त्रीवत् पुरुष लिंग छोटा और फटा हुआ है, और मूत्र द्वार अपने सही स्थान से आरम्भ होकर नीचे दूर तक फैला हुआ है जिससे योनि का भ्रम होता है। बांये तरफ का अण्डकोष खाली होने से भगोष्ठ का भ्रम कराता है, दाहिने अण्डकोष में एक वृषण है।

इतना चौड़ा होता है कि योनि का काम दे सकता है। कुछ मामलों में शिश्न अत्यन्त छोटा एवं फटा हुआ होता है और मूत्रद्वार शिश्न में अपने सही स्थान से आरम्भ होकर नीचे काफी दूर तक योनि के समान फैला हुआ रहता है। (देखिये चित्र नं० २७) इनके भी दाढ़ी-मूछों और स्तनों के सम्बन्ध में कोई नियम नहीं है। इनमें से अनेक के स्तन स्त्रियों के समान बढ़े हुए रहते हैं। इन्हें देखने से बढ़ी हुई भगशिश्निका वाली स्त्री का भ्रम होता है।

कुछ मामलों में शिश्न मांस एवं त्वचा से ढका हुआ रहता है, वृषण वंक्षण-सुरंगा में ही रुके हुए होते हैं, खाली अण्डकोष बीच से फटा हुआ होता है और इस छिद्र में से मूत्र आता है। इस बनावट से स्त्री होने का पूरा-पूरा भ्रम होता है।

उपर्युक्त सभी उभयलिंगी वस्तुतः बनावट के बिगाड़ ही हैं। इन सभी मामलों में ऊपरी लक्षणों के आधार पर लिंग निर्णय नहीं किया जा सकता। लिंगनिर्णय के लिए ग्रन्थियों की परीक्षा नितान्त आवश्यक होती है।

यौन परिवर्त्तन—

उपर्युक्त परिवर्त्तन से यौन परिवर्त्तन का रहस्य बहुत कुछ स्पष्ट हो चुका है और अब इस शीर्षक के अन्तर्गत बहुत थोड़ी बातें बतलाने के लिए शेष हैं। वस्तुतः यौन-परिवर्त्तन जैसी कोई क्रिया नहीं होती तथापि इस आशय के समाचार पत्रों में अक्सर छपा करते हैं और लोग उन्हें पढ़कर चकित होते हैं।

वस्तुस्थिति यह है कि मिथ्या उभयलिंगियों का वास्तविक लिंग समझने में अक्सर भूल होती है। जननेन्द्रियों की बनावट के आधार पर किया गया लिंगनिर्णय इन मामलों में अक्सर गलत होता है। होता यह है कि बालक वास्तव में लड़का होता है किन्तु उसका पालन भ्रमवश लड़की समझ कर किया जाता है। इसी प्रकार कोई बालक लड़की होता है किन्तु भ्रमवश उसका पालन लड़का समझ कर किया जाता है। इस प्रकार के

कुछ मामलों में यह भूल आजीवन चलती रहती है किन्तु कुछ मामलों में प्रकृति अथवा भाग्य इस भूल को सुधार देता है। बाल्यावस्था में अविकसित एवं विकृत दशा में पड़ी हुई वास्तविक जननेन्द्रिय युवावस्था आने पर चैतन्य हो जाती है और उसकी विकृति बहुत अंशों में दूर हो जाती है। इस प्रकार वास्तविक लिंग के लक्षण प्रकट होने पर भूल सुधार होता है और इस परिवर्त्तन को यौन-परिवर्त्तन समझ कर लोग चकित होते हैं।

इसी प्रकार के कुछ मामलों में किसी विशेष कष्ट की चिकित्सा के लिये शल्य चिकित्सा करते समय लैंगिक भूल का निराकरण होता है और चिकित्सकों को इसका श्रेय मिलता है।

इस सम्बन्ध में यह बात स्मरणीयः है कि इस तथाकथित यौन-परिवर्तन के बाद भी सम्बन्धित व्यक्ति अधिकतर पूर्ण अंशों में पूर्ण स्त्री या पूर्ण पुरुष नहीं बन पाता। हालांकि हारमोन चिकित्सा द्वारा बहुत कुछ सुधार कर लिया जाता है तथापि कुछ न कुछ विकृति शेष रह जाती है। दूसरी स्मरणीय बात यह है कि जो व्यक्ति जन्म से ही पूर्ण अंशों में स्त्री या पुरुष है उसमें यौन परिवर्तन संभव नहीं है। कुछ चिकित्सकों का मत है कि हारमोन चिकित्सा की प्रगति होने पर भविष्य में किसी का भी लिंग इच्छानुसार परिवर्तित किया जा सकेगा—यह धारणा कहां तक सत्य हो सकती है इसका निर्णय भविष्य ही करेगा।

—आचार्य श्री. दौलतराम रसशास्त्री
गोहलपुर, जबलपुर।

भारतीय नारी

भारतीय मां की कल्पना एक भीरु अन्धविश्वासों से पालित स्त्री की कभी नहीं रही। हमारी अम्बा जगदम्बा वा जगज्जननी के विशेषण से अलंकृत रही है। उसका वाहन सिंह रहा है। जगत् की पाशविक नृशंसता ही मानों सिंह रूप में प्रतीक बन गयी है उस पर अपना अधिकार कर उसे कल्याण पथ पर प्रवृत्त करने के लिए ही जगदम्बा बनी है! उसकी अष्टभुजाएं साधारण चार पुरुषों के बराबर दुर्दम्य शक्ति की परिचायिका हैं। आयुधों से युक्त सात हाथ और वरदान के लिए खाली आठवें हाथ से शोभित असुरों को अपने पाद से मर्दित करने वाली उस मां को विश्व का कौन अभिमानी श्रद्धा से मस्तक झुका कर नमस्कार नहीं करेगा।

नारी में आर्तव का स्थान

वैद्य पं० रमाकान्त झा शास्त्री

युवावस्था का उदय होने पर स्त्रियों में पाये जाने वाला विशिष्ट चिन्ह आर्तव प्रवृत्ति है जो सामान्यतया प्रतिमास एक बार होती है। पुरुषों में भी ऐसा चिन्ह शुक्रस्राव है। परन्तु उसका काल नियत नहीं है। स्त्रियों में आर्तव प्रवृत्ति के चक्र (मेन्स्ट्रुअल साइकल) के समान निम्न कक्षा के सस्तन प्राणियों (मैमल्स) में एक चक्र होता है जिसे उत्कण्ठा-चक्र (इस्ट्रस-साइकल) कहते हैं। युवावस्था के पश्चात् इन प्राणियों में स्त्री-जाति भेद से प्रतिवर्ष एक या दो ऋतुओं (ब्रिडिङ्ग सीजन, मेटिंग सीजन) में पुरुष के समागम की इच्छा व्यक्त करती है, उसे अपने पास आने देती है। (इन प्राणियों को सीजनल ब्रीडर्स कहते हैं) इस इच्छा को उत्कण्ठा या प्रमाद (सेक्सुअल एक्साइटमेण्ट) कहा जाता है। इस समागम काल की अवधि कुछ सप्ताह या महीने होती है। जाति भेद से यह काल दो प्रकार का होता है। कई जातियों में समागमेच्छा (उत्कण्ठा) सम्पूर्ण ऋतु पर्यन्त निरन्तर रहती है और समागम से ही शांत होती है। अन्य जातियों में प्रत्येक ऋतु में उत्कण्ठा के कई चक्र होते हैं। यह सुविदित है कि मानव जाति में इस प्रकार उत्कण्ठा तथा तज्जन्य समागम की नियत ऋतु नहीं, तथापि गणना से विदित हुआ है कि प्रजोत्पादन क्षमता (फर्टीलिटी) बसन्त ऋतु में अधिक होती है। निम्न वर्ग के सस्तनों में देखे जाने वाले इस उत्कण्ठा-चक्र तथा स्त्रियों के आर्तव प्रवृत्ति के चक्र में साम्य यह है कि दोनों का मूल अन्तः फलों में होने वाले परिवर्तन हैं।

स्त्रियों में इस काल में रजोदर्शन के अतिरिक्त जननावयवों की पुष्टि होती है तथा युवावस्था के अभिव्यञ्जक अन्य चिन्ह (बाह्य लिङ्ग द्योतक चिह्न) उदित होते हैं यथा-गर्भाशय, योनि (अपत्यपथ) तथा स्तनों की पुष्टि होने लगती है। यदि युवावस्था के पूर्व स्त्री जाति में से अन्तःफल निकाल दिये जांय (इस शस्त्र कर्म को ओवरेक्टॉमी कहते हैं) तो ये अवयव बढ़ने से रुक जाते हैं। यदि युवावस्था के पश्चात् शस्त्रकर्म किया जाये तो ये अवयव क्षीण हो जाते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि अन्तःफल निकाल देने से स्त्री सदा के लिए वन्ध्या हो जाती है।

स्त्रियों की युवावस्था के अन्य चिन्ह ये हैं— भग-प्रदेश तथा कक्षा (बगल) में रोमोद्गम, कन्या के शारीरिक रूप में प्रौढ़ता। युवावस्था की वय साधारणतः १३-१५ होती है। यों यह अवस्था १०-१८ वर्ष के मध्य कभी भी प्राप्त हो सकती है। रजोदर्शन के पश्चात् आर्तव प्रवृत्ति अनियमित होती है—कुछ मास नहीं भी होती है। पश्चात् सामान्यतः नियमित हो जाती है।

युवावस्था का सबसे महत्वपूर्ण चिन्ह है शरीर की पुष्टि होना, शारीरिक पुष्टि यदि समय से पूर्व ही हो जाय तो रजोदर्शन भी समय से पूर्व ही हो जाता है। यदि शारीरिक पुष्टि कुछ देर से हुई तो रजोदर्शन भी देर से होता है। रजोदर्शन वाले वर्ष में शरीर की वृद्धि अधिकतम होती है। सम्भव है रजोदर्शन और शरीर की पुष्टि में इस सम्बन्ध का कारण पोषणिका के दोनों अन्तःस्रावों—अन्तःफल का प्रवर्तक तथा पुष्टिकाप्रवर्तक में कुछ सम्बन्ध हो।

आमावस्था में प्रत्येक स्त्री बीज छोटे-छोटे अन्य कोषों से अभिव्याप्त होता है। इन कोषों के इस आवरण या कवच को बीजपुट (फोलीकल) कहते हैं। रजोदर्शन के पूर्व एवं इसके पश्चात् जीवन में होने वाली प्रत्येक आर्तव प्रवृत्ति के पूर्व कुछ बीज-

पुट विकसित (पुष्ट-परिपक्व) होने लगते हैं। इनमें पूर्ण परिपक्व एक ही होता है, शेष क्षीण हो जाते हैं। परिपक्व हुए बीज पुट के मध्य में कुछ अवकाश हो जाता है। इस अवकाश (खाली स्थान) में कुछ द्रव रहता है। इस अवस्था में यह अन्तःपूल के बाहर उभर जाता है। विकास प्रारम्भ होने के दस दिन पीछे बीजपुट या कवच फटता है और स्त्रीबीज इसमें से बाहर छटक जाता है। इस प्रक्रिया को बीजोत्सर्ग (ओव्युलेशन) कहते हैं। बीजोत्सर्ग के पश्चात् शेष कवच (बीजपुट) में कुछ परिवर्तन होकर एक घन पीतवर्ण (कार्पस-ल्युटियस) कोषपुञ्ज बनता है। इसे बीजपुट वृद्धि क्रिया कहते हैं।

३०-४० वर्ष की आयु से रजोनिवृत्ति होने लगती है और ५० वर्ष की आयु तक तो एक दम रजोनिवृत्ति हो जाती है। इसका कारण वार्धक्यवश अन्तःफलों के क्षीण होने से उनके अन्तःस्रावों का क्षरण मन्द होना है। इस मन्दता के कारण अवसादक प्रभाव न रह जाने से पोषणिका के अग्रिम खण्ड के बीज ग्रन्थि प्रवर्तक अन्तःस्रावों का प्रमाण बढ़ जाना है। रजोनिवृत्ति के समय यह स्थिति विशेषतः होने पर कभी-कभी कई विकार होते हैं जिनका उपचार अन्तःफल के अन्तःस्राव देकर किया जाता है। इनमें स्टिल्वेस्ट्राल मुख्य है। कार्यों का साम्य देखने से पोषणिका के अग्रखण्ड के स्त्रीबीज ग्रंथि प्रवर्तक स्रावों को आर्तवाग्नि कह सकते हैं।

आर्तव का सामान्य परिचय—

रसादेव रजः स्त्रीणां मासि-मासि त्र्यहं स्रवेत्।
तद् वर्षाद् द्वादशादूर्ध्वं यातिपञ्चाशतः क्षयम्॥

—सु. सू. १४-४६

तद्वर्षाद् द्वादशात्काले वर्तमानमसृक्पुनः।
जरापक्व शरीराणां याति पञ्चा शतः क्षयम्॥

—सु. शा. ३-११

अर्थात्—बारहवें वर्ष के पश्चात् स्त्रियों के योनि मार्ग से प्रतिमास रक्त का स्राव हुआ करता है जिसे आर्तव, पुष्प या रज कहते हैं। इसकी उत्पत्ति भी रस से ही होती है (रसादेव स्त्रिया रक्तं रजः संज्ञं प्रवर्तते)। प्रत्येक आर्तव कोई तीन दिन रहता है। पचास वर्ष की आयु के आस-पास शरीर जरावस्था से पक्व होने के कारण आर्तव आना बन्द हो जाता है। इसके लिए रजोनिवृत्ति (मेनोपाज) शब्द प्रसिद्ध है।

रक्त आने की इस प्रक्रिया का भाषा में "मासिक-धर्म" नाम है। प्रथम मासिक धर्म (रजोदर्शन) की सुश्रुतोक्त आयु मध्यम (औसतन) है। यह आगे पीछे भी हो सकता है। शीत प्रधान देशों की तुलना में उष्ण प्रधान देशों में रजोदर्शन जल्दी होता है। तीक्ष्णोष्ण आहार सेवियों में, सिनेमा, उपन्यास वाचन आदि के नगर सुलभ वातावरण में रजोदर्शन शीघ्र होता है। कृश और अल्प-रक्त कन्याओं में यह स्वभावतः देर से होता है। आर्तवकाल में स्त्री को "रजस्वला" कहा जाता है। आर्तव दर्शन के दिन से प्रारम्भ करके सोलह दिन अथवा आर्तवानन्तर स्नान के पश्चात् बारह दिन का काल गर्भधारण के लिए अनुकूल होने से ऋतु कहलाता है। इस काल में स्त्री को ऋतुमती कहते हैं। इस काल में स्त्री में पुरुष समागम की इच्छा अधिक होती है। ऋतुमती के लक्षणों में आचार्यों ने इस प्रत्यक्ष का उल्लेख किया है। जैसे क्षुधा का उदय भोजन का तथा तृषा का उदय जल-पान का सर्वोत्तम काल है वैसे ही जिस काल में समागम की इच्छा हो वह गर्भधारण का सर्वोत्तम काल होता है। आधुनिकों ने भी ऋतुकाल और समागमेच्छा के इस सम्बन्ध का दिग्दर्शन किया है। देखिये—

Desire, it has been said, does not remain on a level, but waxes and waves. These fluctuations in the strength of sexuality are more obvious amongst women than amongst men, just as it is during "Oestrus" or heat, that the female animal allows the approach of the male, so in a woman the period of maxi-

mum desire generally falls somewhere about the time of menstruation. Dr. Katherine Davis in her Study of the sex life of over 2000 women, found that the period of maximum desire was always noted within a period beginning from two days before and ending a week after menstruation. (Vide--The physiology of Sex- By Kenneth walker P. 64.)

आर्तव प्रवृत्ति का कारण—

मासेन रसः शुक्रं स्त्रीणां चार्तवं भवति।
सु. सू. १४-१४।

सूक्ष्मकेशप्रतीकाशा बीजरक्तवहाः सिराः।
गर्भाशयं पूरयन्ति मासात् बीजाय जायते॥

मासेनार्तवस्य भवनमुपचयोऽभिप्रेतः प्रकाशश्च। यस्मादार्तवस्य रक्तवत् सप्ताहेनैवोत्पत्तिरिति।
—डल्हण

ते द्वे धमन्यौ रक्तमभिवहतो विसृजतश्च नारीणामार्तव संज्ञम्। सु. शा. ६-७

आर्तववहे (स्रोतसी) द्वे तयोर्मूलं गर्भाशय आर्तव वाहिन्यश्च धमन्यः। —च. शा. ६-१२

मासेनोपचितं काले धमनीभ्यां तदार्तवम्।
ईषत्कृष्णं विगन्धं च वायुर्योनिमुखं नयेत्॥
सु. शा. ३-१०

नियतं दिवसेऽतीते संकुचत्यम्बुजं यथा।
ऋतौ व्यतीते नार्यास्तु योनिः संवृयते तथा॥
सु. शा. ३-१०

मासिक रक्त सर्वदेहाश्रित रक्त से भिन्न है। परन्तु उसकी पुष्टि और आविर्भाव एक मास में होता है। केश (बाल) के सदृश सूक्ष्म सिराऐं (केशिकायें) इस रक्त से परिपूर्ण होकर गर्भाशय (गर्भाशय की कला) को पुष्ट करती हैं। इन केशिकाओं का पूरण दो धमनियों द्वारा आये हुए रक्त से होता है। इस रक्त से पुष्ट हुआ गर्भाशय बीज-पुंबीजः के ग्रहण के लिए तैयार होता है। वायु के प्रभाव से यह कुछ कृष्ण और विकृत गन्धवाला रक्त योनि द्वार पर आकर निकल जाता है। (इस अवसर पर गर्भस्थिति न हो तो) गर्भाशय (कला) पुनः संकुचित हो जाता है। रक्त का वहन और उत्सर्ग करने वाले स्रोत दो हैं (उपरोक्त सु. शा. ६-७ तथा सु. शा. ३-१० में कही हुई दो आर्तववह धमनियां नवीनों की "यूटराइन आर्टरीज" हैं। ये गर्भाशय को रक्त पहुँचाती हैं जिससे आर्तव उत्पन्न होता है।) इनका एक मूल गर्भाशय में होता है और दूसरा आर्तव का वहन करने वाली धमनियों में। (इसका विशेष विवरण देखने के लिए घाणेकर की सुश्रुत-टीका देखनी चाहिए। घाणेकर जी ने सप्रमाण लिखा है कि प्राचीन मत से आर्तव दो प्रकार के हैं। इसमें योनि मार्ग से स्रुत होने वाला आर्तव तो गर्भ स्थिति में भाग नहीं लेता। शेष, जिसे अन्तः पुष्प कहा है वह नवीनों का स्त्री बीज—द्वितीय आर्तव है। इसका वहन करने वाले दो आर्तव वह स्रोत आधुनिकों की बीज वाहिनियां (फैलोपियन ट्यूब) होनी चाहिए।)

स्त्री शुक्र—

योषितोऽपि स्रवन्त्येव शुक्रं पुंसां समागमे।
तन्न गर्भस्य किञ्चितु करोतीति न चिन्त्यते॥
—अष्टांग संग्रह

समागम काल में स्त्रियों के भी शुक्रस्राव होता है परन्तु उसका गर्भ से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। स्त्रियों के योनि द्वार में अन्दर के भाग में दोनों ओर दो-दो ग्रंथियां होती हैं। इनका नाम "योनि द्वारिक ग्रन्थि" (ग्लैण्डस आफ बर्थोलिन) है। इन्हीं का पिच्छिल स्राव आचार्यों के मत में स्त्री शुक्र है।

भारतीय जनता के समान पाश्चात्य जनता में भी यह मत प्रचलित है कि स्त्रियों में भी पुरुषों के शुक्रस्राव के समान एक वेगवान स्राव होता है जो उनमें तृप्ति का सूचक है। पाश्चात्य काम शास्त्री भी इस विषय का वैज्ञानिक विवरण प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। प्रख्यात डच काम शास्त्री "वानड वेल्ड" ने अपने "आयडियल मैरेज-पृ. १९५-१९६"

में इस विषय का विचार करते हुए कहा है कि "समागम के समय योनि द्वार से प्रबल वेग से होने वाला स्राव योनि द्वारिक स्राव ही हो सकता है। इसका प्रयोजन समागम के समय योनि को स्निग्ध बनाना है। यह स्राव समागम के पूर्व होता है। परन्तु प्रसिद्धि जो है वह यह है कि स्त्रियों में स्राव तृप्ति के अनन्तर होता है। जब कि इन ग्रन्थियों का स्राव तो समागम के पूर्व होता है। इसका समाधान करते हुए "वानड वेल्ड" कहते हैं कि कभी सम्भव है कि समागम काल में यह स्राव वाहिनियों में संचित रह जाय और हर्ष की परमसीमा के समय श्रोणि की पेशियों और पीछे की ओर योनि की दीवारों के संकोच के कारण उत्पन्न दबाव से यह संचित स्राव अति वेग से फूट पड़े। अन्त में लेखक ने बाह्य जननावयवों से होने वाले श्लेष्म-स्राव के प्रति भी संकेत किया है।

आर्तव के कार्य—

रक्तलक्षणमार्तवं गर्भकृच्च। —सु सू. १५-५

प्राकृत आर्तव जीव रक्त के समान ही गुण-धर्म रखता है। उसका विशेष कार्य गर्भोत्पत्ति करना है। ध्यान रहे मासिक में निःस्रुत आर्तव का गर्भ से कोई सम्बन्ध नहीं। गर्भस्थिति के अनन्तर काल का अनिःसृत आर्तव ही गर्भ कर्त्ता है। सु. शा. २-३६ की टीका में डल्हण ने स्पष्ट यह बात लिखी है।

"ननु पुराण आर्तवमुपचयाद् दिनत्रयं स्रुत्वा स्वयमेव विनिवृत्तं, नूतनं स्वल्पं स्त्यानीभूतमिव प्रवर्तितुमक्षमं, तत्कथमार्तवसंचारो येन तत्संसृष्टं शुक्रं गर्भजनन समर्थं भवतीत्याशंक्याह—घृतेत्यादि। पुंसां समागमे इन्द्रियद्वयसंघर्ष जन्येनोष्मणा विलीनमार्तवं विसर्पति। तच्च विसर्पितं शुक्रोपगतं गर्भाशयमनुप्राप्तं जीवोपगतं गर्भसम्भवहेतुर्भवति।"

शुद्ध आर्तव—

मासान्निष्पिच्छदाहार्त्ति पञ्चरात्रानुबन्धि च।
नैवातिबहु नात्यल्पमार्तवं शुद्धमादिशेत्॥
गुञ्जाफल सवर्णं च पद्मालक्तक सन्निभम्।
इन्द्रगोपकसंकाशमार्तवं शुद्धमादिशेत्॥
च. चि. ३०। २२५-२२६

शशासृक् प्रतिमं यत्तु यद्वा लाक्षारसोपमम्।
तदार्तवं प्रशंसन्ति यद्वासो न विरञ्जयेत्॥
सु. शा. २। १७

जो आर्तव मास में एक बार आये, जिसमें पिच्छ (श्लेष्मकला के आभ्यन्तर स्तर के खण्ड-छिछड़े) न हों, जिसके समकाल (क्रमशः पित्त तथा वात की पुष्टि के द्योतक) दाह या वेदना न हों, गुञ्जाफल, रक्तकमल के तुल्य हो, वस्त्र पर लगने पर जिसके दाग सरलता से धोये जा सकें तथा जो पांच अहो रात्रि रहे वही आर्तव प्रशस्त अर्थात् अच्छे स्वास्थ्य का द्योतक है। शुद्ध आर्तव की रक्तिमा में भी शुद्ध भेद विविध उपमाओं द्वारा शास्त्रकार ने प्रदर्शित किये हैं। यथा—

मासेनोपचितं काले धमनीभ्यां तदार्तवम्।
ईषत्कृष्णं विगंधं च वायुर्योनि मुखं नयेत्॥
सु. शा. ३। १०

यहां आर्तव का वर्ण कुछ काला कहा है। अस्तु, यह रक्त प्रतिमास कोई २२॥ तोला निकलता है। इस प्रमाण में विशेष न्यूनाधिक्य दोष का लक्षण है। इसी प्रकार मास के पूर्व जाना किंवा मास के पश्चात् आना भी दोष सूचक है। ऋतुकाल में वेदना वात की तथा दाह पित्त की विक्रिया को सूचित करता है। आर्तव में स्वभावतः क्षत हुई कला के खण्ड तथा कला की श्लेष्मग्रन्थियों के स्राव मिश्रित होते हैं। मासिक तीन-चार दिन से अधिक रहना भी विकार सूचक है।

आर्तव का क्षय—

आर्तवक्षये यथोचितकालादर्शनमल्पता वा योनिवेदना च; तत्र संशोधनमाग्नेयानाञ्च द्रव्याणां विधिवदुपयोगः॥ सु. सू. १५।१२

आर्तव का क्षय होने से नियतकाल में अदर्शन अथवा अल्पप्रमाण में दर्शन और योनि में वेदना

ये लक्षण होते हैं।

आर्तव की वृद्धि—

आर्तवं (अतिवृद्धं) अङ्गमर्दमतिप्रवृत्तिं दौर्गन्ध्यं च (आपादयति)। च. सू. १५-१६

अतिप्रवृद्ध आर्तव रक्तप्रदर रोग उत्पन्न करता है। वात अर्थात् नाड़ियों तथा जठरस्थ दूषित वायु पर दबाव डालकर अङ्गमर्द उत्पन्न करता है। पित्त तुल्य होने से विदग्ध होने पर (सड़ने के कारण) इसमें दुर्गन्ध होता है। यह दौर्बल्य-रक्त-गुल्म आदि का उत्पादक है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि स्त्रियों में आर्तव का कितना महत्वपूर्ण स्थान है। कहना न होगा कि जैसे पुरुषों के उत्तम स्वास्थ्य के लिए पुष्ट शुक्र की आवश्यकता है उसी प्रकार स्त्रियों में भी उनके उत्तम स्वास्थ्य के लिए पुष्ट आर्तव की आवश्यकता है।

विशेषांक सम्पादक के पत्रोलिखित नियमानुसार लेख का कलेवर विस्तृत न हो जाय अतः संक्षेप में ही विवेचन कर इस लेख को समाप्त करता हूँ।

इस लेख में "आयुर्वेदीय क्रियाशारीर" की विशेष सहायता ली गई है। अतः इसके लेखक वैद्य रणजितराय के प्रति सादर आभार प्रकट करता हूं।

—वैद्य पं० सभाकान्त झा शास्त्री,
कलकत्ता।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियां

आयुर्वेदाचार्य कविराज महेन्द्रनाथ पाण्डेय

शरीर शास्त्र का अध्ययन जितना बढ़ता जा रहा है उतनी ही अधिक बारीक बातों का पता लगता जा रहा है। यह नया आविष्कार है कि हमारे शरीर में कुछ अन्तःस्रावी ग्रन्थियां हैं जिनका प्रभाव हमारे शरीर पर बड़ा प्रभाव पूर्ण पड़ता है। इस तरह की ग्रन्थियों का वर्णन हमें आयुर्वेद में नहीं मिलता। कुछ ग्रन्थियों का ज्ञान हमारे पूर्व ऋषियों को अवश्य था और उस पर उन्होंने खोज भी की थी पर यह अध्ययन विशेष विकसित नहीं हो सका था। आज भी हम इस अवस्था में नहीं हैं कि दृढ़तापूर्वक कह सकें कि जितना हमें इस समय शरीर क्रिया का ज्ञान है उससे अधिक कुछ जानने को नहीं है।

हमारे शरीर में कुछ ऐसी ग्रन्थियां हैं जिनसे रस स्राव होता है और वह रस नली द्वारा उस स्थान पर पहुंचाया जाता है जहां उसका उपयोग होता है। इस प्रकार की ग्रन्थि यकृत है। यकृत का रस छोटी आंत में प्रणाली या नली द्वारा पहुँचाया जाता है। ये अन्तःस्रावी ग्रन्थियां इनसे बिल्कुल भिन्न हैं। इनसे जो रस-स्राव होता है वह किसी प्रणाली या नली द्वारा कहीं भेजा नहीं जाता बल्कि रक्त की नलियां उनके भीतर से गुजरती हैं और रक्त स्वयं उन ग्रन्थियों से ही उनके रस को ग्रहण करता है। इन अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के रसों का प्रभाव दूर अंगों पर पड़ते देखा जाता है यह बड़ी विचित्रता है। कुछ ग्रन्थियां प्रणाली युक्त भी हैं और उनसे ऐसा भी रस स्राव होता है जो स्वयं रक्त ग्रहण करता है। इस लेख में अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का वर्णन किया जायगा—प्रणाली युक्त का नहीं।

हमारे शरीर में अन्तःस्रावी ग्रन्थियां हैं जैसे थाइरॉइड या कण्ठमणि, थाइमस, अड्रेनल, पीनि-

यल, पिटुइटरी ग्रन्थि। इनके अतिरिक्त पैनक्रियाज या क्लोम ग्रन्थि है। इससे पाचक रस निकलता है। यह प्रणाली युक्त ग्रन्थि है, परन्तु साथ ही यह अन्तःस्रावी ग्रन्थि भी है। इससे इन्सुलीन नामक रस का स्राव होता है जो कार्बोहाइड्रेट के प्रयोग को नियंत्रित रखता है। पुरुषों में अण्ड से शुक्र कीट बनते हैं परन्तु इससे एक प्रकार का अन्तःस्राव भी होता है जो सीधे रक्त में मिलता है। इसी प्रकार स्त्रियों में ओवरी (डिम्ब ग्रन्थि) है जिससे डिम्ब बनते हैं जो गर्भधारण के लिए आवश्यक है परन्तु उनसे एक प्रकार का अन्तःस्राव भी होता है जो नारी में नारीत्व का सृजन करता है।

सुप्रारीनल, पिटुइटरी, पीनियल, ओवरी (डिम्ब ग्रन्थि) नारी जननेन्द्रिय और नारीत्व से विशेष सम्बन्ध रखने वाली ग्रन्थियां हैं—इन्हीं के सम्बन्ध में यहां कुछ चर्चा करना अभीष्ट है।

सुप्रारीनल ग्रन्थि—इसको एड्रेनल ग्रन्थि भी कहते हैं। इसका स्थान ठीक गुर्दे से ऊपर है। यह गुर्दे से सम्बन्धित भी हैं। शरीर में गुर्दा पेट के पीछे रीढ़ की हड्डी के दोनों ओर स्थित है। यह कमर के थोड़ा ऊपर है। गुर्दे दो होते हैं। दाहिना और बांया। रीढ़ की दाहिनी ओर के गुर्दे को दाहिना गुर्दा और बाईं ओर के गुर्दे को बांया गुर्दा कहते हैं। सुप्रारीनल ग्रन्थि दोनों गुर्दों के ऊपर टोपी की तरह स्थित है और दो हैं। इन प्रत्येक से यूरेटर निकल कर वस्ति या मूत्र की थैली में जाता है। वस्ति से दूसरी नली निकलती है जो मूत्र को बाहर निकालती है। मर्दों में यह नली प्रोस्ट्रेट ग्रन्थि या पौरुष ग्रन्थि से होती हुई लिंग के छेद में आकर मिल जाती है और स्त्रियों में योनि मुख के ऊपर खुलती है। यह नली पुरुषों में स्त्रियों की नली की अपेक्षा बड़ी होती है।

सुप्रारीनल ग्रन्थि के दो भाग हैं। एक है कारटैक्स (आवरण भाग) और दूसरा मध्य भाग। दोनों भागों से दो प्रकार का रस स्राव होता है। कारटैक्स या आवरण भाग से जो रस निकलता

चित्र २८
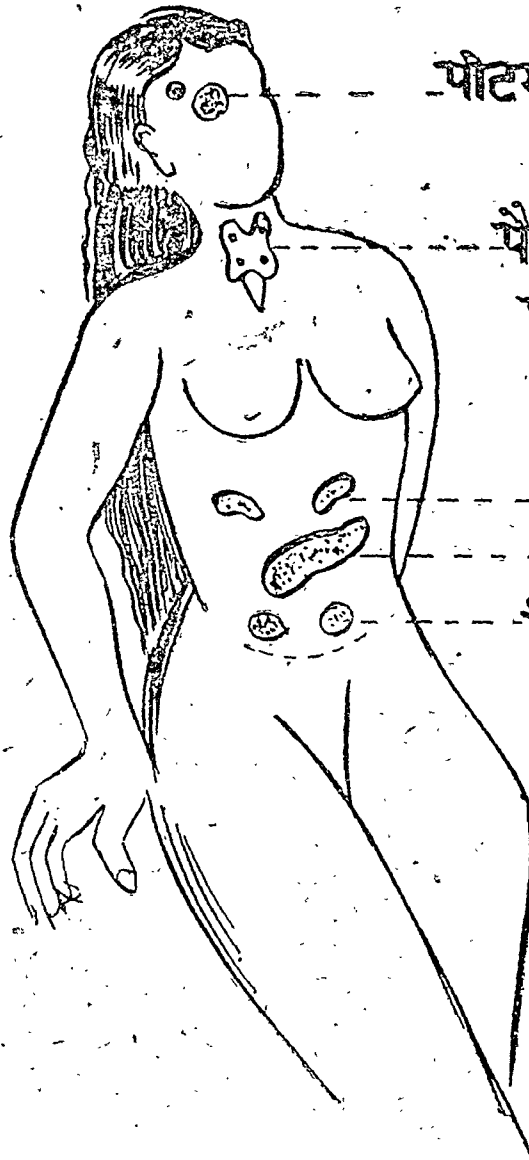
है, वह जननेन्द्रिय अंगों की वृद्धि करता है। यदि सुप्रारीनल ग्रन्थि के कारटैक्स भाग पर कोई अन्य ग्रन्थि उभड़ आवे तो मनुष्य विशेष कामुक बन जाता है। यदि स्त्री में यह ग्रन्थि उभड़ आवे तो नारी की सुलभ कोमलता नष्ट होजाती है। आवाज कड़ी हो जाती है, और दाढ़ी मूंछ के बाल भी निकल आ सकते हैं। उसकी सारी चेष्टा और साहस भी पुरुष के समान होने लगते हैं।

आयुर्वेद के सिद्धान्तों में एक स्थान पर आया है कि यदि मैथुन के समय पुरुष नीचे और स्त्री ऊपर हो और उससे गर्भ स्थिति हो जाय तो उस गर्भ से यदि कन्या पैदा हो तो उसमें पुरुष की सी चेष्टायें होगी और यदि लड़का पैदा हो तो उसमें स्त्रियों की सी चेष्टा होगी। हमें ऐसा लगता है कि विपरीत मैथुन का असर इन ग्रन्थियों के निर्माण पर पड़ता है क्योंकि बीज रूप में शरीर के सभी अंगों का निर्माण गर्भावस्था में ही हो जाता है चाहे उनका विकास और वृद्धि किसी काल में भी होती हो।

सुप्रारीनल के मध्य भाग से जो रस स्राव होता है वह रक्त चाप को बढ़ा देता है। जिस समय शरीर में क्रोध या भय का संचार होता है इस भाग का रस रक्त में आने लगता है और व्यक्ति किसी भी प्रकार के साहसिक या हिंसात्मक कार्य में संलग्न हो जाता है। इस रस के प्रभाव से अपने बचाव के लिए युद्ध रत भी हुआ जा सकता है और जान बचाकर भाग जाना भी सम्भव है। इस ग्रन्थि के रस से मास पेशियों में शक्ति आती है। यदि यह ग्रन्थि रोगाक्रान्त हो जाय तो मांस पेशियां क्षीण हो जाती हैं और ब्लडप्रेशर (रक्त चाप) भी घट जाता है। सुप्रारीनल ग्रन्थि का रस जब शरीर में पहुँचता है तब शरीर में नई शक्ति, नई स्फूर्ति आजाती है, हृदय की गति तेज हो जाती है। आंख और कान विशेष चैतन्य हो जाते हैं और उनके कार्य में फुर्ती आजाती है। शरीर की गर्मी के साथ ही सांस की गति भी बढ़ जाती है।

यहां यह याद रखने की बात है कि कारटैक्स ही नारीत्व और नारी जननेन्द्रिय से सम्बन्ध रखता है। उसी के रस का प्रभाव नारीत्व पर पड़ता है। मेडुला भाग तो स्त्री पुरुष दोनों पर समान भाव से कार्य करता है।

पिट्युइटरी ग्रन्थि —

यह ग्रन्थि मटर के आकार की है और मस्तिष्क के मूल में स्थित है। इस ग्रन्थि के दो भाग हैं अगला और पिछला। दोनों भागों से दो प्रकार के रसों का निर्माण होता है। इस ग्रन्थि के अगले भाग से जो रस स्राव होता है वह शारीरिक वृद्धि पर प्रभाव डालता है, लैंगिक विकास को नियंत्रित करता है। अन्य ग्रन्थियों के कार्य को भी यह नियंत्रित करता है। यदि यह भाग वृद्धि काल में (१४ से २५ वर्ष तक) अधिक क्रिया शील हो जाय तो शरीर की वृद्धि बहुत अधिक होजाती है। मनुष्य बहुत लम्बा, जैसे देव, हो जाता है। यदि जवान व्यक्ति में यह ग्रन्थि अधिक क्रिया शील होती है या इस भाग में रोग रूप कोई ग्रन्थि हो जाय तो चेहरे और हाथ पांव की हड्डियां विकृत रूप में बढ़ जाती हैं। यदि यह ग्रन्थि बालकपन में निष्क्रिय हो जाय या कम क्रिया शील हो, ठीक रस न निकले तो बौनापन हो जाता है और जननेन्द्रियों की वृद्धि में बाधा पड़ जाती है, उनका विकास ठीक से नहीं होता। स्त्रियों में स्तनों की वृद्धि रुक जाती है या नहीं होती। भीतरी अंगों के विकास में भी रुकावट पड़ जाती है।

पश्चाद्वर्ती भाग से जो रस निकलता है वह तन्तुओं की लोच को ठीक रखता है और सभी संकोच करने वाले अंग जैसे मूत्राशय, आंत, आमाशय, हृदय, गर्भाशय आदि की लोच को संतुलित रखने में सहायक होता है।

पीनियल ग्रन्थि—

यह ग्रन्थि पिट्युइटरी ग्रन्थि के समीप ही मस्तिष्क के मूल में एक छोटे से गह्वर

के भीतर स्थित है। यह ग्रन्थि बहुत छोटी है। यह ग्रन्थि शारीरिक वृद्धि और जननेन्द्रिय सम्बन्धी विकास से सम्बन्धित है। वयः संधि काल में इस ग्रन्थि का रस जननेन्द्रिय में पूर्णता लाता है। गुप्ताङ्गों के ऊपर इसी के प्रभाव से बाल निकल आते हैं। वयःसन्धि में जो स्वर में परिवर्तन होता है वह भी इसी ग्रन्थि के रस का प्रभाव है। उस अवस्था में विचार और बातचीत के ढंग में जो परिवर्तन दिखाई देता है उसे इस ग्रन्थि का प्रभाव समझना चाहिए। काम की जागृति और शर्मीलापन इस ग्रन्थि के प्रभाव से दृष्टिगोचर होते हैं। सन्धि काल में यह ग्रन्थि विशेष सक्रिय रहती है। अधेड़ावस्था या उसके बाद की अवस्था में यह ग्रन्थि निष्क्रिय हो जाती है क्योंकि उस काल में जननेन्द्रिय के विकास की आवश्यकता नहीं रहती।

जननेन्द्रिय ग्रन्थि—यह पुरुष और स्त्री में अलग अलग होती हैं। पुरुषों में यह ग्रन्थि अण्ड है और स्त्रियों में डिम्ब। डिम्ब को एलोपैथी में ओवरी कहते हैं। डिम्ब ग्रन्थियां दो हैं और गर्भाशय के दोनों ओर पेडू के पास वाली दीवार के समीप बीज बाहिनी (फैलोपियन ट्यूब) नली के नीचे स्थित हैं। यह ग्रन्थि ३ सेंटीमीटर लम्बी, १·५ सेंटीमीटर चौड़ी और १० मिलीमीटर मोटी है।

डिम्ब ग्रन्थि में डिम्ब या अण्डा बनता है। जब वह पूर्ण हो जाता है तब दीवाल में से टूट जाता है और वहीं पर फैलोपियन ट्यूब के अन्तिम छोर पर के किसी गुच्छे में फंस जाता है और उस ट्यूब के द्वारा गर्भाशय में पहुँचा दिया जाता है। वहां पर यदि वह गर्भित हो जाय (उसके साथ यदि पुरुष शुक्र कीट का संयोग हो जाय) तो वह गर्भाशय की दीवार में चिपक जाता है और वहीं वृद्धि करने लगता है और गर्भ का रूप धारण कर लेता है। यदि गर्भित न हो तो मासिक धर्म के साथ बाहर निकल जाता है। मासिक धर्म स्त्रियों में २८ दिन पर होता है। उसका सम्बन्ध डिम्ब निर्माण से बहुत अधिक है। गर्भाशय को शुद्ध करने के लिए ही मासिक धर्म होता है जिससे गर्भ धारण की शक्ति आजाय। डिम्ब निर्माण और मासिक धर्म दोनों ही वयःसन्धि काल से आरम्भ होते हैं और मासिक धर्म बन्द होने के काल में (४७ वर्ष से ५० वर्ष की अवस्था तक में) दोनों बन्द होजाते हैं। जिस दिन मासिक धर्म का आरम्भ होता है उसके १६ दिन तक में डिम्ब का निर्माण और गर्भाशय में प्रवेश हो जाता है। उसके बाद डिम्ब निर्माण नहीं होता ऐसा आयुर्वेद का मत है और कुछ वैज्ञानिक भी इसे ठीक मानते हैं। कुछ डाक्टरों की राय है कि कुछ स्त्रियों में १६ दिन के बाद भी डिम्ब निर्माण होता है परन्तु यह कोई नियम नहीं अपवाद है।

डिम्ब ग्रन्थि या ओवरी से डिम्ब निर्माण के अलावा एक प्रकार का रस और निःसृत होता है और वह रस सीधे रक्त में मिलता है। उस रस को डिम्ब ग्रन्थि का रस या ओवरियन हारमोन कहते हैं। यह रस जननेन्द्रिय के विकास और कार्य पर प्रभाव डालता है। यह रस अन्य प्रणाली बिहीन ग्रंथियों के रस के साथ मिल कर भी कार्य करता है और शरीर के विकास को नियन्त्रित रखता है। जननेन्द्रिय के विकास की दो अवस्थायें होती हैं प्राथमिक और द्वितीय। प्राथमिक विशेषता में जननेन्द्रिय सम्बन्धी अङ्ग स्वयं विकसित होते हैं जैसे गर्भाशय का विकास, योनि पथ का विकास या स्वयं डिम्ब ग्रन्थि का विकास है। द्वितीय अवस्था वह है जिससे युवावस्था का बोध होने लगता है और यह अवस्था प्रथमावस्था के पूर्ण होने पर आरम्भ होती है जैसे स्तन का पूर्ण विकास, जंघाओं और नितम्ब पर स्थूलता आना, गुप्तांग के ऊपर बाल निकलना आदि। डिम्ब ग्रंथि का रस शरीर की इस द्वितीय अवस्था को भी नियन्त्रित रखता है।

डिम्ब जब डिम्ब ग्रंथि से छूट कर अलग हो

जाता है तब उसकी जड़ में एक निशान बन जाता है जहां वह पहले चिपका हुआ था। उस निशान के तन्तुओं से एक प्रकार का रस निकलता है और गर्भ काल में स्तन के विकास और दूध के निर्माण कार्य में सहायक होता है। ५० वर्ष की अवस्था के लगभग जब डिम्ब ग्रन्थि डिम्ब निर्माण का कार्य करना बन्द करती है तब आन्तरिक रस स्राव भी बन्द हो जाता है और यही कारण है कि मासिक धर्म का भी अन्त हो जाता है।

यदि किसी कारण से डिम्ब ग्रन्थि रोग ग्रस्त हो जाय अथवा काटकर उसे निकाल दिया जाय तो नारी में पुरुष के चिन्ह प्रगट होने लगते हैं, और नारी सुलभ लक्षणों का लोप होने लगता है। मूंछ और दाढ़ी के बाल निकलने लगते हैं। नारी सुलभ स्वर की मिठास कर्कशता में बदल जाती है। लज्जा, नम्रता आदि नारी सुलभ गुण पुरुषत्व साहस आदि में बदलने लगते हैं। स्तनों का विकास नहीं होता, स्तन छोटे होकर पुरुष की भांति सपाट हो जाते हैं। ये लक्षण ऐसे हैं जिनके आधार पर यह धारणा दृढ़ हो जाती है कि डिम्ब ग्रन्थि का रस नारी अङ्गों और नारीत्व के विकास में विशेप प्रभाव रखता है और एक विशेष अंग है जिस पर नारीत्व आश्रित है। नारी अंगों के विकास में जो अन्य ग्रंथियों का कार्य है वह इस ग्रंथि के सहायक रूप में है।

—आयुर्वेदाचार्य कविराज महेन्द्र नाथ पाण्डेय

महेन्द्र रसायनशाला, ममफोर्ड गंज,

इलाहाबाद—२
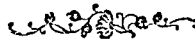
मासिक धर्म पर नलिका हीन ग्रन्थियों के स्रावों (Hormones) का प्रभाव

डा० सतीश चन्द्र गुप्ता M. B. B. S.
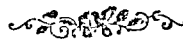
यह सर्व विदित है कि मासिक धर्म पर नलिका-हीन ग्रन्थियों के स्रावों का बहुत प्रभाव पड़ता है। इन्हीं प्रभावों के आधार पर मासिक धर्म के नाना प्रकार के रोगों की चिकित्सा होती है। इन स्रावों के प्रभावों को समझने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम यह जानें कि मासिक धर्म क्या होता है तथा उसमें कहां-कहां पर क्या-क्या परिवर्तन होते हैं।

मासिक धर्म वास्तव में बीज ग्रन्थि की क्रिया का ही एक बाह्य लक्षण है। बीज ग्रन्थियों में परिवर्तन होने से ही मासिक धर्म होता है। क्योंकि यह गर्भाशय की क्रिया से सम्बन्ध नहीं रखता अतः गर्भाशय के किसी रोग का मासिक धर्म की नियमितता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। गर्भित बीज (fertilised ovum) के गर्भाशय में बढ़ने के लिए ही श्लैष्मिकावृत्ति (endometrium) में परिवर्तन होते हैं और बीज का गर्भाधान न होने पर सारी अवनगाढ़ (superficial) श्लैष्मि-कावृत्ति गर्भाशय के बाहर निकल जाती है जिससे मासिक स्राव होता है।

स्वस्थ स्त्रियों में मासिक धर्म लगभग १४ वर्ष की अवस्था में प्रारम्भ होकर प्रति २८ दिन के अन्तर पर लगभग ४५ वर्ष की आयु तक गर्भावस्था एवं स्तनपान के समय को छोड़ कर होता है। यह २८ दिन का समय एक मासिक स्राव के प्रथम दिवस से दूसरे मासिक स्राव के प्रथम दिवस तक गिना जाता है। मासिक स्राव सामान्यत: तीन से पांच दिन तक होता है।

यह २८ दिन का समय किस प्रकार नियंत्रित होता है भली-भांति ज्ञात नहीं है फिर भी इतना अवश्य ज्ञात है कि इसमें बीज ग्रंथियां एक महत्त्वपूर्ण भाग लेती हैं तथा बीज ग्रंथियों का नियन्त्रण पीयूष ग्रन्थि के पूर्व खण्ड (Anterior pituitary) द्वारा होता है। इन सभी प्रभावों पर विचार करने से पूर्व हमें यह देखना चाहिए कि इन २८ दिन में बीज ग्रंथियों तथा गर्भाशय में क्या-क्या परिवर्तन होते हैं तब हम ठीक प्रकार से जान सकेंगे कि नलिकाहीन ग्रन्थियों के स्रावों का प्रभाव किन-किन स्थानों पर तथा क्या होता है। प्रथम हम बीज ग्रन्थियों को लेते हैं।

बीज ग्रन्थियों को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—

१. अन्दर की ओर का भाग जिसे सुषुम्ना (medulla) कहते हैं।

२. बाहर की ओर का भाग जिसे शीर्ष भाग (cortex) कहते हैं।
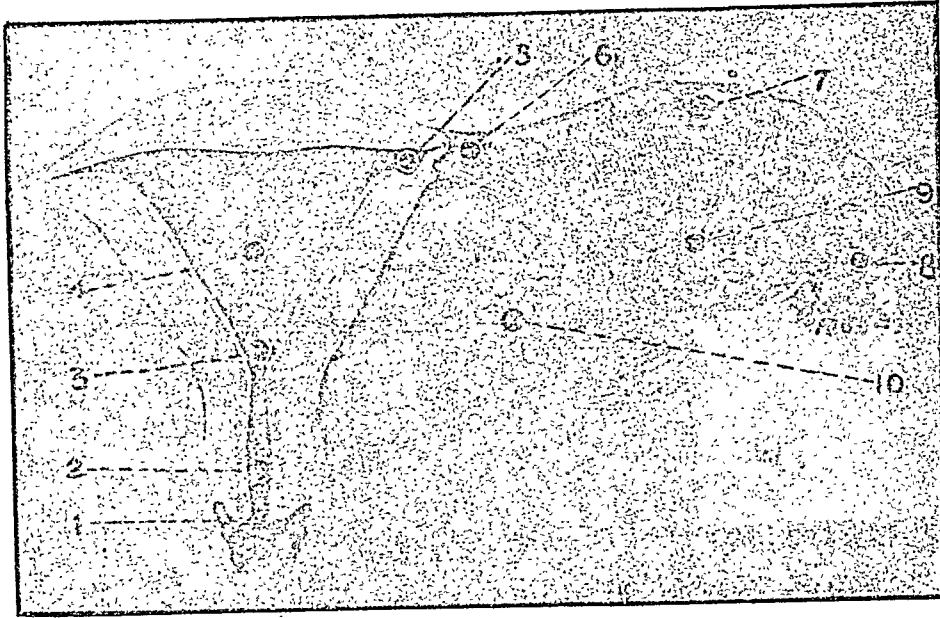
(चित्र नं० २६)

१—गर्भाशय—वहिंमुख (*External os*)
२—गर्भाशय ग्रीवा (*Cervix*)
३—ग्रीवांतर मुख (*Internal os*)
४—गर्भाशय गात्र (*Body of the Uterus*)
५—गर्भाशय में डिम्ब-प्रणालियों (*Fallopian tubes*) के मिलने का स्थान।
६–७–८—डिम्ब-प्रणाली (*Fallopian tube*)
९—डिम्ब-ग्रन्थि (*Ovary*)
१०—चौड़ा पार्श्व बन्धन (*Broad ligament*)

शीर्ष भाग में कई बीज पुटक (Graffion follicles) होते हैं। बीज पुटक के सबसे अन्दर के स्तर को कणमय स्तर (granulosa cell layer) कहते हैं जिसके अग्रभाग में बीज (ovum) रहता है। कणमय स्तर एक गुहा (Cavity) को आवृत करता है। इस स्तर के बाहर की ओर छोटे-छोटे कोषों का एक और स्तर होता है जिसको बीज पुटक के कोष का द्वितीय आवरण (Theca interna) कहते हैं। तीसरा स्तर जो कि उक्त द्वितीय आवरण से बाहर होता है बीज

पुटक के कोष का बाह्यावरण कहलाता है।

प्रत्येक मास में एक बीज पुटक पकता है और इसके कोष के द्वितीय आवरण से एक आंतरिक स्राव स्रवित होता है जिसे ऋतु संजनन रस (oestrin) कहते हैं। (F. S. H. के प्रभाव से)
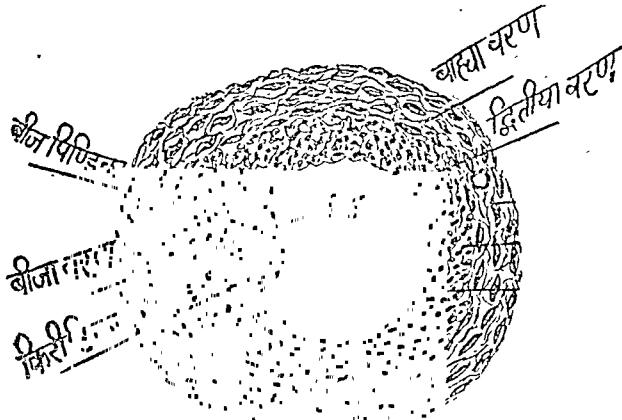
बीज सहित मानवीय बीज पुटक

चित्र नं० ३०

पका हुआ बीज पुटक दूसरे आने वाले मासिक स्राव के १४ दिन पूर्व गुहा (cavity) में दबाव की वृद्धि के कारण फूट जाता है। इस प्रकार मासिक स्राव के १४ दिन पूर्व एक परिपक्व बीज एक ओर की बीज ग्रन्थि से निकलता है। (L. H. के प्रभाव से)

फूटे हुए बीज पुटक में कणमय कोषों की वृद्धि होती है और इसका रंग कुछ पीला पड़ जाता है और इस प्रकार फूटा हुआ बीज पुटक एक पीत पिण्ड (cropus luteum) में बदल जाता है। (L. H. के प्रभाव से) पीत पिण्ड से एक आन्तरिक स्राव निकलता है जिसे क्षेत्र संजनन रस (progestrin) कहते हैं। (leutiotrophin के प्रभाव से) इस क्षेत्र संजनन रस के साथ साथ कुछ मात्रा में ऋतु संजनन रस भी पीत पिण्ड से स्रवित होता है।

परिपक्व बीज को बीज ग्रंथि से गर्भाशय तक पहुंचने में लगभग ८ दिन लग जाते हैं। यदि इन ८ दिन के अन्दर बीज का गर्भाधान नहीं हो जाता तो पीतपिण्ड का अपजनन (degeneration) होने लगता है और श्लैष्मिकावृत्ति बाहर निकल जाती है। (क्षेत्र संजनन एवं ऋतु संजनन रस की अनुपस्थिति के कारण)

उपरोक्त क्रिया तो बीज ग्रन्थि में होती है। इसी के साथ-साथ गर्भाशय में भी ऋतु संजनन रस एवं क्षेत्र संजनन रस के प्रभाव से परिवर्तन होते हैं जिसके कारण श्लैष्मिका वृत्ति बनती और निकलती है। श्लैष्मिकावृत्ति के परिवर्तनों को ४ निम्न कालों में विभक्त कर सकते हैं। प्रत्येक अवस्था पर स्रावों का भिन्न भिन्न प्रभाव होता है।

१—विश्रान्ति काल (proliferative stage)—यह रजःस्राव काल (secretory stage) से लेकर लगभग १४ दिन तक (बीजागम के समय तक) होता है। इस काल में श्लैष्मिकावृत्ति की मोटाई बढ़ जाती है तथा रक्त प्रवाह भी बढ़ जाता है। धमनियां चक्रवत् हो जाती हैं। यह सभी परिवर्तन ऋतु संजनन रस के प्रभाव से होते हैं।

—लेखक—
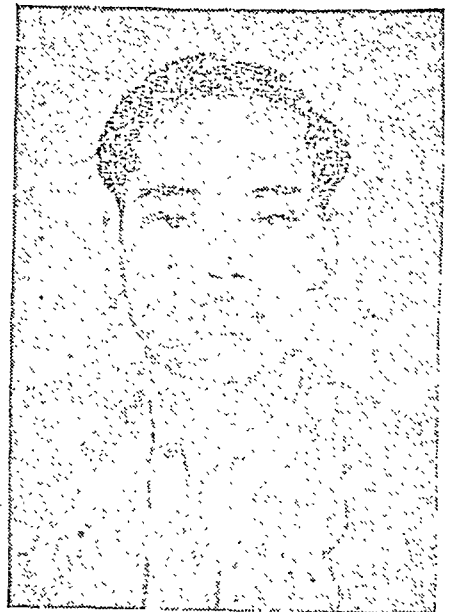
२—संचयकाल—विश्रान्ति काल से लेकर मासिक स्राव तक संचयकाल होता है। यह क्षेत्र संजनन रस के प्रभाव से होता है। इस समय ऋतु संजनन रस के कारण कोषों की वृद्धि भी होती है।

३—रजःस्राव काल—संचय काल से लेकर रक्त स्राव के दूसरे दिन तक माना जाता है यद्यपि मासिक स्राव ५ दिन तक होता है। यह स्राव चक्रवत् (coiled) धमनियों के संकुचित होने के कारण श्लैष्मिकावृत्ति में रक्ताभाव (ischaemia) और फिर कोथ (necrosis) होने के कारण होता है। यह प्रभाव ऋतु संजनन रस एवं क्षेत्र संजनन रस के समाप्त हो जाने कारण होता है।

४-स्रावोत्तर काल (Regeneration stage)—मासिक स्राव के स्रावकाल के बाद तीसरे दिन से श्लैष्मिकावृत्ति फिर बनना प्रारम्भ हो जाती है।

ऊपर बीज ग्रन्थियों एवं गर्भाशय में २८ दिन में हुए परिवर्तन संक्षेप दिये गये हैं। इन परिवर्तनों पर नलिकाहीन ग्रंथियों के स्रावों का निम्न प्रभाव होता है।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि मासिक धर्म बीज ग्रंथियों के परिवर्तनों तथा उसके आन्तरिक स्रावों से प्रभावित होता है परन्तु बीज ग्रन्थियों के परिवर्तन पीयूष ग्रंथि (pituitary gland) के पूर्व खण्ड द्वारा नियन्त्रित होते हैं अतः हम पीयूष ग्रन्थि तथा बीज ग्रन्थियों से सम्बन्धित अन्तः स्रावों का वर्णन पृथक्-पृथक् करेंगे।

पीयूष ग्रन्थि के पूर्व खंड से निम्न लिखित तीन अन्तःस्राव स्रवित होते हैं जो कि बीज ग्रंथियों पर प्रभाव डालते हैं। इन अन्तः स्रावों को बीज गर्भानुगुण रस (Gonado-trophic hormones) कहते हैं—

१. पुटकोत्तेजक रस (Follicle stimulating hormone या F. S. H.)
२. पीत पिण्ड कर स्राव (lutinising hormone या L. H.)
३. ल्यूटियोट्रोफिन (Luteotrophin)

(१) पुटकोत्तेजक रस—यह बीज ग्रन्थि के बीज पुटक को पुष्ट करता है तथा पीत पिण्डकर स्राव की थोड़ी मात्रा की सहायता से बीज पुटक से ऋतु संजनन रस का स्राव कराता है। पुटकोत्तेजक रस पीत पिंडकर स्राव की अनुपस्थिति में ऋतु संजनन रस का स्राव नहीं करा सकता। ऋतुसंजनन रस अब पुटकोत्तेजक रस का शमन करता है तथा इसको और अधिक उत्पन्न होने से भी रोकता है। इस प्रकार दूसरा बीज पुटक परिपक्व नहीं हो पाता। किन्तु यह ऋतु संजनन रस पीत पिंडकर स्राव को उत्तेजित करता है जिससे कि पीत पिंडकर स्राव परिपक्व बीज पुटक को विदीर्ण कर बीजागम (ovulation) कर सके।

(२) पीत पिंडकर स्राव—यह स्राव पुटकोत्तेजक रस के साथ मिल कर बीज पुटक से ऋतु संजनन रस स्रवित कराता है तथा परिपक्व बीजपुटक को विदीर्ण करके उसे पीत पिंड (corpus luteum) में बदल देता है। यह स्राव ऋतु संजनन रस से उत्तेजित होता है तथा पीत पिंड के स्राव क्षेत्र संजनन रस से शमन होता है। यह पीत पिंडकर स्राव अधिवृक्क ग्रन्थि को *17*-ketosteroids के precossors को उत्पन्न करने के लिए भी उत्तेजित करता है। क्योंकि यह स्राव क्षेत्र संजनन रस के द्वारा शमन होता है इसलिए जब तक पीत पिंड बना रहता है और क्षेत्र संजनन रस स्रवित होता है (गर्भावस्था के समय) तब तक और पीत पिंडकर स्राव स्रवित नहीं होता तथा इस लिए दूसरा बीज भी नहीं निकलता।

(३) ल्यूटियोट्रोफिन—यह पीत पिंडकर स्राव द्वारा बनाये हुए पीत पिंड से क्षेत्र संजनन रस स्रवित करता है और पीत पिंड को दो सप्ताह तक स्थिर रखता है। बीज का गर्भाधान न होने पर यह ल्यूटियोट्रोफिन पीत पिंड को स्थिर नहीं रखता जिससे पीत पिंड का अपजनन हो जाता

है तथा क्षेत्र संजनन रस एवं ऋतु संजनन रस की मात्रा कम हो जाती है जिसके कारण गर्भाशय से रक्त स्राव होने लगता है। क्षेत्र संजनन रस के समाप्त हो जाने से पीत पिंडकर स्राव फिर से प्रभाव डालता है और दूसरा बीजागम (ovulation) होता है। बीज का गर्भाधान होने पर पीतपिंड बना रहता है।

बीज ग्रन्थि के स्राव—

यह दो होते हैं—

१—ऋतु संजनन रस (Oestrin)

२—क्षेत्र संजनन रस (progestron)

(१) ऋतु संजनन रस—

यह बीज पुटक के कोष के द्वितीय आवरण (Theca interna) से पुटकोत्तेजक रस एवं पीत पिंड कर स्राव के प्रभाव से स्रवित होता है। इसके निम्न लिखित कार्य हैं—

१—श्लैष्मिकावृत्ति (endometrium) की वृद्धि करता है तथा श्लैष्मिकावृत्ति को क्षेत्र संजनन रस के प्रभाव के लिए तैयार करता है।

२—पीयूष ग्रन्थि के पूर्व खण्ड से और अधिक पुटकोत्तेजक के स्राव को बन्द कर देता है जिससे अन्य बीज पुटक परिपक्व न हो।

३—पीयूष ग्रन्थि के पीत पिंडकर स्राव को उत्तेजित करता है।

४—यह स्राव पीयूष ग्रन्थि के पूर्व खण्ड के दुग्धोत्पादकोत्तेजक स्राव का विरोध करता है और इसी लिए ऋतु संजनन रस (oestrogen) दुग्ध स्राव को बन्द करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

यह ऋतु संजनन रस थोड़ी मात्रा में पीतपिंड से तथा गर्भावस्था में अपरा से भी स्रवित होता है।

(२) क्षेत्र संजनन रस—

यह पीत पिंड से स्रवित होता है तथा बाद में अपरा द्वारा। इसके निम्न लिखित कार्य हैं—

१—ऋतु संजनन रस से तैयार की हुई श्लैष्मिकावृत्ति में अभिवृद्धि (Hypertrophy) करता है।

२—पीत पिंडकर स्राव का शमन करता है। इसीलिए बीजागम (ovulation) बन्द करने के लिए क्षेत्र संजनन रस को आर्तव काल से पहले प्रयोग करते हैं।

प्रयोगों द्वारा यह ज्ञात हो चुका है कि ऋतु संजनन एवं क्षेत्र संजनन रसों का स्राव किसी प्रकार समाप्त कराने से गर्भाशय से रक्तस्राव होने लगता है। यदि बीजागम के ८ दिन के अन्दर बीज गर्भित नहीं होता तो पीत पिंड का अपजनन होने लगता है और श्वेत पिंड (Corpus Albicans) बन जाता है तथा क्षेत्र संजनन रस स्रवित नहीं होता। यदि बीज का गर्भाधान हो जाता है तो पीत पिंड बना रहता है तथा बाद में अपरा द्वारा क्षेत्र संजनन रस एवं ऋतु संजनन रस स्रवित होने लगता है इसलिए गर्भ बना रहता है तथा क्षेत्र संजनन रस के पीत पिंड कर स्राव के शमन के कारण दूसरा बीजागम नहीं होता।

—डा. सतीश चन्द्र गुप्ता M. B. B. S.
ऋषिकुल आयु० कालेज, हरिद्वार।
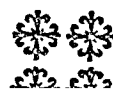
स्त्रियों का मासिक धर्म (आर्तव)

पं० ठाकुरदत्त शर्मा

स्त्रियों के जीवन में इससे अधिक वर्णन योग्य घटना नहीं है। स्त्री का स्वास्थ्य तथा गर्भिणी होना इत्यादि सब कुछ इस मासिक धर्म के कार्य के साथ सम्बन्धित है। मासिक धर्म रक्त ही है जिसके साथ गर्भाशय का रस एवम् उसकी कफ मिली हुई होती है। रंग इसका तनिक कालापन के साथ होता है क्योंकि यह शिराओं का रक्त है। मासिक धर्म से स्त्री का गर्भाशय स्वच्छ हो जाता है। स्त्री शुद्ध होती है। डाक्टर इससे असहमत हैं, किन्तु जो कुछ इसका कारण वर्तमान विज्ञान द्वारा जांच करके बताया गया है, वह तो हमारे वर्णन की पुष्टि करता है। मासिक धर्म के पश्चात् गर्भाशय में एक झिल्ली बन जाती है और गर्भ इसी झिल्ली में ठहरता है। गर्भाधान के लिए इस झिल्ली का होना आवश्यक है। एक सादा काल्पनिक चित्र द्वारा आप अच्छी तरह समझ सकते हैं।
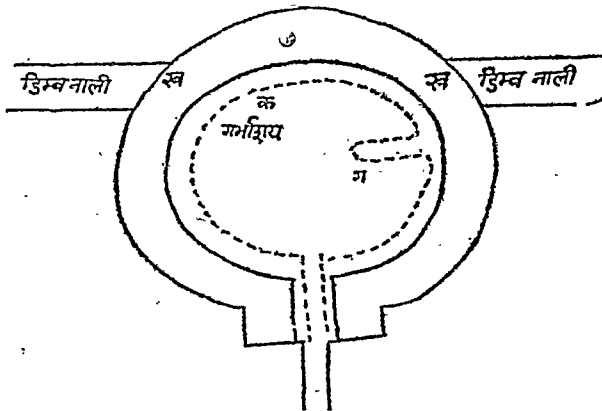
चित्र नं० ३१

"क" गर्भाशय है। "ख" गर्भाशय की दीवारें हैं। बिन्दियों वाला घेरा वह झिल्ली है जो इसके भीतर पैदा होती है। डिम्ब नलियों से जब अण्डा आये तो अण्डा झिल्ली को भीतर ढ़केल कर गर्भाशय में प्रवेश करता है और वहां रहता है। "ग" इधर से यदि वीर्य का कीटाणु आ जाये तो इस बारीक झिल्ली के भीतर प्रविष्ट होकर मानवी अण्डे के साथ जा मिलता है और गर्भ ठहर जाता है। प्रायः यों होता है कि वीर्य के कीटाणु झिल्ली से होते हुए नाली में जाकर अण्डे से मिल कर झिल्ली में आते हैं। झिल्ली पैदा होने के पश्चात् शिराओं के रक्त से भरती जाती है तथा मोटी होती जाती है। यह प्रकृति ने इस लिये रखा हुआ है कि यदि गर्भ ठहर जाये तो एकत्रित रक्त से पोषण आरम्भ हो जाये। और ज्यों-ज्यों मोटी होती जाती है यह वैसी स्वच्छ नहीं रहती है। इस कारण गर्भ के लिये मासिक धर्म बन्द होने से दूसरे तीसरे दिन के उपरान्त कुछ दिन बहुत अच्छे होते हैं जब एक महीने तक यह झिल्ली रहे तो वह रक्त से भर कर बहुत मोटी और पोली हो जाती है। इसके भीतर यदि गर्भ न ठहरे तो अन्त में इसके फटने से एकत्रित रक्त का निष्कासन हो जाता है। और इसके साथ गर्भाशय की दीवारों से और भी शिराओं का रक्त आता है। इसी का नाम "आर्तव" है। इसके साथ वह झिल्ली भी निकल आती है। जिन स्त्रियों को यह झिल्ली पैदा न हो उनको खून नहीं आता है और जिन की अधिक मोटी हो जाये उनको मासिक धर्म के समय बहुत रक्त आता है। यदि एकत्रित रक्त न निकले या किसी कारण वश थोड़ा निकले तो स्त्री को कई रोग गर्भाशय अथवा शरीर सम्बन्धित हो जाते हैं।

अब सीधी बात है कि महिने के पश्चात् एकत्रित रक्त तथा खराब हुई झिल्ली के निकालने के वास्ते ही मासिक धर्म आता है। तो फिर क्यों न कहा जाये कि मासिक धर्म स्त्री को स्वच्छ करता है, शुद्ध करता है। गर्भाशय को गर्भ के योग्य

बनाता है। इस झिल्ली के निकल जाने के अनन्तर तुरन्त दूसरी झिल्ली तैयार हो जाती है।
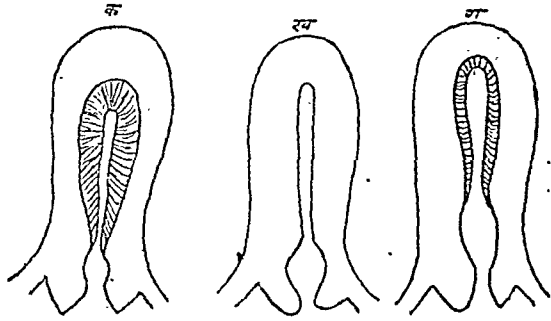
मासिक धर्म आने के समय गर्भाशय की अवस्था	मासिक धर्म आचुकने पर गर्भाशय की अवस्था	मासिक धर्म के ७ दिन पश्चात् गर्भाशय की अवस्था

चित्र नं० ३२

"क" गर्भाशय की हालत मासिक धर्म आने के निकट की है। जब मासिक धर्म आ चुका तो "ख" की तरह गर्भाशय की आकृति होती है जब कि झिल्ली पैदा नहीं हुई। फिर झिल्ली पैदा हो जाती है और धीरे-धीरे कोमल, मोटी तथा पोली होती जाती है। एक सप्ताह के पश्चात् की हालत "ग" से आरम्भ होती है।

मनु महाराज का मत—

मनु इत्यादि ने हिन्दु शास्त्रों एवं वैद्यक ग्रंथों में लिखा है कि ऋतुकाल के १६ दिन हैं अर्थात् मासिक धर्म आने के दिन से लेकर १६ दिन तक गर्भाधान का समय है। ज्ञात होता है कि इसका अर्थ यह नहीं कि इसके पश्चात् गर्भ बिल्कुल नहीं ठहरता क्योंकि परीक्षकों का कथन है कि मासिक धर्म आने के १ सप्ताह पूर्व तक गर्भ रह सकता है किन्तु बहुत कम ऐसा अवसर होता है। कभी यों भी होता है कि मासिक धर्म के दिनों से कुछ दिन पूर्व मैथुन किया जब कि झिल्ली पोली है तब वीर्य कीटाणु इसको फाड़कर डिम्ब नाली में पहुँच गया और वहां अण्डा के साथ मिल कर बैठा रहा और मासिक धर्म जब आ चुका तो नीचे गर्भाशय में उतर आया और गर्भ ठहर गया। ऐसा भी हो सकता है, चूंकि झिल्ली पोली बहुत है, वीर्यांकुर तथा मानवी अण्डा दोनों झिल्ली में आकर किसी जगह मिल गये और गर्भाधान हो गया। इस दशा में मासिक धर्म फिर नहीं आता। वहीं भ्रूण का पोषण करने लग जाता है। मनु महाराज का वास्तविक अर्थ ऋतु के १६ दिन कहने का यह है कि १६ दिन उपरान्त न गर्भाशय में इतनी योग्यता रहती है और न सन्तान स्वस्थ होती है। यह बात वर्तमान निरीक्षणों द्वारा सिद्ध हो चुकी है जैसा कि हम वर्णन करेंगे। १६ दिनों में भी मनु महाराज ग्यारहवां तथा तेरहवां दिन निषेध करते हैं एवं तेरहवें के पश्चात् बहुत कम आशा रह जाती है। अतः गर्भाधान के वास्ते पहिले १० दिन ही यथार्थ हैं। ४ दिन मासिक धर्म के निकाल दें तो ६ दिन सबसे श्रेष्ठ हैं।

मैं वर्णन कर चुका हूँ कि ज्यों ही यह झिल्ली निकल जाती है, तो नई झिल्ली हर बार बननी आरम्भ हो जाती है ताकि आने वाले अण्डा के समय यह स्थान पूर्णतः तय्यार हो जाये। कई वर्षों तक ऐसे होता रहता है। नई झिल्ली मोटी हुई, टूटी और निष्कासन के पश्चात फिर मोटी होती रहती है। अन्ततः एक दिन एसा आता है जब कि यह झिल्ली उपयुक्त प्रतीत होती है अर्थात् इस पर ओवम आकर ठहरता है और गर्भ ठहरने से भ्रूण पुष्टि प्राप्त करना आरम्भ करता है। यदि अण्डा वीर्य (कीटाणु) से न मिले तो व्यर्थ होकर शरीर से निकल जाता है। कई बार कीटाणु (वीर्य) तथा अण्डा (रज) का मेल डिम्ब नलियों में होता है जब कि अण्डा डिम्ब नलियों के मार्ग से गर्भाशय में आ रहा होता है। इनके मेल होने के उपरान्त गर्भाशय की मोटी सांद्र झिल्ली के एक स्थान पर आकर लग जाता है और गर्भ ठहरता है।

मासिक धर्म यौवन का चिन्ह है—

स्त्रियों में यौवन प्राप्ति का समय भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न भिन्न है। गर्म देशों में कन्यायें शीघ्र युवा होती हैं, किन्तु सर्द देशों में देर से यौवन को पहुंचती हैं। यौवन का प्रथम चिह्न गुप्ताङ्गों पर बालों का प्रकट होना है। किन्तु शिशु को जन्म देने की योग्यता होना तथा वास्तविक यौवन का सचा चिह्न "मासिक धर्म" का आरम्भ होना है।

मासिक धर्म गर्म देशों में १० से १२ वर्ष, शीतोष्ण देशों में १२ से १६ वर्ष तथा शीतल देशों में १६ से २१ वर्ष तक की आयु में आरम्भ हो जाता है। धन समृद्ध घरानों में अच्छा आहार खाकर सुख से रहने वाली कन्यायें शीघ्र यौवन को प्राप्त करती हैं। गरीबों में देर से यौवन प्राप्ति होती है।

यौवन प्राप्त होने पर कन्या आकृति में भी बढ़ जाती है तथा इसकी आकृति सामान्य रूप में मासिक धर्म आरम्भ होने से २ वर्ष पूर्व की अपेक्षा अधिक बढ़नी आरम्भ हो जाती है। इसके स्तन भारी होने लगते हैं। इस आयु में लड़की अधिक सलज्ज हो जाती है तथा एकान्त चाहती है। नगर की कन्याओं में ग्रामीण कन्याओं की अपेक्षा मासिक धर्म शीघ्र प्रकट होता है। इसी प्रकार गरीबों की अपेक्षा धनवानों में। प्राकृतिक दशा में मासिक धर्म आरम्भ होने के समय तथा ऋतुकाल में वेदना या अन्य किसी प्रकार का कष्ट कदापि नहीं होना चाहिए। इसके निष्कासन के पश्चात् कोई निर्बलता अनुभव नहीं होनी चाहिये। यदि इस मध्य कोई कठोर कार्य अथवा परिश्रमादि किया जाये तो पीड़ा अथवा अन्य हानि हो सकती है। यदि बिना श्रम किये ही मासिक धर्म के निष्कासन में वेदना अथवा कष्ट का अनुभव हो तो समझना चाहिए कि कोई आन्तरिक विकार है।

मासिक धर्म का आरम्भ—

प्रथम मासिक धर्म आरम्भ होने से कुछ सप्ताह अथवा कुछ मास पूर्व ही वर्णहीन आर्द्रता आनी आरम्भ हो जाती है जिसका अभिप्राय यह होता है कि मासिक धर्म आरम्भ होने वाला है। युवा कन्याओं में इस वर्णहीन आर्द्रता के निष्कासन को रोग नहीं विचारना चाहिए। कितनी बार ऐसा होता है कि एक मास मासिक धर्म जारी हो जाता है लेकिन इसके उपरांत कुछ महीनों तक मासिक धर्म नहीं आता। यदि इस दशा में कन्या का स्वास्थ्य नियमित रूप में ठीक रहे तो चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। दो अथवा तीन मास अनन्तर अनियमितता अपने आप हट जायेगी। मासिक धर्म होने से शरीर का अशुद्ध रक्त निकल जाता है। डाक्टर कहते हैं कि यह ख्याल गलत है क्योंकि मासिक धर्म का रक्त वही रक्त है जो शरीर की सर्वत्र नाड़ियों में प्रवाहित है। इसमें कोई विशेष अशुद्धता अथवा विष नहीं होता, कुछ भाग सड़े हुए तो इसमें होते हैं। यदि किसी कारण मासिक धर्म बन्द हो जाये तो पीड़ा जो पैदा होती हैं, वह इस कारण नहीं होती कि अशुद्ध रक्त या विष शरीर में रह गया अपितु शरीर में इस रक्त के रह जाने से पैदा हो जाती हैं जिसका स्वभावतः निकलना आवश्यक है। आश्चर्य कि रक्त जो एकत्रित हुआ है, इसका निष्कासन आवश्यक जब है तो इस बात के कहने में क्या बाधा है कि मासिक धर्म के उपरांत स्त्री पवित्र हो जाती है। पीछे इस बात को वर्णन कर चुके हैं। शायद यही कारण है कि हमारे देश में मासिक धर्म जारी होने पर स्त्री को अपवित्र गिनते हैं। मुसलमानों में छूना निषेध नहीं है किन्तु अपवित्र अवश्य समझते हैं। कई औषधियों की तय्यारी में यह लिखा होता है कि इसकी तैयारी के समय ऋतुमती की छाया न पड़े। हिंदू पूजा-पाठ के समय ऋतुमती को सम्मलित नहीं करते।

अन्तर—

मासिक धर्म के आने, निष्कासन होने तथा बन्द

होने में व्यवस्थिति का होना आवश्यक है। प्रत्येक स्त्री के वास्ते यह नियम कुछ पृथक् पृथक् होते हैं। यह १ दिन से लेकर ७ दिनों तक चालू रहता है, और तीन से ६ सप्ताह के अन्तर के बाद प्रकट होता है। ४ सप्ताह की अवधि बहुत होती है। हां जब कभी १८ दिन से पूर्व अथवा कभी ४० दिन पश्चात् आये तो उसे अनियमितता कहते हैं। ३ सप्ताह से न्यून एवं ६ सप्ताह से अधिक भी अन्तर नहीं होना चाहिये। बहुधा जब तक मासिक धर्म आने में कोई अनियमितता न हो तथा स्वास्थ्य ठीक रहे तब तक किसी बात का भय नहीं करना चाहिये।

परिमाण—

मासिक धर्म की मात्रा लगभग आध पाव (½ पाव) होती है। किन्तु कइयों में आध-आध सेर तक की मात्रा भी देखी गई है। और यह भी देखने में आया है कि धनाढ्य घरानों की स्त्रियों में श्रमिक स्त्रियों की अपेक्षा मासिक धर्म की रक्त स्रुति अधिक मात्रा में होती है। मासिक धर्म का रक्त गर्भाशय की आन्तरिक दीवारों तथा झिल्ली से आता है जैसा कि वर्णन कर चुके हैं। यह गर्भाशय की दीवारों से उसी प्रकार प्रवाहित होता है, जिस प्रकार शरीर से "स्वेद" अर्थात् पसीना निकलता है।

मासिक धर्म का रक्त एवम् फेन जब अपनी ठीक दशा में होते हैं तो बाहर आने से यह रक्त नहीं जमता, किन्तु शरीर के दूसरे भागों से निकला हुआ रक्त जम जाता है। इस कारण बहुत से व्यक्ति यह विचार करने लग गये हैं कि मासिक धर्म का रक्त शरीर के अन्य अंगों से भिन्न है। लेकिन यह बात नहीं है। वास्तव में बात यह है कि जब रक्त योनि की "अम्ल युक्त आर्द्रता" के साथ मिलता है तो इसकी जमने वाली क्षमता नष्ट हो जाती है। इसके विपरीत जब मासिक धर्म में रक्त की मात्रा अति अधिक हो, एवम् इसकी अपेक्षाकृत योनि की अम्ल पूर्ण आर्द्रता न्यून हो तो रक्त बराबर वैसे ही जमता है जैसे कि शरीर के अन्य अंगों का रक्त जम जाता है। आधुनिक अनुसंधानकों का विचार है कि मासिक धर्म का रक्त गर्भाशय की नाड़ियों से निकल कर गर्भाशय के खुले भाग में वैसे ही जम जाता है जैसे कि अन्य शारीरिक भागों का रक्त। परन्तु फिर गर्भाशय के अन्दर से ही एक ऐसा पदार्थ पैदा होता है जो इस जमे हुए रक्त को धीरे-धीरे पतला कर देता है। वास्तव में यही पतला हुआ रक्त मासिक धर्म का रूप धारण करता है। यदि मासिक धर्म का रक्त अधिक मात्रा में निकले तो इसमें से कुछ तो गर्भाशय के अन्दर जम जाता है, किन्तु कुछ भाग वैसे ही गर्भाशय से निकल जाता है और योनि में या बाहर आकर जम जाता है जिससे रक्त के लूथड़े ऋतु काल के रक्त में मिले हुये निकलते हैं। इसी भांति यदि गर्भाशय में रक्त का लूथड़ा पड़ा हो तथा पतला करने वाला पदार्थ इसे सर्वत्र पतला न कर सके तो भी मासिक धर्म में रक्त के लूथड़े निकलने लगते हैं। ऐसी अवस्था में मासिक धर्म के रक्त से दुर्गन्ध नहीं आती किन्तु जब इस में गर्भाशय की आर्द्रता अथवा खराब पदार्थ अधिक मात्रा में मिल जायें या अन्य गंध युक्त आर्द्रता योनि से मिल जाये तो इससे बहुधा गन्ध पैदा हो जाती है, और जब मासिक धर्म का रक्त वस्त्र पर लग जाये तो उससे भी गन्ध पैदा हो जाती है। स्त्री में मासिक धर्म उस समय तक आता रहता है जब तक कि स्त्री के डिम्ब कोष में अण्डे बनते रहते हैं। जब इनकी उत्पत्ति बन्द हो जाती है तो मासिक धर्म का आना भी रुक जाता है। यह लगभग ४८ वर्ष की आयु में होता है।

स्त्री की आयु के ३ भाग—

स्त्री के जीवन को मासिक धर्म ३ भागों में विभाजित करता है।

प्रथम "बालावस्था"—अथवा यौवन से पूर्व-काल, जन्म से १२ से १६ वर्ष की आयु तक।

द्वितीय "यौवन अवस्था"—यह वह काल है जबकि स्त्री को मासिक धर्म आता रहता है और उसमें उत्पत्ति की योग्यता होती है। यह काल प्रायः १२ से १६ वर्ष की आयु से आरम्भ हो कर ४५ से ५५ वर्ष की आयु तक रहता है।

तृतीय "वृद्धावस्था"—इस काल में मासिक धर्म आना बन्द हो जाता है और प्रसव की योग्ता नष्ट हो जाती है। यह काल प्रायः ४५ से ५५ वर्ष की आयु से आरम्भ होता है। इसके अतिरिक्त गर्भावस्था या शिशु को दूध पिलाने की अवधि में भी मासिक धर्म का आना बन्द रहता है। मासिक धर्म बन्द होने का समय स्त्री के लिए विशेष परिवर्तन काल है। इस समय की विशेष बातों का वर्णन पृथक् किया जा सकता है।

विशेष-कुछ स्त्रियां ऐसी भी देखी गई हैं जिनके मासिक धर्म के समय केवल गर्भाशय एवं योनि की आर्द्रता निष्कासित होती है तथा इसमें रक्त की एक बूंद भी नहीं होती।

सन्तान तथा मासिक धर्म—

कुछ स्त्रियां बिना मासिक धर्म आये ही गर्भिणी पाई गई हैं। मुझे एक स्त्री का हाल मालूम है कि उसने पुत्र पुत्रियां जनीं जो स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट थे, किन्तु इसको कदापि मासिक धर्म नहीं आया था और उपचारिका (दाई) द्वारा ज्ञात हुआ कि उसकी योनि पर बाल भी नहीं हैं। बहुत वृद्ध होकर वह स्त्री मरी थी तथा स्वास्थ्य उसका अच्छा रहा।

डाक्टर केस्पर ने भी एक स्त्री का वर्णन किया है जिसके ३ बच्चे हुये परन्तु कभी मासिक धर्म नहीं आया था। ऐसे ही डा० ग्रेगोरी एक स्त्री का वर्णन करता है जो बिना मासिक धर्म आये ७ बच्चों की माता हुई। डा. जौबर्ट (Dr. Joubart) ने एक २२ बच्चों की मां के सम्बन्ध में लिखा है कि इसको मासिक धर्म नहीं आया था।

इसका कारण—

वैज्ञानिक कहते हैं कि इसके दो कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि इन स्त्रियों को न्यूनतम आर्द्रता या थोड़ा सा रक्त हीं आता हो एवं वह इसका विचार न करती हों। या यह कि बालावस्था में शीघ्र विवाह होने से मासिक धर्म आरम्भ होने के तनिक पूर्व गर्भाधान हो गया और फिर बार बार गर्भ मासिक धर्म आरम्भ होने से पूर्व ही हो गया, क्योंकि प्रसव के उपरान्त मास दो मास के भीतर मैथुन करने से वैसे ही गर्भ ठहर जाता है, अपितु ऐसे दृष्टान्त हैं जबकि प्रसव के उपरान्त कितने समय तक मासिक धर्म न आया और गर्भ ठहर गया। कई दशाओं में यह कारण ठीक हो सकता है। किन्तु अपने ग्राम की जिस स्त्री का मैं वर्णन करता हूं उसकी सन्तान तो देर-देर के पश्चात् भी हुई, और बहुत विचित्र बात तो यह थी, कि इसके बाल भी पैदा नहीं हुए, यथा इसका बाल्यकाल की दशा आयु पर्यन्त स्थिर रही, बूढ़ी होकर वह स्त्री कालग्रस्त हुई।

छोटी आयु में मासिक धर्म—

छोटी आयु में मासिक धर्म के उदाहरण भी निर्णाताओं ने बहुत एकत्र किये हैं। अमेरिका में एक कन्या को ३ वर्ष की आयु में मासिक धर्म चालू हो गया। डा० वार्नर (Warner) ने एक यहूदी कन्या सोफिया जनेजा का वृतांत लिखा है जिसको २३ मास की आयु में मासिक धर्म का रक्त आना आरम्भ हो गया और युवा स्त्रियों के ऋतु काल के रक्त से रंग, गन्ध और बनावट में कोई अन्तर न था। डा० वडाफ एक कन्या का वर्णन करता है जिसको २ वर्ष की आयु में मासिक धर्म आरम्भ हुआ और ६ वर्ष की आयु में योनि-बाल निकल आये तथा स्तन उभर आये। बहुत समय नहीं बीता, जर्मनी के एक डा० ऑस्सेट (Ausset) ने एक कन्या को मेडिकल सोसाइटी (Medical society) के सामने उपस्थित किया। इसकी पौने पांच वर्ष की आयु थी, मासिक धर्म आता था। वह अपनी समायु कन्याओं से बड़ी

लगती थी। वह ३ फुट ६½ इंच लम्बी थी। २२ सेर तोल था तथा १२-१५ वर्षीय कन्या के समान स्तन थे। आंतरिक निरीक्षण से गर्भाशय में कोई विशेष अन्तर न था।

न्यूनायु में गर्भ—

ऐसे उदाहरण भी प्राप्य हैं जब कि बहुत छोटी आयु में गर्भ ठहरा है। भारत में छोटी आयु में विवाह का बहुत रिवाज रहा है और यहां तो मशहूर है कि २५ से ३० वर्ष में स्त्री नानी हो जाती थी। १२ वर्ष की आयु में लड़कियों की सन्तान हुई, ऐसे उदाहरण भारत में बहुत मिल सकते हैं। ८-१० वर्ष की लड़की को सन्तान होने के समाचार भी पढ़े जाते हैं।

मिस्र तथा अरब में ६-७ वर्ष की कन्याओं का विवाह हो जाता है। १४ वर्ष का लड़का, ८-६ वर्ष की लड़की का विवाह प्रायः सुना है। दो तीन वर्ष पश्चात् सम्बन्ध होकर ११-१२ वर्ष की आयु में सन्तान तथा २५ वर्ष की आयु में प्रौढ़ा एवम् ४० वर्ष की आयु वृद्धा।

१२ वर्ष की आयु में सन्तान होने के दृष्टान्त सभ्य देशों में भी मिलते हैं। अमेरिका में ६ मार्च सन् १६३४ को एक कुमारी लड़की का पेट चीर कर ८½ पौंड तोल की स्वस्थ लड़की निकाली गई। यह लड़की जिस का नाम जे० डेरी है अभी बारहवें वर्ष में थी।

लड़कियों के लिए विवाह योग्य आयु १२ वर्ष कई देशों में विधानानुसार निश्चित रही है। भारत में शादी एक्ट से पूर्व इच्छुक आयु यही थी। भूत कालीन रोमन विधान में १२ वर्ष की आयु थी, अतः १२ वर्ष की आयु में सन्तान का होना कोई आश्चर्य जनक नहीं है।

८ वर्ष में गर्भ—

बेलजियम में एक लड़की को ८ वर्ष की आयु में गर्भ रहा जो आश्चर्य जनक है। इस बालिका को ४ वर्ष की आयु में मासिक धर्म आरम्भ हुआ, सात वर्ष की आयु में सब अंग बढ़ गये, आठवें वर्ष में ३७ वर्षीय "दुराचारी चचा" ने इस के साथ बलात्कार किया। उसको न्यायालय ने ५ वर्ष कारावास का दण्ड दिया था। इस कन्या के अच्छा पुष्ट शिशु समय से पूर्व यन्त्रों द्वारा निकाला गया था।

बड़ी आयु में मासिक धर्म—

यद्यपि मासिक धर्म बन्द होने का समय अधिकतर ४५ से ५० वर्ष की आयु तक है किन्तु ऐसे उदाहरण उपलब्ध हैं जब कि मासिक धर्म बड़ी आयु तक चालू रहा। डा० एमिल नोवक (Dr. Emil nowak) अपनी पुस्तक "आर्तव व इसकी खराबियां" में लिखता है—दश प्रतिशत दशाओं में मासिक धर्म ५५ वर्ष तक की आयु में भी आती है किन्तु असामान्य रूप से इससे भी बड़ी आयु तक आता है। सबसे आश्चर्यजनक डा० बट्टे (Dr. Battey) ने रिपोर्ट की है कि ६३ वर्षीय एक स्त्री को इस आयु तक नियमानुसार मासिक धर्म आता रहा। डा० ओवेन (*Dr.* Owen) की एक रुग्णा को ७२ वर्ष की आयु में मासिक धर्म फिर चालू हुआ, ६ मास रहा, तथा इस अवधि में वह गर्भवती भी हो गई। डा० सिम्पटर ने ६०-७०-७७ तथा ८० वर्ष की आयु की चार स्त्रियों को नियमित मासिक धर्म आते देखा। डा० सिम्पसन (Dr. Simpson) इन स्त्रियों का वर्णन करता है जिनको ६७ एवं ६३ वर्ष की आयु में मासिक धर्म आता था।

मासिक धर्म बन्द होने के पश्चात् संतान—

यह बात और भी आश्चर्यजनक है कि बड़ी आयु की स्त्रियों में मासिक धर्म आकर या बन्द होने के पश्चात् भी गर्भ होने के उदाहरण मिलते हैं। डा० कावेव (*Dr.* Cobave) ने २ दिसम्बर सन् १८८१ को पेरिस के समाचार पत्र में एक ७० वर्षीय विधवा के एक शिशु की उत्पत्ति का वृतांत लिखा है।

प्लेटर (Platter) ने अपने पिता का वृतांत लिखा है। उसने ७२ वर्ष की आयु में एक वृद्ध स्त्री के साथ विवाह किया और उनके ६ बच्चे पैदा हुये।

केस्पर ने एक विधवा का वर्णन किया है। ४५ वर्ष की आयु में इसका मासिक धर्म बन्द हो चुका था। ४६ वर्ष की आयु में अपने एक पूर्ण परिचित से मिलने पर वह गर्भवती हुई और १८० दिनों के पश्चात् पुत्र जन्म हुआ। सन् १८६३ में डा० मैक कार्थी (*Dr.* Mac. carthey) ने ६१ वर्ष की आयु में एक स्त्री के बच्चा जनाया, जिसके पति की आयु ७४ वर्ष की थी।

दूसरे स्थानों से मासिक धर्म का निकास—

मासिक धर्म के सम्बन्ध में निर्णेताओं ने बड़ी आश्चर्य की बात ज्ञात की है कि असामान्य रूप में योनि के बदले मासिक धर्म शरीर के किसी दूसरे छिद्र से आ सकता है। इस नियम विरुद्ध निकास के लिए साधारण छिद्र तो नाक, मसूड़े या गुदा (मलद्वार) हैं। किन्तु कभी-कभी आंख और कान से भी ऐसा हुआ है। इसकी पहचान यह होती है कि मासिक धर्म अपने मार्ग से आता नहीं और इन छिद्रों से रक्त मासिक धर्म की भांति नियमानुसार प्रति मास बहता है। पुस्तकों में तीन-चार बहुत ही विचित्र केस (मामले) मिलते हैं जिनको पढ़कर बुद्धि आश्चर्य चकित होती है और इन आवेदकों की सराहना करती है जो इन परिणामों पर पहुँचे हैं।

(१) मार्सेलस के डा० लाप ने ३७ वर्षीय एक एक हिस्टेरिया ग्रस्त स्त्री का वर्णन किया है। सन १८८० ई० में इस स्त्री के आन्तरिक दोष के कारण चीर फाड करके 'फिलोपियन ट्यूब' निकाल दी गई जिससे गर्भ नहीं हो सकता। इस ओपरेशन के पश्चात मासिक धर्म तो बन्द हो गया किन्तु प्रतिमास पेट का व्रण (जख्म) जहां ओपरेशन हुआ था खुल जाता, ७-८ दिन खून आ जाता और फिर बन्द हो जाता। यह १० मास तक हुआ। चार वर्ष पश्चात् इसको वेकली आरम्भ हुई जैसा कि प्रथम मासिक धर्म दिनों में हुआ करती थी। तीन चार दिन पश्चात उसका एक अंगूठा लाल हुआ, तथा ऊपर का चमड़ा छाले की भांति नर्म हो गया और इसमें से लाल रक्त ५ दिनों तक निष्कासित होता रहा। हर २८ दिनों के अनन्तर इसी स्थान से रक्त का निष्कासन हो जाता, तथा वह किसी प्रकार से बन्द न होता था, रक्त शिराओं के रक्त समान था।

(२) "बुलेटन आफ मैडीकल साइन्स" में ऐसा ही केस रिपोर्ट हुआ है। एक लड़की को मासिक धर्म के अतिरिक्त मध्यमा (बीच की) उंगली में खुजली हुई, जो बढ़ कर लाल होकर एक रक्त की धार जो कई फुट तक जाती थी, निकलती थी। दो औंस निकल जाने के पश्चात स्वयं ही रक्त कम होकर बन्द हो जाता और इसकी निर्बलता सिर दर्द आदि सब दूर हो जाते।

सन् १८६६ में डा० लेरवायज (*Dr.* Lerwoyes) ने एक कन्या की रिपोर्ट की जिसको प्रथम ही दायें कान से मासिक धर्म आरम्भ हुआ तथा इस प्रकार मासिक धर्म आते तीन वर्ष बीत गये थे। डा० बर्नस ने लन्दन की एक स्त्री को देखा जिसके प्रति मास स्तनों की चूचियों के मार्ग से ऋतु-रक्त आता था। ऐसे ही डा० जैकर ने एक स्त्री की व्याख्या की है जिसकी छाती (वक्ष) पर एक व्रण (जख्म) था जो प्रतिमास फूल जाता और इससे ५-६ दिन रक्त चालू रहता। ऐसे ही आंख, नाक, मसूढ़े यहां तक कि पांव की उंगलियां या घुटने से मासिक धर्म के उदाहरण लिखे हैं।

गर्भावस्था में मासिक धर्म वैसे तो बन्द हो जाता है, किन्तु किसी-किसी स्त्री को प्रतिमास यथाक्रम दाग (बिन्दु) लगता रहता है।

—वैद्य पं० ठाकुरदत्त शर्मा (अमृतधारा) देहरादून

मासिक धर्म और अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ

डा० लोकेन्द्र मानसिंह ए० एम० एस०
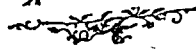
सामान्यतः रक्त स्राव किसी भी अंग से हो शरीर के लिये लाभदायक होने की कल्पना नहीं की जा सकती परन्तु स्त्रियों में होने वाला मासिक रक्त स्राव शरीर के दोषों की शुद्धि करने वाला माना जाता है।[1] यह उल्लेखनीय है कि मासिक धर्म मनुष्यों, उच्च जाति के बन मानुषों और बन्दरों में ही होता है। मासिक धर्म सदा से लोगों की जिज्ञासा का विषय रहा है। पाश्चात्य और हमारे प्राच्य ग्रन्थों में भी इसका पर्याप्त उल्लेख है और एक सीमा तक कहा जा सकता है कि जैसी हमारे ऋषियों की कल्पना थी आज कल के वैज्ञानिकों के अनुसन्धान से भी कुछ उसी के अनुरूप ही परिणाम निकला है।

१३-१४ वर्ष की अवस्था से स्वस्थ स्त्रियों में प्रति मास योनि मार्ग से होने वाले रक्त स्राव को 'मासिक धर्म' 'आर्तव' 'रज' 'पुष्प' menses या menstruation कहते हैं। यह प्रति मास तीन चार दिन रहता है और ४५-५० वर्ष की अवस्था में बन्द हो जाता[2] है। देखा गया है रजःस्राव प्रारम्भ होने के वय (menorche) में जलवायु, रहन सहन, स्वास्थ्य, प्रकृति आदि का प्रभाव पड़ता है। गरम जलवायु, अच्छा स्वास्थ्य, विलासी उत्तेजक वातावरण जल्दी मासिक धर्म प्रारम्भ करने में सहायक होते हैं।

स्त्रियों में रजः स्राव का प्रारम्भ यौवनारम्भ और गर्भ धारण क्षमता का द्योतक होता है। गर्भ-धारण के लिये परिपक्व स्त्री बीज (ovum) आवश्यक होता है और बीज के पाक परिणाम स्वरूप रजः स्राव होने लगता है। इस लिए रजः स्राव बीज ग्रन्थि (Ovary) में स्त्री बीज (Ovum) के परिपाक की क्रिया का लक्षण है। आर्ष ग्रन्थों में बीज के लिये भी आर्तव शब्द का प्रयोग हुआ है, मानना पड़ेगा, क्यों कि स्थान स्थान पर बहिः पुष्प, अन्तः पुष्प[1] दृष्टार्तव-अदृष्टार्तव,[2] सूक्ष्म प्रवृत्तार्तव आदि उल्लेख स्पष्ट सूचित करते हैं कि उन्हें बाह्यार्तव से भिन्न सूक्ष्मार्तव की भी कल्पना थी। आर्तव को गर्भ कृत[3] कहा गया है। शुक्र शोणित संयोग से गर्भ होने का भी उल्लेख है परन्तु मासिक स्राव के दिनों में मैथुन वर्जित और निष्फल कहा गया है। इसके अतिरिक्त समागम के समय आर्तव (बीज) घृत पिण्ड[4] की तरह पिघलकर शुक्र से मिलने का वर्णन किया है। अतः गर्भकृत आर्तव तथा मासिक आर्तव स्पष्ट ही विभिन्न ज्ञात होते हैं। इस लिए यह निश्चित कहा जा सकता है कि मासिक आर्तव को ऋषियों ने गर्भ धारण योग्यता का सूचक मानते हुए भी गर्भकृत या गर्भ निर्माण में प्रत्यक्ष भाग लेने वाला नहीं माना है।

१—रजः प्रसेकान्नारीणां मासि-मासि विशुद्धयति सर्वं शरीर दोषांश्च। 'चरक'

२—तद्वर्षात् द्वादशात् काले वर्तमानमसृक् पुनः। जरापक्वशरीराणां याति पञ्चाशता क्षयम्॥ सु. शा. ३,

मासि मासि रजः स्त्रीणां रसजं स्रवति त्र्यहम्। अ. हृ. शा. १.

१—अन्तः पुष्पं भवत्येव पनसोदुम्बरादि वत्। 'कश्यप'

२—अदृष्टार्तवाप्यस्त्येके भाषन्ते। सु. शा.

३—रक्तलक्षणमार्तवं गर्भ कृच्च। सु. सु. १५.

४—घृतपिण्डो यथैवाग्निमाश्रितः प्रविलीयते। विसर्पत्यार्तवं नार्यास्तथा पुंसां समागमे॥ सु, शा.

मासिक धर्म चक्र (आर्तव चक्र)—

प्राच्य मत से मासिक धर्म होने पर १२-१६ दिनों तक स्त्री ऋतु मती[५] कहलाती है। कहा गया है कि उन दिनों में समागम की इच्छा अधिक रहती है और गर्भ धारण की सम्भावना भी अधिक होती है (यह आधुनिक मत भी है) ऋतु काल में गर्भाशय का खुला होना तथा ऋतु समाप्त होने पर बन्द होना बताया गया है।[६] ऋतु समाप्त होने पर मासान्त तक शोणित संचय होकर वायु के द्वारा योनि मुख से निकाल दिया जाता है जिसे आर्तव या मासिक स्राव कहते[७] हैं। इस तरह से देखते हैं कि प्रतिमास आर्तवा-दर्शन से १२-१६ दिनों तक ऋतु काल, संचय और फिर आर्तव दर्शन के परिवर्तन चक्र का प्राच्यों ने स्पष्ट उल्लेख किया है जिसे आर्तव चक्र कहा जा सकता है।

इसी तरह आधुनिक मत से भी एक मासिक परिवर्तन चक्र का होना माना जाता है। प्रयोगों से देखा गया है कि प्रतिमास स्त्री की जननेन्द्रियों में विशेषतः गर्भाशय और बीजग्रन्थि में एक परिवर्तन चक्र चलता रहता है जिसका परिणाम या स्थिति मासिक रजःस्राव है। इस परिवर्तन को आर्तव चक्र कहा जाता है। यह स्त्रियों में अधिकतर २६-२८ दिन का होता है। प्रत्येक आर्तव चक्र में गर्भाशय गत निम्न लिखित परिवर्तन होते हैं। ज्ञातव्य है कि ये परिवर्तन गर्भाशय की श्लेष्मल कला में होते हैं।

(१) स्रावोत्तर काल—यह स्राव के बाद के २-३ दिन का होता है। इसमें स्रावकाल में नष्ट श्लेष्मल कलाएँ प्रकृत अवस्था में आती हैं।

(२) वृद्धिकाल—यह आर्तव दर्शन के १२-१६ वें दिन तक होता है। इस अवधि में बीजकोषों (follicles) में बीज (ovum) का परिपाक होता रहता है और अन्त में बीज कोषों से बीज का उत्सर्ग (ovulation) होता है। बीजोत्सर्ग के आसपास ही गर्भाधान हो सकता है। इस अवधि में गर्भाशय की श्लेष्मल कला शनैः शनैः मोटाई में बढ़ती रहती है। स्रावोत्तर काल के साथ इस काल को ऋतुकाल कहा जा सकता है।

(३) स्राव पूर्व काल—इसमें गर्भाशय की श्लेष्म कला और भी परिवृद्ध होती है। उसकी रक्त वाहिनियां विशेषतः चक्करदार (spiral) धमनियों की संख्या में वृद्धि होकर श्लेष्म कला में रक्ताधिक्य रहता
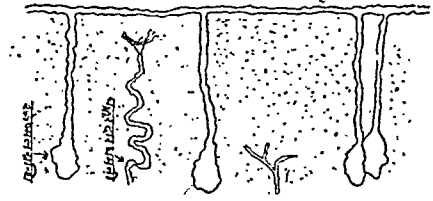
चित्र नं० ३३

है। श्लेष्मल ग्रंथियां भी विकसित होकर गर्भाशय के आंतरिक अवकाश को श्लेष्मा से आच्छादित किये रहती हैं। यह स्थिति यदि गर्भावस्थित हो गई हो (आजकल शुक्र शोणित संयोग डिम्ब प्रणाली में होना तथा उसका गर्भाशय में कुछ दिनों बाद पहुंचता है माना जाता है) तो नवजात गर्भ के पोषण के लिए अत्युत्तम वातावरण रहता है। गर्भ हो जाय तो श्लेष्मल कला और भी बढ़ती है जिसे decidua कहते हैं। यदि गर्भावस्थिति न हो तो परिवृद्ध श्लेष्मल कला टूट कर गिरने लगती है और रक्तस्राव होने लगता है।

(४) स्रावकाल—जब श्लेष्मल कला टूट कर गिरने लगती है तो गर्भाशय के आन्तरिक भाग

५—ऋतुस्तु द्वादशरात्रं भवति दृष्टार्तव।
सु. शा. ३.

आर्तवस्राव दिवसात् ऋतु षोडस रात्रय।
भाव प्रकाश.

६—ऋतौ व्यतीते नार्यास्तु योनि संव्रियते तथा (सु.

७—मासेनोपचितं काले धमनीभ्यां तदार्तवम्।
ईषत् कृष्णं विदग्धं च वायुर्योनि मुखं नयेत्॥
सु. शा.

में उद्व्रण की तरह अवस्था होती है और रक्त स्राव होने लगता है। गर्भाशय की श्लेष्मल कला कैसे टूट कर गिरती है इसका प्रत्यक्ष दर्शन एक वैज्ञानिक (Markee) ने एक मनोरञ्जक प्रयोग द्वारा किया है। उसने गर्भाशय की श्लेष्म कला को आंख के पारदर्शक भाग cornea में अवस्थित (graft) किया और जीवित रखा। उसने देखा कि उस श्लेष्मल कला के टुकड़े से भी प्रतिमास रक्तस्राव तथा उपर्युक्त दूसरे परिवर्तन होते हैं। रक्तस्राव के कुछ समय पहले ही रक्त परिवहन कुछ धीमा हो जाता है (stasis) और स्राव के तुरन्त पहले देखा गया कि चक्करदार (spiral) धमनियां सिकुड़ कर रक्तहीन हो जाती हैं और फिर कुछ समय बाद उसमें बहुत तेजी से रक्त प्रवाह होता है जिससे वह फट जाती है और श्लेष्म कला के नीचे रक्त स्राव हो जाता है।[1] इस रक्त स्राव से आसपास की श्लेष्मल कला को भी अपने आधार (Base) से अलग कर देती है और अन्त में बिलकुल अलग गिर जाती है। इस तरह से स्राव में टूटी श्लेष्म कला और रक्त बाहर निकलने लगते हैं जिसे मासिक धर्म कहते हैं जैसा कि प्रारम्भ में कहा गया है। यह ३-४ दिन या अधिक से अधिक एक सप्ताह तक रह सकता है।

गर्भाशय के उपर्युक्त निर्माण और विनाश के चक्र की तरह बीज ग्रंथि में भी परिवर्तन होता है। बीजग्रन्थि में लाखों की संख्या में अपरिपक्व बीजपुटक (Primordial follicles) जन्म से रहते हैं परन्तु युवावस्था न आने तक सब सुषुप्तावस्था में रहते हैं। युवावस्था होने पर प्रति मास एक-एक परिपक्व होने लगता है।

प्रकृत आर्तव चक्र में बीज परिपाक की क्रिया स्रावकाल से मानी जा सकती है। सर्वप्रथम बीजकोष (follicle) के आकार में वृद्धि होती है और उसके अन्दर एक द्रव पदार्थ (Liq. follicle) भरने लगता है जिसके एक तरफ बीज संलग्न होता है। १२-१६ दिन तक यह क्रिया पूर्ण हो हो जाती है और अन्त में बीज अपने कोष (follicle) को तोड़ कर बाहर निकल पड़ता है। इस क्रिया को बीजोत्सर्ग (ovulation) कहते हैं। बीज डिम्ब प्रणाली के द्वारा गर्भाशय की ओर अग्रसर होता है और खाली बीजकोष में नये प्रकार के कोषों का प्रादुर्भाव होता है जिनमें कुछ पीला पदार्थ होता है इसलिए इसे पीतपिण्ड (cropus luteum) कहते हैं। यह कुछ दिनों तक बढ़ता है। यदि इसी बीच उत्सर्गित बीज में गर्भाधान न हो तो उसका क्षय होने लगता है। क्षय होने के साथ ही मासिक धर्म प्रारम्भ होता है[1]।

इस तरह से देखते हैं कि गर्भाशय में होने वाले परिवर्तन का बीज की परिपाक क्रिया से निकट सम्बन्ध है। बीज ग्रन्थियों के निकाल दिये जाने पर गर्भाशय में परिवर्तन चक्र बन्द हो जाता है और मासिक स्राव भी बन्द हो जाता है। इसलिए यह अनुमान किया जा सकता है कि बीज ग्रन्थि से कोई पदार्थ गर्भाशय में उपर्युक्त परिवर्तन लाता है। प्रयोगों से बीज ग्रंथि से दो तरह के पदार्थों को शुद्ध रूप में प्राप्त किया गया है— Theelin या oestrin परिपाक होते हुए बीज कोष (Ripening follicle) से और Progestin या Progesterone पीत पिण्ड से। बीज ग्रंथि के निकाल दिये जाने पर भी इनके समुचित प्रयोग से आर्तव चक्र के गर्भाशयगत सभी परिवर्तन होते हैं और स्वाभाविक मासिक धर्म जैसा रक्तस्राव भी होता है इसलिए यह मानना पड़ेगा कि बीज ग्रन्थि उपर्युक्त स्रावों के द्वारा ही गर्भाशय में परिवर्तन कराती है। गर्भाशय के

१—ते द्वे धमन्यौ एव रक्तमभिवहतो, विसृजतश्च नारीणामार्तवं संज्ञम्। —सु० शा०।

1. It is the uterus who weeps on the death of ovum.

अतिरिक्त अन्य अङ्गों पर भी इन स्रावों का प्रभाव पड़ता है। स्त्री में यौवन के बाह्य लक्षण स्तन वृद्धि, आवाज बदलना, शरीर के विभिन्न स्थानों पर बालों का जमना तथा शरीर की विशेष प्रकार की बनावट इन्हीं स्रावों के द्वारा होती है। बचपन में ही बीजग्रंथि निकाल दिये जांय तो उपर्युक्त स्त्रीत्व के लक्षण नहीं उत्पन्न होते जैसे पुरुषों में अण्डकोषों के निकाल देने पर होता है।

जननेन्द्रियों के कार्य से सम्बन्धित बीज ग्रन्थि के अतिरिक्त दूसरी मुख्य ग्रन्थि पीयूष ग्रंथि (Pitui tarygland) है। यह मस्तिष्क तल में रहती है और इसे अन्तः स्रावी ग्रन्थियों में मुख्य कहना चाहिए। इससे कई अन्तःस्राव निकलते हैं जो विभिन्न अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का कार्य नियमन करते हैं। जननेन्द्रियों के संचालन के लिए पीयूष ग्रन्थि से तीन स्रावों (gonado-trophic hormones) का निर्माण होता है।

Prolan A–इसे बीज कोष बर्द्धक या पुटको त्तेजक स्राव (follicular stimulating hormone–F. S. H.) भी कहते हैं। इस स्राव के प्रभाव से बीज पुटकों में वृद्धि होती है। बीज पुटकों से oestrin का बनना भी इसी पर निर्भर करता है। इधर प्रयोगों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि oestrin के निर्माण के लिए दूसरे स्राव Prolan B की भी कुछ मात्रा में आवश्यकता होती है।

Prolan B-इसे पीतपिण्ड वर्धक स्राव (Luteal stimulating hormone-L. S. H.) भी कहते हैं। इसके प्रभाव से बीजोत्सर्ग हो जाने पर खाली बीज कोष का पीतपिण्ड में परिवर्तन होता है तथा पीतपिण्ड से Progestin भी उत्पन्न होता है यद्यपि यह कार्य अब तीसरे स्राव Prolactin से हुआ मानते हैं।

Prolactin:-इसे दुग्धजनक स्राव (Lectogenic hormone) और अब पीत पिंड के कार्यों से सम्बन्धित होने के कारण Luteotrophic भी कहते हैं। इस स्राव के कारण स्त्रियों में स्तन वृद्धि होती है और अब यह माना जाता है कि पीत पिंड से Progestron का निर्माण भी इसी स्राव पर निर्भर रहता है।

यह उल्लेखनीय है कि अपरा से भी पीयूष ग्रन्थि के स्रावों की तरह के स्राव निकलते हैं और अधिवृक्क ग्रन्थियों से Theelin, oestrin निकलता है परन्तु इन स्रावों का प्रकृत रजःस्राव में कोई प्रभाव सामान्यतः नहीं होता। इसी तरह से अन्य ग्रन्थियों के स्रावों की अल्पता या अधिकता विशेषतः Thyroid का Thyroxine का भी मासिक धर्म पर प्रभाव पड़ता है जैसे Thyroxin की कमी से Myxoedema में रजःस्राव बन्द हो जाता है।

मासिक रक्तस्राव का प्रत्यक्ष सम्बन्ध बीज-ग्रन्थियों के स्रावों से तथा बीज ग्रन्थियों द्वारा पीयूष 'थियों के स्रावों से होता है। प्रकृत् आर्तव चक्र में इन स्रावों का सम्बन्ध इस तरह होने की कल्पना उपर्युक्त विवरण से की जा सकती है। प्रत्येक आर्तव चक्र के पूर्वार्द्ध में पीयूष ग्रंथि से F. S. H. और कुछ मात्रा से L. S. H. निकल कर बीज ग्रंथि में बीज कोष की वृद्धि तथा उससे oestrin का निर्माण कराते हैं। oestrin से गर्भाशय में श्लेष्मल कला की वृद्धिकाल के परिवर्तन होते हैं। १२ से १६ वें दिन में बीज परिपक्व होकर उत्सर्जित हो जाता है तथा गर्भाशय की ओर अग्रसर होता है तथा अब रिक्त बीज कोष में पीत कोपाणुओं का उद्भव पीयूष ग्रन्थि के Prolan B. (L. S. H.) और Luteotrophic Hormone के प्रभाव से होता है और उसके द्वारा पीतकोष स्राव (Progestin) निर्माण होता है जिससे गर्भाशय में स्रावपूर्व काल के परिवर्त्तन होने लगते हैं। श्लेष्मल कला की रक्तवाहिनियों तथा श्लेष्मल ग्रन्थियों में वृद्धि होती है। गर्भ धारण होने तक यह क्रिया चलती रहती है। पीत पिंड भी बढ़ता

जाता है। और गर्भाशय की श्लेष्मल कला भी और मोटी हो जाती है। गर्भ धारण न होने पर जैसा पहले कहा जा चुका है सर्वप्रथम पीत पिंड में क्षय होने लगता है जिससे उसमें Progestin बनना बन्द हो जाता है। क्योंकि गर्भाशय की श्लेष्मल कला की वृद्धि इन्हीं स्रावों के द्वारा हुई है और उसकी अवस्थिति के लिए भी ये आवश्यक होते हैं। इस कारण पीत पिंड के क्षय के बाद इनकी कमी हो जाने से बढ़ी हुई श्लेष्मल कला टूट कर गिर जाती है।

पीयूषग्रन्थि के अग्रभाग, बीजग्रन्थि, गर्भाशयान्तरच्छद का न्यासर्गिक सम्बन्ध

चित्र नं० ३४

उपर्युक्त विवरण मासिक धर्म का अन्तः स्रावी ग्रन्थियों से सम्बन्ध की रूपरेखा सरल रूप में प्रस्तुत है और इससे यह भास हो सकता है कि आर्तव स्राव का कारण Progestin की कमी है परन्तु कभी बिना बीजोत्सर्ग के भी मासिक धर्म होता है जिसे Anovulatory menstruation कहते हैं। बीजोत्सर्ग के बिना पीत पिण्ड का निर्माण सम्भव नहीं है और पीत पिण्ड स्राव (Progestin) भी नहीं बन सकता अतः इस तरह के रजःस्राव का कारण पीत पिण्ड स्राव की कमी नहीं हो सकती है। पीत पिण्ड स्राव, oestrin तथा मासिक रज.स्राव के सम्बन्ध में एक प्रयोग का उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा। शरीर से दोनों बीज-ग्रन्थियों को शल्य क्रिया द्वारा निकाल दिये जाने पर २-४ दिन बाद ही गर्भाशय से मासिक धर्म रक्त-स्राव होकर सदा के लिये बन्द हो जाता है। यदि शल्य क्रिया के बाद oestrin दिया जाय तो उक्त रक्त स्राव नहीं होता परन्तु oestrin बन्द करने पर फिर रक्त स्राव होता है अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि बीज ग्रन्थि निकालने पर उससे निःसृत oestrin की कमी से रक्त स्राव हुआ है। oestrin देने पर न होना और बन्द करने पर फिर रक्त स्राव इसकी पुष्टि करता है। यदि oestrin देने के बाद पीत पिंड स्राव (Progestrin) दिया जाय तो तब तक रक्त स्राव नहीं होता जब तक Progestin दिया जाता है। Progestin के बन्द करने पर जो रक्त स्राव होता है वह oestrin देते रहने पर भी नहीं रुकता। इस वैषम्य की व्याख्या इस तरह से की जाती है कि गर्भाशय से होने वाला रक्त स्राव मुख्यतः oestrin की कमी से है। Progestin oestrin के अभाव से होने वाले परिणाम को रोकता है जिससे रक्त स्राव नहीं होने पाता। परन्तु साथ ही यह oestrin को भी निष्क्रिय

कर देता प्रतीत होता है अन्यथा तीसरे प्रयोग में भी रक्त स्राव नहीं होता क्यों कि oestrin दिया जा रहा था।

चित्र नं० ३५
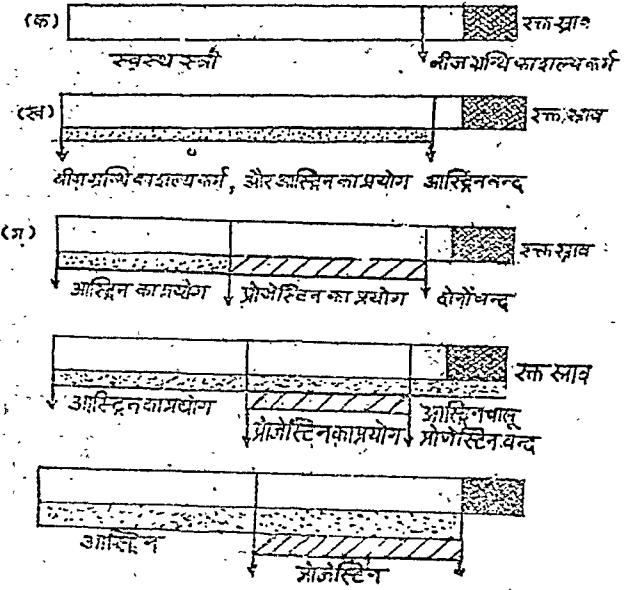
इन प्रयोगों के आधार पर यह कहा जाता है कि प्रकृत आर्तव चक्र में भी रक्त स्राव इसी तरह होता होगा क्यों कि प्रथम पक्ष में oestrin का उत्पादन रहता है द्वितीय में Progestin का तथा अन्तिम दिनों में दोनों का अभाव हो जाता है।

इस तरह से हम देखते हैं कि मासिक धर्म का अन्तः स्रावी ग्रन्थियों से निकट का सम्बन्ध है या कहा जा सकता है कि मासिक धर्म इन ग्रन्थियों के स्रावों का ही कार्य है। यह ज्ञान आजकल स्त्री रोगों में बहुत प्रयोग होता है। अनार्तव आदि अवस्था में पीयूष ग्रन्थि तथा बीज ग्रन्थियों के स्रावों का समुचित प्रयोग किया जाता है और लाभ होता है।

—डा० लोकेन्द्रसान सिंह ए० एम० एस०,
प्रो० आयुर्वेदिक कालेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

ऋतुकाल

श्री मनोहरलाल वैद्यराज

स्त्री को जिस दिन से आर्तव गिरे अर्थात् ऋतुमती हो तब से हिंसा रहित, ब्रह्मचर्या सहित कुशों की शय्या पर शयन करे और पति को देखे भी नहीं, हाथ में, मिट्टी के सकोरे में अथवा पत्तल में हविष्यान्न तीन दिवस पर्यन्त भोजन करे। रोना, नखों का काटना, तेल लगाना, चन्दनादि लेपन, नेत्रों में अंजन, स्नान, दिन का सोना, दौड़ना, आना जाना, अत्यन्त ऊंचे शब्द का सुनना, हंसना, अत्यन्त बोलना, परिश्रम, भूमि को नाखून आदि से खोदना और बहुत हवा में बैठना इत्यादि कार्य छोड़ देवे।

आजकल बहुत सी स्त्रियां मूर्खता से, प्रमाद अथवा प्रारब्ध के वशीभूत होकर आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट उपर्युक्त रजस्वला स्त्री के पालन करने योग्य नियमों की अवहेलना एवं उपेक्षा करती हैं। ऐसा अधिकतर आधुनिक अंग्रेजी एवं पाश्चात्य शिक्षा के रङ्ग में रङ्गी हुई युवतियां अथवा अधिक आयु वाली स्त्रियां करती हैं। वे इन उपर्युक्त नियमों को केवल पुस्तकों की विद्या या कपोल कल्पना कर त्याज्य समझ लेती हैं। उनका ऐसा करना भी किसी सीमा तक उनके मनोविज्ञान पर आधारित होता है और उनके मनोविज्ञान को जन्म देने वाली है उनकी पाश्चात्य ढंग की शिक्षा, जिसमें वे अपने धर्म शास्त्र, वेद, पुराण आदि को हेय और अंग्रेजी 'नॉवल' प्रेम तथा रोमांटिक रचनाओं को प्रेय समझती हैं। साथ ही उनमें वर्णित रीति-रिवाजों, फैशन व साजसज्जा की ओर नित्यप्रति आकर्षित होती जाती हैं। इसके अतिरिक्त प्रारम्भ से ही सिनेमा देखना भी उनकी मनोवृत्ति को दूषित कर देता है। अतः पाश्चात्य शिक्षा से प्रदत्त फैशन, साजसज्जा, तथा सिनेमा ने आधुनिक युवतियों की मनोवृत्ति को इतना दूषित कर दिया है कि वे आचार्यों द्वारा कथित नियमों को एक ढोंग या व्यर्थ की वस्तु समझती हैं जिसके परिणाम स्वरूप गर्भ दोष को प्राप्त होते हैं।

यथा—"रजस्वला स्त्री के रोने से बालक विकृत (विकारयुक्त) नेत्रों वाला होता है, नखों के काटने से बुरे नखों वाला और तैल लगाने से कुष्ठता को प्राप्त होता है। चन्दनादि का लेप और स्नान करने से दुःखित, अंजन लगाने से अन्धा, दिन में सोने से अत्यन्त निद्रायुक्त, दौड़ने से चंचल, अत्यन्त ऊंचे शब्द सुनने से बधिर होता है, हंसने से तालु, दांत, ओठ, जीभ ये श्याव होते हैं, अति
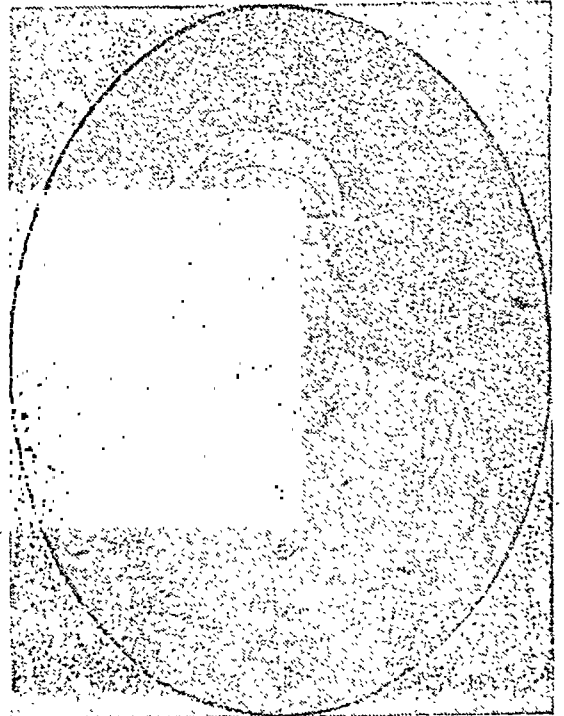
बोलने से बहुत बोलने वाला, परिश्रम करने से उन्मत्त, भूमि खोदने से चलते चलते गिरने वाला और वायु सेवन से उन्मत्त होता है।"

साथ ही रजस्वला को अन्य किसी पुरुष का ३ दिन तक ध्यान अथवा दर्शन भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि—

"पूर्वं प्रश्येहतुस्नाता यादृशं नरमङ्गना।
तादृशं जनयेत्पुत्रं ततः पश्येत्पतिं प्रियम्"।

इसका कारण यह है कि ऋतुमती स्त्री स्नानोपरांत जैसे पुरुष का प्रथम दर्शन करेगी। उसी के सदृश उसका पुत्र होगा। अतः वह अपने पति अथवा प्रिय पुत्र को ही स्नानोपरान्त देखे। यहां प्रिय पुत्र इस कारण कहा है कि यदि पति विदेश गया हो तो प्रिय पुत्र को ही देखे ताकि भविष्य में उसी के सदृश पुत्रोत्पत्ति हो। एसी जनश्रुति है कि एक अंग्रेज युग्म के एक श्याम वर्ण पुत्रोत्पत्ति पर बहुत आश्चर्य हुआ। खोज के बाद उसका कारण उस स्त्री का एक श्याम वर्ण पुरुष से शिक्षा प्राप्त करना ज्ञात हुआ। वह नित्यप्रति उसका दर्शन करती थी और उसके मानस पटल पर उस व्यक्ति की आकृति अङ्कित हो गई थी जिसके परिणामस्वरूप अंग्रेज पिता के सदृश पुत्र न होकर उसी श्याम वर्ण व्यक्ति के सदृश हुआ जिसका वह नित्य दर्शन करती थी। यह जनश्रुति हमारे उपर्युक्त आयुर्वेद के अन्य पुरुष अदर्शन के सिद्धान्त को कितना पुष्ट करती है।

इसके अतिरिक्त पुरुष को स्त्री से ऋतु स्नान के ३ दिन बाद तक संयोग न करना चाहिये क्योंकि ऋतुमती स्त्री से प्रथम दिन संयोग करने से आयु का क्षय होता है, दूसरे दिन गमन से रहे बालक का जीवित रहना दुर्लभ होता है और तीसरे दिन संयोग से उत्पन्न बालक भी विकल अङ्ग युक्त और अल्पायु होता है। इस कारण चौथी, छठी, आठवीं, दसवीं और बारहवीं रात्रि में विधिपूर्वक गर्भाधानोक्त रीति से स्त्री गमन करे। इससे आयु एवं आरोग्य की अधिकता तथा बल वृद्धि होती है। यही नहीं युग्म (सम) रात्रि में स्त्री गमन से पुत्र और अयुग्म (विषम) में गमन से कन्याएं उत्पन्न होती हैं जैसा कहा भी है—

"युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु"

अतः निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि स्त्रियों को सन्तान के कल्याण तथा सुन्दर व सशक्त भावी समाज के निर्माण के लिए ईश्वर प्रदत्त मातृत्व अधिकार का सदुपयोग करना चाहिए और मेरे विचार में उपर्युक्त आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट नियमों के सुचारु रूप से परिपालन से ही ऐसा होना सम्भव है।

—श्री पं० मनोहरलाल वैद्यराज
धन्वन्तरि भवन, मन्टोला,
पहाड़गंज नई दिल्ली।

ऋतुकाल

श्री हरिनारायण शर्मा वैद्य

कन्या के यौवनारम्भ काल में उसकी योनि से हर महीने में खून की तरह स्राव हुआ करता है। इसे ऋतु, आर्तव या महिनावारी कहते हैं। आर्तव होने के समय कन्या की 'ऋतुमती' या 'रजस्वला' संज्ञा होती है। ऋतु होने पर वह 'स्त्री' कहलाती है। उसका कन्यापन नष्ट हो जाता है। जब वह से

पहल आर्तव होता है तो वह रजोदर्शन कहलाता है।

आर्तव होने पर–गुप्त स्थान में बाल निकलने लगते हैं। स्तनों की वृद्धि होती है और उसके मन की प्रवृत्ति भी बदल जाती है। एक बार आर्तव होने पर दूसरी बार २८ दिनों पर हुआ करता है। आर्तव का बहाव प्रायः ३ दिनों तक अधिक होता है। चतुर्थ दिवस भी अत्यल्प स्राव रहता हैं। किसी किसी स्त्री को ६ दिन तक निकला करता है। ६ दिनों से अधिक जारी रहना अथवा महीने में ३-४ बार होजाना या होते समय पेड़ू कमर आदि में दर्द होना रोग की निशानी है।

आर्तव का पूर्व रूप (आगम)—

आवर्त स्राव के पांच छः दिन पहले शरीर में आलस्य, भोजन में अरुचि, कमर, कूल्हा और पेड़ू स्थान में भारीपन मालूम होता हैं। पैरों में फूटन रहती है, योनि से कुछ स्राव होता और स्त्रियों के मिजाज़ में चिड़चिड़ापन मालूम होता है।

मासिक स्राव क्यों होता है—

यह एक स्वभाविक बात है प्राकृतिक है। इसके होने पर गर्भाशय इस योग्य हो जाता है कि अन्य विघ्नों के न रहते स्त्री पुरुष के संयोग होने पर गर्भ धारण कर सके।

आर्तव में महीने भर की विकृति मिली रहती है। इस लिए आर्तव कुछ काला और बदबूदार होता है। ठीक समय रक्त स्राव होने से स्त्रियों का शरीर शुद्ध हो जाता है निखर जाता है। उनका चेहरा प्रसन्न मालूम होता है और शरीर हल्का।

रक्त स्राव का समय–साधारणतः रजो दर्शन १२ वर्ष के बाद से शुरू हो जाता है और ५० के बाद और ६० के पहले बन्द होता है। प्रत्यक्ष रूप से किसी किसी को १९-१५ वर्ष में रजो दर्शन होता है। इसके कारण ठंडे देशों और उच्च विचार वाले समाज में रहना, श्रृंगार रस के वातावरण से दूर रहना रोगाक्रान्त होने से खून की कमी आदि हैं। इसी प्रकार शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थता, पौष्टिक पदार्थों का भोजन, चञ्चल प्रकृति, खट्टा-मीठा चरपरा गर्म आहार, काम सम्बन्धी बातों का सुनना देखना, पढ़ना, करना, गर्म मुल्क में रहना आदि विशेष कारणों से बहुतों को रजो दर्शन जल्दी हो जाता है। वात कफ पैदा करने वाले, खुश्क स्निग्ध आहार विहार से, शोक चिन्ता रोग आदि से किसी का आर्तव अल्प आयु में ही बन्द हो जाता है।

गर्भ रहने के बाद जब तक गर्भ पैदा नहीं होता तथा पैदा होने के बाद भी कई महिनों तक स्त्री रजस्वला नहीं होती। कारण यह है कि गर्भ के बाद नीचे की तरफ आर्तव बहाने वाली नलियों का मुंह गर्भ से रुक जाता है। इस कारण आर्तव का बहाव ऊपर की तरफ हो जाता है। कुछ अंश से अपरा नामक भिल्ली बनती है और कुछ अंश से स्तन में जाकर दूध बन जाता है। इसलिए दूध भर जाने से गर्भिणी का स्तन मोटा होता है।

आर्तव का सिद्धान्त—

मासिक रजः स्राव के विषय में चिकित्सा शास्त्र का सिद्धान्त है कि १२-वर्ष के बाद रजः स्राव हो ही जाता है। यदि कारण वश बाहर प्रकट न हो
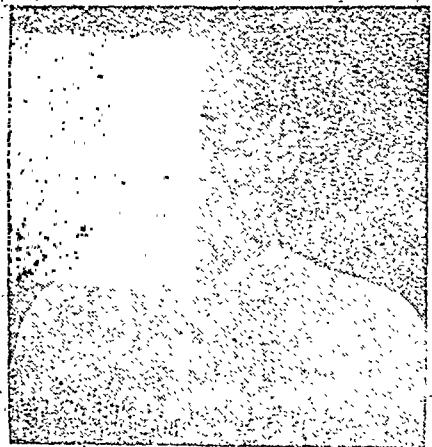
किन्तु अन्दर ही अन्दर अवश्य प्रकट हो जाता है। कटहल एवं गूलर में प्रत्यक्ष फूल नहीं देख पड़ता किन्तु पुष्प का विकास अन्दर अवश्य रहता है क्यों कि बिना फूल के फल नहीं होता। रजःस्राव का एक नाम 'पुष्प' भी है।

द्वादशाब्दे व्यतीतेतु यदि पु० बहिर्नहि।
अन्तः पुष्पं भवत्येव पनसोदुम्बरादिवत्॥

बहुत सी ऐसी स्त्रियां भी देखी गई हैं कि जिन्हें प्रकट रूप में मासिक धर्म नहीं होता किन्तु अपने समय पर उन्हें संतानें होती रहती हैं।

ऐसी स्त्रियों की पहचान—(१) चेहरा-हरा भरा और खुश, (२) शरीर विशेषतः मुख एवं दांतों के मसूढ़ों में रूक्षता-खुश्की नजर नहीं आती अर्थात् आर्द्रता रहती है। (३) संभोग की इच्छा, किस्सा कहानी सुनने में मन अधिक लगता है। (४) कोख एवं आंखों में ढीलापन, बार बार केश बांधते रहने पर भी केश खुल कर बिखर जाते हैं। (५) बाहें स्तन-कमर-नाभि-जाघें-जघन (नाभि के नीचे और भग के ऊपर वाला स्थान, पेडू) तथा चूतड़, शरीर के इन अवयवों में फरकन अधिक रहती है।

ऋतुकाल—

जिस दिन रजः स्राव हो उसी दिन से १६ दिन तक ऋतुकाल माना जाता है। इन दिनों में गर्भाशय विकसित रहता है और इन्हीं दिनों में गर्भ स्थिति होती है। बाद में गर्भाशय में बीज का प्रवेश नहीं होता। इन १६ दिनों में पहले ३ दिन, जब कि अधिक रजः स्राव होता है, संभोग करना स्त्री पुरुष दोनों के लिए हानिकारक होने से त्याज्य है। अन्तिम १६ वें दिन गर्भाशय में संकोच रहता है अतः १६ वें दिन गर्भ स्थिति होने में पूरा संदेह रहता है। इस लिए बीच का १२ दिन ही गर्भ स्थापन के लिए उत्तम होता है। अच्छी या खराब संतान होने में ऋतु काल के रहन सहन का असर अधिक पड़ता है अतः ऋतुकाल के आहार विहार का ज्ञान परमावश्यक है।

श्री पं० हरि नारायण शर्मा वैद्य,
श्री पूर्णचन्द्र औषधालय,
प्रतापगढ़ (अवध)

ऋतुकाल चर्या

श्री पं० वागीशदत्त वैद्य

आर्तव श्राव जब उन अबोध बच्चियों को जो प्रथम स्राव को यह भी नहीं जानती कि यह क्या बला है अपने दैनिक कार्य अज्ञानवश यथापूर्व करती रहती हैं, इस दशा में दैनिक निर्वाह किस प्रकार किया जावे, नितान्त अनभिज्ञ होती हैं। लज्जावश घर में भी किसी को ज्ञात नहीं होता। विवाहोपरान्त पति के घर पर जब अधिक कष्ट होता है तब चिन्ता होती है। वर्ष दो वर्ष में भीषण परिस्थितियों में से निकलती हैं।

जब पारिवारिक स्त्रियों को ज्ञान होता है तब चिकित्सा कराने के साधन एकत्रित किये जाते हैं। इस दशा से ये अग्रणी बनने वाली वृद्धायें यदि परिचिता होती हैं तो चिकित्सा ठीक होजाती है, अन्यथा मृत्यु का आखेट बनती ही हैं। परामर्श के लिये यदि एलोपैथिक डाक्टर के समीप पहुँच गई तो रहा सहा भाग्य भी नष्ट हो जाता है। ये जीवन के ठेकेदार सूची भेदों की भरमार कर देते हैं और रोग को असाध्यावस्था तक पहुँचा

देते हैं। वे अबोध बालिकायें जीवन से हाथ धो बैठती हैं। हताश हुई वैद्यों के समक्ष पहुंचती हैं। वैद्य जी ने यदि ऋतुकाल चर्या के नियम बतलाये तो ये वृद्धायें जो इनकी अग्रणी बन कर जाती हैं वे कहती हैं हमारी आयु तो ऐसी ही निकल गई हमने तो ये खट करम कभी नहीं किये "चल री चल" इसे कुछ भी नहीं मालूम। अन्ततोगत्वा घुनी हुई लकड़ी की तरह दुर्दशा होती है। भाग्य अच्छा है तो कुछ आयु व्यतीत हो जाती है यथा तथा, नहीं तो परिणाम वही मृत्यु है, अथवा बन्ध्यत्व दोष।

योनि दोष से, मन सन्ताप से, शुक्र, आर्त्तव (रज) और आहार विहार दोष से ऋतुकाल व्यतीत होने पर या निषिद्ध दिनों में पुरुष के साथ संयोग होने से, दुर्बलता से स्त्रियां बन्ध्या न होती हुई भी देर से गर्भ धारण करती हैं, या करती हीं नहीं। इस समय किन किन नियमों का पालन करना चाहिये अथवा किन किन को नहीं करना चाहिये, अधोलिखित चरक संहितोद्धृत पंक्तियों में पढ़िये।

ततः पुष्पात्प्रभृति त्रिरात्रमासीत् ब्रह्मचारिण्यधः शायिनी पाणिभ्यामन्नमजर्जरपात्रे भुञ्जाना न च कांचिन्मृजामापद्येत्, ततश्चतुर्थेऽहन्येनामुत्साद्य सशिरस्कं स्नापयित्वा शुक्लानि वासांस्याच्छादयेत्पुरुषं, च ततः शुक्लवाससौ स्रग्विणौ समनसावन्योऽन्यमभि कामौ संवसेतामिति ब्रूयात्। —चरक शारीर

स्त्री तीन दिन तक रजोधर्म के प्रथम दिवस से लेकर ब्रह्मचारिणी रहे, उसके नियम इस प्रकार हैं। पृथ्वी पर शयन, फूटे पात्रों में भोजन, हाथों पर रख कर भोजन, अथवा किसी भी प्रकार का शरीर पर आभूषण या सजावट, स्नान, लेपन आदि न करे। ऋतु काल समाप्त होने पर चौथे दिन मौसम के तथा देश काल, बल के अनुसार यथा रुचि जल से स्नान करे। यदि चौथे दिन भी समाप्त न हो तो जिस दिन समाप्त हो उसी दिन स्नान करे? क्यों कि कभी कभी दो चार दिन या इससे भी अधिक दिनों में समाप्त होता है, किन्तु यह अवस्था विकृति की जाननी चाहिये, यथा स्थान इसकी चिकित्सा लिखूंगा।

सुश्रुत मत से ऋतुकाल के नियम अधोलिखित हैं।

ऋतु प्रथम दिवसात् प्रभृति ब्रह्मचारिणी दिवास्वप्नाञ्जनाश्रुपातः स्नानानुलेपनाभ्यङ्ग नखच्छेदन प्रधावन हसनकथनाति शब्द श्रवणावलेखनानिलायासान् परिहरेत्। किंकारणम्? दिवा स्वपन्त्याः स्वापशीलोऽञ्जनादन्धोरोदनाद्विकृतदृष्टिः स्नानानुलेपनाद् दुःख शीलस्तैलाभ्यङ्गात् कुष्ठी नखापकर्त्तनात् कुनखी प्रधावना च्चञ्चलो हसनाच्छयाव दन्तौष्ठतालुजिह्वः प्रलापीचातिकथनात्। अति शब्द श्रवणात् बधिरोऽवलेखनात् खलतिर्मारुतायास सेवनात् उन्मत्तो गर्भो भवतीत्येवमेतान् परिहरेत्। एतान्भावान्कुर्यात् दर्भ संस्तर शायिनीं करतल शराव पर्णान्यतम भोजिनीम्-हविष्यं त्र्यहञ्च भर्तुः संरक्षेत्।

जिस दिन से ऋतुधर्म हो उसी दिन से ब्रह्मचर्य के व्रतों का पालन दृढ़ता से इस प्रकार करे—दिन में सोना, आंखों में सुर्मा आदि लगाना, चिन्ता शोकादि से रोना, स्नान करना, उबटन मलना, तेल लगाना, नाखून काटना, भागना, हंसना, बहुत बोलना, ऊंचे बोले हुए शब्दों का सुनना, बालों का काढ़ना, अधिक वायु का सेवन तथा परिश्रम इत्यादि उपर्युक्त व्यवहार छोड़ दे। किस हेतु? दिन में सोने से, हर समय सोने के स्वभाव वाला, सुर्मा आदि लगाने से अन्धा, रोने से भेंड़ा अथवा टेढ़ा तिरछा देखने वाला, नहाने तथा उबटन लगाने से दुखी स्वभाव वाला अर्थात् सदा दुखी, तैल मलने से कोढ़ी, नाखन काटने से टेढ़े काले वर्ण वाले नाखूनों वाला, भागने से चञ्चल स्वभाव वाला, हंसने से काले दांत, ओठ तथा तालु जिह्वा वाला, और बहुत बोलने से बकवादी, ऊंचे शब्द सुनने से बहिरा, बाल काढ़ने से गंजा, अधिक वायु सेवन से पागल-

पन, इत्यादि भावों से युक्त बच्चा होता है। अतः उपर्युक्त विरोधी भावों को छोड़ दे।
अधो लिखित भावों के पालन का प्रयत्न करे।

कुशाओं से निर्मित आसन पर शयन, हाथों में लेकर शकोरे और ढाक के पत्तों पर रख कर भोजन, पति के हविष्य की तीन दिन अच्छी प्रकार सुरक्षा करे। तदुपरान्त स्नान के द्वारा शुद्ध हुई चौथे दिन साधारण श्वेत वस्त्रों को पहिने हुये, स्वस्तिवाचन अग्निहोत्रादि से निवृत्त होकर प्रथम पति के दर्शन करे। इन नियमों का पालन करती हुई यथेच्छ सन्तान लाभ करके सुखमय जीवन व्यतीत करे।

परम पिता प्रभु की सृष्टि में मानव जाति की विभिन्न प्रकार की मतियां हैं (विचित्र रूपाः खलु चित्त वृत्तयः मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना) इन दोनों उक्तियों के अनुसार प्रत्येक मनुष्य अपने अपने विचार रखता है। तद्वत् प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति भी वात, पित्त, कफ के अनुसार है। बहुत सी स्त्रियां नियम विरुद्ध आचरण करती हुई भी कुछ ठीक रहती हैं इसका कारण क्या है? उदाहरणार्थ, कोई स्त्री जिसकी प्रकृति पैत्तिक है वह ऋतु समय में स्नान करती रहती है किन्तु अधिक विकृति नहीं होती, इसके विपरीत वातिक श्लैष्मिक प्रकृति वाली को ऋतु काल सम्बन्धी अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं यथा—श्वेत, रक्त, पीत, नील वर्ण का द्रव पदार्थ सर्वदा योनि मार्ग से स्रवता है, तथा शिर में पीड़ा, कमर पीड़ा, गर्भाशय में असह्य पीड़ा, वस्ति में पीड़ा, मासिक रक्त स्राव बहुत कमी के साथ आना, पिंडलियों में ऐंठन, दौर्बल्य, अरुचि, आलस्य इत्यादि उपद्रव इस समय हो जाते हैं। सदा रोगिणी ही बनी रहती है। अधिक समय होने पर ज्वर भी होने लगता है जो कि शनैः शनैः यक्ष्मा का रूप धारण कर लेता है।

प्रायः शत् प्रतिशत् स्त्रियों को प्रदर होता ही है। अपनी चिकित्सा में जिन स्त्रियों के सम्मुख मैंने शास्त्रीय नियम ऋतुकाल के समय बतलाये, उन्होंने श्रद्धा पूर्वक उनको कार्यान्वित किया। वे प्रायः सम्पूर्ण उपद्रवों से मुक्त हो स्वास्थ्य लाभ कर रही हैं। ऋतुधर्म में भी अनियमितता न रही। अधिक उपद्रवों को औषधियों से शान्त कर दिया। विशेषेण स्नान न करना अधिक लाभ प्रद हुआ।

इन उपद्रवों के लिए मेरा अनुभव (रजः प्रवर्तनी वटी और पुष्यानुग चूर्ण ने प्रशंसनीय कार्य किया) हुआ है। कीकड़ के क्वाथ से योनि प्रक्षालन शौचादि के समय बहुत उपकारी प्रमाणित हुआ।

यह प्रायः निश्चित ही है कि ऋतुकाल के विकृत होने से गर्भ स्थिति में बाधा अवश्य पड़ती है। बहुत काल तक सन्तान न होना स्त्री समाज में भी अभिशाप है महान् दुख का स्थान है। विभिन्न प्रकार के दुःखों से बचने के लिए ही कृपालु ऋषियों ने पथ्यापथ्य का वर्णन विस्तरेण किया है, चिकित्सा की भी समुचित और सर्व सुगम विधि लिखी है।

चरक ने ऋतुकाल के उपरान्त गर्भ धारण विधि सर्व सुविधानुसार लिखकर बल पूर्वक ऐच्छिक सन्तानोत्पत्ति के लिए भी लिखा है।

स्नानात्प्रभृति युग्मेष्वहःसुसंवसेतां पुत्रकामौ, अयुग्मेषु दुहितृकामेषौ।

स्नानोपरान्त पुत्र की इच्छा वाले स्त्री पुरुष युग्म (दूसरे, चौथे, छठे आदि) दिनों में और पुत्री की कामना वाले अयुग्म (पहिले, तीसरे, पांचवें, सातवें) दिनों में सहवास करें।

पूर्वं पश्येद्दतु स्नाता यादृशं नरमङ्गना।
तादृशं जनयेत्पुत्रं भर्त्तारं दर्शयेदतः॥
ततो विधानं पुत्रीयमुपाध्यायः समाचरेत्।
सु. शा.।

स्नानोपरांत चतुर्थ दिन जैसे पुरुष को स्त्री देखती है वैसे ही आकार तथा चेष्टाओं वाले पुत्र को जन्म देती है। अतः जैसे भी हो प्रथम पति के ही दर्शन करे। यदि पति उपस्थित न हो तो पति

का चित्र देखले, यदि यह सम्भव न हो सके तो स्वयं ही शीशा देखले। यह क्यों? इस समय स्त्री के आभ्यन्तरीय दोषों की शान्ति होने से सौम्य एवं सात्विक गुणों का प्राधान्य होता है, मलीन वस्त्र पर रंग शीघ्र नहीं चढ़ता किन्तु धौत श्वेत वस्त्र पर रंग का प्रभाव शीघ्र होता है। अतः दयालु तथा उपकार परायण महर्षियों को भय था कि अबोध लोक त्रुटि न कर जाये, सुसन्तानोत्पत्ति करने में असमर्थ रहे, पूर्ण रीत्या संकेत कर दिया है। विद्वान् वैद्य पुत्रोत्पत्ति विधान को सुविज्ञापित करादे।

ततोऽपराह्णे पुमान् मासं ब्रह्मचारी सर्पिः स्निग्धः सर्पिः क्षीरभ्यां शाल्योदनं भुक्त्वा मासं ब्रह्मचारिणीं तैलस्निग्धां तैलमाषोत्तराहारां नारीमुपेयाद्रात्रौ सामादिभिरभिविश्यास्य विकल्प्यैवं चतुर्थ्यां षष्ठ्यामष्टम्यां दशम्यां द्वादश्यां चोपेयादिति पुत्रकामः।

पुरुष एक मास तक ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ और घृत से अच्छे प्रकार स्निग्ध हुए घृत दुग्ध के साथ साठी के चावलों का भोजन करके एक मास तक तैल से स्निग्ध ब्रह्मचारिणी रहती हुई, तैल, उड़द के खाने वाली स्त्री के साथ रात्रि में संयुक्त हो। समान तिथियों की इस प्रकार कल्पना करे, चौथी, छठी, आठवीं, दशमी, बारहवीं, इत्यादियों में पुत्र की इच्छा से संयुक्त होवे।

एषूत्तरोत्तरं विद्यादायुरारोग्यमेव च।
प्रजासौभाग्यमैश्वर्यं बलं च दिवसेषु वै॥

सु. शा.

उपर्युक्त तिथियों में भी आगे-आगे की अर्थात् एक से एक आगे की तिथि उत्तम मानी है। आयु आरोग्यता, सौभाग्यशाली सन्तान, ऐश्वर्य और बलवान् इन गुणों से युक्त सन्तान होती है।

इसके विपरीत पुत्री की कामना वाले स्त्री पुरुष के लिए पांचवीं, सातवीं, नवमी, ग्यारहवीं तिथि उत्तम है। तेरहवीं से आगे की निन्द्य है।

मूढ तथा इन्द्रिय लोलुप व्यक्ति प्रथम, द्वितीय दिनों की चिन्ता नहीं करते उनके सम्बन्ध में सुश्रुत का कथन इस प्रकार है—

प्रथम दिवस ऋतुकाल का मनुष्यों की आयु क्षीण करता है और जो गर्भ रहता है वह गिर जाता है। दूसरे दिवस का भी इसी प्रकार जच्चा घर में ही मर जाता है। तृतीय दिन भी इसी प्रकार अथवा पूर्णाङ्गों वाला थोड़ी आयु वाला होता है। चौथे दिन जिसका गर्भ धारण हुआ है वह सम्पूर्ण अङ्गों तथा बड़ी आयु वाला होता है। बहते हुए रक्त में डाला हुआ वीर्य गुणकर नहीं होता जैसे नदी के बहाव की ओर डाला हुआ द्रव्य उसी ओर बह जाता है ऊपर को नहीं जाता, वापिस आता है इसी प्रकार वीर्य भी व्यर्थ जाता है। इस कारण नियम वाली ऋतुकाल की तीन रात्रि छोड़ दें। एक मास गर्भ धारण का चले जाने पर पुत्रेच्छा वाली स्त्री यह विधि करे—

लक्ष्मणा, बड़ के अंकुर, सहदेई, विश्वदेवी इनमें से एक-एक पृथक्-पृथक् को लेकर अथवा सबको लेकर दुग्ध में पीस कर तीन या चार बूंदें नाक के दक्षिण वाले छिद्र में डाले और थूके नहीं। इस विधि से करने से जिस प्रकार पानी, खेत, बीज, ऋतु इन चारों के उचित मात्रा में होने से निश्चित अंकुर निकलता ही है उसी प्रकार सुन्दर परिपुष्टांग, दीर्घ आयु, बुद्धिमान ऋण चुकाने वाला अर्थात् पितृ ऋण प्रदाता सुपुत्र उत्पन्न होता है।

—श्री पं. वागीशदत्त वैद्य आयुर्वेदाचार्य
गाजियाबाद

मानवी की ऋतु कालचर्या

वैद्य नागेशदत्त शुक्ल

ऋतु रञ्जनाया रजस्समय इति । सोऽयं ऋतुः रजोदर्शन दिवसादारम्भ्य षोड़श रात्रमिति गण्यते । —डल्हण ।

नारी के बारह वर्ष या उससे अधिक यथादेश शरीर पुष्टिकाल में प्रथम रजोदर्शन के बाद प्रत्येक मास में ऋतुकाल सोलह रात्रि का होता रहता है। इन सोलह रात्रियों को अप्रशस्त काल व प्रशस्त काल में विभाजित किया जा सकता है। पहिले चार दिनों की चर्या को अप्रशस्त काल ऋतुचर्या कहते हैं।

ऋतौ प्रथम दिवसाद् प्रभृति ब्रह्मचारिणीं दिवास्वप्नाञ्जनाश्रुपात स्नानानुलेपनाभ्यङ्ग नखच्छेदन प्रधावन हसन कथनातिशब्दश्रवणावलेखनानिलायासान् । किं कारणम् ? दिवा स्वपन्त्याः स्वापशीलः, अञ्जनादंधः, रोदनाद्विकृतदृष्टिः, स्नानानुलेपना दुःखशीलः, तैलाभ्यङ्गाद्कुष्ठी, नखापकर्तनाद् कुनखी, प्रधावनाच्चलः, हसनाच्छ्यावदन्तोष्ठतालुजिह्वः, प्रलापी चाति कथनाद्, अतिशब्दश्रवणाद् वधिरः, अवलेखनाद् खलितः, मारुतायास सेवनादुन्मत्तो गर्भो भवतीत्येवमेतान् परिहरेत् । दर्भ संस्तर शायनीं करतल शराव पर्णान्यतम भोजनीम्, हविष्यं, त्र्यहं भर्तुः संरक्षेत् । —सु. शा. २-२५ ।

ततः पुष्पाद् प्रभृति त्रिरात्रिमासीत् ब्रह्मचारिण्यधः शायिनी पाणिभ्यामन्नमजर्जराद् पात्राद् भुंजाना च । न च काचिन्मृजामापद्येत । च. शा. ।

स्थावर सृष्टि की ऋतुकाल चर्या से मानवी ऋतुकाल चर्या अत्यन्त श्रेष्ठ है। मानवी की शारीर भूमि को ही नहीं मनो भूमि को भी श्रेष्ठ बनाना होता है। नारी की ऋतुकाल चर्या में प्रथम नियम है ब्रह्मचारिणी रहना चाहिए। ब्रह्मचर्य व्रत में शरीर और मन दोनों पर संस्कार किये जावे हैं। नारी के ऋतुकाल में जिस प्रकार मन होता है उसी प्रकार के सत्व गर्भ में उपस्थित होते हैं। मन ही संकल्प का केन्द्र है। भाव विकारों का केन्द्र मन है। मन में ही रीति के लिए काम या वासना का जन्म होता है। मन भूतात्मक व ज्ञानात्मक (उभयात्मक) इन्द्रिय है। काम मन में ही उत्पन्न होता है अतः मनसिज-मानसयुक्त है। जितना श्रेष्ठ मन होगा उसी के अनुसार उसके संकल्पादि विकार भी उतने ही श्रेष्ठ होंगे। अतः ऋतुकाल में काम भू मन को पवित्र करने के लिए मनु भगवान ने जो उपदेश साधारण ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्य काल के लिए बतलाये हैं वे ही उपदेश इस कालिक ब्रह्मचारिणी के लिए आयुर्वेद के ऋषियों ने बतलाए हैं। ब्रह्मचर्य व्रत के लिए मनु कहते हैं :—

> वर्जयेन्मधुमांसं च गंधं माल्यं रसान्स्त्रियः ।
> शुक्लानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ।।
> अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरूपानच्छत्रधारणम् ।
> कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादिनम् ।।
>
> —मनु अ० २।

प्रत्येक व्यक्ति की आयु जब कि १०० वर्ष की मानी जाती हो, उसका एक चतुर्थांश काल २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन का कहलाता है। इन २५ वर्षों तक कुमार और कुमारी को मनु के नियम पालने पर जीवन उत्कर्षमय तेजस्वी हो जाता है। इस ब्रह्मचर्य पालन का परिणाम ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणी के निज के जीवन पर पड़ता है किन्तु रजस्वला ब्रह्मचारिणी के ब्रह्मचर्य का परिणाम इससे होने वाली संतति पर पड़ता है। मनु ने जो नियम ब्रह्मचर्याश्रम के बतलाये हैं, उनमें से कुछ नियम रजस्वला ब्रह्मचारिणी

को बतलाने में चिकित्सा साम्प्रदायिकों ने छोड़ दिये हैं तथापि ब्रह्मचारिणी कथन से शेष अन्य नियमों का भी अध्याहार किया जा सकता है। तदनुसार उनसे होने वाली हानि की कल्पना भी जा सकती है।

रजस्वला ब्रह्मचारिणी का नियम चक्र

नर-नारी के ब्रह्मचर्याश्रम के मनूक्त नियम	रजस्वला ब्रह्मचारिणी के नियम	निषिद्धाचरण से पुत्र पर होने वाले परिणाम।
दिन में निद्रा निषिद्ध	दिन निद्रा निषिद्ध	निद्रालु
मधु भक्षण निषिद्ध	अध्याहार	
मांस भक्षण निषिद्ध	अध्याहार	
मांसरस भक्षणं निषेध	अध्याहार	
स्त्री सहवास निषेध	पुरुष सहवास निषेध	विकलाङ्ग अल्पायु संतति
सिरका (तेज अम्ल)	अध्याहार	
प्राणि हिंसा निषेध	अवलेखनाद्	खलतिः
	नख काटने से	खराब नख वाला
तेल लगाना निषेध	तेल लगाना निषेध	कोढ़ी
अंजन (काजल) निषेध	अंजन निषेध	अंधा
	रोना निषेध	दृष्टि दोष
जूता छाता निषेध	एक ही कोठरी में रहने पर अकथित निषेध	
	मलिनावस्था होने से स्नान निषेध	दुःखी-रोगी
काम-क्रोध-लोभ-निषेध	हंसना निषेध	दांत ओठ तालु जीभ में कालापन
नाचना निषेध	दौड़ना निषेध	चंचल
	ज्यादा वायु सेवन व श्रम निषेध	पागल
गाना निषेध	ज्यादा बकवास निषेध	प्रलापी
वाद्य वादन निषेध	अति शब्द श्रवण निषेध	बहरा
फूटे बर्तन में खाना निषेध	फूटे बर्तन में खाना निषेध	

नारी या पुरुष के शरीर में जो विकार होते हैं, उनका प्रभाव उनके शुक्र और रज में आता है। सन्तति में भी उसी प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं। अतः नारी पुरुष के रज वीर्य को निर्दोष करने के लिए पुनर्वसु आत्रेय कहते हैं कि—

अथास्येतौ स्त्रीपुंसौ स्नेहस्वेदाभ्यामुपपाद्य, वमन विरेचनाभ्यां संशोध्य क्रमेण प्रकृतिमापादयेत्। संशुद्धौ चास्थापनानुवासनाभ्यामुपाचरेत्। उपाचरेच्च मधुरौषध संस्कृताभ्यां घृतक्षीराभ्यां पुरुषं स्त्रियं तु तैलमाषाभ्याम्।

च. शा. ८-४

स्त्री पुरुषों को पहले स्नेहन स्वेदन कर्म करावे बाद में वमन विरेचन द्वारा शरीर शुद्ध होने पर आस्थापन व अनुवासन वस्ति देवे। जब शरीर शुद्ध हो जाये तब जीवनीय मधुरौषधियों से संस्कृत शुक्रवर्धक घी दूध पुरुष को, तैल उड़द आदि आर्तववर्धक द्रव्य नारी को खिलावे। इस प्रकार स्त्री पुरुष के निर्दोष शरीर हो जाने के बाद स्त्री जब रजस्वला हो और उसकी अप्रशस्त ऋतु-कालचर्या जब समाप्त हो जाये उसके बाद प्रशस्त ऋतुकालचर्या के सम्बन्ध में आचार्य कहते हैं—

ततः शुद्धस्नातां चतुर्थेऽहनि अहतवासः समलङ्कृताम् कृतमंगलस्वस्तिवाचनाम् भर्तारं दर्शयेत्। ततः कस्य हेतोः ? पूर्वं पश्येदृतुस्नाता यादृशं नरमङ्गना। तादृशं जनयेद् पुत्रं भर्तारं दर्शयेदतः॥ सु. शा. २-२६

ऋतुमती स्त्री को चौथे दिन स्नान कराके सुन्दर वस्त्रालङ्कार धारण करावे, मंगलवाचन स्वस्त्ययन के बाद, उस स्त्री के पति का प्रथम दर्शन करावे। ऋतु स्नाता स्त्री जिस प्रकार के पुरुष का प्रथम दर्शन करती है, उसी स्वरूप के पुरुष के अनुरूप पुत्र उसके गर्भ से उत्पन्न होता है। ऋतुस्नाता स्त्री की प्रथम दृष्टि से गृहीत पुरुष छाया उसके मन रूपी दर्पण पर पड़ती है। सहवास के पूर्वकाल तक ऋतुस्नाता को प्रातः सायं उसी स्वरूप का दर्शन करते रहना चाहिए।

पुत्रीय विधान—

ततो विधानं पुत्रीयमुपाध्यायः समाचरेत्। कर्मान्ते च कर्म ह्येतमारभेत विचक्षणः। ततोऽपराह्णे पुमान् मासं ब्रह्मचारी सर्पिः स्निग्धः, सर्पिः क्षीराभ्यां शाल्योदनंभुक्त्वा मासं ब्रह्मचारिणीं तैलस्निग्धां तैलमाषोत्तराहारां नारीमुपेयाद्रात्रौ सामभिरभिविश्वास्य, विकल्प्यैवं चतुर्थ्याम् षष्ठ्यामष्टम्यां दशम्यां द्वादश्याम् चोपेयादिति पुत्रकामः। एषूत्तरोत्तरं विद्यादायुरारोग्यमेव च। प्रजासौभाग्यमैश्वर्यं बलं च दिवसेषु वैः॥ अतः परं पंचम्यां नवम्यामेकादश्यां च स्त्रीकामः, त्रयोदशीप्रभृतयो निन्द्याः। सु. शा. २-३०

चौथे दिन पुरोहित धर्मशास्त्रानुसार पुत्रीय विधान करावे। इसके बाद पति पत्नी जो कि गतमास से ब्रह्मचर्य व्रत धारण करते आये हैं घृताहारी पति घी दूध से चावल खावे और तैल से स्निग्ध ऋतुस्नाता तैल में तले हुये उड़द आदि का आहार करे। दोनों में प्रिय मानस वन्धनों से आकृष्ट होने पर रात्रि में पुत्र कामना से सम रात्रि में, कन्या कामना से विषम रात्रियों में सहवास करे। आर्तवकाल में उत्तरोत्तर काल सन्तति के लिए आयु आरोग्य एश्वर्य सम्पत्ति और वलादि देने वाला होता है।

यदि नारी चाहती है कि उसका पुत्र गौर वर्ण भगवान् कृष्ण की लुभावनी आंखों वाला, ओजस्वी पवित्र महामना हो तो उसे ऋतु स्नान के बाद चांदी या कांसे के बर्तन में जौ का सफेद सत्तू, घी मधु में मिलाकर, सफेद बछड़े वाली सफेद गाय के दूध के साथ भूख के समय सवेरे शाम एक सप्ताह तक खाना चाहिए। सवेरे शाम चावल से बने पदार्थ दही दूध घी शहद से देना चाहिये। संध्या काल में पहिनने, ओढ़ने, बिछाने, बैठने, सोने, व रहने के कमरे में (कमरा भी) सब सफेद रंग के होने चाहिये। भोजन द्रव्य से लेकर उन दिनों उनका सारा संसार सफेद रंग का सतोगुणी सुन्दर होना चाहिए। सवेरे शाम, सुन्दर सफेद वर्ण का मस्त सांड़ या सफेद घोड़ा या सफेद चन्दन से बने अङ्गद नामक अलङ्कार का दर्शन करना चाहिये। इन दिनों प्यारी मनोहर मीठी-मीठी सात्विक कथायें सुननी चाहिये। इतना ही नहीं, मिलने वाले साथी स्त्री पुरुष भी सभ्य सफेद वस्त्र धारण करने वाले ही चाहिये। इस प्रकार पति पत्नी को प्रिय मधुर व्यवहार करते हुए सात दिन ब्रह्मचर्य पूर्वक बिताने चाहिये। आठवें दिन पति पत्नी शिर से खूब स्नानादि कर के सुन्दर सफेद नए वस्त्र अलङ्कार व मालायें धारण करें। शुद्ध मन से श्रेष्ठ चिन्तन के सम्बन्ध में आचार्य कहते हैं कि—

स्त्री जैसे पुत्र की कामना करती हो, वह उसी पुत्र कामना के अनुसार मन से उन देशों का स्मरण करे और उसी प्रकार उन देशों के मनुष्यों के आहार विहार वस्त्र धारणादि का अनुकरण करे। उससे इस प्रकार की पुत्र कामनायें पूर्ण होती हैं।

शुद्धर्तु काल—

स्त्री का प्रशस्तकालिक ऋतु बारह दिन का होता है। किन्तु आर्तव के न होने पर भी स्त्री ऋतुमती होती है। उसमें भी ऋतुमती के लक्षण पाये जाते हैं।

ऋतुस्तु द्वादशरात्रं भवति दृष्टार्तव, अदृष्टार्तवोऽप्यस्तीत्येके भाषन्ते। (सु. सू. ६-६)

ऋतुमती स्त्री में लक्षण तो पाये ही जाते हैं। अदृष्टार्तव स्त्री में निम्न लिखित लक्षण होते हैं—

पीन प्रसन्न वदनां प्रक्लिन्नात्म मुखद्विजाम्।
नरकामां प्रियकथां स्रस्तकुक्ष्यक्षि मूर्धजाम्॥
स्फुरद् भुज कुचश्रोणि नाभ्युरुजघनस्फिचाम्।
हर्षौत्सुक्यपरां चापि विद्यादृतुमतीमिति॥
स. शा. ३-७-८।

चेहरा भरा हुआ प्रसन्न, आत्मा मुंह मसूड़े गीले, आंख कुक्षि केश शिथिल, हाथ छाती नाभि कमर, और जघन भाग में फड़कन, उत्साह हर्ष, प्रिय से मिलने की अभिलाषा, और प्रिय की चर्चा में चित्त लगा रहता है। प्रशस्तकाल के बारह दिन बीत जाने पर अत्यल्प द्वार बन्द हो जाता है।

नियतं दिवसेऽतीते सङ्कुचत्यम्बुजं यथा।
ऋतौ व्यतीते नार्यास्तु योनिः संव्रियते तथा॥
सु. शा. ३-६

सहवास विधि—

आचार्य पुनर्वसु ऋतुस्नाता के साथ सहवास की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए कहते हैं—

ऋतु स्नाता स्त्री और उसका पति सफेद वस्त्र व मालायें धारण करें। पुत्र पुत्री कामना में क्रमशः सम विषम रात्रियों में सहवास करें। करवट लेटे या विपरीत रति न करे क्यों कि औरत की अवरति में बलवान वायु योनि को पीड़ित करता है। दाहिनी करवट में गर्भाशय च्युत कफ गर्भाशय द्वार को आवृत करता है। बांई करवट में पित्त के द्वारा रक्त और वीर्य दोनों जलते हैं। इससे स्त्री को उत्तान अवस्था में ही सहवास गर्भोपकारक है।

नारी के पुराने रज के बह कर चले जाने पर, नये फूल के आने पर, जिस स्त्री की योनि एवं गर्भाशय निर्दोष हो, ऋतुस्नाता होने के बाद उसे ऋतुमती कहते हैं। उस ऋतुस्नाता के साथ, निर्दोष वीर्य संपन्न पति जब सहवास करता है तब सर्वाङ्ग से अत्यन्त हर्ष से प्रेरित शरीर का सर्वश्रेष्ठ शुक्र रूप धातु, आनन्दितावस्था में स्त्री योनि के द्वारा गर्भाशय के आर्तव बीज से सम्मिश्र होकर नारी को फूलवती कर देता है। मानवी के वसन्त के फल समुदाय का नाम ही मानव संसार है। अतः मानव समाज को मानवी ऋतुकालचर्या के पालन करवाने में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

वैद्य नागेशदत्त शुक्ल आयुर्वेदाचार्य
जालना (बम्बई राज्य)

स्त्रियों का स्नान

श्री पं० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी B. A.

स्त्रियों का स्नान—

(अ) रजःस्वला की दशा में—जब तक रजःस्राव होता है तब तक स्त्री की शुद्धी केवल स्नान से नहीं होती। आर्तव स्राव के बन्द हो जाने पर ही उसकी शुद्धि स्नान द्वारा होती है। अतः ऐसी दशा में आयुर्वेदानुसार स्नान, अनुलेपन, अभ्यङ्गादि का निषेध किया गया है और कहा गया है कि स्नान और अनुलेपन (उद्वर्तन) से आगे गर्भधारण होने पर जो बालक होता है, वह दुःखशील (चिड़चिड़े स्वभाव वाला, तुनुक मिजाजी) होता है और तेलाभ्यङ्ग से कुष्ठी या त्वचा के रोगों से युक्त होता है यथा—

स्नानानुलेपनाद् दुःखशीलः तैलाभ्यंगात्कुष्ठी इत्यादि। (सु. शा. अ. २)

हमारे मत से रजःस्वला को प्रतिदिन स्नान तो करना ही चाहिए, किन्तु विशेष उष्ण जल से नहीं करे। कारण उष्ण आहार विहार से गर्भाशय में रक्ताधिक्य (Congestion) होकर आर्तवस्राव की प्रवृत्ति होती है, जिससे गर्भस्थिति भी मुश्किल से हो पाती है तथा गर्भस्थिति होने पर उक्त उष्णता से उसका दुःखशील होना स्वाभाविक है। तेलाभ्यङ्ग भी उष्ण और त्वग्भेदी होने से बालक को त्वग्रोग होना सम्भव है। अतः अच्छी तरह पूर्णांग स्नान, आर्तवस्राव के बन्द हो जाने के पश्चात् ही करना चाहिये तभी वह शुद्ध स्नाता कहलाती है। इस प्रकार पूर्णांग स्नान करने से बाह्य और आभ्यन्तर दोष दूर होकर गर्भाशय की शुद्धि होती है। यही यहां शुद्ध स्नाता का तात्पर्य है। ❀

(आ) गर्भवती का स्नान—ताजे शीतल जल से या सुखोष्ण जल से गर्भवती स्नान करती रहे किंतु आसन्न प्रसवा को तो अवश्य ही अभ्यंग व उष्णोदक से स्नान करना हितकारी होता है। शरीर की तथा जननेन्द्रिय सफाई होकर, मांस पेशियां कार्यक्षम होती हैं तथा वह प्रसव वेदनाओं को भली प्रकार सह सकती है। इसीलिए कहा है—

प्रजनशिष्यमांणां............स्वभ्यक्तामुष्णोदक परिषिक्तामथैनां......इत्यादि। —सु. शा, अ. १०।

डाक्टर जेलेट का कथन है–It is also a good thing for the patient to have warm bath during the primonitary stage.

(इ) प्रसूतावस्था—में भी प्रतिदिन तेलाभ्यङ्ग के पश्चात् एक या दो बार उष्णोदक से, निर्वात स्थान में भलीभांति बाह्य जननेन्द्रिय तथा सर्वांशरीर की सफाई करते हुए स्नान कराना चाहिए। जिससे जननेन्द्रिय की बाह्य भाग की खराबी का प्रवेश अन्दर न होने पावे, अन्यथा योनिमार्ग एवं गर्भाशय में सदाह शोफ आदि विकारों की संभावना है। स्नान कराते समय तथा स्नान के पश्चात भी प्रसूता को बाह्यशीत हवा से बचाते रहना आवश्यक है, अन्यथा कई प्रकार की वातजन्य व्याधियों की संभावना है।

—श्री पं. कृष्णप्रसाद त्रिवेदी B. A. आयुर्वेदाचार्य
धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

❀ जीर्णशोणितापगमेनान्तः शुद्धा स्नानेन वहिः शुद्धा स्त्री शुद्ध स्नाता भवति। शुद्धा जीर्ण शोणितापगमेनअनन्तरं स्नाता इति शुद्ध स्नाता (डल्हण)। तथा च नवे तनौ च संजाते विगते जीर्ण शोणिते। नारी भवति संशुद्धा पुंसा संसृज्यते तदा।

स्त्री की औदरीय एवं योनि परीक्षा

दाऊदयाल गर्ग ए., एम. बी. एस.

चिकित्सा शास्त्र में रोग विनिश्चय का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। रोग का ठीक निदान होने पर चिकित्सा में अधिक सुगमता आ जाती है। रोग का निदान ठीक ही हो इसके लिए चिकित्सक को यह आवश्यक है कि जिस संस्थान से सम्बन्धित लक्षण रोगी में मिलते हों उस संस्थान की परीक्षा पूर्णतः करे। रोग के ठीक निदान न होने का कारण अधिकतर यह रहता है कि चिकित्सक शीघ्रतावश अथवा अपनी अज्ञानतावश बहुत से ऐसे स्थलों की परीक्षा नहीं करता जो कि उस रोगी के रोग निदान के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध होते। स्त्रियों की चिकित्सा में तो यह कठिनाई और भी अधिक बढ़ जाती है। रोगी के संकोच के कारण उसका परीक्षण ठीक प्रकार से नहीं हो पाता तथा रोग का भी सही-सही अनुमान नहीं हो पाता है। स्त्रियों के रोग का सही ज्ञान करने के लिए उसके उदर की तथा गुप्तांगों का क्रमशः एवं पूर्ण परीक्षण अत्यन्त आवश्यक है।

औदरीय परीक्षा—

उदर की परीक्षा के लिए स्त्री को कपड़े उतार कर परीक्षणार्थ रखी हुई समतल मेज पर लेटना चाहिए। यदि उदर कड़ा प्रतीत हो तो उसको अपने घुटने संकुचित कर लेने चाहिए जिससे कि उदर की मांस पेशियां ढीली हो जावें। मूत्राशय एवं मलाशय खाली होने चाहिये। उसके पश्चात् निम्न प्रकार से परीक्षण करें—

दर्शन—

जहां पर परीक्षा की जाय वहां पर पर्याप्त प्रकाश होना चाहिए। उदर का आकार एवं उसकी आकृति देखनी चाहिए। यह देखने का प्रयत्न करें कि उदर के कुक्षि प्रदेश (Hypogastric region) या उदर के किनारों पर कोई भारीपन तो नहीं है। त्वचा की दशा भी देखें। गर्भावस्था के पश्चात् उदर पर पड़ने वाली सफेद सी रेखाओं (Linea albicantis) को देखें जिससे कि यह ज्ञात हो सके कि इस स्त्री को पूर्व कोई गर्भ स्थित हुआ था या किसी अन्य कारण से उसके उदर में वृद्धि हुई थी। इसके अतिरिक्त उदर पर किसी प्रकार के दाने तो नहीं हैं यह भी देखें।

स्पर्शन—

उदर की दर्शन परीक्षा के पश्चात् क्रमशः स्पर्श परीक्षा करनी चाहिए। इस परीक्षा में सफलता प्राप्त करने के लिए यह ध्यान रखना आवश्यक है कि पूरे परीक्षण स्थल की परीक्षा करें। परीक्षा करने में धीरे से दबायें एवं यदि सर्दी हो तो रगड़ कर अपने हाथों को गर्म कर लें। यदि किसी कारण से यह पूर्व ही ज्ञात हो जाय कि रोगी को अमुक स्थान पर दबाने से अधिक दर्द होता है तो उस स्थान का परीक्षण सबसे बाद में करें क्योंकि यदि उस स्थल की परीक्षा हम पूर्व ही कर लेंगे तो रोगी दर्द के भय से फिर अन्य स्थलों की परीक्षा सुगमतापूर्वक नहीं करने देगा। स्पर्श परीक्षा में अंगुलियों के सिरों की अपेक्षा यदि समतल हाथ (flat hand) का प्रयोग करें तो अधिक उत्तम है क्योंकि इससे बिना अधिक दर्द किये रोगी के उदर के अधिक अन्दर तक की दशा ज्ञात की जा सकती है।

यदि रोगी के पेट में कड़ापन मिले तो यह ज्ञात करने का प्रयास करें कि यह कड़ापन मांस-पेशियों के कारण है अथवा उदर के अन्दर स्थित किसी अंग का कड़ापन है। यदि कड़ापन मांस-

पेशियों के कारण है तो यह रोगी के मुंह खोल कर गहरी सांस लेने से दूर हो सकता है अथवा रोगी से बातचीत के द्वारा या अन्य किसी प्रकार से उसका ध्यान अपने उदर परीक्षण से हटा कर किया जा सकता है। यदि यह कड़ापन अन्दर स्थित किसी अङ्ग के कड़ा होने के कारण है तो उपरोक्त प्रयासों से वह दूर नहीं होगा।

इस स्पर्श परीक्षा के द्वारा चिकित्सक यह ज्ञात करने में समर्थ होता है कि स्फीत (सूजन-swelling) स्थिर है अथवा गतिशील, ठोस है अथवा द्रवयुक्त। यदि स्पर्श परीक्षा से ऐसा ज्ञात हो कि उदर गुहा में जल है तो उदर की परीक्षा करते समय अपनी अंगुलियों को एक दम गहरा गढ़ा कर यह ज्ञात करने का प्रयास करें कि इस जल के नीचे कोई ठोस वृद्धि तो नहीं है। उदर की परीक्षा करते समय केवल श्रोणि प्रदेश की परीक्षा न करके पूरे उदर की परीक्षा करनी चाहिए। तरल पूरित सूजन (cystic swelling) उदर की जल तरंग (fluid thrill) द्वारा ज्ञात की जा सकती है।

अंगुलि ताडन (*Percussion*)—इससे हम यह ज्ञात करने में समर्थ होते हैं कि शोथ युक्त अंग सीधा ही औदरीय भित्ति के सम्पर्क में है (ऐसी स्थिति में मन्द ध्वनि (*dull*) होगी) अथवा भित्ति एवं उस अङ्ग के बीच में कोई आंत्र आदि का भाग आ गया है (ऐसी स्थिति में सौषिर (*resonance*) ध्वनि होगी) यदि रोगी की विभिन्न स्थितियों के अनुसार उदर पर मन्द ध्वनि का स्थान भी बदलता जाय तो यह उदर गुहा में किसी तरल पदार्थ के उपस्थित होने का द्योतक है। उत्तान स्थिति में उदर के दोनों पार्श्वों पर मन्द ध्वनि का होना आंत्रावरक कलाकोष (*Peritoneal cavity*) में स्वतन्त्र तरल (*Free fluid*) होने का सूचक है।

श्रवण परीक्षा (*Auscultation*)—अर्बुद एवं गर्भ युक्त गर्भाशय के सापेक्ष निदान में यह परीक्षा अत्यन्त महत्व पूर्ण है। अर्बुद के रोगी में श्रवण परीक्षा करने पर किसी भी प्रकार की ध्वनि नहीं मिलेगी। लेकिन बड़े सौत्रिकार्बुद के रोगी में श्रवण परीक्षा करने पर हृदय की ध्वनि से मिलती जुलती एक ध्वनि सुनाई दे सकती है जिसे कि (*Souffle*) कहते हैं।

स्त्री के गुह्याङ्गों की परीक्षा—

स्त्री के गुप्तांगों की परीक्षा करने की तीन भिन्न स्थितियां हैं। प्रत्येक स्थिति से कुछ लाभ एवं कुछ हानियां है।

१—लीथोटोमी की स्थिति (*Lithotomy Position*)—यदि रुग्णा का परीक्षण बेहोश करके करना हो तो सबसे अधिक अच्छी स्थिति यही रहती है। इसमें रुग्णा उत्तान स्थिति में लेटती है। उसका स्फिक् प्रदेश मेज के एक किनारे पर रहता है तथा उसकी जंघाओं को उदर के ऊपर संकुचित कर दिया जाता है तथा बंधन बांध कर यह स्थिति रखी जाती हैं (चित्र ३६)। यदि परीक्षा करते समय किसी संज्ञाहर द्रव्य का प्रयोग नहीं किया गया है तो जितने कम कपड़े हटाने से कार्य हो सके उतने ही कपड़े हटायें। रुग्णा का विश्वास प्राप्त करने के लिये एक पुरुष चिकित्सक के लिये यह अत्यावश्यक है।
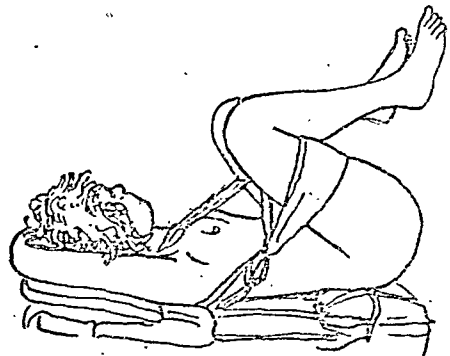
चित्र ३६

२—सिम की स्थिति (*Sim's Position*)—इस स्थिति में रुग्णा अपनी बांई करवट से लेटती है। बांया हाथ पीछे की ओर निकाल देती है। तथा दांया घुटना बांये घुटने की अपेक्षा अधिक ऊपर मोड़ दिया जाता है। योनि विस्फारक यंत्र द्वारा अथवा अंगुलियों के द्वारा परीक्षा करने के लिए यह स्थिति बहुत अच्छी रहती है।

चित्र ३७

३—पृष्ठीय स्थिति (*Dorsal Position*)—इसमें रुग्णा पीठ के बल लेटती है तथा अपने घुटनों को संकुचित कर लेती है। इस स्थिति में यद्यपि गुप्ताङ्गों को ठीक प्रकार से देखा नहीं जा सकता तथा योनि विस्फारक यंत्र का प्रवेश भी आसानी से नहीं होता तथापि द्विहस्तीय परीक्षण (*Bimanual examination*) के लिए यह सबसे अच्छी स्थिति है। (चित्र ३८)
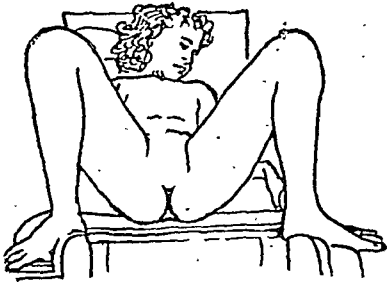
चित्र ३८

परीक्षा विधि—

चिकित्सक को चाहिए कि वह रुग्णा की परीक्षा एक व्यवस्थित ढंग से करे जिससे कि कोई भी स्थल परीक्षा करने से छूट न जाय क्योंकि हो सकता है कि रोग का अधिष्ठान उसी स्थल पर हो जो कि परीक्षा करने से रह गया है। सर्व प्रथम यह देखें कि योनि से किसी प्रकार का स्राव तो नहीं होता। भगोष्ठों एवं भगशिश्निका पर किसी प्रकार का कोई व्रण, अथवा वृद्धि अथवा सूजन आदि तो नहीं है यह देखें। इसके पश्चात् दोनों भगोष्ठों को प्रथक कर बाह्य मूत्र द्वार पर कोई बृद्धि (growth) तो नहीं है यह देखें। इसके पश्चात् मूत्र मार्ग (urethra) को पीछे से सामने की ओर दबायें तथा यह देखें कि उससे निकलने वाला तरल पूय युक्त तो नहीं है। योनिच्छद की परीक्षा करें। इसके पश्चात् अपने दाहिने हाथ की तर्जनी अंगुली से (हाथ में रबड़ का दस्ताना पहन कर तथा अंगुली पर कोई चिकनाई लगाकर) योनि नलिका का निरीक्षण करें। योनि का निरीक्षण करते समय प्रथम उसकी भित्तियों की श्लक्ष्णता, शिथिलिता एवं आर्द्रता को देखें। योनि की भित्ति में कोई वृद्धि तो नहीं है अथवा उससे कोई बाह्य पदार्थ तो नहीं चिपटा हुआ है यह ज्ञात करें। इसके पश्चात् योनि के पूर्व एवं पश्चात् दोनों अंगों का निरीक्षण करें। योनि के किसी कोण में कोई रुकावट अथवा योनि के बाहर के किसी अंग के शोथ के कारण वहां पर कोई सूजन प्रतीत हो तो उसे ज्ञात करें। दो व्रणों के रोपण के समय कोई बन्धन (cicatrical band) तो नहीं बन गया यह भी देखें। इसके पश्चात् योनि के अन्तर्गत रहने वाली गर्भाशय ग्रीवा की परीक्षा करें। इसकी खरता, श्लक्ष्णता, आकार एवं आकृति तथा इसके मुख की दिशा देखें। गर्भाशय ग्रीवा की श्लैष्मिक कला में कभी-कभी छोटी-छोटी जल ग्रंथियां (retention cysts) उत्पन्न हो जाती हैं। जिसके कारण श्लैष्मिक कला पर बिन्दु से उठे हुए प्रतीत होते हैं (dotted feeling)। गर्भाशय बहिर्मुख (External os) को देखें। यह कुमारी

एवं निःसन्तान स्त्रियों में बहुत छोटा मिलता है लेकिन जिस स्त्री के कई बच्चे हों उसमें यह इतना चौड़ा तक मिल सकता है कि एक अंगुली आसानी से अन्दर चली जाय । सामान्यतः इतना अधिक विस्फार गर्भाशय अन्तर्द्वार तक नहीं मिलता लेकिन जब गर्भाशय के अन्दर कोई ऐसा पदार्थ हो जब कि गर्भाशय उसे बाहर निकालने का प्रयत्न कर रहा हो तो ऐसी स्थिति में अन्तः द्वार का विस्फार बहिर्द्वार की अपेक्षा अधिक होगा। गर्भाशय ग्रीवा किसी एक किनारे पर अथवा दोनों किनारों पर कटी मिल सकती है तथा ऐसी स्थिति में इसके किनारे बाहर की ओर मुड़े हुए मिलते हैं। गर्भाशय ग्रीवा पर सौत्रिकार्बुद (cervical myoma) अथवा किसी घातक अर्बुद की उपस्थिति मिल सकती है। कभी-कभी गर्भाशय ग्रीवा तक अत्यन्त कठिनाई से पहुंचा जाता है। ऐसा उस स्थिति में होता है जब कि डौगलास के थैले (pouch of Douglas) में किसी अर्बुद के भर जाने के कारण भार अधिक होने से गर्भाशय ग्रीवा ऊपर की ओर खिसक जाय अथवा गर्भयुक्त गर्भाशय के पश्चात्-भ्रंश में भी ऐसी स्थिति मिल सकती है।

द्वि-हस्तीय परीक्षा (Bimanual Examination)-

इस परीक्षा का उद्देश्य गर्भाशय का आकार, उसकी स्थिति एवं गति शीलता, डिम्ब ग्रंथियों तथा बीज बाहिनियों की दशा ज्ञात करना है। इसमें रुग्णा अपनी पीठ के बल लेटती है तथा घुटनों को ऊपर की ओर सिकोड़ लेती है। चिकित्सक को रुग्णा के दोनों पैरों के मध्य में खड़ा होना चाहिए तथा अपने दाहिने पैर को एक त्रिपादिका पर रख लेना चाहिए जिससे कि दांये हाथ से जब परीक्षा की जाय तो वह अपने घुटने पर रखा जा सके—(चित्र ३६)। परीक्षा करने से पूर्व मूत्राशय का मूत्र निकाल देना चाहिए। अब योनि में तर्जनी एवं मध्यमा दो अंगुलियां प्रविष्ट करें। हाथ में रबड़ के दस्ताने पहन लेने चाहिए तथा घृत अथवा अन्य कोई चिकिनी वस्तु लगा लेनी चाहिए। यदि योनि छोटी हो अथवा किसी शोथ आदि के कारण दो अंगुलियों के प्रविष्ट करने से योनि में शूल होता हो तो केवल तर्जनी अंगुली का प्रविष्ट करना ही अधिक बुद्धि-मत्ता पूर्ण होगा क्योंकि शूल होने पर योनि की पेशियां स्वतः ही कड़ी हो जायगी और फिर परीक्षण करना और भी कठिन होगा।

चित्र ३६

बांये हाथ को श्रोणि प्रदेश (hypogastrium) पर रखा जाता है। दोनों हाथों के बीच में श्रोणि प्रदेश के अंग प्रत्यंग स्पर्श किये जाते हैं।

सर्व प्रथम गर्भाशय ग्रीवा की दिशा देखें। अब दाहिने हाथ की अंगुलियों को योनि के पूर्व कोण (Ant. fornix) में ले जांय तथा दोनों हाथों के द्वारा गर्भाशय के स्कन्ध (fundus) को देखें। यदि गर्भाशय पूर्व विवर्तन (Anteversion) की अवस्था में है तो यह स्पर्श होगा जब कि सामान्य दशा में यह दोनों हाथों के बीच में नहीं आयेगा। अब अपनी अंगुलियों को योनि के पश्चात् कोण में ले जांय। सामान्य अवस्था

में गर्भाशय का स्कन्ध भाग दोनों हाथों के बीच में नहीं आयेगा। लेकिन कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि डौगलास के थैले (pouch of Douglas) में कोई अबुंद आदि स्थित हो लेकिन उसको हम गर्भाशय स्कन्ध समझने लगें तथा पश्चात् विवर्तन अथवा पश्चादवनमन (retroversion or retroflexion) का शक करने लगें। कभी-कभी औरदीय भित्ति की कठिनता अथवा उसके अधिक मोटा होने के कारण गर्भाशय का प्रतीत करना ही असम्भव हो सकता है। अन्दर की अंगुलियों के ऊपर गर्भाशय उठाने से यह भी मालूम किया जा सकता है कि गर्भाशय अपने सामान्य आकार में है अथवा छोटा या बड़ा है। इस विधि को गर्भाशय भार मापन (weighing of the uterus) कहते हैं।

गर्भाशय की स्थिति एवं उसकी दशा ज्ञात करने के पश्चात् बीज वाहिनी नलिका एवं डिम्ब कोप की परीक्षा करें। यदि आपने दाहिने हाथ की अंगुलियां योनि में प्रवष्ट की हैं तो गर्भाशय के दाहिनी ओर रहने वाले अंगों को आप अपेक्षाकृत अधिक सुगमता से स्पर्श कर सकेंगे। बांये हाथ से उदर के ऊपर से गर्भाशय को दबायें तथा दाहिने हाथ की अंगुलियों से गर्भाशय एवं बीज वाहिनी नलिका के सन्धि स्थल को स्पर्श से ज्ञात करें। बीज वाहिनी नलिका बांये हाथ की अंगुलियों पर लुढ़कती हुई ज्ञात होती है। सामान्य अवस्था में बीज वाहिनी नलिका का ज्ञात करना कठिन ही होता है। लेकिन यदि वह किसी कारण से कुछ मोटी है तो बहुत आसानी से ज्ञात हो जाती है।

इसके पश्चात् दाहिने डिम्ब कोष को स्पर्श करने का प्रयत्न करें। डिम्ब कोष (ovary) चिकनी अण्डाकार तथा गतिशील ग्रन्थि है। सामान्य अवस्था में यह अंगुली की पकड़ में न आकर इधर उधर फिसल जाती है। वास्तविकता यह है कि डिम्ब कोष का अंगुलियों से फिसल जाना ही बीज वाहिनी नलिका एवं डिम्ब कोष में किसी भी प्रकार के शोथ के न होने का द्योतक है।

बायीं ओर के इन्हीं अंगों की परीक्षा बांये हाथ की अंगुलियों को योनि में प्रविष्ट करके तथा दाहिने हाथ को उदर पर रखकर करनी चाहिए।

यदि उपरोक्त परीक्षा से श्रोणि गह्वर (Pelvic cavity) में कोई अबुंद जान पड़े तो उसका आकार एवं उसकी दृढ़ता तथा उसका सम्बन्ध गर्भाशय से है या नहीं यह ज्ञात करना चाहिए। यह अबुंद गर्भाशय से पृथक् है अथवा उससे सम्बन्धित है यह ज्ञात करने के लिए योनि में प्रविष्ट अंगुलियों से गर्भाशय को स्थिर कर लें तथा दूसरे हाथ से अबुंद इधर उधर हटायें। अबुंद के गर्भाशय से सम्बन्धित होने की दशा में गर्भाशय अबुंद की स्थिति के अनुसार हटता प्रतीत होगा।

गुद परीक्षा—

इस मार्ग द्वारा श्रोणि गह्वर में रहने वाले उन अङ्गों का स्पर्श किया जाता है जिन तक कि योनि मार्ग द्वारा पहुँचना कठिन या असम्भव है यथा पक्ष बन्धनिका स्नायु (Broad ligament of the uterus) का आधार, गर्भाशय ग्रीवा का योनि से ऊपर की ओर रहने वाला भाग। इसके अतिरिक्त योनि के पश्चात् कोण में ज्ञात किये गये अबुंदों के बारे में भी थोड़ी बहुत जानकारी प्राप्त की जा सकती है। कुमारियों में कभी-कभी योनि मार्ग द्वारा गर्भाशय की परीक्षा करना कठिन पड़ता है या वह तैयार नहीं होतीं तो गर्भाशय की आकृति, स्थिति, गतिशीलता, आकार एवं भार आदि गुद मार्ग से ही ज्ञात किये जा सकते हैं।

स्त्री गुह्याङ्गों की यन्त्र द्वारा परीक्षा—

योनि विस्फारक यन्त्र—यह निम्न प्रकार के होते हैं:—

१—फारगूसन का योनि विस्फारक (Fergusson's speculum)—यह एक नाड़ी यन्त्र है जिसका कि
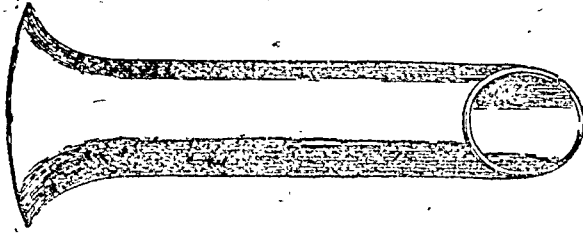
चित्र ४०

योनि से बाहर रहने वाला सिरा बाहर की ओर को मुड़ा होता है (चित्र ४०)। यह कई आकार के आते हैं जो कि सुविधानुसार प्रयोग किये जा सकें। यदि योनि द्वार बहुत छोटा है जैसा कि अक्सर कुमारियों में होता है तो इसके प्रवेश में अत्यन्त कठिनाई होती है लेकिन जब यह योनि में प्रविष्ट हो जाता है तो इसमें से गर्भाशय ग्रीवा अन्य विस्फारिकों की अपेक्षा अधिक आसानी से दिखाई देती है तथा इसको बाहर निकालते समय योनि की भित्तियां भी साफ दिखाई देती हैं। योनि में प्रविष्ट करते समय रुग्णा को कोई परेशानी न हो यह ध्यान रखना चाहिए। प्रथम इसको साधारण गर्म कर लेना चाहिए तथा इससे कोई चिकनी वस्तु लगायें। बांये हाथ से दोनों भगोष्ठों को पृथक् करें तथा अगले सिरे को योनि द्वार पर रखकर दृढ़तापूर्वक दबायें तथा तब तक दबाये रखें जब तक कि वह पूर्णतः अन्दर प्रविष्ट नहीं हो जाता है।

२—सिम का योनि विस्फारक (Sim's speculum)—प्रारम्भ में यह केवल मूत्राशय एवं योनि के बीच के नासूर पर शल्य कर्म करने में प्रयोग किया था लेकिन अब इसका व्यापक प्रयोग होने लगा है। इस विस्फारक में विभिन्न नाप के दो नतोदर सिरे होते हैं जो कि एक हत्थे के द्वारा आपस में जुड़े रहते हैं (चित्र ४१)। इसका प्रयोग को सिम की स्थिति में लिटाकर किया जाता है तथा इससे गर्भाशय ग्रीवा एवं योनि भित्तियां

चित्र ४१
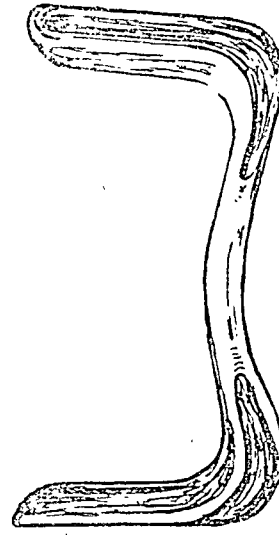
बिलकुल साफ देखी जा सकती हैं। इसका अधिकतर प्रयोग शल्य कार्य में ही किया जाता है। इसमें एक कठिनाई यह है कि इसको पूरे समय पकड़े रहना पड़ता है लेकिन अब इसमें एक परिवर्त्तन करके यह कठिनाई दूर कर ली गई है। अब योनि में प्रविष्ट होने वाला एक ही सिरा रखा जाता है तथा दूसरा सिरा काफी वजनी बना दिया जाता है जिससे कि भार के कारण वह अपने आप नीचे लटका रहता है उसे पकड़े रहने की आवश्यकता नहीं रहती।
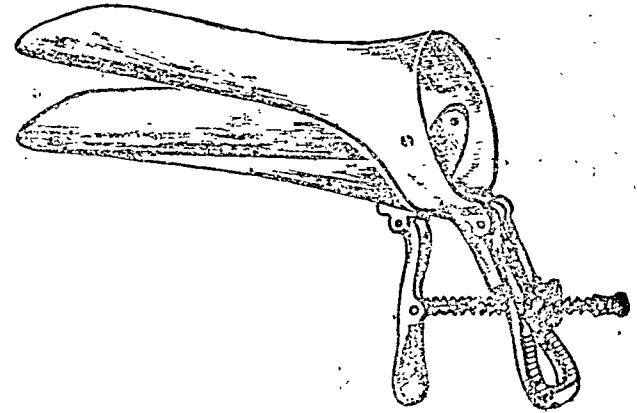
चित्र ४२

३—कूस्को का योनि विस्फारक (Cusco's speculum)—इसमें दो सिरे होते हैं जो कि आपस में दो कीलों से जुड़े रहते हैं। इसमें इस प्रकार का प्रबन्ध रहता है कि एक पेच को घुमाकर उसके दोनों सिरों को आपस में पास अथवा दूर ले जाया जा सकता है (चित्र ४२)। इसको योनि में प्रविष्ट करने में किसी भी प्रकार का दर्द नहीं होता एवं गर्भाशय ग्रीवा तथा योनि भित्ति बिलकुल स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं तथा इसके साथ-साथ ही इसको परीक्षा-

करते समय पकड़े रहने की भी आवश्यकता नहीं रहती। लेकिन इसको स्वच्छ रखने में अन्य विस्फारकों की अपेक्षा अधिक सावधानी रखने की आवश्यकता है।

गर्भाशय शलाका (Uterine Sound)—

यह तांबे का बना हुआ तथा इस पर निकिल किया हुआ एक शलाका यन्त्र है। इसका आगे का २½ इञ्च का भाग १३५° पर मुड़ा होता है

चित्र ४३

जिससे कि गर्भाशय में इसका प्रवेश सुगमतापूर्वक हो सके। गर्भाशय की अन्दर से लम्बाई नापने के लिए इसमें इञ्चों में निशान लगे होते हैं (चित्र ४३)। ऊपर वर्णित द्विहस्तीय परीक्षा यदि सावधानीपूर्वक की जाय तो इस गर्भाशय शलाका द्वारा उसके अतिरिक्त बहुत कम जानकारी ही प्राप्त होती है। इसका प्रयोग गर्भाशय ग्रीवा मुख विस्फारण (dilatation of the cervix) नामक शल्य कर्म में भी होता है। इस यन्त्र का प्रयोग करने के लिए विसंक्रमण में बहुत अधिक सावधानी रखने की आवश्यकता है। इसका प्रयोग लीथोटोमी की स्थिति में किया जाता है। योनि विस्फारक द्वारा प्रथम गर्भाशय ग्रीवा पर पहुँच कर उसको जीवाणु-नाशक द्रवों के पिचु द्वारा विसंक्रमित कर लेते हैं। इसके पश्चात् गर्भाशय ग्रीवा के एक ओष्ठ को वाल्सैलम के संदंश यन्त्र (Volsellum forceps) द्वारा नीचे की ओर खींच लेते हैं तथा गर्भाशय शलाका गर्भाशय ग्रीवा नलिका (cervical canal) तथा फिर गर्भाशय अन्तः मुख (internal os) के द्वारा प्रविष्ट की जाती है।

गर्भाशय शलाका को पश्चादवनमित गर्भाशय (retroflexed uterus) को सही स्थिति में लाने के लिये यदि प्रयोग न किया जाय तो ही अच्छा है।

स्रावों की परीक्षा—

यदि रुग्णा की योनि से पूय युक्त स्राव होता है तो उसकी स्लाइड बना कर अणुवीक्षण यंत्र (microscope) द्वारा परीक्षा करनी चाहिए तथा साथ ही साथ उस स्राव का कृत्रिम जीवाणु पालन (culture) करके अध्ययन करना चाहिए। रुग्णा के मूत्र मार्ग (urethra), योनि एवं गर्भाशय से होने वाले किसी भी स्राव की उपरोक्त प्रकार की परीक्षाएं अवश्य करनी चाहिये। यदि फिरङ्ग का सन्देह हो तो उसकी परीक्षा में विशेष सावधानी रखनी चाहिये क्योंकि इसके जीवाणु का अध्ययन कठिनाई से होता है। रुग्णा को २-३ घण्टे तक मूत्र त्याग नहीं करना चाहिए तथा फिर योनि में अंगुली डाल कर पीछे से मूत्र मार्ग (urethra) को धीरे से आगे की ओर मसलना चाहिए। इसमें से यदि पूय युक्त स्राव निकले तो उसका अणुवीक्षण यंत्र द्वारा तथा कृत्रिम जीवाणु पालन विधि दोनों प्रकार से अध्ययन करना चाहिए। इसके पश्चात् योनि से होने वाले स्राव की उपरोक्त प्रकार से परीक्षा करनी चाहिए। गर्भाशय ग्रीवा से होने वाले स्राव को योनि को पूर्ण विसंक्रमित करने के पश्चात् ही परीक्षणार्थ ग्रहण करना चाहिए। यदि ट्राइकोमानस वैजाइनलिस (trichamonas vaginalis) नामक जीवाणु की उपस्थिति का सन्देह हो तो उपरोक्त

प्रकार से अध्ययन के अतिरिक्त लटकती हुई बूंद (Hanging drop) की भी अणुवीक्षण यंत्र द्वारा परीक्षा करनी चाहिए।

अन्य परीक्षायें–

गर्भाशय ग्रीवा की आणुवीक्षणिक परीक्षा (Cervical biopsy) – गर्भाशय ग्रीवा के कैंसर आदि के सन्देह होने पर यह परीक्षा करनी चाहिए। पूर्ण विसंक्रमण को दृष्टिगत रखते हुए योनि विस्फारक द्वारा योनि को विस्फारित करके गर्भाशय ग्रीवा के अस्वस्थ क्षेत्र एवं स्वस्थ क्षेत्र के मिलने के स्थान का थोड़ा भाग काट कर उसकी स्लाइड बनाकर परीक्षा करें। रक्तस्राव को रोकने के लिए (diathermy knife) का प्रयोग करें।

गर्भाशयान्तरिक कला की आणुवीक्षणिक परीक्षा (Endometrial biopsy)– यह परीक्षा गर्भाशय के घातक अर्बुद से ग्रस्त होने के सन्देह निवारण के लिए की जाती है। रुग्णा को लीथोटोमी की स्थिति में लिटा कर योनि विस्फारक द्वारा योनि का विस्फारण करने के पश्चात् वाल्सैलम के संदश यन्त्र (Volsellum forceps) द्वारा गर्भाशय ग्रीवा मुख के एक ओष्ठ को नीचे की ओर खींच लेते हैं तथा गर्भाशयान्तरिक कला को लेखन यन्त्र (curette) द्वारा प्राप्त कर लेते हैं। यदि श्रोणि गह्वर के किसी भी अंग में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष संक्रमण मालूम पड़े तो यह परीक्षा नहीं करनी चाहिए। गर्भाशयान्तरिक कला को प्राप्त करना अधिक कठिन नहीं है लेकिन उसकी परीक्षा एक अनुभवी विशेषज्ञ ही कर सकता है।

डौगलास के थैले से चूषण (Aspiration from the pouch of Douglas)– यह बहुत साधारण शल्य कर्म है। इसमें रुग्णा को लीथोटोमी की स्थिति में लिटा कर गर्भाशय ग्रीवा का पश्चात् ओष्ठ वाल्सैलम के संदश द्वारा नीचे खींच लिया जाता है जब कि योनि विस्फारक योनि की पश्चात् भित्ति को पीछे की ओर खींचता है। अब योनि का विसंक्रमण करके एक लम्बी सूचिका (needle) गर्भाशय ग्रीवा के पीछे की ओर से डौगलास के थैले में प्रविष्ट कर दी जाती है तथा उसके अन्दर जो द्रव होता है उसका चूषण कर लिया जाता है। निदानार्थ इसका प्रयोग उस समय किया जाता है जब कि श्रोणि गह्वर में कोई जल ग्रन्थि (cyst), विद्रधि (abscess) आदि के कारण निदान में कठिनाई होती हो।

कूल्डोस्कोपी (Culdoscopy)– इसका तात्पर्य बीज वाहिनी नलिकाओं की यह परीक्षा करना है कि उनमें कोई छिद्र तो नहीं है। इसके लिए रुग्णा को जानु-कूर्पर स्थिति (knee-elbow position) में योनि की पश्चात् भित्ति से कूल्डोस्कोप नामक यंत्र डौगलास के थैले (pouch of *Douglas*) में प्रविष्ट किया जाता है। अब इस यंत्र से कार्बन डाई आक्साइड गैस भरी जाती है तथा उसका दबाव (pressure) देखते रहते हैं। यदि बीज वाहिनी नलिका में कोई छिद्र विद्यमान है तो (pouch of *Douglas*) के अन्दर यह दबाव पारद के ४० से १०० मि. मी. तक उठकर एक दम १०. मि. मी. के लगभग तक आजाता है। लेकिन इससे अच्छा एवं सुलभ साधन क्ष किरण परीक्षा (X'ray examination) है।

कौल्पोस्कोपी (Colposcopy)—इसमें कौल्पोस्कोप (Colposcope) नामक एक यंत्र द्वारा योनि एवं गर्भाशय ग्रीवा के अधिस्तरीय स्तरों (epithelial layers) की परीक्षा करते हैं।

हिस्टेरोस्कोपी (Hysteroscopy)—यह एक यंत्र होता है जिसको कि गर्भाशय में प्रविष्ट कर देते हैं तथा फिर अन्दर से उसको प्रत्यक्षतः देखा जाता है। इसका प्रयोग आजकल बहुत कम होता है।

क्ष किरण परीक्षा (X'ray Examination)– इसका स्त्री रोगों के निदान करने में विस्तृत प्रयोग
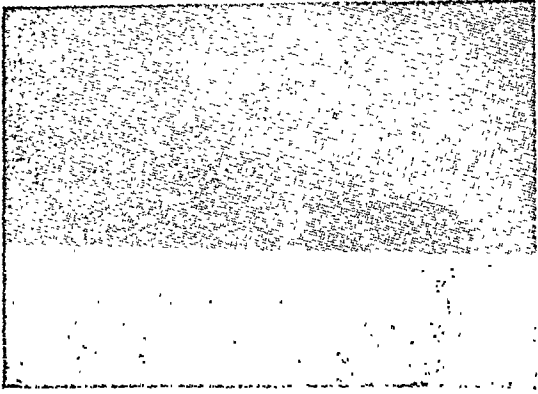
चित्र ४२

होने लगा है। यदि किसी स्त्री के गुप्तांग क्षय से ग्रस्त पाये जांय तो उसके फुफ्फुसों की क्षय के लिए क्ष किरण परीक्षा अनिवार्यतः करें। डिम्ब कोष के घातक अर्बुद से (malignant tumour of ovary) से ग्रस्त स्त्रियों में आमाशय का रक्तार्बुद (carcinoma of the stomach) प्रायः मिलता है। यदि बीज वाहिनी नलिका में किसी स्थान पर छिद्र होने का सन्देह हो तो गर्भाशय में लीपोइडोल (lipoidol) नामक द्रव प्रविष्ट करके उसकी क्ष किरण परीक्षा करें।

गर्भाशय में किसी बाह्य पदार्थ (foreign body) के सन्देह होने पर, यदि वह धातु का है, तो क्ष किरण परीक्षा द्वारा स्पष्टतः जाना जा सकता है (चित्र ४२)। गर्भाशय से बाहर गर्भ की स्थिति (extra uterine pregnancy) होना, गर्भाशय के सौत्रिकार्बुद (myoma) में कैल्शियम जमा होना, गर्भावस्था का चौदहवां सप्ताह, एक अतिरिक्त मूत्र गवीनी (ureter) का योनि में आकर खुलना आदि अवस्थाओं का क्ष किरण परीक्षा द्वारा पूर्ण स्पष्ट निदान किया जा सकता है।

—दाऊदयाल गर्ग, ए०, एम० बी० एस०
सह-सम्पादक धन्वन्तरि।

स्त्री रोग परीक्षा

श्रीमती सुषमा वर्मा

सहज संकोच स्वभाव के कारण स्त्रियां अपने जननेन्द्रिय से सम्बन्धित रोगों के सम्बन्ध में किसी से कहती नहीं हैं। यहां तक कि स्त्री चिकित्सक के सामने भी ये अपने संकोच का निवारण करने में असमर्थ रहती हैं तो फिर पुरुष चिकित्सक की तो बात ही दूर है। अतः इसमें बड़ी चतुराई की आवश्यकता है।

स्त्रियों के जननेन्द्रिय स्थान के रोगों को निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है–

(१) साधारण एवं ग्रंथिक विकार (२) भग स्थान विकार (३) योनि पथ विकार

(४) गर्भाशयिक विकार (५) बीजवाहिनी विकार (६) बीजाधर विकार ।

इन सभी स्थानों की परीक्षा दो तरह से की जाती है। एक परोक्ष रूप से याने लक्षणों को सुन कर एवं दूसरी प्रत्यक्ष रूप से याने देखकर। किसी भी रोग के लिए दोनों ही प्रकार की परीक्षा आवश्यक है तथापि स्त्रियों के सहज संकोच स्वभाव के कारण प्रत्यक्ष परीक्षा में कठिनाई होती है। दूसरी परीक्षा से भी उनके रोगों का ज्ञान किया जा सकता है। क्रियात्मक रूप में इसी की आवश्यकता भी अधिक होती है।

साधारण एवं ग्रन्थिक विकार—

ग्रन्थिक विकार—इस विकार का सम्बन्ध स्त्रियों के शरीर के विकास से विशेषकर जननेन्द्रिय स्थान के शरीर से है। पीयूष ग्रंथि अपने स्राव से अधिवृक्क ग्रंथि एवं अवटुका ग्रंथि को आप्लावित रखती है। अवटुका ग्रंथि शरीर की अस्थियों के विकास पर प्रभाव डालती है एवं अधिवृक्क ग्रन्थि शरीर की मांस पेशियों पर तथा जननेन्द्रिय स्थानों पर। जननेन्द्रिय स्थान पर पीयूष ग्रंथि के स्राव का भी सीधा प्रभाव पड़ता है विशेष कर गर्भाशय एवं बीजाधरों पर।

परीक्षा—यदि कोई स्त्री देखने में पूर्ण विकसित शरीर की नहीं हो जैसे उसके स्तन छोटे हों, नितम्ब छोटे हों, चेहरा निस्तेज हो और आर्तव सम्बन्धी विकार भी हों तो यह समझना चाहिए कि इसे ग्रन्थि दोष है।

प्रत्यक्ष रूप से परीक्षा करने पर उसके भगोष्ठ नहीं मिलेंगे अथवा वे सूखे से होंगे। गर्भाशय अपनी प्राकृतिक आकृति से छोटा मिलेगा। उसका बहिर्द्वार अविकसित मिलेगा। योनि द्वार भी अविकसित रहेगा।

आर्तव दर्शन की स्वाभाविक अवस्था १२ से १४ वर्ष है। इसके पहले यदि आर्तव दर्शन हो जाये तो यह समझना चाहिए कि बीजाधर अधिक पुष्ट एवं सक्रिय हैं। यदि आर्तव दर्शन इस अवस्था के बाद हो तो समझें कि उसके बीजाधर पूर्ण पुष्ट नहीं हैं अर्थात् उसके ग्रन्थि स्राव पर्याप्त नहीं हैं। यद्यपि कि ऐसी स्त्रियां कुछ अधिक समय लेकर यौवन प्राप्त करती हैं। इनमें कोई आर्तव दोष भी नहीं रहता, सन्तानोत्पत्ति स्वाभाविक रूप से होती है तथापि उनका साधारण स्वास्थ्य पुष्ट नहीं होता। बुद्धि का विकास नहीं हो पाता है, भीरु स्वभाव की होती हैं। स्वतंत्र रूप से कुछ भी करने में असमर्थ होती हैं। यह ग्रंथि दोष से होता है।

साधारण विकार—

साधारण विकारों में आर्तव स्राव सम्बन्धी विकार हैं। आर्तव स्राव बीजधरों एवं गर्भाशय कोष से सम्बन्धित है। बीजधरों में जब सम्पुट विस्फोट होता है तो डिम्ब के साथ सम्पुट ओज भी बीजवाहिनी नलिका में आता है। डिम्ब तो वहां अटक कर पोषण प्राप्त करता है और सम्पुट ओज गर्भाशय में आता है। सम्पुट ओज २-३ बूंद ही रहता है। यह गर्भाशय कोष्ठ में आ गर्भधरा कला से लिपट कर रह जाता है और उसे प्रदाहित करता रहता है। जब प्रदाह अपनी चरम सीमा पर पहुँचता है तो रक्त रसादि स्रोत फूट पड़ते हैं और रक्त का स्राव होता है जो रज या आर्तव के रूप में बाहर निकल जाता है।

प्राकृतिक रूप से आर्तव दर्शन सिवाय रोगावस्था या गर्भावस्था के २८ वें दिन अवश्य होता है। इस आवृति का नाम आर्तव चक्र है।

यदि आर्तव चक्र प्रति माह होता हो लेकिन २-३ दिन अधिक समय लेकर और उदर प्रदेश या अधिश्रोणिक प्रदेश वैसे ही बढ़ते जाय जैसा कि गर्भ में होता है तो इसे भ्रश गर्भ (Ectopic gestation) का रोग समझना चाहिए। यदि

स्राव अवधि के पहले हो तब कर्णिक या अग्र-मांस (Polyp or Myomata) का संदेह करना चाहिए। इसमें प्रत्येक चक्र में आर्त्तव स्राव अधिक मात्रा में होता है और चक्र भी दो-तीन दिन ठहर जाता है। यदि चक्र वजाय २८-२९ वें दिन के १० दिन या १२ दिन या ७ दिन पर हो मगर ठहरे नहीं केवल एक बार रजःस्राव हो जाय, फिर एक बार के लिए हो, इसी तरह होता रहे और २८-२९ वें दिन जो हो वह ४-५ दिन रहे तब उसे गर्भाशय कर्णिक (uterine Polyp), शीर्ष विद्रधि (Carcinoma of the cervix) का संदेह करना चाहिए। इसमें यद्यपि स्राव एक ही बार के लिए होता है लेकिन एक ही बार में इतना अधिक रक्त निकल जाता है जितना साधारण रूप से २-३ दिन में निकलता। २८ वें २९ वें दिन जो रक्त स्राव होता है वह भी काफी मात्रा में होता है। यदि आर्त्तव चक्र घट जाय याने प्रति ८-१० दिन पर हो और दो तीन दिन ठहरे और उसमें स्राव भी वैसा ही हो जैसा साधारण आर्त्तव चक्र के स्राव में होता है तो बहु-चक्रार्त्तव (polymenorrhoea) का सन्देह करना चाहिए या गर्भाशयिक अग्रमांस (myomata) का सन्देह करना चाहिए। यदि स्राव ऐसे ही लगातार हो याने हर ८-१० रोज पर और आर्त्तव चक्र के समय का पता नहीं चले तो उसमें इन्हीं रोगों का काफी बढ़े रहने का सन्देह करना चाहिए।

प्रत्येक आर्त्तव चक्र में स्राव की अवधि ५ दिनों तक ही है और कुल स्राव की मात्रा लगभग ५ छटांक ही है याने १ छटांक प्रतिदिन। तीसरे या चौथे दिन से स्राव कम होने लगता है। चौथे या पांचवे दिन एक दम कम हो जाता है। दूसरे दिन सबसे अधिक मात्रा में स्राव होता है। स्राव का रंग वीरबहूटी की तरह या आलक्तकवत् या लाल कमलवत् होता है एवं निष्पिच्छ रहता है याने इसमें कुछ रहता नहीं है सिवाय तरल या द्रव अंश के। यदि स्राव की अवधि अधिक हो याने ५-७ दिनों तक हो जाये, तीसरे दिन से स्राव की मात्रा घटे नहीं बढ़ती जाये चौथे दिन भी बढ़ी रहे तब क्रमशः कम हो, स्रवित वस्तु में श्लेष्मिक कला के टुकड़े हों या थक्का सा हो तो उस अवस्था में गर्भाशय कला प्रदाह, गर्भाशयिक अग्रमांस (गुल्म) या सव्रण अग्रमांस (uterine sarcoma) का सन्देह करना चाहिए। इसमें धड़कन आदि हृदय रोग का लक्षण भी उपस्थित रहता है।

यदि स्राव की अवधि ठीक हो और स्राव की मात्रा अधिक हो, स्रवित वस्तु जीव रक्त की तरह रक्त वर्ण हो तब "रक्तपित्त" का सन्देह करना चाहिए। जीवरक्त एवं स्राव रक्त के लक्षणों से इसका अन्तर करे।

यदि इसका रूप रङ्ग स्वाभाविक नहीं हो, स्राव अवधि ठीक हो मात्रा ठीक हो स्रावचक्र की अवधि ठीक हो तो "गर्भाशय कलाप्रदाह" (गर्भधराकला) का सन्देह करें।

आर्त्तव चक्र ठीक हो, स्राव अवधि ठीक हो, मात्रा ठीक हो, मगर स्राव के पहले पीड़ा असह्य हो। पहले दिन स्राव कम हो दूसरे दिन भी कम हो पीड़ा चरम सीमा की हो। तीसरे दिन स्राव अधिक हो ज्यों-ज्यों स्राव अधिक हो पीड़ा कम होती जाय तो इसमें बहिर्द्वार, अग्रमांस, कर्णिक शीर्षप्रदाह, बहिर्द्वार प्रदाह आदि का सन्देह करें। जिसमें पहिले से पीड़ा नहीं हो स्राव शुरू होने पर पीड़ा हो, ज्यों-ज्यों दिन बीतता जाय पीड़ा अधिक होती जाय स्राव थोड़ा-थोड़ा करके हो और अधिक दिन तक स्राव की अवधि चले। स्राव बन्द होने पर भी एक दो दिन पीड़ा हो तब इस अवस्था में भग द्वार का छोटा होना और कुमारीच्छद यवनिका का दृढ़ होना तथा बहिर्द्वार के मुख का छोटा होने का सन्देह करें। यदि स्राव के समय उदर प्रदेश में पीड़ा में हो तो अधिश्रोणिक गर्भ, बीजाधर गुल्म का सन्देह करना चाहिए।

स्त्री के भग स्थान को देखें। भगोष्ठों को विदारित कर कुमारीच्छद एवं भगद्वार की परीक्षा करें। यदि द्वार छोटा हो, कुमारीच्छद यवनिका टटोलने पर कड़ा मालूम हो तो भगद्वार का छोटा होना एवं कुमारीच्छद का कड़ा होना जानें। इसमें योनि मार्ग विस्फारित हो जाता है। अंगुली डालकर इसकी परीक्षा की जा सकती है। वल्कि अंगुली डाल कर कुमारीच्छद को तोड़ दिया जाना तथा भग द्वार का बढ़ा देना इसकी चिकित्सा भी है। इसमें योनि विस्फार हो जाता है।

भगद्वार द्वारा योनि मार्ग में तर्जनी, मध्यमा एवं अनामिका अंगुली को योनि मार्ग में प्रविष्ट कर अंगुली के सहारे यह देखें कि उसमें कोई मासांकुर है या नहीं। यदि मासांकुर सदृश वस्तु स्पर्श में आवे तो योनिपथ कर्णिक (vaginal polyp) का सन्देह करें। यदि अंगुली के स्पर्श से पीड़ा हो और रक्त स्राव हो तो सव्रण अग्रमांस (sarcoma) तथा योनि विद्रधि (carcinoma) का सन्देह करें। यदि पीड़ा कम हो तो योनि अग्रमांस (myomata) का सन्देह करें।

दाहिने हाथ की अंगुली योनी मार्ग में प्रविष्ट करें और रोगिणी के अधिश्रोणिक भाग को बांये हाथ की तलहठा से धीरे-धीरे दबाएँ तो दाहिने हाथ की अंगुली में गर्भाशय का बाहरी द्वार स्पर्श होगा। अंगुली घुमाकर स्पर्श द्वारा यह देखें कि वहां पर मासांकुर या मस्से जैसी कोई चीज है या नहीं, स्पर्श से पीड़ा होती है या नहीं। यदि पतले अंकुर जैसा हो तो बहिर्द्वार कर्णिक, यदि मस्से जैसा हो तो अग्रमांस, यदि पीड़ा हो तो सव्रण अग्रमांस तथा विद्रधि का सन्देह करें। गर्भाशय मुख का आकार स्वाभाविक से बड़ा एवं कठोर हो जाता है। योनि विस्फारक (vaginal speculum) द्वारा उससे योनि विस्फार कर प्रकाश किरणें भीतर फेंक कर स्थूल दृष्टि द्वारा भी इसकी परीक्षा करें।

गर्भाशय शीर्ष या कोषस्थ कर्णिका, अग्रमांस, सव्रण अग्रमांस, विद्रधि आदि की स्पर्श द्वारा परीक्षा आसानी से नहीं होती। गर्भाशय विस्फारक यन्त्र को बहिर्द्वार से अन्दर प्रविष्ट करें। इससे गर्भाशय का मुंह फैल जायेगा। प्रकाश किरणों का निक्षेपण कर इन सभी की परीक्षा करें।

भगस्थान विकार—

भग स्थान पर भगप्रदाह, भगकण्डू, भगशुष्कता, भगगुल्म तथा भगश्लीपद नामक रोग होते हैं। इनकी परीक्षा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों तरह से करनी चाहिए।

लाक्षणिक परीक्षा—

भगस्थान पर प्रदाह हो तो भगप्रदाह का, भगोष्ठ के बीच में खुजली हो तो भगकण्डू का सन्देह करें। मूत्र में पीड़ा या दाह हो तो पूयमेह उपदंश का सन्देह करें।

प्रत्यक्ष परीक्षा—

यदि बाह्य भगोष्ठों पर छोटे-छोटे व्रण हों तो प्रदाह को व्रण जनित जानें। बहुधा यह उपदंश जन्य होता है। यक्ष्मा पीड़ित स्त्रियों में भी होता है। उपदंश जन्य में भयानक दाह एवं पीड़ा होती है, जाड़ा देकर ज्वर भी होता है मगर यक्ष्मा-जन्य में जाड़ा बुखार नहीं होता है। यदि भग-स्थान यानी भगोष्ठ तथा लघु भगोष्ठ केवल लाल हों तो प्रदाह पूयमेह जन्य या प्रदाह जन्य हो सकता है। गर्भावस्था में भी किसी किसी को योनि स्राव बहुत होता है। इस स्राव से भी भग प्रदाह एवं भगकण्डू होते हैं। पूयमेह वाले में मूत्र प्रसेक द्वार योनि द्वारिक ग्रन्थि ये सभी सशोफ रहते हैं। पूय ग्रन्थि सबसे अधिक प्रदाहित एवं सशोफ होती हैं। थोड़े से स्पर्श से उनसे पूयवत् दुर्गन्धित स्राव निकलता है। समूचा भग स्थान लाल दिखाई देगा। मधुमेहज स्त्रियों में भी भग प्रदाह एवं भगकण्डू होते हैं। इसमें त्वचा फटा फटा सा होता है एवं भगस्थान भूरा लाल रंग का होता है। वृ० भगोष्ठ पर खाकी रंग के धब्बे

दिखाई पड़ते हैं, एवं लघु भगोष्ठ पर फुन्सी हो तब इसे मधुमेहजन्य जानें। यदि पूति ग्रन्थियां विशिष्ट रूप से प्रदाहित दिखाई दें स्पर्श असह्य हो, फूला हुआ हो तो पूयमेह जन्य जानें। यदि भगस्थान पर अनेक छोटे-छोटे व्रण हों, रंग
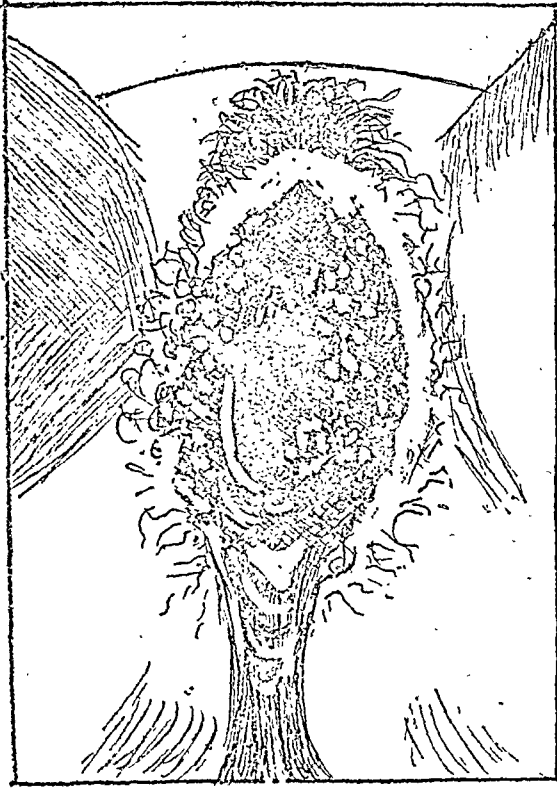
चित्र ४४

अनेक प्रकार का हो मुंह पीठ, सीवनी इत्यादि पर भी व्रण हों तो उसे उपदंशजन्य समझें। मूत्र प्रसेक द्वार पर व्रण हो तीव्र प्रदाह एवं पीड़ा हो तो उसे पूयमेह जन्य जानें।

बहुधा छोटी छोटी बच्चियों में या वृद्धा स्त्रियों में भग प्रदाह एवं कण्डू होता है। या गर्भवती स्त्रियों में भी होता है। यह पूयमेह मधुमेह या उपदंश से भिन्न होता है। अन्तर यह है कि पूयमेहादि में यह योनि पथ में नहीं होता और इसमें योनि पथ में भी होता है।

यदि भगस्थान फूला हो प्रदाह या पीड़ा नहीं हो उस पर कड़े कड़े मस्से हों, उसमें तरल पदार्थ भरा मालूम पड़े, दबाने से कोई तकलीफ न हो जीर्ण हों तो भग श्लीपद का सन्देह करें।

यदि भग स्थान पर कण्डू भयानक रूप का हो विशेषकर जाड़े में और जाड़े की रात में ही अधिक त्रासदायक हो, नोंचते-नोंचते पसीना आ जाये मगर संतोष नहीं, साधारण स्वास्थ्य गिरता जाय तो साधारण भग कण्डू (Pruritis vulva) जानें।

यदि भगस्थान का त्वचा मोटा हो उस पर उजले उजले रक्ताभ धब्बे हों तो भगश्वित्र जानें। यह विशेषकर बृ० भगोष्ठ पर होता है।

यदि बृ० भगोष्ठ का भीतर का भाग, लघु-भगोष्ठ, भगशिश्निका शुष्क हों, उसमें चिपचिपापन नहीं हो, कोई वस्तु जमे एवं उखड़े जिसका रंग खाकी नीला या श्वेत खाकी हो यत्र तत्र लाल फुन्सियां हों तो भगशुष्कता (Kraurosis of vulvae) जानें। यह प्रौढ़ावस्था में अर्थात् ४० वर्ष की आयु के लगभग होने वाला रोग है। यह बहुधा उनमें होता है जिन्होंने कृत्रिम रूप से रजो निवृत्ति करा लिया है।

यदि भगपीठ, मूत्रपीठ पर अर्श के मस्से के तरह का मस्सा हो, रंग बैंजनी हो तो इसे भगार्श जानें। जिस भगार्श में चुनचुनाहट हो दाह हो पीड़ा हो कभी कभी फूट जाय, दबाने पर रक्त पूय का स्राव हो उसे सव्रण अधिमांस (sarcoma) जानें।

जो सव्रण अधिमांस शीघ्र ही व्रण का रूप ले लेवे रंग गहरा नीला या खाकी हो स्पर्श में मुलायम एवं चिकनाई हो पट्टे की लसीका ग्रन्थियां (*lymphatic glands*) फूल जाया करें तो त्रिदोष अधिमांस (*malingnant melanoma*) जानें।

जो अधिमांस व्रण रहित हो मगर कड़ा हो बहुत बड़ा हो तो उसे दृढ़ भगार्श (*Fibroma*)

जानें। यदि भगद्वार के ऊपर अंगूर की आकृति का अर्श हो तो उसे द्वारिक अर्श कहते हैं। यदि फूलगोभी के फूल के छोटे टुकड़े का आकार का तथा उसी रंग का अर्श हो चौड़ा हो, फटे हुए व्रण के ऐसा हो इससे एक प्रकार का लसीला पदार्थ स्रवित हो तो इसे भग विद्रधि (*Carcinoma*) जानें।

योनि पथ एवं गर्भाशय की प्रत्यक्ष परीक्षा—

योनि पथ एवं गर्भाशय की प्रत्यक्ष परीक्षा के लिए रोगिणी को सीधा चित्त लिटा दें और कमर के नीचे तकिया रख दें ताकि अधिश्रोणिक भाग ऊंचा हो जाये। यदि केवल योनि पथ की परीक्षा करनी हो तो बांया पैर फैलाये रखें एवं दाहिने को एसा मोड़ें कि जानु (घुटना) टुंडी की ओर रहे। यदि गर्भाशय की परीक्षा करनी हो तो दोनों पैरों को ऐसा मोड़ें कि जानु पार्श्व में ऊपर की ओर रहें (*lithotomy position*)।

हाथ को खूब साफ सुथरा कर लें। नखादि नहीं रहें या पतले रबड़ का दस्ताना दाहिने हाथ में पहन लें और तर्जनी तथा मध्यमा इन दो अंगुलियों को गाय के घी या वेसलीन लगा कर चिकना करलें। बाद में इन दोनों अंगुलियों को सटाकर सीधा योनि मार्ग में प्रविष्ट करें ऐसा कि अंगूठा भगपीठ की दिशा में भगोष्ठ पर रहे। बायें हाथ की हथेली को अधिश्रोणिक प्रदेश पर रख कर नीचे अर्थात् भगस्थान की ओर दबायें। अंगुलियों को दबाने में यह ध्यान रखें कि ये न नीचे की ओर बल्कि ऊपर की ओर किञ्चित तिर्यक रूप में रहे। यदि अंगुलियों के प्रवेश में कठिनाई हो तो मूलपीठ को थोड़ा दबाकर प्रवेश करें। यह क्रिया अभ्यास पर निर्भर करती है।

योनिपथ—

योनी द्वारिक ग्रन्थि जो स्वस्थ अवस्था में स्पर्श नहीं आती है टटोलने पर यदि वह स्पर्श आ जाये तो उसे सशोफ समझें जो पूयमेह में होता है।

मूलपीठ की मोटाई जानने के लिए अंगुलियों को सुविधानुसार दिशाओं में रखें। अंगुली इस प्रकार प्रविष्ट करें कि अंगूठा मूलपीठ की ओर हो जाये। प्रविष्ट अंगुली एवं अंगूठे के सहारे मूलपीठ को ठीक उसी तरह पकड़ें जिस तरह किसी चीज को चुटकी से पकड़ा जाता है। इससे इसकी मोटाई का ज्ञान होगा। इसके अलावा ठेपन क्रिया (*Percussion*) यानी अंगुलियों को प्रविष्ट कर मूलपीठ की दिशा में अंगुली को रखें भीतर से उसे बाहर की दिशा में दबायें और मूलपीठ पर दूसरे हाथ की अंगुलियों से ठेपन क्रिया करें। इससे भी उसकी मोटाई का ज्ञान होगा। इसी प्रकार मूत्रमार्ग एवं मूत्रनलिका की पेशियों की भी मोटाई जानी जा सकती है।

योनिपथ के रोगों में श्वेतप्रदर, योनि स्राव, कर्णिका, योनि प्रदाह, योनि व्रण, योनिविस्फार, योनिअधिमांस, योन्यावुर्द, पूयमेह, योनिविद्रधि, तथा उपदंश मुख्य है। योनि मार्ग से एक प्रकार का स्राव स्वाभाविक रूप से भी स्रवित होता है। मगर वह स्त्रिवाय योनि मार्ग को तरल बनाये रखने के मात्रा में इतना अधिक नहीं होता कि स्रवित होकर बाहर आये।

यदि अंगुलियों के प्रवेश से कोई स्राव स्रवित हो और उसकी मात्रा कम हो पतला हो तथा ईषत् पीत वर्ण का हो और योनि पथ प्राचीर देखने में रक्ताभ हो तो उसे श्वेत प्रदर का सन्देह करें। यदि स्राव अधिक हो गाढ़ा हो तथा ईषत् हरित पीत हो तो पूयमेह का सन्देह करें। यदि योनि प्राचीर शोथ युक्त हो तो श्वेतप्रदर जानें अन्यथा ऐसा स्राव गर्भाशय शीर्ष के रोगों में जैसे शीर्ष प्रदाह, शीर्ष कर्णिक, शीर्षभाग का विदीर्ण होना, शीर्ष अग्रमांस आदि से भी होता है। यदि योनिमार्ग के प्राचीर प्रदाहमय लाल रंग का हो तो संक्रमण का सन्देह करें जैसा पूयमेहादि। यदि स्रवित स्राव दुर्गन्धयुक्त हो तो योनि व्रण का सन्देह करें। जो उपदंशज या क्षयज या

आगन्तुक हुआ करता है। आगन्तुज व्रण में स्राव किञ्चित लाली लिए रहता है। यदि योनिमार्ग का प्राचीर बड़ा हो, प्राचीर में यत्र तत्र कटने के तथा उनके स्वस्थ हो जाने के चिन्ह हों तो योनि विस्फार का सन्देह करना चाहिये। यदि योनिपथ के प्राचीर में अर्श के मस्से की तरह की कोई चीज स्पर्श में आये तो उसे योनि कर्णिक समझें। यह बीच पथ में मूत्राशय के पास होता है। जो बड़ा एवं चौड़ा तथा अधिक कड़ा और एक ही मालूम हो तो उसे योन्यार्बुद जानें। यदि कई हों तो योनि कर्णिक या योन्यर्श जानें। जिसमें स्पर्श होने से रक्त स्रवित होने लगे तो सव्रण अधिमांस जानें। यदि योनि पथ के एक दम ऊपर वाले भाग में पीछे की ओर अर्थात् गुद नलिका की दिशा में गोल चिकना अंगूर फल के समान या छोटी जामुन के फल के समान हो तो योनि शोथ (*Adenomyisis*) जानें। यह स्पर्श असह्य होता है एवं तीव्र भयानक पीड़ा वाला होता है। यदि इसी स्थान पर फूलगोभी के आकार की चीज हो, स्पर्श असह्य हो तो योनि विद्रधि जानें। यदि योनि पथ की सलवटें एक दम पतले, उथले और पुरः प्राचीर ढीले हों, कुंथन पर प्राचीर नीचे भगद्वार की ओर लटकें तो योनि भ्रंश का सन्देह करें।

गर्भाशय—

यदि गर्भाशय स्वस्थ है तो अंगुलियों से गर्भाशय बहिर्द्वार का स्पर्श होगा। यदि दाहिने हाथ की तलहटी को नीचे की ओर आगे पीछे अगल बगल घूम फिराकर दबायें तो समूचा गर्भाशय शीर्ष (cervix) स्पर्श में आयेगा। गर्भाशय के हीन विकास में शीर्ष लम्बा पतला एवं नुकीला होगा। यदि जन्मजात ही शीर्ष लम्बा होगा तो शीर्ष योनिपथ के आधे दूर तक चला आयेगा। स्वस्थ शीर्षभाग गोल चिकना एवं दृढ़ ढ़ाल वाला स्पर्श होगा। यदि शीर्ष बड़ा मालूम पड़े तो शीर्षशोथ (cervicitis) का संदेह करें। यदि बांये भाग

चित्र ४५
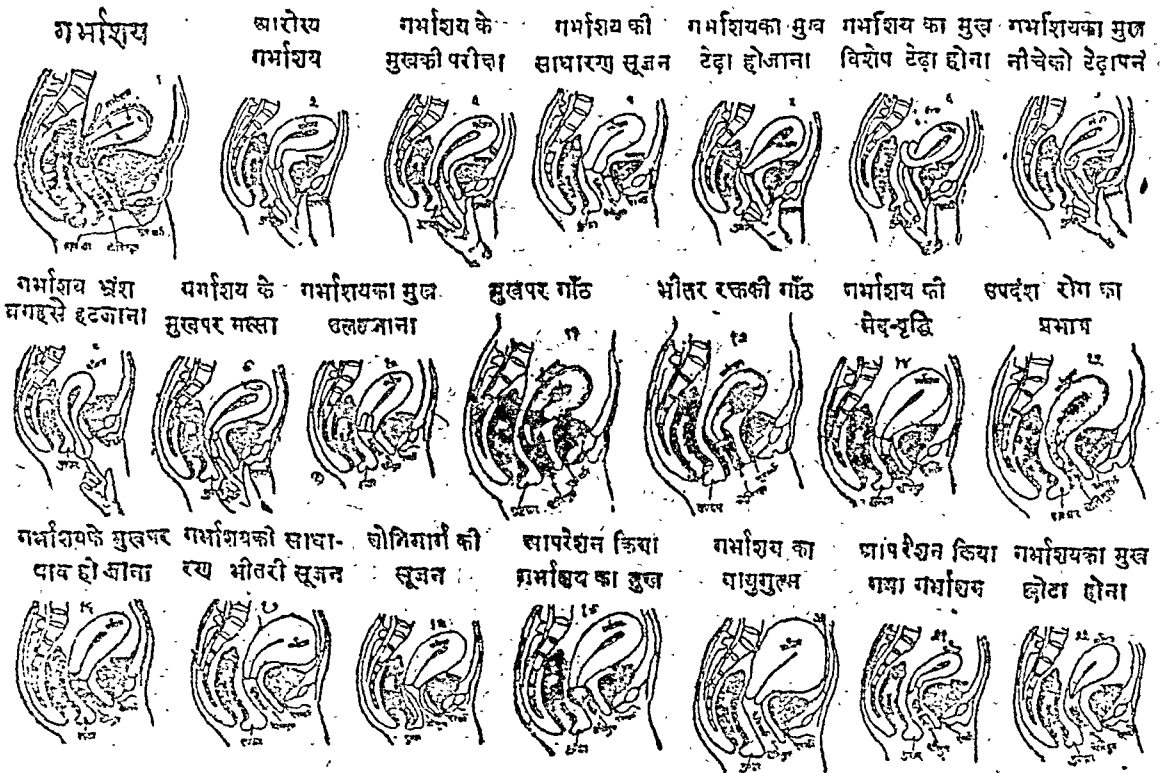
में फटा-फटा सा मालूम पड़े तो युग्म संतान कभी पैदा हुआ है इसका संदेह करें। यदि शीर्ष भाग के स्पर्श होने पर पीड़ा हो या रक्त स्रवित हो तो शीर्ष सव्रण अधिमांस का संदेह करें। यदि बहिद्वार के योनि ओष्ठ खुले अनुभव हों तो आसन्न प्रसवा जानें या प्रसव कुछ दिन पहले हो गया समझें या गर्भपात हो गया है इसका संदेह करें। यदि बहिद्वार के दोनों ओष्ठ बाहर की ओर निकले हों तो बहिद्वार विस्फार जानें। यदि कुंथन करने पर या खांसने पर शीर्षभाग दबकर योनि मार्ग से काफी दूर नीचे तक चला जावे तो गर्भाशय-भ्रंश का सन्देह करें। कभी-कभी तो भगद्वार तक चला जाता है। अधिक विकार में तो स्वयं योनि तक लटक कर भगद्वार तक चला आता है। किसी किसी में तो भगद्वार से बाहर तक चला आता है। यदि शीर्षभाग योनि पथ में जहां तक स्वाभाविक रूप से प्रविष्ट है उससे ऊपर की ओर हो या उसका मुख्य भाग किसी तरफ झुका हो तो स्थानान्तरण (Retroversion) का संदेह करें। जैसा कि चित्र ४६ में है यह दाहिने बांये किसी ओर भी हो सकता है।

यदि दाहिने हाथ की तलहटी से दबाने पर गर्भाशय का तुम्बी भाग (fundus) दबा हुआ

चित्र ४६

सा अनुभव हो जैसा कि चित्र ४६ में दिया गया है तो उसे गर्भाशय का उलट जाना समझें। किसी किसी में तो यह इतना अधिक होता है कि समूचा तुम्बी भाग दबकर गर्भाशय बहिद्वार तक या कभी कभी उसके ऊपर तक चला आता है। इस अवस्था में गर्भाशय बहिद्वार बहुत बड़ा स्पर्श होगा एवं तुम्बीभाग भी स्पर्श में आयेगा।

कभी-कभी भ्रूण वृद्धि कला कोष खात (Mullerian duct) पूर्ण रूपेण संयुक्त हो एक नहीं होते बल्कि दोनों अपना अपना अलग २ अस्तित्व कायम रखते हुए वृद्धि प्राप्त करते हैं। परिणाम यह होता है कि गर्भाशय भीतर की ओर से दो भागों में एक दृढ़ कला द्वारा विभक्त हो जाता (शेषांश पृष्ठ १२२ पर)
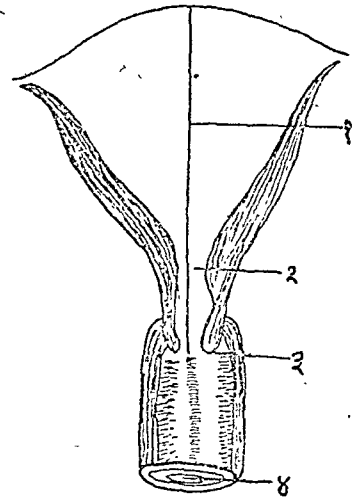
चित्र ४७
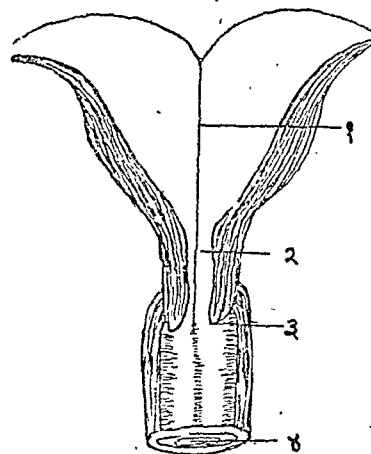
चित्र ४८

चित्र ४७-४८ का विवरण—

१-विभाजक कला

२-गर्भाशय अन्तद्वार

३-गर्भाशय बहिद्वार

४-भगद्वार

चित्र ४६

स्त्री परीक्षा

वैद्य मुकुन्दचन्द्र व्यास

यह विषय अत्यन्त ही रहस्यात्मक एवं विचारणीय है। यदि मनुष्य तद्विषयक आधारभूत गोपनीय गहनता को प्राप्त न कर लेवे तब तक इस निगूढ़ निराकरण में सफलीभूत नहीं हो सकता। मनुष्य चाहे कितना भी नीतिज्ञ (साम-दाम-दण्ड भेद नीतियों में निपुण) तथा विद्वान एवं पारदर्शी भी क्यों न हों, वहां उनकी कुशल चातुर्यता भी अनुत्तीर्ण हो जाती है यद्यपि स्त्री स्वभाव से ही भोली है। कहा भी है—"स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवोऽप्यजानाति कुतोमनुष्यः" वाली उक्ति ही स्वयं सिद्ध है। अतः इस जाति का चारित्र्य-चित्रण साधारण विषय नहीं तथापि मनुष्य अपनी प्रमाद रहित प्रखर बुद्धि द्वारा पूर्णरूपेण न तु किन्तु चिदाभास मात्र रूप रेखा का अङ्कन तो अवश्य ही कर सकता है।

पद्मिनी परीक्षा
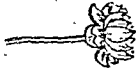
युग धर्मानुचारिणी व कृत्रिम कलेवरी पाश्चात्य पद्मिनियों की कोई कमी नहीं जिनका पंक्तिप्रद प्रसाद आज पश्चिम से पूर्व पर्यन्त प्रस्तुत है परन्तु तद्रूपा पद्माएँ 'परम पुनीत पद्मिनी' नाम की प्राप्ताधिकारिणी कदापि नहीं बन सकतीं।

वास्तविक जन्मजात पद्मिनियों की श्रेणी को पाने के लिए तो देवलोक की देवांगनाएं तक लालायित रहती हैं। वे पद्मिनियां पूर्वकृत पति व्रत तपोबलात्प्राप्त सहज सौंदर्य से स्वयं विभूषित हैं तो बाह्याडम्बरीय निस्सार श्रृंगार की उन्हें आवश्यकता ही क्यों होती जिनके लिए प्रकृति की प्रभा प्रावृत प्रभृति ही पर्याप्त है। कमल कलिका व पुण्डरीक पुष्पवत् विशाल नेत्रों वाली विभूषिता को भला "कमलाक्षी-पुण्डरीकाक्षी" कौन नहीं कहेगा?

इसका स्वाभाविक शरीर-सृजन, सत्वगुण-सात्म्य वात पित्त कफीय मातृ-पितृस्थ शुद्ध शुक्रार्तव सम्मेलापक योग्य योगदानादि सौष्ठवेय संस्कार सदन में होने से स्वयं सरस्वती भी स्वरूप साधना में मौन है। इसकी नासिका सूहे की चोंच के समान नुकीली व सुहावनी होती है और नासाछिद्र भी छोटे होते हैं। केश अत्यन्त ही कोमल लम्बे चमकीले व अलकावलियुक्त सुन्दरता को निखेर रहे हैं मानों कमल कोष पर भ्रमर-समूह पुष्प पराग का पान कर रहे हैं।

गर्दन हंस के समान लचीली तथा ओष्ठ छोटे छोटे बिम्ब फल के सदृश रक्तिमा लिए हुए एवं दन्त पंक्ति मुक्ताफल प्रभायुक्त तन्मध्ये माधुर्य-रस भरी कोमल वाणी सुशोभित, जिसमें ऐसे कमल कुम्भाकृति कमनीय कुच, शाखाकार लम्बी दोनों भुजाओं के साथ और भी शोभा की अभिवृद्धि कर रहे हैं।
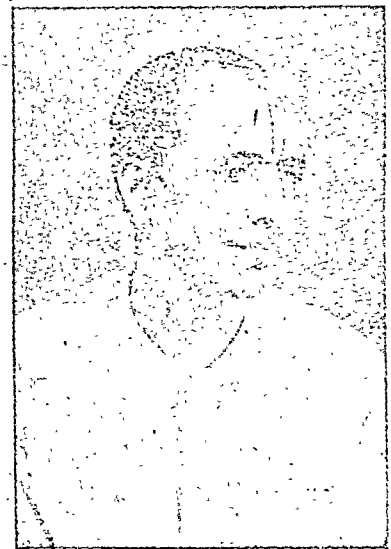
मुद्रिताकृति सुन्दर सुघटिका (नाभि) प्रदेश और केशरि कटि से लक्षित नितम्बभार जिसको धारण किये हुए हैं अपने बल पर, ऐसी सपीट (कोमल दोनों जंघाएं कदली स्तम्भ की शोभा को भी जीत लिया है। इसकी योनि कमल कली के समान आकार वाली छोटी व कोमल होती है। जिसका स्पर्श चन्दन के समान शीतल, गात्र गन्ध, गात्रगरिमा कमलवत् कोमल एवं सौरभयुक्त है, उस निर्मल (स्वच्छ) चर्म (त्वचा) के लिए उपस्नेहन, उबटनादि कृत्रिम प्रसाधन नीरस व निस्सार हैं। मन्दस्मिता-स्वर सङ्गीत सुधा, मधुरभाषिणी प्रियवादिनी, पाप पावनी, शोककुल हारिणी, पति सुख प्रापणी, पतिमनोवृत्तानुसारिणी, कुलतारिणी, त्रयतापनाशिनी के जिसमें सहज स्वभाव हों तथा दया, धर्म, दान, शीलता, शान्ति, सत्यता का वास होता है।

चित्रिणी चित्रण
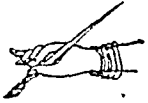
विद्वानों ने इसकी गणना मध्यम गुणयुक्ता द्वितीय श्रेणी में की है। कतिपय गुण इसमें पद्मिनी जैसे भी पाये जाते हैं रजोगुणादि सम्पन्न मेलापकों से। यह भी पतिपरायण, दयावती सुन्दर स्वभाव वाली होती है तथा इससे भी विशेष मृदुभाषिता, चञ्चलता, मुखलावण्यता, मुग्धस्मिता, कलाचातुर्यता, सुशीलता, विद्वत्तादि गुणों से युक्त होते हुए स्वभावतः भोली ही होती है।

न अति लम्बी और न अधिक छोटी मध्यम कद प्रायः सुन्दर शरीराकृति वाली होती है। तिल पुष्प के समान नासिका तथा हरिणी की आंखों के सदृश मनोहर नेत्रों वाली, जिसके ऊपर भौंह कमान सुमनशर साधे इन्द्र धनुष को भी लज्जित कर दे रहे हैं। नूतनाभूषण, शृंगार प्रभृति धारण करने की अभिरुचि रखने वाली एवं नाना भांति की अलंकारिक चित्रकलादि कौशलता से देह को सुसज्जित करने में अति ही प्रवीण होती है।

विशिष्ट गुण तो इसमें प्रायः पाये ही जाते हैं परन्तु रतिरस में पूर्ण पारंगत होती हुई भी पर-पुरुष में स्पृहा नहीं रखने वाली तथा पति को अपने प्राण से बढ़कर सुख पहुंचाने वाली और प्रिय-वादिनी होती है। ईर्ष्या, द्वेषाग्नि सन्ताप तो इसमें तनिक भी नहीं पाये जाते। जब देखो तब ही इसे हास्यमुद्रा (हंसमुखी) में ही पाएंगे। मिलनसार सेवाभाव, परोपकारिता, सदाचारिता, शुद्धात्मा (पवित्रात्मा) इत्यादि तो इसके नैसर्गिक नियम माने गये हैं।

हस्तिनी लक्षण

इस स्त्री की गणना तमोगुणादि त्रैदोषाक्त वर्णशंकरीय अमेलापक योगदानों से युक्त तृतीय श्रेणि कनिष्ठा संज्ञा में की गई है। इसकी आकृति, चरित्र लक्षण स्वयं परिचय करा देती है कि यह वास्तविक रूप में अश्लीलता की खान है। विशेषतः इसके शारीरिक अवयव मोटे (स्थूल) ही होते हैं यथा—ओष्ठ-कंठ-भुजा (बाहु) अंगुली प्रदेश-स्तन-उदर-नितंब-जंघा-पादादि अंग। प्रायः इसके देह में न्यूनतम दुर्गन्धता भी पाई जाती है। कामवासना में अत्युत्सुक एवं अतिशय भोग करने के उपरान्त भी पुनः अतृप्त ही सी रहती है। कपट भावना के कारण क्षण-क्षण से मन में दुर्विचारों का प्रादुर्भाव होता रहता है। "क्षणे रुष्टा क्षणे तुष्टा, तुष्टा रुष्टा-क्षणे क्षणे" की विचार धारा उसको डुबोए हुए रखती है। स्वकार्य साधना में बड़ी दक्ष होती है परन्तु कार्य सिद्धि के पश्चात् फिर से तोतेचश्म बन जाती है। यह कुटिला, लम्पटी, अकारण मिथ्या भाषिणी कटु वचन बोलने वाली, निर्लज्ज तथा पति को व्यंग्यात्मक बोली के बाणों से बींधने वाली एवं अपने प्राणप्रिया में प्रेम नहीं रखने वाली स्वेच्छाचारिणी होती है। इसके प्रेमी तो कोई होता ही नहीं क्योंकि वित्तहरण में वेश्या-वृत्ति से कम नहीं। इस लिए इसे ग्राहरूप्य गणिका

एवं स्वार्थपरायण कहें तो भी कोई दोषापत्ति व अतिशयोक्ति नहीं।

शंखिनी विवरण

यह स्त्री लम्बी, बड़े नेत्र वाली, अतिस्थूल भगोष्ठ वाली तथा जिस का जन्म अन्धतमोगुण-मिश्रित सन्निपातिक सन्निवेश से सम्पर्कीय अमेलापक दुष्टरजार्तव के वर्ण शंकरत्व योगदानादि हेय प्रभृतियों से हुआ है एवं त्रिवलय तीन रेखा-युक्त शंखाकार कंठ है जिसका, ऐसी स्त्री का नामकरण बुद्धिमानों ने शंखिनी शब्द में विबन्ध किया ही नहीं अपितु स्पष्ट भी कर दिया है कि इसकी गणना दुराचारिणी दुष्टा-चौथी श्रेणी की अधमा में गण्यमान है।

यदि ऐसी स्त्री से जिसने सम्बन्ध जोड़ लिया है तो समझ लो कि उस मनुष्य से विधाता रुष्ट हो गया है। अत्यन्त ही हठीली अर्थात् हठ करके अपनी बात को पुष्ट करने वाली तथा अपने पति के प्रति द्वेष (मन मुटाव) व पर पुरुष में प्रीति रखने वाली होती है। यह अनेकों प्रेमियों की प्रेमिका होती है न कि एक की। एक को रुष्ट और एक को तुष्ट रखना तो इसके दाऐं हाथ का खेल है। काम कला में अति ही प्रवीण होती है और तद्वासना में हर समय अवलिप्त रहने के कारण चञ्चलमना हो जाती है परन्तु गृह कार्य में प्रमादिनी बन जाती है।

प्रति दिन नित्य नूतन शृंगार करने वाली व बारम्बार अपने मुख को दर्पण में निहार कर अभिमान करने और दूसरे से अपनी बढ़ाई सुनकर अपने आप में फूल जाने वाली हुआ करती है। विश्वास घातिनी व प्रतिज्ञा करके हट जाने वाली भी होती है। जितनी सुन्दर उतनी ही चरित्र हीन, चाहे पंडिता हो अथवा अज्ञा, प्रायः ये लक्षण तो अवश्य ही पाए जाते हैं इसमें। किसी कवि ने ठेट राजस्थानी भाषा में कहा भी है—

"रूप रूड़ो गुण बाहिरो, रोहीड़ा को फूल"
देखने में बड़ा ही सुन्दर परन्तु सुगन्धि में गंध हीन वैसे ही लक्षण ऐसी स्त्री में पाए जाते हैं।

"एक लज्जा परित्याज्या" का मुख्य तात्पर्य यह है कि नारी जाति का एक मात्र लज्जा ही देहाच्छादित दिव्य भूषण पट है जब कि उसी का परित्याग कर देती है तो उसके पास तच्चारित्र को ढांपने के लिए शेष रह जाता ही क्या है जिससे कि वह स्वशीलता के संरक्षण में समर्थ हो सके।

जैसे पद्मिनी में देवी का, चित्रिणी में अप्सरा का, हस्तिनी में यक्षिणी का और शंखिनी में पिशाची राक्षसी का क्रमशः सत्व-रज-तम-वात-पित्त कफ, शुद्धाशुद्ध शुक्रार्तवीय मेलापकामेलापक तथा मातृज-पितृज द्वि-त्रि मिश्रित साम्यासाम्य दोषादिकों के संयुक्त योगदान से ही गर्भाधान में समावेश के कारण ही जन्मजात स्त्रियों में सहज आकृति चारित्र्य लक्षणों का आभाश नैसर्गिक है।

—वैद्य मुकुन्दचन्द्र व्यास
चन्द्र चिकि०, कोलसा बाड़ी (भगवानगंज) हैदराबाद

:: पृष्ठ ११९ का शेषांश ::

है और यह कला बढ़ती हुआ बहिर्द्वार से निकल योनि पथ का भी विभाजन करती है मगर भगद्वार पर आकर दोनों का मुंह एक हो जाता है।

यदि योनि परीक्षा करते समय योनि पथ दो मिलें तो द्विकोषीय गर्भाशय जाने। यह दो प्रकार का होता है। एक जिसमें गर्भाशय का बाहरी आकार स्वस्थ गर्भाशय सा हो, तुम्बीभाग ठीक हो मगर भीतर की ओर से विभाजित हो जैसा चित्र १ में दिया है। दूसरा वह जिसमें गर्भाशय तुम्बीभाग भी बंट गया हो जैसा कि चित्र १ में है। दाहिने हाथ की तलहटी से दबाने पर यह साफ स्पर्श होगा। पुनः ये दो प्रकार के होते हैं जिसमें शेष बात पूर्णतः होते हैं मगर विभाजित प्राचीर अन्तर्द्वार तक ही आकर समाप्त हो जाता है।

—श्रीमती सुषमा वर्मा
c/o श्री चन्द्रदीपप्रसाद वर्मा बी. ए.,
बाजपट्टी हाई स्कूल सीतामढी।

आर्तव जनन (Emmenagogue)

श्री प० विश्वनाथ द्विवेदी
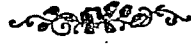
पर्याय—आयुर्वेद के साहित्य में इस सम्बन्ध के इतने शब्द मिलते हैं—यथा आर्त्तव जनन, रजोनिःसारक, ऋतुदोषघ्न, पुष्पजनन, कुसुमजनन, रजः प्रवर्तन, शोणित प्रवर्तन; यूनानी- इदरार हैज, खूने हैज; ई-इमेनागाग (Emmenegogue)।

परिभाषा—

लुप्त न्यूनाल्परुद्धं वानियतं यत् स्रवेद्रजः ।
स्थापयेद्वर्धयित्वास्त्रं रजोनिःसारिकं हि तत् ।

अर्थात्—जो द्रव्य लुप्त स्राव, न्यून अल्प रजःस्राव, रुद्धस्राव, अनियत रजःस्राव को रक्त बढ़ाकर उचित मात्रा में स्राव को स्थापित करता है उसे रजोनिःसारक द्रव्य कहते हैं।

स्त्रियों में ३ से ५ दिन जो ऋतुकाल में रक्त का स्राव होता है उसे आर्त्तवस्राव[1] कहते हैं। इसकी अनियमितता को ऋतुदोष कहते हैं। ऋतुदोषघ्न औषधियां इन विभिन्न प्रकार की अनियमितता को दूर करती हैं।

ऋतुकाल में गर्भाशय गत शिराओं[2] में तथा रजोबहाशिरा में रक्त का भराव होता है और भराव के भार के कारण तत्रस्थ शिराओं के मुख फट जाते हैं और गर्भाशय के संकोच व प्रसार की क्रिया से रक्त बाहर निकलता है।

१—मासान्निष्पिच्छ दाहार्ति पंचरात्रानुबंधि च ।
नैवाति बहु नात्यल्पमार्त्तवं शुद्धिमादिशेत् ॥
—च. चि. ३०-२२५

२—रक्तप्रमाणमुत्क्रम्य गर्भाशय गताः शिराः ।
रजोवहा समाश्रित्य रक्तमादाय तद्रजः ॥
यस्माद्विवर्धयत्याशु-रसभावात् विमानता ।
तस्मादसृग्दरं प्राहुः । —च. चि. ३०-२०४ ।

गर्भाशय में तीन स्तर होते हैं-

(१) परिपेशिकावृत्ति (perimetrium)–ऊपर का आवरण (२) पेशिकावृत्ति (Myometrium)–पेशीयुक्त मध्यस्तर (३) श्लेष्मकला स्तर (Endometrium)—भीतर की कला से निर्मित।

ऋतुकाल में पेशिका वृत्ति की रक्तवाही शिराओं तथा श्लेष्मावरणीय स्तरों की रक्तवाहिनी शिराओं में रक्त अपने पूर्व के प्रमाण से ऋतुकाल में अधिक भरता है। रजो वाहिनी जब रज लेकर चलती है तो यह भराव अधिक होता है। यह अपनी मात्रा में भरण के बाद निकलता है तो ऋतुस्राव और स्वाभाविक मात्रा से अधिक स्रवित होने पर असृग्दर कहलाता है। रजःस्रावक औषधियां अपना कार्य कई प्रकार से करती हैं।

औषधिगण –

रजःस्रावक औषधियां–हिंगु, टंकण, काशीश, एलुआ, लोध्र, आमलक, तज, हाऊबेर, हरमल (इस्पन्द), मधुयष्टि, इन्द्र जौ, अनन्नास, कडुआ बादाम, सौंफ का मूल, बच, चमेली के फूल, मेंहदी के पत्र, पुनर्नवा, बिरोजा, हंसराज, अमलतास, पुदीना, प्याज, वास्तूक बीज, मूली के बीज, गाजर के बीज, कुलत्थ, चिरायता, चोवचीनी, चौलाई, गोखरू, कार्पास मूल व कार्पास डोडा, केशर, बालछड़, अकरकरा, कबाब चीनी, अजमोद, पलाश पुष्प, मेंथी, शिलारस, गेंदा, गुग्गुलु, वायविडंग, कलौंजी, कुष्ठ, तुलसी, इन्द्रायण, ओलट कम्बल, कांचनार, लौह, लाख, अशोक, ब्राह्मी, संखिया इत्यादि।

यह औषधि दो प्रकार की होती हैं:—

(१) आशुफलप्रद या साक्षात कार्यकर (direct)। (२) पारस्परिक कार्यकर (Indirect or Non Systemic)।

इन औषधियों का प्रयोग रुग्णा की शरीर स्थिति, रोग के हेतु, बलाबल और देशकाल, मात्रानुसार किया जाता है। इनमें प्रधान यह हैं:—

आर्त्तवरोध के हेतु—

१. रक्ताल्पता—जो रोगोत्तर काल में विशेषकर विषम ज्वर, पाण्डु, कामला या अन्य रोगों द्वारा होती हैं। रोगी दुर्वल व रक्ताल्पतायुक्त हो जाता है।

२. विबंध या मलावरोध—स्त्रियों के वेगावरोध के कारण विबन्ध, आध्मान, आनाह होकर मलावरोध होकर गर्भाशय पर प्रभाव डालता है।

३. सगर्भावस्था—गर्भावस्था में ऋतुस्राव बन्द हो जाता है।

४. अविकसित गर्भ—बहुत सी स्त्रियों में गर्भ पूर्ण विकसित नहीं होता अतः स्राव नहीं होता या अत्यन्त कष्ट युक्त होता है।

५. मिथ्या आहार व विहार से गर्भाशय शिथिल पड़ जाता है और उसमें रक्तागम पूरा नहीं होता।

ऊपर की औषधियों के प्रयोग से पूर्व इन हेतुओं पर ध्यान देकर निदान करके तब उचित प्रयोग करना चाहिए। सब स्थान पर सब औषधि प्रयुक्त नहीं होती। प्रधान चिकित्सा तो हेतु निवारण नहीं है।

आशुकर्म कृत—वह औषधियां हैं जो कि गर्भाशय पर अपना प्रभाव साक्षात् डालती हैं और कार्य करती हैं यथा—हिंगु, ओलटकम्बल, कार्पास मूल त्वक्, काशीश, टंकण, लौह भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, मूली के बीज, गाजर के बीज, वास्तूक बीज, सूरज मुखी के बीज, आड़ू के फूल, मेंहदी के बीज व पत्र आदि।

इनके सेवन से गर्भाशय में रक्ताभिसरण अधिक होता है। अतः ऋतुकाल में, ऋतुकाल के समय से एक सप्ताह पूर्व या कुछ दिन पूर्व इनका सेवन करना चाहिए।

आधुनिक औषधियों में—क्विनाइन, वेरियम, हिस्टेमीन, पीयूष ग्रन्थि का सत्व (पिच्युट्रीन-इन्जेक्शन द्वारा)। यह गर्भाशय पेशी पर संकोच व विस्तारात्मक कर्म बढ़ा देते हैं। हिस्टेमीन, पीयूषीन, अर्गट अत्यन्त आशु कर प्रभाव करते हैं।

परम्परागत—इस वर्ग की औषधियां भिन्न-भिन्न हेतुओं में भिन्न-भिन्न प्रकार कार्यकर शरीर को शुद्ध कर रक्त बढ़ाकर स्राव कराती है। सुश्रुत का कथन है कि—

> दौषैरावृत मार्गत्वादार्त्तवं नश्यति स्त्रियाः।
> तत्रमत्स्य कुलत्थाम्लतिलमाष सुराहिताः ॥
> पानेमूलमुदश्विच्च दधि शुक्तं च भोजने ।
>
> —सु. शा. २

> तत्र संशोधनमाग्नेयानां च द्रव्याणां विधिवदुपयोगः।
>
> —सु. सू. १५

अतः परम्परागत औषधियां आहार व विहार सर्वांग पर कार्य कर तब आर्तव जनन क्रिया करती हैं। आर्तव वर्धक, स्रोतस शोधन, आग्नेय औषधि देकर गर्भाशय पर प्रभाव डालना चाहिए। आहार में मत्स्य, कुलत्थ, अम्ल, तिल, मांस, सुरा, उदश्वित, गोमूत्र, दधि व शुक्तादि देना चाहिए।

(२) संशोधन द्रव्यों में—आग्नेय गुण विशिष्ट उष्ण तीक्ष्ण, व्यवसायी विकाशी औषधियां अपने प्रभाव से संशोधन पूर्वक स्रोतसावरोध दूर कर देती हैं।

(३) विबन्ध हर—आध्मान, आनाह, विबंध से उत्पन्न रजोरोध में एलुआ, आरग्वध, त्रिवृत, स्वर्ण पत्री, हरीतकी का प्रयोग कोष्ठ शोधक व गर्भाशय दोष हर होता है।

२. विबंध में—एरण्ड तैल १-२ औंस,

१० बूंद तारपीन का तेल मिला कर प्रातःकाल नित्य १ सप्ताह तक अश्वगंधादि कषाय के साथ देना परम लाभप्रद होता है।

३. अश्वगंधादि कषाय—अश्वगंध, बला, सारिवा, क्षीर काकोली, विदारीकंद, मधुयष्टि, शतावरी का चतुर्थावशिष्ट क्वाथ दें।

४. विभिन्न प्रकार के शोधोत्पादक, तैल व पिचु प्लोत गर्भाशय में धारण करने से परम्परागत रूप में प्रभाव जनक होकर आर्तव स्राव कराते हैं। यथा—

(१) कुष्ठ, एला, लांगली के द्वारा पक्व तैल का पिचु आर्तव जनक है।

(२) शतपुष्पा, मदनफल, हिंगु के द्वारा सिद्ध तैल का पिचु धारण लाभप्रद है।

(३) उष्ण व तीक्ष्ण औषधियों को आस्थापन वस्ति द्वारा देने से आर्तव जनन कर्म होता है। यथा—(१) कटुतुम्बी—कुष्ठ, हिंगु संयुक्त तैल की आस्थापन वस्ति देना। (२) नारायण तैल २॥ तोला, सैंधव लवण २॥ तोला, एरण्ड तैल १। तोला, उष्णोदक ४० तोला मिलाकर वस्ति दें।

स्राव साफ खुल कर न होता हो तो—

१. शुण्ठ्यादि चूर्ण - सोंठ, मिरच, पीपल, हींग, भारंगी का समान भाग चूर्ण १ से ३ माशे की मात्रा में तिल क्वाथ से दें।
२. रेणुका चूर्ण—२ माशे शीतल जल से प्रातःकाल ऋतुकाल में देने पर गर्भाशय में रक्त-प्रवाह बढ़कर स्राव हो जाता है।
३. त्वगादि चूर्ण—दालचीनी, हींग, आमलक, एलुवा, लौहभस्म प्रत्येक १ भाग, टंकण २ भाग, निशोथ चूर्ण ४ भाग मिलाकर चूर्ण बनावें। मात्रा—१-२ माशे उष्णोदक से। यह प्रवाहण क्रिया बढ़ाकर आर्तव जनक होता है।
४. चन्द्रांशुरस—भैषज्य रत्नावली का यह योग ४-८ रत्ती मात्रा में उष्णोदक से प्रातः सायंकाल देने पर लाभप्रद होता है।
५. भोजनोत्तर—ऊपर की औषधि के अतिरिक्त अशोकारिष्ट २-३ तोला दें।

पारस्परिक औषधियों में—

१. आर्तव बर्धक, विवंधहर—एलुवा का प्रयोग लाभप्रद है।
२. विरेचक औषधियां—इन्द्रायण मूल, निशोथ, कटुतुम्बी प्रयोग।
३. क्षोभक तैल—राजिका, तुवरक, इन्द्रायण मूल, तारपीन तैल आदि क्षोभ उत्पन्न कर आर्तव जनन होते हैं।

अन्य औषधियां उपचार व विहार—

१—ऋतुकाल में उष्णजल से कटि स्नान, उष्ण जल में पैर रखना, दशमूल काथ में कटि स्नान, बृ० पञ्चमूल काथ में कटिस्नान, उष्णोदक निमज्जन आदि प्रयोग लाभप्रद होते हैं और इनसे ऋतुकष्ट में कमी होती है।

२—पुष्पजनक अन्य योग—

१—ऋतुकाल में गुड़ व काले तिलों का काथ एक सप्ताह लगातार पीने पर लाभ होता है।
२—तिल, लसोढ़ा, जीरक का क्वाथ गुड़ के साथ शीतल कर पीने पर नष्ट रज पुनः खुल जाता है।
३—कार्पास बीज मज्जा (बिनौले की गिरी) के चूर्ण ६ माशे को तिल तैल के साथ ऋतुकाल में पीने से पुष्प संजनन होता है।
४—ज्योतिष्मती पत्र (मालकांगनी के पत्र), राजिका, वचा, असन को दुग्ध के साथ सिद्ध कर शीतल होने पर पीने से रजःस्राव होता है।
५—जीरकाद्यावलेह व अशोकारिष्ट का ऋतुकाल से पूर्व १ सप्ताह से सेवन रजोजनक होता है।
६—अशोकारिष्ट ३ तोला, कांकायन वटी के साथ ऋतुकाल में सेवन करने से आर्तव स्राव में कष्ट

होना बन्द होता है।

७—लघु योगराज गुग्गुलु को अशोकारिष्ट के साथ सेवन करने से कृच्छ्रार्तव व अल्पार्तव का कष्ट दूर होता है।

इनके अतिरिक्त आवीजनक (oxytocics), गर्भाशय संकोचकर (ecbolics) अपरापातन, सुखप्रसवकर, व गर्भपात कर औषधियां युक्तिपूर्वक प्रयोग करने पर लाभप्रद होती हैं।

कार्य—यह औषधियां ऋतुकाल में गर्भाशय में उत्तेजना पहुँचा कर गर्भाशय की आकुंचन व प्रसारण की क्रिया बढ़ाकर आर्तवजनक होती हैं। इस क्रिया से गर्भाशय में रक्त का भार बढ़ता है और पुष्पनिर्गम होता है। यदि गर्भ रहता है या अपरा रहती है तो वह गर्भपात कर अपरापातन कर होती हैं।

आवीजनक (*Oxytocics*)—

१—आवी प्रादुर्भाव करने या प्रवाहण की क्रिया बढ़ाने वाली औषधियां वह कहलाती हैं जो गर्भाशय में उत्तेजना बढ़ाकर संकोचद्वार के प्रसव कर्म में सहायक होती हैं। ऋतुकाल में इनके प्रयोग से गर्भाशय का संकोच होता है। संकोच की क्रिया होकर बार-बार गर्भाशय का संकोच रक्तभरण बढ़ाकर पुष्पजनन होता है।

औषधियां—

संविदासार (भांग का सत्व), चित्रकमूल कुष्ठ, इन्द्रायण, लांगली, वचा, चित्रक, चिरविल्व, चव्य, अजवायन, पिप्पलीमूल, शुण्ठी, पिप्पली इत्यादि। यह भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रयुक्त होकर रजःस्रावक होती हैं। किनाइन आदि संविदासार का अन्तः प्रयोग शीघ्र फलप्रद होता है।

नस्य—कुष्ठ, एला, लांगली, चित्रक, वचा, चिरविल्व चव्य का समान भाग लेकर किया चूर्ण नस्य लेने से आवी प्रादुर्भाव होता है। ऋतुकाल में रजःस्राव होता है। (च. चि. ३०)

धूपन—(१) भूर्जपत्र, शिंशपासार का धूपन योनिप्रदेश में करना। (२) सर्प निर्मोक, सर्षप व राल का धूपन प्रादुर्भाव करता है। च०

अपरापातनकर योग—

यह औषधियां जो अपरापातन करती हैं तथा आर्तव जनन क्रिया करती हैं निम्न हैं—

(१) ऋतुकाल में कुष्ठ, तालीसादि चूर्ण को सुरासार या मैरेय के साथ सेवन आर्तव स्रावकर व अपरापातन होता है। (२) मण्डूकपर्णी, पिप्पली का क्वाथ पूर्ण विधि से प्रयोग करें।

धूपन—(१) सर्पनिर्मोक, वच, गुग्गुल, पीतसर्षप, राल का धूपन। (२) सर्पनिर्मोक धूपन। (३) मदनफल का धूपन।

धारण—हिरण्यपुष्पी (हुलहुल), लांगली का कटिप्रदेश में धारण।

पिचु—सौंफ, हिंगु, मदनफल, सैंधव, कुष्ठ सिद्ध तैल पिचु धारण।

आस्थापन वस्ति—मदनफल, जीमूतक, इक्ष्वाकु, धामार्गव, कुटज, कृतवेधन, गजपिप्पली से युक्त आस्थापन वस्ति का प्रयोग।

अन्य रेचक—प्रवाहणजनक द्रव्य भी युक्तिपूर्वक प्रयोग करने पर पुष्पजनक होते हैं।

सुखप्रसवकर—

सुखप्रसव कर औषधियां युक्तिपूर्वक प्रयोग करने पर आर्तवजनक भी होती हैं।

औषधियां—

अपामार्ग, पुनर्नवा, चक्रमर्द, इक्षुरस, लांगली, जीमूतक (कटु तरोई), काकजंघा, वासा, निम्ब, तालफल, शरपुङ्ख, पारिभद्र।

इनका यथा विधि सेवन भी प्रसवकर कार्य में सहायक होता है। इसकी क्रिया से गर्भाशय के संकोच से रक्त भार की वृद्धि होकर आर्तवस्राव ऋतुकाल में होता है।

—शेषांश पृष्ठ १२८ पर।

बाधक कृच्छ्रार्तव (Dysmenorrhoea)

श्री पं० नन्दलाल शर्मा शास्त्री
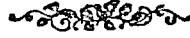
आर्तव रजः ऋतुस्राव सब एक ही वस्तु के नाम हैं। प्रत्येक स्त्री को स्त्रीत्व प्राप्ति के लिए प्रति मास ऋतुस्राव होना अत्यावश्यक होता है। उष्ण देशों में १२-१३ वर्ष में ही ऋतुस्राव प्रारम्भ हो जाता है किन्तु शीत प्रदेश योरोप आदि में १६ से २० वर्ष तक ऋतु धर्म होता है इस विलम्ब का कारण शीतता ही है। ठीक समय पर आर्तव होना महिला के लिए आरोग्य का चिन्ह है। आतव में कितने ही मिश्रण होते हैं जैसे श्लेष्मा-अशुद्ध रक्त सुधा (केलशियम) चार कुछ त्वक पेशी होते हैं। आर्तव ५ से २५ तोले तक होता है। आयु के हिसाब से ४५ या ५० वर्ष तक रहता है बाद में समाप्त होजाता है। समाप्ति के समय शरीर में अनेक बाधायें आकर समाप्त होता है। कभी कभी अनुकल्प रजः अर्थात् योनि मार्ग से न होकर मुख-नासा गुदा आदि विभिन्न मार्गों से होता है तब चिकित्सक इस दशा में घबड़ा कर रक्त पित्त की चिकित्सा करने लगता है वस्तुतः वह भी रज का एक विकृत भेद ही है। रजः प्रतिमास होता है। २८ वें या ३० वें दिन में होने वाला अच्छा माना गया है अर्थात् दो स्रावों के मध्य २८ से ३० दिन का अन्तर होना चाहिये। बिना कष्ट के उचित मात्रा में समय पर वर्ण में लाल और ३-४ या ५ दिनों तक रहने वाले आर्तव को शुद्ध कहा है पंचरात्रानुबंधि तु आर्तवं शुद्धमादिशेत् (चरक) जब तक आर्तव दिखाई पड़ता है तब तक बहिःपुष्पा स्त्री की संज्ञा होती है। आर्तव बन्द होने पर १६ दिन तक वह अन्तः पुष्पा रहती है। इस विषय को अधिक विस्तृत न करते हुए इतना निश्चय रखना चाहिए कि स्त्री का स्वास्थ्य मासिक धम की शुद्धी पर विशेषावलंबित है। यदि इसमें कोई त्रुटि आगई तो उसे रजोदोष या रजोविकार कहते हैं। रजोविकार से रहित स्त्री को गर्भाधान होता है। यद्यपि रजः १२ या १३ वर्ष से चालू हो जाता है किन्तु गर्भाधान के लिए आर्तव की परिपक्वता आवश्यक होती है। अतः शरीर स्थान में वाग्भट्ट ने आज्ञा दी है कि "पूर्ण षोडश वर्षा स्त्री पूर्णविंशेनसंगता शुद्धेगर्भाशये मार्गे रक्ते शुक्रेऽनिलेहृदि वीर्यवत सूतं सूते" ऋतुमती होने पर निम्न लक्षण स्वतः उद्भूत हो जाते हैं "क्षाम प्रसन्न वदना स्फुरच्छ्रोणि पयोधराम् स्रस्ताक्षि कुक्षि पुंस्कामां विद्यादृतुमती स्त्रियम्" और सुश्रुत ने भी "रजसि चोप चीयमाने शनैः स्तन गर्भाशय योन्यभिवृद्धिर्भवति" कहा है अस्तु आर्तव दोषों के अनेक भेद हैं उनमें से बाधक या कृच्छ्रार्तव (Dysmenorrhoea) पर ही कुछ विचार करेंगे।

कृच्छ्ररजः अधिकतर वायु प्रकोप के कारण ही होता है। इसमें वायु के स्थूल सूक्ष्म अनेक लक्षण पाये जाते हैं। विशेषतः वात प्रकृति की नारी में यह अधिक होता है।

कृच्छ्ररजः आयुर्वेद में वर्णित बीस प्रकार के योनि रोगों के प्रथम चार उदावर्त्ता-विप्लुता-परिप्लुता और वातला योनि के अन्तर्गत आ जाता है तो भी उदावर्त्ता योनि व्यापत् के लक्षण विशेष रूप से कृच्छ्ररजः में पाये जाते हैं अतः इसको उदावर्त्ता के नाम से ही वर्णन करेंगे।

विचार करने से प्रथम ही यह प्रश्न उठता है कि यदि हम कृच्छ्ररजः की गणना योनि रोगों के अन्तर्गत मान लें तो कृच्छ्रता का सम्बन्ध तो गर्भाशय (uterus) डिम्बकोष (ovaries) के साथ भी है। हां ठीक है आयुर्वेद में योनि व्यापत् कह कर केवल योनि का ग्रहण ही नहीं किया है अपितु योनि शब्द से योनि-योनिमुख-गर्भाशय-डिम्बकोष

तथा डिम्ब प्रणाली का भी ग्रहण होता है। योनि व्यापत् के लक्षणों को देखते हुए स्पष्ट होजाता है कि योनि शब्द से सम्पूर्ण प्रजननांगों का ही ग्रहण है। बीस कहने का तात्पर्य एक प्रकार के वर्गीकरण से है। उदावर्ता योनि—

"सफेनिलमुदावार्वा रजः कृच्छ्रेण मुञ्चति"।

सुश्रुते

कष्टपूर्वक फेनयुक्त रजः के त्यागने वाली स्त्री को उदावर्ता कहा गया है। भगवान् चरक भी कहते हैं।

सारुगार्ता रजः कृच्छ्रेणादावृत्य विमुञ्चति।
आर्तवे सापिभुक्तेतु तत्क्षणंलभते सुखम्॥
रजसो गमनादूर्ध्वं ज्ञेयोदावर्तिनी बुधैः।

यद्यपि उदावर्त १४ प्रकार का है जैसे—

वात विण्मूत्र जृम्भाश्रु क्षवोद्गार वमीन्द्रियैः।
क्षुत्तृष्णा श्वासनिद्राणामुदावर्तो विधारणात्॥

सुश्रुत

शरीर के स्वाभाविक व्यापार को रोकने से जैसे दूसरे उदावर्त होते हैं ठीक उसी प्रकार रजः को भी किसी कारण रुक जाने से उदावर्ता योनि कहा गया है। शरीर की स्वाभाविक क्रियाओं को स्वयं रोका जाय अथवा किसी कारण से स्वयं रुक जांय तो दोनों स्थितियों में उदावर्त होना सम्भव है। प्रधानतः इस रोग के दो कारण हैं एक प्राकृतिक तथा दूसरा स्थानीय। कारण डिम्ब-कोष गर्भाशय शोथ-अर्बुद-ग्रन्थि-आकुंचन-गर्भाशय का अविकास अंगनिर्माण दोष-अपने स्थान से गर्भाशय का च्युत होना (अधःपतन, तिर्यक् पतन्, पृष्ठ पतन् अग्रेपतन) ग्रीवा और गर्भाशय की विषमगति, रजः के साथ निर्मोक (कला) या थक्का (Blood clot) का द्रुत न होना, श्वेत प्रदर, गर्भाशय का आध्मान, निर्बलता, मानसिक कारण जैसे भीरुता-अति चिन्ता आदि। अपतन्त्रक रोग ग्रस्त नारियों में भी वात के कारण रजः कृच्छ्र होता है। ऋतु-शूल का एक और भी कारण देखा जाता है। वह है कुछ लड़कियां रजः को देखकर बहुत घृणा करती है और रजः क्या है और इसका होना भी स्वाभाविक ही है इस बात को न समझते हुए शीतल पेय अथवा अवरोधक औषधियों का सहारा लेकर बन्द कर देती हैं फलस्वरूप वह इस रोग का शिकार बन जाती हैं। यह बात कितनी ही युवतियों की चिकित्सा करते समय मालूम हुई है।

संक्षेप में चार कारण हैं। स्नायुविक विकृति (*N*ervous dysmenorrhoea), दूसरा रक्त की अधिकता से (Congestive), तीसरी आक्षेपिक (Spasmodic) और चौथा है निर्मोक (झिल्ली) मिश्रित (Membraneous dysmenorrhoea)।

लक्षण—प्रायः १६ वर्ष से २२ तक की युवतियों में यह अधिक देखा जाता है और ३५ या ३६ वर्ष के बाद यह रोग शांत हो जाता है और बच्चा होने के अनन्तर तो ठीक ही हो जाता है।

:: पृष्ठ १२६ का शेषांश ::

अन्य हेतु—

कई ऐसी दशाएं हैं जिनमें रक्तस्राव कम या अल्प होता है। यथा पाण्डुरोग, कामला, रक्ताल्पता अति कृशता, अति स्थौल्य, गर्भाशय व डिम्बाशय के रोग, रोगोत्तर कालज दौर्बल्य।

कई प्रकार की स्थितियों में आर्तवस्राव सम्यक् नहीं होता यथा—

शिरःशूल, उदर वृद्धि, उदर रोग, कोष्ठबद्धता, अतिसार, ज्वर, कास, अपस्मार, योषापस्मार, (अपतंत्रक) हृत्कम्प, आक्षेप, अर्श, योनिरोग आदि। इनमें इनका परिमार्जन होने पर स्राव होने लगता है।

अतः स्थिति देश-काल-प्रकृति व हेतु देखकर उपयुक्त औषधियों का प्रयोग लाभप्रद होता है।

—आचार्य श्री विश्वनाथ द्विवेदी
स्नातकोत्तर प्रशिक्षण केन्द्र, जामनगर।

नाभि प्रदेश—मेरुदण्ड कमर एवं समस्त शरीर में पीड़ा, भारीपन, शिरःशूल, आलस्य, वमनेच्छा अथवा वमन और अकड़न के साथ तीव्र शूल होता है। रजःस्राव से प्रथम १-२ दिन से प्रारम्भ होकर स्राव के दूसरे अथवा तीसरे दिन तक दर्द होता है। पीड़ा लगातार नहीं रहती दौरे का स्वरूप धारण कर लेती है। कभी-कभी तो इतनी असह्य पीड़ा होती है कि रुग्णा मूर्च्छित हो जाती है। कभी हृदयावसाद के लक्षण भी दृष्टिगत होते हैं। कमर के नीचे के भाग में पीड़ा का विशेष अनुभव होता है। जब स्राव उचित मात्रा में प्रारम्भ होता है तब पीड़ा भी क्रमशः कम होती जाती है। प्रायः बांयें डिम्ब कोष में तीव्र पीड़ा का अनुभव होता है। इसको बाधक संज्ञा भी दी गई है। अतः बाधक का संक्षेप में वर्णन अप्रासंगिक न होगा।

बाधक चार प्रकार का होता है—

पहला रक्तमाद्री बाधक—कमर और नाभि के तल भाग में पीड़ा, रजो धर्म एक या दो मास के अन्तर में हो तथा गर्भ स्थिर न रह सके।

दूसरा षष्ठी बाधक—स्त्री के नेत्र हस्तपाद और योनि में ज्वालावत् प्रतीति, एक महीने में २ बार ऋतु धर्म होना, रजः में लाला मिश्रण और वर्ण मलिन होता है।

तीसरा अंकुर बाधक —स्त्री की देह भारी होना, रक्त स्राव अधिक होना, ग्लानि, तल पेट में पीड़ा, हाथ पैर में अग्नि, शरीर की क्षीणता ऋतुस्राव तीन मास तक चालू रहे।

चौथा जलकुमार—जलकुमार बाधक में गर्भ संचार तो होता है परन्तु गर्भावस्था में उदर पीड़ा, शरीर टूटना, रक्त क्षीणता, गर्भपात हो जाना, स्तनों में पीड़ा, स्थौल्यभाव व भारीपन होता है। दीर्घ कालानन्तर ऋतु धर्म हो किंतु थोड़ा स्राव हो।

इन बाधकों में गर्भ प्रायः नहीं रहता। यदि रह भी जाय तो स्राव या पात हो जाता है।

चिकित्सा—

चिकित्सा करने के लिए चिकित्सक को उसका कारण ढूंढ़ना अवश्य चाहिए। कभी तो गर्भाशय स्राव का मार्ग संकुचित होने से रजःकृच्छ्रता होती है तब सलाई द्वारा या शोधक पिचु धारण कराने मात्र से ही रोग में आराम दिखाई देता है। कभी गर्भाशय च्युति के कारण से होता है तो पैसरी (छल्ला) चढ़ाकर पौष्टिक औषधि देने मात्र से काम बन जाता है। गर्भाशय अपने स्थान से फिर च्युत न हो इसका ध्यान ३-४ मास रखना पड़ता है। कभी कभी देखा गया है कि व्यायाम और खूब परिश्रम करने और बद्धकोष्ठता को दूर करने से ही रजः कृच्छ्रता दूर हो जाती है।

आर्तव शुद्ध करने पर अधिक ध्यान देना चाहिए। देखा गया है कि पूयमेह, उपदंशादि के कारण ये योनि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अतः रुग्णा और उनके पति दोनों का इतिवृत्त सुनने के अनन्तर औषधि की व्यवस्था करनी चाहिए।

उदावर्ता के वायु प्रधान होने से वात दोष का का शमन करना आवश्यक है। रजःकृच्छ्रता में दो प्रकार की चिकित्सा होती है-एक तो रजः कष्ट के समय और दूसरी चौथे दिन से दूसरे रजःकाल तक। कष्ट के समय रजः शोधन, पीड़ा-शामक और आक्षेप निवारक औषधि दी जाती है जैसे (१) कुमारिका वटी गर्म जल से २ से ३ बार २-२ रत्ती की गोली देनी चाहिये। प्रयोग है एलुवा हीराकस, बंगभस्म, शीतल चीनी और अहिफेन शुद्ध-इनको जल से २-२ रत्ती की गोली बनायें। इससे जरायु शूल, ऋतुशूल और मक्कलशूल में आराम होता है तथा रजःस्राव भी होता है।

(२) दशमूल, जटामांसी, खुरासानी अजवायन, ब्राह्मी के क्वाथ में हिंगु का प्रक्षेप देकर रजः प्रवर्तिनी के साथ देना चाहिये। रजः प्रवर्तिनी में हिंगु, एलुआ, सौभाग्यक्षार और कसीस कुमारी रस में मर्दित कर ३ रत्ती की गोली बनानी चाहिए।

इससे रज: खुलकर होता है और पीड़ा का भी शमन होता है।

यदि रक्तक्षीणता से कष्ट मालूम देता हो तो स्वर्णसूत शेखर रस, लौहभस्म और केशर मिश्रण देना चाहिए अथवा अकेले सूत शेखर से भी काम चल जाता है।

(३) शोरा और कुमारी का गूदा समान भाग अग्नि पर किसी मिट्टी के पात्र में मन्द ताप से सुखा देवें। १-१ माशा गर्म जल से देने से अच्छा लाभ होता है।

अत्यधिक पीड़ा में कनकघन वटी भी अच्छा लाभ करती है। मात्रा ½ रत्ती २-३ बार।

योग-धुस्तूर पंचांग रस को मंदाग्नि से गाढ़ाकर धूप में सुखा गोली बनाने लायक कर देना अथवा गाढ़ा हो जाने पर वाष्प से गोली बनाने लायक हो ⅛ से ½ र० की गोली बनाना अथवा घन में २० गुना मधु मिलाकर रख देना चाहिए। मात्रा—१ से २ रत्ती तक देनी चाहिए। सूचीवेध करने वाले वैद्यों को ऐट्रोपीन (Atropin) काम में लानी चाहिए। निम्न वटी भी अच्छी लाभदेय है। हीरा बोल, एलुवा, सुहागा, केशर और लौहभस्म, जटामांसी के क्वाथ में ३ रत्ती की गोली बनाना। मात्रा—१-२ गोली गर्म जल से देनी चाहिए। इसके प्रयोग से शूल और आक्षेप कम होकर ठीक स्राव होता है। इसके लिए ओलटकम्बल का योग भी अच्छा लाभदायक है। ओलटकम्बल १ तोला, कालीमिर्च ६ दाने, १ छटांक गुलाब जल १० तोला में पीस कर भांग की तरह छान लेवें। इसकी इसी मात्रा से ही रुग्णा को आराम होता है।

क्वाथों में ब्राह्मी-काले तिल-भारंगी का काढ़ा बनाकर गुड़ डालकर देने की प्रथा है। इस योग से मासिक खुल कर होजाता है। शूल प्रारम्भ होजाय किन्तु रज: स्राव न होता हो तो किंशुक पुष्पों का क्वाथ बनाकर उसमें इतना गर्म जल और डाल दें जिससे नाभि तक जल पहुँच जाय। रुग्णा को टब में बिठा देना चाहिये। १ घन्टा भर यह कटि स्नान करावें। इस स्नान से शोथ कम होकर स्राव खुलकर होता है स्नायुओं का तनाव कम होता है और दर्द में भी आराम होता है। शूल के समय गर्म थैली का सेक भी अच्छा काम करता है अस्तु।

वस्तुत: ऊपर बताई गई चिकित्सा पूर्ण नहीं किन्तु सामयिक है इसलिये पूर्णतया चिकित्सा के लिए तो चौथे दिन से चिकित्सा प्रारम्भ करानी चाहिए।

यदि कभी कुमारीच्छद के कारण स्राव रुकता है, तो शलाका द्वारा पर्दे को खुलवा देना चाहिए। रक्त रुकने से प्रदाहावस्था उपस्थित होजाने पर शोथ नाशक रूक्षताहर और स्रावकारक उपाय करने चाहिए। इसके लिये पिचु धारण करवाना, लेप (गर्भाशय के ऊपर के भाग तलपेट और बस्ति स्थान पर) लगवाना चाहिये। यदि गर्भाशय में शोथ हो तो लेप का प्रयोग करना चाहिए। पिचु का योग है एरण्ड मज्जा १ तोला, एलुवा १ तोला, छुहारा नग १ गुठली रहित, केशर १ माशा मधु रूई यथा योग्य खूब कूट पीसकर पिचु बनाकर रखना चाहिये। रात्रि में सोते समय किसी धात्री से गर्भाशय के मुख पर रखवा देना चाहिये, प्रात: निकलवा देना चाहिए। इससे खूब गन्दा स्राव निकल जाता है। जब तक गन्दा जल निकलता रहे तब तक पिचुधारण करवाते रहना चाहिये। लेप के लिए मैदा लकड़ी चूर्ण १ तोला, दशांगलेप ½ तोला, गूलरघन ६ रत्ती मोम ½ तोला, वैसलीन १ तोला मिलाकर गर्म गर्म ऊपर लगवादें। यह लेप आश्चर्य जनक काम करता है। खाने के लिए चन्द्रप्रभा वटी ४ रत्ती, त्रिवंग १ रत्ती, बोलचूर्ण (हीराबोल) ४ रत्ती—एसी २ मात्रा प्रात: सायं गर्म जल से देना चाहिये तथा भोजन के बाद अशोकारिष्ट कुमार्यासव सौंफ के अर्क के साथ दो बार देना चाहिए। पेट साफ रखने तथा वायु का शमन करने के लिए स्नुही दुग्ध भावित पिप्पली

१-१ रत्ती गर्म दूध या जल से दें। प्रातः एक बार मल शुद्धि हो जाती है। यदि योनि मार्ग से दूषित जल का स्राव भी हो तो गूलरघन ६ रत्ती पाव भर उबलते जल में डाल मिश्रण बनालें। इस जल की उत्तर वस्ति दें। यह कार्य शाम को ५-६ बजे करना चाहिये। पेट साफ रखने के लिए अश्वकंचुकी अथवा यूनानी अत्रिफल दिया जा सकता है।

यदि रक्ताभाव के कारण कष्ट हो तो त्रिवंग भस्म १ रत्ती, लौह भस्म १ रत्ती, केशर १ रत्ती, छुहारा १ नग (रात के दूध में भिगो देना) प्रातः मक्खन १ तोला मिश्री ½ तोला छुहारा को दूध से निकाल भस्म और सब वस्तु मिलाकर घोटकर चटनी बनालें। यह पूरी मात्रा खिलाकर ऊपर से दूध पिलादें और भोजनोत्तर अश्वगंधारिष्ट द्राक्षासव मिश्रण २॥ तोला दो बार देवें रात्रि को च्यवनप्राशावलेह २ तोला दूध से दें। बादाम-अंगूर-सेव-आम मौसमी आदि पौष्टिक फलों का सेवन कराया जाय। ३-४ मास के बाद रोग निवृत्ति होकर शरीर पुष्ट हो जायगा।

मोटी स्त्री में ऋतु शूल (बाधक) के लक्षण प्रतीत होते हों तो मंजिष्ठादि क्वाथ से चन्द्रप्रभा ६-६ रत्ती प्रातः सायं देवें। भोजनोत्तर कुमार्यासव २॥ तोला गर्म जल से योगराज गुग्गुल की २-२ गोली देवें। ५-६ दिन के बाद शार्ङ्गधरोक्त इच्छाभेदी रस से विरेचन करवाते रहना चाहिये।

ऐसी नारी के लिए घी तैल स्निग्ध वस्तु मिठाई दूध आदि बन्द करवा देना चाहिये। यदि रक्त क्षीणता भी हो तो ताप्यादि लौह ४-४ रत्ती पानी से देना चाहिये। आरोग्यवर्धनी ४ से ६ रत्ती कुमार्यासव से ३ बार देने पर भी अच्छा लाभ देखा गया है। एक मास में २ बार रजोधर्म होता हो, साथ में ऋतुशूल अधिक हो रजःस्राव दौर्बल्य हो तो चन्द्रांशु रस १ रत्ती कहरवा पिष्टी ४ रत्ती जीरा क्वाथ से प्रातः सायं देना तथा अशोकारिष्ट २ तोला शीतल जल समान भाग मिला कर संशमनी वटी ४-४ रत्ती लेने से आराम होता है। रोग जीर्ण होने पर नष्टपुष्पांतक रस १ रत्ती, खुरासानी अजवायन ४ रत्ती प्रातः सायं दूध से देना और भोजनोत्तर दशमूलारिष्ट २॥ तोला देना चाहिये। अत्यन्त क्षीणता आगई हो उदर विकार और प्रदर की शिकायत हो तो चिन्तामणि चतुर्मुख १-१ रत्ती जपाकुसुमपिष्टानुपान से देना हितकर है।

रक्तमाद्रीबाधक में नष्टपुष्पांतक तथा चंद्रांशु रस जीरक क्वाथानुपान से लाभदायक हैं। षष्ठी बाधक में पुष्यानुग चूर्ण १॥ माशा, मुक्ताशुक्ती पिष्टी ३ रत्ती, हीरा दाक्षणी चूर्ण ४ रत्ती का मिश्रण देना अथवा अशोक घृत १ तोला गो दुग्ध से प्रातः १० बजे और चार बजे अशोक छाल चूर्ण १॥ माशा चन्दन चूर्ण १ माशा हीरा दाक्षणी ४ रत्ती और कहरुवापिष्टी २ रत्ती का मिश्रण शीतल जल से देना चाहिए।

गर्भाशय का विकास न होने के कारण रोग हो तो त्रिबंग मण्डूर प्रातः सायं ब्राह्मी रसायन के साथ देना चाहिए।

यदि गर्भाशय अपने स्थान से भ्रष्ट होकर इस प्रकार की पीड़ा दे रहा हो तो धात्री द्वारा अपने स्थान पर स्थित करवा कर रिंग पेसरी चढ़वा देनी चाहिये और रौप्य भस्म १ रत्ती मधु घृत से प्रातः सायं देना तथा पूरा आराम देना चाहिये।

अंकुर बाधक में भी अशोक घृत १ तोला, कहरुवा पिष्टी ४ रत्ती, प्रवाल पिष्टी २ रत्ती, गिलोयसत्व ४ रत्ती, मिश्री १॥ माशा मिलाकर प्रातः सायं देना चाहिए और भोजन के बाद अशोकारिष्ट २॥ तोला, शर्बत अनार (दाड़िम) २॥ तोला, गुलाब जल ५ तोला मिलाकर २ बार देना तथा तल पेट पर गीली मिट्टी की रोटी बनाकर रखवा देनी चाहिये।

प्रयोग नं० २–अशोक चूर्ण १ माशा, नागकेशर असली १॥ माशा, हीरा दक्षिणी १ माशा मिश्रण दिन में ३ बार देने से भी यथेष्ठ लाभ होता है।

पत्रांगासव २॥ तोला सजल भोजन के बाद देना चाहिए। प्रयोग नं० ३—चतुर्कला रस ४ रत्ती, मुक्ता-शुक्ती ४ रत्ती शर्बत अंजबार से दिया जाता है। सुधाद्रव्य यथा प्रवाल, कपर्द, अकीक, मुक्ता, मुक्ता-शुक्ती गोदन्ती भी इसमें अच्छा लाभ करते हैं।

जलकुमार बाधक में फल कल्याण घृत १-१ तोला प्रातः सायं गोदुग्ध से देना चाहिए। भोजन के बाद चंद्रांशुरस १॥ रत्ती, अशोकारिष्ट सजल से २ बार देना चाहिए। यदि अशोकारिष्ट के साथ अश्वगन्धारिष्ट भी मिलाकर दिया जाय तो अच्छा लाभप्रद है। प्रयोग ४-५ मास तक चालू रखें। डिम्ब कोष की विकृति से होने वाले कष्टप्रद रजः शूल में चंद्रांशु रस चन्द्रप्रभा और बोल (हीरा बोल) मिश्रण अच्छा कार्यकर देखा गया है।

प्रदर के कारण ऋतुशूल होता हो तो प्रदरांतक रस (सै. र.) प्रातः सायं १॥ रत्ती, विधारा बीज, अश्वगन्धा चूर्ण के साथ देकर गो दुग्ध पिलायें और योनि स्राव को रोकने के लिए गूलर घन १ माशा, सौभाग्य क्षार २ रत्ती, अत्युष्ण जल १० तोला में पूरा मिश्रित कर दें। ततः शुद्ध साफ रुई इस जल से प्लुत कर गर्भाशय तक धोडालें। ऐसा दिन में २ बार करना चाहिए। औषधि के अतिरिक्त टब-बाथ, सेक-लेप पिचुधारण आदि से भी योनि रोगों में लाभ होता है। आयुर्वेद में बस्ति चिकित्सा को वात रोगों के लिए विशेष लाभदायक कहा है। वस्तुत, यह बात प्रत्यक्ष में भी देखी गई है। वैद्य बन्धुओं को चाहिए कि बस्ति द्रव्यों को ध्यान में रखकर योनि रोगों में चिकित्सार्थ वस्ति का खुलकर प्रयोग करना चाहिए। कभी-कभी तो ऐसा भी अनुभव में आया है कि औषधि देते रहने पर भी रोग बढ़ता ही गया किंतु वस्ति के कुछ काल के प्रयोग से आरोग्य लाभ हो गया। ऐसी ही बात प्रदर में भी देखी गई। यदि प्रदर नाशक औषधि के साथ गूलर, त्रिफला, सौभाग्य क्षार के जल को बस्ति दी गई तो चमत्कारी लाभ दृष्टिगत हुआ। मेरा वैद्य बन्धुओं से नम्रनिवेदन है कि अपने आयुर्वेद शास्त्र में से प्रयोगों का परीक्षण कर सविवरण दूसरे वैद्यों के पथ प्रदर्शन करने के लिए उपस्थित करें। आंख मूंदकर केस को ऐलोपैथी हास्पिटल भेजने से प्रथम अपने कोष तथा अनुभव से आयुर्वेद का नाम प्रोज्वल करने का पूर्ण यत्न करना चाहिए।

—कविराज नन्दलाल शर्मा शास्त्री,
ब्लाक ३, सेवा समिति नगर कोली वाड़ा, बम्बई।

कष्टार्तव

श्री प्रेम शङ्कर शर्मा

यह रोग आजकल बहुलता से पाया जाता है। अधिकतर उन लड़कियों में पाया जाता है जो कि शिक्षित तथा कुछ कार्य नहीं करती। इसके विपरीत गांवों में रहने वाली तथा अशिक्षित एवम् शारीरिक परिश्रम करने वाली स्त्रियों में अपेक्षाकृत कम मिलता है। इसके अन्दर कुछ विशेष बातें पाई जाती हैं जिनसे कि कष्टार्तव का ज्ञान होता है। स्त्रियों में अधिकतर सुस्ती, उदर के अधोभाग में भारीपन मिलता है।

लक्षण—

आर्तवकाल प्रारम्भ होने के २-३ दिन पूर्व उदर के अधोभाग में तथा कटि में तीव्र वेदना की अनुभूति होती है। जब आर्तव चक्र का प्रारम्भ

होता है उस समय वेदना कम हो जाती है। जिस समय श्रोणिगत अंगों में रक्त अधिक पैदा होता है उस समय इसी प्रकार के हेतु रोग की उत्पत्ति करते हैं। इस रोग में पीड़ा रजःस्राव के समय होती है। यह प्रथम दिन ही होती है, पीड़ा उग्र रूप की होती है। कभी-कभी पीड़ा का रूप इतना भयङ्कर हो जाता है कि रुग्णा बेहोश एवम् मूर्छित हो जाती है। कई-कई बार रोगी में हृदयावसाद के लक्षण पाये जाते हैं। कभी-कभी हिचकी एवम् वमन की भी शिकायत मिल जाती है। पीड़ा का क्रम श्राव के साथ होता है। जैसे जैसे श्राव की मात्रा बढ़ती जाती है वैसे वैसे पीड़ा कम होती जाती है। पीड़ा भिन्न-भिन्न रोगियों में भिन्न-भिन्न प्रकार की मिल सकती है। इस प्रकार का रोग अधिकतर १८ से २१ वर्ष की उम्र में पाया जाता है तथा ३५-४० वर्ष की उम्र तक समाप्त हो जाता है। इस प्रकार का रोग शादी के बाद तथा बच्चे होने के बाद ठीक हो जाता है। इसलिए चिकित्सक का परम कर्त्तव्य हो जाता है कि रुग्णा को विवाह के लिए सलाह दे।

कारण—

१. गर्भाशय का विकृत विकास—अधिकतर युवावस्था के समय पर गर्भाशय का आकार बड़ा हो जाता है। कभी ऐसा होता है कि गर्भाशय का आकार बढ़ नहीं पाता। अविकसित (Infantile) गर्भाशय की दशा मिलती है जिसमें आकुंचन जन्य कष्टार्तव की अनुभूति होती है। गर्भाशय ग्रीवा छोटी होती है जिसकी आकृति कोनाकार होती है। कभी-कभी योनि भी छोटी होती है। इस प्रकार की सब दशाओं का ज्ञान गर्भाशय शलाका (Uterine sound) प्रविष्ट करके होता है। यदि गर्भाशय ठीक प्रकार से कार्य नहीं कर रहा होता तो आर्तव चक्र कम हो जाता है।

२. गर्भाशय के रचना सम्बन्धी दोष—इसमें निम्न प्रकार का लक्षण मिलता है जैसे-गर्भाशय का द्विगुणी भाव जवनिकायुक्त होना (Bicornuate or Septate uterus)।

३. गर्भाशय का स्वस्थान से च्युत होना (Malposition of utetus)— जब गर्भाशय पीछे की ओर पहुँच जाता है तब कष्टार्तव की क्रिया बढ़ जाती है।

४. गर्भाशय की पेशियों की हीनता—जब गर्भाशय की साधारण मांस पेशियां ठीक प्रकार से बढ़ नहीं पाती तब गर्भाशय की संकोचन शक्ति कम हो जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि गर्भाशय आर्तव रक्त को ग्रीवा के बाहर नहीं फेंक पाता। रक्त के एकत्रित होने के कारण एवं भार बढ़ जाने के कारण कष्टार्तव उत्पन्न होता है।

५. ध्रुवत्व की कमी (*Bipolarity*) इसका तात्पर्य गर्भाशय के अन्दर एवम् ग्रीवा के अन्दर संकोच और विस्फार के क्रम की विषमता का होना है। ऐसा देखा जाता है कि जब गात्र संकोच करना शुरू करता है तब ग्रीवा फैलती है। जब इसके विपरीत क्रिया देखी जाती है और जब इस क्रम में विषमता दृष्टिगोचर होती है तब रक्त रक्त का ग्रीवा के बाहर निकलना कठिन प्रतीत होता है। परिणाम यह होता है कि आकुंचन जन्य कष्टार्तव की उत्पत्ति हो जाती है।

६. रजःस्राव का अप्राकृतिक होना—रजःस्राव में एक विशेष प्रकार का पदार्थ होता है जो कि रक्त स्कन्द को फैलाता है जिसको आधुनिक भाषा में रक्त स्कन्द द्रावक कहा जाता है जो कि स्वभाव से ही आर्तव में पाया जाता है। यदि किसी कारण वश इस पदार्थ की कमी हो जाय तो रक्त के थक्के गर्भाशय ग्रीवा से न निकलने पर आकुंचन पैदा करके पीड़ा करते हैं।

७. गर्भाशय अन्त: पीड़न—जब गर्भाशय के अन्दर विकास क्रम में कुछ दोष दिखाई देता है तब गर्भाशय के भीतर रज के एकत्रित हो जाने से आकुंचन जन्य पीड़ा की अनुभूति होती है। इस प्रकार के आर्तव की पीड़ा गर्भाशय जन्य होती है। कुछ

वैज्ञानिकों का मत है कि पीड़ा बीज कोष के रक्ताधिक्य के कारण होती है ।

८. मानसिक कारण—इसका भी प्रभाव कष्टार्तव पर पड़ता है । शिक्षित तथा शहरी लड़कियों में उनकी प्रकृति या मानसिक उद्विग्नता से यह ज्ञात होता है । इसके विपरीत नहीं होता ।

९. अनुचित शिक्षण या उपदेश–भिन्न-भिन्न प्रकार के उपदेशों का भी इसके ऊपर प्रभाव पड़ता है । कभी-कभी ऐसा वर्णन मिलता है कि माता स्वयं ही कष्टार्तव से पीड़ित हो तथा कन्या का पालन पोषण भी उसके ही साथ हुआ हो तो कष्टार्तव अधिकतर पाया जाता है ।

१०. दुर्बलता—शारीरिक स्वास्थ्य पर भी इसका प्रभाव पड़ता है । कमजोर स्त्रियों में यह अधिक पाया जाता है । इसके विपरीत स्वस्थ स्त्रियों में बहुत कम मिलता है ।

भेद—

कष्टार्तव के मुख्य रूप से निम्न तीन भेद किये जाते हैं—

(१) रक्ताधिक्य जन्य (Congestive)

(२) आकुंचन जन्य (Spasmodic)

(३) जबनिका जन्य (Membraneous)

१—रक्ताधिक्य जन्य—

यह स्वयं कोई रोग नहीं है परन्तु किसी दूसरी बीमारी का लक्षण है । इस दशा में आर्तवकाल प्रारम्भ होने के तीन दिन पूर्व पीड़ा होती है जो अधिकतर उदर के नीचे के भाग में तथा पीछे की ओर होती है । जब आर्तव प्रारम्भ हो जाता है उस समय पीड़ा समाप्त हो जाती है । जिन रोगों के कारण यह होता है उनमें से मुख्य निम्न हैं—योनिस्राव, श्रोणिप्रदेश में शोथ । बीजकोष में जिस समय रक्ताधिक्यता होती है तो बीज कोष के चारों तरफ बने हुए बन्धन (Adhessions) आर्तव के समय पर बीज कोष में तनाव पैदा करते हैं जिसके कारण से आर्तव के पूर्व पीड़ा होना प्रारम्भ हो जाती है ।

चिकित्सा—

कारण का निवारण करना चाहिए ।

२—आकुञ्चन जन्य—

इस प्रकार के कष्टार्तव के अन्दर आर्तवकाल के पहले दिन पीड़ा प्रारम्भ होती है तथा वह भी उग्र रूप की होती है । इसका समय आधा से एक घण्टा तक होता है । कभी-कभी पीड़ा का समय २४ घंटे तक का भी हो सकता है । पीड़ा में विशेषता इस बात की होती है कि बीच-बीच में रुक-रुक कर होती है । इस पीड़ा के साथ साथ रोगी में (रुग्णा) वमन, हृदयावसाद आदि के लक्षण पाये जाते हैं । पीड़ा उदर के नीचे के भाग में जंघाओं में होती है । जैसे-जैसे आर्तव की वृद्धि होती जाती है उसी क्रम से पीड़ा शान्त होती जाती है । कुछ रोगियों में पीड़ा आर्तवकाल प्रारम्भ होने के १ दिन पूर्व तथा कभी-कभी पीड़ा आर्तव प्रारम्भ होने के दो दिन के अन्तर से होती देखी गई है । पीड़ा १८ या १९ साल की उम्र में अधिकतर देखी जाती है । कष्टार्तव ३५ से ४० वर्ष की उम्र के बाद में नहीं पाया जाता ।

३—यवनिका जन्य—

यह आकुञ्चन जन्य कष्टार्तव की ही एक विशेष दशा है जिसमें गर्भाशय से कुछ Cast या Membraneous Threst निकलते हैं । इसका कारण Uterine enzyme की कमी है ।

चिकित्सा—

आकुंचन जन्य कष्टार्तव के समान ।

रोग विनिश्चय:—

कष्टार्तव के कारणों तथा लक्षणों पर विचार करना चाहिए । उसके भेदों पर भी दृष्टिपात करते हुए "अवान्तरकालीन वेदना से अवश्य भेद करना चाहिए ।" कुछ स्त्रियों में दो मासिक चक्रों के मध्य में या रज चक्र के १४ वें दिन के लगभग उदर के नीचे के भाग में तीव्र पीड़ा की अनुभूति होती

है। इसी को "अवान्तरकालीन वेदना" कहा जाता है। इस वेदना का कारण बीजागम काल में बीज पुटक का विदीर्ण (Rupture of graffian follicles) माना जाता है।

चिकित्सा—

प्रायः यह रोग शादी होने के पश्चात् अथवा बच्चा पैदा होने के बाद स्वयं ही ठीक हो जाता है। रोगी की खुली हवा में परिश्रम तथा खेल कूद में रुचि पैदा करना, यदि सम्भव हो तो घोड़े आदि की सवारी के लिए सलाह देनी चाहिए। इस प्रकार की शिक्षा देनी चाहिए जिससे कि रुग्णा के आर्तव के प्रति भाव बदलें। पौष्टिक एवं सुपाच्य आहार-बिहार करने को कहना चाहिये। वेदना हर औषधियों का प्रयोग कराना चाहिए यथा एस्प्रिन, फेनासिटीन, बार्बिटुरेट्स, बेलडोना, धत्तूर आदि योगों का प्रयोग करना चाहिए। एट्रोपीन के सूचीवेध सद्यः लाभप्रद होते हैं। अफीम या पेथीडिन का प्रयोग बहुत कम करना चाहिए। उष्ण स्नान या मद्य का प्रयोग बहुत उत्तम होता है। रोगी को बिवन्ध कभी भी नहीं रहने देना चाहिए।

स्यंद चिकित्सा (Hormonal therapy)—

आर्तव काल समाप्त होने के बाद यदि औसट्रोजन्स (oestrogens) दिये जांय तो दूसरे समय के लिये बीजागम नहीं होता। इस प्रकार दूसरा समय बिना बीजागम के होता है। इस चिकित्सा में एक बड़ी परेशानी चिकित्सक के समक्ष आती है कि oestrogens की ठीक मात्रा ज्ञात न होने पर भिन्न-भिन्न प्रकार का प्रभाव पड़ता है। यदि इस औषधि की अधिक मात्रा देदी जाय तो आर्तव की प्रवृत्ति बिल्कुल नहीं होती। इसके विपरीत यदि कम देदिया जाय तो बीजागम बन्द ही नहीं होता। इस प्रकार यह स्पष्ट ज्ञात होगया कि ठीक मात्रा देने पर ही लाभ होता है। कभी कभी ५ मिलीग्राम स्टिलबेस्ट्रौल दिन में तीन बार तक देना पड़ता है। यह मात्रा अनुभव होने पर ज्ञात होती है। Progestron देने पर गर्भाशय में संकोच कम होता है। इस लिए Progestron २ या ३ मिलीग्राम प्रतिदिन के हिसाब से आर्तव प्रारम्भ होने के तीन दिवस पूर्व देते हैं। Testosterone कुछ रोगियों में २५ मिलीग्राम प्रतिदिन के हिसाब से आर्तव स्राव काल से एक सप्ताह पूर्व दिया जाय तब आकुंचन जन्य कष्टार्तव नहीं होता।

शल्य चिकित्सा—

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में कष्टार्तव को दूर करने के लिये शल्य चिकित्सा का वर्णन भी यथेष्ट मिलता है जिसका संक्षिप्त विवरण यहां पर दे रहा हूं।

ग्रीवा का विस्फारण (dilatation of cervix)-

इसके अन्दर सर्व प्रथम रोगी को लिथोटोमी की स्थिति में लिटाया जाता है। योनि को जीवाणु नाशक द्रव से विसंक्रमित किया जाता है। इसके बाद योनि विस्फारक लगाते हैं तथा ग्रीवा को पीछे की ओर वाल्सैलम के संदश (Volsellum forceps) द्वारा पकड़कर बाहर की ओर खींचते
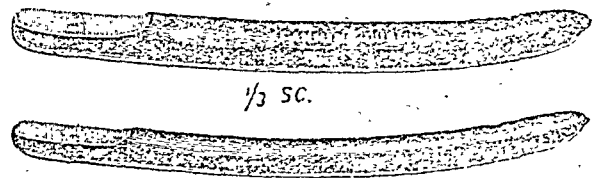
चित्र ४०—हैगार का ग्रीवा बिस्फारक

हैं और हैगार के गर्भाशय ग्रीवाविस्फारक (Hegar's dilator) को गर्भाशय ग्रीवा नलिका में धीरे-धीरे प्रवेश करते हैं। जब १२ नम्बर तक पहुँचाने में कम से कम आधा घंटे का समय अवश्य लग जाना चाहिये। साथ ही साथ यह ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि यन्त्र के प्रवेश में अधिक दबाव नहीं पड़ना चाहिये अन्यथा ऐसा हो सकता है कि ग्रीवा फट जाय। ऐसा होने पर

रक्त स्राव अधिक होता है। इस प्रकार से गर्भाशयिक धमनी (uterine artery) प्रपीड़ित हो सकती है। इस धमनी के फट जाने से अत्यधिक रक्त स्राव होता है। ऐसा प्रत्यक्ष देखा गया है कि १० या ११ नम्बर तक के हैगार के विस्फारक को प्रवेश करने पर को कठिनाई नहीं होती लेकिन इसके आगे के नम्बरों पर प्रवेश करते समय कठिनाई होती है इस लिए यंत्र को सावधानी पूर्वक प्रवेश करना चाहिये। विस्फारक को प्रविष्ट करने से पूर्व चिकना कर लेना चाहिये तथा १४ नम्बर तक इसको प्रवेश करते हैं। इसके बाद गर्भाशय ग्रीवा नलिका में एक कांच की मोटी सलाई (Glass rod) लगा देते हैं। इसकी सतह के ऊपर एक प्लेट जुड़ी रहती है जिसके कारण यह सलाई अधिक ऊपर नहीं जाती। जब यह गर्भाशय ग्रीवा नलिका में प्रविष्ट हो जाती है तब योनि को जीवाणु नाशक गौज़ से बन्द करते हैं। ४८ घंटे के होने पर सलाई को निकालते हैं। उपरोक्त ग्रीवा का विस्फारण रुग्णा को संज्ञाहीन करके करना चाहिये। यही शल्य क्रिया आकुंचन जन्य प्रसार को दूर कर देती है। कभी कभी इस शल्य कर्म के बाद में गर्भाशय का लेखन (Currettage of uterus) भी कर देते हैं। यद्यपि इसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं मिलता है तथापि इससे लाभ होता है यह निश्चय है।

त्रिकपूर्व इड़ाभेद-(Pre sacral sympathactomy)

इस शस्त्र कर्म की बहुत कम आवश्यकता पड़ती है तथा तीव्र एवं कठिन अवस्था में लाभकर होता है।

आयुर्वेद के अनुसार चिकित्सा—

आर्तवादर्शन की प्राचीन ग्रन्थों में विशद चिकित्सा मिलती है परन्तु कारण, लक्षण, सम्प्राप्ति का वर्णन बहुत कम ही मिलता है। वह निम्न प्रकार से है कि वायु के कारण अथवा योनि पथ के दोषों से आवृत होने के कारण स्त्री में रजःस्राव रुक जाता है। अतः आयुर्वेद के अनुसार वायु का शमन तथा आवरण को दूर करना चाहिए। इसके लिए निम्न चिकित्सा करनी चाहिए।

स्त्री के स्वास्थ्य को उन्नत करने के लिए जीवनीय गण की औषधियों से सिद्ध घृत का प्रयोग करना चाहिए। यदि रक्त धातु की कमी से कष्टार्तव हो तो मृग बाराह प्रभृति पशुओं का रक्त पीने के लिए देना चाहिए। साथ ही साथ रक्तवर्द्धक अन्य योगों का रस, रस सिंदूर, स्वर्णसिंदूर, लोहभस्म, मण्डूर भस्म और शुद्ध कुपीलु आदि का प्रयोग कराना चाहिए। श्लेष्मवर्द्धक वस्तुएें रजःस्राव को बढ़ाती है। अतः तिल, गुड़, दधि, अम्लपदार्थ, मछली, बैंगन, उड़द का सेवन कराना चाहिए। उष्ण द्रव्यों का सेवन कराना चाहिये।

निम्नलिखित योग कष्टार्तव को दूर करने में प्रयुक्त होते हैं।

१. नष्टपुष्पान्तक रस—उष्ण जल के साथ प्रयोग करें

(२) रजः प्रवर्तनी वटी—२ रत्ती की गोली प्रातः सायं उष्ण जल से सेवन करानी चाहिए।

(३) अपामार्गादि वर्ति—जिस समय प्रयोग करना हो उस समय गोली को घृत से चिकना करके योनि में धारण करना चाहिए।

(४) कुमारिका वटी या एलादि वटी—जल से प्रयोग करें।

(५) कुमार्यासव—भोजन के बाद प्रयोग कराना चाहिए।

(६) कांकायन गुटिका (गुल्माधिकार)—आर्तव दर्शन में लाभप्रद है।

(७) चन्द्रप्रभावटी—रजः कृच्छ्र में लाभकर है।

—श्री प्रेमशङ्कर शर्मा,
ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज, हरिद्वार।

कष्टार्तव

श्री शेखफय्याज खां

कष्टार्तव की जांच करने के लिये अनुभवी दाई को दिखाना चाहिये और चित्र के अनुसार जांच करनी चाहिए। हाथ द्वारा जांच करने के पहले ध्यान देना चाहिए कि नाखून घिसा हुआ हो या रबर की टोपी जो विशेष प्रकार की आती है प्रयोग करनी चाहिए। यदि न प्राप्त हो सके तो बच्चों के रबर बैलून (जो काफी बड़ा हो और पूरी अंगुली पर आजाय) का प्रयोग करें फिर भीतर अंगुली डाल कर जांच करें।
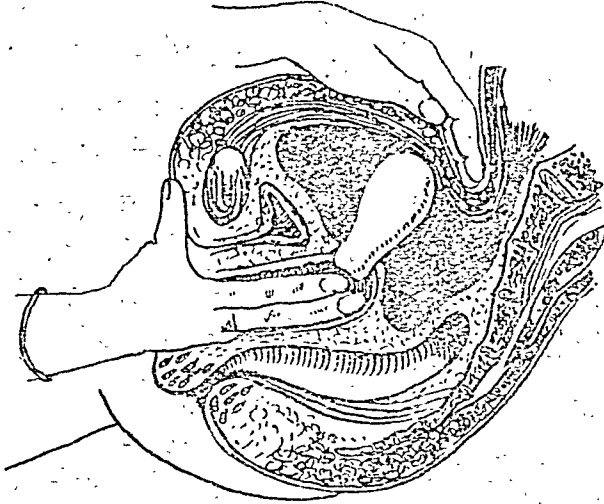
चित्र ४१

यदि वास्तव में टेढ़ापन ज्ञात हो तो उसका उपचार करें। गर्भाशय के मुख पर यदि व्रण या सूजन होगी तो भी ज्ञात होगा। स्त्री को दर्द वाले भाग पर अंगुली के स्पर्श से पीड़ा होगी। यदि बिना पीड़ा के ही ज्ञात हो तो सीधा करने के लिए पहले उसको (स्त्री को) कोष्ठ शुद्ध कराई जाय। फिर 'रास्नादि काथ' या अन्य काढ़ा बांस की गांठ, अजवायन, गाजर बीज इत्यादि गर्म करके पिलाया जाना चाहिए और पेडू पर भी सेक कराया जाय। गर्म पानी के टब में भी बिठाकर आर्तव में सहायता देनी चाहिए। जब पेडू में रक्तप्रवाह बढ़ जाय, गर्माहट का अनुभव हो तब ऊपर से धीरे-धीरे सहलाते हुए पेडू को नर्म किया जाय और दूसरे हाथ से चित्र में दिये अनुसार कुछ दबाव देकर भीतर अंगुली से कोमलतापूर्वक सरकाना चाहिए।

आर्तव कष्ट मिटाने के लिए आयुर्वेदिक इन्जेक्शन घृत कुमारी २ C. C. स्रावकाल के पहले सप्ताह में दो बार भी प्रयोग करना चाहिए परन्तु ऐसा पुराने रोग पर करना चाहिये। साधारण अवस्था में काल के पहले १-२ काफी होते हैं। 'अशोक' (प्रताप) इन्जेक्शन भी प्रयोग किया जा सकता है।
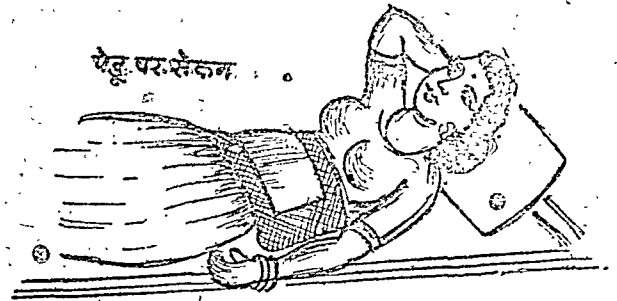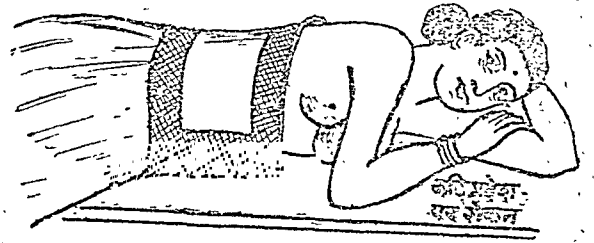
चित्र ४२

अन्य इन्जेक्शन—

(१) Belladona......(होम्यो)

(२) Bellafoline......१ c. c. एलोपैथिक

(३) Atropine sulph. १ c. c. $\frac{1}{60}$ से $\frac{1}{100}$ ग्रेन एलोपैथिक।

—शेषांश पृष्ठ १४७ पर।

आर्तव दोष

कुमारी मंजुला सेन

कुमारी मंजुला सेन

स्त्री जननेन्द्रिय स्थान में किसी भी किस्म के रोगों के होने से आर्तव स्राव में कुछ न कुछ गड़-बड़ी आ ही जाती है अत: स्त्री जननेन्द्रिय संस्थान की स्वस्थता का बोधक यह आर्तव स्राव है। यदि आर्तव स्राव प्राकृत या स्वाभाविक रूप से हो जाता है तो स्त्री के जननेन्द्रिय संस्थान के अवयव सभी स्वस्थ हैं अन्यथा नहीं। अत: आर्तव स्राव में विकार आना जननेन्द्रिय संस्थान के किसी न किसी भाग का अस्वस्थ होना बताता है। आर्तव स्राव में बहुधा निम्न लिखित विकार आते दिखाई पड़ते हैं।

पूर्वार्त्तव —

किसी किसी बालिका को समय से पूर्व ही यानी १०-११ वर्ष की अवस्था में ही आर्तव स्राव प्रारम्भ हो जाता है। यदि यह उनके बीजाधरों के अधिक सक्रिय होने के कारण हो तब तो कोई चिन्ता की बात नहीं है। मगर बहुधा ऐसा बीजाधर गुल्म (granulosa cells tumour), बीजाधराग्रमांस (ovarion sarcoma),पीयूष ग्रन्थि विकार, मस्तिष्कार्बुद, मस्तिष्कपय: ग्रन्थि (pineal body) के विकारों तथा अधिवृक्क ग्रन्थि के विकारों में भी आर्तव स्राव समय से पहले हो जाता है। अन्तिम विकार को छोड़कर शेष अन्य सभी विकारों में आर्तव स्राव के साथ साथ बालिकाओं में स्त्री सहज स्वभाव अधिकाधिक रूप से विकास पाते जाते हैं जैसे-दया, ममता, लज्जा, संकोच इत्यादि। मगर अधिवृक्क ग्रन्थि के विकार में आर्तव स्राव के साथ साथ बालिका में पुरुष सहज स्वभावों की वृद्धि होने लगती है जैसे— अहंकार, अधिकार, क्रोध, आवेश, दृढ़ता, निर्भयता, पौरुष आदि।

विलम्बार्त्तव—(Hypo-menorrhoea)

इसमें आर्तव चक्र अपनी स्वाभाविक अवधि से अधिक समय लेकर होता है। इसमें आर्तव चक्र ४०-४५ दिनों पर किसी किसी में इससे भी अधिक दिनों पर होता है। यह प्राय: उन स्त्रियों में होता है जिनका जननेन्द्रिय विकास ठीक नहीं है अत: जननेन्द्रिय स्थान के अंगों की परीक्षा कर देखें।

आर्तव स्राव जब बालिकाओं में पहले पहल आरम्भ होता है तब भी एक दो वर्ष तक नियमित नहीं होता है विशेष कर उन में जिनका शारीरिक गठन एवं विकास हीन रूप का है। मगर यह सिर्फ आहारादि के अच्छे हो जाने से ठीक हो जाता है या स्वयं ही ठीक हो जाता है अत: यह कोई रोग विशेष नहीं।

अल्पार्तव (Oligomenorrhoea)—

इसमें आर्तव चक्र ठीक रहता है। ठीक २८-२९ दिन पर होता है मगर स्राव अवधि ३ से ५ दिन की न होकर १-२ दिन की होती है और स्राव बहुत कम मात्रा में होता है।यह लक्षण अधिकांशत: उन रोगियों में पाया जाता है जिनका कि गर्भाशय पूर्ण विकसित नहीं होता है। यद्यपि कि जननेन्द्रिय संस्थान के अन्य सभी अंग पूर्ण विकसित पाये रहते हैं। कुछ में यह पाया गया है कि इनमें रजोरोधक रस का स्राव अधिक हुआ करता है जिस सम्पुट ओज की पूर्ण क्रिया नहीं होती है और गर्भाशय का इसलिए पूर्ण विकास नहीं हो पाता है कि प्रति चक्र में उसमें जो प्रदाह होता है वह नहीं हो पाता है और प्रदाह से उसमें र संवाहनाधिक्य होता है जिससे उसे अतिरिक्त रूप

में पोषक रस प्राप्त होते हैं और जिन्हें प्राप्त कर यह उत्तरोत्तर विकास पाता रहता है वह नहीं होता है।

यदि यह विकार आर्तव निवृति काल के समीप होता है तो ऐसी चिन्ता की बात नहीं है मगर प्रजनन काल (Child bearing period) में यदि ऐसा हुआ तब या तो ग्रन्थि रस के विकार से होता है या अवयविक विकार से। अतः जननेन्द्रिय स्थान की प्रत्यक्ष परीक्षा करनी चाहिये कि उसमें कर्निक आदि रोग तो नहीं हैं।

नष्टार्त्तव (Amenorrhoea)—

इसमें आर्तव चक्र होता ही नहीं है या यदि हुआ भी तो साल छः महीने के बाद एक दिन एवं एकाध बार के लिए ही होता है। यदि आर्तव प्रवृत्ति के आरम्भ के एक दो वर्षों में या आर्तव निवृत्ति काल में यह हुआ तब तो चिन्ता का विषय नहीं अन्यथा यह किसी भयानक रोग का परिचायक है।

स्वाभाविक रूप से आर्तव यौवन आरम्भ के पहले होता है। गर्भावस्था में और आर्तव निवृति काल के बाद यह नहीं होता है। बहुधा अनेक स्त्रियों में प्रसव के बाद भी जब तक बच्चा स्तन पायी रहता है तब तक आर्तव स्राव नहीं होता है। अनेक स्त्रियों में कम ही अवस्था में यानी ३०-३५ वर्ष की ही अवस्था में रजो निवृति काल आ जाता है उनमें आर्तव स्राव नहीं होता है। इसके अतिरिक्त रजः स्राव का न होना रोग का परिचायक है।

यह दो तरह के रोगों का परिचायक है—एक सहज यानी जन्म जात दूसरा दोषज यानी अन्य रोगों से।

सहज विकार में स्त्री जननेन्द्रियों का निर्माण ही जन्म से दोषमय होता है जैसे—अछिद्र एवं दृढ़ कुमारिच्छद यवनिका, योनिपथ का ठोस होना याने नलिकाकर नहीं होना, गर्भाशय का अत्यन्त हीन विकास का होना या गर्भाशय अन्तः प्राचीर का ऐसा होना कि उस पर सम्पुट ओज का कोई प्रभाव न पड़े या बीजाधरों का अविकसित रहना। अतः इन सबकी प्रत्यक्ष परीक्षा करनी चाहिए। साधारणतया देखने पर यदि उसके स्तन कठोर नहीं हों गुप्ताङ्गों पर रोम नहीं हों भगोष्ठों पर वसा का जमाव हो कुमारीच्छद सछिद्र हो योनिमार्ग नलिकाकार हो तो यह समझना चाहिए कि वास्तव में यौवनारम्भ ही नहीं हुआ है। उसके आहार विहार को पोषक रूप कर दें तो कुछ दिनों में रोग दूर हो जाता है। यदि उक्त लक्षण इसके विपरीत हों स्त्री के शरीर नितम्बादि पूर्ण विकसित न हों तो गर्भाशय एवं बीजाधरों के रोगों का सन्देह कर उनका अनुसन्धान करें।

जननेन्द्रिय विद्रधि, गर्भाशयिक गुल्म, बीजाधर गुल्म (cysts), वृक्कशोथ, मधुमेह हृद्रोग तीव्र रक्ताल्पता, प्रवृद्ध यक्ष्मा, उन्माद, योषापस्मार तथा मानसिक सन्ताप में आर्तवस्राव बन्द हो जाता है। बहुधा विषमय प्रभाव (Sepsis) या अन्य विषमय संक्रमण, शारीरिक दुर्बलता आदि से भी आर्तवस्राव नहीं होता है। बहुधा अवटुका ग्रन्थि के विकार में जैसे—अवटुका ग्रन्थि शोथ या अवटुका ग्रन्थि की शस्त्र चिकित्सा के बाद या अवटुका ग्रन्थि हटा देने पर भी आर्तवस्राव नहीं होता है। इसमें दोनों ही बातें होती हैं या तो खूब आर्तवस्राव होता है या एकदम बन्द हो जाता है। जिनमें अवटुका ग्रन्थि के विकार होते हैं उनका चेहरा भर्राया सा रहता है।

ग्रन्थिक स्रावों के विकार में जैसे—पीयूषग्रंथि स्राव, अवटुका ग्रंथिस्राव, अधिवृक्क ग्रन्थि स्रावों के दोषमय होने से भी आर्तव स्राव एकदम नहीं होता है।

पीयूष ग्रंथि में या उसके समीपस्थ तन्तुओं में यदि अर्बुद आदि होता है तो आर्तव स्राव एकदम बन्द हो जाता है। यदि पीयूषग्रंथि के

पुरोभाग एवं सुषुम्ना सेल (hypothalmus) के बीच नाड़ी तन्तुओं का मार्ग अवरुद्ध होता है तब भी आर्तव स्राव प्रायः नहीं के बराबर होता है। इस अवस्था के आने पर नारी प्रायः मूर्खों की तरह हो जाती है। यह विकार प्रायः जन्मजात होता है और इसमें यौवनारम्भ होता ही नहीं है।

यदि पीयूषग्रन्थि का ही विकास होना हुआ तब भी आर्तव स्राव नहीं होता है। कभी "तीव्र कष्ट प्रसव में" पीयूष ग्रन्थि के रक्त स्रोतों का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है (thrombosis of pituitary) इसमें भी आर्तव स्राव बन्द हो जाता है। जन्मजात पीयूषग्रन्थि में उक्त दोष आरम्भ से ही होते हैं।

अधिवृक्क ग्रन्थि के दोष—जहां यह अपना स्राव अधिक करता है उस अवस्था में भी आर्तव स्राव बन्द हो जाता है। इसमें रोगिणी के शरीर की त्वचा बहुत पतली हो जाती है, त्वचा फटने लगती है उससे पानी के जैसी वस्तु निकलती है। पेशियों में दुर्बलता आ जाती हैं और असाध्य रूप का मधुमेह होता है। शरीर मोटा हो जाता है और पेशियां जकड़ी सी मालूम पड़ती हैं। यदि अधिवृक्क ग्रंथि में अर्बुद (tumour) हो गया था इसके परमाणु अपनी मात्रा से अधिक बढ़ जाए तब भी यही लक्षण होते हैं। जब इसका स्राव अपनी मात्रा से कम हो जाता है रोगिणी की आवाज बहुत पतली हो जाती है, सर के बाल झड़ने लगते हैं, सर गंजा हो जाता है, चेहरे पर झुरियां पड़ने लगती हैं शरीर की पेशियों की कोमलता नष्ट हो पुरुषवत् कठोरता आ जाती हैं। भगशिश्नका कुछ बड़ा एवं मोटा हो जाता है और गर्भाशय शुष्क हो जाता है।

बीजाधरों के हीन विकास में रोगिणी ठिगने कद की होती है। गर्दन छोटी होती है, टेढ़े हाथ-पांव होते हैं, गुप्ताङ्गों एवं कांख में रोम नहीं होते हैं, इसमें भी आर्तव चक्र होता ही नहीं है यदि हुआ भी तो लम्बी अवधि पर। बीजाधरों की विद्रधि होने पर या बीजाधरों के यक्ष्मा प्रसृति होने पर भी आर्तव स्राव नहीं होता है।

अधिगवाक्षीय रोगी की चिकित्सा में एक्स रे या रेडियम का इलाज होने से भी बीजाधर शुष्क हो जाता है। बीजाधर के अर्बुद में आर्तव स्राव नहीं होता है। इस अवस्था विशेष में भी वही लक्षण होते हैं जो अधिवृक्क के अल्पस्राव से होते हैं अतः इसकी परीक्षा सावधानीपूर्वक करनी चाहिए।

चिकित्सा—

यदि कुमारीच्छद यवनिका अछिद्र है तो शस्त्र चिकित्सा द्वारा या अंगुली प्रविष्ट कर उसे फाड़ देना चाहिए। योनि मार्ग अछिद्र है तो शस्त्र चिकित्सा द्वारा उसमें छिद्र का निर्माण करें। जहां हीन विकास के कारण नष्टार्तव है उसमें पौष्टिक आहार विहार एवं औषधि का व्यवहार करें जैसे—नष्टपुष्पांतक रस आदि का।

जननेन्द्रिय विद्रधि, गुल्म, वृक्कशोथ आदि में इन्हीं रोगों की चिकित्सा करें। जननेन्द्रिय विद्रधि में तो रैडियम चिकित्सा करायें और जननेन्द्रिय गुल्मों में गुल्मकालानल, गुल्मवज्रिणी आदि का। तीव्र रक्ताल्पता में प्रदरान्तक लौह, शिलाजत्वादि लौह का प्रयोग करें। जननेन्द्रिय यक्ष्मा एवं शारीरिक दौर्बल्य में प्रवाल पंचामृत मानसिक रोग में कृष्णचतुर्मुख, लघ्वानन्द रस, वातकुलान्तक, रजः प्रवर्तनी आदि का प्रयोग करें। पीयूष ग्रन्थि विकार में रसराज रस, वातचिन्तामणि, कृष्णचतुर्मुख का व्यवहार करें।

कष्टार्तव (*Dysmenorrhoea*)—

यों तो स्रावारम्भ होने के पहले स्वाभाविक रूप से स्त्रियों में कुछ न कुछ कष्ट होता ही है जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। मगर रोग रूप में भी यह होता है। प्राकृतिक एवं रोग रूप के कष्टों में अन्तर यह है कि स्राव आरम्भ

होने पर यह कष्ट नहीं रहते हैं मगर कष्टार्तव में जब तक स्राव रहता है तब तक कष्ट होता है। वर्णन की सुविधा से कष्टार्तव को तीन हिस्सों में रखा जा सकता है।

१. प्रदाहज २. संकोचज ३. गर्भधराकलाजन्य

प्रदाहज—यदि अधिश्रोणिक या अधिगवाक्षीय प्रदेश के किसी अवयव में कोई प्रदाहजन्य रोग है तो उसका प्रतिक्रियात्मक परिणाम यह होता है कि बीजाधर के प्रदाह से प्रभावित हो रक्तारम्भ हो जाता है। अतः यह स्पर्श असह्य एवं कोमल हो जाया करता है। बीजाधर का धूसर गुल्म, अधिमांस आदि की आरम्भिक अवस्था में भी कष्टार्तव हुआ करता है। इसमें कटि प्रदेश एवं अधिश्रोणिक प्रदेश में पीड़ा अधिक हुआ करती है। यह स्रावारम्भ के ३-४ दिनों पहले से होती है और जब तक स्राव रहता है तब तक रहती है। आर्तव स्राव चूंकि एक प्रकार के प्रदाह की ही प्रतिक्रिया मात्र है अतः इन स्थानों में प्रदाह के कारण इसका अपना प्रदाह विगुणित हो उठता है और ये सारी तकलीफें होती हैं। जहां साधारण प्रदाह है वहां तो कष्टपूर्वक आर्तव स्राव अपनी स्वाभाविक मात्रा में स्वाभाविक अवधि तक होता है। इसके बाद पीड़ा शान्त हो जाती है। मगर जहां बीजाधरों के गुल्मादि होते हैं उसमें आर्तव स्राव न तो अपनी स्वाभाविक मात्रा में होता है और न स्वाभाविक अवधि तक। किसी में न्यून, किसी में अधिक। मगर अधिकतर न्यून ही देखा जाता है।

संकोचज—इसे दो हिस्सों में रख सकते हैं। एक वह जिसमें हीन विकास के कारण योनि मार्ग, गर्भाशय बहिर्द्वार, गर्भाशय अन्तर्द्वार, गर्भाशय स्रोत आदि का विकास हीन होता है। ये अपने स्वाभाविक आकार से बहुत छोटे होते हैं। इसमें गर्भधराकला से रस रक्तादि का स्राव तो हो जाता है मगर मार्ग छोटा होने के कारण उनका निष्कासन नहीं हो पाता है। जब गर्भाशय में ऐसी कोई चीज रहे जिसे गर्भाशय निकाल फेंकना चाहता है तो प्राकृतिक रूप से गर्भाशय शरीर का संकोच होता है। जब गर्भाशय शरीर का संकोच होता है तो गर्भाशय शीर्ष (जिसमें अन्तर्द्वार, गर्भाशय स्रोत एवं बहिर्द्वार सम्मिलित हैं) का विस्फार होता है। गर्भाशय शरीर संकुचित हो अपने भीतर की वस्तु पर दबाव डालकर बाहर करता है और शीर्ष मार्ग विस्फारित हो उसे निकल जाने को मार्ग देता है। मगर जहां ये मार्ग छोटे हैं वहां इसे निकल जाने के लिए मार्ग देने में शीर्ष भाग को अत्यधिक विस्फारित होना पड़ता है। इस अत्यधिक विस्फार के ही कारण पीड़ा होती है। यह पीड़ा और विगुणित हो उठती है जब कि छोटे एवं पतले मार्ग के कारण भीतर से उस पर दबाव अधिकाधिक पड़ता जाता है। इसमें स्राव की मात्रा कम एवं अवधि अधिक होती है। हीन विकास के कारण स्राव स्वयं भी पर्याप्त मात्रा में नहीं होता है। इसलिए इसकी मात्रा कम होती है। जो स्राव होता भी है वह छोटे मार्ग के कारण थोड़ा थोड़ा करके निकल जाने में समय अधिक लेता है।

बहुधा इसमें स्राव बूंद बूंद की मात्रा में निकला करता है। इसकी पीड़ा स्रावारम्भ होने के दिन से आरम्भ होती है और तब तक रहती है जब तक कि सभी स्राव निकल जाए। इसमें पीड़ा का हाल यह रहता है कि हर दो चार घन्टे पर तीव्र पीड़ा होती है और आधे घन्टे तक रहती है यानी जिस समय गर्भाशय शरीर भाग संकुचित होता है और शीर्ष भाग विस्फारित होता है और स्रवित रस रक्तादि स्रोत मार्ग से निकलते होते हैं। फिर पीड़ा कम हो जाती है यानी जिस समय शीर्ष भाग संकुचित होता है एवं शरीर भाग विस्फारित और स्राव नहीं निकलता होता है। इसके बाद फिर पीड़ा होती है इस प्रकार हर दो चार घंटे पर यह पुनः पुनः होती रहती है। यह अवस्था तब तक चलती रहती है जब तक कि किसी का शरीर पुष्ट नहीं होता है। स्वभावतः ३०-३५

वर्ष की अवस्था आते आते शरीर का पूर्ण विकास हो जाता है और रोग स्वयं दूर हो जाता है। बहुधा एक प्रसव के बाद भी यह दूर हो जाता है चूंकि प्रसव कार्य द्वारा सभी मार्ग आप से आप पूर्वापेक्षा बड़े हो जाते हैं। इसमें पीड़ा इतनी तीव्र एवं असह्य होती है कि कोमल प्रकृति की स्त्रियों में योषापस्मार (हिस्टेरिया) का आक्रमण होता है। किसी किसी में पीड़ा इतनी तीव्र होती है कि मूर्च्छा, छर्दि, वमन आदि होती हैं, नाड़ी क्षीण होजाती है। पीडाधिक्य के कारण असहिष्णु स्त्रियों में इस अवस्था में प्राय: हिस्टेरिया का आक्रमण होता है। जिनमें योनि मार्ग का हीन विकास होता है उनमें विवाहोपरान्त कुछ काल के बाद यह शान्त होजाता है चूंकि सम्भोग प्रक्रिया द्वारा योनि मार्ग भग द्वार आदि परिवर्तित हो जाते हैं। शीर्ष भाग के मार्ग के छोटे होने से प्रसव के बाद यह शान्त होजाता है। ऐसे दोष के हिस्टेरिया के ही रोगी विवाहोपरान्त या प्रसवोपरान्त ठीक होते हैं। मानस विकारज हिस्टेरिया न तो विवाह से और न प्रसव से शान्त होता है।

कार्य अक्षमता—

गर्भाशय शरीर एवं शीर्ष भाग के बीच जो संकोच विस्फार का सम्बन्ध है इस कार्य में यदि गर्भाशय अक्षम होजाता है तब भी कष्टार्तव होता है। गर्भाशय शरीर आंकुचित हो दबाव डालकर स्रवित वस्तु को अपने गह्वर से निकालना चाहता है मगर शीर्ष भाग विस्फारित हो उसे निकलने को मार्ग दे नहीं पाता है। परिणाम यह होता है कि स्रवित वस्तु गर्भाशय कोष में जमा होती है और शीर्षभाग पर उसका दबाव बढ़ता जाता है। अत्यधिक दबाव पाकर मार्ग यदि कुछ खुला हो तो थोड़ा सा रक्त बाहर निकल शेष भीतर ही (गर्भाशय कोष में ही) रह जाता है। इसमें भी वे सभी लक्षण होते हैं जो शीर्ष भाग स्रोतों तथा मुखों के छोटे होने से होते हैं। अन्तर इतना ही रहता है कि उसमें मार्ग छोटे नहीं होते और जो स्राव बाहर निकला है वह थक्का सा जमा होता है चूंकि स्रवित रसरक्तादि गर्भाशय कोष में एकत्रित होकर जमते हैं। और इन जमे थक्कों से तथा आंकुचन दबाव से गर्भधराकला पर रगड़ पड़ता है जिससे वह भी टूटती है और उसके टुकड़े भी स्राव में रहते हैं।

गर्भधराकला जन्य—गर्भधरा कला यदि पूर्ण विकास नहींपा रहे या अत्यधिक तीता, खट्टा, खाने वाली स्त्री में गर्भधरा कला अपने स्वभाविक रूप में रस रक्तादि का स्राव करने में असमर्थ रहती हैं। सम्पुट ओज जब गर्भधरा कला पर पर्याप्त रूप से प्रदाह डाल देता है तब गर्भाशय का शरीर भाग स्वत: संकुचित होने लगता है। यह आंकुचन काफी तीव्र होता है और प्रदाहित गर्भधरा कला को दबाकर उसके कोमल रस रक्त स्रोतों को दबा रस रक्तादि मोक्षण पर बाध्य करता है ताकि प्रदाह शीघ्र कम हो जाये। मगर गर्भधरा कला के रस रक्तादि स्रोत इतने कठिन हो गये रहते हैं कि जल्दी फूटते नहीं हैं। परिणाम यह होता है कि प्रदाह तीव्रतर होता जाता है। साथ साथ आंकुचन भी तीव्रतर होता है ताकि रस रक्त स्रोत फूटकर प्रदाह भार को हलका करें। इसका परिणाम तीव्र पीड़ा हुआ करती है। इनमें दोनों ही बातें होती हैं रस रक्त स्रोतों के दृढ़ होने से या तो स्राव अति अल्प मात्रा में होगा या अधिक आंकुचन दबाव के कारण वे बेतरह फूटकर अधिक स्राव स्रवित करेंगे। मगर दोनों ही हालत में स्रवित स्राव में गर्भधरा कला के श्लेष्मिक टुकड़े रहेंगे जो फिर अधिक आंकुचन दबाव के कारण टूटते जाते हैं और पीड़ा भी तीव्र होगी मगर उतनी नहीं जितनी कि मार्ग के छोटे होने में या कार्य अक्षमता में होती है। स्राव कम भी हो सकता है और अधिक भी मगर स्राव अवधि कुछ अधिक होती है। किसी किसी में स्वाभाविक भी रहती है।

इसके अतिरिक्त कष्टार्तव गर्भाशय के गुल्म अर्बुद मांस आदि के कारण भी होता है।

यदि गर्भाशय के भीतर गुल्म आदि होते हैं तो उनके आरम्भ में भी कष्टार्तव होता है चूंकि वे भी स्रोत का अवरोध करते हैं। इसके अलावा आंकुचन विस्फार से उसमें पीड़ा भी होती है। इसमें रोगानुसार न्यून या अधिक स्राव होता है। यदि गुल्म है तो स्राव कम होगा, पीड़ा अधिक होगी चूंकि गुल्म मार्ग का अवरोध भी करता है और स्थानीय रस रक्तादि अधिकांश मात्रा में उसी भाग में चले जाते हैं। यदि सव्रण अग्रमांस है तब आंकुचन विस्फार से उसमें पीड़ा भी होती है। साथ साथ उसके व्रण से रक्तस्राव भी अधिक होता है। सव्रण अग्रमांस में पीड़ा एवं स्राव दोनों अधिक होंगे। विछिद्र में असह्य प्राणान्तक पीड़ा होती है और उसमें कुछ न कुछ लक्षण स्थायी रूप के भी रहते हैं।

बीजाधरों के अग्रमांस में जो पीड़ा होती है वह गर्भाशय के आंकुचन एवं विस्फार के धक्के के कारण होती है जो कि आंकुचन एवं विस्फार के समय पर पड़ते हैं।

गुल्मादि के लिए गर्भाशयादि की प्रत्येक परीक्षा करनी चाहिए।

चिकित्सा —

कष्टार्तव जहां अग्रमांसादि के कारण है या हीन विकास के कारण उन पर शस्त्र चिकित्सा करनी चाहिए। प्रदाह जनित में जिस स्थान का प्रदाह हो उसे औषधि द्वारा दूर करें। गर्भाशय प्रदाह में सर्वांग सुन्दर, प्रदरान्तक रस, रत्नाप्रभा-वटी का प्रयोग करें। हीन विकास में रत्नप्रभावटी प्रयोग करें। आंकुचन विस्फार सम्बन्धित दोषों में कुमारिकावटी, रजः प्रवर्तनी वटी, विजया वटी का प्रयोग करें। गुल्मादि में गुल्म रोगोक्त चिकित्सा करें।

अत्यार्तव (Menorrhagia)—

इसमें आर्तव स्राव अधिक मात्रा में एवं अधिक दिनों तक होता है एवं चक्र ठीक रहता है। अत्यार्तव को दो हिस्सों में रख सकते हैं। एक वह जिसमें आर्तव चक्र तो ठीक है म ८ स्राव अवधि एवं मात्रा अधिक तथा दूसरा व३ जिसमें स्राव चक्र स्राव अवधि और स्राव मात्रा दोनों ही अनियमित एवं अधिक हों। इसमें पहले को अत्यार्तव (Monorrhagia) दूसरे को बहु-चक्रार्तव (Poly menorrhoea) कहते हैं।

अन्यार्तव—–

यह अधिकतर गर्भाशय अन्तः प्राचीर प्रदाह के कारण गर्भाशय भ्रंश के कारण गर्भाशय अग्र-मांस (सव्रण) के कारण तथा बीजाधर ग्रंथिक अभिवृद्धि (cysts) के कारण हुआ करता है। अवटुका ग्रंथि के विकार में पहले अन्यार्तव होता है। बाद में नष्टार्तव में यही परिणत हो जाता है। गर्भाशय शोथ (Myxoedema) एवं अधि-वृक्क ग्रंथि तथा पीयूष ग्रन्थि के दोष में भी यह होता है। गर्भपात के बाद होने वाले २-३ चक्रों में भी अन्यार्तव हुआ करता है। जीर्णवृक्क रोग जीर्ण फुफ्फुस रोग एवं रक्त दोष के कारण भी यह हुआ करता है।

अधिकांश रूप में यह रोग बीजाधरों के क्रिया दोष (functional) से होता है जिसमें बीजा-धरों की क्रिया दोषमय होती हैं। इसमें गर्भाशय बहुत बड़े आकार का हो जाता है और यह आकार वृद्धि सुव्यवस्थित रूप से होती है। गर्भाशय के सभी अंश एक अनुपात में बड़े होते हैं। बहुधा उन स्त्रियों में भी यह रोग होता है जिन्हें सन्तान अधिक होती हैं। उनके गर्भाशय में परिवर्द्धन शील तन्तुओं का जमाव अधिक होता है जिसके कारण गर्भाशय कड़ा तथा दृढ़ हो जाता है और रस रक्त स्रोत अधिक उभर आते हैं। गर्भाशय का मध्यस्तर फटा-फटा सा हो जाता है। बीजा-धरों की कार्यक्षमता अपेक्षाकृत बढ़ जाती है और गर्भाशय का आंकुचन भी अधिक जोरदार हुआ करता है। अतः आर्तव स्राव अधिक मात्रा में एवं अधिक दिनों तक होता है। इसमें आर्तव चक्र ठीक रहता है। यह अधिकतर प्रौढ़ स्त्रियों

में ३०-४० वर्ष की अवस्था में या रजोनिवृति के समय हुआ करता है।

युवती स्त्रियों में भी उन स्त्रियों को यह रोग अधिक हुआ करता है जो अत्यधिक विलासनीय हैं एवं जिनका आहार विहार कामोत्तेजक है। कामोत्तेजक आहार विहार का प्रभाव ग्रंथि स्रावों पर पड़ता है जिससे बीजाधर अपेक्षाकृत अधिक विकास पाते हैं और लचीले तथा बड़े सम्पुटों का निर्माण होता है। ये बड़े सम्पुट अपने में अधिक सम्पुट ओज रखते हैं जो सम्पुट विस्फोट के बाद अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में एवं अधिक समय तक सम्पुट ओज का मोक्षण करते रहते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि गर्भाशय अपेक्षाकृत अधिक विकास पाता है और उपरोक्त लक्षण होते हैं। यही बात अधिक विलासी स्त्रियों में भी होती है। या उन स्त्रियों में जो कृत्रिम रूप से स्तम्भन का प्रयोग करती है।

बहुचक्रार्तव—

इसमें आर्तवचक्र भी अनिमियत हो जाया करता है और स्राव अवधि तथा स्राव मात्रा भी अधिक होती है। इनका आर्तवचक्र स्वभाविक आर्तव चक्र की अवधि के भीतर २-३ बार अतिरिक्त रूप से आता है और हर बार यदि ४-५ दिन नहीं तो २-३ दिन रह जाया करता है। साथ ही साथ मात्रा भी अधिक होती है। किसी-किसी के तो यह ऐसा अनियमित हो जाता है कि यह भी पता नहीं चल पाता कि वास्तविक चक्र कौनसा है।

स्वभाविक रूप में बीजाधर के बीज सम्पुटों का विस्फोट हर २८-२९ दिन के अन्तर से होता है और एक बीजाधर में इसका चक्र हर ५५ से ५८वे दिन पर आता है मगर अधिक विलासी तथा उत्तेजक आहार-विहार के कारण इनके सम्पुटों पर उत्तेजना की लहरें इतनी अधिक एवं बलवती रूप से दौड़ती रहती हैं कि सम्पुट उसे बर्दाश्त नहीं कर पाते और बिना इसके कि उनके भीतर के डिम्ब परिपक्वस्था में आते वे फट पड़ते हैं। स्वभाविक रूप से सम्पुटों का विस्फोट तभी होता है जब वे स्वयं परिपक्व अवस्था में आयें और इनके भीतर का डिम्ब भी परिपक्व अवस्था में आये। प्राकृतिक रूप से १२से १४ वर्ष की अवस्था के बाद हर २८ वें २९ वें दिन एक सम्पुट इस अवस्था में आ जाता है। मगर जब यही अप्राकृतिक रूप धारण करता है कामोत्तेजना की लहरें बार बार दौड़ती रहती हैं तो स्थानीय रक्तसञ्चाराधिक्य के कारण सम्पुटों का पोषण अधिक होता है, उसमें सम्पुट ओज अधिक मात्रा में आता है मगर डिम्ब इस अवस्था में नहीं आया होता है कि वह गर्भधारण कर सके। सम्पुट ओजाधिक्य का दबाव तथा कामोत्तेजना की लहरें सम्पुट का विस्फोट कर देती हैं। इसमें कोई एक अवधि निश्चित नहीं होती कि इतने दिनों पर ही सम्पुट विस्फोट होगा। ऐसे सम्पुट विस्फोट का नाम है 'अबीजचक्र' इस चक्र में जो डिम्ब मुक्त होता है वह पूर्ण पुष्ट नहीं होता गर्भधारण नहीं कर सकता।

इसमें भी अन्यार्तव वाले अवयविक विकार होते हैं यानी बीजाधरों के अधिक सक्रिय होने से जो होता है वह इसमें भी होता है। इसमें भी गर्भाशय मध्य प्राचीर बल्कि किसी में अन्तः प्राचीर भी मोटा हो जाया करता है। बीजाधरों की अधिक क्रिया क्षमता बीजाधरों के किसी विकार से नहीं होती बल्कि इसके लिए उत्तरदायी है ग्रन्थि-स्राव (gonad-otrophic secretion) विशेष कर पीयूषग्रन्थि के अन्दर या पुरोभाग का स्राव।

बीजाधरों के शोथ (salpingo-oophritis) में भी यह सम्पुट विस्फोट चक्र शीघ्रतापूर्वक होने लगता है। बीजाधर अधिमांस (cysts) में भी बीजाधर अधिक सक्रिय हो जाया करता है और बहुचक्रार्तव हो जाता है।

गर्भाशय अर्बुद मांस (myomata) में बीजाधरों में रक्तसञ्चाराधिक्य होता है इस कारण भी बहु चक्रार्तव होता है।

इसके अतिरिक्त गर्भाशय में सव्रण अग्रमांस (sarcoma) विद्रधि (carcinoma) आदि के होने से भी आर्तव स्राव अनियमित हो जाया करता है, अतः प्रत्यक्ष परीक्षा अवश्य करनी चाहिए।

गर्भाशय या बीजाधरों की अधिमांसवृद्धि (cyst) कर्णिका (polyp) अग्रमांस (myomata) सव्रण अग्रमांस (sarcoma) विद्रधि (carcinoma) प्रभृति में अन्य कष्टदायक लक्षण हुआ करते हैं जैसे असह्य पीड़ा आदि। मगर अत्यार्तव या बहुचक्रार्तव में वही साधारण पीड़ा होती है जो आर्तवचक्र के समय स्वाभाविक रूप से होती है।

इसी अत्यार्तव एवं बहुचक्रार्तव को प्रदर या रक्त प्रदर के नाम से भी माना जाता है।

चिकित्सा—

इसमें रहन-सहन आहार विहार को सबसे पहले ठीक करना चाहिए। कामोत्तेजक आहार विहार तथा विलासमय वातावरण से मुक्त रहना चाहिए। यदि अग्रमांसादि के कारण है तब तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिए और यदि उससे नहीं हो तो प्रदरान्तकलौह, अशोकारिष्ट, प्रदरारिलौह, चन्दनादिचूर्ण, पुष्यानुग चूर्ण आदि का प्रयोग करना चाहिए।

चक्रार्तव (Metrorrhagia)—

इस रोग में आर्तव चक्र के आरम्भ होने के ठीक १४ वें या १५ वें दिन पहले एक या दो रोज के लिए रक्तस्राव हर मास नियमित रूप से हो जाया करता है। यह स्राव अल्प मात्रा में भी होता है और अधिक मात्रा में भी। यदि स्राव अत्यल्प हो तो यह समझना चाहिए कि बीजाधरों में सम्पुट विस्फोट तीव्र रूप का हुआ है और विस्फोट स्थान पर के रक्त स्रोत भी फूट गए हैं। वही स्रवित रक्त बीज वाहिनी से होता हुआ गर्भाशय में आता है और गर्भाशय से योनि मार्ग द्वारा बाहर निकल जाया करता है। यह रोग ग्रंथिक स्राव (gonado-trophic secretion) के उस दोष से होते हैं जो सम्पुटों पर विस्फोटक प्रभाव डालते हैं। यदि यह प्रभाव अति तीव्र रूप का होता है तब यह रोग होता है।

यदि स्राव अधिक मात्रा में हुआ करता है तो शीर्ष विद्रधि, गर्भाशय कर्णिका, शीर्ष भाग का कर्णिका या शीर्ष भाग एवं कोष भाग के रक्त स्रोतों का प्रदाह या रक्तपित्त होने से होता है। आर्तव चक्र आरम्भ होने के १४ वें दिन पहले स्वाभाविक रूप से सम्पुट विस्फोट होता है जिस से सम्पुट ओज निकल कर गर्भाशय में आता है और उसके अन्तः प्राचीर पर प्रदाहक प्रभाव डालता है जिससे १४ दिनों बाद स्राव चक्र आरम्भ होता है। यदि विद्रधि आदि रोग रहे तो इस प्रदाहक प्रभाव से और अधिक प्रदाहित हो जाते हैं और रक्त स्राव होने लगता है।

रक्तपित्तज स्राव एवं अन्य रोगों के स्राव में अन्तर स्रवित स्राव से हो जायगा। आर्तव स्राव जीव, रक्त से भिन्न वर्णादि का होता है और रक्तपित्तज स्राव जीव रक्त का स्राव है। दूसरे आर्तव स्राव कपड़े पर कोई दाग नहीं छोड़ता, मगर रक्तपित्तज स्राव दाग छोड़ता है। दूसरे रक्तपित्तज स्राव का रङ्ग कुछ काला होता है।

चिकित्सा—

यदि स्राव तीव्र सम्पुट विस्फोट से हुआ करता है तो वह साधारणतया रहन सहन के तरीके बदलने से हट जाता है। इसमें कामोत्तेजक आहार विहार का सर्वथा त्याग करना चाहिए। यदि विद्रधि आदि से होता है तो इसकी चिकित्सा करनी चाहिए। यदि रक्तपित्तज जाति का है तो अत्यार्तव की चिकित्सा के साथ रक्तपित्तशामक चिकित्सा भी करनी चाहिए।

—कुमारी मंजुला सेन
महिला ट्रेनिंग स्कूल रोड,
कच्ची सराय, मुजफ्फरपुर।

कष्टार्तव और नष्टार्तव

प्रोफेसर गंगाचरण शर्मा

यद्यपि कष्टार्तव (Dysmenorrhoea) और नष्टार्तव (Amenorrhoea) यह दोनों पृथक् पृथक् दो व्याधियां हैं तथापि इन दोनों में बहुत साधर्म्य और समानता देखने में आती है अतः यहां पर इन दोनों व्याधियों का एक साथ वर्णन करना उचित समझ कर लिखा है।

सामान्य परिचय—कष्टार्तव रोग में थोड़ा-थोड़ा रजःस्राव कष्ट के साथ होता है और नष्टार्तव में स्राव होता ही नहीं है।

भेद—कष्टार्तव पांच प्रकार का होता है यथा—

१—प्रादाहिक कष्टार्तव (Inflammatory Dysmenorrhoea)

२—आक्षेपिक कष्टार्तव (Spasmodic Dysmenorrhoea)

३—उदावर्त्तीय कष्टार्तव अर्थात् निरोध जन्य कष्टार्तव (Obstructive *D*ysmenorrhoea)

४—श्लैष्मिक कला प्रदाह जन्य कष्टार्तव (Membraneous Dysmenorrhoea)

५—अन्तः फल ग्रन्थि जन्य कष्टार्तव (Ovarian dysmenorrhoea।

इसी प्रकार ५ प्रकार का ही नष्टार्तव रोग होता है :—

१—रक्ताल्पता जन्य नष्टार्तव

२—दुर्बलता जन्य नष्टार्तव

३—शीत बाधा जन्य नष्टार्तव

४—सहज नष्टार्तव

५—गर्भावस्था जन्य नष्टार्तव

अब आगे इन सबका पृथक्-पृथक् वर्णन और चिकित्सा सूत्र एवं अनुभूत योग मात्र लिखकर विषय को समाप्त करते हैं।

(क) प्रादाहिक कष्टार्तव—इस अवस्था में गर्भाशय में प्रदाह या रक्त का जमाव होजाता है। इसके अतिरिक्त गर्भाशय-च्युति अर्थात् गर्भाशय का अपने स्थान से टल जाना या जनन के बाद गर्भाशय का सिकुड़कर अपनी प्राकृतिक अवस्था में न आने से भी यह रोग होजाया करता है। यह रोग हृष्ट पुष्ट स्त्रियों को अधिक होता है और ऋतुकाल से एक सप्ताह पूर्व पेडू में दर्द होने लग जाता है तथा बेचैनी, सुस्ती, ज्वर और शिरोभ्रमादि लक्षण के साथ थोड़ा थोड़ा रजः स्राव कष्ट के साथ हुआ करता है।

चिकित्सा—ऋतुकाल के समय पोस्त के डोडों के क्वाथ से पेडू पर सेक करें या राजिका प्लास्टर लगावें या साथलों (जंघाओं) के अन्दर की ओर जोंकें लगवावें या रुग्णा को गर्म जल में बिठावें। इन क्रियाओं से रक्त का विलयन होकर रोग शान्ति होगी।

औषधि व्यवस्था—मण्डूर भस्म, योगराज गूगल, बृहत् योगराज गूगल, बोल पर्पटी, कुमार्यासव, देवदार्वाद्यारिष्ट और महारास्नादि क्वाथ।

अनुभूत चिकित्सा—शूलवज्रिणी वटी शोभांजन स्वरस के साथ दोनों समय और अग्नितुण्डी भोजन के बाद दोनों समय तथा चन्द्रप्रभा वटी रात्रि को दूध के साथ देने से अवश्य लाभ होता है। उपरोक्त औषधियों का प्रयोग एक दो या तीन मास तक निरन्तर जारी रक्खें। ऐसा करने से वर्षों का पुराना रोग भी समाप्त होजाता है।

(ख) आक्षेपिक कष्टार्तव—इस अवस्था में गर्भाशय में आक्षेप अर्थात् ऐंठन होती है। इसका कारण कोई न कोई अप्राकृतिक रुकावट होती है। यह अवस्था वात प्रधान प्रकृति वाली स्त्रियों को ही हुआ करती है।

लक्षण—ऋतु समय से पांच या सात दिन पूर्व कमर में तीव्र वेदना होती है जिसकी टीसें साथलों तक जाया करती हैं और थोड़ा-थोड़ा रजः स्राव आक्षेप युक्त कष्ट के साथ होता है।

चिकित्सा—रोग के आक्रमण काल में जिस प्रकार से स्वेदन करना प्रादाहिक कष्टार्तव में लिख चुके हैं उसी प्रकार से ऊष्ण स्वेद करें। जातिफलादि चूर्ण या केवल भांग का चूर्ण दें। यदि इस प्रकार की क्रिया और औषधि प्रयोग से लाभ न हो तो बूगी (Bougie) का प्रयोग करें। बूगी एक बत्ती होती है जो गर्भाशय के मुख में लगाई जाती है। यह बत्ती फूलकर गर्भाशय के मुख को खोल देती है मगर यह कार्य किसी अनुभवी डाक्टर, स्त्री वैद्य या नर्स से करवाना चाहिये और इस बत्ती को आध घण्टे से अधिक समय तक अन्दर नहीं रखना चाहिए। इस बत्ती के प्रयोग के साथ-साथ वृहत् वातचिन्तामणि मात्रा १ से २ रत्ती तक प्रति ६-६ या ८-८ या १२ घंएटे के बाद देनी चाहिए।

दर्द के आक्रमण के बाद लोहासव, कुमार्यासव, अश्वगन्धारिष्ट, योगराज गूगल, वृ० योगराज गूगल, दशमूलारिष्ट, अशोकारिष्ट, चन्द्रप्रभा और लौहगूगल आदि में से किसी एक या दो या अधिक औषधियों का सेवन चिरकाल तक करावें तथा साधारण स्वास्थ्य को उचित अवस्था में लावें।

यह अवस्था रक्तालपता, वातरक्त, आमवात और फिरंगोपदंश के कारण भी हो जाया करती है अतः रुग्णा का इतिहास मालूम करने पर उपरोक्त रोगों में से कोई रोग इसका कारण सिद्ध हो तो सर्वप्रथम हेतु विपरीत चिकित्सा करें।

(ग) उदावर्तीय रजोवरोध-निरोधजन्य कष्टार्तव—

परिचय—गर्भाशय में शोथ या अर्बुद के हो जाने से गर्भाशय का मुख बन्द होकर या गर्भाशयच्युति या गर्भाशय संकोच या योनि में किसी प्रकार की रुकावट होने से गर्भाशय में तीव्र शूल, शिरोभ्रम, शिरःशूल, वमन, हृल्लास, प्रलापादि लक्षणों से युक्त थोड़ा रजःस्राव कष्ट के साथ होता है अथवा कदाचित् रजःस्राव बिल्कुल होता ही नहीं। ऐसी अवस्था में जब कि रजःस्राव होता ही नहीं है तब कभी गुदा मुख मूत्राशय तथा मुख और नासिका से स्थानापन्न रक्तस्राव हो जाया करता है।

चिकित्सा—यदि गर्भाशय अपने स्थान से च्युत होगया हो तो उसे स्थान स्थित कराएं और यदि गर्भाशय का मुख संकुचित होगया हो तो उसे विस्तृत करने के लिए बूगी का प्रयोग करें। यदि गर्भाशय के मुख पर या गर्भाशय ग्रीवा पर शोथ विद्रधि या अर्बुद हो तो उसकी चिकित्सा करें। इसके अतिरिक्त कभी-कभी गर्भाशय ग्रीवा में व्रण होकर जब व्रण का रोपण होता है तब गर्भाशय ग्रीवा सिकुड़ जाया करती है इससे भी प्रतिबन्ध जन्य कष्टार्तव रोग हो जाता है। इसमें भी बूगी के प्रयोग द्वारा ही गर्भाशय मुख को विस्तृत करना पड़ता है। कभी कभी किसी-किसी स्त्री को जन्म से ही निरोध या प्रतिबन्ध होता है जिसकी चिकित्सा शस्त्र वैद्य अर्थात् सर्जन के ही आधीन है।

:: पृष्ठ १३७ का शेषांश ::

(४) प्रोकेन पेनेसलीन भी आर्तव प्रारम्भ होने पर देने से प्रवाह तेज होकर कष्ट जाता है।

(५) Auratinum... थूजायुक्त भी १ c.c. का ठीक रहता है।

बेलाफोलिन या एट्रोपिन सल्फ देने पर कभी कभी खुश्की देता है और नेत्र की पुतली को फैलाता है, सीने में गरमी सी प्रतीत होने लगती है। केल्शियम ग्लूकोनेट के साथ इसे प्रयोग करने से यह नहीं होता। शक्कर आदि पिला देने से भी यह कष्ट नहीं होता।

—श्री शेखफय्याज खां विशारद आयुर्वेद शास्त्री
भीनमल (जालौर)

(घ) श्लैष्मिककलाप्रदाह सम्बन्धी कष्टार्तव —

परिचय—शोक, चिन्ता, गर्भाशय की दुर्बलता, अति व्यवाय और ठण्ड लगना आदि कारणों से गर्भाशय की श्लैष्मिककला में प्रदाह होकर कष्टार्तव की उत्पत्ति होती है। इस अवस्था में तीव्र आन्त्रिक शूल के सदृश शूल होता है तथा श्लैष्मिक कला के टुकड़े रक्त के साथ निकला करते हैं तथा कभी-कभी तमाम झिल्ली एक साथ भी निकल पड़ती है। उस समय में जब कि तमाम झिल्ली एक साथ निकले तो गर्भपात का भ्रम प्रायः हो जाया करता है। खास करके जब मासिक धर्म बन्द होने के दो तीन मास बाद झिल्ली निकलती है तब तो पूर्णतः गर्भपात का भ्रम हो जाता है। ऐसी अवस्था में भली प्रकार देखभाल कर तसल्ली करनी चाहिये।

चिकित्सा—पेड़ू पर सेंक करना, मलावरोध हो तो उसे दूर करना और उपसर्गहर द्रव जैसे पंचवल्कल क्वाथ, या न्यग्रोधादि गण क्वाथ से वस्तिकर्म कराना तथा जात्यादि तैल का पिचु धारण करना। वेदना शमनार्थ जातिफलादि चूर्ण, अकरकरादि चूर्ण, अहिफेन युक्त या जायफल १ तोला, जावित्री १ तोला, अहिफेन ६ माशा, मात्रा १ रत्ती अर्क गावजवां के साथ देने से भी तुरन्त वेदना शांत होती है। रोग के आक्रमण के बाद लौह और सोमल युक्त रसायनों का सेवन कराना चाहिए।

(ङ) अन्तःफल ग्रन्थिजन्य कष्टार्तव—यह रोग वृद्धि, उपदंश जन्य विष तथा सुजाक जन्य विष के प्रभाव से अन्तःफल ग्रन्थि में विकार होकर हुआ करता है। इसके अतिरिक्त गर्भपात भी प्रायः इस रोग का कारण होता है।

लक्षण—ऋतु समय के समीप पेट में बाईं ओर को दर्द की शिकायत होती है और दबाने से दर्द बढ़ता है। पेट में आध्मान तथा बारम्बार मूत्र का वेग होता है।

चिकित्सा—आक्रमणकाल में ऊष्ण स्वेद, ऊष्णोपनाह और महा लक्ष्मी विलास, महावात विध्वंसन आदि का प्रयोग लाभदायक है।

रोग के आक्रमण के बाद—अशोकारिष्ट, चन्द्रप्रभा, कुमार्यासव और लौहासव का निरन्तर तीन मास तक रुग्णा को प्रयोग करायें और अन्तःफल ग्रन्थि सत्व (Ovarian Extt.) का प्रयोग भी साथ-साथ कराना हितावह है।

इसी प्रकार नष्टार्तव रोग में पीड़ा तो होती नहीं है मगर ऋतुस्राव बन्द हो जाया करता है। यह रोग भी पांच प्रकार का होता है जिन में से सहज नष्टार्तव और गर्भावस्था जन्य नष्टार्तव की तो कोई चिकित्सा ही नहीं है। शेष तीन प्रकार के नष्टार्तवों में हेतु विपरीत चिकित्सा से लाभ हो जाता है।

रक्तज प्रकृति की स्त्रियों या स्थूल शरीर वाली स्त्रियों, रक्ताल्पता अथवा अन्य किसी लम्बी बीमारी से दुर्बल हुई स्त्रियों, अतिव्यवायशील स्त्रियों, श्वेत प्रदर रोग से ग्रस्त स्त्रियों और गर्भाशय शोथ से पीड़ित स्त्रियों को तथा गर्भाशय के किसी स्थायी विकार के कारण और गर्भाशय पर ठंड लगने आदि से यह प्रायः हुआ करता है।

ऋतुस्राव बन्द हो जाने की अवस्था में इस रोग में भी स्थानापन्न रक्तस्राव मुख, नासिका, फुफ्फुस और आमाशयादि स्थानों से हो जाया करता है।

—प्रोफेसर श्री गंगाचरण शर्मा
आयुर्वेदाचार्य, वैद्य मार्तण्ड, भिवानी।

आर्तव दोष और उनका उपचार

श्री सुन्दर लाल जैन वैद्य भूषण

"आर्तव दोष" स्त्रियों की वह बीमारी है जिस पर वर्तमान वैद्यों का ध्यान ही नहीं जाता और साधारण रूप से प्रदर रोग समझकर वैद्य वर्ग चिकित्सा करते हैं जिससे नारी का रोग नष्ट नहीं होता और उसकी मानसिक इच्छाएँ भीतर ही झुलस जाती हैं। स्त्री रोगों पर अध्ययन करते समय मेरा ध्यान एक साधारण किन्तु प्राचीन शिला प्रेस से मुद्रित पुस्तक "गर्भगीता" पर गया। जो शैली उस प्राचीन लेखक ने अपनाई है यद्यपि वह कुछ तांत्रिक सी है, किन्तु मुझे वह बहुत ही उपयोगी और जरूरी जान पड़ी। फलस्वरूप उस ग्रंथ के ही कुछ उपयोगी अंश उल्लेख करके अपने अनुभवों के साथ लेख समाप्त करूंगा।

गर्भ गीताकार ने बंध्या स्त्रियों के ८ भेद किये हैं। ६ वां भेद पुरुष का वीर्य दोष माना है जिसमें वात दोष, पित्त दोष, कफ दोषज, सन्निपातज—यह ४ भेद तो देहज हैं। ५ वां ग्रह दोष कर्मज है, अभिशापित और दैव प्रकोप, वीर्य हीन पुरुष में ३ दोष नैमित्तिक हैं। इस प्रकार ८ दोष बन्ध्यत्व में कारण हैं। ६ वां वीर्य दोष पुरुष का ऐसा है कि स्त्रियों का उसमें कोई दोष ही नहीं है। यदि वीर्य अशुद्ध है तो स्त्री सब प्रकार से आर्तव दोष से मुक्त रहते हुए भी बन्ध्या कहलाने की पात्र होती है। मेरा निजी मत है कि "रोग परीक्षा केन्द्र" (स्त्री रोगों की परीक्षा हेतु) प्रांत में जरूर हों और वह आयुर्वेदीय हों, "उसमें स्त्रियों के आर्तव की परीक्षा करने की सही व्यवस्था रहनी चाहिए," यदि ऐसा प्रबंध आयुर्वेद सम्मेलनादि द्वारा किया जाय तो इससे "स्त्री रोगों पर आयुर्वेद का चिकित्सा क्रम निश्चित रूप से सफल होगा।"

बालरोगों की चिकित्सा के पूर्व भी वैद्यों का प्रमुख कर्त्तव्य है कि आलस्य को छोड़कर वे "स्तन्य दोष" अर्थात् "स्त्री दुग्ध" की परीक्षा करना न भूलें, इससे उन्हें अनायास ही सफलता मिलेगी। अब हम आर्तव दोष और उनके लक्षण तथा चिकित्सा जो आयुर्वेद से सम्बन्धित है, यहां उल्लेख करते हैं।

(१) वात दोषज आर्तव—आर्तव स्राव थोड़ा-थोड़ा हो, कुसुम के रङ्ग का (रक्तस्राव) पानी जैसा लाल स्राव हो, कमर में शूल हो, कटि भाग दुखे, योनि, शूल हो, ज्वर हो, जमाई बहुत आवें, सर्वांग में आलस्य हो आदि वायु दोष के लक्षण जानें।

मतांतर में—वायु दोषज आर्तव पतला, थोड़ा, रूक्ष, झागदार, कुछ लाल, पीड़ा युक्त और चिर-काल में आता है।

चिकित्सा (गर्भगीता में)—वात दोषज आर्तव की चिकित्सा में आम की जड़ की छाल, बाघ का नख और जामुन की छाल, इन तीन चीजों को दूध में पीसकर ऋतु प्रारम्भ से ५ दिन पर्यन्त पीने का विधान है अथवा जब तक ऋतु-स्राव होता है देने का उल्लेख है। किन्तु बाघ का नख जो लिखा है यह संदेह उत्पन्न करता है कि यह सेवन योग्य है या नहीं, अतः इसका अन्वेषण करने पर "बंध्या तंत्र" नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ में इसके स्थान पर व्याघ्र पदस्य का अर्थ स्पष्ट रूप से कंटकारी मूल किया है जो युक्ति युक्त प्रतीत होता है। अतः वंध्यातंत्र के अनुसार—

वातदोषजआर्तव के लिए—आम की जड़ की छाल, कटेरी की जड़ और निसोथ इन तीनों को दूध में पीसकर ७ या ५ दिन ऋतु स्राव होने तक पीने का विधान युक्ति युक्त प्रतीत होता है। पश्चात् शुद्धि होने पर लक्ष्मणामूल को दुग्ध में नस्य देने

से गर्भधारण होता है, जो सर्व ग्रन्थों में उल्लिखित है।

घृत—शारङ्गी, मुलहठी और देवदारु से पकाया हुआ घी का उल्लेख भी कई जगह पाया जाता है।

क्षीरपाक—खम्भारी और मुद्गपर्णी से सिद्ध क्षीरपाक देने का विधान है।

वर्ति—महुवा और पृष्ठपर्णी को दूध में पीस घृत में भिगोकर योनि में वर्ति धारण करने का भी लेख है।

वस्ति—देवदारु और मुद्गपर्णी के क्वाथ की उत्तर वस्ति देना भी लाभप्रद है।

(२) पित्तदोषज आर्तव—कष्ट करके आर्तव आवे, कमर बहुत दुखे, पीड़ा बहुत हो पेट में जलन, गर्मी बहुत हो, हाथ पैर में जलन, आर्तव का रंग पकी जामुन के रङ्ग का हो अथवा फोड़े के रुधिर समान स्राव हो।

पित्तदोषज आर्तव चिकित्सा—कमलगट्टा की मिंगी, तगर, चन्दन, असली कूठ, मुलहठी, सफेद चन्दन प्रत्येक समभाग ले कूटपीस कपड़छन कर दूध से ३ दिन दें या ऋतुस्राव पर्यन्त दें। इससे पित्तदोषज आर्तव रोग नष्ट हो जाता है। पुनः लक्ष्मणामूल का नस्य देने से गर्भधारण होता है। अथवा—काकोली, क्षीरकाकोली, विदारीकन्द का क्वाथ मिश्रीयुक्त देने से पित्तदोषज आर्तव शुद्ध होकर गर्भाधान भी करता है।

प्रक्षालन—नीम के पत्ते और गेरू का क्वाथ बनाकर डूस द्वारा योनि प्रक्षालन करायें।

(३) कफज आर्तव दोष—कफ विकार से रजोदर्शन तो होता है पर गर्भाधान नहीं होता। लक्षण—अधिक आर्तव स्राव सफेदी लिए हो, मज्जासहित आर्तव स्राव, पानी में डूबने वाला हो। नाभि के नीचे दारुण शूल स्त्री को व्याकुल कर देता है। योनि में खुजलाहट होती है। मतान्तर से रजस्राव झाग-युक्त भी हो सकता है।

चिकित्सा—आक की जड़, फूल प्रियुङ्ग, नागकेशर, खरैटी, नागवला (गंगेरन) समभाग ले दूध में पीसकर ३ या ५ दिन देने से कफदोष की निवृत्ति होती है। अथवा—आक की जड़, मेंहदी के बीज, लवंग, नागकेशर समभाग बकरी के दूध से पीसकर ३ या ४ दिन दें। अथवा—कुड़ा की छाल, कुटकी, असगन्ध का क्वाथ ऋतु समय में ३ से ५ दिन पर्यन्त पिलायें। अथवा—त्रिकुटा, त्रिफला, घी की भुनी हींग समभाग लें। बकरी के दुग्ध में पीसकर ३ या ५ रात्रि पर्यन्त दें। इससे आर्तव का कफदोष दूर होकर गर्भधारण होता है।

प्रक्षालन—लोध्र और तेदू की छाल जल में पकाकर क्वाथ से डूस द्वारा योनि मार्ग का प्रक्षालन कराते रहें।

वमन—मैनफल का क्वाथ सेंधे नमक के साथ देकर युक्तिपूर्वक वमन करावें।

गर्भगीताकार इसके आगे के "द्वन्द्ज दोष युक्त आर्तव" को "ग्रह प्रकोप" मानते हुए इसका उपाय केवल "ग्रह शांति कर्म" ही बताते हैं, उन्होंने द्वन्द्ज दोष युक्त आर्तव की चिकित्सा नहीं लिखी।

(४) सन्निपातज आर्तव दोष—तीव्र ज्वर हो, रक्त काला हो, बहुत गर्म हो, अल्प रक्त स्राव हो, कोख, उदर, योनि, कमर में शूल हो, शरीर टूटे, निद्रा अत्यन्त हो, एवं तीनों दोषों के मिश्रित लक्षण हों तो सन्निपात दोषयुक्त आर्तव दोष जानें।

चिकित्सा—अन्य ग्रन्थकारों ने आर्तव को अत्यन्त दुर्गन्ध युक्त बताकर इसको असाध्य माना है। गर्भगीताकार ने इसकी चिकित्सा—

(१) एरण्ड मूल, हाथा जोड़ी की जड़, आक छाल, निसोत, कमलगट्टा, तगर, कूठ, मुलहठी, चन्दन, सम भाग लें। बकरी के दूध में पीसकर ७ रात्रि पर्यन्त या जब तक रजः स्राव हो देवें। रजः शुद्ध होता है।

(२) योनि शुद्धि कारक—इसके लिए कोई प्रयोग दृष्टि गत नहीं हुआ अतः अनुभव से-मदनफल के बीज ४ भाग सेंधा नमक १ भाग मधु में पीसकर

वर्त्ति बनावें। घी में भिगोकर वर्त्ति योनि में धारण करायें इससे योनि शुद्धि होती है।

गर्भधारण के लिये—सफेद आक, बांझककोड़ा, दसरणा, सतावर, गोभी के पत्ते, बांझ कटेली सब दवाऐं समभाग बकरी के दूध से ३ दिन पर्यंत दें। गर्भ धारण होगा। इसे ३-४ माह पर्यन्त भी दे सकते हैं। साथ ही—

जल जमनी कटी का नस्य दें। दाहिने नथुने में नस्य देने से पुत्र, बायें से पुत्री होगी। यह सभी उपाय गर्भ गीताकार ने बड़े प्रयत्न से संकलित किये हैं।

अन्य दोष युक्त आर्तव—ग्रह दोष के लिए ज्योतिषी से जन्म कुण्डली पर से उपाय करावें, देव प्रकोप को गोत्र देवी का आराधन, श्राप जप, अभिशा-रज, तथा जादू टोने का भी यथा युक्ति उपाय करना चाहिये।

वात कफज आर्तव—रज का वर्ण श्वेत काला, मिश्रित रक्त वर्ण होता है। रक्त गांठदार होता है। शेष लक्षण वातकफ प्रकोप के होते हैं।

उपचार—सोंठ, मिर्च, पीपल, सोनापाढ़, धमासा, कुड़े की छाल का क्वाथ प्रातः सायं ७ दिन दें। इससे वात कफज दोष की निवृत्ति हो जाती है।

पित्त कफज आर्तव—अत्यन्त दुर्गन्ध युक्त आर्तव पीव (मवाद) युक्त, मुर्दे की सी गन्ध युक्त होता है। शेष दोष कफ पित्त के मिश्रित लक्षण परिलक्षित होते हैं।

उपचार—नीम की छाल, रक्त चन्दन, सारिवा, कमलगट्टा, मोंथा और सोंठ का क्वाथ दें। ५-७ दिन में रजो दोष की निवृत्ति होती है। साथ ही त्रिफला क्वाथ फिटकरी द्वारा सिद्ध क्वाथ से डूस अवश्य दें।

वात पित्तज आर्तव—दाह युक्त झागदार, विवर्ण, रज स्राव अत्यल्प होता है। नीला, पीत और कृष्ण वर्ण युक्त रक्त स्राव होता है। संधियों में वेदना, जंभाई, जलन, चक्कर, मस्तिष्क में पीड़ा आदि लक्षण होते हैं।

चिकित्सा—त्रिफला, गोखुरू, सारिवा, लोध्र, निसोथ, गिलोय, मोथा, गंभारी छाल, सोनापाढ़ का क्वाथ प्रातः सायं ७ या १५ दिन दें।

रक्त दूषित रज के लक्षण और उपचार—जब स्त्रियों को स्वभाव सिद्ध या निमित्तज रक्त दोष होता है, तब योनि में फोड़े फुन्सी, खुजली आदि होते हैं तथा खटमल जैसी गन्ध युक्त रजस्राव होता है। शरीर पर चकत्ते एवं विसर्प, विस्फोटक जैसे लक्षण हो जाते हैं।

महा मंजिष्ठादि क्वाथ, या सारिवाद्यारिष्ट का नियमित ३ माह सेवन करायें अथवा—मुन्डी, उसवा, मजीठ, निम्ब, अमलतास, रक्त-चन्दन, सनाय, मुनक्का और चिरायते का काढ़ा १ से ३ माह पर्यन्त दें।

भैषज्य रत्नावली का—वातरक्ताधिकार का निम्बादि चूर्ण हमारा सहस्रशह अनुभूत है। इससे निश्चित रूप से रक्त दोष दूर होता है। साथ ही भोजनो-परांत खदिरारिष्ट जल युक्त अवश्य दें। नमक बन्द करदें।

रजोदोष निवृत्ति के लिये—चन्द्रप्रभा, गंधकरसा-यन, वोल पर्पटी, रजशोधक क्वाथ आदि प्रधान औषधियां भी बहुतायत से प्रयोग की जाती हैं। एक साधारण प्रयोग निम्न लिखित और लिख-कर लेख समाप्त करते हैं।

ऋतुशोधन वटी—शुद्ध हीरा कसीस, शु. एलुआ, फूला सुहागा, शु. पारा, शु. गन्धक, उत्तम वंग-भस्म, इलायची के दाने प्रत्येक सम भाग लें। यथा विधि घृत कुमारी के रस में या गुलाबजल में १२ घन्टे घोटकर ३-३ रत्ती की गोली बनालें। उष्णजल या शहद से दें। इससे बाधक वेदना, योनिशूल, कष्टार्तव, अल्पार्तव एवं समस्त रजः विकार दूर होकर आर्तव शुद्ध होता है।

—श्री सुन्दरलाल जैन वैद्य भूषण,
महाकौशल आयुर्वेद फार्मेसी, कुइई (दमोह)

आर्तव क्षय अथवा अनार्तव (Amenorrhoea)

वैद्य श्री शेषराव जैन
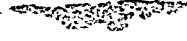
प्राकृतिक आर्तव स्राव जब किसी कारणवश प्रतिमास न होकर उसका अभाव हो जाता है तो उसे आर्तवक्षय अथवा अनार्तव कहते हैं। यह अनार्तव सगर्भावस्था में, प्रसूतावस्था में, रजोनिवृत्यावस्था में एवं बाल्यावस्था में स्वाभाविक अनार्तव कहा जाता है। कभी-कभी गर्भाशय एवं बीजग्रंथियों के पूर्णतः विकास न होने आदि कारणों से आर्तव प्रतिमास न होकर विलम्ब से होता है। इसे विलम्बित आर्तव या "आवृतार्तव" कहते हैं। इस आवृतार्तव एवं स्वाभाविक कारणों को छोड़ जब अन्य कारणों से स्त्रियों का आर्तव रुक जाता है तब उसे वैकारिक अनार्तव कहते हैं। इस अनार्तव को हम दो समूहों में विभक्त कर सकते हैं। यथा--

(१) प्राथमिक अनार्तव—इसका कारण अन्तः स्रावी एवं बीजग्रन्थियों की हीनता है। योनि की हीन वृद्धि के कारण योनि से गुप्त रजस्राव होता है। यौवनागमन अधिक विलम्ब में होता है। शरीर में वसा वृद्धि होती है। मधुमेह, क्षय, रक्ताल्पता आदि रोगों में भी प्राथमिक अनार्तव होता है। इनमें हेतु विपरीत चिकित्सा करने पर लाभ होता है। क्वचित ऐसे रोगी भी मिलते हैं जिनमें गर्भाशय एवं यौवनागमन ही नहीं मिलता। इनमें उपवृक्क ग्रन्थि एवं बीज ग्रन्थि की हीन वृद्धि भी पायी जाती है। यह अनार्तव पूर्णतः असाध्य है।

(२) द्वितीयक अनार्तव—अन्तःस्रावी ग्रन्थि विकारगत रोग यथा एक्रोमेगेली, एडिसन व्याधि, उपवृक्क ग्रन्थि, गर्भाशयिक अर्बुद आदि में अनार्तव होता है। पीयूष ग्रन्थि के स्राव के अभाव के कारण बीज ग्रन्थि में उत्तेजना नहीं मिलती। इसके अतिरिक्त जलवायु परिवर्तन, मानसिक चिन्ता, हीन पोषण के कारण रक्ताल्पता, चिरकालीन विषता, शल्य कर्म द्वारा गर्भाशय एवं बीजग्रन्थि को निकाल देने अथवा क्ष-किरण रेडियम द्वारा कृत्रिम रजोनिवृत्ति उत्पन्न करने किंवा यदा कदा प्रजनन अङ्गों के विशेष उपसर्ग के कारण भी अनार्तव पाया जाता है। निदान करते समय यह विशिष्ट ज्ञातव्य रखना चाहिए कि अनार्तव प्राथमिक है अथवा द्वितीयक। कारण प्राथमिक द्वितीयक अनार्तव दो अलग-अलग रोग हैं। प्रथम में नारी को आर्तव होता तो है परन्तु कुछ शारीरिक स्थानिक किंवा शस्त्रजन्य कारणों से वह बन्द हो जाता है जब कि द्वितीयिक में स्त्री को प्रारंभ से ही आर्तवस्राव नहीं होता।

आचार्यों ने जिन २० योनि रोगों का अपने योनि व्यापद् चिकित्साध्याय में वर्णन किया है उनका अवलोकन करने पर निम्न लिखित में अनार्तव के लक्षण पाये जाते हैं।

(१) बन्ध्या (सुश्रुत) (२) अरजस्का (चरक) (३) लोहितक्षया (माधव, वाग्भट्ट एवं शार्ङ्गधर) (४) शुष्का (चरक)

उपरोक्त में प्राचीन आचार्यों की दृष्टि में अति संशोधन, अति संशमन, वेगविधारण, अस्रास्त्यान्न सेवन, मानसिक सन्ताप, अव्यायाम, अनशन, अति मैथुन एवं दोषों द्वारा मार्गावरोध अनार्तव के कारण हैं। आर्तवक्षय से मूल अभिप्राय रक्त की कमी एवं रक्त की कमी का अर्थ है कि रस पूर्णतया नहीं बनता। रस की कमी आहार के पूर्ण परिपाक एवं सात्म्यीकरण में विकृति से होगी। अतः सम्पूर्ण घटकों से युक्त आहार प्रदान कर न्यूनता की पूर्ति करना है। इस दृष्टि

से आधुनिक बीज एवं पीत के देने का सिद्धान्त समझ में आजाता है।

चिकित्सा :—

चिकित्सा प्रारम्भ करने से पूर्व रोगी को तदनुकूल वातावरण प्राप्त करा देने से शीघ्र सफलता की आशा रहती है। सुपाच्य लौह एवं विटामिन्स युक्त भोजन, शुद्ध जलवायु, पूर्ण विश्राम एवं उचित व्यायाम, शुद्ध मानसिक वातावरण एवं सर्वदा कोष्ठ शुद्धि रहने पर चिकित्सा में शीघ्र लाभ की आशा रहती है। वैसे तो मुझे अपने चिकित्साकाल में आर्तव क्षय की अनेक रुग्णाओं की चिकित्सा करने के अवसर मिले। उनकी औषधि व्यवस्था में भी दोषानुसार अन्तर एवं परिवर्तन करना पड़ा। किन्तु निम्न औषधि व्यवस्था प्रायः दोनों प्रकार के आर्तव क्षय में आशु कार्यकारी रहती है।

(१) रोगी की चिकित्सा के पूर्व वमन विरेचन द्वारा कोष्ठ शुद्धि करना आवश्यक है। विरेचन के लिए अवस्थानुसार अश्वकंचुकी, परकोलेक्स, इच्छाभेदी, केस्टोफिन आदि कोई भी योग दिया जा सकता है। सर्वोत्तम शुद्धैरंड तैल १ औंस रात्रिकाल में १ पाव उष्ण गोदुग्ध में मिलाकर लेने से स्नेहन और विरेचन दोनों गुण प्राप्त हो जाते हैं। पश्चात् पेया मिलाकर मदनादि वमन चूर्ण अथवा निम्बपत्र १ तोला, फिटकरी ४ रत्ती, नमक १॥ माशा, उष्ण जल ४ तोले मिलाकर पीसकर गले में उंगलियां डालकर वमन करना श्रेयस्कर है। पश्चात् निम्न औषधि व्यवस्था करें।

(२) अ—लोहभस्म २ रत्ती, अभ्रक भस्म २ रत्ती, कसीस भस्म २ रत्ती। २ मात्रा।

अनुपान—कालीमिर्च ५, घृतकुमारी का गूदा ३ माशा, शहद ३ माशा से प्रातः एवं सायंकाल दें।

ब—रजः प्रवर्तिनी बटी ४ गोली। २ मात्रा

अनुपान—कृष्ण तिल ३ माशा, कार्पास मूल ३ माशा, मेंथी ३ माशा के चतुर्गुण क्वाथ से प्रातः ६ बजे एवं रात्रि में ६ बजे।

स लोहासव १। तोला, कुमारी आसव १। तोला, अशोकारिष्ट १½ तोला। २ मात्रा भोजनोपरान्त समान भाग जल से।

(३) अ—मंडूरभस्म २ रत्ती, स्वर्णमाक्षिक भस्म २ रत्ती, कसीस भस्म २ रत्ती, अभ्रक भस्म २ रत्ती। २ मात्रा

त्रिफला चूर्ण १॥ माशा, ग्वारपाठे का गूदा १॥ मा०, शहद ३ मा० से प्रातः सायं ६ बजे।

ब—नष्ट पुष्पांतक रस २ गोली, कन्यालोहादि वटी २ गोली। २ मात्रा, कृष्ण तिल १॥ माशा, कपास बीज १॥ माशा के चतुर्गुण क्वाथ से। ६ बजे दिन एवं ६ बजे रात्रि को दें।

स—कुमारी आसव, लोहासव, अशोकारिष्ट का मिश्रण प्रत्येक अवस्था में भोजनोपरान्त समान भाग जल से देना चाहिये।

(४) अ—मूली बीज १ माशा, गाजर बीज १ माशा, मेंथी बीज १ माशा, कृष्ण तिल १ माशा, कपास बीज (बरकी) १ माशा, त्रिकुटा ३ माशा, गुड़ २॥ तोला जल १½ पाव। क्वाथ बनाकर ६ तोला रहने पर उतार कर इसकी २ मात्रा बनावें।

ब—रजःप्रवर्तिनी वटी अथवा नष्टपुष्पांतक रस प्रातः सायं ६ बजे उपरोक्त क्वाथ से १-१ अथवा २-२ गोली १ घन्टे पश्चात् दें।

स—कुमारकल्पद्रुम घृत १ तोला, सुखोष्ण गो दुग्ध १ पाव मिलाकर ८ बजे दिन और ८ बजे रात्रि को पीवें।

ड—भोजन के पश्चात् वही लोहासव कुमारीआसव एवं अशोकारिष्ट का मिश्रण दें। इनके अतिरिक्त निम्न व्यवस्था और भी करें।

अनार्तव नाशिनी वस्ति—गम्भारीत्वक् ५ तोला, कुटजत्वक् ५ तोला, टंकण १ तोला इनका क्वाथ बना कर प्रतिदिन रात्रि में ७ दिन तक योनि वस्ति (डूश) दें।

अनार्तव नाशक वर्तियां-(१) इन्द्रायण मूल त्वक को सुचिक्कण पीसकर कनीनिका अंगुली प्रमाण बर्तियां बना प्रातः सायं १-१ वर्त्ति योनि में गहराई तक धारण करें।

(२) अपामार्ग मूल त्वक को भी इसी प्रकार वर्त्तियां बनाकर धारण किया जा सकता है।

(३) कटुतुम्बी, दन्ती बीज, पिप्पली, गुड, मदनफल, किण्व [आसव खींचने के उपरान्त नीचे का बचा हुआ अवशेष सार भाग जिसके द्वारा संधान होता है] मधुयष्ठी सबको समान भाग लेकर सेहुण्ड के दुग्ध में सुचिक्कण पीस उपरोक्त प्रकार से बर्त्तियां बनाकर धारण करना भी श्रेष्ठ है।

आधुनिक चिकित्सा—

१-रक्ताल्पता जन्य आर्तव—अ—फैरीएट अमोनियम साइट्रेट २ ड्राम, पोटेशियम ब्रोमाइड २ ड्राम, गिलसरीन ½ औंस, एक्वा मेंथ. पिप्प. ८ औंस घोलकर पूर्ण मिश्रण बनाओ।

मात्रा—१ बड़ा चम्मच दिन में ३ बार प्रातः मध्यान्ह रात्रि।

ब—पिलुला एलूज एट फैरी २ गोली, २ मात्रा भोजन के बाद पानी से। अथवा

२—टिंचर एलूज एट मिर्ह २० बूंद।

(अ)—टिंचर फैरी परक्लोराइड्स १५ बूंद, सीरप आरेंज १ ड्राम, जल १ औंस—३ मात्रा प्रातः मध्यान्ह सायं।

(ब)—फैरोबीकल ४ गोली। २ मात्रा भोजन के साथ। अथवा

फैरोवी लिकर ४ ड्राम। २ माशा जल से भोजनोपरान्त।

सूची—१-यूनी फेरोन ५ c. c. पेशी मार्ग द्वारा ६ से १२ इन्जैक्शन प्रति तीसरे दिन।

२—आयरन आर्सेनिक १ c. c.-१२ से २४ इन्जैक्शन प्रति तीसरे दिन।

३—लिवर एक्स. फोर्ट २ सी. सी. प्रति तीसरे दिन पेशी मार्ग से।

४—मेक्राबिन (B १२. ५०० mg.) १ c. c. प्रति तीसरे दिन पेशी मार्ग से। उपरोक्त उपचार करने के पश्चात् निम्न प्रकार चिकित्सा करनी चाहिये। ध्यान रहे सूची (इन्जैक्शन) में जितने इन्जैक्शन लिखे हैं उनमें से किन्हीं १-२ का ही चुनाव आवश्यकतानुसार करना चाहिए। साधारणतया यदि रक्ताल्पता के कारण ही आर्तव क्षय हुआ हो तो उपरोक्त चिकित्सा से ही लाभ हो जाता है। यदि इतने पर भी सफलता न मिले तो निम्न प्रकार उपचार करें।

१—अ—यदि वसावृद्धि हो तो एक्स० थायराइड टेबलेट १ ग्रेन या ½ ग्रेन दिन में तीन बार पानी से दें।

ब—एलिक्जर न्योकार्डियल अथवा अशोक कार्डियल कंपाउण्ड विथ हारमोन २ चम्मच समान भाग जल से दिन में ४ बार दें।

स—मेन्स्ट्रोन पेसरी १००० यूनिट को योनि में रखें। अथवा

ड—प्रोगाइनान का योनि मार्ग में लेप दें।

नोट—क्र. १ "स" एवं "ड" का प्रयोग प्रत्येक के आर्तव क्षय में कर सकते हैं।

२—यदि गर्भाशय की अल्पबलता, पीयूष ग्रन्थि आदि अन्तःस्रावी ग्रन्थि विकार हों तो निम्न प्रकार चिकित्सा करें।

(अ)—डायनेस्ट्राल, हार्मोटोन, लाइनोरल, स्टिलबेस्टरोल टेबलेट, सीन्थोवो टेबलेट, ल्युटोसाक्लिन टेबलेट-इनमें से किन्हीं का भी प्रयोग दिन में ३ बार जल या दूध से करें।

(ब)—एसोकोलेट्रिस २-२ चम्मच समान भाग जल से भोजन के बाद दें।

(स)—ल्युटोस्टेब, स्टिलबेस्टरोल, न्यो मेन्सट्रोन, ल्युटो ओवो सायक्लिन, सायरेन बी फोर्ट, इटि साक्लिन, इस्टो प्रोजिन आदि में से

—शेषांश पृष्ठ १५६ पर

रजोरोध

वैद्य श्री अमरनाथ शर्मा
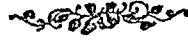
रज अर्थात् मासिक का रक्त वास्तव में मलमूत्र की भांति एक निकृष्ट पदार्थ है जिसका रुक जाना बहुत सी शारीरिक व्याधियों का कारण बनता है। यह रक्त स्वास्थ्य की दशा में १२ से १६ वर्ष की आयु के मध्य स्त्रियों को प्रारम्भ होकर प्रतिमाह ४-५ दिन आया करता है। गर्भकाल में यह बन्द रहता है क्योंकि वह रुका अंश गर्भ के पोषण में सहायक होता और जो अंश गर्भ के पोषण से अवशेष रहता है वह प्रसवकाल में नफास (शुल्क) के रूप में बह जाता है। इसी प्रकार जब तक बच्चा दूध पीता है तब तक यह प्रायः बन्द रहता है। परन्तु किन्हीं-किन्हीं स्त्रियों को यदाकदा दूसरे तीसरे माह हो भी जाता है। इन दोनों अवस्थाओं (अर्थात् गर्भकाल, दूध पिलाने के समय) के अतिरिक्त यह मासिक धर्म होना बन्द हो जाय तो 'रजोरोध' रोग कहलाता है। ऐसी दशा में मासिक खोलने की चिकित्सा अवश्य करनी चाहिए अन्यथा यह रुका हुआ रक्त निम्न प्रकार के रोग उत्पन्न कर सकता है।

१—शिरःशूल, अपस्मार, संन्यास, उन्माद आदि मस्तिष्क विकृतियां।

२—दृष्टिमान्द्य (अर्थात् दृष्टि शक्ति कमजोर हो जाती है, प्रत्युत नष्ट तक हो जाती है)

३—फोड़ा, फुन्सी, चकत्ते, शीतपित्त, कुष्ठ, उपदंश आदि रक्तविकार

४—पक्षाघात, धनुष्टंकार, हनुस्तम्भ, असंशोष गठिया इत्यादि वायु रोग

५—सर्व प्रकार के शोथ (अर्थात् बाह्य, आन्तरिक अवयवों व गुप्ताङ्गों की सूजन)

६—यक्ष्मा, क्षय, श्वास-कास आदि वक्षगत रोग

७—पाचन सम्बन्धी विकार यथा-अजीर्ण, मंदाग्नि यकृत पाण्डु, जलोदर इत्यादि

८—आंख, कान, नाक, मुंह, मलमूत्र द्वार आदि अङ्गों से रक्तस्राव।

९—मूत्रकृच्छ्र, उष्णवात, सुजाक, मूत्रावरोध इत्यादि मूत्र सम्बन्धी रोग

१०-रिजा (झूठा गर्भ) या रक्त गुल्म

इसके अतिरिक्त रक्त में ऊष्मा बढ़ जाती है। फलतः हाथ पांव शिर आदि अंगों में जलन रहती है, हड़फूटन सी रहती है। जरा से परिश्रम से ही सांस फूलने लगती है। दिल की धड़कन बढ़ जाती है। मतलब यह कि शरीर नाना प्रकार की व्याधियों का केन्द्र बन जाता है और सबसे विशिष्ट बात यह है कि जो स्त्री रजोवती नहीं होती है वह सन्तानोत्पत्ति के सर्वथा अयोग्य होती है अर्थात् कदापि गर्भधारण नहीं कर सकती।

कारण—यद्यपि कई ग्रन्थकर्त्ताओं ने इस रोग के बहुत से कारण लिखे हैं तथापि विशेष कारण निम्न ही हैं। शेष सब कारण इन्हीं के अन्तर्गत आ जाते हैं।

(१) रक्त न्यूनता-शरीर में जब किसी जीर्ण या दुष्ट व्याधि (यथा दीर्घकालीन अजीर्ण, यकृत अथवा श्वेतप्रदरादि) से शरीर का रक्तांश कम हो जाता है तो माहवारी नहीं होती।

(२) मोटापा-जब शरीर पर मेद बढ़ जाता है तो फलस्वरूप गर्भाशय का मार्ग भी चर्बी से अवरुद्ध हो जाता है और मासिक धर्म बन्द हो जाता है।

(३) गर्भाशय विकार-गर्भाशय में शोथ, रसोली व मस्सा आदि होने से भी रजोरोध रोग हो जाता है अथवा यदि गर्भाशय अपने स्थान से हट जाय, ऊपर नीचे या इधर-उधर उलट जाय तब भी बहुधा रजस्राव बन्द हो जाता है।

चिकित्सा—

जिस रोग के कारण निर्बलता हुई हो प्रथम उसकी चिकित्सा करें, फिर रक्तवर्धक यथा

स्वर्णभस्म, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, रौप्यभस्म, मुरब्बा सेब, मुरब्बा आमला आदि औषधियां तथा घृत दुग्ध मक्खन आदि पौष्टिक भोजन देना चाहिए। जब शरीर पुष्ट हो जायगा, रक्त न्यूनता दूर हो जायगी तब मासिक धर्म भी स्वतः ही होने लगेगा। अति श्रम, क्रोध, शोक, चिन्ता व सम्भोग से बचना जरूरी है। नीचे दो रक्त वर्धक अनुभूत प्रयोग दिये जा रहे हैं—

(१) स्वर्ण जल—वैद्य लोग रक्तवृद्धि करने के लिए स्वर्णभस्म का प्रयोग करते ही हैं परन्तु जरा इस स्वर्ण जल का तो परीक्षण करके देखें। यह औषधियां कंठ से नीचे उतरते ही रक्त में आकृष्ट होकर इन्जेक्शन की भांति अपना काय आरम्भ कर देती हैं।

स्वर्णपत्र ६ माशा, नमक का तेजाब ६ माशा, शोरा ४ माशा। किसी शीशी में डालकर हिलाऐं। पड़े-पड़े कई दिन में समस्त स्वर्ण घुल जायगा। फिर इसमें १० तोला अर्क गुलाब मिलालें और ७ से लेकर १० बूंद तक प्रतिदिन अर्क गाजवां में डालकर पिलाया करें।

गुण—दिल, दिमाग, मेदा, जिगर को शक्ति देता है और विपुल मात्रा में रक्तोत्पत्ति करके हर प्रकार की शारीरिक दुर्बलता को नष्ट कर देता है। यक्ष्मा के रोगियों के लिए यह अत्युत्तम है।

(२) रौप्य जल—क्योंकि स्वर्ण एक अत्यन्त मंहगी वस्तु है अतः उक्त प्रयोग धनवान लोग ही कर सकते हैं। सर्वसाधारण के लिए यह प्रयोग लाभकारी सिद्ध होगा।

रौप्यपत्र वरक चांदी) ३ माशा, तेजाब शोरा ६ तोला दोनों को मिलाकर शर्बती रंग की शीशी में डालकर रख दें। कुछ समय में हल हो जायगा। फिर इसमें १२ छटांक अर्क गुलाब मिला लें। मात्रा–१० बूंद १ तोला जल या अर्क गाजवां में डाल कर दें। अतिशीघ्र निर्बलता दूर करके शरीर को हृष्ट-पुष्ट कर देगा।

इन दोनों प्रयोगों से रक्त न्यूनता दूर होकर मासिक स्राव चालू हो जाता है तथा जिन लड़कियों को शारीरिक निर्बलता के कारण योग्य अवस्था में रज होना प्रारम्भ ही न हुआ हो उनके लिये भी यह लाभदायक है। गुप्ताङ्गों को परिपुष्ट कर रजस्वला होने के योग्य बना देते हैं।

(२) मोटापा (मेदवृद्धि)—प्रथम लिखा जा चुका है कि रजोरोध का कारण मोटापा भी है। ये तो सर्व विदित है कि मोटापा होता है अच्छे-अच्छे पौष्टिक पदार्थ अधिक खाने, परिश्रम न करने तथा बेफिक्री से। इसलिये निम्न नियमों का पालन आवश्यक है ताकि अनुचित रूप से बढ़ी हुई मेद कम हो।

१—दूध, घी, मक्खन आदि चरबी बढ़ाने वाले पदार्थ न खावें।

:: पृष्ठ १५४ का शेषांश ::

आवश्यकतानुसार किसी भी एक इन्जैक्शन को प्रति चौथे दिन ५ या ६ इन्जैक्शन दें। एन्टीरियर पिच्यूटरी लोब एक्सट्रैक्ट के इन्जैक्शन भी उपरोक्त प्रकार में देकर लाभ प्राप्त हुआ है।

पथ्यापथ्य—रुग्णा को कटि पर्यन्त उष्णोदक में प्रति दिन बैठाना लाभप्रद है। तिल, उड़द, मछली, जौ, गेहूं, पुराने चावल, हरी तरकारियां, त्रिफला, सहिंजना, मूली, कुक्कुटांड का सेवन, संयमित एवं ब्रह्मचर्य पूर्ण जीवन। चिन्ता, क्रोध, आदि मानसिक विकारों का दूरीकरण अपेक्षित है। तैलीय पदार्थ गुरु शीतल बात कारक एवं बासा भोजन दिवाशयन मैथुन रात्रिजागरण आदि पदार्थों का त्याग करना आवश्यक है। उचित व्यायाम शुद्ध आबहवा एवं पूर्ण विश्राम रुग्णा के लाभार्थ अपेक्षित है।

—वैद्य श्री शेषराव जैन "आयुर्वेद रत्न"
सरकारी आयु० औषधालय, दासगांव (भंडारा)

२—शारीरिक परिश्रम खूब करें। आराम तलबी का त्याग कर समस्त गृह कार्य स्वयमेव करने चाहिए। चक्की पीसें, दिन में न सोयें प्रत्युत कोई न कोई शारीरिक व मानसिक कार्य करती ही रहें। यदि हो सके तो आध-आध मील प्रतिदिन प्रातः सायं भ्रमण किया करें।
३—सप्ताह में दो दिन पूर्ण उपवास किया करें।
४—दिन में २-३ बार ऽ। गर्म जल में २ तोला मधु डालकर पियें।
५—प्रातः सायं एक गिलास जल में एक निम्बू निचोड़ कर पिया करें। सर्दियों में पानी सुखोष्ण लेना चाहिए।
६—त्रिवृत्तादि क्वाथ के साथ दशांग गूगल अथवा रास्नादि क्वाथ के साथ में योगराज गूगल (बृहद् वा लघु) का कुछ समय निरन्तर प्रयोग करने से मेदवृद्धि व तद्‌जन्य रजोरोध दूर हो जाता है। (परन्तु उक्त नियमों का पालन अपेक्षित है)

(३) गर्भाशय विकार—स्त्रियों को प्रायः मासिक श्राव के दिनों में अनियमितता बरतने से गर्भाशय में भांति भांति के विकार आ जाते हैं और मासिक श्राव रुक जाता है अथवा मासिकधर्म अत्यन्त कष्ट के साथ थोड़ा थोड़ा आने लगता है। ऐसे विकारों में निम्न प्रयोग लाभप्रद हैं परन्तु खाने की दवा के साथ साथ गर्भाशय में दवायें रखना उत्तम है।

रजशोधक औषधियां—

(१) कपास की जड़ और पुराना गुड़ ४-४ तोला, पीपल की दाढ़ी २ तोला, गाजर के बीज, सोया के बीज १-१ तोला, जल ऽ॥ सेर में चतुर्थांश क्वाथ करें और मासिक काल से २-३ दिन पूर्व से प्रातः सायं पिलाते रहें तथा मासिक काल में भी पिलाएं।

(२) वायविडंग १ तोला, अजवायन १ तोला, सौंफ १ तोला, सोया के बीज ७ माशा, कपास के खोखड़ २ छटांक, जल १ सेर में औटावें। जब २ छटांक (आधा पाव) रहे तब २ तोला घी और पुराना गुड़ १ छटांक डाल कर चाय की तरह सुखोष्ण पिलावें। इससे भी रजोरोध अति शीघ्र दूर हो जाता है।

(३) अमलतास का छिलका, बांस की गांठ या पत्ते, अखरोट की छाल, वायविडंग प्रत्येक ७ माशा, मूली के बीज, गाजर के बीज प्रत्येक ३॥ माशा, तिल २ तोला, पुराना गुड़ ५ तोला, १ सेर जल में अष्टावशेष क्वाथ कर पिलायें। यह प्रयोग भी अत्युत्तम है। बन्द मासिक श्राव को समय पर चालू कर देता है।

(४) मासिक दर्शन के दिनों में सौंफ २॥ तोला, गुड़ ४ साल पुराना ४ तोला को तीन पाव पानी में उबालें। जब १ पाव रहे तब पुनः छानकर २ तोला घृत डालकर गर्म गर्म पिलावें और लिहाफ उढ़ाकर रोगिणी को लिटावें। २-३ बार के प्रयोग से लाभ होगा।

(५) एलुवा, नागकेशर, सुहागा समभाग लेकर पुराने गुड़ के साथ चना प्रमाण वटी बनावें। मात्रा—१-२ वटी सुखोष्ण जल से ८-१० दिन तक सेवन करें।

(६) काली भेड़ की ऊन की भस्म १ माशे से ३ माशे तक गर्म जल से दिन में ३ बार लेते रहने से समय पर मासिक श्राव चालू हो जायगा।

(७) हमारा विशेष प्रयोग—कलमी शोरा २ माशा तथा केशर शुद्ध ६ रत्ती गुलाब जल ५ तोला में घोलकर गर्म करके पिलाएं। मासिक काल में रोज प्रातः सायं दें। तीन रोज में मासिक श्राव चालू हो जायगा।

योनि में रखने के दो स्वानुभूत प्रयोग—

(८) पुराने गुड़ को आग पर रख कर गर्म करें। जब खूब गर्म होकर पकने लगे तो इसमें गंधाबिरोजा मिलाकर थोड़ा ठंडा होने पर लम्बी लम्बी वत्तियां बनालें और धात्री द्वारा १-१ बत्ती प्रातः सायं गर्भाशय में रखवाया करें। इससे रुका हुआ श्राव खूब खुलकर आने लगता है।

(६) एलुवा, काली जीरी, सोंठ, अरण्डी की मींग प्रत्येक ३ माशे लेकर पीस लें तथा गर्म करके पेड़ू और योनि में ३-४ दिन लगावें।

(१०) बीज कुसुम्बा (अथवा जीरा श्वेत, अलसी, वायविडंग इनमें से कोई) ६ माशा, मुनक्का ६ अदद, पीपलामूल ६ माशा, नागरमोंथा ६ माशा, केशर ३ रत्ती, गुड़ पुराना ५ तोला, इन सबको ऽ।। जल में औटावें। ३ छटांक शेष रहे तब घी २ तोला डालकर मासिक काल में पिलावें। अवश्य मासिक चालू होगा। यदि गर्भाशय में शोथ चर्बी आदि का विकार हो तो निम्न बतिका योनि में रखवायें।

(११) साबुन ६ माशा, गूगल ६ माशा, छोटी पीपल ३ अदद, केशर ६ रत्ती, जिन्दवेदस्तर ३ रत्ती की बत्ती लगावें।

(१२) खाद्य योग—कपासमूलत्वक ५ तोला को १ सेर जल में चतुर्थांश क्वाथ करें और ४ तोला पुराना गुड़ मिलाकर मन्दोष्ण ३-४ रोज पिलायें। अति शीघ्र मासिक स्राव प्रारम्भ होगा।

(१३) वर्तिका—इन्द्रायण मूल (सूखी) को पीस छान कर थूहर के दूध और गुड़ में सान कर बत्ती बनायें और योनि को गर्म जल से धोकर नित्य स्वच्छ रखा करें। इन बर्तिकाओं से शोथ चर्बी आदि का विकार दूर होकर यथा समय मासिक धर्म आने लगता है।

(१४) शृंगभस्म १ माशा गुलकन्द ५ तोला को आध सेर दूध के साथ खिलादें। दूध सुखोष्ण ही होना चाहिये। तीन दिन में हैज (मासिक धर्म) जारी होगा।

नोट—यदि गर्भाशय स्थान भ्रष्ट होगया हो तो निम्न योग गर्भाशय को यथा स्थान ले आते हैं।

लक्षण—मैथुनोपरान्त स्त्री की जांघों में दर्द हो तो समझो कि गर्भाशय उलट गया है।

(१५) गर्भाशय को यथा स्थान लाने का प्रथम-प्रयोग—सब्ज माजू पिसा हुआ १ माशा जल के साथ सेवन करने से टेढ़ा गर्भाशय ठीक होजाता है। कुछ चूर्ण घी में मिलाकर रुई में लगाकर गर्भाशय में रखो।

(१६) द्वितीय प्रयोग—केशर १ माशा कस्तूरी २ रत्ती पीसकर मधु में गोली बनालो और योनि में रखो। इस प्रयोग से गर्भाशय यथा स्थान पर होकर मासिक स्राव भी चालू हो जाता है। निरन्तर ३-४ दिन रखें।

पथ्यापथ्य व आवश्यक नियम—

पथ्य—लघु आहार यथा गर्म दूध चावल-चाय बिस्कुट-बैंगन-करेला-दही तोरी-मूंग-मसूर की दाल आदि।

अपथ्य—खट्टी, तेल की काबिज वस्तुऐं तथा ठंडी व बादी वस्तुओं का परहेज है।

—वैद्य श्री अमरनाथ शर्मा एल. एम. एस. एच.
जनहितकारी औषधालय
चमरौआ (रामपुर)

आर्तव के विविध रोगों पर परीक्षित प्रयोग

नष्टार्तव पर क्वाथ—

(१) तुख्म गाजर, तुख्म खरबूजा, तुख्म मूली, कलौंजी, सौंफ, सब ६-६ माशा, कपास एवं बांस की जड़ १-१ तोले, पुराना गुड़ १ तोला इन सबका क्वाथ ४-५ दिन आर्तवस्राव काल से पूर्व सेवन करने से अवश्य लाभ होता है।

(२) गुड़हल के फूल, कपास की जड़, कलौंजी, काला जीरा, ढाक के पत्ता, काले तिल—सब ६-६

माशे लेकर आठ गुना जल डाल कर क्वाथ करें। जब ३ तोले जल शेष रहे तो इसमें १ तोला पुराना गुड़ मिला छानकर नियमित कुछ दिन पिलाने से नष्टार्तव नष्ट होता है।

—श्री धर्मवीर दत्त शर्मा आयुर्वेद वाचस्पति
पाडली वसेड़ा, बिजनौर।

कष्टार्तव नाशक वर्ति—

सैंधानमक, हल्दी, जीरा १-१ माशा, बड़ी इलायची २ नग को पीसकर बिनौले के तैल १-१॥ माशे की सहायता से अंगुली जैसी बर्ति बनाकर प्रातःकाल योनि में रखनी चाहिये।

कष्टार्तव नाशक वटिका—

बढ़िया एलुआ, भुना हुआ सुहागा, भुनी हींग, शुद्ध हिंगुल, काला नमक सभी द्रव्य १-१ तोला, केशर ३ माशे लेकर जल तथा बट के दुग्ध में घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मासिक स्राव के ८ दिन पूर्व से २ या ३ गोली दुग्ध के साथ देनी चाहिये तथा आर्तवकाल के समाप्त होने पर बन्द कर देनी चाहिये।

—श्री लक्ष्मीनारायण राठौर
शामगढ़

ऋतु-शूल पर तीन प्रयोग—

(१) पुरानी भांग, बन अदरख और अरण्ड की कोमल पत्तियां-प्रत्येक को बराबर-बराबर मात्रा में लेकर पीसलें और दो आने भर प्रमाण की गोली बनाकर रखलें। ऋतुशूल के समय पानी के साथ सेवन करायें।

(२) रीठा (अरिष्टक) चूर्ण एक आना भर, उलटकम्बल मूल चूर्ण तीन आना भर और गोल मिर्च ४-५ नग लेकर एक साथ मिलाकर जल के साथ पीसलें और सेवन करायें। यह एक मात्रा है।

(३) दालचीनी का चूर्ण १ भाग, आंवले का चूर्ण १ भाग, मुसब्बर १ भाग, शोधित हींग १ भाग, लोहभस्म १ भाग, सुहागे की खील (लावा) २ भाग और निसोथ मूल चूर्ण ४ भाग लेकर मिलाकर रखलें। मात्रा एक आने भर से लेकर तीन आने भर तक। अनुपान-गरम जल। यह ऋतु शूल की उत्तम दवा है।

नोट—तीनों प्रयोगों में से किसी एक का प्रयोग प्रातः सायं अर्थात् दिन में दो बार करना चाहिये। यदि ऋतुशूल अत्यधिक उग्र हो तो दिन भर में अधिक से अधिक ४ बार तक लिया जासकता है। मासिक श्राव प्रारम्भ होने के बाद अगर शूल रहे तो २-४ मात्रा लेनी चाहिये।

—श्री डा० विजयकुमार राय,
रोहिणी, संथाल परगना

कष्टार्तव पर—

पुराना गुड़ १ तोला, तिल श्वेत १ तोला, राई ३ माशा। यह एक मात्रा है। एक पाव पानी में काथ करें। आधा शेष रहने पर छानकर संजीवनी वटी २ गोली दांत से पीस ऊपर से काथ पीवें। साथ में भोजनोपरान्त अश्वगन्धारिष्ट और कुमार्यासव सम भाग जल मिला कर पान करें। प्रातः और सायं यह प्रयोग करने से दस दिन में कष्टार्तव दूर होता है तथा आर्तव की शुद्धि होती है। लाल मिर्च तथा अम्ल पदार्थों से परहेज करें।

—श्री वै. दीपचन्द शर्मा प्रभाकर,
श्री धन्वन्तरि औषधालय, लोहारु (हिसार)

नष्टार्तव—

सुहागा १ तो., कसीस भस्म १ तो., मुसब्बर १ तोला, हीरा बोल १ तोला, भुनी हींग ६ माशा, घी में भुनी भारंगी १ तोला, तथा सौंठ १ तोला, सबको कपड़ छन चूर्ण कर जटामांसी के काथ में घोट कर ३-३ रत्ती की गोली बना लें तथा १-१ गोली निम्न काथ के साथ प्रातः सायं सेवन करावें।

क्वाथ—सौंठ, मिर्च, पीपल, काले तिल, भारंगी, कपास की जड़, वांस के पत्ता, इन्द्रायण की जड़-सब मिलाकर १ तोले की मात्रा में लेकर जब कुट कर तीन पाव पानी में काथ करें। जब

एक पाव जल शेष रहे तो उतार कर ठंडा होने दें। इसमें से आधे काथ को प्रात: की गोली के साथ तथा आधे काथ को सायं की गोली के साथ पीवें।

कष्टार्तव—

केसर ३ मा., कसीस ३ मा., एलुआ ६ मा., अम्बरबेल ६ मा., सौंठ ३ मा., गाजर के बीज ६ मा.-जल में पीस कर मटर बराबर गोली बना लें तथा १-१ गोली खिला कर नष्टार्तव के लिए कथित काथ पिलावें।

—श्री कैलाशचन्द्र गर्ग
गर्ग आरोग्य औषधालय, तेहरा (आगरा)

मासिक धर्म पीड़ा से होने पर—

मासिक धर्म पीड़ा से होता है या कम होता है अथवा अनियमित रूप से होता है उसके लिए पहले १ बोतल अशोकारिष्ट पीवें तथा जब महीना आने को हो उसके ४-५ दिन पहले से सुबह शाम रजप्रवर्तनी वटी को खाकर ऊपर से रज-प्रवर्तनी क्वाथ पीवें। स्राव होने पर २ दिन बाद तक पीवें फिर बन्द कर दें। ऋतुस्राव बिल्कुल ठीक आ जायगा तथा नियमित रूप से वगैर कष्ट के होने लगेगा।

रजप्रवर्तनी क्वाथ (काढ़ा)-हंसराज १ तोला, मूली बीज १ तोला, गाजर बीज १ तोला, सोया बीज १ तोला, बथुआ बीज १ तोला, हाऊबेर १ तोला, गूदा अमलतास १ तोला सबको मिलाकर जवकुट कर लें। यह २ खुराक हैं तथा रजप्रवर्तनी वटी का योग सभी वैद्य जानते होंगे यह शास्त्रोक्त योग है। यह योग गर्भवती स्त्री के लिए बर्जित है।

—वैद्य श्री सुखसागर
कैलाश आयु० दवाखाना, मैलानी (खीरी)

नष्टार्तव —

कालादाना, कुटकी, बन्दाल के फल, इन्द्रायण मूल, एलुआ, सब समानभाग लेकर पीसकर कपड़-छन चूर्ण कर लें। अब बांस की पतली सींकें जो नीचे नुकीली महीन तथा ऊपर कुछ मोटी हों उन्हें १६ अंगुल डोरे से लपेट उपरोक्त चूर्ण घृत-कुमारी के रस में भिगो बांस की तीलियों पर लगा कर छाया में सुखा लें। आवश्यकता होने पर इन तीलियों को जो बत्ती के रूप में हैं, गर्भाशय के भीतर किंचित् प्रवेश करें। डोरा का छोर बाहर निकलता रहे। ४-६ घण्टे पश्चात् डोरे को खींच लें इससे तीली निकल आयेगी। इस प्रकार से एक दो बत्तियों के प्रयोग से दीर्घकाल से रुका हुआ मासिक धर्म पुन: प्रारम्भ हो जाता है। गर्भ की आशंका होने पर इसका प्रयोग कदापि न करें अन्यथा गर्भस्राव या गर्भपात हो जावेगा।

—श्री वैद्य छोटेलाल वर्मा आयु. भिषक
सर्व जनहितकारक औषधालय,
तालग्राम (फरुखाबाद)

नष्टार्तव—

पीपलामूल, बायबिडंग, सन के बीज, छुआरे, पुराना गुड़, प्रत्येक १-१ तोला लेकर आधा सेर पानी में उबालें। एक पाव जल शेष रहने पर उतारकर छान लें तथा ५ तोले शुद्ध गौ घृत मिलावें। ठंडा होने पर रुग्णा को खड़े होकर यह क्वाथ पीना चाहिए। इसके तीन दिन के सेवन से ही लाभ प्रतीत होने लगेगा।

—वैद्य श्री जगन्नाथ दास प्रभाकर,
प्रभाकर आयुर्वेदिक फार्मेसी, खैरपुर।

ऋतु शूल पर शूल कुठार चूर्ण—

करञ्जुए की गिरी १ पाव (तीन तोले घृत में भून लें), सोंठ, सेंधा नमक, कालानमक ३-३ छटांक, सुहागा भस्म १ छटांक, शुद्ध हींग २ छटांक, यवक्षार २ छटांक, मीठा सोड़ा (Soda-bi-carb.) ५ छटांक, सबको कूट छानकर बोतल में भर लें। मात्रा-१ से २ माशे तक। अनुपान—गर्म जल।

प्रयोग - ऋतुशूल, अफरा, मक्कलशूल, उदर कृमि के लिए हितकर सिद्ध हुआ है।

बाधक वेदनाहर —

बीज गाजर, बीज मूली, बीज मैंथी, सेंधा

नमक चारों औषधियां समान भाग लें। कूट कर चूर्ण तैयार करें।

मात्रा--३ माशा प्रातः सायं, अनुपान--३ माशे कलौंजी के क्वाथ के साथ उष्ण जल से दें। ऋतु आरम्भ से ऋतु समाप्ति होने तक प्रयोग करावें। इस योग से अल्प ऋतुस्राव ठीक होकर उपद्रव रूप में होने वाला शिरःशूल, कलेजे की धड़कन, पीठ कमर और पांव का दर्द दूर हो जाता है।

—वैद्य श्री कृष्णमूर्ति शर्मा "देवगुण"
मु. पो. भादसौं (पटियाला)

नष्टार्तव--

काला सुहागा (सुरब्बर) १ तोला, बन्दाल (घघर-बेल) १ तोला, लौंग १ तोला, बादाम की गिरी १ तोला। विधि--चारों वस्तुओं को शराब नं० १ २० तोले में डालकर भली भांति खरल करना चाहिए। पश्चात् शुष्कोपरांत अर्ध सम भाग की २० बर्तिकायें बनालें एवं शेष भाग की १० गोलियां बनाकर रखलें।

सेवन विधि--रात्रि को शयन करते समय एक बत्ती युक्तिपूर्वक योनि के भीतर रखकर सो जावें तथा प्रातः निकाल देवें, इस प्रकार दस दिवस पर्यंत करें। साथ ही १ गोली प्रतिदिन प्रातः सायं गोदुग्ध से अथवा गरम पानी से दस दिन तक खिलायें। औषधि के प्रभाव से ऋतु प्रवाह होने लगेगा एवं गर्भ स्थिति हो जायगी।

—स्वामी श्री कृष्णानन्द शास्त्री
सिद्धाश्रम मालिन खोह, चन्देरी।

नष्टावर्त का प्रयोग--

गाजर के बीज का चूर्ण ३ माशा, सर्जिकाक्षार २ रत्ती। दोनों का मिश्रण बनाकर दो मात्रा बना लेनी चाहिए। प्रातः भोजन के पूर्व रात्रि में भोजन पचने के बाद सोते समय फांककर ऊपर से ५ तोला काँजी पीनी चाहिए। लगातार एक महीना सेवन करने से रजः की प्रवृत्ति होती है, यदि आर्त्तव क्षय का कारण शल्य कर्म के योग्य न हो।

कष्टार्तव का प्रयोग--

अश्वगन्ध चूर्ण ४ तोला, घृत भाजित हल्दी चूर्ण ४ तोला, मुलैठी चूर्ण ४ तोला, पिप्पली चूर्ण १ तोला, पिप्पलीमूल चूर्ण १ तोला, चव्य १ तोला, चित्रक १ तोला, सोंठ १ तोला। सबको मिलाकर पत्थर के खरल में खूब मर्दन कर मिश्रण तैयार करलें। मात्रा--६ माशा। अनुपान—बछड़े वाली गाय का गरम दूध। प्रातः भोजन के पूर्व, रात्रि में सोते समय, भोजन पचने के बाद सेवन करना चाहिए। इसका सेवन प्रतिमास ऋतुकाल के १५ दिन पूर्व से प्रारम्भ कर ऋतुकाल के १६ वें दिन तक चालू रखना चाहिए। कष्टार्तव के कारण वंध्यत्त्व दोष आ गया हो तो वह भी इससे अच्छा हो जाता है।

—प्राणाचार्य हर्षुल मिश्र आयु० प्रवीण B. A.
रायपुर

कष्टार्तव पर अनुभव--

६ वर्ष पूर्व मेरी धर्म पत्नी को मासिक धर्म का विकार था। मासिक धर्म के दिनों में बहुत कष्ट के साथ रजःस्राव होता था। शिरःशूल, कमर में दर्द, पेड़ू में दर्द तथा बेचैनी बहुत रहती थी। मासिक स्राव अनियमित होता था। इस मासिक विकार से कभी-कभी नेत्रों में जलन, खुजली, दर्द आदि की भी शिकायत हो जाती थी। मैंने निम्न दो औषधियों का सेवन कराया जिससे पूर्ण लाभ हुआ।

औषधि नं० १ "फल घृत" १-१ तोला प्रातः सायं दूध से (मिश्री डालकर)। दूसरी औषधि "अशोकारिष्ट' १-१ तोला भोजन के बाद सम भाग जल मिलाकर।

'फलघृत' लगभग २० दिन खाया और "अशोकारिष्ट" २-३ मास पीती रही। ठंडी और बादी चीजों से परहेज करवाया।

—श्री गोवर्धनदास चागलानी
पटियाली दरवाजा, एटा।

प्रदर का अद्भुत इतिहास

आचार्य श्री दारोगा प्रसाद मिश्र

जैमनीय विश्वावसुतन्त्र में एक कथानक ऐसा है कि सम्राट विश्वावसु को जयजयवन्ती के साथ अगाध स्नेह होगया था। जयजयवन्ती मान्धाता की सौतेली बहन थी। वह परम सुन्दरी और सुकोमला भी थी। जयजयवन्ती के साथ विन्ध्य-पर्वत की उपत्यकाओं में चंक्रमण करने की प्रबल आकांक्षा विश्वावसु को उत्पन्न हुई। अरण्याटन करते हुए वे लोग उपत्यका की मनोरमा का परिदर्शन करते करते भाव विभोर, आत्म विभोर, और आनन्द विभोर, में मग्न होकर कामार्त हो गए। वासना की तृप्ति के लिए वे लोग रेवा के कूल पर वेतस की झाड़ीतर सोमलता के वितानों पर आपस में आत्मसात हो गए। सोमलता का परिज्ञान दम्पति को नहीं था। मैथुनासक्तता में जब रात बीत गई, दिन बीत गया और तृप्ति नहीं हुई तो उन्हें अशान्ति पैदा हुई। वे आलिङ्गन में रत रहे, पर सात रात व्यतीत होने पर भी जब तृप्ति नहीं हुई तो वे लोग आत्म निरीक्षण करने लगे। सम्राट को अवपाटिका, शिश्नाक्षत रोग होगया। जयजयवन्ती भयंकर रक्त स्राव से पीत बदना हो गई। उस दिन से जब भी दम्पति का प्रगाढ़ आश्लेष होता तो रक्त स्राव होने लगता था। वे दोनों जैमनी ऋषि से अपना निदान कराने गये। जैमिनी ने ज्ञानचक्षु के द्वारा दम्पति का पूर्ववृत्त कह सुनाया। वे लोग चकित हुए और रेवा के कूल पर मैथुन से सात रात तक तृप्ति नहीं होने का कारण जब वे पूछने लगे तो दिव्यद्रष्टा जैमिनी ने बतलाया कि सम्भव है कि तुमने सोमलता के वितान पर सोकर आलिङ्गन किया हो। यद्यपि सोमलता का प्रादुर्भाव पर्वतराज हिमालय के मानसरोवर का किनारा है, पर रेवा के कूल पर भी कहीं कहीं वह आगई है। सोमलता का स्पर्श करते रहने पर शुक्रपात, रजोपात हो जाने पर भी दम्पति को तृप्ति नहीं होती है। जैमिनी ने पुनः कहा कि जाओ उस वेतस की झाड़ी में, जहां तुमने सोकर आलिङ्गन किया था उस लता को उखाड़ लाओ जो तेरी कामशय्या का काम कर रही थी। विश्वावसु सोमलता को ले आया। जैमिनी उस लता के पत्र को काली गौ के दूध में पीसकर जयजयवन्ती को पान कराने लगे और रक्तस्राव बन्द होगया।

प्रश्न यह उठता है कि वह रक्तस्राव प्रदर रोग था या क्षतज रक्तस्राव था या वासनाजन्य पित्तजस्राव था या अधोग रक्तपित्त था? बात यह है कि रेवारोधस के प्रगाढ़ मैथुन के बाद से ही जब जब दम्पति का आलिङ्गन होता तो रक्तप्रवाह स्रवित होने लगता था। प्रदर का सम्बन्ध तो गर्भाशय से है। मैथुन में शिश्न का घर्षण तो योनि में होता है। योनि की केशिकाओं में क्षत होकर रक्त स्राव होने पर उसे प्रदर नहीं कहा जा सकता। प्रदर का रक्त डिम्बग्रन्थियों को अकाल में फटने से, या गर्भाशय-ग्रीवा में शिश्न प्रहार जन्य क्षत होने से, या उपदंश, पूयमेह के रोगी पुरुष का उष्ण शुक्र गर्भाशय में प्रविष्ट हो जाने से, (उपदंश पूयमेह के रोगी के शुक्र में रोग के कीड़े भरे रहते हैं यह आयुर्वेद भी कहता है) वे कीड़े गर्भाशय की दीवार को खाने लगते हैं जिससे गर्भाशय में क्षत होकर रक्त स्राव होने लगता है। अति मैथुन करने से वासना के कारण काम संवेदनी नाड़ी में अत्यधिक उत्तेजना होती है और डिम्ब का कोष फूटकर रक्त स्राव होजाता है।

पुनः प्रश्न यह उठता है कि डिम्ब के कोष के रक्त का स्राव होने पर या पूरे गर्भाशय की दीवारों में क्षत होकर रक्तस्राव होने पर उसे प्रदर कहेंगे? गर्भाशय की केशिकाओं में जो रक्त रहता है उसमें डिम्ब नहीं रहते हैं प्रत्युत् R. B. C., W. B. C. रहते हैं। डिम्बकोष के ही रक्त में डिम्ब रहते हैं जिसकी रज संज्ञा है। तो रजस्राव को प्रदर कहेंगे या रक्तस्राव को प्रदर कहेंगे? आचार्यों

ने, तन्त्र विशारदों ने प्रदर को रक्तप्रदर, श्वेत-प्रदर, नीलप्रदर, श्यावप्रदर, पीतप्रदर के भेद से "पञ्चैते प्रदराः प्रोक्ताः जतुकर्णपराशराः" के रूप में निर्दिष्ट किया है। आत्रेय ने भी अग्निवेश संहिता में "चतुर्विधं व्यासतस्तु वाताद्यैः सन्निपातजः" बताया है। बहुधा गौराङ्ग शरीर की परमसौन्दर्य-मयी रमणी को प्रदर हुआ करता है। वात और पित्त के कारण अफ्रीकावासियों का रूप काला होता है। पित्त और कफ के कारण चीनी, रूसी, तिब्बती लोग पीले होते हैं। कफ और थोड़ी वात के कारण भारतीय लोग श्याम होते हैं। कफ प्रकृति के कारण अमरीकन गोरे होते हैं। अशुद्ध वात के कारण श्याव मिश्रित लाल रंग का रक्त प्रदर में आता है। कभी कभी पलाश के फूल के रस के समान पीला भी प्रदर वात के कारण ही से होता है। यह अशुद्ध वात कार्बन डाई-औक्साइड है, शुद्ध वात को औक्सीजन माना जाय। पित्त के कारण जो प्रदर होता है वह नील, पीत एवं कृष्ण रंग का अत्यन्त उष्ण रजःस्राव होता है। कफ के कारण जो प्रदर होता है वह वस्तुतः श्वेत प्रदर ही है।

अग्निवेश ने बताया है कि कफज प्रदर में 'पिच्छिलं पाण्डुवर्णञ्च गुरु स्निग्धंचशीतलम्, स्रवत्यसृक् श्लेष्मलञ्च तथा मन्दरुजाकरम्।" पाण्डु शब्द की व्याख्या में बताया गया है कि पाण्डुरंग उसे कहते हैं जो मूलतः श्वेत हो और उसमें रक्तता की आभा भी आवे। (श्वेत रक्तस्तु पाण्डुरः) श्वेत प्रदर वह प्रदर रोग है जिसमें रज या रक्त का स्राव होता है अतः वह लसीका मात्र का स्राव नहीं होसकता। अग्निवेश ने प्रदर में रज क या रक्त का स्राव होता है इस झमेले को सुस्पष्ट कर दिया है। "रक्तं स्वप्रमाणमुत्क्रम्य गर्भाशयगताः रजोवहा सिराः समाश्रित्य तद् रक्तमादाय यस्मात् कारणात् रजः आशु विवर्धयति रक्तपित्तं समारुतं तस्माद् तन्त्रविशारदाः असृग्दरं एतत् प्राहुः।" पुनः और भी स्पष्ट किया है कि "रजः प्रदीर्यते यस्मात्प्रदरस्तेन सस्मृतः"। अब यह स्पष्ट रूप से निश्चित हुआ कि प्रदर रोग में रजोवहा सिरा का रक्त गिरता है। गर्भाशय में रजोवहा सिरा डिम्बकोष से गर्भाशय में आती है। उस सिरा में मात्राधिक्य रक्त डिम्बकोष से आता है जिसके दबाव को वह सिरा सहन नहीं कर पाती और फटजाती है। शरीर में रक्ताधिक्य होने पर ही डिम्बकोष में रक्त प्रमाण उत्क्रम्य की स्थिति आसकती है। जो सुन्दरी लाल मिर्च, आम की इमली की खटाई, लहशुन, ज्यादा चटपटी चीजें, ज्यादा तेल और नमकीन चीजें खाती हैं, मांस खाने के बाद मद्य-पान करके मैथुन में अधिक देर तक प्रवृत्त रहती हैं, चटनी-अचार का प्रयोग अधिक करती हैं, खिचड़ी-खीर-हलवा, दही, मछली ज्यादा खाती हैं उन्हें प्रदर नामक रोग हो जाता है। इन कारणों में चटनी-खटाई आदि पित्त वर्द्धक हैं पित्त बढ़ने से रक्त बढ़ता है। साथ साथ खून में गर्मी भी बढ़ती है। नमकीन, तेलीय चीजें तथा अधिक मैथुन, मद्य-मांस आदि से वात-पित्त दोनों बढ़ते हैं। हलवा पायस मछली आदि कफ-पित्त बढ़ाते हैं। सेठों के घर में प्रायः करके हलवा-पूआ पायस खाने वाली राजस्थानी कामिनियों को कफज प्रदर ही होता है। विहार में बहुधा पित्तज प्रदर होता है चूंकि यहां का खान पान ही पित्त-बर्धक है। शरीर से श्रम करने वाली नारियों को प्रदर बहुधा वातज ही होते हैं।

आज के युग में पूयमेह नामक रोग स्त्रियों में हो जाता है उसे ही श्वेत प्रदर के नाम से पुकारा जाता है। श्वेत स्राव की यदि परीक्षा की जाय तो इनमें गोनोकौकस की प्राप्ति अवश्य होती है। आज की, वासना से बराबर आक्रान्त रहने वाली नारियों को यदि दुर्बल पति हो, सम्भोग से तृप्ति नहीं हो, चाहे पति परदेश में हो और वासना से व्याकुलता हो, चाहे अति सम्भोग होता रहता हो, चाहे सुजाक हो गया हो तो उस कामिनी को श्वेत स्राव होने लगता है। इसमें कमर में वेदना, मैथुन की प्रबल इच्छा, योनि में कण्डु, योनि में

पिड़िकायें, योनि के बाहर भगालिन्द में पाक और जांघ में भारीपन होता है। इसे चुपचाप पूयमेह समझ कर या लसीकामेह समझ कर चिकित्सा करें। लसीकामेह होने पर स्राव अधिक होता है और उसमें मीठी गन्ध आती है। पूयमेह में सड़ाइन गन्ध आती है।

प्रदर पर एक आधुनिक कहानी

रूस के डाक्टर इलोनोबीच की पहली पत्नी का देहावसान हो गया था। उससे एक पुत्री और एक पुत्र था। वह ओलगा नदी के तट पर एकान्त में एक प्रयोगशाला बनाकर उसी में राजकीय साहाय्य के द्वारा अनुशीलन,अनुसन्धान करता रहता था। एक दिन उसके पास हिमिनोवखिया नाम की अतीव सुन्दरी नारी भेंट करने पहुंची। इस नारी को प्रदर रोग सताये हुए था। वह बड़ी सुन्दरी थी। द्वाविंशतीवर्षीया, उन्नत उरोजस्का मृगाक्षी, कृशाङ्गी थी वह सौन्दर्यमयी प्रतिमा। इलोनोबीच देखते ही सचल उठा और आलिङ्गन का प्रस्ताव रख दिया। हिमिनोवखिया ने कहा कि मैंने प्रतिज्ञा की है कि जो डाक्टर मेरे प्रदर रोग को समाप्त करके मेरे शरीर में पूर्ण सौन्दर्य और पूर्ववत् उत्साह उत्पन्न करेगा उसी को मैं अपना बाईस वर्षों का सञ्चित यौवन एवं ६ वर्ष का उन्नत उरोज समर्पण करके ओलगा की तरह प्रेम-प्रवाह में प्रवाहित हूंगी। डाक्टर इलोनोबीच ने प्रतिज्ञा की और इण्डियन मैडीसिन का अध्ययन करना प्रारम्भ किया। वह अपने एक शिष्य को लेकर ओलगा से गंगा की ओर बढ़ा। गंगावतरण जहां से हुआ है वहीं पर किसी पर्वत खण्ड के अन्दर सोमलता की प्राप्ति की कहानी उन्होंने पढ़ी थी। वे मानसरोवर होते हुए गंगोत्री पहुँचे पर सोमलता की पहचान नहीं हो सकी। उनका शिष्य भय के मारे एवं श्रम के मारे आक्लान्त होकर उनका साथ छोड़कर भाग जाना चाहता था, पर डाक्टर इलोनोबीच ने पिस्तौल से अपने शिष्य को मार डालने की धमकी दी और शिष्य ने साथ नहीं छोड़ने की प्रतिज्ञा की। एक स्थान पर डाक्टर को उस वर्णन का वातावरण प्राप्त हुआ और डाक्टर ने वहां पर एक मास के वास्ते डेरा डाल दिया। शुक्लपक्ष की चन्द्रमा की वृद्धि के साथ साथ एक लता में एक एक पत्ते निकलने लगे और कृष्णपक्ष के आने पर वे पत्ते एक एक करके प्रतिदिन रात में झरने लगे। डाक्टर इलोनोबीच उछल पड़ा। उसके वर्षों का प्रयास सफल हुआ। वह उस लता को (सोमलता) लेकर ओलगा के किनारे प्रयोगशाला में जाकर उसके पत्ते के रस को कृत्रिम आमाशय में डालकर हाइड्रोक्लोरिक एसिड, रेनेट, पेप्सिन से पचाने लगा। कृत्रिम ग्रहणी में कृत्रिम अग्न्याशय और कृत्रिम यकृत् से पित्त गिराकर रस को पूरा पचाया। क्षुद्रान्त्र में पुनः पचाकर कृत्रिम प्रतिहारिणी सिरा के द्वारा यकृत् में लेजाकर पशुओं के हिमोग्लोबिन से उसे रक्त बनाकर शरीर में धमनी के द्वारा भ्रमण कराया। उस डाक्टर ने उस कृत्रिम शरीर में गर्भाशय में डिम्ब ग्रन्थि भी बनायी थी। उससे रजःस्राव कराकर प्रदर रोग भी उसने दिखाया था। रक्तसम्वहन के द्वारा उसने सोमलता के रक्त रूप में परिणत रस को जब गर्भाशय में पहुंचाया तो रस जो गिर रहा था वह सोमलता के रस के प्रभाव से अवरुद्ध हो गया। डाक्टर समझ गया कि मेरी प्रेयसी के परमशत्र प्रदर रोग का नाश अवश्य होगा। उस डाक्टर ने सोमरस के दूसरे प्रभाव को आजमाने के वास्ते उसके रस को पूर्णमासी की रात में अपने शरीर में अपने शिष्य के द्वारा सूचीवेध कराया। सूचीवेध होते ही उस डाक्टर का रूप विकराल हो गया और उसने उछल कर अपने शिष्य को ही मारना चाहा, पर वह बच गया और डाक्टर भाग निकला एवं गांव में जाकर बाहर सोये हुए दो पुरुषों की गर्दन दबोच दिया। इस तरह एक दिन अपने बच्चे को, दूसरे दिन अपनी बच्ची को मार दिया। गांव में भी २०-२२ पुरुष स्त्री रात में मार दिये। सरकार

ने खुफिया से पता लगवाया। डाक्टर पकड़ा गया और उसे फांसी हो गई। उसका शिष्य भाग गया और डाक्टर की प्रेमिका उसके शिष्य के साथ प्रेम करने लगी। शिष्य ने उस स्त्री को सोमलता को कुचल कर पिला दिया। स्त्री अच्छी हो गयी, पर सोमलता दुष्प्राप्य ही रही। यह जारशाही के समय की कहानी है। वह डाक्टर मंगोल था। मंगोलिया में आज भी अनेकों भारतीय ग्रंथ पड़े हैं जिनका शोध होने से अनेकों औषधियों का ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

प्रदर की नई चिकित्सा—

(१) काली गाय के दूध में बबूर के गोंद को पीसकर तार की मिसरी देकर आधा आध पाव की मात्रा में पिलाने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

(२) बट वृक्ष की जड़ को एक सिरे से काट कर उस सिरे के मुंह में साफ बोतल लगादें। बोतल १५ दिनों के बाद बट रस से भर जायगी। उस रस में मधु देकर ६-६ घण्टे पर ४ बार २-२ तोला प्रदरी को दें तो बड़ा लाभ हो।

(३) गुड़मार १ सेर, गुलाब के फूल १ सेर, लिम्ब की ताड़ी एक घड़ा या ताड़ की ताड़ी एक घड़ा। ताड़ी ताजी हो उसमें तार के गुड़ १। सेर डालकर गुड़मार गुलाब को डालकर मुंह बन्द करके छोड़ दें। १५ दिनों के बाद बबूर के पत्ते, बेर के पत्ते और धाय के पत्ते पाव-पाव भर डालकर पुनः १५ दिन सन्धान करें। एक मास के बाद छानकर बोतल में भर लें। भोजन के बाद २।।-२।। तोले दें तो प्रदर का जो भी रूप हो सब नष्ट हो जाय। मैंने इसका नाम ललितासव रक्खा है।

(४) गूलर १ सेर, पका केला १ सेर, लाल चन्दन का काढ़ा एक घड़ा लेकर मिलाकर ऊपर से नागकेशर, बबूर का गोंद, पुराना गुड़ मिलाकर मुख बन्द करके महीने के बाद छानें और २।।-२।। तोले ४ बार प्रदरी को पिलावें। बड़ा लाभ करेगा। गुड़ १। सेर और नागकेशर एवं गोंद को १-१ छटांक दें। इसका नाम मैंने उदुम्बरासव रक्खा है।

(५) बबूर के गोंद पाव भर, तालमिसरी ३ पाव लेकर मिसरी की चासनी बनाकर गोंद का चूर्ण डाल दें। ऊपर से छोटी इलायची का चूर्ण २।। भर दे दें। ठंडा होने पर मधु देकर लेह बनाकर रख लें। २-२ तोला ४ बार दें। बड़ा लाभ करता है।

(६) कर्पूर रस ग्रहणी रोगाधिकार को लोध्र के चूर्ण दो आने भर के साथ १-१ गोली की मात्रा में ६-६ घण्टे पर तीन बार देने से रक्त प्रदर नष्ट होता है। श्वेत प्रदर में कर्पूर रस को लाल फिटकिरी के चूर्ण दो आना भर से दें तो बड़ा लाभ होता है।

(७) श्वेत प्रदर में पञ्चतिक्त के क्वाथ में कत्था फिटकिरी का चूर्ण देकर छानकर उत्तर बस्ति दें। रक्त प्रदर में दूध में दूर्वा का रस, ओड़हुल का रस, विशल्य कर्णी का रस देकर वस्ति दें दे तो बड़ा लाभ होता है। कुकरौंधा का रस ओटी पर रूई में भिगोकर रक्खें।

—आचार्य श्री दारोगाप्रसाद मिश्र,
प्राचार्य आयुर्वेद कालेज मोतीहारी।

प्रदर रोग और उसकी चिकित्सा

आचार्य श्री हरदयाल जी वैद्य

प्रदररोग भी प्रसरणशीलता में किसी रोग से पीछे नहीं। सम्प्रति प्रदर रोग ने अपने सम्प्रसारण में पर्याप्त उन्नति की है।

अनेक रोगों की नाम भीति पीडितों को उसके विनाश के लिए तत्परता से तैयार होने के लिए विवश करती है। कई रोग अपनी तीव्रता और

भयंकरता से रोगी को तत्काल चिकित्सा के लिए प्रोत्साहित करते हैं। परन्तु प्रदर एक ऐसी व्याधि है जिसकी भीति और भयंकरता एवं अवांछनीय परिणाम उत्पन्न करने की शक्ति अपेक्षाकृत अधिक मानी जा सकती है। फिर भी विस्मयोत्पादक रहस्य यह है कि प्रदररोग की रुग्णाएँ केवल लज्जावश इसके प्रहारों को सहन करती हुई अविकसित कलिका की भांति अकाल में ही कालकवलित हो रही हैं। अनेक देवियां महिनों क्या वर्षों तक अपने रोग का परिचय सम्बन्धियों को तो क्या अपने पतिदेव को भी नहीं देतीं। रोग भयंकर है। यह छुपा तो रहता नहीं। रुग्णा की यथाशक्य सहन शक्ति की समाप्ति पर रुग्णा के शरीर पर इसके अनुचर लक्षणों के रूप में व्यक्त होने आरम्भ हो जाते हैं। तब कहीं जाकर पतिदेव, सगे सम्बन्धी और चिकित्सकों को यह पता चलता है कि इतने वर्षों से रुग्णा प्रदर से पीड़ित है।

प्रदर रोग, श्वेत, पीत, कृष्ण और रक्त भेद से चार प्रकार का माना जाता है। अब हम क्रमशः इस रोग की संक्षिप्त उत्पत्ति और लक्षणात्मक चिकित्सा क्रम पर विचार करेंगे।

१. श्वेत प्रदर, Leucorrhoea, सैलानरहम, श्वेतस्राव।

मुख्य परिचायक लक्षण—इस व्याधि में स्त्री की योनि से सर्वदा अथवा कभी-कभी सफेद पिच्छिल श्वेतपीताभ जल स्रवित होता रहता है। दोषानुबन्ध और नव पुराण भेद से श्वेत स्राव में अन्य लक्षणों की व्याप्ति भी उपस्थित रहती है। इस श्वेत प्रदर की पांच अवस्थाएं मानी जाती हैं।

अन्य लक्षण—साधारणतया इस रोग की रुग्णा को बाह्य भगोष्ठ के ऊपर और भीतर साधारण कण्डू हुआ करती है और इससे श्वेतस्राव होता है। कटिशूल, पेडू के भाग पर गुरुत्व बोध, बार बार मूत्र परित्याग की आशंका बनी रहती है। सुस्ती, बेचैनी और घबराहट बनी रहती है। साधारण कार्य कलापों में उदासीनता और सार्वदैहिक अस्वास्थ्य सर्वदा ही उपस्थित रहते हैं। ऋतुस्राव कष्ट से होता है। स्रवित शोणित की मात्रा में घटाबढ़ी रहती ही है। रोग की विद्यमानता में प्रायः गर्भ स्थिति की संभावना कम ही रहती है। गर्भावस्था में भी कभी-कभी यह रोग उत्पन्न हो जाता है। ऐसी स्थिति में गर्भिणी को योनिकंडू से अधिक कष्ट होता है। जल स्राव भी अधिक होने से कटिशूल और सुस्ती में वृद्धि होती है। प्रायः प्रदर रोगोक्त लक्षणों की उपस्थिति भी रहती है। यथा—

> 'असृग्दरं भवेत् सर्वं साङ्गमर्दं सवेदनम्।
> तस्यातिवृत्तौ दौर्बल्यं भ्रमो मूर्च्छा मदस्तृषा॥
> दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तन्द्रा रोगाश्चवातजाः।

श्वेतप्रदर की उपर्युक्त पांच अवस्थाएं इस प्रकार मानी जाती हैं—

(१) इस कोटि में वह युवतियां आती हैं जिनकी योनि रचना श्लेष्मप्रधान हुई है। कभी कभी यह दशा बाल्यकाल से ही आरम्भ होती है। कभी-कभी बाल्यकाल में निरन्तर कफज व्याधियां अजीर्ण, पांडु आदि से रोगाक्रान्त रहने के कारण भी उपस्थित हो जाती हैं।

यौवनारम्भ अथवा यौवन के एक दो चरण ऊपर चढ़ने और विवाहोपरान्त जब जननेन्द्रिय की वृद्धि विकसितावस्था पर हो, भगोष्ठ के अधःस्तर की श्लेष्मिक कला से स्राव में वृद्धि हो जाती है। फलतः योनि से पिच्छिल (लेसदार) श्वेताभ चमकदार तरल स्राव होता है। इससे भगोष्ठ परस्पर चिपक जाया करते हैं। कभी स्राव भगोष्ठ के बाह्य भाग पर चिपक कर जम जाता है।

(२) इस कोटि में प्रायः नववधुएं आती हैं। प्रथमावस्था की कन्याएं जब वधुएं बनती हैं तब उनकी योनि में विकृति तो प्रथम विद्यमान होती ही है इधर पति साहचर्य से कामुक परिस्थिति में संघर्षणादि सन्निकृष्ट कारणों से योनि में शोथ

और कंडू दोनों व्यक्त रूप में अनुभव होने लगते हैं। रुग्णा इस दशा को लज्जावश व्यक्त करने की अपेक्षा गुप्त रखने में अधिक श्रेय अनुभव करती है। श्वेताभ अम्लगन्ध स्राव निरन्तर चलता रहता है।

इसी दशा से कभी-कभी कैंसर का आरम्भ हो जाता है। प्रकृति की अभिरुचि कैंसरोत्पादनाभिमुख हो तब योनि मुख से श्वेत तरल जल सदृश पतला और किंचित् रक्ताभता लिए हुए स्राव होता है। रक्ताभता का कारण कंडूयमानावस्था अथवा नख प्रपात तथा संघर्षोद्भव क्षत हुआ करते हैं।

(३) इस कोटि के श्वेत प्रदर में उन स्त्रियों की गणना है जिन्हें २-४ सन्तानें प्रसव करने का समय प्राप्त हो चुका हो। ऐसी रुग्णाओं की योनि से अण्डे की सफेदी जैसा क्षारीय तथा क्षारगन्धयुक्त तरल स्रवित होता है। इसमें भी रक्त रंजितता एवं कीटाणुओं के कारण वर्ण भेद हो सकता है। सुजाक और फिरङ्ग के परिणामस्वरूप भी यह स्थिति उत्पन्न हो सकती है। अथवा रोग के अति पुराण होने से योनिस्थ शोथ का सम्प्रसारण गर्भाशय तक हो जाता है। इस दशा को चिन्ता स्थल जानना चाहिए। इसके द्वारा गर्भाशय सम्बन्धी अन्य जटिल रोगों की उत्पत्ति हो सकती है। गर्भाशय में शोथ, अर्बुद, व्रण, विद्रधि आदि की सम्भावना भी हो सकती है।

(४) अधिकतर इस श्रेणी का श्वेतप्रदर उन वृद्धाओं को होता है जिनका मासिक स्राव समाप्त होने के समीप हो अथवा समाप्त हुए अधिक समय न बीता हो। इस दशा में प्रस्रवित तरल अण्डीय श्वेतता से युक्त होता है परन्तु इसमें लेस या पिच्छिलपन नहीं होता। यदि रोग पुराना हो तब स्राव का वर्ण बादामत्वक् के सदृश अथवा पीतता लिए होता है। यह दशा अधिक चिन्त्य नहीं, स्वाभाविक ही जाननी चाहिये।

(५) इस श्रेणी में अंकित होना इस तथ्य का पुष्ट प्रमाण है कि स्त्री पुरुष दोनों या एक धर्म भीरुता से मुख मोड़े हुए हैं। चिरकालीन उष्णवात और फिरङ्ग के प्रभाव से जननेन्द्रियों का बहिः भाग तो दूषित होता ही है इस अवस्था में गर्भाशय और उसके संलग्न अवयवों पर भी रोग प्रभाव व्याप्त होजाता है।

ऐसी दशा में श्वेत, पीत, रक्त, कृष्ण, दुर्गन्धित, पूय भी श्रित सरक्त अनेक वर्ण और लक्षणों वाला स्राव सर्वदा होता ही रहता है एवं साधारण श्वेत प्रदर की चिकित्सा से इस दशा से छुटकारा भी नहीं होता। इससे छुटकारा पाने के लिये तो मूल रोग के मूलोच्छेद से ही सफलता मिल सकेगी।

श्वेत प्रदर की चिकित्सा—रोग के लक्षण भेद से चिकित्सा क्रम का वर्णन साथ साथ लिखना ठीक रहेगा। इससे पाठक सुविधा अनुभव करेंगे।

श्वेत प्रदर के प्रथम प्रकार में—यह कष्ट भग के बाह्य (जो बाह्यत्वक से भीतर के अंतराल तक चक्षुओं द्वारा देखा जा सकता है) भाग का है। साधारण श्रेणी का है इसमें अधिक चिंता और घबराहट के लिए कोई स्थान नहीं। इसकी विशेष चिकित्सा प्रक्षालन कर्म के द्वारा की जाती है—

प्रक्षालनार्थ—(१) खदिर छाल का वस्त्रपूत चूर्ण १ तोला १० तोला गरम जल में डाल कर आध घंटा रखने के बाद छान लें। पुनः इसमें २ रत्ती हरित कासीस पीस कर मिलादें। इस तरल में शुद्ध वस्त्रखण्ड को भिगोकर योनिभाग को भीतर और बाहर से धोना चाहिए। इससे श्वेत स्राव कण्डू और योनि शोथ दूर होते हैं।

(२) एवंविध त्रिफला क्वाथ से प्रक्षालन करना भी हित कर होता है।

(३) क्षीरीवृक्षों के त्वक अथवा पत्रों के क्वाथ से भी प्रक्षालन कर्म लाभदायक है।

(४) अनार का छिलका, माजू, कीकर की छाल इनके क्वाथ से विशेष लाभ होता है।

(५) लाल फिटकरी का चूर्ण ६ माशा, स्वच्छ जल ५ तोला। इस घोल में विशुद्ध रुई भिगोकर प्रक्षालन करें और एक पिचु इसी घोल से प्लुत करके रात्रि को सोते समय योनि के भीतर रख लें और प्रातः इसे निकाल दिया जाए। इस प्रकार ३-४ दिन के प्रयोग से तुरन्त लाभ होता है। स्थाई लाभ के लिए किसी भी प्रयोग को निरन्तर एक मास प्रयोग करना होता है।

सेवनार्थ—चन्द्रप्रभावटी अथवा आरोग्यवर्धिनी वटी का प्रातः सायं जल से प्रयोग करना चाहिए। एवंविध १ मास के प्रयोग से साधारण श्वेत प्रदर नष्ट होजाता है। विवाहितावस्था में औषधि सेवन काल में अष्टविध मैथुन से कडा परहेज होना चाहिए।

२ य प्रकार में—अधिक सचेत रहने की आवश्यता है कारण कि व्याधि का पूर्व रूप अथवा साधारण व्यक्त रूप पूर्व से ही अनुबन्धित रहता है। इस दशा में वैवाहिक जीवन की आरम्भिक दशा में इस रोग का स्वाभाविक ही वृद्धि पथ पर आना सम्भावित होता है।

इस अवस्था में भी योनि की स्वच्छता पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। प्रक्षालनार्थ उपयुक्त किसी भी योग का आश्रय लिया जा सकता है।

शोथ और कण्डू की अधिकता में यह प्रयोग करें—

त्रिफला चूर्ण ३ तोला, हरिद्रा चूर्ण १ तोला, लोहभस्म ३ माशा। सबको स्वच्छ पत्थर के खरल में डालकर जल से मर्दन करें। सूक्ष्म लेहवत् होने पर स्वच्छ वस्त्र खण्ड पर विस्तीर्ण करके योनि के भीतर पिचु धारण करायें। इससे इच्छित लाभ तुरन्त ही होगा। असह्य कण्डु के कारण से उत्पन्न व्याकुलता इसके प्रयोग से दूर होती है शोथ भी शीघ्र उतर जाता है।

सेवनार्थ—रक्तरोहितक वृक्ष की स्वच्छ और शुष्क छाल को पीसकर चूर्ण करलें। मात्रा—१ से ३ माशा। अनुपानार्थ—शुद्ध मधु ६ माशा। यदि स्राव का वर्ण पीतप्रभ हो एवं पित्त के लक्षणों की भी उपस्थिति हो तब औषधि चाटने के पश्चात् तण्डुलोदक अथवा चौलाई मूल या पत्रों को जल से पीसकर ५ तोला भर जल ऊपर पीना चाहिए। इससे इस एक ही योग से पर्याप्त लाभ होता है। अथवा—श्वेत प्रदरांतक—का प्रयोग करें। योग यह है—

बंगभस्म, यशद भस्म, कासीस भस्म, अभ्रक भस्म १-१ तोला, मनःशिला मारित नाग भस्म ६ माशा, गुडूचीसत्व, कचूर चूर्ण, राल चूर्ण, समुद्र फाग चूर्ण प्रत्येक २-२ तोला। सबको मिला कर सूक्ष्म पीस कर रखलें।

मात्रा—२-४ रत्ती प्रातःसायं, अनुपान-मधु, शीतल जल, माखन, गो दूध। लाभ-योनि कण्डू, शोथ और तज्जन्य स्राव शीघ्र दूर होता है। पुरातन श्वेत प्रदर के लिए अधिक लाभप्रद है।

श्वेत प्रदर की तृतीयावस्था—वस्तुतः श्वेतप्रदर की चिरसंगिनी और शांत होकर पुनः २ उत्पन्न होने वाली यही अवस्था है। बार २ एक ही परिणाम देखते रहने से ही इसके प्रति यह धारणा बद्धमूला हो रही है कि यह रोग नहीं प्रत्युत अवयव का धर्म है। वस्तुतः इस धारणा में सत्यांश ओतप्रोत है। रोग तो दूर हो सकता है। धर्म कैसे दूर हो? रुग्णाओं की तथा चिकित्सक वृन्द की इस धारणा की मूल भित्ति है बार बार की असफलता। चिकित्सक और चिकित्सिता दोनों यह समझते हैं कि दवाई खाई और रोग से वेडापार। परन्तु ऐसा सर्वत्र नहीं होता! प्रायः जहां संयम का सम्बन्ध है वहां केवल औषधि मात्र से पूर्ण कल्याण कैसे घटित हो। इन्द्रिय संयम पूर्वक औषधि सेवन करने से ही इस रोग में लाभ होता है। लाभ की स्थिरता भी संयम पर अवलम्बित होती है।

स्त्री की दशा तो और भी दयनीय होती है। तृतीयावस्था की रुग्णाओं में तो श्वेत प्रदर की

स्थिरता सीधे पुरुषों से सम्बन्ध रखती है। मैथुन की अतिशय अधिकता के कारण ही यह रोग स्थायी और पुराना होकर जीवित ही गृहणी को यमयातनाओं से साक्षात्कार कराता है।

नियमानुसार गर्भस्थिति होने के पश्चात् ४ वर्ष पर्यंत ब्रह्मचर्य पूर्वक रहने से यह रोग होता ही नहीं। गर्भस्थिति से प्रसूतकाल तक तो सहवास भयङ्कर हानिकारक होता है। प्रसूता के पश्चात् तीन वर्ष स्त्री के शरीर को सक्षम और सबल होने के लिए नियमतः अपेक्षित हुआ करते हैं। इस प्रकार यदि प्राचीन प्रथा के अनुसार गृहस्थ धर्म का उपयोग हो तब स्त्री पुरुष दोनों ही आरोग्य सुख का वास्तविक उपयोग कर आनन्द विभोर हो सकते हैं और सरकार भी सन्तति विरोध के नाम पर लाखों रुपया खर्च न करके व्यभिचार वृद्धि के अभिशाप से मुक्त हो सकती है।

निःसंदेह इस अवस्था की चिकित्सा कठिन एवं श्रम और संयम साध्य हुआ करती है। रुग्णा के कायिक यन्त्र प्रायः सभी दुर्बल हुआ करते हैं कारण कि बार बार गर्भधारण, दैनिक मैथुन, गर्भावस्था तथा प्रसवोत्तर खान पानादि में असंयमित रहने से स्त्री शरीर अतिशय दुर्बल और क्षीण हो जाता है। ऐसी दशा में औषधि भी अपना पूर्ण और शीघ्र प्रभाव नहीं करती। यही कारण है कि इस रोग में लाभ की आशा निराशा में परिणत होती रहती है।

ऐसी अवस्था में विशेषतया रुग्णा की भोजन-मात्रा और उसके पाचन पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होती है। यदि रुग्णा अल्पाहार करने पर भी उसे पचा नहीं सकती तो ऐसी दशा में श्वेत प्रदर की चिकित्सा के स्थान पर उसकी पाचन क्रिया को सबल बनाना पहला कर्त्तव्य होना चाहिए।

इस दीर्घकालानुबन्ध से क्षीणकाय रुग्णा में प्रायः दो प्रकार के लक्षण उपस्थित रहते हैं। प्रथमतः श्वेत प्रदर की रुग्णाओं को प्रायः कोष्ठबद्धता रहती है। वायु की गति अनुलोम न होकर प्रतिलोम रहती है। उदावर्त, उद्गार बाहुल्य, उदर में मन्द मन्द पीड़ा, आटोप, आध्मान, कटिशूल, शिरोभ्रम, शिरःशूल, हृदय स्पन्दनों की अधिकता, निद्राल्पता वा निद्रानाश आदि लक्षण होते हैं। द्वितीयतः—कोष्ठभेद (दिन में २-४ बार शौच जाना) मुख के स्वाद का तिक्त सा होना, पीतवर्णता, निस्तेजता, तृषा, बेचैनी, अरुचि, रक्ताल्पता आदि लक्षण भी पाए जाते हैं।

श्वेत प्रदर की चिकित्सा में प्रायः रूक्ष और स्तम्भक औषधियाँ प्रयुक्त होती हैं। अतः कोष्ठबद्धतावस्था में ऐसी औषधों से मलरोध तीव्र होजाता है। कोष्ठभेदावस्था में ऐसी अड़चन उपस्थित नहीं होती। पूर्वापेक्षा यह दशा सुखसाध्य है।

कोष्ठबद्धता की अवस्था में—आरोग्यवर्द्धिनी वटी २ रत्ती, त्रिफला चूर्ण ३ माशा, नृक्षार ४ रत्ती ऐसी ३-४ मात्रा दिन में गरम जल से देनी चाहिए।

योनि प्रक्षालनार्थ उपर्युक्त किसी भी प्रक्षालन योग को नित्य व्यवहार में लाना चाहिए। दिन में एक दो बार प्रक्षालन कार्य अवश्य करना चाहिए।

आरोग्यवर्द्धिनी का सेवन कुछ काल तक निरंतर करना ठीक रहता है। आवश्यकतानुसार बीच बीच में शङ्खवटी, चित्रकादि वटी, द्राक्षासव, दशमूलारिष्ट, अश्वगन्धारिष्ट—इनमें से किसी एक वा दो का प्रयोग भी होना चाहिए। ये भी मन्दाग्निनाशक, बलवर्द्धक और रक्तोत्पादक हैं। लगभग एक मास ऐसी चिकित्सा के पश्चात् श्वेत प्रदर की रुग्णा में एक चमत्कार सा हो जाता है। दिन प्रति दिन उसका गिरता हुआ स्वास्थ्य वृद्धि पथ पर अग्रसर हो जाता है। उसमें उत्साह, स्फूर्ति का उदय होता है। चिड़चिड़ापन भाग जाता है। अब वह अपने आपको पूर्वापेक्षा अधिक स्वस्थ और सबल अनुभव करती है।

इस दशा में श्वेत प्रदर को नष्ट करने वाली कोई भी औषधि दी जाए वही इच्छित लाभ करती है। ऐसी दशा में निम्न लिखित योगों का हम सर्वदा व्यवहार करते हैं—

(१) लक्ष्मीविलास रस (नारदीय) ३ रत्ती। पान के पत्ते के रस और मधु से दिन में २-३ बार देने से प्रदर में तो लाभ होता ही है रुग्णा की मानसिक और शारीरिक अवस्था भी सुधर जाती है।

(२) प्रदरांतक रस (रसेन्द्रसारोक्त) दो रत्ती की मात्रा से। मधु से चाटना।

(३) पुष्यानुग चूर्ण (भै० र०) समस्त प्रदर एवं योनि रोगों से मुक्ति दिलाने वाली यह महौषधि चिकित्सक को कभी न भूलनी चाहिए। मात्रा–२-४ माशा। अनुपान—मधु मिश्रित तण्डुलोदक। समय—प्रातः सायं।

(४) प्रदरांतक चूर्ण (रसतन्त्रसारोक्त)। मात्रा–३-६ माशा। अनुपान—समधुतण्डुलोदक।

(५) प्रदररिपु रस, प्रदरारि रस, सोमनाथ रस आदि भी पर्याप्त लाभकर हैं।

इसकी द्वितीयावस्था की चिकित्सा जिसमें कोष्ठभेद साथ रहता है—

नोट—इसकी चिकित्सा में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यह पित्त प्रधान व्याधि है एवं पित्त प्रकृति वाली स्त्रियां ही इससे अधिक ग्रसित होती हैं।

(६) स्वर्णवसंत मालती १ रत्ती, गुडूचीसत्व ४ रत्ती। ऐसी दो मात्रा प्रातः सायं दूर्वारस, मीठे अनार का रस, तण्डुलोदक पिष्ट चौलाई की जड़ के द्रव से अथवा कुशामूल के जल से सेवन कराने से सत्वर लाभ होता है। श्वेत प्रदर की चिरकालीनावस्था में चिकित्सक बन्धु २-३ सप्ताह इसका प्रयोग अवश्य कराया करें।

(७) विशेष योग—श्वेत जीरक चूर्ण १ तोला, विजयसार निर्यास (दम्मल अखवायन) २ तोला, समुद्रशोष १ तोला, समुद्र झाग १ तोला, सोना गेरू १ तोला, सर्जरस चूर्ण २ तोला, प्रवालपिष्टी १ तोला, कतीरा गोंद १ तोला, गोंद कीकर १ तोला, कपूरकचरी १ तोला, छिलका ईसबगोल १ तोला, कुक्कुटाण्डत्वक १ तोला, अभ्रकभस्म १०० पुटी २ तोला, मिश्री १० तोला। सबको कूट पीस कर वस्त्रपूत करके रखलें।

मात्रा—१ से ३ माशा। अनुपान—शृतशीत गो दुग्ध अथवा शीतल जल।

इस योग के प्रभाव से सैकड़ों श्वेत प्रदर की रुग्णायें अपने अगले जीवन को सानन्द व्यतीत कर रही हैं।

यह भी स्मरणीय है कि यदि स्राव गर्भाशयानुबंधी हो तब 'न्यग्रोधादि क्वाथ' (शार्ङ्गधरोक्त) से डूश द्वारा गर्भाशय का प्रक्षालन अनिवार्यरीत्या व्यवहार में लाना चाहिए।

(४) चतुर्थश्रेणी की अवस्था का श्वेतप्रदर विशेष कष्ट कर नहीं होता। कभी स्राव होता है कभी नहीं। इस आयु में जो दशा आर्तव की होती है उसी के अनुसार इसके लक्षणों में भी घटा बढ़ी रहती है।

औषधार्थ—चन्द्रप्रभावटी २-२ गोली प्रातः सायं और रात्रि को दूध, चाय या जल से देनी ठीक रहती हैं अथवा—योगराज गुग्गुलु और अभया गुग्गुलु उक्त विधि से प्रयुक्त होने पर अच्छा लाभ देता है। इससे पचन क्रिया में भी सुधार होता है।

(५) श्वेत प्रदर की पंचम श्रेणी संक्रामक रोग-जन्य है। इसका पूर्ण विस्तार करने से लेख बहुत बढ़ जायगा तथा इस दशा की चिकित्सा में पहिले मूलभूत रोग को दूर करने के पश्चात् ही रुग्णा के कल्याण की सम्भावना होती है अतः इस लम्बे और भिन्न विषय को यहीं समाप्त करना ठीक रहेगा।

पीत प्रदर और कृष्ण प्रदर—वस्तुतः मासिकऋतु-स्राव के वर्ण पर पीत और कृष्ण प्रदर की प्रसिद्धि है। मासिक ऋतु स्राव के वर्ण वैषम्य पर नामस्थिति

अंशतः रोग परिचय का सुन्दर मार्ग है। आर्तव उत्पादक यंत्रों पर जब पित्त की प्रबलता हो तब ही ऋतुस्राव में वर्ण व्यत्यय उपस्थित होता है यदुक्तम् 'सपीतनीलासितरक्तमुष्णं पित्तार्तियुक्तं भृशवेगिपित्तात्'

—माधव निदान

चिकित्सा में भी पित्त शांति का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। यह भी स्मरणीय है कि 'न रोगोपोक दोषजः' के सिद्धांतानुसार हीन मध्य और अंशानुबन्ध के अनुसार अन्य दोषों की भी उपस्थिति अनिवाय समझनी चाहिए।

पीत कृष्ण प्रदर का अधिक सम्बन्ध डिम्बग्रन्थियों से है। वाताभिभूत होने पर ही कृष्णप्रभता आर्तव में होती है। अतः केवल मात्र शीत चिकित्सा से ही यहां कार्य नहीं होगा। दोषों की स्थिति को भली प्रकार जान कर ही औषधि व्यवस्था सफल होती है।

एतदर्थ—'दार्वी रसांजनं मुस्तं भल्लातः श्रीफलं वृषः
किरातश्चं पिबेदेषां क्वाथं शीतं समाक्षिकम् ॥
जयेत् सशूलं प्रदरं पीतश्वेतासितारुणम् ।

—शार्ङ्गधर

दारुहल्दी, रसांजन, नागरमोथा, शुद्ध भिलावा, वेलगिरी, वासामूलत्वक, चिरायता, प्रत्येक ३-३ माशा यथाविधि कूटकर ३२ तोला स्वच्छ जल में पाक करें। जब चतुर्थांश शेष रहे तब उतार कर थोड़ा मसल कर वस्त्रपूत करलें। इस वस्त्रपूत क्वाथ में १ तोला मधु मिलाकर रुग्णा को पिला दें। इससे सशूल आर्तव प्रवृत्ति एवं पीत, श्वेत, कृष्ण और रक्त (अत्यार्तवप्रवृत्ति) प्रदर नष्ट होते हैं।

वक्तव्य—यह दार्व्यादि क्वाथ निःसंदेह उपर्युक्त रोगों की एक अचूक औषधि है। किन्तु सम्प्रति इसका प्रचलन अधिक नहीं है। इसका कारण सम्भवतः यह हो कि क्वाथ के द्रव्यों में भल्लातक है। इससे प्रायः चिकित्सक ऊहापोह में पड़ जाते हैं एवं पित्ताधिक रुग्णाओं को यह कुछ घबराहट भी करता है। परन्तु यह दार्व्यादि क्वाथ का दोष नहीं दोष केवल प्रयोक्ताओं की अज्ञता का हुआ करता है। हम प्रायः इसका सर्वाधिक प्रयोग करते हैं और अवस्थानुसार इसमें कुछ परिवर्तन भी समय समय पर आवश्यक होते हैं। विचारपूर्वक इसका प्रयोग अवश्य सफलतादायक रहता है।

हम इसकी तीन कृतियां तैयार करते हैं। तीनों में भल्लातक की श्वेत प्रभ मज्जा का व्यवहार होता है। भल्लातक के तैल में ही अत्युष्णता है। उसका इसमें प्रयोग नहीं होता। इस प्रकार से यह पित्त प्रधान वा पित्त प्रकृति की रुग्णाओं को भी हानिकर सिद्ध नहीं होता।

१-दार्व्यादिरसक्रिया—इस कृति में दार्व्यादिक्वाथ के द्रव्यों को कथित करके क्वाथ का पुनः पाक करके गाढ़ा होने पर चतुर्थांश मधु (रसक्रिया से चतुर्थांश) मिलाकर लेह बना लिया जाता है। मात्रा—३ से ६ माशा। अनुपान—शीतोदक।

२-दार्व्यादि चूर्ण—उपर्युक्त द्रव्यों का वस्त्रपूत चूर्ण करें और ३-३ माशा की मात्रा में मधु के साथ मिलाकर चटा देना चाहिये। ऊपर से शीतोदक पिलावें।

३-दार्व्यादि आसव—आसवीय परिभाषा के अनुसार इसका आसव तैयार करके प्रयोग करना चाहिए। मात्रा—२ तोला दिन में ४ बार। इस प्रकार इस महौषधि का प्रयोग निःसन्देह पूर्ण लाभ करता है। जहां अनेक चिकित्सायें विफल हो चुकी हों वहां इसका विधिवत् प्रयोग करने से आशातीत लाभ होगा। यह भी स्मरणीय है कि दो चार दस दिन का इसका प्रयोग सफल नहीं होता। पुरानी व्याधि नष्ट करने के लिये इसे १-३ मास सेवन करना ठीक रहता है। पूर्ण प्रयोग ही रोग समाप्त करने में समर्थ होता है। सशूल, स्वल्पाल्प एवं पीतकृष्ण स्राव की अवस्था में निम्न योग भी पर्याप्त लाभ करते हैं।

१—क्षीरकाकोली चूर्ण १ माशा, लोहभस्म १ रत्ती, रससिंदूर १ रत्ती। अनुपान—मधु। ऐसी ३-४ मात्रा दिन भर में, कई दिन देने से लाभ होता है।

२—भैषज्यरत्नावली के जरायु रोगाधिकार में पठित 'प्रमदानंदरस' उक्त अवस्थाओं के लिए विशेष गुणप्रद है। अशोकत्वक् और अर्जुनत्वक क्वाथों को गौदुग्ध मिलाकर अनुपान रूप से देना चाहिए।

३—लोहभस्म (१००) पुटी, बंगभस्म (पारद-मारित), स्वर्ण माक्षिकभस्म, अभ्रकभस्म, प्रवाल-भस्म, नागभस्म (मनःशिला मारित), प्रत्येक २-२ तोला। श्वेतचन्दन, उशीर, लोध्र, धातकीपुष्प, नागकेशर, नागरमोथा, इन्द्रजौ, प्रत्येक का वस्त्रपूत चूर्ण १।।-१।। तोला लें। सबको स्वच्छ खरल में डालकर कमलपुष्प के रस या क्वाथ से ३ भावना देकर पेषण करें। फिर १-१ माशा की गोलियां बनालें। मात्रा १ से २ गोली। गुटिका को चूर्ण रूप में करके मधु के साथ प्रातः सायं और रात्रि को दिया करें। इसके प्रयोग से सशूल ऋतुस्राव, अनियमित आर्तव प्रवृत्ति एवं इनसे उत्पन्न अन्य उपद्रव तथा सब प्रकार के प्रदर नष्ट होते हैं। विशेषतः पुराणावस्था में यह योग अतिशय लाभप्रद है।

४—बहुगुणावटी—सूर्यक्षार, सौभाग्यभस्म, यवक्षार, रेवन्दचीनी, नवसादर, सौंफ, एलुआ, मुरमुकी, केशर, गोदन्तीभस्म प्रत्येक एक-एक तोला। कुनीनसल्फ ६ माशा। कपूर ३ माशा सबको यथाविधि पीसकर मधु के साथ ४-४ रत्ती की गोलियां बनालें। इनका निम्न प्रकार से प्रयोग करें—

श्वेत प्रदर शमनार्थ—शीतोदक से-प्रातः सायं और रात्रि को १-१ गोली। आर्तवशूल शमनार्थ—अर्क गांजवां से प्रातः सायं और रात्री को १-१ गोली। कष्टार्तव शमनार्थ—अर्क गुलाब से प्रातः सायं और रात्रि को १-१ गोली। गर्भाशयच्युति शमनार्थ—अर्क सौंफ से व कार्पासमूल क्वाथ से १-१ गोली। योनि मांस वृद्धि शमनार्थ—कलमीशोरा के जल से १-१ गोली। योनि शोथ शमनार्थ—काकमाची स्वरस या अर्क से १-१ गोली।

बहुगुणा वटी एक विशेष योग है। इसमें ऊपर के रोग तो प्रशमित होते ही हैं इनके अतिरिक्त क्षुन्नाश, मन्दाग्नि, उदरशूल, आटोप आध्मान, उद्गार बाहुल्य, शिरोव्यथा, भ्रम, रक्ताल्पता और कोष्ठबद्धता आदि को भी नष्ट करती है।

रक्त प्रदर—में रुग्णा की योनि से ऋतुस्राव के दिनों में अपेक्षाकृत अधिक रक्त प्रवृत्ति होती है एवं नियमित ऋतुकाल की समाप्ति के पश्चात् भी रक्तस्राव होता रहता है तथा मासिक धर्म के निश्चित दिनों से कुछ दिन पूर्व ही रक्तस्राव आरम्भ होजाता है। मासिक धर्म की इस अनियमितता को रक्त प्रदर कहा जाता है। प्रायः इस दशा के तीन कारण होते हैं—

१—आर्तवोत्पादक पिण्डों का पित्ताभिभूत होना। शरीर में कैलशियम की न्यूनता।

२—ऋतुधर्म की समाप्ति के समीप (४५-५० वर्ष-के मध्य) मासिक स्राव की अनियमितता।

३—गर्भाशय एवं गर्भ मार्ग के किसी स्थान पर अर्बुद की उत्पत्ति।

इसकी प्रथमावस्था सुखसाध्य है। रक्तशोधक, स्तम्भक एवं पित्तशामक चिकित्सा से इसमें निश्चित लाभ होजाता है।

स्वाभाविक ऋतुस्राव की अधिकता में—

प्रदरांतक लोह (भैषज्यरत्नावली) ४-६ रत्ती मधु से चाटकर ऊपर से तण्डुलोदक का पान करें। इससे यह व्याधि शान्ति हो जाती है। पुष्यानुग चूर्ण, सुपारीपाक, अशोकारिष्ट प्रभृति औषधियां भी लाभ करती हैं।

१. उदुम्बरादि योग—उदुम्बर की भीतरी छाल, उदुम्बर के कोमल पत्र और उदुम्बर के अपक्वफल। तीनों को सम भाग लेकर यथा विधि सुखाकर वस्त्रपूत चूर्ण करलें। पुनः इसमें समान भाग मिश्री मिलाकर प्रयोग करें।

मात्रा—३ माशा। प्रातः सायं, रात्रि। अनुपान—शीतोदक अथवा गोदुग्ध। कुछ काल सेवन करने से ऋतु काल में मात्राधिक रक्तपात शांत होता है।

२. लाक्षादि योग—पीपल की लाख, कौलडोडा की गिरी, जहरमोहरा खताई, प्रवालपिष्टी, गुडूची सत्व, वंशलोचन, सूक्ष्मैला, गेरू, गुलाब के फूल (पिशौरी), कत्था, राल, विजयसार, (खूनसाऊसा), समुद्रशोष, लालफिटकरी, प्रत्येक सम भाग। चूर्ण मान से आधी मिश्री। सबको मिलाकर रखलें। मात्रा—१ से ३ माशा। अनुपान-शीतोदक, गोदुग्ध ऋतुस्राव में अत्यधिक रक्त प्रवृत्ति को तुरन्त दूर करता है।

इसकी द्वितीयावस्था—यह स्वाभाविक है। फिर भी इस दशा में लाभ प्राप्त करने के लिए उत्तम चन्द्रप्रभावटी (शार्ङ्गधरीय) २-२ गोली प्रातः सायं और रात्रि को गोक्षुरू क्वाथ में थोड़ी खांड डालकर एक दो मास सेवन करने से यह कष्ट शांत हो जाता है अथवा अधिक कष्ट कर दशा में परिणत नहीं होता।

इसकी तृतीयावस्था—अन्य व्याधि (अर्बुद) की उपस्थिति में उपद्रव रूप से व्यक्त होती है। अतः प्रकृत रोग की चिकित्सा से ही इसमें स्थिर लाभ की आशा रहती है। यह भी तब ही सम्भव है जब गर्भाशयार्बुद अथवा जरायु कैंसर का उसके विकासकाल में ही निश्चय होजाए। अन्यथा अर्बुद की वृद्धिंगत अथवा पूर्णव्यक्तावस्था में शस्त्रोपचार, रेडियम और डीपएक्सरे की सहायता प्राप्त करना ही एक मात्र उपाय समझना चाहिये।

गर्भाशयार्बुद की रुग्णाओं में भी भिन्न-भिन्न लक्षण प्रत्येक रमणी में पाये जाते हैं। प्रायः ही रक्तस्राव की अल्पाधिक्यता समय की अव्यवस्था साकार रूप में दृश्य और बोध्य होती हैं। रुग्णा भी इसी कष्ट व्यथा का आलाप करती है और चिकित्सक भी ऋतुस्राव निरोधनी चिकित्सा को मुख्यता देते हैं। इसी संघर्षकाल में भीतर शनैः शनैः व्याधि दृढ़मूल होती जाती है। अतः ऐसी रुग्णाओं में चिकित्सक को रोग निदान करते समय स्थानीय अर्बुदों को न भूलना चाहिए।

अर्बुद व्याधि स्वभाव से ही आरोग्य और जीवन की शत्रु है। परन्तु इसके उद्गमकाल वा विकासकाल में ही इसका ज्ञान हो जाए तो यह भेषजकल्पों द्वारा साध्य हो सकती है। एतदर्थ कुछ योग नीचे दिये जा रहे हैं।

१—रौद्ररस (रसेन्द्रसार सं०) २।४ रत्ती। अनुपान—मधु, ऊपरसे महामंजिष्ठादि क्वाथ का पान। एक मास के सेवन से लाभ होगा।

२—इसी लेख में ऊपर लिखित दार्व्यादि क्वाथ एवं उसके कल्पों का सतत प्रयोग रक्तरोधनार्थ एवं अर्बुदशांत्यर्थ अतिशय उपयोगी है।

३—रसमाणिक्य १-२ रत्ती, मधुघृत से लेहन तदनु-दूर्वा २ तोला को जल से पेषण करके वस्त्रपूत करलें और पुनः इसमें गौदुग्ध मिलाकर पान कराएं।

४—पञ्चतिक्त घृत गुग्गुलु एवं कुमारकल्पद्रुम घृत ½ से १ तोला की मात्रा से चाटकर ऊपर से महामंजिष्ठादि क्वाथ का पान।

५—शार्ङ्गधरीय 'न्यग्रोधादि' गण के क्वाथ से प्लावित पिचु योनि में धारण करना तथा इसी क्वाथ से वस्ति विधि से गर्भाशय शोधन करना हितकर होता है।

—आचार्य श्री हरदयाल वैद्य
प्रधान—बोर्ड आफ आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी सिस्टयम्सआफ मेडिसिन पञ्जाब राज्य
सदस्य—सैन्ट्रल कौंसिल आफ इण्डियन मेडिसिन नई दिल्ली, अमृतसर

असृग्दर अथवा प्रदर रोग

आचार्य श्री चन्द्रशेखर गौड़

साधारणतया "असृग्दर" शब्द का विश्लेषण इस प्रकार किया जाता है कि "असृक् रक्तं दीर्यते च्यवते प्राचुर्येण यस्मिन् रोगे सोऽसृग्दरः" अर्थात् जिस व्याधि में योनि से रक्त अधिक मात्रा में निकलता है उसे असृग्दर कहते हैं। यह अधिक रक्तस्राव ऋतुकाल में अथवा ऋतुकाल के अतिरिक्त काल में भी हो सकता है तथा इस रक्त में आर्तव रक्त के ही लक्षण पाये जाते हैं। यथा—

तदेवाति प्रसंगेन प्रवृत्तामनृतावपि।
असृग्दरं विजानीयात् पुरस्तादुक्त लक्षणम् ॥

यद्यपि असृग्दर शब्द प्रदर का पर्यायवाचक है तथापि असृग्दर, रक्तप्रदर को ही कहा जाता है क्योंकि इसमें स्पष्ट असृग् = रक्त शब्द ग्रहण किया गया है।

निदान—

इस रोग के निदान के विषय में कहा गया है कि—

विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद् गर्भप्रपातादतिमैथुनाच्च। यानाध्वशोकादति कर्षणाच्च भाराभिघाताच्छयनाद्दिवा च। तं श्लेष्मपित्तानिल सन्निपातैश्चतुष्प्रकारं प्रदरं वदंति।

इस शास्त्र वचन का क्रमशः विवेचन इस प्रकार है। विरुद्धमद्याध्यशनात्—महर्षि चरक ने भी गुरु, विदाही, अम्ल भोजन तथा मद्य सेवन से प्रदर रोग की उत्पत्ति मानी है। आधुनिक विद्वान भी भोजन तथा मद्य के अति सेवन को प्रदर का कारण मानते हैं—"Over indulgnce in food and alcoholic drinks" (Bland-suttan and Giles)

गर्भप्रपातात्—प्रसव के उपरान्त जब अपरा का कुछ भाग अन्दर रह जाता है तो मृदु और स्थूल हो जाता है तथा रक्ताधिक्य के कारण उससे रक्त स्राव हुआ करता है। यह स्थिति गर्भपात के कारण अधिक होती है अतः उसका ही नाम अंकित किया गया है।

अति मैथुनात्—नवविवाहिता स्त्रियों में अति मैथुन करने से स्त्रियों की जननेन्द्रियों की ओर रक्त प्रवाह बढ़ जाता है जो आर्तव स्राव भी अधिक कराता है।

यानाध्व शोक आदि—घोड़ा, ऊंट की सवारी तथा शोक भय काम क्रोध आदि से शरीर के अन्तः स्रावों में वृद्धि होती है तथा रक्त भार स्थायी रूप से बढ़ जाता है। इसके परिणामस्वरूप गर्भाशय में रक्ताधिक्य होकर असृग्दर की उत्पत्ति हो जाती है।

पूर्वोक्त निदान से चार प्रकार का प्रदर आयुर्वेद शास्त्रों में माना गया है। यथा—

(१) वातिक प्रदर—जिसमें स्राव, रूक्ष, अरुण, झागदार, मात्रा में कम तथा वातिक वेदनाओं से युक्त मांस प्रक्षालित जल के समान हो उसे वातिक प्रदर कहते हैं।

(२) पित्तज—जिसमें स्राव पीला, नीला या कृष्ण रक्त वर्ण का उष्ण हो, जिसमें दाह आदि पैत्तिक वेदना तथा तीव्र वेग हो उसे पैत्तिक असृग्दर कहते हैं।

(३) कफज—जिसमें आमरस से युक्त, पिच्छिल पांडु वर्ण और मांस धोये जल के समान स्राव हो उसे श्लैष्मिक असृग्दर कहते हैं।

(४) सन्निपातज—जिसमें स्राव मधु घृत जैसा तथा हरताल अथवा मज्जा के वर्ण का हो, मुर्दे के समान जिसमें दुर्गन्ध हो उसे सन्निपातज प्रदर कहते हैं।

प्रदर रोग के अन्य साधारण लक्षणों का उल्लेख इस प्रकार प्राप्त होता है—

"असृग्दरं भवेत् सर्वं साङ्गमर्दं स वेदनम् ।
स्याति वृत्तौ दौर्बल्यं भ्रमो मूर्च्छा मदस्तृषा ॥
दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तन्द्रा रोगाश्च वातजाः ।

नोट—वास्तव में इस रोग में अधिक रक्त निकल ने से दुर्बलता बढ़ जाती है तथा अङ्गों में वेदना, म, मूर्च्छा आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

इस प्रकार असृग्दर रोग को रक्त प्रदर ही ना जाता है किन्तु प्रदर रोग के अन्तर्गत ही क अन्य रोग को स्वीकार किया जाता है जिसे वेत प्रदर (Leucorrhoea) कहते हैं।

Leucorrhoea is the term applied discharge of a non-sanguineous haracter coming from the genital act. (Henry Jellett)

इस प्रकार नारी की जननेन्द्रिय से निकलने ाला रक्त रहित श्वेत स्राव ही श्वेत प्रदर हलाता है। जिसके दो कारण होते हैं:—

(१) जननाङ्गगत कारण, (२) जननाङ्ग बाह्य ारण।

जननाङ्गगत कारण—गर्भाशय तथा योनि का शोथ, गर्भाशयिक ग्रन्थियों के स्राव की अधिकता, बीज-ग्रन्थि की अत्यधिक क्रियाशीलता (Excessive ovarian action) इससे श्लेष्मल कलागत ग्रन्थियों का स्राव बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त योनि प्रदेश में यदि अर्बुद हो तो वह गर्भाशय तथा योनि की श्लेष्मलकला पर प्रभाव डालकर श्वेत वर्ण का स्राव कराता है।

जनाङ्गबाह्य कारण—पाण्डु आदि रोग से स्वास्थ्य का दुर्बल हो जाना—इससे रक्त जल-बहुल होकर अन्त में लसिका वाहिनियों से लसिका स्राव प्रारम्भ हो जाता है। जननाङ्गों में रक्ताधिक्य उत्पन्न करने वाले कारण ही श्वेत प्रदर के कारण होते हैं। यथा अति कोष्ठबद्धता, जलोदर, अर्श आदि।

सामान्य लक्षण—

श्वेत प्रदर के श्वेत स्राव के अतिरिक्त शारीरिक और मानसिक दुर्बलता, भ्रम, कटिशूल, जानुशूल तथा अरति आदि लक्षण भी साधारणतया पाये जाते हैं।

वास्तव में श्वेतप्रदर स्त्रियों में उसी प्रकार का रोग है जैसा कि पुरुषों में प्रमेह (शुक्रमेहादि)। किन्हीं आचार्यों के मत में कफज असृग्दर को ही श्वेत प्रदर माना जाता है तथा उसी को पांडु प्रदर भी कहा जाता है क्यों कि उसमें स्राव का रङ्ग कुछ पीत वर्ण युक्त श्वेत होता है। किन्तु यह मत सर्व सम्मत नहीं है क्योंकि महर्षि चरक ने स्पष्ट शब्दों में कफज असृग्दर के बारे में लिखा है कि—

पिच्छिलं पांडु वर्णं च गुरु स्निग्धं च शीतलम् ।
स्रवति असृक् श्लेष्मलं च घनं मन्दरुजाकरम् ॥

अर्थात् कफज असृग्दर में भी रक्त का ही स्राव होता है जो पाण्डु वर्ण का पिच्छिल सा होता है। माधव निदानकार ने भी कफज प्रदर में मांस के धोवन जैसा स्राव स्वीकार किया है जब कि श्वेत प्रदर में इस प्रकार का स्राव नहीं होता। वास्तव में श्वेत प्रदर में लसिका स्राव होना ही प्रधान लक्षण मानना चाहिए।

सम्प्राप्ति—असृग्दर की सम्प्राप्ति के विषय में महर्षि चरक ने निम्नोल्लेख किया है—

शुक्त मस्तु सुरादीनि भजन्त्याः कुपितोऽनिलः
रक्तं प्रमाणमुत्क्रम्य गर्भाशयगताः सिराः

रजोवहाः समाश्रित्य रक्तमादाय तद्रजः
यस्माद् विवर्धयत्याशु रसभावाद् विमानता
तस्मादसृग्दरं प्राहुरेतत्तन्त्र विशारदाः

अर्थात् शुक्त मस्तु सुरा आदि सेवन करने वाली स्त्री का वायु कुपित होकर गर्भाशयगत शिराओं तथा रजोवाहिनी में आश्रित होकर रक्त के प्रमाण को बढ़ाकर तथा रज को भी रस भाव से पतला करके बढ़ा कर स्राव कराता है। इस प्रकार की सम्प्राप्ति से रक्त प्रदर तथा श्वेत प्रदर दोनों का यथावत् ज्ञान हो जाता है तथा यह भी सिद्ध होता है कि श्वेत प्रदर में स्त्रियों का रज (श्वेत सान्द्र स्राव) ही पतला होकर बहता है। यदि रज का अर्थ आर्तव रक्त माना जावे तो असृग्दर का बोध होता है।

चिकित्साक्रम—असृग्दर रोग में सदैव रक्तातिसार, रक्तपित्त तथा रक्तार्श के समान रक्तरोधक चिकित्सा करनी चाहिए। किन्तु श्वेत प्रदर में नारी के श्वेत मद को पुष्ट करने के लिये पौष्टिक योगों का प्रयोग करना चाहिये ताकि वह श्वेत स्राव पुष्ट होकर प्रस्रवित न हो सके। साथ ही योनि प्रक्षालन करना चाहिये।

चिकित्सा—आयुर्वेद शास्त्रों में असृग्दर की विस्तृत चिकित्सा उपलब्ध होती है उनमें से प्रमुख योगों का उल्लेख ही पर्याप्त है।

वातज असृग्दर में—काला नमक ४ रत्ती, जीरा सफेद ४ रत्ती, मुलहठी २ रत्ती, कमल (नीलोफर) २ रत्ती, मधु ६ माशा, दही १ छटांक में मिलाकर दिन में २-३ बार खिलाने से पर्याप्त लाभ होता है।

पैत्तिक प्रदर में—अडूसा अथवा गिलोय के रस में मधु और शक्कर (चीनी या मिश्री) मिलाकर दिन में ३-४ बार सेवन करने से निश्चित लाभ होता है। इसके अतिरिक्त चन्दनादि चूर्ण, चन्दनादि अर्क, आसव उशीरासव तथा नागकेशर, प्रवालपिष्टी को आंवले के मुरब्बे में सेवन करने से पर्याप्त लाभ होता है।

कफज प्रदर में—आंवले के फल या बीजों के कल्क में मधु और चीनी मिला कर सेवन करने से बहुत लाभ होता है। आंवले के फलों का कल्क १ तोला तथा बीजों का कल्क २ माशा लेना चाहिये। इसके अतिरिक्त दार्वादि क्वाथ (दारु हल्दी, रसौत, अडूसे की छाल आदि) पिलाने से शीघ्र लाभ होता है। इसके अतिरिक्त अशोकारिष्ट, पत्राङ्गासव, सुपारी पाक, पुष्यानुग चूर्ण, उत्पलादि चूर्ण, मधुकाद्यवलेह, प्रदरान्तक रस, सर्वाङ्गसुन्दर रस, अशोकघृत आदि अनेक ऐसे योग हैं जिनके सेवन से सभी प्रकार के प्रदर में लाभ होता है।

हमारे व्यक्तिगत अनुभव—कभी-कभी गर्भाशय अपने स्थान से च्युत होकर निम्न दिशा में खिसक जाता है तथा उसका मुख भी सर्वथा अधोमुख होजाता है ऐसी दशा में जब कभी रक्तस्राव होता है तो प्रायः सभी औषधियां विफल हो जाती हैं। इस प्रकार के कई केस मुझे झांसी में प्राप्त हुए जिनमें मेरी सभी औषधियां व्यर्थ प्रमाणित हुईं किन्तु मेरी धर्मपत्नी ने उनके गर्भाशयों को सीधा करके यथास्थान स्थित करके वहां छल्ला चढ़ा दिया तथा निम्ब के कोष्ण जल से योनि का प्रक्षालन किया तथा (Acriflavin and merchorocrome with Glycerine) इस प्रकार के फाये प्रति दिन चढ़ाये गये। केवल इसी क्रिया से बिना औषधि लाभ हो तथा। पुनः हमने आयुर्वेद की औषधियों के फाये बनाये उनके प्रयोग से भी वही लाभ प्राप्त हुआ। वह इस प्रकार है—गौघृत ५ तोला, मधु ½ तोला उसमें चन्दन का तेल २५ बूंद नागकेशर का सूक्ष्म चूर्ण २ माशा गुरुचि स्वरस २ माशा इसके घोल में फाये बना कर चढ़ाने से पर्याप्त लाभ हुआ। हम सभी रक्त प्रदरों में निम्न योग सेवन कराते हैं—अशोकचूर्ण ५ तोला नागकेशर ५ तोला वंशलोचन ५ तोला श्वेतचन्दन चूर्ण ५ तोला श्वेत इलायची ½ तोला आंवला ५ तोला प्रवालपिष्टी १ तोला तृणकान्त-

—शेषांश पृष्ठ १७८ पर।

प्रदर (ल्यूकोरिया)

कविराज श्री नानकचन्द वैद्यशास्त्री

यह स्त्रियों को होने वाला एक रोग है जो आजकल अत्यन्त भयङ्करता से नारियों में दृष्टिगोचर होता है। जैसे युवा पुरुषों को धातु-क्षीण का रोग होता है उसी प्रकार यह भी स्त्रियों को होता है। निदानं यथा—

विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद्
गर्भप्रपातादति मैथुनाच्च।
यानाध्वशोकादति कर्षणाच्च
भाराभिघाताच्छयनाद्दिवा च।
तं श्लेष्म पित्तानिल सन्निपातै-
श्चतुष्प्रकारं प्रदरं वदन्ति॥
—माधवे।

अर्थात्—दुष्ट मद्यपान से वा विरोधी मद्यपान से, भोजन पर पुनः भोजन करने से, अजीर्ण से, गर्भ के गिरने से, अति मैथुन करने से, सवारी अधिक करने से, मार्ग चलने से, लंघनादि से, देह क्षीण हो जाने पर, भार उठाने से, चोट लगने से, दिन के सोने से, इस प्रकार के कारणों से कफ पित्त, वायु तथा सन्निपात से चार प्रकार का प्रदर रोग कहते हैं। इससे भिन्न रक्त प्रदर भी हो जाता है जिसके हेतु निम्न कहते हैं।

वसवराजीये—

शोकोपवासादति मैथुनाच्च
विदाहिभिश्चास्रमतीव दुष्टम्।
प्रवर्तते योनिषु नादशीलि
ह्यसृग्दरं तं प्रवलं हि विद्यात्॥

अर्थात्—शोक, उपवास, अति मैथुन से और विदाहि द्रव्य सेवन करने से अत्यन्त दूषित हुआ रक्त योनि से पिच्छिल रक्तस्राव होता है उसे रक्तप्रदर कहते हैं।

असृग्दर लक्षणं—

असृग्दरं भवेत् सर्वं साङ्गमर्द सवेदनम्॥
तस्यातिवृत्तौ दौर्बल्यं भ्रमो मूर्च्छा मदस्तृषा।
दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तन्द्रा रोगाश्चवातजाः॥
—सुश्रुते।

तन्त्रान्तरेऽपि—

तदेवाति प्रसंगेन प्रवृत्तमनृतावपि।
असृग्दरं विजानीयात् पुरस्तादुक्तलक्षणम्॥

अर्थात्—रक्तप्रदर में सर्वांग में शूल होता है। उस रक्त के अधिक स्राव होने से दुर्बलता, भ्रम, मूर्च्छा, मद, तृषा, दाह, प्रलाप, पांडु वर्ण, तन्द्रा तथा वातजन्य रोग हो जाते हैं।

तन्त्रान्तर में आर्तव की अतिप्रवृत्ति अधिक मैथुन से ऋतुकाल में वा बिना ऋतु के भी जाने से असृग्दर ही माना है।

श्लैष्मिकादि भेदेन लक्षणान्याह-माधवे यथा—

आमं सपिच्छा प्रतिमं सपाण्डु
पुलाक तोय प्रतिमं कफात्तु॥
सपीतनीला सितरक्तमुष्ण
पित्तार्त्तियुक्तंभृशवेगि पित्तात्॥
रूक्षारुणं फेनिलमल्पमल्पं
वातार्त्ति वातात् पिशितोदकामम्॥

असाध्यं—

सक्षौद्र सर्पिर्हरिताल वर्णं
मज्जप्रकाशंकुणपं त्रिदोषात्॥
स चाप्यसाध्यं प्रवदन्ति तज्ज्ञा
न तत्र कुर्वीत भिषक् चिकित्साम्॥
शश्वत्स्रवन्तीमास्रावं तृष्णादाहज्वरान्विताम्॥
क्षीणरक्तां दुर्बलां च तामसाध्यां विनिर्दिशेत्॥

अर्थात्—आमयुक्त पिच्छा के तुल्य गाढ़ा श्वेत वर्ण मांस धोवन के जल सदृश कफजन्य प्रदर जानना चाहिये। पीत, नील, कृष्ण, रक्तवर्ण तथा

उष्ण पीड़ायुक्त अत्यन्त वेग वाला पित्त से होता है। रूक्ष, अरुण वर्ण फेनयुक्त, अल्प-अल्प वात वेदनायुक्त मांसोदक समान वात से होता है।

मधु, घृत, हरिताल वर्ण, मज्जा के समान शव-गन्धयुक्त त्रिदोष जनित जानना चाहिये। निरन्तर स्राव युक्त तृष्णादि लक्षणों से युक्त, जिसका रक्त क्षीण दुर्बल हो जाये वह असाध्य जाने। यह रोग वास्तव में भयङ्कर होता है। आजकल की प्रथा चल गई है कि लोग लड़कियों का विवाह समय व्यतीत हो जाने के बाद करते हैं। यह अत्यन्त हानिकर सिद्ध हो रहा है क्योंकि स्त्रियों की रक्त की प्रवृति द्वादश वर्ष से कही गई है और उसके आने से कामवासना का प्रादुर्भाव होना भी अवश्यम्भावी होता है अतः वासना प्रतिघात के हेतु अनेक प्रकार के रोग मानसिक हिस्टेरिया आदि तथा शारीरिक प्रदरादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। आजकल प्रायः १८ से २० वर्ष से ऊपर जाकर विवाह किया जाता है यह अनेक रोगों का कारण होता है।

प्रदर का प्रतिकार करने से पूर्व रोगी परीक्षा करनी चाहिये जिससे प्रतिकार करते समय कोई त्रुटि न रह जाये।

१—स्त्री विवाहित है या कुमारी। यदि विवाहित है तो उसे व्यवाय से रोकना चाहिए। यदि कुमारी है और अध्ययन करने जाती है तो उसके लिए भी पढ़ना विचारना आदि रोकना चाहिए। प्रदर में क्षीणता, आलस्य, श्रम, हृद्व्यथा, मनवैचित्र्य आदि लक्षण होने से उक्त कर्म का निषेध करना ही युक्त होता है ताकि रोगी को विश्राम करने का अवसर प्राप्त हो।

प्रदर प्रतिकारमाह—अनुभव में समागत प्रयोग—

१—दार्वी रसाञ्जन वृषाब्द किरात विल्व
भल्लातकैरवकृतो मधुना कषायः ॥
पीतोजयात्यति बलं प्रदरं सशूलम्।
पीतोसिताषण विलोहितनील शुक्लम् ॥
—भै० र०

अर्थात्—दारुहरिद्रा, रसौत, वांसा, मुस्तक, चिरायता, बिल्वत्वक्, शुद्ध भल्लातक यह सब समान भाग बनाकर पीने से शूल सहित, श्वेत, लाल, रक्त, नील प्रदर को नाश करता है। यह क्वाथ अनेक बार अनुभव किया गया है।

२—अशोक वृक्ष का छिलका लेकर उसे चाय के सदृश क्वाथ चतुर्थांश रख कर दुग्ध डालकर शीत करके पीने से रक्त प्रदर शीघ्र नष्ट करता है।

३—कुशा की जड़ को चावलों के जल से पीस कर तीन दिन पीने से प्रदर दूर होता है।

४—बलामूल का चूर्ण दुग्ध के साथ पीने से रक्त वा पैत्तिक प्रदर को शीघ्र जीतता है।

५—वांसा के पत्तों का स्वरस, गुडूची का रस, आमलों का रस चीनी मिलाकर पीने से पैत्तिक प्रदर तथा योनि दाह को हरता है।

६—भैषज्यरत्नावली में वर्णित चन्दनादि चूर्ण सेवन करने से भी लाभ होता है।

७—समुद्रशोष को पीसकर ६ माशे दुग्ध के साथ पीने से रक्तस्राव या रक्त प्रदर बन्द हो जाता है।

:: पृष्ठ १७६ का शेषांश ::

मणि पिष्टी ६ माशा मिश्री २० तोला। मात्रा—दो माशा प्रातः सायं गोदुग्ध से। श्वेत प्रदर में भी हम पूर्ववत् योनि प्रक्षालन कराते हैं तथा उपरोक्त चूर्ण को फालसे की छाल के क्वाथ ५ तोला के साथ खिलाते हैं, लाभ होता है।

पथ्य—यव गोधूम भोजन नारियल जल अनार मौसमी, अंगूर का रस, गोदुग्ध, गोघृत, पालक, परवल, साबूदाना बनास्पति चावल आदि पथ्य हैं।

अपथ्य—मल मूत्र वेग विधारण, मैथुन, गुड़ तैल खटाई (अमचूर) लाल मिर्च उर्द की दाल अरहर मसूर अर्बी आदि अपथ्य हैं।

—आचार्य श्री चन्द्रशेखर गौड़ प्रौफेसर
मस्तनाथ आयु० कालेज, अस्थलबोहर (रोहतक)

८—इसी प्रकार स्वर्णगेरू २ तोला को पीस कर सम खाण्ड मिला कर ३ माशे दुग्ध या पानी के साथ देने से भी रक्त प्रदर नष्ट होता है।

६—समुद्रफेन १ तोला, बड़ जटा १ तोला, सराल की ठीकरी १ तोला, गेरू १ तोला, इन सब को पीसकर ३ माशा जल के साथ पीने से रक्त प्रदर का रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

१०—योनिशूलहर-प्रवाल को वट दुग्ध वा अर्क दुग्ध से भावना देकर आग देने से जो भस्म होगी वह योनिशूल, हृद्रोग, मस्तिष्क विकारों में हितकर होती है।

११—आखुविट्, हुरमची समभाग लेकर ३ माशा जल के साथ दें, रक्तस्राव, प्रदर दूर होगा।

१२—श्वेत प्रदरे-सर्व प्रथम त्रिफला तथा फिटकरी से योनि साफ करना। श्वेताञ्जन १ माशा, नागकेशर १ माशा, राल सफेद १ माशा, लोध १ माशा, मिश्री २ भाग सबका चूर्ण कर ३ माशे को दुग्ध के साथ देने से लाभ करता है।

१३—चिकनी सुपारी, रूमी मस्तगी, इलायची छोटी, कत्था, माजूफल और भुने चने की गिरी यह सब समान भाग लेकर ३-३ माशे की मात्रा दिन में तीन बार दें। यह शीघ्र फलप्रद सिद्ध है।

१४—प्रदरहर वटी-वंशलोचन १॥ तोला गोदन्ती १॥ तोला, प्रवाल १ तोला, बबूल का गोंद १ तोला, अशोकत्वक् १॥ तोला, इन सबको पीस कर शतावरी के क्वाथ से तथा दशमूल के क्वाथ से भावना देकर तीन रत्ती की बटी बनालें। यह प्रदर जन्य सभी उपद्रवों को नष्ट करती है।

१५—कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म १ रत्ती बंगभस्म १ रत्ती इनको मिलाकर दुग्ध के साथ देने से शीघ्र लाभप्रद है।

यह जितने योग वर्णन किये गये हैं यह हमारे पूर्वजों का संग्रह कई बार अनुभव किया जा चुका है वैद्यों को चाहिए कि रोगी का बलाबल देश काल आदि का विचार कर जिस योग को बर्ताव में ला सकें उसी से लाभ उठायें।

— कविराज श्री नानकचन्द वैद्य शास्त्री,
१८ ए, प्रतापबाग, जी. टी. रोड, दिल्ली।

प्रदर

श्री वैद्य उमाशंकर दाधीच

स्त्रियों को अनेक व्याधियों से बचाकर स्वस्थ एवं सन्तानोत्पादन क्षम बनाए रखने के लिए प्रतिमास स्त्रियों की योनि से रजः के रूप में अनेक दोषों को शरीर से बाहर निकालने की व्यवस्था प्रकृति ने की है। यही रजः जब दोषों के कारण विकृतावस्था को प्राप्त होती है तो गर्भाशय मासिक एवं प्रजनन संस्थान की अनेक व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं। प्रदर भी उनमें से एक है। इस व्याधि में रजःस्राव विकृत एवं अधिक होता है।

पाश्चात्य विद्वान प्रदर को स्वतन्त्र रोग नहीं मानते हैं। उनके मतानुसार श्वेत प्रदर पूयमेह-जनक या अन्य कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न की हुई जनन संस्थान के शोथ का लक्षण मात्र है और अधिक ऋतुस्राव ही रक्त-प्रदर है। प्रजनन संस्थान के शोथ के कारण निम्न हैं जो आयुर्वेदज्ञों के अभिघात शब्द के अन्तर्गत आ जाते हैं।

(१) हस्तमैथुन—इससे गर्भाशय ग्रीवा या अपत्य मार्ग में क्षत होकर शोथ हो जाता है, जिस से जलन युक्त किंचित लालवर्ण का स्राव होता है। यह स्थिति उन बालिकाओं में भी पाई जाती

है जिनको हस्तमैथुन की आदत पड़ जाती है। ये विलास से परिचित नहीं होतीं। प्रायः मातायें या दाईयां बालक को स्नान करवाते समय अनावश्यक ही बच्चों के गुप्त स्थानों का बार बार स्पर्श करती या मसल देती हैं। रोता हुआ बालक इस क्रिया से सुख का अनुभव करता है और सो जाता है। निरन्तर की गई इस क्रिया से बालक बालिकाओं में हस्तमैथुन की आदत पड़ जाती है। अतः बालकों को इसमें सावधानी रखनी चाहिए।

(२) पूयमेही के वस्त्रों का उपयोग करने से पूयमेह के कीटाणु अपत्य मार्ग भग, गर्भाशय आदि व प्रजनन संस्थान में शोथ उत्पन्न कर देते हैं। जिससे जलन युक्त स्राव होता है। मूत्र पीड़ा के साथ उतरता है।

(३) प्रसव के बाद, प्रसव के समय गर्भाशय या योनिमार्ग में क्षत लग जाने से शोथ होकर स्राव होता है इसमें सम्बन्धित अवयवों में तीव्र वेदना होती है और यदि व्रण व पूय हो गये हों तो स्राव में पूय व रक्त का मिश्रण होता है। ज्वर भी हो जाता है।

(४) इसके अतिरिक्त अन्य कई कारण माने हैं। किन्तु उन सबमें किसी भी कारण से प्रजनन संस्थान या अपत्य मार्ग के किसी भाग में किसी भी कारण से चोट लग कर व्रण, शोथ या पूयोत्पत्ति ही मुख्य है। गर्भपात या गर्भस्राव भी इसका एक कारण है।

(५) जिन माता पिताओं को चिरकालीन सुजाक रहा हो उनकी सन्तान को बाल्यावस्था में ही प्रदर का स्राव होता है।

(६) यौवन प्राप्त कन्याओं को (जिन्होंने भोग नहीं किया है) श्वेत प्रदर होता है जो एक दो दिन होकर बन्द हो जाता है। यही प्रदर कभी कभी निरन्तर स्रावयुक्त होता है। काम वासना की शान्ति नहीं होने से यह हो जाता है।

(७) वृद्धावस्था में आंतरिक प्रजनन संस्थान तथा अपत्यमार्ग के अत्यन्त दुर्बल व शोथयुक्त व जखमी हो जाने से भी यह रोग हो जाता है। प्रायः अशक्त व उचित भोजन प्राप्त नहीं कर पाने वाली वृद्धायें ही इसका शिकार होती हैं।

(८) गलगंड, गंडमाला, क्षय आदि शरीर को कृश तथा निर्बल बनाते हैं। ये प्रदर उत्पन्न करने का कारण है।

(९) निरन्तर विलिप्त रहने से योनि एवं गर्भाशय के स्नायु अत्यन्त दुर्बल एवं शोथयुक्त हो जाते हैं। जिनसे प्रायः श्वेत स्राव होता रहता है।

प्रदर का पूर्व रूप—मैथुन की अत्यन्त प्रबल इच्छा, योनि मार्ग में खुजलाहट, हस्तपाद नेत्र दाह, पीततायुक्त मूत्र, उदासीनता व मन्दाग्नि। ये प्रदर के पूर्वरूप हैं।

प्रदर के भेद—वातज, पित्तज, कफज एवं सन्निपातज इस प्रकार के ४ भेद हैं।

वातज—रूक्ष, अरुण वर्ण, फेन युक्त, मांस के धोवन के समान दृश्यमान, कटिशूल युक्त होने वाला स्राव वातज प्रदर है।

पित्तज—पीला, नीला, काला या लाल रङ्ग का दाह व शूल युक्त अति मात्रा में बहने वाला स्राव पित्तज प्रदर है।

कफज—आम युक्त, चिपकता हुआ पीला तथा सफेद स्राव कफज प्रदर है।

सन्निपातज—जिस स्राव का वर्ण हरा, काला, पीव के समान या शहद घी हरताल के रंग के समान हो, जो गोंद के समान चिपकने वाला हो जिसमें शव के समान गंध आवे, जो मज्जा के समान गाढ़ा हो वह तीनों दोषों के विकृत होने से उत्पन्न सन्निपातज प्रदर होता है।

पाश्चात्यों ने प्रदर का विभागीकरण दो भागों में किया है—श्वेतप्रदर तथा रक्तप्रदर। यद्यपि त्रिदोष विवेचनानुसार की गई चिकित्सा ठीक

निशाने पर लगे तीर के समान है किन्तु जिस देश की स्त्रियां रोग को ही मरणावस्था उपस्थित होने तक छिपाती हैं वे भला त्रिदोषानुसार स्पष्ट लक्षण तो बतलाने ही क्यों लगी। ऐसी कठिनाई में उक्त दो प्रकार की ही चिकित्सा सुविधा पूर्ण है। अतः नीचे उन दोनों प्रकारों के प्रदरों के सम्पूर्ण लक्षण पुनः स्पष्ट लिखता है।

श्वेतप्रदर—योनि से सफेद पीला या कुछ पीलापन लिए कुछ लालिमा युक्त चिपचिपा पतला या कफ के समान गाढ़ा स्राव होता है। मूत्र पीड़ायुक्त पीला उतरता है। जलन, प्रजनन संस्थान या अपत्य मार्ग में शोथ व्रण या पूयोत्पत्ति होने पर वह स्थान पीड़ायुक्त प्रतीत होता है। कटिवेदना इसका अनिवार्य सा ही लक्षण है।

रक्तप्रदर—मासिकस्राव समय से पूर्व, एक मास में अधिक बार, अधिक प्रमाण में व अधिक समय तक होता है। विकृत अवस्था में इसका रंग काला या विविध रंग लिए हुये लालिमा युक्त होता है।

दो प्रकार के प्रदरों में निम्न लक्षण न्यूनाधिक रूप में अवश्य मिलते हैं। मलावरोध, योनिदाह-शूल, कटिशूल, सर्वांग पीड़ा, हाथपांव व नेत्र दाह, अशक्ति, विरक्ति, क्षुधानाश, तृष्णा, सर्वांग-दाह, मूर्च्छा, ज्वर, शिरोवेदना, नेत्र तथा नाखूनों के अन्तर्भाग का लालिमा-हीन होना, अरुचि, ओजनाश, भ्रम, हृड्फूटन रक्ताल्पता जन्य मासिक स्रावावरोध स्नायुदौर्बल्य आदि। इनका अन्तिम परिणाम प्रजनन संस्थान की अनेक प्रकार की असाध्य व्याधियां होकर वंध्यत्व तथा प्राणनाश है।

आजकल बार्धक्य प्राप्त होते ही स्त्रियों को प्रायः रक्तस्राव होने लगता है। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का परिवर्तन ही इसका कारण है। यदि इस समय अत्यन्त सावधानी पूर्वक चिकित्सा न की जावे तो अन्त में रक्तार्बुद जैसी व्याधि भी हो सकती है। इसमें वातनाड़ी दौर्बल्य की अनेक विकृतियां पायी जाती हैं। इस व्याधि को एलोपैथी में मेनोपौज (Menopause) कहते हैं।

प्रदर की चिकित्सा करने के पूर्व निम्न सूत्रों को ध्यान में रखना चाहिए।

(१) कार्य नाश के लिए कारण का नाश उत्तम विधि है। जिन कारणों से रोग उत्पन्न हुआ है उनका निराकरण सर्व प्रथम किया जाना चाहिए।

(२) रोग के लक्षण या उपाधि स्वरूप उत्पन्न शरीर के किसी भी भाग की दुर्बलता का प्रतिकार करने वाली औषधियों की योजना मुख्य औषधियों के साथ अवश्य की जानी चाहिए।

(३) प्रदर गर्भाशय से सम्बन्धित रोग है अतः मौखिक चिकित्सा के साथ योनि एवं गर्भाशय प्रक्षालन की क्रिया अवश्य की जानी चाहिये।

चिकित्सा—यों तो आयुर्वेदशास्त्र में अनेक औषधियां प्रदर नाशक कही गई है जिनकी योजना रोगी की स्थिति तथा दोषादि का सम्यक् विवेचन करके किये जाने पर निश्चित लाभ होता है किन्तु आयुर्वेदानुसार दोष दूष्यादि का विवेचन करना सरल नहीं है। वे भाग्यशाली चिकित्सक जो उदार हृदय एवं योग्य गुरुओं के सच्चे रूप में अंतःवासी होकर निरन्तर सेवा करते हुए आयुर्वेदाध्ययन करते हैं वे ही इस मर्म को जान सकते हैं। अपनी अनुभूत औषधियां पाठकों के हितार्थ प्रस्तुत करता हूँ।

कृमिघ्न चूर्ण—

योग—माजूफल व त्रिफला, चूना बिना बुझा, फिटकिरी, सफेद कत्था १-१ भाग, कपूर ½ भाग, तूतिया ½ भाग।

निर्माण विधि—इनके चूर्ण में निम्बपत्र रस या छाल के क्वाथ की ३ भावना देकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म चूर्ण बनाकर शीशी में रखलें। आवश्यकतानुसार १ सेर कपीला जल में १ से ३ माशा तक चूर्ण डालकर प्रयोग करें। यह पोटास परमेंग्नेट

डेटाल आदि का प्रतिनिधि है। प्रत्युत उससे बढ़कर शोधक रोपक भी।

रक्तरोधक कैप्शूल्स—

योग—सफेद फिटकरी, शुद्ध काला सुरमा, सफेद कत्था व सेलखड़ी प्रत्येक ३।।-३।। माशा।

कहरवा शमई पिष्टी, मोती की सीप पिष्टी, अकीक पिष्टी, प्रत्येक १०।। माशा, दम्मुल अखवैन, गोंद बबूल, गोंद कतीरा-प्रत्येक ७ माशा।

निर्माण विधि—इन सबके चूर्ण में मुलहठी के क्वाथ की ३ भावना देकर ४-४ रत्ती के कैपसूल्स भरलें।

मात्रा—२-३ कैपशूल्स दिन में ३ या अधिक बार आवश्यकतानुसार शीतल जल से दें।

इनके सेवन से शरीर के मुख, नाक, लिंग, गुदा, योनि आदि किसी भी भाग से निकलता हुआ खून तत्काल रुकता है। स्त्रियों का मासिक रुधिर या कुसमय गिरने वाला रक्त, अर्श के रक्त प्रवाह को रोकने को अत्यन्त सफल औषधि है। जिनको खांसी के साथ खून जाता हो तथा अन्य कारणों से जाने वाले रक्त को कंठ से नीचे उतरते ही रोकने वाली अव्यर्थ औषधि है।

चिकित्सा के पूर्व रोगिणी को विरेचन करवा देना चाहिये। इसमें तीव्र विरेचन देना ठीक नहीं है अतः निम्न स्वादिष्ट 'मृदु विरेचन' का योग उत्तम है।

योग—छाया शुष्क गुलाबपुष्प, मुलहठी, सनाय, गुलबनफशा प्रत्येक १६ तोला; सौंफ, गंधक, ८-८ तोला, मिश्री ८० तोला।

मात्रा—३-६ माशा, अनुपान-गर्म दूध रात्रि को सोते समय, आवश्यकतानुसार ३ दिन या अधिक समय तक देना चाहिये।

प्रदर में प्रायः सुजाक का संक्रमण पाया जाता है ऐसी स्थिति में 'शीतलपर्पटी' का १।। या ३ माशा की मात्रा में ५-१० बूंद तक चन्दन का तैल डालकर शीतल जल से दिन में ४-६ बार देना चाहिये।

उत्तम तो यह होगा कि प्रत्येक रोगिणी का प्रथम दोनों प्रकार के विरेचन से शोधन करके चिकित्सा आरम्भ की जावे।

प्रदर हर चूर्ण—

योग—रसौत, कसेरू, धायपुष्प, गोंद, कतीरा २-२ तोला; मोचरस, ईसबगोल की भुसी ५-५ तो. माजूफल, चिकनी सुपारी २०-२० तोला।

मात्रा—२-२ माशा आवश्यकतानुसार दिन में २-३ बार मधु मिश्रित तण्डुलोदक से, सम्पूर्ण प्रदरनाशक है। इसके साथ अन्य आवश्यक औषधियों का मिश्रण किया जा सकता है।

सुन्दरी संजावन चूर्ण—

मीठे अनार का बक्कल, माजूफल, नागरमोथा, कपूरकचरी, धाय के फूल, फिटकरी, त्रिफला, हरिद्रा, मुलहठी।

विधि—सब वस्तुओं को समान भाग लेकर कपड़छन चूर्ण करें। १ तोला चूर्ण को लेकर साफ मलमल के वस्त्र में पोटली बांधकर डूशिंग करने के बाद योनि में रखलें। सायंकाल निकाल कर दूसरी पोटली रखलें जो रात भर रखी रहे। इस प्रकार इन पोटलियों के नियमित उपयोग से कुछ ही दिन में प्रदर, गर्भाशय-ग्रीवा एवं योनि पथ के समस्त रोग मिटकर योनि सूखी एवं संकुचित हो जाती है।

प्रदरांतक वटी—

योग—अभ्रकभस्म शतपुटी, गोखरू, सोंठ, स्वर्णमाक्षिक भस्म, जामुन की गुठली, लालचन्दन, प्रवालभस्म, आम की गुठली, अर्जुन की छाल, सेमल मूसली, पुनर्नवा, सिंघाड़ा, सफेद मूसली, नागकेशर, नागरमोथा, त्रिफला।

इन सबके वस्त्रपूत चूर्ण में अशोक छाल तथा गिलोय के क्वाथ की ३ भावना देकर २-२ रत्ती की वटिका या कैपशूल बनावें। मात्रा १-१ गोली प्रातः सायं खावें तो सफेद-लाल-नीला-पीला-हरा

[अ]था ही प्रदर सोपद्रव १ पक्ष में नाश होकर शरीर बल बढ़ता है।

जो रुग्णा नित्य ताजा बनाकर पीना पसन्द [करें] उनके लिए 'दार्व्यादि कषाय' सर्वोत्तम औषधि [है]। तय्यार क्वाथ उतना लाभ नहीं करते।

शास्त्रोक्त औषधियों में चन्द्रप्रभा वटी बंग या [त्रि]वंगभस्म, प्रदरांतक लौह, प्रदरारि रस, अशोका[रि]ष्ट, लोहासव, पत्रांगासव, कुकुटांडत्वक भस्म, [स्वर्ण] मालती वसन्त, संशमनी वटी, पुष्यानुग चूर्ण [आ]दि का प्रयोग रोग एवं रुग्णा की अवस्था के [अ]नुसार प्रयोग करने से अवश्य लाभ उठाया [जा] सकता है। शास्त्रोक्त औषधियों का निम्न [यो]ग हमारा अनुभूत है—

रक्त प्रदर में—पुष्यानुग चूर्ण ४ रत्ती, प्रदरारि[लौ]ह २ रत्ती, बोलपर्पटी २ रत्ती, अकीक पिष्टी [२] रत्ती ऐसी १-१ मात्रा सुबह शाम मधुयष्टिहिम से।

श्वेत प्रदर में—स्वर्णवसंतमालती ½ रत्ती, संश[म]नी वटी १ रत्ती, रौप्यभस्म ½ रत्ती, स्वर्णवंगभस्म [१] रत्ती, त्रिवंगभस्म ½ रत्ती ऐसी १-१ मात्रा प्रातः [सा]यं मक्खन मिश्री से।

[अ]नुभूत चिकित्सा विधि—

प्रथम ३ दिन मृदुविरेचन चूर्ण रात्रि को ६ माशा गरम दूध से देवें, शीतल पर्पटी १॥ माशा चन्दन तैल ५ से १० बूंद तक ऐसी १-१ मात्रा १-१ घण्टे बाद शीतल जल से अधिकतम ६ मात्रा प्रतिदिन।

चतुर्थ दिवस से—कृमिघ्न चूर्ण के जल से प्रातः योनि प्रक्षालन करके सुन्दर संजीवन चूर्ण की पोटली योनि में रखें। रात्रि को नवीन पोटली रखें।

प्रदरघ्न चूर्ण १ माशा प्रदरान्तक वटी १ गोली ऐसी १-१ मात्रा प्रातः सायं शहद मिश्रित कवोष्ण दुग्ध से। यदि रक्त का प्रवाह तीव्र हो तो रक्तरोधक चूर्ण १-१ माशा शीतल जल से १-१ घण्टे बाद दें। रक्त प्रवाह बन्द होने पर उक्त प्रयोग चालू रखें। तीव्र रक्त प्रवाह को तत्काल रोकने के लिये गुप्तसिद्ध प्रयोगांक भाग ४ पृष्ठ ३८ पर लिखित शिखर्यादि वर्तिका का प्रयोग करना श्रेष्ठ है। यदि ज्वर व अशक्ति हो तो स्वर्ण मालती वसंत व संशमनी वटी का मिश्रण करना सुन्दर परिणाम दर्शाता है। भोजन के बाद अशोकारिष्ट पत्रांगासव लोहासव का यथावश्यकता प्रयोग अवश्य करना चाहिये।

—वैद्य श्री उमाशंकर दाधीच साहित्यायुर्वेद विशारद,
संजीवन औषधालय, सनावद

हवन यज्ञ और प्रदर

श्री नन्दकिशोर शर्मा

[यज्ञ] चिकित्सा क्या है?

रोग नाशक औषधियों का विधिपूर्वक अग्नि [में] जलाना और हवन गैस को श्वास तथा रोम [छि]द्रों द्वारा रोगी के शरीर में नित्य प्रति प्रवेश [क]राना साथ ही साथ खान पान रहन सहन में [नि]श्चित नियमों का पालन करना, इसे यज्ञ [चि]कित्सा कहते हैं।

यज्ञ चिकित्सा क्यों सर्व प्रधान है?

सब विद्वान् जानते हैं कि सूक्ष्म में जो शक्ति है वह स्थूल में नहीं। सोने का १ रत्ती का टुकड़ा किसी आदमी को खिला दो कोई लाभ न होगा उसी को सूक्ष्म करके वर्क बनाकर खिलाओ कुछ पुष्टि देगा पर जब उसे आग में फूंक कर भस्म बना लो तो केवल एक एक चावल खिलाने से थोड़े

ही दिनों में चेहरे पर लाली, शरीर में बल, मन में उत्साह उत्पन्न होकर वृद्ध भी युवा सदृश बन जायगा। पदार्थ विद्या से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि किसी वस्तु का अभाव नहीं होता किन्तु रूप बदल जाता है। अग्नि में जलाई हुई औषधि श्वास द्वारा सीधी फेफड़ों पर पहुँचकर तत्काल प्रभाव करेगी और बहुत सूक्ष्म होने के कारण स्थाई प्रभाव करेगी।

युक्तियों के पश्चात् अब हम इस विषय में कुछ प्रमाण और अनुभव प्रस्तुत करते हैं।

वेद भगवान का प्रमाण—

यदिक्षितायुर्यदि वा परेतो
यदि मृत्यो रन्तिकं नीतएव।
तमा हरामि निर्ऋते रूपस्था
दस्पार्ष मेनं शत शारदाय॥
(अथ० का. ३ अनु. ३ सू. ११ मं. २)

यदि रोग के कारण न्यून आयुवाला हो अथवा संसार के सुखों से दूर हो गया हो चाहे मृत्यु के निकट पहुँच चुका हो ऐसे रोगी को भी महारोग के पाश से छुड़ाता हूँ। इस रोगी को सौ शरद ऋतुओं तक जीने के लिए प्रबल किया है। इससे यह विदित होता है कि खराब से खराब अवस्था का रोगी जिसे चिकित्सक लोग असाध्य कह देते हैं हवन यज्ञ से अच्छा हो सकता है।

आयुर्वेद के प्रामाणिक ग्रंथ चरक का प्रमाण—

यथा प्रयुक्ता चेष्ट्या राजयक्ष्मा पुराजितः।
तां वेद विहिता मिष्टि मा रोग्यार्थी प्रयोजयेत्॥
(चरक चिकित्सा स्थान अ० ८ श्लोक १२२)

जिस यज्ञ के प्रयोग से प्राचीन काल में राजयक्ष्मा रोग नष्ट किया जाता था आरोग्य चाहने वाले मनुष्य को उसी वेद विहित यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए।

विज्ञानवेत्ताओं का अनुभव—

फ्रांस के विज्ञानवेत्ता प्रो० टिलवर्ट कहते हैं कि जलती हुई खांड के धुंए में वायु शुद्ध करने की बड़ी शक्ति है इससे हैजा तपेदिक चेचक इत्यादि का विष शीघ्र नष्ट हो जाता है।

डा० टाटलिट साहब ने मुनक्का, किशमिश इत्यादि सूखे फलों को जलाकर देखा है और मालूम किया है कि इनके धुंए से टायफायड ज्वर के कीटाणु केवल आध घंटे में और दूसरे रोगों के कीटाणु दो घंटे में समाप्त हो जाते हैं।

मद्रास के सेनेटरी कमिश्नर डा० कर्नल किन्ग R. M. S. ने कालिज के विद्यार्थियों को बताया है कि घी चावल में केशर मिलाकर जलाने से रोग के कीटाणुओं का नाश होता है।

फ्रांस के डा० हेफकिन, जिन्होंने चेचक के टीके का आविष्कार किया है कहते हैं कि घी जलाने से रोग कृमि मर जाते हैं।

हवन द्वारा प्रदर की चिकित्सा—

रोगियों की शारीरिक स्थिति अलग अलग प्रकार की होती हैं जिनको शरीर में स्नान आदि द्वारा कठिनाई नहीं हो वे हवन पर स्वयं बैठ सकते हैं, जिनको असुविधा हो उनको आहुति स्वयं तो नहीं देनी चाहिए हवन स्थान के निकट ही बैठ जाना चाहिए। जो रोगी असमर्थ हों उनकी शय्या के समीप ही हवन किया जा सकता है। वे रोगी हवन की ओर मुख किये हों ताकि हवन में होमी हुई आहुतियों की गंध उनके मुख और नासिका तक पहुँचती रहे।

ऐसे हवन चिकित्सा प्रयोजन के लिए होते हैं तांबे के हवन कुंड में अथवा भूमि पर १२ अंगुल चौड़ी १२ अंगुल लम्बी ३ अंगुल ऊंची पीली मिट्टी या बालू की वेदी बना लेनी चाहिए। यदि रोगिणी हवन पर बैठ सकती हो तो उसे पूर्व की ओर मुख कराके बिठाना चाहिए। शरीर शुद्धि मार्जन शिखा बंधन आचमन न्यासगायत्री मंत्र से करके वेदी और अग्नि का पूजन जल अक्षत आदि से करके गायत्री मंत्र के साथ हवन आरम्भ कर

देना चाहिए। विशेषतः अखंड ज्योति प्रेस मथुरा द्वारा प्रकाशित गायत्री हवन पद्धति तीन आने में मिलती है देख लेना चाहिए। कम से कम २४ आहुतियां अवश्य देनी चाहिए। आवश्यकतानुसार एक दो बार किसी पात्र में अग्नि रख कर थोड़ी सी औषधियां थोड़ी देर के लिये रोगी के निकट धूप की भांति जलाई जा सकती हैं।

प्रदर पर प्रयोग होने वाली सामिगी—

कमलगट्टा, गूलर के फल, अशोक की छाल, लोध्र, कमलकेशर, माजूफल, सुगन्धवाला, अर्जुन की छाल। यह सभी औषधियां समान मात्रा में लेनी चाहिए। तैयार औषधियों का दशवां भाग शर्करा तिल, यव, दसवां भाग घृत भी मिला लेना चाहिए। हवन के अन्त में समीप रखे हुए जल पात्र में कुश, दूर्वा या पुष्प डुबो डुबो कर गायत्री मंत्र पढ़ते हुए रोगी पर उस जल का मार्जन करे। यज्ञ की भस्म रोगी के मस्तक, हृदय, कंठ, पेट, नाभि तथा दोनों भुजाओं से लगावें। घृत पात्र में जो घृत बच जावे उसमें से कुछ बूंदे लेकर रोगी के मस्तक तथा हृदय पर लगावें।

प्रदर पर आयुर्वेदिक चिकित्सा—

कमलकेशर, पीपल की लाख, नागकेशर, प्रत्येक १-१ तोला, मिश्री ३ तोला, कूट-पीसकर कपड़छन करलो। मात्रा १ माशा प्रातः सायं, अनुपान बकरी का दूध अथवा ताजा पानी।

गुण—भयानक रक्तप्रदर, रक्तार्श, रक्तपित्त को शीघ्र नष्ट करता है।

(२) अशोक की छाल, काकजंघा, पठानी लोध, चिकनी सुपारी प्रत्येक १-१ छटांक, बड़ी इलायची के दाने, माजूफल २॥-२॥ तोला। सबको पीस छानकर चूर्ण बनाओ। मात्रा ३-३ माशा गोदुग्ध के साथ प्रातः सायं दें। यह सब प्रकार के प्रदरों को नष्ट करता है।

(३) शतावर, पठानीलोध, समुद्र शोष विधारा ५-५ तोला मिश्री २० तोला का चूर्ण बनाओ। ६ माशा प्रातः सायं दूध के साथ दें। यह दोनों प्रकार के प्रदरों पर लाभदायक है।

(४) सफेद चन्दन, हाऊबेर, जटामांसी, पठानी लोध, पाठा, कुड़े की छाल, खस, इन्द्रजौ, कमलकेशर, नागकेशर, अतीस, बेलगिरी, धाय के फूल, रसौत, आमकी गुठली, जामुन की गिरी मोचरस, छोटी इलायची, मिश्री, नीलकमल अनार के फूल, मजीठ सब समान भाग लेकर चूर्ण बनावें। मात्रा—३ माशा, प्रातः सायं शहद से चटाकर चावलों का धोवन पिलाओ। यह सब प्रकार के प्रदर पर रामबाण है।

(५) रूसीमस्तंगी असली, शतावर, छोटी इलायची के दाने, बंशलोचन प्रत्येक २-२ तोला ढाक का गोंद १० तोला, मिश्री १० तोला चूर्ण बनालें। मात्रा—३ से ६ माशा। समय-प्रातः सायं अनुपान—गोदुग्ध तथा भोजन के पश्चात् सारिवाद्यासव १-१ तोला लें। गुण—पुराना प्रदर अवश्य नष्ट होता है।

एक दिन में प्रदर को दूर करो—

(६) आधा पाव बताशे देशी शकर के लेकर उनमें १ तोला के लगभग बरगद का दूध प्रत्येक बताशे में १०-१० बूंद डालकर रोगी को देवें। प्रातः मध्यान्ह, सायं तीन समय में रोगी को खिला देवें। परन्तु रोगी को इसका पता नहीं होना चाहिए। यथा शक्ति कुमारी कन्या को गुड़ या बताशे बांटें।

—श्री पं० नन्दकिशोर शर्मा वैद्य विशारद
सूर्य चिकित्सालय, आगर (शाजापुर)

प्रदर की चिकित्सा

आचार्य डॉ० शिवपूजन सिंह कुशवाहा

आयुर्वेदिक चिकित्सा—(१) लोध्रचूर्ण ६ मा., काकजंघा का रस १ तोला, मधु १ तोला, प्रातः सायंकाल।

(२) श्वेतकमल की पंखुड़ी २ माशा, जीरा, १ माशा, ककड़ी के बीजों की मिंगी २ माशा, मिश्री २ माशा, जल के साथ पीसकर एक सप्ताह तक प्रातः सायं पिलावें।

(३) दारूहल्दी का चूर्ण १ तोला, प्रातः तथा सायंकाल दें।

(४) नागकेशर का चूर्ण १ तोला, अनुपान-मट्ठा, प्रातः तथा सायंकाल ३ दिनों तक।

(५) इन्द्रजव १ तोला, लोध्र १ तोला, श्वेत-चन्दन १ तोला, जटामांसी १ तोला, खस १ तोला, कमलकेशर १ तोला, नागकेशर १ तोला, आंवला १ तोला, अतीस १ तोला, बेल का गूदा १ तोला, रसौत १ तोला, जामुन की गिरी १ तोला, आम की गिरी १ तोला, मोचरस १ तोला, कमलगट्टे की गिरी १ तोला, सोंठ १ तोला, अनार १ तोला, कूठ १ तोला, मजीठ १ तोला गुजराती इलायची का दाना १ तोला, कुटजछाल १ तोला, नागरमोथा १ तोला, हाऊबेर १ तोला, पाढ़ल १ तोला, इन सब को चूर्ण कर कपड़छन करें। मात्रा ½ से २ तोला, अनुपान-चावल धोवन तथा मधु, प्रातः तथा सायंकाल।

(६) प्रातः सायं चन्द्रप्रभा वटी और भोजनोपरान्त अशोकारिष्ट पीना लाभदायक है।

(७) कुश तृण की जड़ को चावलों के धोवन में घोटकर तीन दिन के पीने से सब प्रकार के प्रदर नष्ट हो जाते हैं।

(८) कतीरा २ तोला, श्वेत कत्था २ तोला, गोखरू बड़े २ तोला, खड़िया मिट्टी २ तोला, इन सबको कूट कर चूर्ण बनालें। प्रातः काल ६ माशे चूर्ण मिश्री मिले हुए बकरी के तीन छटांक दुग्ध के साथ सेवन करें। इसी प्रकार सायंकाल भी सेवन करें।

(९) संगजराहत ६ माशे, मिश्री १ तोला मिलाकर चावल के धोवन के साथ सेवन करनी चाहिए।

(१०) हजरतयहूद पिसी हुई ६ माशे, मिश्री १ तोला दोनों को चावल के धोवन से सेवन करें।

(११) गेंदे के पत्ते २ तोले १० तोले पानी में पीसकर शहद डालकर छानकर रोगिणी को पिलाने से अपूर्व लाभ होता है।

(१२) चौलाई की जड़ और रसौत बराबर-बराबर लेकर सुखा कर चूर्ण बनाकर मधु और चावलों के साथ सेवन करना चाहिए।

होमियोपैथिक औषधियां—

पल्सेटिला[6]—सब तरह के प्रदरों में यह लाभप्रद है। श्वेत रंग का गाढ़ा स्राव ऋतु के पश्चात् यदि बढ़ जाय, दर्द कम हो तब देना चाहिए।

कलकेरियाकार्ब ३०, २००—जब दुग्ध की तरह श्वेत प्रदर हो, जरायु में जलन, खुजली, वेदना हो। लड़कियों को प्रदर हो तो और गण्डमाला धातुग्रस्ता महिलाओं के प्रदर में यह अधिक लाभप्रद है।

एसिड नाइट्रिक[6]—उपदंश या अन्य रोगों के भोगने के बाद, अधिक पारा खाने के बाद जब पहिले मैला, गाढ़ास्राव बाद को ५-६ दिन तक पतला पानी सा तथा मांस के धोवन सदृश दुर्गन्धित स्राव हो तो यह उपयोगी है।

सिपिया ६, २००—प्रसव वेदना के सदृश दर्द, मलावरोध, हरित रंग का दुर्गन्धित स्राव पतली और वायु-प्रधान नारियों के लिए यह रामबाण है।

वोविष्टा[12]- अधिक मात्रा में दुर्गन्धित प्रदर की यह अचूक औषधि है। अण्डे के श्वेत अंश के रङ्ग

का पुराना श्वेत प्रदर और उसके साथ रोगिणी अपना माथा बढ़ा हुआ समझती है। ऋतु के एक दिन पहले या बाद स्राव पीला या हरा, जलन देने वाला, वस्त्र में पीला दाग पड़ने वाला, कामेच्छा प्रबल, चलने के समय स्राव हो तो यह अत्यन्त उपयोगी है।

क्रियोजोट ६—जब ऋतु के ४-५ दिन पश्चात् पीला, कच्चे अन्न के समान दुर्गन्धि देने वाला स्राव हो, जरायु के बाहर सूजन हो, डंक मारने जैसा दर्द हो, जलन हो, खुजली हो, जांघ में स्राव के स्पर्श से घाव हो जाय और पीठ में दर्द हो तो यह उपयोगी है।

सल्फर३०—पुराने श्वेत प्रदर में यह उपयोगी है।

वायोकैमिक औषधियां—

केल्के फास—बहुत संतान वाली नारी को लाभप्रद है।

केल्के-सल्फ—प्रदर जनित स्नायविक उपसर्ग मौजूद रहने पर उपयोगी है।

एलोपैथिक औषधियां—

(१) 'अशोककोर्डियल' अच्छी औषधि है। यह 'अशोकारिष्ट' के समान काम करती है।

(२) यूनिचम का 'लिक्विड मेनोरिन' (Liq. Menorin) १-२ ड्राम दिन में तीन बार सेवन करना चाहिए।

(३) एलारुम्बिन 'मोरोन गोलियां' (Myron) मुख से सेवन करनी चाहिए।

(४) हिमालय ड्रग कं० की 'ल्यूकोल गोलियां' (Lucol Tablates) मुख से।

(५) एलेम्बिक का 'एलेट्रिस इलेक्जीर' (Aletris Elizir) पेय पदार्थ है। एक चम्मच गर्म पानी से दिन में ४ बार।

इन्जेक्शन—विटामिन बी कम्पलेक्स, लीवर-एक्सट्रैक्ट बीथ फौलिक एसिड, मिल्क विद आयोडिन, कैलशियम सैण्डोज विद ४०० सि. ग्राम विटामिन सी।

रक्त प्रदर—

निदान—मद्यपान, अप्राकृतिक भोजन, अजीर्ण, अधिक सहवास, गर्भपात कराने, ऊंट अश्व की सवारी का अधिक उपयोग, चिन्तित रहने, हस्त-मैथुन (गाजर, मूली जैसी चीजों से मैथुन करना) गन्दे, अश्लील, उत्तेजक नाटक चलचित्र देखने से, प्रायः 'रक्त प्रदर' (Menorrhagia) होता है।

शीघ्र शीघ्र गर्भाधान से गर्भाशय संकोचन और विकास-शक्ति में शिथिलता आजाती है। डिम्ब ग्रन्थि और डिम्बप्रणालियों की नैसर्गिक शक्ति नष्ट हो जाती है। गन्दे उपन्यास, अश्लील नाटक तथा चल चित्रों से मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है। विचारों के विकार अन्तस्तल को हिला देते हैं, और आर्तव को असमय ही निकालने लगते हैं।

रक्त प्रदर चार प्रकार का होता है—(१) वात प्रदर, (२) पित्त प्रदर, (३) कफ प्रदर, (४) त्रिदोष प्रदर।

वात प्रदर—वायु के कारण जो प्रदर हो उसे वात प्रदर कहते हैं। इसमें आर्तव शुष्क और झाग-दार थोड़ा-थोड़ा और कष्ट के साथ निकलता है. और देखने में मांस के पानी जैसा होता है।

पित्त प्रदर—पित्त की खराबी से पित्त प्रदर होता है। इसमें आर्तव नीला, काला, लाल, पीला निकलता है। एक दिन कई तरह का आर्तव निकलता है। शरीर में दाह रहती है। आर्तव गर्म और मात्रा में अपेक्षाकृत विशेष होता है। पित्त की खराबी से होने वाले और रोग भी हो जाते हैं जैसे रक्तपित्त, मूत्र में जलन आदि।

कफ प्रदर—इसमें रुधिर गोंद की तरह लसदार गुलाबी जल के सदृश रंग होता है। आर्तव का रंग सफेदी लिये हुए होता है। आर्तव आंव के पानी जैसा अथवा चावलों के धोवन जैसा होता है। कफ

की खराबी से होने वाले रोग 'योनि कंडू' भी हो जाते हैं।

त्रिदोष प्रदर—जब शरीर में तीनों दोष अव्यवस्थित होकर प्रदर उत्पन्न करते हैं तो यह रोग होता है। इसमें आर्तव घृत, शहद, चर्बी के समान निकलता है। शव गन्ध के समान रुधिर निकलता है। आर्तव का रंग हरताल जैसा होता है।

आयुर्वेदिक औषधियां—

(१) ४ माशे मुलहठी का चूर्ण, ४ माशे मिश्री के साथ मिलाकर सेवन करने और ऊपर से चावल का धोवन पीने से पित्त प्रदर दूर हो जाता है।

(२) २½ तोला आंवले के बीज पानी में पीस कर शहद और मिश्री के साथ चाटने से १५ दिन में सब तरह के प्रदर नष्ट हो जाते हैं।

(३) चिरायता, अडूसा, रसौत, दारुहल्दी, नागरमोथा, लालचन्दन का क्वाथ शहद के साथ पीने से सब तरह के प्रदर नष्ट हो जाते हैं।

(४) प्रवालभस्म चन्द्रपुटी १ माशा की मात्रा में ताजे गौ या बकरी के दुग्ध से सेवन करनी चाहिए।

(५) पके गूलर फल का चूर्ण ३ माशा, मिश्री ३ माशा प्रातः सायं दूध के साथ सेवन करने से रक्तप्रदर में अपूर्व लाभ होता है।

(६) चन्दनादि चूर्ण (शा. सं.) ३ माशा, मधु ३ माशा प्रातः सायं चावल के धोवन के साथ देना चाहिए।

(७) पुष्यानुग चूर्ण (च० द०) १½-३ माशा, मधु ३ माशा, चावल के धोवन से साथ प्रातः सायं देना चाहिए।

(८) अशोक घृत (शा० सं०) १ तोला प्रातःसायं सेवन करना चाहिए।

(९) फलकल्याणघृत १ तोला, प्रातःसायं सेवन करना चाहिए।

(१०) प्रदरान्तक रस–इससे प्रदर रोग और उससे उत्पन्न हुई सारी शिकायतें समाप्त होती हैं। एक-एक गोली प्रातः सायं आंवला स्वरस और मधु के साथ दें।

(११) प्रदररिपु रस—जिस समय रक्त का प्रवाह प्रबल वेग से हो, उस समय इसका प्रयोग अत्यन्त लाभकारी है। १-२ गोली प्रातः सायं 'खून-खराबा' १ माशा और मधु से चाटकर ऊपर से चावल का धोवन, अशोक छाल का क्वाथ या अडूसे का रस पीना चाहिए।

(१२) प्रदरारि लोह (र० यो०)—सभी प्रकार के प्रदर रोग तथा कुक्षिशूल में लाभदायक है। १-२ गोली प्रातः सायं अशोकछाल के क्वाथ या कुशमूल स्वरस के साथ देनी चाहिए।

(१३) प्रदरान्तक लौह (र० यो०)—सब प्रकार के नीले पानी, रक्त प्रदर, श्वेत प्रदर को विनाश कर मासिक धर्म साफ लाता है। असाध्य प्रदर रोग भी इससे नष्ट होता है।

मात्रा—३-४ रत्ती दिन में दो बार मिश्री और घृत १-२ माशा तथा शहद ३ माशा के साथ।

बायोकेमिक चिकित्सा—

गाढ़ी पीले रंग की या रक्त मिश्रित पीव के स्राव रहने पर "कैल्केरिया-सल्फ्यूरिकम" (कैल्क-सल्फ) ६ X देना चाहिए।

एलोपैथिक चिकित्सा—

(१) कैल्शियम लैक्टेट २० ग्रेन, ३ मात्रा जल के साथ लेने से रक्त रोकता है।

(२) बेयर कृत "सिमेलेट" गोलियां-१-२ गोली ६ बार प्रति दिन।

(३) सीबाकृत "इरबोलिन" १ गोली ३ बार प्रति दिन।

(४) ओ. आर. सी. का "अशोका कोर्डियाल" १ से २ बड़ी चम्मच पानी से दो बार प्रति दिन।

(५) आरपी का "फीमेल कोर्डियाल" पेय-१-२ ड्राम दिन में दो बार।

(६) अलेम्बिक का "इलेट्रिस इलक्जीर" पेय एक चम्मच गर्म पानी से प्रति ४ घण्टे में।

(७) रोची की "सिनकेविट" गोलियां सेवन करनी चाहिए।

(८) हिन्द केमिकल्स का "अशोकोलेट्रिस" पेय, एक से-दो चम्मच दो बार या तीन बार प्रति दिन पानी से भोजन के पश्चात्।

(९) बूट्स की "एथिस्टोरोन" गोलियां मुख से सेवन करनी चाहिए।

(१०) सैन्डोज की "बेलारगल" गोलियां ४ गोली प्रति दिन मुख से।

(११) सैन्डोज की "गानरगेन" १ गोली तीन बार प्रति दिन।

(१२) सैन्डोज की "न्यो-गानरगेन" गोलियां ३ बार प्रति दिन।

(१३) ग्लैक्सो की "औस्टो कैल्शियम" गोलियां १-१ गोली दिन में ३ बार मुख से सेवन करें।

एलोपैथिक सूची-चिकित्सा—

(१) कैल्शियम ग्लुकोनेट(सैन्डौज) शिरा द्वारा।

(२) 'फाइब्रोस्टैब' (बट्स) मांस पेशी द्वारा।

(३) ल्यूटोस्टैब (बूट्स) मांसपेशी द्वारा २, ५, १० मिली ग्राम के एम्पुल्स।

(४) प्रोजिस्टिन बी. डी. एच मांसपेशी द्वारा।

(५) आयाजोल (यू. डी. एच.) एक एम्पुल दो बार प्रतिदिन।

(६) न्यो-होमबियोल १५ मि. ग्रा. (आरगेनन) प्रतिदिन ५ दिन तक।

(७) मैनेटोल-१-२ एम्पुल मांसपेशी द्वारा (बेयर कृत)।

(८) कांगोरेड (बंगाल इम्यूनिटी)-शिरा द्वारा।

(९) इटिसाइक्लिन (सीवा)- ५-१५ मि. ग्रा. प्रतिदिन मांसपेशी द्वारा।

(१०) ल्युटोसाइक्लिन(सीवा)मांस-पेशी द्वारा।

श्वेत और रक्त प्रदर में संयम—लाल मिर्च, खटाई, अचार, चटनी, शराब, करेला, बैंगन, प्याज, लहसुन, आलू इनका सर्वथा त्याग करें।

नाटक, गंदे उपन्यास पढ़ना, चित्रपट देखना, पति-सहवास त्याग दें। खुली हवा और सूर्य प्रकाश का सेवन करना चाहिए।

आचार्य डा० शिवपूजन सिंह कुशवाहा 'पथिक'
बी. ए., एच. एम. डी. एस.
C/o मैसर्स कूपर एलिन ब्रांच
फ्लेक्स सेल्स आफिस, कानपुर।

(२) प्रदर की चिकित्सा

श्री वैद्य खेमराज शर्मा छांगाणी

रक्त प्रदर (असृग्दर) की चिकित्सा में सुश्रुताचार्य एवं चरकाचार्य दोनों के मतानुसार रक्तपित्त का उपचार करना चाहिए। यथा—

तरुण्या हित सेविन्यास्तल्पोद्रवं भिषक्।
रक्तपित्त विधानेन यथावत् समुपाचरेत्॥
—सु. सू. शा. अ. २

रक्तातिसारिणां यच्च तथा शोणित पित्तिनाम्।
रक्तार्शसां च यत्प्रोक्तं भेषजं तच्च कारयेत्॥
—च. चि. ३०

इसी प्रकार अधोगत रक्तपित्त में वमन एवं ऊर्ध्वगत में विरेचन का प्रथम प्रयोग आवश्यक है यथा—

विधेयं रक्तपित्ते च यथाशक्ति विलंघनम्।
अधोगे वमनं शस्तमूर्ध्वगे तु विरेचनम् ॥

इस प्रकार वमन द्वारा शोधन करके बृंहण चिकित्सा करे। यथा—

"अधोगे रक्तपित्ते तु बृंहणा मधुरो रसः"

वमनार्थ मैनफल से मिश्रित सत्तुओं का मंथ (तर्पण) शर्करा और मधु के साथ देवें अथवा शक्कर के साथ जल मैनफल से मधु के जल को मैनफल के साथ मुलैठी की जड़ को मैनफल से दूध के साथ मैनफल को या गन्ने के रस को मैनफल के साथ अधोगामी रक्तपित्त की चिकित्सा प्रथम प्रयोग करें।

इस शोधन के पश्चात् 'यथास्वं मन्थपेयादिः प्रयोज्यो रक्षताबलम्' के अनुसार बल की रक्षा करें व दोषों के अनुसार मन्थ, पेया आदि का बल, अग्नि एवं देहबल के लिए प्रयोग करावें।

मन्थ—पित्तनाशक फल यथा आंवला, द्राक्षा, गंभारी व मुलैठी से मन्थ तैयार करके देवें। इसी प्रकार मधु खर्जर, द्राक्षा, फालसा, शक्कर इन पांचों द्रव्यों के सारों से पानी में लाजा के सत्तू बनाकर मन्थ घृत के साथ मिलाकर रोगी को पिलावें। यदि रोगी को अम्लरस पसन्द हो तो मन्दाग्नि वाला रोगी रुचि के लिए अनारदाने एवं आंवले द्वारा बनाये मन्थ का सेवन करे।

पेया बनाने के प्रयोग—

१. कमल, कमलकेशर, पृश्नपर्णी व प्रियंगु
२. खस, लोध (शावरः) सोंठ, लाल चन्दन
३. हाऊबेर, धातकी पुष्प, बेलगिरि एवं धमासा

ये तीन प्रकार की पेया के अलावा ४ प्रकार की पेया और भी अष्टांगहृदयकार ने दर्शायी हैं यथा (१) चिरायता. खस, मुस्ता (२) मसूर पृश्नपर्णी। (३) शालपर्णी. मूंग। (४) बला. घृत हरेणु। इस प्रकार इन उपरोक्त पेया में से कोई भी प्रयोग करें।

रक्तरोधक वटी (रसतन्त्रसार द्वि० भा०)—

प्रवालपिष्टी २ तोला, रसौत, गिलोय सत्व, स्वर्णमाक्षिक भस्म, बकायन (महानिम्ब) के पत्ते, नीम के कोमल पत्ते, १-१ तोला कपूर ३ माशे। सबको घृतकुमारी के रस में मर्दन करके १-१ रत्ती की गोलियां बनालें एवं स्वर्णगैरिक चूर्ण में डालते जांय ताकि आपस में चिपकें नहीं।

मात्रा—१ से ३ गोली तक, दिन में दो से चार बार हर तीन घण्टे के बाद जल, बकरी के दूध अथवा लस्सी से दें। हर प्रकार के रक्तस्राव में उपयोगी है।

(२) अकीक पिष्टी, कहरवा (तृणकान्त मणि) पिष्टी १-१ तोला, खूनखराबा (दम्बुल अखवैन) २ तोला और रसौत ३ तोला सबको मिलाकर मटर के समान गोलियां बनावें।

मात्रा—२-२ गोली चावल के धोवन से दिन में दो तीन बार। यह वटी अधोगत एवं ऊर्ध्वगत दोनों प्रकार के रक्तस्राव में उपयोगी है किन्तु विशेषकर रक्तप्रदर एवं रक्तार्श दोनों में लाभकारी है। रसौत का सम्मिश्रण होने से कोष्ठबद्धता भी नहीं होती है।

(३) अशोक छाल (ताजी मिले तो उत्तम है अन्यथा अधिक पुरानी न हो) २ तोले को जौकुट बनाकर आध सेर पानी में उबालें। जब १ छटांक शेष रहे तब उतार छानकर एक पाव गौदुग्ध में उबालें। जब केवल गोदुग्ध का वजन शेष रहे तब 'रक्त प्रदर' वाली स्त्री को ठंडा कर पिलावें। नित्यप्रति एक बार के सेवन से एक मास में निश्चय ही लाभ होता है। आवश्यकतानुसार चन्द्रकलारस बोलबद्ध रस या अन्य रक्तरोधक वटी आदि भी दे सकते हैं।

(४) भयङ्कर होते हुए भी रक्तप्रदर में कई बार मधुयष्ठि चूर्ण ६ माशे तक की मात्रा ताजे जल से देते ही लाभ होने लगता है और इसी प्रकार लज्जावन्ती पञ्चाग चूर्ण १-१ माशा दिन में ३ बार

गाय के घी से अथवा ठंडे जल से देने पर रक्त प्रवाह बन्द हो जाता है। रक्तस्राव बन्द होने पर दूसरे दिन मात्रा कम कर देनी चाहिए।

(५) जिस प्रकार पाश्चात्य चिकित्सा में रक्त-स्राव को रोकने के लिए केल्शियम Calcium का व्यवहार अधिकाधिक किया जाता है उसी प्रकार हमारी भी कई औषधियां जो कि चूने का सेन्द्रिय कल्प हैं यथा मौक्तिक, प्रवाल, शङ्ख, कपर्दिका, शौक्तिक भस्म भी अच्छा कार्य करती है। इन सबके सम्मिश्रण एवं गिलोय सत्व, स्वर्णगैरिक को मिलाकर एक 'कामदुधारस' नामक अत्युत्तम औषध तैयार होती है जो हर प्रकार के पित्त विकार एवं तज्जनित व्याधि में उचित अनुपान से देने पर अव्यर्थ औषधि है। हम चन्द्रकलारस एवं कामदुधा रस २-२ रत्ती शर्बत अनार अथवा मुरब्बा आंवला से दिन में तीन बार देते हैं तब अच्छा उपकार दर्शाता है।

(६) पुष्यानुग चूर्ण (चरक संहिता)—

पाठा २ भाग तथा जामुन की गुठली, आम की गुठली की गिरी, पाषाण भेद, रसाञ्जन, मोच-रस, मजीठ कुड़ा की छाल, केशर, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, लोध, गेरू, कायफल, मिर्च, सोंठ, मुनक्का, रक्तचन्दन, अरलू (श्योनाक) छाल इन्द्रजौ, अनन्तमूल, धातकी पुष्प, मधुयष्टि, अर्जुनत्वक् ये सब समभाग लेकर चूर्ण बनावें।

मात्रा —१॥ से ३ माशा पर्यन्त प्रातःसायं। अनुपान—चावल का धोवन, शहद मिलाकर। लोध का चूर्ण दुग्ध में मिलाकर दो बार सेवन करावें। यह चूर्ण रक्तप्रदर के अलावा सब प्रकार के श्वेत नील, पीत प्रदर, रजोविकार, योनि दोष, रक्तातिसार और बवासीर का भी शमन करता है।

(७) सौराष्ट्र (फिटकरी) भस्म अथवा इसका फूला लेकर इसमें आधी मात्रा स्वर्णगैरिक मिला कर शीशी में सुरक्षित रखें। मात्रा १ माशा पर्यन्त अनुपान—मिश्री मिलाकर शीतल जल, दूध बकरी का एवं लस्सी के साथ आवश्यकतानुसार दिन में तीन चार बार देवें। यह सरल प्रयोग भी रक्तस्राव में तुरन्त लाभ करता है।

(८) संगजराहत भस्म अकेली अथवा स्वर्ण-गैरिक मिलाकर उपरोक्त अनुपान से लाभकारी सिद्ध हुई है।

(९) नागकेशर, छोटी इलायची के दाने सम भाग मिलाकर चूर्ण बनावें एवं उतनी ही मिश्री मिलाकर ३ माशे की मात्रा शीतल जल अथवा गोघृत से देने पर लाभ होता है।

(१०) मोचरस का चूर्ण १॥ से ३ माशे की मात्रा में दिन में ३ बार गो दुग्ध से देने पर लाभ होता है।

सुश्रुतोक्त छः योग—

(१) ककड़ी की जड़ का कल्क बनाकर मधु के साथ अथवा चावल के साथ सेवन करावें।

(२) मधुयष्टि (मुलैठी) का चूर्ण एक कर्ष की मात्रा में उपरोक्त अनुपान से दें।

(३) चन्दन, मुलैठी एवं लोध समान भाग मिलाकर उपरोक्त अनुपान के साथ सेवन करावें।

(४) इंगुदी की मज्जा, मुलैठी दोनों को मधु एवं शर्करा के साथ सेवन करावें।

(५) करंज बीज का चूर्ण शहद और शक्कर के साथ दें।

(६) करंज बीज, नमक (सैंधव) इनको किंचित उष्ण करके दही के पानी के साथ सब प्रकार के रक्तपित्त में तीन दिन प्रयोग करावें। ये छहों प्रयोग उत्तम हैं।

पाश्चात्य चिकित्सा में रक्तस्राव रोकने के लिये निम्नलिखित औषधियों का व्यवहार कराया जाता है।

केलिशयम ग्लूकोनेट, केल्शियन लेक्टेट, विटा-मिन "सी", विटामिन 'के', कोंगोरेड।

उपरोक्त औषधियों के सूचीवेध अथवा गोलियां भी तैयार मिलती हैं जिन्हें अवस्थानुसार

न्यूनाधिक मात्रा में दिया जाता है। इसी प्रकार डूशिंग में डेटाल,लायसाल अथवा फेयरजिनाल या लिस्टरीन का व्यवहार होता है, किन्तु खासकर रक्त को तुरन्त बन्द करने के हेतु फिटकरी (Alum) पाउडर का डूस शीघ्र स्तंभक गुणकारी होने से रक्तस्राव में अधिक वरता जाता है।

कई वार स्त्रियों का योनिद्वार से होने वाला यह अधोगत रक्तस्राव बहुत इलाज करने पर भी ठीक नहीं होता, तब शस्त्र क्रिया (operation) से अच्छा हो जाता है। इसी प्रकार कुछ स्त्रियों में दो चार मास मासिक धर्म रुक जाता है अथवा न्यून मात्रा में होता है तथा इसी कारण गर्भ स्थापन की शंका भी हो सकती है किन्तु रक्तस्राव की मात्रा बढ़कर रुग्णा को अतिकष्ट होता है तब चिकित्सक उसे रक्तबंद करने की प्रायः सभी औषधियों का प्रयोग कर चुकता है फिर भी लाभ नहीं होता वरन्. रक्त में गोले के गोले पड़ते हैं, तब लेडी डाक्टर की जांच कराकर उसका लेखन (Curette) करा देते हैं, इसके लिए रुग्णा को वेहोश-करके गर्भाशय में स्थित अंश (गर्भ का शेषांश) यंत्रों की सहायता से निकाल देते हैं, पश्चात् उसे जीवाणु नाशक द्रव्यों द्वारा साफ करके उसका सही इलाज किया जाता है, तब प्रायः उसी दिन से रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

—वैद्य श्री खेसराज शर्मा छांगाणी
आर्वी (वर्धा)

रक्तप्रदर की चिकित्सा

श्री डा० वसन्तलाल तिवारी

सामान्य चिकित्सा—

१—चौलाई की जड़ का सूक्ष्म चूर्ण ३ माशा मधु या चावल के धोवन के साथ लेने से रक्त प्रदर में लाभ होता है।

तण्डुलीयक मूलं स्यादुष्णं श्लेष्म विनाशनम्।
रजो रोध करं रक्तपित्त प्रदर संहरम्॥
आ० सं०

२—liquial extract Ashoka १ से २ ड्राम तक ताजे पानी में मिलाकर दिन में तीन बार प्रयोग करने से रक्त प्रदर में लाभ होता है।

३—आमला की मज्जा १ माशा मिश्री १ माशा मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण करें। ऐसी १-१ मात्रा प्रातः सायं गौदुग्ध से सेवन करने से रक्त प्रदर में लाभ होता है।

तन्मज्जा प्रदरच्छर्दिवति पित्त ज्वरापहा। (भा० नि०)

४—दो तोला यव कुट किया हुआ लालचन्दन का काथ भी प्रदर को नष्ट करता है। यथा—

दुर्गन्धिपूय संकाशे मज्ज तुल्ये तथार्त्तवे।
पिवेद्भद्रश्रियः काथं चन्दन काथमेव च॥
(सु० शा० अ० २)

५—सहदेई (कंघी) और दाभ की जड़ का कपड़छन चूर्ण ३ माशा शहद और तण्डुलोदक से दिन में दो बार लेने से रक्त प्रदर में आशातीत लाभ होता है।

६—भद्र आंवला के बीजों को तण्डुलोदक के साथ प्रयोग करने से दो-तीन दिन में ही स्त्री साधारण रक्त प्रदर से छुटकारा पाजाती है।

भूम्यामलकी बीजन्तु पीतं तण्डुल वारिणा।
दिन द्वय त्रयेणैव स्त्री रोगं नाशयेद् ध्रुवम॥
(बंगसेनः)

७—गूलर के फल का रस १ तोला तथा १ तो० मधु मिलाकर सेवन करें और पथ्य में मिश्री सहित साठी के चावलों की खीर का सेवन करें।

क्षौद्र युक्तां फलरसमौदुम्बर भवं पिवेत।
असृग्दर विनाशाय सशर्करपयोऽन्नभुक ॥
(भा० प्र०)

८—रुधिर स्राव को रोकने की अपूर्व शक्ति फिटकरी के अन्दर विद्यमान है। अतः विधिवत फिटकरी की बनाई हुई भस्म ६ रत्ती तथा ६ रत्ती मिश्री मिलाकर धारोष्ण गौदुग्ध के साथ लें। भयानक रक्तप्रदर को नष्ट करती है।

६—गोदन्तीभस्म २ रत्ती प्रवाल पिष्टी २ रत्ती मिलाकर सेवन करने से रक्त प्रदर में लाभ होता है।

१०—केवल शुद्ध सोना गेरू का चूर्ण १ माशा दूध के साथ प्रयोग करने से लाभ होता है। यथा—

सुवर्णगैरिकं शुद्धं मधुरं शिशिरं परम्।
तुवरं ताप हरणं हिक्का वमि निवारणम् ॥
रक्तपित्त प्रशमनं तथाऽसृग्दर नाशनम् ॥
(भा० प्र०)

११—आमला, हरड़, रसौत, सब सम भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करके यथोचित मात्रा में जल के साथ सेवन करने से धारावत प्रवाहित रक्त प्रदर इस प्रकार शान्त होता है जैसे बांध से पानी का वेग। यथा—

धात्री च पथ्या च रसांजनंच-
विचूर्ण्य सर्वं सजलं नितीतम्।
अनन्त रक्तश्रावमुग्र वेगं-
निवारयेत सेतुरिवाम्बुवेगम् ॥
(रसेन्द्रसार सं०)

रक्त प्रदर की विशिष्ट चिकित्सा—

१—दारू हल्दी, रसौत, अडूसा, नागरमोथा, वेल की गिरी, शुद्ध भिलावा, चिरायता, कुमदिनी। सब समान भाग लेकर जौ कुट करें। पुनः जौ कुट किया हुआ २॥ तोला द्रव्य १ पाव जल में क्वाथ करें, ३/१ छ० अवशेष रहने पर कपड़े से छान कर, शीतल हो जाने पर मधु मिलाकर रोगिणी को प्रातः सायं पिलावें, इसके प्रयोग से तीव्र रक्त-प्रदर व प्रदर जन्य वेदना शीघ्र ही शान्त होती है।

नोट—लेखक ने अडूसा के स्थान पर अडूसे की जड़ की छाल तथा कच्चे विल्व फलों की गिरी का प्रयोग किया तथा योग से पूर्ण लाभ हुआ।

२—गिलोय सत्व ४ रत्ती, शुभ्रा भस्म २ रत्ती, गोदन्ती भस्म २ रत्ती, शुद्ध स्वर्ण गैरिक १ रत्ती, Calcium lactate (कैलसियम लेक्टेट) २० रत्ती उक्त मान से सम्पूर्ण द्रव्यों को मिलाकर भली-भांति मर्दन करलें। २ रत्ती से ६ रत्ती तक दिन में आवश्यकतानुसार २-३ बार दूध के साथ प्रयोग में लावें। धारावत प्रवाहित रक्त प्रदर भी शान्त होता है। इस योग के अन्दर रक्तरोध की विलक्षण शक्ति विद्यमान है।

३—पुष्यानुग चूर्ण—(द्रव्य व निर्माण विधि चरक में देखें)। मात्रा—चूर्ण ३ माशा में मधु ३ माशा मिलाकर दिन में ३ बार उचित अनुपान से लें।

४—पुष्कर लेह—(द्रव्य व निर्माण विधि रसेन्द्र सार सं० में देखें) मात्रा—आधा तोला से १ तोला तक प्रयोग में लावें। यह अवलेह सम्पूर्ण उपद्रवों से युक्त प्रदर को नष्ट करता है। वयः संस्थापक व जठराग्नि प्रदीपक है।

५—पत्राङ्गासव ६ औंस, Gum Acacia (गम एकासिया) १५ ग्रेन, Oil Copaiba (आइल कापीवा) १५ ड्राम, Oil Sandal (संडल) ३० बिन्दु, Aqua Camphor conc. (एक्वा केम्फर कन.) १५ ड्राम, Liq. Farri (लाइकर फेरी) ४ ड्राम, Tr. Cantharidis (केन्थारीडिस) १५ बिन्दु, Aqua Acacia (एक्वा एकासिया) ❀

❀ Aqua Acacea—बबूल के पत्ते ५ छटांक अनार की छाल २ छटांक, चन्दन बुरादा २ तोला, दारुहल्दी ३ तोला, आमा हल्दी ३ तोला, निशोथ

५ औंस—एक्वा एकासिया में गम को भली-भांति मिलाकर, फिर छानकर उसके साथ तैलों को मिला दें। पुनः सम्पूर्ण औषधियों को मिलाकर उपयोग में लावें। मात्रा—१ से २ ड्राम १ औंस जल में मिलाकर दिन में ३ बार लेने से भयानक रक्तप्रदर, गर्भाशय शूल, व प्रदर जन्य सभी शारीरिक उपद्रव शान्त होते हैं।

६–Calcium gluconate with vita. C–. यह इञ्जेक्शन (केलसियम ग्लूकोनेट विद विटामिन सी) सारे शरीर को शक्ति प्रदान करता है। शरीर के किसी भी अंग से बहने वाले रक्त को यह तुरन्त रोक देता है। इसके प्रयोग से हृदय शक्तिशाली होता है। १० प्रतिशत घोल का १० सी. सी. शिरान्तर्गत सूचीवेध हर तीसरे दिन करने से चिरस्रावी रक्त प्रदर में आशातीत लाभ होता है। जिन महानुभावों को शिरान्तर्गत सूचीवेध (Intravenous injection) का पूर्ण अभ्यास न हो उन्हें भूल कर भी इस विधि का अनुसरण न करना ही ठीक है। कारण कभी कभी कैलसियम का शिरान्तर्गत इञ्जेक्शन सद्यः प्राणहारक है।

७–उपरोक्त औषधियों के प्रयोग काल में फिटकरी जल (Alum lotion) से यदि उत्तर वस्ति दी जाय तो चारों ओर सफलता ही सफलता है। उत्तर वस्ति कार्य डूस (Douche) यन्त्र से ही अधिकतर सम्पन्न होता है।

स्फटिकां तोलकमितां पंचाशत्तालकोन्मिते।
जलेविद्राव्य युञ्जीत पलेनोत्तर वस्तिना॥
गर्भाशयं प्रसूतायाः सव्यथं स्थानविच्युतम्।
संकोचयत्याशु तथा रक्तश्रावं रुणद्धि च।

योनिप्रक्षालन विधि—स्त्री को पलंग पर चित्त लिटा देना चाहिए। और उसके घुटने मोड़ दें।

सफेद २ तोला, शतावरी २ तो०, आमला ३ तोला, बेलगिरी ३ तोला, मुलेठी २॥ तोला, सबको एकत्रित करके ६ सेर पानी मिलाकर अर्क विधान द्वारा अर्क खींच कर उपयोग में लावें।

योनि प्रक्षालन के पूर्व तीन वस्ति पात्र तथा बाह्य जननेन्द्रिय (External genital organs) विसंक्रमित करलें। पुनः नाजिल को ६ इञ्च योनि में प्रवेश करके उपरोक्त फिटकरी लोशन को प्रविष्ट करें। योनि में संकोचक पेशियों का अभाव होता है अतः प्रविष्ट किया हुआ लोशन योनि से अपने आप बाहर आने लगता है। बाहर आये हुए लोशन को एकत्रित करने के लिये रुग्णा की दोनों जांघों के मध्य एक पात्र रख देना उचित है। योनि में लोशन प्रविष्ट करते समय वस्ति पात्र को कम से कम २ फीट की ऊंचाई पर रखना चाहिए। योनि प्रक्षालनोपरान्त बाह्य जननेन्द्रिय सूखे और साफ कपड़े से पोंछ कर शुष्क कर देनी चाहिए।
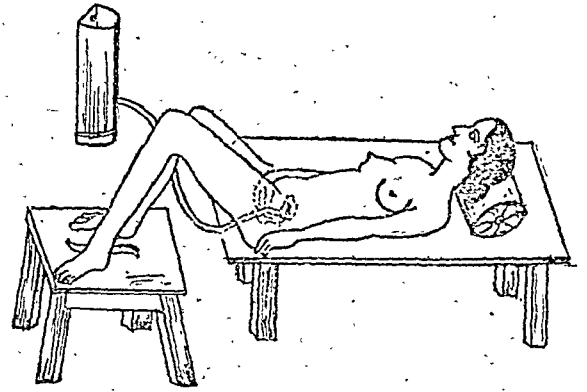
चित्र ५४

रक्त प्रदर में पथ्य—शालि चांवल, जौ, गैहूं, मूंग, चना, मोंठ, मसूर, परवल, केला, गूलर, दूध आदि हितावह हैं।

रक्त प्रदर में अपथ्य—अत्यधिक मैथुन, मूत्र और टट्टी का वेग धारण करना, रात्रि जागरण, दिन का सोना, अग्नि तथा तेज धूप का सेवन, अश्लील व उत्तेजक गानों का गाना व सुनना, लाल मिर्च, गुड़ तथा देर से पचने वाले व विदाही अन्नों का सेवन अहितकर है।

—आयुर्वेद केशरी डा० बसंतलाल तिवारी
विनायक मैडीकल हॉल,
रामनगर पो० गैली (इटावा)

प्रदर रोग और उसकी चिकित्सा

आयुर्वेदाचार्य श्री पं० चन्द्रसेन द्विवेदी

श्वेत-प्रदर—श्वेत या पीला स्राव, स्राव में गाढ़ापन, चिपचिपाहट, दुर्गन्ध पायी जाती है। स्राव अत्यधिक होता है। ज्वर, चिड़चिड़ापन, पेडू, में दर्द, कार्य में मन न लगना, अङ्गमर्द, शिरोभ्रम, तथा स्राव से युक्त व्रण भी पाये जाते हैं।

चिकित्सा—गर्भाशय शोधन के लिए वस्ति देकर स्फटिका भस्म, लैक्टिक एसिड (दुग्धाम्ल) गूलर की छाल के क्वाथ से धावन करें। शतावरी घृत, अशोक की छाल का अर्क, चन्दनादि चूर्ण, प्रदरारि लोह, प्रदरनाशक चूर्ण, पुष्यानुग चूर्ण का प्रयोग लक्षणानुसार कर। अशोकारिष्ट, पत्रांगासव, चन्द्रप्रभा वटी का प्रयोग लाभप्रद है।

अनुभूत योग—(१) रसौत १ तोला, कटीली चौलाई की जड़ का रस ४ तोला, मधु १ तोला मिलाकर तीन मात्रायें बनालें और ४-४ घण्टे बाद पियें। इस प्रकार पन्द्रह दिन के प्रयोग से पूर्ण लाभ हो जाता है।

(२) वाराहीकन्द, भिण्डी की जड़ की छाल का चूर्ण दूनी मिश्री मिलाकर ४ माशा की मात्रा में इक्कीस दिन तक सेवन करने पर पूर्ण लाभ हो जाता है।

(३) शुक्ति भस्म १ तोला, सेलखड़ी १ तोला, रालधूप १ तोला कपड़छन करके ४ रत्ती एलुआ मिलाकर दो मात्रा बनालें। ऊपर से १० मुनक्कों को पीसकर ५ तोला पानी घोलकर पियें। आशु लाभप्रद है।

रक्त प्रदर—रक्त का अधिक स्राव, स्राव का वर्ण कृष्ण, गेरुआ, दुर्गन्ध युक्त, जमा हुआ, छिछड़ेदार होता है। अंगमर्द, पीलापन, रक्ताल्पता, तृषा, ज्वर, अरुचि, क्षुधानाश आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

चिकित्सा—पूर्ण विश्राम करायें। पैरों को ऊँचा करके सिर के नीचे तकिया न लगावें।

योग—१—शैवाल १ तोला, शर्करा के साथ पीसकर पीने पर रक्त जाना बन्द हो जाता है।

२—लाक्षा, लोध्र, श्वेत चन्दन समान भाग लेकर चूर्ण बनालें। श्वेत दूर्वा या दूर्वा के रस के साथ ४-४ माशा सेवन करें। रोगी को लाभ करता है।

३—मृगशृंग भस्म, गिलेरमनी, दम्बुल अखवैन, साठी के चावल पीस लें। दिन में ४ बार लेने पर रक्त प्रदर नष्ट होता है। प्रवालपिष्टी, चन्द्रकला रस, कामदुधा रस, प्रदरान्तक रस आदि का प्रयोग भी लाभदायक है। लोध्रासव, चन्दनासव, उशीरासव, आमलकी रसायन, आमला स्वरस अतिशय लाभकारी हैं।

होमियोपैथिक चिकित्सा—

आयुर्वेदिक चिकित्सा का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। अब होम्योपैथिक चिकित्सा का विवरण भी पाठकों के लिए उपयोगी समझ कर दिया जा रहा है।

श्वेतप्रदर—रोग की आरम्भिक अवस्था में कैल्केरिया कार्ब दें। स्रावाधिक्य, उग्रस्राव, दाह, घाव हो जाने, अमावस्या तथा पूर्णिमा के दिन रोग बढ़ने, आलू खाने पर रोग वृद्धि आदि कारणों में एल्यूमिना ३० लाभ करता है। दूध जैसा स्राव होने तथा व्रण होने की सम्भावना पर कोनियम ३० लाभकारी है।

रक्तप्रदर—प्रारम्भ में एकोनाइट दें। स्राव की अधिकता पर फासफोरस लाभदायक है। सेवाइना, सीपिया, वेलाडोना, कैल्केरिया फास, कैमोमिला, पलसटिला, नक्सवोमिका भी लक्षणानुसार देकर लाभ उठाया जा सकता है।

लक्षणानुसार चिकित्सा इस प्रकार है—

(१) कुमारी अवस्था में प्रदर होने पर—कैल्के, कलोफा।

(२) विदाही स्राव पर—पल्स, सिलिका।

(३) अनुत्तेजक प्रदर पर—क्रियोजोट १२ लाभकारी है।

(४) शीत से उत्पन्न प्रदाह युक्त प्रदर पर—ऐग्नस, मर्क, साइलिशिया।

(५) अण्डे के पीले अंश जैसा स्राव होने पर—बोरैक्स।

(६) नीली झलक वाले स्राव पर—चायना, नक्स, सेवाइना।

(७) रक्त मिश्रित स्राव पर—चायना, सीपिया, एल्यूमिना, मर्क सलकाक्यूलस, ट्रिलियम।

(८) दुर्गन्धयुक्त स्राव पर—सीपिया, मर्क-कर।

(९) दुग्ध सदृश स्राव पर—कैल्केरिया, पल्सटिला, साइलिशिया।

(१०) गाढ़ा स्राव होने पर—पल्सटिला।

(११) पानी सा स्राव होने पर—ग्रेफाइटिस, पल्सटिला, सीपिया।

(१२) पीलापन लिए स्राव पर—सीपिया, कल्केरिया।

(१३) विदाही स्राव पर—फेरम, मर्क, आर्स

लक्षणानुसार औषधि को प्रयोग करने से चिकित्सक रोगी को तुरन्त लाभ प्रदान कर यश का भागी बन सकता है।

पथ्यापथ्य—चिन्ता, जागरण, वमन, परिश्रम, वेगावरोध, स्वामी सहवास, आघात, विरुद्ध भोजन, अध्यशन, भय, रुक्ष कटु तिक्त भोजन, मांस, मदिरा का सेवन तथा धूम्रपान का सर्वथा परित्याग कर दें। टमाटर, परवल, लौकी, चचिंडा खाया जा सकता है। तैल, खटाई, मिर्च तथा गुड़ का सेवन वर्जित है। स्वास्थ्य रक्षा के नियमों का कठोरतापूर्वक पालन करने से ही स्वस्थ रहा जा सकता है।

—आयुर्वेदाचार्य श्री पं० चन्द्रसेन द्विवेदी
चन्द्र रसायन कार्यालय, जलालाबाद (शाहजहांपुर)

प्रदर पर विविध विद्वानों के परीक्षित प्रयोग

स्त्री को जब अत्यार्तव हो और रक्त किसी से बन्द न हो तो निम्नलिखित प्रयोग खिलाने से प्रायः लाभ होता है:—

श्री कविराज जी ने अस्वस्थ होते हुए भी हमारी प्रार्थना पर इस विशेषांक में प्रकाशनार्थ अपने दो सफल प्रयोग भेजने की जो महती कृपा की है वह आपका धन्वन्तरि के प्रति अगाध स्नेह एवं आयुर्वेदोन्नति के सभी प्रयत्नों में अपना सहयोग प्रदान करने की पुनीत भावना का परिचायक है। आशा है पाठक आपके इन दो सफल सरल प्रयोगों से अवश्य लाभान्वित होंगे।

—सम्पादक।

(१) गोदन्ती भस्म १० तोला, शुद्ध स्वर्ण गैरिक ३ तोला, कच्ची फिटकरी २½ तोला, गुडूची सत्व ५ तोला सबको मिलाकर केले के जड़ के स्वरस की ७ भावनायें दें। मात्रा ३ माशे से ६ माशे तक केले की जड़ के रस ५ तोले से १० तोले के साथ सेवन करायें। प्रायः एक ही दिन की मात्रा से रक्त बन्द हो जाता है। यह स्मरण रहे कि यह शीतल है इसलिए सन्धिवात, आमवात से पीड़ित रोगियों पर सावधानी से प्रयोग करें।

(२) श्वेत प्रदर—केवल पठानी लोध्र का चूर्ण ६ माशे रात्रि में सोते समय दूध के साथ खिला दें। ४० दिन इसका प्रयोग करने से बड़ा लाभ होता है।

—वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंह रसायनाचार्य
Director M. C. K. R. Trust Ayurvedic
Hospital & Research Institute,
Lajpatnagar, New Delhi--14

प्रदर रोग पर पाक—

अशोक वृक्ष की छाल २ सेर, कुड़ा की छाल १ सेर, अडूसे के पुष्प तथा पत्ती १ सेर, आंवला हरे का स्वरस १ सेर, जल २० सेर। पानी में इन औषधियों का क्वाथ कर लेवें। ⅛ शेष रह जाने पर २½ सेर शक्कर दाना डालकर सीरावत् चासनी तैयार कर लेवें। इसके बाद निम्न औषधि डालकर पाक तैयार करलें—

पीपल की लाख, मुलैठी, वंशलोचन, इलायची श्वेत के दाने, पीपल छोटी, कल्बुलहफ्स, माई, कमलकेशर, नागकेशर, धाय के फूल, संगजरात, सत् गुर्च, दम्बुल अखवैन, गोंद ढाक, गोंद बबूल, कौंच के बीज, चिकनी सुपारी, सफेद मूसली, सोना गेरू, सिंघाड़े की मिंगी। प्रत्येक चूर्ण २-२ तोला, पावभर शुद्ध गाय के घृत में भून लेवें और उपर्युक्त चाशनी में शामिल कर दें। खुराक १ तोले से १½ तोले तक गाय, बकरी के धारोष्ण या गर्म किये हुए ठंडे पावभर दूध शक्कर युक्त के साथ देना चाहिए। यदि रोग अधिक तेजी पर हो तो दिन में ३ से ४ बार तक, अन्यथा दिन में दो बार।

प्रदर रोग पर पोटली—

माजूफल २ तोला, लोध्र ६ माशे, इन्द्रजौ ६ माशे, सफेद इलायची के दाने ६ माशे, लाल फिटकरी ६ माशे।

उपर्युक्त औषधियों का महीन चूर्ण करके एक माशा औषधि महीन साफ कपड़े में बांधकर योनि मुख पर बराबर रक्खी रहने देने से आशातीत लाभ होता है।

—वैद्य श्री वचानसिंह
कुम्हरौर (फर्रुखाबाद)

श्वेतप्रदर पर—

प्रदरारि चूर्ण—गोखरू, समुद्रशोष, सफेद मूसली, पठानीलोध्र, कुलंजन, कमरकस, मोचरस, बबूल की फली, कूठ, इन औषधियों को कूटकर बारीक चलनी में छानकर गाय के घी में हलका भून लेवें। बाद में ठंडा करके बराबर की मिश्री मिला कर रख लेवें।

मात्रा—६ माशा या १ तोला दूध के साथ दोनों समय देवें। इससे एक महीने में श्वेत प्रदर नष्ट हो जाता है।

श्वेत प्रदर पर—होम्योपैथिक दवा ओवाटैस्टा (यह टेबलेट के रूप में आता है) तीन समय पानी से देवें।

रक्त प्रदर पर प्रयोग—

संगजराहत १ छटांक गेरू १ तोला दोनों को एक शीशी में पीसकर रख लेवें। एक माशा से दो माशा तक ठंडे पानी से देवें। निरन्तर प्रयोग से आराम हो जाता है।

रक्त प्रदर पर होम्योपैथिक दवा—

आर्निका माउन्टेना ३० × पोटेन्सी १-१ बूंद पानी में तीन समय या बूंद को शुगर आफ मिल्क में मिलाकर देवें। कल्केरिया कार्ब एक रत्ती तीन समय पानी से देवें।

श्वेत प्रदर पर बायोकैमिक दवा —

कैल्केरिया फास्फोरिकम ६×१२× तीन-तीन चार-चार टेबलेट या पौडर देवें। यह श्वेत प्रदर की प्रधान दवा है। अथवा ऋतु न होकर उसके बदले सफेद पानी जावे तो साइलिसिया ११×३०× देवें।

रक्त प्रदर पर बायोकैमिक दवा—

नेट्रम सल्फरिकम ६× यह सब प्रकार के रक्त-स्राव के लिए उत्तम है। फेरम फास्फोरिकम ३×६× भी चार-चार गोली ठंडे पानी से देवें।

नोट--होम्योपैथिक दवा लेते समय उससे हाथ नहीं लगावें तथा खुशबूदार चीजें न खावें जैसे हींग प्याज लौंग लहसुन आदि।

रक्त प्रदर पर एलोपैथिक दवा—

केपलिन (विटामिन के) टेबलेट तीन समय ठंडे पानी से देवें तथा कैलसियम लैक्टेट पौडर या कैलसियाई ओस्टलिन टेबलेट पानी से देवें।

सीलीन (Celin) १०० Mg. टेबलेट १-१ गोली सुबह शाम पानी से देवें।

कैलसियम सैन्डोज विद विटामिन सी. ५०० Mg. शिरा द्वारा देवें।

मांस द्वारा कैलसियाई आस्टेलिन विद विटामिन बी एण्ड डी १२ देवें। यह १५ सी. सी. का आता है इसमें तीन सी. सी. मांस गत देवें। साथ में कैपलिन इन्जैक्शन भी मांसगत देवें। रक्त प्रदर में आराम होता है।

—कवि०डा. जनार्दन शर्मा साहित्य शास्त्री आयु०
श्री विश्वनाथ औषधालय, रायगढ़।

प्रदर पर कुछ प्रयोग--

(१) अशोक की छाल, मुलतानी मिट्टी, पठानी लोध्र, ढाक का गोंद, गोखरू, बड़ी इलायची २-२ तोला लेवें और माजूफल, वंशलोचन १-१ तोला लेकर कपड़छन कर इस चूर्ण के सम भाग मिश्री पीसकर मिलावें। सुबह-शाम ४-४ माशा चूर्ण पानी के साथ एक सप्ताह देने से लाभ होता है। पथ्य—चावल, दूध, फलादि का सेवन करना आवश्यक है।

(२) पठानी लोध्र व मिश्री का चूर्ण कर २-२॥ माशा की मात्रा में जल के साथ देने से रक्त-प्रदर में लाभ होता है एवं प्रदर के कारण जो दर्द होता है उसमें भी देना बहुत ही हितकर प्रतीत हुआ।

(३) मुलेठी व मिश्री का चूर्ण कर धोये हुए चावलों के पानी में दो बार ४-४ माशा चूर्ण लेने से रक्त एवं श्वेत प्रदर में फायदा होता है।

(४) पिचकारी का योग--नीम के अच्छे साफ किये हुये पत्तों को अच्छे प्रकार से जल में उबालकर योनि में पिचकारी दें।

(५) फिटकिरी के फूलों का पाउडर गरम किये हुए जल में डालकर योनि में पिचकारी लगाने से प्रदर रोग मिटता है एवं खुजली की भी निवृति हो जाती है। अगर योनि में दाह हो तो दाह का शमन भी हो जाता है एवं योनि के ढीलेपन में भी इस पाउडर को जल में घोलिकर धोने से भी लाभ होता है।

--वैद्य श्री सूरजमल डोशी आयुर्वेदवाचस्पति
श्री संजीवन दवाखाना, मक्सी (उज्जैन)।

प्रदर पर कुछ प्रयोग--

(१) अश्वत्थत्वक् चूर्ण, मात्रा—२ से ३ माशे दिन में तीन चार बार। अनुपान—शीतल जल। गुण—इसके सेवन से सब प्रकार के प्रदर अत्यल्पकाल में ही शान्त हो जाते हैं।

(२) वराटिका भस्म २ रत्ती, सूक्ष्म एला (छोटी इलायची का) चूर्ण ४ रत्ती। यह १ मात्रा है। दिन में ऐसी तीन मात्रा दें। अनुपान—साधारण जल अथवा चावलों का धोवन। गुण--श्वेत प्रदर नाशक है।

(३) वराटिका भस्म, कुकुटाण्डत्वक भस्म, मुक्ताशुक्ति भस्म २-२ रत्ती। यह एक मात्रा है। दिन

में ऐसी तीन चार मात्रा दें। गुण—रुग्णा जब अत्यन्त क्षीण हो और गर्भाशय में शोथादि अन्य विकार भी साथ हों तो इस अवस्था के लिए यह योग अत्यन्त प्रभावशाली है।

एक रुग्णा का कहना था कि इस औषधि के सेवन से उसकी योनि के मार्ग से वायु का सशब्द निःसरण इस प्रकार होता है जैसे गुदा से (पाद आदि के समय) होता है। यह विचित्र बात मैंने केवल एक ही रुग्णा में देखी है। सम्भव है उसके गर्भाशय में आध्मान हो। मुझे तो घोर प्रदर बताया गया था और इसी प्रदर के कारण रुग्णा उठने बैठने में अशक्त हो रही थी। इसके प्रयोग से उसकी क्षीणता आदि सब विकार नष्ट हो गये थे।

सगर्भा स्त्रियों को जब रक्तप्रदर, गर्भस्राव अथवा गर्भपात की अवस्था में रक्तस्राव होने लगता है, उस समय हम इसे नारंगी के छिलके के क्वाथ के साथ देते हैं।

(४) दक्षिणी चिकनी सुपारी दूध में उबाल कर केवल दूध मात्र पीने से भी श्वेतप्रदर रक्तप्रदर आदि अनेक विकार दूर हो जाते हैं।

(५) दक्षिणी चिकनी सुपारी १ भाग, कमरकस १ भाग, खांड ४ भाग मात्रा—३-४ माशे। अनुपान—दूध। प्रातः सायं दिन में दो बार प्रयोग करें। सुपारी पाक से कहीं अधिक गुणकारी योग है।

—श्री बन्सरीलाल साहनी आयुर्वेदाचार्य
बीडनपुरा, दिल्ली।

प्रदरांतक योग—

खूनखराबा १० तोला, गोखरू बड़ा १ तोला, अश्वगन्धा १ तोला, तालमखाना १ तोला, बलाबीज, मिश्री १० तोला द्रव्यों को कूट कर वस्त्रपूत करें। मात्रा ६ माशा के अनुसार दिन में दो से चार बार। अनुपान—अजा दुग्ध तथा चावलों के धोवन एवं शहद से चटावें। रक्त प्रदर के लिये अनुभूत एवं परीक्षित है। तीन चार मात्रा में रक्त का अवरोध अवश्य होगा। श्वेतप्रदर में गोखरू बड़ा १ तोला तालमखाना १ तोले के साथ से देने से लगभग २० दिन लगातार सेवन से श्वेत प्रदर में अवश्य लाभ होगा।

खाने के लिये खिचड़ी चावल मूंग की दाल हरी सब्जी पालक बथुआ गेहूं की रोटी देवें। उष्ण तथा गरिष्ठ पदार्थों का त्याग करें।

—श्री वैद्य दीपचन्द शर्मा प्रभाकर
श्री धन्वन्तरि औषधालय, पो० लोहारू (हिसार)

श्वेत एवं रक्त प्रदर पर अनुभूत योग—

एक सौ वर्ष की पुरानी पीली ईंट लेकर बराबर सेलखड़ी मिला कर कपड़छन कर लेवें तथा शीशी में सुरक्षित भर लेवें। इसी को प्रातः सायं १-१ मासे की मात्रा में आंवले के मुरब्बे के साथ सेवन कराने से श्वेत एवं रक्त प्रदर ठीक होता है।

—वैद्य श्री रामधन शर्मा शास्त्री आयुर्वेद विशारद
काया कल्प चिकित्सा सदन, मडलौढ़ा (करनाल)

प्रदर में अनुभूत योग—

१—दारू हल्दी, रसौत, नागरमोथा, भिलावा, बेलगिरी, अडूसे के पत्ते, चिरायता सब समभाग लेवें। जोकुट कर चूर्ण करें। उक्त औषधियों का २॥ तोला का क्वाथ करके दिन में २ बार शहद मिलाकर पिलावें।

नोट—भिलावे के स्थान पर रक्त चंदन का प्रयोग करें। उक्त दार्व्यादि क्वाथ पूर्ण लाभप्रद पाया गया है।

२—श्वेत प्रदर पर अनुभूत योग—हाथी दांत का बुरादा १ छटांक, सफेद चंदन १ छटांक, छोटी इलायची के दाने १ छटांक, वंशलोचन १ छटांक मिश्री १ पाव सब को कूट पीस कर कपड़छन कर ३ माशा गौ के गर्म दूध से प्रातः सायं सेवन करें। पूर्ण लाभ कारी है। दूध ठंडाकर मिश्री मिलाकर पीवें।

३—मुक्ता शुक्ति भस्म १० तोला, जामुन का सिरका खरल में घोटकर २-२ रत्ती की वटी

बनावें। २ वटी प्रातः और २ वटी सायं ताजे जल से सेवन करें।

४—रक्त प्रदर-रसौत, नागकेशर, छोटी इलायची के दाने, आमला, बंशलोचन, सब समभाग लेकर निम्बू के रस में घोटकर २-२ रत्ती की वटी बनाकर दिन में ३ बार शुद्ध जल से देवें।

नोट—निम्बू के रस में ११ दिन पर्यन्त मर्दन करें।

५—चमत्कारी योग—गाय के ताजे दूध याने धारोष्ण दूध में १ नींबू का रस शीघ्र निचोड़ें और दूध में मिश्री पहले ही मिलालें फिर नींबू का रस डालकर दूध को हिलावे नहीं शीघ्र पीवें ३ दिन के प्रयोग से रक्त प्रदर समूल नष्ट होगा।

६—शुद्ध स्फटिका भस्म १ तोला कबूतर की बीट १ तोला काली मिर्च ३ माशा उक्त सभी द्रव्यों की पिष्टी बनाकर २॥ माशा की मात्रा उष्णोदक से प्रातः सायं सेवन करें। तुरन्त लाभ होगा।

—श्री जगदीश प्रसाद शर्मा आयुर्वेद बृहस्पति
ताराचन्द्र धर्मार्थ औषधालय, महेन्द्रगढ़ (पंजाब)

रक्त प्रदर में लड्डू—

कमरकस, बबूल का गोंद पठानी लोध्र, चिकनी सुपारी प्रत्येक १०-१० तोला, गेहूं का आटा १॥ सेर, गाय का घी १। सेर तथा मिश्री ३॥ सेर।

बनाने की विधि—प्रथम घी में आटे को भूनें, जब भुनने पर आये तो मिश्री को छोड़कर शेष पिसी हुई चीजें भी उसमें डाल दें तथा भुनने पर उतार लें। बाद में मिश्री की चासनी बना उसमें उपरोक्त भुना आटा डालदें और २-१ छटांक के लड्डू बनालें।

सेवन विधि—रक्त प्रदर की अवस्था में अन्य औषधियों के सेवन के साथ १-१ लड्डू रोजाना खाने को दें, शीघ्र लाभ होगा। गर्भाशय की अन्य विकृतियां भी दूर होंगी।

—श्री लक्ष्मीचन्द जमोरया "स्नेही"
नसीराबाद (अजमेर)

रक्त स्राव के लिए—

जिन स्त्रियों का रक्तस्राव बन्द न होता हो, उन्हें १ माशा मेंहदी के बीज लेकर पीसलें और पाव भर गाय के दूध में छान मिश्री मिलाकर प्रातःकाल व्यवहार करावें। तीन दिन में ही लाभ होगा।

—कवि० द्वारिकाप्रसाद शास्त्री आयुर्वेदा.
दधिमति आयु० भवन, राजगांगपुर (सुन्दरगढ़)

रक्त प्रदरान्तक—

बराटिका भस्म १ तोला, शङ्ख भस्म १ तोला, जहरमोहरा खताई की पिष्टी ६ माशे (अर्क गुलाब में तैयार की हुई), अकीक पिष्टी १ तोला, (अर्क केवड़ा में तैयार की हुई) सबको एक स्थान में मिलाकर २० मिनट खरल में खुश्क घोटकर शीशी में भरदें। आवश्यकता होने पर प्रयोग करें।

मात्रा—४ से ६ रत्ती। अनुपान—अशोकारिष्ट १॥ तोला भोजन के पश्चात् ३ तोला जल मिलाकर प्रातःसायं प्रयोग करावें।

—वैद्य श्री कृष्णमूर्ति शर्मा 'देवगुण'
भादसों (पटियाला)

रक्त प्रदर पर—

समुद्र शोष, तालमखाना बीज, कलमी तज २॥-२॥ तोला, मिश्री ७॥ तोला। प्रथम तीन औषधियां कपड़छन कर बाद में मिश्री मिलाकर ३-३ माशे सुबह शाम गाय के पावभर दूध के साथ सेवन करें। खटाई, मिर्च, तैल, गुड़ सेवन न करें। एक ही मात्रा से खून बन्द हो जायगा।

—श्री वैद्य पं० सत्यशरण मिश्रा
धनावां (गोंडा)

प्रदर—

भीमसैनी कपूर १ तोला, नागकेशर १ तोला, गेरू १ तोला, कपर्द भस्म १ तोला। इन सबको अशोक की छाल के क्वाथ में घोटकर १-१ रत्ती की गोली बना लें। १-१ गोली प्रातः दोपहर एवं सायं ठण्डे पानी से लेनी चाहिए। इन गोलियों के सेवन करने के साथ ही गुलाबी फिटकरी, माजूफल, खाने

की हल्दी तीनों चीजें बराबर पीसकर एक माशा मलमल के कपड़े में रखकर गर्भाशय मुख पर रखवावें। सब प्रकार के प्रदर में लाभप्रद है।

—श्री रतनलाल वैद्य
नगला पृथ्वीनाथ (आगरा)

श्वेत प्रदर—

पारद, गन्धक, रजत भस्म, खपर भस्म, वराटिका भस्म प्रत्येक २-२ तोला, लोह भस्म ६ तोला लें। सर्व प्रथम पारद गन्धक की कज्जली बनाकर फिर अन्य द्रव्यों को मिलाकर घृत कुमारी के स्वरस में तीन दिन घोंटकर मटर बराबर गोलियां बनालें।

श्वेतप्रदर में, पतले स्राव में, कटिशूल, योनि शूल, सन्धिशूल आदि में पूर्ण लाभ करता है। इस रस के सेवन से सब प्रकार के प्रदर तथा सोम रोग दूर होते हैं। मासिक धर्म साफ होता है। अन्तर्दाह का शमन होता है।

सेवन विधि—२-२ गोली प्रातः दोपहर एवं शाम को आंवलों के स्वरस और शहद से दें। ऊपर से अशोकारिष्ट २॥ तोला व पत्रांगासव २॥ तोला मिलाकर पिला दें।

—श्री मंगलाबहन केशवलाल जैन वैद्या
सलाल (सांवर कांठा) गुजरात

रक्त प्रदर पर—

स्फटिका भस्म (फिटकरी का फूला) ४ रत्ती बोल पर्पटी १॥ रत्ती काम दुधा रसायन २ रत्ती १ खुराक है। दिन में तीन मात्रा ठंडे पानी या कच्चे दूध की लस्सी के साथ दें।

खाने के बाद अशोकारिष्ट १ तोला, पत्रांगासव १ तोला, उशीरासव १॥ तोला, जल २॥ तोला दें। इसके प्रयोग से रक्तस्राव, प्रसवान्तर रक्तस्राव, श्वेत एवं रक्त प्रदर, रक्तातिसार शीघ्र ही २-४ दिन में बन्द हो जाता है। यदि विबन्ध रहता हो तो पंचसकार चूर्ण १॥ माशा रात्रि को उष्ण जल के साथ सेवन करावें।

श्वेत प्रदर पर—

फिटकरी का फूला (स्फटिका भस्म) ४ रत्ती कैपसूल्स में भर कर दिन में तीन बार ठंडे पानी या दूध की लस्सी के साथ दें।

इससे श्वेत प्रदर, सुजाक, मूत्रकृच्छ्र आदि में लाभ होता है।

—वैद्य श्री सीताराम शर्मा
राजगांगपुर (सुन्दरगढ़) उड़ीसा

प्रदर नाशक योग—

लोह भस्म २ तोला, वंग भस्म, यशद भस्म, शुद्ध कहरवा, शुद्ध स्वर्ण गैरिक (सोना गेरू), मोच रस, सफेद राल १-१ तोला लें। इन सबको मिला कर दूब और आमले के रस की सात सात भावना दे कर सुखाकर चूर्ण बना लेवें। तीन तीन रत्ती प्रातः सायं चावल के धोवन के साथ तथा यदि रोगी पुराना हो तो दूध की लस्सी के साथ सेवन करावें।

—श्री वैद्य रूद्र सिंह
हथन पो० मालेर कोटला (पंजाब)

प्रदर पर योग—

(१) पठानी लोध्र १० तोला, छोटी दुधी सूखी १० तोला, इलायची २॥ तोला, मिश्री २२॥ तोला, निर्माणविधि—उपरोक्त सभी वस्तुओं को मिलाकर वस्त्र पूत चूर्ण करें। तैयार होने पर सुदृढ़ कार्कवाली शीशी में रखलें। मात्रा एवं व्यवहार विधि—इस चूर्ण को ६ माशे से १ तोला बकरी अथवा गाय के कच्चे दूध के साथ प्रातः या सायंकाल सेवन करें। गुण—इसे प्रयोग करने से श्वेत या रक्त प्रदर दूर होते हैं।

(२) हकुर १० तोला, इलायची दाना १॥ तोला, विधि—इसको महीन पीसकर चूर्ण बना कर रखलें। अनुपान—यह दवा ६ माशा, आधापाव ताजे दही के साथ प्रातः सायं सेवन करें। गुण—३ खुराक में ही शीघ्र लाभ होता है।

—वैद्य श्री रामकिशोर स्वामी आयुर्वेदशास्त्री
पीपाड़ सिटी (राजस्थान)

रक्त प्रदर पर सरल प्रयोग—

पुराने ऊन के कम्बल के टुकड़े को लोग बेकार समझ कर बाहर फेंक देते हैं। इसको लेकर जलालें। जलाते समय राख काली होनी चाहिए सफेद नहीं। इसको खुले मैदान में जलावें। निधूम होने पर इसको तुरन्त ही ढक देने पर काली राख बन जाती है। मात्रा—३ माशे में थोड़ी शक्कर मिलाकर शीतल जल के साथ दिन में २ बार देवें। इस चूर्ण के सेवन से रक्त प्रदर में लाभ होता है।

—वैद्य श्री जीवन पुरी गोस्वामी
वैद्यविशारद वैद्यभूषण, देवली वाया,
सोजतरोड (राज०)

रक्त प्रदर—

योग नं० १—गेरू, गुलाब के सूखे फूल, सेलखड़ी तथा राल इसको बराबर मात्रा में लेकर भली प्रकार प्रातः सायं ताजे जल से दें। रोगानुसार २१ या ४१ दिन सेवन करावें।

योग नं० २—शतावर ३ माशा, अश्वगन्धा १॥ माशा, सफेद चन्दन १ माशा, धाय के फूल १ माशा, अनार के फूल १ माशा, गुलाब के फूल १॥ माशा सबको मिलाकर कपड़छन चूर्ण करें तथा सुबह शाम ६-६ माशा की फंकी लगावें तथा ऊपर पाव भर दूध पीवें।

यह दोनों योग अनुभूत हैं। वादी गर्म पदार्थों का परहेज करावें। पथ्य में हलके जल्द पचने वाले तथा उपयुक्त फल दें।

—श्री सुखसागर वैद्य,
कैलाश आयुर्वेदिक दवाखाना, मैलानी (खीरी)

रक्तप्रदरारि चूर्ण—

फिटकरी सफेद, काला सुरमा, कत्था, संगजराहत सब ७-७ माशा, कहरवा समई एवं अकीक १॥-१॥ तोला, दम्मुल अखवैन, कतीरा तथा बबूल का गोंद प्रत्येक १-१ तोला इन सब का बारीक चूर्ण कर २-२ माशे की मात्रा में प्रातः सायं शीतल जल के साथ सेवन करावें। रक्त प्रदर एवं रक्तपित्त पर लाभ करेगा।

—श्री धर्मवीरदत्त शर्मा आयुर्वेद वाचस्पति
पाडली बसेड़ा, बिजनौर।

श्वेत प्रदरांतक योग—

श्वेतराल ५ तोला, नागकेशर ५ तोला, मुलहठी ५ तोला, सिंघाड़ा १० तोला। यह औषधियां कूट पीस कर कपड़छन करें। १-१ तोला की मात्रा प्रातः और सायं धारोष्ण दुग्ध से दें। लगातार एक माह सेवन करें। श्वेत प्रदर का जड़मूल से नाश होगा। हलका पुष्टिकारक भोजन सेवन करें, तैल, गुड़, शक्कर, गरम मसाले गरिष्ट पदार्थों का तथा मैथुन का त्याग करें।

—श्री वैद्य दीपचन्द शर्मा प्रभाकर
धन्वन्तरि औषधालय, लोहारू (हिसार)

प्रदर रोग पर—

चिकनी दक्षिणी सुपारी १० तोला प्रतिदिन दूध में उबालें। दूध पीलें और सुपारी रखते रहें। १५ दिन के पश्चात् सुपारी कूटकर समभाग कमरकस मिला घी में भून उचित मात्रा में मावा (खोवा) तथा खांड मिलाकर रखलें। उत्तम स्वादिष्ट पाक बन जायगा। दूध से अथवा अशोक छाल की चाय के साथ सेवन करें तो सब प्रकार के प्रदर एवं सोम रोग नष्ट हो जाते हैं।

—श्री गेबी अली पाठक
आकली दीवान पो० खजूरी पंथ
वाया—शामगढ़ (मन्दसौर)

प्रदर तथा स्नायुदौर्बल्य के लिए—

पुष्यानुग चूर्ण ३ माशा, प्रवाल पंचामृत २ रत्ती, चन्द्रप्रभावटी २ गोली की एक मात्रा प्रातः सायं धारोष्ण दुग्ध के साथ २ माह तक सेवन करने से सभी प्रकार के प्रदर शान्त होकर स्नायुओं को पूर्ण ताकत मिलेगी।

—आयुर्वेदालंकार वैद्य प्रहलादराय शर्मा साहि०
हनुमान राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय
सालासर (चूरू)

रक्तप्रदर पर अनुभूत योग—

(१) नागकेशर चूर्ण १ माशा, वंशलोचन चूर्ण १ माशा, फिटकरी (शुद्ध रक्त स्फटिका) मधु से तीन बार दिन में देने से रक्त प्रदर में लाभ होता है।

(२) पुष्पानुग चूर्ण एवं चन्दनादि चूर्ण इनमें से किसी भी एक चूर्ण को २ माशा की मात्रा में मधु से तीन बार चटाकर ऊपर से चावलों का धोवन मधु मिलाकर सेवन कराने से भी पूर्ण लाभ होता है।

(३) आयुर्वेद जगत के वयोवृद्ध नेता एवं प्रकाण्ड विद्वान् वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंह जी रसायनाचार्य का धन्वन्तरि के सिद्ध चिकित्सांक में प्रकाशित निम्न "योनि रक्त स्राव नाशक योग" का भी हम रक्त प्रदर में प्रयोग करते हैं अतः पाठकों की जानकारी के लिए हम अविकल योग उद्धृत कर रहे हैं—

योग—गोदन्ती भस्म ५ तोला, गिलोय सत्व २½ तोला, शुद्ध फिटकरी १¼ तोला, शुद्ध स्वर्णगैरिक १¼ तोला इन सबको खूब मिलाकर पीस कर शीशी में रखलें। मात्रा-१ माशे से ३ माशे रोगी के बलाबल के अनुसार दें। यदि रोगी दुर्बल हो तो "मुक्ता पंचामृत" (भैषज्य रत्नावली) की एक दो रत्ती की मात्रा बकरी के दूध के साथ या शर्बत अनार से दें। रक्त स्राव की तीव्रता अधिक हो तो 'पञ्चवल्कल कषाय' में स्फटिका का घोल बनाकर अपत्यमार्ग में पिचु धारण करावें और रोगी को शय्यारूढ रखें। यदि रक्त स्राव अधिक हो तो केले की जड़ के रस से उपर्युक्त योग दें। यदि रोगी की वात प्रकृति हो और शीतल द्रव्य अनुकूल न हों तो ताजे गोदुग्ध के साथ रक्तस्राव के समय दो या तीन दिन ३-३ मासे की मात्रा में सेवन करवा कर एक सप्ताह बन्द करवादें फिर बाद में रक्त स्राव होने पर इसी प्रकार पुनरावृत्ति करें। इस योग के द्रव्य सावधानी से शुद्ध करलें।

(४) आयुर्वेदीय पेटेन्ट औषधियों में हमने 'हिमालय ड्रग कम्पनी' द्वारा निर्मित 'ल्युकोल' (lucol) औषधि को रक्त प्रदर में अत्यन्त लाभ करते पाया। इस औषधि की २-३ टिकियां दिन में दो बार या तीन बार बलाबल की समीक्षा कर दूध या पानी से देनी चाहिए। इसके प्रयोग से २४ से ७२ घन्टे के भीतर रक्तस्राव बन्द हो जाता है। यह लौहभस्म, अश्वगन्धा, लोध्र, धाय, अशोक, महानीम, जीवन्ती और शतावरी के घन सत्वों का मिश्रित योग है।

—वैद्य श्री परमेश्वरदयाल घिल्डियाल

राजकीय आयु० चिकित्सालय, हरचन्दपुर (रायबरेली)

श्वेत प्रदर की चिकित्सा—

(१) वयःस्थापक योग-निर्माण विधि—एक हृष्ट पुष्ट नये ताजे पलाश (टेसू) वृक्ष में, जिसकी पीड़ गोल एवं पुष्ट हो, जमीन से ३-४ फुट की ऊंचाई पर पीड़ में बिन्ना (जिससे बढ़ई लकड़ी में छेद करते हैं) से ऐसा छेद बनाओ कि जिसमें सेर डेढ़ सेर वस्तु समा सके। ध्यान रहे छेद पीड़ के आर पार न हो। जब खोखला पेड़ में भली प्रकार बन जावे तब उसमें उत्तम सूखे आंवलों का जवकुट किया हुआ चूर्ण भरकर, उसी छेद के करते समय जो झाड़ के छिलके निकले हैं उनसे उस आंवला चूर्ण भरे छेद का मुख बन्द कर देना चाहिये। बाद में उस छेद पर कपड़मिट्टी कर देनी चाहिये (कपड़मिट्टी करते समय कपड़ा झाड़ की पीड़ के चारों ओर आना चाहिये)

तत्पश्चात आरने कंडे (जंगली कंडे) एकत्रित कर आंवला चूर्ण भरे स्थान के एक फुट ऊपर तक पलास के झाड़ की पीड़ के चारों ओर कंडों को रच देना चाहिये। कंडों की मात्रा अधिक से अधिक होनी चाहिये।

पश्चात् शाम के समय (सूर्यास्त के बाद) झाड़ के आसपास रचे हुए कंडों में चारों ओर से

आग लगा देनी चाहिए। प्रातः वृक्ष में रखी हुई दवा निकाल लेनी चाहिये। यह दवा गोंद के रूप में निकलेगी क्योंकि अग्नि ताप से पूरे वृक्ष का सारा रस आंवलों में एकत्रित हो जाता है। इस दवा को धूप में सुखा कूट पीस कर वस्त्र से छान शीशी में रख लेना चाहिए। यही वयःस्थापक योग है।

(२) मुक्ताशुक्ति को निधूम अंगारों पर गरम कर चाकू से छीलकर उसका ऊपर का मैल खुरच कर निकाल देना चाहिये। पुनः सीपों को खूब गरम कर शुद्ध गुलाबजल या केवड़ा के अर्क में डाल दो, पश्चात् खरल में घोटकर सीपों से चौगुना भेड़ का दूध लेकर उसकी भावना दे टिकिया बना धूप में सुखालो। इसके बाद उन टिकियों को शराव सम्पुट में रख गजपुट में फूंक दो। इस तरह यह भस्म तैयार की जाती है।

चिकित्सा क्रम—

गूलर की त्वचा या कोमल पत्तियों के काढ़े में १ ड्राम जिंक सल्फेट मिलाकर रोगिणी के गर्भाशय का प्रतिदिन प्रातः सायं प्रक्षालन करना चाहिये।

तत्पश्चात् वयःस्थापक योग ३ माशा एवं उपरोक्त विधि से बनाई गई मुक्ता शुक्ति भस्म ४ रत्ती दोनों को १ तोला शुद्ध मधु में मिलाकर सुबह शाम खिलाना चाहिये तथा ऊपर से गौ दुग्ध में मिश्री मिलाकर पिलानी चाहिये।

भोजनोपरांत अशोकारिष्ट पिलाना चाहिये।

नोट—उपरोक्त योग में एक रत्ती बसन्तकुसमाकर रस मिला लेने से दवा का असर अधिक और शीघ्र होता है।

इस प्रकार ४० दिन सेवन करने से श्वेतप्रदर से पीड़ित रोगिणी का कायाकल्प हो जाता है तथा रोग से हमेशा के लिये छुट्टी मिल जाती है। यह हमारा कई बार का अनुभूत योग है।

रक्तप्रदर—

गोदन्ती हरताल भस्म, प्रवाल पिष्टी, मुक्ताशुक्ति पिष्टी, हरितास्म पिष्टी २-२ रत्ती दम उलखवा ४ रत्ती इन सबको अच्छी प्रकार कूट पीस कर ६ मात्रा बनाकर ३-३ घण्टे के अन्तर से गुलकन्द में मिलाकर दें। ग्रीष्म ऋतु में दूर्वा स्वरस या उदुम्बर पत्र स्वरस के साथ दें। इसके प्रयोग से सब प्रकार के रक्तप्रदर और रक्तस्राव में लाभ होता है।

—श्री श्रीपतिप्रसाद 'श्रीश' आयुर्वेदाचार्य
बक्सर (शाहाबाद)

प्रदर और उसकी सफल चिकित्सा—

गुलपिस्ता ५ तोला, गुलसुपारी ५ तोला, हीराकसीस सब्ज २॥ तोला, मिश्री १२॥ तोला। कूट कर खूब बारीक चूर्ण बनावें, मोटा चूर्ण रहने पर मितली लाता है। प्रयोग-३ माशे चूर्ण में यदि सफेद प्रदर है तो प्रवालभस्म २ रत्ती और यदि लाल प्रदर है तो नागभस्म २ रत्ती मिलाकर सुबह १ मात्रा गरम दूध से और शाम को कुशा की जड़ के पानी से दें।

नोट-१ तोला कुशामूल को १ छटांक पानी में ठंडाई की तरह घोंट छान लें यही कुशा का पानी है। यह क्रम २५-३० दिन तक चालू रखें। भोजन में हल्का आहार मूंग की की दाल, गेहूं का दलिया सालि चावल लौकी, भिंडी, पालक, मैंथी, शलजम मूली इत्यादि दें। अपथ्य-गर्म मसाला चाय, मिर्च गुड़ खटाई तैल न दें।

—श्री शंकरलाल वैद्यभूषण
साढौली झबरेड़ा (सहारनपुर)

रक्त प्रदर—

(१) प्रवालभस्म (चन्द्रपुटी), चन्द्रकला रस, कामदुधा रस, मंडूरभस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, प्रत्येक आधी-आधी रत्ती यह एक मात्रा है। सुबह शाम शुद्ध मधु से या मक्खन से दें। आशातीत लाभ होगा।

(२) प्रदररिपु रस (धन्वन्तरि का) १ रत्ती, प्रबाल पिष्टी १ रत्ती, पुष्यानुग चूर्ण २ माशा सुबह शाम शुद्ध मधु से दें। ऊपर से चावलों का धोवन पिलादें। आशातीत लाभ होगा।

(३) कहरवा (तृणकान्त मणि) पिष्टी २ रत्ती, प्रबाल पिष्टी १ रत्ती, मोती पिष्टी आधी रत्ती, खूनखराबा का चूर्ण १ माशा दिन में २-३ बार मधु से दें एवं ऊपर से अशोकारिष्ट पिलादें। अवश्य लाभ होगा।

श्वेत प्रदर——

(१) मुलेठी ३ तोला, नागकेसर ५ तोला, राल २ तोला, मिश्री १० तोला। सब को कूटपीस कर चूर्ण करें। मात्रा-आधा तोला सुबह शाम शहद, चावलों के धोवन के साथ दें। ऊपर से अशोका रिष्ट पिलादें। अवश्य लाभ होगा।

(२) ऊमर के फल (अधपके) सुखाकर चूर्ण करें एवं इच्छानुसार मिश्री मिलायें। मात्रा ३ से ६ माशा तक सुबह शाम दें। इस प्रयोग द्वारा भी कई रोगी ठीक हुए हैं।

(३) तीखुर (तवाखीर) १ तोला सुबह शाम चावलों के धोवन में मिश्री मिलाकर दें।

(४) त्रिवंगभस्म १ रत्ती, प्रबाल पिष्टी आधी रत्ती, स्वर्णमाक्षिकभस्म, मंडूर भस्म, चन्द्रकला रस प्रत्येक आधी आधी रत्ती। यह एक मात्रा है। सुबह शाम मधु के साथ या मक्खन के साथ दें। ऊपर से चावल का धोवन पिलादें। निश्चित लाभ होगा।

(५) स्वर्ण मालती वसन्त १॥ रत्ती, नागभस्म आधी रत्ती, प्रदरांतक लौह २ रत्ती मधु के साथ या मक्खन के साथ दें। अवश्य लाभ होगा।

—वैद्य श्री आत्माराम वर्वे शास्त्री
घंसौर (सिवनी)

१——श्वेत प्रदरांतक रस—

शुद्ध रसौत ३ तोला, पठानी लोध्र ३ तोला, स्वर्णबंग १ तोला, प्रबाल भस्म, कुक्कुटाण्डत्वक भस्म नागभस्म, बंग भस्म, चांदी के वर्क, सतावर, मुलेठी ६-६ माशा इन सब औषधियों को अशोक, नागर मोथा, पठानी लोध्र, मूसली, सतावर के क्वाथ से खरल कर १-१ रत्ती की गोली बनालें। १-१ गोली प्रातः सायं मक्खन और शहद के साथ व्यवहार करायें। इनके सेवन से प्रदर शीघ्र ही दूर होगा।

२—रक्त प्रदर——

कहरवा पिष्टी, अकीक पिष्टी, जहर मोहरा खताई, गुडूची सत्व, प्रवाल पिष्टी, दम्मुल अख-वैन, स्वर्ण गैरिक, धाय के फूल, सफेद सुरमा की भस्म, बोल पर्पटी सबको मिलाकर चूर्ण कर रख लें। ४-४ रत्ती की तीन मात्रा शर्बत अनार के साथ प्रातः सायं एवं रात्रि को दें।

—श्री सन्त गुरुदीप सिंह वैद्य
भारत नगर, लुधियाना।

रक्त प्रदर—

उदुम्बर सार—अच्छी हरी और पुष्ट गूलर की पत्ती ला उनको साफ करें और जल से धो कर १० सेर वज़न करलें। फिर उनको कूटकर १ मन पानी में डालकर पकावें। जब चौथाई जल शेष रह जाय तो उसको छान ५ तोला शुद्ध सुहागा मिलाकर मन्दी आग पर पकावें और लकड़ी से हिलाते रहें जब करछे में लगने लगे तो नीचे उतार कर कलईदार थाली में फैलाकर धूप में सुखावें। जब घन जैसा रह जाय तो सुरक्षित रखलें।

व्यवहार विधि—रक्त प्रदर कैसा भी भयानक हो १-१ माशे की मात्रा में १-१ तोला गुलाबजल में घोलकर १-१ घण्टे के अन्तर से पिलावें। साथ ही १ तोले की मात्रा को आधा सेर गुन-गुने जल में घोलकर उत्तर वस्ति (douche) दें, पश्चात् शराब में रूई तर करके योनि में धारण करायें। वेग से चलने वाला रक्त भी तत्काल बन्द

—शेषांश पृष्ठ २०७ पर

योषापस्मार (Hysteria) का

निदान लक्षण एवं उपचार

श्री पं० रामस्वरूप शर्मा

आजकल भारतवर्ष में संयमी जीवन के न होने और जीवन में प्रतिदिन विलासिता से जीवन कृत्रिम बनने और उचित आहार विहार के अभाव से प्राणशक्ति (जीवनीय शक्ति) का ह्रास हो रहा है। प्राणशक्ति का ह्रास होने से मानसिक शक्ति का भी ह्रास होता है, क्योंकि मन और प्राण का गहरा सम्बन्ध है' यथा चरके—"नियन्ता प्रणेता च मनसः' कहकर बताया है। इसी कारण आजकल देश में उन्माद, अपस्मार, योषापस्मार, हृद्रोग (हार्टफेल होना) तथा अन्य वातरोग होते हुए विशेषकर दिखाई दे रहे हैं। उन्हीं रोगों में आज योषापस्मार पर मुझे कुछ अपने विचार प्रगट करने हैं।

यद्यपि संहिताओं और प्राचीन साहित्य में इस नाम का कोई रोग न तो स्त्री रोगों में दृष्टि पड़ता है और न पुरुष रोगों में ही। केवल आधुनिक "आयुर्वेद विज्ञान" ग्रंथ में कविराज विनोदलालसेन जी ने मस्तिष्क रोगों में इसका वर्णन 'योषापस्मार' नाम से सर्व प्रथम किया है। यद्यपि आजकल वैद्यों में भी इस रोग के नाम से बहुत मतभेद है। कुछ वैद्य इसको गुल्म जैसा उठकर गले तक जाने से गुल्म और आक्षेपक के समान 'आक्षिपत्याशु मुहुर्मुहुर्देहं मुहुश्चरः' लक्षण होने से कुछ वैद्य आक्षेपक नाम से पुकारते हैं। युवावस्था में कामदेव की उत्कटता और इच्छापूर्ति न होने से कुछ वैद्य इसको कामोन्माद मानते हैं। कुछ वातज उन्माद और कुछ वैद्य अपतन्त्रक और कोई-कोई इसको उन्माद अपतन्त्रक नवीन नाम देते हैं।

यद्यपि हमारे आयुर्वेद साहित्य में रोग के नामकरण को विशेष महत्व नहीं है यथा वाग्भट्टे—

> विकारा नामा कुशले न जिह्नीयात्कदाचन् ।
> नहि सर्वविकाराणां नामतोऽस्तिध्रुवास्थितिः ॥

वह तो रोगी के रोग को निर्मूल कर उसे पूर्ण स्वस्थ बनाने का पूर्ण पक्षपाती है यथा चरके—

> तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्यायकल्पते ।
> सचैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यो प्रमोचयेत् ॥

किन्तु यह दोनों सामान्य वाक्य नहीं हैं। रोगी की विशेष अवस्थाओं में विशेष रोग के प्रादुर्भाव होने पर चिकित्सक को यह आदेश है कि वह ऐसी दशा में रोग नामकरण के झंझट में पड़कर कहीं रोगी को शान्त न कर बैठे किन्तु वह रोगों के मूल कारण वातादि दोषों की तारतम्य विकल्पना के लक्षणों से दोष शामक चिकित्सा करके रोगी को स्वस्थ बना दे। यथा–

> नास्ति रोगो विनादोषैः यस्मात्कस्माद्विचक्षणः ।
> अनुक्तमपि रोगाणां लिंगैर्व्याधिमुपाचरेत् ॥

जर्मनी युद्ध के पश्चात् सम्पूर्ण भारतवर्ष में एक साथ ही इन्फ्लूएन्जा रोग फैला। उसको कुछ डाक्टरों ने युद्धज्वर नाम से घोषित किया। डाक्टरों में यह विवाद उसके नाम और रोगानुसन्धान में ही चलता रहा किन्तु ठीक निर्णय करके कुछ चिकित्सा उस समय रोगियों की न कर सके और बहुत बड़ी संख्या में रोगी यमधाम पहुँच गये। किन्तु वैद्यों ने दोष तारतम्यानुरूप रोगियों की चिकित्सा करके लाखों रोगियों को जीवनदान दिया। मैंने भी अपनी चिकित्सा में आयुर्वेदीय चिकित्सा के आधार पर सैकड़ों रोगियों के प्राण बचाये। ऐसे ही समय के लिए आयुर्वेद का उपरोक्त उपदेश यथातथ्य है।

उपरोक्त आदेश इसलिये नहीं है कि आयुर्वेद किसी भी रोग का नाम निर्धारित न करके केवल दोष विज्ञान से ही चिकित्सा करता रहे। यदि यही बात होती तब आयुर्वेद के प्राचीन संहिता ग्रन्थ भ

ज्वरादि रोगों का नाम निर्णीत न करते। किन्तु यह तो अवश्य है कि पूर्व संहिता ग्रन्थों से पश्चात् को कुछ-कुछ रोग संख्या और लक्षणों में देशकालानुसार वृद्धि अवश्य होती रहती है। किन्तु यह बात नहीं है कि उनके मौलिक तथ्य संहिता ग्रन्थों में न हों। कुछ रोग नई सभ्यता के साथ उत्पन्न हो रहे हैं जैसे भावमिश्र के समय फिरङ्गोपदंश, किन्तु उसकी चिकित्सा के मूलतत्व भी उपदंश चिकित्सकों में संहिता ग्रन्थों और आचार्यों ने वर्णन किये हैं। आजकल नई सभ्यता से उत्पन्न भूषोष्णवात (गनोरिया) के मूलतत्व और चिकित्सा सिद्धांत ऊष्णवात से मिलते जुलते हैं।

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि जिन रोगों के लक्षण और कारणों में आचार्यों के ग्रन्थों से देशकालानुसार कुछ थोड़ा ही अन्तर हुआ हो उन रोगों के नवीन नाम रखने से हमारी आयुर्वेद संहिताओं पर से लोगों की श्रद्धा कम होकर नव्य चिकित्सा पर श्रद्धा बढ़कर आयुर्वेद की प्रगति का मार्ग रुकता है।

कुछ आजकल के नवीन ग्रन्थ लेखक आधुनिक पाश्चात्य ग्रंथों का आर्य भाषा (संस्कृत) अथवा भारतीय किसी भाषा में अनुवाद करके यह समझते हैं कि हम आयुर्वेद का साहित्य बढ़ा रहे हैं। किन्तु बात ऐसी नहीं है क्योंकि आधुनिक विद्वान यह समझ लेते हैं कि आयुर्वेद में कुछ भी नहीं है यह हमारी ही उच्छिष्ट लेकर अपने को गौरवान्वित करना चाहते हैं। यही कारण है कि आजकल हमारी सरकार होते हुए भी उसने यहां के प्राचीन चिकित्सा साहित्य पर कुछ भी ध्यान न देकर उन्नति के लिए सारे देश भर में एक भी अष्टाङ्ग आयुर्वेद महाविद्यालय नहीं खोला। आप भले ही कहते रहिये कि—

यदि हास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्कचित्।

आपके इस ढंढोरे को कौन सुन सकता है जब आप दूसरों का उच्छिष्ट गृहण करते और अपने को अन्नदाता कहते हैं। आपकी इन बातों को सुन कर संसार आपका हास्य नहीं करेगा, तब क्या करेगा।

प्राचीन आर्य साहित्य सूत्रात्मक है "अल्पाक्षरं बह्वर्थबोधकत्वमिति सूत्रम्" अर्थात् सूत्र वह कहलाता है जिसमें शब्द थोड़े हों किन्तु उसका अर्थ बहुत गंभीर और बहुव्यापक हो। उसकी 'एक मात्रा लाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते' अर्थात् वाक्य में एक मात्रा की कमी भी होकर अर्थ वही प्रकाशित हो तब वह आचार्य लोग पुत्र उत्पन्न होने के समान प्रसन्नता मानते थे।

आजकल की भांति एक छोटी बात के लिये पृष्ठ के पृष्ठ भर देना नहीं था। अतः इस समय उन लेखक वैद्यों का कर्त्तव्य है कि उन प्राचीन आचार्यों के सूत्रात्मक विषय का विस्तारपूर्वक वर्णन करके उनके वैज्ञानिक तथ्यों को संसार के सन्मुख रक्खें, और अप्रकाशित प्राचीन आयुर्वेद साहित्य को प्रकाशित करें। इस विषय में हम स्वर्गीय महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन जी और दिवंगत यादव जी महाराज के बहुत ऋणी हैं।

आजकल भी बनारस आयुर्वेद महाविद्यालय के प्रख्यात आचार्य घाणेकर जी आदि कई महानुभाव हैं जिन सबके नाम लिखना केवल लेख के कलेवर को बढ़ाना है कि जो आयुर्वेद के सूत्रात्मक विषय

:: पृष्ठ २०५ का शेषांश ::

हो जायगा। साधारण रुग्णाओं में अन्य औषधियां सेवन कराते रहें तथा साथ में ४ रत्ती की मात्रा में रात्रि को दूध (मिश्री मिलाकर फिर ठंडा करके) के साथ सेवन करायें।

रक्त प्रदर के अतिरिक्त रक्तार्श, नासागत रक्तपित्त में भी यह योग आश्चर्यजनक लाभ करते देखा गया है। विस्तृत विवरण यादव जी त्रिक्रम जी द्वारा लिखित सिद्ध योग संग्रह में पृष्ठ ११९ पर देखें।

—दाऊदयाल गर्ग A., M. B. S.
सह. सम्पादक धन्वन्तरि।

को विस्तार पूर्वक लिख कर आयुर्वेद की सेवा करके प्राचीन आचार्यों के कार्य को सफल बना रहे हैं। किन्तु वृद्ध मृत प्रायः आयुर्वेद के उठाने के लिये केवल अंगुलियों पर गिने जाने वाले नाम ही पर्याप्त नहीं हैं।

अब तक मैंने अपनी दुःख कहानी में पाठकों का बहुत सा समय व्यर्थ ही खोया अब मुझे मुख्य विषय पर आना चाहिए।

सबसे प्रथम यूनानी चिकित्सक इस रोग को गर्भाशय की विकृति से होने वाला रोग मानते थे और उन्होंने इस रोग का नाम 'इख्तनाकुलरहम' रक्खा था जिसका अर्थ रहम की खराबी से गला घुटना होता है। क्योंकि इस रोग में रोगिणी के गोला उठ कर गले में रुक गले को घोटता जैसा है। यूनानी चिकित्सकों का ही अनुकरण पाश्चात्य वैज्ञानिक चिकित्सकों ने भी किया है और उसका नाम 'हिस्टरियाटिस' जिसका अर्थ गर्भाशय प्रदाह है अब इसको केवल 'हिस्टेरिया' नाम से ही कहते हैं। उन्हीं की देखा देखी कुछ भारतीय चिकित्सों ने भी इसका नाम 'योषापस्मार' जो उपरोक्त नामों के ही समानार्थक है नामकरण किया।

आजकल विज्ञान बताता है कि यह रोग केवल स्त्रियों को ही नहीं होता पुरुष और छोटी अवस्था की कन्याओं को भी होता है और यह स्नायुजन्य रोग (नर्वस सिस्टम डिजीज) है। इस बात पर विचार करने से इस रोग के उपरोक्त तीनों नाम त्रुटिपूर्ण होते हैं। यद्यपि यह रोग विशेष करके युवावस्था की स्त्रियों को जिनकी अवस्था लगभग १६ वर्ष और ४५ वर्ष के मध्य में होती है उन्हीं में पाया जाता है। किन्तु यह केवल स्त्रियों का ही रोग नहीं है। यही विचार कर आयुर्वेदज्ञों ने इसका वर्णन स्त्री रोगाधिकार में नहीं किया किन्तु ज्ञानतन्तुओं का रोग होने से इसको वात व्याधि अधिकार में 'अपतंत्रक' नाम से लिखा है। यद्यपि 'अपतंत्रक और योषापस्मार' के कारण और लक्षणों में बहुत थोड़ी भिन्नता भी प्रतीत होती है किन्तु मौलिक सिद्धान्तों में किंचिन्मात्र भी भिन्नता नहीं है। यह केवल आजकल की नवीन सभ्यता के कारण ज्ञात होती है :—

हिस्टेरिया रोग का निदान—

वात कुपित होने के कारण चरक संहिता में इस प्रकार कहे हैं।

> रूक्षशीताल्प लघ्वन्न व्यवायाति प्रजागरैः।
> विषमादुपचाराच्च दोषासृक स्रवणादपि॥
> लंघन प्लवनात्यध्व व्यायामाति विचेष्टितैः।
> धातूनां संक्षयाच्चिन्ता शोक रोगातिकर्षणात्॥
> दुःख शय्यासनात्क्रोधाद्दिवा स्वप्नाद्भयादपि।
> वेग सन्धारणादामादभिघातादभोजनात्॥
> मर्म घाताद्गजोष्ट्राश्व शीघ्र यानावतंसनात्*।
> देहे स्रोतांसि रिक्तानि पूरयित्वाऽनिलोवली॥
> करोतिविविधान्व्याधीन्सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रिताम्॥

आधुनिक समय में योषापस्मार होने के जो कारण माने जाते हैं वही लगभग अत्यन्त स्वल्पान्तर से चरक संहिता ने कह दिये हैं केवल 'रजोऽभावाच्च नारीणां जरायुविकृतेस्तथा' ही लक्षण नहीं आया किन्तु कुछ ध्यान से आप विचारें तब आपको ज्ञात हो जायगा कि रजोऽभाव और गर्भाशय विकृति में भी मुख्य वात दोष ही होता है इस कारण स्त्रियों के रोग होने में वह भी रोग का सहायक हो सकता है।

इस रोग का मन के साथ विशेष सम्बन्ध होता है इसलिये जिन रुग्णाओं की बहुत कोमल प्रकृति होती है और जिनका जीवन विलासी होता है उनको अपने पति के किसी भी कारण से चिन्ता शोक की अति व्याप्ति से यह रोग हो जाता है। आचार्य ने वात दोष का जब मन के साथ विशेष सम्बन्ध होता है तब 'मूर्च्छा मदात्योन्माद मदापस्मार मानसाः' आदि रोगों की गणना की है 'निदान दीपिकायाम् वातरोगाधिकारे'।

---

* अवतंसनम् गजादिभ्यः पतनम्।

इस रोग का मुख्य कारण मानसिक उद्विग्नता है जिसके कारण मस्तिष्क की विकृति होती है वह मस्तिष्क ही सम्पूर्ण स्नायु मण्डल का केन्द्र स्थान है। डाक्टर आलसन (Alsen) का कहना है कि अधिक भोग विलास का जीवन और आलस्य, कुविचारों में पड़े रहने का स्वभाव, बुरी पुस्तकों का स्वाध्याय, अधिक विषय भोग यह हिस्टेरिया (योषापस्मार) रोग के कारण हैं।

मानसिक विक्षोभ भी इसका मुख्य कारण देखा गया है। अधिक लाड़ प्यार का जीवन भी हिस्टेरिया रोग के बढ़ाने में सहायक देखा गया है। हिस्टेरिया रोग होने में ज्ञान तन्तुओं (Nervous System) की विकृत अवस्था होती है जिसके कारण अस्वेच्छा ज्ञान क्रियाओं की अधिकता और मानसिक शक्ति की न्यूनता होती है। हिस्टेरिया किसी रोग के पश्चात् की निर्बलता अथवा निर्बल करने वाले रोग या रक्त की कमी अथवा आहार की कमी या किसी मस्तिष्क या शारीरिक आघात के कारण हो सकता है, जो कि रोगी को निर्बल बनाता है। यद्यपि यह भी सत्य है कि गर्भाशय की विकृति से भी ज्ञान तन्तु विकृत हो सकते हैं, यह भी रोग के कारणों में एक कारण अवश्य है, किन्तु यह बात नहीं हैं कि गर्भाशय की विकृति से ही यह रोग होता हो इस रोग का मुख्य कारण ज्ञान तन्तुओं की निर्बलता ही है चाहे वह किसी भी कारण से हो।

अब आप ध्यान पूर्वक विचारिये कि उपरोक्त विचार जो डाक्टर आलसन अब कह रहे हैं उन्हीं सब बातों को महर्षि चरक कितने काल पूर्व सूत्र रूप से (१) व्यवायाति प्रजागरै (सिनेमादि अधिक देखना आदि) (२) दुःख शय्यासनात्क्रोधात् (३) दिवास्वप्नात् (४) असृक्स्रवणात् (५) शोकरोगातिकर्षणात् (६) रूक्षशीताल्प लध्वन्ने अभोजनात्, (७) अभिघातात् (८) मर्माघातात् गजोष्ट्राश्व शीघ्र यानावतंसनात् आदि शब्द कितने स्पष्ट कहे हैं।

डाक्टर रेनल्ड का कहना है कि हिस्टेरिया के निदान के सम्बन्ध में जो वर्णन हम कर सकते हैं वह यह है कि "वह ज्ञानतन्तुओं की ही विकृति है जिससे उनके उच्च कर्मों में कमी आती और नीची श्रेणी के कार्य बढ़ जाते हैं" और किसी समय सामान्य आघात अथवा शोक से हिस्टेरिया प्रारम्भ हो जाता है।

विषों के प्रभाव अथवा नशीली वस्तुओं के प्रयोग से भी यह रोग होता है। संक्रामक रोग, मंथर ज्वर, फुफ्फुसावरण प्रदाह, आतशयिक गठिया आदि रोगों की छूत से भी यह रोग होता देखा गया है। डाक्टर पोटेन इन सबको आभ्यन्तरीय चोट के अन्दर मानता है। जिन स्त्रियों को गृह कार्य बिल्कुल करना नहीं होता और आराम से विलासी जीवन व्यतीत करती हैं उनको ही यह रोग विशेष होता है क्योंकि उनके मन की बढ़ी हुई इच्छाएँ उनको दुःख देती हैं और यह मन की दशा हिस्टेरिया रोग की सहायक होती है।

पुरुषों में हिस्टेरिया का कारण अधिक मैथुन अथवा हस्तमैथुन विशेष है बल्कि इस बुरी आदत से उन्माद रोग भी हो जाता है। ऐसे कई रोगी मेरी चिकित्सा में आ चुके हैं जिनको हस्तमैथुन से हिस्टेरिया का दौरा पड़ता था।

डाक्टर डूचेटैल्ट (Dr. Duchetalet) का कहना है "कि नगरों की स्त्रियां जो विशेष कर भोग विलास में रहती हैं उनमें ही यह रोग अधिक पाया जाता है।"

आजकल नई सभ्यता के प्रकाश में संतति-निग्रह के कृत्रिम उपाय हो रहे हैं। अब मनुष्य मनुष्य कहलाने के योग्य नहीं रहा वह पशुओं से भी गिर गया है। वह अपना मन और इन्द्रिय निग्रह करके संयम से रहना जानता ही नहीं, किन्तु विषय भोग में लवलीन रह कर भी सन्तान की वृद्धि नहीं चाहता। इन कृत्रिम उपायों के प्रयोग से मनोवह स्रोत पर बुरा प्रभाव होकर मानसिक और वात-

जन्य रोगों की वृद्धि हो रही है। इस कारण से विशेष कर हिस्टेरिया रोग देश में फैल रहा है। भगवान ही रक्षा करें।

अपतन्त्रक हिस्टेरिया रोग के लक्षण—

क्रुद्धः स्वैः कोपनैर्वायुः स्थानादूर्ध्वं प्रपद्यते।
पीड़यन्हृदयंगत्वा शिरः शङ्खौ च पीड़येत् ॥१॥
धनुर्वन्नामयेद् गात्राण्याक्षिपेन्मोहयेत्ततः।
स कृच्छ्रादुच्छ्वसेच्चापि स्तब्धाक्षोऽथनिमीलकः ॥२॥
कपोत इव कूजेच्च निःसंज्ञः सोऽपतंत्रकः।
दृष्टिं संस्तभ्य संज्ञां च हत्वा कंठेन कूजति ॥३॥
हृदि मुक्तेनरः स्वास्थ्यं याति मोहंवृते पुनः।
वायुना दारुणं प्राहुरेके तम प्रतानकम् ॥४॥

उपरोक्त वात कुपित होने के कारण चरक संहिता से लिखे जा चुके हैं उन्हीं कारणों से वायु कुपित होकर अपने स्थान वस्ति से उठकर हृदय प्रदेश में जाकर हृदय को पीड़ित करती है, फिर भी उससे ऊपर जाकर शिर और शङ्ख स्थान को पीड़ित करती है, तब रोगिणी का शरीर कमान की तरह टेढ़ा होकर और झटके लगकर रोगिणी बेहोश हो जाती है। उसको सांस के लेने में बड़ी कठिनता होती है और आंखें ठहर सी जाती हैं अथवा बन्द हो जाती हैं। उसके गले से कबूतर की तरह शब्द होता है और संज्ञा हीन होती है। जब वात का वेग हृदय से हट जाता है तब रोगिणी बिलकुल स्वस्थ मालूम होती है किन्तु फिर वात का वेग हृदय पर आवृत होता है तब फिर रोग का दौरा होकर बेहोश हो जाती है। यह रोग वात दोष से होता है। कोई आचार्य इसको अपतानक के नाम से भी कहते हैं।

यद्यपि हिस्टेरिया रोग के निश्चित लक्षण लिखना कठिन है क्योंकि भिन्न भिन्न रुग्णाओं में भिन्न भिन्न लक्षण देखे जाते हैं। यदि चिकित्सक रुग्णा से भिन्न भिन्न कष्टों के विषय में पूछता जावे तब वह उसके पूछे हुए सभी कष्टों को स्वीकार करती जाती है। हिस्टेरिया ही ऐसा रोग है जिसके लक्षण अनेक रोगों के सदृश हो सकते हैं क्योंकि इस रोग का सम्बन्ध मनसे विशेष होता है। इनके निर्णय के लिये हम एक विधि लिखते हैं—यदि रोगिणी अपने शरीर में जिस स्थान पर दर्द (तकलीफ़) बतावे वहां से उसका ध्यान हटाकर यदि उस स्थान को दबावें तब दर्द की चुभक जो होनी चाहिये कुछ भी प्रगट न होगी, किन्तु रुग्णा के ध्यान में यह बात हो यह मेरा दर्द टटोलते हैं तब हाथ रखते ही वह बड़ा दर्द बताकर चीख कर उठ बैठेगी। यदि उसको बातों में लगाकर धीरे धीरे उस स्थान पर जहां वह पहिले दर्द बता चुकी है अपना हाथ रखकर उससे बातें करते जावें और उस दर्द के स्थान को दबाते जावें तब वह बातों की धुन में न तो वह चौंकेगी और न दर्द से ही चीखेगी। इस प्रकार इस रोग के जानने में बड़ी सहायता मिलती है।

यह रोगिणी कभी पेट में गोला कभी छाती में गोला कभी गले के भीतर गोला, जहां पूछो वहां गोला ही गोला बताती है। यह अपानवायु नीचे से ऊपर उठकर गले तक पहुंचती है इसलिये जहां यह पहुँचती है वहीं गोला मालूम होता है।

कभी कभी रोगिणी ऐसा श्वास लेती है कि देखने वालों को मृत्यु का भय होने लगता है। कभी कांपती है, हांपती है, चौंकती है और कभी इतना बल करती है कि २-३ मनुष्यों के संभाले भी नहीं संभलती, कभी चुप रहती है, कभी बकती बर्राती, दांत पीसती, कभी ऐंठन दिखाती है, जिससे उसकी आकृति गठरी जैसी हो जाती है, कभी वह आगे झुककर और कभी मस्तक पीछेकर चीखती चिल्लाती है। कभी शिर में कील गाड़ने के समान पीड़ा होती है। "शिर शखौ च पीड़येत्" इस प्रकार इसमें सब ही लक्षण वात रोग के लक्षणों जैसे बहुधा होते हैं। सारांश यह है कि ऐसी कोई बात शेष नहीं रहती जिसकी रोगिणी शिकायत न करे। इसमें रोगिणी को दौरा के समय

वातोन्माद के समान 'अस्थान हास्य स्मित नृत्य गीत वाचाङ्ग विक्षेपण रोदनानि' लक्षण भी होते हैं किन्तु अन्तर इस बात का होता है कि वातोन्माद में यह लक्षण रोगी को स्थाई रूप से रहते हैं किन्तु हिस्टेरिया में केवल दौरा होने के समय ही होते हैं। इसका कारण यह है कि वातोन्माद के दोष मस्तिष्क में स्थायी रूप से रहते हैं, किन्तु हिस्टेरिया में वायु जब उठ कर शिर में पहुंच जाती है, और जब तक शीर्ष स्थान में स्थित रहती है तभी तक यह लक्षण होते हैं, और शिर में पीड़ा उस समय होती है जब उन्माद के लक्षण शमन होने लगते हैं।

आवेश (दौरा) के बिना हिस्टेरिया हो उस समय उसको पहचानना कुछ कठिन होता है। और जब उसका आवेश (दौरा) हो तब अपस्मार के समान कुछ उसकी दशा होती है तभी उसको योषापस्मार नाम दिया गया है।

किन्तु हिस्टेरिया में अपस्मार की तरह आक्षेप अचानक नहीं होता और बेहोशी में सर्वथा बेसुधी नहीं होती, पुतलियां नहीं फैलतीं, जिह्वा नहीं कटती, शरीर और वस्त्रों को विशेष हानि नहीं पहुँचती, रोगिणी इधर उधर देखती है, आवेश अधिक देर तक रहता है, चिल्लाना, सिसकियां अधिक होती हैं। इसके अतिरिक्त हिस्टेरिया की आक्षेप के आगे पीछे जो दशा होती है वह अपस्मार में नहीं होती है।

डाक्टर पाल सैन्टन एम. डी. ने एक नकशा अपस्मार और हिस्टेरिया के विषय में दिया है उसको हम यहां देते हैं।

अपस्मार—	हिस्टेरिया—
(१) १५ वर्ष की आयु से बहुधा पहिले प्रगट होता है।	(१) यद्यपि बाल्यावस्था में हो सकता है परन्तु अधिकांश युवावस्था बल्कि प्रारम्भिक युवावस्था में होता है।
(२) रोगी अचानक गिरता है जिसके कारण मुख शिर आदि पर रगड़ें होती हैं।	(२) दौरा होने पर रोगी अवगत होजाता है और शरीर को कोई हानि नहीं पहुंचती।
(३) आक्षेप का आरम्भ एक विशेष चीख से होता है।	(३) प्रायः कोई परिवर्तन नहीं होता। बढ़ी हुई दशा में चिल्लाना होता है।
(४) आक्षेप में रोगी को जोर से पकड़ना आवश्यक होता है उसका संचालन देर तक होता है।	(४) रोगिणी की गति इतनी वेगवान होती है कि कभी-कभी कई मनुष्य पकड़ते हैं।
(५) रोगी सर्वथा बेसुधी की दशा में होता है और बोल नहीं सकता।	(५) रोगी असंगत शब्द बोलता है और वेगवान संचालन में होश भी आजाता है।
(६) मनोविकार व अन्तर्वेग के लक्षण नहीं होते।	(६) अन्तर्वेग के लक्षण होते हैं यथा रोगी निद्रावस्था में काम कर रहा हो।
(७) आक्षेप के पश्चात् चित्त भ्रम असंगत अयुक्त और शीघ्र शीघ्र निरर्थक सा होता है।	(७) चित्त भ्रम होता है रोगिणी का ध्यान दूसरी ओर लगाया जा सकता है।
(८) आक्षेप के समय रोगी अपनी जिह्वा काट लेता है और कभी कभी मल मूत्र निकल जाता है।	(८) जिह्वा को कोई कष्ट नहीं होता। मल मूत्र प्रायः नहीं निकलता।

अपस्मार	हिस्टेरिया
(९) इन आक्षेपों से शरीर के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है शारीरिक दशा खराब और उष्णता बढ़ी हुई होती है।	(९) आक्षेपों की अधिकता शारीरिक स्वास्थ्य पर हानि नहीं पहुंचाती और उष्णता नहीं बढ़ती।
(१०) आक्षेप के पश्चात् आलस्य और तन्द्रा होती है।	(१०) आक्षेप के पश्चात् रोगी कोई बुरी दशा प्रगट नहीं करता।
(११) आक्षेप के अतिरिक्त हिस्टेरिया की सी दशा नहीं होती।	(११) हिस्टेरिया ग्रस्त मन की दशा कई रंग दिखाती है।
(१२) ब्रोमाइड से लाभ होता है।	(१२) ब्रोमायड से कोई विशेष लाभ नहीं होता।
(१३) दृष्टि क्षेत्र में कोई संकुचन नहीं होती।	(१३) दृष्टि क्षेत्र में संकुचन होता है।

हिस्टेरिया चिरकाल तक रहने पर भी स्वास्थ्य अधिक नहीं बिगड़ता। हिस्टेरिया के लक्षण जिन अस्ली रोगों से मिलते हैं वह रोग स्वयं जो-जो हानियां करते हैं, इस रूप में नहीं करते।

हिस्टेरिया के दूर होने के लिए रोगिणी के मन का बड़ा प्रभाव होता है, इसी कारण रोगिणी का जिस चिकित्सा पर अथवा जिस चिकित्सक पर विश्वास हो उसी से शीघ्र लाभ होता है।

हिस्टेरिया रोग की रोगिणी विशेष बेहोश नहीं होती उसको ज्ञान बना रहता है। इस बात के जानने के लिए यदि आप रोगिणी के घर में आंच लगा दें तब दौरा उसी समय दूर हो जायगा और घर से भाग निकलेगी। यदि ऐसी वस्तु जिससे रोगिणी बहुत ही घृणा करती हो उसके पास ले जावें तब दौरा की बेसुधी शीघ्र ही दूर हो जायगी। रोगिणी के बाल काटने को कहें अथवा मसाल उसके मुख के पास ले जांय तब चट आंख खोल देगी। इन बातों से ज्ञात होता है कि रोगी को इस रोग में चेत रहता है।

इनसाईक्लोपीडिया एण्ड डिक्शनरी आफ मैडीसन एण्ड सर्जरी में अधिक व्याख्या से दौरे का वर्णन किया है। उसमें हिस्टेरिया को दो भागों में विभक्त किया है।

(१) हिस्टेरिया मायनर (सौम्य हिस्टेरिया)

(२) हिस्टेरिया मेजर (तीव्र हिस्टेरिया)

उस ग्रंथ में इनके लक्षण इस प्रकार लिखे हैं—

(१) हिस्टेरिया मायनर—रोगिणी को बायें कूल्हे में कुछ कष्ट सा प्रतीत होता है। उसके थोड़ी देर पश्चात् ऐसा मालूम होता है कि पेट में से एक गोला सा उठकर ऊपर को जाता हुआ गले में अटक गया है। इसको दूर करने के लिए दुबारा निगलने का प्रयत्न करती है, फिर कुछ समय पश्चात् रोगिणी को कुछ आराम मालूम होता है, किन्तु रोगिणी को शरीर थका हुआ, शिर में दर्द और गर्दन में कठिनता सी प्रतीत होती है। पेट कुछ फूला हुआ होता है, डकार आती हैं, दिल पर घबराहट की हालत होती है और हृद्गति बढ़ जाती है, मूत्र पीले रंग का विशेष मात्रा में होता है और रुग्णा का चित्तावसाद होता है।

(२) हिस्टेरिया मेजर–रुग्णा एक साथ चीख मार कर रोने लगती या बहुत ही हंसने लगती है और उसको एक गोला सा पेट में से उठकर गले तक जाता हुआ मालूम होता है और ज्योंही वह गोला गले तक पहुंचता मालूम होता है वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती है, छाती कूटती है, सिर को पीछे की तरफ झुका देती है "धनुवन्नामयेद्गात्राण्याक्षिपेन्मोहयेत्तदा" और गले को आगे की ओर ऊंचा करती है जिससे गले में

जो गोला सा अटका हुआ मालूम होता है वह निकल जावे। हाथ पैरों में खिंचाव और कम्प होता है। कभी उठती है, कभी बैठती है, कभी हाथ पांव मारती है, पलकें झपकी सी मालूम होती हैं नाक के नथने फूल जाते हैं किन्तु मुख मण्डल विकृत नहीं होता यद्यपि चीखने पुकारने से थोड़ी देर को कुछ बेडौल हो भी जाता है। कभी रुग्णा अपने सिर के बाल खींचने लगती है, शरीर के कपड़े फाड़ती है, और दीवार से अपना सिर टकराती है और पास के बैठे हुए आदमियों को काट खाने को दौड़ती है, श्वास ठंडा गहरा और अनियमित होता है। दिल धड़कता है पेट फूला हुआ होता है और बार-बार गले की तरफ अंगुली ले जाती है अर्थात् गले में किसी चीज के अटकने का इशारा करती है। रुग्णा का मुख रक्तवर्ण का होता है और उसके गले की शिरायें रक्त से भरी हुई होती हैं। हाथ-पैर सर्द होते हैं, किन्तु थोड़ी देर पश्चात् कुछ गर्म हो जाते हैं। जब रुग्णा की शारीरिक शक्ति निर्बल पड़ जाती है तब वह हांफने और कांपने लगती है। छूने से चौंकती और कभी चुपचाप पड़ी रहती है और फिर एकाएक उपरोक्त बातों की वृद्धि हो जाती है। इसी प्रकार रुग्णा कई बार जोर करती, कभी चुप हो जाती, कभी खिलखिलाकर हंस पड़ती है, या रो पड़ती है और कभी कभी वमन होने के पश्चात् सो जाती है और रोग का दौरा शान्त हो जाता है और मूत्र अधिक आता है। यदि हिस्टेरिया का दौरा अपस्मार के समान कम्प के साथ हो तब रुग्णा मूर्च्छित हो जाती है, कुछ रुग्णायें प्रलाप करतीं और कभी कभी कुत्ते की तरह भूकने या कूकने लगती हैं।

रोग का दौरा कुछ चन्द मिनट से लेकर दो चार घंटे तक और कभी कभी ३-४ दिन तक रहता है। ऐसी दशा में रुग्णा का एक दौरा समाप्त नहीं होने पाता कि दूसरा दौरा प्रारम्भ हो जाता है अर्थात् एक बारी उतरने नहीं पाती तब तक दूसरी बारी आ जाती है। इस रोग का दौरा अधिकतर मासिक धर्म होने के दिनों में होता है और नींद की दशा में नहीं होता।

प्रिय पाठक आप समझ गये होंगे कि मैंने हिस्टेरिया के लक्षणों में अन्य डाक्टरों का जो विवरण लिख कर यह गूदड़ झगड़ा गाया है वह आयुर्वेद के आचार्यों ने इसके लक्षणों को केवल दो ही शब्द कहकर समाप्त कर दिया है। वह सूत्र है "तन्द्रारोगाश्चवातजाः" अर्थात् इस रोग में सब लक्षण वात विकृति से होने वाले और फिर तन्द्रा होती है, अर्थात् जब वातदोष कुछ न्यून होकर उसके साथ कफदोष का भी मिश्रण होता है और मन में रजोगुण और सत्वगुण समाप्त होकर तमोगुण का आविर्भाव होता है तभी तन्द्रा होती है "तमोवातकफात्तन्द्रा" तभी रोगिणी का दौरा बहुधा समाप्त हो जाता है। यह है आयुर्वेद का सूत्रात्मक विवरण जिसके न जानने से ही हम लोग बड़े बड़े पोथाओं को रटते हैं।

हिस्टेरिया रोग की चिकित्सा—

(१) हिस्टेरिया के दौरा के समय जब रोगिणी हाथ-पांव फैंकने लगे और वेहोश हो जावे तब कोई चिन्ता न करके उसको एक हवादार कमरे में जिसमें शुद्ध वायु का संचार हो लिटादें और उसके शरीर के कपड़े ढीले करदें और उसके सिर की तरफ तकिया लगाकर ऊँचा करदें और मुख पर शीतल जल के छींटे मारें अथवा एमोनिया सुंघावें। यदि यह उपस्थित न हो तब चूना और नौसादर समभाग लेकर उसमें थोड़ा कपूर मिलाकर किसी शीशी में खूब पीस कर भर दें और थोड़ासा जल मिलाकर शीशी में खूब डाट लगादें। उस शीशी की डाट खोलकर रोगिणी को संघा दीजिये शीघ्र दांत खोल देगी। तब औषधि चटा दीजिये।

(२) श्वास कुठार रस अथवा कायफल भी सुंघाने से रोगिणी दांत खोल देती है।

(३) अमृतधारा की १-१ बूंद नाक में तथा थोड़ी सी आँखों के पलकों के ऊपर लगादें, रोगिणी

होश में आ जायगी।

(४) प्याज को कुचलकर एक बारीक कपड़े में बांधकर रुग्णा की नाक के पास रक्खें।

(५) राई कूटकर बारीक मल-मल के कपड़े में बांधकर रोगिणी को सुंघाना हितकारी है।

(६) जब दौरा हो तब मनुष्यों के बालों को जलाकर या जुन्दबेदस्तर जलाकर या बकरी के बालों को जलाकर या नाखून जलाकर उसकी धूनी रोगिणी को नलकी द्वारा देनी चाहिए। जब रोगिणी बेहोशी की दशा में हो तब उसको अकेला ही छोड़ दें और उसके पास रह कर सहानुभूति का व्यवहार न करें क्योंकि अधिक सहानुभूति से रोग बढ़ता है। इस दशा में रोगिणी इतनी बेहोश नहीं होती कि वह निकट वालों की बातें न सुन सके और उनकी क्रियायें न देख सके। इसलिए उसको भयदायक प्रयोग कराने चाहिए। यथा लोहा खूब गर्म करके चिकित्सक यह आज्ञा खूब जोर से रोगिणी को सुनाकर दे कि इसके हाथ या किसी अङ्ग को इस गर्म लोहे से जलादें। यह सुनकर रोगिणी शीघ्र होश में आ जायगी। या कोई दुर्गन्ध युक्त वस्तु जिससे रोगिणी को घृणा हो संघाने को कहें। अथवा हींग सुंघावें, हींग इस रोग की मुख्य औषधि है इसको सुंघाने और खाने में प्रत्येक अवस्था में दे सकते हैं।

रोगिणी के होश की दशा में निम्नांकित औषधियों का प्रयोग करावें—

(१) मल्ल चन्द्रोदय आधी रत्ती से १ रत्ती तक हिंग्वादि द्विरुत्तर चूर्ण १॥ माशे के साथ मिलाकर गर्म जल अथवा अर्क मकोय से देना बहुत लाभप्रद होगा। यह मेरा बहुत समय का अनुभूत प्रयोग है। हिंग्वादि द्विरुत्तर चूर्ण का प्रयोग इस प्रकार है—

द्विरुत्तरं हिंगुवचाऽग्नि कुष्ठं
सुवर्चिका चैव विडङ्ग चूर्णम्।
सुखाम्बुनाऽऽनाह विषूचिकार्ति
हृद्रोग गुल्मोर्ध्व समीरणघ्नम्॥

अर्थात् घी में किया हुआ हीरा हींग का फूला १ भाग, वच २ भाग, चीता मूल की छाल ४ भाग, कूठ मीठा ८ भाग, सज्जीखार अथवा सोडा खाने का १६ भाग, वायविडंग का चूर्ण ३२ भाग सब बारीक पीस छान तोल कर मिलाकर रखलें।

(२) ताजा शङ्खपुष्पी का निकाला हुआ स्वरस १ तोला में शुद्ध हींग का चूर्ण १ रत्ती मिलाकर रुग्णा को पिलावें।

(३) अपामार्ग की जड़ १ तोला, काली मिर्च ४ नग पीसकर कल्क बनाकर प्रातः सायं ७ दिन तक दें, विशेष लाभ होगा।

(४) हींग बढ़िया शुद्ध, कपूर देशी दोनों समभाग लेकर पीसकर पानी से १-१ रत्ती की गोली बनालें। प्रातः दोपहर और सायंकाल १ से २ गोली तक दिन में ३ बार एक सप्ताह तक देते रहें।

(५) यदि ऋतुदोष के कारण रोग हो तब हीरा हींग का फूला १ तोला, एलुआ २ तोला, लौहभस्म २ तोला, हीरा बोल अथवा शुद्ध गुग्गुल ५ तोला इन सबको गरम पानी के छींटे लगाकर खूब कूट चना प्रमाण में गोली बनालें। प्रातः सायं २-२ गोली दूध के साथ दें और भोजनोपरांत कुमार्यासव देते रहें।

(६) यदि गर्भिणी स्त्रियों को हिस्टेरिया का रोग हो तब उनको तीक्ष्ण प्रयोग न कराके उनको इस मेध्य रसायन का प्रयोग करावें और शरीर पर महालाक्षादि अथवा महानारायण तैल की मालिश करावें।

मेध्य रसायन—शङ्खपुष्पी, मुलेठी, गुडूची घन सत्व, ब्राह्मी सम भाग लेकर बारीक पीस छान कर रखलें। १॥ माशे से ३ माशे की मात्रा में मधु से अथवा मधु ३ माशे, गोघृत ६ माशे, मिलाकर चटाकर गोदुग्ध औटाकर ठंडा करके पिलावें। सारस्वत चूर्ण का प्रयोग भी इस दशा में लाभकारी सिद्ध हुआ है।

(७) सारस्वत घृत का यह प्रयोग हिस्टेरिया की प्रत्येक दशा में लाभप्रद सिद्ध हुआ है। प्रयोग इस प्रकार है—

ब्राह्मी का ताजा निकाला हुआ स्वरस ऽ१, घी गाय ऽ१, हीरा हींग २ तोला, कूठ २ तोला, शंखपुष्पी २ तोला, वायबिडंग २ तोला, कालीमिर्च २ तोला, सौंठ २ तोला, पीपल छोटी २ तोला। उपरोक्त औषधियों का कल्क बनाकर घृतपाक विधि से घृत तैयार कर लें। इसको प्रतिदिन प्रातः सायं ६-७ माशे औटे हुए गोदुग्ध के साथ अथवा भोजन के साथ दें। बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

(८) गर्भाशय की विकृति से होने वाले हिस्टेरिया रोग में चन्द्रांशुरस और प्रमदानन्द रस बहुत लाभकारी सिद्ध हुये हैं। यह मेरी चिकित्सा में बहुत वर्षों से अनुभूत है। चन्द्रांशुरस का प्रयोग इस प्रकार है—

पारा शुद्ध, गन्धक शुद्ध समभाग की कज्जली २ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, लौहभस्म १ तोला, बंगभस्म १ तोला इन सबको घृतकुमारी के छने हुये स्वरस से एक दिन खूब घोटकर २-२ रत्ती की गोली बनाकर साया में सुखा कर रखलें। १-१ गोली प्रातः सायं शहद में चाटकर ऊपर जीरा श्वेत का क्वाथ पिलावें।

(९) प्रमदानन्दरस—पारा शुद्ध, गन्धक शुद्ध की कज्जली समभाग की हुई २ तोला, लोह भस्म १ तोला, रौप्यभस्म १ तोला, स्वर्णभस्म १ तोला, शिलाजीत शुद्ध १ तोला इन सबको एक जगह खूब खरलकर चीते की छाल के रस में खूब घोटकर १-१ रत्ती की गोली बनालें। प्रातःसायं १-१ गोली शहद में चटाकर ऊपर से त्रिफला क्वाथ पिलावें।

(१०) इस रोग में आयुर्वेद विज्ञान का बृहद् भैरवरस भी मेरे प्रयोग में बहुत आया है तथा बड़ा लाभकारी सिद्ध हुआ है। स्वर्णसिंदूर २ तोला स्वर्णभस्म २ तोला, मुक्तापिष्टी गुलाबजल में की हुई १ तोला, प्रवालभस्म १ तोला, कान्तलौहभस्म १ तोला, कान्तपाषाण भस्म १ तोला इन सब औषधियों को खूब खरल कर ग्वारपाठे के रस, मंडूकपर्णी के रस में १-१ दिन में खूब खरल करके टिकिया बनाकर साया में सुखाकर एरण्ड पत्रों में लपेटकर ३ दिन तक धान्य राशि में लगा दें फिर निकालकर कुछ ग्वारपाठे के रस में घोट कर ३-३ रत्ती की गोली बनालें। १-१ गोली मिश्री और त्रिफला के क्वाथ अथवा त्रिफला चूर्ण से लें अथवा शहद में चाटकर गाय का औटा हुआ दूध पीवें। यह इस रोग को दूर कर बल वृद्धि भी करता है।

(११) इस रोग में दीन रुग्णाओं के लिए योगचिन्तामणि की "अमरसुन्दरी गुटिका" भी बहुत लाभप्रद सिद्ध हुई है।

(१२) हिस्टेरिया दौरा समाप्त होने पर निम्न प्रयोग बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ है—बड़ी हरड़ का वक्कुल, निशोथ सफेद का बक्कुल, सोंठ, रूमीमस्तंगी, अऊदसलीब प्रत्येक १-१ तोला, उस्तखद्दूस २ तोला, छोटीहरड़ २ तोला, आंवला २ तोला, दालचीनी १॥ तोला, मीठे बादाम का तैल २॥ तोला, शहद आध सेर। विधि—उपरोक्त औषधियों को कूटछान कर बादाम रोगन से चिकना कर शहद मिलाकर कांच के पात्र में ४० दिन मुंह बन्द करके जौ के ढेर में रख दें। पश्चात् ६-६ माशे प्रातः सायं अर्क गाजवां या जल से दें। इससे शरीर शुद्ध होकर वायुदोष शमन होकर रोग निर्मूल हो जाता है।

(१३) हिस्टेरिया रोग के लिए यह निम्न औषधि भी बहुत लाभप्रद सिद्ध हुई है—बालछड़, दालचीनी, नेत्रबाला, तज्रकलमी, रूमी मस्तंगी, बादरंजबोया अगरबिलसां, हुब्बबिलसां, केशर असली, जुंदबेदस्तर हर एक औषधि १-१ तोला गुलाब का गुलकन्द सब औषधियों के बराबर और सब औषधियों से दूना शहद मिलाकर रखलें। १-१ तोला प्रातः सायं अर्क गाजवां से खावें।

(१४) भोजन के पश्चात् रोगिणी को कुछ समय तक सारस्वतारिष्ट, अश्वगन्धारिष्ट का प्रयोग कराते रहें।

हिस्टेरिया की मुख्य चिकित्सा यह है कि रोगिणी का मन शान्त रहे क्योंकि इस रोग का मन के साथ गहरा सम्बन्ध है। मस्तिष्क को जिन बातों से उत्तेजना हो उनसे रोगिणी को दूर रखना चाहिए।

—श्री पं० रामस्वरूप शर्मा आयुर्वेदाचार्य
अध्यक्ष-गोपाल आयुर्वेद भवन, उखलाना (अलीगढ़)

योषापस्मार

कविराज श्री रामदेव शास्त्री

सामान्य परिचय—मानस संक्षोभ की यह स्थिति संक्षोभी प्रकृति विशिष्ट जनों में अतिशय मानसिक व शारीरिक ग्रस्त होने पर पाई जाती है।

रोग का कारण—आयुर्वेद की दृष्टि से रोग का कारण वात श्लेष्म प्रदुष्टि है परन्तु आधुनिकों की मान्यतानुसार रोग का वैज्ञानिक मूल अनिश्चित है। सम्भवतया एकाधिक कारण इसकी उत्पत्ति में सहायक होते हैं।

रोग प्रादुर्भाव—काम, क्रोध, मोह, लोभ, शोकादिक के आघात से वातश्लेष्म प्रदुष्टि होकर रोगी के अन्तर्मन में एक संक्षोभ का सृजन होता है। यही संक्षोभ शारीर लक्षणों का स्वरूप धारण कर रोग के चिन्हों को प्रगट करता है। वास्तव में ये शारीर चिन्ह अन्तःशक्ति-कृत-संक्षोभ-प्रतीकारात्मक मनः प्रयत्न हैं परन्तु रोगी इस तथ्य को नहीं समझ पाता है। वह तो रोग रुजा मात्र को ही अनुभव करता है।

पुरुषों में भी विशेषकर सैनिकों में यह रोग पाया गया है तथापि पीड़िता प्रायः स्त्रियां और वे भी १५ से लेकर ३० वर्ष तक की वय वाली ही होती हैं। इनके परिवारों में भी मनोदौर्बल्य का इतिवृत्त पाया जाता है और ये प्रायः क्षीण स्वास्थ्या, आत्मनियन्त्रणकलानभिज्ञा एवं भावुकातिशया होती हैं।

रोग के लक्षण तथा शरीर चिन्ह—प्रत्येक रोगी में लक्षणों की भिन्नता रहती है और वे रोगी की कल्पनानुसार विभिन्न स्वरूप धारण करते रहते हैं। यहां हम शरीर क्रमों के अनुसार विभिन्न संस्थानों पर होने वाले लक्षणों का विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

(१) केन्द्रीय वात संवहन संस्थान का संक्षोभ—केन्द्रीय मानस संस्थान के संक्षोभ से इच्छाशक्ति की विकृति एवं इन्द्रियों पर आत्म नियन्त्रण का अभाव हो कर विषयों का ज्ञान असमानुपातिकरूपेण होता है। परिणाम स्वरूप रोगी कोई भी क्रिया न करके क्रियाभास ही कर पाता है। संवेग वेदना, वा पक्षाघात की दशा को कारणपेक्षया बलबत्तर रूप में प्रगट करता है और सतत अनुचित सहानुभूति की कामना करता है।

(२) ज्ञानेन्द्रियों के विकार—एक नेत्र का अन्धत्व व दृष्टिमान्द्य, दृष्टि क्षेत्र का सकोच, अविकृत नेत्र में दृष्टि सामंजस्य का अभाव, बाधिर्य (प्रायः निद्रावस्था में अनुपस्थित) गन्ध तथा स्वाद का अपूर्ण ज्ञान, निरुद्देश्यक अंग चालन, विभिन्न प्रकार की चल वेदनायें विशेषतया शिर में कील घुसने जैसी पीड़ा तथा संज्ञा शून्यता आदि पाये जाते हैं। यह शून्यता शाखाओं के परिसरीय भागों पर विशेषरूपेण अनुभव होती है परन्तु इसका सम्बन्ध किसी भी वातवाहिनी की विकृति से प्रतीत नहीं होता है।

विशेषत: रोग विनिश्चय के लिए तुलनात्मक विवेचन अपेक्षित है अत: निम्न प्रकार से रोगी परीक्षा करनी चाहिये।

यदि एक नेत्र के दृष्टिमांद्य का ज्ञापन किया जावे तो स्वस्थ नेत्र को बन्द करके अस्वस्थ नेत्र पर प्रहाराभिनय करने से वह झपक जाता है। बधिर प्रतीत होने वाला रोगी निद्रावस्था में कोलाहल से जग जाता है। संज्ञाहीन हस्त वस्तुओं को पहिचान लेता है और शून्य भाग को जान बूझ कर क्षतग्रस्त नहीं होने देता है।

(३) अनैच्छिक मांसपेशियों पर प्रभाव—कंठबद्धता एवं गले में बलयाकारी वस्तु का अवरोध, निगरण में कष्ट, उद्गार बाहुल्य, वमनाधिक्य, उदराध्मान तथा शूल, मल-मूत्रावरोध एवं बीजवाहिनी का शोथ पाया जाता है। हृत्कम्प-हिक्का क्षुधानाश, स्वेदाधिक्य तथा मुखरक्तत्व भी उपलब्ध होता है।

(४) कर्मेन्द्रियों में विकार—विभिन्न प्रकार की हत पक्षतायें तथा एकांग व अर्ध शरीर का घात मुख प्रदेश प्राय: अप्रभावित। तथा कदाचित् जिह्वा पेशियां, एवं मध्य शरीर की पेशियां भी घातित पायी जाती हैं। पेशियों का घात होने पर वे प्राय: 'मृदु' व 'कठोर' हो सकती हैं। यह पेशीघात मात्र ऐच्छिक क्रियाओं तक ही सीमित रहता है। घात पेशियां खांसने पर व अन्य अनैच्छिक क्रियाओं के समय सक्रिय दिखाई पड़ती हैं, घातित अंग निद्रावस्था में गति करता रहता है। यदि किसी रोगी से पीड़ित अंग को उठाने को कहा जाय तो स्वस्थ अंग की पेशियों में संकोच प्रारम्भ होकर वह ही उठ जाता है। रोग विनिश्चयार्थ घातित पेशियों की भली भांति परीक्षा करनी चाहिये। पक्षाघात की वास्तविक स्थिति में घातित अंग का क्षय, विद्युदुत्तेजक के द्वारा प्रतिक्रिया का अभाव, बाह्य क्षोभकों के प्रयोग से पेशियों में क्रियाभास एवं मुद्रिका द्वारों में प्रकृत क्रिया का अभाव पाया जाता है।

पेशी कन्डराओं पर प्रभाव—योषापस्मार में पेशी कन्डराओं की प्रतिक्रिया पूर्णतया लुप्त कभी भी नहीं होती है। उसका सम व विषम योग हो सकता है। पादतल संकोच प्रतिक्रिया कभी भी विस्तार प्रतिक्रिया में परिवर्तित नहीं होती है।

रोगी की स्थिति एवं स्वरूप—पीड़िता की स्थिति तथा स्वरूप किसी भी वातवाहिनी की विकृति का परिचायक नहीं होता है।

अंग संकोच—सामान्यतया पाया जाता है। रोगी पराश्रयिक गतियों का चीख पुकार के साथ प्रतिरोध करता है। हनुग्रह, भ्रूपात, अंग संकोच व जिह्वाबद्धता पायी जाती है। ये चिन्ह भेषजिक संज्ञानाश में लुप्त होजाते हैं। कम्पन सूक्ष्म वा दीर्घ होते हैं तथा ध्यानातियोग, उत्तेजना और आवागमन से बढ़ जाते हैं।

वाणी—कभी कभी वाणी भी प्रभावित हो जाती है और मूकता या अस्पष्टोच्चारणता पायी जाती है।

आक्षेपक—आक्षेपक अधिकतर संवेगी उपद्रव यथा चीखना चिल्लाना आदि के साथ अनियमित देह काठिन्य एवं देहशैथिल्य के रूप में प्रगट होते हैं और रोगी को धैर्य प्रदान तथा सहानुभूति प्रदर्शन से बढ़ते हैं। रोगिणी कभी भी गिर कर अपने को क्षति-ग्रस्त नहीं करती है और न कभी अपनी जीभ को दंश करती है। नीलिमा, पाण्डुता, अज्ञात रूपेण मल मूत्र त्याग और आवेगों के पश्चात् महामूर्च्छा नहीं होती है।

विशेष—कभी कभी आवेगों के मध्य में अतिशयित श्वास प्रश्वासों के कारण रक्त में क्षाराधिक्य होने पर यथार्थ अपस्मारिक आक्षेप भी पाये जा सकते हैं।

(५) मानसिक विकृतियां—मन पर विशेष प्रभाव होने पर रोगी उन्माद ग्रस्त सा प्रतीत होने लगता है। इस कारण रोगिणी स्वत: अपने से नितान्त भिन्न व्यक्ति की भांति आचरण करती है। स्मृति भ्रंश भी होता है, जिससे पीड़िता अपने सम्पूर्ण

जीवन को व जीवन के एक भाग को पूर्णतया विस्मृत कर देती है।

(६) बाह्य त्वचा पर प्रभाव—बाह्य त्वचा पर आत्मकृत व्रण उपलब्ध होते हैं जिनका एक मात्र उद्देश्य पर सहानुभूतिकर्षण ही है।

(७) जननेन्द्रियों पर प्रभाव—क्लैव्यता एवं योनिबन्ध पाया जाता है।

साध्यासाध्यता—प्रधानतया रोगी के व्यक्तित्व, परिस्थितियां एवं चिकित्सा प्रबन्ध पर आधारित होती है। यदि दीर्घकाल पर्यन्त आवेग के मूल कारण उपस्थित रहते हैं तो पीड़िता की रोग मुक्ति सम्भव नहीं होती है।

योषापस्मार विषयक शास्त्रीय विवेचन—योषापस्मार शब्द का प्रयोग आयुर्वेद के प्राचीन वाङ्मय में उपलब्ध नहीं है। यह अर्वाचीन नामकरण है। अंग्रेजी में इस रोग का नाम हिस्टेरिया है। इसका अर्थ है गर्भाशय, लोगों का विश्वास था कि यह रोग गर्भाशय विकार जनित है परन्तु आधुनिक खोजों ने इस विचार को निर्मूल सिद्ध कर दिया है। इसी प्रकार योषापस्मार नाम भी इसी मान्यता पर आधारित है कि रोग का स्वरूप अपस्मार से सादृश्य रखता है तथा यह मात्र स्त्रियों को ही पीड़ित करता है। आयुर्वेद साहित्य में पठित रोगों से इसका पूर्ण सादृश्य तो उपलब्ध नहीं है तथापि सुश्रुत निदान स्थान अध्याय १ श्लोक ६४, ६६ में

वायुरूर्ध्वं व्रजेत् स्थानात् कुपितो हृदयं शिरः।
शंखौ च पीडयत्यङ्गान्याक्षिपेन्नमयेच्च सः॥
निमीलिताक्षो निश्चेष्टः स्तब्धाक्षो वापि कूजति।
निरुच्छ्वासोऽथवा कृच्छ्रादुच्छ्वस्यान्नष्ट चेतनः॥
कफान्वितेन वातेन ज्ञेय एषोऽपतन्त्रकः।

वर्णित अपतन्त्रक रोग से इसका बहुत कुछ साम्य प्रतीत होता है। जब कि हिस्टेरिया एवं योषापस्मार जैसे असंगत नाम प्रचलित हो सकते हैं तो जब तक यथार्थ रूप से आयुर्वेद के मनीषी इस रोग का प्रामाणिक नामकरण न करदें तब तक इसे अपतन्त्रक ही स्वीकार करने में कोई हानि नहीं है। अपतन्त्रक एवं आधुनिक हिस्टेरिया में थोड़ा बहुत असादृश्य होने पर चिकित्सा की दृष्टि से कोई विशेष अन्तर नहीं है।

ऐलोपैथिक में योषापस्मार की गणना मानस रोगों में करते हैं। आयुर्वेद को इसमें कुछ भी विपत्ति नहीं है। मानस रोगों के मूल हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोकादिक. इनसे विषमित वायु कफान्वित हो इस स्थिति का सृजन करती है। अतः रोग मुक्ति की दृष्टि से यह नितान्त आवश्यक है कि प्रकृति एवं मानसिक शक्ति का भली प्रकार से अनुशीलन किया जावे। आयुर्वेद में विकार शान्ति के लिये भिषग की प्रधानता प्रतिपादित है। मानस रोगों में विशेषतया एक प्रभावशाली व्यक्तित्व-सम्पन्न वैद्य रोगी को साहस प्रदान कर उसके हृदय में विश्वास एवं दृढ़ता का सम्पादन कर सकता है और उसे आश्वासित कर सकता है कि उसके शरीर में कोई रचनात्मक विकृति नहीं है।

आयुर्वेद में रोग चिकित्सा की दृष्टि से अनेकों योग हैं। इन्हीं में से मेरे द्वारा बहुशः प्रयुक्त योग तथा चिकित्सा का एक सामान्य किन्तु सफल क्रम निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत है। आवेग काल में रोगी को तीक्ष्ण नस्य का प्रधमन देना चाहिये। यथा

१—सुधा नृसार सम भाग मिलाकर सुंघाइये।

२—मूर्च्छान्तक नस्य का प्रयोग कीजिये।

३—श्वास कुठार व अर्ध नारीनटेश्वर नासा में प्रधमित कीजिये।

इनमें से किसी एक का प्रयोग करने से रोगी चैतन्य हो जाता है। यदि रोगी को विबन्ध हो तो आवश्यकतानुसार रेचन का प्रयोग करना चाहिये। आवेग विरहित काल में आवेग निवारणार्थ एवं शक्ति सम्पादनार्थ निम्न योग हितावह है।

उन्माद गजांकुश ३ रत्ती, अभ्रक भस्म ३ रत्ती, अकीक पिष्टी ३ रत्ती, सारस्वतादि चूर्ण ३ माशा,

ब्राह्मी ३ माशा, शंखाहुली ३ माशा, तगर ३ माशा, लवंग २ माशा, जटामांसी ३ माशा, अश्वगन्धा ३ माशा, कालीमिर्च ६ नग —इन वस्तुओं के जल में चतुर्थांशावशेष विधान से पाचित क्वाथ की ३ मात्रायें बनाकर यथाक्रम पीनी चाहिये। यदि आवश्यक हो तो मधु यथेच्छ मिलाया जा सकता है।

उन्माद गजांकुश के स्थान पर वात कुलान्तक का भी प्रयोग किया जा सकता है। भोजन रोगी की स्थिति के अनुसार पेय, लेह्य, भोज्य वा भक्ष्य हो सकता है। भोजन के उपरान्त सारस्वतारिष्ट १ तोला, अश्वगन्धारिष्ट १ तोला समान भाग जल के साथ पान करना चाहिये।

अन्य रोगों लक्षणों एवं उपद्रवों का यथावश्यक उपचार करना चाहिये। ऊपर दिये गये सब योग प्रसिद्ध एवं शास्त्रीय हैं अतः उनका विशेष विवरण अनावश्यक है। इन क्रमों से तथा उपयुक्त वातावरण से रोगी अवश्य ही रोग मुक्त होजाता है।

—कविराज श्री रामदेव शास्त्री ए. एम. एस., प्र. मंत्री—उत्तर प्रदेशीय स्वायत्त संस्थानीय आयुर्वेदिक यूनानी चिकित्सक संघ ८८१५ छपट्टी, मैनपुरी।

अपस्मार चिकित्सा

१—वैद्यराज श्री पं० विश्वेश्वर दयालु आयुर्वेद महामहोपाध्याय

यदि यह रोग अविवाहित स्त्रियों को हो तो शीघ्रातिशीघ्र उनका विवाह करादें। यदि विवाहित स्त्री हो और उसका पति दूर हो तो उसके साथ करदें, कारण यह जरायु के खिंचाव का कारण होता है। यह ऊपर संकुचित होकर उठता है। यदि विधवा स्त्रियों को हो तो वीर्य को कम करने वाली और विषयेच्छा दूर करने वाली औषधियों का प्रयोग करें। दाई से गर्भाशय को खुजलावें। यदि मासिक धर्म के खून बन्द होने से हो तो मासिक धर्म खोलने वाली दवायें दें। गर्भाशय को शुद्ध करने की क्रियायें कार्य में लायें, पोटलियां रखें। रोग के समय हाथ-पाव को बांध दें। पानी के छींटे दें, दिलवावें और सुगन्धित वस्तुओं की पोटली गर्भाशय में रखें, क्योंकि गर्भाशय सुगन्ध प्रिय है दुर्गन्ध से घृणा करता है। दुर्गन्धित वस्तुओं को सुंघावें (नस्य दें) इससे गर्भाशय नीचे की तरफ आता है। नाक में नकछिंकनी बूटी का नस्य दें। पाव के तलवों में राई व नमक पीसकर मलें, बाबूने का क्वाथ से पोशों की पिंडलियों का धोया अर्थात् धार बांध कर भी डालते हैं। जुन्दबेदस्तर, नकछिंकनी, गौ का दूध, नफत और कदवान दुर्गन्धित वस्तुयें गंधक, गूगल, सिर के बाल नाक के सामने जलावें ताकि धुंआं नाक में जाय, प्याज का रस ४-५ बूंद नाक में डालना भी उत्तम है। सुगन्धित वस्तुऐं जैसे—अम्बर, कस्तूरी, सुगन्धित तैलों में मिला गर्भाशय में मलें या पिचु रखें।

दौड़ा दूर होने के बाद—द्रव अस्तमरवैन, अपारज लुगाजिया से जुलाब दें। इसके बाद माजून संजरमीना (संजरनिया) जिसदेतुम माजून गयासी को अनीसून के काढ़े के साथ खिलावें। प्रत्येक हफ्ते अपारजात देते रहें। एक दिन बीच में छोड़कर माजून निजाह खिलावें और भेदक के पानी से नहाना आवजन करना हितकारी है।

ऋतुस्राव साफ लाने के लिए—मासिक स्राव के तीन दिन पहिले से ही द्रव युवारकी दिन में ३ वार शर्बत बजूरी से दें।

आक्षेप निवारणार्थ—अदवार, ऊदसलीव १-१ माशा महीन पीस खमीरा गांजगान ५ माशा में

मिलादें और अर्क सौंफ ५ तोला पिला दिया करें।

हींग १ माशा, बालछड़ २ माशा, गुलबाबूना १ तोला, मुलेठी १ तोला जल से पीस चने प्रमाण गोलियां बना दिन में तीन बार सुबह, दोपहर, शाम को दें। यह भी उत्तम कार्य करती है।

आयुर्वेदीय चिकित्सा—

हर्रकाबुली का छिलका, निशोथ सफेद, इन्द्र जौ, वच मीठी, इन्द्रायण मूल, पीपल छोटी, गज पीपल, शीतल चीनी, अतीस, चित्रक, कपूर, आक की जड़ की छाल। इनका चूर्ण बनालें। प्रति-दिन शर्बत जटामांसी के साथ दें।

केवल हर्रकाबुली का चूर्ण ३ माशा लेते रहने से पेट साफ रहेगा। कफ मेद हरण होगा। यही दो बातें स्मरोन्माद (कामोन्माद) नाशक हैं ध्यान रखें। जिन्हें कुछ काम नहीं, घर में खूब खाने पीने का आराम है और अविवाहित हैं, उपन्यास, सिनेमा के शोकीन हैं उन्हें यह रोग अवश्य होता है और उसमें यह लाभकर है।

मूर्च्छा के समय ठण्डे पानी के छींटे शिर और आंखों में दें, तेज नस्य दें, छींक करावें। पेट साफ कर मल को खूब साफ करने वाली मूर्च्छा और अपस्मार में वर्णित औषधियों तथा गर्भाशय शोधक औषधियों का प्रयोग करें।

बृहत् भूतभैरव रस—

स्वर्ण सिंदूर ६ माशा, स्वर्णभस्म ६ माशा, मुक्ता प्रबाल, कान्तलौह, राजपद ६-६ माशा खरल में डालकर घी कुमारी के रस से घोटें, फिर ब्राह्मी रस में ३-३ दिन घोट गोली बना एरण्ड के पत्तों में लपेट धान्य राशि में रखें। ३ दिन बाद २-२ रत्ती की गोली बना त्रिफलाचूर्ण शक्कर मिलालें या दूध के साथ दें। यह भूतोन्माद, अपस्मार योषापस्मार (हिस्टेरिया) मद, मूर्च्छा, अनेक प्रकार के वातरोगों में लाभप्रद है। उन्हें अवश्य नष्ट करती है।

हमारा अनुभव—

यदि गर्भाशय में रतूवत संचित हो तो बाय-विडंग ६ माशा, समुद्रफेन, सूखा बेरोजा, सेंधा-नमक प्रत्येक ३-३ माशा कूट छानकर मलमल के कपड़े में ३-३ माशे की ३ पोटली बनालें और गर्भाशय के मुंह के सामने और एक एक दायें बायें दाई से रखा दें। इससे गर्भाशय का शोधन हो जाता है यह क्रिया ३ दिन तक करें।

कामोत्तेजना अधिक हो तो कत्था साफ १ तोला कपूर ६ माशा पानी से चने प्रमाण गोली बनालें। १ से ३ गोली तक शंखपुष्पी, ब्राह्मी स्वरस से दें।

वाताधिक्यरोगे—मल्लसिन्दूर ½ रत्ती सर्पगन्धा चूर्ण ३ रत्ती ऊदसलीब २ रत्ती मधुघृत से दें।

भैषज्यरत्नावली का वातकुलान्तक रस बगैर कस्तूरी का ८ तोला में जुन्दबेदस्तर २ तोला घोटकर शीशी में रख लें। मात्रा २-३ रत्ती शर्बत जटामांसी से दें। यदि गले में गोला सा हो तो २ चावल हींग मिला दें।

किसी किसी को हींग, कपूर समान भाग की २-२ रत्ती की गोलियों से भी लाभ पहुँचा है। प्रमदानन्द रस भी उपकार करता है।

प्रमदानन्द रस—

लोहभस्म, चांदीभस्म, स्वर्णभस्म, पारा, गंधक, शिलाजीत समभाग में चित्रक स्वरस की ३ भावना दें। १-१ रत्ती की गोलियां बनाकर त्रिफला चूर्ण १॥ से ८ माशे के साथ दें।

भूतभैरव रस भी उत्तम कार्य करता है। हमने २-३ रोगियों पर प्रयोग कर अच्छा फल पाया है। अपस्मारोक्त रसों का प्रयोग भी उत्तम होता है विशेषकर पंचगव्यघृत का १-१ तोला घृत गोदुग्ध ५ तोला में मिश्री मिला देते रहें।

वैद्यराज पं० विश्वेश्वरदयालु आयु. महामहोपाध्याय,
सम्पादक—अनुभूत योगमाला
बरालोकपुर (इटावा)

[२]

श्री दिवाकर मिश्र शास्त्री

इस रोग की चिकित्सा के लिये पूर्ण मनोवैज्ञानिक दृष्टि कोण अपेक्षित है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि सिद्ध-हस्त वैद्य भी इस रोग की चिकित्सा में असफल हो जाते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि चिकित्सक को रोग के सही कारणों का पता चिकित्सा से पूर्व ही हो जाय।

इस रोग में कोष्ठ की शुद्धि सर्वथा अपेक्षित है। एतदर्थ स्निग्ध विरेचन की ही व्यवस्था करनी चाहिए। पेट में कृमियों के आधिक्य से भी अपस्मार के कुछेक लक्षण दीखने लगते हैं। वैसी स्थिति में निम्नांकित कृमिघ्न योग का प्रयोग कर तब विरेचन की व्यवस्था करनी चाहिए।

कृमिघ्न योग—

इन्द्र जौ विडङ्ग पलाश के बीज छोटी हर्र प्रत्येक समभाग। इन्हें एकत्र चूर्णकर आध तोले की मात्रा में केवल रात में सोने के समय चीनी मिला कर गर्म जल से दें। दो दिनों के उपरान्त विरेचन की व्यवस्था करें। आत्ययिक स्थिति में रात्रि में कृमिघ्न योग देकर प्रातःकाल भी विरेचन की व्यवस्था की जा सकती है।

रोगिणी को हल्का, किन्तु पोषक अन्नपान देना चाहिए। मधुर और सान्त्वना पूर्ण बचनों से उसे आश्वस्त रखने का प्रयास करना चाहिये। रोगिणी के लिए कभी कभी भय का प्रदर्शन भी आवश्यक हो जाता है। मूर्च्छा की स्थिति में सिर और आंखों पर ठंडे जल के छींटे और शिरोविरेचन आवश्यक हैं। मूर्च्छा की स्थिति में निम्न लिखित योग का प्रयोग नस्य के रूप में किया जा सकता है।

नस्य—नौसादर, बचा, छोटी इलायची के दाने, चूना, मरिच, सोंठ प्रत्येक एक तोला और कपूर आधा तोला। इन्हें एकत्र श्लक्ष्ण चूर्ण बना कर शीशी में भर लें। शीशी का कार्क खूब कड़ा रहना चाहिए। नस्य के रूप में आवश्यकतानुसार इसका प्रयोग करें। इससे तत्काल मूर्च्छा दूर हो जाती है और रोगिणी होश में आजाती है।

'योषापस्मार' पर मैंने निम्नाङ्कित योगों को सफल पाया है—

(१) सर्पगन्धा १॥ माशे, ब्राह्मी १॥ माशे, बचा १॥ माशे, तालमिश्री १ तोला। इन्हें एकत्र ठंडे जल में पीस कर नारियल के जल में घोलकर प्रातः सायं पिलाना चाहिये।

(२) हरा किशमिश १ छटांक, छोटी इलायची एक आना भर, खीरे का बीज एक आना भर, पोस्त दाना एक आना भर। इन्हें शतपुष्पार्क में अच्छी तरह पीसकर प्रातः सायम् पिलाना चाहिए।

(३) घृतकुमारी का गूदा आधा तोला, मिसरी आधा तोला। इन्हें एकत्र मिलाकर त्रिफला के जल के साथ प्रातः सायं रोगिणी को देना चाहिए।

इनके अतिरिक्त वृ० वात चिन्तामणि रस, अपतन्त्रकारि वटी, बृहत् भूत भैरव रस, अश्वगन्धारिष्ट आदि औषधियों का भी आवश्यकतानुसार अनुपान भेद से प्रयोग किया जाता है।

—श्री दिवाकर मिश्र शास्त्री 'प्रभारी'
जिला बोर्ड आयुर्वेदिक औषधालय,
साहेबपुर कमाल (मुंगेर)

[३]

श्री डा० त्रिवेणी प्रसाद बरनवाल

दौरा के समय रोगी को होश में लाने के लिए उसके वस्त्रों को सर्व प्रथम ढीला कर देना चाहिए

और ताजी हवा मिले ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। मुंह और नाक पर ठंडे पानी की धार छोड़नी चाहिए इससे साधारण मूर्च्छा में लाभ हो जाता है। यदि इससे सफलता न मिले तो नाक और मुँह दोनों को बन्द कर देना चाहिए। इससे रोगी लम्बा सांस लेता है। परिणामतः आक्षेप हल्के हो जाते हैं और रोगी चैतन्य हो जाता है। नौसादर और खाने वाला चूना मिलाकर सुंघाने से भी लाभ होता है। स्प्रिट अमोनिया ऐरोमैटिकस को रूई में डुबोकर मुंह बन्द करते हुए नाक में सुँघाने से चैतन्यता शीघ्र आ जाती है। बेहोशी तीव्र हो तो देर तक यह क्रम रखना चाहिए। थोड़ी चैतना होने पर इसी दवा की १५-२० बूंद १ औंस पानी में मिलाकर पिला भी देना चाहिए।

दौरे के बीच के समय में शुद्ध वायु में टहलने के अतिरिक्त मन बहलाव, प्रसन्न वातावरण, आमोद-प्रमोद की व्यवस्था करनी चाहिए। शोक, भय, चिन्ता, क्रोध से बचना चाहिए। रोगी के मन पर ऐसा प्रभाव जमाना चाहिए कि जीवन चुपचाप, आलस्य और अकर्मण्यता में यापन करने की वस्तु नहीं हैं बरन् उसकी एक महत्ता है और उसका सदुपयोग करना आवश्यक है। कार्य में न लगने से इस रोग का आक्रमण होता ही रहता है। मन को बदल देना चाहे, उपदेश से या कौशल से आवश्यक है। वायु शामक औषधि, अन्न और विहार की व्यवस्था होनी चाहिए। वायु के प्रकोपक कारणों से बचाना चाहिए।

जहां तक चिकित्सा का सम्बन्ध है, विपरीत चिकित्सा प्रणाली में रोग को दबा देने की शक्ति अवश्य है पर स्थायी लाभ उससे नहीं होता। वे लोग ब्रोमाइड्स (शामक औषधि) का प्रयोग अधिक करते हैं। निम्न लिखित नुस्खा विशेष लाभप्रद पाया गया है।

टिंचर एसफिटिडा (हींग का टिंचर) १५-३० बूंद, एलेक्जिर वेलेरियन ब्रोमाइड (जटामांसी विशिष्ट योग) ६० बूंद, स्प्रिट एमोनिया (नृसार का विशेष योग) १० बूंद, स्प्रिट क्लोरीफार्म १० बूंद, सिरप रोज़ (गुलाब का शर्बत) ६० बूंद, डिस्टिल्ड वाटर या अर्क गुलाब १ औंस, इससे पर्याप्त लाभ होते देखा गया है। पर इस रोग की चिकित्सा समचिकित्सा प्रणाली में बहुत सुगमता से होती है। अत्यन्त दुरूह और असाध्य प्रतीत होने वाले रोग इस चिकित्सा से जादू की भांति अच्छे होते हैं। यहां चार छः औषधियों का जिक्र कर देना अनुचित न होगा क्योंकि चिकित्सा का परम लक्ष्य रोगी को आराम पहुँचा देना ही है।

इग्नेशिया ३०—यह दवा प्रायः सभी योषापतन्त्रक के रोगियों को दी जा सकती है। इसको देने के लिए रोगी में ये लक्षण मिलेंगे। आक्षेप जिस में गले में गोला जैसा अटका मालूम हो। पति से बिलगाव मन मुटाव, थकावट, शिर में भारीपन। अधिक उत्तेजना पुनः शान्त हो जाना। ३ बूंद ३ औंस परिश्रुत जल में मिलाकर दिन में ३ बार दिया जाय।

वैलेरियन—शाम को होने वाली मूर्च्छा, गले में गोलासा प्रतीत होना। चिल्लाने की प्रवृत्ति, डिम्ब ग्रंथियों में पीड़ा, अधिक मूत्र का होना।
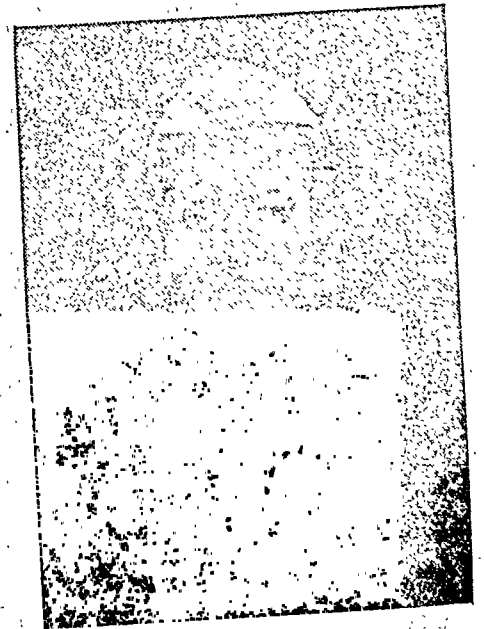
सिपिया—शोकातुर, असनस्क प्रकृति, छाती और गले में आक्षेप, चिन्ता, मूर्च्छा, मासिक धर्म में अनियमितता, अधिक पसीना होना।

एसफिटिडा—पित्त की उत्तेजना, गले में जलन और सूखापन ऐंठन और काटने वाला दर्द, पेट का आध्मान, मिचली और कै करने की प्रवृत्ति, कोष्ठबद्धता या अतिसार, लाल गाढ़ा मूत्र, गले में गोला उठने की प्रतीति कष्टार्तव, मूर्च्छित होने की प्रवृत्ति।

पल्साटिला—गर्भाशय की विकृति या मासिक धर्म बार बार होने से, नाजुक प्रकृति, प्रदर, अजीर्ण और उदर में कृमि।

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धतियों का मूल है इस लिए त्रिदोष सिद्धान्त पर आश्रित इसकी अपनी चिकित्सा पद्धति है। "हेतु व्याधि विपर्यस्त, विपर्यस्तार्थ कारिणाम्। औषधान्न विहाराणामुपयोगं सुखावहम्। विद्यायुपशयं व्याधेः" को ध्यान में रखकर चिकित्सा में प्रवृत्त होना चाहिए। "संक्षेपतः क्रिया योगो निदान परिवर्जनम्" के अनुसार जिस कारण विशेष से रोगोत्पत्ति हुई है उसका परिवर्जन और उसी भांति औषधि, और आहार-विहार की व्यवस्था करनी चाहिए। सभी चिकित्सा प्रणालियों में हींग का प्रयोग किया गया है। चरक ने निम्न लिखित योग का प्रयोग करने को कहा है।

हिंगु तुम्बुरु पथ्या च पौष्करं लवण त्रयम्।
यवक्वाथाम्बुना पेयं हृत्पार्श्वार्त्यपतन्त्रके॥

हींग, धनियां, हरड़, पुष्करमूल, सैंधा, सौवर्चल और बिड नमक के चूर्ण को जौ के क्वाथ लेने से हृच्छूल, पार्श्वशूल और अपतन्त्रक अच्छा होता है।

जटामास्यादि कषाय—जटामांसी १ तोला, असगन्ध ½ तोला, खुरासानी अजवायन ½ तोला का क्वाथ पिलाना चाहिये।

अपतंत्रहर वटी—गांजा १ तोला, घी १ तोला, अजवायन २ तोला, तगर २ तोला, ब्राह्मी स्वरस में मटर बराबर गोली बनावें, प्रातः सायं जलसे दें।

इनके अतिरिक्त कल्याण लेह, मुक्ता पिष्टी, बृहत् भूत भैरव रस का प्रयोग भी विशेष गुणकारी है। सारस्वतारिष्ट स्वर्णघटित अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ है।

महर्षि चरक के निम्न लिखित आदेश का पालन आवश्यक है।

आवाध मर्जनं नित्यं स्वस्थवृत्तानुवर्तनम्।
उत्पन्नातिविघातश्य मर्मणां परिपालनम्॥

—श्री त्रिवेणीप्रसाद बरनलाल ए० एम० एस०
चेतगंज, वाराणसी।

[४]

श्री पं० लीलाधर शर्मा आयुर्वेदाचार्य

योषापस्मार की चिकित्सा में ३ सूत्रों पर ध्यान देना चाहिये। (१) स्नायु-मण्डल की उत्तेजना कम करना (२) कोष्ठगत वायु का शमन (अनुलोमन) जिससे मल मूत्र साफ हो जाय (३) रजोऽवरोधजन्य रज की गांठ को गलाकर निकालना। यदि तीनों सूत्रों के गुणों को पूर्ण करने वाली एक ही औषधि हो—या दो गुण पूर्ण करने वाली हो या भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों को पूर्ण करने वाली अलग-अलग औषधि हों तो भी हर्ज नहीं। प्रायः इन सिद्धान्तों के पूर्ण करने वाली औषधियां बहुत वैद्यों पर मिलेंगी। मैं भी अपना अनुभव ही लिखता हूँ।

वातकुलान्तक रस—गांजा १ तोला, कच्ची हींग ६ मासे, कपूर ६ मासे, सौंठ ६ मासे, खुरासानी अजवायन २ तोला, जटामांसी ६ मासे। कूटने पीसने छानने योग्य औषधियां कूट छानकर वजन करलें। फिर इनको एक एनामिल या कांच के पात्र में थोड़ा पानी देकर भिगोकर गीला मात्र करें ताकि

सिल पर पीसने में सुविधा हो। फिर इनको मिला कर सिल पर पीसें, पानी का हल्का सा छींटा देते जाना चाहिये ताकि लोच (स्निग्धता) उत्पन्न हो जाय। फिर गांजे को खूब बारीक पीसें और पिसने पर सम्पूर्ण औषधियों को मिलाकर खूब पीसकर एक जी करके १-१ रत्ती की गोली बनानी चाहिये। एक वटी पानी के साथ तोड़ कर-निगलवायें। समय—प्रातः सायं या दिन में एक वार। गुण-अपस्मार, योषापस्मार नाशक, निद्राप्रद, ज्वरघ्न, गुल्म नाशक है। ऐसी रोगिणी को कोई मृदु रेचक औषधि देते रहना चाहिये। स्नायु मंडल को शिथिल करने के लिये—पोटाश ब्रोमाइड १५ ग्रेन, सोडाबाई कार्ब १५ ग्रेन, पोटाश आयोडायड ४ ग्रेन, जल १ औंस। समय—दिन में तीन बार। इससे मस्तिष्क की उत्तेजना एवं बारम्बार दौड़ा आना बन्द होगा। चिकित्सा के समय इस बात का स्मरण रखिये कि योषापस्मार का वेग दो तरह का होता है। एक में रोगिणी उछलती कूदती हाथ पांव पटकती है। दूसरे में गुमसुम होकर चुपचाप पड़ जाती है। हमारा उपर्युक्त योग उछलने कूदने पटकने वाले लक्षणों में लाभदायक हैं। चुपचाप पड़ जाने वाले हिस्टेरिया में एलोपैथी की लाइकर एमोनियां सुंघाना या एमोनियां कार्ब अथवा स्मैलिंग साल्ट सुंघाना चाहिये।

ग्रैवेयक नस्यम्—जङ्गली कण्डों की राख को कपड़छन करके समान भाग भुना हुआ तूतिया मिलाकर रखलें। समय पर सुंघायें। बेहोशी दूर होगी।

बिंदाल नस्य—बिंदाल, कायफल समान भाग लेकर कूटकर कपड़ छन करें। मात्रा-१ रत्ती। कोई वैद्य इसमें नौसादर का उड़ाया फूल भी मिलाते हैं। गुण-बेहोशी नाशक।

जटिला कषाय—जटामांसी, रास्ना, पीपलामूल, एरन्डमूलत्वक, सौंठ, अजवायन, गूगल, मुमव्वर, सब ३-३ माशे लेकर आध सेर पानी में मिट्टी की हांडी में पकायें। ५ तोला शेष रहने पर छानकर पीलें। इससे हिस्टेरिया जन्य या स्वतन्त्र कम्पवात नष्ट होगी। रजोवरोधज हिस्टेरिया की रज की गांठ को गलावेगा। यह बड़ा ही अनुभूत योग है। सब प्रकार की हिस्टेरिया में काम देगा। चाहे गुम्म पड़जाने वाली हिस्टेरिया हो चाहे रोने चिल्लाने हाथ पांव पटकने वाली। यह औषधि भंगीराबाद के एक डाक्टर जो कि मारवाड़ में अच्छी ख्याति पाये थे उनका है और धन्वन्तरि में बहुत वर्ष पहिले ही प्रकाशित हुआ था। पाठकों को इस विलक्षण दवा का अनुभव करना चाहिये। चिकित्सा सूत्र के प्रथम तृतीय सूत्रों का वर्णन मैंने कर दिया अब पेट की वायु शांत करने पाखाना पेशाब लाने के अनेक योग वैद्यों के पास हैं उनका विस्तार भय से लिखना ठीक नहीं जंचता।

—श्री पं. लीलाधर शर्मा C/o पंजाब सेवा समिति,
हनुमानजी लैन, बड़ा बाजार, कलकत्ता।

[५]

वैद्य श्री प्रह्लादराय शर्मा

योग—शुद्ध हींग २ तोला, बच २ तोला, जटामांसी ४ तोला, कूठ ४ तोला, काला नमक ४ तोला, वायविड़ङ्ग ४ तोला वस्त्रपूत कर चूर्ण बनावें।

मात्रा—३ से ६ माशे चूर्ण दिन में ३ बार जल के साथ लेवें।

उपयोग—धैर्य पूर्वक २ मास तक सेवन करने से "हिस्टेरिया" रोग अवश्य ही शमन होजाता है, निद्रा न आना आदि विकार शान्त होजाते हैं। इस चूर्ण में हींग मुख्य है, इससे सब तरह के आक्षेप जनित रोगों को अति उपकारक है, इसे हिस्टेरिया की सब अवस्थाओं में सेवन करा सकते हैं।

गर्भाशय के विकार जनित कम्प वात आदि रोग दूर हो जाते हैं।

आयुर्वेदालंकार वैद्य प्रह्लादराय शर्मा साहित्यायुर्वेदरत्न हनुमान राजकीय आयुर्वेद औषधालय,
सालासर (चूरू)

योनिव्यापद्विमर्श

श्री पं० सोमदेव शर्मा सारस्वत

जिस प्रकार उपदंश आदि कुछ विशिष्ट रोग पुरुषों को ही हुआ करते हैं उसी प्रकार उदावर्ता आदि कुछ विशिष्ट रोग स्त्रियों को ही हुआ करते हैं। यह रोग स्त्रियों के योनि (गुह्य) प्रदेश में होने के कारण योनि व्यापद[1], योनि रोग[2], योनिगद[3], योनिदोष[4], और गुह्यरोग[5] कहलाते हैं।

चरक मुनि ने इनका योनि व्यापद्, योनिगद और योनि दोष के नाम से, सुश्रुत ने योनिव्यापद् तथा योनि रोग के नाम से और आचार्य वाग्भट्ट ने योनि व्यापद्, योनिगद्, योनि रोग तथा गुह्य रोग नाम से वर्णन किया है।

योनि व्यापदों की संख्या[5]

चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, अष्टांग संग्रह, माधव निदान, शार्ङ्गधर, भावप्रकाश, बृहद्योग तरंगिणी और योग रत्नाकर आदि सब ग्रंथों में योनि व्यापदों की संख्या बीस (२०) लिखी है। केवल उनके नामों में कुछ अन्तर है। जैसे—

संख्या	चरक मुनि	आचार्य वाग्भट्ट	सुश्रुत मुनि
१	वातिकी	वातिकी	वातला
२	पैत्तिकी	पैत्तिकी	पित्तला
३	श्लैष्मिकी	श्लैष्मिकी	श्लैष्मला
४	सान्निपातिकी	सान्निपातिकी	सर्वजा
५	रक्त योनि	रक्त योनि	लोहितक्षरा (रुधिरक्षरा)

१–(अ) विंशतिर्योनिव्यापदो भवन्ति।
—चरक सूत्र अ० १६–६।

(आ) गर्भिणी प्रतिरोगेषु चिकित्सा चाप्युदाहृता।
तां सर्वथा प्रयुंजीत योनिव्यापत्सु बुद्धिमान्॥
—सुश्रुत उत्तर अ० ३८–३२।

(इ) योनिव्यापत्सु भूयिष्ठं शस्यतेकर्म वातजित्॥
—अष्टाङ्ग हृदय उत्तर अ० ३४।२२

२–रूक्ष दुर्बल बालायास्तस्या वायुः प्रकुप्यति।
स दुष्टो योनिमासाद्य योनि रोगाय कल्पते॥
—सुश्रुत उत्तर अ० ३८–३

३—इति योनिगदा नारी यैः शुक्रं न प्रतीच्छति।
—अष्टांग हृदय उत्तर अ० ३३–५२

४—योनि दोषं रजो दोषं श्वेतं नीलं सपीतकम्।
स्त्रीणां श्यावारुणं यच्च प्रसह्य विनिवर्तयेत्॥
चूर्णं पुष्यानुगं नाम हितामात्रेय पूजितम्।
—चरक चिकि० अ० ३०/६३–६४

५–(अ) अथातो गुह्यरोगविज्ञानीयं नामाध्यायं व्याख्यास्यामः। (अष्टांग हृदय उत्तर अ० ३३–१)

विंशति विधानां स्त्री गुह्यरोगाणां च विज्ञानाय विशेषज्ञानाय हितं गुह्य रोग विज्ञानीयम्। (अष्टांग हृदय उत्तर अ० ३३ कैरली व्याख्या)

(आ) गुह्यशब्द के योनि (भग) और मेढ्र (लिङ्ग) यह दो अर्थ होते हैं और योनि को स्त्रीगुह्य और लिङ्ग को पुङ्गुह्य कहते हैं। जैसे—

(क) गुह्य शब्देन योनि भेदे उभेऽपि गृह्यते।
अ० हृ० उत्तर अ० ३३ कैरली व्याख्या।

(ख) मेहनं गुह्य शब्दं च जानीयाद्भगमेढ्रयोः।
(अभिधान मंजरी)

५–इत्येतैर्लक्षणैः प्रोक्ता विंशतिर्योनिजागदाः।
—चरक चिकित्सा अ० ३०–३६।

संख्या	चरक मुनि	आचार्य वाग्भट्ट	सुश्रुत मुनि
६	अरजस्का	लोहितक्षया	वन्ध्या
७	अचरणा	विप्लुता	अचरणा
८	अतिचरणा	अतिचरणा	अतिचरणा
९	प्राक्चरणा	प्राक्चरणा	अत्यानन्दा
१०	उपप्लुता	उपप्लुता	विप्लुता
११	परिप्लुता	परिप्लुता	परिप्लुता
१२	उदावर्तिनी	उदावृत्ता	उदावर्ता
१३	कर्णिनी	कर्णिनी	कर्णिनी
१४	पुत्रघ्नी	जातघ्नी	पुत्रघ्नी
१५	अन्तर्मुखी	अन्तर्मुखी	प्रस्रंसिनी (स्रंसिनी)
१६	सूचीमुखी	सूचीमुखी	सूचीवक्त्रा
१७	शुष्का	शुष्का	फलिनी
१८	वामिनी	वामिनी	वामिनी
१९	षण्ढयोनि (षण्ढी)	षण्ढा	षण्ढा
२०	महायोनि	महायोनि	महायोनि (महती)

योनि व्यापद् सम्बन्धी आयुर्वेदिक साहित्य—

१—चरक मुनि ने चरक संहिता के सूत्र स्थान के १९ वे अष्टोदरीय अध्याय के नवें सूत्र और चिकित्सा स्थान के तीसवें अध्याय के १२७ श्लोक को मिलाकर (१+१२७) १२८ श्लोकों में विस्तार-पूर्वक योनि व्यापदों का वर्णन किया है।

२—सुश्रुत मुनि ने सुश्रुत संहिता के उत्तर तंत्र के अड़तीसवें (३८ वें) अध्याय (योनि व्यापत्प्रति-षेध अध्याय) के ३२ श्लोकों में योनि व्यापदों का वर्णन किया है।

३—आचार्य वाग्भट ने अष्टांग संग्रह के उत्तर स्थान के ३८ वें और ३९ वें अध्याय में और अष्टांग हृदय के उत्तर स्थान के 'गुह्य रोग विज्ञानीय' अध्याय के २६ श्लोक और ३४ वें गुह्य रोग प्रति-षेध अध्याय के ४५ श्लोक अर्थात् (२६+४५) ७१ श्लोकों में योनि व्यापदों का वर्णन किया है।

४—भेल मुनि की भेल संहिता के सूत्र स्थान के अष्टोदरीय अध्याय और चिकित्सा स्थान के योनि व्यापद् चिकित्सा अध्याय में योनि व्यापदों का वर्णन मिलता है।

५—माधवकार ने माधव निदान में और आचार्य भाव मिश्र ने भाव प्रकाश में सुश्रुत संहिता के अनु-सार ही योनि व्यापदों का वर्णन किया है।

इनमें से चरक मुनि ने योनि व्यापदों के निदान सम्प्राप्ति लक्षण और चिकित्सा का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। आचार्य वाग्भट ने प्रायः चरक संहिता के मतानुसार नातिविस्तृतसंक्षेप में और सुश्रुत मुनि ने इनके प्रसिद्ध एवं प्रधान लक्षण लिख कर चिकित्सा का संक्षेप में वर्णन किया है। पश्चात्कालीन माधवकर, वृन्द, चक्रपाणि, और भावमिश्र आदि वैद्यों ने सुश्रुत मुनि के मता-नुसार ही संक्षेप में योनि व्यापदों का वर्णन किया है।

योनि व्यापदों के नामों में अभिन्नता—

चरक, सुश्रुत और वाग्भट द्वारा वर्णित योनि व्यापदों के नामों में अभिन्नता—

१—चरक वाग्भट और सुश्रुत के मत में १२ योनि व्यापदों के नामों में अभिन्नता है।

२—चरक और वाग्भट के मत में १७ योनि व्यापदों के नामों में अभिन्नता है।

३—चरक और सुश्रुत के मत में १४ योनि व्यापदों के नामों में अभिन्नता है।

४—सुश्रुत और वाग्भट के मत में १३ योनि-व्यापदों के नामों में अभिन्नता है। जैसे—

	चरक	वाग्भट	सुश्रुत
चरक सुश्रुत और वाग्भट के १२ अभिन्न योनि व्यापदों के नाम	१–वातिकी	१–वातिकी	१–वातला
	२–उदावर्तिनी	२–उदावृत्ता	२–उदावर्ता
	३–अतिचरणा	३–अतिचरणा	३–अतिचरणा
	४–परिप्लुता	४–परिप्लुता	४–परिप्लुता
	५–वामिनी	५–वामिनी	५–वामिनी
	६–कर्णिनी	६–कर्णिनी	६–कर्णिनी
	७–षण्ढयोनि (षण्ढी)	७–षण्ढा	७–षण्ढी
	८–महायोनि	८–महायोनि	८–महायोनि (महती)
	९–पैत्तिकी	९–पैत्तिकी	९–पित्तला
	१०–श्लैष्मिकी	१०–श्लैष्मिकी	१०–श्लैष्मला
	११–सन्निपातिकी	११–सान्निपातिकी	११–सर्वजा
	१२–सूचीमुखी	१२–सूचीमुखी	१२–सूचीमुखी
चरक और वाग्भट के १७ अभिन्न नामों वाले योनि व्यापद्	१३–प्राक्चरणा	१३–प्राक्चरणा	
	१४–उपप्लुता	१४–उपप्लुता	
	१५–अन्तर्मुखी	१५–अन्तर्मुखी	
	१६–शुष्का	१६–शुष्का	
	१७–रक्तयोनि	१७–रक्तयोनि	
चरक और सुश्रुत के १४ अभिन्न नाम वाले योनि व्यापद्	१८–अचरणा		१३–अचरणा
	१९–पुत्रघ्नी		१४–पुत्रघ्नी
	सुश्रुत और वाग्भट के अभिन्न योनिव्यापद	१८–विप्लुता	१५–विप्लुता

योनि व्यापदों के नाम में भिन्नता—

१—चरक और वाग्भट द्वारा वर्णित ३ योनि व्यापदों के नाम में भिन्नता है किन्तु लक्षणों में समानता है।

चरक—१–अचरणा २–पुत्रघ्नी ३–अरजस्का।

वाग्भट—१–विप्लुता २–जातघ्नी ३–लोहितक्षया।

२—चरक और सुश्रुत में वर्णित २ योनि व्यापदों के नामों में भिन्नता है किन्तु लक्षणों में समता है।

चरक—१–अरजस्का २–रक्तयोनि।

सुश्रुत—१–वन्ध्या २–लोहितक्षरा।

३—चरक और सुश्रुत के मत में ४ निम्न लिखित योनि व्यापदों के नाम और लक्षण दोनों में भिन्नता है।

चरक—१–प्राक्चरणा २–उपप्लुता ३–अन्तर्मुखी ४–शुष्का।

सुश्रुत—१–अत्यानन्दा २–विप्लुता ३–प्रस्रंसिनी-(स्रंसिनी) ४–फलिनी।

आचार्य वाग्भट के पश्चात्कालीन माधवकर, वृन्द, चक्रदत्त, शार्ङ्गधर, भावमिश्र आदि संग्रह कर्त्ता आचार्यों में मौलिकता एवं स्वतन्त्र विचारधारा का अभाव पाया जाता है। इन सबने सुश्रुत मुनि की संक्षिप्त लेखन शैली के आधार पर ही अपने अपने ग्रन्थों में योनि व्यापदों के प्रधान लक्षण तथा चरक और वाग्भट के कुछ प्रयोग एवं कुछ अन्य साधारण प्रयोग चिकित्सा के लिये लिखकर अपने कर्त्तव्यपालन की इतिश्री समझली है।

योनि व्यापदों का निदान (कारण)—

योनि रोगों के कारण बाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार के होते हैं।

१—बाह्य कारण-मिथ्या आहार तथा आचार (मिथ्याहार विहार)

२—आभ्यन्तर कारण-कुपित (बढ़े हुये) वात पित्त कफ दोष और आर्तव आदि दूष्य।

१—चरक [1] मुनि का मत—

चरक ने योनि व्यापदों के निम्न लिखित ४ कारण बताये हैं।

१—स्त्रियों का मिथ्याचार (मिथ्याहार तथा मिथ्या बिहार)

२—स्त्रियों का दुष्टार्त्तव (वात आदि से दूषित हुआ आर्त्तव)।

३—स्त्रियों का बीज दोष [अन्तः पुष्प या स्त्री बीज (Ovum) की दुष्टि]

४—स्त्रियों का दैव (पहिले जन्म का अधर्म) यह सब योनि व्यापदों का सामान्य कारण है।

[1] विंशतिर्व्यापदो योनेर्निर्दिष्टा रोग संग्रहे।
मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्त्तवेनच ॥
जायन्ते बीज दोषाच्च दैवाच्च शृणु ताः पृथक्।
(चरक. चिकि. अ. ३०।७-८)

२—आचार्य वाग्भट [1] का मत—

आचार्य वाग्भट ने योनि व्यापदों के चरक द्वारा निर्दिष्ट मिथ्याचार कारण के दो भाग (१-दुष्ट भोजन एवं २-विषम रूपों में अंगों की स्थितिपूर्वक विषम शय्या पर मैथुन तथा अत्यन्त मैथुन) करके और अपद्रव्य (लोह एवं लकड़ी आदि के बने हुए लिङ्ग) को कारण मानकर निम्न लिखित ६ कारण बतलाये हैं।

१—स्त्रियों का दुष्ट भोजन (वात आदि दोषों का प्रकोपक तथा बासी भोजन)।

२—स्त्रियों का अंगों को विषम रूप में रख कर विषम शय्या पर अत्यन्त मैथुन करना।

३—स्त्रियों का दुष्टार्त्तव।

४—स्त्रियों का अपद्रव्यों (लोह तथा लकड़ी आदि के बने हुए कृत्रिम उपलिंग[2]) का मैथुन के लिए अधिक प्रयोग करना।

५—स्त्रियों का बीज दोष।

६—स्त्रियों का दैव (पूर्व जन्म का अधर्म)।

३. सुश्रुत का मत[3]—

सुश्रुत मुनि ने चरक मुनि के निर्दिष्ट कारणों के साथ साथ आकार में बड़े और मोटे लिङ्ग वाले पुरुषों के साथ मैथुन करने को भी योनि व्यापदों

[1] विंशतिर्व्यापदो योनेर्जायन्ते दुष्ट भोजनात्।
विषमस्थाङ्गशयन भृशमैथुनसेवनैः ॥
दुष्टार्त्तवादपद्रव्यैः बीजदोषेण दैवतः।
(अष्टांग हृदय उत्तर. अ. ३३।२७-२८)

[2] उपलिङ्ग द्वारा मैथुन की प्रथा प्राचीन समय में स्त्री राज्य और कौशल राज्य की स्त्रियों में प्रचलित थी यह रतिरहस्य ग्रन्थों में लिखा है यथा विमृद्यमानाः कृतकः ध्वजेन—

[3] प्रवृद्धलिंगं पुरुषं याऽत्यर्थमुपसेवते।
रूक्षदुर्बल बाला या तस्या वायुः प्रकुप्यति।
स दुष्टो योनिमासाद्य योनिरोगाय कल्पते ॥

का कारण बताया है। विशेष रूप से फलिनी (अंडिनी) नाम की योनि व्यापद् इसके कारण उत्पन्न होती है।

उपर्युक्त तीनों आचार्यों के मतों में से चरक मुनि द्वारा निर्दिष्ट कारण ही प्रधान हैं और उनको सब पूर्ववर्ती और परवर्ती आचार्यों ने अपने-अपने ग्रंथों में निर्दिष्ट किया है।

योनि व्यापदों की कारणों के अनुसार संख्या—

कारण	संख्या
१—मिथ्याचार से उत्पन्न हुई योनि व्यापदें	१४
२—दुष्टार्त्तव ,, ,,	४
३—स्त्रियों के बीजदोष से उत्पन्न ,,	२
४—दैव-	
यह सब योनि व्यापदों का सामान्य कारण है।	
योग—	२०

इनमें से मिथ्याचार कारण के ३ भेद होते हैं—

(१) मिथ्याहारज योनिव्यापद्—१. वातिकी २. पैत्तिकी ३. श्लैष्मिकी ४. सान्निपातिकी ५. वामिनी।

(२) मिथ्याविहारज योनिव्यापद्—१. अचरणा २. अतिचरणा ३. प्राक्चरणा ४. शुष्का ५. महायोनि, ६. परिप्लुता, ७. कर्णिनी।

(३) मिथ्याहारविहारज योनिव्यापद्—१. अन्तर्मुखी, २. उपप्लुता।

—इस प्रकार मिथ्याचारज योनिव्यापदों की संख्या १४ हुई।

दुष्टार्त्तवज योनिव्यापद्—

१. उदावर्तिनी २. पुत्रघ्नी (जातघ्नी) ३. रक्तयोनि, ४. अरजस्का (लोहितक्षया)।

बीजदोषज योनिव्यापद्—

१. सूचीमुखी (सूची वक्त्रा), २. षण्ढ योनि (षण्ढी, षण्ढा)।

—इस प्रकार कारणों के अनुसार योनिव्यापदों की संख्या २० हुई।

दोषों के अनुसार योनि व्यापदों का वर्गीकरण—
चरक मुनि और आचार्य वाग्भट्ट का मत—

[१]चरक और वाग्भट्ट के मत में योनि व्यापद् दो वर्गों में विभक्त होती हैं।

१. दोषज—(४) १-वातिकी, २-पैत्तिकी, ३-श्लैष्मिकी, ४-सान्नपातिकी।

२. दोषदूष्यसंसर्ग प्रकृति निर्देषज (१६) रक्तयोनि आदि शेष १६ योनि व्यापद।

योग—२०

१—दोषज योनि व्यापद्—

जिन योनि व्यापदों में प्रधानतया वात, पित्त, कफ दोष पृथक् पृथक् और एक साथ कुपित होकर रोगोत्पादक होते हैं वे दोषज योनि व्यापदें कहलाती हैं। दोषों के अनुसार उनके नाम वातिकी, पैत्तिकी, श्लैष्मिकी, सन्निपातिकी हैं।

२-दोषदूष्य संसर्ग प्रकृति निर्देषज योनिव्यापत्-

यह भी दो प्रकार की होती हैं—

(१) दोष दूष्य संसर्ग निर्देशज योनि व्यापत्
(२) प्रकृति निर्देशज योनि व्यापत्।

१—दोषदूष्य [२] संसर्ग निर्देशज योनि व्यापत—

जिन योनि व्यापदों की वात पित्त आदि दोष का रक्त (आर्त्तव) दूष्य से संसर्ग होने पर उत्पत्ति

---

[१]वातिकी पैत्तिकी श्लैष्मिकी सान्निपातिकी चेति चतस्रो दोषदूष्य संसर्गप्रकृति निर्देशैरवशिष्टाःषोडश निर्दिश्यन्ते॥ —चरक सूत्र अ० १९-४।

[२] दोषस्य दूष्येण रक्तादिना संसर्गो दोष दूष्यसंसर्गः प्रकृतिः कारणम्। तत्र दोष दूष्य संसर्ग निर्देशेन रक्तयोन्यादयः। प्रकृति निर्देशेन प्राक्चरणादयः। (चरक सूत्र-अ० १९-६ की चक्रपाणिदत्त कृतव्याख्या)

होती है वे दोष दूष्य संसर्ग निर्देशज योनि व्यापदें कहलाती हैं। वे संख्या में चार हैं।

१—रक्तयोनि, २—अरजस्का, ३—अचरणा ४—अतिचरणा।

२ प्रकृति निर्देशज योनि व्यापदें –

प्रकृति (कारण) के निर्देश से होने वाली योनि व्यापदें प्रकृति निर्देशज योनि व्यापदें कहलाती हैं

५—प्राकचरणा, ६—उपप्लुता, ७—परिप्लुता ८—उदावर्तिनी (उदा वृत्ता, उदावर्ता) ९—कर्णिनी १०—पुत्रघ्नी (जातघ्नी), ११—अन्तर्मुखी, १२—सूचीमुखी (सूचीवक्त्रा), १३—शुष्का, १४—वामिनी, १५—षण्ढ योनि (षण्ढी, षण्ढा) १६—महायोनि।

दोषानुसार योनि व्यापदों की संख्या—

दोष	चरक	वाग्भट	सुश्रुत[1]
वातिकी	११	११	५
पैत्तिकी	३	२	५
श्लैष्मिकी	१	१	५
सान्निपातिकी	१	१	५
वातपित्तात्मिका	२	२	×
वातकफात्मिका	२	३	×
योग	२०	२०	२०

वातकी योनिव्यापदें —

चरक वातिकी, उदावर्तिनी, अचरणा, अतिचरणा, प्राक्चरणा, पुत्रघ्नी, अन्तर्मुखी, सूचीमुखी शुष्का, षण्ढ योनि (षंढी), महायोनि, योग ११

वाग्भट्ट—वातिकी, उदावृत्ता, वामिनी, अतिचरणा, प्राक्चरणा, जातघ्नी, अन्तर्मुखी, सूचीमुखी, शुष्का, षण्ढा, महायोनि, योग ११

[1] माधवकर, शार्ङ्गधर तथा भावमिश्र आदि सब पीछे के आचार्यों ने सुश्रुत मुनि के मतानुसार दोषानुसार योनि व्यापदों की संख्या मानी है।

सुश्रुत—वातला, उदावर्ता, परिप्लुता, विप्लुता, वन्ध्या, योग ५

पैत्तिकी योनिव्यापदें —

चरक—पैत्तिकी, रक्त योनि, अरजस्का—३

वाग्भट्ट—पैत्तिकी, रक्त योनि—२

सुश्रुत—पित्तला, लोहितक्षरा, वामिनी, स्रंसिनी (प्रस्रंसिनी), पुत्रघ्नी—५

श्लैष्मिक योनिव्यापदें—

चरक—श्लैष्मिकी—१

वाग्भट्ट—श्लैष्मिकी—१

सुश्रुत—श्लेष्मला, कर्णिनी, अत्यानन्दा, अचरणा, अतिचरणा—५

सान्निपातिकी योनिव्यापदें—

चरक—सान्निपातिकी—१

वाग्भट्ट—सान्निपातिकी—१

सुश्रुत—सर्वजा, षण्ढी, फलिनी, महायोनि (महती), सूचीवक्त्रा—५

वातकफात्मिका योनिव्यापदें—

चरक—कर्णिनी, उपप्लुता—२

वाग्भट्ट—कर्णिनी, उपप्लुता, विप्लुता—३

सुश्रुत—×

वात पित्तात्मिका योनिव्यापदें—

चरक—परिप्लुता, वामिनी—२

वाग्भट्ट—परिप्लुता, लोहितक्षया—२

सुश्रुत—×

योनि व्यापदों के आरम्भिक दोषों में अभिन्नता (साम्य)—

१. चरक मुनि, आचार्य वाग्भट्ट तथा सुश्रुत मुनि केवल ५ योनि व्यापदों के आरम्भिक दोषों के विषय में एक मत हैं।—

दोष	चरकोक्त	वाग्भट्टोक्त	सुश्रुतोक्त
वात	वातिकी	वातिकी	वातला
	उदावर्तिनी	उदावृत्ता	उदावर्ता

पित्त	पैत्तिकी	पैत्तिकी	पित्तला
श्लेष्मा	श्लैष्मिकी	श्लैष्मिकी	श्लेष्मला
त्रिदोष	सान्निपातिकी	सान्निपातिकी	सर्वजा

२. चरक और वाग्भट्ट १६ योनि व्यापदों के आरम्भक दोषों के विषय में एक मत हैं—

दोष	चरकोक्त	वाग्भट्टोक्त
वात	वातिकी	वातिकी
	उदावर्तिनी	उदावृत्ता
	अतिचरणा	अतिचरणा
	प्राक्चरणा	प्राक्चरणा
	अन्तमु खी	अन्तमु खी
	सूचीमुखी	सूचीमुखी
	शुष्का	शुष्का
	षण्ढयोनि (षण्ढी)	षण्ढा
	महायोनि	महायोनि
पित्त	पैत्तिकी	पैत्तिकी
	रक्तयोनि	रक्तयोनि
श्लेष्मा	श्लैष्मिकी	श्लैष्मिकी
त्रिदोष	सान्निपातिकी	सान्निपातिकी
वात और कफ	कर्णिनी	कर्णिनी
	उपप्लुता	उपप्लुता
वात और पित्त	परिप्लुता	परिप्लुता

योनिव्यापदों के आरम्भिक दोषों में भिन्नता—

१—चरक वाग्भट तथा सुश्रुत के मत में निम्न लिखित योनिव्यापदों के आरम्भक दोषों में भिन्नता है—

योनिव्यापद्	चरक	वाग्भट	सुश्रुत
१—अतिचरणा	वात	वात	श्लेष्मा
२—षण्ढयोनि (षण्ढी.षंढा)	,,	,,	त्रिदोष
३—महायोनि (महती)	,,	,,	,,
४—सूचीमुखी (सूचीवक्त्रा)	,,	,,	,,
५—वामिनी	वात और पित्त	वात और पित्त	पित्त
६—परिप्लुता	,,	,,	वात
७—कर्णिनी	वात और कफ	वात और कफ	श्लेष्मा

२—चरक और सुश्रुत के मत में निम्नलिखित २ योनिव्यापदों के आरम्भक दोषों में भिन्नता है—

योनिव्यापत्	चरक	सुश्रुत
१—अचरणा	वात	श्लेष्मा
२—पुत्रघ्नी	,,	पित्त

३—चरक और वाग्भट के मत में निम्न लिखित १ योनिव्यापत् के आरम्भक दोष में भिन्नता है—

योनिव्यापत्	चरक	वाग्भट
१—वामिनी	वात और पित्त	वात

योनिव्यापदों के आरम्भक दोष और लक्षणों में भिन्नता-

सुश्रुत मुनि और आचार्य वाग्भट के मत में निम्न लिखित योनिव्यापत् के आरम्भक दोष और लक्षणों में भिन्नता है—

योनिव्यापत्	सुश्रुत	वाग्भट
विप्लुता	वात	वात और कफ

योनिव्यापदों के लक्षण—

१—वातिकी* योनि व्यापत्—वातप्रकृति वाली स्त्री जब वातदोष को बढ़ाने वाले (प्रकोपक) दुष्ट आहार और विहार (चेष्टा) का निरन्तर सेवन करती है तब उसके शरीर में कुपित (अधिक) हुआ वातदोष योनि में पहुंचकर विशेष रूप से योनि में वातिकशूल, सुई चुभने की भांति पीड़ा, स्तब्धता (जकड़ाहट), चींटियों के रेंगने (चलने) के समान अनुभव होना, कर्कशता (खुरदरापन), सुप्ति (त्वचा में स्पर्शज्ञान न होना) आयाम (खिंचावट), योनिभ्रंश, वंक्षण सन्धि पार्श्व, कमर और पीठ में पीड़ा तथा अधिक समय बीतने पर गुल्मरोग, आयाम, आक्षेपक एवं

*चरक० चिकि० अ० ३०। ६-१०, अष्टांग हृदय उत्तर अ० ३३। २६-३०

स्तम्भ आदि वात व्याधियों को उत्पन्न करता है। ऋतुकाल के बिना भी योनि से वायु निकलने की आवाज के समान शब्द तथा पीड़ा सहित झागदार थोड़ा पतला रुक्ष कुछ लाल एवं काला अल्प आर्तव का स्राव कराता रहता है। इसको वातिकी (वातला) योनिव्यापत् कहते हैं।

ज्ञातव्य प्रधान लक्षण—सुश्रुत[1] मुनि के मत में इन उपर्युक्त लक्षणों में से योनि में कर्कशता स्तब्धता, शूल और सुई चुभने के समान पीड़ा होना यह प्रधान लक्षण वातिकी योनिव्यापत् में हुआ करते हैं।

२—उदावर्तिनी[2] (उदावृत्ता, उदावर्ता) योनिव्यापत्—

पुरीष (मल) मूत्र और अपानवायु के वेग को धारण करने (रोकने) से कुपित हुये आर्तव प्रवर्तक अपानवायु की गति विलोम (ऊर्ध्व, ऊपर की ओर) हो जाती है जिसके कारण वह योनि को ऊपर की ओर उठाकर पीड़ित करता है। तब वह योनि ऋतुकाल में वेदनापूर्वक (कष्ट के साथ) झागदार आर्तव का स्राव अल्प मात्रा में करती है। योनि से आर्तव के बाहर निकल जाने पर वह स्त्री कुछ समय के लिए सुख का अनुभव करती है, यह उदावर्तिनी (उदावृत्ता, उदावर्ता) योनिव्यापत् कहलाती है।

ज्ञातव्य प्रधान लक्षण—योनि से झागदार आर्तव का स्राव कठिनता से होना उदावर्तिनी योनिव्यापत् का प्रधान लक्षण श्री सुश्रुत मुनि ने बतलाया है।

ऐलोपैथिक चिकित्साशास्त्र में उदावर्तिनी का कृच्छ्रार्तव या कष्टार्तव (Dysmenorrhoea) नाम से परिचय मिलता है। डिसमेनोरिया का अर्थ पेनफुल मेन्स्ट्रुएशन (कष्टपूर्वक आर्तवस्राव का होना) है।

---

[1] सुश्रुत उत्तर. अ० ३८। ११

[2] चरक. चिकि. अ० ३०।२५-२६, अष्टांगहृदय उत्तर. अ० ३३।३३, सुश्रुत उत्तर अ० ३८।६

टेस्टबुकआफ गायनेकालोजी के रचियिता डा. श्री मसानी के मत में यह व्याधि अधिकतर ऊंचे घराने की स्त्रियों को हुआ करती है। इसमें विशेष रूप से आर्तव प्रवृत्ति के कुछ घंटे या एक दिवस पहिले वेदना प्रारम्भ हुआ करती है जो पहिले दिन अत्यन्त तीव्र होती है और वह फिर कम होती जाती है। किसी किसी रोगिणी को वेदना होने के समय में ही हृल्लास और वमन भी होता है। रोगिणी को वेदना रुक रुक कर अंत्रशूल के सदृश होती है। वह नाभि के नीचे होती है किन्तु अधिकतर कटि और त्रिक में वेदना होती है। कुछ रोगिणियों में यह वेदना पहिले दिन योनि से रक्त के कुछ छोटे-छोटे थक्के निकल जाने के पश्चात् दूर हो जाती है।

कृच्छ्रार्तव (Dysmenorrhoea) के कारण—ऐलोपैथी में डिसमेनोरिया के निम्नलिखित कारण माने गये हैं।

१—हायपोप्लेजिया आफ दी यूट्रस-(Hypoplasia of the uterus)

२—एक्यूट एण्टी फ्लेक्शन एण्ड रिट्रोवर्जन आफ दी यूट्रस (Acute Anteflexion and retroversion of the uterus)

३—एण्डोक्राइन डिस्टर्बेन्सेज (Endocrine disturbances)

४—साइकिक इम्बेलेन्स।

५—न्यूराइटिस आफ प्रीसेक्रल नर्वस।

१—हायपोप्लेजिया आफ दी यूट्रस (Hypoplasia of the uterus)—इसमें माता के गर्भ में स्थित कन्या की योनि (एवं गर्भाशय) की पुष्टि का आरम्भ नियमित होता है किन्तु आर्तव की प्रवृत्ति की अवस्था होने के पहिले ही पुष्टि का क्रम रुक जाता है इसके फलस्वरूप आर्तव की प्रवृत्ति कष्टपूर्वक होती है। इसको सूचीमुख योनि कहा जा सकता है, केवल अन्तर इतना ही है कि सूची मुख योनि के लक्षणों में आर्तव के कष्ट पूर्वक प्रवृत्त

होने का उल्लेख नहीं मिलता है।

२—एक्यूट एण्टीफ्लेक्शन एण्ड रिट्रोवर्शन आफ दी यूट्रस (Acute Anteflexion and Retroversion of the uterus) इसमें गर्भाशय आगे या पीछे झुक जाता है।

३—एण्डोक्राइन डिस्टर्बेन्सेज (Endocrine disturbances)—

४—साइकिक इम्वेलेन्स-इसका अभिप्राय मन का शान्त होना है।

५—न्यूराइटिस आफ प्रीसेक्रल नर्व्स-इसमें प्रीसेक्रल नर्व्स का शोथ हो जाता है।

३—अचरणा[1] (विप्लुता)—

योनि को प्रतिदिन जल से धोकर स्वच्छ न करने के कारण उत्पन्न हुए रक्तज सूक्ष्म कृमि योनि में कण्डू (खुजली) उत्पन्न कर देते हैं जिससे उस स्त्री को पति के साथ संभोग करने की अत्यधिक इच्छा बनी रहती है और इसी लिये मैथुन से खुजली के दूर होने से पुरुष के वीर्य के स्खलित होने से ही स्त्री स्खलित हो जाती है जिससे वह सुख का अनुभव करती है। इस योनि व्यापत् को चरक मुनि तथा सुश्रुत मुनि ने 'अचरणा' नाम से तथा आचार्य वाग्भट ने विप्लुता नाम से निर्देश किया है। इस योनिव्यापत् से पीड़ित स्त्री गर्भधारण नहीं कर सकती है।

ज्ञातव्य—चरक मुनि ने इस 'अचरणा' योनि व्यापद् को वातिकी तथा सुश्रुत मुनि ने श्लैष्मिकी माना है। वाग्भट ने इसका नाम विप्लुता लिखा है किन्तु सुश्रुतोक्त विप्लुता इससे पृथक है।

[1]चरक चिकि. अ. ३०।१०, सुश्रुत उत्तर अध्याय ३८।१६, अष्टांग हृदय उत्तर अ० ३३।४६, इन कृमियों का उल्लेख रति रहस्य ग्रन्थ में भी मिलता है। जैसे—

रक्तजाः क्रमयः सूक्ष्मा मृदुमध्योग्रशक्तयः।
स्मरसद्मनि कंडूतिं जनयंतियथाबलम्।

जिन स्त्रियों को प्रदर और सोमरोग हुआ करता है तथा जो आलस्यवश योनि को जल से धोकर स्वच्छ नहीं रखती हैं उनको ही यह 'अचरणा' योनिव्यापत् अधिकतर हुआ करती है।

४. अतिचरणा[1] योनिव्यापत्—

अत्यधिक मैथुन करने से कुपित हुआ वातदोष स्त्री की योनि में शोथ, सुप्ति (त्वचा में स्पर्शज्ञान का न होना) और वेदना उत्पन्न करता है इसको 'अतिचरणा' योनि व्यापत् कहते हैं। इससे पीड़ित स्त्री अधिक मैथुन करने पर ही स्खलित होती है तथा गर्भधारण नहीं कर सकती है।

ज्ञातव्य—इस 'अतिचरणा' योनिव्यापत् को चरक और वाग्भट वातिकी तथा सुश्रत 'श्लैष्मिकी' मानते हैं।

५. प्राक्चरणा[2] योनिव्यापत्—

अत्यन्त बाला (१६ वर्ष से कम अवस्था वाली) कन्या के साथ मैथुन करने से कुपित हुआ वात दोष उस कन्या की पीठ, कमर, उरु तथा वंक्षण में पीड़ा उत्पन्न करता हुआ योनि को दूषित कर देता है। इसको 'प्राक्चरणा' योनिव्यापत् कहते हैं।

ज्ञातव्य—चरक और वाग्भट्ट ने 'प्राक्चरणा' को वातिकी योनिव्यापत् माना है।

६. पुत्रघ्नी[3] (जातघ्नी) योनिव्यापत्—

कुपित हुआ वात दोष रूक्षता के कारण स्त्री दूषित आर्तव और पुरुष के वीर्य के संयोग से उत्पन्न हुये पुत्रों (और पुत्रियों) को नष्ट कर देता है। इस योनिव्यापत् का चरक और सुश्रुत

[1]चरक चिकि० अ० ३०। १८, अष्टाङ्ग हृदय उत्तर अ० ३३। ३१, सुश्रुत उत्तर अ० ३८।१६

[2]चरक चिकि० अ० ३०।१६, अष्टाङ्ग हृदय उत्तर अ० ३३।३२

[3]चरक चिकि० अ० ३०।२७, सुश्रुत उत्तर अ० ३८।१३ अष्टांग हृदय उत्तर अ० ३३।३४

ने 'पुत्रघ्नी' नाम से तथा वाग्भट्ट ने 'जातघ्नी' नाम से निर्देश किया है।

ज्ञातव्य—इस योनिव्यापत् को चरक मुनि ने 'वातिकी' किन्तु सुश्रुत मुनि ने 'पित्तला' बतलाया है तथा इसका कारण चरक ने वात दोष से रोगिणी के आर्त्तव का क्षय होना बतलाया है। यद्यपि इस 'पुत्रघ्नी' योनिव्यापत् से पुत्र और पुत्री दोनों ही सन्तानों का विनाश होता है तथापि अधिकतर पुत्रों का विनाश होने के कारण इसका 'पुत्रघ्नी[1]' नाम से और प्रत्येक पुत्र सन्तान के विनाश होने से 'जातघ्नी[2]' नाम से निर्देश किया गया है। पाश्चात्य चिकित्सक इसको गर्भस्रावी प्रवृत्ति (Habitual abortion) कहते हैं। फिरङ्गोपदंश से दूषित रक्त इसका प्रधान कारण माना जाता है।

७. अन्तर्मुखी योनिव्यापत्—

अधिक भोजन करने के पश्चात् मैथुन करने से और मैथुनकाल में विभिन्न विषयासनों में स्थित होने से स्त्री की योनि में स्थित वातदोष अन्न से पीड़ित होकर योनि के मुख को अन्दर की ओर अस्थि तथा मांस के सहित टेढ़ा कर देता है जिससे योनि के मुख में वायु की अत्यन्त वेदना होती है और वह स्त्री मैथुन कर्म में असमर्थ हो जाती है। यह अन्तर्मुखी[3] योनि व्यापत् कहलाती है।

ज्ञातव्य—यह अन्तर्मुखी योनिव्यापत् गर्भाशय के च्युत होने का एक प्रकार है जिसमें योनि का थोड़ा स्रंसन होने से योनिमुख की स्वाभाविक स्थिति में कुछ वक्रता (टेढ़ापन) आ जाती है। इसको विवर्त्तन (version) कहते हैं और दिशा के अनुसार पूर्व विवर्त्तन (Anteversion) या पश्चात् स्रंसन या वर्त्तन (Retroversion) कहते हैं। इस अन्तर्मुखी योनिव्यापत् का लक्षण सुश्रुत संहिता में निर्दिष्ट स्रंसिनी (प्रस्रंसिनी) के लक्षणों के समान है।

८. सूचीमुखी[4] सूचीवक्त्रा योनिव्यापत्—

वात प्रकोपक (वातवर्द्धक) आहार का निरन्तर सेवन करने वाली गर्भवती माता का कुपित हुआ वातदोष, रूक्षता के कारण उसके गर्भ में स्थित कन्या की योनि को दूषित करता हुआ सूक्ष्म द्वार वाली कर देता है। यह योनिव्यापत् चरक[4] और वाग्भट्ट के मत में 'सूचीमुखी' कहलाती है और सुश्रुत मुनि ने इसका नाम सूचीवक्त्रा[5] लिखा है।

ज्ञातव्य—चरकमुनि और आचार्य वाग्भट इस सूची मुखी योनि व्यापत् को वातिकी और सुश्रुत मुनि सन्निपातिकी एवं असाध्य मानते हैं। यह योनि व्यापत् दो प्रकार से होती है—

(१) यह माता के बीज दोष से उत्पन्न होती है जिससे आर्त्तव स्राव होने में कष्ट होता है तथा उस स्त्री को प्रायः गर्भधारण भी नहीं होता है।

(२) कभी कभी जन्म के पश्चात् भी स्त्री की योनि में उत्पन्न हुए व्रण की व्रणवस्तु (scar) द्वारा भी यह योनि व्यापत् होजाती है। इस योनि व्यापत् में गर्भाशय द्वार अत्यन्त संकुचित एवं

---

१ (अ) रौक्ष्याद्वायुर्यदा गर्भं जातं जातं विनाशयेत्।
दुष्ट शोणितजं नार्याः पुत्रघ्नी नाम सा स्मृता॥
(चरक चि० अ० ३०।२७)

(आ) स्थितं स्थितं हन्तिगर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंस्रवात्।
(सुश्रुत उत्तर अ० ३८।१३)

२—..................जातघ्नी तु यदाऽनिलः।
जातं जातं सुतं हन्ति रौक्ष्याद् दुष्टार्त्तवोद्भवम्॥
अष्टांग हृदय उत्तर अ० ३३।३४)

३—चरक चि० अ० ३०।२८-२९, अ० हृ० उत्तर अ० ३३।३५

४ (क) गर्भस्थायाः स्त्रियः रौक्ष्याद्वायुर्योनिं प्रदूषयन्।
मातृदोषादणुद्वारां कुर्यात् सूचीमुखी तु सा॥
(चरक चि० अ० ३०-३०)

(ख) अष्टांग हृदय उत्तर अ० ३३-३६

५—सूचीवक्त्राऽतिसंवृता। (सुश्रुत उत्तर अ० ३८-१९)

सूक्ष्म हो जाता है। इसको पिन होल आस (pin-hole os) या पिन प्वाइन्ट आस (pin point os) कहते हैं। इसमें गर्भाशय के अविकसित होने से गर्भाशय ग्रीवा का मुख सुई के समान सूक्ष्म (pin hole os of the cervix) होजाता है इसके कारण आर्त्तवस्राव और मैथुन में कठिनाई होती है तथा शुक्रकीट भी इसके अन्दर नहीं जासकता है अतएव वह स्त्री गर्भधारण नहीं कर सकती है।

९-शुष्का [१] योनि व्यापत्—

जब स्त्री मैथुन के समय उपस्थित अपने मल (पुरीष) और मूत्र आदि के वेग को रोक लेती है तब उसके शरीर में कुपित हुआ अपान वायु मल (पुरीष) और मूत्र का अवरोध कर योनि में पीड़ा उत्पन्न कर देता है तथा योनि के मुख को सुखा देता है। वह 'शुष्का' योनि व्यापत् कहलाती है।

ज्ञातव्य-निरुक्ति- योनि मुख शोषात् शुष्का योनिः) योनि मुख को सुखाने के कारण इस योनि व्यापत् का नाम 'शुष्का योनि' प्रसिद्ध हुआ है।

१०-षण्ढयोनि (षण्ढी, षण्ढा)—

गर्भाशय का निर्माण करने वाले स्त्री बीज (अन्तः पुष्प, आर्त्तव, Ovum) के दूषित होने के कारण गर्भाशय में स्थित वायु द्वारा गर्भस्थ कन्या के गर्भाशय का उपघात हो जाता है जिससे वह गर्भाशय छोटा बनता है अथवा बनता ही नहीं है। इसलिए उसको मासिक आर्त्तव स्राव (मासिक धर्म) भी नहीं होता है तथा उस कन्या के स्तन भी बहुत छोटे होते हैं और वह पुरुष से प्रीत भी नहीं करती है तथा मैथुन में उसकी योनि का स्पर्श खुरदरा होता है। यह षण्ढयोनि (षण्ढी [१] षण्ढा) योनि व्यापत् कहलाती है।

ज्ञातव्य—चरक मुनि और आचार्य वाग्भट्ट इस षण्ढ योनि (षण्ढा, षण्ढा) को वातिकी मानते हैं किन्तु सुश्रुतमुनि सान्निपातिकी योनि व्यापत् बतलाते हैं। यह वास्तव में बन्ध्यत्व[२] का ही एक प्रकार है इसको असाध्य बतलाया गया है।

इस योनि व्यापत् में गर्भाशय और स्तनों का पूर्ण रूप से विकास नहीं होता है। गर्भाशय और स्तनों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। बीज ग्रन्थि के अन्तः स्राव का परिणाम स्तनों के विकास पर होता है। जब बीज ग्रन्थियों का अन्तः स्राव भली-भांति नहीं होता है तब स्त्री के स्तन भी पूर्ण रूप से विकसित न होने के कारण आकार में छोटे रह जाते हैं।

११-महायोनि (महती) योनि व्यापत्—

कष्टदायक (ऊंची नीची) शय्या पर विषम रूप से स्थित होकर मैथुन करने से कुपित हुआ अपानवायु स्त्री के गर्भाशय और योनि के मुख का स्तब्ध कर देता है जिससे योनि स्थानच्युत हो जाती है और योनि का मुख अत्यधिक खुला रहता है तथा मांस (भगोष्ठ) बहुत ऊंचा उठा रहता है और वातिकी योनि

---

[१] (अ)-व्यवायकाले रुन्धत्या वेगान् प्रकुपितोऽनलः।
कुर्याद्विण्मूत्रसंगार्ति शोषं योनि मुखस्य च॥
(चरक चिकि. अ. ३०-३३)

योनिमुखशोषात् शुष्का योनि संज्ञा व्याकृता भवति।
(चरक की चक्रपाणिदत्त कृत व्याख्या)

(आ)-वेगरोधाद् ऋतौ वायुःदुष्टो विण्मूत्रसंग्रहम्।
करोति योनेः शोषं च शुष्काख्या सार्तिवेदना॥
(अष्टांग हृदय उत्तर अ. ३३-३६)

१-(अ)-बीजदोषात्तु गर्भस्थमारुतोपहताशया।
नृद्वेषिण्यस्तनीचैव षण्ढीस्यादनुपक्रमा॥
(चरक चिकि. अ. ३०-३३)

(आ)-योनौ वातोपतप्तायां स्त्री गर्भे बीजदोषतः।
नृद्वेषिण्यस्तनी च स्यात् षण्ढासंज्ञानुपक्रमा॥
(अष्टांग हृदय. उत्तर. अ. ३३-३६)

(इ)—अनार्तवस्तना षण्ढी खरस्पर्शा च मैथुने।
(सुश्रुत उत्तर. अ. ३८-१८)

२—यदा ह्यस्याः शोणिते गर्भाशय बीज भाग प्रदोष मापद्यते तदा वन्ध्यां जनयति। (चरक शारीर)

व्यापत् की भांति वंक्षण आदि में पीड़ा होती रहती है तथा ऋतुकाल के अनन्तर भी योनि से झागदार आर्तव का स्राव होता रहता है। यह महायोनि[१] (महती) योनिव्यापत् कहलाती है। योनिमुख के अत्यन्त विवृत (खुला) रहने के कारण इसको महा योनि नाम से पुकारा जाता है।

ज्ञातव्य--चरक मुनि और आचार्य वाग्भट ने इस 'महायोनि' योनिव्यापत् को 'वातिक' बतलाया है किन्तु सुश्रुत मुनि ने इसको सन्निपातिकी एवं असाध्य माना है तथा इसका दूसरा नाम 'महती' भी लिखा है। वास्तव में यह 'महायोनि' योनिव्यापत् योनिपथ का गर्भाशय के भ्रंश का एक प्रकार है जिसमें गर्भाशय का अपूर्ण भ्रंश हो जाता है जिसके कारण गर्भाशय का कुछ भाग अधिकतर योनिभित्ति (vaginal wall) का कुछ भाग ही बाहर से दिखाई देने लगता है और जिसके परिणाम स्वरूप योनि का द्वार खुला ही रहता है।

इन उपर्युक्त ११ वातिकी योनिव्यापदों का वर्णन चरक मुनि के मत के अनुसार किया गया है। आचार्य वाग्भट का भी यह ही मत है, उन्होंने केवल 'अचरणा' योनिव्यापत् के स्थान पर 'वामिनी' योनि को वातिकी लिखा है। सुश्रुत मुनि ने परिप्लुता, विप्लुता तथा बन्ध्या इन तीन योनिव्यापदों को भी वातदोष से उत्पन्न मानकर वर्णन किया है।

१ (अ) विषम दुःखशय्यातिमैथुनात् कुपितोऽनिलः।
गर्भाशयस्य योन्याश्च मुखं विष्टम्भयेत् स्त्रियः॥
असंवृतमुखी सार्तिः सफेनार्तववाहिनी।
मांसोत्सन्नं महायोनिः पर्ववंक्षण शूलिनी॥
चरक चिकि. अ. ३०। ३४-३६

(आ) दुष्टोविष्टभ्य योन्यास्यं गर्भकोष्ठं च मारुतः।
कुरुतेविवृतां स्रस्तांवातिकीमिव दुःखिताम्॥
उत्सन्न मांसां तामाहुर्महायोनिं महारुजम्॥
अष्टांग हृ० उत्तर ३३। ४०-४१

(इ) विवृताऽति महायोनिः। सुश्रुत उत्तर अ० ३८।१६

पित्तज योनिव्यापदें—

१२—पैत्तिकी (पित्तला) योनिव्यापत्—

कटु, अम्ल तथा लवण रस के पदार्थों और क्षार आदि के निरन्तर सेवन करने से कुपित हुआ पित्त योनि में पहुँचकर अत्यधिक दाह, पाक उष्णता और ज्वर उत्पन्न करता है तथा ऋतुकाल के बिना भी योनि से अत्यन्त उष्ण शव (मुर्दे) की गन्ध के समान गन्ध वाला नीला, पीला और काला आर्तव निकला करता है। इसको पैत्तिकी[१] (पित्तला) योनिव्यापत् कहते हैं—

१३—रक्तयोनि[२] (प्रदर, असृग्दर) योनिव्यापत्—

रक्त और पित्त को बढ़ाने वाले आहार के निरन्तर सेवन करने से कुपित हुये पित्त से दूषित हुआ आर्तव, दाहपूर्वक स्त्रियों की योनि से अधिक मात्रा में प्रवृत्त होता है तथा पुरुष बीज के प्राप्त होने पर भी वह स्त्री सन्तानरहित रहती है। यह रक्तयोनि (प्रदर, असृग्दर) योनिव्यापत् कहलाती है।

१ (अ) व्यापत्कट्वम्ललवणैः क्षाराद्यैः पित्तजा भवेत्।
दाहपाकज्वरोष्णार्ता नीलपीतासितार्तवा॥
भृशोष्णकुणपस्रावः योनिः स्यात्पित्तदूषिता।
चरक चि. अ. ३०। १०-११

(आ) यथास्वैर्दूषणैर्दुष्टं पित्तं योनिमुपाश्रितम्।
करोतिदाहपाकोष्मा पूतिगन्धज्वरान्विताम्॥
भृशोष्णभूरिकुणपनील पीतसितार्त्तवाम्।
साव्यापत् पैत्तिकी.................॥
अष्टांग हृ. उत्तर अ० ३३।४२-४३

(इ) अत्यर्थं पित्तलायोनिर्दाहपाकज्वरान्विता।
सुश्रुत उत्तर अ० ३८। १४

२ (क) रक्तपित्तकरैर्नार्या रक्तं पित्तेन दूषितम्।
अतिप्रवर्तते योन्यां लब्धेबीजेऽभिसाऽप्रजा॥
चरक चिकि. अ० ३०। १५

(ख) रक्तयोन्याख्यासृगतिस्रुतेः॥
अष्टांग हृ० उत्तर अ० ३३। ४३

ज्ञातव्य—अष्टांगसंग्रहकार[1] ने रक्तयोनि योनिव्यापत् प्रदर और असृग्दर को ही माना है। यद्यपि इस रक्त योनि से पीड़ित स्त्री के गर्भाशय के अन्दर शुक्राणु पहुंच जाता है तथापि आर्तव का अत्यन्त स्राव हो जाने से गर्भस्थिति नहीं होती है। या तो वह गर्भ बहकर बाहर निकल जाता है, अथवा वहां रहने पर भी आर्तव स्राव के होते रहने से उस गर्भ का पोषण नहीं होता है और अन्त में वह नष्ट हो जाता है।

१४—अरजस्का[2] योनिव्यापत्—

स्त्री की योनि और गर्भाशय में स्थित पित्त यदि रक्त को दूषित कर दे तो उसका आर्तव क्षीण हो जाता है जिससे उसको आर्तव स्राव (मासिकधर्म) नहीं होता है तथा उस स्त्री के शरीर में दाह कृशता और विवर्णता हो जाती है। यह 'अरजस्का' योनिव्यापत् कहलाती है।

ज्ञातव्य—चरक मुनि के मत में यह अरजस्का योनिव्यापत् पित्तजा होती है। आचार्य वाग्भट ने इसका नाम लोहितक्षया लिखा है और इसको वातपित्तजा बतलाया है क्यों कि वास्तव में आर्तव का क्षय वात और पित्त दोनों दोषों के प्रकोप से ही होता है। सुश्रुत मुनि ने इन उपर्युक्त ३ योनिव्यापदों के अतिरिक्त प्रस्रंसिनी (स्रंसिनी) और लोहितक्षया इन दो योनिव्यापदों को भी पित्तज माना है।

श्लेष्मज योनिव्यापत्—

१५—श्लैष्मिकी+ (श्लेष्मला) योनिव्यापत्—

दही आदि अभिष्यन्दी पदार्थों के निरन्तर सेवन करने से कुपित हुआ (बढ़ा हुआ) श्लेष्मा (कफ) यदि स्त्री की योनि को दूषित कर देता है तो वह योनि को चिपचिपा, अत्यन्त शीतल, खुजली युक्त, अल्प वेदना वाली और पांडुवर्ण की कर देता है। ऋतुकाल के अतिरिक्त समय में भी उस योनि से पांडु रंग के चिपचिपे आर्तव का स्राव होता रहता है। यह श्लैष्मिकी 'योनिव्यापत्' कहलाती है।

ज्ञातव्य—सुश्रुत मुनि ने अत्यानन्दा, कर्णिनी, अचरणा तथा अतिचरणा इन चार योनिव्यापदों को भी श्लेष्मजा माना है।

वातपित्तात्मिका योनिव्यापत्—

१६—परिप्लुता योनिव्यापत्—

पित्त प्रकृति वाली स्त्री के पुरुष के साथ मैथुन करते समय छींक और डकार के वेग को रोकने से पित्त से मिश्रित कुपित वायु उस स्त्री की योनि को दूषित कर देता है जिससे वह योनि शोथ-युक्त, स्पर्श को न सहने वाली (छूने से असह्य वेदना वाली) तथा पीड़ायुक्त हो जाती है और उससे नीले तथा पीले रंग के आर्तव का स्राव होता है तथा रोगिणी की श्रोणि वंक्षण और

---

[1] रक्तमेवस्त्रीणां मासि मासि गर्भकोष्ठमनुप्राप्य त्र्यहं-प्रवर्त्तमानमार्त्तवमित्याहुः। अतिप्रसंगेनानृतावृतौ वा तदेवासृग्दरं प्रदरं व्यापदं च रक्तयोनिसंज्ञांलभते।
(अष्टांगसंग्रह शारीर)

[2] (अ)—योनि गर्भाशयस्थं चेत्पित्तं संदूषयेदसृक्।
साऽरजस्का मता कार्श्यवैवर्ण्यजननी भृशम्॥
(चरक चिकि० अ० ३०।१६)

(आ)··············वातपित्ताभ्यांक्षीयतेरजः।
सदाहकार्श्यवैवर्ण्यं यस्यां सा लोहितक्षया॥
(अष्टाङ्गहृदय उत्तर अ० ३३।४५)

+(क)—कफोऽभिष्यन्दिभिर्वृद्धो योनि चेद् दूषयेत्स्त्रियाः।
सकुर्यात् पिच्छिलां शीतां कण्डूग्रस्ताल्प वेदनाम्॥
पांडुवर्णां तथा पांडुपिच्छिलार्तववाहिनीम्।
(चरक चिकि० अ० ३०।१२)

(ख)—कफोऽभिष्यदिभिः क्रुद्धः कुर्याद्योनिमवेदनाम्।
शीतलांकण्डुलां पाण्डुपिच्छिलां तद्विधस्रुतिम्॥
साव्यापद् श्लेष्मिकी········
अष्टाङ्ग हृदय उत्तर० अ० ३३।४४

(ग)—श्लेष्मलापिच्छिला योनिः कण्डूग्रस्ताऽतिशीतला।
(सुश्रुत उत्तर अ० ३८।१७)

पीठ में पीडा ज्वर, वस्ति (मूत्राशय) और उदर में भारीपन, अतिसार तथा अरुचि हो जाती है। यह 'परिप्लुता' योनिव्यापत् कहलाती है। इसमें मैथुन करने से अत्यधिक पीडा होती है।

ज्ञातव्य—चरक[1] मुनि और आचार्य[2] वाग्भट ने इस परिप्लुता योनिव्यापत् को वातपित्तात्मिका तथा सुश्रुत[3] मुनि ने वातजा माना है। वात विकारों से योनि व्याप्त होने के कारण यह परिप्लुता कहलाती है।

१७—वामिनी[4] योनिव्यापत्—

कुपित वायु से दूषित हुई योनि गर्भाशय में पहुंचे हुये वीर्य को (वायु तथा आर्त्तव सहित) छै: या सात दिन के पश्चात् पीड़ा सहित अथवा विना पीडा के बाहर निकाल देती है। यह 'वामिनी' योनि व्यापत् कहलाती है।

ज्ञातव्य—वामिनी शब्द को निरुक्ति-(शुक्र वमनाद्वामिनी), गर्भाशय में पहुँचे हुये वीर्य को आर्त्तव सहित वमन करने (बाहर निकाल देने) के कारण यह योनि व्यापत् 'वामिनी' कहलाती है।

वीर्य के बाहर निकलने का कारण यह है कि गर्भाशय की ग्रीवा अथवा योनि में अवरोध होने से पुरुष का वीर्य गर्भाशय में न जाकर योनि से बाहर निकल आता है। कभी कभी योनि में संकोचन होने से कुछ काल तक रुक कर बाहर निकल आता है। इस वामिनी योनिव्यापत् को चरक मुनि वातपित्तात्मिका, सुश्रुत मुनि पित्तात्मिका और आचार्य वाग्भट्ट वातजा मानते हैं।

वातकफात्मिका योनिव्यापत् —

१८—उपप्लुता* योनिव्यापत्—

कफवर्धक आहार-विहार का प्रतिदिन सेवन करने वाली गर्भिणी स्त्री के वमन और श्वास के वेग को रोकने से कुपित हुआ वायु कफ को योनि में लाकर योनि को दूषित कर देता है, जिससे उस योनि से चुभने की वेदना के सहित श्वेतवर्ण के चिपचिपे आर्त्तव का स्राव हुआ करता है और वह योनि वात तथा कफ के रोगों से पीडित रहती है। यह 'उपप्लुता' योनिव्यापत् कहलाती है।

ज्ञातव्य—सुश्रुत संहिता में इस 'उपप्लुता' योनिव्यापत् का निर्देश नहीं है। वहां 'विप्लुता' योनिव्यापत् का वर्णन मिलता है। योनि में नित्य वेदना होना विप्लुता का लक्षण सुश्रुत मुनि ने बतलाया है। वाग्भट्टोक्त 'विप्लुता' इससे भिन्न है।

१—चरक चिकि० अ० ३०।३२

२—(अ) पित्तालाया नृसंवासे क्षवथूद्गारधारणात्।
पित्तयुक्तेन मरुता योनिर्भवति दूषिता।
शूना स्पर्शासहासार्तिर्नीलपीतास्रवाहिनी।
वस्ति कुक्षिगुरुत्वातिसारा रोचक कारिणी।
श्रोणिवंक्षणरुक्तोदज्वरकृत्सा परिप्लुता॥
(अष्टांग हृदय उत्तर अ. ३३।४६-४७)

(आ)—परिस्रवंतो वात विकारेण प्लुत्वात् परिप्लुतासंज्ञा
(मधुकोषव्याख्या)

३—परिप्लुतायां भवति ग्राम्यधर्मेण रुग्भृशम्॥
(सुश्रुत उत्तर अ० ३८।१६)

४—(अ) षडहात्सप्तरात्राद्वा शुक्रं गर्भाशयान्मरुत।
सरुजं नीरुजं वापि या स्रवेत्सा च वामिनी॥
(चरक चि० अ० ३०।३२)

(आ) षडहात्सप्तरात्राद्वा शुक्रं गर्भाशयान्मरुत्।
वमेत्सरुङ्नीरुजो वा यस्याः सा वामिनी मता॥
अष्टांग हृ० उत्तर अ० ३३।३८)

(इ)—सवातमुद्गिरेद्बीज वामिनी रजसायुतम्।
(सुश्रुत उत्तर अ० ३८।१२)

*(अ) गर्भिण्याः श्लेष्मलाभ्यासाच्छर्दि श्वासविनिग्रहात्।
वायुः क्रुद्धः कफं योनिमुपनीय प्रदूषयेत्।
पाण्डु सतोदमास्रावं श्वेतं वति वा कफम्।
कफवातामयव्यासा सा स्याद्योनिरुपप्लुता॥
चरक चि० अ० ३०।२०

(आ) वातश्लेष्मामयव्याप्ता श्वेतपिच्छिल वाहिनी।
उपप्लुता स्मृता योनिः ·············· ॥
अष्टाङ्ग हृदय उत्तर अ० ३३।४८

१९—कर्णिनी[१] योनिव्यापत्—

प्रसव काल में असमय प्रसव वेदना (आवि) होने के समय ही प्रवाहण क्रिया (गर्भाशय में स्थित बालक को बाहर निकालने के लिए जोर लगाने की क्रिया) करने वाली स्त्री के गर्भ से अवरुद्ध अपान वायु, कफ और रक्त से मिलकर योनि (गर्भाशयद्वारमुख) में आर्त्तव निकलने के मार्ग को रोकने वाला (कमल की कर्णिका के समान आकार वाला) मांसांकुर उत्पन्न कर देता है। यह 'कर्णिका' योनि व्यापत् कहलाती है।

ज्ञातव्य—कर्णिका एक प्रकार का योनि का अर्बुद है। इससे युक्त योनि को 'कर्णिनी' कहते हैं। चरक मुनि और आचार्य वाग्भट्ट इस कर्णिनी योनिव्यापत् को वात कफात्मिका तथा सुश्रुत मुनि श्लेष्मला मानते हैं।

त्रिदोषजा योनिव्यापत्—

२०. सान्निपातिकी * योनिव्यापत्—

मधुर आदि सब रस युक्त पदार्थों का समशन (पथ्य और अपथ्य मिश्रित भोजन) निरन्तर सेवन करने वाली स्त्री की योनि और गर्भाशय में स्थित वात, कफ और पित्त तीनों दोष योनि को दूषित करके अपने अपने लक्षणों से युक्त करते हैं जिससे योनि में तीनों दोषों के लक्षण पाये जाते हैं। विशेष रूप से वायु से योनि में शूल, पित्त से दाह, और कफ से चिपचिपे आर्त्तव का स्राव होता है।

ज्ञातव्य—सुश्रुत मुनि के मत में सान्निपातिकी योनि व्यापत् असाध्य है।

सुश्रुतोक्त विशिष्ट योनिव्यापदें—

चरकोक्त उपरिनिर्दिष्ट २० योनि व्यापदों के अतिरिक्त सुश्रुत मुनि ने निम्न लिखित ६ योनि व्यापदों का अधिक वर्णन किया है—

१. बन्ध्या २. विप्लुता ३. लोहितक्षरा ४. प्रस्रंसिनी (स्रंसिनी) ५. अत्यानन्दा ६. फलिनी (अंडिनी)

१. वन्ध्या[१] योनिव्यापत्—जिस योनि व्यापत् में स्त्री का आर्तवस्राव नष्ट हो जाता है वह 'बन्ध्या' योनिव्यापत् कहलाती है। यह वातजा होती है।

२. विप्लुता[२] योनिव्यापत्—जिस योनिव्यापत् में स्त्री की योनि में अत्यन्त कुपित वायु से नित्य वेदना (पीड़ा) होती है वह 'विप्लुता' योनिव्यापत् कहलाती है। यह वातजा होती है।

३. लोहितक्षरा[३] योनिव्यापत्—जिस योनिव्यापत् में आर्तव का स्राव दाह (जलन) पूर्वक अधिक मात्रा में आता है वह 'लोहिताक्षरा योनिव्यापत्' कहलाती है। यह पित्तजा होती है।

---

१ (क) अकाले वाहमानाया गर्भेण पिहितोऽनिलः।
कर्णिकां जनयेद्योनौ श्लेष्म रक्तेन मूर्च्छितः॥
रक्तमार्गावरोधिन्या सा तयाकर्णिनी मता॥
चरक चि० अ० ३०-२६

(ख) अकाल वाहनाद्वायुः श्लेष्मरक्तविमूर्च्छितः।
कर्णिकां जनयेद्योनौ रजोमार्गनिरोधिनीम्।
सा कर्णिनी ....॥
अष्टाङ्ग हृदय उत्तर अ० ३३-५०

(ग) कर्णिन्या कर्णिका योनौश्लेष्मासृग्भ्यांप्रजायते।
सुश्रुत उत्तर अ० ३८-१५

*(अ) समश्नन्त्या रसान् सर्वान् दूषयित्वा त्रयोमलाः।
योनिगर्भाशयस्था स्वैर्योनिं युञ्जन्ति लक्षणैः।
सा भवेद्दाह शूलार्ता श्वेतपिच्छिल वाहिनी॥

(आ) ....त्रिभिर्दोषैर्योनिगर्भाशयाश्रितैः।
यथास्वोपद्रवकरैर्व्यापत्सा सान्निपातिकी॥
अष्टांग हृदय उत्तर अ० ३३-५१

(इ) सर्वलिंग समुत्थाना सर्वदोषप्रकोपजा।
सुश्रुत उत्तर अ० ३८-१६

१—वन्ध्यानष्टार्तवां विद्यात्। (सुश्रुत उ० अ० ३८।१०)

२—विप्लुतां नित्यवेदनाम्। (सुश्रुत उ० अ० ३८।१०)

३—सदाहं प्रक्षरत्यस्रं यस्यां सा लोहितक्षरा।
(सुश्रुत उत्तर अ० ३८।१०)

४. प्रस्रंसिनी[1] (स्रंसिनी) योनिव्यापत्—जिस योनिव्यापत् में क्षोभ के कारण योनि बार-बार अपने स्थान से च्युत होकर निकल पड़ती है वह प्रस्रंसिनी (स्रंसिनी) योनिव्यापत् कहलाती है। इसके कारण स्त्री के कठिनता से सन्तान उत्पन्न होती है। यह पित्तजा होती है।

ज्ञातव्य—योनि अथवा गर्भाशय का अपने स्थान से च्युत हो जाना प्रस्रंसिनी (स्रंसिनी) कहलाता है। यह कई प्रकार का हुआ करता है जैसे—

(१) कभी-कभी योनि अथवा गर्भाशय का थोड़ा स्रंसन हो जाने से इनकी स्वाभाविक स्थिति में वक्रता (टेढ़ापन) आजाती है। इसको वर्तन (version), पूर्व दिशा में स्रंसन होने पर पूर्व विवर्तन (Anteversion) तथा पश्चात् स्रंसन होने पर पश्चाद् वर्तन (retroversion) कहते हैं।

(२) कभी-कभी योनि अथवा गर्भाशय का अधिक भ्रंश होने पर ये योनि द्वार से बाहर दिखाई पड़ने लगते हैं।

इन दोनों में से योनि या गर्भाशय का अपने स्थान से थोड़ा स्रंसन हो जाना (च्युत हो जाना) प्रस्रंसिनी (स्रंसिनी) कहलाता है।

प्रस्रंसिनी शब्द की निरुक्ति—(प्रकर्षेण स्रंसते या सा प्रस्रंसिनी) बार-बार अपने स्थान से च्युत होने वाली योनि 'प्रस्रंसिनी' कहलाती है।

५. अत्यानन्दा[2]—जिस योनिव्यापत् के कारण स्त्री की योनि मैथुन करने से सन्तुष्ट (तृप्त) नहीं होती है वह 'अत्यानन्दा' योनिव्यापत् कहलाती है। यह श्लेष्मजा होती है।

६. फलिना[3] (अण्डिनी, अण्डिली)—अत्यधिक बड़े या मोटे लिङ्ग वाले पुरुष के साथ मैथुन करने से बाला स्त्री की सम्पूर्ण योनि (और गर्भाशय) बाहर निकल आती है और पुरुषों के अण्डकोष के समान बाहर लटकने लगती है। यह फलिनी (अण्डिनी) योनिव्यापत् कहलाती है। यह सन्निपातिकी एवं असाध्य होती है।

ज्ञातव्य—इस फलिनी योनिव्यापत् का माधवनिदान, भावप्रकाश आदि ग्रंथों में 'अण्डिनी' (अण्डली) नाम से वर्णन मिलता है।

अण्डिनी (अंडली) शब्द की निरुक्ति—(अण्डवन्निःसृतायोनिः अण्डली) पुरुष के अण्डकोष के समान बाहर लटकने के कारण यह योनिव्यापत् अण्डिनी (अण्डिली) कहलाती है।

यह फलिनी, अण्डिनी (अण्डिली) योनिव्यापत् गर्भाशय या योनिभ्रंश (Prolapse of the uterus or vagina) का ही एक प्रकार है। इसमें गर्भाशय या योनि का पूर्ण भ्रंश होता है।

योनिव्यापदों का परिणाम[4]—

इन योनि व्यापदों (योनि रोगों) से दूषित हुई स्त्री की योनि पुरुषों के वीर्य को धारण नहीं करती है इसीलिए वह स्त्री गर्भधारण नहीं कर सकती है और अतिकष्टसाध्य गुल्मरोग, अर्श (बवासीर), प्रदर, मूत्रकृच्छ्र तथा अस्थिस्राव आदि[5] रोगों और वात, पित्त, कफ दोषों से उत्पन्न अन्य रोगों से पीड़ित रहती है।

—वैद्य श्री पं० सोमदेव शर्मा सारस्वत
साहित्यायुर्वेदाचार्य बी. ए., ए. एम. एस.
रीडर—गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालिज, रायपुर

१—प्रस्रंसिनीस्यन्दते तु क्षोभिता दुःप्रसूश्चया।
(सुश्रुत उत्तर अ० ३८। १३)

२—अत्यानन्दा न सन्तोषं ग्राम्यधर्मेण गच्छति।
(सुश्रुत उत्तर अ० ३८। १५)

३—अतिकायगृहीतायास्तरुण्याः फलिनी भवेत्।
(सुश्रुत उत्तर अ० ३८। १८)

४—इति योनिगदानारी यैः शुक्रं न प्रतीच्छति।
ततोगर्भं न गृह्णाति रोगांश्चाप्नोति दारुणान्॥
असृग्दरार्शोगुल्मादीनाबांधाश्चानिलादिभिः।
(अष्टांग हृ० उत्तर अ० ३३। ५२)

५—आदि शब्देन मूत्रकृच्छ्रास्थिस्रावादयोगृह्यन्ते।
(अष्टांगहृदय की कैरली व्याख्या)

योनिव्यापद्-चिकित्सा

श्री वैद्य अम्बालाल जोशी

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन रोगों में आयुर्वेदीय उपचार ही ठीक रहते हैं, पाश्चात्य चिकित्सा की गति इस ओर अवरुद्ध है। योनि-व्यापद् रोगों की साधारण चिकित्सा का उल्लेख करते हुए महर्षि चरक ने एक सूत्र चिकित्सकों के के सामने रखा है, वह ध्यान देने योग्य है।

न हि वाताद् ऋते योनिर्नारीणां संप्रदुष्यति।
शमयित्वा तमन्यस्य कुर्याद्दोषस्य भेषजम्।

—च. चि. ३०-११५

अर्थात् वात का प्रकोप हुए बिना कोई भी योनि विकार होना सम्भव नहीं है। उपचार क्रम से वात का सर्व प्रथम ध्यान होना चाहिए कि वात का शमन सर्व प्रथम किया जाय। वात सम हो जाने पर अन्य दोषों की ओर ध्यान दिया जाय।

इसी का समर्थन करते हुए वाग्भट्ट ने और भी स्पष्ट कहा है—

योनि व्यापत्सु भूयिष्ठं शस्यते कर्मवातजित्।
स्नेहन स्वेदन वस्त्यादि वातजासु विशेषतः॥

—अ. हृ. उ. ३४-२२

योनि व्यापद् रोगों में वात प्रत्यनीक चिकित्सा ही अधिक करिये जैसे स्नेहन, स्वेदन, वस्ति आदि। रोग वात प्रधान ही हो तो वात विरुद्ध उपचार अधिक प्रशस्त है।

सर्व प्रथम 'निदानम् परिवर्जयेत्' पर ध्यान देकर जिन पथ्यापथ्य आहार विहार से यह रोग उत्पन्न हुआ है उस पर ध्यान देकर रोगी को उससे दूर करना परमावश्यक है। यदि विबंध हो तो या मूत्रावरोध हो तो या आध्मान हो तो उसकी चिकित्सा भी की जा सकती है। इसके लिए पाचक तथा दीपक औषधियों का उपयोग फलप्रद सिद्ध हुआ है।

इसके बाद चरक के आदेशानुसार योनि रोग से पीड़ित रुग्णा को स्नेहन, स्वेदन कराकर मृदु वमन आदि पंचकर्मों से ठीक करें। (चरक चि० ४४-४५)

स्नेहन—एरण्ड स्नेह, ज्योतिष्मति तैल, सैंधवादि तैल तथा अन्य वातहर द्रव्यों के क्वाथ में सिद्ध किया हुआ तैल तथा घृत इस कार्य के लिए उपयोगी सिद्ध हुए हैं। रात्रि को सोते समय इन स्नेहों में से किसी एक का बलाबल तथा रोग बल के अनुसार पिचु योनि मार्ग में रखकर लेट जावें तथा प्रातः निकाल फेंकें।

स्वेदन—महर्षि चरक के अनुसार स्नेह प्रयोग के बाद नाड़ी स्वेद तथा कुंभी स्वेदों का प्रयोग प्रशस्त किया गया है। हमने इस रोग में कटि-स्नान को अत्यन्त उपयोगी पाया है। एक बड़े बर्तन में सुखोष्ण जल डालकर रोगिणी को सम्पूर्ण नग्न अवस्था में उसमें सीधा लिटा दें, पैर लम्बे रहें। ऊपर से कम्बल चारों ओर से ढक दें। फिर धीरे-धीरे पेड़ू पर हाथ फेरने को कहें। यह उप-चार आध घण्टे से एक घण्टे तक किया जा सकता है।

योनिधावन—यदि रोग अल्पवेग वाला हो तो यों ही वातहर द्रव्यों के क्वाथ का प्रयोग करें। सौराष्ट्रीजल, निम्ब जल तथा त्रिफला जल रोग की विभिन्न अवस्थाओं में प्रयोग किये जा सकते हैं।

वस्ति—वातहर तैलों या ग्लिसरीन की वस्ति दी जाकर योनि की शुद्धि की जा सकती है। इसका प्रयोग दोष शमन के लिये भी किया जा सकता है।

लेप—विशेष अवस्थाओं में लेप का भी प्रयोग किया जा सकता है—पुनर्नवा ८ तोला लोध्र २ तो. चित्रक २ तोला शुंठी २ तोला गूगल ४६ तोला हरिद्रा २ तोला त्रिफला क्वाथ ६६ तोला गोमूत्र ३० तोला। घन पाक बनाकर गुटी बनालें।

औषधियां—भैषज्य रत्नावली की रज: प्रवर्तिनी वटी को हमने बहुत उपयोगी पाया। हम इसे दशमूलारिष्ट कस्तूरी युक्त १ औंस में १ औंस पानी मिलाकर देते हैं। सामान्य प्रकृति वाली महिला (रुग्णा) के प्रयोग के लिये कन्यालोहादि वटी का प्रयोग उत्तम सिद्ध हुआ है। इसके सहपान के लिए कुमारी आसव (लोह युक्त) १ औंस में १ औंस पानी मिलाकर ३ माशा इस्पन्द (हरमल के बीज) मिलाकर पिलाते हैं।

उपरोक्त औषधि व्यवस्था महीने में बीस दिन चालू रखनी चाहिये। मासिक धर्म के प्रवृति काल में ६-१० दिन तक औषधि बन्द रखें।

बिडंग, मागधी टंकण का मिश्रण लाभप्रद सिद्ध हुआ है (भाव प्रकाश) परन्तु इसे दालचीनी तथा पिप्पलीमूल के काथ में देना विशेष लाभ दर्शाता है। शुंठी काथ एरण्ड स्नेह के साथ मिश्रित कर देना भी उपयोगी है। गुड़, यवानी तथा मैंथी का काथ भी लाभ करता है।

रुके हुए श्राव को प्रवृत्त करने के लिये—

सोया, वच, असालिया (चंद्रशूर), काले तिल, गाजर के बीज, मूली के बीज, छुहारा, माडंगी तथा उलट कम्बल को समान भाग लेकर १ तोला मिश्रित औषधि को १ पाव पानी में औटाकर चतुर्थांश रहने पर दिन में दो बार छान कर पीलें।

या

गाजर के बीज, मूली के बीज, वृन्ताक के बीज, कासनी की जड़, सौंफ की जड़, मंजिष्ठा, अनेसून मेंथी तथा सोया को समान भाग लेकर काथ बनाकर उपरोक्त विधि के अनुसार पान करें।

उदावर्ता योनि की विशेष चिकित्सा—

काश्मर्यादि घृत (चरक) का उपयोग करें। साथ ही त्रिफला तथा गिलोय और दन्ती के क्वाथ की बस्ति दें।

सैंधवादि तैल (चरक) तथा त्रिवृत्त स्नेह (चरक) भी उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

परिप्लुता योनि की विशेष चिकित्सा—

इस रोग में बलादि यमक (चरक) द्वारा सिद्ध किया हुआ दुग्ध सेवन करावें। वातविध्वंसन रस १ रत्ती, योगराज गूगल १ रत्ती तथा सर्पगंधा चूर्ण १ रत्ती का सेवन घृत शर्करा के साथ दिन में दो बार करावें।

विप्लुता योनि की विशेष चिकित्सा—

शल्लकी, मदन मंजरी, जामुन, धव, गूलर, बरगद, पीपल, वेतस, पिलखुन की छाल का क्वाथ बनाकर उससे तैल सिद्ध करें। इस तैल को योनि में धारण करें।

तथा सेवन करने के लिये हिंग्वाष्टक चूर्ण (समान हींग वाला) ३ माशा घृत अथवा उष्ण जल के साथ भोजन के पूर्व सेवन करें। कुछ काल तक लेने से लाभ होगा।

गर्भाशय भ्रंश की विशेष चिकित्सा—

सर्व प्रथम गर्भाशय को स्नेहन स्वेदन आदि कर्मों द्वारा शुद्ध करलें। फिर स्नेह के सहयोग से हाथ द्वारा अपने स्थान पर स्थापित करें। टेढ़ी योनि को अंगुलियों के सहारे से फिराकर यथा स्थिति करें। संवृत मुख वाली योनि का संवर्धन करें, बाहर निकली हुई योनि को हाथ से धीरे धीरे अन्दर प्रविष्ट करें, विवृत योनि को चारों ओर से घेर कर छोटा करें। यह कर्म पटु वैद्य ही करें। वैसे यह उपचार शल्य साध्य है अत: सतर्क रहना आवश्यक है।

महायोनि की विशेष चिकित्सा—

इस रोग में मधु २ तोला तथा घृत १ तोला के साथ त्रिफला गूगल का नियमित सेवन करावें तथा योनि प्रक्षालन आदि के लिए सौराष्ट्री जल का उपयोग करें। भंग को एक रेशम के कपड़े में भरकर योनि में रात्रि को सोते समय रखें।

योनि शोथ पर विशेष उपचार—

शुद्ध भल्लातक १ तोला, हरड़ की छाल १ तोला, काले तिल १ तोला, गुड़ १ तोला खूब बारीक कूट

कर १४ मोदक बनालें तथा सुबह शाम १-१ गोली का सेवन छाछ के साथ करें। ऊपर से दूध भी पी सकते हैं। अच्छा हो खाना बन्द कर दिया जाय तथा दूध धीरे-धीरे बढ़ाते जांय। यह योग बहुत लाभप्रद है। रोगिणी को धीरे धीरे पुनः अन्न पर ला छोड़ें। ज्योतिष्मति तैल का पिचु प्रयोग में लावें। नमक का बिलकुल परित्याग करें।

असाध्य योनि रोग—

त्रिदोषज या सान्निपातिक योनि रोग शास्त्रों में असाध्य माने गये हैं।

विशेष बात—योनि रोग में रुग्णा के पंचकर्म कराते समय वमन के लिए मदनफल ४ भाग, सैंधव १ भाग तथा बच १ भाग १ तोले की मात्रा में औषधि को आकण्ठ पूरित लवण जल के साथ लेना चाहिए।

विरेचन—अधिकतर स्नेह से ही कराना उपयुक्त है। अन्य कर्मों के लिए ऊपर लिख चुके हैं।

पथ्य व्यवस्था—

रोग निवृति में पथ्यापथ्य का एक महत्वपूर्ण योग है अतः इस ओर भी विशेष ध्यान देना चाहिए।

सामान्यतया इस लेख में कहे गये वातवर्द्धक (रोग उत्पादक) खाद्य, आचार, व्यवहारों का पूर्णतया परित्याग करें।

पथ्य—(अ) गेहूं, यव, मुद्‍गयूष, सत्तू तथा लाजा।

(ब) घृत तथा दुग्ध का पेय।

(स) द्राक्षा, धात्रीफल तथा अन्य फल जैसे पपीता आदि।

विशेष लाभप्रद पथ्याहार—

(१) वातहर औषधियों से भावित घृत, तैल तथा दुग्ध इस रोग में पथ्य हैं।

(२) साधारणतया वात नाशक खाद्य भी इस रोग में उपयोगी है।

(३) भल्लातक से सिद्ध किये घृत का हलुवा देना विशेष लाभप्रद है।

(४) रास्ना, गोक्षुर तथा एरण्ड से सिद्ध किया हुआ दुग्ध पीवें।

(५) कुमारी का शाक तथा स्वरस प्रयोग में लावें।

(६) पपीता आर्त्तव-प्रवर्त्तक तथा अग्निदीपक है अतः इसका नियमित सेवन करें।

अपथ्य आहार—सभी वातवर्द्धक खाद्य तथा पेय इस रोग को बढ़ाते हैं यथा विषमासन तथा रूक्ष भोजन, कषाय, तिक्त, कटु, भोजनों का अतिक्रमण, चावल, खट्टा दही, आलू आदि।

लाभप्रद विहार—उष्ण जल से स्नान, मृदु शैया, शीतल पवन सेवन, मनोहर विहार, ऊषाभ्रमण तथा अभ्यंग, प्रसन्न मुद्रा, प्रगाढ-निद्रा आवश्यक हैं।

विपरीत विहार—शोक, अधिक व्यायाम, आतप सेवन, अत्यधिक संतर्पण, जागरण, वेग-धारण, अत्यधिक शैत्य सेवन, भय आदि विहार रोग वर्धक हैं अतः समझदार रुग्णा इनका परित्याग करे। सिनेमा इस रोग को पैदा करने में किसी भी कारण से पीछे नहीं रहता।

इस रोग में ब्रह्मचर्य सर्वोपरि पथ्य तथा साधक है। रोग पैदा करने वाली नारियां स्वयं हैं तथा हमारी आजकी सभ्यता है। अच्छा हो इस यदि दिखावटी सौंदर्यपूर्ण सभ्यता से दूर रहकर हमारी नारियां अपने आपको स्वस्थ रख सकें।

—श्री वैद्य अम्बालाल जोशी साहित्यायुर्वेद रत्न,
मकराना मोहल्ला, जोधपुर।

[२]

श्री वैद्य मुन्नालाल गुप्त

चरकाचार्य ने षण्ढी को असाध्य बताया है शेष सबको चिकित्सा दी है।

वातला योनि रोगों में वात नाशक स्नेह (तैल) का उत्तर वस्ति में प्रयोग करें।

पित्तला योनि रोगों में पित्त नाशक शीतल स्निग्ध घृत का प्रयोग खाने में और उत्तर वस्ति से करें।

कफजा योनि रोगों में रूक्ष, उष्ण, अवचूर्णी व अवधूलन की पोटली का प्रयोग योनि के भीतर रखकर करें।

जो योनि अपने स्थान से हट गई हो उसे स्नेहन और स्वेदन से कोमल कर युक्तिपूर्वक ठीक ठीक स्थान पर बैठाने का विधान है। इसी प्रकार टेढ़ी को सीधा करने का, सूचीमुखी को चौड़ा करने का, विवृता को छोटी करने का भी विधान दिया गया है जिसे नारी वैद्या को किसी योग्य अनुभवी वैद्या-चिकित्सिका से ही सीखना चाहिए।

वातज रोगों में—चरकोक्त काश्मर्यादि घृत, पिप्पल्यादि योग, सैंधवादि तैल, गुडूच्यादि तैल का लगाने और खाने में उपयोग करें। वातज योनि रोगों में परिषेक, अभ्यंग, पिचु धारण कराना, तत्पश्चात् उत्तर वस्ति कराने का विधान है।

पित्तला योनि रोगों में—परिषेक (शीत गुण वाली औषधियों से) अभ्यंग, पिचु का धारण उपयोगी है। स्नेहन के लिये घृत उपयोगी होता है यथा शतावरी घृत। इसी प्रकार जीवनीय गणों के कल्क से साधित दूध से निकाला घृत पित्तजा-योनि विकारों में हितकर है।

श्लैष्मला योनि रोगों में—बरगद या पंचवल्कल के या त्रिफला के कटु तिक्त कषाय द्रव्यों के क्वाथ से योनि का प्रक्षालन करें, तत्पश्चात् त्रिफला, फिटकरी, लाजवन्ती बीज, आम की गुठली, धाय के फूल इनका चूर्ण बनाकर शहद में मिलाकर योनि में धारण करने से उसकी पिच्छिलता नष्ट होती है।

ढाक का गोंद, जामुन की छाल, लाजवन्ती, मोचरस, धाय के फूल इनका कल्क धारण करने से योनि की पिच्छिलता (लसलसापन) को नष्ट करता है। साथ ही उसमें स्तम्भन उत्पन्न कर उसके ढीलेपन को भी दूर करता है। श्वेत स्राव को भी बन्द करता है।

दुर्गन्ध स्राव वाली, दुर्गन्ध वाली योनि रोग में गन्ध द्रव्यों के चूर्ण का योनि में धारण करायें।

रक्त प्रदर और श्वेत प्रदर में प्रदर नाशक प्रयोगों से चिकित्सा करें।

योनि व्यापद् रोगों में घृत, वसा, और तैल तथा मधु के साथ तत्तद् दोषनाशक प्रयोगों का उपयोग करें।

रक्त प्रदर में शहद सहित तण्डुलोदक तथा रसौत और लाख के चूर्ण को बकरी के दूध से सेवन करें। पुष्यानुग चूर्ण इसमें प्रयोग करना चाहिये। यह श्वेत नीला, पीला, श्याम, अरुण स्राव को रोकता है। इसके साथ शहद मिला तण्डुलोदक लेना चाहिये।

शास्त्रीय चिकित्सा का ही संग्रह किया जाय तो सैकड़ों पृष्ठ लिखे जासकते हैं किन्तु आज के युग में स्व-युक्ति से भी रोग के निदान और चिकित्सा पर विचार करना चाहिए। शास्त्रीय उक्त विवेचन से बहुत कुछ लाभ उठाया जासकता है। अब आवश्यकता रह जाती है कौशल, चातुरी, ऊहापोह, उचित विचार उपयुक्त चिकित्सा, उसके उपयोग के विधि की।

रोगिणी के रोग की परीक्षा किसी कुशल योग्य चिकित्सिका के द्वारा ही करानी चाहिए—

जानने की बातें—

(१) किस-किस अङ्ग प्रत्यङ्ग में क्या विकार है ?

(२) यह विकार किस कारण से उत्पन्न हुआ है या हो सकता है ?

(३) शास्त्रीय कारण, लक्षण, नाम से कहां तक मेल खाता है ?

(४) जहां मिलान नहीं होता, उसका क्या रहस्य है ?

(५) उस सम्बन्ध में आधुनिक चिकित्सकों का क्या मत है ?

(६) यदि कारण का ज्ञान हो जाय, तो उन कारणों को कैसे दूर किया जाय ?

(७) जो भी लक्षण रोगिणी में पाये जांय, उन्हें नोट करें और ऊहापोह के साथ उन पर विचार किया जाय कि वे लक्षण किस दोष विशेष से उत्पन्न हैं ?

(८) रोग परम्परागत है, दैवी दोष जनित है, बीजदोष से है या रजविकृति से, रजाल्पता रक्ताल्पता, डिम्बकोष की विकृति, सुसुप्ति, अधिक उत्तेजना, अधिक कामोपभोग, काम में अतृप्ति, प्रेमाभाव, अधिक आकांक्षा, क्रोध, चिन्ता, भय, मन मारने से तो नहीं है ।

(९) किसी ऋतु विशेष या काल विशेष में तो रोग का आक्रमण नहीं होता । उस काल का रोग से क्या सम्बन्ध है ।

(१०) रोगी की मानसिक दशा कैसी है ? शारीरिक दशा कैसी है ? आर्थिक स्थिति, रहने की स्थिति, पारिवारिक स्थिति कैसी है । किसी विशेष चिन्ता का विषय है तो क्या है ? इत्यादि इत्यादि ।

जब आप उक्त विषय में अपनी पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त कर लेंगे तो कारण नहीं कि आप यह न जान जायें, कि रोग को किस विधि से नष्ट किया जासकता है । यदि नष्ट नहीं किया जा सकता तो इसमें कौनसी बाधा है ।

स्व-अनुभव में आये रोगियों की चिकित्सा—

(१) एक २५ वर्षीय युवती को ६ मास से मासिक धर्म बन्द था, उसके पति ने रोगिणी को दिखाया, देखकर विचार किया कि यकृत् पूरी तरह से काम नहीं करता, इसी से रक्ताल्पता है, रक्ताल्पता के कारण ही इसे मासिक धर्म नहीं होता ।

मैंने उसे लिवर एक्सट्रेक्ट लाने को लिख दिया वह लाया, उसकी ५ बूंद दवा को एक साफ बोतल में डालकर पानी से भर दिया, खूब हिलाकर उसमें से २॥-२॥ तोले की ४ मात्रा बनाकर दे दिया और ३-३ घण्टे में पिलाने का आदेश दिया । तीन घण्टे पश्चात् ही रोगिणी को मासिकधर्म जारी हो गया साथ ही ज्वर भी हो गया, तीन दिन तक रज बहता रहा, फिर बराबर मासिक धर्म होता रहा ।

(२) एक ३० वर्षीय रोगिणी स्थूलकाय होने के साथ उसके गर्भाशय में वेहद पीड़ा, शोथ, योनि भ्रंश गुल्म (ग्रंथियां) थी । वह मेरी चिकित्सा में आई तो मैंने उसे ४ महिने तक बराबर भोजनोपरान्त कुमार्यासव तथा प्रातःसायं नारीरोग कुलमण्डन रस देता रहा, गर्म जल में निम्बु का रस डाल कर पीने को बताया गया । १ से १० निम्बु क्रमशः बढ़ाने को, इसके पश्चात् उतारने को बताया । रोगिणी अपने सम्पूर्ण रोगों से ४ महिने में मुक्त हो गई ।

(३) पुरुष और स्त्री का एक जोड़ा जो शरीर में में हृष्ट-पुष्ट, किसी प्रकार की कोई खराबी नहीं किन्तु सन्तान प्राप्त नहीं हुई, यहां तक कभी गर्भ भी नहीं रहा ।

मेरे कहने से उन्होंने मेरी चिकित्सा की मैंने स्त्री को मासिक धर्म उपरान्त पीपल जटा का चूर्ण गौदुग्ध के साथ लेने को कहा । साथ ही भगवान सूर्य नारायण से प्रार्थना करने को कहा । भगवान की दया से उसे उसी दिन गर्भ रह गया ।

इस पीपल जटा का प्रयोग अनेक स्त्रियों पर किया जिन्हें सन्तान नहीं होती थी, वन्ध्या मान ली गई थीं, उन्हें इससे सन्तान हुई ।

श्री वैद्य मुन्नालाल गुप्त B. I. M.
पुरानी धान मण्डी, कानपुर

बन्ध्यत्व व चिकित्सा

श्री राजवैद्य डा० जी० के० दाधीच

हमारा अनुभव है और आयुर्वेद शास्त्र का भी मत है कि स्त्रियां एक दो प्रतिशत ही बन्ध्या होती हैं अन्यथा कोई दोष ही ऐसा उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण सन्तान होना रुक जाता है। यदि वह दोष दूर कर दिया जाय तो सन्तान अवश्य ही हो सकती है।

जिन स्त्रियों के स्तन भाग ठीक उम्र होने पर भी नहीं उठते और जिन्हें कभी मासिक धर्म नहीं होता बस वही "जन्म बन्ध्या" कही जा सकती हैं। बाकी सबको सन्तान प्राप्त होसकती है।

बन्ध्यत्व रोग आयुर्वेद मतानुसार योनि रोग के अन्तर्गत समाविष्ट किया गया है। जैसे—

"विंशतिर्व्यापदो योनी निर्दिष्टा रोग संग्रहे"

योनि रोग बीस प्रकार के बतलाये हैं। जिस स्त्री का आर्तव नष्ट हो गया हो उसे बन्ध्या और जिसमें नित्य वेदना होती हो उसे विप्लुता कहते हैं तथा परिप्लुता योनि में मैथुन करने से अत्यधिक पीड़ा होती है जैसा माधव निदान में उल्लेख किया है।

वन्ध्यां नष्टार्तवां विद्याद्विप्लुतां नित्यवेदनाम्।
परिप्लुतायां भवति ग्राम्यधर्मेण रुग्भृशम्॥

उपरोक्त श्लोक के आधार पर यह शंका होती है कि बन्ध्या तथा नष्टार्तव एक ही श्रेणी में हैं या अलग अलग।

आयुर्वेद में बन्ध्या संज्ञा उसे दी है कि जिसमें प्रजनोत्पादन की असमर्थता होती हो। केवल रज की प्रवृति न होने से ही उसे बन्ध्या नहीं कहा जा सकता। उसकी पुष्टि के लिये सुश्रुताचार्य का यह मत है कि "अदृष्टार्तवाप्यस्तीत्येके भाषन्ते"

उपरोक्त आचार्य के मतानुसार अदृष्टार्तवा को भी सन्तान हो सकती है। अतः यहां पर नष्टार्तव का तात्पर्य यह लेना चाहिए कि जिसमें सन्तानोत्पादन के जीवाणु का अभाव (नष्ट) हो गया हो उसे नष्टार्तव कहा गया है। जिस आर्तव में जीवाणु नष्ट हो गये हों उसे नष्टार्तव संज्ञा दी गई है।

बन्ध्यत्व दोष में स्त्री व पुरुष दोनों को ही कारणीभूत समझना चाहिये इसीलिये हर साधन से स्त्री पुरुष दोनों की शारीरिक परीक्षा करनी चाहिये तथा उसके कारण का पता लगाने के लिए परीक्षण की अत्यावश्यकता है। अतः पूर्व स्त्री का परीक्षण निम्न स्थानों का विशेष ध्यान देकर करना चाहिये। गर्भाशय विशेष ध्यान देने योग्य है।

(क) गर्भाशय-ग्रीवानलिका से लेकर बीज वाहिनी तक कहीं भी स्त्री बीज और पुरुष बीज का आपस में मिलना।

(ख) स्त्री बीज व पुरुष बीज का पूर्ण स्वस्थ होना।

उपरोक्त कारण ठीक मिलने पर योनि गत विकृतियों की ओर ध्यान देना चाहिये। बन्ध्यत्व होने में दो मुख्य कारण हैं।

-सहज (Congenital)—

इस विषय के अन्तर्गत हमें उसकी बनावट तथा ाकृति व विकृति की ओर ध्यान चाहिए।

उत्पादक अंगों की रचना सम्बन्धी विकृति या नकी अनुपस्थिति मुख्य कारण है।

-जातोत्तरकालज (Acquired)-

इस विषयान्तर्गत विविध प्रकार के रोग व आगन्तुक कारण भी सहायक हो जाते हैं। अतः उनका विचार कर उनकी सुयोग्य चिकित्सा करनी चाहिए। इस विषयागत सहायक व्याधियां सावधानी से समझ कर उनका यथा उपचार करना चाहिये। आगे बन्ध्यत्व के कारण निम्नकोष्ठक द्वारा शीघ्र ही समझ में आजायेंगे जो कि माधव निदान के आधार पर तैयार किया है।
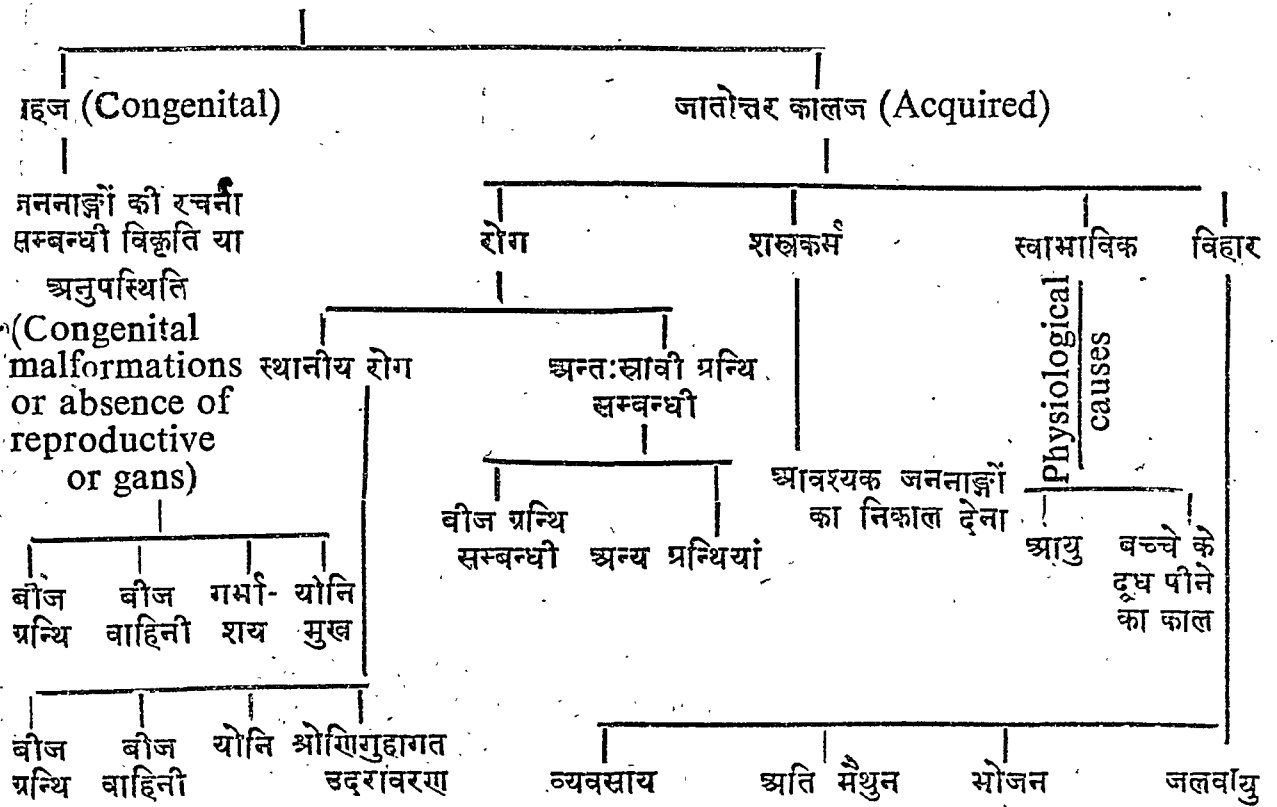
उपरोक्त जातोत्तर कालज अन्तर्गत किसी स्त्री को शोथ या अर्बुद के कारण बीज ग्रन्थि नष्ट हो हो सकती है या अन्य कारणों से उसमें से स्त्री बीज नहीं निकल पाते या पूयमेह या अन्य संक्रामक रोगों द्वारा बीज वाहिनीयों में शोथ होने से नलिका अवरुद्ध हो जाती है तथा उपरोक्त कारणों से उन नलिकाओं में से स्त्री बीज का स्राव नहीं हो पाता तथा पुंबीज से संयोग नहीं हो पाता तथा गर्भाशय कला में शोथ भी गर्भाधान में बाधा उत्पन्न करता है। तथा गर्भाशय उसकी ग्रीवा से उत्पन्न दुष्ट स्राव व पुंसत्व बीज को नष्ट कर देता है इसलिए उपरोक्त कारणों से योनि रोग ही स्वयं बन्ध्यत्व उत्पन्न नहीं करते किन्तु परम्पर्या मैथुन की असमर्थता आदि उत्पन्न करने से इन्हें भी बन्ध्यत्व का कारणीभूत माना जा सकता है।

अन्तःस्रावी ग्रंन्थियों के अन्य स्रावों की विकृति से भी बन्ध्यता उत्पन्न हो सकती है। बीज ग्रंथि के स्राव की कमी से गर्भाशय का पूर्ण विकास और स्त्री बीज का पूर्ण परिपाक भी नहीं हो पाता। अति स्राव होने पर गर्भाशय कला का परम चय हो जाता है तथा चुल्लिका ग्रन्थि और पीयूष ग्रन्थि के अन्तःस्राव की कमी से भी वन्ध्यता हो सकती है।

कभी कभी ऐसा भी देखा गया है कि एक सन्तान होने के बाद सन्तान होना बन्द हो जाता है। उसे एकापत्य वन्ध्यता कहा है (One child sterility) उसका कारण यही है कि प्रसवोपरांत जीवाणुओं का उपसर्ग हो जाने से शोथ होकर बीज नलियों का मार्ग बन्द हो जाता है तथा प्रसवोपरांत पूयमेह के उपसर्ग, प्रसवकालीन तीव्र आघात (गर्भाशय ग्रीवा का अत्यधिक विस्तार) अथवा अपसंवृति से भी बन्ध्यता होती है।

उपरोक्त स्त्री कारणों की खोजकर परीक्षण कर योग्य चिकित्सा क्रम प्रारम्भ कर बन्ध्यता समाप्त कर उसे सन्तानप्रद स्त्री बना सकते हैं। इससे स्त्री बन्ध्यत्व से सगर्भा हो सकती है।

अगर योनि रोग आदि से आक्रान्त हो तो उसका योग्य चिकित्सिका द्वारा उपचार करवाना चाहिए। स्त्री का सब परीक्षण होने पर पुरुष का भी परीक्षण करना अत्यावश्यक है क्योंकि बन्ध्यत्व में पुरुष भी कारणीभूत है। अतः पुरुष जाति के परीक्षण में निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये।

(क) शुक्रवाहिनी नलिकाओं में अवरोध—यह पूयमेह जनित रोगों के कारणों से हो सकती है। इस कारण से पुरुष बीज स्त्री बीज से सम्पर्क नहीं कर सकता है।

(ख) शुक्र की अनुपस्थिति—पुरुष बीज एक तरल पदार्थ में मिलकर ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है। द्रव भाग की अनुपस्थिति से गर्भाशय तक पहुँचने में भी असमर्थ रहता है। यह स्थिति शुक्र बनाने वाले अंगों में शोथ पैदा होने के कारण तथा सहज भी हो सकती है।

(ग) अशुक्राणुता—शुक्र में शुक्राणु या पुरुष बीज की अनुपस्थिति से भी गर्भधारण नहीं हो सकता। इसके लिये निम्न कारणों का विशेष सहाय्य है।

(१) अण्ड ग्रन्थियों की अनुपस्थिति या उनमें रुग्णता का समावेश।

(२) उपाण्ड ग्रन्थियों की अनुपस्थिति।

(३) अति मैथुन—इसके कारण से शुक्र बीज में गर्भोत्पादक शक्ति नहीं रहती है क्योंकि अति मैथुन से शुक्र जीवाणुरहित हो जाता है।

(घ) आयु—बाल्यावस्था में शुक्राणु की उत्पत्ति नहीं होती।

(ङ) पौरुष ग्रन्थि तथा शुक्रवाहिनी का जीर्ण शोथ होना—उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त उत्पादक अङ्गों की स्वाभाविक विकृति, उनकी अनुपस्थिति तथा आघात और शल्य कर्मजन्य विकृति भी पुरुषगत कारणों में ही समझनी चाहिए।

उपरोक्त कारणों का पता लगने पर योग्य उपचार करना चाहिए। पर एक बात होती है कि बन्ध्यत्व के लिए उपरोक्त कारणों में से किसी प्रकार का दोष नहीं है तो किसकी चिकित्सा करनी चाहिए। उसके लिए अपने सामने दो सहायक परीक्षण और हैं वह हैं कि शुक्राणु व स्त्री बीज का परीक्षण। यह परीक्षण दो प्रकार से है।

(१) अर्वाचीन-यान्त्रिक साधनों द्वारा शुक्राणु व स्त्री बीज की कांच पट्टिका बनाकर अणुवीक्षणीय यन्त्र द्वारा वैज्ञानिक इसका परीक्षण कर रिपोर्ट दे देते हैं। उसके आधार पर चिकित्सा करनी चाहिये।

(२) देशी परीक्षण-पुरुष व स्त्री दोनों को अलग अलग माटी के प्याले लेने चाहिए तथा उसमें काली मिट्टी भरकर उसमें चना व अन्य धान्य बीज डाल कर उन माटी के प्यालों को अलग अपना चिन्ह दे

कर रखना चाहिये तथा प्यालों को न अति धूप न अति छाया में रखना चाहिए तथा उसमें रोज प्रातः काल उठकर अपना अपना मूत्र(पेशाव)अपने माटी के प्याले में उत्सर्ग करे। इस प्रकार करने से १-२ सप्ताह में धान्य उग जायेंगे। उन प्यालों को चुहे आदि से बचाना चाहिए। जिसमें धान्य बीज उग गये हों उसके जीवाणु उपस्थिति हैं। तथा जिसके नहीं उगे उसमें गर्भोत्पादक जीवाणु उपस्थित नहीं हैं तथा उसी की ही चिकित्सा करनी चाहिये। यदि दोनों के प्यालों में धान्यवर्ग उग जायें तो उनको अन्य उपाङ्गों की जांच कराकर चिकित्सा करनी चाहिए।

उपरोक्त कारणों के सिवाय यह कारण भी मुख्य है कि आसनों का भी मैथुन काल में विशेष ध्यान रखना चाहिए। वह इस प्रकार है कि एक स्त्री स्थूल है तो स्थूल व मोटी स्त्री के अन्दर के भी अवयव बढ़ जाते हैं तो उस समय मोटी स्त्री के संभोगकाल में उनकी कटिवन्ध के नीचे तकिया रखना चाहिये क्योंकि ऐसी स्त्री जाति की योनि के अन्तर्गत गर्भाशय का मुंह ऊपर की ओर रहता है या नीचे की ओर रहता है इस कारण पुरुष शिश्न से छुड़ने वाले शुक्राणु को सरलता से ग्रहण नहीं कर सकता तकिया लगाने से उसके गर्भाशय में आसानी से शुक्राणु जा सकते हैं।

—राजवैद्य डा० जी० के० दाधीच आयुर्वेदा०,
L. M. S, V. R.
महावीर आयु० औषधालय, करंजा।

बन्ध्यत्व दोष

श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी शास्त्री

प्रायः देखा गया है कि मनुष्य समाज किसी भी विषय के लिये अपनी एक धारणा बना लेता है फिर अपने सभी विचारों को उसी कसौटी पर कसा करता है चाहे वे खरे उतरें या नहीं, उसी प्रकार की एक धारणा यह स्त्रियों के बारे में भी प्रचलित होगई है कि "बन्ध्यत्व दोष" केवल स्त्रियों में होता है, सच पूछिये तो बात कुछ और ही है- बन्ध्यत्वअसफलता—यह किसी भी विषय में अथवा नर या नारी में कहीं भी देखा जा सकता है, अबन्ध्यत्व तो परम सौभाग्य एवं उत्कर्ष का चिन्ह है। नीति कारों ने तो प्रत्येक दिन को अबन्ध्य अर्थात् सफल करने की आज्ञा दे रखी है—"अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद्दानाध्ययन कर्मभिः"।

वन्ध्यत्व दोष में हेतु—बन्ध्यत्व दोप के चार आश्रयस्तम्भ हैं-ऋतु, क्षेत्र, अम्बु, बीज (वीर्य)। वैद्य को चाहिये कि पहिले इन चारों के बारे में जानकारी प्राप्त करले क्यों कि इनमें से किसी एक की कमी से भी स्त्री बन्ध्या रह जाती है। केवल
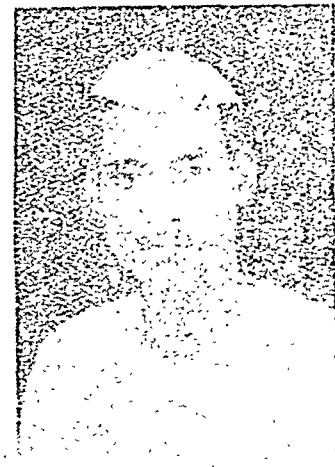
स्त्री के सन्तान न होते देख सभी दोष उसी का ठहरा सन्तानप्रद योगों की भरमार नहीं मचा देनी चाहिये और नहीं किसी भूत प्रेतादि की बाधा ही मानकर मूल कारण को भुला देना चाहिये, हां कभी कभी उक्त चारों कारणों के ठीक रहते हुए भी पूर्वकृत दुष्कृतों (पापों) के कारण सन्तान का अभाव कई घरों में देखा जाता है। उस समय "हरिवंश पुराण" का श्रद्धा पूर्वक श्रवण कीर्तन या किसी सिद्ध पीठ आदि के दर्शनों से भी मनोरथ पूर्ति होते देखी गई है, किन्तु इन उपचारों को तभी करना चाहिये जब इनमें आस्था एवं पूर्ण विश्वास हो।

वन्ध्यत्व दोष परीक्षा—रज एवं वीर्य के शुद्ध होने पर ही गर्भ धारण हो पाता है अतएव सर्व प्रथम हमें इनकी परीक्षा करनी चाहिये।

पुरुष परीक्षा—

बीजस्य प्लवनं न स्यात् यदि मूत्रञ्च फेनिलम्।
पुमान्स्याल्लक्षणै रेतै विपरीतैस्तु षण्ढकः॥

बङ्गसेन

व्या०—जिसका वीर्य पानी में तैरता हो और मूत्र में झाग उठता हो उसको पुमान् समझना चाहिये, सन्तानोत्पत्ति में यही पुरुष समर्थ होता है, इसके विपरीत नपुंसक। किन्तु कई बार का अनुभव यह बतलाता है कि जिसका वीर्य पानी में डूब जाता है उसी के वीर्य में गर्भधारण की शक्ति पाई गई है, इस बात पर वैद्य बन्धु ध्यान दें।

स्त्री परीक्षा-सोये के पौधे या कद्दू की बेल की जड़ में एक सप्ताह तक प्रति दिन स्त्री पेशाब करे। यदि उसमें उक्त दोष होगा तो पौधे सूखने लगेंगे, यदि न सूखें तो समझ लें कि स्त्री में गर्भ धारण शक्ति है।

वन्ध्याओं के भेद-मुख्यत: तीन भेद बन्ध्याओं के होते हैं।

१-जन्मबन्ध्या—जीवन भर सन्तान का न होना।

२-मृत वन्ध्या—सन्तान का होकर मर जाना।

३-काक वन्ध्या—जीवन भर में केवल एक ही सन्तान का होना।

स्त्रियों में वन्ध्यत्व दोष के और भी अनेक कारण हैं। यथा—

स्त्री पुरुषों में पारस्परिक स्नेहहीनता, मेदस्विता, बाल विवाह, पुरुष से स्त्री की अवस्था का अधिक होना, असमय या अत्यधिक मैथुन, गर्भाशय की विकृति, बीज दोष या नपुंसकत्व, समस्त योनि रोग, नष्टार्तव, आर्तव की अधिकता, रक्त प्रदर और गर्भाशय में मांस के बढ़ जाने से उक्त दोष होजाता है। कुछ लोगों की धारणा है कि सुसन्तति तो माता पिता के पुण्यों से ही होती है, यह धारणा वस्तुत: अभिनन्दनीय है क्योंकि "सन्तति: पुण्यमाख्याति" अस्तु।

स्त्री पुरुषों के रज वीर्य की शुद्धि के पूर्व यह विषय अविस्मरणीय होगा यदि उक्त दोनों में कोई भी किसी रोग से पीड़ित है तो सर्व प्रथम उसकी चिकित्सा प्रारम्भ करे केवल रज वीर्य की शुद्धि से कभी सफलता के भागी नहीं बन सकते। पुरुषों में प्रमेह, उपदंश, सुजाक आदि दोष यदि रहते हैं तो इनके कारण भी गर्भ स्थिति नहीं होती। स्त्रियों में योनि रोग आदि, जो कारण ऊपर कहे गये हैं इनकी चिकित्सा करालें, यहां पर उक्त रोगों की चिकित्सा अप्रासङ्गिक होने से नहीं दी जारही है।

रज एवं वीर्य शुद्धि के उपाय–वैद्य को चाहिये कि वह जिन स्त्री पुरुषों का रज वीर्य दूषित हो उनको पथ्य आदि का समयोचित निर्देश करके निम्नलिखित योगों का दीर्घ काल (४५ दिन) तक सेवन करायें—नागौरी असगन्ध ३ तोला, संगजराहत ३ तोला, इलायची के बीज ३ तोला, वंशलोचन ३ तोला, शतावर की जड़ का चूर्ण ५ तोला, बबूल का गोंद ५ तोला, इन सबको कूट पीस कर छान लें। इस चूर्ण को प्रात: सायं २ या ३ माशे की मात्रा में

गो दुग्ध के साथ सेवन करें। इस योग से रजः शुद्धि होती है।

वीर्य शुद्धि के लिए जितेन्द्रिय होना परमावश्यक है तभी चिकित्सा सफल होती है। सेमल की मूसली, गोखरू, तालमखाना, बीजबन्द, विदारीकन्द, दालचीनी, नागरमोंथा, सफेद जीरा-इन सबको सम भाग लेकर कूट पीस छानकर रखलें। इसके २-३ माशे चूर्ण में १ माशा मिश्री मिलाकर प्रातः सायं गोदुग्ध के साथ दीर्घ काल (४५ दिन) तक सेवन करने से वीर्य अवश्य शुद्ध होजायेगा। उक्त दोनों ही योग मेरे अनुभूत हैं।

दुर्भाग्यवश वन्ध्यत्व दोष जिन अबलाओं के साथे पड़ जाता है उनके हृदयों से पूछिये, सम्पूर्ण सुख भोगों के रहते हुए भी उनका जीवन अपने तथा परिवार वालों के लिए अभिशाप स्वरूप होजाता है। बात भी ठीक है "अपुत्रस्य गृहं शून्यम्", अतएव यहां पर कुछ ऐसे गर्भप्रद योगों का निर्देश किया जारहा है जो बहुशोऽनुभूत एवं शास्त्रीय हैं। निम्न लिखित योगों के सेवन के पूर्व रज वीर्य की शुद्धि के बाद स्त्री पुरुषों को चाहिये कि वे वृष्यतम योगों का प्रयोग अवश्य करलें उसके पश्चात् गर्भप्रद योगों का विधिवत् सेवन करें तभी हृदयानन्ददायक सन्तान का जन्म होता है।

गर्भप्रद योग—

क्वाथेन हयगन्धायाः साधितं सघृतं पयः।
ऋतुस्नाताऽवलापीत्वा गर्भं धत्ते न संशयः॥

वङ्गसेन

व्या०—असगन्ध के काथ द्वारा सिद्ध किये हुए घृत का ऋतु के पश्चात् जो स्त्री सेवन करती है वह अवश्य गर्भवती होजाती है।

पिप्पली शृंगवेरञ्च मरिचं केशरं तथा।
घृतेनसह पातव्यं वन्ध्यापि लभते सुतम्॥

वङ्गसेन

व्या.—पीपल, सोंठ, कालीमिर्च और केशर इनके चूर्ण को घी के साथ सेवन करना चाहिए, इसके सेवन से वन्ध्या स्त्री को भी पुत्रलाभ होता है।

कनकान् रजतान् वापि लौहान्पुरुषकानमून्।
ध्मातानग्निवर्णान् पयसोदध्ना वाप्युदकस्य वा॥
क्षिप्त्वाञ्जलौ पिवेत्पुष्ये गर्भेपुत्रत्व कारकान्।

चक्रदत्त

व्या.—सोने, चांदी या लोहे के पुरुषाकृति पुतले बनवाकर उनको आग में तपायें। जब उनका वर्ण आग का जैसा हो जाय तब अपनी अञ्जली में रखे हुए दूध, दही या पानी में बुझावें और उसको पीयें इससे पुत्रलाभ होता है। इस क्रिया को पुष्य नक्षत्र में करें।

शिवलिंगीफलमेकमृत्वन्ते यावला गिलति।
वन्ध्यापि पुत्ररत्नं लभते सा नात्र सन्देहः॥

वैद्यरत्न॥

व्या.—ऋतुस्नान के दिन शिवलिंगी के एक फल को जो स्त्री निगल लेती है तो उसको अवश्य पुत्रलाभ होता है।

लक्ष्मणा की बेल का भी गर्भ धारण कराने में बड़ा महत्व देखा गया है, मालूम होता है विधाता ने इस औषधि का सृजन वन्ध्याओं के लिए ही किया है इसीलिये इसका तदनुरूप नामकरण भी किया है।

संस्कृत में लक्ष्मणा के नाम—लक्ष्मणा, पुत्रजननी, पुत्रदा, नागपत्री, पुत्रकन्दा (अर्थात् पुत्रों की जड़)।

लक्ष्मणा का उपयोग—जिसके गर्भ न रहता हो या रहकर गिर जाता हो उसको चाहिए कि इसकी जड़ को पुष्य नक्षत्र में उखाड़ कर बछड़े वाली गाय के दूध में पीसकर सूर्योदय के पूर्व अपने नाक के दाहिने छिद्र में डाले और यदि इसको डालते समय छींक का वेग आये भी तो उसको रोक लेना चाहिए। इस क्रिया के करते समय वहां पर छोटी अवस्था के सुरुप बालक अवश्य होने चाहिए, ऐसा करने से अवश्य पुत्र सन्तान होती है, यही आयुर्वेदोक्त पुंसवन संस्कार है।

—श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी शास्त्री
सी. के. ७/६६ सिद्धेश्वरी
वाराणसी।

वन्ध्या रोग के कारण और उसका निवारण

श्री डा० के० पी० वर्धन

वन्ध्यारोग को नारीगण का अभिशाप माना गया है। पवित्र मातृत्व से वंचित करने वाली इस व्याधि को हर एक महिला हेय की दृष्टि से देखती है और इस व्याधि से छुटकारा पाने के लिए अपना तन-मन-धन को अर्पित करती है।

स्त्री को सन्तान न होने के प्रधान कारण निम्न प्रकार के सात योनि दोष बतलाये हैं।

(१) कमल मुड़ना—कमल स्थिर न होने के कारण बिन्दु प्रवेश नहीं पासकता।

दोष को पहचानने की विधि—स्त्री ऋतु प्रवर्तन के चार दिन पश्चात् स्नान करने पर शरीर का हाल पूछने पर जोड़-जोड़ में दर्द बतलाती है।

चिकित्सा विधि—तीन कुक्कुटों के पित्तओं को बिनौले के मगज से मिश्रण करके रूई के फाये में लपेट कर योनि में प्रवेश करके १५-२० मिनट तक रखें।

(२) कमल को हवा लगना—लक्षण, देहाघत भ्रमण, शिर चकराना, हवा के कारण बिन्दु च्युत हो जाता है।

चिकित्सा विधि—द्राक्षा को खूब मर्दन करके रुई के फाये को लेपकर योनि में १५-२० मिनट रखकर पश्चात् रमण करें।

(३) कमल पर कीड़ा रहना—लक्षण-स्त्री के दोनों पार्श्वों में दर्द होना, कीड़ा बिन्दु को चाट देने के कारण गर्भ नहीं ठहरता है।

चिकित्सा विधान—हरड़ के चूर्ण को साबुन के पानी में मिलाकर फाये में लेप करके योनि में दाब दें। १५-२० मिनट के पश्चात् बत्ती को निकालकर सम्पर्क करें।

(४) कमल पर जाल की उपस्थिति—लक्षण—स्त्री के ऊरू प्रदेश में भयङ्कर पीड़ा अनुभव होना, जाल के कारण बिन्दु रक्त में मिलकर स्रवित हो जाती है।

चिकित्सा विधि—हरड़, गुड़, आम की गुठली सबको कूट कर रूई की बत्ती में लेप करके योनि में कुछ समय रहने के पश्चात् बाहर निकाल कर सम्भोग करें।

(५) कमल पर शीत लगना—लक्षण—छाती में तीव्र बाधा। शीत के कारण शुक्र बीज स्तब्ध पड़ जाता है।

चिकित्सा विधान—कूट, जीरा, जायफल, रास्ना, इन द्रव्यों को कांजी में पीसकर वर्ती पर लेप करके योनि में प्रवेश करें।

(६) कमल पर मांस पिण्ड का पैदा होना—लक्षण—कण्ठ भाग में महिला तीव्र बाधा महसूस करती है। मांस पिण्ड की उपस्थिति के कारण बिन्दु गर्भ कुहर में प्रवेश नहीं कर पाता।

चिकित्सा विधान—जीरा, बड़ा गोखरू का पत्ता, नीम के बीज, शिरीश की जड़ समभाग वस्त्र पूत चूर्ण करके घी में मिलाकर वर्ती पर लेपन करके योनि में कुछ देर रखकर निकाल देने के पश्चात् रति क्रीड़ा करें।

(७) कमल पर गृह जल कन्या आदि का आविष्ट होना-लक्षण—अंग अंग में शरीराद्यन्त पीड़ा, कमल पर ग्रह, जल कन्या आदि स्प्रिरिट्स (Spirits) की उपस्थिति के कारण सन्तान होने में बाधा पड़ती है। अतः उनको बलि, होमदान, मन्त्र तन्त्रादि विधियों से दूर करना चाहिए।

चिकित्सा विधान—कुंकुम, अगर, कस्तूरी को मिलाकर कागज पर नाम लिखकर निम्न मंत्र को पढ़ कर पूजा करें।

मंत्रः—अलये महीपालका सुलुकरी मुचरिकी विरिदावुल्लिरु दुदराम् चेलिकल्ला अनुरे देहेश्री अल्ला यौदल्ली इल्ला अल्ला इकती मुखराः सहीका ॥

सन्तान के लिए दो अचूक योग—

(१) करंज की छाल, लहसुन खूब पीसकर दही में लिपटन करके खाले। सन्तान की प्राप्ति होगी।

(२) ताजा बच को पीस कर ३ माशे भर मक्खन में लपेटकर ऋतु के तीन दिन सेवन करने से सन्तान प्राप्ति होती है।

—डा० के० पी० वर्धन
श्री रामकृष्ण आयुर्वेदाश्रम
गद्वाल (आ० प्र०)।

बन्ध्यत्व

श्री राजवैद्य केशवलाल नानचन्द शाह

बन्ध्यापन, बांझपन—प्रजनन की असमर्थता को बन्ध्यापन कहते हैं। बन्ध्या या बांझ उस रोगी को कहते हैं जिसमें किसी एक या दूसरे कारण से जीने योग्य सन्तान के जन्म देने की क्षमता न हो। बन्ध्यत्व कई प्रकार का हो सकता है—

(१) आदि बन्ध्या—जो स्त्री प्रारम्भ से ही बन्ध्या हो अर्थात् उसे कभी भी गर्भाधान न हुआ हो।

(२) काक बन्ध्या—एक गर्भाधान और बच्चे के जन्म के बाद पुनः दूसरे बच्चे का जन्म न हुआ हो। इसका अर्थ यह है कि प्रथम प्रसव के अनन्तर कोई ऐसा उपद्रव पैदा हो गया जिसके कारण पुनः दूसरा गर्भाधान या प्रसव नहीं हो सका।

(३) गर्भस्राविणी—इस प्रकार में गर्भाधान होता है। गर्भ बीज का वपन भी गर्भधराकला में हो जाता है, परन्तु भ्रूण के पूर्ण अवस्था प्राप्त करने के पूर्व स्राव या पात हो जाया करता है।

कामशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों में १२ प्रकार की बन्ध्याओं का उल्लेख पाया जाता है। अति पाप कर्म से उत्पन्न बन्ध्या, दोषज या रोगज ४ प्रकार की बन्ध्यायें (वात-पित्त-कफ-त्रिदोष से), रक्त से रक्तज, भूत से भूतज, दैव से दैवकृत, अभिचार से अभिचारज, मृत पुत्रिका अर्थात् मृत बच्चे को जन्म देने वाली, कन्या प्रसूः (केवल कन्या का ही जन्म देने वाली) तथा सकृत् प्रसूः या काक बन्ध्या।

जिस प्रकार स्त्रियों में बन्ध्यत्व पाया जाता है उसी प्रकार पुरुषों में भी शुक्रगत विकारों या दोषों से सन्तान को जन्म देने की क्षमता नहीं रहती है और उनमें भी बन्ध्यत्व दोष आ जाता है।

बन्ध्यत्व के कारणों को दो वर्गों में बांट सकते हैं—स्वाभाविक या क्रिया शारीरिक एवं वैकारिक या विकृत शारीरिक।

सहजविकार—जनन पथ का (अंगों का) आंशिक या सम्पूर्णतया विकास को न प्राप्त होना। जैसे योनि एवं गर्भाशय का अभाव या गर्भाशय का अपूर्ण विकास, सूचीमुख के साथ शङ्खाकार लम्बी ग्रीवा।

बीजवाहिनी दोष—बीजवह स्रोत में मृदुलोमांकुरों का अभाव जिसकी बजह से बीज गर्भाशय की ओर कठिनता से आता है फलतः गर्भाधान का होना कठिन हो जाता है।

बीजागम न होना—

दो आर्तव चक्रों के अन्तरालों के मध्य में बीज पुटकों का फटना एवं (विदीर्ण होना) बीज का मुक्त होना (निकलना) पाया जाता है अर्थात्

आगामी रजःस्राव की अनुमानित तिथि के चौदह दिन पूर्व बीजागम होता है। यद्यपि यह एक सामान्य नियम है। कुछ औरतों में दूसरे समय में भी बीजागम होकर गर्भाधान की सम्भावना रहती है। 'गर्भ निरोध' के विशेषज्ञों द्वारा (आगामी मासिक स्राव के १४ दिन पूर्व वाली तिथि को सुरक्षित काल कहा जाता है) निर्धारित सुरक्षित काल में मैथुन का परिवर्जन, संततिनिरोध का कोई बहुत विश्वसनीय उपाय नहीं माना गया है। रजःस्राव की दशा में बन्ध्यापन आ ही जाता है। निर्बीज रजःस्राव में गर्भाशयान्तः कलागत कोई परिवर्तन स्राव पूर्वावस्था में नहीं पाया जाता और इसी सिद्धान्त के आधार पर गर्भशयान्तः कला के एक टुकड़े की अणुवीक्षणात्मक परीक्षा से बीजहीन रजःस्राव का निश्चय भी किया जाता है।

स्त्री में बीजागम परीक्षा या निश्चित तिथि का ठीक पता लगाने के लिए एक बड़ा उपयोगी और सहायक साधन तापाङ्कन का है। स्त्री को चाहिए कि रजःस्राव का समय बीत जाने के बाद नित्य अपने मुख का ताप नोट करती चले। जिस विशेष दिन बीजागम होने को है उस दिन उसका तापक्रम ०.५ से १ डिग्री तक बढ़ा हुआ मिलेगा।

अन्तः स्रावी ग्रन्थियां–बीजकोष, पोषणिका की क्रिया की विषमता, अवटुका की क्रिया का समान न होना, अति या हीन क्रिया, अधिवृक्क का अपूर्ण कार्य तथा मधुमेह। यदि अवटुका की हीन क्रिया के कारण बन्ध्यत्व हो तो उसको ग्रंथिसत्व का मुख से उपयोग कराने से सफलता मिलती है।

आवस्थिक—स्वाभाविक बन्ध्यत्व पूर्ण यौवन के पूर्व, आर्तव नाश के पश्चात् गर्भकाल एवं सूतिका काल या स्तन्यकाल में पाया जाता है। यह कोई रोग नहीं है।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि बन्ध्यत्व स्त्रीगत विकारों के कारण ही नहीं होता अपितु पुरुषों में भी कई प्रकार के शुक्र या बीज दोष पाये जाते हैं, जिनके कारण गर्भाधान नहीं हो सकता। नीचे के वैकारिक वर्ग में दोनों पक्ष के हेतुओं का दिग्दर्शन कराया जारहा है।

वैकारिक या विकृत शारीरिक कारण—पुरुष जननेन्द्रिय का अविकसित या अर्ध विकसित होना, पुरुष का क्लीव होना, जननेन्द्रिय का अहर्ष, स्तंभन का अभाव इन कारणों से मैथुन में पुरुष असमर्थ रहता है। यदि मैथुन क्षम हो तो निम्न-लिखित अन्यान्य विकारों के कारण भी वह गर्भाधान कराने में समर्थ नहीं होता। जैसे—

१—शुक्र में शुक्रकीटों का अभाव–यह अवस्था पूयमेह के उपद्रव रूप में उपाण्ड शोथ के कारण होती है। क्वचित मधुमेह, क्षय, फिरंग, एवं आंत्रिक ज्वर के उपद्रव स्वरूप भी होता है।

२—शुक्र में शुक्रकीटों की अल्पता एवं शुक्र की मात्रा भी कम पायी जाय।

३—मृत शुक्र कीट–शुक्र एवं शुक्रकीटों की संख्या प्रकृत रहती है परन्तु शुक्रकीट मरे मिलते मिलते हैं। विकृत आकार के शुक्रकीट आते हैं।

४—कई बार अण्डा ग्रन्थियों के विलम्ब से कोष में उतरने के कारण या अति स्त्री प्रसंग के कारण भी विभिन्न दोष पुरुष को बंध्य कर देते हैं।

स्त्रीगत कारण—१–गर्भ स्थिति के अनन्तर पूयमेह क्षय वा अन्य विकारी जीवाणुओं के उपसर्ग से श्रोणितगत उदरावृत्ति शोफ हो जाता है जिसके परिणाम स्वरूप बीज वाहिनी शोथ होकर स्रोत बंद हो जाता है। जिसके परिणाम स्वरूप बीज वाहिनी का स्रोत बंद हो जाता है, या केवल स्रोत गत लोमाकुंर नष्ट हो जाता है। स्त्री बन्ध्या हो जाती है। चित्र (श्वेत) प्रदर, ग्रीवा शोथ, क्षयज गर्भाशयान्तः कलाशोथ, योनिशोथ भग शोथ प्रभृति कारणों से योनिगत स्राव की प्रतिक्रिया बदल जाती है। शुक्रकीट क्षारीय स्रावों में वृद्धि करते हैं परन्तु अम्ल प्रतिक्रिया के स्राव में थोड़े समय तक

ही वे क्रियाशील रहते हैं पश्चात् नष्ट हो जाते हैं जिससे बीज के साथ मिलकर गर्भाधान नहीं करा सकते हैं।

२-ग्रीवा शोथ की अवस्था में स्राव केवल श्लेष्मल न रहकर पूय श्लेष्मक होजाता है जिससे शुक्रकीट का ऊपर की ओर गमन और बीज के साथ मिलना कठिन होजाता है और बंध्यत्व आजाता है।

३—कई बार भग शोथ मैथुन में पीडा कर होकर भी बंध्यत्व पैदा कर देता है।

४-अभिघात —ग्रीवा के तीव्र स्वरूप का पिच्चित अभिघात जीर्ण ग्रीवा शोथ पैदा करके तथा लम्बा विदार अतःद्वार को प्रभावित करके बन्ध्यत्व का कारण बनता है।

५—जननाङ्गों की स्थान च्युति-गर्भाशय का पश्चिमावर्तन या पश्चादावनमन,गर्भाशय का अधोभ्रंश,ग्रीवा भ्रंश प्रभृति कारण भी स्त्री को बन्ध्या बनाते हैं।

६-सौत्रिकार्बुद-सौत्रिकार्बुद से युक्त गर्भाशय वाली स्त्री में प्रजनन कम होता है—कुछ तो यांत्रिक अवरोध के कारण, कुछ अंतः स्रावी ग्रन्थियों के प्रभावित होने से और कुछ अंश में योनि एवं बीज वाहिनी की दूरी बढ़ जाने से गर्भाधान में कठिनाई होती है। कई अर्बुदों में गर्भाशय के कैन्सर, मांसार्बुद आदि से इस प्रकार के स्राव होते हैं जिससे शुक्र कीट मर जाता है। अतः अर्बुदों की उपस्थिति में स्त्री में बन्ध्यत्व पैदा होता है। क्वचिद् गर्भाधान हुआ भी तो उसका स्राव या पात हो जाता है।

७-पथ्यापथ्य एवं अन्य हेतु-गर्भाधान और जन्म के समय परिस्थिति, भोजन, पोषण, आर्थिक स्थिति एवं गर्भ निरोध करने वाले उपायों का परिणाम भी पड़ता है। जैसे जीवतिक्ति ई (विटामिन ई.) का भोजन में अभाव स्त्री को बन्ध्या बनाने में सहायक होता है। तम्बाकू, मद्य, या अफीम का अधिक सेवन भी इसी प्रकार का परिणाम लाता है। विष में शीशा, पारद, क्षकिरण और रेडियम का कुप्रभाव भी स्त्री को वंध्या करता है।

रोगविनिश्चय—सावधानी से निम्नलिखित विधियों से वंध्या की चिकित्सा करें। रोगी का वृत्त, पूर्व रोग वृत्त, पूर्व स्वास्थ्य, मधुमेह, फिरंग, अवटुका क्रियाधिक्य, पाषाण गर्दभ, उपांत्र शोथ या विद्रधि। रजोवृत-रजस्राव ठीक है, नियम से है, अनियमित, मात्रा अल्प रहती है, अधिक या समान, रजः कृच्छ्रता तो नहीं, रजो धर्म का प्रारम्भ ठीक समय से हुआ या देर से। गर्भाधान पूर्व में हुआ हो गर्भस्राव या पात मृत प्रसव हुआ हो। सूतिका काल में ज्वर रहा हो।

वैवाहिक प्रश्न—विवाह हुए कितने वर्ष हुए, ग्राम्य धर्म से घृणा व असंतोष, योनिच्छद की दृढ़ता, योनि की वेदना, या मैथुनाक्षमता।

गर्भनिरोध—करने वाली विधियों के प्रयोग, आम तौर से आयु की वृद्धि के साथ साथ स्त्री की पैदा करने की शक्ति भी कम होती जाती है। ८०%स्त्रियों में ४० वर्ष की आयु के बाद गर्भधारण नहीं होता परन्तु ३० से ३५ वर्ष की आयु तक गर्भ धारण क्षमता बहुत ही अधिक रहती है। कई प्रकार के गर्भ निरोधक यांत्रिक साधन गर्भाशय और ग्रीवा का शोथ पैदाकर स्त्री को वंध्या बना देते हैं। वंध्या होने के ऊपर बताये गए अनेक कारण हो सकते हैं।

वंध्या स्त्री की परीक्षा—योनिच्छद (Hymen) की दृढ़ता या योनि का वैकासिक विकार, ग्रीवा का शोथ युक्त होना, उसका पिच्चित आघात या प्रसेक शोथ का पाया जाना, गर्भाशय का पश्चिमावर्तन, गर्भाशयगत सौत्रिकार्बुद मांसार्बुद, अतःकला शोथ सम्बन्धी या अर्बुद सम्बन्धी विकार, बीज कोष में पाये जाने वाली अवरोधज द्रव्य ग्रंथि की उपस्थिति, अन्तः कला की अणुवीक्षणात्मक परीक्षा।

वीजवह स्रोत का आध्मान—बीज वाहिनी का मुंह खुला हुआ या बन्द है इस बात को ज्ञात करने

के लिये बीजवह स्रोत में गर्भाशय मुख द्वारा एक नलिका प्रविष्ट करके "कार्बन डाय आक्साइड" नामक वायु का आध्मान किया जाता है। इस कार्य के लिए एक विशेष प्रकार का यन्त्र आता है। यदि स्रोत खुला है तो अवस्था प्राकृत समझी जाती है, अन्यथा बीज वह स्रोत के अवरोध के कारण बन्ध्यापन को माना जाता है।

क्षकिरण चित्रण—क्षकिरणाभेद्य द्रव (Lipoidol आदि) को गर्भाशय एवं बीज वाहिनी में भर कर चित्र लेने से स्रोत के खुलेहोने का ज्ञान प्राप्त किया जासकता है।

पति की परीक्षा—पति की काम वासना आदि के बारे में प्रश्न पूछकर विदित करें, उसकी जननेन्द्रियों की स्वाभाविकता या विकार का पता लगावें, पाषाणगर्दभ या अण्ड शोथ का पूर्ववृत एवं सांसर्गिक यौन रोग का वृत लें।

शुक्र परीक्षा—हस्त क्रिया से प्राप्त शुक्र की परीक्षा दो घण्टे की भीतर कर लेनी चाहिये। शुक्र की मात्रा ३ से ६ सी० सी० तक होनी चाहिये (५१ बूंद से १०२ बूंद तक)। शुक्र की स्वाभाविक प्रतिक्रिया क्षारीय होती है। शुक्र ज़ीवाणुओं(कीटों)की गणना करनी चाहिये। स्वस्थ शुक्र में शुक्र कीटों की ६०,०००,००० प्रति. सी.सी. की संख्या होती है। शुद्ध शुक्र में पाये जाने वाले स्वस्थ जीवाणु गति शील एवं क्रिया शील होते हैं। यदि परीक्ष्य शुक्र में ८०% या उससे अधिक मात्रा में गति एवं क्रिया से युक्त शुक्र कीट मिलें तो स्वस्थ समझना चाहिये अन्यथा उनको गर्भ धारण करने की शक्ति से रहित मानना चाहिये। शुक्र कीटों की बनावट पर ध्यान देना चाहिये। बीस प्रतिशत की संख्या में विकृत शिर एवं पुच्छ के शुक्र कीटों का मिलना स्वाभाविक या प्राकृत, अन्यथा इस से अधिक होना विकार की सूचना देता है। शुक्र कीटों की परीक्षा एक मास के अन्तर से दो बार कर अपना निर्णय देना चाहिये। एक दूसरी विधि मैथुन के अनन्तर स्त्री जननाङ्गों से संग्रहीत शुक्र की परीक्षा भी है। मैथुन के सात घन्टे के भीतर स्त्री को परीक्षक के पास आना चाहिये। एक "प्लैटिनम" धातु के बने सलाका पर योनि से शुक्र को लेकर उसकी तत्काल अणुवीक्षण यन्त्र से परीक्षा करनी चाहिये।

चिकित्सा—

यदि श्रोणिगत अङ्गों की अस्वाभाविकता बन्ध्यत्व का हेतु जान पड़े तो उनको ठीक करें जैसे सौत्रिकार्बुद का शस्त्र कर्म के द्वारा निर्हरण, कठिन योनिच्छद का छेदन, गर्भाशय का पश्चिमावर्तन में उसको पैसरी की सहायता से सुधार कर स्वाभाविक अर्थात् पूर्वावर्तन में बदलना। बन्ध्यत्व के साथ साथ मैथुनासह्यता भी हो तो उसको भी दूर करें।

सामान्य चिकित्सा में पति पत्नी दोनों के साधारण स्वास्थ्य को बढ़ायें। उनको इस प्रकार के पथ्य का उपदेश दें कि आहार में जीवनीयगण द्रव्यों की बहुलता हो। कहीं पर इसके विपरीत यदि स्थौल्य शरीर संतान का बाधक हेतु प्रतीत हो तो रोगी के कर्षण के लिए अति भोजन की कमी, स्निग्ध पदार्थों का निषेध, अवटुका ग्रन्थि के सत्व (Thyroid Extract) का उपयोग लाभप्रद होता है।

यदि गर्भाशय का पश्चिमावर्तन उदरावृत्ति शोथ के परिणाम स्वरूप हुआ हो और उसकी संसक्ति होकर स्थिर होगया हो तो औदरिक शस्त्रकर्म से सुधारना चाहिये। यदि बीजवाहिनी के स्रोतोवरोध से बन्ध्यत्व हो तो शस्त्र कर्म से सुधारना चाहिये।

स्त्री के दोषों (रोग) को दूर करने की औषधियां रजस्वला होने के ४ दिन पूर्व से देवें और रजःस्राव के दिन से १६ दिन तक औषधि का सेवन करने से बन्ध्या स्त्री पुत्रवती होती है ऐसी आयुर्वेद के पुराने ग्रंथ में निश्चय पूर्वक औषधि मिलती है। उसी का विस्तृत वर्णन नीचे दिया है।

(१) अश्वगन्धा के क्वाथ से सिद्ध घृत या क्षीर का सेवन।

(२) पिप्पली, सोंठ, मिरच, नागकेशर का घृत के साथ प्रयोग।

(३) काले फूलों की अपराजिता (विष्णुक्रान्ता) मूल का बकरी के दूध के साथ सेवन।

(४) काकोली, क्षीरकाकोली, लक्ष्मणामूल, साठी के चावलों का एकवर्ण की गौ के दुग्ध के साथ सेवन।

(५) गोखुरू के बीज का निगुंण्डी के रस के साथ सेवन।

(६) पुष्य नक्षत्र में और रविवार को लक्ष्मणा की जड़ और श्वेत बला की जड़ उखाड़कर एक वर्ण की गाय के दूध के साथ पीस कर सेवन करना।

(७) अपामार्ग मूल पुष्य नक्षत्र और रविवार के दिन लाकर सेवन करना बन्ध्यत्व नाशक है।

(भै० र०, गद निग्रह, योग रत्नाकर)

अब नीचे अनुभवित एवं शास्त्रोक्त औषधि लिखते हैं।

फलघृत, फल कल्याण घृत, सोम घृत, कुमार कल्पद्रुम घृत आदि का प्रयोग उत्तम है। आयुर्वेद प्राचीन पुस्तकें देखने की कृपा करें।

(१) कस्तूरी २ रत्ती, अहिफेन, केशर, जायफल प्रत्येक १ माशा, भंग तेल २ माशा, सुपारी नग ३, लौंग नग ४ इनको कूटछान कर यथा प्रमाण गुड़ मिलाकर जंगली बेर के बराबर गोली बनालें। ऋतु स्नान के बाद उसी दिन से तीन दिन तक एक-एक तोला खिलायें। इसके सेवन से बीस वर्षीया बन्ध्या स्त्री ईश्वर की दया से गर्भवती होजाती है। अनुभूत है। (सिद्ध योग संग्रह)

(२) सन्तान सिद्ध गुटिका—पुत्रञ्जीव के फल, शिवलिंगी के बीज, पारस पीपल के फल, नागकेशर, अश्वगन्धा, शरपुंखा मूल, मुलेठी, हरड़ छाल, बहेड़ा दल, आमला, देवदार, उलट-कम्बल की मूल, कमल के फूल, बला बीज, चन्दन, रक्त चन्दन, दारूहल्दी, वंशलोचन, वंगभस्म, लोह भस्म, सुवर्ण माक्षिक भस्म, हरेक समान भाग ले कूट छानकर चूर्ण बनालें। पीछे श्वेतभोंरीगणी के काथ की तीन भावना दें, तत्पश्चात् अशोक वृक्ष की छाल के काथ की ६ भावना दें, इसके बाद शतावरी के रस या काथ की १२ भावना दें, तथा अन्त में पुत्र जीवक के फल के काथ की ४ भावना देकर बेर के समान गोली बनाकर छाया में सुखालें। २-३ गोली दिन में तीन दफा गौ के दुग्ध के साथ देने से हरेक प्रकार के ऋतु दोष, जन्मबन्ध्या, काकबन्ध्या मृतावत्सा के लिए शतशोनुभूत है।

(३) सुपारी पाक—स्त्री, पुरुष दोनों के लिए हितकर है। मकरध्वज च्यवनप्राश अवलेह और स्वर्ण वसन्त मालती स्त्री-पुरुष दोनों उपयोग में ला सकते हैं।

(४) अब मैं एलोपैथी चिकित्सा में शुक्र की उत्तरवस्ति को लिखता हूँ। पुरुष शुक्र की उत्तरवस्ति या कृत्रिम शुक्र संयोजन—यदि पुरुष का शुक्र शुद्ध और सजीव हो परन्तु वह अल्प शुक्रता से युक्त हो, अथवा वह स्वयं मैथुन में अक्षम हो, जिससे शुक्र की पहुंच गर्भाशय-ग्रीवा के समीप तक न हो पाती हो, साथ ही स्त्री-पुरुष दोनों गर्भाधान के इच्छुक हों तो हस्त क्रिया से प्राप्त शुक्र का संग्रह करके पिचकारी द्वारा गर्भाशय में प्रवेश कराया जा सकता है। इस विधि को कृत्रिम शुक्र संयोजन कहा जाता है। कुछ विशेषज्ञ मैथुन के अनन्तर योनि में प्राप्त हुए शुक्र के भरण की सम्मति देते हैं। यह एक प्रकार से पति के शुक्र की उत्तरवस्ति है। इसमें १० सी. सी. की पिचकारी लेकर उसमें एक मूत्र शलाका संयोग करके इस पिचकारी को ½-१ सी.सी. की मात्रा में शुक्र को भरकर ग्रीवा नलिका से होते हुए अतः द्वार के ऊपर सीधे गर्भाशय में भर देना चाहिए। कई बार पति का शुक्र शुद्ध न हो तो किसी अन्य दाता (पुरुष) का शुक्र भी भरा जा सकता है। यदि दम्पति, समाज और कानून सहमत हों तो यह प्रयोग कर देखें।

—राजवैद्य श्री केशवलाल नानचन्द्र शाह
वैद्यरत्न, आयु. विशारद, आयु. विज्ञानाचार्य,
एल. एम. पी., सलाल (शाबरकांठा) गुजरात

वन्ध्यत्व पर विविध विद्वानों के परीक्षित प्रयोग

वन्ध्यत्व नाशक योग—

शिवलिंगी के बीज २० तोला, कमलगट्टे २० तोला, कीकर का बन्दा १० तोला, पीपल की दाढ़ी १० तोला, देशी खांड का बूरा २० तोला, शुद्ध गौघृत २० तोला इस योग को कूट पीसकर ऋतु धर्म के चौथे दिन स्नान करके २॥-२॥ तोला की मात्रा में प्रातः सायं ताजे जल से खाना प्रारम्भ करदें और ४-६-८-१०-१२-१४-१६ वीं रात्रियों में स्त्री पुरुष संयोग करें तो निश्चय ही स्त्री गर्भ धारण करती है।

डा. बलवीरदत्त शास्त्री आयुर्वेदाचार्य B. I. M. S.
प्रहलादपुर, गोबर्धनपुर (मुजफ्फरनगर)

बांझपन दूर करने के लिए—

नये चन्द्र उगने के बाद प्रथम शनिश्चर को गाय का दूध जमावें। फिर उस दही से मक्खन निकालें। जितना मक्खन हो उतने ही सफेद धतूरे के पत्ते लेकर मक्खन में मिला दें और फिर तीन दिन तक लगातार खरल कर चने के प्रमाण में गोलियां बनालें। स्त्रियों के मासिक धर्म के चौथे दिन से तीन दिन तक एक-एक गोली जल के साथ सेवन करें। पति सेवन का परहेज न रखें। अवश्य ही स्त्री गर्भ धारण करेगी। यह परीक्षित है।

पथ्य—तैल, गुड़, खटाई और बेसन का सेवन न करें।

—श्री वैद्य शंकरसिंह आर्य वैद्यविशारद
सर्व हितकारिणी औषधालय
रायपुर (हरिपुर)

पुत्रकारक—

(१) एक कागजी नीबू के सब के सब बीज दूध में पीसकर दूध ही के साथ पीने से पुत्र अवश्य पैदा होता है।

(२) ढाक का एक कोमल पत्ता दूध के साथ प्रातःकाल ६ मास तक पीने से पुत्र ही पैदा होगा लड़की नहीं।

डा० पुष्पेन्द्र जाला पथिक वैद्य विशारद M. D. H.
मु. पो. देवली (जोधपुर)

सन्तान प्राप्ति के लिए—

हरी मकोय का रस १ सेर, अमलतास का गूदा १ पाव, रसौत ५ तोले, जदवार १¼ तोला, काला मुनक्का (बीज रहित) ५ तोले, मलहम दाखलू ५ तोला, रोगने जैतून १ सेर, मोंम ५ तोला।

दवा बनाने की विधि—मकोय के रस में अमलतास के गूदे को २४ घंटे भिगोकर मसल लो ताकि रेशा न रहे। फिर चलनी से छानकर कढ़ाई में पकायें। जब पानी सूख जाय तब आधा रोगन जैतून, मोंम और रसौत डालकर पकाओ और नीचे उतारकर ठंडा होने दो। जदवार को कूट पीसकर तथा कपड़छन करके गर्म दवा में मिला व मुनक्का को कुचल कर डाल दो और धीमी आग पर पकाओ और थोड़ा-थोड़ा करके रोगन जैतून डालो तैल और दवा एक रस हो जाने पर उतार कर तीन दिन तक कढ़ाई में ठंडा रखकर डिब्बे में रख लो।

नोट—(१) यदि जदवार न मिले तो उसके स्थान पर २½ तोले निर्विषी डाली जा सकती है।

(२) डिब्बे में दवा रखने पर थोड़ा रोगन जैतून उसके ऊपर डालना चाहिये ताकि दवा पर फफूस न जमने पाये।

(३) इस दवा को गर्म वा सीलन के स्थान पर न रखा जाय वरन ठंडे व सूखे स्थान पर रखना चाहिए।

(४) इस दवा के प्रयोग काल में रोगिणी को दशमूलारिष्ट का सेवन करना भी आवश्यक है।

पथ्यापथ्य—तैल, खटाई, मिर्च, गुड़ तथा पुरुष-संग से वंचित रहें।

मासिक धर्म से निवृत होने पर (शुद्ध होने पर) एक सप्ताह इस दवा का प्रयोग कर बन्द करदें। इसी प्रकार दूसरे तथा तीसरे मासिक धर्म निवृत्ति पर एक-एक सप्ताह दवा का प्रयोग कर लेने से रोग से पूर्ण निवृति हो जाती है तथा शतप्रतिशत पुत्र प्राप्ति होती है।

दवा के प्रयोग काल में ही पुरुषसंग वर्जित है दवा के बन्द होने पर कोई रोक नहीं किन्तु अन्य उपरोक्त अपथ्य वर्जित हैं।

—भगवती देवी वैद्या
"नारी चिकित्सालय" नं० ६ तिलक रोड देहरादून

पुत्र दाता प्रयोग—

मयूरशिखा, कीकर, बन्दा का पञ्चाग, पीपल की दाढ़ी, शिवलिंगी, हाथी दांत का बुरादा, जिया-पोता, लक्ष्मणा पंचाङ्ग, श्वेत कण्टकारी, माजूफल, असली नागकेशर—सब ५-५ तोला, गौरोचन ६ मा., कस्तूरी ३ माशे, मूंगा पिष्टी १ तोला, सीप भस्म २॥ तोला। सब औषधियों को कूट पीस कर कपड़ छन चूर्ण करलें।

व्यवहार विधि—मासिक धर्म के पश्चात् १० दिन तक प्रात: सायं ६-६ माशे की मात्रा में उबाले हुए मिश्री मिले शीतल दुग्ध के साथ सेवन करें। इस प्रकार चार मास सेवन करें। अवश्य सन्तान प्राप्ति होगी। गर्भ रहने पर स्त्री को नौ मास तक फल घृत का सेवन करायें।

—श्री सन्त गुरुदीपसिंह वैद्य,
भारत नगर, लुधियाना।

सन्तान प्राप्ति योग—

सन्तानदाता नं. १—पारस पीपल का फल १ तो., पीपल की जटा १ तोला (अभाव में बरगद की जटा), शिवलिंगी १ तोला, नागकेशर असली १ तो., मोचरस १ तोला सबको कपड़छन कर शीशी में सुरक्षित रख लेवें।

सन्तानदाता नं० २—सत्यानाशी (स्वर्ण क्षीरी) सफेद फूल की जड़ ५ तोला, लाल आधाझाड़ा (अपामार्ग) की जड़ ५ तोला, बड़ी कटेरी की जड़ ५ तोला, अश्वगन्ध मूल ५ तोला, पलाशमूल ५ तोला सभी को जौकुट कर डिब्बे में रख लेवें।

सन्तानदाता नं० ३—त्रिफला ५ तोला, त्रिकुटा ५ तोला, गुड़ १० साल पुराना २० तोले लोहे के खरल में हजार चोट देकर ६-६ माशे की गोली बनावें।

सेवन विधि—प्रथम ऋतु धर्म प्रारम्भ होते ही सन्तानदाता नं० ३ का प्रयोग दिन में ३ बार गर्म पानी से करें। ४ दिन बाद स्नानादि से निवृत होकर ५ वे दिन प्रात: काल से नं. १ व नं. २ की दवा का प्रयोग करें।

सेवन विधि—नं. २ की दवा २॥ तोला लेकर १ पाव पानी में भिगोकर पकावें, २० तोला रहने पर छान लेवें। इसके बाद नं. १ की दवा २ माशा लेकर ऊपर से गुनगुना क्वाथ पीवें।

समय-सूर्य दर्शन पर स्नान कर गीले कपड़े पहने हुए पति से या किसी स्वस्थ बालक से दवा लेकर सूर्य को ६ बार नमस्कार कर दवा पी जावें।

गुण—ऋतु धर्म समय पर आने वाली स्त्रियों को नियम से सन्तान प्राप्ति होती है।

—श्री वैद्य लक्ष्मीचन्द्र जसौरया,
ललितपुर।

गर्भपात एवं गर्भस्राव

श्री डा० धर्मपाल मित्तल

परिभाषा—गर्भधारण से लेकर प्रसवकाल पर्यंत योनि से रक्तस्राव होना इस रोग के अन्तर्गत आता है। यद्यपि प्रथम १-२ मास थोड़ा-थोड़ा रक्त स्राव किन्हीं स्त्रियों को नियमित मासिक धर्म के समय प्राकृतिक भी हो सकता है। आधुनिक विज्ञान की परिभाषानुसार Abortion तथा miscarriage परिभाषाऐं प्रथम ७ मास के गर्भकाल में होने वाले रक्तस्राव के लिए समानार्थ बोधक हैं तथा तत्पश्चात् यदि गर्भोत्पत्ति होती है तो Pre-mature labour कही जाती है। हां! व्यवहारायुर्वेद (Medical Jurisprudence) की दृष्टि से अवैधानिक अर्थ में abortion तथा वैधानिक अर्थ में miscarriage शब्द का प्रयोग होता है परन्तु हमारे आयुर्वेद शास्त्र ने स्पष्ट वर्णन करते हुए प्रथम ४ मास तक होने वाले रक्त स्राव को गर्भस्राव तथा ४ से ७ मास तक होने वाले रक्त स्राव को गर्भपात संज्ञा दी है।

"आचतुर्थात्ततो मासात् प्रस्रवेद् गर्भ विच्युतिः।
ततः स्थिर शरीरस्य पातः पञ्चम् षष्ठयोः॥"
(सु० नि० ८)

कारण—भाव मिश्र जी ने भय, अभिघात, तीक्ष्ण एवं उष्ण पदार्थों का सेवन इसके हेतु लिखे हैं।

भयाभिघातात्तीक्ष्णो पानाशन निषेवणात्।
गर्भं पतति रक्तस्य सशूलं दर्शनं भवेत्॥

जिस प्रकार आघात आदि से फल गिर जाता है उसी प्रकार गर्भ भी पीड़नादि से गिर जाता है।

"गर्भोऽभिघात विषमाशन पीडनाद्यैः पक्वं द्रुमादिव फलं पतति क्षणेन।" (योग रत्नाकर)

गर्भपात के कारणों का यथार्थ परिपूर्ण ज्ञान अभी तक नहीं हो पाया है पुनश्चापि एक वर्गीकरण करने की चेष्टा कर रहा हूं जिससे पाठक सम्यक् प्रकारेण निश्चय कर सकें।

(१) कारण जो भ्रूण की प्राकृतिक चर्या में बाधक हों।

(२) भ्रूण की वृद्धि में बाधक हों।

(३) जिनके कारण भ्रूण को पर्याप्त भोजन न मिल सके।

(४) माता की अपनी क्रियाऐं भ्रूण के प्रतिकूल हों तो किसी भी प्रवर्तक कारण के उपस्थिति होने पर गर्भपात हो जाता है। वे बाधक कारण निम्न हो सकते हैं—

(१) बीजगत दोष—माता पिता का अस्वस्थ, प्रौढ़, दुर्बल होना या फिरङ्ग रोग से पीड़ित होना।

(२) मातृगत हेतु—१. Oestrogens की अधिकता तथा Progestrone की कमी।

२. जीवनीय तत्व ई (Vit. E) की न्यूनता।

बन्धुवर श्री धर्मपाल मित्तल धन्वन्तरि के पाठकों के लिए अभी नये नये ही हैं। आपने १९५७ में ऋषिकुल आयुर्वेद कालेज हरिद्वार से भारतीय चिकित्सा परिषद् की *A., M. B. S.* उपाधि प्राप्त की है। आपने ५ वर्ष के अध्ययन काल में प्रत्येक वर्ष बोर्ड से छात्र-वृत्ति ली है यह उनकी योग्यता का ही प्रमाण है। इसके साथ ही साथ आप कालेज की सम्भाषा परिषद् के प्रधान, अखिल भारतीय *B. I. M. S.* छात्र संगठन के मन्त्री, कालेज पत्रिका के सहायक सम्पादक भी रहे हैं। वर्तमान काल में पंजाब प्रान्तीय आयुर्वेद सम्मेलन के संगठन मन्त्री हैं। आयुर्वेद जगत को अभी आप से बहुत बहुत आशायें हैं। धन्वन्तरि के पाठक भी अब आपके विचार समय समय पर प्राप्त करते रहेंगे।

—सम्पादक

३. जीर्णवृक्क शोथ (ch. nephritis)

४. मधुमेह

५. नाग विषाक्तता (Lead Poisoning)

६. औपसर्गिक ज्वर

७. तीव्र तापाधिक्य अर्थात् तीव्र ज्वर

८. एरण्ड, कार्पासमूल, कलिहारी, क्वीनीन, इर्गट आदि औषधियों का सेवन

९—श्रोणि की विकृतियां तथा गर्भाशय-च्युति एवं गर्भाशय के अर्बुद

१०—डिम्ब का गर्भाशय में निम्न स्तर पर स्थिर होना

(३) अभिघातज—१-किसी यन्त्र शस्त्र के प्रविष्ट होने पर अथवा क्षोभक पदार्थ के प्रविष्ट होने पर

२—जरायु को विदारण करने पर

३—शल्य कर्म करते समय

गर्भस्राव का स्वरूप—प्रथम २ मास में प्रायः गर्भाशय गत पदार्थ एक साथ निकलते हैं। तृतीय मास के पश्चात् प्रायः प्रथम गर्भोदक एवं गर्भ एक साथ निकलते हैं तथा शेष जरायु गर्भधरा कला एवं अपरा आदि इसके बाद निकलते हैं।

लक्षण तथा चिन्ह—(१) रक्त स्राव पहले अल्प मात्रा में होता है और फिर उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है तथा गर्भ के निकल जाने पर स्वतः बन्द हो जाता है।

(२) वेदना-पीठ की ओर से प्रारम्भ हो सामने को आती है।

(३) गर्भाशय मुख का विकास प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

(४) गर्भाशय गत पदार्थ का बाहर निकलना-यदि प्रबर्द्धन (Protrusion) दिखाई देने लगे तो यह गर्भपात का निश्चयात्मक लक्षण है।

सापेक्ष्य निदान—

(१) बाह्य गर्भ स्थिति—द्विहस्तीय परीक्षा (Bimanual exam.) करने पर बीज वाहिनी नलिका में शोथ मिलेगा। Friedman या Xenopus परीक्षण* सहायक हैं।

(२) विकृत गर्भ (Hydatidiform mole) गर्भाशय वृद्धि बहुत शीघ्र एवं अधिक परिमाण में होती है तथा अनियमित रूप में रक्त स्राव होता रहता है। Aschheim zondek* परीक्षण नकारात्मक होता है।

(३) गर्भाशयिक रक्तपित्त (Metropathia haemorrhagica)-इसमें भी अनियमित रूप में रक्त स्राव होता है तथा वेदना का अभाव रहता है।

(४) गर्भाशयार्श (Utrine polypus)-गर्भावस्था के अन्य चिन्हों का अभाव मिलेगा।

(५) बीजवाहिनी शोथ—इसमें ज्वर तथा सन्निपात के अन्य लक्षण मिलेंगे।

गर्भस्राव के प्रकार—

- गर्भस्राव
  - चिकित्सार्थ (Therapeutic) / दण्डनीय Criminal → आगन्तुक (Induced)
  - स्वयमेव प्रवृत्त
  - (आगन्तुक एवं स्वयमेव प्रवृत्त) → गभस्राव
    - अपरिहार्य
      - पूर्ण
      - अपूर्ण
    - परिहार्य
    - लीन
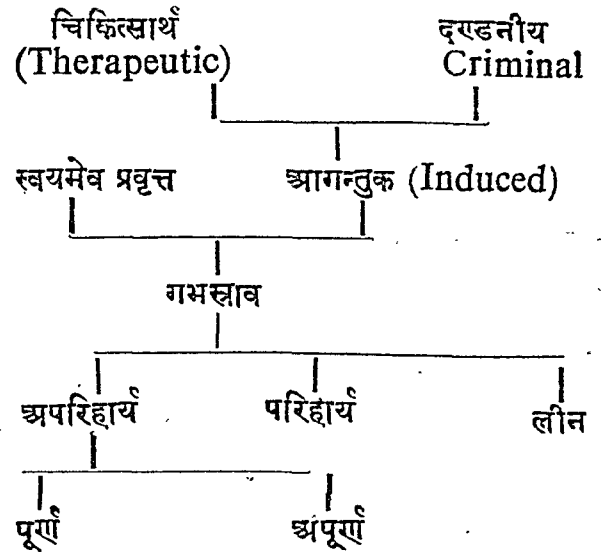
लीन गर्भ में रक्त स्राव के पश्चात् गर्भाशय गत पदार्थ बाहर नहीं आते तथा ऐसा १-२ बार होता है एवं कुछ मास या सप्ताह बाद वे बाहर आते हैं तथा वे सूखे हुए मिलते हैं।

यूनानी चिकित्सा शास्त्र में इसके तीन भेद माने हैं—

(१) इस्कात यैजी—यदि गर्भ स्राव पहले बीस दिन के अन्दर हो जाय।

*यह तीनों गर्भस्थिति ज्ञात करने के लिए जीवकीय परीक्षण (*biological tests*) हैं।

(१) इस्कात मशीमी—यदि तीसरे मास तक गर्भ स्राव हो।

(२) इस्कात जनीनी—यदि तीसरे मास से सातवें मास तक गर्भ स्राव हो।

चिकित्सा—

प्रतिरोधक चिकित्सा—यदि पहली किसी गर्भावस्था में गर्भपात का वृत्तान्त मिलता हो तो गर्भ स्थापन होने के पश्चात् या इससे पूर्व ही रुग्णा का सारा वृत्तान्त लेकर कारण का निश्चय करके उसे दूर करना चाहिए ताकि इस बार यह रोग न होने पावे यथा—

१–गर्भाशय च्युति को ठीक करना चाहिए।

२–गर्भाशय शोथ की चिकित्सा करें।

३–फिरङ्ग रोग की चिकित्सा करें।

४–जीवतिक्ति तथा Hormones के असंतुलन को ठीक करना चाहिए।

गर्भ स्थापन होने पर रुग्णा को पूर्ण विश्राम करना चाहिए। शीतल परिषेक, अवगाहन तथा बाह्योपचार करें तथा उत्पलादि गण से सिद्ध क्षीर-का प्रयोग करें। किसी रेचक औषधि का प्रयोग न करें। मैथुन का सर्वथा निषेध है। ऋतुकाल की तिथियों में तथा पहले एवं बाद में ३ दिन तक शय्या पर विश्राम करें। यदि गर्भ स्राव के लक्षण उपस्थित हो जावें तो उदर एवं योनि गत परीक्षाओं से परिहार्य एवं अपरिहार्य का निर्णय करें एवं तदनुसार चिकित्सा करें। यदि गर्भाशय मुख विस्तृत हो, गर्भ का कुछ भाग मुख से लटकता दिखलाई दे तो उसे रोकना व्यर्थ है तथा तुरन्त गर्भाशय को खाली कर देना चाहिए। यदि मुख विस्तृत न भी हो तथा यह निश्चय हो जावे कि गर्भ की मृत्यु हो गई है तो भी गर्भाशय को खाली कर दें।

परिहार्य गर्भस्राव की चिकित्सा—

गर्भिण्याः परिहार्याणां सेवया रोगतोऽथवा।
पुष्पे दृष्टेऽथवा शूले बाह्यान्तःस्निग्धशीतलाम् ॥
सेव्याम्भोज-हिम-क्षीरि-वल्ककल्काज्यलेपिताम्।
धारयेद्योनि बस्तिभ्यामार्द्रान् पिचुनक्तकान् ॥
शतधौत घृताक्तां स्त्रीं तदम्भस्यवगाहयेत्।
ससिताक्षौद्र कुमुद-कमलोत्पल केशरम् ॥
पिवेत्कान्ताब्ज शालूक-बालोदुम्बवरत्पयः।
शृतेन शालि काकोली-द्विवला मधुकेक्षुभिः ॥
पयसा रक्त शालि अन्न मद्यात्समधु शर्करम्।
रसैर्वा जाङ्गलै.................. ॥

(अष्टांग हृदय)

अर्थात् रक्त स्राव प्रारम्भ होने पर अथवा शूल उत्पन्न होने पर बाह्य प्रयोग के लिए एवं अन्तः प्रयोगार्थ स्निग्ध एवं शीतल चिकित्सा करें। क्षीरी वृक्षों के कल्क में घृत मिला कर योनि में पिचु धारण करना चाहिए। शतधौत घृत का अभ्यङ्ग करा कर शीतल जल में नहाना चाहिए। नीलोफर एवं कमल केसर तथा बालोदुम्बर इत्यादि से सिद्ध दुग्ध मधु एवं शर्करा मिलाकर पीवें। शालि काकोली बला तथा ईक्षु से सिद्ध दुग्ध के साथ अथवा जाङ्गल पक्षियों के मांस रस के साथ शालि चावल खाएं।

वेदना शान्ति के लिए माषपर्णी, मुद्गपर्णी, मधुयष्टी तथा गोक्षुर से सिद्ध दुग्ध में मधु एवं शर्करा डाल कर पिलावें। अथवा मधुयष्टी, देवदार, मंजीठ तथा क्षीर काकोली से सिद्ध दुग्ध पिलावें। अहिफेन सत्व $\frac{1}{2}$ रत्ती (morphine Hydrochlor $\frac{1}{4}$ gr.) का अधः त्वक सूची वेध दें, या Pethidine Hydrochloride १०० Mgm. का सूचीवेध दें तथा आवश्यकतानुसार ६ घण्टे पश्चात् पुनः दे सकते हैं एवं २-३ दिन तक रुग्णा को अहिफेन के प्रभाव में रखना चाहिए तथा आराम से बिस्तर पर लिटा दें, उठना बैठना बिलकुल बंद कर दें तथा चारपाई के पाये १-१ फीट ऊंचे कर दें। खाने के लिए केवल तरल पदार्थ दें। रक्त स्राव होते ही Lut-ovo-cyline (Ciba) का एक

इन्जेक्शन मांसगत दे दें। लक्षण विद्यमान रहने पर ३ दिन एक सूची प्रति दिन दें तथा तत्पश्चात् Luto cycline १० Mgm. (ciba) का इन्जेक्शन सप्ताह में २ बार ३ सप्ताह तक दें।

पीने के लिए निम्न मिक्चर मेरा अनुभूत है पाठक प्रयोग करके देखें।

पोटाशियम ब्रोमाइड १० ग्रेन, लिक्वर सैडमास (पार्कडेविस) ३० बूंद, टिंक्चर हायोसायमस १० बूंद, टिंक्चर बेलाडोना १० बूंद, परिश्रुत जल १ औंस-दिन में तीन बार दें।

इसके साथ ही Vit E *100* mg. का सूचीवेध देना भी उत्तम है तथा प्रति सप्ताह इसे पुनः देते रहना चाहिए।

अनुभूत यूनानी प्रयोग —

(१) हरिताश्म (जहरमोहरा), वंशलोचन, संगजराहत १-१ माशा पीसकर मुरब्बा आमला के साथ खाकर ऊपर से अंजबार ५ माशा, हन्नुल्लास ३ माशा, खुरफा बीज ३ माशा को गोजिह्वार्क १२ तो. में पीस कर शर्बत अनार २ तोला मिलाकर पिला दें।

(२) बबूल का गोंद, स्वर्ण गैरिक ६-६ माशा, तृणकान्त, खूनखराबा (दमुलखवायन) गिलइरमनी ३-३ माशा, खशखश, खुरफा, कद्दूबीज मज्जा ६-६ माशा। मात्रा—७ माशा, अनुपान—शर्बत अंजबार।

वाह्य लेप के लिए—दालिया, माजू, स्वर्णगैरिक ६-६ माशा, अहिफेन १ माशा, इनको पानी में पीस कर पेडू पर लेप करें।

(३) बुरादा हाथी दांत २½ तोला, संगजराहत १ तोला, पलाश का गोंद १ तोला, माई १ तोला, मिश्री १ तोला, सूदमेला १ तोला। मात्रा—४-४ माशा प्रातः सायं दूध के साथ दें।

(४) रसौत शुद्ध २ तोला, गिल इरमनी २ तोला, तृणकान्त १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, Garlic Acid ६ माशा, अहिफेन ३ माशा नीम के रस में खरल कर २-२ रत्ती की वटिका बनावें। मात्रा —१-१ गोली दिन में ३ बार शर्बत अंजबार के साथ दें। इन योगों के प्रयोग से रक्त अवश्यमेव रुक जाता है तथा रोग ठीक हो जाता है। इसके पश्चात निम्न योग हर मास ७ दिन तक खिलाने से गर्भपात का भय नहीं रहता।

योग—पत्थर का दिल (शुद्ध) (तपा-तपा कर एक बार गुलाबजल में बुझा लें) वंशलोचन सूदमेला समान भाग मुनक्का (बीज निकाला हुआ) जिसकी गोली बन जावें, ४-४ रत्ती की गोली बना प्रातः सायं दूध के साथ दें। गर्भपात रस १ से २ रत्ती प्रातःसायं मुनक्का के हिम के साथ प्रतिदिन देते रहें।

अपरिहार्य गर्भस्राव की चिकित्सा —

यदि अपरिहार्य हो तो उसे रोकने की चेष्टा नहीं करनी चाहिये तथा निम्न सिद्धान्तानुसार चिकित्सा करें।

> गर्भे निपतिते तीक्ष्णं मद्यं सामर्थ्यतः पिबेत् ॥
> गर्भ कोष्ठ विशुद्ध्यर्थमर्तिविस्मरणाय च ।
> लघुना पञ्चमूलेन रूक्षां पेयां ततः पिबेत् ॥
> पेयाममद्यपा कल्के साधितां पाञ्चकौलिके ।
> बिल्वादि पञ्चक क्वाथे तिलोद्दालक तण्डुलैः ॥
> मांसतुल्य दिनान्येवं पेयादि पतिते क्रमः ।
> लघुरस्नेह लवणो दीपनीययुतो हितः ॥
> (अ० हृदय)

अर्थात्—गर्भ के गिर जाने पर सामर्थ्य के अनुसार तीक्ष्ण मद्य पिलावें जिससे गर्भकोष्ठ की शुद्धि हो जाती है तथा वेदना का अनुभव भी नहीं होता। तब लघु पंचमूल सिद्ध बिना स्नेह डाले पेया पिलावें। अथवा इसे पंचकोल से सिद्ध करके इसके साथ कोदों अथवा तिलों का भक्षण करें। इस प्रकार लघु तथा दीपनीय औषधियों का प्रयोग बिना स्नेह तथा लवण के करना चाहिए। जितने मास का गर्भपात हुआ हो उतने दिन तक यह क्रम करना चाहिए।

गर्भाशय शुद्धि के लिए निम्न क्वाथ बहुत लाभकारी होता है। इससे अवशेष गर्भांश भी निकल जाता है तथा रक्त की शुद्धि हो जाती है। हस्त क्रिया की आवश्यकता प्रायः नहीं पड़ती तथा प्रकृति पर यह कार्य छोड़ देना चाहिए जब तक कि हस्तक्षेप की आवश्यकता न पड़े यथा—

(१) यदि अत्यधिक रक्त स्राव हो

(२) यदि गर्भाशय मुख से डिम्ब (ovum) लटका रहे

(३) यदि कई सप्ताह तक रक्त स्राव थोड़ा थोड़ा निरन्तर चलता रहे तथा रुग्णा अति निर्बल हो रही हो।

क्वाथ—कपास डोड़ा, छिलका, अमलतास १-१ तोला, सौंफ, गोजिह्वा, गाजर के बीज, सोयाबीज, हंसराज, प्रत्येक ३ माशा इनका क्वाथ बनाकर पुराना गुड़ १ तोला मिलाकर पिलावें तथा डोड़ा कपास २ तोला, अखरोट का छिलका २ तोला, बांस की गिरह ५, गुड़ ५ तोला इन्हें ५ सेर जल में क्वाथ कर लें तथा थोड़ा थोड़ा जल के स्थान पर पीने को दें।

यदि हस्त क्रिया की आवश्यकता पड़े तो रुग्णा को चिकित्सालय में प्रविष्ट करना ही उत्तम होता है एवं प्रथम ३ मास के गर्भस्राव में गर्भाशय ग्रीवा विस्फारण एवं लेखन (dilatation and curettage) नामक शल्यकर्म करना ही सर्वोत्तम होता है। परन्तु यदि यह सुविधा सुलभ न हो तो चिकित्सा इस बात पर निर्भर करती है कि गर्भाशय ग्रीवा मुख का विस्तार कितना हुआ है—

(१) यदि १ या २ अंगुलियों का प्रवेश हो सके—रुग्णा को उत्तान लिटाकर निःसंज्ञ कर लें। मूत्र नाड़ी द्वारा मूत्राशय को खाली करलें तथा उत्तर वस्ति द्वारा योनि का डिटाल के १ प्रतिशत घोल से प्रक्षालन करलें। तब जीवाणु विरहित रबड़ के दस्तानों को पहन कर एक अंगुली को गर्भाशय में प्रविष्ट करें, दूसरे हाथ को उदर पर रखकर गर्भाशय को स्थिर करें। अंगुलियों को
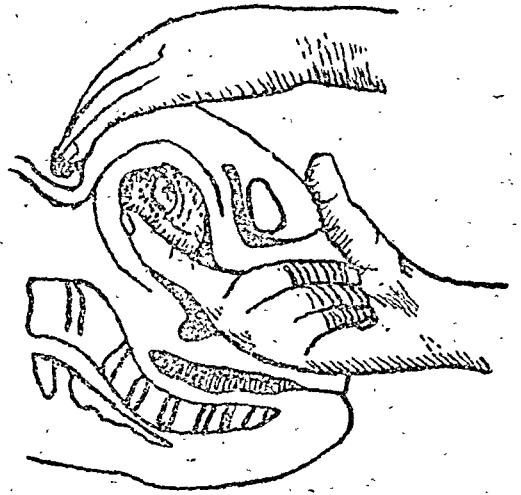
हस्त क्रिया द्वारा बीज पृथक्करण विधि
चित्र ५५

गर्भ के ऊपर लेजाकर धीरे धीरे गर्भाशय की दीवाल से पृथक् करके बाहर निकाल लें यदि इससे सफलता न मिले तो बीज संदंश (ovum forceps) या लेखन यन्त्र (curette) का प्रयोग करें। जब गर्भाशय रिक्त हो तो Double channel uterine catheter से गर्भाशय का प्रक्षालन करें तब पिटोसिन ५ सी० सी० का सूचीवेध दें अथवा Pituitory Ant. ½--१ c. c. का सूचीवेध करें या Ergometrine Tartarate का सूचीवेध दे दें। इससे गर्भाशय शुद्धि हो जाती है।

(२) यदि २ अंगुलियां न जा सकें तो गर्भाशय ग्रीवा को वाल्सैलम के संदंश (Volsellum forceps) से पकड़ कर नीचे खींच लें तथा जीवाणु विरहित विकेशिका (Sterilized gauze) लेकर जितनी अन्दर जा सके भर दें तथा गर्भाशय ग्रीवा मुख एवं योनि को भी भर दें तथा कौपीन बंध लगाकर उसे स्थिर कर दें। १० घंटे बाद पट्टी को खोलें तथा वर्ति को बाहर निकालें, इससे गर्भ चिपटा मिलेगा। तब गर्भाशय का प्रक्षालय कर दें। मैंने कई बार इसी उपाय का आश्रय लिया है यतः अपूर्ण गर्भपात में बहुधा गर्भाशय का मुख बन्द मिलता है। खुला भी हो तो भी

गर्भाशय अन्तर्मुख (internal os) इतनी विस्फारित नहीं होती कि अंगुलियों से हम छील सकें, अतः यह उपाय व्यवहारिक रूप में सुलभ भी है तथा आसान भी है, परन्तु इसमें संक्रमण का भय अधिक रहता है अतः विशेष ध्यान से करना चाहिये। सबसे उत्तम रीति हैगार के विस्फारक (Hegar's dilator) से विस्फारण करके लेखन करने की है। इस क्रिया के पश्चात् स्ट्रप्टोपैन्सिलीन १ ग्राम का सूचीवेध प्रतिदिन २ दिन तक दें तथा Sulphatriad ३ गोली दिन में दें ताकि संक्रमण का भय न रहे।

मासानुमासिक क्रम —

आयुर्वेद ग्रंथों में प्रत्येक मास में गर्भपात की विशिष्ट चिकित्सा लिखी है जो कि व्यवहार रूपेण तो गर्भस्राव को रोक नहीं सकती। हां उपद्रव शान्ति के लिए एवं प्रतिरोधक चिकित्सा के रूप में उसका विशेष महत्व है अतः तत्तद् मास में होने वाले गर्भिणी के विकार तथा दोषोल्वणता को दृष्टि में रखते हुए उनके निराकरण हेतु इनका प्रयोग अपना विशेष स्थान रखता है। उनका उल्लेख संक्षेप में किया जाता है।

प्रथम मास में—यदि गर्भ चलायमान हो जावे तो मुनक्का, मुलहठी तथा दोनों चन्दन से सिद्ध दूध पिलावें। इससे पित्त विकार की शान्ति होती है तथा छर्दि आदि जो उपद्रव आगे के मासों में होते हैं वह नहीं होते।

दूसरे मास में—तगर, बिल्व, कपूर तथा कमल छर्दि निग्रह में विशेष उपयोगी है अतः द्वितीय मास में होने वाले हृल्लास तथा छर्दि इनके प्रयोग से नहीं होते।

तृतीय मास में—शर्करा तथा नागकेशर को दूध के साथ पीसकर पीना चाहिए। इस मास में अपरा के निर्माण से Hormones का असन्तुलन हो जाता है अतः Progesterone की शरीर में मात्रा को बढ़ाने के लिए यह योग अति हितकर है।

चतुर्थ मास में—अनन्तमूल, कृष्ण सारिवा, रास्ना भारंगी तथा मुलहठी से सिद्ध क्षीर दें। इन महिनों में त्वचा के रोग होने की शंका रहती है तथा उदर पर भी खुजली अधिक आती है (विशेषतः पांचवें मास में) उसके प्रतिरोध के लिए सारिवा रक्त शोधक औषधि का विधान है।

पांचवें मास में—कटेरी द्वय, गम्भारी, क्षीरी वृक्षों के अंकुर से सिद्ध क्षीर पिलावें। इस मास से वात का संचय होना प्रारम्भ होता है अतः वातनाशक दशमूल के द्रव्यों का विधान है।

छठे मास में—पृश्निपर्णी, बला, गोक्षुर, शोभाञ्जन, गम्भारी से सिद्ध दूध पिलावें। वृक्कों पर गर्भ का दबाव पड़ने से इस मास के मूत्र में एलब्यूमिन आने लग जाती है तथा मूत्र निर्माण भी कम हो जाता है तथा गर्भिणी का शरीर फूलने लग जाता है उसकी शान्ति के लिए गोक्षुर, शोभांजन आदि मूत्रल द्रव्यों का विधान है।

सातवें मास में—उशीर, मुस्तक, गोक्षुर, नागकेशर तथा पद्मकाष्ठ आदि मूत्रल तथा शोथघ्न औषधियों का विधान है।

आठवें मास में—लोध्र तथा बड़ी पीपल का चूर्ण मधु एवं घृत को मिलाकर खिलावें। वातप्रकोप की विशिष्टता के लिये यहां घृत का निर्देश मिलता है।

पाठकों से प्रार्थना है कि तत्तत् मास में तत् तत् योगों का प्रयोग पथ्य रूप में अवश्य करके देखें।

—श्री डा० धर्मपाल मित्तल A., M. B. S.
जगरावं (लुधियाना) पंजाब

गर्भस्राव एवं गर्भपात की चिकित्सा

[१]

श्री वैद्य रामप्रसाद जी

गुर्विण्या गर्भतोरक्तं स्रवेद्यदि मुहुर्मुहुः ।
तत्र रोधायसा दुग्धमुत्पलादि श्रृतंपिवेत ॥
(भावप्रकाश)

यदि गर्भिणी के गर्भ से रक्त स्राव हो तो उसे उत्पलादिगण की औषधियों का क्वाथ पिलाना चाहिए।

उत्पलादि गण—

उत्पल नीलामारक्तं कलहारं कुमुदं तथा ।
श्वेताम्भोजञ्च मधुकमुत्पलादिरयं गण ॥
(भावप्रकाश)

अर्थ–नील कमल, लाल कमल, सफेद बबूल, और मुलहठी इनको उत्पलादि गण कहते हैं। इस उत्पलादि गण का क्वाथ पीने से दाह, तृषा, हृदय की पीड़ा, रक्तपित्त, मूर्च्छा, वमन और अरुचि दूर होती हैं।

गर्भपात होने पर निम्न उपद्रव होते हैं अर्थात् जब गर्भ गिरने को होता है तब दाह, पसलियों और पीठ में पीड़ा, प्रदर, अफरा और मूत्र का अवरोध होता है और जब गर्भ एक स्थान से दूसरे स्थान में जाता है तब आमाशय तथा पक्वाशय में क्षोभ होता है। गर्भपात के उक्त उपद्रवादि लक्षणों में आयुर्वेदीय चिकित्सा का विधान निम्न है—

१–दाह आदि हो तो वैद्य शीतल क्रिया करे। दाभ-काश-खांड-गोखुरू की जड़ इनके कल्क से पकाए हुए दूध में मिश्री डालकर पीने से गर्भिणी के शूल आदि उपद्रव शांत होजाते हैं।

२—गोखुरू-मुलहठी-पियावांसा इनके कल्क से दूध पकाकर मिश्री शहद मिलाकर पीने से गर्भिणी की वेदना शांत होती है।

३—मृत्कोष्ठा गरिका गेह सम्भवानव मल्लिका ।
समङ्गा धातकी पुष्पं गैरिकं रसांजनम् ॥
तथा सर्व रसश्चैतान यथालाभं विचूर्णयेत ।
तच्चूर्णं मधुना लिह्याद्गर्भपात् प्रशान्तये ॥

भौंरी के घर की मिट्टी, मोगरे के फूल, लाजवन्ती, धाय के फूल, पीला गेरू, रसौत और राल को सम भाग लेकर चूर्ण कर शहद मिलाकर चाटने से गिरता हुआ गर्भ रुक जाता है।

४—मधुकं शाक वीजं च पयसा सुरदारु च ।
अश्मन्तकः कृष्ण तिला ताम्र वल्ली शतावरी ॥
वृक्षादनी पयस्या च तथैवोत्पल शारिवा ।
अनन्ता शारिवा रास्ना पद्मा मधुकमेवच ॥
वृहती द्वयं काश्मर्य क्षीरी शुङ्गास्त्वचोघृतम् ।
पृथक पर्णी वला शिग्रु श्वदंष्ट्रा मधुयष्टिका ॥
श्रृंगाटकं विसं द्राक्षा कशेरू मधुकं सिता ।
मासेषु सप्त योगः स्युर्ध श्लोकास्तु सप्तषु ॥
यथा क्रम प्रयोक्तव्या गर्भस्रावे पयोऽन्विता ।
कपित्थ बिल्व वृहती पटोले सुनिदिग्धका ॥
मूलानि क्षीर सिद्धानि वापयेद भिषगष्टमे ।
नवमे मधुकानन्ता पयस्या शारिवा पिवेत ॥
पयस्तु दशमे शुण्ठ्या श्रत शीतं प्रशस्यते ।
(चक्रदत्त)

गर्भिणी के गर्भ स्राव एवं गर्भपात की चिकित्सा आयुर्वेद में गर्भ के प्रत्येक मास की पृथक्-पृथक वर्णित है यथा—

प्रथम मास में—मुलैठी, शाक बीज, क्षीरकाकोली, देवदारु।

द्वितीय मास में—कचनार, काले तिल, मजीठ, शतावरी।

तृतीय मास में—बांदा, क्षीर काकोली, काली सारिवा।

चतुर्थ मास में—अनन्ता, शारिवा, रास्ना, भारंगी, मुलहठी।

पञ्चम मास में—छोटी बड़ी कटेरी, गम्भारी, दूध वाले वृक्षों के अंकुर, छाल तथा घृत।

षष्टम मास में—पृश्नपर्णी, सहिजन, गोखुरू, मुलहठी।

सप्तमे मास में—सिंघाड़ा,कमल के तन्तु,मुनक्का, कशेरू. मुलहठी, मिश्री।

उपर्युक्त सात योगों में से जिस मास में गर्भस्राव हो उसी मास के योग को कल्क बनाकर दूध से साधित कर गर्भिणी को सेवन कराना चाहिए।

अष्टम मास में—कैथ,बेल, बड़ी कटेरी,परवल,ईख,छोटी कटेरी के मूल को दूध में सिद्ध कर प्रयुक्त करना चाहिए।

नवम मास में—मुलहठी,जवासा,क्षीर,विदारी, शारिवा।

दशम मास में—सौंठ मिलाकर ठण्डा दूध पीना चाहिए।

इसके अतिरिक्त गर्भस्राव और गर्भपात में गर्भपाल रस, बंगभस्म, प्रवालभस्म, प्रवालपिष्टी, त्रिबंगभस्म का प्रयोग करना लाभ दायक होता है।

एलोपैथी (पाश्चात्य) चिकित्सा—

अ—दो सप्ताह तक गर्भिणी को लिटा रखना चाहिए जब तक कि पीड़ा और रक्त स्राव बन्द न हो जावे। चारपाई के पांयत को ऊंचा रखना चाहिए। मानसिक एवं शारीरिक विश्राम देना अनिवार्य है।

ब—विरेचन-वस्ति तथा डूश सर्वथा वर्जित है।

स—पतला हल्का भोजन देना चाहिए। कोई भी गर्म खाद्य पदार्थ न दें।

द—शामक औषधियों का उपयोग हितकर होता है। जैसे—

१—Tr. opii २५ बूंद

२—Pot. Bromide gr. २०

३—Morphia का सूचीवेध

४—निम्नलिखित गुदा वस्ति दें—

Codeine Phosphate gr $\frac{3}{4}$, Ext. Hyoscyamus gr. $\frac{1}{2}$, Olthesbrem Q. S. (आवश्यकतानुसार)

आरम्भ में कुछ दिन उपरोक्त शामक योग आध आध घन्टे बाद दें। पीछे से दिन में दो बार दें।

य—यदि गर्भाशय भ्रंश हो तो उसे ठीक करके छल्ला (पैसरी) डाल देना चाहिए।

स—आराम होने के बाद श्रम एवं मैथुन छोड़ देना चाहिए।

अवश्यम्भावी गर्भपात की चिकित्सा—साधारणतः किसी भी चिकित्सा की आवश्यकता नहीं हुआ करती क्यों कि स्वयेमव गर्भपात पूर्ण हो जाता है। चिकित्सा की आवश्यकता निम्न रूपों में पड़ती है।

१—अपूर्ण तथा ग्रीवा स्थित गर्भपात।

२—यदि रक्त स्राव अधिक हो रहा जिससे गर्भिणी के प्राणांत का भय हो।

३—गर्भाशय मुख में डिम्ब आया हुआ हो।

४—रक्तस्राव बहुत दिनों से चला आ रहा हो और रोगिणी निर्बल हो गई हो।

५—सर्वाङ्ग शैत्य या ज्वर आने लगा हो।

चिकित्सा से पूर्व रोगिणी का मूत्राशय तथा मलाशल खाली कर लेना चाहिए और उसे सीधा लिटाकर क्लोरोफार्म सुंघाकर संज्ञानाश होजाने पर योनि में डूश करना चाहिए।

डूस करने की विधि—वस्तिपात्र(Irrigator)रोगिणी से एक गज की दूरी पर ऊंचे पर रखना चाहिए। योनि में दो उंगली प्रविष्ट कर ऊपर से डूश की टोंटनी छोड़नी चाहिए, योनि की भित्तियों को उंगलियों से भली भांति साफ कर देना चाहिए। डूश से द्रव पदार्थ योनि प्रक्षालन हेतु बराबर

छोड़ते रहना चाहिए जिससे योनि भली प्रकार धुल जाय। लोशन (द्रव पदार्थ) ½ गैलन से १ गैलन तक होना चाहिए। इसके पश्चात् चिकित्सा गर्भाशय मुख की चौड़ाई पर निर्भर है।

यदि गर्भाशय में दो उंगली प्रविष्ट हो सकें तो आधा या सारा हाथ योनि में डालकर दो उंगली गर्भाशय में डालनी चाहिए। दूसरे हाथ से बाहर से गर्भाशय को पकड़े रखें और डिम्ब को उंगलियों के द्वारा गर्भाशय की दीवार से अलग करके बाहर निकाल लेना चाहिए। यदि न निकल सके तो दो उंगलियां योनि के अग्रकोण में रखकर (यदि पश्चिम अंश है तो पश्चात् कोण में) उंगलियों तथा बाहर के हाथ के बीच में गर्भाशय बार बार दबाना चाहिए। यदि फिर भी सफलता न मिल सके तो ओवम फारसेप्स (Ovum Forseps) अथवा ब्लंट फ्लशिंग क्यूरेट का प्रयोग करना चाहिए। जब सब कुछ निकल जावे तो बोजमैन के "गर्भाशय शलाका यन्त्र" द्वारा गर्भाशय को अन्दर से डूश करना चाहिए। अन्त में अरगट या पिच्यूट्रिन का सूचीवेध देना चाहिए ताकि गर्भाशय सिकुड़ जाय।

यदि गर्भाशय में दो उंगली प्रविष्ट न हो सकें तो Volsellum Forceps से पकड़ कर गर्भाशय ग्रीवा को नीचे खींचकर गर्भाशय तथा योनि में गाज भर देनी चाहिए। आठ दस घन्टे बाद गाज निकाल लेनी चाहिए तथा योनि को डूश कर उपर्युक्त विधि से चिकित्सा करनी चाहिए क्योंकि अब योनि में दो उंगली जा सकेंगी। यदि गर्भाशय ग्रीवा सर्वथा बन्द हो तो क्लोरोफार्म सुंघाकर Hegar's dilators से गर्भाशय ग्रीवा को चौड़ाकर उपरोक्त चिकित्सा विधि प्रयोग में लानी चाहिए। यदि ज्वर (Sapraemia-गभपात के बाद का ज्वर) हो तो गर्भाशय के अन्दर से धीरे धीरे खुरच कर डूश करना चाहिए पश्चात् carbolic acid or Tinc. Iodine की फुरैरी अन्दर फेर देनी चाहिए।

—श्री वैद्य रामप्रसाद आयुर्वेदरत्न एम. सी.पी.एस.
घिरोर (मैनपुरी)

[२]

श्री लक्ष्मीस्वरूप शुक्ल

गर्भस्राव तथा गर्भपात के समय रोगिणी के कटि प्रदेश, पृष्ठ और उदर में अतितीव्र वेदना होती है। वेदना के साथ ही रक्त का अधिक मात्रा में गमन होता है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि रोगिणी को निवात स्थान में आराम से लिटाकर शीतल उपचार से उसकी चिकित्सा करें।

वट (बरगद) गूलर और पलाश के पत्तों व छाल से बनाये हुए क्वाथ को शीतल करके स्वच्छ वस्त्र का पिचु (फाहा) उससे भिगोकर योनि मार्ग में रक्खें। कमल की नाल को पानी में पीसकर उसका कल्क नाभि प्रदेश में धारण करें। गोखुरू व मुलेठी से सिद्ध किया हुआ घृत मात्रा पूर्वक खायें। शालिधान्य का हिम शर्करा या मधु मिलाकर पियें।

स्वर्ण गैरिक और राल का चूर्ण मिलाकर मधु के साथ खाने से रक्त का स्राव कम होकर वेदना दूर हो जाती है।

उत्तम लोहभस्म में त्रिफला चूर्ण मिलाकर देने से अकाल में गिरता हुआ गर्भ रुक जाता है। काकोदुम्बर (कठ गूलर) का चूर्ण २ भाग और प्रबाल भस्म १ भाग सेवन करने से गर्भस्राव में निश्चित लाभ होता है। स्वर्णमाक्षिक भस्म को पिण्ड खजूर के साथ सेवन करना ऐसी दशा

में अत्यन्त हितकर है। रस शास्त्रज्ञों का मत है कि 'पिण्डखर्जूरकोपेतं माक्षिकं गुञ्ज संमितम्। निहन्त्यापन्न सत्त्वाया रक्तस्रावमसंशयम्।'

जिन स्त्रियों को प्रायः गर्भपात होजाता हो उन्हें गर्भावस्था में प्रवाल भस्म मधु के साथ निरन्तर कुछ दिन तक सेवन करते रहना चाहिए। इससे गर्भाशय शुद्ध रहकर गर्भ का सम्यक् विकास होता है।

—श्री लक्ष्मीस्वरूप शुक्ल आयुर्वेदाचार्य,
मन्धना (कानपुर)

[३]

श्री कविराज बृजबहादुरसिंह

गर्भस्राव की सम्भावना होते ही तुरन्त स्निग्ध व शीतल उपचार करना चाहिए।

तत्र पूर्वोक्तैः कारणैः पतिष्यतिगर्भे गर्भाशय कटि वंक्षण वस्ति शूलानि रक्तदर्शनं च, तत्र शीतैः परिषेकोवगाह प्रदेहाभिरुपचरेज्जनीय शृत क्षीर पानैश्चः। सु० शा० १०-१०

अर्थात् जब पूर्वोक्त कारणों से गर्भपात होने को हो और गर्भाशय कटि वंक्षण, वस्ति आदि में पीड़ा हो और योनि से रक्तस्राव होने लगे उसी समय शीतल परिषेक अवगाहन तथा प्रलेपों से बाह्य उपचार तथा जीवनीय द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ दुग्ध पान करायें।

गर्भश्रावरोधक औषधियां—

(१) नीलकमल, रक्तकमल, नीलोफर, सफेद बबूल, मुलहठी से सिद्ध शीतल दुग्ध मिश्री डाल कर पिलायें।

(२) सुगन्धवाला, नागरमोथा, इन्द्रयव, अतीस, केला इनका क्वाथ बनाकर पिलाने से गर्भ की स्थापना होती है तथा स्राव और पीड़ा भी नष्ट हो जाती है।

(३) पीपल की छाल का चूर्ण ३ से ६ माशा तक शीतल जल से पिलाने से रक्तस्राव तुरन्त बन्द होजाता है।

(४) कास, सिंघाड़ा तथा कमलकन्द की लुगदी (चटनी) दुग्ध में मिलाकर पिलायें।

शूल (वेदना) के लिए—

कुश, काश, एरण्ड मूल छाल, गोखुर इनकी जड़ के क्वाथ से सिद्ध दुग्ध मिश्री मिलाकर पिलायें।

कुश काशोरुबूकाणां मूलैर्गोक्षुरस्य च।
शृतं दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूल हृत्परम्॥
भा० प्र०

मूत्रावरोध में—:

दाभ आदि तृण पञ्चमूल (कुश, कास, सरपत दाभ ईख) की जड़ से सिद्ध दूध पिलावें।

अफरा (आनाह) में—

हींग, सोंचर नोन, लहसुन तथा वच से सिद्ध दूध पिलायें।

रक्तस्राव में—

(१) बिलनी के घर की मिट्टी, मोंगरे का फूल, लज्जावन्ती, धव का फूल, स्वर्णगैरिक, रसौत, (रसाञ्जन) राल इनको बारीक चूर्ण करके शहद के साथ रोजाना ४ बार चटायें।

(२) कुम्हार की तैयार की हुई मिट्टी ३ माशे लेकर ६ माशे शहद तथा बकरी के ८ तोला दूध में घोलकर पिलायें।

रक्तस्राव के बिना वेदना होने पर—

मुलहठी, देवदारु, मंजिष्ठा और क्षीर काकोली से सिद्ध शीतल दूध मिश्री डालकर पिलायें अथवा पाषाणभेद, शतावरी, क्षीरकाकोली से सिद्ध दूध

पिलायें अथवा छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, नीलोत्पल, शतावरी, अनन्तमूल, क्षीर काकोली और मुलहठी से सिद्ध दूध पिलायें। यथा—बृहती द्वयोत्पल शतावरी सारिवा पयस्या मधुक सिद्धं वा। सु० शा०

एक शास्त्रीय योग गर्भपाल रस—

रसयोग सागर का गर्भपाल रस गर्भवती स्त्रियों के लिए चमत्कारी औषधि है। यह गर्भावस्था के समस्त रोगों को तो दूर करता ही है इसमें सन्देह नहीं किन्तु यदि इस औषधि को १ से २ रत्ती की मात्रा में रोज प्रातः केवल एक ही बार दूध के साथ प्रथम मास से नौ मास तक लगातार सेवन कराया जाय तो कोई गर्भकालीन उपद्रव नहीं होगा।

रक्तस्राव पर कतिपय सूचीवेध —

रक्तस्राव रोकने में कैल्शियम ग्लूकोनेट (Calcium gluconate) ल्यूटो सायक्लिन (Leutocycline) औरविटामिन सी (Vit.c) भी सफलता से व्यवहार किये जाते हैं और लाभ भी जल्दी हो जाता है।

ऐसी अवस्था में जब कि रक्तस्राव न रुके और भ्रूण को बाहर करना अभीष्ट हो तो प्रोजेस्टिन (Progestine) या पिच्यूट्रिन का सूचीवेध करने से भ्रूण तुरन्त बाहर हो जायगा।

भ्रूण के निकल जाने के पश्चात् भी रक्तस्राव यदि न रुके तो अर्गट का सूचीवेध दें। यूं तो प्रतापलंकेश्वर, प्रबाल मुक्ता आदि को भी न भूलना चाहिये।

—कविराज श्री वृजबहादुरसिंह आयुर्वेदाचार्य
मु. पो. सोहना (बस्ती)

गर्भपात पर विविध विद्वानों के परीक्षित प्रयोग

गर्भरक्षक अवलेह—

सच्चे मोती की सीप ६ माशा, मूंगा की जड़ ६ माशा, कहरवा ६ माशा, आबरेशम खाम ६ माशा, छोटी इलायची के दाने ६ माशा, केशर कश्मीरी असली ६ माशा, लौंग ६ माशा, जुन्द बेदस्तर १ तोला, छड़ीला ३ माशा, बालछड़ ३ माशा, कपूर कचरी १ तोला, मिश्री १ पाव।

बनाने की विधि—प्रथम मोती की सीप, मूंगा की जड़, कहरवा को किसी पक्के चिकने खरल में डालकर खूब महीन घोटकर १ छटांक केवड़े का अर्क डालकर एक दिन बराबर घोटें। जब घोटाई करते करते सुरमा समान होकर सूख जावे तो निकाल कर रखलें। इसके बाद मिश्री के अलावा बची हुई ६ दवायें भी महीन पीस कूटकर सभी समान महीन हो जाने पर बारीक रेशमी कपड़े से छान कर तय्यार करके तब अंगीठी की मन्दी-मन्दी आंच पर एक पाव मिश्री और ७॥ तोला गुलाब जल में घोलकर किसी कलईदार बर्तन में चाशनी पकावें। जब ठीक अवलेह की चाशनी आ जावे तो आग से नीचे उतार कर चाशनी ठंडी होने पर उपरोक्त दोनों पुड़ियों की घुटीछनी सुर्मे समान (मोती से लेकर कपूर कचरी तक की १२ दवायें) कुल चाशनी में डालकर कलछी से चलाकर मिश्रित करदें और किसी जार या चिकने बर्तन में रख दें।

सेवन विधि—इसमें ३ माशा सुबह, ३ माशा शाम गर्भवती स्त्री को खिलाकर ऊपर से थोड़ा ठंडा जल या अगर सम्भव हो तो ५ तोले से १०

तोले तक अर्क गांजवां पिला दें। न मिले तो सादा ताजा पानी ही दें। अर्क गांजवां से यह दवा विशेष लाभ करती है। तैल, खटाई, लाल मिर्च आदि का सेवन न करें। भोजन अत्यन्त स्वच्छ सात्विक बलकारी जो अनुकूल हो खाया करें। अगर कब्ज की शिकायत हो तो १॥ तोला गुलकन्द दूध के साथ भी सेवन करती रहें। बच्चा निरोग पैदा होने के साथ साथ सुन्दर बलवान तथा आसानी से पैदा होगा।

सेवन करने से गर्भ की रक्षा होने के साथ साथ जिनके मास दो मास के कच्चे पक्के गर्भ गिर जाते हैं या समय से पहिले निर्बल दुर्बल बच्चा होता है उनको अमृत तुल्य है। इस गर्भरक्षक को गर्भ रहने पर दूसरे तीसरे महीने से सेवन कराकर लाभ उठावें।

—श्री मानकचन्द्र जैन
बिल्सी--सतेली (बदायूं)

गर्भस्राव चिकित्सा—

इसमें शीतोपचार करना चाहिए। चारपाई का पांवों का हिस्सा ईंटें रखकर ऊंचा कर दें और शिर का भाग नीचा हो, उस पर लिटादें। विश्राम करले दें। सौ बार अथवा हजार बार धोये हुये घृत को योनि तथा पेडू पर लगावें। योनि में मुलेठी के चूर्ण घृत और शीतल जल में कपास का पिचु भिगोकर रखें। योनि के मुख में बर्फ का टुकड़ा या शतावरी घृत का पिचु भी समय दशा को देखकर प्रयोग किया जा सकता है। अश्वत्थ की छाल का बारीक चूर्ण २-३ माशे संतरे के २ तोले छिलकों के क्वाथ के साथ दिन में २-३ बार खिलावें। इससे स्राव और पात दोनों ठीक होते हैं।

—श्रीमती वैद्या यशोदा देवी शर्मा,
अहाता केदार, बाड़ा हिन्दू राव, देहली-६

गर्भस्राव के लिये—

(१) लाजवन्ती की जड़, धाय के फूल, नील कमल की जड़, मुलेठी, लोध्र-इनका चूर्ण या काढ़ा गाय के दूध के साथ करीब १५ दिन तक सेवन किया जाय तो गर्भपात नहीं होगा। साथ ही पुष्टता आएगी।

(२) सफेद राल का चूर्ण मिश्री मिलाकर पीये या अच्छी मिट्टी (बर्तन बनाने की) में समभाग मिश्री मिलाकर बकरी के दूध के संग सेवन किया जाय तो योनि से खून का गिरना बन्द होकर गर्भ पुष्ट होगा।

—डा० पुष्पेन्द्र जाला "पथिक"
वैद्य विशारद M. D. H.
मु० पो० देवली (जोधपुर)।

गर्भस्राव नाशक—

(१) कल्बुल हज्र असली १ रत्ती, वंशलोचन १ माशा, दोनों को अलग-अलग पीसकर मिलावें। यह एक मात्रा है। इसको एक या दो दाना गुठली निकाले हुए मुनक्का में रखकर गर्भिणी स्त्री को खिला दें। केवल एक ही मात्रा के सेवन से गर्भपात होने की आशंका दूर हो जाती है। जिन ललनाओं को गर्भपात हो ही जाता है उन्हें इस रसायन औषधि का उपयोग अवश्य कराना चाहिए। महिने में एक बार खिला देना पर्याप्त है।

(२) संगजराहत ६ माशा, वंशलोचन ६ माशा, छोटी इलायची के बीज ३ माशा सबको महीन पीस कर तोलें। जितना चूर्ण हो उतनी ही चीनी मिला कर चूर्ण बनायें। इस चूर्ण को तीन मात्रा में बांट लें। १ माशा प्रति घण्टा के उपरान्त दूध की लस्सी के साथ रोगिणी को खिलावें। यह औषधि गर्भपात निवारक है।

—श्री मंगला बहन केशवलाल जैन वैद्या;
C/O राजवैद्य केशवलाल नानचन्द जैन वैद्यरत्न,
मु० सलाल (साबरकांठा) गुजरात

गर्भस्राव—

(१) गाय का दूध पाव भर लीजिये। समभाग जल पात्र में डालकर दूध अग्नि पर रख दीजिये।

इसमें पलाश के एक कोमल पत्ते के छोटे-छोटे टुकड़े कर मिला दीजिये। जलीयांश जल जाने पर दूध में मिश्री मिलाकर पिला दीजिये। गर्भ महसूस होने पर एक प्रति क्रम से ७ रोज तक, साथ में रसयोग सागर का 'गर्भपाल रस' १ रत्ती प्रातः सायं शहद से सेवन करायें।

(२) शिवलिङ्गी ७ दाने, मोरशिखा ७ पत्ते, नाग केशर ७ दाने, शंखाहूली सात पत्ते चारों औषधि पीस गो दुग्ध के साथ सेवन करें। यह एक मात्रा है। रोजाना इसको १ वर्ष तक सेवन करें।

श्री डा० चन्द्रशेखर आयुर्वेदाचार्य
एल. एम. एस. एम. डी.
राजशेखर मैडीकल हाल, बोलिया (म. प्र.)

गर्भस्राव तथा गर्भपात—

सिद्ध मकरध्वज नं० १, मुक्ता शुक्ति पिष्टी, जीव पाषाण पिष्टी (कल्बुल हज्र) का मिश्रण ४ रत्ती मिश्री मिला कर ठंडे गौ दुग्ध के साथ पिलायें। रुग्णा को पूर्ण विश्राम करने दें।

—श्री गोवर्धनदास चागलानी
पटियाली दरवाजा, एटा।

गर्भस्राव—

कमल के फूल, जटामांसी, मजीठ, लज्जावन्ती, भौंरे के घर बनाने वाली मिट्टी, इन सब को जौ कुट करके बकरी के दूध में घोट कर मिश्री मिला दिन में ३ बार पीवें।

—श्री चन्द्रशेखर शर्मा वैद्य
प्रधान मन्त्री—जिला वैद्य सभा, बरेली

गर्भपात नाशक प्रयोग—

गर्भपात रोकने वाली औषधि—

भौंरे के घर की मिट्टी १ माशा, धाय के फूल १ माशा, लज्जावन्ती १ माशा, मोंगरे का फूल १ माशा, गेरू १ माशा, रसौत १ माशा, इनको महीन पीस कर मिश्रण तैयार करलें। मात्रा—३ माशा। अनुपान—मधु। गर्भस्राव का भय उपस्थित होते ही इसका प्रयोग करने से गर्भपात निश्चित ही रुक जाता है।

—श्री पं० प्राणाचार्य हर्षुल मिश्र,
आयुर्वेद निरीक्षक, रायपुर।

गर्भश्राव या गर्भपात के समय क्या करें ?

१—वल्लभरसायन १ माशे तथा सूत शेखर रस २ रत्ती की ३ मात्रायें प्रति दो घंटे के अन्तर से मधु के साथ सेवन करायें।

२—उपरोक्त प्रत्येक मात्रा के सेवन के पश्चात उदुम्बर सार (इसके बनाने की विधि पृष्ठ २०५ पर दी गई है) १ माशे १ तोला गुलाब जल में घोल कर पिलायें।

३—उदुम्बर सार को गुलाब जल में भिगोकर उसका पिचु योनि में रखें।

४—शतधौत या सहस्र धौत गौ घृत की पेड़ू पर मालिश करायें।

५—रुग्णा को पूर्णतया विश्राम करने के लिए कहें।

६—ल्यूटो साइक्लिन १० मिलीग्राम (Leuto-cycline-Ciba) का मांसान्तर्गत सूचीवेध करें।

—दाऊदयाल गर्ग A., M. B. S.

पुंसवन एवं गर्भ का क्रमिक विकास

श्री कविराज लाला बदरीनारायण सेन

जननेन्द्रिय स्थान के सभी अवयवों के प्राकृत रूप से क्रिया करते रहने पर भी यदि कोई स्त्री लगातार नर या नारी सन्तान ही पैदा करती है तो यह उसके मनस्ताप का एक कारण होता है विशेष कर तब जबकि वह बराबर नारी सन्तान ही उत्पन्न करती हो। अतः बिना कोई अप्राकृत क्रिया के ही इसकी गणना एक रोग विशेष में की गई है और इसके प्रतिकार भी आयुर्वेद में बताये गये हैं। मगर इसके सिद्धान्तों का वर्णन कुछ इतना अस्पष्ट रूप का है कि सहसा उन प्रतिकारों पर विश्वास नहीं जमता।

पुंसवन प्रतिकारों का सम्बन्ध गर्भसंधारण एवं उसके क्रमिक विकास के सिद्धान्तों से है। इस सम्बन्ध में आयुर्वेद में निम्नलिखित सूत्र मिलते हैं—

शुक्रासृगात्माशय काल संपद्योपचाराश्च हितैःस्तार्थैः।
गर्भश्च काले च सुखी सुखं च संजायते परिपूर्ण देहः ॥
भूतानि मातापितृ संभवानि रजश्च शुक्रं च वदन्ति गर्भे ॥
गर्भस्य चत्वारि चतुर्विधानि भूतानि मातापितृ संभवानि।
आहारजन्यात्मकृतानि चैव सर्वस्य सर्वाणि भवंति देहे ॥

भूतैश्चतुर्भिः सहितः सुसूक्ष्मै-
र्मनोजवो देहमुपैति देहात्।
कर्म्मात्मकत्वान्न तु तस्य दृश्यं
दिव्यं विनादर्शनमस्तिरूपम् ॥
च. शा. २

मातृतः पितृतः आत्मतः सत्मतो रसतः सत्त्वत इत्येतेभ्यो भावेभ्यः समुदितेभ्यो गर्भः सम्भवति। च. शा.४

एवमयं नानाविधानामेषां गर्भकराणां भावानां समुदायादभि निर्वर्तते गर्भः ॥ च. शा. ३ अ. श्लो. २०।

रक्तेन कन्यामधिकेन पुत्रं शुक्रेण ॥ च. शा. २

शुक्र, असृग्, आत्मा, गर्भाशय, काल, हितकर उपचार इन सबों का जब एक साथ संयोग होता है तब गर्भ की स्थिति होती है। गर्भ का शरीर निर्माण महाभूतों द्वारा होता है जो रज एवं वीर्य के रूप में माता-पिता से तथा आहार एवं आत्मा के द्वारा आता है। इसके शरीर का विकास माता पिता, सत्व एवं रसज भावों के अनुसार होता है। रज के बाहुल्य से कन्या एवं वीर्य के बाहुल्य से पुत्र सन्तान उत्पन्न होती हैं।

ये पंक्तियां सूत्र रूप में हैं अतः इनके अर्थ स्पष्ट नहीं होते। मोटे तौर से जो अर्थ इन पंक्तियों से इन दिनों लगाया जाता है वह तर्क विरुद्ध प्रत्यक्ष विरुद्ध एवं आप्तोपदेश विरुद्ध पड़ते हैं। इसके अर्थ कुछ और भी हो सकते हैं जो निम्न पंक्तियों में दिये जाते हैं।

शुक्र—

शुक्र एक प्रकार का धातु है और धातु वह है जो धारण क्रिया को करे "धारणात् धातु"। जिससे यह मालूम पड़ता है कि यह किसी वस्तु विशेष को धारण करने वाला है। शुक्र को लेकर हम यदि देखें तो यह पायेंगे कि इसमें दो वस्तु हैं—एक सान्द्रपिच्छिल तरल पदार्थ दूसरा एक विशिष्ट प्रकार का परमाणु। इस परमाणु को शुक्रकीट कहते हैं और इस तरल पदार्थ को शुक्र धातु। शुक्रधातु आहार रस का एक परिणत रूप है जो परिपाक पाता हुआ एक मास में इस रूप में आता है। जैसा कि कहा है—

मासेन रसः शुक्री भवति स्त्रीणां चार्त्तवं।

रस परिपाक पाता हुआ एक मास में शुक्री याने शुक्र को धारण करने योग्य होता है और स्त्रियों में आर्त्तव या रज को धारण करने योग्य होता है। यह रस चूंकि शुक्र या शुक्रकीट को धारण किये रहता है याने इसी के माध्यम से ही वह रहता है इसलिए रस के इस परिणत रूप

को शुक्रधातु कहते हैं। शुक्रधातु शरीर निर्माण के आदि से शरीर के अन्त तक रहता है याने जब तक रस को परिणत करने योग्य शरीर है तब तक रहता है। शुक्रकीट भी शरीर में आरम्भ से ही आद्य पुंसन परमाणु (primitive sex cell) विकास प्राप्त करता हुआ पुसांणु (spermo-tocyte) बीजाणु (secondary spermeto-cyte) शुक्राणु (spermatid) एवं शुक्रकीट (spermatozoa) रूप में आता है। शुक्रकीट के रूप में विकास पाने में इसे एक लम्बा समय लग जाता है। इस रूप में यह प्रायः १५-१६ वर्ष में आता है। पुसांणु से लेकर शुक्रकीट तक सभी को धारण किये रहने वाली वस्तु शुक्रधातु है। शुक्रधातु का स्थान तो समस्त शरीर है मगर शुक्रकीट का स्थान अण्डकोष है।

सम्भोग या तद्वत् किसी अन्य क्रिया से पुरुष शिश्न से जो कुछ क्षरित होता है उसमें शुक्रकीट एवं शुक्र धातु रहते हैं। इस क्षरण का सम्बंध शुक्र-धातु शुक्रकीट एवं एक प्रकार की उत्तेजना विशेष है। ये तीनों के तीनों परस्पर सम्बन्धित हैं। यह पुसांणु शुक्रकीट के रूप में नहीं आता तथा यह उत्तेजना अपनी चरम सीमा पर नहीं पहुंचती जब तक कि शुक्रधातु शुक्रकीट का सम्बहन न कर सके इनका क्षरण नहीं होता। जब तक उत्तेजना (कामोत्तेजना) अपनी चरम सीमा पर नहीं पहुंचती शुक्रधातु अपने स्थान से चलायमान नहीं होता। यह उत्तेजना अपनी चरम सीमा का जब उल्लंघन करती है तभी क्षरण होता है। उत्तेजना का यह सीमोल्लंघन शरीर के अन्य अवयवों के सबल सहयोग से होता है। शुक्रधातु तथा हर्षोत्तेजना तो शरीर में आदि से अन्त तक रहती है मगर पुसांणु का शुक्रकीट में आना और शरीर के अन्य अवयवों का सबल अवस्था में आना तथा सबल अवस्था में रहना एक अवस्था विशेष पर ही आता है और एक अवधि विशेष तक ही रहता है। यही कारण है कि क्षरण एक विशेष अवस्था के बाद ही होता है और एक विशेष अवस्था तक ही होता है। यह अवस्था विशेष १५-१६ से लेकर ५५-६० वर्ष की अवस्था तक है। न इस अवस्था के पहले और न इस अवस्था के बाद शुक्र धातु अपने स्थान से च्युत होता है।

शुक्र की अपनी आरम्भिक अवस्था में याने आद्य प्रसङ्ग में पुंसाणु बीजाणु एवं शुक्राणु की अवस्था में साधारण परमाणु की ही तरह होता है और अपनी वृद्धि एवं विकास भी उसी तरह याने विभाजन द्वारा प्राप्त करता है। मगर जब यह शुक्रकीट के रूप में आता है तब यह कुछ भिन्न हो जाता है। इसका आकार लम्बा भाले के जैसा हो जाता है। भाव सूत्रों की संख्या आधी हो जाती है (चित्र ५६-१) और इसमें विभाजन की शक्ति नहीं रहती। इसका यह रूप परिपक्व या पुष्ट रूप है। पुष्ट होने बाद यह अपने स्थान पर ही इसी रूप में रहता है और शीघ्र ही नष्ट नहीं होता। मगर क्षरित होने बाद यह हद से हद ४-५ दिनों तक जीवित रहता है।

साधारण परमाणु की ही तरह इसमें भी पर-माणु द्रव केन्द्र (*Nucleus*) केन्द्र जालक तथा भावसूत्र होते हैं। यह अपना आहार शुक्र धातु से ग्रहण कर पुष्ट होता हुआ इस रूप में आता है और इस रूप में भी यह इसी से अपना आहार ग्रहण करता हुआ जीवित रहता है।

आद्य पुंसाणु (primitive sex cell) नर या नारी दोनों में एक ही तरह के होते हैं मगर आद्य पुंसाणु जब पुंसाणु के रूप में परिवर्तन पाता है तब पुरुष कर भावों का उत्पादन होता है और भ्रूण के शरीर का विकास पुरुष शरीर में होता है। अतः शुक्र शब्द का व्यवहार पुरुषकर भावों के लिए भी होता है।

रज, असृग, आर्तव, रक्त—

ये सभी पर्याय वाचक नाम हैं। स्त्री शरीर में होने वाला एक धातु विशेष का नाम रज है। इसमें भी दो प्रकार की वस्तु रहती हैं—एक रज कणों
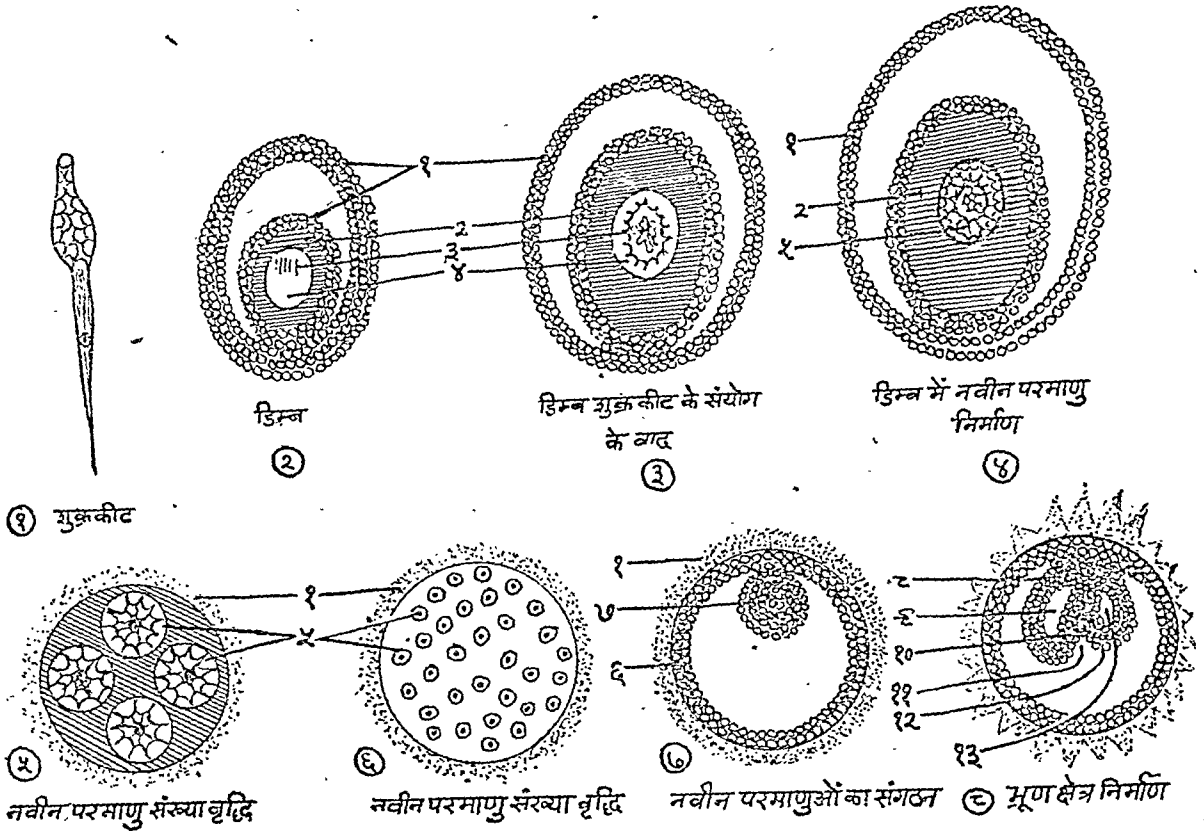
चित्र—५६

१. डिम्बाणु २. डिम्ब ३. भावसूत्र ४. डिम्ब केन्द्र ५. नवीन परमाणु ६. प्रथम वर्ग
७. द्वितीय वर्ग ८. भ्रूणाच्छद्कला ९. भ्रूणाच्छद् प्रकोष्ठ १०. भ्रूण क्षेत्र
११. हृत् चक्र १२. जीवनीय कला १३. जीवनीय प्रकोष्ठ

के आकार के परमाणु एवं दूसरा एक प्रकार का तरल पदार्थ। इसके रजकणाकार परमाणु में एक परमाणु विकास प्राप्त कर बड़ा गोल अण्डाकार एवं उन्नतोदर रूप का होता है और शेष रजकणाकार ही रहते हैं। यह तरल पदार्थ इन दोनों को ही धारण किये रहता है। बड़े परमाणु का नाम डिम्ब (विकास प्राप्त करने बाद) एवं छोटों का नाम रजाणु या डिम्बाणु है। इस तरल पदार्थ का नाम रज धातु है चूंकि यह रजकणाकार वस्तुओं को धारण किये रहने वाला है। यह रज धातु रस का ही एक परिणत रूप है। परिपाक पाता हुआ रस एक मास के बाद स्त्रियों में इसी रूप में आता है जैसा कि कहा है "मासेन रसः शुक्रीभवति स्त्रीणां चार्तवं"। आद्य पुंसाणु ही स्त्रियों में परिवर्तन पाता हुआ डिम्ब के रूप में आता है।

स्त्रियों में आद्य पुंसाणु (primitive sex cell) योषाणु (Oogonia) में परिवर्तन पाता है। योषाणु परिवर्तन पाता हुआ पुष्पाणु (primary Oocyte) और पुष्पाणु डिम्ब के रूप में परिवर्तित होता है। इस परिवर्तन में एक लम्बा समय लगता है, १२-१३ वर्ष की अवस्था में कहीं जाकर यह डिम्ब के रूप में प्रथम-प्रथम आता है। यह परिवर्तन याने पुष्पाणु का डिम्ब में आना भी एक निश्चित काल तक ही होता है जो प्रायः ३५-३६ वर्षों की है।

इसका सम्बन्ध भी शरीर के कई अवयवों के सबल सहयोग से होता है जैसे पीयूष ग्रंथि, अवटुका

ग्रन्थि, अधिवृक्क ग्रन्थि आदि। इन ग्रंथियों के सहयोग से ही पुष्पाणु डिम्ब के रूप में आता है और जब तक इनका सबल सहयोग इसे मिलता रहता है इस रूप में परिवर्तन पाते रहते हैं। इसके अभाव में पुष्पाणु सूख जाते हैं। इन अवयवों की सबल अवस्था भी स्त्रियों में १२ से ५० वर्ष की अवस्था के बीच रहती है।

आद्य पुंसन परमाणु (Primitive sex cell) स्त्रियों में विभाजित होता हुआ योषाणु के रूप में आता है और योषाणु भी विभाजित होता हुआ एवं परिवर्तन पाता हुआ पुष्पाणु के रूप में आता है। पुष्पाणु रजकणाकार एक प्रकार का परमाणु है जिस के चारों ओर रजकणाकार बल्कि उससे भी सूक्ष्म एक दूसरे प्रकार के परमाणु से छाये रहते हैं। रजधातु इन्हें धारण किये रहता है इन्हें पोषण देता है। इनका स्थान बीजाधर है। बीजाधर के प्रकोष्ठों में रजधातु इन्हें पोषण देता है और पुष्ट हो ये साधारण परमाणु से भी अधिक बड़े हो जाते हैं। रजकणों से भी सूक्ष्म दूसरे प्रकार के परमाणु इसके चारों ओर छाये रहते हैं, इसके चारों ओर एक घेरा डाल देते हैं जिससे इसका आकार कुछ और बड़ा होजाता है। यह पुष्पाणु विभाजन गुण विहीन है। केवल पोषण प्राप्त करता हुआ परिवर्तन पाता है। परिवर्तन पाकर यह डिम्ब के रूप में आता है। इस अवस्था में इसका आकार और बड़ा हो जाता है। चूंकि इसके चारों ओर छाये रहने वाले रजकणाकार परमाणु दो स्तरों में हो जाते हैं। एक स्तर बाहर का होता है जिसे प्रथम स्तर कहते हैं, इसके बाद एक रिक्त स्थान होता है जिसमें पोषक रस रहते हैं, इसके बाद पुनः इन्हीं का एक स्तर होता है, इसके बाद डिम्ब होता है। बीजाधर के प्रकोष्ठ में रजधातु भरे रहते हैं जिनके बीच में यह रहता है। इस रजः धातु से ये कणाकार परमाणु पोषक रस को छांटकर अलग करते हैं। यद्यपि कि रजधातु स्वयं भी एक उत्तम कोटि की पोषक वस्तु है तथापि इससे भी उत्तमोत्तम वस्तु की आवश्यकता डिम्ब के पोषण के लिये है अतः ये कणाकार परमाणु उससे पोषक रस को छांटकर अलग करते हैं। इसी छटे हुए रस का जमाव इन कणाकार परमाणुओं के दोनों स्तरों के बीच में रहता है जिसमें से द्वितीय स्तर के कणाकार परमाणु सर्वोत्तम अंश को छांट डिम्ब को देते हैं। अतः डिम्ब के भीतर जमा पोषक रस या परमाणु द्रव अन्य परमाणु द्रव से कुछ भिन्न रहता है। यह रजधातु का सार है जिसे ओज कहते हैं जैसे शुक्रधातु का सार ओज है। जैसा कि ओज के सम्बन्ध में कहते हुए सूत्र रूप में कहा है—

यत् सारमादौ गर्भस्य ॥ (च० सू० ३०)

रजकणाकार परमाणुओं का जो कि डिम्ब के चारों ओर दो स्तरों का निर्माण किये रहते हैं, नाम डिम्बाणु (Cubical cells) है।

जब पुष्पाणु डिम्ब के रूप में आजाता है तब इसका मोक्षण होता है जिस प्रकार शुक्रकीट का होता है मगर शुक्रकीट एवं डिम्ब के मोक्षण में अन्तर है। शुक्र धातु का मोक्षण मैथुन या तद्वत् किसी अन्य क्रिया द्वारा ही होता है जिसके साथ साथ शुक्रकीट का भी क्षरण होता है। मगर डिम्ब के क्षरण में विशेषता यह है कि मास में एक बार इसका क्षरण आप से आप बिना मैथुन या तद्वत् किसी क्रिया के ही प्राकृत रूप से हुआ करता है। जब बीजाधर प्रकोष्ठ में रजधातु बहुत ज्यादा मात्रा में होजाता है और पोषण प्राप्त करता हुआ डिम्ब बहुत बड़े आकार का होता है तब प्रकोष्ठ का आवरण फट पड़ता है चूंकि अब इसमें इतना स्थान नहीं रह जाता है कि बाढ़ के दबाव को स्थान दे सके। इसके अतिरिक्त कामोत्तेजना से भी रजधातु का मोक्षण होता है और उसके साथ साथ डिम्ब का क्षरण ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार शुक्रधातु एवं शुक्रकीट का।

जिस प्रकार शुक्रधातु शरीर में बराबर विद्यमान है और सर्वत्र व्याप्त है उसी प्रकार रज या

आर्तव धातु भी। कामोत्तेजना से यह चालित होता हुआ बीजाधर के प्रकोष्ठ पर दबाव डालता है और उसे फाड़कर बाहर निकालता है। अपने साथ डिम्ब को भी प्रवाहित कर बाहर आता है चूंकि इसके पतन का मार्ग वही है। जैसा कि कहा है।

घृत पिण्डो यथैवाग्निमाश्रितः प्रविलीयते।
विसर्पत्यार्त्तवं नार्य्यास्तथा पुसां समागमे॥

इस प्रकार यह पाते हैं कि मैथुन से शुक्रधातु या आर्तवधातु अपने स्थान से स्खलित कभी भी हो सकता है यदि उसकी हर्षोत्तेजना अपनी चरम सीमा को पार कर जाये-मगर एक अवस्था विशेष के बाद इसके साथ शुक्रकीट या डिम्ब प्रवाहित होकर नहीं आ सकता चूंकि इस अवस्था के बाद इनका अभाव हो जाता है।

रज धातु में एक विशेषता और है। रजधातु का वह अंश जो बीजाधरों के प्रकोष्ठ में पुष्पाणुओं के पोषण के लिए आता है वह वहीं बन्द हो जाता है। उसे आगे संवाहित होने का साधन नहीं है अतः यह इसमें संचित ही होता जाता है। पुष्पाणु इससे पोषण ग्रहण कर इसके कुछ अंशों का व्यय भी करता है जिसकी पूर्ति रजधातु निरन्तर करता रहता है। जैसा कि पहले कह आये हैं पुष्पाणु के चारों ओर छाये रहने वाले कणाकार परमाणु इस उत्तम कोटि के रस में से भी सार पदार्थ छान लेते हैं और शेष को छोड़ देते हैं जो प्रकोष्ठ में ही संचित रहते हैं। इस प्रकार प्रकोष्ठ में संचित रज धातु का वह अंश कुछ वस्तुओं के छट जाने के बाद एक दूसरे ही रूप की वस्तु होजाता है। यह मूल रजधातु की तरह शान्ति दायक नहीं बल्कि प्रदाह-कारक हो जाता है। जब प्रकोष्ठ फटता है और यह बाहर निकलता है तब वह अपने प्रदाहक प्रभाव से गर्भधरा कला को प्रदाहित करता है। रजधातु के इस अंश का नाम सम्पुट रस (oestrogen) है। गर्भधरा कला इतना अधिक प्रदाहित होता है कि धीरे धीरे १२-१३ दिन में यह अपनी चरमसीमा पर पहुंच जाता है और स्थानीय रस रक्त स्रोत तथा कला के ऊपरी त्वचा पर फट पड़ता है, रस रक्त का स्राव होता है और यह योनि मार्ग से बाहर निकलता जाता है जिसे मासान्विक स्राव कहते हैं।

प्रकोष्ठ के फटने के बाद मूल रजः धातु को भी बाहर निकलने का मार्ग मिल जाता है और इसके कुछ अंश, पुष्पाणु पोषणार्थ जिनके आने की शृंखला बनी रहती है वह भी उस फटे व्रण स्थान से बाहर निकल पड़ता है। रज धातु के इस अंश का नाम कणिणिका रस (Progestrone) है। यह शान्तिदायक रस है। यह गर्भधरा कला के प्रदाह को कम करता है। यदि यह नहीं हो तो प्रदाह इतना अधिक हो कि रस रक्तादि का स्राव अत्यधिक होने लगे, शीघ्र ही रुके नहीं।

यही कारण है कि इस निर्धारित अवस्था के बाद स्त्रियों में मासान्तिक स्राव नहीं होता है। मैथुन से यदि शुक्रधातु और रजधातु का क्षरण भी होता है तो गर्भ नहीं रहता चूंकि डिम्ब एवं शुक्रकीट नहीं होते। स्त्रियों में इस रजःधातु के क्षरण से मासान्तिक स्राव नहीं होता चूंकि सम्पुट रस नहीं होता है।

डिम्ब भी एक साधारण परमाणु की तरह ही होता है। मगर आकार में उससे बड़ा होता है। इसमें भी परमाणु द्रव, केन्द्र जालक, भावसूत्रादि सभी होते हैं। क्षरण के बाद इसकी भी परमायु ३-४ दिन की होती है। साधारण परमाणु से इसमें अन्तर इतना ही रहता है कि यह आकार में बड़ा रहता है, इसके परमाणु द्रव अत्युच्च कोटि के पोषक पदार्थों से भरे रहते हैं, इसका केन्द्र एक रिक्त स्थान सा रहता है जिसमें केन्द्र जालक तिरोहित रहते हैं। भाव सूत्र (Chromosomes) लम्बे लम्बे धागे के छोटे छोटे टुकड़े से रहते हैं जो लम्ब की तरह केन्द्र स्थान में खड़े रहते हैं। (चित्र ५६-२)

इसमें आकर्षण मंडल (Centrosomes) नहीं रहते हैं। पुष्पाणु तो हर तरह से साधारण परमाणु सा रहता है मगर उसका ही परिवर्तित रूप या परिपक्वावस्था डिम्ब कहाता है। डिम्ब में भावसूत्रों की संख्या उसकी मूल संख्या की आधी रहती है।

आद्य पुंसाणु (Primitive sex cell) नर या नारी दोनों ही में एक ही तरह के होते हैं मगर जब यह योषाणु में विकास पाता है तब नारीकर भावों का उदय होता है और भ्रूण का शरीर नारी शरीर में विकास पाता है। अतः रज शब्द का प्रयोग स्त्रीकर भावों के लिए भी होता है चूंकि योषाणु रज कणवत होते हैं और इन्हीं के उदय से स्त्रीकर भाव या शरीर का निर्माण होता है।

यद्यपि कि शुक्र एवं रज दोनों एक प्रकार के परमाणु ही हैं मगर शुक्र या रज धातु का पर्याय भी हैं चूंकि ये धातु इन्हीं के लिये हैं और ये भी इन्हीं धातुओं के लिये हैं। अतः यहां पर "शुक्रासृग" शब्द से शुक्रकीट एवं डिम्ब का ही अर्थ ग्रहण करना चाहिए—शुक्र या असृग धातु का नहीं। यदि यहां "शुक्रासृग" शब्द से शुक्र एवं असृग धातु का ग्रहण करेंगे तो यह प्रत्यक्ष एवं आप्तोपदेश विरुद्ध होगा चूंकि शुक्र या असृग धातु शरीर में बराबर है मगर इनके संयोग से गर्भ नहीं रहता है। गर्भ रहता है एक अवस्था विशेष के शुक्र एवं असृग के संयोग से जो समय शुक्रकीट एवं डिम्ब का है। "काल" एक मुख्य विषय है जैसा कि लिखा है "शुक्रसृगात्माशय काल······" इत्यादि। अतः शुक्रासृग से शुक्रकीट एवं डिम्ब का ग्रहण करना ही उचित है।

चरण होने में वही शुक्रकीट एवं डिम्ब एक दूसरे से मिल सकते हैं जो पूर्ण रूपेण परिपक्व एवं पुष्ट हैं। अपुष्ट डिम्ब का चरण ही नहीं होगा। चूंकि जब तक पूर्ण रूपेण पुष्ट होकर वहां बीजाधर प्रकोष्ठ के समूचे स्थान को ग्रहण नहीं कर लेता है प्रकोष्ठ पर इतना दबाव नहीं पड़ सकता कि वह फटे और डिम्ब निकले। पूर्ण पुष्ट डिम्ब को यदि शुक्रकीट का संयोग नहीं प्राप्त हो सके तो वह अपने में संचित पोषणाधिक्य से ही मृत हो जाता है। वह इससे अधिक पोषण बर्दाश्त नहीं कर सकता अतः डिम्ब तो पूर्ण पुष्ट रहता ही है। शुक्रकीट जो निर्बल एवं अपुष्ट होगा वह योनि पथ में ही रह जायगा। वह गर्भाशयस्रोत के लम्बे तथा स्रोतांकुरों द्वारा बाधित मार्ग को पार कर गर्भाशय कोष तक पहुँच ही नहीं सकता। अतः वे ही शुक्रकीट गर्भाशय कोष तक पहुंच सकते हैं जो पूर्ण रूपेण परिपक्व एवं सम्पन्न हैं।

आत्मा—चेतना, पंचतन्मात्रा, एकादश इन्द्रियां तथा कर्मफल इनके ही संयोग का नाम जीवात्मा या आत्मा है।

आशय—गर्भाशय के भीतर कोष एवं बीजवाहिनी का अर्थ इससे है।

काल—वह काल जिसमें डिम्ब एवं शुक्रकीट परिपक्व होते रहते हैं। याने स्त्रियों में १२ से ५० वर्ष एवं पुरुषों में १६ से ५५ वर्ष के बीच की अवस्था का काल, वह काल जिसमें डिम्ब एवं शुक्रकीट पूर्ण परिपक्व हों, वह काल जिसमें गर्भधरा कला इस योग्य हो कि भ्रूण को अपने में रोक सके। इन सभी कालों का अर्थ काल शब्द से है।

इन सभी का संयोग जब एक साथ होता है तब गर्भस्थिति होती है और गर्भ स्थिति के बाद भी यदि हितकर उपचारों का याने गर्भ के लिए हितकर उपचारों का अभाव रहा तो गर्भ स्थिति होने पर भी गर्भ टिक नहीं सकता वह नष्ट हो जाता है। अतः यदि शुक्रकीट, डिम्ब, गर्भाशय, कोष, आत्मा एवं काल तथा हितकर उपचारों का जब एक साथ संयोग होता है तब गर्भ स्थिति होती है और वह वृद्धि प्राप्त करता हुआ क्रमशः एक परिपूर्ण देह में विकास पाता है।

जब अनुकूल काल एवं आशय के संयोग में शुक्रकीट एवं डिम्ब का संयोग होता है तब ये

दोनों परमाणु मिलकर एक होते हैं। अपनी गति से गतिशील शुक्रकीट अपने नुकीले अग्रभाग से डिम्ब पर आघात करता है और इसके प्राचीरों का (डिम्बाणुस्तर तथा डिम्ब प्राचीर को) भेदन कर डिम्ब में प्रविष्ट होता है और इसका लक्ष्य डिम्ब का केन्द्र स्थान होता है। जैसे ही डिम्ब प्राचीर का भेदन करता है, इसका आवरण एक वारगी संकुचित हो कठोर हो जाता है ताकि फिर कोई दूसरा शुक्रकीट प्रविष्ट न हो सके जिसका एक परिणाम यह भी होता है कि शुक्रकीट का समूचा भाग भीतर प्रविष्ट नहीं हो पाता है। शुक्रकीट का शरीर भाग तक प्रविष्ट हो जाता है तथा पुच्छभाग बाहर ही झरकर रह जाता है (चित्र ५६-३)।

एक तो डिम्ब का प्राचीर ही साधारण परमाणु प्राचीर की अपेक्षा अधिक कठोर होता है दूसरे डिम्ब के भीतर का पोषक रस भी अपेक्षाकृत बहुत गाढ़ा रहता है। अतः आघात के कारण शुक्रकीट का सिर:भाग फट जाता है और इसका केन्द्र डिम्ब के केन्द्र में तथा इसका पोषक रस डिम्ब के पोषक रस में मिल जाता है। इसका भावसूत्र डिम्ब के भाव सूत्र से मिल जाता है। इसके प्राचीर के टुकड़े डिम्ब के पोषक रस में तैरने लगते हैं। इस प्रकार शुक्रकीट डिम्ब में अन्तर्लीन हो जाता है।

शुक्रकीट के भाव सूत्र जैसे ही डिम्ब के भाव सूत्र से मिलते हैं बड़ी तीव्र गति से डिम्ब में परिवर्तन आने लगता है। डिम्ब के भाव सूत्र जो छोटे छोटे टूटे धागे की तरह के टुकड़े होते हैं परस्पर संयुक्त हो एक हो जाते हैं। डिम्ब का केन्द्र स्थान जो एक रिक्त स्थान सा मालूम पड़ता था शीघ्र ही जालकों से भर जाता है और उसमें एक केन्द्र का निर्माण हो जाता है जिसमें केन्द्र जालक होते हैं। भाव सूत्र उन पर व्याप्त हो जाता है और एक केन्द्र का निर्माण हो जाता है। आप से आप डिम्ब के केन्द्र स्थान के चारों ओर एक आवरण का निर्माण हो जाता है और यह एक परमाणु के रूप में आ जाता है। (चित्र ५६-४) इस प्रकार डिम्ब के भीतर एक नवीन परमाणु का निर्माण होता है।

इस नवीन परमाणु में भाव सूत्रों की संख्या डिम्ब के या शुक्रकीट के भाव सूत्रों की संख्या से दूनी रहती है। यह एक पूर्ण परमाणु होता है जो अपना पोषण ग्रहण कर पुष्ट हो स्वयं विभाजित हो अपनी संख्या को उत्तरोत्तर विगुणित करता चला जाता है। शुक्रकीट एवं डिम्ब में यह गुण नहीं होता है। एक दूसरे के संयोग से यह गुण नवीन परमाणु में आता है। यह नवीन परमाणु बड़ी द्रुतगति से अपनी संख्या में वृद्धि करता है, एक से दो, दो से चार एवं इस प्रकार बढ़ता चला जाता है (चित्र ५६-५)। ये परमाणु पहले तो अपना पोषण डिम्ब के ही पोषक रस से लेते हैं मगर जैसे जैसे इनकी संख्या बढ़ती जाती है यह पर्याप्त नहीं होता है और इसकी पूर्ति डिम्बाणु निकटवर्ती तन्तुओं से पोषक रस ग्रहण कर उन्हें डिम्ब में डालकर करता है। इस प्रकार भीतर के परमाणुओं का पोषण होता है। इस नवीन परमाणु एवं उनकी प्रवृद्ध संख्या की रचना के बाद से डिम्ब अब डिम्ब नहीं कहाता है। इसका नाम भ्रूणघट हो जाता है, चूंकि ये नवीन परमाणु भ्रूण का संगठन करते हैं। डिम्ब भी अब अपने पूर्वाकार का नहीं रह जाता है। यह बढ़ता हुआ काफी बड़ा आकार धारण करता है ताकि उसके भीतर बढ़ते हुए परमाणुओं तथा उनके लिए पोषक रस के रहने का स्थान मिल सके। डिम्ब के इस आकार बर्द्धन से डिम्ब प्राचीर भी धीरे धीरे टूटने लगता है मगर उसके स्थान को डिम्बाणु ग्रहण करते चले जाते हैं और भ्रूणघट के भीतर के परमाणुओं का एक वर्ग संगठित होकर एक स्तर का निर्माण करता चला जाता है जो एक प्राचीरवत् हो जाता है। इस प्रकार डिम्बाणु का सीधा सम्पर्क इन परमाणुओं से हो जाता है। (चित्र ५६-६)

डिम्ब में जब कोई एक शुक्रकीट प्रवेश पा जाता है तब डिम्ब प्राचीर इतना कठोर हो जाता है कि फिर कोई दूसरा शुक्रकीट उसके भीतर प्रवेश नहीं पा सकता है। अतः एक डिम्ब से किसी एक ही शुक्रकीट का संयोग होगा।

जब डिम्ब के भीतर नवीन परमाणुओं की संख्या में वृद्धि होती रहती है डिम्ब उत्तरोत्तर परिवर्द्धित होता चला जाता है। इस परिवर्द्धन को बर्दाश्त न कर सकने के कारण डिम्ब प्राचीर टूट जाता है। यदि इसका स्थान डिम्बाणु एवं डिम्ब के भीतर के ही एक वर्ग के परमाणु नहीं लें तो कभी कभी डिम्ब टूट कर दो हो जाते हैं या इसकी संख्या इससे भी अधिक हो जाती है। टूटने के बाद यदि इसमें का परमाणु बाहर फेंका नहीं जाये तो डिम्ब का पोषक रस जो कुछ गाढ़ा होता है सूखकर एक प्राचीर का रूप लेता है और इस समय डिम्बाणु आदि इसमें सहायक होते हैं। नवीन परमाणुओं की कुछ न कुछ संख्या इन टूटे अंशों में बन्दी रहती ही है और यह वृद्धि प्राप्त करने वाले गुणों से युक्त है अतः वहां भी यह वृद्धि प्राप्त करता हुआ भ्रूण का निर्माण करता है, ऐसी दशा में युग्म या अधिक संख्या में एक साथ सन्तान पैदा होती है। इसे ही सूत्र रूप में कहा है कि—

भिनत्ति यावद्बहुधा प्रपन्नः
शुक्रार्त्तवं वायुरतिप्रवृद्धः।
तावन्त्यपत्यानि यथा विभागं
कर्म्मात्मकान्यस्व वशात्प्रसूते ॥
(च० शा० २ अ० १३ श्लो०)

एक मत यह भी है कि कभी-कभी दोनों बीजाधरों से डिम्ब का मोचण हो जाता है। अतः दो डिम्ब एक साथ बाहर रहते हैं। एक ही शुक्रकीट गर्भाशय में प्रविष्ट हो ऐसी बात भी नहीं है। शुक्रकीट अनेक की संख्या में गर्भाशय के भीतर प्रविष्ट होते हैं मगर एक डिम्ब में एक ही शुक्रकीट प्रवेश पाता है अनेक नहीं। यदि इन दोनों डिम्बों का संयोग एक-एक शुक्रकीट से हो जाता है तब दो गर्भों की स्थिति होती है और युग्म सन्तान उत्पन्न होती है।

यह दोनों ही मत ठीक हैं। प्रथम रूप से हुई युग्म सन्तान के प्रवेश में अपरा एक ही होता है और नाभि नाल दो होते हैं। मगर द्वितीय रूप में अपरा भी दो होते हैं। अतः अपने अपने स्थान पर दोनों ही मत ठीक हैं। जहां दो से अधिक सन्तान एक साथ होती हैं वहां चरक का ही सूत्र कारगर है।

शुक्रकीट एवं डिम्ब के संयोग के समय याने जिस समय दोनों के भावसूत्र मिलकर एक होते रहते हैं उस समय यदि जीवात्मा का प्रवेश भी उसमें हो जाता है तो भ्रूणघट के भीतर रचित नवीन परमाणुओं में पृथक्कीरण एवं संगठन की क्रिया होती है (differentiation and organisation)। अन्यथा भ्रूणघट के भीतर केवल परमाणुओं की वृद्धि मात्र ही हो कर रह जाती है और भ्रूणघट नष्ट हो जाता है।

भ्रूणघट के भीतर जब नवीन परमाणुओं की संख्या पर्याप्त रूप से बढ़ जाती है तब इन के बीच पृथकीकरण (differentiation) तथा संगठन आरम्भ होता है। इसके भीतर के परमाणु दो वर्गों में स्वयं हो जाते हैं एक वर्ग के परमाणु तो भ्रूणघट के भीतर की ओर से इसके प्राचीर से सट कर चारों ओर से एक स्तरका निर्माण कर देते हैं जिससे यह एक दृढ़ प्राचीर हो जाता है (चित्र ५६) दूसरे वर्ग के परमाणु सब एक स्थान पर एकत्रित हो प्राचीर से सट जाते हैं और परमाणुओं का एक ढेर सा दिखाई पड़ता है (चित्र ५६)।

प्रथम वर्ग के परमाणु संगठित होते हुए एक दृढ़ स्तर का निर्माण करते हैं और डिम्बाणु संगठित हो छोटे छोटे अंकुरों के रूप में आने लगते हैं। इन्हीं अंकुरों द्वारा ये पोषक रसों का ग्रहण निकटवर्ती तन्तुओं से करते हैं। यह पोषक रस

प्रथम वर्ग के परमाणुओं द्वारा निर्मित स्तर से संवाहित होता हुआ उस स्थान पर आता है जहां पर कि द्वितीय वर्ग के परमाणु एक जगह एकत्रित हो इस स्तर से सट कर रहते हैं और वहां से पोषक रस इस द्वितीय वर्ग के परमाणु समूह को मिलता है। इस पोषक रस में से अपने ग्रहण करने योग्य वस्तुओं को ये परमाणु छांट कर अलग करते हैं। जो त्याज्य है उसे अलग कर देते हैं और जो ग्राह्य है उससे पोषण ग्रहण करते हैं। पोषण ग्रहण करने के पश्चात जो कुछ बचा रहता है उसे अलग संचित करते हैं चूंकि इस स्थान से अभी तक रस रक्तादि स्रोतों का सम्बन्ध नहीं रहता है इस लिए न तो संचित त्याज्य अंश ही और न पोषक अंश ही वहां से प्रवाहित हो हटता है, यह वहां ही संचित होता है। ये परमाणु ही खिसक खिसक कर इन दोनों वस्तुओं को अपने बीच में स्थान देते हैं जिससे इन परमाणु समूह के बीच दो प्रकोष्ठवत् गह्वर बन जाते हैं। ये दोनों रस एक दूसरे से मिल न जायें इस लिये ये परमाणु इसके चारों ओर से घेरा डाल एक कला का निर्माण कर देते हैं, और दोनों का ही सम्बन्ध सभी परमाणुओं से रहे इसलिये ये दोनों कलायें एक स्थान पर परस्पर सटी भी रहती हैं।

परमाणुओं की संख्या वृद्धि जारी ही रहती हैं अतः इनकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। ज्यों ज्यों इनकी संख्या बढ़ती जाती है अधिकाधिक मात्रा में पोषक रस का आगमन होता है। इस अधिक मांग की पूर्ति के उद्देश्य से इसके समीप के डिम्बाणुओं के अपरांकुर अधिक बड़े हो जाते हैं ताकि अधिकाधिक्य पोषक रस वे दे सकें। जितना ही अधिक मात्रा में पोषक रस आता जाता है उतना ही अधिक मात्रा में उससे छन कर अग्राह्य वस्तु अलग होता है और अपने स्थान पर आकर संचित होता है। ग्राह्य वस्तु उतनी ही कम मात्रा में संचित होती है चूंकि इसे भक्षण करने वालों की संख्या अधिक होती जाती है अतः संचित होने के लिये इसकी मात्रा कम बचती है। अतः वह गह्वर जिसमें त्याज्य वस्तुओं का संचय होता है उस गह्वर की अपेक्षा, जिसमें कि पोषक वस्तु संचित होती हैं—अधिकाधिक बड़ा होता जाता है और क्रमशः इतना अधिक बड़ा हो जाता है कि समूचे भ्रूणघट को घेर लेता है।

वह स्थान जहां पर इन दोनों गह्वरों की कला परस्पर एक दूसरे से सटी रहती हैं वहां पर के परमाणु विशिष्ट रूप से यह क्रिया करने लगते हैं कि यदि आवश्यकता हुई तो उस गह्वर में से जिसमें पोषक वस्तु संचित है पोषक वस्तुओं को ले उन परमाणुओं को देते हैं जिन्हें इसकी आवश्यकता है, विशेष कर उस कला के परमाणुओं को जो त्याज्य वस्तु के गह्वर को आवृत रखते हैं। इस विशेष क्रिया के सम्पादन के लिए परमाणु एक ऐसे चक्र का निर्माण कर देते हैं कि उसके समीप के परमाणु इसमें उसकी सहायता करते हैं।

वह गह्वर जिसमें त्याज्य वस्तुओं का संचय होता है भ्रूणाच्छद प्रकोष्ठ—एवं इसके चारों ओर की कला का नाम भ्रूणाच्छद कला हैं, जिसमें पोषक वस्तु संग्रहित होती हैं उसका नाम जीवनीय प्रकोष्ठ तथा उसको चारों ओर से घेरे रहने वाली कला का नाम जीवनीय कला है। इन दोनों कलाओं के संगम को भ्रूणक्षेत्र एवं उस चक्र का नाम जो पोषक रस को आवश्यकता पड़ने पर दूसरे परमाणुओं को देता है हृत्चक्र है।

इस प्रकार भ्रूणघट के भीतर के परमाणु (द्वितीय-वर्ग के) कई वर्ग में बंट जाते हैं। कुछ तो मूल में रह कर पोषण प्राप्त करते हुए अपनी संख्या वृद्धि करते हैं और पोषक रस में त्याज्य एवं ग्राह्य को अलग करते हैं। इन्हीं में से कुछ परमाणु हटकर दो कलाओं भ्रूणाच्छद एवं जीवनीय कला का निर्माण कर त्याज्य एवं ग्राह्य वस्तुओं के संचय के लिए दो प्रकोष्ठों का निर्माण करते हैं—कुछ परमाणु आवश्यकता पड़ने पर पुनः इन्हीं परमाणुओं

में पोषक वस्तु देने का काम कर भ्रूणक्षेत्र एवं हृत्-चक्र का निर्माण करते हैं।

तृतीय सप्ताह तक यह सब हो जाता है। (चित्र ५६-७) इसके बाद इन्हीं में कुछ परिवर्तन तथा परिवर्द्धन होता है (चित्र ५६-८)। चतुर्थ सप्ताह समाप्त होते ही भ्रूणक्षेत्र स्पष्ट हो जाता है, हृत्-चक्र भी स्पष्ट हो जाता है। इसे ही सूत्र रूप में कहा है—

प्रथमे मासि संमूर्च्छितः सर्वधातु कलनीकृतः खेटभूतो भवति व्यक्त विग्रहः। (च० शा० ४)

परमाणु की वृद्धि तथा उनका संगठन यह जारी ही रहता है। परमाणुओं की संख्या जैसे जैसे बढ़ती जाती है पोषक रस का आगमन बढ़ता ही जाता है। परिणाम यह होता है कि भ्रूणाच्छद प्रकोष्ठ बढ़ता जाता है। भ्रूणक्षेत्र में भी परमाणुओं की संख्या बढ़ती जाती है चूंकि इसका उपरोक्त कार्य भी बढ़ता जाता है दूसरे स्वाभाविक रूप से भी ये परमाणु वृद्धि करते ही जाते हैं अतः भ्रूणक्षेत्र भी उत्तरोत्तर वृद्धि करता जाता है। जीवनीय प्रकोष्ठ पहले तो कुछ बढ़ता है चूंकि संचय कुछ अधिक होता है मगर बाद में जब इसका व्यय बढ़ जाता है तब यह कुछ रिक्त रहने लगता है—इधर भ्रूणक्षेत्र भी बढ़ता जाता है, भ्रूणाच्छद प्रकोष्ठ भी बढ़ता जाता है अतः इनके दबाव से इसका आकार घंटीनुमा होता जाता है (चित्र ५७)।

जीवनीय प्रकोष्ठ अब कुछ विकास प्राप्त करता है। इसका निचला चौड़ा हिस्सा पचन प्रकोष्ठ के रूप में परिवर्तित होता है। इससे जीवनीय प्रकोष्ठ तो सम्बन्धित रहता ही है जो संचित पोषक रस को समय पर देता है साथ ही परमाणुओं का वह समूह जो रस को लेकर छांटने का काम किया करता था वह अब एक ऐसा रूप भी धारण करता है जो उपयोगी रस को सीधा पचन प्रकोष्ठ में लाकर डाल दे। आगे चल कर यही नाभि नाल का रूप धारण करता है यह पञ्चम षष्ठम सप्ताह तक होता है।
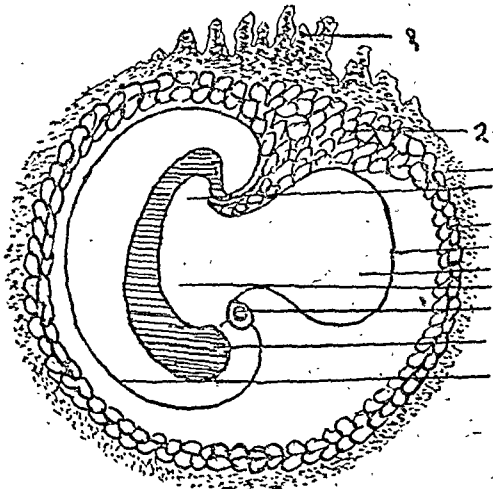
चित्र ५७
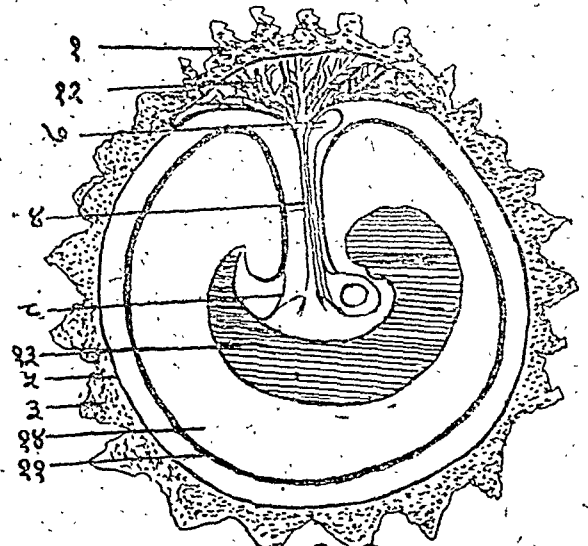
चित्र ५८

चित्र संख्या ५७ एवं ५८ का विवरण—१. अपरांकुर २. परमाणु ३. डिम्बाणु ४. नाभिनाल ५. भ्रूण घट प्राचीर ६. जीवनीय कला ७. जीवनीय प्रकोष्ठ ८. पचन प्रकोष्ठ ९. हृत् चक्र १०. भ्रूण क्षेत्र ११. भ्रूणाच्छद् कला १२. अपरा १३. भ्रूण १४. भ्रूणाच्छद् प्रकोष्ठ

भ्रूण क्षेत्र के परमाणु अब और संगठित होने लगते हैं और वह क्षेत्र अप-सघन हो उठता है यह अष्टम सप्ताह तक पूर्ण होजाता है। (चित्र ५७) इसे ही सूत्र रूप में कहा है।

द्वितीय मासिघन: सम्पद्यते। (च० शा० ४)

नवम सप्ताह के आरम्भ होते होते अपरा का निर्माण हो जाता है। भ्रूणघट के द्वितीय वर्ग के परमाणुओं का वह अंश जो ऊपर की ओर भ्रूणघट प्राचीर से सटा होता है वह भी अब संगठित होता है और संगठित हो अपरा का निर्माण करता है। यह पहले लिख चुके हैं कि डिम्बाणु पोषक रस ग्रहण करने के लिये अंकुर के रूप में संगठित होते हैं। इस समय इनका आकार भी पहले की अपेक्षा बड़ा हो जाता है और अंकुर काफी बड़े हो जाते हैं। गर्भधरा कला के तहों (folds) में ये अंकुर चिपक जाते हैं और उससे पोषक रस को ग्रहण करते हैं और भ्रूणघट में डालते हैं। भ्रूणघट प्राचीर के परमाणु इन्हें ग्रहण कर उस ओर को बढ़ाते चले जाते हैं जहां भ्रूणघट के द्वितीय वर्ग के परमाणु प्राचीर से सटे रहते हैं चूंकि यह पोषक रस उन्हीं के लिये हैं और उन तक यह पहुँच भी तभी सकता है जब कि यह वहां तक आये जहां पर इनसे इसका सम्पर्क स्थापित हो। उस स्थान के प्राचीर के परमाणु भी उनसे इतने घनिष्ट हो गये रहते हैं कि इनमें और उनमें कोई अन्तर नहीं रह गया होता है बल्कि उस जगह परमाणुओं का समूह तीव्र वृद्धि के कारण कुछ उत्सेदित भी हो जाता है और उस स्थान के अपरांकुर बड़े भी हो जाते हैं। यही परमाणु अब संगठित हो एक ऐसे प्रकोष्ठ का निर्माण कर देते हैं जिसमें अपरांकुरों द्वारा ग्रहण किया गया पोषक रस चारों ओर से आकर एकत्रित हो और यहां से वह भीतर की ओर संगठित परमाणुओं के पोषण के लिये जावे। वह हिस्सा जो इस प्रकोष्ठ से पोषक रस को नीचे ले आता है नाभि नाल कहलाता है।

पहले यह लिखा जा चुका है कि भ्रूणघट का आवरण इसी के भीतर के एक वर्ग के परमाणुओं के स्तर से निर्मित होता है और इसे चारों ओर से घेरे रहने वाले डिम्बाणु अंकुर के रूप में संगठित होते हैं। डिम्बाणु अपने अंकुरों के सहारे निकटवर्ती तन्तुओं से रस ग्रहण करता और इसे भ्रूणघटावरण पर उतारता है। भ्रूणघटावरण के परमाणु इसे संग्राहित करते हुये उस स्थान पर लाते हैं जहां पर भ्रूणघट के शेष परमाणु एक जगह एकत्रित हो इसमें छटे रहते हैं। जब रस इस स्थान पर आता है तब ये परमाणु उसे ग्रहण करते हैं और एक दूसरे को रस आगे बढ़ाता जाता है। पहले तो इसका संवहन इसी तरह परमाणुओं ही के द्वारा होता था और भ्रूणघटावरण के परमाणु तथा इसके भीतर के परमाणु पोषण एवं वृद्धि प्राप्त करते थे। मगर परमाणुओं की वृद्धि के साथ पोषक रस की भी आवश्यकता अधिक पड़ती जाती है।

भ्रूणघट के भीतर के परमाणुओं का वह समूह जो भ्रूणघट आवरण से सटा है अपने सिरे पर भ्रूणाच्छद् प्रकोष्ठ, भ्रूणाच्छद् कला जीवनीय प्रकोष्ठ जीवनीयकला, हृत्चक्र एवं भ्रूण क्षेत्र का निर्माण कर देता है और मूल के परमाणु उन्हें रस दे (भ्रूणघटावरण के परमाणुओं से लेकर) पोषण देता है। यह मूल का परमाणु भी अब १० वें ११ वें सप्ताह से संगठित होने लगता है। क्रिया तो इसकी वही रहती है जो पहले थी मगर अब दूसरे रूप से यही क्रिया सम्पादित होने लगती है। जैसे-जैसे ये परमाणु संगठित होने लगते हैं वैसे-वैसे इसमें स्रोतों का भी निर्माण होने लगता है जिससे रस का संवहन भीतर की ओर हो। इस स्थान के परमाणु संगठित होते हुए एक स्पन्ज (sponge) की तरह (जल शोषक गांठ) हो जाता है। यह भ्रूणघटावरण के परमाणुओं द्वारा लाये गये रस का शोषण करता है। इसके ऊपर के डिम्बाणु के अंकुर और

अधिक बड़े होते हैं। इनके द्वारा लाये गये रस का यह शोषण करता है और सूक्ष्म स्रोतों द्वारा (channels) इन्हें नीचे की ओर ले चलता है। ये सूक्ष्म स्रोत परस्पर मिल एक मोटे स्रोत के रूप में नीचे की ओर जाते हैं और भ्रूण क्षेत्र तक जाकर समाप्त होते हैं (चित्र ५९) इस मोटे स्रोत का नाम नाभि नाल है।

भ्रूण क्षेत्र के परमाणु जो संगठित हो एक सघन पिण्ड से हो गये होते हैं उसमें भी पोषक रसों के संवहन के लिये सूक्ष्म स्रोतों का निर्माण होता जाता है और जैसे-जैसे यह सघन होता जाता है वैसे-वैसे ये स्रोत भी बढ़ते जाते हैं। इसमें दूसरा परिवर्तन यह होता है कि भ्रूण क्षेत्र के परमाणु बढ़कर हृत्चक्र को आविष्ट कर लेते हैं और यह उसी में समाविष्ट हो जाता है। जीवनीय प्रकोष्ठ के निचले चौड़े भाग से सटे रहने वाले भ्रूण क्षेत्र के परमाणु कुछ ऊपर उठकर नाभि नाल से आये रस को ग्रहण करते हैं। यह उठते हुए इतने ऊपर चले आते हैं कि नाभि नाल से एक दम सट जाते हैं और जीवनीय प्रकोष्ठ के अंश उससे भर जाते हैं। इस भरे हुये अंश का नाम पचन प्रकोष्ठ है। नाभि नाल पोषक रसों को इस पचन प्रकोष्ठ में छोड़ता है और वहां से सूक्ष्म स्रोतों द्वारा यह समूचे भ्रूण क्षेत्र में संवाहित होता है। पचन प्रकोष्ठ से यह रस हृत्चक्र नामक रिक्त स्थान में आता है जिससे भी स्रोत फूट-फूट कर निकले होते हैं और वहां से समूचे क्षेत्र को सींचता हुआ पचन प्रकोष्ठ में पुनः आता है और

भ्रूण का विकाश

चित्र ५९
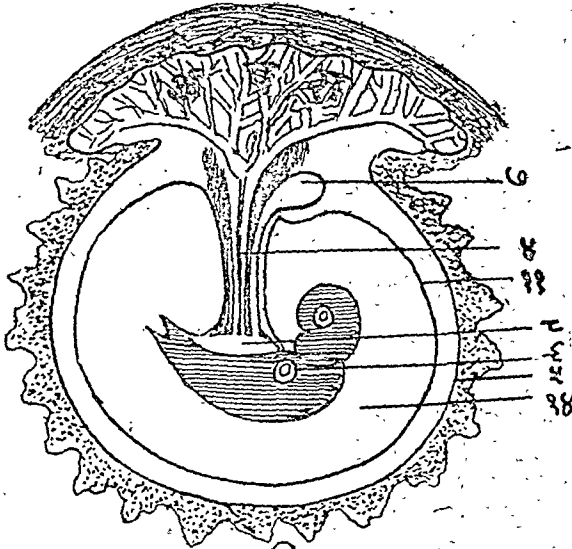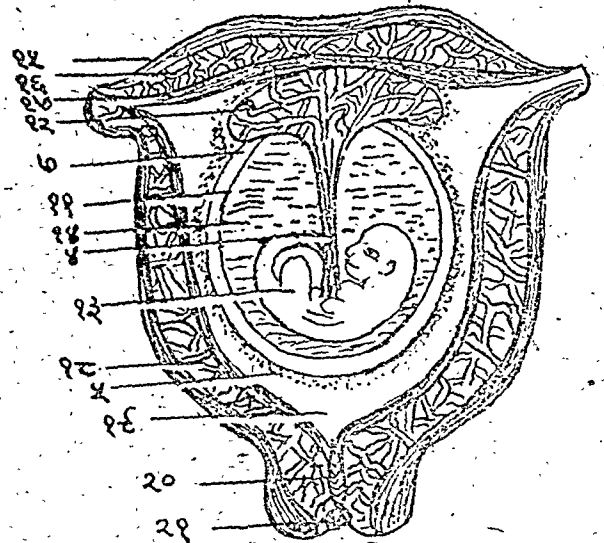
भ्रूण का विकाश

चित्र ६०

चित्र ५९ एवं ६० का विवरण-४. नाभि नाल ५. भ्रूणघट प्राचीर ७. जीवनीय प्रकोष्ठ ८. पचन प्रकोष्ठ ९. हृत्चक्र ११. भ्रूणाच्छद्कला १२. अपरा १३. भ्रूण १४. भ्रूणाच्छद् प्रकोष्ठ १५. गर्भाशय प्राचीर-प्रथम स्तर १६. गर्भाशय प्राचीर-मध्य स्तर १७. गर्भधराकला १८. गर्भाशयःप्राचीर मध्य स्तर के रक्तस्रोत १९. गर्भाशय अन्तर्द्वार २०. गर्भाशय स्रोत २१. गर्भाशय बहिर्द्वार

नाभि नाल के ही सहारे दूसरे स्रोत से अपरा में चला जाता है। इस प्रकार रस के आवागमन का सम्बन्ध अपरा से १० वें ११ वें सप्ताह तक हो जाता है (चित्र ५६)

इसके सम्पादित होते ही भ्रूण क्षेत्र के संघन परमाणु पिण्ड में इन्द्रियों के अधिष्ठान स्फुटित होने लगते हैं। सभी इन्द्रियों के अधिष्ठान एक साथ ही १२ वें-१३ वें सप्ताह में अंकुरित हो जाते हैं। चूंकि सभी इन्द्रियां उस सघन परमाणु समूह में आरम्भ से ही (जीवात्मा के प्रवेश) रहती हैं और अब पोषण का पर्याप्त प्रबन्ध होते ही वे स्फुटित हो उठती हैं इसे ही सूत्र रूप में कहा है कि—

तृतीयेमासि सर्व्वेन्द्रियाणि सर्वाङ्गवयवाश्च योगपद्ये-नाभिनिर्वर्त्तन्ते। (च. शा. ४)

अब यह सघन परमाणु समूह एक शरीर का रूप धारण करता हुआ उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त करता है और एक परिपूर्ण देह के रूप में आता है। (चित्र ६०)

यहां पर सन्देह उठता है कि मानव डिम्ब एवं शुक्रकीट से या गाय, कुत्ता, घोड़ा, बिल्ली के शुक्रकीट एवं डिम्ब से मानव ही या गाय, कुत्ता घोड़ा, बिल्ली ही क्यों उत्पन्न होता है—मानव से गाय, कुत्ता, घोड़ा, बिल्ली या कुत्ता, घोड़ा, बिल्ली से मानव क्यों नहीं उत्पन्न होता है। एक जाति विशेष के शुक्रकीट एवं डिम्ब से उसी जाति विशेष का शरीर क्यों उत्पन्न होता है? यदि एक जाति विशेष के शुक्रकीट एवं डिम्ब के संयोग से उसी जाति विशेष का शरीर उत्पन्न होता है तो वह भी सब एक नहीं होता कोई गौर कोई श्याम कोई नर कोई मादा क्यों उत्पन्न होता है? इस सम्बन्ध में आयुर्वेद के आचार्यों का मत है कि—

मातृजश्चायं गर्भः पितृजश्चात्मजश्च सात्मजश्च रसश्चास्ति च सत्वमौपपादुकमिति होवाच भगवान आत्रेयः। (च. शा. ३)

संसार के सभी दार्शनिक इस पर एक मत हैं कि यह शरीर (मैथुनिक सृष्टि का सभी शरीर) भौतिक है। सभी का उपादान कारण एक ही है और वह है पंच महाभूत। भिन्न-भिन्न अनुपात मात्रादि में मिलकर यह भिन्न-भिन्न आकार प्रकार के शरीर का निर्माण करता और कोई भी शरीर एकबारगी उस रूप में नहीं आता बल्कि यह उसके क्रमिक विकास का रूप है। पञ्चमहाभूत अपने अनुपात में जब कभी मिलते हैं तो पहले एक परमाणु का निर्माण होता है चाहे वह किसी भी अनुपात का क्यों न हो और यह परमाणु ही विकास प्राप्त करता हुआ उस विशिष्ट शरीर में आता है जिस अनुपात विशेष का वह परमाणु है।

मैथुनिक सृष्टि के निर्माण में महाभूतों का मिश्रण माता-पिता के माध्यम से उसके डिम्ब एवं शुक्रकीट द्वारा होता है और महाभूतों का अनुपात भी इसी माध्यम से बनता है। यदि शुक्रकीट एवं डिम्ब के महाभूत ऐसे नहीं रहे कि मिश्रित होने बाद इस मिश्रण का वही अनुपात हो जो माता का भी है और पिता का भी है तब उसके मिश्रण से नवीन परमाणु का निर्माण नहीं होगा। अतः एक ही जाति का चाहे मानव हो या और कुछ, जब डिम्ब शुक्रकीट मिश्रित होता है तभी नवीन परमाणु बनकर तैयार होता है और यह नवीन परमाणु जब विकास प्राप्त करता है तब अपने अनुपात के ही अनुसार करता है जो कि उसके मूल शरीर माता-पिता का है। अतः मानव डिम्ब एवं शुक्रकीट से एक मानव शरीर ही बनकर तैयार होता है। यह इसी विशिष्ट रूप में विकास प्राप्त करेगा यह इसका एक स्वभाव है इस स्वभाव का नाम सात्मज स्वभाव है। इसी सात्मज स्वभाव के कारण ही यह उसी अनुरूप आहार ग्रहण करेगा, पोषण प्राप्त करेगा, वृद्धि प्राप्त करेगा, तथा संगठित होगा।

भ्रूण अपना पोषण माता से ग्रहण करता है और माता अपना पोषण भिन्न-भिन्न आहार द्रव्यों से। माता के आहार रस में इन सभी भिन्न द्रव्यों के वस्तु अपने मूल रूप में (विघटित रूप में) वतमान रहते हैं और यथावश्यक उससे उसके शरीर के तन्तु अपना पोषण ग्रहण करते हैं और शेष या अनावश्यक वस्तु मल मूत्रादि के रूप में बाहर निकल जाता है। भ्रूण को भी जब माता का पोषक रस मिलता है तो उससे अपने योग्य पोषक वस्तुओं को तो ग्रहण कर लेता है शेष को वापिस कर देता है। यद्यपि यह उससे अपना पोषक रस ग्रहण करता है मगर यह आवश्यक नहीं कि उसको सभी आवश्यक पदार्थ अपनी-अपनी मात्रा में मिल ही जावें या बराबर उसे एक ही तरह की वस्तु एक ही मात्रा में मिलती रहे। अतः इसका प्रभाव भी उसके विकास पर पड़ता है—कोई पूर्ण पुष्ट शरीर का हो सकता है, कोई निर्बल हो सकता है, कोई श्याम हो सकता है और कोई गौर वर्ण हो सकता है। आहारानुसार विकास प्राप्त करने वाले इसके इस विशिष्ट स्वभाव को रसज भाव कहते हैं।

बिना जीवात्मा के संयोग के भ्रूणघट के भीतर के नवीन परमाणुओं में पृथकीकरण एवं संगठन गुण नहीं आता है। जीवात्मा या सूक्ष्म शरीर चेतना, पञ्चतन्मात्रा, एकादश इन्द्रियां तथा पूर्व जन्मार्चित कर्म फल का संयोग है। अतः यह जब शुक्रकीट एवं डिम्ब के संयोग के साथ-साथ संयुक्त होता है तब स्वनुरूप ही नवीन परमाणुओं को संगठित करता है—यदि इसका कर्मफल अन्धे या लूले लंगड़े का कष्ट भोगने का है तब वह इन्द्रिय अधिष्ठान उसी रूप में विकसित होते हैं। वह जन्मान्ध या जन्म से ही लंगड़ा, लूला होता है। भ्रूण इस अनुसार भी विकास प्राप्त करे, उसके इस विशिष्ट स्वभाव को आत्मज स्वभाव कहते हैं।

यद्यपि कि आत्मज एवं रसज स्वभाव माता पिता के माध्यम से मिलता है तथापि इसकी भी एक परम्परा होती है जिसके अनुसार इसका मिलना अनिवार्य है विशेष कर आत्मज-अतः मातृज एवं पितृज होते हुए भी वास्तव में माता एवं पिता के निजी स्वभाव नहीं है इस कारण इसे मातृज एवं पितृज भाव नहीं कहेंगे। माता एवं पिता के कुछ ऐसे अपने स्वभाव भी हैं जो उनका निजी है जो केवल उन्हीं में है। माता पिता के ऐसे स्वभावानुकूल भी भ्रूण अपने शरीर का विकास प्राप्त करता है उसके ऐसे विशिष्ट स्वभाव को ही मातृज एवं पितृज भाव कहते हैं। माता एवं पिता के धी धृति स्मृति शौर्य्य उनके विशिष्ट स्वभाव होते हैं जो उनका अपना है। पुरुष होने के कारण पिता में एक विशिष्ट स्वभाव और होता जो नर स्वभाव कहा जाता है एवं माता में नारी स्वभाव।

नर स्वभाव—निडरता, चातुर्य, निर्मोह, स्थिरता, दृढ़ता, कठोरता, क्रोध, अहंकार, स्फूर्ति, आदि नर स्वभाव हैं।

नारी स्वभाव—भय, मूढ़ता, मोह, चंचलता, क्लीवता, कोमलता, दया, ममत्व, आलस्य, संतोष, लज्जा आदि नारी स्वभाव हैं।

मगर प्रत्यक्ष में यह देखने को मिलेगा कि हर स्त्री पुरुष में ये दोनों के दोनों स्वभाव वर्तमान हैं। हां पुरुष में नर स्वभाव नारी स्वभाव की अपेक्षा अधिक होता है और नारी में नारी स्वभाव। मगर होते हैं दोनों ही स्वभाव। हर पुरुष में एक समान ही नर स्वभाव हो ऐसी बात भी नहीं है। किसी में यह अधिक है तो किसी में न्यून—सभी में भिन्न-भिन्न रूप का है।

संभव है आदि मानव जोड़े में केवल एक-एक स्वभाव ही रहा हो यानी नर में केवल नर स्वभाव एवं नारी में नारी स्वभाव। मगर उनके बाद की पीढ़ी उनके मैथुन से उत्पन्न हुई—अतः हर में उन दोनों ही के स्वभाव का योग मिलता है।

ये जितने भी स्वभाव हैं इनका संवहन (सात्मज आत्मज, रसज एवं मातृज तथा पितृज) परमाणु के भाव सूत्र करते हैं। भाव सूत्र (Chromosomes) छोटे छोटे पतले धागे के टुकड़े के आकार के होते हैं ठीक उसी तरह जैसे रुई के रेशे हुआ करते हैं। ये केन्द्र जालक से लिपटे होते हैं। डिम्ब एवं शुक्र कीट में भी ये रहते हैं। केन्द्र जालक परमाणु में से तिरोहित हो जाये मगर भाव सूत्र तिरोहित नहीं होते।

जब डिम्ब एवं शुक्रकीट का संयोग होता है तब दोनों के भाव सूत्र ही सबसे पहले मिलकर एक होते हैं जैसा कि पहले लिख आये हैं। इसके बाद केन्द्र एवं परमाणु का निर्माण होता है। इस प्रकार डिम्ब एवं शुक्र के भावसूत्र मिलकर एक होते हैं और नवीन परमाणु के भाव सूत्र पर माता एवं पिता के माध्यम से मिला समस्त स्वभाव वर्तमान रहता है और तदनुकूल रूप में यह पोषण ग्रहण करता है, वृद्धि प्राप्त करता है, संगठित होता है तथा विकास प्राप्त करता है।

माता पिता के माध्यम से मिले समस्त भावों के साथ में उनके अपने निजी स्वभाव भी एक होते हैं। मान लिया जाय कि किसी एक स्त्री पुरुष के जोड़े में उनका निजी स्वभाव निम्नलिखित रूप का है जो शुक्रकीट एवं डिम्ब के भाव सूत्रों पर संवाहित हो रहा है—

पुरुष का स्वभाव (पिता)	स्त्री का स्वभाव (माता)
नर स्वभाव-६०% –	८०%
नारी स्वभाव-४०% –	२०%

जब इस भाव को ग्रहण किये रहने वाले दोनों भाव सूत्र मिलकर एक होते हैं तब उनके योग से नर स्वभाव $\frac{६०+२०}{२}$ % होता है और नारी स्वभाव $\frac{८०+४०}{२}$ % होता है यानी ४० % नर स्वभाव एवं ६० %. नारी स्वभाव होता है। विकास प्राप्त करते समय नवीन परमाणु इस स्वभाव द्वारा चालित होते हैं। भ्रूण (नवीन परमाणुओं का सघन समूह) के इसी विशिष्ट स्वभाव को मातृज पितृज स्वभाव कहते हैं। ऐसी दशा में भ्रूण इस ६० %. स्वभावानुरूप यानी नारी शरीर में विकास प्राप्त करेगा।

इस प्रकार यह पाते हैं कि मातृज, पितृज, आत्मज, सात्मज एवं रसज भावों के कारण मानव डिम्ब एवं शुक्रकीट के संयोग से मानव ही होता है, कोई निर्बल, कोई सबल, कोई श्याम, कोई गौर, कोई नर एवं कोई नारी होता है, कोई बुद्धिमान कोई मूर्ख, कोई जन्मान्ध, कोई जन्म से ही लंगड़ा और लूला होता है।

आयुर्वेद के वैज्ञानिकों ने इन्हीं स्वभावों से लाभ उठाकर "पुंसवन विधि" का आविष्कार किया। उनके अनुसार माता-पिता का नर एवं नारी स्वभाव का योग ही नर या नारी शरीर में विकास पाने का कारण है। अन्य स्वभावों पर तो कोई नियन्त्रण नहीं है मगर माता पिता के नारी एवं नर स्वभाव तथा रसज स्वभाव पर कुछ नियन्त्रण है। इन दोनों में परिवर्तन लाया जा सकता है। यह परिवर्तन भी आमूल परिवर्तन नहीं हो सकता बल्कि तत्कालिक परिवर्तन ही हो सकता है। परिवर्तन लाने वाले साधनों के हटने के कुछ काल बाद ही वह स्वभाव फिर ज्यों का त्यों हो जाता है अतः इन साधनों का उपयोग गर्भ स्थिति कराने के पहले एवं गर्भ स्थिति के बाद भ्रूण के इन्द्रिय अधिष्ठान के स्फुटित होने के पहले तक करना चाहिये।

चरक संहिता के शारीर स्थान अष्टम अध्याय के ९ वें श्लोक से लेकर २४ वें श्लोक तक जिन विधानों को कहा गया है वह मनोभावों में परिवर्तन लाने के उद्देश्य से कहा गया है। इस विधान से एक ओर तो मनोभावों में परिवर्तन लाना है दूसरी ओर कुछ ऐसे द्रव्य विशेषों का उल्लेख भी

किया है जिनसे अस्थाई रूप से भावों में परिवर्तन आता है। अस्थाई रूप से पुरुष कर भावों में वृद्धि करने वाले द्रव्यों में पुष्य नक्षत्र में काटा गया वटशुङ्ग, उड़द (माष), श्वेत सर्षप, जीवक, ऋषभक, अपामार्ग, सहचर, यव, शहद, घी एवं दूध हैं। इनका प्रयोग चरकोक्त विधि से करना चाहिये।

इस प्रकार भावों के अस्थाई परिवतन से भ्रूण के इन्द्रिय अधिष्ठान के विकास में परिवर्तन लाया जा सकता है यद्यपि उसका मूल स्वभाव इसके विपरीत था। इसे ही सूत्र रूप में कहा है कि—

यथोक्तेन विधिनोपसंस्कृतशरीरयोः स्त्री पुरुषयोर्मिश्रीभावमापन्नयोः शुक्रं शोणितेन सह समेत्याव्यापन्नमव्यापन्नेन योनावनुपहतायामप्रदुष्टे गर्भाशये गर्भमभिनिर्वर्तयत्येकान्तेन, (च० शा० ८ अ० २४ श्लोक)।

कभी कभी इन भावों में प्रबल रूप से स्वतः परिवर्तन भी स्थाई रूप का होता देखा गया है जिससे एक स्त्री अपने जीवन के मध्य में पुरुष या पुरुष स्त्री में परिवर्तन पा जाता है। बहुधा समाचार पत्रों में ऐसे रूपान्तर के समाचार मिलते भी हैं। यह परिवर्तन पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक होता है। इनके भगशिश्निका धीरे-धीरे प्रवृद्ध होने लगते हैं, योनि मार्ग संकुचित होने लगता है, भगोष्ट दोनों (वृहत एवं लघु) दृढ़ एवं पतले होने लगते हैं, भगोष्ठ खात भरने लगता है, स्तन सूखने लगते हैं, दाढ़ी एवं मूछों पर रोम निकलने लगते हैं, भगस्थान जुट कर बन्द होजाता है, बीजाधर मुष्क में परिवर्तन पाने लगता है मगर इसका बाहर आना नहीं होता है शस्त्र चिकित्सा द्वारा इन्हें बाहर निकाला जाता है जैसा कि चित्र ६१ से व्यक्त होगा।

यह जब प्रत्यक्ष देखने को मिलता है कि भगशिश्नकाग्र का रूपान्तर जीवन के मध्य में हो सकता है और यह शिश्न का रूप ग्रहण कर सकता है तब भ्रूणावस्था में इसका रूपान्तरित हो जाना कोई सन्देह की बात नहीं है। और यह जब होता है
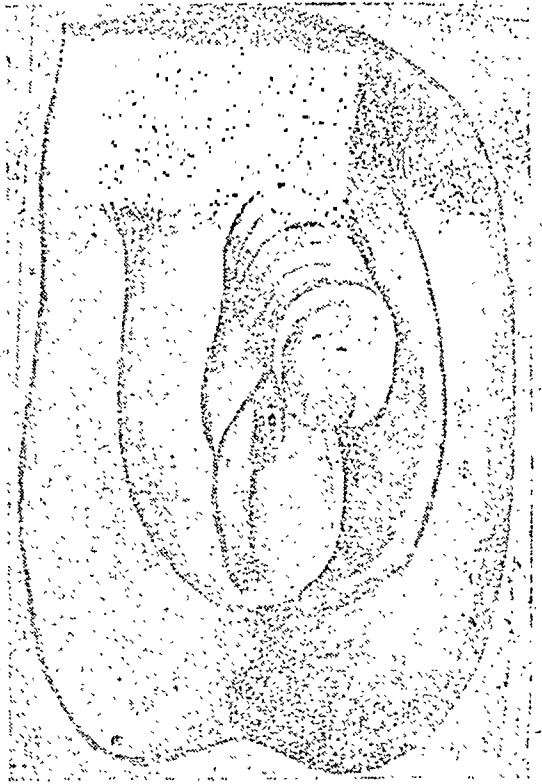
चित्र–६१

तब स्वभावों के परिवर्तन के साथ होता है। अतः इसका सम्बन्ध स्वभावों से है इसमें भी कोई सन्देह का स्थान नहीं।

आयुर्वेद में "रक्तेन कन्यामधिकेन पुत्रं शुक्रेण" का जो व्यवहार हुआ है उसमें "रक्त" एवं "शुक्र" शब्द से नारीभाव एवं पुरुष भाव का बोध करना चाहिये चूंकि रक्त शब्द से मासान्तिक स्राव एवं डिम्ब तथा शुक्र से शुक्र धातु या शुक्रकीट ग्रहण करना तर्क विरुद्ध, प्रत्यक्ष विरुद्ध एवं आप्तोपदेश विरुद्ध है। जो पहले किये गये वर्णनों से सिद्ध होगा।

शुक्र या आर्त्तव शब्द से 'धातु' का ग्रहण करना ठीक नहीं। यह बीज (शुक्रकीट एवं डिम्ब) का नाम है जो शुक्र एवं रज या आर्त्तव धातु द्वारा धारण किया जाता है और एक दूसरे से मिलन हेतु स्वस्थान से संवाहित होता है। गर्भ निर्माण के लिए शुक्र धातु एवं आर्त्तव धातु का मिश्रण नहीं

होता बल्कि शुक्र बीज एवं आर्त्तव बीज (शुक्रकीट एवं डिम्ब) का मिश्रण होता है।

एक शुक्रकीट का एक डिम्ब से ही मिश्रण हो सकता है अतः किसी एक के अधिक होने का प्रश्न ही नहीं उठता। दोनों का मिलन भी तभी सम्भव है जब कि ये अपने पोषण की चरम सीमा पर पहुंचे होते हैं न इसके पहले न इसके बाद ही इनका मिश्रण सम्भव है। यदि शुक्रकीट से डिम्ब का संयोग न हो तो डिम्ब पोषण की चरम सीमा पर पहुंच कर पोषणाधिक्य के विष से मृत हो जाता है। अतः 'अधिक' शब्द से अधिक पुष्ट का भी अर्थ नहीं लिया जा सकता है। अतः "रक्तेनकन्यामधिकेन पुत्रं शुक्रेन" से "नारीभावेन कन्यामधिकेन पुत्रं पुरुष भावेन" का अर्थ अधिक उपयोगी है।

इस प्रकार तृतीय मास समाप्त होते होते भ्रूण में इन्द्रिय अधिष्ठान का अंकुर निकल आता है और इसके साथ साथ अवयवों का भी न्याश (foundation) होजाता है और क्रम से इनमें वृद्धि होती है। चतुर्थ मास में भ्रूण में परमाणुओं की वृद्धि बड़ी तीव्र गति से होती है ताकि इन्द्रियों, अधिष्ठानों एवं अवयवों का निर्माण हो सके। पंचम मास में परमाणु सघन होकर मांसपेशियों के रूप में आ जाता है और अब इसमें माता से रक्त रसादि का संचार पर्याप्त रूप से होने लगता है। हृदय के चारों प्रकोष्ठों का निर्माण हो जाता है और षष्ठम मास में यह सब पुष्ट होता है। सप्तम मास आते आते सभी अवयवादि पूर्ण हो जाते हैं (चित्र ६०) और अष्टम एवं नवम मास में ये पूर्णरूपेण पुष्ट हो जाते हैं।

प्रसव का समय ९ वें मास की समाप्ति पर एवं दशम मास के आरम्भ में होता है।

इस प्रकार गर्भ का संधारण होता है। उसका क्रम से विकास होता है, नर या नारी शरीर में आता है। इसे इच्छानुसार नर या नारी शरीर में लाया जा सकता है।

—कविराज लाला बदरीनारायण सेन
जी० ए० एम० एस०
मोतीझील, मुजफ्फरपुर।

गर्भाशय में गर्भ की स्थिति

श्री वेदप्रकाश शर्मा

गर्भाशय में गर्भ के विकास क्रम के साथ यह जानना भी आवश्यक है कि गुम्बजाकार अधोमुख गर्भाशय में गर्भ की क्या स्थिति होती है। वर्णन की सुगमता के लिए इस स्थिति का वर्णन हम दो भागों में बांट सकते हैं। प्रथम मासानुक्रम गर्भाशय की स्थिति जिसमें गर्भ बढ़ता है। द्वितीय गर्भाशय में गर्भ के विशेष अवयवों से सम्बन्धित गर्भ की स्थिति। प्रथम को बाह्य एवं द्वितीय को आभ्यन्तर स्थिति के अन्तर्गत अन्तर्भाव कर समझाया जा सकता है।

बाह्य स्थिति—

यह तीसरे माह के बाद आंकी जा सकती है।

तीसरा माह—इस महीने म अर्थात् प्रारम्भ से तीसरे माह तक गर्भ गर्भाशय द्वार एवं नाभि के बीच के भाग के २ अंगुल नीचे रहता है।

चौथामाह—इस समय गर्भ गर्भाशय एवं नाभि के बीच में आ जाता है।

पांचवा माह—इस समय गर्भ नाभि के समीप परन्तु उसके नीचे एक अगुल रहता है।
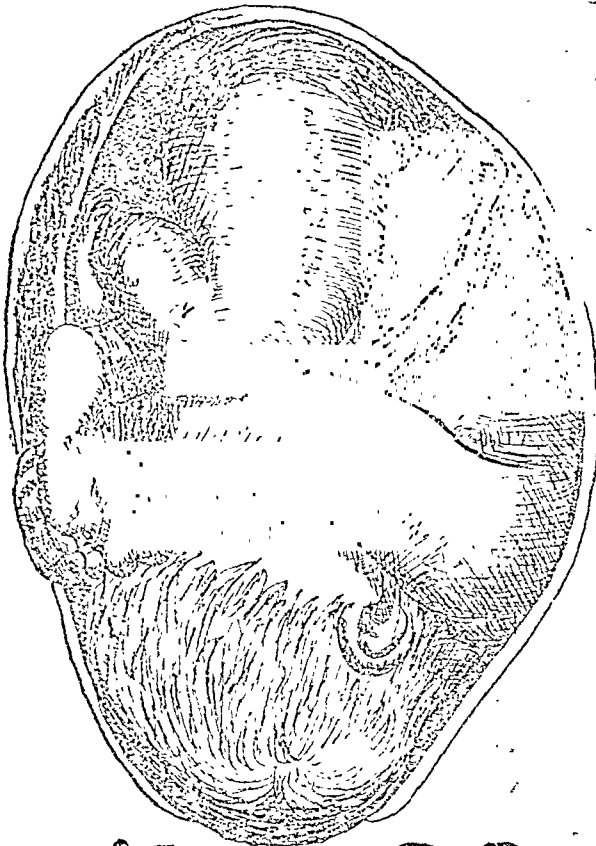
गर्भ की स्वाभाविक स्थिति

चित्र ६२

छठा माह—इस समय गर्भ गर्भाशय में नाभि के समतल रहता है।

सातवें माह में—गर्भ इस माह में छाती के सामने की हड्डी और नाभि के एक तिहाई भाग पर पहुंच जाता है।

आठवें माह में—गर्भ इस माह में छाती के सामने की हड्डी के निचले भाग के दो तिहाई भाग में पहुँच जाता है।

नवमे माह में—इस माह में गर्भ छाती के सामने की हड्डी के निचले भाग पर उसे छूता हुआ (स्पर्श करता) प्रतीत होता है।

दशवें माह के—प्रारम्भ में गर्भ ८ वें माह की स्थिति में नीचे खिसक कर आजाता है तथा इस माह में वंक्षण की ओर गर्भ के खिसक जाने पर गर्भाशय के पास का भाग विशेष उभरा प्रतीत होता है।

आभ्यन्तर स्थिति—

आभ्यन्तर स्थिति को पुनः दो भागों में बांटा जा सकता है—

(१) गर्भ के आकार एवं वजन की स्थिति

(२) गर्भ के अवयवों की विशिष्ट दिशाओं में स्थिति

गर्भ के आकार एवं वजन की स्थिति—निम्न तालिका द्वारा उल्लिखित की जा सकती है—

माह	आकार इञ्चों में	वजन	तुलना
प्रथम माह	$\frac{1}{3}$ इञ्च अंतिम समय में	१० रत्ती	कबूतर के अंडे के समान
द्वितीय माह	१$\frac{1}{2}$ इञ्च	३० रत्ती	मुर्गी के अंडे के समान
तृतीय माह	२$\frac{4}{5}$ इञ्च	२$\frac{1}{4}$ तोला	मानवी गर्भ
चतुर्थ माह	६$\frac{1}{2}$ इञ्च	५ औंस ($\frac{1}{4}$ सेर)	संचरणशील गर्भ
पञ्चम माह	८ इञ्च	१ सेर	हृदय युक्त गर्भ
षष्ठम माह	१० इञ्च	१$\frac{1}{4}$ सेर	बौद्धिक गर्भ
सप्तम माह	११ इञ्च	१$\frac{1}{2}$ सेर	जीवन संयुक्त गर्भ
अष्टम माह	१३ इञ्च	२$\frac{1}{4}$ सेर	ओज गर्भ
नवम माह	१४$\frac{1}{2}$ इञ्च	२$\frac{1}{2}$ सेर	परिपूर्णगर्भ (प्रगल्भगर्भ)
दशम माह	१६ इञ्च	३ सेर से ४ सेर	अति प्रगल्भगर्भ

साधारणतया उक्त तालिकानुसार अनुमान लगाया जाता है। परिस्थितिविवश यह अनुमान कम व अधिक गर्भिणी की आयु आहार-विहार सत्व आदि पर भी निर्भर करता है।

नोट—परीक्षणों के आधार पर ५ सेर २० इञ्च व २॥ सेर १३ इञ्च तक के शिशु भी उत्पन्न होते देखे गये हैं। एक साथ २ सन्तान होने की दिशा में वजन आधा आधा अर्थात् २॥-२॥ सेर देखा गया है।

गर्भाशय में अवयवों की विशिष्ट स्थिति—

यह स्थिति भिन्न भिन्न माह में ध्यान से अध्ययन करने पर दो प्रकार की देखी गई है, जिन्हें प्रथम महीनों व अन्तिम महीनों की स्थितिरूप २ भागों में बांटा जा सकता है।

आयुर्वेद मतानुसार प्रारम्भ में गर्भ की स्थिति निम्न प्रकार पाई जाती है।

प्रारम्भिक स्थिति—

गर्भस्तु खलु मातुः पृष्ठाभिमुख ऊर्ध्वशिराः संकुचिताङ्गो ऽऽस्ते जरायुवृत्तः कुक्षौ। (चरक)

अर्थात् गर्भ गर्भाशय में माता के पृष्ठाभिमुख हो अंगों को संकुचित अवस्था में स्थितकर जरायु नामक झिल्ली से ढका कोख में पड़ा रहता है। इसके ऊपर की ओर का शिराओं का भाग गर्भाशय से सम्बन्ध बनाता है। अतः स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस समय गर्भ का मुख अन्दर माता की पीठ की ओर रीढ़ की हड्डी के पास लगा होता है। शिर ऊपर की ओर होता है और छाती की ओर झुका रहता है। अङ्ग-प्रत्यङ्ग इस प्रकार संकुचित रहते हैं मानो गर्भ अपने लिए स्थान पूर्ण न पा स्वयं ही सिमट कर बैठा है। इस अवस्था में गर्भ की रीढ़ की हड्डी मुड़ जाती है। जङ्घायें (उरु) छाती पर और पिण्डलियां जङ्घाओं पर सिमटी पड़ी रहती हैं। हाथ भी इसी प्रकार संकुचित हो एक दूसरे से बंधे रहते हैं। इस अवस्था में मुट्ठियां बन्द रहती हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सब प्रकार से संकोच अवस्थायें बनाये गर्भ अपनी शैया पर लेटा रहता है एवं गर्भोदक तथा जरायु से लिपटा ऐसा प्रतीत होता है मानो अण्डा ही गर्भाशय में पड़ा हो। आधुनिक शारीर विशारदों के मन्तव्यों के अन्तर्गत भी हम प्रारम्भ के ३ माह में गर्भ को इसी परिस्थिति में पाते हैं परन्तु धीरे धीरे धड़ नीचे की ओर गति करता हुआ पिछले महीनों में शिर को स्वाभाविक ही गर्भोदक से गतिशील हो नीचे की ओर स्थित कर देता है। इस समय स्वाभाविक ही नितम्ब ऊपर की ओर चले जाते हैं जैसाकि सुश्रुत ने स्पष्टतया कहा भी है—

आभुग्नोऽभिमुखः शेते गर्भो गर्भाशये स्त्रियाः।
स योनिं शिरसा याति स्वाभावात् प्रसवं प्रति॥

पुनश्च—शिरः प्रथमम् पुनर्वंसुरात्रेय प्रतिपद्यते तदस्य गुरुत्तरं भवति। (भे. सं.)

प्रसूति मारुत् योगात् प्ररिवृत्यावाक् शिरा निष्क्रामत्यपत्यपथेन, एषा प्रकृतिः विकृतिः पुनरतोऽन्यथा। च. शा.

अन्तिम महिनों में स्थिति—

इस स्थिति में उपरोक्त सन्दर्भों के आधार पर शिर नीचे की ओर कर गर्भ अपने सबसे भारी भाग मस्तिष्क को निकालने का प्रयत्न करता है। अन्य अङ्ग उपरोक्त क्रम से ही सिमटे रहते हैं, नितम्ब भाग ऊपर की ओर होता है। किन्हीं विशेष परिस्थितियों में विकारावस्था होजाने पर अन्य परिस्थितियों के कारण इसमें अन्यथा भाव भी उत्पन्न हो सकता है जैसे पैर का नीचे होना व शिर का ऊपर होना, पीठ का गर्भ मुख पर लग जाना, मुख का कपाल के बजाय गर्भ द्वार पर लग जाना इत्यादि। परन्तु आधुनिक वैज्ञानिकों के मतानुसार भी यह स्वाभाविक गर्भ स्थिति ९६ प्रतिशत होती है। ४ प्रतिशत अतिरिक्त मानी गई है। स्वाभाविक परिस्थिति में शिर नीचे

रहते हुए भी निकलते समय शिर के ऊपर का भाग सबसे पूर्व निकलता है। विकारावस्था का स्वतन्त्र निरूपण आवश्यक है।

प्राकृतावस्था—स्वाभाविक शिर की अवस्था भी वामपूर्वानुशीर्षासन ७० प्रतिशत, दक्षिणपूर्वानुशीर्षासन २० प्रतिशत, दक्षिण पश्चिम अनुशीर्षासन ८ प्रतिशत व वामपश्चिम शीर्षासन अवस्था २ प्रतिशत पाई जाती है। इन्हें क्रमशः हम प्रथमासन द्वितीयासन, तृतीयासन व चतुर्थासन नाम दे सकते हैं।

प्रथमासन—इसे वामपूर्वानुशीर्षासन भी कहते हैं। यह ७०% पाया जाता है। इसमें गर्भ की पीठ माता के बांयें व सामने की ओर होती है, शिर नीचे की ओर होता है, सिर की मध्य रेखा माता के श्रोणि कण्ठ के दाहिनी ओर की तिरछी गोलाई में स्थित होता है, ललाट दाईं ओर त्रिक् जघन संधि के समीप रहता है।

द्वितीयासन—इसे दक्षिणपूर्वानुशीर्षासन भी कहते हैं। यह २० प्रतिशत पाया जाता है। इसमें गर्भ की पीठ माता के दाहिने ओर सामने की ओर होती है, सिर नीचे रहता है। सिर की मध्य रेखा श्रोणि कण्ठ के बांई ओर की तिरछी गोलाई में स्थित होती है, सिर का पिछला भाग दाहिनी ओर के श्रोणिगवाक्ष के समीप तथा ललाट वाम त्रिक जघन (सिर का पिछला भाग) संधि के पास होता है।

तृतीयासन—इसे दक्षिण-पश्चिम अनुशीर्षासन भी कहते हैं। यह ८ प्रतिशत पाया जाता है। इसमें गर्भ की पीठ माता के दाहिने ओर पीछे की ओर होती है सिर नीचे की ओर रहता है, सिर की मध्य रेखा श्रोणि कण्ठ के दायें भाग की ओर की तिरछी गोलाई में स्थित होती है, ललाट वामश्रोणि गवाक्ष की ओर होता है।

चतुर्थासन—इसे वाम-पश्चिम अनुशीर्षासन भी कहते हैं। इस अवस्था में गर्भ की पीठ बायें ओर पीछे की ओर होती है, सिर नीचे रहता है। सिर की मध्य रेखा श्रोणि कण्ठ के वाम तिर्यक व्यास में स्थित होती है तथा ललाट दक्षिण श्रोणिगवाक्ष के पास स्थित रहता है।

—श्री वेदप्रकाश शर्मा आयुर्वेदालंकार
आयुर्वेद महाविद्यालय, महाल, नागपुर

गर्भाशय में गर्भ की स्थिति एवं क्रमिक विकास

श्री डा० रमेशचन्द्र गर्ग A. M. S.

गर्भोत्पत्ति की सामग्री—

ध्रुवं चतुर्णां सान्निध्याद्गर्भः स्याद्विधिपूर्वकः।
ऋतुक्षेत्राम्बुबीजानां सामग्र्यादंकुरो यथा॥

(सु० शा० २)

अर्थात् जिस प्रकार १-ऋतु २-क्षेत्र ३-जल तथा ४-बीज, इन चारों के सान्निध्य पर अकुंर का विधिपूर्वक उत्पन्न होना निर्भर करता है उसी प्रकार ऋतु, क्षेत्र, जल एवं बीज, इन चारों के सान्निध्य से विधि पूर्वक गर्भ उत्पन्न होता है।

पुरुष स्त्री समागम के द्वारा शुक्र एवं आर्तव के आपस में गर्भाशय के अन्दर अथवा बीज वाहिनी (Uterine tube) के अन्दर मिलने पर गर्भ बनने की क्रिया का श्री गणेश हो जाता है अर्थात् गर्भाधान हो जाता है।

शिर
ग्रीवा
भाग
पुच्छ
अन्तिम भाग
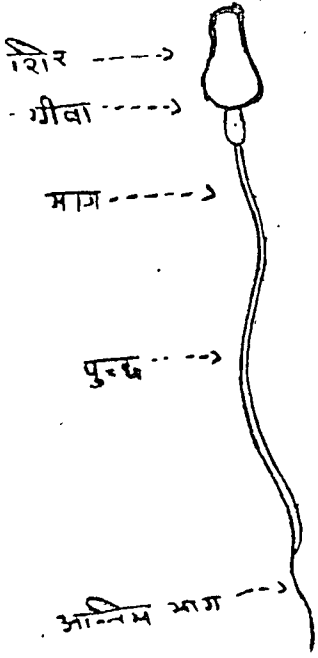
चित्र ६३–शुक्र कीट तथा उसकी रचना

शुक्र और आर्तव का संयोग स्थान पाश्चात्य शास्त्रकारों ने मनुष्येतर प्राणियों में अन्वेषण करके यह सिद्ध किया है कि इनमें शुक्राणु और स्त्री बीज का संयोग बीज वाहिनी (Fallopian tube or uterine tube) में उसके उदरस्थ मुख के पास होता है और मनुष्य जाति में भी दोनों के संयोग का वही स्थान होता है परन्तु आयुर्वेद में ऋषियों ने दोनों के संयोग का स्थान गर्भाशय बतलाया है।
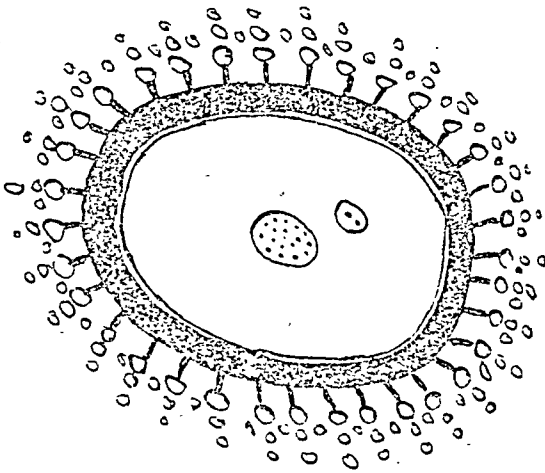
चित्र ६४–स्त्री बीज की रचना

तत्र गर्भाशये शुक्रवदायातेनार्तवेन युतं भवेत्।
(भाव प्रकाश)

शुक्र शोणित संसर्गमन्तर्गर्भाशयगतं जीवोऽवक्रामति।
(चरक शा० ३)

परन्तु पाश्चात्य शास्त्रज्ञ यह भी कहते हैं कि यद्यपि दोनों का संयोग बीजवाहिनी में होता है फिर भी गर्भाशय में भी दोनों का संयोग हो कर गर्भ का आधान हो सकता है। (फ्रेज़र)
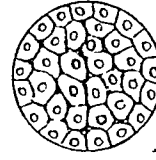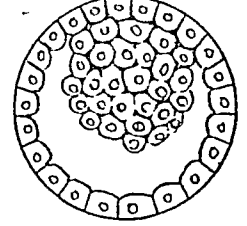
चित्र ६५–भ्रूण की क्रमशः उत्पत्ति

दोनों का संयोग होने पर गर्भ का पहला कोषाणु (भ्रूण सैल) विभक्त होने लगता है और एक से दो, दो से चार, चार से आठ, एवं आठ से सोलह, इस प्रकार वृद्धि क्रम चलता है। इन सैल समूहों को कलल (Morula) कहते हैं। इस कलल के भीतर एक खोखला स्थान उत्पन्न होता है और इसमें कुछ तरल इकट्ठा होने लगता है जिसके दबाव से बाहर की सैलें भीतर की सैलों से प्रथक हो जाती हैं। इस अवस्था को बुदबुद (Blasctocyst) कहते हैं। भ्रूण सैल को बुदबुद बनने में सात दिन लगते हैं और अब इस

अवस्था में धीरे धीरे वीजवाहिनी से गर्भाशय की ओर मार्ग तय करता है।

चित्र ६६–भ्रूण की क्रमशः उत्पत्ति

बुद-बुद की भीतर की सैलों से (Inner cell Mass) से भ्रूण का शरीर बनता है और बाहर की सैलों से (trophoblast) भ्रूण को ढकने वाली झिल्ली (Chorion) बनती है।

गर्भकोष यल्क कोष के ऊपर धीरे धीरे आवरण बन रहा है। यल्ककोष कुछ लम्बोतरा हो रहा है जो आगे चलकर अन्न प्रणाली और महास्रोत को जन्म देगा॥

चित्र ६७–भ्रूण की क्रमशः उत्पत्ति

आचार्यों के मतानुसार 'प्रथम मास' में गर्भ "कलल" बनता है। कलल की बाहरी सैलों में पाचन तथा शोषण की शक्ति उत्पन्न होती है जिससे यह कार्य होता है।
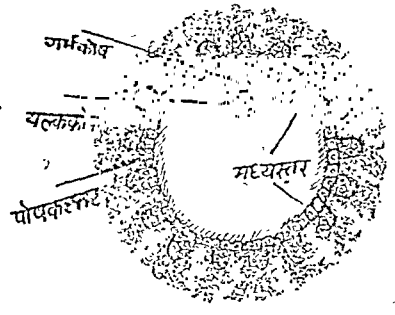
बुद-बुद की भीतर की सैलों में एक ऊपर और एक नीचे दो पोले स्थान उत्पन्न होते हैं १-Amniotic Cavity २-Yolk Sac। जहां यह दोनों परस्पर मिलते हैं वहां भ्रूण की उत्पत्ति होती है (Embryonic area)।
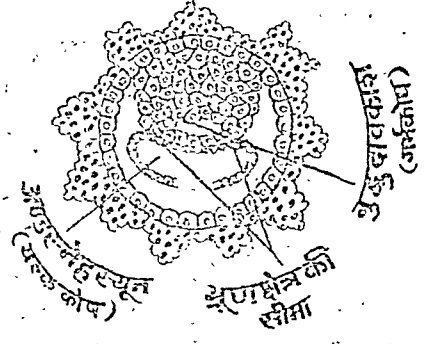
चित्र ६८–स्त्री बीज-गर्भकला के अन्दर

गर्भाशय के अन्दर पहुंच कर कलल की बाह्य सैलें अन्तः स्तर के पृष्ठ भाग में अपनी पाचक शक्ति के द्वारा एक छेद बनाती हैं जिसमें से होकर गर्भ अन्तः स्तर की मोटाई के बीच में
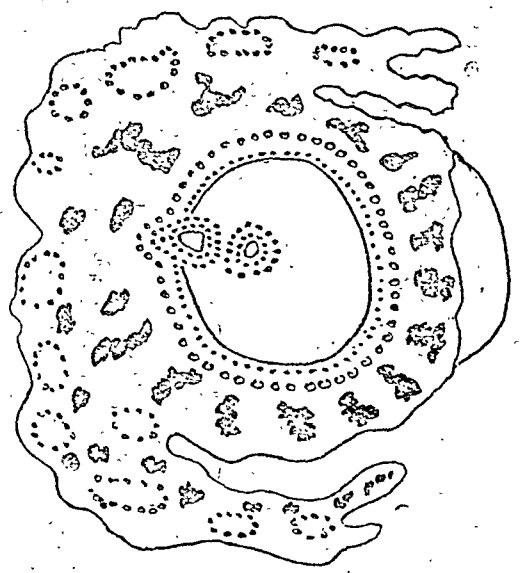
चित्र ६९–गर्भ कला और भ्रूणावरण (द्वितीय मास में)

सुरक्षित रहता है। जिस छेद में से गर्भ अन्दर जाता है, छेद बाद में बन्द हो जाता है। तदन्तर गर्भ का पोषण अच्छी प्रकार होने के कारण उसकी वृद्धि शीघ्रतया होती है। प्रथम मास के अन्त में गर्भ की लम्बाई १ शतांश मीटर के लगभग होती है। आंखें, नाक तथा कान दीखने लगते हैं।

द्वितीय मास—में शीत, ऊष्मा तथा वायु से परिपक्व महाभूतों का संधान (गर्भाधान) हो
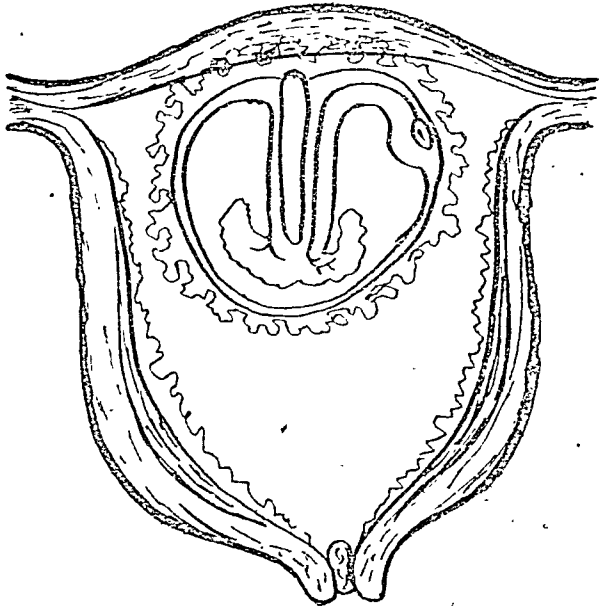
चित्र ७०—पांचवे सप्ताह का भ्रूण

जाता है। यदि आकार में पिण्ड हो तो पुरुष, पेशी हो तो स्त्री एवं अर्बुद हो तो नपुंसक जानें। इस माह के अन्त में गर्भ की लम्बाई ४ शतांश मीटर के लगभग अर्थात् १॥ इञ्च होती है। उसका सामान्य स्वरूप मनुष्य के समान दीखता है। नासिका, कान एवं पलक ठीक बनते हैं। शाखाऐं लम्बी होती हैं एवं अंगुलियों का बनना प्रारम्भ होता है। नीचे का सिरा जो पुच्छ के समान दिखाई देता था, प्रायः नष्ट हो जाता है। गर्भ के शरीर की वक्रता कुछ कम हो जाती है जिससे सिर ऊंचा होता है। आंत्र का भाग जो नाल में गया था अब उदर में आता है। नाल में एंठन पड़ने लगती है। कुछ तरुणास्थियों में अस्थि भवन का कार्य प्रारम्भ होता है। छठे सप्ताह तक गर्भ का स्वरूप स्त्रीत्व या पुरुषत्व से विरहित होता है परन्तु उसके बाद जननेन्द्रिय के स्थान में स्त्री पुरुष के लिए उचित रूप से परिवर्तन शुरू होते हैं। आयुर्वेद में इस माह की वृद्धि में केवल इस विषय का निर्देश मिलता है।
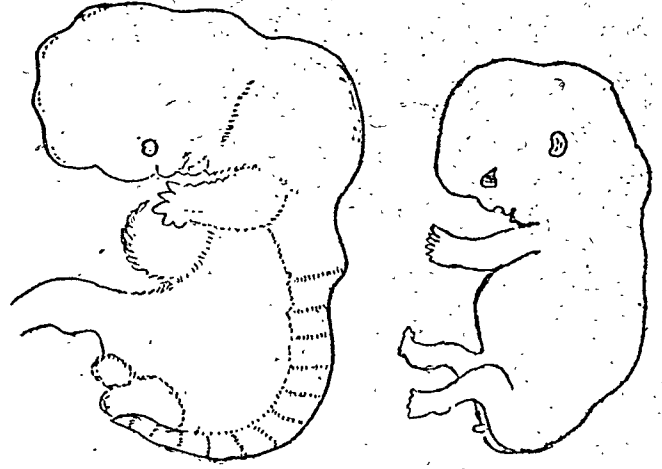
चित्र ७१—आठवें सप्ताह का भ्रूण

तृतीय मास—में दो हाथ, दो पैर और सिर, इनकी पांच पिडकाएं निकल आती हैं। अङ्ग-प्रत्यङ्ग विभाग सूक्ष्म होता है। इस मास के अन्त में गर्भ की लम्बाई ६ शतांश मीटर के लगभग अर्थात् ३ इञ्च के लगभग होती है। धड़ से ग्रीवा द्वारा सिर विभक्त हो जाता है। हाथ पैरों की उंगलियों पर सूक्ष्म रूप से नख उत्पन्न होते हैं तथा उंगलियां अलग अलग दिखाई देती हैं। शरीर की अनेक अस्थियों में अनेक अस्थि विकास केन्द्र उत्पन्न

विभिन्न सप्ताहों में गर्भाशय का गर्भिणी में उत्थान

36
40
32
28
24
20
16
12
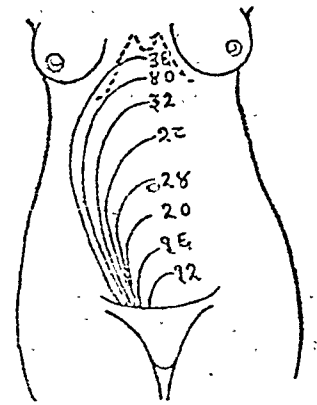
चित्र-७२

होते हैं। बाह्य जननेन्द्रियां स्पष्ट होती हैं जिससे पुत्र तथा कन्या के बारे में कोई संदेह नहीं रहता। वक्ष तथा उदर में भेद हो जाता है।

चतुर्थ मास—में गर्भ के स्वरूप में सम्पूर्ण अङ्ग-प्रत्यङ्ग विभाग पहले की अपेक्षा अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। गर्भ हृदय प्रव्यक्त होने से चेतना धातु भी अभिव्यक्त हो जाता है। हृदय से यहां (Heart) रक्त संचालन का यन्त्र अभिप्रेत है। आयुर्वेद के मतानुसार इसी हृदय में चेतना का वास होता है। यथा—

"हृदयं चेतना स्थानमुक्तं सुश्रुत देहिनाम्।"

इसलिए गर्भ चौथे महिने में सर्व प्रथम शब्द स्पर्श आदि इन्द्रियों के विषय में माता के द्वारा इच्छा करता है। गर्भ के सुख दुख की भावनाएें उत्पन्न होती हैं और सुख दुख के कारणगर्भ माता के उदर में हाथ पैर हिलाता है तथा हृदय के द्वारा अपनी इच्छाओं का प्रभाव माता के हृदय पर डालता है क्योंकि यह दोनों आपस में सम्बन्धित हैं। दो हृदय युक्त स्त्री को "दौहृदिनी" कहते हैं।

"तस्मादति सुखदुःख संबंधात् सुखोत्पादनार्थं दुखपरिहरार्थं च स्पन्दते चलति। मातृहृदयं गर्भ हृदयेन समं हृदय द्वयं भवति।" (चक्रपाणिदत्त)

इस महिने में गर्भ चलन करता है पर उस
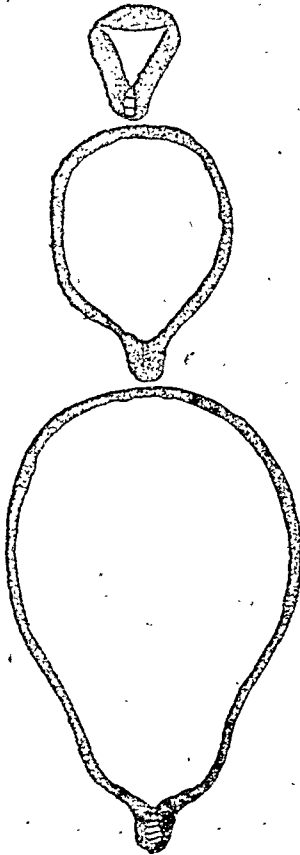
चित्र ७३-गर्भाशय का प्रथम चतुर्थ एवं नवम मास में आकार में परिवर्तन

का ज्ञान न तो माता को होपाता है और न उसके उदर पर रखे हुए परीक्षार्थी के हाथ को होता है परन्तु यदि श्रवण नलिका (stethescope) द्वारा इसको परीक्षा की जाय तो गर्भ चलन स्वर (stirrage) सुनाई देता है। गर्भ के माथे पर तथा शरीर के अंगों पर रोम निकलने लगते हैं। लिङ्ग स्पष्ट हो जाता है। मुख स्वाभाविक हो जाता है। गर्भ की कुल लम्बाई ६॥ इञ्च के लगभग होती है। गर्भ हृदय स्पन्दन (Foetal Heart Sounds) साधारणतया[१] ८ वे सप्ताह से सुनाई देती हैं। इनकी संख्या प्रति मिनट १२० से १६० तक अर्थात् माता की हृदय गति से दूनी होती है। यह स्पन्दन उदर प्राचीर पर कान लगाकर अथवा श्रवण यन्त्र के द्वारा सुनाई दे सकते हैं।

गर्भ हृदय स्पन्दन ज्ञात होने पर निम्न बातों का स्पष्टीकरण हो जाता है—

१. स्त्री की गर्भावस्था का संदिग्धता से निर्णय।
२. गर्भ की जाति का ज्ञान (Presentation)
३. गर्भ के आसन का ज्ञान (Position)
४. गर्भ का साधारण स्वास्थ्य एवं लिंग का ज्ञान।
५. यमल गर्भ का निर्णय।
६. गर्भ की आपत्तियों का ज्ञान।
७. गर्भ मृत्यु का ज्ञान।

पंचम मास—में गर्भ का मन पहले की अपेक्षा अधिक प्रबुद्ध हो जाता है। यथा—

"पंचमे मासि गर्भस्य मांस शोणितोपचयो भवत्यधिकमन्येभ्यो मासेभ्यः"। (चरक

"पंचमे मनः प्रतिबुद्धतरं भवति मांसशोणितोपचयश्च" (अष्टांगसंग्रह)

"पंचमे पृष्ठदेशो भवति" (गर्भोपनिषद)

इस महिने में सारे शरीर पर रोयें से (Lanugo) उत्पन्न हो जाते हैं। बालक की त्वचा लाल रंग की होती है और उस पर बहुत झुर्रियों के

कारण बालक सूखा हुआ सा प्रतीत होता है क्योंकि उसकी त्वचा के नीचे वसा का अभाव होता है। धड़ की अपेक्षा सिर बहुत बड़ा प्रतीत होता है। इस महिने में गर्भ की लम्बाई १० इन्च होती है। यह लम्बाई अधिकतर टांगों में होती है। इतनी लम्बाई और किसी भी महिने में नहीं होती। आंत्र में कुछ मल इकट्ठा होने लगता है। यकृत् अच्छी तरह बन जाता है। गर्भ का चलना फिरना जोर से होता है। गर्भ का तोल पहले से दुगना अर्थात् ½ सेर हो जाता है। इसके समस्त शरीर पर एक चिकना सा पदार्थ (Vernix Caseosa) बनने लगता है उससे गर्भोदक (amniotic Fluid) से गर्भ की त्वचा की रक्षा होती है।

का संचय होने लगता है। भ्रू तथा पलकें बनने लगते हैं। पलकें एक दूसरे से पृथक हो जाती हैं। सिर के बाल और स्थानों की अपेक्षा अधिक लम्बे हो जाते हैं। हाथ पैर आदि का ज्ञान ठीक-ठीक हो जाता है। माता के उदर में टटोलने से गर्भ के भिन्न-भिन्न अवयवों का पता चल जाता है। उदर पर हाथ रखने से गर्भ की गतियां प्रतीत होती हैं। गतिहीन होने पर उदर पर तनिक धक्का देने से गर्भ में गति उत्पन्न हो जाती है। यदि इस अवस्था में बालक भूमिष्ट हो जाय तो कुछ घण्टों तक उसके जीने की सम्भावना रहती है।

सप्तम मास में—गर्भ में सम्पूर्ण अङ्ग प्रत्यङ्गों का विभाग और भी स्पष्ट हो जाता है।
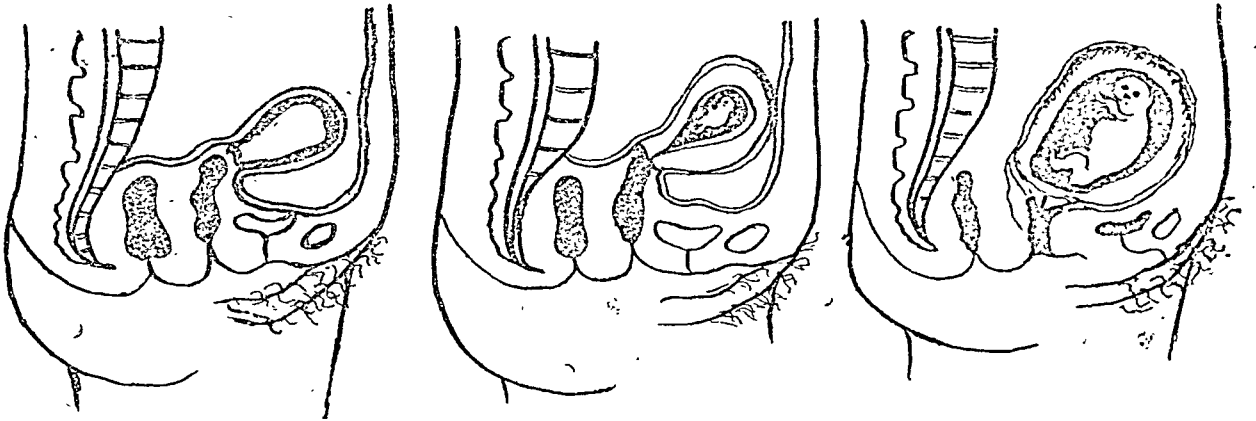
चित्र ७४—द्वितीय मास के अन्त की गर्भावस्था

चित्र ७५—तृतीय मास के अन्त की गर्भावस्था

चित्र ७६—चतुर्थ मास के अन्त की गर्भावस्था

षष्ठम मास में—बुद्धि अधिक प्रव्यक्त होती है।

"षष्ठे मासि गर्भस्य बलवर्णोपचयो भवत्यधिकमन्येभ्यो मासेभ्य" (चरक)

"षष्ठे केशरोमनखास्थि स्नाय्यादीन्यभिव्यक्तानि बलवर्णोपचयश्च" (अष्टांग संग्रह)

"षष्ठे मासे मुखनासिकाक्षि श्रोत्राणि भवन्ति" (गर्भोपनिषद)

इस महिने में गर्भ की लम्बाई १२ इञ्च के लगभग तथा वजन १ सेर के बराबर हो जाता है। त्वचा में सलवटें तथा उसके नीचे चरबी

"सप्तमे मासि गर्भः सर्वैर्भावैराप्यायते" (चरक)

"सप्तमे सर्वाङ्गसम्पूर्णता" (अष्टांग हृदय)

इस महिने में गर्भ की लम्बाई १४ इञ्च तथा भार १½ सेर के लगभग होता है। त्वचा के नीचे चर्वी अधिक हो जाने के कारण त्वचा की सलवटें कम हो जाती हैं। आंखों के ऊपर की झिल्ली नष्ट होने लगती है। अण्ड (testes) उदर गुहा में से वंक्षण सुरंगा (Inguinal canal) में पहुंचते हैं। संक्षेप में जीवन के लिए सब अङ्ग-प्रत्यङ्गों की कम से कम जितनी वृद्धि होनी आवश्यक है उतनी

वृद्धि इस मास के अन्त में होती है।

"तेन सर्वेण जन्म जीवन लक्षणेनार्थेनांगैश्च सम्पूर्णो भवतीत्यवतिष्ठते"। (अरुणदत्त)

इसलिए यदि किसी कारणवश इस माह के अन्त में बालक का जन्म हो जाय और यदि उसका उचित पालन पोषण किया जाय तो वह जीवित रह सकता है।

"सप्तमे मासे जीवने संयुक्तो भवति" (गर्भोपनिषद)

अष्टम मास में—माता तथा बालक का ओज अस्थिर होता है। उस समय यदि जन्म हो जाय तो ओजोराहित्य और नैर्ऋतभागत्व के कारण बालक जीवित नहीं रहता—

"अष्टमे मासि गर्भश्च मातृतो गर्भतश्च माता रसहारिणीभिः संवाहिनीभिर्मुहुर्मुहुरोजः परस्परत आददाते गर्भस्यासम्पूर्णत्वात्" (चरक)

इसका परिणाम यह होता है कि कभी गर्भ ओजयुक्त और कभी ओजरहित होता है। यदि ओज रहित हो तो जीवित नहीं रहता और यदि ओज सहित हो तो जीवित रह सकता है। कुछ लोगों का मत है कि आठवें महिने में गर्भ का जन्म होने पर मृत्यु का कारण ओजोराहित्य न होकर निश्चरों की वक्र दृष्टि है। इसी कारण गर्भवती स्त्री आठवें महिने में स्नानादि युक्त होकर मांसौदन का बलिदान करे।

"ओजोशनानां रजनीचराणामाहारहेतोर्न शरीरमिष्टम्" (चरक)

आधुनिक मतानुसार हम कह सकते हैं कि सातवें व आठवें महिने में उत्पन्न बालक की यद्यपि बचने की सम्भावना हो सकती है तथापि उसमें ओजोराहित्य होने के कारण प्राणशक्ति (vitality) कम रहती है जिससे वह किसी न किसी व्याधि रूप आपत्ति से मर जाता है।

आठवें तथा नवमे महिने के गर्भ का वर्णन आयुर्वेद में इसलिए नहीं किया गया है कि इन दो महिनों में गर्भ में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता है। उसके अङ्गप्रत्यङ्ग सुपरिपक्व हो जाते हैं।

"अष्टमे मासे सर्व लक्षण सम्पूर्णोभवति। अथ नवमे मास सर्व लक्षण ज्ञानकरण सम्पूर्णो भवति॥"

(गर्भोपनिषद्)

इस मास में मुख पर से रोम लुप्त होने लगते और नख अंगुलियों के सिरों तक पहुंच जाते हैं। कभी कभी नर में एक अण्ड अण्डकोष में उतरा होता है।

'Children born at this period (eighth month) are less active than those born at full time but can sometimes be rared, if carefully attended"

(Jellet's midwifery)

प्रसव काल—

"नवम दशमैकादशद्वादशा नामन्य तमस्मिन जायते, अतो अन्यथा विकारी भवति" (सु. शा. ३६)

अर्थात् नवें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें में से किसी महीने में गर्भ का स्वाभाविक प्रसव होता है। इसके अनन्तर यदि गर्भ उदर में रहे तो प्रसव विकारी हो जाता है।

सुश्रुत, वाग्भट्ट एवं चरक के मतानुसार काल प्रसव तथा कालातीत प्रसव की मर्यादा भिन्न-भिन्न बतलाई गई है। सुश्रुत एवं वाग्भट्ट के मतानुसार ४ महीने तथा चरक के मतानुसार केवल २ महीने हैं। इस मतभेद एवं मर्यादा के अन्तर को देख कर हम यह समझ सकते हैं कि काल प्रसव का निश्चित समय, जो सब स्त्रियों में लागू हो, नहीं हो सकता।

पाश्चात्य देशों के प्रसूति शास्त्रज्ञों ने प्रसवकाल निश्चित करने के बारे में दो उपाय बतलाये हैं।

१. स्त्री पुरुष संयोग से, २. रजोदर्शन से

डा० रीड ने ४० स्त्रियों में पुरुष संयोग के दिन से प्रसव तक के दिनों को गिना तो उसको २६० से

२६४ दिनों तक प्रसवकाल की अवधि में अन्तर मालूम हुआ।

डा. सिम्पसन ने रजोदर्शन के दिन से ७८२ स्त्रियों में प्रसवकाल की अवधि निश्चित करने की कोशिश की तो उसको २५२ से ३२६ दिनों तक प्रसवकाल की अवधि में अन्तर मालूम हुआ।

डा. राशींग ने एक ही स्त्री में तीन बार प्रसव काल की मर्यादा पहली बार २७७ दिनों की, दूसरी बार ३२५ दिनों की और तीसरी बार २८५ दिनों की देखी।

प्रसवकाल में अनिश्चिय रहने के कारण—

१. शुक्र और शोणित के संयोग का काल निश्चय से मालूम न होना।

२. गर्भ धारण होने पर रजोदर्शन होना।

३. आर्तव दर्शन चक्र के काल में अन्तर।

४. गर्भ की प्रकृति।

५. कभी कभी गर्भाधान होने से पूर्व एक आध मास अन्य कारण से आर्तव दर्शन बन्द हो जाना।

६. गर्भाशय की पेशी की स्थिति का ठीक न होना।

७. माता पिता की आयु अधिक होने से गर्भावस्था का काल अधिक हो जाता है।

८. कुलज विशेषता।

९. वंश या जाति विशेषता।

१०. विलम्बित प्रसव।

नवम मास के अन्त में त्वचा के नीचे वसा इकट्ठी हो जाती है और झुर्रियां मिट जाती हैं। शरीर में रोम भी लुप्त होने लगते हैं।

दशम मास के अन्त में बालक की लम्बाई २० इञ्च के लगभग होती है। सब बालकों का प्रत्येक मास का भार समान नहीं होता, इसलिये उससे बालक की आयु हम नहीं नाप सकते।

गर्भस्थ बालक के अंगों का पारस्परिक सम्बन्ध (Attitude)—

"आनुग्नोभिमुख: शेते गर्भो गर्भाशये स्त्रियः"
(सुश्रुत)

अर्थात् गर्भ सिकुड़ा हुआ और सम्मुख गर्भाशय में शयन करता है। बालक का सिर आगे को वक्ष पर झुका होता है। रीढ़ पीछे की ओर को मुड़ी हुई तथा दोनों जंघाएं उदर प्राचीर पर तथा टांगें जांघों पर मुड़ी हुई एवं दोनों भुजाएं वक्ष पर मुड़ी रहती हैं।

गर्भस्थ बालक की स्थिति (Lie)-चित्र ६२ देखिये।

बालक के दीर्घ अक्ष (Long axis) तथा गर्भाशय के दीर्घ अक्ष का पारस्परिक सम्बन्ध। प्रायः दोनों के दीर्घ अक्ष समानान्तर (Parallel) होते हैं। परन्तु असाधारण अवस्था में वाम दक्षिण (Transverse) या तिर्यक (Oblique) स्थिति भी हो जाती है।

गर्भस्थ बालक का उदय (presentation)—

बालक का कौनसा भाग गर्भाशय में निचली ओर को है, इसका निश्चय करना। यह हम योनि परीक्षा (Vaginal examination) द्वारा मालूम कर सकते हैं। यदि गर्भस्थ बालक की स्थिति
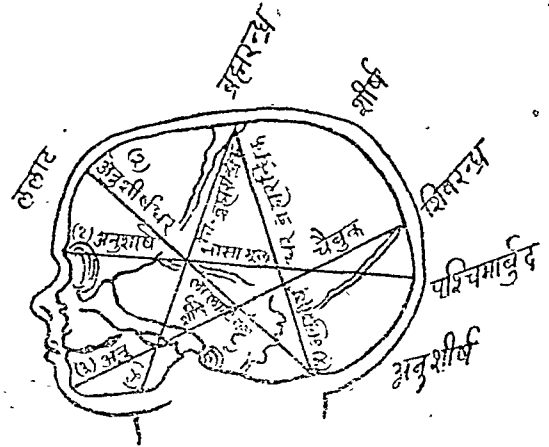
गर्भ करोटि क्षेत्र तथा व्यास

चित्र ७७—१-नासामूल पश्चिम कपालार्बुद मध्य व्यास
२-ललाट ग्रीवा पश्चिम मध्य व्यास
३-हनुप्रजापति रन्ध्र मध्य व्यास
४-ब्रह्मरन्ध्र ग्रीवा मध्य व्यास
५-शिरः पश्चात् व्यास

अधोलम्बी (Longitudinal lie) हो तो दो प्रकार के उदय हो सकते हैं।

१. सिर नीचे हो तो 'शिरोदय' (Head cephalic presentation)।

२. स्फिक् प्रदेश नीचे होने से स्फिगोदय (Breech or pelvic presentation)।

इन दोनों में जो विशेष अङ्ग उदय होता है वह भिन्न भिन्न हो सकता है। जैसे शिरोदय में

चित्र-७८

A. शीर्ष (Vertex presentation) B. ललाट (Brow presentation) अथवा C. मुख (Face presentation)।

इसी प्रकार स्फिगोदय (Breech Presentation) में a. जांघे उदर पर तथा टांगें जांघों पर-पूर्ण स्फिगोदय(Fule Breech) b. जांघें उदर पर, परन्तु टांगें सीधी-अपूर्ण स्फिगोदय (Frank Breech) या c. पादोदय (Footling) d. जानु उदय (Knee Presentation)।

वामदक्षिण स्थिति में (Transverse Lie) हो तो एक कंधा उदय (Shoulder presentation) करता है। उपर्युक्त इन सभी उदयों में ६६% शिरोदय (Head Presentation) ही होता है।

"सा योनि शिर सा याति स्वभावात् प्रसवं प्रति।"
(सुश्रुत)
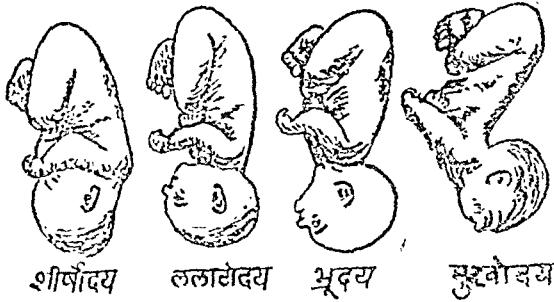
गर्भवस्थ बालक के प्रत्येक उदय में ४ आसन—

प्रत्येक उदय में बालक के एक विशेष भाग (Denominator)पर आसन का नाम रखा जाता है। प्रत्येक उदय में चार चार आसन हो सकते हैं क्योंकि वस्ति के चार पाद (Quadrants) में से किसी में उदय का एक विशेष भाग रह सकता है।

उदय (Presentation)	विशेष भाग (Denominator)
१. शिरःपश्चादस्थि (Occipital Bone)	१. शीर्षोदय (Caphelic)
२. हनु (Mentum or chin)	२. मुखोदय (Face)
३. त्रिकास्थि(Sacrun)	३. स्फिगोदय (Breech)
४. अंसकूट (Acromion)	४. पार्श्वोदय (Side)

गर्भस्थ बालक की दोनों प्रकार की स्थितियों में चार चार आसन हो सकते हैं—

अ—अधोलम्बी स्थिति (*Longitudinal*)—

(१) प्रथमासन—पीठ माता की बाईं ओर और सामने की ओर।

(२) द्वितीयासन—पीठ माता की दाहिनी तथा सामने की ओर।

(३) तृतीयासन—पीठ माता की दाहिनी तथा पीछे की ओर।

(४) चतुर्थासन—पीठ माता की बाईं तथा पीछे की ओर।

ब—वामदक्षिण स्थिति (*Transverse*)—

(१) प्रथमासन—सिर माता की बाईं ओर तथा पीठ सामने की ओर।

(२) द्वितीयासन—सिर माता की दाहिनी ओर तथा पीठ सामने की ओर।

(३) तृतीयासन—सिर माता की दाहिनी तथा पीठ पीछे की ओर।

(४) चतुर्थासन—सिर माता की बाईं तथा पीठ पीछे की ओर।

केवल शीर्षोदय (*Caphelic Presentation*) के ४ आसनों का वर्णन—

(१) प्रथम आसन—वाम सम्मुख पश्चादस्थि आसन (Left occipito-anterior or L. O. A. presentation) *70*·/.

(२) द्वितीय आसन—दक्षिण सम्मुख पश्चादस्थि आसन (Right occipito Anterior R. O. A.) *20*·/.

(३) तृतीय आसन—दक्षिण-पश्चिम पश्चादस्थि आसन (Right occipito-Posterior R. O. P.) *8*·/.

शीर्षोदय में गर्भासन के चार प्रकार
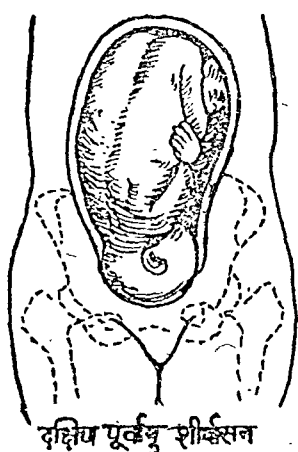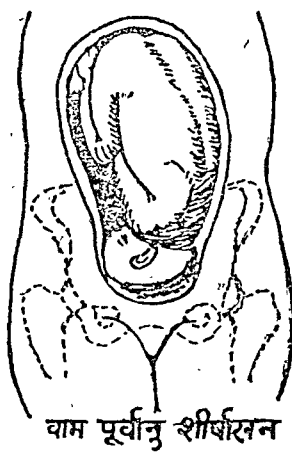
दक्षिण पूर्वानु शीर्षासन — वाम पूर्वानु शीर्षासन
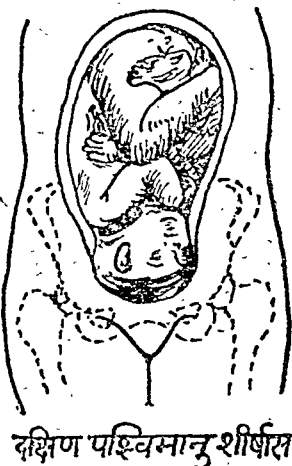
दक्षिण पश्चिमानु शीर्षासन — वाम पश्चिमानु शीर्षासन

चित्र ७६

औदरिक स्पर्शन
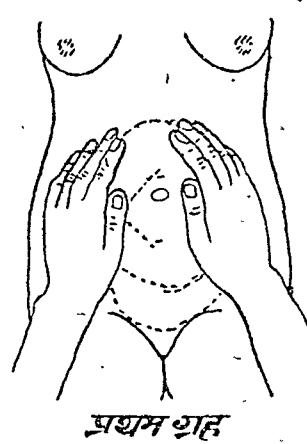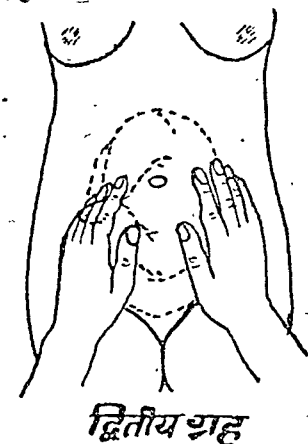
प्रथम ग्राह — द्वितीय ग्राह
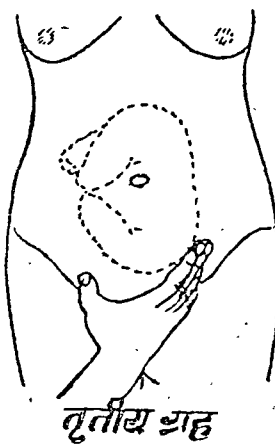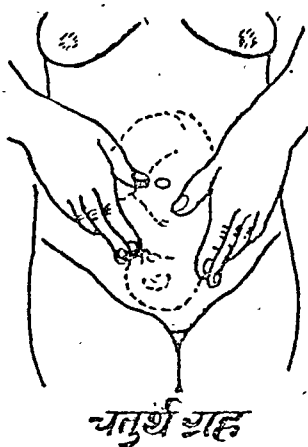
तृतीय ग्राह — चतुर्थ ग्राह

चित्र ८०

(४) चतुर्थासन—वामपश्चिम पश्चादस्थि आसन (Left occipito-Posterior L. O. P.) 2·/.

उपर्युक्त आसनों का निर्णय दो प्रकार से किया जा सकता है।

(१) माता की उदर परीक्षा (२) योनि परीक्षा।

उदर परीक्षा स्पर्शन के द्वारा की जाती है (चित्र सं० ८०)

१. प्रथम स्पर्शन (fundal grip)
२. द्वितीय स्पर्शन (Umblical grip)
३. तृतीय स्पर्शन (Powlik's grip)
४. चतुर्थ स्पर्शन (Pelvic grip)

योनिपरीक्षा (P. V.) के द्वारा गर्भाशय की स्थिति तथा बालक के आसन का भली प्रकार ज्ञान हो जाता है। इसके द्वारा गर्भाशय के मुख की दशा का ज्ञान होता है।

श्रवण परीक्षा–के द्वारा भी गर्भ की स्थिति का ज्ञान किया जाता है मुख्यतया गर्भ के हृदय के स्पन्दन का ज्ञान। भ्रूण के हृदय की धड़कन बांयी ओर नाभि तथा वाम अनामिकास्थि के ऊर्ध्व कूट के मध्य में सुनाई देती है। भिन्न-भिन्न आसनों में रहने पर भ्रूण के हृदय की ध्वनि भिन्न-भिन्न प्रान्तों में सुनाई देती है। (चित्र सं० ८१)
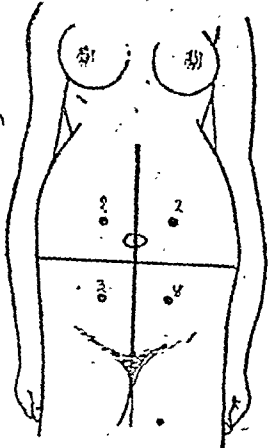
शीर्षोदय तथा नितम्बोदय में गर्भ हृत्स्पन्द तीव्रता-द्योतक स्थान

चित्र ८१

बालक के भूमिष्ट होने के पश्चात्—

(१) शिरासंयोजक (*Ductus venosus*)

(२) धमनी संयोजक (*Ductus arteriosus*)

(३) नाभिशिरा (*umblical veins*)

(४) नाभि धमनियां (*umblical arteries*)

(५) ग्राहक हृदय कोष्ठों के मध्यस्थ छिद्र (*Foramen ovale*) आदि सब बन्द हो जाते हैं। उपर्युक्त शिरा तथा धमनियों के स्थानों पर स्नायु तन्तु (*Ligaments*) बन जाते हैं।

"अङ्ग प्रत्यङ्ग निर्वृतिः स्वभावादेव जायते।
अङ्ग प्रत्यङ्ग निर्वृतौ ये भवन्ति गुणागुणाः॥
ते ते गर्भस्य विज्ञेया धर्माधर्म निमित्तजाः॥

सु. शा. अ. ३–४६

हाथ, पैर, धड़ और सिर यह छः अङ्ग तथा हृदय, यकृत, प्लीहा इत्यादि अवयव प्रत्यङ्ग कहलाते हैं। इनमें मन, बुद्धि आदि मानसिक गुणों का समावेश होता है।

आधुनिक काल में जो स्वभाव के अवगुण कहलाते हैं वे वास्तव में स्वभाव के नहीं होते हैं, परन्तु जिसमें यह अवगुण दिखाई देते हैं उसके पूर्व जन्म के कर्म के फल होते हैं, चाहे यह अवगुण मनुष्यों में हों या मनुष्येतर प्राणियों में। जैसे एक ही आत्मा अपने पूर्व कर्म से उच्च या नीच योनि में प्रवेश करता है, वैसे धर्माधर्म का फल भोगने के लिए प्राणी वैसे ही शरीर को पाता है।

—श्री रमेशचन्द्र गर्ग A. M. S.
R. A. Hindi (Medicine)
B. १/१५ R. Pratap Bazar, Delhi–2

भ्रूण का रक्त परिभ्रमण

श्री डा० पद्मदेवनारायणसिंह M. B., B. S.

गर्भ के विकास के साथ साथ भ्रूण की ओषजन (प्राणवायु) आवश्यकता में भी वृद्धि होती है, परिणामस्वरूप प्रकृति कुछ ऐसा उपाय करती है कि न्यूनतम ओषजन द्वारा कार्य सुचारु रूप से चलता रहे और भ्रूण के अन्य अवयवों की अपेक्षा जीवनावश्यक अंगों को (जैसे केन्द्रीय नाड़ी संस्थान) अधिक ओषजन प्राप्त होता रहे। भ्रूण के रक्त परिभ्रमण संस्थान में दो संचार श्रोत होते हैं—

१—हृदय के दक्षिण तथा वाम आलिन्द (ग्राहक कोष्ठ) के मध्यस्थित लम्बगोल विवर (Foramen ovale)

२—फुफ्फुसीया धमनी (Pulmonary artery) और महाधमनी (aorta) के बीच अवस्थित दूसरा संचार श्रोत् महाधमनी-युजा (Ductus arteriosus) द्वारा संस्थापित द्विगुणित रक्त परिभ्रमण (double circulation) द्वारा ऐसा सम्भव होता है। भ्रूण रक्त परिभ्रमण का अध्ययन हम लोग अपरा (Placenta) से प्रारम्भ करें जो कि दूषित रक्त को ग्रहण कर और शुद्ध तथा पोषक तत्वों युक्त रक्त देकर परिपोषण तथा मलोत्सर्जन क्रिया पूरी करता है। अपरा से ओषजन युक्त शुद्ध रक्त नाभि-शिराओं द्वारा परिवहित होता है जो नाभिनाल में आकर संयुक्त होजाती हैं, और वहां से यकृत् में पहुंचकर उसके वाम खंड तथा चतुरश्र पिंडिका (Quadrate lobe of liver) में कुछ शाखायें देती हैं। अनुप्रस्थ यकृतविवर (*Porta Hepatis*) के निकट इसका संयोजन प्रतिहारिणी महासिरा (*Portal vein*) से होता है। यहीं पर प्रतिहारिणी महासिरा से एक शिरा-शाखा निकल कर यकृत् पृष्ठ से होती हुई वाम-यकृत-सिरा में, इसके अधरा महासिरा (*Inferior vena cava*) में मिलने के पूर्व जा मिलती है जिसे सिरा संयोजक (*Ductus venosus*) कहते हैं। इस प्रकार वाम नाभि-सिरा द्वारा प्रवाहित रक्त अधरा महासिरा में तीन श्रोतों द्वारा पहुँचता है—

१—सीधे यकृत और याकृत् सिराओं द्वारा

२—प्रतिहारिणी सिरा द्वारा और

३—सिरा संयोजक द्वारा

इसके अतिरिक्त अधरा महासिरा में मध्य शरीर और निम्नाङ्गों से प्रवाहित होकर दूषित रक्त भी पहुंचता है, अतएव यहां शुद्ध और अशुद्ध
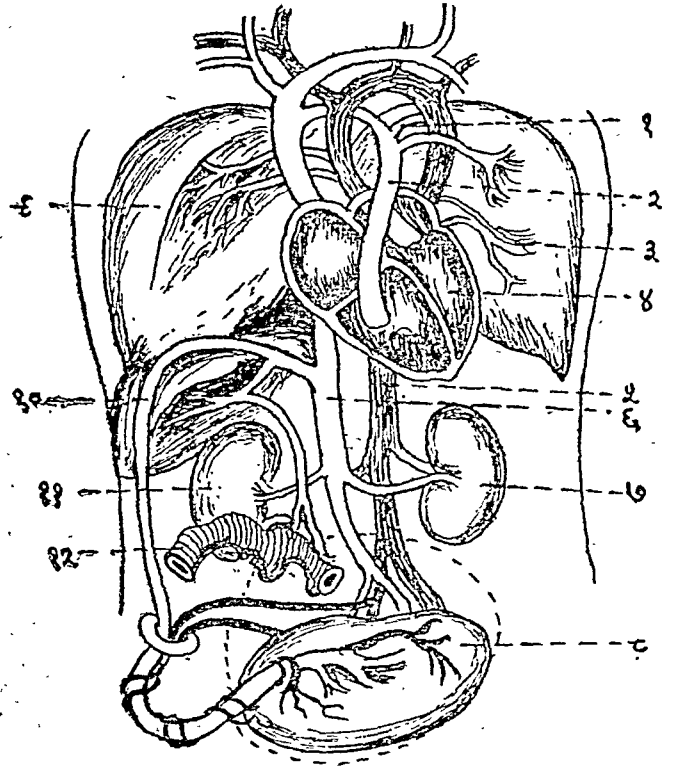
चित्र—८२

१—धमनी संयोजक
२—फुफ्फुसिया धमनी
३—फुफ्फुस
४—हृदय का वाम निलय
५—महा धमनी
६—उर्ध्वगामिनी महाशिरा
७—वाम वृक्क
८—अपरा
९—फुफ्फुस
१०—अपरासे रक्त लाने वाली शिरा
११—दक्षिण वृक्क
१२—आंत्र का भाग

दोनों रक्तों का मिश्रण हो जाता है। मिश्रितरक्त अब दक्षिण आलिन्द से होकर लम्बगोलविवर द्वारा वाम आलिन्द में पहुँचता है, जहां फुफ्फुस से वाम फुफ्फुस-सिराओं द्वारा परिवहित रक्त के साथ इसका मिश्रण होता है। वाम आलिन्द से वाम निलय (left ventricle) और वहां से महाधमनी के प्रथम खण्ड और ग्रैवी-धमनियों (carotid arteries) द्वारा मुख्यतः ऊर्ध्वाङ्गों (सिर, ग्रीवा, केन्द्रीय वात संस्थान आदि) में प्रवाहित हो जाता है, परिणाम-स्वरूप अवरोहिणी महाधमनी में इस रक्त की मात्रा अत्यल्प होती है।

ऊर्ध्वाङ्गों में संचरित होने के पश्चात् ओषजन-हीन रक्त ऊर्ध्व महासिरा (Superior Vena-cava) द्वारा पुनः दक्षिण आलिन्द में पहुंचता है, जहां से त्रिदलकपाटीय--विवर (tricuspid Valve) और दक्षिण निलय से होकर फुफ्फुसा-भिगाधमनी (Pulmonary artery) में पहुँचता है। यहां से महाधमनी संयोजक (Ductus arteriosus) द्वारा यह (सिरीय) रक्त ग्रैवधमनी उद्गम-स्थल से दूरस्थ महाधमनीतोरण (Arch of Aorta) में पहुंचता है जहां वामनिलय से प्रवाहित रक्त के साथ इसका मिश्रण होता है। यह मिश्रित रक्त जिसमें ओषजन की मात्रा अल्प होती है, अवरोहिणी महाधमनी में प्रवाहित होता है जहां से अंशतः वस्तिगह्वर तथा उदरिक गह्वर के अवयवों तथा निम्नांगों में रक्ताभिसरण होता है किन्तु मुख्यतः यह रक्त नाभीय-धमनी द्वारा पुनः अपरा में परिवहित हो जाता है।

—श्री डा० पद्मदेव नारायणसिंह M.B.,B.S.
चिकित्साधिकारी—उर्वरक कारखाना, सिन्दरी

गर्भावस्था के रोग

श्री गंगाचरण शर्मा आयुर्वेदाचार्य

गर्भावस्था के रोगों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम वे रोग जो गर्भावस्था के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ करते हैं जिनमें—

१. स्त्री मूत्रद्वार शोथ २. स्त्री मूत्रेन्द्रिय कण्डू ३. गर्भवती का बार बार मूत्र आना ४. गर्भवती का मूत्राघात ५. सगर्भा का श्वेत प्रदर ६. लाला मेह या शुक्ली मेह ७. गर्भवती का प्रसेक ८. अन्तः सत्वातिवमन ९. गर्भवती का लम्बोदर १०. शिरः शूल ११. कामला १२. आक्षेप १३. गर्भवती का अङ्गधात आदि उल्लेखनीय हैं और दूसरे गर्भावस्था में उत्पन्न कोई भी रोग इस गणना में आ सकता है जिनमें निम्नलिखित रोग समूह विशेष महत्व के हैं—

१. ज्वर २. अतिसार ३. शोथ ४. यकृत् वृद्धि ५. अर्श ६. मधुमेह ७. फिरंगोपदंश ८. राजयक्ष्मा ९. विसर्प १०. उन्माद ११. रक्तस्राव और १२. आनाह आदि।

अब इन सब का पृथक पृथक् वर्णन संक्षिप्त निदान लक्षण और चिकित्सा व्यवस्था सहित दिया जाता है।

गर्भावस्था के कारण उत्पन्न होने वाले रोग—

१—गर्भवती का मूत्रेन्द्रिय प्रदाह (*Vulvitis of the Pregnant*) हामिला की शर्मगाह का वर्म—

गर्भ के भार से गर्भवती की निम्न शरीर की रक्तवाहिनियों पर दबाव पड़ता है तब स्त्री की मूत्रेन्द्रिय और उसके समीपस्थ रक्तवाहिनियां रक्त से तन जाती हैं अतः वहां शोथ या प्रदाह हो जाया करता है।

चिकित्सा—रुग्णा को सीधी लिटाये रक्खें। यदि मलावरोध हो तो उसे दूर करें। न्यग्रोधादि गण या पोस्त के डोंडों के क्वाथ का सेक करें। स्फटिका जल या न्यग्रोधादि गण क्वाथ से योनि में डूश करें। मुर्दासंग १ माशा को १ पाव गुलाब जल में घिसकर उस जल से मूत्र मार्ग पर छींटे देते रहें।

२—गर्भवती की मूत्रेन्द्रिय कंडू (*Pruritis Vulvae of the Pregnant*) हामिला की शर्मगाह की खारिश—

यहां पर मूत्रेन्द्रिय से केवल मूत्र मार्ग ही नहीं बल्कि योन्योष्ठ से लेकर गर्भाशय ग्रीवा तक का भाग और योनि स्थान के आसपास का वह भाग जहां वालों का उद्गम होता है समझना चाहिए।

लक्षण—योनि और मूत्रमार्ग में तथा समीपस्थ स्थान में अत्यन्त खुजलाहट होना और रात्रि के समय खुजलाहट का अधिक होना।

चिकित्सा—नीलोफ़र के फूल, गुलाब के फूल, खतमी के फूल, कासनी, शाहतरा प्रत्येक ५ माशा और उन्नाव १० दाने सबको कूटकर और इनका हिम बनाकर शर्बत नीलोफर मिलाकर पिलावें।

स्थानिक चिकित्सा—(१) स्फटिका ६ माशा और थोड़ा गरम जल १ सेर दोनों को मिलाकर मूत्र मार्ग का प्रक्षालन करें।

(२) सुहागा, कर्पूर और अहिफेन समान भाग ले थोड़े गुलाब जल में घिसकर और छानकर तथा उसमें एक कोमल वस्त्र का टुकड़ा भिगोकर आक्रांत स्थान पर बार बार रक्खें।

(३) मुल्तानी मिट्टी में खतमी लुआब मिलाकर आक्रांत स्थान पर लेप करें।

यदि मलावरोध भी हो तो गुलकन्द गुलाब १ छटांक, मुनक्का बीज रहित १ तोला, गुलाब जल १० तोला और गौ का दूध २० तोला का पाक करके पिलावें।

३—गर्भवती का बार-बार मूत्र जाना—

यह रोग गर्भस्थिति के आरम्भ में जब गर्भाशय पेडू से ऊपर को खिंचता है तब मूत्राशय

में प्रदाह होकर हुआ करता है। गर्भवती को बार बार सूत्र का वेग होता है और थोड़ा-थोड़ा मूत्र आता रहता है तथा मूत्रत्याग के समय वेदना भी होती है। दूसरे जब गर्भ परिपक्व हो जाता है और गर्भाशय जब नीचे की ओर झुक जाता है तब फिर यह अवस्था उत्पन्न हो जाती है मगर उस समय मूत्रत्याग के समय वेदना नहीं होती।

चिकित्सा—इस रोग में चन्द्रप्रभा, वंगेश्वर बृहत् वंगेश्वर, चांदीभस्म और स्वर्णवंग में से किसी एक का प्रयोग करने से पूर्ण लाभ हो जाता है। अथवा स्प्रिट ईथरिस नाइट्रोसी ३० बूंद एक औंस जल में मिलाकर दिन में दो बार पिलाने से भी उपकार होता है।

पथ्यापथ्य—यवयूष पिलाना, फलों के रस तथा अन्य द्रव पदार्थ अधिक देना और अन्न के स्थान पर दूध का प्रयोग करना चाहिये।

४—गर्भवती का मूत्राघात(*Retention of urine of the Pregnant*) हामिला का पेशाब बन्द होजाना

बस्ति स्थान तथा मूत्र मार्ग पर गर्भ का दबाव पड़ने से मूत्र मार्ग रुककर पेशाब का आना बन्द हो जाता है।

चिकित्सा—गर्भाशय को अंगुलियों का सहारा देकर ऊपर को उठा देने से मूत्र मार्ग खुल जाता है या गर्भवती अपने हाथ से मूत्र शलाका लगाकर भी पेशाब उतार सकती है। इसके अतिरिक्त गर्भवती को गर्म जल के टब में बिठावें या पुनर्नवा के क्वाथ में स्वर्णगैरिक मिलाकर उसमें बिठावें अथवा टेसू के फूल उबाल कर उस गर्म जल से पेडू पर सेक दें। टेसू के फूल जो जल में उबाले गये हों उन्हें ही गर्म करके पेडू पर बांध दें।

जब यह विकार रक्तवाहिनियों पर गर्भाशय का दबाव पड़ने से होता है तब सर्वांग में शोथ होजाता है। यह अवस्था भयंकर समझी जाती है। मूत्र के अधिक समय रुके रहने से मूत्र विषमयता होकर आक्षेप आने लग जाया करते हैं। इस अवस्था में मूत्र विषमयता की चिकित्सा करनी चाहिये।

५—गर्भवती का श्वेतप्रदर—(*Leucorrhoea of the Pregnant*) हामिला का रतूवत आना—

गर्भावस्था में गरिष्ठ भोजन करने और मलावरोध के कारण प्रायः यह रोग हुआ करता है। जब यह रोग गर्भ की प्रारम्भिक अवस्था में हो जाता है तो प्रजनन काल तक चला करता है।

चिकित्सा—स्फटिका को ठण्डे जल में घोलकर योनि पर छींटे दें और यदि रोग तीव्र हो तो फिटकरी ३ माशा और निवाया जल १० छटांक दोनों को मिलाकर डूस करें या न्यग्रोधादिगण क्वाथ से डूस करें। डूस करते समय यह ध्यान में रक्खें कि डूस की नली का केवल आधा ही भाग योनि में प्रविष्ट करें तथा उसमें जल की धार भी धीरे धीरे थोड़ी-थोड़ी ही जाने दें। डूस की समग्र नलिका प्रवेश करने से और जल की धार वेग के साथ छोड़ने से गर्भपात की सम्भावना रहती है।

चिकित्सा—चन्द्रप्रभा वटी और अशोकारिष्ट का प्रयोग जारी रक्खें तथा विशेष अवस्था में निम्नलिखित चूर्ण का प्रयोग करायें—

तालमखाना, बीजबन्द, सुपारी का फूल, पिश्ते का फूल, पिश्ते का बाहिरी छिलका, और धाय के फूल प्रत्येक चार चार माशा, सालब मिश्री, इमली के बीजों की गिरी (भुनी हुई) एक एक तोला, रूमी मस्तंगी ३ माशा और समष्टी के बराबर मिश्री का चूर्ण कर के ७ माशा मात्रा अर्क गाजवां के साथ दें।

६—गर्भवती का लालामेह या शुक्लीमेह (*Albuminuria of the pregnant*)।

यह रोग कई प्रकार का होता है जैसे—

(१) शरीर क्रिया विकृति जन्य लाला मेह (*Functional albu minuria*) (२) भोजन सम्बन्धी लालामेह (*Dietetic albuminuria*)

बोलज लाली गिज़ाई (३) विषमयताजन्य लालामेह (*Toxic albuminuria*) और (४) शरीर रचना विकृति जन्य लालामेह (*Organic albuminuria*) आदि आदि मगर यहां पर इस रोग के सब प्रकारों का वर्णन करना अभीष्ट नहीं है। यहां पर केवल शरीर रचना विकृतिजन्य लाला मेह या ओजो मेह का ही वर्णन करेंगे। कारण इसी प्रकार का रोग गर्भवती स्त्रियों को हुआ करता है।

गर्भावस्था के कारण वृक्कों की रचना में विकृति होकर यह रोग प्रगट होता है।

तीव्र वृक्क शोथ, जीर्ण वृक्क शोथ (*Bright's disease*), हृदय और फुफ्फुस के कतिपय रोग और सगर्भावस्था इस रोग के कारण हुआ करते हैं।

लक्षण—शरीर का रंग फीका पड़ जाना, दुर्बलता, शोष, नेत्रों और हाथ पावों पर शोथ, आध्मान, अजीर्ण, वमन, उत्क्लेद, हृदय स्पन्दन, मलावरोध या कभी कभी अतिसार तथा रात्रि के समय बार बार पेशाब करना आदि इसके लक्षण होते हैं। इसके अतिरिक्त शिर:शूल, भ्रम और मूत्र रक्त वर्ण का और कम मात्रा में आता है।

परिणाम—इस रोग की उपेक्षा करने से अन्त में शोथ की वृद्धि होकर जलोदर तक होजाया करते हैं। जब इस रोग के कारण अचैतन्यता होजाती है तो प्रायः गर्भपात हो जाया करता है।

चिकित्सा—यदि मलावरोध हो तो रोगन बादाम या जैतून के तैल को गर्म दूध में मिलाकर रुग्णा को पिलावें। पीठ और वृक्कों के स्थान पर सूखी सींगिया लगवावें।

पथ्य—दूध, यवयूष और फलों के रस।

औषधि व्यवस्था—चन्द्रप्रभा वटी, चन्द्रकला रस, मेह मुद्गर रस, स्वर्णबंग, बंगेश्वर और बृहत बंगेश्वर तथा अन्य लौह युक्त पौष्टिक रसायन।

आधुनिक औषधि—टिंचर फेरी परक्लोर १० बूंद, टिंचर डिजिटेलिस ५ बूंद, इंफ्यूजन कासिया १ औंस—ऐसी एक एक मात्रा दिन में तीन बार दें। मगर प्रात: काल निराहार मुंह औषधि न दें।

७—गर्भवती का प्रसेक (*Salivation of the Pregnant*) हामिला का थूक बकसरत आना—

गर्भ स्थिति के आरम्भ में प्रायः यह अवस्था हुआ करती है और थूक इतना आता है कि रुग्णा थूकते-थूकते हैरान हो जाती है। यह अवस्था प्रायः सम्पूर्ण गर्भावस्था तक कम या अधिक रूप में जारी रहती है।

चिकित्सा—तीक्ष्ण पदार्थों का परित्याग कराएं। मिनोपलादि, तालीसादि और लवंगादि चूर्ण में से किसी एक का प्रयोग करें या निम्नलिखित एलादि वटी मुख में चूसने को दें या दूध के साथ निगलवा दें।

एलादिवटी—इलायची, तेजपात, दालचीनी प्रत्येक ६-६ माशा, पीपल २ तोला, मुलहठी, गुठली रहित पिंड खजूर, बीज रहित मुनक्का और मिश्री प्रत्येक ४ तोला।

विधि—सर्व प्रथम पिंड खजूर, मुनक्का और मिश्री को थोड़े शहद की सहायता से शिला पर पिसवाकर गाढ़ी चटनी जैसी बनालें। तदनन्तर शेष औषधियों का वस्त्रपूत चूर्ण मिलाकर खूब घुटाई करके झड़बेरी के बेर के समान मोटी-मोटी गोलियां बनालें। मात्रा—२ से ३ गोली।

इसके अतिरिक्त यह गोलियां शुष्क कास में जब शान्ति नहीं मिलती, वमन, छाती में दर्द, दाह और ज्वर हो जाता है उस समय भी विशेष उपकार करती हैं।

बबूल की छाल के क्वाथ से कुल्ले कराना भी इस रोग में हितावह है।

आधुनिक चिकित्सा—पोटाश क्लोरेट और टानिक एसिड एक-एक ड्राम और जल १२ औंस इसमें से थोड़ा-थोड़ा लेकर कुल्ले करें।

पोटासियम आयोडीन ५ ग्रेन, टिंचर वेलाडोना ५ बूंद, जल १ औंस। ऐसी १-१ मात्रा दिन

में ३ बार दें अथवा एट्रोपीन $\frac{1}{100}$ ग्रेन का अन्तस्त्वगीय इन्जेक्शन दें।

८–अन्त: सत्वाति वमन (*Vomitting of the Pregnant*), हामिला की कय—

गर्भस्थिति के दूसरे मास से लेकर चौथे मास तक यह रोग हुआ करता है। क्रय प्रातःकाल विशेष होती है और वमन में केवल झाग और आमाशयिक श्लेष्मा ही निकला करता है। गर्भावस्था के कारण जब गर्भोदक का सञ्चय होता है तब यह रोग उत्पन्न होता है और जब किसी स्त्री के गर्भ में दो बालक होते हैं तो गर्भोदय का संचय भी अधिक होता है ऐसी अवस्था में यह रोग तीव्र होता है। इस रोग के कारण गर्भवती को भूखा रहना पड़ता है और वह कृश और दुर्बल हो जाती है। कभी कभी तो यह रोग इतना भयंकर रूप धारण कर लेता है कि गर्भवती के जान के लाले पड़ जाते हैं। तब गर्भवती की जान बचाने के लिए गर्भपात कराने तक की नौबत आ जाया करती है।

चिकित्सा—शिकंजवीन नीम्बू, शर्बत अनार या सन्तरा पिलावें या गुलकन्द और शिकंजवीन मिलाकर चटावें। सितोपलादि चूर्ण, तालीसादि चूर्ण अविपत्तिकर चूर्ण इनमें से किसी एक को शहद या शिकंजवीन चूर्ण में मिलाकर चटायें अथवा जहर-मोहरा खताई पिष्टी, वंशलोचन, अनारदाना जरिश्क और पोदीना खुश्क तथा डोसर सब समान भाग ले चूर्ण करके शर्बत अनार या शर्बत नीबू में मिलाकर चटावें या एलादि वटी दें।

आधुनिक औषधि व्यवस्था—यदि मलावरोध हो तो हल्का रेचन दें और वमन वेग को रोकने के लिए निम्नलिखित मिश्रण दें—

बिस्मिथ कार्ब १० ग्रेन, सोडाबाईकार्ब १० ग्रेन, टिञ्चर कैलुम्बा ३० बूंद ऐसिड हाईड्रोसायनिक डिल. २ बूंद, जल १ औंस।

वांति दर्द अति तीव्र हो तो रुग्णा को लेटे रहने दें और पथ्य एवं औषधि थोड़ी थोड़ी मात्रा में बार बार दें या ऐट्रोपीन का $\frac{1}{100}$ ग्रेन का इन्जैक्शन दें।

पेटेन्ट औषधियां—ल्यूटोसाईक्लीन गोली, न्यूरोट्रासेन्टीन २ से ३ गोली प्रति दिन, ऐवोमाईन एक एक गोली दिन में ३ बार, ऐपोलोमाईन ३ गोली प्रति दिन, बिटामिन बी काम्प्लैक्स—इन्जैक्शन, गोली, या एलाईक्सीर दें।

९—गर्भवती का लम्बोदर (Sub-involution of the belly of the pregnant) हामिला का पेट लटकना—

इस रोग में गर्भवती का पेट बड़ा होकर नीचे की ओर लटक जाया करता है जिससे गर्भवती को चलने फिरने और बैठने वक्त में महान कष्ट होता है।

चिकित्सा—इस रोग के लिए कुंडल बंधिनी अर्थात् एक प्रकार की पट्टी आती है जिसे बांधकर पेट को सहारा दिया जा सकता है या किसी कोमल वस्त्र की पट्टी पेट पर सहारा देने के लिए बांध रखनी चाहिए मगर ध्यान रहे कि उसे कसकर न बांधा जावे।

१०—गर्भवती का शिरःशूल (Headache of the pregnant) हामिला का दर्द सिर—

गर्भावस्था के प्रथम मासों में शिरःशूल भी स्त्री के लिए महान कष्ट दायक होजाता है।

चिकित्सा—इस अवस्था में स्वर्णमाक्षिक भस्म या बृ० वातचिंतामणि रस या स्वर्ण बसंतमालती दें। इन औषधियों से प्रायः शिरः शूल शांत हो जाता है।

स्थानिक प्रयोग—(१) चन्दन को अर्क गुलाब में घिसकर मस्तक पर लेप करें (२) मेन्थाल को वेसलीन में मिलाकर माथे पर मलें (३) बाजार में जो कई प्रकार के बाम मिलते हैं उनमें से किसी एक का प्रयोग करें।

पेटेन्ट औषधियां–Veremin tab. या Soneryl का प्रयोग गर्भवती के लिए विशेष उपकारक है।

११—गर्भवती का कामला रोग (Jaundice of the pregnant) हामिला का यरकान—

गर्भावस्था में परावर्तन क्रिया और यकृत के विकार से यह रोग बहुत सी स्त्रियों को हो जाता है।

चिकित्सा—रुग्णा को फलों का प्रयोग अधिक करायें, अन्न बहुत कम मात्रा में खाने को दें, दूध दही आदि प्रचुर परिमाण में दें, जलवायु परिवर्तन करायें।

औषधि व्यवस्था—ताप्यादि लौह, रौहीतकलौह, नवायस मण्डूर, नवायसलौह, वसन्तमालती, लोहासव, द्राक्षासवादि।

आधुनिक औषधियां—लिवर एक्सट्रेक्ट मुख द्वारा या पेशी द्वारा, लिवर एक्सट्रेक्ट विद विटेमिन वी कोम्प्लैक्स, फेरेसोल (Liver yeast and Iron)।

१२—गर्भवती का आक्षेप (*Convultion of the Pregnant*) हामिला का तशन्नुज—

इस रोग में जब आक्षेप आते हैं तब स्त्री बेहोश हो जाया करती है और जब आक्षेप का दौरा हट जाता है तब थोड़ी देर के लिए होश में आ जाती है। इस प्रकार बार-बार आक्षेप के दौरे होते हैं। आक्षेप के पूर्वरूप में शिरःशूल, भ्रम और दृष्टि विकृति आदि लक्षण होते हैं।

गर्भावस्था के कारण Metabolism और Ketabolism अर्थात् नवीन धातु निर्माण और जीर्ण द्रव्य विनाश या निर्हरण क्रिया में विकृति आकर यह रोग उत्पन्न हुआ करता है। इस रोग में सर्व प्रथम मूत्र परीक्षा करके यह ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होता है कि मूत्र में एल्ब्यूमीन तो नहीं आ रहा है। मूत्र में एल्ब्यूमीन के आने से नेत्र, मुख और हाथ पांव पर शोथ, श्वासोच्छ्वास अनियमित, नाड़ीगति तीव्र आदि लक्षणों से युक्त भयानक आक्षेप होते हैं। रोग अति प्रबल होने से कभी-कभी गर्भवती की मृत्यु भी हो जाती है तथा कभी गर्भपात भी हो जाया करता और कभी कभी गर्भपात कराने की नौबत भी आ जाया करती है।

चिकित्सा—यदि मलावरोध हो तो मृदु विरेचन चूर्ण दें और मूत्र अधिक लाने के लिए मेहमुद्गर रस या गोक्षुरादि गूगल दें। पथ्य—दूध साबूदाना, यवयूष, अनार या मौसम्बी का रस ग्लूकोज आदि।

जब मल मूत्र शुद्ध हो जावें तब निम्नलिखित औषधियों में से किसी का प्रयोग करें।

(१) जदवार और ऊदसलीब गुलाबजल में घिसकर पिलावें।

(२) जातिफलादि चूर्ण दें।

(३) लवंगादि चूर्ण में थोड़ा अहिफेन मिलाकर दें। यदि दुर्बलता विशेष हो तो द्राक्षारिष्ट १ तोला, अश्वगन्धारिष्ट १ तोला में लौहभस्म आधी रत्ती मिलाकर दें। हृदय दुर्बलता भी साथ में हो तो रससिंदूर १ रत्ती, कस्तूरीभैरव आधी रत्ती मधु से देकर ऊपर से द्राक्षारिष्ट २ तोला पिलावें। एल्ब्यूमिन आता हो तो चन्द्रप्रभावटी ४ रत्ती, अग्नितुण्डी १ रत्ती दोनों समय भोजन के बाद दें।

आधुनिक औषधियों में—पोटास ब्रोमाईड १० ग्रेन, क्लोरल हाईड्रास १० ग्रेन, जल १ औंस, ऐसी एक मात्रा चार-चार घण्टे बाद तीन बार दें।

१३—गर्भवती का कम्प—

यह व्याधि दुर्बलता और रक्ताल्पता से ग्रस्त स्त्रियों को प्रथम गर्भधारण के समय प्रायः हुआ करती है तथा कभी-कभी तो इतनी प्रबल हो जाती है कि रुग्णा के प्राण बचने कठिन हो जाते हैं।

चिकित्सा—सर्व प्रथम यदि कोई ज्ञात कारण हो तो उसे दूर करें, मलावरोध हो तो हल्का रेचन दें—स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण गुलकन्द में मिलाकर खिलावें और ऊपर से गर्म दूध पिलावें।

रक्ताल्पता हो तो–नवायस लौह, लोहासव और द्राक्षारिष्ट दें।

वात नाड़ी दौर्बल्य हो तो—वृहत् वातचिन्तामणि या योगेन्द्र रस दें। अथवा निम्नलिखित योगों में से प्रयोग करें।

(१) जुन्दवेदस्तर दो रत्ती मधु से दें।

(२) ऊदसलीव १ माशा मधु से दें।

(३) जदवार और ऊदसलीव प्रत्येक ४ रत्ती दवा उलमुश्क मौत दिल जवाहर वाली ५ माशा अथवा खमीरा मखारीद २ माशा या खमीरा गाजवां अम्बरी ७ माशा में मिलाकर दें।

१४—गर्भवती का अंगघात (Palsy of the pregnant) हामिला का फालिज–

गर्भावस्था के कारण गर्भवती के चाहे जिस अंग विशेष का संज्ञा और चेष्टा नाश भी होजाया करता है। कभी कभी आभ्यंतरीय अंगों का घात यथा मूत्राशय और आंतों का भी घात होजाया करता है जिसके फलस्वरूप मल और मूत्र के रुक जाने से मल और मूत्र का विष रक्त में मिल कर विषमयता होजाती है जिसके कारण अनिद्रा, मूर्च्छा और प्रलापादि होजाया करते हैं और पावों पर शोथ भी होजाता है। इस प्रकार की अवस्था भयावह होती है इसमें गर्भपात कराने की नौबत आजाया करती है।

चिकित्सा–वृ० वातचिन्तामणि, योगेन्द्र रस, रसराजरस, बृहद् छागलादि घृत, इस रोग की महौषधि हैं तथा महामाष तैल और प्रसारिणी तैल मर्दनार्थ दें।

आधुनिक चिकित्सा—बेरिन १०० mg. की १ गोली तथा १०० मिलिग्राम का एक इन्जैक्शन नित्य १० से २० दिन तक प्रयोग करें।

गर्भावस्था में होने वाले रोग—

१–गर्भवती का ज्वर (Fever of the pregnant) हामिला का बुखार—

सगर्भा स्त्री को यदि ज्वर हो जावे और ज्वर तीव्र हो तो चन्द्रप्रभा वटी एक एक गोली शीतल जल में घिसकर तीन तीन घन्टे बाद दें या कामदुधा रस दें। इनके प्रयोग से ज्वर वेग कम होजाता है। इसके अतिरिक्त ज्वर नाशनार्थ गोदन्तीभस्म, सितोपलादि, रस सिन्दूर, सर्वज्वरहर लोह और शिलाजीत दें। निम्नलिखित क्वाथ पिलावें-गिलोय, धनियां, नीम की छाल, लालचन्दन और पद्माख प्रत्येक तीन तीन माशा और मुनक्का ७ दाने और उन्नाव ईरानी ५ दाने का क्वाथ बनाकर मिश्री मिलाकर प्रातः सायं पिलावें। इससे भी गर्भवती का ज्वर चला जाता है।

आधुनिक चिकित्सा—(१) क्यूनाइनवाई हाईड्रोब्रोमाईड मुख द्वारा या पेशी द्वारा (२) नीवाक्यूईन टेबलेट मुख द्वारा या नीवाक्यूईन पेशी द्वारा दें। उपरोक्त दोनों औषधियां गर्भवती जब तीव्र मलेरिया ज्वर के तीव्र कोप से पीड़ित हो तब प्रयुक्त करनी चाहिये। सामान्य ज्वरों में तो आयुर्वेदीय औषधि प्रयोग उचित है कारण गर्भावस्था में तीव्र औषधियों के प्रयोग से गर्भपात की आशंका रहती है।

२. गर्भवती का अतिसार (diarrhoea of the pregnant) हामिला के दस्त–

अतिसार की व्याधि जब सगर्भा स्त्री को होजावे तो उसे पूर्ण पथ्य पालन करते हुए रहना चाहिये। ऐसी अवस्था में कुपथ्य करने से या तो अतिसार बढ़ जाता है या अतिसार प्रवाहिका रूप में परिणत होजाया करता है जिससे गर्भपात होना सम्भव है।

पथ्य—साबूदाना, चावल का भात, मांसरस और अरारोट आदि हल्का और पौष्टिक आहार दें।

औषधि व्यवस्था—धान्यचतुष्क क्वाथ, अमृतार्णव रस (भैषज्य-प्रवाहिका) धान्य जीरक क्वाथ से दें या धान्यचतुष्क क्वाथ से दें या चाकपौडर (Pulvis creata aromaticus) दस दस ग्रेन की मात्रा में ३ या चार बार दें और यदि रोग का

वेग अधिक हो तो इसमें आधी रत्ती अहिफेन मिलाकर दें।

३. शोथ—गर्भवती का शोथ रोग—

गर्भावस्था में कभी कभी स्त्री को शोथ रोग भी होजाया करता है जिसकी चिकित्सा में बड़ी कठिनाई पड़ती है क्योंकि शोथ रोग में मलमूत्र के जुलाब कराने निहायत जरूरी होते हैं और सगर्भा स्त्री को यदि जुलाब करावेंगे तो उल्टी फायदे के बदले हानि होने की सम्भावना है अतः ऐसी अवस्था में पहिले यह विचार कर लेना चाहिये कि रोग का कारण क्या है।

यह रोग हृदय वृक्क और यकृत् के विकार से हुआ करता है। जब यह रोग हृदय के विकार से होता है तब पहिले पहिल पैरों पर शोथ होता है। ऐसी अवस्था में रुग्णा का अन्न बन्द करदें और दूध यवयूष तथा फलों का रस दें तथा औषधि रूपेण प्रभाकरवटी और मुक्तापिष्टी, प्रवालपिष्टी। तथा अकीक पिष्टी दें और अर्जुन छाल से सिद्ध किया दूध पिलावें।

जब यह रोग यकृत् विकार से होता है तब शोथ पहिले पेट पर आता है। इसमें भी पूर्वोक्त पथ्य पालन करते हुए रहना और नवायस लोह के साथ में स्वर्णबसन्त मालती का सेवन करना अत्युपयोगी है।

जब यह रोग वृक्क विकार जनित होता है तब शोथ पहिले नेत्रों पर आता है। ऐसी अवस्था में यदि मूत्र में ऐल्ब्यूमीन आता हो तो उसकी चिकित्सा करें नहीं तो लवण का त्याग कराकर आरोग्यवर्द्धिनी वटी का प्रयोग करायें।

४. गर्भवती की यकृत् वृद्धि—

गर्भवती की यकृत् वृद्धि में वही चिकित्सा करें जो यकृद्दाल्युदर में विहित है मुख्यकर पुनर्नवादि मंडूर और ताप्यादि लोह लौहासव से दें तथा लिवर ऐक्स्ट्रेक्ट, विटामिन बी १२ और फोलिक ऐसिड का पेश्यन्तर इन्जैक्शन दें। इस प्रकार प्रति चौथे दिन १० या २० इन्जैक्शन देनेसे आरोग्य लाभ होजाता है।

५. गर्भवती का अर्श रोग (*Piles of the Pregnant*)—

(१) मुरब्बा हरड़ या बादाम रोगन दें ताकि मलावरोध न रहे।

गुलखतमी ३ माशा, बीजरहित मुनक्का ७ नग, कासनी ६ माशा, गुलकन्द २ तोले का क्वाथकर छानकर ऊपर से ४ माशा खूबकलां छिड़क कर पिलावें। इससे भी मलावरोध दूर हो कर अर्श की व्यथा जाती रहती है।

(३) नीम की निबौली की गिरी मूली के रस में रगड़कर और थोड़ा कर्पूर मिलाकर मस्से पर लगावें।

(४) भांग को रगड़कर टिकिया बनाकर गुदा पर बांधें।

(५) केवल वैसलीन या गाल ऐंड ओपियम आइंटमेंट लगावें। इससे भी वेदना शांत होती और फूला हुआ मस्सा बैठ जाता है।

६. गर्भवती का मधुमेह (*Diabetes Mellitus of the pregnant*)–

गर्भावस्था में मधुमेह का विकार गर्भवती स्त्री और गर्भस्थ बालक दोनों के लिए भयप्रद होता है। अतः पूर्ण सावधानी के साथ मधुमेह अधिकारोक्त चिकित्सा करें।

७. गर्भवती का फिरङ्गोपदंश (*Syphillis of the Pregnant*)—

सगर्भा को जब यह रोग होता है तो बालक को भी हो जाता है। इस रोग से ग्रस्त माता को प्रायः गर्भपात ही हो जाया करता है और कदाचित गर्भपात न भी हो तो बालक इस रोग से ग्रस्त होता है।

चिकित्सा—गर्भवती को उन्नाव, लाल चन्दन और त्रिफला का क्वाथ मधु मिलाकर पिलाते रहें तथा स्थानिक उपचार जो जो निहित है करते रहें।

आधुनिक चिकित्सा—Diamine Penicillin के १२ लाख यूनिट के २ इन्जेक्शन प्रति सप्ताह ६ या ७ सप्ताह तक लगावें।

८. गर्भवती का यक्ष्मा रोग (*Phthisis of the Pregnant*)—

यहां पर यह वर्णन करना अभीष्ट है कि सगर्भा स्त्री को यक्ष्मा रोग भी साथ में हो तो गर्भावस्था में उसका क्या और किस विधि से उपचार करना चाहिए। इसके लिए प्रथम थोड़ा सा राजयक्ष्मा का परिचय दे देना उचित समझकर यहां पर लिखते हैं।

आयुर्वेद में रोग को शोष नाम से पुकारते हैं और यूनानी तिब्ब में इसे दिक़ कहते हैं। शोष का अर्थ है सूखना तथा दिक़ का अर्थ भी दुबला होना है। इसी प्रकार अंग्रेजी में इसे Phthisis कहते हैं। थाईसिस का अर्थ decline होना है। हमारे पूर्वाचार्यों ने जो इसके नाम शोष और क्षय आदि दिये हैं वे पूर्ण संगत हैं क्योंकि इस रोग में धातुओं का शोषण होता है इसलिये इसे शोष और शरीर क्रियाओं का क्षय होने के कारण इसे क्षय नाम दिया है। वैसे शोष और क्षय के अर्थ में कोई विशेष भेद भी नहीं है। आयुर्वेद में यह दो प्रकार से होना लिखा है—अनुलोम क्षय और प्रतिलोम क्षय। भावार्थ यह है कि किसी भी धातु का क्षय होना सब धातुओं और समस्त शरीर के क्षय का उत्पादक कारण होता है। यही बात आज का चिकित्सा संसार भी मुक्त कण्ठ से मान रहा है, इसके अतिरिक्त आजकल के नवीन अनुसंधान द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि इस रोग के उत्पादक भी एक विशेष प्रकार से कीटाणु 'जिन्हें Tubercle Bacilli कहते हैं' होते हैं।

ये कीटाणु शरीर के किसी एक भाग में चिरकाल तक बिना हानि पहुंचाये पड़े रहते हैं। जब तक इन कीटाणुओं से उत्पन्न विष या स्वयं कीटाणु रक्त में सम्मिलित नहीं होते तब तक तो इनसे कोई विशेष बाधा शरीर को नहीं पहुंचती है। हां जब इनका विष या ये स्वयं रक्त में मिल जाते हैं तब पूर्णतया रोग का आक्रमण होजाता है।

हमने इस रोग के मुख्य ६ भेद किये हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन और सगर्भावस्था मात्र का उपचार यथाक्रम नीचे लिखा जाता है—

(क) तीव्र राजयक्ष्मा (Acute phthisis-Pneumonic phthisis) शहीव सिल—

लक्षण—सर्दी लगकर ज्वर आना, कास, श्वास-कष्ट, पीले या हरे रंग का कफ निकलना, तापमान १०३ या १०४ होना तथा रात्रि के अन्त में ज्वर का अत्यधिक ह्रास तथा १० दिन के उपरांत भी ज्वर का लुप्त न होना बल्कि प्रबल हो जाना और स्वेदाधिक्य तथा खांसी में पीव मिला कफ निकलना आदि इसके समान लक्षण होते हैं। इस रोग से १५ से २५ वर्ष की आयु के व्यक्ति विशेष आक्रांत होते हैं।

चिकित्सा—गर्भिणी को जय मंगल रस, राज मृगांक, मुक्ता पिष्टी, प्रवालपिष्टी, शृंग भस्म, रससिंदूर और स्वर्ण भस्म में से किसी एक का या इनमें से कई एक के मिश्रण का प्रयोग अवस्थानुसार करावें।

पथ्य—बकरी का दूध, बकरी के मांस का रस सेव का रस, मौसम्बी का रस आदि

(ख) जीर्ण राजयक्ष्मा (Chronic phthisis) सिल मजमन।

यह रोग न्यूमोनियां, खसरा, इन्फ्लूएन्जा कास स्नायविक वेदना, चोट लगना, पार्श्वशूल (उरस्तोय), कंठ माला, और स्वर यंत्र के दोष से हुआ करता है।

लक्षण—इसमें कंधे, पसवाड़े, और हाथ पांव में सन्ताप होता है तथा रात्रि को स्वेद अधिक आता है। इस रोग की तीन श्रेणियां मानी हैं यथा—

पहली श्रेणी—इसे phthisis Incepunic कहते हैं। इसमें थोड़ी थोड़ी शुष्क कास होती है तथा ज्वर नाम मात्र को होता है।

द्वितीय श्रेणी (Phthisis Confirmata)—इसमें आंख कान हाथ पांव आदि में वेदना, कफ में पूय आना, नाड़ी गति तीव्र और ज्वर भी तीव्र होता है।

तृतीय श्रेणी (*Phthisis Desperata*)—इसमें सब लक्षण तीव्र होते हैं, फेफड़ों में गढ्ढे पड़ जाते हैं, कास, कफ, ज्वर और स्वेद की अधिकता होती है सगर्भा स्त्री को जब यह रोग हो तो उस अवस्था में उसे अभ्रक भस्म आधी रत्ती, रसिंदूर १ रत्ती, प्रवालपिष्टी २ रत्ती, सितोपलादि २ माशा गाय भैंस या बकरी के नवनीत के साथ दें और बृहत् छागलादि घृत रात्रि के समय दूध के साथ दें। इसके अतिरिक्त तीव्र राजयक्ष्माधिकारोक्त किसी भी औषधि का केवल रुग्णा के बलाबल और अवस्था का विचार कर निस्संकोच करा सकते हैं।

(ग) उरःक्षत (*Consumption tuberculosis of the lungs*) सिल—

इस रोग में केवल फेफड़े सब प्रथम रोगाक्रांत होते हैं। पहिले उनमें प्रदाह होकर फिर उनमें गढ्ढे पड़ जाते हैं। शेष ज्वर, कास, कफ, पूय, श्वास-कष्ट, स्वेदाधिक्य और शारीरिक धातुओं का क्षय आदि लक्षण होते हैं। सगर्भा की इस अवस्था में बृहत् छागलादि घृत, अजापंचक घृत, मृगांकरस आदि का प्रयोग अच्छा लाभ करता है। इसके साथ साथ स्वर्ण, अभ्रक और विषाण भस्म का मिश्रण दें या केवल विषाण भस्म दें। इससे कीटाणुओं का नाश होता है।

यदि स्वरभेद भी साथ में हो तो—यशदभस्म सितोपलादि में दें। यदि दाह अधिक हो तो रौप्य, यशद, मुक्तापिष्टी और प्रवालपिष्टी दें।

स्नायविक निर्बलता में—नागभस्म दें। मूत्र में दाह, पीलापन आदि हो तो चन्द्रप्रभावटी, शिलाजतु और चन्दनासव दें।

(घ) कण्ठमाला (*Glandular Tuberculosis Scrofula*) खनाजीर—

आजकल के वैज्ञानिक अनुसन्धान द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि यह भी यक्ष्मा रोग ही है। इस रोग में कण्ठ के दोनों ओर आचूषक ग्रन्थियों में शोथ होकर माला के सदृश ग्रन्थियां बन जाती हैं।

ट्यूबरक्ल बेसीलाई जब लसीका ग्रन्थियों या आचूषक ग्रन्थियों में पहुंच जाता है तब वे ग्रन्थियां रोगाक्रान्त हो जाती हैं। मगर जब तक ट्यूबरकल बेसीलाई उन ग्रन्थियों में ही सीमित रहते हैं तब तक तो रोग भी सीमित ही रहता है मगर जब उनका विष या वे स्वयं कीटाणु रक्त में सम्मिलित हो जाते हैं तब पूर्ण लक्षणयुक्त राजयक्ष्मा प्रगट हो जाता है।

कभी-कभी ये ग्रन्थियां पककर फूट जाती हैं और रोग विष बाहर निकल जाता है तो रोगी स्वस्थ भी हो जाया करता है।

जब सगर्भा स्त्री को यह रोग हो तो उस अवस्था में शिरीष बीज की गिरी २० तोला, कचनार छाल १० तोला और शहद ६ तोला—प्रथम कचनार छाल का वस्त्रपूत चूर्ण करें, तदनन्तर शिरीष बीज की गिरी को खूब खरल कर उसमें मधु मिलाकर अच्छी तरह घुटाई करें। बाद में कचनार छाल का चूर्ण मिला १२ घंटे घुटाई करके १५ दिन तक रखा रहने दें। तदनन्तर १ तोले की मात्रा में भोजन से पूर्व प्रातः सायं खिलाकर ऊपर से सांठ की जड़ ३ माशा, वरुण छाल ३ माशा और गोरखमुंडी ३ माशा का क्वाथ पिलावें।

लेप—५ तोले इकपोथिया लहसुन को सिल पर घोटें। बाद में उसमें ४ तोला वैसलीन मिलाकर पुनः घुटाई करें। इस मरहम की कागती लगाकर पट्टी बांधते रहने से १५ दिन से १ मास तक के समय में गांठों में मृदुता आकर बैठ जाती हैं तथा कुछेक पककर फूट जाया करती हैं। यह मरहम कीटाणुनाशक और कीटाणुजन्य विषनाशक है इसलिये इसके प्रभाव से विष और कीटाणुओं का नाश होकर दूषित रस शुद्ध हो जाता और पुनः रक्त में मिल जाता है।

(ङ) आंत्रिक यक्ष्मा (Intestinal tuberculosis, tabes mesentrica)—

जिस प्रकार रसायनीस्थ गल ग्रन्थियों में यक्ष्मा कीटाणु पहुंच कर कंठमाला रोग उत्पन्न कर देते हैं उसी प्रकार यक्ष्मा कीटाणु आंतों में पहुंचकर आंतों में स्थित आचूषक ग्रंथियों में संग्रहीत होकर वहां शोथ और गांठें उत्पन्न कर देते हैं जिसके कारण पेट में दर्द, दस्त, आंतों में व्रण और ज्वर हो जाते तथा रोगी दुर्बल होकर क्षय को प्राप्त हो जाता है।

गर्भावस्था में यह रोग होने पर संहजने के स्वरस को ७ भावना दी हुई कज्जली दो-दो रत्ती की मात्रा में मधु के साथ प्रातः सायं दें तथा ऊपर से संहजने की छाल का स्वरस १ चम्मच पिलावें तथा अन्य यक्ष्मा अधिकारोक्त सौम्य औषधियों (यथा स्वर्ण, प्रवाल, लोकनाथ रस) का प्रयोग करावें।

(च) व्यापक राजयक्ष्मा (General tuberculosis, Acute miliary tuberculosis) सिल आमा—

इस प्रकार का यक्ष्मा रोग विशेष रूप से फैलने वाला होता है। इसके लक्षण रक्त में पूय मिलजाने (पूयमयता) के लक्षणों के समान होते हैं।

इस रोग के मुख्य तीन भेद माने जाते हैं—

१. फुफ्फुसीय यक्ष्मा-इसमें फेफड़ों के आक्रांत होने के सब लक्षण पाये जाते हैं (Pulmonary-form)।

२. मस्तिष्कावरण प्रदाह जनित यक्ष्मा (Meningitic form)—इसमें मस्तिष्कावरण प्रदाह-जनित सन्निपात ज्वर के सर्व लक्षण पाये जाते हैं। इसे यूनानी तिब्ब में सिलसरसामी कहते हैं।

(३) आंत्रिक ज्वरीय यक्ष्मा (Typhoid form of tuberculosis)—इसमें आंत्रिक ज्वर के सब लक्षण मौजूद होते हैं। इसके अतिरिक्त जो जो शारीरिक अंग विशेष रूप से रोगाक्रान्त होते हैं उन्हीं के नाम से यक्ष्मा का नामकरण किया जाता है। जैसे—यकृदीय यक्ष्मा, प्लैहिक यक्ष्मा, स्वरयंत्रीय यक्ष्मा, वृक्कीय यक्ष्मा, त्वगीय यक्ष्मा आदि-आदि।

व्यापक यक्ष्मा रोग से पीड़ित गर्भिणी स्त्री को अभ्रकभस्म, स्वर्णभस्म, स्वर्णमृगांक, स्वर्णवसंतमालती प्रवालभस्म, मुक्तापिष्टी और कैंकड़ाभस्म आदि का प्रयोग कराते रहें। इससे रोग की वृद्धि नहीं होगी।

६. विसर्प (Erycepalas) सुर्खवाद—

आयुर्वेद में विसर्प रोग महा भयानक व्याधि लिखी है जो वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और द्वन्द्वज भेद से ७ प्रकार का लिखा है और इस रोग में सप्त धातुएँ दूषित होती हैं ऐसा माना है।

सामान्य लक्षण—त्वचा के ऊपर पतला सा शोथ होजाता है जिसके फल स्वरूप वेदना और ज्वर भी होजाते हैं।

कारण—आजकल इस रोग का उत्पादक स्ट्रेप्टोकोकस पायोजेनस नामक कीटाणु माना जाता है। इसीके समान इसका एक भेद Cellulitis और माना गया है।

स्ट्रेप्टोकोकस पायोजेनस नामक कीटाणु जब त्वचा के निम्न भाग में स्थित हो तन्तु समूह को भी रोगाक्रांत कर देता है तब इसे *Erycepelas Phlagmonous* या *cellulitis* कहते हैं।

यदि केवल विसर्प हो तो उस स्थान पर दबाव डालने से त्वचा की लालिमा लुप्त हो जाया करती है और दबाव हटा लेने से पुनः प्रगट हो जाती है मगर सेल्यूलाईटिस में चूंकि त्वचा से नीचे के भाग में उपसर्ग होकर निम्न भाग के तन्तु दूषित हो जाते हैं अतः दबाने से लालिमा लुप्त नहीं होती।

इस रोग का उपसर्ग त्वचा के द्वारा होता है। त्वचा पर जरासा भी जखम या रगड़ हो तो उसी के द्वारा उपसर्ग हो सकता है। इसके अतिरिक्त यकृत् और वृक्क के पुराने रोगी जिनका रक्त दुर्बल हो गया है या आमवात और वातरक्त के रोगी जिनके भोजन में जीवनीय तत्वों का अभाव रहता है ऐसे रोगी और अपवित्र रहने वालों को यह रोग अधिक होता है।

सगर्भा स्त्री को जब यह रोग हो तो उसे निम्न लिखित मुक्ता मिश्रण दें—

मुक्तापिष्टी १ ग्रेन, रससिंदूर २ ग्रेन, प्रवाल पिष्टी २ ग्रेन, सत्वगुडूची ५ ग्रेन। अनुपान—मधु से दिन में दो बार।

बाह्य प्रयोग—पारिभद्र वृक्ष के पंचाग का कल्क बनाकर चौगुने नारियल के तैल में यहां तक पकावें कि कल्क जल जावे। तब उस कल्क को भी तैल में घोटकर मरहम सी बनालें और यही मरहम विसर्प पर लगावें।

१०—गर्भवती का उन्माद *(Insanity of the pregnant)* हामिला का जनून—

उन्माद रोग का यदि पूरा पूरा वर्णन करने लगें तो एक पृथक ग्रन्थ तैयार हो सकता है। आयुर्वेद में और ऐलोपैथी तथा तिब्ब के अनुसार उन्माद के बहुत से भेद हो सकते हैं जिनका वर्णन यहां आवश्यक नहीं। यहां तो इतना ही वर्णन पर्याप्त होगा कि यदि गर्भावस्था में उन्माद रोग हो जावे तो क्या चिकित्सा करनी चाहिए जिससे गर्भस्थ बालक और गर्भिणी को कोई कष्ट न हो और रोगनिवृत्ति सुखपूर्वक हो जावे।

सर्व प्रथम यदि कोई विशेष कारण रोगोत्पत्ति का हो तो उसका पता लगाकर हेतु विपरीत चिकित्सा करें, स्वास्थ्य रक्षा के नियमों का पालन करायें। यदि मलावरोध हो तो वस्ति कर्म कराएं। पथ्य हल्का और पौष्टिक दें।

(१) शंखपुष्पी और ब्राह्मी का क्वाथ मधु मिलाकर दें।

(२) गाजवां, गुलगाजवां प्रत्येक ३ माशा, गुलाब के फूल, सेवती के फूल, आवरेशमकतरा हुआ प्रत्येक ६ माशा सब द्रव्यों को अर्क गाजवां ८ तोला और अर्क वेदमुश्क ४ तोला में भिगोकर और मल छानकर शर्बत सेब या शर्बत गाजवां मिलाकर और ऊपर से तुख्म करंज मुश्क ३ माशा छिड़क कर पिलावें।

११—गर्भवती का रक्तस्राव या गर्भपात —

गर्भवती को रक्तस्राव होना गर्भपात का सूचक होता है इसलिए सर्व प्रथम रक्तस्राव को रोकने का उपाय करना चाहिये नहीं तो गर्भपात हो जाता है।

सर्व प्रथम रुग्णा को आराम से लिटावें, कोई क्षोभक औषधि न दें तथा निम्नलिखित औषधि का प्रयोग करें—

मजीठ, वंशलोचन, दम्बुल अखबैन, स्वर्ण-गैरिक, गिलेअरमनी और छोटी इलायची समान भाग लें। सूक्ष्म चूर्ण करके इसे ६ माशे की मात्रा में शीतल जल से दिन में ३ बार दें। रक्त बोलपर्पटी (रसतंत्रसार) २ से ५ रत्ती की मात्रा में गुलकन्द के साथ दें, इससे रक्त स्राव बन्द होकर गर्भपात की आशंका जाती रहती है। इसके साथ तृणकांत मणि पिष्टी और प्रवाल पिष्टी मिला देने से इसके गुणों में वृद्धि होजाती है।

आधुनिक औषधियां—Coagulin 5 c. c. Injection, ईस्ट्रोजेनिक हार्मन्स और प्रोजेस्ट्रान का प्रयोग करें या मार्फिया का ¼ ग्रेन का इञ्जेक्शन दें।

और यदि गर्भपात हो जावे तो निम्नलिखित क्वाथ पिलाने से गर्भाशय शुद्ध हो जाता है।

(१) मुश्कतरामसी, अमलतास की फली का छिलका, खरबूजे का छिलका, गाजवां, खरबूजे के बीज, सौंफ, हंसराज प्रत्येक ७ माशा सब को कूटकर ३ पाव जल में पकावें। जब एक पाव जल शेष रहे तब छान कर शर्बत बजूरी या गुड़ मिला कर ४ या ५ दिन तक पिलाते रहें। गर्भपात होने पर ५ दिन तक रुग्णा को खाने को कुछ न दें यही

क्वाथ पिलाते रहें और जल के स्थान पर अर्क दशमूल या अर्क सौंफ और अर्क मरोह पिलाते रहें। तदनंतर हलका पथ्य दें और ४० दिन या दो मास तक गरिष्ट भोजन, अम्ल भोजन और मलावरोध कारक भोजन न दें और किसी प्रकार का परिश्रम भी न करने दें।

१२-गर्भवती का आनाह या मलावरोध (*Constipation of the Pregnant*) हामिला की कब्ज—सगर्भा स्त्री को मलावरोध हो जाने पर उसे सौम्य और अनुलोमक औषधियां दें, तीव्र रेचक औषधियों के प्रयोग से गर्भपात हो जाया करता है।

१—गुलकन्द गुलाब ३ तोला और मुरब्बा हरड़ १ नग रात्रि के समय खिलाकर ऊपर से गर्म दूध पिला देवें।

२—बादाम रोगन ६ माशा से १ तोला तक की मात्रा में रात्रि के समय गर्म दूध में मिलाकर पिला दें।

३—रोगन बेद अंजीर २ तोला रात को गर्म दूध में दें।

४—मग्ज फलूस खबार सब्ज ४ तोला, सुरंजबीन गुलकन्द ३ तोला, गुलाब ३ तोला को अर्क सौंफ ६ तोला और अर्क गुलाब ६ तोला में भिगो दें। १ प्रहर भीगने के बाद मसल कर और उसमें ५ या ७ गिरी बादाम की घिसकर मिलादें तथा रुग्णा को पिलादें। इस से तीव्र मलावरोध दूर होता है।

५—केस्टर आयल या रोगन जैतून पिलावें या वस्ति कर्म करें।

—प्रोफेसर श्री गंगाचरण शर्मा आयुर्वेदाचार्य
वैद्य मार्तण्ड, भिवानी।

गर्भावस्था पर विविध विद्वानों के परीक्षित प्रयोग

छर्दि—

(१) कपूर का अर्क, पिपरमेंट का अर्क, पुदीने का अर्क, इनमें में कोई भी एक वा सब का मिश्रण ५ बूंद से १० बूंद बतासे में डालकर खिलाने से वमन का वेग कम हो जाता है और धीरे धीरे बन्द हो जाता है।

(२) इलायची भूंजकर ४ रत्ती की मात्रा में शहद के साथ दिन रात में तीन चार बार चाटने से भी वमन का वेग तुरन्त रुक जाता है और धीरे धीरे बन्द हो जाता है। लौहपंचामृत (कांत लोहभस्म १ रत्ती, प्रवालपंचामृत २ रत्ती) का का सेवन कराना चाहिए। इससे यकृत् सबल हो जाता है और मन्दाग्नि दूर हो जाती है।

—श्री प्राणाचार्य हर्षुल मिश्र, रायपुर।

वमन—

चावल के धोवन में जायफल घिसकर इसमें नींबू का रस और मिश्री मिलाकर पिलाने से गर्भिणी स्त्री का जी मिचलाना अथवा वमन होना बन्द हो जाता है। यह हानिकारक नहीं है अतः जब आवश्यकता प्रतीत हो प्रयोग कर सकते हैं।

—श्री बब्बू भाई वैद्य
दाढ़ी, तहसील बमेतरा (दुर्ग)

गर्भिणी के शोथ में उपयोगी भात—

द्राक्षा, शालपर्णी, आंवला, बांसा, मुलेठी, श्वेत चन्दन, प्रत्येक ८-८ तोले लेकर कूटकर ८ सेर पानी में औटावें। जब एक सेर जल शेष रहे तो उतार कर इसमें एक सेर गौदुग्ध तथा एक सेर नारिकेलोदक मिलायें तथा इसमें आधा सेर चावल डालकर मन्द-मन्द अग्नि से पाक करें। जब भात बन जाये तो उतार कर ठंडा होने पर शोथ ग्रस्त गर्भिणी को खिलायें। इस भात को तीन दिन खिलाने से गर्भिणी के शोथ में पर्याप्त लाभ होता है।

—श्री कविराज दीनबन्धु पटेल A. B. S. S.
जुनानी, पो० हाडिपाली (सम्बलपुर)

सूतिका ज्वर

श्री घनानन्द पन्त विद्यार्णव

हमारे देश में सूतिका (सूत प्रसूत) नाम से ये रोग प्रचलित है। वास्तव में सूतिका एक रोग नहीं परन्तु कुछ लक्षण व उपसर्गों का मेल मात्र है। प्रसव के पश्चात् निर्धारित समय से (४५ दिन) पूर्व ही विस्तर से उठना परिश्रम व अनियमों के कारण से जो-जो उपद्रव होते हैं उन सबका वर्णन व चिकित्सा सूतिकान्तर्गत समझा जाता है। इस देश में अनेक स्त्रियां सूतिका रोग से आक्रान्त हो मृत्यु को प्राप्त होतीं हैं। एक बार इस रोग से पीड़ित होने पर इससे प्राण रक्षा होनी बड़ी कठिन होती है। यह बड़ा लम्बा रोग है। रोगी दिन-दिन कमजोर, कङ्काल होकर मर जाता है।

कारण—ऐलोपैथिक मत से—विषाक्त जीवाणु शरीर में प्रवेश कर मस्तिष्क हृदय, उदर व वस्ति में आक्रमण करते हैं। आयुर्वेद मतानुसार—प्रकुपित वायु नवप्रसूता स्त्री के स्रुत रक्त को रुद्धकर हृदय मस्तिष्क व वस्ति में शूल उत्पन्न करता है। अनुचित आचरण और जिन-जिन कारणों से सब वातादि दोष उत्पन्न होते हैं ऐसे कार्य कारणों से विषमाशन अपक्व भोजन व अजीर्ण के रहते भोजन करना आदि कारणों से जो-जो रोग होते हैं उन सबकी सूतिका व्याख्या समझनी चाहिए। सूतिका रोग दो प्रकार का होता है। १–शुष्क सूतिका २–सशोथ सूतिका।

१–शुष्क सूतिका—सूतिका दिन प्रति दिन सूखती जाती है। कोष्ठ काठिन्य अर्थात् दो तीन दिन बाद टट्टी होती है, मन्द-मन्द ज्वर रहता है अजीर्ण, खट्टी डकार, अग्निमांद्य, मुख, जिह्वा ओठों के भीतर, जिह्वा के दोनों ओर, बीच में जीभ के नीचे घाव, तथा गले में भी घाव होते हैं, यकृत में पीड़ा होती है, चेहरा फीका होता है, आंखों के कोने, ओष्ठ, अंगुलियों के अगले सिरों में रक्त की कमी होती है अर्थात् रक्ताल्पता, पांडुता, किसी-किसी को प्रति अमावस्या व पूर्णिमा को ज्वर होता है। यह ज्वर १०३°-१०४° तक होता है। दो तीन दिन तक रहता है। इस समय मुख के घाव बढ़ जाते हैं। जिन स्त्रियों को प्रसव के दो एक मास बाद मासिक होने की आदत होती है मासिक धर्म बिल्कुल बन्द हो जाता है। अग्निमांद्य के व मुख में घाव होने के कारण रुग्णा भोजन नहीं कर सकती, दिन पर दिन कमजोर होती जाती है। इस समय यदि अच्छी चिकित्सा न हो तो इतनी दुर्बल हो जाती है कि उठ बैठ नहीं सकती और जो ज्वर पहिले कम होता था अब अधिक और चौबीसों घण्टे रहता है। क्रमशः फुफ्फुस आक्रान्त होकर क्षय रोग से मृत्यु हो जाती है।

२–सशोथ सूतिका—इसमें प्रथमावस्था में हाथ पांव शरीर में ऐंठन, ज्वर, कम्प, पिपासा, गात्रदाह इत्यादि लक्षण प्रकट होते हैं। क्रमशः अतिसार दिन भर में दस बारह बार पतले पानी से दस्त होते हैं। शूल, आध्मान, बलक्षय, अरुचि शोथ अर्थात् हाथ पांवों में शोथ होता है। इस अवस्था में पांडु के सारे लक्षण प्रकट होते हैं। इस प्रकार की सूतिका थोड़े दिन के भीतर ही मर जाती है।
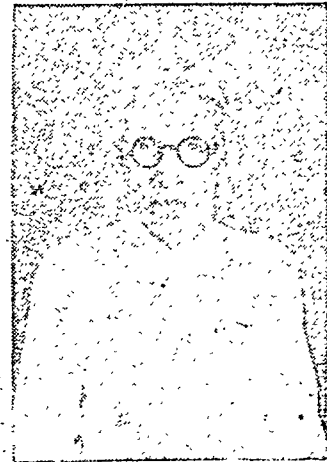
चिकित्सा—

चुपचाप आराम से लेटे रहना। प्रातः सायं दुग्ध प्रचुर लघु भोजन। दलिया, साबूदाना सूजी की खीर, समयोचित फलों का सेवन।

औषधि—प्रतापलंकेश्वर रस दो रत्ती की मात्रा में प्रातः सायं अदरक का रस १-२ तोला मधु मिलाकर दें। इससे पेट साफ न हो तो एक बार पेट साफ होने की कोई और दवा प्रथम दो चार दिन देनी चाहिए। वैसे आर्द्रक स्वरस अनुपान से टट्टी साफ होती है। प्रतापलंकेश्वर का पाठ—

सूताभ्रगन्धोषणलोह शङ्ख
वन्योपला भस्म विषं सुपिष्टम्।
एकेन्दुचन्द्रानल बाण कुम्भी-
कलैकभागं क्रमशो विमिश्रम्॥

पारा १ भाग, अभ्रक १ भाग, गन्धक १ भाग, काली मिर्च ३ भाग, लौह भस्म ५ भाग, शंखभस्म ८ भाग, अरने उपलों की राख १६ भाग, विष १ भाग। प्रक्रिया—पारद गन्धक की मसृण कज्जली बना काली मिर्चों को दो तीन मुट्ठी लेकर तीन सेर जल में छोड़ दें जो डूब जाय उनको निकाल सुखा कर कपड़छन चूर्ण कर लें। जङ्गली उपलों को भस्म करने से पहिले देख लें कि मिट्टी धूल आदि न लगी हो। फिर उनकी राख बनाकर कपड़छन कर रख लें एवं विष को शुद्ध कर इमामदस्ते में कूटकर थोड़े पानी में भिगो दें, दो घंटे बाद जब विष भीग जाय केवल विष को खूब घोट ले तब फिर इसमें सब दवा मिला पुनः घोटें। यह योग वंगसेन का है। सूतिका रोग में वृद्ध वैद्यों की सिद्ध दवा है।

दूसरा योग (शार्ङ्गधर)—लवंगादि चूर्ण यथा—लौंग, कपूर, छोटी इलायची के बीज, दालचीनी, नागकेसर (नागकेसर नैपाल या अल्मोड़े की तरफ से आता है। याद रहे नागकेसर बाजार में सूखी कौंपल जैसी नकली भी मिलती है) जायफल खस, सौंठ, काला जीरा, अगरु, वंसलोचन (वंसलोचन भी आजकल असली के नाम पर नकली चल रहा है खासकर अमृतसर के व्यापारी वंसलोचन में धोखा देते हैं) पीपल छोटी ये सब समभाग कपड़छन चूर्ण बनाकर लें। फिर कपूर को थोड़े चूर्ण में धीरे-धीरे मिलाकर घोट लें। जब मिल जाय तब सारे चूर्ण में मिलाकर सब चूर्ण का आधा मिश्री का चूर्ण मिलाकर थोड़ी देर घोटकर (कपूर उड़ न जाय इस विचार से) बोतल या डिब्बों में अन्दर रखें। मात्रा—६ माशा से १ तोला, प्रातः सायं गाय के दूध से। इससे भूख लगती है, अन्न में रुचि होती है, तृप्तिकर है, त्रिदोषघ्न है, बल देता है। हां प्रसूता के रोगों का ठीक निदान न भी हो सके तो इससे लाभ होता है, कोई हानि नहीं। बल्कि इस चूर्ण को प्रसव के दस पन्द्रह दिन बाद चालीस दिन तक खिलाने से प्रसूता के रोग नहीं होते। दशमूल की तरह यह भी प्रसूता के रोगों का प्रतिरोधक है। इससे यदि बच्चेदानी का संकोच ठीक न हुआ हो सूजन, शोथ, जलन, किसी हिस्से में टेढ़ापन हो तो वह भी दूर होता है। यह भी प्रसूता के रोगों में समय पर दिया जाय तो एक सिद्ध औषधि है।

एक और योग वज्रकाञ्जिक—

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यं शुण्ठी यमानिका।
जीरके द्वे हरिद्रे द्वे विडं सौवर्चलं तथा।
एतैरेवौषधैः पिष्टैरारनालं विपाचयेत्।
एतदामहरं वृष्यं कफघ्नं वह्निदीपनम्।

पीपल छोटी, पीपलामूल, चव्य, सौंठ, अजवायन, जीरा सफेद, हल्दी, दारुहल्दी, विडनमक कालानमक। इनके चूर्ण से क्षीरपाक विधि से काञ्जिक पाक करें।

काञ्जिक बनाने की विधि—सेर चावल तथा दो सेर मूली के टुकड़े कर सोलह सेर जल में मिलाकर रखदें। जब कुछ दिन बाद जल खट्टा हो जाय तब काञ्जिक बन गई समझें। काञ्जिक बनाने की अन्य विधियां भी हैं जैसे—

कुल्माष धान्य मण्डादि संधितं काञ्जिकं विदुः।

यहां शार्ङ्गधर ने—कुलमाश डालना लिखा है।

रस ग्रन्थों में जो काञ्जिक विधान है वह पारद शोधन के लिये हैं।

पिप्पलीमूलादि चूर्ण को काञ्जी में क्षीर पाक विधान से पका छान कर बोतलों में भरलें। मात्रा से प्रातः सायं सकल्क काञ्जिक पिलावें। आमहर है, वृष्य है, भूख लगाता है, मक्कल शूल दूर करता है, सूतिका को भूख लगाता है तथा दूध को बढ़ाता है, बच्चेदानी को स्वस्थ कर देता है। यह योग स्व. डा० किरणचन्द्र घोष भूतपूर्व प्रौफेसर कलकत्ता मैडीकल कौलेज ने अपनी स्त्री रोग नामक पुस्तक में दिया है। इससे इसकी उपयोगिता और भी अधिक सिद्ध होती है। आजकल निदान के बहुत सुभीते हैं। प्रसूता के रोग होने पर अच्छा निदान करवालें। जहां निदान का सुभीता न हो वहां इन प्रयोगों को कुछ काल तक प्रयोग करें लाभ होता है।

—साहित्याचार्य वैद्य घनानन्द पन्त विद्यार्णव,
आयुर्वेद वृहस्पति D. Sc. A.
३१०१, बाजार सीताराम, देहली-६

सूतिका ज्वर

श्री विद्याभूषण वैद्य

सूतिका ज्वर के विषय में कुछ भी लिखने से प्रथम यह आवश्यक जान पड़ता है कि सूतिका शब्द का अर्थ अधिक स्पष्ट कर दिया जाय। सूतिका शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है इस पर विचार करना अभिप्रेत है शास्त्र में सूतिका की परिभाषा करते हुये लिखा है—

प्रसूता सार्धमासान्ते दृष्टेवा पुनरार्तवे।
सूतिका नाम हीनास्यादिति धन्वन्तरेर्मतम्॥

अर्थात् सन्तानोत्पत्ति के डेढ़ महीने बाद अथवा फिर मासिक धर्म प्रारम्भ होने पर जननी सूतिका नहीं रहती। दूसरे प्रकार से यों कह सकते हैं कि बच्चा पैदा होने के बाद माता डेढ़ माह तक अथवा फिर ऋतुमती होने तक सूतिका रहती है।

यावन्न दृश्यते पुष्पं यावत् वाक्षीरपोऽर्भकः।
सूतां प्रजायनीं विद्यान्मासा नष्टा दशैवतु॥
तस्मिन् यो जायते व्याधिः सस्मृतः सूतिकागदः।

अर्थात् जब तक रजोदर्शन न हो अथवा बालक दूध पीता रहे अथवा दस माह तक की अवधि तक जननी को प्रसूता कहते हैं और इस बीच में जो व्याधि होती है उसे सूतिका रोग कहते हैं इन। दोनों मतों का संग्रह करने पर चार बातें प्रकाश में आती हैं—

१—डेढ़ माह तक जननी प्रसूता रहती है।

२—पुनः रजोदर्शन तक प्रसूता रहती है।

३—जब तक बालक दूध पीता है प्रसूता रहती है।

४—प्रजनन के पश्चात् दस माह तक प्रसूता रहती है।

विचार—नं. २ अर्थात् पुनः रजोदर्शन के विषय में आपत्ति यह है कि समय निर्धारण बिलकुल अनिश्चित है। सबका रजोदर्शन काल एक सा नहीं होता, कई मातायें तो प्रजनन के पश्चात् नियम पूर्वक ऋतुमती होती रहती हैं, कई साल डेढ़ साल बाद होती हैं, अनेक जब गर्भधारण योग्य होती हैं तब होती हैं इस प्रकार यह नियम ठीक नहीं है।

नं. ३ अर्थात् बालक के दूध पीते रहने वाली बात भी बड़ी चक्कर में डालने वाली है। साधारण

बुद्धि वैद्य कुछ भी न समझ पावेगा और चिकित्सा में वृथा विलम्ब करेगा अथवा अव्यवस्थित चिकित्सा करेगा। कोई कोई बालक तो ३-४ वर्ष की अवस्था तक दूध पीते रहते हैं यदि इस वैकल्पिक उदाहरण को छोड़ भी दिया जाय तो भी २-२½ वर्ष तक प्रायः जिनके इस बीच में दूसरा बालक नहीं होजाता है, पीते रहते हैं। इसलिये इस नियम में भी अनिश्चितता की मात्रा कम नहीं है।

अब नं. १ तथा नं. ४ इन दो में डेढ़ तथा दस माह तक की बात कही गई है। डेढ़ माह के पश्चात् भी प्रजनन अवयवों (बच्चा पैदा करने वाले अथवा इस कार्य में सहायता देने वाले शरीर के भागों) में कुछ अस्वाभाविकता बनी रह सकती है क्योंकि गर्भधारण काल से लेकर प्रजनन समय तक अर्थात् दस माह के समय में प्रजनन अवयवों में जो परिवर्तन हुये हैं उनको फिर अपनी स्वाभाविक अवस्था में लाने के लिए और उन अवयवों को पुनः उस योग्य बनाने के लिए कम से कम उतना तो समय चाहिये ही इस लिये दस माह वाली बात अधिक युक्तियुक्त तथा बुद्धिग्राह्य है। दस माह पश्चात् ऐसी किसी बात की आशंका नहीं है-मेरी बात की पुष्टि इससे भी होती है कि शास्त्रकार भी अथवा अथवा करके तीसरी और अन्तिम सम्मति यही रखते हैं। आशा करता हूँ कि अन्य समर्थ और साधिकार विद्वान् इस विषय पर अधिक प्रकाश डालेंगे।

निदान—

मिथ्योपचारात् संक्लेशाद्विषमाजीर्ण भोजनात्।
सूतिकायाश्च ये रोगा जायन्ते दारुणास्तुते ॥

अर्थात् सूतिका को भोजन देने तथा उसके रहने की व्यवस्था में गड़बड़ होने से (सूतिका को क्या क्या भोजन देना चाहिये और क्या नहीं देना चाहिये इस विषय पर इसी लेख के अन्त में पथ्यापथ्य शीर्षक के अन्तर्गत विचार किया गया है अतः यहां छोड़े देता हूं) अथवा उसको कोई अन्य कष्ट होने पर उसका अनुचित उपचार करने से उसको किसी प्रकार का मानसिक क्लेश होने पर अथवा ऐसा अन्न या विहार सेवन करने से जिससे वातादि दोषों के बढ़ने की आशंका हो—विषम भोजन से (सम शब्द का दो प्रकार से अर्थ किया जासकता है-एक तो नित्य नियत समय पर भोजन करना दूसरा नियत परिमाण में भोजन करना इन दोनों नियमों को भंग करके भोजन करने को विषम भोजन कहते हैं) उपरोक्त कारणों से सूतिका को अनेक रोग होते हैं। यह रोग बड़े कठिन और कठिनता से ठीक होने वाले होते हैं।

विकृति विज्ञान—

बालक के पैदा होते समय अगर बालक के सिर से कोई रसौली छिल जाती है या जेर नाल भीतर रह जाता है अथवा मैला खून या अन्य कोई पदार्थ जिसका सामान्य अवस्था में गर्भाशय से निकलना आवश्यक है गर्भाशय में रह जाता है तो इन सब कारणों से गर्भाशय में एक प्रकार का विष पैदा हो जाता है। समय पर चिकित्सा न होने से अथवा ठीक चिकित्सा न होने से यह विष सारे शरीर में फैल जाता है। यह विष वायु को विकृत करता है और वायु पित्त तथा कफ को दूषित करके (एकः प्रकुपितो दोषःसर्वानेव प्रकोपयेत् —अर्थात जब एक दोष कुपित हो जाता है तो वह सब दोषों को कुपित कर देता है) ज्वर आदि भयानक रोग उत्पन्न करता है। यहां एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यह जो विष उत्पन्न होता है वह रोग के उत्पन्न करने में निमित्त कारण है ऐसा डाक्टर बन्धु मानते हैं। वास्तव में यह बात नहीं है यह निमित्त कारण नहीं वरन् अप्रत्यक्ष उपादान कारण है और थोड़ा विचार कर लीजिये—यह विष जिसे टाक्सिन (Toxin) कहा जाता है किसी स्थान विशेष पर पहुंचकर वहां के तन्तुओं में यदि परिवर्तन या विकृति कर सकने में समर्थ हुआ तब तो रोग हो जाता है अन्यथा यह इसी अवस्था में पड़ा रह कर निष्क्रिय हो जाता है यह भी डाक्टर बन्धु स्वीकार करते हैं किन्तु

हमारा कहना यह है कि देखिये यदि ऐसी बात है कि समर्थ होने पर ही रोग करता है तो यह हमारे निदान कोटि में आता है। यदि निदान (मिथ्या आहार विहारादि) सेवन वातादि दोषों को कुपित करने में समर्थ होगया तो रोगोत्पत्ति होगी अन्यथा नहीं। यह नहीं हो सकता कि वातादि दोष कुपित हों और रोग न हो। विष भी वास्तव में तन्तुओं में परिवर्तन कहिए या वातादि को कुपित करना कहिये करता है तभी रोग उत्पन्न होता है, स्वयं रोग के उत्पन्न करने में सर्वथा असमर्थ है।

लक्षण—

सूतिका ज्वर को सूतिका रोग भी कहते हैं। वास्तव में यह दोनों शब्द पर्यायवाची हैं। सूतिका को अन्य कोई भी कष्ट हो तो साथ में ज्वर अवश्य होगा इसीलिये तो इसे सूतिका ज्वर कहते हैं। ज्वर के लक्षणों के अतिरिक्त अन्य अनेक स्वतन्त्र लक्षण होते हैं यथा गर्भाशय में शोथादि इसलिये कतिपय विद्वान इसे सूतिका रोग कहते हैं केवल नाम का भेद है, कारण लक्षण और चिकित्सा में कुछ भी अन्तर नहीं है।

१—इस रोग के प्रधान लक्षणों में शरीर टूटना, तीव्र ज्वर, शरीर कांपना, अधिक प्यास, शरीर का भारी होना, शोथ (गर्भाशय, फेफड़े तथा यकृत् इन सब में हो सकता है) वेदना (उदर, कटि, नाभि से नीचे गर्भाशय प्रदेश में, शिरः शूल, वक्ष स्थल प्रभृति स्थानों में एवं अतिसार मुख्य हैं। कहीं कहीं बिवन्ध (टट्टी न होना, या खुश्क होना अथवा अत्यल्प होना और पेट में भारीपन रहना) भी होता है। पेट में अफरा, बल की कमी, तन्द्रा, अरुचि तथा प्रसेकादि वात श्लेष्म जन्य लक्षण भी पाये जाते हैं।

२—बालक पैदा होने के प्रायः दूसरे दिन यह ज्वर चढ़ता है। इसमें तापमान १०२ अंश से लेकर १०६ अंश तक हो जाता है। गर्भाशय प्रदेश में (नाभि और मूत्र मार्ग के बीच में) अधिक वेदना होती है। यह वेदना सारे शरीर में फैल जाती है, रोगिणी प्रलाप करती है, आखें भीतर घुस जाती हैं, भ्रम होता है, पतले दस्त होते हैं, दुर्बलता अत्यधिक हो जाती है, वमन होती हैं, जिह्वा पर मल जमा हो जाता है, स्तनों का दुग्ध नष्ट होजाता है। उचित चिकित्सा न होने पर रोगिणी शीत लग कर मर जाती है। मरते समय जिह्वा रूखी तथा काली हो जाती है।

३—इस रोग में गर्भाशय विशेष रूप से आक्रान्त होता है। उसमें शोथ हो जाता है। कभी कभी अनावश्यक रूप से सिकुड़ जाता है और उसकी दीवालें ढीली हो जाती हैं। अगर बालक के गर्भाशय से बाहर आते समय योनि बालक के सिर से छिल जाती है तो वहां पीव पैदा हो जाती है। छिलने की बहुत अधिक सम्भावना रहती है क्योंकि शरीर के जितने भी छिद्र या द्वार हैं उनकी त्वचा श्लेष्मिक झिल्ली से ढकी रहती है और मखमल की तरह मुलायम होती है—मुंह, नाक, उपस्थ, गुदा, योनि इन सब की त्वचा एक सी ही होती है। उचित चिकित्सा न होने पर १५ दिन में कभी कभी २ इससे भी शीघ्र जगह जगह पीव पड़ जाती है, बार २ जाडा लगता है, जोड़ों में सूजन आकर उनमें भी पीव पैदा हो जाती है। यहां तक कि कभी कभी आंखों में भी पीव पैदा हो जाती है जिससे प्रसूता अन्धी हो जाती है।

चिकित्सा—

इस रोग का चिकित्सा सूत्र तो इतना ही है कि "सूतिका रोग शान्त्यर्थं कुर्याद्वातहरीं क्रियाम्" अर्थात् सूतिका रोग की शान्ति के लिये वातहर क्रिया करनी चाहिये। चरक का कथन है—

शाखागताः कोष्ठगताश्च रोगाः,
मर्मोर्द्ध्व सर्वावयवांगजाश्च।
ये संति तेषां नहि कश्चिदन्यो
वायोः परं जन्मनि हेतुरास्ति॥

अर्थात् हाथ पैरों के रोग, कोष्ठगत रोग

(मस्तिष्क, फेंफड़े, हृदय, उदरादि स्थानों के रोग) मर्म स्थान के रोग (कण्ठ, हृन्मर्म आदि) ऊर्ध्व अंगों के रोग, सारे शरीर के रोग हों अथवा किसी एक अङ्ग के चाहे कुछ भी रोग हों और शरीर के चाहे जिस अङ्ग के हों उनकी उत्पत्ति में वायु को छोड़ कर अन्य कोई कारण नहीं है।

माधव निदानकार वात व्याधि निदान में लिखते हैं—

देहे स्रोतांसि रिक्तानिपूरयित्वाऽनिलो बली।
करोति विविधान् व्याधीन् सर्वाङ्गैकाङ्ग संश्रयान् ॥

अर्थात् शरीर के खाली गह्वरों को भरकर वायु सारे शरीर में अथवा शरीर के एक भाग में रोग पैदा करता है। स्पष्ट है जब तक बालक माता के गर्भाशय से बाहर आता है तो उस बालक द्वारा खाली हुए स्थान को वायु तुरन्त घेर लेता है अतः विशेषतः सूतिका रोग में वातहरी क्रिया करनी चाहिये। इस विषय को और भी स्पष्ट किया है—

पृथिव्यां पतिते वत्से योनौ पिण्डनमिष्यते,।
अप्रवेशो यथा वायोस्तथा संरक्षण क्रिया ॥

अर्थात् बालक के पृथ्वी पर आते ही जनन मार्ग और गर्भाशय प्रदेश को दबाना चाहिये और वह क्रिया करनी चाहिये जिससे वायु का प्रवेश न हो। यहां आयुर्वेद के "यथा वायोः" वाक्य का इतना ही अभिप्राय है कि अतिरिक्त या विशेष वायु का प्रवेश न हो सामान्यतः जितनी होनी चाहिये उतनी तो प्रवेश करेगी ही वह तो अनिवार्य है। उसको न रोका जा सकता है न रोकना अभीष्ट ही है।

औषधि चिकित्सा—

१—दशमूल क्वाथ, दशमूलारिष्ट (सामान्य अवस्था में)।

२—विबन्ध होने पर (१) हिंग्वादिवर्ति (चक्रदत्त) (२) प्रतापलंकेश्वर रस ३-३ रत्ती प्रातः सायं (३) दशमूलारिष्ट १।-१। तोले बराबर पानी मिला कर दोपहर सायं भोजन के बाद।

(४) देवदार्वादि कषाय—अर्थात् देवदारु, घुड़वच, कूठ कड़ुआ असली, पीपल बड़ी या छोटी, सौंठ, चिरायता, कायफल, नागर मोथा, कुटकी, धनियां पुराना, हरड़ बड़ी, गजपीपल अथवा बड़ी पीपल, छोटी कटेरी, गोखुरू, धमासा या जवासा, बड़ी कटेली, अतीस कड़वी, गिलोय, काकड़ासिंगी तथा स्याह जीरा यह सब द्रव्य समभाग लेकर जौकुट करलें।

मात्रा—१ तोला लेकर १ पाव पानी में मिट्टी के वर्तन में पकावें। पकते समय वर्तन का मुंह खुला रहे। जब १ छटांक रहे तो भुनी हींग १ रत्ती तथा नमक लाहौरी ४ रत्ती डालकर पिलावें।

गुण—यह क्वाथ सूतिका को पिलाने से शरीर के किसी भी स्थान का दर्द, खांसी, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, कांपना शिर में दर्द होना, प्रलाप, प्यास की अधिकता, दाह, तन्द्रा, अतिसार, वमन आदि से संयुक्त वात, पित्त तथा कफ अलग अलग अथवा मिलाकर तीनों दोषों वाला सूतिका रोग निश्चय शान्त होता है। यह क्वाथ सूतिका रोग की परम औषध है (परीक्षित है) अथवा—

संयोजितो दलितया कणया कवोष्णो,
निर्गुण्डिकालशुन नागरजः कषायः।
पीतो निहन्ति कफ मारुत कोपजातं,
सूत्यामयं सकलमेव सुदुस्तरं च ॥१॥

अर्थात्—संभालू की जड़ अथवा छाल १ तो०, सौंठ ६ माशा, लहसुन ३ माशा—इन सब का ½ सेर जल में क्वाथ करें, ½ पाव रहने पर ४ रत्ती छोटी पीपल का चूर्ण डालकर पिलावें। वात-कफ प्रधान सूतिका रोग में अत्यन्त लाभकारी है।

अतिसार अथवा प्रवाहिका होने पर—

प्रातः, दोपहर, सायं सर्वांगसुन्दर रस अथवा (महागन्धक) रसेन्द्रसार संग्रह (अतिसार अधिकार) ६-६ रत्ती की मात्रा में मधु से देना अकेला ही पर्याप्त है। सब उपद्रवों सहित रोग को समूल नाश करता है।

यदि नाभि के नीचे गर्भाशय प्रदेश में मृदु, मध्यम या तीव्र शूल हो तो सर्वांग सुन्दर रस के साथ ही दशमूलारिष्ट की भी व्यवस्था करनी चाहिए। गर्भाशय प्रदेश पर महानारायण तैल गरम करके मलवाना चाहिए। क्योंकि—

"नास्ति तैलात्परं किञ्चदषौधं मारुतापहम्।"

—चरक

अर्थात् वायु रोग के लिए तैल से बढ़कर कोई अन्य औषधि नहीं है।

नोट—दशमूलारिष्ट के स्थान पर दशमूल क्वाथ का भी प्रयोग किया जा सकता है।

उपरोक्त चिकित्सा पद्धति के ध्यानपूर्वक अवलम्बन करने से कभी भी विफल मनोरथ नहीं होना पड़ेगा ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

मैं तो सामान्य अवस्था में भी जब केवल थोड़ा सा ज्वर हो इसी सर्वांग सुन्दर रस तथा दशमूलारिष्ट का प्रयोग करता हूं। अवस्थानुसार मात्रा में परिवर्तन अवश्य कर देता हूं। आज तक कभी भी असफल नहीं हुआ हूँ।

पथ्यापथ्य—

प्रसूतायुक्तमाहारं विहारं च समाचरेत्।
व्यायामं मैथुनं क्रोधं शीतसेवां च वर्जयेत्॥
मिथ्याचारात्सूतिकाया यो व्याधिरुपजायते।
स कृच्छ्रसाध्योऽसाध्यो वा भवेत्पथ्यं समाचरेत्॥

अर्थात् प्रसूता के लिए उचित भोजन तथा रहन सहन की व्यवस्था करनी चाहिए। व्यायाम (अर्थात् सामर्थ्य से अधिक परिश्रम मानसिक या शारीरिक यथा अधिक बोलना, अधिक उठना, बैठना इत्यादि) पतिप्रसंग, क्रोध करना, शौच, हाथ पैर धोने तथा पीने में शीतल जल का प्रयोग इन सब का प्रयत्नपूर्वक त्याग करे। सूतिका को इस प्रकार गड़बड़ करने से जो रोग पैदा होते हैं वह कठिनता से ठीक होने वाले अथवा न ठीक होने वाले होते हैं।

लगभग एक माह तक दूषित रक्त निकल चुकने पर प्रसूता को चिकना, अग्नि दीपक, वातकफ नाशक, हितकारी और हलका भोजन देना चाहिए यथा—पुराने चावल का भात, परवल, कच्चे केले का शाक, मसूर, बैंगन अनार आदि। नित्य पसीना लेना चाहिये। नित्य तैल की मालिश करानी चाहिए। दस दिन तक पीपल, तुलसीपत्र डालकर औटाया दूध पीना चाहिए। यह सामान्य अवस्था का पथ्यापथ्य है।

प्रसूता को घृत एवं दुग्ध का सेवन अधिक कराना चाहिए। घृतयुक्त पेया या यवागू का सेवन हितकारी है। ज्वरादि होने पर फटे हुए दूध का पानी थोड़ा बूरा डालकर उत्तम रहता है अथवा गौदुग्ध भी अच्छा है। फटे दूध का जल जिसे शास्त्र में मोरट नाम दिया है अतीव उपकारी है—

मुखशोषतृषादाह रक्तपित्त ज्वर प्रणुत्।
लघुर्बलकरो रुच्यो मोरटः स्यात्सितायुतः॥

अर्थात् मुख का सूखना, अधिक प्यास लगना शरीर में जलन होना तथा रक्तपित्त और ज्वर को शान्त करता है। मिश्री मिलाकर मोरट हलका है। भोजन पर रुचि लाने वाला है और बलकारी है।

साठी चावल का मण्ड भी सैंधव युक्त अथवा सितायुक्त इच्छानुकूल दिया जा सकता है—

क्षुद्बोधनो वस्ति विशोधनश्च प्राणप्रदः शोणित वर्द्धनश्च, ज्वरापहारी कफपित्त हन्ता वायुं जयेदष्ट गुणोहि मण्डः।

अर्थात् भूख को लगाता है, मूत्रमार्ग और मूत्राशय को शुद्ध करके पेशाब तथा टट्टी साफ लाता है। शक्ति देता है। शरीर में रक्तवृद्धि (खून की बढ़ोत्तरी) करता है। ज्वर का नाश करता है। कफ पित्त को हरण करता तथा वायु को शान्त करता है। इस प्रकार मण्ड में आठ गुण है।

गौदुग्ध सर्वोत्तम निरापद सर्वसम्मत आहार है।

—श्री विद्याभूषण वैद्य
घण्टाघर जनपथ, एटा।

प्रसूत ज्वर

श्री शेख फय्याज खां

स्त्रियों को प्रसूतिकाल में कभी-कभी यह रोग बड़ा कष्टदायक होता है। परन्तु आजकल कुछ अज्ञानता या दाई की गलतियोंसे भी हुआ करता है। यह ज्वर छूत के कारण से भी हुआ करता है। दाई यदि एक प्रसूता के घर से कार्य करके दूसरे स्थान पर प्रसूता के पास पहुंचती है तो पहली का रोग दूसरी प्रसूता के भी होने की सम्भावना रहती है।

घर वालों की अज्ञानता अथवा दाई के अनाड़ीपन के कारण प्रसव में विलम्ब के कारण भी यह रोग हो जाया करता है। प्रसव विलम्ब के समय दाइयां हाथ डालकर या मिडवाइफ या डाक्टर के शस्त्र प्रयोग पर कुछ स्थानों में गर्भाशय छिल जाने की सम्भावना भी रहती है। ऐसे अवसर भी आते हैं कि बच्चा गर्भाशय के भीतर स्थानच्युत होकर आड़ा हो जाया करता है या सिर के स्थान पर हाथ आदि आकर अटक जाया करता है। इस प्रकार प्रसव विलम्ब के कारण प्रसूता को महान कष्ट उठाना पड़ता है।

एक प्रकार का विष गर्भाशय में गोल कीटाणुओं द्वारा जो बिन्दु के आकार के होते हैं उनके कारण से होता है। ये गोल कीटाणु शीघ्रता से बढ़ने लगते हैं और बढ़ोत्तरी का सहायक तरल पदार्थ भी छोड़ते रहते हैं। यही तरल पदार्थ इन गोल कीटाणुओं का पोषक परन्तु प्रसूता के लिए विष होता है।

कुछ लोगों का मत था कि कण्ठ झिल्ली की सूजन (डिफ्थीरिया) के कारण या शीतला के कीटाणु शरीरस्थ होने के कारण से प्रसूता को ज्वर होता है। परन्तु मुख्य कारण दो ही ज्ञात हो पाये हैं जो प्रमाणिक हैं।

(१) प्रसूता के गर्भाशय का प्रसव के पश्चात् शीघ्रता से सिकुड़ना और इस संकुचन कार्य के होते होते गन्दा तरल पदार्थ या खेड़ी, आंवल का या उसके कुछ अंश का भीतर रह जाना और सड़ान पैदा करके विषाक्त प्रभाव उत्पन्न करना।

(२) प्रसव के विलम्ब होने पर कृत्रिम उपायों द्वारा शस्त्र प्रयोगों की खराश और गर्भाशय की सूजन होना।

इसके अतिरिक्त शारीरिक परिश्रम या प्रसवकाल में होने वाली वेदनाओं में शरीर पर अधिक जोर पड़ना और कमजोरी उत्पन्न हो जाना भी एक कारण है।

कभी-कभी प्रसव विलम्ब होने से भ्रूण की मृत्यु होना और स्त्री का शोकातुर होना भी स्वाभाविक ही है। ऐसी अवस्था में प्रसूता को ज्वर हो जाया करता है।

कभी-कभी प्रसूता स्वस्थ होती है परन्तु दुष्टरज जो सप्ताह भर तक या अधिक समय तक जारी रहता है उसमें कमी आना कारण होता है। यह सर्दी आदि के प्रभाव से भी होता है और बेकार भाग जो निकलना चाहिये था वह कम निकलने लग जाना तथा बादमें कुछ समय पश्चात् दुर्गंधयुक्त स्राव होने लगे तो समझ लेना चाहिये कि प्रसूत ज्वर होने की सम्भावना है और इस बात की सूचना है कि 'खेड़ी' या 'रक्त के जमे लोथड़े' गर्भाशय में शेष

चित्र–८३

रह गये हैं वे निकलना चाहते हैं। इसलिए शीघ्र ही कृमिनाशक घोल द्वारा गर्भाशय को धोना आवश्यक है। यदि सर्दी के कारण प्रवाह में कमी आ गई है और वस्ति द्वारा गर्भाशय धोना सम्भव न हो सके तो बड़े बर्तन में उष्ण जल में कृमिनाशक घोल मिलाकर प्रसूता को बिठाना चाहिए। ऐसे छोटे बर्तन प्रत्येक घर में पर्याप्त होते हैं। (चित्र ८३)। पेडू पर सेक करना भी प्रवाह में सहायक होता है।

प्रसूत ज्वर—यकायक प्रारम्भ हो जाता है। तापक्रम १०२ और कभी इससे अधिक। किसी को जाड़ा लगकर और किसी को बिना जाड़ा लगे ही ताप बढ़ जाता है। ताप १०५ और कभी और भी अधिक। अलग-अलग परिस्थितियों के अनुसार लक्षणों में भी अन्तर रहता है।

प्रसूत ज्वर में गर्भाशय में पीड़ा होती है। शारीरिक अशक्ति से कभी प्लीहा वृद्धि भी देखी गई है।

नाड़ी—नाड़ी की गति का विशेष ध्यान रखना चाहिए। प्रति मिनट १२० गति होती है और असाध्यावस्था में १७० तक भी बढ़ सकती है। इसलिए ताप का विशेष ध्यान रखने से भी अधिक नाड़ी पर चौकसी से ध्यान रखना चाहिए।

प्रसूत ज्वर और सन्निपात ज्वर में भेद-ज्वर कितना ही अधिक हो प्रसूता प्रलापावस्था को प्राप्त नहीं होती। सन्निपात ज्वर में रोगी को आस-पास के वातावरण का भान नहीं होता अपनी धुन में बकता है। परन्तु प्रसूत ज्वर में प्रसूता असाध्यावस्था में भी अन्त समय तक पूर्णतया बात का उत्तर देती रहती है। गर्भाशय के भाग की पीड़ा से चीस के कारण भले ही कुछ हैरानी हो सकती है।

जिह्वा—तरल रसदार होती है कभी आमाशय के प्रभाव से मैली भी हो जाती है। पाचन क्रिया का भी विशेष ध्यान देने की सूचना देती है।

स्वेद-पसीना ज्वर की न्यूनाधिकता के प्रभाव से कम और अधिक होता रहता है परन्तु स्वेद साधारणतया अधिक ही निकलता है।

अन्य लक्षणों में—अतिसार या वमन भी हो सकते हैं। पेट की झिल्ली के कारण (सूजन के कारण) या प्रसूता को पहले ही की अम्ल पित्त की प्रकृति होने के कारण उबकाई और छर्दि वेग भी हो सकता है।

मुख—दुर्गन्धयुक्त होता है।

त्वचा-स्वेद की अधिकता से कभी-कभी चर्म रोग फुंसियां और दाने भी निकल सकते हैं। कुछ प्रभाव सुजाक के कारण शरीर में पहले का प्रभाव हो तो उसके प्रभाव से भी त्वचा रोग बढ़ सकता है। अन्य उपद्रवों के लक्षणों पर विचार करके मूल कारणों को खोज निकालना चिकित्सक की योग्यता तथा अनुभव पर निर्भर है।

उदाहरणतः—मलावरोध, मूत्रावरोध, गर्भाशय-शोथ, वमन, अतिसार, शरीर पर दाने आदि का विचार करके कार्य करना चाहिए।

प्रसूत ज्वर की असाध्यावस्था—(१) दुर्गन्धयुक्त श्वास (२) अतिसार (३) प्रवाहिका (४) त्वचा का रंग बदलना (५) गर्भाशय में शोथ (ऊपर पेडू पर कोमलतापूर्वक दबाकर जांच करिए-पीड़ा होगी परन्तु पीव पड़ने पर शून्यता भी आ सकती है और पीड़ा का अनुभव कम होता है)। (६) रक्तस्राव दुर्गन्धयुक्त (७) अतिसार और रक्तस्राव के रुक जाने के कारण पेट फूलना और चीसें और फिर नाड़ी गति बढ़ते-बढ़ते शून्यता की ओर और नाड़ी लोप भी हो सकती है। (८) नाड़ी लोप के साथ तापमान गिर कर मूर्च्छा और मृत्यु भी हो जाती है।

कभी प्लीहा बढ़ने के साथ गर्भाशय शोथ और दोष बढ़कर सन्निपात के भी कुछ लक्षण हो सकते हैं। कभी-कभी स्राव में कमी पड़कर प्रसव के सप्ताह भर बाद ज्वर हो जाता है जो इतना घातक रूप नहीं पकड़ता। गर्भाशय की शुद्धि के बाद स्वस्थ हो जाती है।

प्रसूतज्वर पर मेरे अनुभव —

(१) प्रसूता—गंगाबाई रामाजी ओढ़ की लड़की, रंगाजी की स्त्री, आयु २५ वर्ष (ओढ़ जाति मिट्टी खोदने का कार्य करने वाले) ग्राम-भीनमाल (मई १९५९)।

पूर्व उपचार—एक आयुर्वेदिक नामधारी (एलोपैथ) द्वारा केवल एक इन्जेक्शन जिसके फलस्वरूप निम्न उपद्रव तथा लक्षण—

देह में जलन, त्वचा पर फुंसियां, खाज, गर्भाशय में सूजन, थोड़ा पीत रंग का स्राव, जिह्वा मैली, श्वास गन्धयुक्त, ज्वर १०५, सर दर्द, इन्जेक्शन के स्थान पर (कूल्हा) ग्रेग्रीन (शोथ युक्त) दांतों में पीस आदि, कब्ज, मूत्रमें जलन।

मैंने इसे पहले अश्वचोली रस द्वारा कोष्ठ शुद्धि, पोटाशियम परमैंग्नेट के उष्ण जल द्वारा पिचकारी दी गई। प्रोकेन पेनसिलीन १ इन्जेक्शन, सुबह शाम दशमूल क्वाथ।

दूसरे दिन—दशमूल क्वाथ, घृतकुमारी का २ सी० सी० का इन्जेक्शन तथा त्रिभुवन कीर्ति-रस २ वटी, ३ बार तथा दांतों के लिए पो० प० के कुल्ले, कायफल का नस्य (ज्वर गया)।

तीसरे दिन—रास्नादि क्वाथ, त्रिभुवन कीर्ति रस ३ बार। स्राव अधिक, मुख में कुल्ले की दवा और नस्य। फल-सरदर्द, ज्वर आदि मिट गये।

चौथे दिन—स्राव में शुद्धता, गर्भाशय का दर्द बिल्कुल नहीं। केवल भूख लगने के लिए रसोन (लसहुन) का १ सी. सी. का इन्जेक्शन और रास्नादि क्वाथ दिया गया और पांचवे दिन दवा कोई नहीं दी गई।

(२) रोगिणी—गवरीबाई, आयु ३० वर्ष, ग्राम-कोड़ी (भीनमाल) (सन्त गुलाबदास जी की स्त्री)। वर्तमान रोग कटिग्रह गठिया परन्तु फिर उरुस्तम्भ असाध्य (मार्च १९५९)

उक्त रोगिणी को भी अनाड़ी वैद्यराज द्वारा इर्गापाइरीन (Irgapyrin) दिया गया था। जिसके कारण उरुस्तम्भ हो गया। मूल कारण गर्भाशय रोग, प्रसूत ज्वर, खेड़ी न गिरना था। परन्तु कुछ ठीक होने के बाद जोड़ों में दर्द और कमर में दर्द रहता था। रोगिणी चल फिर कर गृह कार्य कर लेती थी। परन्तु ८ मास बाद उक्त इन्जेक्शन लगाते ही रात भर में नीचे का धड़ बेकार हो गया था। फिर भी वही वैद्य इस इर्गापाइरीन को देते गये और यही दवा गोली के रूप में देते गये। शरीर जकड़ता गया और पैर तन कर पेट से लग गये जो दो आदमियों द्वारा दबाकर सीधे करने पर भी फिर सिकुड़ जाते थे। चोकलेट और इच्छाभेदी रस के बिना शौच लगती ही न थी। इसके कारण यकृत् शोथ भी होने लगा। रोगिणी खाट से उठ भी न सकती थी। ऐसी अवस्था में मुझे दिखाया गया परन्तु मैंने इसे हाथ में न लिया। मूल कारण ज्ञात करने पर उसके पति को मैंने राय दी कि इर्गापाइरिन इन्जेक्शन और टिकिया बन्द करो और गर्भाशय की शुद्धि तक याने मासिक धर्म के होने तक 'महारास्नादि क्वाथ और विषगर्भ तैल' के प्रयोग की विधि बतलादी गई थी और रोगिणी को स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण का प्रयोग करते रहने को कहा। रोगिणी को अपने ग्राम ले गये थे परन्तु अब ज्ञात हुआ कि वह स्त्री बैठे बैठे कुछ सरकने लग गयी। पूछने पर ज्ञात हुआ कि मासिक स्राव चालू होने के कारण रोग हल्का हो गया।

(३) रोगिणी—माली गणेश की स्त्री, आयु २५, भीनमाल "वर्तमान रोग पक्षाघात', मुंहटेढ़ा, लार टपकना, सिर भारी, दिन रात पड़े रहना, दूसरों के आश्रित उठना बैठना, मूत्र में जलन, कभी मलावरोध २ वर्ष से बेकार। मूल कारण—(२ वर्ष पूर्व) प्रसूतावस्था में ज्वर, गर्भाशय की खराबी, अपतन्त्रक, अपस्मार और फिर पक्षाघात।

पूर्व उपचार—अन्धविश्वास के कारण, तन्त्रविद्या वालों के चक्कर में घर बर्बाद कर दिया। सब ओर से निराश होकर मेरे पास आये। मैं उसकी दुख गाथा सुनकर रोगिणी को देखने १ मील दूर उसके खेत पर गया। रोगिणी को उठाकर लाया गया। मुंह से लारें और दुर्गन्ध, आंखें बन्द शरीर बेकार लटकते अंग देखकर घबरा गया, परन्तु फिर भी हस्तरेखा तथा नाखूनों की स्थिति देखकर मैंने उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया।

चिकित्सा—पहले दिन—(१) नस्य और (२) मेग्ने-शिया और कुमारी आसव तीन खुराक तथा (३) प्रोकेन पेन्सलीन (इन्जेक्शन)। सुबह उठकर उसका पति आया कि आज उसने चेतनापूर्वक उठने का प्रयास किया, कोष्ठ शुद्धि हुई और आंखें खोलकर खाने को मांगा है। (खाने को पतला पेय गेहूं का दलिया दिया गया)

दूसरे दिन—घृतकुमारी २ सी. सी. इन्जेक्शन, कुमारी आसव, लवणभास्कर चूर्ण तथा नस्य (काय-फल) विषगर्भ तैल की मालिश और आक की जड़ वाली मिट्टी को गर्म करके सेकन किया गया और कुमारी आसव २ दिन तथा चूर्ण २ दिन तक दिया।

चौथी बार (३ दिन बाद)—विषतिन्दुक वटी भोजन के बाद (२ गोली) प्रतिबार, रास्नादि क्वाथ, *Nux* Vomica (कुचीले का) इन्जेक्शन (सिन्हा को लहरिया सराय) और आक के पत्तों का पानी तिल तैल में पकाकर और विषगर्भ तैल के बराबर मिलाकर मालिश और सेकन। मूत्र की सफाई के लिए आनन्दभैरव रस तथा नवसादर ½ रत्ती। इस प्रकार नक्स वोमिका के इन्जेक्शन सप्ताह में एक बार और रास्नानि क्वाथ तथा विषतिन्दुक वटी हमेशा मालिश तथा सेकन क्रिया चालू रही।

दूसरे सप्ताह के अन्त तक रोगिणी चलने फिरने लग गई, बच्चों को संभालना भोजन बनाना आदि आरम्भ कर दिया और यहां तक कि खेत में पूरे वर्षाकाल में पति के साथ काम किया। वर्षा के पानी में भीगने और पथ्यादिक पालन न करने के कारण बायें हाथ की अंगुलियां कभी कभी तन जाती और फिर मेरे पास लाया गया। मैंने उसे Camphor in Ether का इन्जेक्शन दिया और कपूरादि तैल, तिल तैल में मर्दन करने के लिए दिया और वही आधा पौंड रास्नादि क्वाथ सेवन कराया गया। अब बिल्कुल ठीक है। दो वर्ष बाद चलने फिरने लगजाने के कारण लोग आश्चर्य करने लगे हैं।

प्रसूता को अन्य रोग भी होने का खतरा है—

(१) खतरनाक प्रसूतज्वर—शरीर में विष बढ़ जाना, गर्भाशय में कठिन पीड़ा, गर्भाशय के मुख पर घाव, ज्वर का ताप अधिक, नाड़ी की गति अधिक, पेट फूलना, अतिसार, सन्निपात लक्षण, प्लीहा तथा यकृत् शोथ ३-४ दिन बाद रोगिणी की मृत्यु हो जाती है।

इसका दूसरा भेद भी है जिसमें ज्वर शीत-युक्त होता है। प्लीहा आदि में कहीं भी शोथ नहीं होता परन्तु गर्भाशय में अटके लोथड़े सड़कर उनका विष शरीर में रक्त पर प्रभाव करके शरीर पर प्रभाव करता है और शीत ज्वर का धोखा हो जाता है। ज्वर उतरता चढ़ता है। इसमें पहले की भांति खतरा नहीं होता।

(२) प्रसूतज्वर अधिक काल तक रहने के कारण फेफड़े की झिल्ली तक शोथ होने के कारण प्लूरिसी के कारण पूययुक्त प्रसूत ज्वर के साथ साथ अन्य भागों में प्लीहा यकृत् स्थान पर शोथ होकर पीव पड़ जाती है।

(३) पेडू की झिल्ली की सूजन—प्रसूतकाल के कुछ बाद होने वाला रोग है। एक सप्ताह बाद तक यह उपद्रव बढ़ता है। आंतों आदि से विष एक भाग में एकत्रित होकर सूजन आती है। भाग के भीतर से परीक्षा करने पर गर्भाशय के पार्श्व भाग में सूजन ज्ञात होती है। कभी कभी सूजन

बढ़कर गर्भाशय को ढकेल कर दबा देती है और उसके कार्य (दूषित रक्त प्रवाह) रोक देती है और सूजन बढ़ जाने से बाहर से भी ज्ञात हो सकती है।

तापमान १०५ तक भी होता है। पेडू में असह्य पीड़ा होती है। नाड़ी १३० से भी अधिक गति पर होती है। जाड़ा देकर ज्वर चढ़ता है और पेट की निचली झिल्ली फट जाती है। वमन होने लगती हैं। मूत्राशय भी सूज जाता है। जांघों में भी पीड़ा होती है और असाध्यावस्था में रोगिणी का अन्त हो सकता है। प्रातः काल कुछ कम ज्वर परन्तु पसीना अधिक चढ़ता है। शीत ज्वर का ताप बढ़ने का कारण पीव बढ़ने का चिन्ह समझना चाहिए।

कभी कभी ज्वर कम होने लगता है तो शुभ लक्षण है अर्थात् सूजन कम होते ही गर्भाशय से बेकार भाग निकलने लगते ही विष का वेग कम होते ही दोष घटने लग जाते हैं।

पीव बनी रहने में ज्वर बना रहता है और फिर पीव ग्रंथि फूटती है तो या तो बड़ी आंत में या मूत्राशय में या भग नासा में फूटती है।

तनिक विचार करने से ज्ञात होता है कि साधारण ध्यान रखने से सब खतरे बच सकते हैं।

(१) प्रसव के पश्चात् स्तन शोथ, या ज्वर हो तो तुरन्त समझना चाहिये कि छूत के कारण या असावधानी के कारण विष शरीर में घुस गया है और स्तन के दूध में और रक्त स्राव में कमी इसकी पूर्व चेतावनी है और दुर्गन्धयुक्त स्राव रोग की पूर्ण प्रकोपावस्था बताता है।

इसलिए सावधानी रखना अनिवार्य है। प्रसव बाधा उत्पन्न होने पर अन्य दोषों से भी सचेत होना चाहिये। इसके पहले दाइयां यदि चतुर हों तो शरीर को गर्मी पहुंचाने वाले क्वाथ आदि देकर रक्त संचार में सहायता देकर प्रसव की कठिनाई दूर कर सकती हैं।

यदि शस्त्र प्रयोग की आवश्यकता पड़ ही जाय तो यथा सम्भव कृत्रिम उपाय कम से कम काम में लावें। यदि यह न हो सके तो कीटाणुनाशक घोल आदि से छूत रोगों की रोक थाम सारी बुराइयों से बचा लेंगे।

प्रसवावस्था में पहले से ही ध्यान रखना चाहिए कि प्रसूता शक्तिहीन न होने पावे। प्रसव विलम्ब के समय कुछ उपाय इस प्रकार करें—

(१) गाजर के बीज आदि का क्वाथ या गर्म दूध या रास्नादि क्वाथ आदि पिलावें। अजवाइन, सोये आदि का काढ़ा दिया जा सकता है।

(२) मलाशय और मूत्राशय खाली करना जिससे नसों का तनाव कम पड़ कर प्रसव में आसानी आजाती है।

(३) एनीमा द्वारा गुदा में गर्म पानी, साबुन घोल युक्त यदि मलावरोध हो तो अवश्य दें।

(४) 'प्रसवा'—(कपास मूल सत्व का इन्जैक्शन) दें।

(५) अधिक वेदना हो तो नींद का उपाय करें ताकि प्रसूता कमजोर न हो और जगते ही प्रसव वेदनाऐं यकायक जोर करने से शीघ्र प्रसव होने में सहायक बनेंगी।

(६) पिच्यूट्रिन का इन्जैक्शन (अरगट नहीं)

(७) कलमीशोरा १ तोला शहद में मिलाकर चटायें और गर्म जल पिलावें।

ध्यान रहे कि प्रसव वेदना आरम्भ करने के लिए ही पिच्यूट्रिन का इन्जैक्शन दिया जाता है। बालक बाहर निकलना आरम्भ हो जाय तो यह इन्जैक्शन कदापि न दें।

ग्रामीण दाइयां केवल काढ़ा पिलाकर और धीरे धीरे मर्दन करके भी प्रसव कराने में सफल हो जाती हैं। प्रसव के पश्चात् खेड़ी (मैली आदि) न गिरे तो ऊपर से दबाकर और स्त्री को खड़ा करके दाई अपने सर से दबाकर स्राव में सहायता देती हैं और कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर लेती हैं। परन्तु फिर भी कभी कभी बुरे लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

—श्री शेख फय्याज खां आयुर्वेद विशारद
भीनमाल (जालौर)

सूतिका-सन्निपात-ज्वर चिकित्सा

[१]

श्री डा० सन्तोषकुमार जैन M. Sc. A., A. M. S.

इस भयंकर व्याधि का ठीक निर्णय होने के बाद इसकी चिकित्सा अत्यन्त सावधानी एवं ध्यान पूर्वक करने में कभी भी आलस्य नहीं दिखाना चाहिए। बाह्य कारणों को दूर करने का आवश्यक प्रयत्न करना चाहिए। प्रसव होने के पूर्व सब साधन अच्छी तरह जुटा लेने चाहिए। प्रसूतालय बाल प्रजनन सम्बन्धित उपकरणों में सुसज्जित अच्छा स्वच्छ सुन्दर और शास्त्रोक्त लक्षणानुसार बना लेना चाहिए। प्रसूति चिकित्सक दाई और नर्स एवं विशोधित औजारों का प्रबन्ध भी अच्छी तरह से कर लेना जरूरी है। जीवनीय, बृंहणीय और वातहर औषधियों का संग्रह प्रथम ही कर लेना आवश्यक है। वेदना शामक औषधियों में भारंगी, पीपलामूल अजवायन और उत्तम सुरा, मृत संजीवनी कमरे में रख लेना अच्छा है। भूत-बाधा को दूर करने के लिए, अगर, चन्दन, कपूर, देवदारु, राल, तगर और कचूर की धूप बनाकर प्रयोग के लिये रख लेते हैं। वायु शोधन और कीटाणु नाश के लिए सरसों, नीमपत्र, गंधक, लोबान, सरसों, एवं राई का तैल और राई आदि को प्रसूतालय में जलाने के लिए इकट्ठा कर लेते हैं।

गर्भिणी को प्रसव के पूर्व बल्य, हृद्य एवं सुपाच्य भोजन देकर स्वस्थ रखना चाहिए। जनन संस्थान की अन्तस्थ परीक्षाएं जहां तक हो सके बहुत ही कम करनी चाहिए और गर्भिणी के साथ प्रसव के अन्तिम दिनों में कभी भी संभोग नहीं करना चाहिए जिससे जीवाणुओं को संक्रमण करने का कभी भी मौका न मिल सके। प्रसव से पूर्व जननसंस्थान के बाह्य भाग को साफ करके विसंक्रामक विलयनों से जैसे पारद लवण के विलयन से, कार्बोलिक या लाइसोल या डिटोल के विलयन से विसंक्रमित कर लेना चाहिये।

स्थानिक संक्रमण की दशा में गर्भाशय को उत्तेजित करके उसके संकोचों को बढ़ा देना चाहिये जिससे कि गर्भाशय में स्थित गलित एवं विषाक्त अपरा इत्यादि के भाग बाहर निकल जावें तथा गर्भाशयस्थ व्रण भी साफ हो जावे। इसके लिये 'गुह्य रोगे च तत् सर्वं कार्यं सोत्तर बस्तिकं' के शास्त्रोक्तानुसार क्षीरीवृक्ष कषाय का या व्रण शोधन द्रव्यों के कषाय का लवण विलयन या मृदु संक्रामक विलयन का अथवा दशमूल कषाय का या केवल १०५ से ११० डिग्री तापमान के उष्णजल की आधा गेलन प्रमाण की उत्तर बस्ति देवें। जब योनि से पूययुक्त स्राव होता है तो उत्तर बस्ति देना आवश्यक ही होता है। इससे व्याधि की वृद्धि रुक जाती है और गर्भाशयस्थ क्षत साफ होजाते हैं। पूय भी बनना रुक जाता है एवं रक्त का शुद्ध संचार होने लगता है। उत्तर बस्ति के बाद कभी कभी बलातैल, वाग्भट्टोक्त वृहद् सहचर तैल का गर्भाशय में अन्तः क्षेप करने या पिचुधारण करने से काफी लाभ होता हुआ देखा गया है। यदि वेदना अधिक बढ़ जाय और कमर में दर्द होने लगे तो इसका प्रयोग करके

बला तेल ही लगावें। नाभि के नीचे बस्ति प्रदेश पर सरसों को पीस गरम करके प्रलेप करें तथा वातघ्न द्रव्यों से स्वेदन करें। त्रिफला क्वाथ का आच्योतन देना या उदुम्बरसार को गरम पानी में घोल कर उससे आच्योतन करना एवं उत्तर बस्ति देना भी श्रेयस्कर सिद्ध हुआ है।

यह तो सर्व संगत सिद्धान्त है कि सूतिका सान्निपातिक ज्वर वात प्रधान होता है अतः वात नाशक स्वेदन, बलातैल, लाक्षादि तैल, हेम सुन्दर तैलादि की मालिश, प्रलेप एवं औषधि आदि देना श्रेयस्कर है। वातदोष नाशक क्रिया में दशमूल का क्वाथ बना कर उसमें गौघृत मिलाकर मन्दोष्ण पान कराने से अथवा दशमूल की औषधियों के साथ गौ दुग्ध को पकाकर उसमें मिश्री मिलाकर पान कराने से प्रसूता के समस्त उपद्रव निःसंदेह शान्त हो जाते हैं। यह क्वाथ प्रसूता के लिए अमोघ उपाय है और प्राण संजीवन देने वाला है। शास्त्र में कहा भी है कि—

"सिद्धं द्विपंचमूलाभ्यां पयः शर्करया युतम्।
सूतिकोपद्रवान्हन्ति पीत मात्रं न संशयः॥

आन्तरिक अशुद्धता को दूर करने के लिये एवं जेर आदि अवांछनीय वस्तुओं को गर्भाशय से बाहर निकालने के लिए "देवदार्व्यादि क्वाथ" प्रसिद्ध शास्त्रोक्त योग है। इसके देने पर प्रसूताको किसी रोग का आक्रमण नहीं होता है और इसके जन्तुघ्न होने के कारण गर्भाशयादि जनन संस्थान के अंगों में किसी भी प्रकार से पूयमयता नहीं उत्पन्न होती है और न रक्त जन्तुओं के विष से दूषित हो पाता है। इस तरह यह प्रसूता के सम्पूर्ण दोषों को शमन करके बल देता है।

प्रातः काल 'देवदार्व्यादि क्वाथ' शास्त्रोक्तानुसार बनाकर उसमें भुनी हींग १ रत्ती और सेंधानमक का चूर्ण २ रत्ती मिलाकर पिलाना चाहिए। इससे प्रसूतज्वर तथा प्रसूत रोग के उपद्रव-शूल, खांसी, श्वास, ज्वर, मूर्च्छा, कम्प, शिरःशूल, प्रलाप, तृष्णा, दाह, तन्द्रा, अतिसार, वमन तथा पित्त और कफ से उत्पन्न हुए समस्त रोग शान्त हो जाते हैं। वास्तव में देवदार्व्यादि क्वाथ प्रसूतिका रोग में बहुत ही उत्तम साबित हुआ है।

गर्भाशय स्थित क्लेद यदि जल्दी ही बाहर निकाल दिया जाय तो प्रतापलंकेश्वरस्थ वत्सनाभ कज्जली और चित्रक विशेष कार्यकारी होने से योग्य अनुपान द्वारा शुरू से आखिर तक देते रहने से रुग्णा को फायदा होता जाता है और प्रातः सायं प्रतापलंकेश्वर के साथ त्रिभुवनकीर्ति २ रत्ती, चित्रक चूर्ण १ माशा मिलाकर देने से एवं भोजनोपरांत दोपहर रात में दशमूल क्वाथ या चिरायता क्वाथ ४-४ तोले की मात्रा में देते रहने से व्याधि नष्ट करने में पर्याप्त सहायता मिलती है।

मैंने अपने अनुभव द्वारा इस रोग में प्रतापलंकेश्वर रस २ रत्ती, हिंगुलेश्वर २ रत्ती, शीतभंजी रस २ रत्ती, इन तीनों को एकत्र मिलाकर ३ मात्रा बना सुबह दोपहर एवं शाम को घी के साथ दिया है ऊपर से दशमूल क्वाथ २ तोला पिलाया है। इस योग को सूतिका रोगों को दूर करने में अति लाभदायक पाया है।

सूतिका रोग में रुग्णा की आन्तरिक प्रतिकारक शक्ति बढ़ाना आवश्यक हो जाता है क्योंकि इसके अभाव में पुनः पुनः कुछ समयान्तर से सूतिका ज्वर आजाया करता है और दिनों दिन स्वास्थ्य क्षीण होता जाता है। इसके लिए निम्नोक्त योग लाभप्रद है—मल्ल १ तोला, वत्सनाभ ३ तोला, प्रवालभस्म ४ तोला, कज्जली ४ तोला, शिलाजीत ४ तोला, त्रिफला ८ तोला, व्योष ८ तोला, गुग्गुलु ८ तोला, इनको एकत्र करके कड़वे निम्ब की अन्तः छाल के कषाय की २१ भावना देकर त्रिफला क्वाथ की भी २१ भावना देनी चाहिए। इसको यथावस्था एवं यथा मात्रा में दशमूलारिष्ट के साथ देना उपयुक्त है। वैसे दशमूलारिष्ट का भोजनोत्तर २-२ तोले की मात्रा में ताजा जल के साथ मिलाकर

लक्षणानुसार प्रयोग करते हैं।

इस सन्निपात ज्वर में उपद्रवों को नष्ट करने के लिए सदैव सतर्क रहना चाहिए क्योंकि उपद्रवों के अभाव में तो इस सन्निपात के साध्य होने की बहुत कुछ आशा रहती है। यदि उपद्रव उत्पन्न हों तो उनकी चिकित्सा दोष दूष्य तारतम्य देखकर यथावस्था करनी चाहिए।

विबन्धावस्था में एरण्ड तैल १ से २ तोला दशमूल क्वाथ में मिलाकर दें अथवा अभयादि मोदक दशमूल क्वाथ से दें।

सर्वांगमर्दावस्था में—महायोगराजगुग्गुल या समीरगज केशरी या वातगजांकुश १-१ गोली दशमूल क्वाथ से देते हैं और सारे शरीर पर महानारायण तैल, बला तैल, दशमूल तैल या महामाष तैल की मालिश करवाते हैं। दाह विशेष होने पर सूतिका दशमूल तैल को शरीर पर मालिश के लिए देते हैं।

कंपनावस्था में प्रतापलंकेश्वर रस १-२ रत्ती आर्द्रक स्वरस एवं मधु के साथ चटाकर ऊपर से दशमूलारिष्ट २ तोला या सुदर्शन अर्क ४ तोला देते हैं। कभी लक्षण विशेषानुसार दशमूलारिष्ट भी देते हैं।

आक्षेप एवं मूर्च्छावस्था में नस्य विशेष देकर मूर्च्छा हटाकर मल्लसिंदूर $\frac{1}{2}$ से १ रत्ती की मात्रा में या कस्तूरी भैरव १ से १$\frac{1}{2}$ रत्ती की मात्रा में पान के स्वरस तथा मधु से देते हैं। शिर पर गुलरोगन या हिमसागर तैल की मालिश देते हैं।

अतिसारावस्था में आनन्दभैरव या कर्पूररस या अगस्त्य सूतराज रस या शंखोदर रस यथावत् लक्षणानुसार १ से २ रत्ती की मात्रा में प्रतापलंकेश्वर रस के साथ मधु मिलाकर देते हैं।

जीर्णज्वर एवं यक्ष्मा की प्रवृत्ति होने की आशंका में स्वर्णवसन्तमालती १ रत्ती, अभ्रक $\frac{1}{2}$ रत्ती, सत्वगिलोय १ रत्ती, एक मात्रा में सुबह शाम मधु के साथ सेवन कराते हैं। कभी सर्वज्वरहर लोह २ रत्ती की मात्रा में सुदर्शन अर्क से देते हैं। इस प्रकार संक्षेप में उपद्रव के लक्षणानुसार चिकित्सा करते रहने पर इस सन्निपात ज्वर को ठीक करने में काफी सहायता मिलती और रोग ठीक हो जाता है।

इस रोग के लक्षणों के साथ संग्रहणी के विशेष लक्षण मिलने पर जीरकाद्य मोदक का सेवन कराया जाता है। यह मोदक स्त्रियों के सम्पूर्ण रोगों को दूर कर भूख को बढ़ाता है और संग्रहणी के विशेष लक्षणों को दूर करता है। इससे शूल अफरा और विबंध भी नष्ट होते हैं।

इस रोग के साथ पांडु और अर्श रहने पर "भद्रोत्कटाद्य घृत" का सेवन कराया जाता है। इससे अग्नि दीप्त होकर रसरक्तादि धातुओं का बनना बराबर शुरू हो जाता है और पांडु एवं अर्श के लक्षण दूर होजाते हैं। यह घृत अग्नि दीप्त करने के साथ दुग्ध को भी शुद्ध करता है—यह इसकी विशेषता है।

प्रसूत रोग में समयानुसार सूतिका विनोदरस, सूतिकारि रस, ताम्रभस्म, मकरध्वज, मृतसंजीवनी सुरा, रसशार्दूल, महारसशार्दूल एवं प्रसारिणी घृत भी सेवन कराने से विशेष लाभ प्राप्त होता है।

प्रसूता को ज्वर की अधिकता एवं प्रलापादि होने पर सौभाग्यवटी १-१ गोली आर्द्रक स्वरस एवं मधु से चटाकर ऊपर से दशमूल क्वाथ में शुण्ठी चूर्ण का प्रक्षेप देकर पिलाने से तत्काल लाभ होता है। शुण्ठी चूर्ण के प्रक्षेप में एक विशेषता यह है कि अतिसार, ग्रहणी, शोथ, ज्वर और कोष्ठबद्धता इनमें से किसी एक की विशेषता रहने पर अथवा भाग्यवशात् सभी लक्षण मिलने पर भी शुण्ठी सभी दोषों का शमन करके प्रसूता को जीवनदान देती है।

जब मैं सन १९५० से सन् १९५४ तक कलकत्ते की मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी एवं श्री विशुद्धानन्द सरस्वती मारवाड़ी अस्पताल में गृहचिकित्सक के

स्थान पर कार्य कर रहा था तब उस समय मैं अपने अनुभव से सूतिका सान्निपातिक ज्वर में निम्नोक्त औषधियों का प्रयोग किया करता था एवं अभी भी करता रहा हूं—

नं० १—वृ. कस्तूरीभैरव २ रत्ती या वातकुलान्तक २ रत्ती, वृ. जहरमोहरा २ रत्ती—२ मात्रा प्रातः सायं आर्द्रक स्वरस से दी गई थीं।

नं० २—अभ्रकभस्म ४ रत्ती, शंखभस्म ४ रत्ती, शुद्ध यवक्षार ६ रत्ती तीनों को मृत संजीवनी अर्क में खरल में लेकर मिलाया गया। बाद में उसमें महासुदर्शन अर्क १ औंस एवं जल १ औंस मिलाकर ३ खुराक बनाई। फिर एक-एक खुराक ४-४ घंटे बाद दिन में ३ बार प्रसूता को दी गई।

नं० ३—सौभाग्यवटी २ रत्ती रात्रि में सोते समय मृतसंजीवनी ½ तोला में घिसकर पिलाई गई।

मैं यह क्रम बराबर आवश्यकतानुसार ७ दिन, १२ दिन एवं २१ दिन तक चलाता था और इस प्रकार के प्रयोग से प्रसूता के सान्निपातिक विकार और सहयोगी दुर्बलता ज्वर, प्रलाप, शिरःशूल बेचैनी, अनिद्रा, शोथ, उदरशूल, मक्कलशूल एवं अधिक पसीना आना आदि उपद्रव शान्त होते हैं।

कई प्रसूताओं में विशेष बेहोशी, प्रलाप एवं हृदौर्बल्यावस्था में नं. १ में योगेन्द्र रस २ रत्ती २ मात्रा प्रातः सायं मधु से देकर मिश्रण नं. २ का योग बराबर दिन में ३ बार ४-४ घंटे से दिया गया था और पूर्ण लाभ प्राप्त हुआ। चन्द्रोदय और अमृतबिन्दु (कोरामीन) का भी अवस्था एवं लक्षणानुसार यथावश्यक मात्रा में प्रयोग किया गया था।

भयंकर मक्कलशूलावस्था में ज्वर, बेचैनी, अनिद्रा, दर्द, प्यास, वायुविकार, रुके हुए स्राव एवं अधिक पसीना होने पर प्रतापलंकेश्वर रस ३ रत्ती, मुक्तापिष्टी २ रत्ती—२ मात्रा प्रातः सायं आर्द्रक स्वरस एवं मधु से दी गई और दोपहर तथा रात्रि में यवक्षार ३ रत्ती, लौहभस्म २ रत्ती, दोनों को अजवायन अर्क १ तोला में अच्छी तरह घिसकर कुमार्यासव १ तोला, दशमूलारिष्ट २ तोला धीरे-धीरे मिलाया गया और आवश्यकतानुसार पानी मिला कर दोनों समय प्रसूता को दिया गया और इस तरह आवश्यकतानुसार ५-१०-१४ दिन चिकित्सा करते रहने से पूर्ण लाभ होते देखा गया है।

प्रसूतिका सान्निपातिक अवस्था के साथ उदराध्मान (अधिक डकार का जोर), जोड़ों में, गर्भाशय एवं योनि में विशेष वेदना के लक्षण मिलने पर वृहत् वातचिन्तामणि या रसराज रस या वातगजेन्द्र रस २ रत्ती, स्वर्ण सूतशेखर रस २ रत्ती, शंखभस्म ४ रत्ती—इस प्रकार २ मात्रा सुबह शाम मधु से खिलाकर ऊपर से सूतिका दशमूल क्वाथ या देवदार्व्यादि क्वाथ में बला शुण्ठी का प्रक्षेप देकर पिलायें। एक दिन में केवल ४ मात्राओं से काफी लाभ होते देखा गया है। इस तरह आवश्यकतानुसार विशेष लक्षणावस्था मिलने पर अलग-अलग चिकित्सा देते रहने से ही इस रोग में मुक्ति मिलने में काफी आसानी पाई गई।

प्रसूतिकोन्मादावस्था (Peurperal insanity) में उन्मादगजकेशरी २ रत्ती, भूतभैरव रस ४ रत्ती २ मात्रा वातारिगणसिद्ध घृत के साथ दिया गया। दिन में ३ बार और दोपहर रात्रि में ब्राह्मी घृत ½-½ तोला से १-१ तोला तक खाने को दिया गया। इसके साथ चाटने को सारस्वत चूर्ण ३ माशा ३ मात्रा दिया गया। निद्रा के लिए अफीम या तान्त्रिक योग-पीपलामूल गुड़ के साथ दिया गया। इन्द्रयव को बकरी के दूध में पीसकर तलुओं पर मालिश की गई इन योगों से पूर्ण लाभ मिला।

कुछ रोगियों में प्रातः सायम् स्वर्णवसन्तमालती २ रत्ती की २ मात्रा मक्खन तथा मिश्री के साथ दी गई और कुछ में बादाम के हलुए के साथ दी गई, अच्छा लाभ होता हुआ पाया गया। प्रसूतिका सान्निपातिक ज्वर के साथ रक्तस्राव विशेष होवे

रहने पर 'अर्गट' के इन्जेक्शन मांसपेशी में या एक्सट्रैक्ट अर्गट लिक्विड १ ड्राम पीने के लिए अथवा अर्गोतीन की गोलियों का मुख द्वारा प्रयोग करना उचित लाभप्रद रहा। 'ओपियम' को वाईन में घोलकर उसका फाया योनिद्वार पर रखने से भी आशातीत लाभ हुआ। "कैल्सियम ग्लूकोनेट" का सूचीवेध सिरा में देने से भी लाभ हुआ है। इस प्रकार की चिकित्सा देने से प्रसूतावस्था में स्थानिक संक्रमण होने की विशेष सम्भावना नहीं रहती है। क्योंकि इससे गर्भाशय उत्तेजित हो करके संकोच बढ़ जाते हैं और बाहर से किसी प्रकार के जीवाणुओं का संक्रमण नहीं हो पाता है और गर्भाशय में स्थित गलित एवं विषाक्त अपरा आदि बाहर निकल जाते हैं। इसके लिए निम्नोक्त पाउडर भी प्रयुक्त किया है। 'अर्गोटीन ६ ग्रेन+कुनीनसल्फ १॥ ग्रेन+एक्सट्रैक्ट नक्स वोमिका ३/४ ग्रेन+पल्व डिजीटेलिस ३/४ ग्रेन। इनको मिलाकर ३ मात्रा में ३ गोलियां बनाकर सुबह, दोपहर और शाम को पानी के साथ प्रयुक्त करते हैं। आवश्यकतानुसार तीव्र विरेचन देना भी लाभप्रद है, लेकिन इसके पहले प्रसूता के बलाबल पर विचार करना एवं रोग के लक्षणों पर ध्यान देना जरूरी है।

गर्भाशय के शोधन के हेतु प्रसव के ५-६ घंटे बाद साधारणतया प्रसूता स्त्रियों को अभी भी गांवों में निम्न काष्ठ औषधियां देने की प्रथा है जो एक पौष्टिक खाद्य का भी काम देती हैं—सौंठ, पीपल, पीपलामूल, अजवायन, हल्दी सभी ६-६ माशे का कपड़छन चूर्ण लें। पहले घी में गुड़ डाल कर गरम करके चूर्ण डाल दें और कुछ पुनः गरम करके ऊपर से पिस्ता, बादाम, चिरौंजी, किशमिश आदि मेवा यथावश्यक डालकर खाने को दें। मैं भी प्रसवोत्तर काल में प्रसूताओं को इन काष्ठौषधियों का योग खिलाने को देता हूँ। प्रजाता की चिकित्सा बालक होने के बाद ही शुरू हो जाती है। अपत्यपथ की बराबर सफाई करने के बाद डिटोल या बला तैल का पिचु रखकर विसंक्रमित रूई रखकर बन्धन लगा देता हूँ। पेट पर भी बंधन लगा देता हूँ। शीतल जल में उत्तम सुरा या मृतसंजीवनी या कोरामीन मिलाकर पिलाता हूं। बाद में प्रजाता की अवस्थानुसार १२ घण्टे १६ घण्टे या २४ घण्टे के बाद गुड़, पीपल और घी से साधित हल्दी का पेय देता हूं। इसके बाद पंचकोल साधित घी से अधिक भर्जित सोंठ का पेय मिश्री मिलाकर देता हूं।

प्रसवोत्तर पीड़ाओं एवं मूत्रावरोध को दूर करने के लिए जन्तुनाशक औषधि जैसे डिटोल, लाइसोल, पोटाश परमेंग्नेट, उदुम्बरक्षार या त्रिफला क्वाथ से युक्त गरम पानी से योनि को सिकवाता हूं और पिट्यूट्रिन का सूचीवेध मांसपेशी में देता हूँ। दुर्गन्धित स्थान को दूर करने के लिए आइडोफार्म की १० से १५ ग्रेन तक की गोल गोलियां योनि में रखने को देता हूं। इसके साथ अवस्था एवं लक्षणानुसार पेनसिलीन पांच लाख, सेक्लोपीन ४ लाख, स्ट्रेप्टो पेनसिलीन, डाइक्रिस्टेसीन या म्यूनोमाइसीन इनमें से किसी एक का सूचीवेध २४ घण्टे में एक बार मांसपेशी में देता हूं। और खाने के लिए सल्फाट्रायड, सल्फाडायजीन, सीबाजोल, सेप्टीनीलम इनमें से कोई एक गोलियां यथावश्यक मात्रा में प्रसूता को देता हुँ। कभी-कभी इन्हीं गोलियों के साथ शैलजक्षार (सोडा-सिलीसिलास), मृदुक्षार (सोडाबाई कार्ब), मूत्रलक्षार (यवक्षार, श्वेतपर्पटी, गोमूत्रक्षार), यथावश्यक मात्रा में मिलाकर देता हूँ। कभी शैलजक्षार के स्थान पर ज्वरांतक (एन्टीपायरीन) का भी प्रयोग किया है। सूतिकोन्माद में आयुर्वेदिक चिकित्सा के साथ पोटाशियम ब्रोमाइड या क्लोरल हाइड्रेट औषधि का एवं निद्रा के लिए अफीम का सूचिकावेध देने का प्रयोग किया है। इसमें तान्द्रिक रोग लाभप्रद रहते हैं।

प्रसवोत्तर काल में स्वस्थावस्था रहने पर सौभाग्य शुण्ठी पाक का सेवन करना अत्यन्त हितकर

सिद्ध हुआ है।

पथ्य—दूध, वार्लो, दूध की वस्तुएँ, अनार, मौसम्बी, पुराने चावल का भात, मूंग की दाल, बथुआ का शाक, परवल, करेला, पालक, नेनुआ, ताजा मांस रस, चावल की रोटी और हल्की एवं वातनाशक वस्तुएं खाने को देना हितकर है। इसके साथ कमरे को साफ सुथरा एवं बिस्तर को स्वच्छ रखना जरूरी है खुली हवा का साधारण आवागमन कमरे में होना ठीक है।

प्रसवकालेऽपथ्यानि—

श्रमं नस्यं रक्तमुक्तिं मैथुनं विषमाशनम्।
विरुद्धान्नं वेगरोधमसात्म्यमतिभोजनम्॥
दिवानिद्रामभिष्यन्दिचविष्टम्भिगुरु भोजनम्।
योषितां प्रसवे प्राहुरपथ्यानि महर्षयः॥

—डाक्टर सन्तोषकुमार जैन एम. एस सी. ए., ए. एम. एस. आयुर्वेदाचार्य आर. एम. ओ. शास्त्राचार्य शासकीय आयुर्वेदिक हास्पिटल, ग्वालियर।

[२]

श्री लीलाधर शर्मा आयुर्वेदाचार्य

तीन उद्देश्यों को हृदयस्थ कर चिकित्सा करनी चाहिये।

(१) यथा रोगोत्पादक विषोत्पत्ति का ज्ञान होने पर उस विष को शरीर में शोषित न होने देना (२) शोषित विष की क्रिया शान्त होने तक रोगी को जीवित रखने की चेष्टा करना (३) बढ़े हुए उपसर्गों (उपद्रवों) की चिकित्सा करना। इनमें पहिले और दूसरे उद्देश्यों में सफल हो जाने से चिकित्सा में बड़ा सौकर्य होगा।

(१) योनि में दुर्गन्धित क्लेद के होने पर या यह सन्देह होने पर कि जरायु में कोई सड़ने वाली वस्तु है तो इस दशा में सर्व प्रथम योनि के भीतर या गर्भाशय की ग्रीवा पर्यन्त सड़न निवारक औषधि जैसे टिंचर आयोडीन १ ड्राम पानी गरम २ पौंड (१ सेर) में नीम के पत्तों को पीसकर पकाये पानी में छानकर धुलाई कर देनी चाहिये। धुलाई दिन में ३-४ बार तथा रात्रि में भी ३-४ बार होनी आवश्यक है। इसके लिए डूस का प्रयोग करना चाहिये। इस तरह के सड़न शील पूयज ज्वरों में पंचक्षीर कषाय बड़े सिद्ध फलप्रद हैं। या केवल गूलर की पत्ती पीसकर पकाकर छानकर डूस दे सकते हैं। इससे रोग वृद्धि एवं ज्वर वेग अवश्य शांत होगा। फिर भी यदि योनि या गर्भाशय में सड़न शील मांस का टुकड़ा, झिल्ली आदि की आशंका हो तो किसी योग्य लेडी डाक्टर या नर्स के द्वारा उसे निकलवा देना चाहिए। एलोपैथी वाले इस स्थिति में पैनसिलीन का इन्जैक्शन देते हैं। किन्तु मेरे पास आयुर्वेदोक्त अजमोदादि वटी नाम की
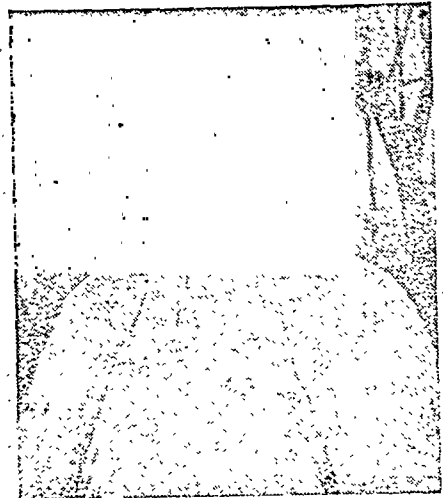
एक ऐसी वस्तु है जिसके सेवन से शरीर के किसी भी हिस्से में पूय होगा तो कम हो जायगा। ज्वर शमन के लिये त्रिभुवनकीर्ति रस ज्वर की तीव्रता होने पर घंटे-घंटे में तथा ज्वर हलका होने पर २-२ घंटे में मधु से चटाकर ऊपर से तुलसी के ३०-४० पत्तों की लुगदी बना पानी में घोलकर पिलाना चाहिए। रोगिणी की जीवन शक्ति रक्षार्थ आशुपाकी पथ्य मांस रस, अण्डे का रस दुग्ध में मिलाकर अभाव में दुग्ध साबूदाना ही १-१ घन्टे बाद या यथावश्यक समय पर देते रहना चाहिये। प्रति ४-६ घन्टे बाद कस्तूरी घटित रसों की मात्रा भी देनी चाहिये, मद्य भी आवश्यक है। नाड़ी शीघ्रगामी सूत की तरह पतली चले, पसीना, मृदु प्रलाप, उदराध्मान, अत्यन्त दौर्बल्य होने पर उक्त औषधों की और भी उग्र मात्रा देनी चाहिये। किन्तु पसीना बहुत हो, नाड़ी गिर रही हो ज्वर वेग अल्प हो तो विष घटित त्रिभुवन आदि नहीं देना चाहिये। ज्वर की उग्रता में त्रिभुवन आदि दें। ज्वर की कमी पसीना प्रलाप में कस्तूरी घटित और मद्य ब्रांडी आदि देना, अत्यन्त ज्वराधिक्य में मस्तक पर बरफ रखना, पेट फूलने पर नाड़ी शुद्ध क्षीण होने पर गोंद बबूर के पानी में १५-२० बूंद तारपीन तैल मिलाकर घोटकर एक जी करके पेट पर लेप करना, पूर्वानुभूत कोई अच्छा विरेचन देने से भी शुभ आशा है। रक्त अत्यन्त दूषित होने पर ताम्रलोह घटित उत्तम औषधि या रसकामधेनु का कल्पपादप रस बहुत बढ़िया चीज है। जलीयांश के शोषण के लिये आमलासार गन्धक २॥ रत्ती खूब बारीक चिकनी पिसी हुई, सोडाबाई कार्ब २॥ रत्ती, नवसार का फूल २॥ रत्ती, लोबान का सत २॥ रत्ती, इनकी १० पुड़ियां बनाकर अवस्था विशेष में १ से ८ पुड़िया तक पानी से देना। यह कफ को पचाकर निमोनियां, पामा, कंडू का पीप, सर्वांग का पीप, नेत्रों के पुराने रोहू, गांठ, गूमड़ों को नष्ट करता है। अत्यन्त अनुभूत योग है।

अजमोदादि वटी—

अजवायन १ तोले, लवंग १ तोले, छोटी इलायची के दाने १ तोले, रस कपूर १ तोले, अशुद्ध कच्चा ही लेना।

विधि—प्रथम रसकपूर को खरल में इतना बारीक पीसो कि अंगुली के पोटुवा में खरखरा न मालूम दे एक मद बारीक चिकना हो जाय, फिर ऊपर की शेष तीन चीज पृथक पृथक् खरल में कूटकर समान भाग वजन करो और तीनों को सिल पर पानी देकर इतना पीसो कि लुगदी खूब मसृण (चिकनी) हो जाय फिर उसमें रसकपूर मिलाकर खूब घोटो। इसके बाद ३६ बंगला पानों का डंठल फैंककर पानों की भी बारीक लुगदी बनाओ। उसमें पानी नहीं देना। इस लुगदी को भी बारीक कर सब मिलाकर २-३ दिन घोटकर १-१ रत्ती की गोली बना लें। इसके बड़े गुण हैं शरीर के किसी भी हिस्से में उत्पन्न पीव को नष्ट करेगा। फिरङ्ग(सिफलिस), गनोरिया, रक्तविकार, विचर्चिका, दाद जैसे रोगों को नष्ट करेगा। पुरानी कब्ज को दूर करेगा। पुरातन अतिसार की भी बड़ी दिव्य औषधि है। इसके खाने से कभी मुंह नहीं आवेगा परन्तु गोली निगलनी चाहिए। अब इसके आगे आयुर्वेदोक्त सूतिका रोग का वर्णन करूंगा ताकि पाठकों को इस लेख में कथित सूतिका ज्वर का और सूतिका रोग का प्रभेद निर्णय हो जायगा।

प्रसूत रोग दूसरा (सूतिका रोग)—

पूर्वोक्त सूतिका-ज्वर और यह प्रसूत रोग जिसका वर्णन करूंगा एक ही व्याधि नहीं है। दोनों ही भिन्न भिन्न रोग हैं। पूर्वोक्त सूतिका रोग संक्रामक है। एक तरह का विषाणु जीव रक्त में घुसकर उक्तरोग को उत्पन्न कर देता है। परन्तु यह आयुर्वेदोक्त प्रसूत रोग संक्रामक नहीं है। इसमें कोई विषाणु नहीं होता। यदि यह बिगड़ कर क्षय (टी. बी.) में परिणत नहीं

हो। इसे पूर्वोक्त सूतिका रोग की पुरानी अवस्था ही समझ लेना चाहिये। प्रसव के बाद यदि प्रसूता की अच्छी तरह रक्षा नहीं होती तो स्वास्थ्य बिगड़ कर रक्ताल्पता हो जाती है। इससे धातुक्षय-जन्य वात प्रकोप से हड़फूटन, ज्वर, यकृत् दोष, अफरा, कास, श्वास, प्यास (खुश्की), शरीर का भारीपन, शोथ, अतिसार, प्लीहा, तन्द्रा, अरोचक, मुंह से बारम्बार थूक आना आदि रोग समूह शरीर में अधिकार कर लेते हैं। यही प्रसूत रोग है। प्रसूत रोग प्रायः वातश्लेष्म प्रधान होता है। प्रसव काल से लेकर १॥ मास या २॥ मास के भीतर उत्पन्न रोग को प्रसूत रोग कहते हैं ऐसा आचार्यों का कहना है। वृद्ध वैद्यों का कहना है कि प्रसव के बाद जब तक पुनः रजोदर्शन न हो (चाहे वह काल २॥ मास से लेकर २-३ वर्ष का ही क्यों न हो) तब तक के काल में होने वाले किसी भी रोग को प्रसूत रोग कहते हैं। वस्तुतः यह रोग बढ़ी हुई रक्ताल्पता और मन्दाग्नि ही है। आयुर्वेद में किसी एक विशिष्ट लक्षण युक्त रोग को प्रसूत रोग नहीं माना किन्तु कम्प प्रलापादि संयुक्त (मिलकर) ही सूतिका रोग है। यही सर्व सम्मत सिद्धान्त है। जैसे—

> कंपः प्रलापो गुरुता शरीरे
> ज्वरातिसारौ सदनं पिपासा।
> एतानि चिन्हानि भवन्ति यत्र
> तं सूतिका रोगमुदाहरन्ति॥

इत्यादि लक्षण समुदाय मिलकर ही प्रसूत रोग है। पाश्चात्य चिकित्सकों का कहना है कि इस रोग का कोई खास हेतु हमको नहीं मालूम। रोग के धीरे-धीरे बढ़ने पर शरीर का नीबू या मोम जैसा रङ्ग होजाता है। पीतचर्म, दौर्बल्य, बेहोशी, प्रलाप, नाक से रक्त गिरना, श्वासकष्ट, अजीर्ण, क्षुधा की कमी, पतले दस्त आदि प्रधान लक्षण हैं। इस रोग का भावी फल बुरा है। मेरा अनुभव इस रोग के विषय में एक दम पृथक् है। यह रोग प्रसव करने वाली स्त्रियों को ही नहीं होता किन्तु दीर्घकाल के बाद अप्रसूत तथा जिनको कभी प्रसव नहीं हुआ उन साध्वी सन्यासिनी, ब्रह्मचारिणी चिरप्रसताओं को भी यह रोग होता देखा है। हाथ पांव पसीना आकर ठंडे पड़ जाते हैं, शिर भारी और शून्य सा हो जाता है, भूख लगती नहीं, शरीर पड़ा-पड़ा सा रहता है। यह रोग केवल स्त्रियों को ही होता है। इसमें भी एक अन्य आचार्य ने यह कहा है—

> अङ्गमर्दोज्वरः कंपः पिपासा गुरुगात्रता।
> शोफः शोकोऽतिशीतं च सूतिका वात लक्षणम्॥

वस्तुतः इसको सूतिका वात न कहकर नारी वात कहा जाय तो अधिक स्पष्टार्थ होगा। देहातों में परसूत के नाम से प्रसिद्ध रोग है। चिकित्सा सूत्र यह है—

(१) कि प्रसूता को यह रोग न होने देना। (२) होने पर योग्य चिकित्सा करना (१) प्रसव के तुरत बाद से ही ४ मास तक योग्य आहार-विहार के नियमों का पालन करना यथा परिश्रम, मैथुन, क्रोध, ठंडी हवा, शीतोदक से स्नान, वात कफकारक पदार्थों का त्याग करना चाहिए। उष्णतैलाभ्यांग, गरम चिकना ताजा भोजन, अल्प भोजन करना चाहिए। प्रसव के बाद ३ सप्ताह तक दशमूल क्वाथ या देवदार्व्यादि क्वाथ दोनों समय पीने से किसी उपद्रव की आशंका नहीं रहती। मद्रास गुजरात के वृद्ध वैद्यों ने इसे प्रसूता की आवश्यक वस्तु माना है। सौभाग्यशुंठी पाक भी सेवन कर सकते हैं। इससे प्रसूता का पेट नहीं लटकता। प्रसूत होने से रोकता है तथा प्रमादवश हुआ कोई कुपथ्य भी विकारी नहीं होता। नवीन वैद्य प्रसूता को चीनी देते हैं उसके स्थान में कम से कम २॥ तोला गुड़ खाना चाहिए। इससे वात का शमन होगा। पाखाना साफ होगा, स्निग्ध भोजन पचेगा। अन्त्र एवं जरायु में होने वाले वात रोगों का मूल नष्ट होगा। तैलाभ्यंग बहुत हितकर है। जो प्रसूता तैलाभ्यंग से नफरत करती हैं वे बुढ़ापे में रोती हैं।

(२) प्रसूत रोग में भिन्न भिन्न रोगों की पृथक् पृथक् चिकित्सा से कोई लाभ नहीं होगा। अतः जीर्ण ज्वरोक्त सर्व दोष शामक धातुवर्द्धक चिकित्सा होनी चाहिये। प्रसूता का बल, मांस एवं अग्नि अत्यंत क्षीण हो जाते हैं अतः शीघ्र सफलता की आशा न करनी चाहिये। बच्चे को माता का दुग्ध न देकर ऊपर का दुग्ध देना ठीक है। अतिसार की अधिकता में पंचामृत पर्पटी का सेवन भी हितकर है। पथ्य में केवल दुग्ध और फल ही श्रेष्ठ हैं।

सूतिकारि रस—शुद्धपारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक-भस्म, ताम्रभस्म सब समान भाग लेकर पारद गन्धक की कज्जली करके ब्राह्मी के रस में ३ दिन घोटकर छोटी मटर सी गोली कर १-१ गोली प्रातः सायं त्रिकुटा के काढ़े से देने से प्रसूत नष्ट होगा। पथ्य में सौंठ डालकर दुग्ध दें। रोगिणी संयम और पथ्य नहीं करेगी तो रोग नहीं जायगा।

—श्री लीलाधर शर्मा C/o पंजाब सेवा समिति नं. १ हनुमान जी लैन, बड़ा बाजार, कलकत्ता।

[३]

श्री वैद्य पं० चन्द्रशेखर जैन शास्त्री

प्रसव के पश्चात् भारतीय-पद्धति में पौष्टिक खाद्य देने का पर्याप्त ध्यान रखा जाता है। किन्तु फिर भी कतिपय स्थितियां इस ढंग की आ पड़ती हैं कि प्रसूता को थोड़े दिनों में ही उठकर घर का सारा कार्य सम्हालना पड़ता है। इस स्थिति में उसे पौष्टिक आहार मिलते हुए भी अधिक परिश्रम और धुएं तथा आग के पास अधिक बैठने के कारण ज्वर आदि का शिकार हो जाना पड़ता है।

ऐसी अनेक स्थितियां सामने आई हैं। घर वाले प्रारम्भ में उपेक्षा-वृत्ति दिखाते हैं, किन्तु जब रोग तेजी पकड़ जाता है, तब चिकित्सा के लिये दौड़-धूप मचाते हैं। यह प्रायः अधिकतर केसों का हाल है।

इस विषय में हम अपना अनुभव आपके समक्ष रख रहे हैं। इस उपाय से प्रायः बहुसंख्यक रुग्णायें सरलता से रोगमुक्त हो जाती हैं—

औषधियों के नाम इस प्रकार हैं—

प्रतापलंकेश्वर रस, समीरगज केसरी, योगराज गूगल, दशमूल तैल, जीरकाद्यारिष्ट, कामदुधा रस, प्रवालपंचामृत, अभ्रक भस्म।

विभिन्न प्रकार के रोगियों में ये प्रयोग इस प्रकार देते हैं—

प्रातः शौचादि से निवृत्त होने के पश्चात् योगराज गूगल को २ रत्ती की मात्रा में गोघृत ३ माशे, बूरा ३ माशे और छोटी पीपल (आधी) के चूर्ण के साथ चटाते हैं। १-१ अंगुली चाटकर ऊपर से २-२ घूंट दूध पीने की हिदायत कर दी जाती है। इस प्रकार ५ मिनट में धीरे-धीरे दवा चाटी जाती है और डेढ़ पाव दूध भी धीरे-धीरे पिया जाता है।

उसके दो घंटे बाद—प्रतापलंकेश्वर रस २ रत्ती, समीरगजकेसरी १ रत्ती, प्रवालपञ्चामृत आधी रत्ती, गोदन्ती भस्म दो रत्ती। सबको मिलाकर आधा तोले मधु या चाशनी में चटाया जाता है। इस बार भी दवा को धीरे-धीरे चाटने की हिदायत कर दी जाती है।

फिर भोजन के बीच में हिंग्वाष्टक चूर्ण घी में दिया जाता है और भोजन के बाद जीरकाद्यरिष्ट

या दशमूलारिष्ट पिलाया जाता है।

दोपहर के समय धूप में बैठाकर नाइन द्वारा दशमूल तैल लगवाया जाता है। यदि आवश्यकता समझी जाती है तो पान खाने वाली महिला को पान में चावलभर शतपुटी अभ्रकभस्म मिलाकर दिन में ३-४ बार देते रहते हैं।

सायं भी भोजन से पहिले ऊपर लिखी पुड़िया चटाई जाती है। भोजन के बीज में पुनरपि हिंग्वाष्टक चूर्ण घी में चटाते हैं और इच्छा होने पर भोजन के बाद लवणभास्कर चूर्ण को मुनक्कों के साथ लगवा कर खिलाते हैं। मुनक्कों को बीज निकाल कर सिकवा लेना ठीक रहता है। लवणभास्कर के अभाव में भुना जीरा, कालानमक और कालीमिर्च का चूर्ण भी लिया जा सकता है। इससे पाचन की सुव्यवस्था बनी रहती है।

रात्रि के समय फिर योगराज गूगल को २ रत्ती की मात्रा में उक्त प्रातःकालीन विधि के अनुसार दिया जाता है।

मालिश के लिए प्रातःकाल या कभी-कभी सोने से पहिले का समय भी निर्धारित कर लिया जाता है।

ऐसी रुग्णाओं में प्रायः वातविकार ही अधिकतर हुआ करते हैं। उन्हें योगराज गूगल जैसी सौम्य औषधियों से ही मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए। आवश्यकता होने पर बृहत् योगराज गूगल का प्रयोग किया जा सकता है। प्रारम्भ में २-४ दिन समीरगजकेसरी का प्रयोग करके प्रातः इन्हीं औषधियों का प्रयोग करना चाहिए।

ज्वर, कास, अरुचि, अतिसार आदि उपद्रव होने पर उनके नाशक प्रयोगों की योजना कर लेनी चाहिये और उपद्रव मिटते ही फिर साधारण क्रम पर आजाना चाहिये।

इस प्रकार ८० प्रतिशत रुग्णायें ठीक हो जाती हैं।

हां, पथ्याहार-विहार, पूर्ण विश्राम, मनोरञ्जन, बलवर्द्धक सुपाच्य फल प्रयोग करते रहना चाहिये। दूध और फल उत्तम सुपाच्य पौष्टिक हैं। मुनक्कों का प्रयोग भी अवश्य करना चाहिए।

इन बातों की व्यवस्था किये बिना, मात्र औषधियों के बलभरोसे निर्भर रहना, ठीक नहीं है। योग्य परिचारक की भी व्यवस्था कर देना परमावश्यक है। सौंठ आदि के जो पौष्टिक लड्डू आदि बनाकर दिये जाते हैं, वे भी देते रहने चाहिए।

—न्यायायुर्वेदाचार्य वैद्य पं० चन्द्रशेखर जैन शास्त्री
सम्पादक—आयुर्वेद चिकित्सक
लाखाभवन (जबलपुर)

[४]

श्री रामकृष्ण बडोला वैद्य

सूतिका ज्वर—यह ज्वर वैसे तो कई किस्म का देखा गया है, लक्षण सबके प्रायः एक से होते हैं। कोई उपद्रव सहित और कोई कम उपद्रव वाले होते हैं। मगर हमारी समझ में आमतौर से इसके तीन भेद नजर आये है जिनका कि वर्णन इस प्रकार से है—

१—(अ) प्रसव के दूसरे तीसरे दिन से लेकर चार पांच दिन तक इस ज्वर का आक्रमण होता

देखा गया है। शीत लग कर ज्वर चढ़ता है और तापमान १०४° तक बढ़ जाने से मलेरिया का भ्रम होजाता है, मगर ज्वर चढ़ने के बाद ही दूसरे या तीसरे दिन से त्रिदोष के लक्षण प्रकट होकर रोगी प्रलाप करने लगता है, तथा गला कफ की वृद्धि से घर घर शब्द करता है। ठंडा पसीना छूटने से निर्बलता आजाती है। ज्वर, पार्श्वशूल, अतिसार, तन्द्रा, गर्भाशय शोथ, आध्मान, कांटे युक्त श्याम जिह्वा, रक्त और पीप मिश्रित गाढ़ा मूत्र, श्वास प्रश्वास में तीव्रता तथा दुर्गन्ध आना, हृदय और नाड़ी की गति में अनियमितता होजाती है। चतुर वैद्य या डाक्टर द्वारा चिकित्सा न होने पर रोगिणी का नाश होजाता है।

चिकित्सा—मल्लसिंदूर १ रत्ती, सौभाग्य चिन्तामणि २ रत्ती, अमृत संजीवनी २ गोली, माणिक्य रस २ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण ४ रत्ती, सर्पगन्धा चूर्ण ४ रत्ती, कर्पूरादि वटी २ गोली का मिश्रण बना कर दो मात्रा बनावें। प्रति चार घन्टे पर एक खुराक अदरख के रस और मधु से देने पर सब उपद्रव शान्त होकर रोगिणी को नींद आजाती है। अगर हृदय और नाड़ी की गति में तीव्रता का भास हो तो मकरध्वज वटी (धन्वन्तरि कार्यालय) की एक गोली अर्जुनारिष्ट एक तोले के साथ देने पर सफलता मिल जाती है। अगर स्वेद अधिक चल रहा हो तो चूल्हे की मिट्टी और भुनी हुई कुल्थी के वस्त्र-पूत चूर्ण का उबटन करने से बन्द होजाता है।

पाश्चात्य मतानुसार—सोडाबाई कार्ब २ ग्रेन, सिबाजौल १ गोली या टिंचर सिल्ला ५ मिनिम, स्प्रिट ईथर नैट्रोसी ५ मिनिम, टिंचर सेनकोना कम्पाउण्ड १० मिनिम और सिरप ग्लूकोज आधा औंस का मिश्रण बनाकर दिन में तीन बार तथा प्रोकेन पेन्सलीन चार लाख का सूची मस्क्यूलर प्रतिदिन देने से तत्काल लाभ होजाता है। अगर पसीना अधिक आने पर हृदय कमजोर हो रहा हो तो ग्लूकोज २५% ५० सी. सी. का कोरामिन मिलाकर शिरा प्रवेश करावें तथा एसिड सेलिसिलिक १ भाग, एसिड बोरिक २ भाग और चाक पाउडर ४ भाग मिलाकर उबटन करने से उपद्रवों की शान्ति होती है। अतिसार में सल्फागोनडीन और पार्श्वशूल में ऐण्टीफ्लोजिस्टिन का प्लास्टर समयानुकूल उपयोग में लाते रहें।

(ब) सूतिका रोग के कीटाणु जब फेफड़ों में पहुंच जाते हैं तब राजयक्ष्मा हो जाता है। प्रसव के दिनों में इसका आक्रमण होता है। मामूली ठंड लगकर ज्वर चढ़ता है, जिसके कारण टैम्परेचर १०१ और १०२ के अन्तर्गत देखा गया है, मगर प्रातःकाल से दोपहर तक १०० डिग्री हो जाता है। हाथ पांवों में जलन, हल्की कास, श्वास का फूलना, पसलियों में दर्द, उदर और छाती में भारीपन के साथ दाह तथा सफेद पदार्थ मिश्रित गाढ़ा पेशाब होता है।

चिकित्सा—प्रवाल, मुक्ता, लोह, अभ्रक, मालती-बसन्त, द्राक्षासव, लोहासव आदि का प्रयोग करें। विशेष विवरण यक्ष्मा प्रकरण में देखकर उसी के अनुसार चिकित्सा करें।

पाश्चात्य मतानुसार—स्ट्रेप्टोमाइसीन, डैक्रसीन आदि की सूची तथा विटामिन बी कौम्पलैक्स, ड्यूरोल अन्य कोई और जनरल टौनिक व टीबीजाइड आइसो निक्स टेबलेट और कैल्सियम पास का यथा समय प्रयोग किया जाता है।

(स) जब रुग्णा के शरीर में थोड़ा विष रह जाता है तो उसके हाथ पैरों में जलन रहने लगती है, सिर में चक्कर तथा मन्द-मन्द ज्वर बना रहता है। रुग्णा चलती फिरती रहती है। मगर ज्योंही शरद तथा बसन्त ऋतुयें आती हैं तो रोग उभार ले लेता है, जिसके कारण से मसूड़े बढ़कर श्याम हो जाते हैं, उनसे खून चलने लगता है और दांत हिलने लगते हैं। जोड़ों में सूजन और दर्द, शरीर पर काले चकत्ते, नसों में मटर जैसी गुठलियां, ठंड लगकर या बिना ठंड का मन्द-मन्द ज्वर, अधिक ठंड तथा धूप का बर्दाश्त न होना, जिह्वा

श्याम तथा रात को प्यास लगना ये लक्षण प्रकट हो जाते हैं। अगर इस दशा में सन्तान हो जाती है तो थोड़े बहुत लक्षण उस पर भी दिखाई देने लगते हैं।

चिकित्सा—अमृतसंजीवनी २ वटी, शंखभस्म ४ रत्ती, गौदन्ती भस्म २ रत्ती, समूची एक कौड़ी की राख का मिश्रण बनाकर आंवलों के रस में देने पर दस बारह दिनों में रोग समूल नष्ट हो जाता है। नमक बन्द कर दें तथा बिना नमक का मुद्ग यूष, दूध, दलिया, फलों का रस पथ्य रूप से दें। यह योग गोपनीय होने पर भी प्रकट कर रहा हूं जो कि शतप्रतिशत लाभदायक है। पाठक गण परीक्षा करें।

पाश्चात्य मतानुसार—सोडा सेलिसिलेट १० ग्रेन, सोडाबाई कार्ब ५ ग्रेन, टिंचर वेलाडोना ५ मिनिम, स्प्रिट ईथर नाइट्रोसी ५ मिनिम, टिंचर कार्डिको १० मिनिम, सिरप औरेंज १ ड्राम, साफ पानी १ औंस का मिश्रण प्रतिरोज तीन बार या सोडियम सेलिसिलेट विद आयोडाइड २ सी० सी० के इन्जेक्शन प्रति तीसरे रोज मांसपेशी में देने से रोग नाश हो जाता है। रक्त बढ़ाने के लिए विटामिन बी कौम्प्लैक्स, लिवर ऐक्स्ट्रैक्ट की सूची और मैथियोकोलाइन सिरप आदि पीने को देने से सद्यःफल की प्राप्ति होती है।

(२) सूतिका सन्निपात—यह रोग बड़ा ही घातक होता है। पहिले मामूली ज्वर होकर प्रसूता के स्वभाव में परिवर्तन दिखाई देने लगता है, पूछने पर उल्टा जवाब देती है तथा दृष्टि में वक्रता आ जाती है। बाद में चित्तविभ्रम सन्निपात जैसे (अानतान बकना, हंसना, गाना, रोना, जोर से चिल्लाना और शैया छोड़कर भागना आदि) लक्षण प्रकट होते हैं। पेशाब मांस के धोवन जैसा भारी दुर्गन्ध लिए होता है। मूत्राशय निष्क्रिय होने से पेशाब बिना कैथीटर के नहीं उतरता। यहां तक कि पक्वाशय, आमाशय और फुफ्फुस आदि अंग भीतर से सड़ने लगते हैं। जीभ के ऊपर एक सूत मोटा सड़ा हुआ स्याह रंग का मैल जम जाता है जिसके कारण श्वास से सड़ान आने लगती है तथा निगलने में कष्ट होने लगता है। आमाशय का कार्य ठीक न होने से उसमें हवा भर जाती है। नाड़ी और हृदय की चाल कभी शीघ्र और कभी मन्दगामिनी हो जाती है। अगर शीघ्र देखभाल न की जाय तो चिकित्सा निरर्थक हो जाती है।

चिकित्सा—अमृत संजीवनी २ वटी, गन्धक रसायन ४ रत्ती, माणिक्य रस १ रत्ती, सर्पगन्धा चूर्ण २ रत्ती, जटामांसी चूर्ण १ रत्ती, सौभाग्य चिन्तामणि १ रत्ती का मिश्रण बनाकर अर्जुनारिष्ट आधा तोला, दशमूलारिष्ट आधा तोला और जल एक तोला मिलाकर दिन में तीन बार दें तथा प्रवाल मुक्ता समयानुसार शर्बत गुलाब से देने पर लाभ होता है।

पाश्चात्यमतानुसार—सल्फानिलेमाइड १ गोली, सोडाबाइकार्ब २ ग्रेन, विटामिन सी एक गोली, ग्लूकोज ४ ग्रेन का मिश्रण दिन में तीन बार जल से दें तथा क्लोरल हाइड्रेट २ ग्रेन, पोटाशियम ब्रोमाइड ४ ग्रेन जल मिला कर प्रलाप बन्द करने को दें। इससे नींद आकर प्रलापादि उपद्रव शान्त होजाते हैं। स्ट्रेप्टोपेन्सलीन की सूची मांस पेशी में और विटामिन सी १ एम्पुल, कोरामिन १ एम्पुल और ग्लूकोज २५ सी. सी. के एक एम्पुल का मिश्रण कर शिरा द्वारा देने से उचित लाभ होजाता है।

रक्ताणुओं का नाश—सूतिका रोग में कभी कभी एक अवस्था ऐसी भी आती है कि जब रक्ताणुओं का नाश होकर शरीर श्वेत होजाता है। इस रोग में यकृत् अपना कार्य ठीक तरह से नहीं कर पाता जिसके कारण से दुर्बलता बढ़ कर एक दिन असाध्य अवस्था हो जाया करती है।

चिकित्सा—नवायस लोह या निशालोह २ रत्ती की मात्रा में त्रिफला के जल से सुबह शाम देने से

तथा लोहासव, कुमारी आसव और दशमूलारिष्ट का आधा-आधा तोला मिश्रण भोजन के बाद देने से अवश्य लाभ हो जाता है।

पाश्चात्य मतानुसार भी यूनीहाइट कमकोलाइन, एमोनोजाइम, लिवोजन, लीवरजन, फेरीलक्स और हेमोजिन विद लीवर ऐक्स्ट्रेट आदि पेटेन्ट योग पीने से या बी कौम्पलैक्स, लीवर ऐक्स्ट्रेट, मैक्राबिन, मेथियोकोलाइन आदि की सूइयां लगाने से आशातीत लाभ हो जाता है।

रक्तस्राव--प्रसव के बाद किसी किसी को वेग के साथ रक्त स्राव होता देखा गया है। अगर तत्काल चिकित्सा न की जाय तो शीघ्र ही असाध्य अवस्था हो जाया करती है। इसके लिए रक्तवल्लभ रसायन (धन्वन्तरि कार्यालय) या मुक्ताशुक्ति, प्रवाल भस्म और लाक्षाचूर्ण ४-४ रत्ती उदुम्बर छाल के रस से देने पर लाभ हो जाता है। ऐलोपैथी वाले भी पिट्यूट्री, अर्गोटीन, कैल्शियम ग्लूकोनेट की सूइयां देकर लाभ उठाते हैं। अगर रक्त ज्यादा गिरने से अवस्था खतरनाक हो तो ग्लूकोज और नार्मल सैलाइन कोरामिन या एड्रीनेलिन के साथ ५० से १०० सी० सी० तक शिरा में प्रवेश कराया जाता है। ऐसा करने से तत्काल रोगी की दशा सुधर जाती है।

मूत्रावरोध--गर्भाशय तथा मसाने में शोथ आ जाने से कभी-कभी पेशाब बन्द होते देखा गया है जो कि रबड़ की थैली से सेकने पर ठीक हो जाता है। अगर पेशाब रुकने से वेदना होती हो तो उसको कैथीटर द्वारा निकाल कर पिट्यूट्री का इन्जेक्शन लगादें। इस प्रकार के मूत्रावरोध में श्वेत पर्पटी आदि मूत्रल योग देने से मसाने में मूत्र अधिक संचय हो जाता है जो शोथ के कारण बाहर नहीं उतरता जिससे रुग्णा के प्राण संकट में पड़ जाते हैं।

अमृत संजीवनी का प्रयोग—यह ज्वर, कास, श्वास, स्वेदावरोध, स्वेदाधिक्य, सूजन, निमोंनियां, वातरोग, मन्दाग्नि और सूतिका रोगों में अनुपान भेद से तत्काल लाभ के साथ व्यवहार किया जाता है। नुस्खा इस प्रकार है—हिंगुल शु., केशर असली, पीपरामूल, लवंग, सुहागे का लवा, मीठा कूठ, शुद्ध विष, कालीमिर्च, पीपर छोटी, कस्तूरी असली सब लेकर वस्त्र पूत चूर्ण करके अदरक या इमली के रस में मर्दन कर एक-एक रत्ती की गोलियां बनालें।

--श्री रामकृष्ण बडोला वैद्य
आमगांव पो० ठांगर (गढ़वाल)

सूतिका रोगों पर विविध विद्वानों के परीक्षित प्रयोग

सूतिका ज्वर में योगराज गूगल का चमत्कार

रोगी की यह दशा थी कि सारे शरीर में पीड़ा, घबराहट, अतिसार, ज्वर, सूजन, सारे शरीर में कमजोरी यहां तक कि लोगों के मुंह यह चर्चा थी कि रोगिणी आज का दिन नहीं निकाल सकती। ज्वर १०४-१०५ के लगभग रहता था। पीड़ा व्याकुल किये रहती थी। भूख बिल्कुल नहीं थी। चिकित्सार्थ मुझे बुलाया गया। रोगिणी देखी तो अति व्याकुल, नाड़ी देखनी चाही तो सूजन के कारण पता तक नहीं चलता था। लक्षण के आधार पर प्रसूत वात निश्चय करके योगराज गूगल की दो वटी प्रातः दोपहर शाम दशमूल क्वाथ से देना निश्चित किया और अपथ्य के लिए रोक कर दी। जब दो दिन बाद पुनः

रोगिणी की परीक्षार्थ गया तो रोगिणी कुछ प्रसन्न चित्त मालूम दी और भूख के कारण कुछ खाने को मांग रही थी। मैंने फुल्का खुश्क और चने पकाकर उसका जल गरम मसाला डालकर सेवन करने को कह दिया और साथ ही यह भी कह दिया कि यदि भूख दो फुल्के की हो तो एक ही खाना। चौथे दिन रोगिणी अपने को रुपये में आठ आने भर स्वस्थ समझ रही थी। इसी तरह से १५ दिन तक बराबर दवा सेवन कराता रहा और रोगिणी पूर्णतः स्वस्थ हो गई।

—श्री योगीराज महेशनाथ जी वैद्य
महेश अमृत भण्डार, कलसाना (करनाल)

सूतिका रोग पर अमृतादि क्वाथ—

अमृता (गिलोय), सौंठ, खरैटी, भद्रमोथा, दालचीनी, पंचमूल, नेत्रवाला, तेजपात ३-३ माशा लेकर पावभर पानी में क्वाथ करें। चतुर्थांश (छटांक भर) रहने पर उतार छान ठंडा होने पर पिलावें, प्रसूति ज्वर पर लाभदायक है।

—आयुर्वेदाचार्य कविराज श्री द्वारिकाप्रसाद शास्त्री
श्री दधिमति आयुर्वेद भवन,
राजगांगपुर (सुन्दरगढ़) उड़ीसा

प्रसूत रोग पर—

लौंग, शुद्ध मीठा तेलिया, सौंठ, सिंगरफ, अकरकरा, केशर, जावित्री, जायफल, पीपलामूल, दालचीनी, चित्रक, कालीमिर्च। इन सब औषधियों को सम भाग लेकर एक लोहे की कढ़ाही में डालकर लोहे के डण्डे से ७ दिन लगातार रगड़ कर बारीक बनालें।

मात्रा—५ रत्ती दिन में दो बार पान में रखकर खावें।

गुण—प्रसूत ज्वर, गठिया और अन्य प्रकार के वात रोग दूर होते हैं।

—श्री वैद्य रूड़सिंह जी
ग्राम हथन, पो० मालेरकोटला (पंजाब)

सूतिकाज्वर—

कालीमिर्च या (चित्रकमूल) ३ तोला, शुद्ध पारा १ तोला, अभ्रक भस्म १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, लौहसार ४ तोला, शुद्ध बच्छनाग १ तोला, शङ्खभस्म ८ तोला। जंगली कण्डों की कपड़छन की हुई राख १६ तोला लेवें। फिर सबको यथाविधि मिला लेवें।

नोट—कालीमिर्च के बदले चित्रकमूल मिला लेने पर प्रसूता के गर्भाशय में रहे हुए दूषित रक्त को बाहर निकालने में विशेष सहायता मिलती है।

मात्रा एवं व्यवहार विधि—३ रत्ती से ६ रत्ती तक अदरख के रस के साथ प्रातःकाल व सायं सेवन करायें। साथ में दशमूलारिष्ट भी देने से दूषित रक्त व शूल आदि में विशेष लाभ होता है।

—श्री जीवनपुरी गोस्वामी वैद्य भूषण वैद्य विशारद
मु० पो० देवली, वाया सोजतरोड़ राज०

प्रसूत रोग—

शुद्ध गन्धक, शुद्ध सिंगरफ, टंकण भस्म, काली मिरच, छोटी पीपल, केशर, अकरकरा सब समान भाग लें। अदरक के रस में मूंग प्रमाण गोली बनावें।

मात्रा—१-२ गोली दिन में २-३ बार, आवश्यकतानुसार। अनुपान—(१) लौंग का चूर्ण (२) अद्रक रस। गुण—प्रसूतज्वर, साधारणज्वर, शीतांग सन्निपात रोग दूर होते हैं।

—श्री गेबीअली पाठक
आकली दीवान, पो० खजूरी पंथ (मन्दसौर)

स्त्री रोग पर परीक्षित प्रयोग—

सौभाग्य शुण्ठी पाक

स्त्रियों की प्रसवावस्था के बाद दुर्बलता दूर करने के लिए अमोघ औषधि—१६२ तोले सोंठ के चूर्ण को समभाग घृत मिलाकर भूनें। फिर ७६८ तोले

दूध मिलाकर उबालें। आधा दूध शेष रहे तब ३८४ तोले मिश्री डालकर पाक करें। पाक तैयार होने पर जायफल, त्रिफला, जीरा, काला जीरा, धनियां, सौंफ, इलायची, पीपल, नागरमोंथा, नेत्रवाला, मुनक्का, बिदारीकन्द, सफेद चन्दन और छुहारा सब २-२ तोले, ताजी नारियल की गिरी ३२ तोले, शिलाजीत और लोहभस्म ८-८ तोले, सोया १६ तोले, चिरौंजी १६ तोले और निस्रोथ ३२ तोले का बारीक चूर्ण डालें और केशर आदि सुगन्धित पदार्थ इच्छानुसार मिलावें। यह खाने में बहुत ही चरपरी रहती है किन्तु प्रभाव अभूतपूर्व प्रदर्शित करती है।

नोट—शिलाजीत को ४ गुनी मिश्री के साथ खरल करके पाक तैयार होने पर मिला लेवें। पहिले मिलाने से पाक ढीला हो जाता है और शिलाजीत से पाक का रङ्ग भी स्याह हो जाता है। यदि शिलाजीत पाक में न मिलावें और पाक सेवन के साथ रोज २-२ रत्ती दूध से लेते रहें तो भी पूरा लाभ मिल सकता है।

मात्रा—२ से ४ तोले तक सुबह खाकर दूध पीवें। १ महीने तक जरूर लेवें।

गुण—इस पाक के प्रयोग से गर्भपात से हुई कृशता एवं प्रसवावस्था से प्राप्त दुर्बलता सम्बन्धित उपद्रव यथा-निस्तेज, भ्रम, कर्णनाद, शिरःशूल, उदरशूल, मन्दज्वर, आदि सब प्रकार के उपद्रव शांत होते हैं।

यह योग "रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह" में अवलेह प्रकरण में लिखा है। वहां इसका नाम "सौभाग्य सुंठीपाक" है। उक्त प्रयोग उसकी द्वितीय विधि में है।

—वैद्य श्री भंवरलाल गोठेचा भिषगाचार्य,
जयपुर जिला बोर्ड औषधालय,
बांसखोह (जयपुर)

सौन्दर्य से स्त्री तृप्त होती है, उत्तम गुणों से उसकी प्रसंशा होती है और लज्जावती होने से वह मानवी देवी बन जाती है। —शेक्सपीयर

× × × ×

पुरुषों के लिए सहस्त्रों कार्य हैं पर नारी केवल प्रेम करती है और जीवन भर के लिए यही उसका क्रम बन जाता है। —वायरन

× × × ×

सारे विश्व का राज्य मिल जाय किन्तु स्त्री न हो तो पुरुष भिखारी से भी बुरा है। इससे तो वह कंगाल लाख गुना प्रसन्न है जो सारे दिन श्रम करता है और सन्ध्या समय अपनी सुशीला स्त्री का सुरभित आनन देख कर सारा दुःख भूल जाता है। —कूपर

× × × ×

स्त्री युवक की प्रेमिका है, प्रौढ़ की मित्र और वृद्ध की सेविका है। —ब्रेक

— श्री. जगदम्बा प्रसाद —

मकल-शूल

श्री डा० ताराचन्द लोढ़ा

सद्यः प्रसूता स्त्री के हृदय और वस्ति में जो रोग शूल होता है, वही मकल शूल कहलाता है। साधारण भाषा में इसे प्रसवान्त या गोले का दर्द कहते हैं। यह गर्भ सम्बन्धी रोग है। एक मकल शूल और होता है जिसे गर्भ मकल कहते हैं, किन्तु हम यहां इसे छोड़कर प्रसूति मकल (गर्भ-दोष निस्सारक वेदना) के सम्बन्ध में ही कुछ लिखते हैं।

प्रसव के बाद प्रसव-शोणित (लोकिया Lochia) का स्राव होना अति आवश्यक है ताकि गर्भाशय में रहे अपरा एवं जरायु के छोटे छोटे टुकड़े आसानी से निकल सकें। इसीलिए प्रसवांत में २-३ दिन तक पिपल्यादि चूर्ण गर्म गुड़ के पानी से देना चाहिए। किन्तु यदि किसी स्त्री को यह नहीं दिया जाता है तो उसका यह अशुद्ध रक्त गर्भाशयगत अपान वायु से रुक जाता है। वह रुका हुआ रक्त इकट्ठा होकर नाभि के नीचे दोनों पार्श्वों में, वस्ति प्रदेश, वस्ति शिर में ग्रन्थि उत्पन्न कर शूल पैदा करता है। सूई की भांति चुभन होती है, भेदन सा होता है, गोला सा दौड़ता है, आध्मान हो जाता है, मूत्र रुकने लगता है।

मकल शूल के और भी कारण हैं यथा—(१) देर (विलम्ब) से प्रसव होने या कष्ट प्रसव से गर्भाशय क्षुब्ध हो जाता है एवं प्रसवोपरान्त भी जोर से संकुचित होता रहता है तब शूल होता है। (२) कभी कभी अपरा तथा जरायु के टुकड़े गर्भाशय में रह जाते हैं। उन्हें निकालने के लिए गर्भाशय संकोच होता है तथा शूल होता है। (३) गर्भाशय दुर्बल होने से उसकी संहरण क्रिया ठीक नहीं होती तथा स्राव अधिक होता है तथा रक्त जमने लगता है। इस जमे रक्त को निकालने के लिए गर्भाशय का संकोच होता और शूल होता है। (४) प्रसवोपरान्त उदर गुहा से गर्भ निकल जाने के कारण उदर में रिक्तता एवं शून्यता आ जाती है। अतः वायु कुपित होने एवं प्रसव के समय मल-मूत्र द्वार पर दबाव व आघात होने से संकोच होकर मल-मूत्र रुकने से शूल हो जाता है किन्तु है यह मिथ्या प्रसवोत्तर वेदना। अतः वास्तविक प्रसवोत्तर वेदना (मकल शूल) से इसका अन्तर निम्न प्रकार देखा जा सकता है—

वास्तविक प्रसवान्त शूल—यह शूल गर्भाशय संकोच के कारण नियत समय पर होता है, पेट कड़ा मालूम होता है, बच्चे को दूध पिलाते समय अधिक हो जाता है। मल-मूत्र हो जाने पर भी वैसा ही रहता है।

मिथ्या प्रसवान्त शूल—यह मल मूत्र रुकने से अनियमित समय पर होता तथा गर्भाशय कड़ा नहीं होता एवं बच्चे को दूध पिलाने का इस पर कोई प्रभाव नहीं होता। मलमूत्र त्याग से शूल ठीक हो जाता है।

यह शूल स्त्रियों के प्रसव होने के बाद एक घण्टे के भीतर ही प्रायः होजाया करता है। निर्बल, मेहनत से जी चुराने वाली, आराम प्रिय, प्रसव वेदना से भय खाने वाली, संकीर्ण वस्ति स्थान वाली स्त्रियां ही इससे अधिकतर आक्रांत होती हैं। हृष्ट-पुष्ट, नियमानुकूल आचरण करने वाली स्त्रियां कम ही आक्रांत होती हैं। कभी कभी यह शूल कई दिनों तक दुःख देता रहता है। यह कष्टदायक ही है सांघातिक नहीं।

बाह्य चिकित्सा—रबर की बोतल में या गर्म-पानी की थैली में पानी भर कर रोगिणी के नाभि प्रदेश में सेक करें। मलाशय तथा योनि में वस्ति

देना भी (वायुहारक-शामक औषधियों की) लाभदायक है। कोष्ठ भी शुद्ध कर देना चाहिए व चौथाई ग्रेन की मार्फिया की गोली (¼ ग्रेन मार्फिया) गुदा द्वार में रखी जावे तो शीघ्र लाभ होगा।

आन्तरिक उपचार—(१) दिन में ४ बार असली यवक्षार २-२ माशा गरम गोघृत ६-६ माशे के साथ दें। ४-५ रोज लगातार दें जब तक दर्द न मिटे। (२) भुनी हींग घृत में मिला सेवन करावें। (३) पिपल्यादि चूर्ण के साथ देवदार्व्यादि क्वाथ देवें। (४) पिपल्यादि क्वाथ के साथ यवक्षार देवें। (५) वातनाशक कोई भी कर्म इसमें हितकर हैं।

एक ग्रामीण प्रयोग—दशहरे के दिन रावण को मारने के लिए जो गोला (तोप से) चलाया जाता है उसे प्रसूता के पलङ्ग के नीचे गुड़ाने से भी यह ठीक हो जाता है। अन्य अनेकों उपचार हैं।

भोजन—यवक्षार में पकाई यवागू दें। पुराने सांठी के चावल, दीपन, पाचन, कुलथी, लहसन, सहंजना आदि वात नाशक सभी पदार्थ पथ्य हैं।

—श्री डा० ताराचन्द लोढ़ा,
किशनगढ़ (राज०)

मक्कल शूल

सूतिका (प्रसूता) स्त्री को होने वाले कष्टसाध्य ६४ रोगों में 'मक्कलशूल' भी एक प्रमुख रोग है। बालक के जन्म होने के पश्चात् अपरा बाहर निकलती है परन्तु कभी कभी उस अपरा तथा जरायु के कुछ टुकड़े गर्भाशय में रह जाते हैं। यह गर्भाशय की संहरण क्रिया (retraction) से रक्त के साथ बाहर निकल जाते हैं। इस संहरणी क्रिया से गर्भाशय के तन्तुओं में संकोच स्थाई रूप से हो जाता है जिनके फलस्वरूप गर्भाशय आकार में छोटा हो जाता है और आकार छोटा होजाने के कारण उसके भीतर का पृष्ठ भाग भी क्षेत्रफल में छोटा हो जाता है। जिससे प्रथम तो अपरा का मध्यभाग गर्भाशय से पृथक् होने लगता है। पृथक् होने पर गर्भाशय और अपरा के बीच में कुछ रक्त इकट्ठा होने लगता और फिर धीरे धीरे सम्पूर्ण अपरा गर्भाशय से पृथक् होकर योनि में आजाती है तथा फिर योनि से बाहर आजाती है। इस अपरा के साथ ही इकट्ठा हुआ दो तीन छटांक रक्त भी बाहर निकल जाता है। जरायु तथा अपरा के गर्भाशय से बाहर आजाने पर गर्भाशय को अपनी पूर्वावस्था में आने में कुछ समय की आवश्यकता होती है। इस समय योनि द्वारा गर्भाशय से प्रसव शोणित (लोकिया lochia) का स्राव होता रहता है। इसी स्राव के साथ गर्भाशय में शेष रहे हुए अपरा और जरायु के छोटे छोटे टुकड़े गर्भाशय से बाहर निकलते रहते हैं। इसलिए प्रसव के उपरांत इस रक्तस्राव का जारी रहना आवश्यक है। इसी कारण प्रसूता स्त्री को दो तीन दिन तक पिप्पल्यादि चूर्ण गर्म गुडोदक के साथ पिलाया जाता है। रूक्ष शरीर वाली जिन प्रसूता स्त्रियों को यह चूर्ण नहीं दिया जाता उनका वह अशुद्ध रक्तस्राव गर्भाशयगत अपानवायु से रुक जाता है और वह रुका हुआ रक्त इकट्ठा होकर नाभि के नीचे दोनों पार्श्वों में बस्ति प्रदेश अथवा बस्ति शिर में ग्रन्थि (गांठ) उत्पन्न कर देता है जिससे नाभि, बस्ति तथा उदर में शूल होता है तथा पक्वाशय में सुई चुभने के समान अथवा विदीर्ण होने के समान पीड़ा होती है और उदर में चारों ओर आध्मान हो जाता है तथा

मूत्र रुक जाता है। प्रसव के उपरान्त इस गर्भदोष निःसारक वेदना को मक्कलशूल (आफ्टर पेन्स-after pains) कहते हैं।

शार्ङ्गधर संहिता की दीपिका टीका के रचियिता श्री आढमल्ल ने सूतिकावस्था के इस मक्कलशूल के अतिरिक्त एक दूसरे गर्भावस्था में होने वाले मक्कलशूल का भी निर्देश किया है जो कि मानस और आगन्तुक दुखों से पीड़ित गर्भ द्वारा कुक्षि में उत्पन्न होता है। जैसे—

मक्कलो मारुतज शूल विशेषः। स द्विविधो भवति। एको गर्भावस्थायाम् अपरः सूतिकावस्थायाम्। तद्यथा मानसागन्तुभिरपतापैः प्रपीड़ितो यो गर्भः कुक्षौ वदनां जनयति स गर्भमक्कलः। (शार्ङ्गधर प्र० ख० अ० ७)

यह उपर्युक्त मक्कलशूल गर्भावस्थाजन्य होने के कारण इस प्रसूतिज मक्कलशूल से भिन्न होने के कारण यहां विचारणीय नहीं है।

मक्कलशूल के कारण—

मक्कलशूल के कई कारण हो सकते हैं।

१—गर्भाशय का प्रक्षोभ—कभी कभी प्रसव में बहुत विलम्ब होने से अथवा कष्ट प्रसव या अन्य किसी कारण से गर्भाशय जब कुछ क्षुब्ध (इर्रीटेटेड) होजाता है और वह प्रसव के पश्चात् भी जोर से संकुचित होता रहता है तब गर्भाशय के इस संकोच के समय मक्कलशूल होता है।

२—गर्भाशय में अपरा तथा जरायु के टुकड़ों का शेष रहजाना—कभी कभी प्रसूता स्त्री के गर्भाशय में अपरा तथा जरायु के कुछ टुकड़े शेष रह जाते हैं तब उनको बाहर निकालने की कोशिश में गर्भाशय में संकोच होते हैं और उनसे मक्कलशूल होता है।

३—गर्भाशय की निर्बलता—कभी कभी गर्भाशय की दुर्बलता के कारण उसकी संहरण क्रिया ठीक नहीं होती है और रक्त का स्राव कुछ अधिक होता है तथा यह रक्त गर्भाशय के भीतर जमने लगता है और उसकी गांठें बन जाती हैं। तब इन गांठों को निकालने के लिए उत्पन्न हुए गर्भाशय संकोच से मक्कलशूल होता है।

'ज्ञातव्य'—इन कारणों के अतिरिक्त कभी-कभी कोई ठीक कारण न ज्ञात होते हुए भी प्रसव होने के पश्चात् गर्भाशय में जो संकोच होते हैं उन से भी यह मक्कलशूल होता है।

रोग निश्चिति—

प्रसूता स्त्री को प्रसव के पश्चात् आन्त्रगत वायु (अर्थात् आध्मान) और मूत्रावरोध के कारण भी शूल हो जाता है क्योंकि उदर गुहा से गर्भ निकल जाने पर उदर में शून्यता तथा रिक्तता आ जाती है और योनि द्वार के समीप के भाग पर प्रसव के समय पर्याप्त दबाव तथा आघात होने के कारण मूत्र द्वार और मल द्वार के सुषिर स्नायु संकुचित रहते हैं जिससे मल और मूत्र का परित्याग नहीं होता। इस मलावरोध और मूत्रावरोध से जो शूल होता है उसको मिथ्या प्रसवोत्तर वेदना कहते हैं।

मक्कलशूल अर्थात् वास्तविक प्रसवोत्तर वेदना तथा मिथ्या प्रसवोत्तर वेदना में निम्नलिखित भेद होते हैं।

मक्कलशूल या वास्तविक प्रसवोत्तर वेदना—

१—यह गर्भाशय संकोच के कारण होती है।
२—यह वेदना नियत समय पर होती है।
३—इस प्रकार की वेदना के समय गर्भाशय के ऊपर हाथ रखने से वह कड़ा मालूम होता है।
४—यह वेदना बच्चे को दूध पिलाने के समय अधिक हो जाती है तथा उस समय न होती हो तो वह प्रारम्भ हो जाती है।
५—मल-मूत्र त्याग करने पर भी यह वेदना कम नहीं होती है।

मिथ्याप्रसवोत्तर वेदना—

१—यह आन्त्रगत वायु अथवा मत्रावरोध के कारण होती है।

२—यह वेदना अनियमित समय पर होती है।
३—इस वेदना के समय गर्भाशय कड़ा नहीं मालूम होता है।
४—इस वेदना पर बच्चे को दूध पिलाने का कोई परिणाम नहीं होता है।
५—मल-मूत्र त्याग करने अथवा अन्य उपायों से मलमूत्र निकाल देने से यह वेदना कम हो जाती है।

चिकित्सा—

उपर्युक्त लक्षणों से मक्कलशूल (वास्तविक प्रसवोत्तर वेदना) का निश्चय हो जाने पर उसकी चिकित्सा निम्नलिखित विधि से करनी चाहिए—

आभ्यन्तरिक चिकित्सा—

१—यवक्षार चूर्ण ३ रत्ती की मात्रा में लेकर गर्म जल अथवा घृत के साथ प्रसूता स्त्री को दिन में दो बार दें।

नोट—पिप्पल्यादि क्वाथ के साथ भी यवक्षार का चूर्ण दिया जाता है।

बाह्य चिकित्सा—

प्रसूता स्त्री के उदर पर नाभि के आस पास गर्मजल (रबड़ की थैली अथवा बोतल में) भरकर उससे सेकना चाहिए।

आहार—

भोजन में यवक्षार से पकाई गई यवागू प्रसूता स्त्री को पिलावें। इस प्रकार की आभ्यन्तरिक तथा बाह्य चिकित्सा से मक्कलशूल शान्त हो जाता है। मलाशय तथा योनि में वस्ति देना भी लाभदायक है। यदि कोष्ठ शुद्धि न हो तो विरेचन द्वारा कोष्ठ शुद्धि कर लेनी चाहिए।

अन्य प्रयोग—

२—पिप्पल्यादिगण की औषधियों से बनाए हुए क्वाथ में नमक डालकर प्रसूता स्त्री को प्रातः सायं पिलावें।

३—वीरतर्वादिगण की औषधियों से बनाए हुए क्वाथ में उष्णकादिगण की औषधियों का चूर्ण डालकर प्रातः सायं प्रसूता को पिलावें।

४—वरुणादिगण की औषधियों से बनाये हुए क्वाथ में छोटी पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ और छोटी इलायची का चूर्ण डालकर प्रातः सायं प्रसूता को पिलावें।

५—शालिपर्णी और पृश्निपर्णी के बनाए क्वाथ में देवदारु और कालीमिर्च का कल्क मिलाकर प्रातः सायं पिलावें।

६—सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची तथा धनियां का चूर्ण बना पुराना गुड़ मिलाकर प्रातः सायं प्रसूता को खिलावें।

७—वज्रकांजिक का प्रयोग दिन रात में दो बार करें।

८—फेनासिटीन, एस्प्रिन, बार्बीट्यूरेट्स अथवा मार्फिया आदि वेदना नाशक औषधियों का प्रयोग करें।

—प्रसूति विज्ञानाङ्क से

गर्भाशय विच्युति

आचार्य श्री सुदेवचन्द्र पाराशरी शास्त्री

गर्भाशय विच्युति से तात्पर्य गर्भाशय की प्राकृतिक स्थिति में श्रोणि और औदरिक अंगों की अपेक्षा से किसी भी प्रकार के परिवर्तन से है। इसमें गर्भाशय-अक्ष की दिशा में सम्भावित वे सब परिवर्तन शामिल हैं जिन को विवर्तन (Version) और नमन (Flexion) कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि गर्भाशय पूर्णरूप से न केवल नीचे, ऊपर, पीछे अथवा पार्श्व ओर ही विच्युत होता है बल्कि असाधारण अक्षांश पर आगे पीछे, या पार्श्व की ओर स्वयं भी मुड़ सकता है। सामान्यतः इसे गर्भाशय का अधोगमन, उद्गमन, पश्चाद् विवर्तन या पश्चाद् विच्युति, पार्श्वविच्युति और पश्चादवनमन, पूर्वावनमन तथा पार्श्वावनमन कहते हैं।

गर्भाशय की प्राकृतिक स्थिति—

गर्भाशय विच्युति को समझने के लिए, इसकी प्राकृतिक स्थिति का ज्ञान आवश्यक है। चित्र सं. ८४ में गर्भाशय की स्थिति और उसका श्रोणिगत अङ्गों से सम्बन्ध दिखाया गया है। गर्भाशय की स्थिति लगभग क्षैतिज है। गर्भाशय-स्कन्ध सामने को रिक्त बस्ति पर स्थित है। उदर्याकला का दोहरामोड़ गर्भाशय की लम्बाई का ⅓ तक भीतर अनुस्यूत है। योनि प्राचीरिकाओं से सम्बद्ध गर्भाशय ग्रीवा की स्थिति लगभग योन्यक्ष के दक्षिण कोणों पर है। गर्भाशय की पूर्व प्राचीरिका बस्ति का स्पर्श करती है तथा क्षुद्रान्त्र गर्भाशय की पश्चिम प्राचीरिका को छूती है। यह भी प्रकट है कि गर्भाशय का दीर्घ अक्ष, ग्रीवा के अन्तर्द्वार के समतल कुछ आगे को झुका है। इसको गर्भाशय का प्राकृतिक पूर्वावनमन कहते हैं। अस्तु, यह कथन यथार्थ है कि यदि शरीर की मध्यरेखा के अनुपात से विचार करें तो गर्भाशय प्राकृतिक रूप से पूर्वविवर्तित तथा पूर्वावनत होता है।

चित्र ८४
१. स्वाभाविक अवस्था
२. पश्चादवनमन
३. पश्चाद् विवर्तन

गर्भाशय प्राकृतिक स्थिति में कैसे रहता है?—

यह जटिल विषय है और इसमें बहुत मतभेद है। इस विषय में कई सम्बन्धित कारण हैं जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण हैं, कुछ को अनावश्यक महत्व दिया जाता है, और कुछ प्रायः उपेक्षणीय हैं। सम्बन्धित कारण निम्नलिखित हैं—

१—श्रोणितल भूमि का समुच्चय:
२—प्रमुख बंधनिकाओं का समुच्चय
३—गर्भाशय बन्धनिकाएं
४—गर्भाशय का परिमाण, भार और स्थिति
५—उदरान्तरीय भार

१—श्रोणितल भूमि का समुच्चय—गुदसंकोचनी पेशी और इसकी कला श्रोणिकङ्काल के निर्गमद्वार को बन्द करने वाली प्रमुख धारक प्राचीर रचना है किन्तु यह पेशी पूर्णप्राचीरिका नहीं है। इसमें पीछे की ओर गुदा तथा सामने की ओर योनि और मूत्रबहिर्द्वार के छिद्र हैं। गुद प्रसारणी पेशी के दो अर्धांशों के मध्य में श्रोणितलभूमि नामक द्वार है जो स्वस्थावस्था में अपेक्षाकृत संकुचित रह कर मूत्र वस्ति आदि किसी अङ्ग को अवस्रस्त नहीं होने देता, जिसकी कि सम्भावना खड़ी स्थिति में औदरिक भार के बढ़ने से होती है। सामने की ओर यह श्रोणितलभूमि नामक अवकाश-सौत्रपैशिकधातु के तनु आवरण से अंशतः आच्छादित रहता है जिसे संधानिका ग्रैविकपेश्यावरण (Pubo-cervical muscle sheet) कहते हैं। यद्यपि यह अतिशय तनु रचना है यथापि यह मूत्राशय के आधारभूत वास्तविक आश्रय का काम करती है।

(२) प्रमुख बन्धनिकाएं—अनुप्रस्थ ग्रैव अथवा प्रमुख बन्धनिकाएँ, श्रोणि प्राचीरों और ग्रीवा के मध्य पार्श्वीय श्रोणिकला के भाग का नाम है। इस कला का सम्बन्ध योनि प्राचीरिकाओं के ऊपरी भाग तथा ग्रैवानुबन्धों से रहता है। कला वहां पर स्थूल है और ग्रीवा तथा अधियोनि भाग को कला से यथार्थतः सम्बन्धित करती है और इस तरह श्रोणि के अन्तः प्राचीर को आवृत करती है। कला का आवरण क्षैतिज है और गर्भाशय वाहिनियां प्रमुख बन्धनिकाओं के ऊपर रहती हैं। इस स्थूल कलावरण द्वारा ग्रीवा और अधियोनि को प्रदत्त आश्रय में गर्भाशय की रक्त और लसिकावाहिनियों को आवृत करने वाली कला का भी सहयोग है। यद्यपि प्रमुख बन्धनिकाऐं गर्भाशय को पूर्ण आश्रय प्रदान नहीं करती तथापि उनके समुच्चय का अतिशय महत्त्व है।

(३) गर्भाशय बन्धनिकाऐं—ये अधिकांशतः वे मृदु रचनाऐं हैं जो उदर्याकला की तहों, संलग्न संयोजक धातु, मेद, श्लक्ष्णपेशी, रक्तवहस्रोतसों, नाड़ियों और लसिकावाहिनियों के मिलने से बनती हैं। गर्भाशय को आश्रय देने में इनका विशेष प्रभाव नहीं है। पक्षबन्धनियों का निश्चयतः यह कार्य नहीं है और यह भी सन्दिग्ध है कि रज्जुबन्धनिकाऐं गर्भाशय की पश्चाद् विच्युति को रोक सकती हैं। वह बहुत दूर तक मुड़ी हुई रहती हैं और उनके सीधी होने से पूर्व ही अत्युल्लेखनीय मात्रा में गर्भाशय का पश्चादवनमन सम्भव है। यदि रज्जुबन्धनिकाओं को कृत्रिम रूप से छोटा कर दिया जावे तो वे निस्सन्देह गर्भाशय को आगे रखने में सहायता करती हैं। गर्भाशय कटिबन्धनिकाऐं, जो गर्भाशय ग्रीवा के अन्तर्द्वार के समतल संलग्न स्थान से मध्य रेखा में ऊपर की ओर कटि के द्वितीय कशेरु तक स्थित हैं, गर्भाशय ग्रीवा नीचे को खिसकने—अवस्रंस (Downward displacement) से रोकती हैं। (चित्र सं० ८५) वे प्रमुख-बन्धनिकाओं के पश्चिमवर्धन हैं और इसीलिए इनका कुछ काम होना आवश्यक है। गर्भाशय मूत्रवस्ति—बन्धनिकाऐं इतनी लघु और अस्पष्ट हैं कि गर्भाशय को स्वाभाविक स्थिति में रखने में अनपेक्षणीय हैं।

चित्र ८५

१. गवीनी २. गुद गर्भाशयन्तरीय कोष (pouch of Douglas) ३. गर्भाशयान्त्रिक बलियां ४. वीजग्रन्थि श्रोणि बन्धनिकाएं ५. रज्जु बन्धनिकाएं ६. पक्षबन्धनिकाएं।

(४) गर्भाशय का परिमाण, भार और स्थिति—गर्भाशय के बड़े होने से विच्युति का सम्बन्ध जोड़ने में भ्रांतियां हैं। क्योंकि जितना ही अधिक बड़ा गर्भाशय होगा मूत्राशय के साथ

श्रोणितल भूमि द्वार में होकर उसके अवस्रस्त होने में उतनी ही अधिक कठिनाई होगी। गर्भाशय की स्थितिका उसके अवनसन में बड़ा महत्त्व है। मिथ्या-विकास के अतिरिक्त यह तभी होता है जब गर्भाशय पेशी मृदु हो और सामान्य की अपेक्षा अधिक नम्य हो, यहां तक कि विकृत दिशाओं में उसका अवांछनीय नमन हो सके।

(५) उदरान्तरीय भार—यद्यपि उदरक कला में किसी प्रकार का भार नहीं है किन्तु औदरिक अंगों का भार, श्वासोच्छ्वास गतियों का प्रभाव, सीधे खड़े होने का परिणाम, महाप्राचीरा तथा औदरिक पेशियों के संकोच का भार, औदरिक अंगों के द्वारा श्रोणिगत अवयवों पर पूरा पड़ता है। क्षुद्रान्त्र द्वारा गर्भाशय की पश्चिम प्राचीरिका पर भार पड़ता है जिससे यह नीचे को मूत्राशय पर दबती है। इससे गर्भाशय की अवस्रंस की प्रवृत्ति स्वाभाविक हो जाती है और इसके साथ मूत्राशय की भी; किन्तु श्रोणितल भूमि की पेशियां अपने प्रति संकोचों द्वारा इस अवस्रंस को रोकती है। इनमें गुद संकोचनी पेशी का कार्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। परिणामतः गर्भाशय, रिक्त या मूत्रपूर्ण मूत्राशय के निकट पूर्णतया संलग्न रहता है।

आनुपातिक दृष्टि से किस किस कारण का कितना कितना कार्य है यह निश्चित करना कठिन है। किन्तु सभी का थोड़ा बहुत भाग है इसमें कोई सन्देह नहीं। विभिन्न विच्युतियों के विचार के समय इन कारणों के प्रभाव को किस प्रकार परिवर्तित किया जा सकता है इसका विचार भी किया जावेगा। एक बात अधिक ध्यान देने की है कि गर्भाशय चलनार्ह अंग है जो मलपूर्ण मूत्राशय और मलाशय के अनुरूप अपनी स्थिति को परिवर्तित करता रहता है और अन्तरौदरिक भार के बल की दिशा के अनुसार भी स्थिति परिवर्तन करने में समर्थ है तथा गर्भावस्था के परिणाम-स्वरूप श्रोणि को विकसित करने में समर्थ होता है।

गर्भाशय विच्युति के कारणों पर विचार करते हुए यह प्रदर्शित किया जावेगा कि गर्भाशय की स्थिति के नियामक व्यापार को परिवर्तित करने के मुख्य हेतु गर्भावस्था और प्रसव हैं। पूर्वोक्त कारण भेदों में से, प्रत्येक में कुछ विशिष्ट कारण विचार कोटि में आ सकते हैं किन्तु यदि गर्भावस्था और प्रसव की तुलना में विचार करें तो विच्युति में उनकी कारणता इतनी सूक्ष्म है कि प्रायः उपेक्षणीय है।

गर्भाशय-विच्युति के प्रकार—

१—गर्भाशयावभ्रंश (Prolapse or descent of the uterus)

२—पश्चाद् विवर्तन (Retroversion)

३—पश्चादवनमन (Retroflexion)

४—पश्चाद विवर्तन सह पश्चादवनमन (Retroversion with retroflexion)

५—पार्श्व-विच्युति (Lateral displacement)

६—उद्भ्रंश (Ascent)

७—पश्चात् स्थिति (Retroposition)

८—अन्तःपरिवृत्ति (Inversion)

इन प्रकारों की स्वतन्त्र एकाकी उपस्थिति आवश्यक नहीं है उदाहरणतः गर्भाशयावभ्रंश, पश्चाद्-विवर्त्तन के साथ अथवा पश्चाद् विवर्तन और पश्चाद्-वनमन दोनों के साथ प्राप्त हो सकता है एवञ्च, पश्चाद्विवर्त्तन एकाकी की अपेक्षा पश्चादवनमन के साथ अधिकतर उपलब्ध होता है।

गर्भाशयावभ्रंश अथवा जननांगावभ्रंश (Prolapse of the uterus or Genital prolapse)

सामान्यतः वर्णित अवभ्रंश की तीन अवस्थायें हैं—

प्रथमावस्था—जब गर्भाशय पूर्णतया योनि के भीतर किन्तु सामान्य की अपेक्षा निम्नतर हो।

द्वितीयावस्था—जब गर्भाशय का कुछ अंश भग के भीतर और कुछ बाहर हो। इस स्थिति में अधि-

योनिक ग्रीवा साधारणतः लम्बी होती है।

तृतीयावस्था—जब योनि प्राचीरिकाएं पूर्णतया उद्वर्तित (everted) होजाती हैं और गर्भाशय भग से बाहर होता है इस अवस्था को परिप्लुता या अवप्लुता योनिव्यापद् (Procidentia) भी कहते हैं। इन अवस्थाओं में गर्भाशयगात्र लगभग सदैव ही क्षुद्र और संकुचित होता है।

कारण—गर्भाशयावभ्रंश के प्रमुख कारण गर्भावस्था, प्रसव या गर्भपात हैं क्योंकि शिशुजन्म की विभिन्न अवस्थाओं का प्रभाव गर्भाशय के प्राकृतिक धारकों पर पड़ता है। कभी कभी कुमारियों में भी अवभ्रंशता देखी जाती है एवञ्च उन विवाहिताओं में भी, जिन्होंने कभी गर्भधारण नहीं किया। इन उदाहरणों में गर्भाशयावभ्रंश के कारण-गर्भाशयधारकों की दुर्बलता के अतिरिक्त अतिश्रम, अभिघात, और दुस्स्वास्थ्य भी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

शिशुजन्म से गर्भाशयधारक दुर्बल होते हैं। इसका प्रमुखकारण श्रोणितल भूमि, खासकर गुद प्रसारणी पेशी और उसकी कला का अभिघातित होना है। गुदप्रसारणी पेशी का सम्बन्ध इसकी कला के द्वारा मूलपीठ से रहता है अस्तु, यदि मूलपीठ बुरी तरह विदीर्ण हो गया और पूर्ण रूप से सन्धान नहीं हुआ तो गुदप्रसारणी पेशी के दो अर्धांशों का एक दूसरे से पृथक होने तथा परिणामस्वरूप श्रोणितलभूमि के विस्तृत होने का पूर्ण अवसर है। श्रोणितलभूमि का यह विस्तार, मूलपीठविदार के विना केवल खिंचाव से भी उत्पन्न हो सकता है। छिन्नता के द्वारा अवभ्रंश होना आवश्यक नहीं है क्योंकि बहुत से उदाहरणों में पूर्ण मूलपीठ विदीर्ण होने पर भी गर्भाशयावभ्रंश नहीं देखा जाता। (चित्र सं० ८६-८७)

गर्भाशय का प्रसवोत्तर-अपूर्ण-संवरण भी महत्वपूर्ण है। जब तक गर्भाशय प्रसवोत्तर सामान्य अवधि के भीतर अपनी पूर्वावस्था और पूर्वपरिमाण में नहीं आता तो इसकी बन्धनिकाएं और पारिपार्श्विक संयोजक धातु भी अपनी पूर्वस्थिति प्राप्त नहीं कर पाते और बढ़े हुए भार वाले गर्भाशय को धारण करने से शिथिल हो जाते और खिंच जाते हैं। इस प्रकार गर्भाशय श्रोणि में सरलतापूर्वक इधर उधर हो सकता है और पश्चाद्विवर्तित होने पर योनि के दीर्घ अक्ष में रहता है जिससे उसका अवस्रंस (Descent) होना सरल होता है श्रोणितलभूमि के विस्तृतहोने तथा गर्भाशय के श्लथ होने पर उसे नीचे की ओर धकेलने के लिए उदरान्तरीय-पीडन की आवश्यकता रह जाती है जो किसी भी प्रकार के अतिश्रम से पूरी हो जाती है। प्रवृद्ध औदरिक पीडन, मलोत्सर्गकालिक कुन्थन, प्रवाहण, जीर्णकास या भार वहनादि कर्मों से सम्पन्न हो लेती है।

चित्र ८६

१. शिश्निका प्रहर्षणी २. मूत्र प्रवर्तनी या योनि संकोचनी ३. नितम्ब पिण्डिका बाह्या ४. प्रसारिणी कला ५. गुद प्रसारिणी ६. गुद संकोचनी ७. नितम्ब पिण्डिका गरिष्ठा
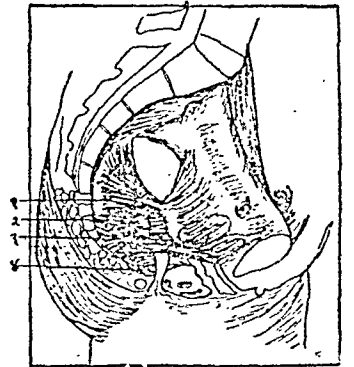
चित्र ८७

१. अनुत्रिकिणी २. जघनानुत्रिकिणी ३. सन्धानिकानुत्रिकिणी ४. सन्धानिका गुदीय

प्रसव के इन सामान्य विकृत परिणामों के साथ साथ एक और विशिष्ट सहायक भी कारण

विचारणीय है। यदि प्रमुख बन्धनिकाएँ(Cardinal ligaments) गर्भाशय धारण में बड़ा भाग रखती हैं जैसी कि साधारण मान्यता है तो कोई विशेष प्रकार होना चाहिए जिसके द्वारा वे खिंच कर स्थाई रूप से ढीली हो जाती हैं। यह स्वीकार करना होगा कि कुछ उदाहरणों में गर्भोदक थैली के जल्दी फट जाने से गर्भाशय ग्रीवा बहुत धीरे धीरे विकसित होती है ऐसी दशा में गर्भशिर श्रोणि में गर्भाशयानुबन्धों के साथ बहुत नीचे आने को बाध्य होता है। ऐसे उदाहरणों में प्रायः ग्रीवा विकास से बहुत पूर्व संदंश का प्रयोग कर लिया जाता है जो गर्भाशयानुबन्धों को नीचे खींच लाने का हेतु बनता है। यह प्रक्रिया प्रमुख बन्धनिकाओं को अति असाधारण रूप से खींचने का कारण बनती है और संभावना से भी अधिक कतिपय उदाहरणों में ये बन्धनिकाएं इतनी आघातित हो जाती हैं कि पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्ति असम्भव होजाती है। यह बात अधिक तर्क संगत नहीं है कि ग्रीवा विकसित होने से पूर्व संदंश का प्रयोग विभ्रंश का प्रबल कारण है।

यह देखते हुए कि प्रवृद्ध औदरिक सम्पीडन, प्रमुख बन्धनिकाओं की शिथिलता और श्रोणितल भूमि विस्तृति विभ्रंश उत्पन्न करने में मुख्य कारण हैं, यह मालूम करना कठिन नहीं है कि यही कारण उनमें कैसे उत्पन्न हो जाते हैं जिनके बच्चे ही नहीं हैं। दुस्स्वास्थ्य, अस्वास्थ्यकर वातावरण, क्षुधाबाधा और अतिश्रम ये सभी शरीर के संयोजक धातुओं के सामान्य शैथिल्य के कारण बनते हैं। इनसे मेद भी शोषित हो जाता है। इस प्रकार परिवाहिनी कलास्तर शिथिल होकर, गर्भाशय को ढीला होने देता है जबकि श्रोणितल भूमि के अवरोही गतिशील अंश के दबाव से श्रोणितल भूमि द्वार विस्तृत होजाता है।

अवभ्रंशीय घटनाओं के परिणाम—साधारणतः अवभ्रंश शनैः शनैः होता है जो क्रमशः अधिक विकृत होता जाता है एवं पर्याप्त समय के उपरान्त पूर्ण अवभ्रंश हो पाता है। कुछ उदाहरणों में पूर्ण अवप्लुति (Procidentia) का कारण अतिशय भारोद्वहनादि अकस्मात् बन जाते हैं जैसा कि प्रायः अन्त्रविच्युति में भी होता है। यह आकस्मिक-अवभ्रंश प्रजाताओं की अपेक्षा अप्रजाताओं में ही अधिक उपलब्ध होते हैं, यद्यपि बहुत कम अनुपात में मिलते हैं फिर भी ज्ञातव्य हैं क्योंकि इनकी चिकित्सा अत्यन्त कठिन होती है।

अवभ्रंश का प्रथम चिन्ह मूत्रबस्ति का पीछे या नीचे को स्रस्त हो जाना है जिससे योनि की पूर्व प्राचीरिका पर सामने की ओर सम्पीडन होता है। इस अवस्था को मूत्राशय विच्युति (Cystocele) कहते हैं। या तो यह गर्भाशयावभ्रंश की सहचारिणी होती है अथवा अकेली भी होती है। श्रोणितल भूमिद्वार-विस्तृति से इसको सहायता मिलती है और सन्धानिका एवं पैशिकस्तर को क्षति पहुंचती है जिसके ठीक ऊपर मूत्रबस्ति होती है। योनि की पूर्व प्राचीरिका के खिंचाव से मूत्राशय वृद्धि बढ़ती जाती है। ग्रीवा के पूर्वौष्ठ पर खिंचाव बढ़ने से गर्भाशय भी खिंचता है। यदि गर्भाशय शिथिल हुआ तो इस खिंचाव से पश्चात् विवर्तन होना शनैः शनैः सम्भव है साथ ही साथ अवभ्रंश भी हो सकता है। इसके परिणाम स्वरूप योनि-पश्चिम-प्राचीरिका भी अवस्रस्त होती है और शनैः शनैः गुदा से इसका सम्बन्ध पृथक् होजाता है और पश्चात्कोण निम्नतर होजाता है। गुदगर्भाशयान्तरीय स्थालिकोष (Douglas's pouch) के तल पर उदर्याकला का कर्षण होता है और ज्यों ही योनि प्राचीरिका गुदा से पृथक् होती है शनैः शनैः अवस्रस्त होती जाती है। समय पाकर गर्भाशय और मूत्राशयविच्युति भग तक पहुंचते हैं मूत्राशयविच्युति की सहायता से कालान्तर में पश्चिम प्राचीरिका भी अवस्रस्त होती है एवं श्रोणितल भूमि का समस्त चलनार्ह भाग भग से बाहर आ सकता है जिससे योनि प्राचीरिकाएँ पूर्णतया उदवृत्त हो जाती हैं।
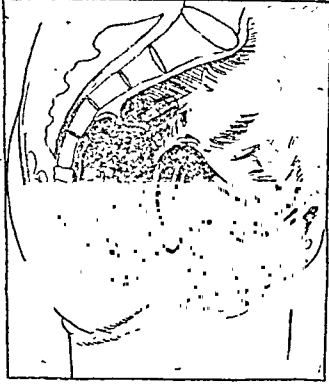
चित्र ८८
प्रथमावस्था के अवभ्रंश के साथ मूत्राशय विच्युति
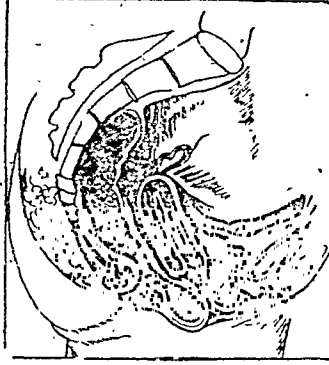
चित्र ८९
गुद विच्युति सह मूत्राशय विच्युति
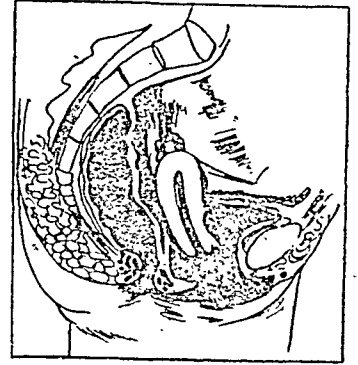
चित्र ९०
मूत्राशय विच्युति सहअधि-योनिक ग्रीवावलम्बता
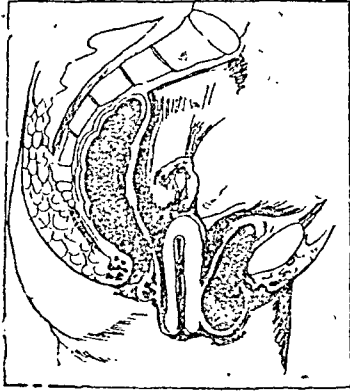
चित्र ९१
योनि प्राचीरिकाएं उद्वर्तित हैं, महत्तर मूत्राशय विच्युति
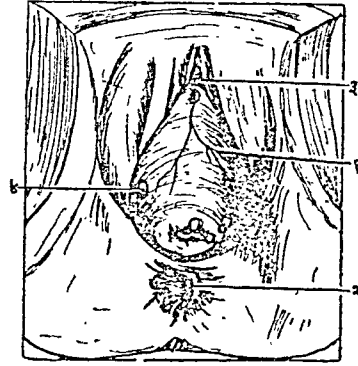
चित्र ९२
योनि प्राचीरिकाएं पूर्णतया उद्वर्तित हैं। घर्षण के फलस्वरूप क्षुद्र व्रण हो गये हैं। १-गर्भाशय २-गुदद्वार ३-योनि द्वार ४-व्रण

कतिपय उदाहरणों में मूत्राशय विच्युति के बजाय गुदविच्युति गर्भाशयावभ्रंश से पूर्व देखी जाती है। इनमें श्रोणितल भूमिद्वार का विस्तृत होना आवश्यक नहीं होता। किन्तु साधारणतः ऐसा विश्वास किया जाता है कि मूलपीठ का गम्भीर आघात होने से ही यह हो सकता है। योनि प्राचीरिका के गुदसंसक्तभाग नीचे खिसकते हैं, मूलपीठ द्वारा कोई प्रतिकार नहीं होता, इससे मलाशय के निम्न तृतीयांश के कोण की दिशा पूर्णतया बदल जाती है फलतः मलप्रवृत्ति की दिशा भी बदल जाती है। परिणामस्वरूप मलत्याग के समय मल को आगे को धक्का देने की प्रवृत्ति होती है इसके सामने पूर्वगुद प्राचीरिका को धक्का लगता है और धीरे-धीरे यह प्राचीरिका आगे अन्तर्गुद संकोचनी पेशी पर उभर जाती है। यह आगे को उभरना ही गुदविच्युति है। इससे पश्चिम योनि प्राचीरिका खिंचती है जिससे गर्भाशय ग्रीवा के पश्चिमौष्ठ पर खिंचाव पड़ता है। शनैः-शनैः गर्भाशय पश्चाद् विवर्त्तित होता है और शिथिल होने पर अवभ्रष्ट भी हो जाता है। तत्कालीन घटनाओं का परिणाम मूत्राशय विच्युति सम्पन्न होने के विपरीत दिशा में होता है। कभी-कभी एक ही

रुग्णा में गर्भाशयावभ्रंश के साथ ही मूत्राशय विच्युति और गुदच्युति दोनों उपलब्ध होते हैं। जब गर्भाशय शिथिल (ढीला) नहीं होता मूत्राशय विच्युति या गुदविच्युति अथवा दोनों, अधिकतर गुदविच्युति स्वयं ही गर्भाशयावभ्रंश के बिना देखे जाते हैं। (चित्र ६३) अन्य उदाहरणों में मूत्राशयविच्युति या गुद-विच्युति का भिन्न ही प्रभाव होता है जो गर्भाशय वन्धनिकाओं की क्षति के अनुपातानुसार होता है। जब गर्भाशय बिल्कुल ढीला नहीं होता तब योनि प्राचीरिकाओं द्वारा गर्भाशय ग्रीवा पर होने वाला खिंचाव ग्रीवा के अधियोनिक भाग को लम्बा और संकीर्ण (पतला) बनाता है गर्भाशयावभ्रंश नहीं कर पाता। दूसरी ओर यदि गर्भाशय कुछ ढीला है तो अधियोनिक ग्रीवा भाग लम्बा और पतला तो होता ही है साथ ही शनैः शनैः गर्भाशयावभ्रंश भी होता है। यह भी हो सकता है कि गर्भाशयावभ्रंश में ग्रीवा का अधियोनिक भाग बहुत लम्बा हो। बहुत कम रुग्णाओं में ग्रीवा का मध्यभाग लम्बा होता है— वह भाग जो योनि की पूर्व और पश्चिम प्राचीरिकाओं के संयोग स्थल के समतल बीच में होता है।
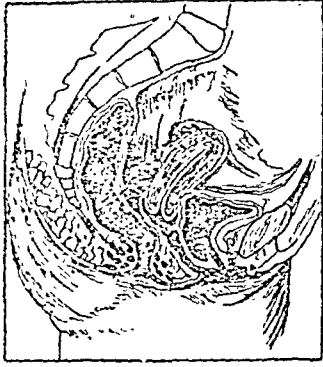
चित्र ६३
गर्भाशय अधोगमन आरम्भ नहीं हुआ है।

लक्षण—

गर्भाशयावभ्रंश के लक्षण बिल्कुल अनिश्चित होते हैं और किसी भी श्रोणिविकार के सहचारी हो सकते हैं। प्रथम लक्षण किसी प्रकार के भ्रंश का अनुभव होना है मानो श्रोणि के अधिष्ठित अंग अवभ्रष्ट हो गए हों यद्यपि ऐसा कुछ होता नहीं है। इसके साथ-साथ कटि प्रदेश में भेदन (पीड़ा) होती है और त्रिक प्रदेश में पृष्ठशूल होता है। जिनमें अवभ्रंश हुए कुछ समय बीत जाता है उन रुग्णाओं में भग पर किसी निर्गमन की शिकायत मिलती है जिसे रुग्णा अण्डाकृति बताती है। आमतौर से यह उभरी हुई मूत्राशय विच्युति होती है। इसके साथ साथ दिन के समय कभी कभी मूत्रस्राव भी होता है किन्तु रात को नहीं होता। ऐसा प्रतीत होता है कि उभरा हुआ मूत्राशय फुलाव को सह नहीं पाता किन्तु रात को रुग्णा के लेटने पर स्वाभाविक रूप से दूर हो जाता है क्योंकि सब अवयव अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ जाते हैं। जिन रुग्णाओं में अवभ्रंश अत्यधिक होता है, मूत्राशय का बड़ा भाग वस्तुतः भग से बाहर होता है उनमें अवशिष्ट मूत्र की स्वल्प मात्रा भी रहती है। इनमें मूत्राशय में संक्रमण और मूत्राशय शोथ हो जाता है। तथापि यह अवभ्रंश का उपद्रव अत्यल्प देखा जाता है। बार-बार मूत्र त्याग की इच्छा होती है किन्तु मूत्र प्रवृत्ति में कठिनाई होती है। मूत्राशयावभ्रंश सुपर्याप्त हो जाता है जब कि गर्भाशय योनि के भीतर ही रहता है। ऐसी रुग्णायें शिकायत करती हैं कि शोथ (मूत्राशय) पर दबाव दिए बिना वे मूत्रत्याग नहीं कर पातीं।

जब गर्भाशय बाहर रहता है और उद्वृत्त योनि प्राचीरिकाओं से आवृत्त रहता है तो फूले हुए भाग द्वारा रोगी को अत्यन्त परेशानी होना स्वाभाविक है। उरुओं की रगड़ से उभरे भाग में व्रण हो जाते हैं और थोड़ा रक्तस्राव भी होजाता है। उरुओं की त्वचा चिपचिपी और आर्द्र रहती है क्योंकि यह पूरी तौर से कभी सूख नहीं पाती। इससे रुग्णा की परेशानी और बढ़ जाती है। विबन्ध भी एक बड़ा कष्ट है विशेषकर गुदविच्युति की रुग्णाओं में। गुदा (मलाशय) स्वयं कभी मलरहित नहीं हो पाती क्योंकि इसकी प्राचीरें दुर्बल हो जाती हैं, जहां पर कि उभरा फुलाव होता है।

उग्र अनैच्छिक प्रवृति—अन्य रुग्णाओं में मूत्र प्रवृति का अनैच्छिक मार्ग बन जाता है। जब भी रोगिणी खांसती, छींकती या कोई आकस्मिक कार्य करती है यह लक्षण उत्तरोत्तर विकृति और दुःखद बनता जाता है और अत्यन्त कष्टप्रद हो जाता है। अधिकतर रुग्णाओं में मूत्राशय या गर्भाशय का सहचरित अवभ्रंश नहीं होता, बल्कि योनि की पूर्व प्राचीरिका के उस भाग का अवभ्रंश मात्र होता है जिसका मूत्र स्रोतस से सीधा सम्बन्ध रहता है। अवभ्रंश के इस प्रकार को मूत्र स्रोतोविच्युति कहते हैं। इसका कारण सन्धानिकाग्रैविक पेशी (Pubo-cervical muscle) के स्तर और प्रावरणी (fascia) का विनाश या खिंचाव है। यह पेशी गर्भाशय प्राचीरिकाओं को सुस्थित रखने के साथ साथ एक कपाट का कार्य भी करती है। श्रोणितल भूमि के इस भाग के नष्ट होने से मूत्राशय में मूत्र का अवरोध अशक्य होजाता है तनिक भी क्षोभक चेष्टा होने पर मूत्रप्रवृति होने लगती है।

ज्ञापक निदान (Diagnosis)—

अवभ्रंश के निदान में प्रायः कोई कठिनाई नहीं होती। रुग्णा को पीठ के बल लिटा कर टांगों को फैली रखाकर या सिकुड़ी रखा कर परीक्षा की जा सकती है। परीक्षण से ठीक पूर्व यदि रुग्णा चलती फिरती नहीं रही है तो गर्भाशयावभ्रंश स्पष्ट नहीं हो सकता है। रुग्णा को खांसने और कुछ अवक्षोभक चेष्टा करने का कहा जावे तो मूत्राशयविच्युति या गुदविच्युति किसी भी परिमाण में भगोष्ठों के बीच दीखती है। गुदविच्युति का पता गुदा में एक अंगुली डालकर लगाया जा सकता है। यह देखें कि अंगुली योनि की पश्चिमप्राचीरिका के उभार में अग्रसर होती है? गर्भाशयावभ्रंश का पता प्रथम तो ग्रीवा की स्थिति से लग सकता है कि वह भग के बाहर है अथवा ठीक से योनिद्वार के भीतर है। फिर गर्भाशयस्कन्ध को देखें और योनि की अन्तः परीक्षा (Bimanual examination) करके गर्भाशय की लम्बाई देखें। अधियोनि ग्रीवा जितनी ही अधिक लम्बी होगी, गर्भाशयस्कन्ध उतना ही कम श्रोणिगुहा के भीतर होगा। गर्भाशय की किसी प्रकार की लम्बाई के बिना ग्रीवा की स्थिति, सम्पूर्ण अंग की स्थिति को प्रदर्शित करती है।

गर्भाशय का कोई पश्चाद्विवर्त्तन इसके अवभ्रंश का सदैव कारण बनता है। अस्तु, पूर्वविवर्तित गर्भाशय कभी अवभ्रंश का हेतु नहीं बनता अथवा पूर्वविवर्तित गर्भाशय कभी अवभ्रष्ट नहीं हो सकता।

अवभ्रंश को ग्रीवाबहिरुत्सन्न कौषिक वृद्धियों से पृथक करना चाहिए। गर्भाशय के जीर्ण अन्तः विवर्त्तन और सहज ग्रीवालम्बता से भी मीमांसा अपेक्षित है। पूर्व दो अवस्थाओं में गर्भाशयद्वार बहुत ऊंचाई पर होता है जो कौषिकवृद्धि या अन्तर्विवर्तित गर्भाशय को घेरता है जब कि अवभ्रंश में गर्भाशयद्वार सर्वदा नोंकदार होता है जो अवभ्रष्ट वस्तु का निम्नतम भाग होता है।

मूत्राशय विच्युति की मीमांसा के लिए मूत्राशय में शलाका प्रवेश करने से उभरी हुई विच्युति अनुभूत होती है। मूत्राशय विच्युति को भ्रमवश पूर्व-योनि प्राचीरिका और मूत्राशय या मूत्रस्रोत के बीच का कोषार्बुद (Cyst) भी समझ लिया जाता है अथवा स्यानवृद्धि (सौत्रिकार्बुद) के मूत्राशय और योनि के बीच में होने पर मूत्राशय विच्युति समझ लिया जाता है। इन उदाहरणों में स्यानवृद्धि या
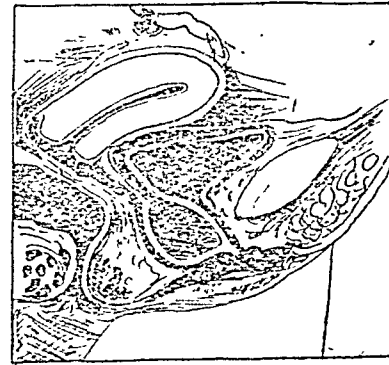
चित्र ६४
पूर्व योनि प्राचीरिका में जलार्बुद (Cyst)

कोषावुर्द की स्थूलता द्वारा योनि में प्रविष्ट परीक्षांगुली मूत्राशय में प्रविष्ट शलाका से पृथक् हो जावेगी। (चित्र सं. ६४)

अधियोनिक ग्रीवालम्बता को अन्तर्योनि परीक्षा द्वारा गर्भाशय की दीर्घतर लम्बता से पृथक किया जा सकता है अथवा गर्भाशयशलाका के प्रवेश द्वारा मापा जा सकता है।

ग्रीवालम्बता का एक प्रकार कभी कभी अवभ्रंश समझ लिया जाता है जिसमें ग्रीवा का योनिक भाग आक्रांत होता है। सामान्यतः यह सहज संकुचित ग्रीवालम्बता है। इसका निश्चय इस तथ्य से हो जाता है कि लम्बता सारी की सारी योनिकोणों के नीचे होती है, अधियोनिकलम्बता की भांति योनि के ऊपर नहीं होती। अधिकतर उदाहरणों में ग्रीवा दो इंच या अधिक योनिकोणों से उभर जाती है। यह अवस्था जन्मजात विकृत रचना से उत्पन्न होती है अर्जित नहीं हुआ करती। यह महत्वपूर्ण है क्योंकि गर्भाशयद्वार योनि में इतना निम्न होता है कि अत्यल्प अवभ्रंश से भी ग्रीवा भग पर उभर जाती है। कुमारियों में यह पता लग सकता है जिनमें वास्तविक अवभ्रंश असाधारण और विरल होता है तथा विवाहिताओं में बन्ध्यत्व का हेतु बन सकता है।

जब उत्सन्न वस्तु में व्रणी भाव हो जाता है, जिसका हेतु घर्षण और आघात है, व्रणों को प्रायः दुस्साध्य वृद्धियां समझ लिया जाता है। आघातज व्रण सर्वदा उथले होते हैं। किनारों पर रोहणशील होते हैं। अवभ्रष्ट वस्तु के किसी भी भाग पर हो सकते हैं; गर्भाशय द्वार पर उनकी उपस्थिति आवश्यक नहीं है। व्रण का आधार कठोर न होकर अपेक्षाकृत मृदु होता है और विचूर्णित नहीं हो सकता। गर्भाशय ग्रीवा का स्तरमय कोषाण्वर्बुद कठिन और विचूर्णनार्ह होता है। इसके किनारे कठिन, वृत्तमय और परिवर्तित होते हैं तथा आधार पृथक्कृत मृत धातुमय होता है। स्तरमय कोषाण्वर्बुद से उक्त विशेषताओं का विचार करते ही पृथक्करण अति सुकर है। योनि का स्तरमय कोषाण्वर्बुद अति विरल प्राप्त प्रमुख वृद्धि है और उपर्युक्त ग्रैव कोषाणु-अर्बुद के समतुल्य लक्षणों वाला ही होता है।

चिकित्सा—

सावधानी—श्रोणितल भूमि को प्रायः प्रसूतिकाल में आघात पहुंचता है जिसके कारण अवभ्रंश सम्भव होता है। यदि प्रसव कर्म और सूतिका परिचर्या में सावधानी वरती जावे तो अवभ्रंश रोका जा सकता है। शीर्षोदय में शिर के द्वारा श्रोणितल भूमि के विस्तार से पूर्व ही सन्दंश का प्रयोग तथा पश्चादनुशीर्षप्रसव मुख्यतः श्रोणितल भूमि के आघात का कारण बनते हैं। विदार का सावधानीपूर्वक सन्धान कर देने से अवभ्रंश रुक सकता है तथा कष्ट प्रसव की सभी रुग्णाओं को सूतिकाकाल में, सामान्य प्रसव की अपेक्षा दीर्घतर काल तक शय्यारूढ़ रहकर विश्राम करना चाहिए।

शामक व्यायाम—प्रसव के एक सप्ताह बाद रोग प्रशमन में सहायक व्यायामों का प्रयोग करना चाहिए ताकि रुग्णा के उठने से पूर्व श्रोणितल पेशियां सशक्त हो लेवें। रुग्णा के प्रसवोत्तर परीक्षण से अवभ्रंश या पश्चाद् विवर्तन की प्रवृत्ति का पता लग सकता है जिसके अनुसार जल्दी चिकित्सा आरम्भ की जा सकती है।

जितने समय तक अवभ्रंश और तत्सहचारी परतन्त्र लक्षण उपस्थित रहेंगे, तदनुसार ही आवश्यक चिकित्सा का निर्णय होगा। अवभ्रंश की उग्रता के अतिरिक्त अवधि ज्ञान अत्यावश्यक है। अवभ्रंश अनुदिन वर्धनशील विकृति है। जितना ही समय बीतता जाता है रोधक उपायों से चिकित्सा करने पर भी विकृति बढ़ती जाती है।

कुछ इन प्रकारों में उपयुक्त चिकित्सा द्वारा विकृति वृद्धि रोकना सम्भव है जिनमें प्रसवोत्तर शीघ्र ही अवभ्रंश सुस्पष्ट हो जाता है। मुख्यतः

जब यह गर्भाशयानुसंवरण और तदाश्रयसंवरण के साथ होता है। इन रुग्णाओं में मक्कल और दीर्घकाल स्थायी रुग्णता का इतिहास मिलता है और परीक्षा करने पर गर्भाशय विस्तृत, पश्चाद्-विवर्तित, गुरु, मृदु और शनैः शनैः भग की ओर अवभ्रष्ट होता हुआ मिलता है। इसके साथ साथ थोड़ा मूत्राशयावभ्रंश भी होता है। ऐसी रुग्णा में श्रोणितल भूमि के आघात से पूर्व (मूल पीठ विदार आघात का प्रमाण है) रोधक उपायों द्वारा श्रोणितलभूमि के गतिशील भागों का अवभ्रंश रोका जा सकता है। मूलपीठ विदार होने पर तो इसका सन्धानकर्म अपेक्षित होगा। चिकित्सा में संवरण-पूर्णता का प्रयत्न किया जाता तथा गर्भाशय और गर्भाशय-बन्धनिकाओं को सशक्त बनाने का यत्न होता है। श्रोणितल भूमि पेशियों, मुख्यतः गुद-संकोचनी पेशी को दृढ़ करने हेतु कतिपय व्यायाम बताये गये हैं। हाथों के सहारे उरुओं को मिलाने और पेशियों को संकुचित करने से गुदसंकोचनी को शक्ति मिलती है।

रुग्णा को ३-४ सप्ताह तक शय्यारूढ़ रहकर विश्राम करना चाहिए। उसे दिन भर में न्यूनतम चार बार मूत्राशय को रिक्त करना चाहिए और बिना प्रयत्न के मल शुद्धि कराने के लिए पर्याप्त अनुलोमक द्रव्यों का सेवन करना चाहिए। गर्भाशय विस्तृत और गुरु होने पर दशमूल या अगुर्वादि अथवा पिप्पल्यादि गणकाक्वाथ या अर्गट का मुख द्वारा प्रयोग और कोष्ण योनिवस्तियां देनी चाहिए, इससे गर्भाशय संवरण होता है।

किसी कारण से यदि रुग्णा शय्यारूढ़ रहकर विश्राम न कर सके तो गर्भाशय संवरणकाल में श्रोणितलभूमि के अवयवों को सहारा देने के लिए मुद्रिका (Ring passary) प्रयोग करना चाहिए। यथा सम्भव थोड़े समय के बाद ही मुद्रिका प्रयोग छोड़ देना चाहिए। मुद्रिका प्रयोग काल में दैनिक मृदुविलयन से योनिवस्ति करना चाहिए। एतदर्थ अक्षोभक द्रव्य रसांजन या डिटोल का प्रयोग करना चाहिए। वस्ति न करने से योनिगत अप-द्रव्य संचित रहकर क्षोभ पैदा करते हैं।

अवभ्रंश होते ही ऐसी रुग्णाओं का निरीक्षण अपेक्षाकृत संभव नहीं होता। आमतौर से ऐसी रुग्णाएँ प्रसव के वर्षों बाद और कभी-कभी तो रजोनिवृत्ति के समय चिकित्सार्थ आती हैं। इस समय अवभ्रंश को स्थायी-अवस्था समझनी चाहिए। केवल प्रत्याशित विकल्प शनैः शनैः अवभ्रंश का अधिक असन्दिग्ध होना है। चिकित्सा प्रतिबन्धक या शस्त्रकर्मात्मक होती है। प्रतिबन्धक चिकित्सा मुद्रिका प्रयोग करना है। यह रुग्णा और चिकित्सक दोनों को सुकर होने से सुविधाकर होती है। इसमें समय और धन का व्यय भी नहीं होता। लक्षणों की स्थायी रूप से समाप्ति निश्चित नहीं है बल्कि मूत्राशय विच्युति या गुद विच्युति होने पर तो अस्थायी लाभ की ही प्रत्याशा करनी चाहिए। साथ ही रुग्णा को दैनिक रूप से वस्ति प्रयोग और मुद्रिका परिवर्तन करते रहना चाहिए (३ मास तक भी)। क्रमशः बड़ी मुद्रिकाओं का प्रयोग करने पर भी एक समय आता है जब मुद्रिका द्वारा अवभ्रंश-निरोध सम्भव होता है और रुग्णा शस्त्रकर्म के लिए अतिवृद्ध होने से अनुमत नहीं की जा सकती। किसी भी शस्त्रकर्म की कठिनाइयां सुविदित हैं किन्तु अवभ्रंश की चिकित्सार्थ फॉदरगिल (Fathergill's) शस्त्रकर्म एक बार में सदा के लिए स्थायी लाभ प्रदान कराने में समर्थ होता है। यदि अनुभवी शल्यविद् शस्त्रकर्म करे और समुचित परिचर्या हो सके तो उपद्रवों की सम्भावना अत्यल्प तथा मृत्यु की सम्भावना भी अति विरल है। अस्तु प्रतिषेधक कारण (Contra-indications) न होने पर अवभ्रंश की चिकित्सा शस्त्रकर्मात्मक है।

शस्त्रकर्म प्रतिषेधात्मक हेतु (Contra-indications)-वृद्धावस्था में शस्त्रकर्म निषिद्ध है। मुद्रिका प्रयोग से अवभ्रंश रुकना संभव होने पर भी शस्त्रकर्म निषिद्ध है। सिवाय इसके कि रुग्णा अल्प-

वयस्क (युवती) हो और भावी गर्भधारणायें संभावित हों। इन रुग्णाओं में द्वितीयावस्था का अवभ्रंश मुद्रिका का सम्यक् प्रयोग करने पर अधिक नहीं बिगड़ने पाता और इस भांति रुग्णा प्रसवकाल पार कर लेती है। ऐसी रुग्णा को भी शस्त्र कर्म का प्रतिषेध है जिसकी सामान्य अवस्था ऐसी है कि खतरों की संभावना हो सकती है जैसा कि हृद्रोग रुग्णा में होता है। इक्षुमेह पीड़िता को भी शस्त्रकर्म निषिद्ध है क्योंकि रुग्णा का मूत्रमार्ग मधुररसपूर्ण रहता है अतः व्रण संरोह न हो संक्रमण होकर शस्त्रकर्म निष्फल होजाता है। रुग्णा के जीर्णकास से पीड़ित होने पर भी शस्त्रकर्म से स्थाई लाभ की संभावना बहुत कम हो जाती है। अतिस्वल्प अवभ्रंश होने पर भी शस्त्रकर्म की अनुमति नहीं दी जाती। ऐसी रुग्णा को तब तक मुद्रिका प्रयोग करावें जब तक लक्षण पूर्णतया दूर न हो जावें। इन अपवादों को बचाकर ही शस्त्रकर्म की अनुमति दी जाती है।

शस्त्रकर्मात्मक चिकित्सा—

अवभ्रंश में शस्त्रकर्म पूर्ण क्षमतापूर्वक ही करे। शस्त्रकर्मोपरान्त भी मुद्रिका प्रयोग करना पड़े तो शस्त्रकर्म निष्फल हुआ समझें। सुनियोजित सन्धान शस्त्रकर्म (Plastic operations) सफल होते हैं और श्रोणितलभूमि के व्यतिकरों के स्वस्थ हो जाने से मुद्रिका प्रयोग की आवश्यकता नहीं रहती। एतदर्थ शस्त्रकर्म निश्चित सिद्धान्तों पर आधारित और सुसम्पादित होना अपेक्षित है। कर्म का उद्देश्य सभी रचनात्मक विकारों की निवृत्ति होना चाहिए। अधिकांशतः योनिगत सन्धान शस्त्रकर्म अपेक्षित होते हैं। मूत्राशयविच्युति को दूर करके मूत्र बस्ति को सम्यकतया समाश्रित कर देना चाहिए। गुदविच्युति को निवृत करके गुदा को यथावस्थित करने के लिए गुद-योनिक-सेतु को पुनः रचित करें, श्रोणितलभूमिद्वार को संकीर्ण करें, गुदपीठ को प्रकृतिस्थ बनावें। ग्रीवा का अधियोनिकभाग अतिलम्ब होने पर छेदन करना चाहिए। अन्ततः गर्भाशय को पूर्व विवर्तित स्थिति में रखना चाहिए।

योनिगत शस्त्रकर्म से ही प्रायः कार्य सिद्ध हो जाता है अतः औदरिक शस्त्रकर्म की शायद ही आवश्यकता पड़ती है।

अवभ्रंश के साथ गर्भाशयविस्तृति होने पर तथा असृग्दर (Menorrhagia) से पीड़ित होने पर कई बार योनिगत गर्भाशयच्छेदन (Vaginal Hysterectomy) और योनि सीवन साथ साथ आवश्यक होते हैं।

शस्त्रकर्म के बाद रुग्णा को शय्यारूढ रखकर २ सप्ताह तक विश्राम करावें। इन दिनों विबन्ध न होने देवें। बाद में क्रमशः स्वाभाविक दिनचर्या की की ओर अग्रसर होने का निर्देश करें। अतिश्रम, घण्टों खड़े रहना, भारोद्वहन तथा उदर पर दबाव पड़ने का कोई श्रम न करें अन्यथा शस्त्रकर्म की सफलता सन्दिग्ध हो जावेगी।

प्रतिबन्धक चिकित्सा—

मुद्रिका प्रयोग द्वारा चिकित्सा का निर्णय होने पर मुद्रिका का प्रकार निश्चित करना चाहिए। अवभ्रंश चिकित्सार्थ निर्मित बहुविध मुद्रिकाओं में प्रायोगिक दृष्टि से उपयुक्त केवल वृत्त-मुद्रिका (Ring passary) है। आमतौर से यह ठोस रबर की बनाई जाती है जिसमें नीचे की ओर रोधक-सूत्र (watch spring) बंधा रहता है। मृदु और नम्य मुद्रिका दबने पर अण्डाकार हो जाती है। वृत्त-मुद्रिका धारण कराने से पूर्व गर्भाशय को पूर्वविवर्तित स्थिति में कर लेना चाहिए। मुद्रिका को कुछ क्षण उबलते हुए जल में डुबो दें ताकि रबर मृदु हो जावे और वह विसंक्रमित हो जावे। फिर उसे अंगुष्ठ और तर्जनी से दबाकर अण्डाकार कर लेना चाहिए। तथा वामहस्त से भगौष्ठों को पृथक् करके भग के अग्रपश्चाद्द्वार के समानान्तर व्यास के साथ योनि में रख देना चाहिए। जब न्यूनतम ⅔ मुद्रिका योनि

में चली जावे फिर उसे फैलने दें। जैसे ही यह योनि में पहुंचे अंगुष्ठ और तर्जनी से उसे गोल होने दें ताकि योनि के अग्रपश्चाद्व्यास के दक्षिण कोणों पर इसका व्यास रहे। फिर तर्जनी को मुद्रिका में प्रवेश करें उसका ऊपर का भाग ऊपर और पीछे को धकेलें ताकि यह ग्रीवा के पीछे पश्चात्कोण में आ जावे और पश्चात्कोण मुद्रिका में होकर निकल आवे। मुद्रिका का माप योनि के समाई के अनुसार होना चाहिए। इसके निर्णय के लिए कुछ अनुभव अपेक्षित है यथा-यथासम्भव लघुतम मुद्रिका का प्रयोग करना चाहिए ताकि रुग्णा को आराम रहे और परिश्रम के समय भी मुद्रिका योनि में स्थित रहे। ठीक तरह से फिट मुद्रिका द्वारा योनि प्राचीरें पर्दे की तरह न खिंचकर कुछ मृदु ही रहें ताकि उसके चारों ओर पीड़ा उत्पन्न किए बिना अंगुली को घुमाया जा सके। यदि बड़ी मुद्रिका का प्रयोग करेंगे तो योनि में तनाव होकर पीड़ा होने लगेगी और मुद्रिका निकालनी पड़ेगी। अधिक बड़ी मुद्रिका से योनिगत श्लैष्मिककला का आघात भी होता है जिससे अनिवार्यतः संक्रमण होकर कष्टप्रद श्लैष्मकला शोथ उत्पन्न हो जाता है। मुद्रिका प्रयोगकर्त्री रुग्णा को दैनिक एक बार वस्ति प्रयोग का निर्देश कर देना चाहिए ताकि किसी प्रकार का भी स्राव धुलता रहे और योनि में क्षोभ न होवे। प्रति तीन मास के बाद मुद्रिका को स्वच्छ अथवा परिवर्तित कर लेना चाहिए। कभी-कभी अच्छी तरह फिट मुद्रिका से भी स्राव होजाता है। ऐसा होने पर एक या दो सप्ताह तक मुद्रिका प्रयोग रोक कर कषाय द्रवों से रात्रि और प्रातःकाल उत्तरवस्ति करावें तथा बाद में और भी लघुतर मुद्रिका का प्रयोग करें।

यह स्पष्ट है कि तृतीयावस्था की रुग्णाओं में मुद्रिका प्रयोग विशेष लाभप्रद नहीं होता क्योंकि इनमें योनि द्वार इतना ढीला होता है कि वृत्त मुद्रिका कितनी ही कठोर और अनम्य क्यों न हो, वह योनि में नहीं ठहरती। किसी आनुषंगिक रुग्णा में अनम्य बल्केनाइट-मुद्रिका का प्रयोग करके मूलपीठ पर कवलिका लगाकर बन्धन बांध देना चाहिए। इससे दबाव द्वारा रुककर मुद्रिका योनि में रुकती है। कठिन और अनम्य मुद्रिकाओं में यह दोष है कि योनिद्वार के अति शिथिल हुए बिना उन्हें चढ़ाना कठिन और पीड़ाकर होता है। द्वितीय और तृतीय अवस्था के अवभ्रंशों में योनिद्वार शैथिल्य के कारण यदि मुद्रिका प्रवेश निष्फल हो तो शस्त्रकर्म के बजाय किसी अन्य प्रकार की मुद्रिका प्रयुक्त करने का यत्न करें। ऐसा वृद्ध स्त्रियों में अपेक्षित होता है क्योंकि सामान्य कारणों से उनमें शस्त्रकर्म निषिद्ध है। प्रायः यह भी होता है कि रुग्णा शस्त्र कर्म नहीं कराना चाहती। ऐसी रुग्णाओं में चषक-मुद्रिका या मुसलमुद्रिका (cup or stem passaries) अथवा ऐसी ही अन्य मुद्रिकाओं के प्रयोग का प्रयत्न करना चाहिए। ये रबर या बल्केनाइट के बने ४-५ इञ्च लम्बे दण्ड वाले एक क्षुद्र मुद्रिका या चषक (cup) से संलग्न होते हैं। दण्ड में चार बन्धन होते हैं। दण्ड को प्रवेश करते हैं ताकि चषक ग्रीवा और योनि कोणों को सहारा दे चार रबर के रज्जु—दो सामने और दो पीछे—कुप्पी के बाहर की की ओर एक पेटी से जुड़े रहते हैं ताकि दण्ड दृढ़तापूर्वक यथा स्थान रुका रहे। इन यन्त्रों में दोष यह है कि उन्हें सरलतापूर्वक और सन्तोषजनक रूप से प्रयोग करना कठिन है। ताकि उनका घातक दबाव न हो, और वे खांसी या किसी श्रम के प्रभाव से बाहर न निकल जावें। इनसे रोगी को कष्ट भी होता है। कुछ रुग्णाओं में फूले हुए रबर कोष (अर्धवायु पूर्ण मुद्रिका) का प्रयोग सर्वोत्तम रहता है।

गर्भाशय की पश्चाद्विच्युति (Backward displacement of the uterus)—

यद्यपि पश्चादवनमन के बिना भी पश्चाद्विवर्तन होता है परन्तु इन दोनों का सहचार इतना अधिक

उपलब्ध होता है कि इनका वर्णन भी साथ-साथ ही उचित है। पश्चाद्विवर्तन का तात्पर्य गर्भाशय के पीछे को मुड़ जाने से है तथा पश्चादवनमन से गर्भाशय का पीछे को झुकना अभिप्रेत है। ग्रीवान्त-द्वार के तल पर या कुछ ऊपर झुकाव होता है जिससे गर्भाशय-अक्ष की नतोदरता (concavity) सामने के बजाय पीछे की हो जाती है।

इन विच्युतियों की प्रत्येक अवस्था तथा भेद सामान्य पश्चादवनमन से लेकर पूर्णातिपश्चादविवर्तन तक हो सकता है जिसके साथ पश्चादवनमन होता ही है। जिससे अतिपश्चादवनमन सहपश्चाद्विवर्तन निष्पन्न होता है। इन सब विच्युति प्रकारों का विचार या तो गर्भाशय-अक्ष की अपेक्षा से किया जाता है या गात्र की सरलानुलम्बता से, जिसे पश्चाद्विवर्तन कहते हैं अथवा गर्भाशय-अक्ष के झुकाव से—जो प्राकृतिक अवस्था में सामने की ओर होता है (पूर्वावनमन)–विकृति होने पर पीछे की ओर अर्थात् पश्चादवनमन हो जाता है। पश्चादवनमन, गर्भाशय की विच्युति वास्तव में कतई नहीं है, अपितु गर्भाशय-अक्ष के मोड़ की विकृत रचना ही पश्चादवनमन है।

जैसे ही मूत्राशय आतत और आनद्ध होता है, पूर्वावनत गर्भाशय सरलानुलम्ब स्थिति तक उभरता है तब पश्चादविवर्तन की सर्वथा सामान्य अवस्था होती है। तदनन्तर किसी पार्श्व में गिर जाता है, सामान्यतः दाहिनी ओर और अधिक पीछे को मुड़े बिना गिर जाता है।

कारण—

सहजपश्चाद्विच्युति (Congenital backward displacement)—कुमारियों में पश्चादवनमन के साथ अथवा बिना पश्चादविवर्तन की उपस्थिति के बहुसंख्यक उदाहरण मिलते हैं। इनमें पश्चाद्विच्युति के सामान्य कारण नहीं मिलते इसलिये इनको सहज ही माना जाता है। प्रारम्भिक जीवन में ये विकृतियां अर्जित भी हो सकती हैं जबकि शरीर की वृद्धि होती और यौवन का आगम हो रहा होता है। कुमारी में पश्चाद्विवर्तित गर्भाशय सामान्यतः क्षुद्र और अविकसित होता है। यह प्रायः लघु-पश्चाद्योनिप्राचीरिका से सम्बद्ध होता है। इससे बन्ध्यत्व के अतिरिक्त अन्य कोई लक्षण नहीं होते। गर्भस्थिति होने पर प्रायः अष्टम मास में गर्भपात हो जाता है।

अर्जित-पश्चाद्विच्युति (Acquired backward displacement)—अर्जित-पश्चाद्विच्युति के कारण पर्याप्त स्पष्ट होते हैं। उनमें से कई का पता गर्भस्थिति पर लगता है जो कि अकालप्रसव या गर्भपात में पर्यवसित होती है तभी उस ओर ध्यान आकृष्ट होता है। गर्भस्थिति से पूर्व परीक्षा द्वारा अवस्था का अनुसन्धान किए बिना यह कहना स्वभावतः असम्भव है कि गर्भस्थिति से पहले गर्भाशय पश्चाद्विवर्तित नहीं था।
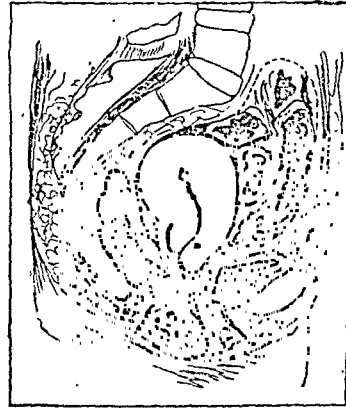
चित्र ६५

गर्भाशय के पश्चादावर्तित और पश्चादानत होने का दृश्य (बिन्दुधृत रेखाएं गर्भाशय संवरण की विभिन्न अवस्थाओं की उच्चतर सीमा प्रदर्शित करती हैं)

गर्भस्थिति, गर्भपात या कालप्रसव के समय उत्तानासन में लेटे रहने से ही पश्चिम विच्युति सम्भव होती है। सूतिका काल में निरन्तर पीठ के बल लेटे रहने से विच्युति हो सकती है। (चित्र ६५) विस्तृत गुरु और संवरणशील गर्भाशय पहले त्रिकत्रिकोष्ठ (Sacral promontary) पर रहता है किन्तु

लघुतर होने पर इसकी प्रवृत्ति पीछे की ओर त्रिकोष्ठ के नीचे त्रिकखात में गिरने की होती है। यदि ऐसा होता है तो इसके परिणामस्वरूप क्षुद्रान्त्र गर्भाशय की पूर्व भित्ति पर अवश्य स्थित होती है और किसी भी क्षोभक-श्रम से गर्भाशय-स्कन्ध नीचे को क्षेपित होता है और उसके समान गर्भाशय ग्रीवा भी आगे अग्रसर होती है फलतः इस विच्युति से गर्भाशय संकलित होता है और शनैः शनैः विकृति रूप से संवृत होता है जिससे गर्भाशय पेशी मृदु होजाती है। रुग्णा के शय्यात्याग पर संयोगवश गर्भाशय पश्चाद्विवर्तित भी हो सकता है अथवा प्राकृतिक स्थिति में आगे को भी झुक सकता है। यदि यह विवर्तित है और मूत्राशय आतत है तो आन्त्र द्वारा गर्भाशय की पूर्वप्राचीरिका पर आगत अन्तरौदरिक-भार गर्भाशयस्कन्ध को पीछे को झुका देगा क्योंकि गर्भाशय की भित्ति मृदु और नम्य होती है और किसी सीमा तक पार्श्विक-ग्रैव-बन्धनिकाओं द्वारा ग्रैव धरातल पर रखी जाती है।

जब संवरण शनैः शनैः पूर्ण होता है तो पश्चिमावनति धीरे-धीरे स्थायी हो जाती है और पश्चिमावनमन बना रहता है। यद्यपि इस घटना के बाद भी पूर्णकालिक प्रसव हो सकता है किन्तु कदाचित् उक्त कारण से आरम्भिक महीनों में गर्भपात भी हो सकता है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि श्रोणितल भूमि के अभिघात और शिथिल बन्धनिकाएँ पश्चाद्विच्युति में महत्व का कारण नहीं हैं जब कि गर्भाशयावभ्रंश के प्रमुख हेतु हैं। निस्संदेह गर्भाशय पश्चाद्विभ्रंश के लिए कुछ सुगमता अवश्य प्रस्तुत करते हैं।

यदि रुग्णा का हीन पोषण असम्यगाहार के कारण होता है और उसमें वसा की अधिक कमी है तो गर्भाशय बन्धन दुर्बल हो सकते हैं और इससे विच्युति और भी सरल हो जाती है। यदि किसी रुग्णा को श्रोणिगत-उदर्य्याकलाशोथ है जो बीजवाहिनी और बीजग्रन्थि शोथ से उत्पन्न हुआ है तो गुदा और गर्भाशय के बीज में एक प्रकार का स्राव गाढ़ा होकर अंशतः शोषित होता है और अंशतः सौत्रिक अनुबन्धों के संघठन में सम्मिलित हो जाता है। ज्योंही संरोहण होता है ये अनुबन्ध छोटे हो जाते हैं और शनैः शनैः गर्भाशयस्कन्ध को पीछे गुदा की ओर खींचते हैं। पश्चाद्विवर्तित गर्भाशय और गुदा के बीच में ये अनुबन्ध प्रायः न्यूनाधिक बन ही जाते हैं। बहुखण्डीय बीजग्रंथि कोषार्बुद भी अवस्रंस और पश्चादावर्तन के कारण बनते हैं। (चित्र सं. ९६)
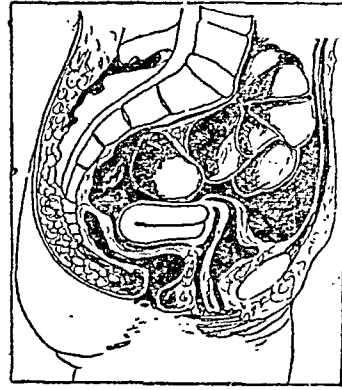
चित्र ९६
बहुखण्डीय बीजग्रन्थि कोषार्बुद द्वारा अवस्रस्त और पश्चादावर्तित गर्भाशय
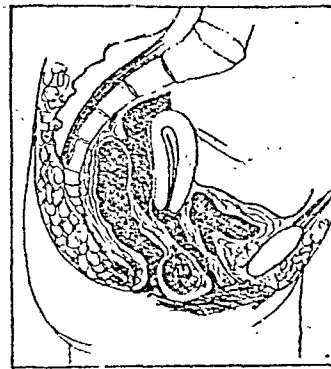
चित्र ९७
गुदा और त्रिक से संसक्तियों द्वारा स्थिर गर्भाशय का पश्चादावर्तन

बीज ग्रन्थि और श्रोणिगत उदर्याकला में होने वाले श्लैष्मिकवृति शोथ का भी यही प्रभाव होता है।

प्रायः स्त्रियां गिरने, धक्का लगने, या सीढ़ी चढ़ने आदि घटनाओं को विच्युति का कारण मानती हैं किन्तु इनसे यह परिणाम होना सर्वथा सन्दिग्ध है। पूर्व परीक्षा द्वारा गर्भाशय के पश्चाद् विवर्तित न होने का निश्चय होने पर ही घटना के उपरान्त परीक्षण-लब्ध-पश्चाद्विवर्तन का कारण

घटना को माना जा सकता है और यह आमतौर से सम्भव नहीं होता। यदि ऐसी घटना से गर्भाशयविच्युति मानली जावे तो प्राकृतिक परिस्थितियों में इसकी स्वाभाविक मृदुता और गतिशीलता, किसी भी चेष्टा से. इसको सरलतापूर्वक पूर्वविवर्तित होने देंगी। यह विश्वास करना और भी कठिन है कि ऐसी घटना से स्थाई पश्चाद्-विवर्तन हो सकता है सिवाय इसके कि बन्धनिकाएँ फट जावें तथा गर्भाशय के पश्चात्तल से पूर्वतल की ओर स्थाई रूप से आन्त्रिक दबाव आता रहे। चूंकि सहजपश्चाद्विवर्तन अति साधारण रूप से उपलब्ध होते हैं अतः घटना से पूर्व परीक्षण द्वारा गर्भाशय की प्राकृतिक स्थिति के निश्चित ज्ञान के विना घटनोत्तर पश्चाद् विवर्तन को घटना का परिणाम नहीं माना जा सकता।

वैकारिक रचना शारीर—

श्लैष्मिकवृति और पैशिकवृति पर प्रभाव—अर्जित-पश्चाद् विवर्तन में निम्नलिखित प्रभाव देखे जाते हैं। बहुत बार गर्भाशय स्वस्थ और सब प्रकार से प्राकृतिक होता है। औदरिक शस्त्रकर्म में, जब गर्भाशय ऊपर उठाया हुआ होता है, जीर्ण-शैरिक अवरोध के चिन्ह प्राप्त और सामान्यतः सुस्पष्ट होते हैं। गर्भाशय रक्त वर्ण की अपेक्षा नीलतर अधिक होता है और धब्बेदार प्रतीत होता है जिसमें श्वेत राजियां होती हैं तथा तल पर भी प्रायः क्षुद्र-लसीका-स्तर होते हैं। गर्भाशय प्राकृतिक स्थिति की अपेक्षा अधिक विस्तृत और मृदुतर होता है। यह अंशतः संकलन (congestion) और अंशतः जीर्ण-अनुसंवरण (chronic subinvolution) का परिणाम है। सामान्य-शैरिक रक्तातिसंग्रह में श्लैष्मिकवृति भाग लेती है। गर्भाशय ग्रैविकस्रोतस् का संक्रमण और योनिगत ग्रीवा में व्रणीभाव की उपस्थिति, अभाव की अपेक्षा अधिक प्राप्त होती है।

बीजवाहिनी और बीज ग्रन्थियों पर प्रभाव—पश्चिमाभिमुख गर्भाशयस्कन्ध, बीजवाहिनी और बीज ग्रन्थि की स्थिति को पक्षबन्धनिकाओं के मोड़ के कारण विपरिवर्तित कर देता है। बीजवाहिनी के अन्तः प्रान्त और बीजग्रन्थि का अवभ्रंश होता है और पूरी पक्षबन्धनिका के लम्बे होने से बीजग्रन्थि और बीजवाहिनी, मूलपीठ की गुदगर्भाशयीय बलिस्थालिका (Douglas's pouch) में आकर स्थिति करती हैं। बीजग्रन्थि और बीजस्रोतस् के अवभ्रंश की कोई भी अवस्था हो सकती है। गर्भाशयस्कन्ध के नीचे या इधर उधर बीजग्रन्थियां और स्रोतस् होते हैं। परिवृद्ध अवस्था में बीजग्रन्थि शीघ्र या बिलम्ब से संग्रह वृद्धि से कुछ बड़ी और प्राकृतावस्था की अपेक्षा कठिनतर होती है, कारण जीर्ण औपमण्डलिक वृद्धि है। अतः बीजग्रन्थि सम्बन्धित लक्षण उत्पन्न होना सम्भव है।

लक्षण—

सभी लक्षणों को पश्चाद् विवर्तन का प्रतीक नहीं मान लेना चाहिए क्योंकि बहुत से उदाहरणों में कोई लक्षण नहीं होते और बहुतों में विच्युति दूर हो जाने पर भी लक्षण बने रहते हैं।

यह बहुत अधिक सम्भव है कि रुग्णा द्वारा कथित बहुत से लक्षण जो पश्चाद्विच्युति के कहे जाते हैं वस्तुतः श्लैष्मिकवृति और गर्भाशयपेशीगत परिवर्तनों का परिणाम हैं यथार्थतः विच्युति का परिणाम नहीं। सहज रुग्णाओं में लक्षण नहीं होते। साधारण लक्षण यथा शैरिक अवरोध, श्लैष्मिक वृति शोथ, ग्रीवा व्रणीभाव और विकृत पैशिक आधार होते हैं जिनके साथ अवभ्रष्ट और परिवृद्ध बीज ग्रन्थियों के लक्षण भी संयुक्त होते हैं।

अर्जित-पश्चाद् विच्युति में भी लक्षण न होना कोई असाधारण बात नहीं है।

अर्जित-पाश्चाद् विच्युति से सम्बन्धित लक्षण ये हैं—

कटि के उपरिभाग में अनुभूत पृष्ठ वेदना या कटि पीड़ा, दबाव, असृग्दर, अनार्तव, बन्ध्यत्व, श्वेत प्रदर, मैथुन में पीड़ा और जीर्ण तथा नाभि और पुरःकूट के मध्य बाईं ओर पीड़ा का अनुभव।

गर्भाशय में संकलन का सामान्य परिणाम पृष्ठशूल है जो गर्भाशय बन्धनिकाओं के खिंचाव से उत्पन्न हो सकता है जैसा कि अवभ्रंश में होता है।

रक्तप्रदर और अनार्तव, श्लैष्मिकवृति के परिसंकलन (Congestion) से हो सकते हैं तथा परिसंकलित (congested) गर्भाशय पेशी तथा रक्तसंवहन के नियन्त्रण विकार से हो सकते हैं।

स्राव, ग्रैव श्लेष्मकला शोथ का परिणाम है जो सदैव संक्रमण से उत्पन्न होता है।

मैथुन काल में मृदुगर्भाशयस्कन्ध पर दबाव पड़ने से अथवा अवभ्रष्ट-मृदुबीजग्रन्थियों के अनुपीडन से मैथुन में पीड़ा होती है। रचनाओं के खिंचाव से भी पीड़ा सम्भव है। यह लक्षण बहुत कष्टप्रद है, और शस्त्रकर्म चिकित्सा की आवश्यकता का महत्वपर्ण ज्ञापक है।

चिह्न—

यतः लक्षण सदैव परतन्त्र परिवर्तनों का परिणाम होते हैं, अतः पश्चाद्विच्युत गर्भाशय का पता बिना श्रोणिपरीक्षा के कभी नहीं चलता। इसके स्वयं के कोई विकृतिसूचक लक्षण नहीं होते। योनिपरीक्षा करने पर सामान्यस्थिति की अपेक्षा ग्रीवा निम्नतर प्रतीत होती है और यह पश्चिमाभिमुख न होकर, नीचे की ओर योनिपथाभिमुख होती है। यदि अवनमन की अपेक्षा पश्चाद्विवर्तन अधिक होता है तो ग्रीवा प्रायः सामने की ओर क्षैतिज होती है अथवा उत्तराभिमुख भगसंधानिका के उपरिभाग की ओर होती है। इसी समय अन्तर्योनि परीक्षा करने पर मालूम होगा कि गर्भाशयस्कन्ध पूर्वाभिमुख नहीं है और न मूत्राशय पर स्थित है। दोनों हाथों की उंगलियां गर्भाशयस्कन्ध के प्रतिरोध के बिना सामने मिल जाती है। ततः योनिगत अंगुली को पश्चात्कोण में ऊपर की ओर दबाने से गर्भाशयगात्र पश्चिमाभिमुखी न मिलेगा।

अर्जित रोग में गर्भाशयनलिका दीर्घाभूत और गर्भाशयगात्र सब ओर विस्तृत मिलता है, सामान्य श्वयथु (oedema) के कारण सामान्य की अपेक्षा मृदुतर होता है। बीजग्रन्थियों का स्पर्श करने पर, वे स्कन्ध के समीप अथवा इसके नीचे डगलस के स्थालिकोष (Douglas's pouch) में वृत्ताकृति मृदुग्रन्थि सी अनुभूत होती हैं। यदि बीजग्रन्थियों के शोफ को अधिक समय हो गया है तो वे प्राकृतावस्था की अपेक्षा कठिनतर और कुछ बड़ी होती हैं जिससे प्राकृत ग्रन्थियों की अपेक्षा अधिक सुगमता से अनुभव की जा सकती हैं।

गर्भाशय की चलता की परीक्षा के लिये योनि में एक या दो अंगुलियां डालकर और पश्चात्कोण में दबा कर गर्भाशयस्कन्ध को उठाकर परीक्षा की जा सकती है। स्कन्ध अचल अथवा ऊपर उठाने में दुष्कर होता है क्योंकि यह गुदा अथवा डगलस के स्थालिकोष के साथ सेन्द्रियरचना द्वारा संसक्त हो जाता है। संसक्ति का निश्चित निदान सर्वदा संभव नहीं होता किन्तु यह सर्वदा ध्यान में रखना चाहिए कि पूर्वभूत श्रोणिगत उदरककलाशोथ के बिना संसक्ति रचना नहीं हो सकती। अतः किसी रोग का इतिहास प्रायः मिलता है जिसमें शय्यारूढ़ता और पृष्ठशूल शामिल होते हैं। गर्भाशयस्कन्ध और पारिध-अवयवों के बीच संसक्त रचनाओं के चिह्न निश्चितरूप से ये हैं कि गर्भाशय सन्दंश (Volsellum forceps) का प्रयोग करने पर भी (युग्म परीक्षाविधि के साथ) गर्भाशय अचल होता है और योनि से गर्भाशय को उठाने पर गुदा आगे को हटती है।

प्रायः पश्चाद्विवर्तित गर्भाशयस्कन्ध पर दबाने

से मृदुता की अनुभूति से-अवभ्रष्ट मृदु बीजग्रन्थियों का बोध होता है। यद्यपि उनका स्पर्श करना सर्वदा सम्भव नहीं होता। जिन रुग्णाओं में बीजस्रोतस शोथयुक्त हों तथा बीजग्रन्थियां भी सशोथ हों उनमें सदैव श्रोणि में अनिश्चित परिमाण और आकृति की एक रचना प्रतीत होती है जो प्राकृतिक गर्भाशयस्कन्ध की अनुभूति से सर्वथा भिन्न प्रकार की अनुभूत होती है।

ज्ञापक निदान—

यद्यपि पश्चाद्-विवर्तित गर्भाशय का निश्चय करने में बहुत कम कठिनाई होती है किन्तु कुछ अवस्थायें इसी के सदृश होती हैं और वे ध्यान में रखने की हैं। गुदा में मल होने पर, पश्चात्कोण में होकर किसी वस्तु का अनुभव होता है। पश्चात्कोण में से अंगुली से देखने पर गर्भाशय के पश्चिम प्राचीर में एक सौत्रिक वृद्धि का अनुभव होता है किन्तु युग्म परीक्षा करने पर सामने की ओर गर्भाशयस्कन्ध अपनी प्राकृत स्थिति में मिलेगा। (चित्र सं० ६८)

चित्र ६८
गर्भाशय के पश्चिम प्राचीर का सौत्रिक मांसार्बुद

संसक्त बीजस्रोतसों और बीजग्रन्थियों से संगठित क्षुद्रग्रन्थियां गर्भाशय के पीछे गुदगर्भाशयान्तरीय स्थालिपुटक (*Douglas's pouch*) में रहकर कदाचित् पश्चाद्विवर्तन और पश्चादवनमन का भ्रम पैदा करती हैं। इन उदाहरणों में युग्म-परीक्षा द्वारा शोफवस्तु से गर्भाशय का पृथक्करण अति कठिन होता है। तीव्र रोग का इतिहास, अतिमार्दव और अन्य सहकारी लक्षणों से स्पष्ट होगा कि कहीं कुछ शोफात्मक विकृति और गर्भाशय विच्युति है अथवा नहीं।

क्षुद्र-बीजग्रन्थ्यर्बुद प्रायः गर्भाशय के पीछे गर्भाशय की पश्चाद्विच्युति का भ्रम पैदा करते देखे जाते हैं। यदि वे सेन्द्रियगौण रचना संसक्त नहीं हैं तो आमतौर से युग्मपरीक्षा द्वारा अर्बुद के सामने गर्भाशय का निर्णय करना सम्भव होता है और इस भांति विच्युति न होने का निश्चय हो जाता है। नलाकार रक्तातिवृद्धि में भी विच्युतिवत् नैदानिक चिन्ह मिलते हैं और ऐसी रुग्णाओं में भ्रान्तनिदान के गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। क्षुद्र-श्रोणिगत अर्बुद का आकृतिनिदान निश्चितरूप से करना सर्वदा कठिन है किन्तु सामान्यतः अर्बुद होने का ज्ञान सम्भव है अतः सामान्य गर्भाशय विच्युति नहीं है यह असन्दिग्ध हो जाता है। बहुत कम, यह भी देखा जाता है कि बृहदन्त्र या गुदा की आवरक कोषाण्वर्बुद वृद्धि को भ्रमवश पश्चाद्विवर्तित गर्भाशय समझ लिया गया है।

चिकित्सा—

यह ध्यान योग्य है कि बहुत प्रकार के पश्चाद् विवर्तनों और पश्चादवनमनों की चिकित्सा आवश्यक है क्योंकि उनसे कोई दुर्लक्षण उत्पन्न नहीं होते। कुछ रुग्णाओं में लक्षण होते हैं किन्तु उनका वास्तविक कारण पाचन, अन्त्र, वृक्क या मूत्राशय के रोग होते हैं अतः गर्भाशय की चिकित्सा न करके इन रोगों की ही चिकित्सा करनी चाहिए। अस्तु, विच्युति चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि यह निश्चय करे कि लक्षण विच्युतिजन्य हैं अथवा अन्य कारण से हैं। इसके निर्णय पर ही चिकित्सा निर्भर होगी। अधिकांश रुग्णाओं में चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती किन्तु कुछ अवस्थाओं में चिकित्सा का विचार करना होता है।

कदाचित्, गर्भावस्था में पश्चाद्विवर्तन को ठीक करना आवश्यक होता है। परस्परीय परीक्षा द्वारा यदि गर्भाशय की स्थिति विकृत पता लगे तो वह अपने आप ठीक होने वाली नहीं। अधिकांश रुग्णाओं में गर्भाशय स्वतः पूर्वविवर्तित होता मिलेगा और

इसे ठीक करने के प्रयत्न से गर्भपात होने की सम्भावना होगी। सगर्भ पश्चाद्-विवर्तित गर्भाशय यदि श्रोणिगुहा में अवरुद्ध हो और रुग्णा को मूत्रावरोध हो गया हो तो गर्भाशय को ठीक करने का प्रयत्न सर्वदा अपेक्षित है। यदि नियमित मूत्रनाड़ी शलाका के प्रयोग से तथा दो दिन तक ठीक करने के प्रयत्नों से भी सफलता न मिले तो कुछ सप्ताहों के लिए योनि में मुद्रिका रख देना चाहिए जब तक कि गर्भाशय इतना बड़ा न हो जावे कि उसका पश्चाद्-विवर्तन असम्भव हो जावे।

यदि पश्चाद्-विवर्तित गर्भाशय-रुग्णा में एक बार गर्भपात हो चुका है तो उसे अपने गर्भाशय को मुद्रिका प्रयोग द्वारा प्राकृतिक स्थिति में कर लेने अथवा विकृति निवारक शस्त्रकर्म गर्भस्थिति से पूर्व ही करा लेने की सलाह देनी चाहिए, इस प्रकार द्वितीय गर्भपात रुक जाता है।

गर्भावस्था के बिना सहज पश्चाद्-विवर्तन का सुधार सम्भव नहीं होता क्योंकि गर्भाशय क्षुद्राकार और पश्चाद् योनि प्राचीरिका क्षुद्र तथा पश्चात्कोण भी क्षुद्र होता है। कुमारी में पश्चाद्-विवर्तित गर्भाशय के सुधार का प्रयत्न भी भूल है जबकि विकृति किसी लक्षण को उत्पन्न नहीं करती। निरन्तर मुद्रिका धारण से स्त्री का ध्यान लगातार अपने श्रोणिगत अवयवों की ओर रहता है इससे उसे मानस अवसादजन्य वातविकारों की प्रवृत्ति हो जाती है जो विच्युति से भी कहीं बुरी और दुश्चिकित्स्य है। वास्तव में यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि कुमारी को विच्युति की सूचना देना भी क्या उचित है? उसे न कह कर उसके किसी निकट सम्बन्धी को कहना अधिक उचित होगा। ऐसा करने से कदाचित अन्य चिकित्सक द्वारा विकृति का पता लगने और बताने पर चिकित्सक पर अकुशलता का आरोप नहीं लगेगा। अर्जित पश्चाद्-विवर्तन की रुग्णा में पश्चाद्विच्युतिजन्य लक्षणों के उपस्थित होने पर प्रतिरोधक अथवा शस्त्रकर्मात्मक, कोई भी आवश्यकतानुसार जो अपेक्षित है, चिकित्सा का परामर्श देना आवश्यक है।

प्रतिरोधक चिकित्सा में गर्भाशय को प्राकृत दशा में लाकर मुद्रिकाधारण द्वारा प्रतिरोध कर दिया जाता है।

शस्त्रकर्मात्मक चिकित्सा में उदरमार्ग द्वारा निलम्बन शस्त्रकर्म करना होता है।

अन्यतर चिकित्साक्रम का निर्धारण गर्भाशय की चलनशीलता पर निर्भर है तथा उसे प्राकृतिक स्थिति में लाना कहां तक सम्भव है एवं बीजग्रन्थियों और बीजस्रोतसों में शोफजविकृतियों के भावाभाव पर निर्भर करता है। जब गर्भाशय बिल्कुल चलन शील हो और बीजग्रन्थियां मृदु या पीडाकर नही हैं तथा योनिद्वार मुद्रिकापतन न होने देने योग्य पर्याप्त संकीर्ण है तो प्राकृतिक स्थिति में लाकर मुद्रिकाधारण करा देना उचित है। केवल पश्चाद्विवर्तन की रुग्णा उन रुग्णाओं की अपेक्षा सुविधापूर्वक मुद्रिका प्रयोग द्वारा सुचिकित्स्य होती हैं जिनमें पश्चादवनमन भी होता है। पश्चाद्विवर्तित गर्भाशय को मुद्रिका धारण द्वारा ठीक करना अति सरल है किन्तु पश्चादवनमन भी होने पर सर्वदा सुधार संभव नहीं होता।

दूसरी ओर, शस्त्र कर्म चिकित्सा तब कर्त्तव्य होती है, जब गर्भाशय गौण रचनाओं द्वारा संसक्त हो, गर्भाशय स्कन्ध अतिमृदु हो, बीजग्रन्थियां अति पीड़ाकर और अवभ्रंष्ट हों, और मैथुनातिपीड़ा विशिष्ट लक्षण हो तथा मुद्रिका धारण से कोई लाभ न हुआ हो। दूसरे शब्दों में, श्रोणिगत शोफ एवं गम्भीर विकृतियों के होने पर शस्त्र कर्म अपेक्षित है क्योंकि ये विकार गर्भाशयविच्युति से कहीं अधिक घातक हैं। शस्त्र कर्म करने पर साथ ही साथ गर्भाशय विच्युति को भी ठीक कर देना चाहिए।

जब यह निर्णय हो जावे कि पश्चाद्विच्युति की चिकित्सा मुद्रिका प्रयोग द्वारा करनी है तो

पहली अपरिहार्य आवश्यकता गर्भाशय को पूर्व विवर्तित स्थिति में पूर्णतया करने की है।

अंगुलियों द्वारा प्रकृति स्थापन—रुग्णा को पीठ के बल लिटा दें, टांगों को उरुओं पर मोड़ दें, उरुओं

चित्र ९९

पश्चादावर्तित और पश्चाद्विवर्तित गर्भाशय का पुनः स्थान (प्रथमावस्था—योनि प्रविष्ट अंगुलियां गर्भाशय-स्कन्ध को ऊपर धकेल रही हैं)

को फैला दें ताकि नितम्बों के बीच खुला अवकाश रहे (साइमन की स्थिति) पूर्ण उत्तानासन की अपेक्षा इस स्थिति में अधिक ऊंचाई तक पहुंचा जा सकता है। दक्षिण हस्त की एक या दो अंगुलियां योनि में प्रविष्ट की जाती हैं और पश्चात्कोण से गर्भाशय स्कन्ध को दबाने का प्रयत्न किया जाता है। स्कन्ध को मध्य रेखा से एक ओर दबाना अच्छा होता है ताकि त्रिक-त्रिकोष्ठ बन जावे। योनिगत अंगुलियों से क्रमशः ग्रीवा को पीछे हटाना और स्कन्ध को ऊपर दबाना चाहिए। यह प्रयत्न कई बार करते हुए अन्ततः बाह्य हस्त स्कन्ध को पकड़ने और आगे को खिसकाने में समर्थ हो जाता है। रुग्णा जितनी अधिक सहनशील होती है उतनी ही अधिक सुगमता कार्य में होना स्वाभाविक है। गर्भाशय के साप और पीड़ाकर शोफमय बीजग्रन्थियों के अभाव से भी सरलता बढ़ती है। यदि रुग्णा असहिष्णु है तो संज्ञाहर द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए। गर्भाशय के परिणाम का विशेष महत्व होता है। (चित्र ९९, १००, १०१)
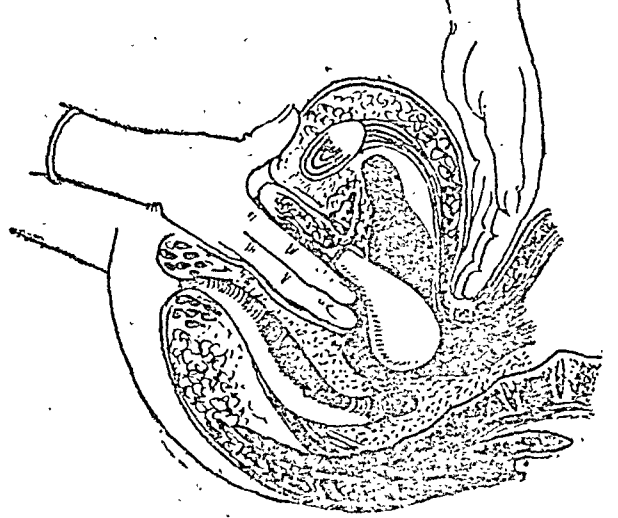
चित्र १००

पश्चादावर्तित और पश्चाद्विवर्तित गर्भाशय का पुनः स्थापन (द्वितीयावस्था)

यदि गर्भाशय गतिशील है और अंगुलियों से यथास्थित करना असम्भव है तो गर्भाशय सन्दंश का प्रयोग किया जा सकता है। गर्भाशय सन्दंश को ग्रीवा के पूर्वौष्ठ पर स्थित करें, गर्भाशय मुख को देखने के लिए साइमन के योनिदर्शक का प्रयोग करें, फिर ग्रीवा को योनि नलिका की दिशा में नीचे को धकेल कर गर्भाशय को सीधा किया जाता है और स्कन्ध पश्चिम कोण में जहां तक अंगुली पहुँच सके लाया जाता है। फिर स्कन्ध सामने को खिसकाते हैं जब कि गर्भाशय सन्दंश ग्रीवा को पीछे ले जाता है। यदि गर्भाशयसंसक्ति नहीं है तो यह उपाय कभी निष्फल नहीं होता। यह अधिक कष्टप्रद नहीं होता, अतः प्रायः संज्ञाहर द्रव्य के प्रयोग की भी आवश्यकता नहीं होती।

गर्भाशय के पूर्वविवर्तित होने पर इसे यथास्थान करने के लिए अतिशय उपयुक्त मुद्रिका की अपेक्षा होती है। इस उद्देश्य के लिए दो मुद्रिकाओं
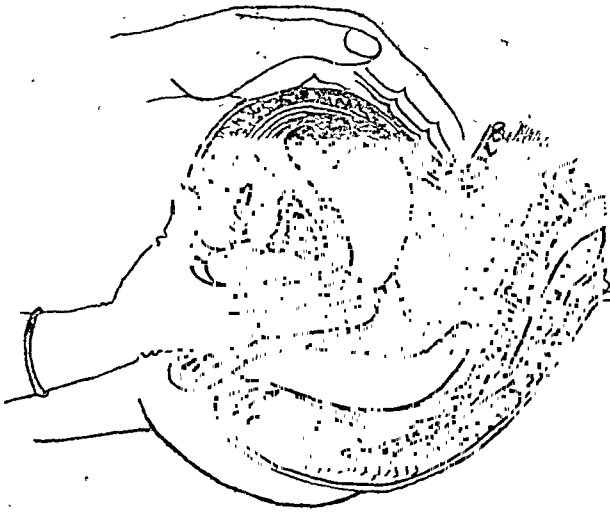
चित्र १०१

पश्चादावर्तित और पश्चाद्विवर्तित गर्भाशय का पुनः स्थापन (तृतीयावस्था–गर्भाशय क्रमशः अपनी स्वाभाविक स्थिति में लाया जारहा है)

का अधिक प्रयोग होता है रबर की वृत्त मुद्रिका (Ring passary) तथा हाज की मुद्रिका का। वृत्त–मुद्रिका (Ring passary) का प्रयोग किसी भी दशा में हो सकता है किन्तु हाज की मुद्रिका का प्रयोग योनि द्वार के संकीर्ण और अशिथिल होने पर ही किया जाता है। प्रत्येक मुद्रिका योनि को विस्तृत करके गर्भाशय के योनि-अनुबन्धों को सामान्यतः अशिथिल (सतर) करके गर्भाशय को योनि के दक्षिण कोण में सुस्थित करती है। वृत्त-मुद्रिका रबर से आवृत सूत्र द्वारा तथा हाज(Hodge)मुद्रिका वल्केनाइट से बनती है। हाज मुद्रिका की आकृति यथावश्यक विशेष स्थिति के अनुसार पहले उबालकर फिर अंगुलियों से दबाकर परिवर्तित की जा सकती है। यह ध्यान रहे कि मुद्रिका रखने से पूर्व ही गर्भाशय को प्रकृतिस्थ कर लेना चाहिए और मुद्रिका स्वतः गर्भाशय को पूर्वविवर्तित नहीं करेगी।

दोनों मुद्रिकाओं का प्रकार एक सा है किन्तु हाजमुद्रिका का गोल सिरा ऊपर की ओर पश्चिम कोण में रहना चाहिए। मुद्रिका किसी भी प्रकार की हो, योनि में दक्षिण कोण की स्थिति में प्रविष्ट की जाती है जहां यह स्थित होने पर, इसमें प्रविष्ट अंगुली के द्वारा गोल करदी जाती है और इसका ऊपरी सिरा ग्रीवा के पीछे लगता है। उद्देश्य पूर्ति के लिए छोटी से छोटी मुद्रिका प्रयुक्त करनी चाहिए, बड़ी नहीं जो कि योनि में जकड़ जावे। इस प्रकार जब मुद्रिका को पश्चाद्विवर्तन में प्रयुक्त किया जाता है तो इसके प्रभाव की परीक्षा रुग्णा के लक्षणों में लाभ होने से ही होती है। यदि पीड़ा और वेदना का शमन हो और रुग्णा आराम से चल फिर तथा बैठ सके और मासिक धर्म प्राकृतिक मात्रा में हो तो मुद्रिका से लाभ हो रहा है यह स्पष्ट है, अतः इसका प्रयोग ६ से ६ मास तक जारी रखना चाहिए। यदि मुद्रिका धारण से एक मास के उपरान्त भी किसी लक्षण में लाभ नहीं होता (जैसा कि अक्सर होता है) तो मुद्रिका को निरर्थक समझ कर निकाल देना चाहिए। जिन रुग्णाओं में लक्षणों में लाभ होने के कुछ सप्ताह बाद पुनः पीड़ा और कष्ट हो जावे तो मुद्रिका के होते हुए पुनः गर्भाशयविच्युति हो गई समझनी चाहिए और फिर गर्भाशय का प्रकृति स्थापन करना चाहिए। प्रतिवार प्रकृति स्थापन सरलतर होता है किन्तु बहुत सी रुग्णाओं में निरन्तर ध्यान की आवश्यकता होती है। उन रुग्णाओं में, जिनमें अवभ्रष्ट मृदु बीजग्रन्थियों के साथ चल गर्भाशय होता है मुद्रिकाएं विरल ही सह्य होती हैं अथवा बीजग्रन्थियों की मृदुता को कोष्ण वर्तियों और ग्लिसरिन मुद्रिकाओं द्वारा दूर किए विना भी मुद्रिका धारण असह्य होता है।

शस्त्रकर्मात्मक चिकित्सा—

शस्त्रकर्म चिकित्सा के विधान निम्नलिखित हैं– यदि अवभ्रष्ट बीजग्रन्थियों के कारण मृदुता अत्यधिक हो और प्रतिकर्म करने पर भी दूर न होती हो, अवभ्रष्ट मृदुबीजग्रन्थियों के साथ गर्भाशय

संसक्त हो, बीजस्रोतस और बीजग्रन्थियों के शोथ और संसक्तियों सहित पश्चाद्विवर्तन हो, अवभ्रष्ट मृदुबीजग्रन्थियों के साथ मैथुनातिपीडा उपस्थित हो, वन्ध्यत्व उपस्थित हो अथवा बार बार गर्भपात हो जाता हो।

कुछ उदाहरणों में, जब गर्भाशय मुक्तरूप से चल होता है और सरलतापूर्वक प्रकृतिस्थ किया जा सकता है, वृत्तमुद्रिका के प्रवेश द्वारा शस्त्रकर्म के सम्भावित लाभ का मूल्यांकन किया जा सकता है। यदि मुद्रिका धारण से लक्षणों में लाभ होता है तो शस्त्रकर्म द्वारा भी स्थायी लाभ की संभावना है। इससे विच्युति के लक्षणों का कारण होने का पता भी चलता है। शस्त्रकर्म के बहुत से प्रकार हैं और सभी में थोड़ी बहुत सफलता मिलती है।

प्रायः जिलियम का (Gilliam's) शस्त्रकर्म किया जाता है। इसमें रज्जुबन्धनिकाओं को उदर्या-कलाकोष में से बाहर खींच लिया जाता है यहां तक कि वे गौद-स्तर से जोड़े जा सकें। इसके परिणामस्वरूप उदरक कलान्तर-बन्धन नहीं बनते और इस भांति अधरान्त्रावगुच्छन का भय नहीं रहता। अन्य शस्त्रकर्म निलम्बन का (Sling operation) है। इसमें रज्जुबन्धनिकाओं के बन्धन पत्रबन्धानिका में से निकालकर गर्भाशय के पश्चाद्भाग में स्कन्ध के पास जोड़ दिये जाते हैं। यदि इन शस्त्रकर्मों के उपरान्त गर्भस्थिति हो जावे तो भी गर्भावस्था या प्रसवकाल में कोई कठिनाई न होगी। किन्तु सूतिकाकाल में पश्चाद्विवर्तन का कुछ भय रहता है।

गर्भाशय की पश्चात्स्थिति—

गर्भाशय-पश्चात्स्थिति से तात्पर्य गर्भाशय का असाधारण रूप से पीछे की ओर त्रिकखात में स्थित होना है। गर्भाशय प्राकृतिकरूप में पूर्वविवर्तित होता है और कोई असाधारण विवर्तन या अवनमन प्रतीत नहीं होता। कारण अज्ञात है। कोई विकृत लक्षण उत्पन्न न होने से चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती। पश्चात्स्थिति संज्ञा से गर्भाशय की स्थिति के वर्णन की सुविधामात्र होती है।

गर्भाशय की पार्श्विक-विच्युतियां—

कारण—इन विकृतियों का कारण अर्बुदों का अथवा संकोचक व्रणवस्तु का कर्षण है। इस प्रकार गर्भाशय किसी भी पार्श्व में एक क्षुद्रबीजग्रन्थ्यर्बुद से भी च्युत हो सकता है अथवा परिवेष्टकवृति में प्रसवोत्तर सम्भावित श्रोणिगतपरिवेष्टककला शोथ से च्युत हो सकता है। विपरीत प्रकार से, शोथज स्राव शोषित होने से, पत्रबन्धनिका का आधार संकोच होता है और गर्भाशय श्रोणि के एक पार्श्व में ऊपर खिंच आता है। इसी प्रक्रिया से बीजस्रोतो बीजग्रन्थिजशोथ अथवा बीजग्रन्थ्यतिरिक्त क्षुद्र अर्बुदों से भी प्रायः पार्श्विक-विच्युतियां होती हैं।

एक मुलेरियन स्रोतस के अपूर्णविकास के कारण भी पार्श्विकविच्युतियां उपस्थित हो सकती हैं।

इन विच्युतियों से कोई लक्षण उत्पन्न नहीं होते। इनका कारण कोई विकृति होती है और उपस्थित लक्षण के लिए वह विकृति ही उत्तरदायी है।

इन विच्युतियों की चिकित्सा आवश्यक नहीं है अपितु विच्युति उत्पन्न करने वाली विकृति की चिकित्सा ही आवश्यक है।

गर्भाशय की अन्तः परिवृत्ति (Inversion of the uterus)—

गर्भाशय आंशिक अथवा सम्पूर्ण भीतर की ओर से उलट जाता है और गर्भाशय-स्कन्ध बहिर्द्वार में होकर उभरा हुआ मालूम होता है। यह दो अवस्थाओं में होता है—

१—प्रसवोत्तर गर्भाशय परावर्तन—प्रसव की तृतीयावस्था (placental stage) में प्रसव होने के उपरांत परावर्तन होता है। (चित्र सं. १०२)

२—जीर्णपरावर्तन—गर्भाशयगुहा से अर्बुद के निर्हरण के समय गर्भाशय प्राचीर के अर्बुद के साथ ही चली जाने से परावर्तन हो जाता है।

यदि तीव्र-प्रसवोत्तरपरावर्तन घातक और अज्ञात नहीं है अथवा होते ही इसकी चिकित्सा नहीं की जाती तो यह स्थिर रहता और जीर्ण हो जाता है। तीव्र-प्रसवोत्तरपरावर्तन प्रसूतितन्त्र का विषय है किन्तु जीर्णपरावर्तन स्त्री रोगशास्त्र अथवा योनिव्यापत्तन्त्र के अन्तर्गत है।

रचना शारीर की दृष्टि से गर्भाशय परावर्तन पूर्ण भी हो सकता है और अपूर्ण भी। पूर्ण परावर्तन में ग्रीवा के अतिरिक्त सम्पूर्ण गर्भाशय योनि में परावर्तित हो जाता है किन्तु अपूर्ण परावर्तन में एक अंशमात्र परावर्तित होकर गर्भाशय द्वार पर अथवा इसके बाहर उभरकर उपस्थित हो जाता है। पूर्ण परावर्तन में परावर्तित गर्भाशय इसके ऊपरी संकीर्णप्रान्त के साथ योनि में नाशपाती जैसा (pyriform) प्रतीत होता है। गर्भाशय द्वार से सर्वोपरि भाग बनता है जो वस्तु के चारों ओर अनुभव किया जा सकता है। अपूर्ण परावर्तन में परिवर्तित गर्भाशयस्कन्ध योनि में अथवा ग्रीवा पर उपस्थित होता है। (चित्र सं. १०२-१०३) परावर्तन के साथ-साथ पर्याप्त गर्भाशयावभ्रंश हुए बिना (जो कि विरल होता है) परावर्तित गर्भाशय-स्कन्ध भग के बाहर उभरेगा नहीं।

चित्र १०२
तीव्र प्रसूतिज गर्भाशय परावर्तन (प्रथमावस्था)

चित्र १०३
प्रसूतिज तीव्र गर्भाशय परावर्तन (द्वितीयावस्था)

कारण—

तीव्रप्रसवोत्तरपरावर्तन स्वतन्त्र अर्थात् स्वतः हो सकता है अथवा अपरा पातनार्थ किए गए प्रयत्नों से हो सकता है।

जब परावर्तन प्रसवोत्तर नहीं होता बल्कि गर्भाशयस्कन्ध के अर्बुद के निर्हरण से होता है तो शनैः शनैः होता है। गर्भाशय संकोचों से दबकर उत्पन्न अर्बुद शनैः शनैः अवपीड़ित होता है। इससे गर्भाशयग्रीवा का नलिकापथ विस्तृत होता है। अर्बुद के आश्रयभागस्थ रहने के बजाय जैसे ही यह आगे को धकेला जाता है ये घटनाएं क्यों होती हैं यह अज्ञात है।

लक्षण—

तीव्र प्रसवोत्तरपरावर्तन में तीव्र मूर्छा और रक्तस्राव प्रमुख लक्षण होते हैं। सप्ताहों तक तथा कभी कभी महीनों और वर्षों तक भी इस परिस्थिति का सन्देह नहीं होता।

आश्रयभागस्थ सौत्रिक मांसार्बुद के धकेले जाने के लक्षण ही अर्बुदजनित परावर्तन में होते हैं यथा—पीडायुक्त संकोच और न्यूनाधिक निरन्तर रक्तस्राव, अतिरज के साथ-साथ हुआ करते हैं। पाश और तदुत्तर संक्रमण के फलस्वरूप अर्बुद के भागों पर दोषस्तरनिर्माण (Sloughing) हो जाता है जिससे दुर्गन्धयुक्त स्राव निकलता है। संक्रमण और रक्तविषसंचार से दोष प्रकोप होकर सूतिकाज्वर जैसा ज्वर हो जाता है।

ज्ञापक निदान—

तीव्रप्रसवोत्तर परावर्तन में अन्य सदृशविकृति से मीमांसा करना प्रायः कठिन नहीं होता। यदि अवस्था कुछ दिनों तक या अधिक लम्बे समय तक रहती है तो निदान सर्वदा इतना ही सरल नहीं

होता। इन उदाहरणों में परावर्तन के साथ मात्र सम्भावित विकार सौत्रिक-मांसार्बुद का अवपीडन होता है जो सदा यदाकदा सूतिकाकाल में होजाता है। गर्भाशय से अवपीड़ित होने वाले अर्बुद के सभी उदाहरणों में, जबकि वे स्वयं परावर्तन का
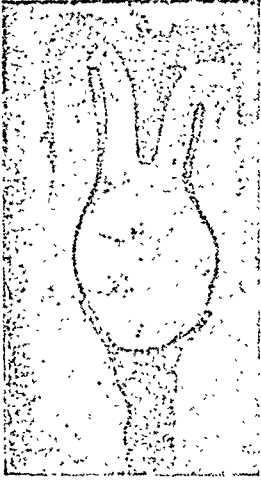
चित्र १०४
गर्भाशय स्कन्धानुबन्धी सौत्रिकार्बुद द्वारा अपूर्ण गर्भाशय परावर्तन

चित्र १०५
गर्भाशय स्कन्धानुबन्धी सौत्रिकार्बुद द्वारा पूर्ण गर्भाशय परावर्तन

कारण नहीं होते, शलाका अथवा अंगुली द्वारा गर्भाशय में एक निश्चित गुहा मालूम होती है और युग्म परीक्षा करने पर उदर या श्रोणि में अपने उन्नतोदर आकार युक्त गर्भाशयस्कन्ध का अनुभव होगा। गर्भाशयद्वार पर वृहत् सौत्रिक-मांसार्बुद होने पर अर्बुद के परिमाण और इसके अनुबन्धों के विस्तार के अनुसार ही गर्भाशयगुहाभाग का अनुभव हो सकेगा (चित्र नं० १०७) और प्रत्येक दशा में गर्भाशयस्कन्ध उन्नतोदर होगा। ऐसा ही आश्रयभागस्थ सौत्रिकार्बुद में, जो योनि में ग्रीवा पर होता है, हुआ करता है। (चित्र नं. १०४-१०५) जीर्णपरावर्तन में योनिगतवस्तु, यदि उस पर व्रण न हुए हों, गहरी लाल या गुलाबी तथा सुस्निग्ध होती है। यदि परावर्तन पूर्ण हो तो संकीर्ण गले के चारों ओर द्वार अनुभूत होता है, उनके बीच में ऊपर को अंगुली या शलाका प्रविष्ट करना असम्भव होता है। अपूर्ण परावर्तन होने पर भिन्न दूरी तक शलाका प्रविष्ट हो सकती है किन्तु उपरिभाग नतोदर या चषकाकार अनुभव होगा, जिससे सही अवस्था का पता चल सकेगा।

जब किसी अर्बुद के अवपीडन द्वारा परावर्तन होता है तो निदान करना और अधिक कठिन होता है। परावर्तन शायद ही पूर्ण होता है जबकि प्रसवोत्तर परावर्तन प्रायः पूर्ण ही बहुत अधिक पाया जाता है। अपूर्ण परावर्तन में, फिर भी गर्भाशयगुहा का अनुभव होता है और गर्भाशय प्राचीरिका भीतर को थोड़ी ही खिचती है। प्रसवोत्तर परावर्तन की भांति ही अन्यत्र भी गर्भाशयस्कन्ध ऊपर नहीं होता। (चित्र सं० १०६)
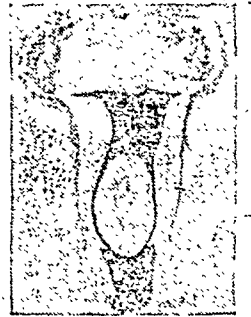
चित्र १०६
गर्भाशय वहिर्द्वारस्थ उपश्लैष्मिक सौत्रिक मांसार्बुद

चित्र १०७
गर्भाशय बाह्य द्वार पर परावर्तन सदृश आश्रयवत्सौत्रिकार्बुद

चिकित्सा—

यदि उत्सन्न वस्तु में संक्रमण, दोषस्तर निर्माण या व्रणीभाव हो गया है तो अतिशक्तिक लवणविलयन अथवा हाइड्रोजन-पर-आक्साइड की योनिवस्तियों का प्रयोग करना चाहिए। किन्तु प्राकृत तापमान होने तक गर्भाशय प्रकृति स्थापन का यत्न नहीं करना चाहिए। प्रकृति स्थापन

एवलिंग के पुनः स्थापन यन्त्र (Aveling's repositor) से करना चाहिए, यह प्रायः समानरूप से सफल होता है। इसमें एक वल्केनाइट चषक होता है और ऊपर S की आकृति का धातुमय त्सरु होता है। त्सरु के नीचे के सिरे पर चार स्थिति स्थापक बन्ध लगे रहते हैं जो एक अन्य बन्ध (पट्टे) से बंधे होते हैं जो रुग्णा की कटि के चारों ओर लपेटा जाता है। चषक और त्सरु को योनि में इस भांति प्रविष्ट करते हैं कि चषक परावर्तित गर्भाशयस्कन्ध के निम्नतम भाग को दबाता है। इसे फिसलने से रोकने के लिए प्रोत कवल (Gauze plugging) भी प्रविष्ट कर देना चाहिए। जब स्थितिस्थापक बन्ध कटिपेटी में बांध दिए जाते हैं तो उनसे वल्केनाइट चषक के द्वारा गर्भाशय स्कन्ध पर निरन्तर ऊपर की ओर दबाव पड़ता है। यह स्थिर पीड़न प्रायः परावर्तन को ४८ घण्टे में ठीक कर देता है। यदि यन्त्र का ठीक प्रकार से प्रयोग किया जावे और यह फिसले नहीं तो किसी प्रकार की हानि नहीं होती। प्रकृति स्थापन हो जाने पर चषक गर्भाशय के भीतर द्वार के ऊपर पहुंच जावेगा। प्रकृति स्थापन का कार्य ४८ घण्टे से अधिक नहीं करना चाहिए क्योंकि निरन्तर दबाव से कोथ हो सकता है। उक्त पुनः-स्थापक यन्त्र महीनों से रुग्णा में भी प्रकृति स्थापन में सफल हुआ है। (चित्र सं० १०८)

चित्र १०८

एवलिंग के पुनः स्थापकयंत्र का प्रयोग (Aveling's Repositor in position)

कतिपय विरल रुग्णाओं में एवलिंग का पुनः स्थापक असफल होने पर विकार को दूर करने का दूसरा उपाय शस्त्रकर्म ही है। इन शस्त्रकर्म विधियों का सिद्धान्त यह है कि गर्भाशयद्वार पर संकुचन वलयों-सिकुड़नों को विभक्त करें, आवश्यक हो तो परावर्तन के संकुचित ग्रैव भाग को भी योनि मार्ग या उदर मार्ग से विभक्त करें। पर्याप्त द्वार बन जाने पर गर्भाशय स्कन्ध को ऊपर को धकेलते हैं। पहले उच्चतम भाग फिर शनैः शनैः सम्पूर्ण प्रकृतिस्थ हो जाता है। तदुपरांत ग्रैव विभागों को सी देते हैं। ग्रीवा में अत्यधिक व्रण और संक्रमण होने पर श्रेष्ठतर प्रकार योनिगत गर्भाशयच्छेदन (Vaginal Hysterectomy) है।

जब परावर्तन का कारण अर्बुद हो तो चिकित्सा निर्णीत करने में अधिक विचार की आवश्यकता है। सभी जीर्ण वृद्धियों, साधारणतः गर्भावस्थिक संयोजक धातु विपरिवर्तनजन्य अर्बुद (Sarcoma) में योनि मार्ग में होकर गर्भाशयच्छेदन कर देना चाहिए। यदि सौत्रिक मांसार्बुद (Fibro-myoma) मात्र हो तो इसे खोलकर गर्भाशय को प्रकृतिस्थ कर देना चाहिए। अर्बुद को खोलने में दुर्घटना के बिना ही गर्भाशय प्राचीर के विदार के खतरे की सम्भावना होती है। परावर्तन स्वल्प होने पर इसकी विशेष सम्भावना रहती है। परावर्तन के ज्ञान के बिना भी साधारणतः यह दुर्घटना वस्तुतः होती है। शस्त्रकर्म तभी सुरक्षापूर्वक किया जा सकता है जब कि कौषिक धातु निश्चितरूप से स्पष्ट और निर्विकार हो, जिसमें से गर्भाशय पेशी को क्षति पहुंचाए बिना अर्बुद को खोला जा सके। यदि यह सम्भव न हो तो रुग्णा के हितार्थ योनिगत गर्भाशयच्छेदन ही सर्वोत्तम प्रकार है। नियमानुसार परावर्तन की सभी रुग्णाओं में, जहां शस्त्रकर्म अपेक्षित है, योनिगत-गर्भाशयच्छेदन सरल होता होता है। यदि अर्बुद बड़ा हो तो बहुधा विभाग (Morcellement) द्वारा थोड़ा थोड़ा करके सम्पूर्ण अर्बुद को निकाल देना चाहिए क्योंकि पूर्ण अर्बुद को योनिकक्ष से भगद्वारा निकालना असम्भव होता है।

बीजग्रन्थि-विच्युति (Displacement of the ovary) —

अनागम (*Non-Descent*)—बीजग्रन्थि का प्राकृतरूप से अनागम अतिविरल देखा जाता है। परन्तु ऐसे कतिपय उदाहरण अवश्य मिले हैं जिनमें बीजग्रन्थि गवीनी से लगी हुई श्रोणिकण्ठिका रेखा और वृक्क के मध्य में मिली है।

अवभ्रंश (*Prolapse*)—यह प्रायः गर्भाशय की पश्चाद्विच्युतियों और गर्भाशयभ्रंश के साथ होता है। इन अवस्थाओं में दोनों बीजग्रन्थियां ही विच्युत होती हैं। उक्त दोनों अवस्थाओं के बिना भी, उन रुग्णाओं में बीजग्रन्थियों का अवभ्रंश देखा जाता है जिनमें बीजग्रन्थिबन्धनिकाएं ढीली होती हैं। यह ढीलापन या तो प्रसवजन्य होता है अथवा जिनमें बीजग्रन्थियां आकार में बड़ी और भारी होती हैं। ऐसे उदाहरणों में एक बीजग्रन्थि भी अवभ्रष्ट हो सकती है।

विकृतस्थिति के कारण बीजग्रन्थि प्रायः स्पर्श में मृदु होती है और निकटवर्ती रचनाओं से संसक्त भी हो सकती है।

लक्षण—

किसी भी लक्षण का न होना संभव है और अवस्था का पता आनुषंगिक परीक्षण काल में लगता है। लक्षणों की उपस्थिति में रुग्णा श्रोणि में मन्द वेदना अथवा कटिपीड़ा जो मलत्याग के समय विशेष प्रतीत होती है, की शिकायत करती है। अवभ्रष्ट बीजग्रन्थि स्पर्श में मृदु होती है और प्रायः मैथुन में पीड़ा का हेतु बनती है। मासिक-धर्म पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, परन्तु कदाचित् आर्तवाधिक्य हो सकता है और आर्तव रोध की दशा में पीड़ा भी हो सकती है।

चिकित्सा—

सभी उदाहरणों में चिकित्सा की अपेक्षा नहीं होती। यदि पीड़ासह अवभ्रंश हो तो अवभ्रंश के कारण के निश्चय का यत्न करें। यदि गर्भाशयावभ्रंश कारण हो तो उसे ठीक कर देने से बीजग्रन्थि प्रकृतिस्थ हो जावेगी।

यदि बिना गर्भाशयावभ्रंश के ही बीजग्रन्थ्यवभ्रंश है तो या तो बीजग्रन्थिबन्धनिका को छोटा करके बीजग्रन्थि को जोड़ देना चाहिए, अथवा श्रोणिकण्ठ के समतल, पक्षबन्धनिकाध्यंश (*Mesosalpinx*) को उदर्य्याकला से जोड़ देना चाहिए।

बीजग्रन्थिबहिश्च्युति (*Ovarian Hernia*)—

बीजग्रन्थि बहिश्च्युति दो प्रकार की होती है—१–सहज और २–अर्जित।

सहज-बहिश्च्युति—बीजग्रन्थि वंक्षण प्रदेश में स्थित होती है और पास ही पक्षबन्धनिकावरक-उदर्य्याकोषस्रोतस् (Canal of Nuck) के भीतर होती है। यह विकृति जननांगों की किसी सहज विकृति के साथ ही प्रायः मिलती है जिसके अणुवीक्षणिक छेदन परीक्षण से पता चलता है कि वह बीजग्रन्थि नहीं, अपितु वृषण है।

अर्जित-बहिश्च्युति—अधिकतर यह विकृति उपलब्ध होती है। अर्जितबहिश्च्युति में साधारणतः बीजग्रन्थि वंक्षणगत प्रकार की होती है। बहिश्च्युत-ग्रन्थिकोष (Hernial sac) में बीजग्रन्थि के साथ साथ बीजस्रोतस् भी देखा जाता है, कदाचित् अन्त्र अथवा वसा का अंश भी उपस्थित हो सकता है।

चिकित्सा—

बहिश्च्युति को प्रकृतिस्थ करने के लिए शस्त्रकर्म अपेक्षित है। शस्त्रकर्म के समय बीजग्रन्थि की परीक्षा करनी चाहिए। स्वस्थ होने पर उदर में यथास्थान वापिस कर देना चाहिए।

—वैद्यराज आचार्य श्री सुदेवचन्द्र पाराशरी, शास्त्री *D. I. M. S.*
प्रोफेसर–गवर्नमेण्ट आयुर्वेदिक कालेज, जयपुर।

गर्भाशय भ्रंश की चिकित्सा

श्री डा० सत्यनारायण A. M. S.

डा. घाणेकर ने अपनी 'A comperative survey of the Ayurvedic Nosology 'आयुर्वेदिक पंच निदानों की तुलनात्मक समीक्षा' नाम की पुस्तक में लिखा है कि—

'This section like 'Dhavalgiri', is the highest peak in Ayurved, because the Ayurvedic Rishies have attained the highest achievement in this domain of Medical Science............'

'............If at all Ayurved excels in anything, it excels in treatment.'

आयुर्वेद का यह विभाग हिमांचल के सर्वोच्च शिखर 'धवलगिरि' की तरह है क्योंकि औषधि चिकित्सा विज्ञान में भारतीय ऋषियों की पहुंच अद्वितीय रही है। इस विषम परिस्थिति में भी यदि आयुर्वेद किसी का अतिक्रमण कर बढ़कर विद्यमान है तो वह है अपनी चिकित्सा प्रणाली में ही।'

अब हमें देखना है कि इस व्याधि के समुन्मूलन में इसने कहां तक अपना योगदान किया है और पाश्चात्य चिकित्सकों ने अपनी गवेषणात्मक खोज के साथ क्या सत्य उपस्थित किया है? इसी को प्रकाश में लाने के निमित्त ही इस लेख का श्रीगणेश आर्त्तत्राणार्थ पाठकों के समक्ष उपस्थित है।

चिकित्सा पद्धति का स्वरूप

(१) दैविक (२) मानसिक (३) युक्तिव्यपाश्रय

(क) आहार (ख) आचार (ग) औषधि

(१) दैविक या दैवव्यपाश्रय चिकित्सा—प्रसव कर्म के प्रसंग में यज्ञ, बलि, स्वस्तिवाचन आदि का विधान उक्तपद्धति का सम्पोषक है। धर्म और ईश्वर अब राजधर्म से हटा दिए गये हैं अतएव इससे विराम लेना ही हितकर है।

(२) मानसिक—

'सत्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत्त्रिदण्डवत्।
लोकस्तिष्ठति संयोगात्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्॥
निर्विकारः परस्त्वात्मा सत्वभूतगुणेन्द्रियैः।
चैतन्ये कारणं नित्यो द्रष्टा पश्यतिहि क्रियाः॥'

—चरक

मन, जीवात्मा और शरीर रूपी त्रिदण्ड के संयोग से ही संसार के समस्त क्रियाकलाप होते रहते हैं जिसमें जीवात्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि इस पर कोई प्रत्यक्ष परिणाम दृष्टिगोचर नहीं होता लेकिन जब शरीर रोगाक्रान्त हो जाता है तो उसका कुपरिणाम चिड़चिड़ापन आदि मानसिक विकृति में दीखता है और मानसिक व्याधियों से आक्रान्त होने पर शरीर पर भी प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता ही है क्योंकि वह उस उद्वेग स्थिति में भोजन, शयन, चिन्तन आदि शारीरिक या मानसिक कार्य को व्यवस्थित या नियमित रूप से नहीं कर पाता है अतएव मानसिक शक्ति को बलवती बनाने के लिए सात्विक आहार विधान पर महर्षियों की सारी शक्ति लगी हुई थी क्योंकि किसी भी व्याधि की समुत्पत्ति या निवारण में 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः' इस तथ्य से भली भांति परिचित थे।

अतएव रुग्णा की मनःस्थिति अनुकूल आवास, भोजन, वस्त्र परिधान और विशिष्ट पर्वों पर मनोरंजनादि की समुचित व्यवस्था यथासामर्थ्य एकत्रित करने में पीछे नहीं हटते थे।

(३) युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा—युक्तिसंगतहेतुओं से औषधियों के गुण धर्मानुसार आहार, पथ्या-

पथ्यविवेक, दिनचर्या, ऋतुचर्या तथा निशाचर्या के समुचित उपदेश व आदेश के साथ औषधि की व्यवस्था करना ही इसका मुख्य आशय है।

इस प्रकार चिकित्सा पद्धति के स्वरूपात्मक विवेचन पर विचार करने के बाद व्यवहारिक चिकित्साकर्म की निम्न तालिका उपस्थित करता हूं—

चिकित्साकर्म का सैद्धान्तिक विवेचन (Principles of treatment)

- I. General (साधारण) treatment
  - (1) Avoidance of causal factors (निदान परिवर्जन)
  - (2) Elimination (संशोधन) यथा पंचकर्म
  - (3) Allenation or Sedation (संशमन)
- II. Special (विशिष्ट चिकित्सा) treatment
  - (क) Passaries (मुद्रिकाओं का धारण करना)
  - (ख) Operation (शस्त्र कर्म)
  - (ग) Medicines (औषधि)
    - (i) द्राक्षारिष्ट
    - (ii) कटकरैजा की मींगी का चूर्ण
    - (iii) सुपारी चूर्ण

आयुर्वेदिक चिकित्सा सूत्र—

१—संशोधनं संशमनं निदानस्य च वर्जनम्।
एतावद्भिषजा कार्यं रोगेरोगेयथाविधि:॥
—चरक

२—स्वेदयेत् वातिकं कन्वं पैत्तिकं तु विरेचयेत्।
कफजे वमनं भूयः सर्वजे सर्वमर्हति॥
—बंगसेन

(१) संक्षेपत: क्रियायोगोनिदान परिवर्जनम् (Avoidance of causal factors) के अनुसार कारणों की इतिवृत्ति का पता लगा निवारण अत्यन्तावश्यक है। जिनमें 'God gifted fresh air and sunshine are the best tonics in the world' के अनुकूल साफ हवा और सूर्य प्रकाश के सुप्रबन्ध की आवासगृह में व्यवस्था करना स्वयं दो प्रत्यक्ष देवताओं के आवाहन के तुल्य प्रशस्त कर्म है। साथ ही गर्भाशय, गर्भाग्रीवा मूत्रेन्द्रिय द्वार एवं मलद्वारादि अंगों से संयुक्त विटप (Perineum) के समस्त क्षतों का उचित समय पर सीवन एवं विसंक्रामक द्रव्यों द्वारा प्रतिदिन बन्धन अत्यन्त आवश्यक है।

(२) संशोधन (Elimination therapy)—साधारणतया फुफ्फुस, त्वचा और मलमूत्रेन्द्रियों द्वारा शरीरस्थ विषों एवं मलादि दोषकारी त्याज्य पदार्थों का निष्क्रमण शरीरक्रिया विज्ञान के नियमानुसार होता है इससे भलीभांति परिचित हैं। अतएव उपरोक्त क्रिया में सहायक भूत पंचकर्मों का सविस्तर वर्णन चरक के सूत्र स्थान में वर्णित है पर इन कर्मों में कथित आस्थापन एवं अनुवासन वस्ति के नाम से मल के निकालने के लिए जिस एनीमा सिरिंज की प्रशंसा अङ्कित है वह वास्तव में सदैव स्मरण करने लायक सुन्दरभाव है जिसको अविकल रूप में उपयोगी समझ व्यक्त कर रहा हूँ—

'याश्च स्त्रियो वातकृतोपसर्गाद्
न गर्भं गृह्णन्ति नृभिः समेताः।
क्षीणेन्द्रिया: येचनराः कृशाश्च
तेषां च वस्तिः परमः प्रदिष्टः॥

शाखागता: कोष्ठगताश्च रोगा
मर्मोर्ध्वसर्वावयवं गताश्च: ।
ये सन्ति तेषां न तु कश्चिदन्यो
वायो: परं जन्मनि हेतुरस्ति ॥
विण्मूत्रपित्तादि मलाशयानां
विक्षेप सङ्घातकर: स यस्मात् ।
तस्यातिवृद्धस्य शमाय नान्यद्
वस्तेर्विना भेषजमस्ति किंचित् ॥
तस्माच्चिकित्सार्धमिति ब्रवन्ति
सर्वां चिकित्सामपि वस्तिमेके ।

भावार्थ—जो स्त्रियां वाताभिवृद्धि के कारण पुरुष समागम से गर्भधारण नहीं करतीं तथा जो पुरुष इन्द्रियों की शक्ति से क्षीण हो गये हैं उनके लिए 'वस्ति' ही एक मात्र इलाज है। शाखा, कोष्ठ, उर्ध्वस्थ शरीर गत समस्त शिरादि मर्मों में व्याधि उत्पात का एक मात्र हेतु वायु है। पुरीष, मूत्र, पित्त, और मलाशय में संकोच एवं विस्फार कर गति को करने वाला भी वायु ही है अतएव उसकी बढ़ी हुई स्थिति के संशमनार्थ 'वस्ति कर्म अर्थात् एनिमा सिरिंज से दोषनिर्हरण' से बढ़कर कोई दूसरी चिकित्सा नहीं है अतएव आधी चिकित्सा के नाम से पुकारते हैं और कोई कोई 'सम्पूर्ण चिकित्सा' की संज्ञा दे गौरव प्रदान करते हैं।

प्रसवक्रिया के प्रारम्भ में भी हम देखते हैं कि दाई द्वारा वस्तिकर्मोपरान्त गर्भिणी को प्रसव के सत्य दौरे (*true pains*) प्रारम्भ हो जाते हैं जो कि उपर्युक्त गुण का अवबोधक सबल प्रमाण हैं। पर योनिभ्रंश की स्थिति इन सब से भिन्न है जिसमें मलाशय का प्रक्षालन न कर प्रथम पथभ्रष्ट मूत्राशय या गर्भाशय का प्रक्षालन करना अभीष्टकर्म होता है क्योंकि जो अङ्ग बन्धनों के ढ़ीले हो जाने के कारण नीचे की ओर उतर रहा है उसे उसी प्रारम्भिक स्थिति में स्थापित करना ही चिकित्सक का महान कर्त्तव्य है अतएव इस दिशा में अपेक्षित प्रक्षालन विधि का निम्न विवरण अंकित है—

गुदप्रक्षालन विधि—रोगी को पीठ के बल या वामपार्श्व के बल लिटा एनीमा सिरिंज के नॉजल (गुदा के अन्दर प्रवेशनीय भाग) के मुख से (*Indian Rubber catheter No. 10 or 12*) लगा गुदा में सम्पूर्ण कैथेटर को (नाजल से जुड़े भागके समीप तक) डालकर प्रविष्ट कर देते हैं ताकि कोष्ण पानी की धारा के साथ बृहदान्त्र के अवरोही भाग (*Descending portion of the large intestines*) की अधिकतम दूरी तक का भाग आसानी से प्रक्षालित हो जाय जिसमें साधारणतया १:१००० शक्ति के पोटाशियम परमेंगनेट का का विलयन सर्वत्र प्रक्षालनार्थ उपयोग में लाया जाता है।

योनिभ्रंश या मूत्रभ्रंश—के लिये गर्भाशयप्रक्षालनार्थ विशिष्ट प्रकार का मोटा टेढ़ा छिद्रयुक्त नॉजल आता है जिसे लगा योनि का प्रक्षालन तथा कैथेटर के द्वारा उत्तरवस्ति या प्रक्षालन का कार्य सुविधापूर्वक किया जाता है।

(*i*) त्रिफलाया: कषायेण मधुयुक्तेन संचयेत् ।
प्रमदा योनिकन्देन व्याधिना परिमुच्यते ॥
—योगरत्नाकर, वंगसेन

त्रिफला के काढ़े में मधु मिला सेचन करे तो *Prolapse* ठीक होजाता है।

(*ii*) 'न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थ पारिषप्लक्ष पादपा:' इस प्रकार पंच क्षीरी वृक्षों के प्रयोग से गर्भाशय प्रक्षालन जिसमें बट, पीपल, पाकड़, गूलर और शिरीष वृक्षों का समावेश होता है।

(*iii*) मदयन्तिकाश्वगन्धा मोचरसै: साधितंजलं स्त्रीणाम् प्रक्षालनेन योने: सद्य: शैथिल्यमपहरति ।

मालती या मालकांगुनी, असगन्ध और मोचरस से साधित क्वाथ के प्रक्षालन से योनि की शिथिलता दूर हो जाती है।

उक्त मान्य तीनों योगों का चिकित्सा जगत में प्रयोग वान्छनीय है।

(३) संशमन चिकित्सा (Sedation)—इसके अन्दर कड़ी औपधि के प्रयोग से नहीं अपितु पुल्टिश, सेंक, मालिश,व्यायाम,उपवास, वेदनाहर एवं अग्निदीपक औपधियों के प्रयोग द्वारा सामान्य शक्ति को प्रवर्धित करने की व्यवस्था की जाती है। इस प्रकार आवश्यकता पड़ने पर रक्तस्रावादि उपद्रवों की विनिवृत्ति के लिए फिटकिरी का संयोग बाह्य एवं आभ्यन्तर रूप में तथा कमर और उरु आदि वेदनोपशमनार्थ नारायणादि तैलों की मालिश इसी के अन्दर समाविष्ट होते हैं।

गर्भाशय को मूत्राशय के ऊपर तकिया लगा Anteverted position में रखने के लिए जिन दो व्यायामों का उल्लेख प्रसूति शास्त्र एवं स्त्री रोग में उपलब्ध होता है वे निम्न हैं—

प्रथम में स्त्री घुटनों और कोहनी के सहारे जमीन पर लेट कटि प्रदेश को ऊपर उठाती है, जिसे Genupactoral position कहते हैं (चित्र सं० १०६)। और दूसरे में पीठ के बल लेट कोहनी के सहारे पैरों को नितम्ब, भाग के नीचे लाते हुए
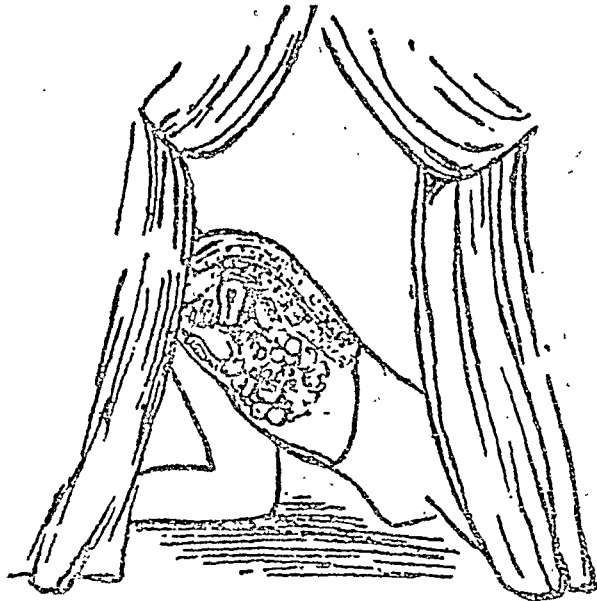
चित्र १०६

(शीर्षासनवत्) कटि प्रदेश के भाग को जितना उठा सकती है, उठाने का यत्न करती है लेकिन इन दोनों प्रकार के व्यायामों से खुली हवा का सेवन (open air treatment) सर्वोत्तम है।

विशिष्ट चिकित्सा (Special treatment)—

आधुनिक चिकित्सा जगत के मान्यतम ग्रन्थ Savil's Medicine और प्रसूति तन्त्र (Midwifery) और स्त्री रोग (Gynaecology) by Ten teacher's and Jellet के अवलोकन से पता चलता है कि इसके मुख्यतम भाग रिंगपेस्सरी (Ring pessary) का धारण और अन्ततोगत्वा शस्त्रकर्म (Operation) का, आश्रय लेना ही व्याधिनिवारक चिकित्सा (Curative treatment) के रूप में विद्यमान है जिसे Ten teacher's Gynaecology के शब्दों में ही अवलोकन कीजिये—

'In general, it is a fact that prolapse is progressive lesion, even when treated by palliative methods, tending to get worse as time goes on.'

'It is important to remember that the use of the passary here is temporary and to be discontinued as soon as possible with some astringent such as alum or. with salt and water instead of plain water, to prevent unpleasant odour and for the purpose of cleanliness.'

'It must be forgotten, however that there is always probability, if the patient is young, that further pregnancies will occur and that the good accomplished by a plastic operation may be undone by a future delivery.

भावार्थ यह कि साधारणतया योनिभ्रंश एक निरन्तर बढ़ने वाला वह क्षत है जो मृदुकर अभ्यंगादि उपायों द्वारा चिकित्सित होने पर भी समय के अधिकाधिक व्यतीत होने के साथ ही क्रमशः खराब होता चला जाता है निर्विवाद सत्य है।

यह विशेषतया स्मरणीय है कि पैसरी का व्यवहार (उपयोग) एक अस्थायी उपक्रम है और जल्दी से जल्दी यथाशीघ्र हटा देना चाहिए और इसके उपयोग काल की अवधि तक सादा पानी के बदले फिटकिरी या नमक को जल में मिला कोष्ण विलयन से गर्भाशय की संकोचक शक्ति को बढ़ाने तथा दुर्गन्धित स्राव निवारणार्थ योनि प्रक्षालन का आदेश अवश्य देना चाहिये।

शस्त्र कर्म के विषय में सम्मति में दसों प्राध्यापकों का एक मत है कि यदि रुग्णा युवती है तो आगे गर्भधारण की प्रत्येक प्रकार से सम्भावना है अतएव त्वगस्थापनारूप शस्त्र कर्म (Plastic operation) द्वारा किया गया समस्त लाभ भावी गर्भ धारण द्वारा किसी भी समय समाप्ति के रूप में परिणत हो सकता है।

जिन्हें आन्त्रवृद्धि (Hernia) के कारण पेटी (Truss) बांधना जीवन यापनार्थ एवं निर्वाहार्थ आवश्यक कर्म है वे इस बात को भली भांति जानते हैं कि उसकी कवलिका स्वरूप दबाव डालने वाला टेढ़ा गद्दी का भाग जहां से आंत बाहर निकलती (Inguinal ring) है पर होता है जो बाह्य चर्म (सामान्य त्वचा skin) पर अवस्थित है जिसमें पृष्ठ वंश की कशेरुकाओं के रूप में विद्यमान त्रिकास्थि (Sacrum) और उससे सम्बद्ध नितम्बास्थि (Hip bone) से संयुक्त जघनास्थि का पक्षीय भाग (Ala of the ilium) से आलम्बित होने पर भी पेटी को दिन भर धारण करने में कितनी कठिनाई होती है इसे उससे पीड़ित व्यक्तियों के प्रत्यक्ष सम्पर्कगत अनुभव से आप स्वयं पता लगा सकते हैं। तो उससे भी भयंकर अवस्था रूप इस महाव्याधि में जिसका निरूपण आवश्यक स्थलों पर पूर्व में कर चुका हूं आभ्यन्तरिक श्लैष्मिक त्वचान्तर्गत अवधारण कहां तक सहनीय हो सकता है यह वास्तव में भारतीय महिलाओं के लिए एक विचारणीय समस्या है जिसका धारण कठिन है क्योंकि इससे लाभ के बदले परिणामकारी अन्य क्षतों की अभिवृद्धि ही हो सकती है जिसकी आप अवहेलना नहीं कर सकते यह मानना ही पड़ेगा। अतएव साधारण चिकित्सान्तर्गत संशमन चिकित्सा (Elimination therapy) में कथित प्रभावोत्पादक योनि प्रक्षालन रूप कार्य का ही आलम्बन सुखावह एवं हितकर है। तदुपरांत आयुर्वेदिक साहित्य में प्रक्षालनोत्तर जिन योगों के लेपन व अवचूर्णन के बाद बन्धन का उपदेश मिलता है उनका ही प्रथम संकलन आपकी ज्ञान राशि की अभिवृद्धि के लिये किया जा रहा है—

(१) योनिः स्त्रीणां निर्गताऽपिप्रवेशं
प्राप्नोत्यन्तः कारवेल्ली जटाभिः।
संपिष्टाभिर्लेपनाद्गाढतांतु-
प्रातोत्येषा शक्रगोपाज्य सिक्ता॥
—राजमार्त्तण्ड

बीरबहूटी को करेले की जटा के रस से पीस घी मिलाकर लेपन करने से बाहर निकली हुई योनि (Complete procidentia) अपने स्थान पर आ जाती है।

(२) 'योनि भ्रंशहरं तथाखु पिशितैस्तैल भवेत्साधितम्।'
—राजमार्त्तण्ड

चूहे के मांस से निर्मित तैल से लेपन इस महाव्याधि का हारक है।

(३) मायाफल यद्घनसारपुण्य सारान्वितैर्लेपितमादरेण।
तद्वद्भावेऽपि वलीविमुक्तं स्त्रीणां वरांगं श्लथतां नयाति॥

मैनफल का कपूर के साथ मिलाकर किया लेप लाभकारी है।

(४) कोलभेकस्य मांसेन कन्दः शाम्यति योषिताम्।
मूषिका मांस संयुक्तः तैलमातपभावितम्॥
अभ्यंगाद् हन्ति कन्दं वा स्वेदतन्मांस सैन्धवैः।

सूअर, मेंढ़क और चूहे के मांस से तैल को धूप में पका मालिश करने से योनिकन्द-व्याधि चली जाती है या इनके मांस में सेंधानमक मिला स्वेदन करने से भी वही लाभ दृष्टिगोचर होता है।

(५) पिष्टं शम्बूकमांसञ्च पक्वतित्तरी संयुतम् ।
लेपमात्रेण नारीणां योनिकन्दहरं परम् ॥

घोंघा और तीतर के मांस से पकाये तैल का लेप योनिकन्द निवारक है ।

(६) गैरिकाञ्जन जन्तुघ्नं कट्फलाम्रास्थि चूर्णितैः ।
पूरयेत् सततं योनिं निशाक्षौद्र समायुतैः ॥
—वंगसेन ।

गेरू, अंजन, बायविडंग, कायफल, आम की गुठली की मींगी, हल्दी इन सबको समभाग में ले चूर्ण बनालें और शहद में मिला लेप करावें ।

अब 'पंकप्रक्षालनात्तस्य दूरादस्पर्शनं वरम्' उक्ति अनुकूल जलपान के रूप में सेवनीय, भोजनोत्तर पेय के रूप ग्रहणीय प्रक्षालनोत्तर अवचूर्णन या पोटली के रूप में और कोष्ठबद्धता निवारकों में प्रयुक्त शीर्षकान्तर औषधियों (अमोघ लाभकारी एवं क्रियाकारी) का युक्तिसंगत निम्न परिष्कृत विवेचन उपस्थित है ।

१–जलपान के रूप में सेवनीय—

(१) उदुम्बरावलेह या उदुम्बर पाक—कच्चे गूलर के दो फांक कर पानी में उबाल लीजिये । उबलने के फलस्वरूप जितने बीज निकल चुके हों उन्हें निकाल सिल पर पीस घी में भून यथोचित शक्कर मिला हलुआ बना लीजिए । इसमें आकृति की सुन्दरता तथा गुणों की अभिवृद्धि के लिए सितोपलादि चूर्ण के साथ गेरू मिला देने से उत्तम लाल रंग का हलुआ सा बन जाता है । यह योग रक्तावरोधक गुणों के अतिरिक्त फुफ्फुसीय राजयक्ष्मा की द्वितीयावस्था में भी अत्यन्त लाभकारी सक्रिय योग है । इसके सेवन से गर्भाशय की मांसपेशियों की संकोचन शक्ति अत्यधिक बढ़ जाती है जिससे वह प्रसवोत्तर आसानी से अपनी पूर्वावस्था में आ जाता है ।[1]

भैषज्यरत्नावली में गूलर का संयुक्त योग योनि लेपनार्थ बताया गया है जो उक्त भाव का सम्पोषक है—

'पलाशोदुम्बरं फलं तिल तैल समन्वितम्[2] ।
मधुना योनिमालिप्य गाढ़ीकरणमुत्तमम् ॥'

---

[1] स्त्रियों की योनि में कृमियों के आक्रमण, गर्भ के जाते रहने और उत्पन्न होती हुई सन्तान के शीघ्र मर जाने की चिकित्सा अथर्व वेद काण्ड २० । सूक्त ९६ मन्त्र ११-१६ में दी है उसमें से प्रमुख का यहां वर्णन करते हैं—

'ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः ।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥'

अर्थ—(यः) जो (अमीवा दुर्णामा) रोगभूतकृमि (ते) हे स्त्री ! तेरे (गर्भम्) गर्भ को (योनिम्) योनि को (आशये) आक्रान्त किये हुये है । उसे (ब्रह्मणा) ब्रह्मवृक्ष उदुम्बर से (संविदानः) मिला हुआ एक योग होकर (रक्षोहा) रक्तादि भक्षक कृमियों का नाशक (अग्निः) चित्रक-चीता (इतः) यहां से (बाधताम्) बाधित करे हटावे, नष्ट करे ।

अब उक्तवेद सूक्त में बतलाई औषधियों के गुणों का निम्न वर्णन भी हम आयुर्वेद ग्रन्थों में प्राप्त करते हैं—

(१) उदुम्बरः शीतलः स्याद् गर्भसन्धानकारकः ।
व्रणरोपकृद्रूक्षो मधुरस्तुवरो गुरुः ॥
योनिरोगं नाशयति वल्कं चैवास्य शीतलम् ।
दुग्धवं तुवरं गर्भ्यं व्रणनाशकरं मतम् ।
शोषमूर्च्छाहरं प्रोक्तं स्वे-स्वे सुनिघण्टुके ॥
(निघण्टुरत्नाकर)

(२) चित्रकः कटुकः पाके वह्निकृत्पाचनो लघुः ।
रूक्षोष्णो ग्रहणीकुष्ठशोफार्शः कृमिकासनुत् ॥
(भावप्रकाश निघण्टु)

[2] औषधियों के गुणधर्मानुसार पलाश में कृमिघ्नता (*antiseptic*) और गूलर में याकृतीय कोषान्तर्गत रक्तसंजनन के महत्वपूर्ण कार्य के साथ रक्तावरोधी गुण भी चूना (*Calcium*) के कारण विद्यमान है तथा यह स्वयं स्वभाव से बीजों के कारण कोष्ठबद्धता निवारक है अतएव यह योग ग्राह्य है ।

पलाश के बीज (ढाक बीज) और गूलर को तिल तैल के साथ पीस थोड़ा मधु मिला लेप करने से योनि की दृढ़ता होती है।

(२) सुपारी का चूर्ण—गर्भाशय के ढीले बन्धनों को दृढ़ करने में यह आयुर्वेद का सर्वसाधारण सुलभ सेवनीय उत्तम योग है जिसे ६ माशा की मात्रा में घी के साथ सेवनोपरान्त गाय या बकरी को एक पाव दूध के अनुपान रूप में पीना चाहिए। अमीरों के लिए सुपारी पाक के रूप में इसका शास्त्रीय विधान वर्णित है।

भोजनोत्तर पेय के रूप में ग्रहणीय—

(१) द्राक्षारिष्ट का सेवन—गर्भधारणान्तर गर्भाशय वृद्धि के साथ औदरिक अंगों पर भाराधिक्य के कारण दवाव पड़ता है जिससे मानसिक एवं शारीरिक लक्षण यथा हृल्लास, प्रातःकालीन छर्दि, अपाचन, मूर्च्छा, रक्तस्राव, गर्भपात आदि नाना प्रकार की व्याधियां ऐसी आपतित होती हैं जिससे रुग्णा के जीवन के साथ गर्भस्थ बालक का भी जीवन खतरे में पड़ जाता है अतएव गर्भाशय की मांसपेशियों को सबल बना स्वाभाविक स्थिति (Anteverted position) में रहने देने के लिये गर्भधारण के प्रथम दिन● से प्रसव की अन्तिम तिथि पर्यंत द्राक्षारिष्ट का १ तोले की मात्रा में भोजनोत्तर सम भाग जल के साथ सेवन ही सर्वोत्तम उपाय है। इसलिए आसवारिष्टों में इसे सर्व प्रथम स्थान भी प्राप्त है। माता को सब प्रकार से बल प्रदान करता हुआ बालक को सब प्रकार से उत्तम एवं सुन्दर बनाने वाला यह एक रामबाण सम कार्यकारी अमोघ नुस्खा है जिसमें अर्जुन वृक्ष, सिरप आरेन्सिया आदि का योग उपरोक्त गुणों में चार चांद लगा देता है। इसके अतिरिक्त यह एक कठोर सत्य है कि माता पिता की अनवधानतावश की गई भूलों के परिणामस्वरूप प्रायश्चित निरपराध बालक को भुगतना पड़ता है अतएव उपदंश, गरमी, सुजाक, यक्ष्मा, अपस्मार, अर्शादि कुलज प्रवृत्त पैतृक दोषों से अपनी भावी सन्तति को बचाने के हेतु यह अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ है क्योंकि यह उनके मूल कारणभूत समस्त विकारी जीवाणुओं (Pathogenic bacteria) को अपरा (Placenta) की रक्षणात्मक शक्ति को बढ़ाता हुआ रक्त संवहन द्वारा रोकने की निश्चित क्षमता रखता है।*

●सद्योगृहीत गर्भा के निम्न लक्षण चरक में वर्णित हैं—

'निष्ठीविका गौरवमङ्गसादः
तन्द्रा प्रहर्षो हृदयव्यथा च।
तृप्तिश्च बीजग्रहणं च योन्यां
गर्भस्य सद्योऽनुगतस्य लिङ्गम्॥'

१. निष्ठीविका—मुख में पानी आ जाने से थूकने की प्रवृत्ति में वृद्धि (जैसा कि कृमिरोग में हो जाया करता है और इसका निर्णायक लक्षण है)

२. गौरवमंगसाद—गर्भाधान रूप गुरुता के कारण अङ्गों में पीड़ा और तन्द्रा आलस्यादि का होना।

३. प्रहर्ष—काम की पिपासा शांत होने के कारण अत्यधिक प्रसन्नता की स्थिति, जिसके फलस्वरूप रोमहर्षादि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

४. हृदय व्यथा (*Pain in the epigastric region*) वक्षोऽस्थि के सबसे निचले भाग के हृत्प्रदेश के ऊपर पीड़ा का होना गर्भाधान का सबसे महत्त्व का निर्णायक लक्षण है।

५. तृप्तिश्च बीज ग्रहणं च योन्यां—शुक्राणुओं के सम्मिलन के फलस्वरूप रतिकर्म से पूर्ण तृप्ति का अनुभव।

*वेदों में 'पृश्निपर्णी' नाम की औषधि को गर्भरक्षिका कहा है और क्षेत्रीय रोग विनाशार्थ अर्जुन वृक्ष की छाल (*Terminalia Arjuna*) सोम-

(२) ८कोषकः स्वरसः पीतो मस्तुना च समन्वितः।
योनिकन्दं निहन्त्याशु तन्नाड़ी चैव धूपतः ॥
वंगसेन।

मीठी तोरई के स्वरस को मट्ठे के साथ पीना योनिकन्द निवारक है।

(३) ८पूरयेत् चाभयारिष्टं मध्वरिष्टमथापि वा।
महामायूरमथवा वस्तौ पाने प्रयोजयेत् ॥
—वंगसेन।

अभयारिष्ट या मध्वासव वा महामायूरघृत वस्तिकर्म के रूप में तथा पान के रूप में उपयोगी है।

अवचूर्णन या पोटली के रूप (Dusting or tampoon) में प्रयुक्त—आर्य समाज के विद्वान् सन्यासी स्वा० योगानन्द जी महाराज द्वारा लिखित पुस्तक का अवलोकन करते समय ही १९४१ में मुझे 'कटकरंजा' नाम की औषधि की महत्ता इस दुष्ट व्याधि के लिए प्रथम बार ज्ञात हुई थी जिसके परीक्षण का अवसर मुझे केवल पांच बार (दो बालकों, दो युवा स्त्री और एक ८० वष के वृद्ध के गुदभ्रंश) मिला है। मैं अपनी धारणानुकूल इस साधारण औषधि को अपूर्व शक्ति से सम्पन्न पाता हूं जिसे निम्न प्रकार रोगियों पर प्रयोग करता हूं और जिनके गुणधर्म का संक्षिप्त सारगर्भित विवरण जनता को उपयोगी सिद्ध हो सकेगा, ऐसी आशा है। अतएव उन सबका पर्याय क्रम से विशद् विवरण उपस्थित कर रहा हूं।

संशमन चिकित्सा में अंकित विवरणानुकूल योनि, मूत्र या गुद प्रक्षालनोत्तर बहिर्गत के चारों और टिंचर फैरी ग्लिसरीन (१ औंस ग्लिसरीन में टिंचर फेरी परक्लोर को १ ड्राम की मात्रा में डाल उपरोक्त घोल का निर्माण होता है) विटप प्रदेश पर लेप कर देना चाहिये तदुपरान्त

(१) कटकरंजा० की मींगी—के चूर्ण को साफ कपड़े की पोटली में बांध कर एक पोटली बना तैयार करलें। चूर्णित भाग को हाथों की हथेली पर रख बहिर्गत भाग को भीतर दबादें और इसकी बनी पोटली को भी उसी के अन्दर स्थापित कर लंगोटवत् बन्धन (T Bandage) बांध दें।

लता (*Ephedra Vulgaris*) यव (*Barley*) और तिलों के सेवन का विधान आभ्यन्तर एवं वाह्य प्रयोगार्थ कथित है जिनके यथोचित संयोग से निर्मित औषधि गर्भाशय सम्बन्धी समस्त व्याधियों की रामबाण औषधि है।

८उक्त दोनों योगों के विषय में प्रयोग लाभ विवरण के विषय में अनुसन्धान की आवश्यकता है।

०पर्याय नाम—संस्कृत-कुवेराक्षी, ककचिका, लटकरंज, तिणगच्छिका, कटकरंज इत्यादि। हिन्दी-कटकरंज, करंजुवा, कंज, करणगछ। मराठी-सागर गोटा। गुजराती-कांकच, कांकचिया। अरबी-कितमकित, हजरेलुक्व। फारसी-फिन्दुक, इवलीस। बंगाली-कांटाकरंज। लेटिन-*Caesalpinia Bonducella, C. crista* अंग्रेजी-*The fever nut*।

वर्णन—बहुत कांटों वाली लता है। फूल बहुत आते हैं जिन पर पापड़ों की तरह कलियां लगती हैं। ये कलियां दो तीन इन्च तक लम्बी, डेढ़ इन्च करीब चौड़ी, चपटी और बारीक तीक्ष्ण कांटों से भरी रहती हैं। इन फलियों के अन्दर बीज रहते हैं। ये बीज खाकी रंग के छोटी कौड़ियों की तरह होते हैं जिनके ऊपर की छाल बहुत कठिन होती है, मगज सफेद होता है। तमाम भारतवर्ष में पाई जाती है।

गुण धर्म—ज्वर नाशन गुण का ही वर्णन सभी ग्रन्थों में उपलब्ध हुआ है। पर 'गांवों में औषधरत्न' नाम की पुस्तक में गर्भाशय आकुंचक, वेदना शामक और कृमिघ्न गुणों का इसमें विशेषकर समावेश है अतएव मेरी दृष्टि में तो इन्हीं गुणों के आधार पर यह महौषधि रामबाण की तरह सर्वोपरि कार्य करती है।

इसके अतिरिक्त करंज श्वेत प्रदर (*Leucorrhoea*) की यह रामबाण औषधि है।

रुग्णा अधिक समय तक लेटे रहने की कोशिश करे। पर प्रारम्भिक स्थिति में तो—

(२) योनि दार्ढ्यकर योगों में 'मोचरस के चूर्ण' का बुरकना ही अच्छा कार्य करता है जिसके विषय में वैद्यरत्न में लिखा हैं—

'मोचरस सूक्ष्म चूर्णं क्षिप्तं योनौ स्थितं प्रहरम्।
शतवार प्रसूताया अपि योनि सूक्ष्मरन्ध्रा स्यात्॥

मोचरस का चूर्ण यदि ३ घण्टे तक योनि में स्थापित किया जाय तो अतिशय लाभकारी है।

(३) जनानी पुड़िया—योनिदार्ढ्यकर योगों में बने रस में जनानी पुड़िया के नाम से निम्न योग बाजारों में प्रचलित है—

फिटकिरी, त्रिफला, माजूफल, गोखरू, लोध्र, मोचरस, वंशलोचन, कसीस, धाय के फूल, चिनिया गोंद, (पलाश गोंद) संगजराहत सबका—समभाग में चूर्णित पोटली का यथा विधि सन्निवेश लाभकारी नुसखा है।

(४) रात्रि को सोते समय कोष्ठबद्धता निवारणार्थ—(१) ईसबगोल की भुसी का दूध के साथ सेवन (२) त्रिफला, जीरा, धनियां, सौंफ, सोंठ, कालीमिर्च, पीपर, चारों चन्दन प्रत्येक समभाग और सबके तौल के बराबर सनाय के चूर्ण को ले मधु मिला अवलेहवत् रचना तैयार करलें। यह कोष्ठबद्धता निवारणार्थ एक अत्यन्त गुणकारी योग है। (३) गुलकन्द का दूध के साथ सेवन।

—आयुर्वेदाचार्य डा० सत्यनारायण A. M. S.
प्राध्यापक—आयुर्वेदिक कालेज,
गुरुकुल विश्वविद्यालय,
वृन्दावन (मथुरा)

गर्भाशय स्थान भ्रंश होने पर प्रयोग

गर्भाशयभ्रंश—

जल केशर का चूर्ण १॥ माशा, अशोक छाल १॥ माशा। यह एक मात्रा है इसे मक्खन मिश्री के साथ दोनों समय सेवन करने से उपरोक्त दोष दूर होगा।

जल केशर की जानकारी—यह अक्सर पथरीली नदियों में प्राप्त होती है। ऊंचाई ८ इञ्च तक, शाखा धागे के मानिन्द रंगीन हंसपदी जैसी, पत्ते दूध के मानिन्द, इसमें शाखा के सिरे पर आधा इञ्ची मंजरी होती है, जड़ से कई शाखायें निकलती हैं। प्राप्त समय—जनवरी, फरवरी, मार्च।

—श्री डा० रामप्रसाद मित्तल वैद्य विशारद
स्वास्थ्य सदन, ढोढर (रतलाम)

योनिभ्रंश—

फिटकरी, रसौत, कसीस अशुद्ध, किंकिरात (राम बबूल) इन सबको समान मात्रा में लेकर गुहिया बबूल की छाल के क्वाथ या पत्र स्वरस से उक्त दवाओं को सिल पर चटनी के समान पीसें और पीसकर भ्रंशित (prolapsed) योनि अथवा गुदा पर लेप कर कर दें। तत्पश्चात् १ पाव गौदुग्ध तथा १ पाव महुआ की शराब को एक कम चौड़े मुँह के पात्र में भरकर नाडी यन्त्र से स्वेदन करें। इसका ३-४ दिन प्रयोग करने से गुदा या योनि अपने स्थान पर चली जाती है।

नोट—राम बबूल—यह क्षुप जाति की वनस्पति है। इसको हिन्दी में किंकिरात भी कहते हैं। कोई कोई जंगली कटसरैया भी कहते हैं। इसके पत्ते तथा फूल बबूल के समान होते हैं। फली २½-३ इञ्च लम्बी होती है।

गुहिया बबूल—यह भी बबूल की जाति का होता होता है। फल पुष्प आदि सभी बबूल के समान होते हैं परन्तु इसमें कांटे कम होते हैं और इसके वृक्ष से दुर्गन्ध निकलती है।

—कविराज श्री रामसुरेश मिश्र आयुर्वेदाचार्य,
शेरमारी (पीरपैंती)

सौत्रिकार्बुद

श्री दुर्गविजयसिंह D. I. M. S.

परिचय—

गात्र प्रदेशे क्वचिदेव दोषाः संमूर्च्छितो मांसमसृक् प्रदूष्य ।
वृत्तं स्थिरं मंदरुजं महान्तमनल्पमूलं चिरवृद्ध पाकम् ॥
कुर्वन्तिमांसोच्छ्रयमत्वगाधं तद्र्बुदं शास्त्रविदो वदन्ति ।
(सु. नि. अ. ११)

............स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः ।
(सु. उ. अ. ४२)

स्त्रियों में आघात, बार-बार गर्भस्राव, अहित आहार विहार से वायु कुपित होकर दोषों के संघात को गर्भाशय में धारण कराता है । परन्तु इस अर्बुद की वृद्धि प्रायः गर्भाशय की मांसभित्ति में होती है और अत्यन्त कठिन होती है । कभी कभी गर्भाशय से सम्बन्धित बन्धनों में भी इस अर्बुद की वृद्धि देखी जाती है । कठिनता के कारण आज से कुछ शताब्दी पूर्व इसे "गर्भाशय का पत्थर" की संज्ञा दी जाती थी ।

चित्र ११०
गर्भाशय के विभिन्न स्थानों पर होने वाले सौत्रिकार्बुद

आयु—स्त्रियों में प्रायः ३०-४५ वर्ष के लगभग होता है । जिनके बच्चे नहीं होते उन्हें ज्यादा होते हुए पाया जाता है । परन्तु आज कल यह विश्वास किया जाता है कि "आन्तरिक स्रावों (hormones)" की अधिकता से भी यह होता है ।

स्थान—मुख्यतः यह अर्बुद गर्भाशय गात्र अथवा गर्भाशय ग्रीवा में होता है । कभी-कभी एक और कभी अनेक होते हैं । एक को "साधारण अर्बुद" द्वि व अनेक को "द्विरर्बुद" तथा अर्बुद के ऊपर अर्बुद हो तो "अध्यर्बुद" कहते हैं । (मा० नि०)

भेद—साधारणतः यह गर्भाशय में मांसगत होता है । कभी एक अक्सर अनेक होते हुए पाये जाते हैं । इनसे गर्भाशय की आकृति में अन्तर पड़ जाता है जो गर्भाशय के गह्वर को बढ़ाकर लम्बवत् कर देते हैं । यह आवरण रहित होते हैं ।

(चित्र ११०) इसी प्रकार यदि गर्भाशय से अन्त्रावरण की ओर वृद्धि होती है तो उसे "अधः अन्त्रावरणीय सौत्रिकार्बुद (subperitoneal myoma)" कहा जाता है, (चित्र १११) इसके चारों ओर तनुमांस पर्त होता है और जो अन्त्रावरण से ढका रहता है। इसी प्रकार साधारण अर्बुद मांसपर्त में वृद्धि करता हुआ जब गर्भाशय के अन्दर ही गर्भाशय की कला के नीचे नीचे वृद्धि करता है तब इसे "अधःगर्भाशयान्तरिक कला का सौत्रिक अर्बुद (submucous myoma)" कहते हैं यह गर्भाशय कला के द्वारा आवर्णित होता है, (चित्र ११२) गर्भाशय के अन्दर वृद्धि करते-करते जब उस पर गर्भाशय के संकोच विस्तार का प्रभाव पड़ता है तो अर्बुद बाहर निकल आता है चित्र ११५ इस अर्बुद का आधार प्रथम तो चौड़ा परन्तु बाद में छोटा होता है और जैसे ही गर्भाशय ग्रीवा व योनि में आ जाता है वह लम्बा पतला हो जाता है और एक अंकुर के रूप में योनि में दिखाई पड़ता है और "योनिकन्द" कहा जाता है। (चित्र ११४) परन्तु जब गर्भाशय अंकुर को बाहर निकलने में असमर्थ होता है उस समय अंकुर की वृद्धि गर्भाशय के अन्दर ही होती है, तब अर्बुद को स्थित करने के लिए गर्भाशय की भित्ति अधिक मोटी तथा गह्वर चौड़ा हो जाता है।
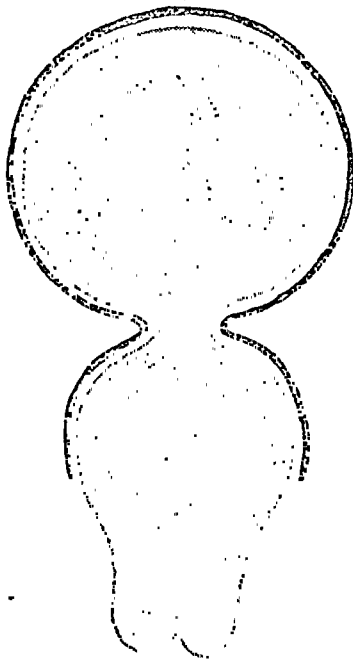
चित्र १११
अधः अन्तावर्णीय अर्बुद
Subperitoneal tumour

गर्भाशय ग्रीवा का अर्बुद (cervical myoma) प्रायः उदरावरण और ग्रीवा के संयोजन के नीचे ही ग्रीवा में होता है और इस प्रकार वृद्धि से वस्ति, मलाशय तथा अन्य श्रोणिगुहा के अङ्गों में स्थान भ्रंश उत्पन्न करता है, फलतः उन-उन अङ्गों की क्रियाओं में भी परिवर्तन हो जाता है। यह अर्बुद कठिन तो होता ही है तथा गर्भाशय गात्र द्वारा आवर्णित रहता है इस कारण से कभी-कभी मासिक विकृतियां उत्पन्न होती हैं। ग्रीवा का साधारण अर्बुद प्रथम गोलाकार होता है परन्तु शीघ्र ही वृद्धि करने से तथा अस्थियों के गह्वर के आकार में होने से यह लम्बाई में गोलाकार हो जाता है तथा गर्भाशय गात्र ऊपर की ओर दबता है। इस प्रकार गर्भाशय क्षेत्र नाभि के पास पहुँच जाता है तथा गर्भाशय के ऊपर उठ जाने से वस्ति तथा गवीनियों में खिंचाव होता है और अर्बुद का दबाव भी पड़ता है फलतः मूत्रावरोध उत्पन्न हो जाता है।

चिकित्सा के महत्त्व से गर्भाशयग्रीवा और अर्बुद का सम्बन्ध अधिक महत्त्व का है। यदि यह ग्रीवा की पूर्व सतह में वृद्धि करता है तो इसका मार्ग उदर भित्ति तथा अन्त्रावरण के मध्य में होता है और जो ग्रीवा की पश्चात् सतह में वृद्धि करता है तो ग्रीवा लम्बी तथा दबी हुई होती है, परन्तु गर्भाशय मुख में कोई परिवर्तन नहीं होता है। इस भांति गर्भाशयार्बुद और अन्त्रावरण का सम्बन्ध भी अति महत्त्व का है। पूर्व सतह पर वृद्धि करने वाला अर्बुद गर्भाशय बन्धन के सामने के अन्त्रावरण को ऊपर की ओर उठा देता है, बस्ति पर भी दबाव डालता है। जो पश्चात् सतह से वृद्धि करता है तो बन्धन के पश्चात् के अन्त्रावरण को उठाता है तथा मलाशयोपरि भाग को ऊपर एवं बाहर की ओर दबाता है। जब यही अर्बुद योनि की ओर वृद्धि करता है तब ग्रीवा के किसी एक ओष्ठ से इसकी वृद्धि होती है और योनि में भर जाता (योनि अर्श) तथा मूत्र मार्ग पर दबाव उत्पन्न कर मूत्रावरोध उत्पन्न करता है।

गर्भाशय के अन्दर होने वाले अर्बुद का क्रमशः योनि कन्द में बदलना
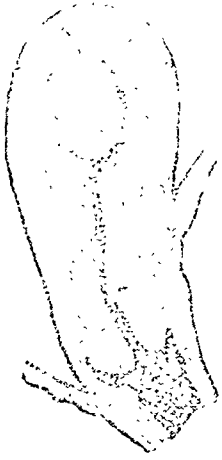
चित्र ११२

१—अर्बुद की प्रारम्भिक अवस्था
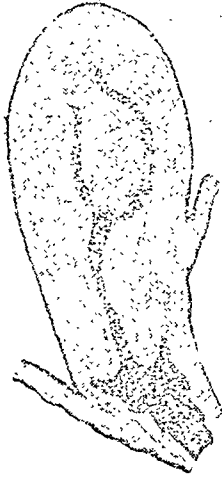
चित्र ११३

२—अर्बुद गर्भाशय स्कन्ध से लटकने लगा है
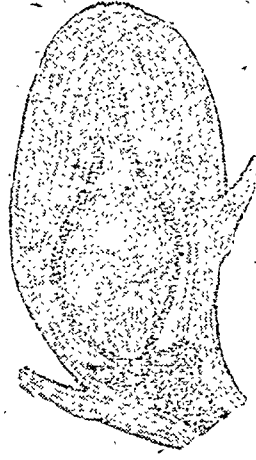
चित्र ११४

३—अर्बुद गर्भाशय ग्रीवा तक आगया है

चित्र ११५

४—अर्बुद योनि मार्ग से बाहर निकल आया है।

स्थानिक रूप—ये गर्भाशय के मांसपर्त में अनेक व एक भी संख्या में वृद्धि करते हुये पाये जाते हैं। सबसे छोटी आकृति आधे मटर के बराबर या उससे कम भी होती है। अधिक से अधिक घड़े सी हो सकते हैं। अर्बुद का पोषण गर्भाशय की धमनी के द्वारा होता है जिनका जाल अर्बुद आवरण के नीचे ही बिछा रहता है अतः अर्बुद के मध्य में रक्त की कमी रहती है, वहां धमनी कम होती हैं। इससे जितनी विकृतियां अर्बुद में होती हैं वे उसके मध्य से ही प्रारम्भ होती हैं।

अर्बुद के पाश्चातिक परिवर्तन—

छोटी-छोटी ग्रन्थियों के रूप में होना

वस्ति के रूप में—लसिका अधिक हो जाने से

वसामय होना (Fat degeneration)

खटिकाभरण होना (Calcification)

घातक अर्बुद का रूप धारण कर लेना

शीघ्र वृद्धि, स्पर्शासह्यता, योनि से रक्तस्राव अधिक होना। (यह ४० वर्ष से अधिक की स्त्रियों में अधिक पाया जाता है)

संक्रमण के द्वारा शोथ विद्रधि होना

अर्बुद संकोच होना

अर्बुदावेष्टन

कोथ उत्पन्न होना (Red degeneration)—(इसमें अर्बुद लाल हो जाता है तथा काटने पर मत्स्यगंध आती है)

अर्बुद में रक्तस्राव (Haemorrhage)—रक्ताधिक्य हो जाने से शिरायें प्रसारित होकर फट जाती हैं और अर्बुद कोष रक्त से भरे मिलते हैं।

अर्बुद के साथ डिम्ब, डिम्ब प्रणाली व गर्भाशय में होने वाले परिवर्तन—अक्सर सौत्रिकार्बुद के साथ डिम्ब तथा प्रणाली का पुरातन शोथ पाया जाता है जो विवाहिताओं में पूयमेह के कारण से तथा प्रजाताओं में सूतिका संक्रमण से होता है। ग्रन्थि में डिम्बरु के हुये पाये जाते हैं।

गर्भाशय गह्वर वृद्धि के कारण बढ़ा हुआ और घूमा हुआ होता है।

गर्भाशयान्तरिक कला—अधः कला के अर्बुद में तो कला मोटी होती है परन्तु अधः अन्त्रावरण वृद्धि में इसमें कोई परिवर्तन नहीं होता है।

लक्षण —

कुछ अर्बुदों में वृद्धि होती ही रहती है परन्तु उनके लक्षण नहीं मिलते हैं। वे अचानक ही निदान किये जाते हैं और लक्षण चार प्रकार के होते हैं।

(१) वे लक्षण जो अर्बुद के गर्भाशय में होने से उत्पन्न होते हैं यथा—मासिक विकार, वंध्यत्व, प्रदर, उदावर्ता योनि।

(२) वे लक्षण जो वस्ति, गर्भाशय, वृक्क, मलाशय, श्रोणि शिरा तथा वात नाड़ियों पर दबाब पड़ने से होते हैं।

(३) अर्बुद के बाद में होने वाले परिवर्तनों के द्वारा उत्पन्न लक्षण।

(४) सार्वदैहिक लक्षण यथा रक्तालपता, रक्तचापवृद्धि।

प्राच्य में यह सब लक्षण एक ही स्थान पर संघठित हैं यथा—

अरुचि कृच्छ्र विड्मूत्र वाततान्त्रविकूजनम।
आनाहश्चोर्ध्व वात तं सर्वं गुल्मेपुलक्षणं।
(माधव)

रक्तार्तव—यह मुख्य रूप से हर अर्बुद में नहीं होता परन्तु "अधः गर्भाशयान्तरिक कला" के अर्बुद में यह होता है और परिणामस्वरूप रक्तालपता होती है।

अन्तर मासिक स्राव (Metrorrhagia)—यह भी गर्भाशयान्तरिक कला के नीचे होने वाले अर्बुद में ही होता है और रक्त अधिक स्रवित होता है। परिणामतया रक्तालपता इसमें अधिक होती है। मुख्यतया यह घातक अर्बुद के साथ अधिक पाया जाता है।

वंध्यत्व—जिन स्त्रियों को यह रोग होता है बन्ध्यत्व तो होता ही है, अर्बुद उपस्थित होने पर गर्भ तो स्थित नहीं होता है, इसके विपरीत बार बार गर्भस्राव की प्रवृति भी पाई जाती है।

प्रदर—यह कोई लक्षण नहीं है परन्तु गर्भाशय से एक प्रकार का स्राव अधिक होने लगता है उसे ही प्रदर कहते हैं।

उदावर्ता योनि—गर्भाशय के अधिक मोटे होने से और उसमें अनियमित संकोच विस्तार होने से यह लक्षण होता है।

गर्भाशय का बड़ा अर्बुद जो उदर की ओर होता है किसी भी प्रकार का दबाव का लक्षण नहीं उत्पन्न करता है जब कि छोटा अर्बुद जिसकी स्थिति श्रोणि गुहा में हो दबाव के लक्षण उत्पन्न करते हैं तथा—

वस्ति तथा मूत्रमार्ग पर दबाव—अर्बुद जो ग्रीवा में होते हैं वे मूत्रावरोध उत्पन्न करते हैं और विशेष कर वे जो ग्रीवा की पश्चात् सतह से वृद्धि करते हैं, में दबाव के लक्षण अधिक स्पष्ट होते हैं।

मूत्रावरोध प्रायः मासिक काल के प्रारम्भ में अथवा मध्य में अधिक होता है।

गवीनियों पर दबाव—अर्बुद अपनी वृद्धि में दबाव के कारण गवीनियों को दबाकर बाहर की ओर हटाता है, फलतः वृक्क में मूत्र अधिक एकत्रित होता है और गवीनियों में प्रसार होता है।

मलाशय पर दबाव पड़ने से कठिन विबन्ध हो जाता है।

श्रोणिगत वातनाड़ियों पर दबाव पड़ने से शूल हो जाता है जो नीचे उरुओं तक जाता है।

श्रोणिगत शिराओं पर दबाव पड़ने से पाद शोथ हो जाता है। अर्बुदों में होने वाले परिवर्तनों में जिनका वर्णन पूर्व में कहा जा चुका है प्रथम चार उपद्रव तो किसी प्रकार के लक्षण उत्पन्न नहीं करते और अर्बुद निःसारण के बाद ही इनका ज्ञान होता है।

कोथ उत्पन्न होने से इसका निदान अचानक उदरशूल होने, वमन, तापवृद्धि, धमनीगति तीव्रता,

उदर का निरीक्षण करने पर अर्बुद स्थान पर स्पर्शासह्यता प्रतीत होने से होता है।

घातक अर्बुद का रूप धारण करने पर अर्बुद की तीव्र वृद्धि शूल सहित होती है। योनि से रक्त स्राव बढ़ जाता है। यह लक्षण ४० वर्ष से बाद की स्त्रियों में अधिक पाये जाते हैं तथा उदर परीक्षण करने से स्पर्शासह्यता प्रतीत होती है। अर्बुद की कठिनता समाप्त हो जाने से मृदुता प्रतीत होती है।

अर्बुद वेष्टन—एक तो यह स्थिति उत्पन्न ही नहीं होती है। यदि होती है तो बहुत मन्थर गति से। इसमें शूल, तनाव तथा स्पर्शासह्यता होती है।

अर्बुदगत संक्रमण में तीव्र ज्वर और योनि से दुर्गन्धित स्राव होता है।

गर्भाशयान्तरिक कला में नीचे होने वाले अर्बुद में रक्त स्राव अधिक होता है इस कारण रक्ताल्पता हो जाती है।

अर्बुद को निकाल देने के बाद रक्त-चाप में वृद्धि पाई जाती है।

साध्याऽसाध्यता—

> संचितः क्रमशो गुल्मो महावास्तु परिग्रहः।
> कृतमूलः सिरानद्धो यदाकूर्म इवोत्थितः॥
> दौर्बल्यारुचि हृल्लासः मासच्छर्दरति ज्वरैः।
> तृष्णा तन्द्रा प्रतिश्यायैर्युज्यते स न सिध्यति॥
> —माधव निदान

सापेक्ष निदान—

गर्भ के सब लक्षणों व परीक्षाओं को देखना चाहिए। यदि वे सही उतरें तो गर्भ अन्यथा अर्बुद की शंका करना चाहिये। गम्भीर रोगों का निदान में पहिले ध्यान न करना चाहिये। एक क्रम से प्रारम्भ कर तब निश्चित बात का निदान करना उत्तम होता है।

चिकित्सा—

प्राच्य मतानुसार अर्बुद की चिकित्सा के सिद्धान्त—

> मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः। (च. चि. अ. ५)

यही सिद्धान्त लागू होता है, परन्तु अर्वाचीन में *X'ray* तथा अन्य साधनों व परीक्षाओं के द्वारा इसका निदान शीघ्र हो जाता है और इसी कारण से शीघ्र चिकित्सा करने की पद्धति चल पड़ी है जिसके अन्तर्गत *X'ray*, *Radiam*, ('क्ष' किरण) तथा शल्य कर्म आते हैं।

X'ray के प्रयोगसे अर्बुद की वृद्धि रोकी जाती है और अत्यधिक रक्तस्राव को बाधित किया जाता है परन्तु अर्बुद विनाश इसके द्वारा नहीं होता है।

Radium–यह एक धातु है जिसका आविष्कार एक स्त्री विशेषज्ञ ने किया था, जिसका नाम मेडेम क्यूरी था। इसके प्रयोग से (१) मृत्यु संख्या में कमी होती है (२) रोगी को चिकित्सालय में दो तीन दिन तक ही रहना पड़ता है (३) जहां पर शल्य चिकित्सा का निषेध होता है वहां पर इसका प्रयोग किया जाता है। परन्तु तरुणाओं में जिनको सन्तानोत्पत्ति की इच्छा रहती है इसका प्रयोग न करना चाहिए, और जहां अर्बुद में संक्रमण जन्य शोथ या कोथ हो तो वहां भी इसके प्रयोग से लाभ नहीं होता है। अधिक बड़े अर्बुद में भी इसके प्रयोग से लाभ नहीं होता है।

आयुर्वेद मतानुसार—अर्बुद पर उपनाह, स्निग्ध मांस, वेशवार, नाड़ी स्वेद, शृंगी, ताम्र शलाकाओं द्वारा दाह, क्षार कर्म, तथा पाक हो जाने पर व्रणवत् यथाक्रम चिकित्सा करनी चाहिए।

इस विकार में मानसिक अशांति अधिक होती है अतः आयुर्वेद में इन सब विकारों के शमन के लिए घृत तैलों की, स्नानों की तथा भजन, तप पूजन की व्यवस्था है। रोगी को शांत वातावरण में रखना चाहिए। कीर्तन में लगा रहना तथा रेडियो का उपयोग सहायक होता है। असगंध, ब्राह्मी तथा पीड़ा शमन करने वाले पदार्थ मानसिक शांति अधिक प्रदान करते हैं। आजकल मस्तिष्क को शांति करने वाले तथा मांस शैथिल्य करने वाले योग जिन्हें Tranquilizer (ट्रांक्यूलाइजर) कहते हैं का

प्रयोग भी लाभप्रद होता है। नव्य मत से शूल-हरण करने के लिये ब्रोमाइड, बार्बीटोन तथा अन्य शूलहर औषधियों का प्रयोग किया जाता है। उपोदिका (पोई) का लेप, सेक तथा उसी के शाक का प्रयोग करना भी लाभप्रद होता है।

पारद लेप (रस. सि. यो. संग्रह २ खण्ड)

तैलों में—गुंजाद्य तैल (भै. र. गलगण्ड) वासा-रुद्र तैल (भै. र.) को मर्दन करना भी अत्यन्त लाभ-कर होता है।

घृतों में—पंचतिक्त घृत गुग्गुलु (भै. र.), सौरे-श्वर घृत का पान (भै. र.) करायें।

रसों में—रौद्ररस १ रत्ती की मात्रा में, नित्या-नन्द रस (भै. र.), रसमाणिक्य का लेप व पान। शिवगुटिका का रसायनवत सेवन। शिलाजीत आलेपन व पान अत्यन्त ही लाभप्रद सिद्ध हुये हैं। अत्यन्त कार्य कर और वीर्यवान औषधि "पर्पटी कल्प" है। इसका प्रयोग अवस्थानुसार शास्त्रीय विधान से करना चाहिए।

योनिकंद में—मूसक बसा का योनि में पिचु धारण (भै० र०) करना ही इस रोग का सफल साधन है। हयमारादि तैल (भै० र०) का पिचु भी योनि में लगाना लाभप्रद है।

घातक अर्बुद में—भल्लातक तैल १० बूंद Capsule में भर कर उसका सेवन करने से लाभ होता है। (सचित्र आयुर्वेद जुलाई ५६)

मासिक विकृति पर—देवदार्व्यादि क्वाथ, मंजि-ष्ठादि क्वाथ, अशोक घृत, अशोकारिष्ट आदि का प्रयोग करना चाहिये।

अधिक रक्तस्राव में—शरपुंखामूल चूर्ण १ माशा तण्डुलोदक से दें तथा अन्य शीतल स्तम्भक क्रिया करनी चाहिए।

असाध्यता—

श्वासः शूलः पिपासाऽन्न विद्वेषो ग्रंथि मूढ़ता।
जायते दुर्बलत्वं च .... ॥

पथ्यापथ्य—

पथ्य—पुरातन घृत पान, पुराने शाली चावल, जौ, मूंग, परवल, लाल संहिजना, करेला, वेत्राग्र, रुक्ष एवं कटु द्रव्य, दीपन पदार्थ, गूगल, शिलाजीत, रोगी की स्थिति अनुसार दें।

अपथ्य—ईख, ईख से बने पदार्थ, आनूप, मांस, पिट्ठी के भोज्य द्रव्य, खटाई, मधुर द्रव्य मैथुन, परिश्रम का परित्याग करें।

—श्री दुर्गविजयसींह D. I. M. S.
राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय
हरदोई गूजर (जालौन)

योनि कैन्सर

श्री ब्रह्मानन्द दीक्षित विद्यालङ्कार

कैन्सर या अर्बुद रोग का स्वरूप विषयक विवेचन पर्याप्त रूप से पत्रों में हो चुका है। इस लेख में निदान और चिकित्सा का ही उल्लेख होगा। अमेरिका के "युनाइटिड स्टेट्स पब्लिक सर्विस सर्वे" नामक प्रसिद्ध पत्र के अनुसार १६५१ सन् में २ लाख कैन्सर के रोगियों की अमेरिका में मृत्यु हुई और १० लाख को कैन्सर रोग १६५१ में विद्यमान था। १६५८ सन् में यह संख्या लगभग २० लाख हो गई और मरने वालों की संख्या लगभग ५ लाख थी। यह नर नारी सभी के कैन्सर रोगों की संख्या है और कैन्सर की रिपोर्ट के अनुसार भारत में भी लगभग रोगियों

की अथवा मरने वालों की वही संख्या है। अमेरिका में प्रारम्भिक दशा के ही रोगी कुछ स्वास्थ्य लाभ कर सके हैं और उनकी संख्या भी केवल २५% प्रतिशत ही है। किन्तु भारत में स्वास्थ्य लाभ करने वालों की संख्या सम्भवतः इससे भी बहुत कम है और परमाणु बमों के विस्फोटजन्य रेडियम धूलकणों से यह रोग सम्पूर्ण भूमण्डल में बड़े वेग से बढ़ने लगा है।

निदान—नारियों को यह रोग प्रायः स्तन या योनि में ही ७५% पाया जाता है अन्यत्र केवल २५% ही। इसका सर्व प्रधान कारण जो मेरी चिकित्सा में आए रोगियों में उपलब्ध हुआ वह गनोरिया (अन्तः फिरंग) रोग ही था। फिर भी मलिन निवास, दूषित आहार, दूषित सहवास, गनोरिया, उपदंश (सिफलिस), अम्लपित्त, योनि के पुराने उपेक्षित व्रण, दूषित मांसाहार, तम्बाखू का सेवन, पुरानी चोट और निर्बलता आदि में अन्य जनों के दूषित रुधिर का प्रवेश तथा दही का रात्रि में भी प्रायः सेवन करना। ये कारण ही प्रायः सब रोगियों में पाए गए।

पथ्य—इसमें नमक का त्याग अथवा केवल सैंधव लवण का सेवन आवश्यक है। ग्वारपाठे (कुमारी) का नित्य ताजा बनाया हुआ हलुवा विशेष उपयोगी होता है। घी, दूध, द्राक्षा, मौसम्बी, बादाम का हलुवा आदि भी उत्तम पथ्य हैं। मनुष्य के मलमूत्र से उत्पन्न शाक इसमें अति हानिकर हैं। दही घोर अपथ्य है। इसी प्रकार चाय, मिर्च, मसाले, मद्य, तमाखू, दिवाशयन आदि अपथ्य हैं।

चिकित्सा—

(१) पीने के लिए जल औटाकर किन्तु ठंडा कर के देना चाहिए। गोरख मुण्डी २ तोला को कुचल कर ४ सेर जल में पकावें। जब ३।। सेर जल शेष रहे तब छानकर रख लेवें। यही पानी पीने को देवें।

(२) क्वाथ—उन्नाव ५ नग, पुनर्नवामूल ३ माशा, गोरखमुण्डी ३ माशा, करंज मज्जा ३ माशा, निशोथ (त्रिवृत्) १ तोला, आरग्वध का गूदा २ तोला, कटुका ६ माशा, सौंफ ६ माशा। इन सब को कुचलकर आध सेर जल में पकावें। जब आध पाव बाकी रहे तब उतार कर छानकर ठंडा कर के २ तोला मधु डालकर नित्य पिलावें।

इससे ३-४ या ५ दस्त नित्य प्रति होंगे। मल का रङ्ग लाल या काला या काई के सदृश गहरा हरा होगा। जब तक मल का रङ्ग हलका पीला न हो जाय तब तक काढ़ा नित्य पिलाते रहें। काढ़े के फोक को सायंकाल फिर आध सेर जल में उसी प्रकार पकाकर मधु मिलाकर दें। इसमें प्रायः १० से १५ दिन तक लग जाते हैं। अधिक दस्त होने पर एक समय काढ़े की नागा कर देवें और ४ दस्तों से कम होने पर आरग्वध का गूदा ४ तोले तक कर देवें। इसमें विरेचन परम लाभकर सिद्ध हुआ है।

(३) अर्बुदारिष्ट—खदिर काष्ठ १ सेर, गोरखमुंडी आधा सेर, पुनर्नवा (श्वेत) मूल आधा सेर, करंज मज्जा १० तोला, त्रिफला समभाग ३ पाव, उन्नाव १० तोला, कटुका २० तोला। इन सबको

कुचल कर जल ४८ सेर में पकावें। जब १६ सेर (तृतीयांश) शेष रहे तब उतार कर छानकर ५ सेर चीनी, बबूल की छाल २० तोला, चातुर्जातक ८ तोला, त्रिकटु ६ तोला, धाय के फूल ५ तोला, मधु ३ सेर मिलाकर अरिष्ट बना लेवें। यथा विधि सन्धान होने में लगभग ३० दिन ग्रीष्मऋतु में एवं ४५ दिन शीत ऋतु में लगेंगे। फिर छानकर बोतल में भर लेवें। मात्रा १ तोला, जल १ तोला के साथ भोजन के बाद २ बार प्रतिदिन पीवें। जो अन्न न खाते हों वे भी दूध आदि के आध घण्टा बाद पीवें। खाली पेट कदापि न पीवें।

(४) अमृत भल्लातक—प्रसिद्ध शास्त्रीय योग है। ग्रीष्म, वर्षा, शरद् ऋतुओं में मात्रा ६ रत्ती १ बार रात्रि को दूध में घोलकर पीवें।

शीतकाल में २ या ३ माशा तक।

(५) भल्लातक क्वाथ—भिलावे के दो टुकड़े कर लेवें। प्रथम दिन २ भिलावे लेवें। इनके शुद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती।

प्रयोग विधि–जल आध सेर में पकावें। इसके धूप से या भाप से बचकर रहें। जब शेष २ छटांक रहे तब नितार कर कांच के बर्त्तन में ले लेवें और खूब ठंडा कर लेवें। अब रोगी को पहिले दूध से निकाला हुआ ½ छटांक मक्खन धीरे धीरे चटावें। यदि उसे चाटने में संकोच हो तो कुछ मिश्री मिलाकर चटावें। रोगी के ओष्ठ आदि भी मक्खन से खूब चुपड़ देवें। यदि दूध का मक्खन न हो तो दही से निकाला हुआ मक्खन भी काम दे सकता है। अब इस ठंडे क्वाथ को एक दम पिलावें और तत्काल ही ½ छटांक मक्खन ऊपर से और खिला देवें। अच्छा हो यदि रुग्ण आध पाव मक्खन खा सके।

यह स्मरण रहे कि यह प्रयोग पित्त प्रकृति और अम्लपित्त के कैंसर वालों को न पिलावें। साथ ही यह औषधि केवल पौष-माघ इन्हीं दो महिनों में प्रयोग करें। यह जहां अमृत है वहां अन्यथा प्रयोग से घोर विष भी है। इसका प्रयोग करते हुए बर्धमान पिप्पली के प्रयोग के समान ही क्रमिक एक एक या दो दो भल्लातक रोज क्रमशः बढ़ाते जांय। इस प्रकार रोग और दोष एवं प्रकृति बल दूष्य आदि देखकर उचित व्यवस्था करें।

मैंने तो अत्यन्त जीर्ण रोगियों को दो दो की वृद्धि से २१ भल्लातक तक पहुंच कर क्रमशः घटा दिया। इस काल में नमक का सर्वथा त्याग किया जाता है। सायं काल को पूर्वोक्त विरेचन क्वाथ अवश्य देते रहें। कई ८ भल्लातक तक ही पहुँच पाते हैं फिर दोष की शान्ति हो जाती है और २१ तक तो कोई विरला ही पहुंचता है। इस काल में अन्य सब औषधि देना बन्द कर देवें। प्रातः भल्लातक क्वाथ और सायंकाल को विरेचन क्वाथ देना उचित होता है। इस विधि से फिर कोई भी उपद्रव नहीं होता। किन्तु रोग और रोगी की प्रकृति की पूर्ण रूप से परीक्षा अवश्य ही कर लेनी चाहिए।

(६) वृहत् अर्बुद रसायन–यह प्रयोग सर्पविष का है। शुद्ध सर्प विष शुष्क ६ माशा, रसपर्पटी ५ तोला, स्वर्णभस्म १ तोला, रसमाणिक्य ३ तोला, शतधा स्वरस भावित आमलकी चूर्ण १० तोला, गुडूची सत्व ५ तोला, पहिले तुलसी पत्र स्वरस की १४ भावना सर्प विष में देवें। फिर सब द्रव्यों को मिलाकर आमलकी स्वरस की ७ भावना देवें। भृंगराज, गोरखमुंडी, सत्यानासी (स्वर्णक्षीरी) के मूल की पृथक् पृथक् ७-७ भावना देकर चना प्रमाण गोली बना लेवें। प्रातः सायं एक एक गोली शहद में चाटें। दूध को १५ मिनट बाद पिलावें। यह एक चमत्कारी योग है। ३० दिन में उपद्रव लगभग शान्त होजाते हैं। दाह शूल सर्वथा शान्त हो जाते हैं। शोथ और उपचय भी घटने लगता है। भूख बढ़ जाती है। और ३ या ४ मास में ही रोगी पूर्ण स्वस्थ हो जाता है। फिर भी २½ माह तक चिकित्सा और चालू रखने से रोग के पुनराक्रमण का भय सर्वथा मिटजाता है।

७. मूत्र या उत्तर वस्ति—त्रिफला ५ तोला, नीम के पत्ते २० तोला—इनको १½ सेर जल में पकावें। जब एक सेर शेष रहे तब उतार कर इसमें १ तोला फिटकरी और २ तोला मधु डाल कर प्रातः सायं उत्तर वस्ति देवें।

८. 'तिल तैल १ सेर, कपूर १ तोला' इनको हरी बोतलों में गले तक भर कर धूप में लकड़ी पर रोज रक्खें। ३ मास तक धूप में पकाने पर तेल तैयार होजाता है। सायंकाल को बोतलों को उठा कर किसी अलमारी में रख देना चाहिये।

इस तेल का फाया योनि में प्रातः और रात्रि को २ बार नित्य रखना चाहिए।

९. हरा प्रकाश—एक इन्च चौड़ा और डेढ़ फुट लम्बा कार्ड बोर्ड का टुकड़ा लेवें। किनारों पर चिपका कर टोपी सी बना लेवें। इस पर गहरा हरा कांच एक ओर चिपका लेवें। इस हरे कांच की टोपी को योनि पर रख कर सूर्य की ओर मुख करके सुबह शाम ५ मिनट से लेकर आध घन्टा तक रोज धूप देवें। शीत ऋतु में आधा घन्टा और ग्रीष्म में ५ मिनट। इस प्रकार कैन्सर रोग सर्वथा निमूल होजाता है।

रोग और रोगी की दशा के अनुसार इन प्रयोगों में से जो प्रयोग उपयोगी हों उनका प्रयोग करें। गर्भाशय ग्रीवा, योनितल, योनि बाह्य ओष्ठ, या आभ्यन्तर ओष्ठ, रजःकोष, मूत्राशय, मूत्रमार्ग के समीप ये योनि अर्बुद के स्थान हैं।

अपने निरीक्षण में ही रोगी को रखकर चिकित्सा करनी चाहिए अन्यथा अनिष्ट की आशंका रहती है।

—श्री ब्रह्मानन्द दीक्षित विद्यालङ्कार,
राजामण्डी, आगरा

कैन्सर रोग से बचने के उपाय

सुश्री डा० उमाराय

(१) सुबह हरिताल भस्म, दोपहर में आदित्य रस, संध्या में रसतलक। वमन में प्रवालभस्म ४ रत्ती मात्रा में दूध और मधु के साथ या नीबू के रस और मधु के साथ सेवन करनी चाहिए।

(२) "अश्वखक्षार" शीतल जल डाब के पानी के साथ पिलावें।

(३) "ताम्रभस्म" अदरक के रस और शहद के साथ चटानी चाहिए।

(४) "स्वर्णसिंदूर" गुडूची के शीतक के साथ चटायें। प्रातः प्रवालभस्म मधु, दूध, चीनी के साथ तथा सन्ध्या समय रत्नप्रभा घी और मधु के साथ सेवन करायें।

पुरुषों की चिकित्सा—

(१) "धात्र्यरिष्ट" (२) प्रायायकांजिक (३) रसाला (४) सुधानिधि रस—यह सभी विशेष फलदायक हैं।

अर्बुदों की उत्पति की चिकित्सा—अर्बुदों की प्रथम उत्पत्ति में पंचकर्म द्वारा देह शुद्ध करके निम्नलिखित औषधियों का प्रयोग करना चाहिए—

(१) रौद्ररस—सफेद पुनर्नवा के रस और शहद के साथ। (२) सोमनाथ ताम्र—अदरक के रस और शहद के साथ। (३) त्रिगुनाख्य रस-अदरक के रस और शहद के साथ। (४) त्रिनेत्राख्य रस-अदरक के रस और शहद के साथ।

कैन्सर आक्रान्त स्थान धोना या डूस लेना—

(१) त्रिफला, दारु हरिद्रा और हल्दी का क्वाथ कर धोवें या उसका डूस लेना चाहिए।

(२) फिटकरी के चूर्ण को त्रिफला के जल में मिलाकर उसके द्वारा धोवें या डूस लगाना चाहिए।

(३) आम, जामुन, बड़फल, अश्वत्थ और कटहल की छाल को उबालकर उसके द्वारा धोवें या डूस लें।

(४) वायुकाल में मध्यम नारायण तैल से जरायु या उसकी ग्रीवा मुख पर प्रलेपन करना चाहिए भोजन के बाद दोनों समय अशोकारिष्ट या पत्रांगासव शीतल जल के साथ दें। तीसरे पहर में फलकल्याण घृत गुनगुने दूध के साथ सेवन करावें।

वेदना नाशक गोली—इसे अत्यधिक वेदना होने पर सेवन कराने पर वेदना कम होजाती है किन्तु यदि रोगिणी या रोगी का हृदयपिण्ड खराब होने से इसका प्रयोग करना उचित नहीं समझें तो ज्ञानाधिक चिकित्सक की राय से सेवन करावें। इसे गरम जल के साथ सेवन करावें।

वेदना नाशक गोला प्रस्तुत करने की विधि—

पारद, गन्धक, हींग, मीठा विष, गोलमिर्च, कुचला, लहसन, आलकुशीबीज, सुखवर, सोंठ निलिन्दापत्र, एरण्डमूल, ताम्रहरिताल, मनःशिला और सैंधानमक को १-१ भाग लेकर सब के समान अफीम मिला हुआ गांजा के भिगाये हुए जल में पीसकर २ रत्ती की मात्रा की गोलियां बनाकर छाया में सुखालें। रोगिणी को दस्त, पेशाब साफ रहे एवं अग्निमांद्य न हो इस पर प्रत्येक समय विशेष ध्यान रखना होगा।

—सुश्री डा० उमाराय
C/o डा० प्रभाकर चटर्जी M. A.
D. Sc. आयुर्वेदबृहस्पति
१७२ बहुबाजार, कलकत्ता १२

रक्त गुल्म

श्री पं० मणिराम जी शर्मा भिषगाचार्य
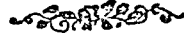
रक्त गुल्म निरुक्ति—

रक्तस्य संचयस्तेन रक्त गुल्म इति स्मृतः ।
गुल्मश्चय इति प्रोक्तो रक्तं रुधिरमुच्यते ॥

रक्त गुल्म निदान तथा सम्प्राप्ति—

यदा ऋतुमती नारी प्राप्तान् वेगान् विधारयेत् ।
ह्रिया मासाद् व्यवायाद्वा वर्तमानानधोगतान् ॥
एवमादिभिरप्यन्यैरुदावृत्तैः प्रकोपितः ।
वायुः शोणितमादाय प्रतिस्त्रोतः प्रपद्यते ॥
गर्भाशयमुदावृत्तस्तस्या वहति शोणितम् ।
मारुतस्च्युत गर्भाया यदमिथ्योपचर्यते ॥
तस्याः सवायुरुद्वृत्तः प्रतिघातात् स शोणितः ।
गत्वा गर्भाशयं रुद्धः स्थिरत्वमुपपद्यते ॥
संवृत्तं शोणितं तत्र मारुतो विषमंगतः ।
रजोवहाः समावृत्तः सं स्तंभयति गर्भवत् ॥

जब ऋतुमती स्त्री लज्जा भय वा मैथुन आदि कारणों से अधोभाग में प्रवर्तित हुए वेगों को धारण करती है अथवा अन्य कारणों से प्रकुपित वायु रक्त सहित गर्भाशय में पहुंच कर रुक कर स्थित हो जाती है तो गर्भाशय में अवरुद्ध रक्त तथा प्रकुपित वायु रजोवहा सिराओं को आवृत्त कर गर्भ की तरह स्थित हो जाता है। तन्त्रान्तर में भी ऐसा कहा गया है जैसे—

रजोवहाः सिरा यस्मिन रजः प्रविसृजन्त्यतः ।
पुष्प भूतंहि तद्वान्मासि मासि प्रवर्त्तते ॥
विपर्ययास्तदेवेह तत्रै भवतुनिचीयते ।

आर्त्तवहा सिरायें प्रत्येक महिने में दूषित आर्तव को प्रवृत्त करती हैं। वह आर्त्तव रोग या अन्य हेतुवश प्रवृत्त न हो सके तो वह रज गर्भाशय में स्थित होता रहता है। चरक में कहा है—

ऋतावनाहारतया भयेन विरुक्षणैर्वेग विनिग्रहैश्च ।
संस्तंभनोल्लेखन योनि दोषैर्गुल्मः स्त्रियं रक्तभवोऽभ्युपैति ॥

ऋतुकाल में आहारभाव से, रूक्ष आहार विहार करने से, गर्भस्थिति के भयमात्र से, वेगों को अवरुद्ध करने से, रक्तस्तंभक आहार विहार व औषधि के प्रयोग से, वमनादि के अतियोग-हीन योग-मिथ्या योग से एवं योनि प्रदोष से रक्त गुल्म हो जाता है।

रक्त गुल्म के पूर्वरूप—

अनन्नाभिलाषणम्,अरोचकाविपाकौ, अग्निवैषम्यम्, विदाहोभुक्तस्य, पाक काले वायुश्चत्याद्यदर्युद्गारौ वातमूत्र पुरीष वेगाणाम् प्रादुर्भावः, प्रादुर्भूतानां चाप्रवृत्तिः,ईषदागमनंवा, वातशूलाटोपान्त्र······कूजना परिहर्षणाति वृत्त पुरीषता, बुभुक्षा, दौर्बल्यम्,सौहित्यस्य चा सहत्वमिति रक्तगुल्मपूर्वरूपाणि भवन्ति । ——चरक

अन्न में अनिच्छा, अरुचि, अग्निमान्द्य, अग्निवैषम्य,खादित अन्न का विदाह, भोजन पाक के समय वमन व उद्गारों का उत्पन्न होना, वात मूत्र पुरीषादि वेगों की अनुत्पत्ति, उत्पन्न हुए वेगों का प्रवृत्त न होना वा स्वल्प मात्रा में प्रवृत्त होना, वातशूल, आध्मान, अङ्गों में कूजन, विमन रहना, हर्षाभाव, दौर्बल्यता, तृप्ति पूर्वक भोजन को न सह सकना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

रक्त गुल्म-निदान सम्प्राप्ति लक्षण—

पारतन्त्र्यादवैशारद्यात्-सततमुपचारानुरोधात्, वेगानुदीर्णानुपरुन्ध्यन्त्या आमगर्भेवाऽप्यचिरपतितेऽथवाऽप्यचिर प्रजाताया ऋतौवा-वातप्रकोपणान्यासेवमानाया क्षिप्रं वात प्रकोपमापद्यते. स प्रकुपितो योनि मुखमनुप्रविश्यार्त्तवमुपरुणद्धि, मासि मासि तदार्त्तवमुपरुध्यमानं कुक्षिमभि वर्धयति तस्या शूल कासातिसार अरोचकाविपाक अङ्गमर्द निद्रालस्य स्तैमित्य कफ प्रसेकाः समुपजायन्ते स्तनयोश्च स्तन्यम्, ओष्ठयोः स्तन मन्डलयोश्च कार्ष्ण्यं ग्लानिश्चक्षुषोः मूर्च्छाहृल्लासो-दोहदः श्वयथुः पादयोः-धोन्याश्चाटालत्वम्-केवलश्चास्या गर्भः पिण्डत एव स्पन्दते तामगर्भां गर्भिणी मित्याहुर्मूढाः ।

परतन्त्रता से, अज्ञानता से, कार्य में निरन्तर संलग्न रहने से, कच्चे गर्भ के गिर जाने से वा प्रसवोपरांत-ऋतुकाल में वात प्रकोपक आहार विहार से स्त्री का वायु कुपित हो जाता है। यह प्रकुपित

वायु गर्भाशय द्वार में प्रवेश कर आर्तव को रोक देता है। इस प्रकार प्रति मास आर्त्तव की निरुद्धि होने से वह प्रदुष्टार्तव कुक्षि व गर्भाशय की वृद्धि करता है तब ऐसी स्त्री को शूल कासादि लक्षण उत्पन्न होते हैं। विशेषतया मुख से कफ व लाला का निःसरण,स्तनों में दुग्ध का प्रादुर्भाव,ओष्ठ और स्तन के चारों तरफ के मंडल में कालापन, मूर्च्छा, हृल्लास, दौहृद-(विशेष इच्छायें जो गर्भ के समय हुआ करती है)

गर्भोऽयमितिमन्वाना मनसा तद्विभाविनी।
नारी विचेष्टते तास्ता गर्भ चेष्टाः पृथग्विधाः॥

उसी रक्त गुल्म में गर्भ की कल्पना कर तथा उसी का मन से चिन्तन करती हुए वह स्त्री नाना प्रकार की चेष्टाओं को करती है।

रक्तगुल्म की वृद्धि का कारण–

विवृद्धेरिह साधर्म्याद् गर्भोऽयमितिनिश्चिता।
संरक्षतेऽभिघातेभ्यः कुक्कुटाण्डमिवाङ्गना॥
तद पायकरान हेतून्न कथं चन सेवते।
श्रमोपवास तीक्ष्णोष्ण क्षारादीनि च सर्वशः॥
स एवं याप्यमानस्तु यथा कालं प्रवर्द्धते॥

जब रक्त गुल्म रोग वाली स्त्री अपने को गर्भ समझ लेती है तब वह उसकी अभिघातादि से रक्षा करती है। श्रम-उपवास, तीक्ष्ण एवं उष्ण द्रव्यों का आहारादि त्याग देती है। इस से रक्त गुल्म की वृद्धि होती है।

रक्तगुल्म तथा गर्भ का भेद–*

गर्भ	रक्त गुल्म
१—अंग प्रत्यङ्गों से युक्त गर्भ उन्हीं के द्वारा चेष्टा करता है।	१—रक्त गुल्म गोल व मांसलोथवत् चेष्टा करता है।
२—गर्भ एक स्थान से दूसरे स्थान को गति करता हुआ व्याविद्ध दिखाई देता है।	२—गुल्म नाभि के नीचे अव्याविद्ध होकर रहता है।
३—गर्भ प्रतिदिन क्रमशः वृद्धि प्राप्त करता है।	३—गुल्म की वृद्धि शनैः शनैः होती है।
४—गर्भि.को बिना किसी हेतु ज्वर तथा दाह नहीं होता।	४—बिना किसी कारण के ज्वर तथा दाह होता है।

चरक में भी कहा गया है—

यः स्पन्दते पिण्डित एव नाङ्गै
श्चिरात् सशूलः सम गर्भलिङ्गः।
स रौधिरः स्त्री भव एव गुल्मो
मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः॥

जो अंग प्रत्यंगों से रहित पिण्ड मात्र ही देर से स्पन्दन करता है। जिसमें शूल व गर्भ लक्षणों के समान लक्षण होते हैं। यह रक्त गुल्म स्त्रियों को ही होता है। दशवें महीने बाद ही इस की चिकित्सा करनी चाहिए।

रक्त गुल्म चिकित्सा—

केचिदिच्छन्ति गुल्मस्य मासादादशमात् परम्।
परिपाकं फलस्येव स्वकाल परिणामतः॥
तस्मिंश्च काले स व्याधिस्यान्नाति दुरुपक्रमः।

---

*विशेषं रक्तगुल्मस्य गर्भस्य च निबोध मे। अङ्ग प्रत्यङ्ग वान् गर्भस्तैरेवच विचेष्टते॥
रक्त गुल्मस्तु वृत्तः स्याल्लोष्ठवच्चविचेष्टते। स्थानात् स्थानं व्रजन् गर्भोव्याविद्ध परिवर्त्तते॥
नाभेरधस्तात् गुल्मोऽयमव्याविद्ध विवर्तते। आनुपूर्व्येण गर्भश्च अहन्यहनि वर्द्धते॥
विपरीतंहि गुल्मस्तु मन्दं मन्दं विवर्द्धते। तां तामवस्थां गर्भस्तु मासि मासि प्रपद्यते॥
गर्भिणीनानिमित्तं च ज्वर्यते दह्यतेऽपिवा। गुल्मिनी ह्यनिमित्तंच ज्वर्यते दह्यतेऽपिवा॥

तत्रोपक्रममिच्छन्ति तस्य कर्त्तु मतीबुधाः ।।

कई आचार्य फल के समान गुल्म का अपने काल के परिणामानुसार दशवें महीने के अन्त में परिपाक मानते हैं। अर्थात् दशवें महीने तक रक्त गुल्म का पूर्णतया पाक हो जाता है।

रक्त गुल्मे प्रथमतो युक्त्या स्नेहोपपादनम्।
शस्तं वायु सिरायाश्च वेधनं पाक वारणम्।
तथा संशमनीयं च दोष शेषावकर्षणम् ।।

रक्त गुल्म की चिकित्सा के प्रारम्भ में स्त्री को सयुक्ति स्नेहन करवावें तथा रक्त गुल्म पाक निवारणार्थ हस्तगत शिरा का भेदन प्रशस्त है तथा अवशिष्ट दोषों के निष्कासनार्थ संशमन औषधि का प्रयोग करना चाहिये।

कल्याणकं पंचगव्यं षट्पलं तिक्तमेव वा।
स रुजांपाययेन्नारीं दोषवित् कर्म कोविदः।।
तीक्ष्णैरास्थापयेदेनां युक्ति तश्चानु वासयेत्।
पथ्यानि भोजयेच्चैव क्षीर यूष रसादिभिः।।

दोषों का ज्ञाता एवं चिकित्सा में निपुण वैद्य एक गुल्म ग्रसित स्त्री को कल्याणक, पंचगव्य, षट्पल वा तिक्तघृत का प्रयोग करावे। तीक्ष्ण औषधियों से आस्थापन वस्ति देकर, फिर युक्तिपूर्वक अनुवासन कराये तथा पथ्य में दूध यूष एवं मांस रस देवें।

वायोरुपशमार्थं च फल तैलानुवासितम्।
आस्थापयेत् सकृद् द्विर्वा शूलाटोप निवृत्तये ।।

गुल्म रोगिणी को वायु प्रशमनार्थ फल तैल से अनुवासन करवाकर शूल एवं आध्मान को दूर करने के लिए आस्थापन वस्ति का प्रयोग करे।

आस्थापन योग—

तुल्यं मधु च तैलं च ताभ्यामुष्णोदकं समम्।
द्वौ कर्षौ शतपुष्पायाः कर्षार्धं सैन्धवस्य च ।।
एतेनास्थापयेन्नारीं दशमूलादिकेनवा।
बलं चाप्याययेत्तस्या रसैःक्षीरैश्च संस्कृतैः।।

मधु ६ पल, तैल ६ पल, गरम पानी १२ पल, २ तोला सौंफ एवं आधा तोला सैंधव नमक। इस योग से अथवा दशमूल क्वाथ से उसे आस्थापन वस्ति दें। फिर संस्कार युक्त मांस रस एवं दुग्ध प्रयोग से उसके मांस की वृद्धि करें।

उपक्रमैस्ततश्चूर्णैः रेतैः शोधन पातनैः ।
हरीतकी वचाहिंगु . सैंधवं साम्लवेतसम् ।।
यवानीयव शूकं च चूर्णमुष्णांबुना पिवेत्।

इसके बाद शोधन एवं गुल्म को नीचे गिराने वाली निम्नौषधियों से उसकी चिकित्सा करें— हरड़, वच, हींग, अम्लवेतस, अजवायन तथा यवक्षार के चूर्ण को उष्ण जल के साथ सेवन करें।

रक्तगुल्म भेदनार्थ—

हरीतकी यवक्षार सौवर्चलमिति त्र्यम्।
घृतयुक्तं पिवेद्युक्त्या रक्त गुल्मस्य भेदनम् ।।

हरड़, जौखार, सौंचल नमक। इन तीनों को घृत में मिलाकर सेवन करवाने से रक्त गुल्म का भेदन हो जाता है।

रक्त गुल्म चिकित्सा (चरक)—

रौधिरस्य तु गुल्मस्य गर्भकाल व्यतिक्रमे।
स्निग्धास्विन्न शरीरायै दद्यात्स्नेहविरेचनम् ।।

गर्भकाल के व्यतीत होने पर स्त्री को स्नेहन स्वेदन करवाकर स्नेह विरेचन दें।

पलाशक्षार पात्रेद्वे द्वे पात्रे तैल सर्पिषोः।
गुल्म शैथिल्य जननीं पक्त्वामात्रां प्रयोजयेत्।

पलाश पानीय क्षारोदक ८ सेर, तिल तैल ४ सेर। इन सबको मिलाकर स्नेह सिद्ध करें। रक्त गुल्म का नाश करने वाली इस स्नेह की मात्रा रोगिणी के ऊपर प्रयोग करें।

प्रभिद्येत न यद्येवं दद्याद्योनि विशोधनम्।

यदि इसके प्रयोग से गुल्म का भेदन नहीं हुआ हो तो योनि मार्ग का विशोधन करें।

:: शेषांश पृष्ठ ३९७ पर ::

रक्त गुल्म

श्री वैद्य ब्रह्मदत्त शर्मा शास्त्री

निदान—यह रोग स्त्रियों को होता है। जो स्त्रियां मासिक धर्म व प्रसूति के समय रूक्ष वात-वर्धक अहित आहार का सेवन करती हैं, तथा जिनके अपक्व गर्भ गिर जाते हैं, या जो योनि रोग से पीड़ित हैं उनको यह विकार होता है। गद निग्रह में—

"ऋतावनाहारतयाभयेन विरूक्षणैर्वेग विधारणैश्च।
संस्तम्भनोल्लेखन योनिदोषैः गुल्मः स्त्रियं रक्तभवोऽभ्युपैति॥"

सम्प्राप्ति—उपरनिर्दिष्ट कारणों से प्रकुपित वायु योनि में आर्तव को अवरुद्ध करता है और प्रति मास आर्तव की प्रवृत्ति बन्द हो जाती है जिससे गर्भाशय में गर्भ के समान रक्त गुल्म बढ़ने लगता है।

लक्षण—ज्वर, पिपासा, विदाह, स्वेद, शूल, हृल्लास, अरुचि, अनुत्साह, विवर्णता आदि गर्भ के समान लक्षण प्रतीत होते हैं। आरम्भ में गर्भ और गुल्म का भेद करने में कठिनाई होती है क्योंकि इसमें भी गर्भ के समान हृल्लास, ग्लानि, पादशोथ, नाभि प्रदेश में लोम राजी दर्शन, स्तनाग्र तथा स्तन मंडल में कृष्णवर्णता और काठिन्य, आर्तवादर्शन और दौहृदादि लक्षण

चित्र ११६

भी दिखाई देते हैं। परिणामतः प्रारम्भ में गर्भ का ही भ्रम होता है। किन्तु रुग्णा को उद्गार बाहुल्य, कठिन मल प्रवृत्ति, कुछ न खाने पर भी खाने का सन्तोष, उदर में गुड़गुड़ाहट, अफरा, अग्निमान्द्य, विवर्णता, रक्ताल्पता आदि पूर्व लक्षणों से गुल्म के निदान में सहायता मिलती है। इनके विभेदक लक्षण निम्न प्रकार हैं—

गर्भ	गुल्म
१—हाथ-पांव-सिर-जैसे अंगों से स्फुरण होता है।	१—गुल्म के अवयव पृथक् न होने से उसका स्फुरण पिंडित जैसा होता है।
२—स्फुरण शूल युक्त नहीं होता।	२—स्फुरण के साथ शूल भी होता है।
३—स्फुरण-काल-गति-दिशा-कुछ नियम बद्ध सी होती है।	३—काल-गति-दिशा में स्फुरण की अनियमितता दिखाई देती है।
४—मासानुमास उदर वृद्धि क्रमशः होती है।	४—केवल गुल्म की ही वृद्धि पाई जाती है, और वह भी अनियमित। कुक्षि वृद्धि नहीं दिखाई देती है।
५—गर्भ वृद्धि क्रमशः होती है।	५—गुल्म अनियमित रूप से बढ़ता है।
६—चतुर्थ मास से गर्भ ध्वनि सुनाई देती है।	६—गर्भ जैसी हृदय ध्वनि नहीं सुनाई देती।

विवेचन—इन व्यवच्छेदक लक्षणों द्वारा गर्भ और गुल्म का निदान करना सुगम हो जाता है। उपशयानुपशय द्वारा भी इसका निर्णय किया जा सकता है । गुल्म एक विकृति है, अतः तीक्ष्णोष्णादि आहार-आचार द्वारा अपेक्षाकृत कुछ शीघ्र ही वह प्रभिन्न होकर नष्ट हो सकता है और उस समय रक्तस्राव ही एक मात्र लक्षण दिखाई देता है।

"अवस्थितं लोहितमंगनाया वातेन गर्भं ब्रुवतेऽनभिज्ञाः ।
गर्भाकृतित्वात्कटुकोष्णतीक्ष्णैः स्रुते पुनः केवल एव रक्ते ।।"
गर्भं जडा भूतहृतं वदन्ति······।" अ. हृ. शा. २

इससे यह प्रतीत होता है कि गुल्म का रक्त स्राव के साथ निकल जाना अथवा बने रहना उसकी कठिनता पर भी निर्भर है। गुल्म तैलाभ्यंग, मृदु स्वेद से भी कम हो सकता है । परन्तु केवल उपशय द्वारा गर्भ से गुल्म का व्यवच्छेद यथार्थ रूप से नहीं हो सकता है। इसके अतिरिक्त व्यायाम लंघनादि वातप्रकोपक आहार-विहार का कारण तथा "वयोऽहोरात्रि भुक्तानां सोऽन्तगः। अर्थात् आयु अहोरात्र और भोजन के अन्त में वायु की स्वाभाविक वृद्धि होती है और गुल्म की वेदना भी इसी समय उग्र होती है।

गुल्म का निदान निश्चित होने पर भी चिकित्सा के लिये-"मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः।" अर्थात् गुल्म की चिकित्सा दशम मास के बाद करनी चाहिये ऐसा आदेश है। क्योंकि यह गुल्म गर्भ के समान बढ़ता है और उससे शरीरातिगामी पीड़ायें नहीं होती। अतः दस मास तक गुल्म होने पर भी गर्भ की आशंका में दस मास प्रतीक्षा करनी चाहिये। यदि दसवें मास के अनन्तर भी प्रसूति नहीं हुई तो गुल्म समझकर उसका उपचार करना चाहिये। इसी उद्देश्य से आचार्यों ने "मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः" का निर्देश किया है ऐसी धारणा हो जाना संभव है । किन्तु ऐसी बात नहीं है। यद्यपि प्रसूतिकाल दशम मास निश्चित है, फिर भी इसके बाद भी गर्भ उदर में रह सकता है और निश्चित समय के बाद भी प्रसूति हो सकती है।

"आहारमाप्नोति यदा न गर्भः
शोषं समाप्नोति परिस्रुतिं वा ।
तं स्त्री प्रसूते सुचिरेण गर्भं
पुष्टो यदा वर्षगणैरपि स्यात् ।।"
(च. शा.)

तथा—

"वर्षात् विकारकारीस्यात् कुक्षौः वातेन धारितः।"
(अ. हृ. शा.)

गर्भ को उचित आहार प्राप्त नहीं होना, अथवा रक्त स्राव द्वारा उसका पोषण न होकर शोषण होता है और दसम मासावधिके बाद भी उसकी पुष्टि होने पर प्रसूति हो सकती है । अतः गर्भ विकारकारी बन जाता है। फिर भी इससे यह निश्चित है कि केवल गर्भ की आशंका-निरसनार्थ गुल्म को दसम मास के बाद चिकित्सा करने का विधान शास्त्रकारों ने नहीं किया। किन्तु दसम मास के बाद चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य गुल्म चिकित्सा की सुलभता है। "रक्त गुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम्।" यानी रक्त गुल्म की सुख साध्यता के लिए उसका पुराण होना आवश्यक है। पुराण रक्तगुल्म ही चिकित्सा में सुकर होना यह व्याधि प्रभाव है। इसलिए निदान का विनिश्चय होने पर भी चिकित्सा के लिए प्रतीक्षा की आवश्यकता है। हां, सौम्य उपचार किये जा सकते हैं। किन्तु तीव्र और तीक्ष्ण उपचार प्रातः काल में ही करने चाहिये, अन्यथा गुल्म व गुल्मिनी दोनों को धोखा हो सकता है।

चिकित्सा—

उपरिनिर्दिष्ट विवेचन से गर्भ या गुल्म का व्यवच्छेदक निदान तथा चिकित्सा का सुयोग्यकाल इत्यादि विषय से पाठक सुलभता से परिचित हो सकते हैं। अतः रक्तगुल्म की शास्त्रीय सुयोग्य चिकित्सा के विषय में लिखते हुए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

(१) प्रथम रोगिणी को स्नेहन तथा स्वेदन कर स्नेह विरेचन देना चाहिए और अन्तः शुद्धि करनी चाहिए। तदनन्तर

(२) गुल्म को शिथिल करने के लिए पलाशक्षार में सिद्ध किया हुआ सर्षप तैल पिलाना चाहिए और

(३) योनि द्वारा शोधक द्रव्यों की उत्तर वस्ति देनी चाहिए।

(४) उष्णोपचारों से गुल्म का भेदन करना चाहिए और भिन्न होने पर प्रदर के समान चिकित्सा करनी चाहिए।

इन चिकित्सा सूत्रों के अनुसार—

यदि वेदना अधिक हो तो जलौका द्वारा अथवा सिरा मोक्षण द्वारा रक्तस्राव करना चाहिए।

रक्तपित्त नाशक क्षारों का घी व शहद से प्रयोग करना चाहिए। भोजन में लहसन, मद्य व तीक्ष्ण-मत्स्य खिलाना चाहिए। तिल के काढ़े में सोंठ, मिर्च, पीपर तथा भारंगी चूर्ण मिलाकर गुड़के साथ पिलाना चाहिए। वाराहपित्त व मत्स्यपित्त से कपड़े के टुकड़ों को भिगोकर योनि में रख देना चाहिए।

भारङ्ग्यादि चूर्ण—भारंगी, पीपल, करंजछाल, पीपरामूल व देवदारु का चूर्ण तिल के क्वाथ के साथ देना चाहिए।

दन्त्यादि गुटिका—दन्ती, हींग, जवाखार, तोरई बीज, पीपल, गुड़ इनको थूहर के दूध से गोली बनाकर प्रयुक्त करनी चाहिए।

हिंग्वादि चूर्ण—हींग, वच, धनियां, जीरा, चव्य, चित्रक, पहाड़मूल, आमसोल, सैंधानमक, विड्नमक, समुद्री नमक, सोंठ, मिर्च, पीपल, जवाखार, सज्जीखार, दाडिम छाल, हरड़, पोखरमूल, अम्ल-वेतस, हपुषा, अजाजी इन चीजों का कपड़छन चूर्ण कर अदरख व मातलुंग की भावना देकर रख लें। इस चूर्ण का उपयोग भी लाभदायक है।

अर्कपुष्प तैल—अर्कपुष्प में पकाये (सिद्ध) तैल का सेवन कराना चाहिए।

उपरनिर्दिष्ट कल्पों के अतिरिक्त वज्रक्षार, भास्कर लवण, क्रव्यादिरस, कुमार्यासव इन औषधियों का भी दोषानुसार व अवस्था-नुसार रक्तगुल्म में उपयोग करना लाभदायक होता है।

पथ्य—एक वर्ष पुराने चावल, कुलत्थों का यूष, गाय व बकरी का दूध, मुनक्के, फालसे, छाछ, एरण्ड तैल, लहसुन, बथुआ, सहजना, नीबू, हरड़ तथा वातानुलोमक अन्नपान हितकर हैं।

अपथ्य—उड़द, जौ, वल्लूर (शुष्क मांस), मूली, मीठेफल आदि वर्ज्य हैं। अपान वायु, मल, मूत्र, श्वास, आंसू इनकी प्रवृत्ति को नहीं रोकना चाहिए तथा वमन व अधिक जलपान भी गुल्म रोगी के लिए अहितकर होता है।

—श्री ब्रह्मदत्त शर्मा शास्त्री आयुर्वेदाचार्य,
भुसावल

:: शेषांश पृष्ठ ३६४ का ::

योनि शोधनार्थ योग—

क्षारेण युक्तं पललं सुधा क्षीरेण वा पुनः।
आभ्यां वा भावितान् दद्यात् योनौ कटुकमत्स्यकान्॥

योनि शोधनार्थ पलाश क्षार से अथवा सेहुन्ड क्षार से युक्त तिल कल्क को योनि में देवें। वा क्षार एवं सेहुन्ड दुग्ध से भावित कटुक मत्स्यों को योनि मार्ग में देवें।

गुल्म रोगिणी के लिए अन्नपान—

लशुनं मदिरां तीक्ष्णां मत्स्यांश्चास्य प्रदापयेत्।
वस्तिं सक्षीर गोमूत्रं स क्षारं दाशमूलिकाम्॥

अन्नपान में लहसुन, तीक्ष्ण मद्य एवं मछली का प्रयोग प्रशस्त है। दूध, गौमूत्र एवं क्षार से युक्त दशमूल क्वाथ की उत्तर वस्ति दें।

श्री मणिराम जी शर्मा भिषगाचार्य आयुर्वेदा०
आयुर्वेद विश्वभारती, ज्योति केन्द्र,
सरदार शहर (राज०)

रक्त गुल्म निदान एवं चिकित्सा

श्री वैद्य रामचन्द्र शाकल्य

चरक संहिता कथित निदान—

ऋतावनाहारतया भयेन विरूक्षणैर्वेगविनिग्रहैश्च।
संस्ताम्भनोल्लेखन योनिदोषैर्गुल्मः स्त्रियं रक्तभवोऽभ्युपैति॥

अर्थात् ऋतुकाल में अनशन करने से, भय से विरूक्षण के द्वारा, वेग का निग्रह करने से तथा संस्तम्भक पदार्थ सेवन करने से, वमन से, योनि दोषों से स्त्री को रक्तज गुल्म हो जाता है।

गुल्म क्या है—

गुल्म को एब्डामिनिल ट्यूमर्स (Abdominal tumours) कहते हैं। उदरगुहा में स्थिर या अस्थिर (फिरने वाला) धीरे-धीरे बढ़ने वाला या घटने वाला आलू आदि कन्द के समान गोला उत्पन्न होता है। उसे ही गुल्म नाम से कहा गया है।

गुल्म प्रकार—

रोगानुसार इसको पांच प्रकार का बताया गया है। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और स्त्रियों को होने वाला रक्तज कहलाता है। इन सब प्रकार के गुल्मों में अनुबन्ध रूपता (मुख्य कारणता) वायु की ही रहती है।

रक्तगुल्म—

आयुर्वेद मतानुसार प्रसूतावस्था में योनि रोग या गर्भस्राव के हो जाने पर अथवा मासिक धर्म आने पर अपथ्य वातप्रकोपक भोजन, उपवास, भय, रूक्ष पदार्थ का सेवन, मूत्र आदि वेग का धारण, दूषित रक्त के प्रवाह को रोक देना, वमन योनि विकार या अन्य कारणों से वायु प्रकुपित होकर रक्त को सञ्चित कर दाह और पीड़ा सहित स्त्रियों के गर्भाशय में सौत्रिकतन्तुयुक्त गुल्म या बीजकोष पर गुल्म की उत्पत्ति करा देती है।

ऋतुकाल में जब कि ऋतुमती की एक विशेष चर्या होती है, उसकी ओर ध्यान न देकर उसका पालन नहीं किया जाता है और ऋतुमती जब भूखी रहती या रक्खी जाती है या अकस्मात् कोई भय का कारण बन जाता है तो गर्भाशय में स्वाभाविक बीज की प्राप्ति की गति रुक जाती है। वेग निग्रहण विशेषकर मल मूत्र के वेगों का निग्रह, वमन तथा संस्तम्भकारक योग जो स्त्री को देर तक मैथुन सामर्थ्य प्रदान करने के विचार से वाजीकरण के सेवी प्रयोग कर सकते हैं उनके द्वारा भी बीज का ठीक से क्षरण नहीं हो पाता। बीज का क्षरण न होते हुए भी स्त्री के शरीर में कुछ ऐसी मानसिक स्थिति बन जाती है कि उसे गर्भ धारण हो गई है। गर्भ के सब लक्षण स्त्री पर प्रगट होजाते हैं पर वह गर्भ न होकर रक्तजगुल्म (रक्त का गोला) बनता है। (इसके लक्षणों को देखने से भी गर्भ का भ्रम होता है)।

डाक्टरी में गर्भाशय में गुल्म होने पर यूट्राइन फाइब्रस ट्यूमर (uterine fibrous tumour) और बीजकोषों पर गुल्म होने पर ओवेरियन ट्यूमर (ovarian tumour) कहलाता है। चरकाचार्य जी लिखते हैं कि—

यः स्पन्दते पिण्डित एव नाङ्गैः
चिरात् सशूलः समगर्भलिङ्गः।
सरौधिरः स्त्रीभव एव गुल्मो
मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः॥

अर्थात् जो अंग विशेष से नहीं (अपितु सम्पूर्ण) पिण्ड रूप ही देर से स्पन्दन करता है, शूलयुक्त गर्भ के समान लक्षणयुक्त (होता है) रक्तज, स्त्रियों में ही होने वाला गुल्म (होता है)। वह दसवां महीना बीत जाने पर ही चिकित्स्य है।

चरपरे, खट्टे, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही (करीर आदि) और रूक्ष भोजन, क्रोध, अति मद्यपान, सूर्य के ताप और अग्नि का अति सेवन, आम

(विदग्धाजीर्ण से उत्पन्न) दुष्ट रस, चोट और रक्त विकार आदि कारणों से वातानुबन्ध सह पित्त प्रकुपित होने पर पित्तज गुल्म की उत्पत्ति होती है। ये पित्तज गुल्म के निदान ही रक्तज गुल्म के भी कारण होते हैं। इसके अतिरिक्त गर्भाशय या बीज कोष पर चोट लगने से भी कचित अर्बुद (रक्त गुल्म) की उत्पत्ति हो जाती है।

कभी कभी प्रसव के पश्चात् जब गर्भाशय अपनी प्राक्गर्भीयावस्था प्राप्त करने में असमर्थ रहता है और जब आम गर्भ का पात हो जाता है उसके बाद भी गर्भाशय में वैसी अवस्था बन जाती है। वहां पर वायु दुष्ट होकर गर्भाशय के मुख को अवरुद्ध करके गुल्म की उत्पत्ति करती है। यह गुल्म सरुज और सदाह होता है। इसे सुश्रुत ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया है।

'नवप्रसूताऽहित भोजनाया या चाम गर्भं विसृजेदृतौवा।
वायुर्हितस्याः परिगृह्यरक्तं करोति गुल्मं सरुजं सदाहम्॥'

पूर्व में विवेचन किये गये हेतुओं से, या गर्भाशय को अति शीत लग जाना या शीतल जल से स्नान या शीतल वायु का सेवन, इतर हेतु से मासिक धर्म में बाहर निकलने वाला रक्त जब रुक जाता है तब वायु प्रकुपित होकर उसे गुल्माकार बना देती है। पहले छोटे बेर समान फिर सुपारी समान बनता है। पश्चात् शनैः शनैः बढ़ता जाता है।

मतान्तर से जिन आचार्यों ने गुल्म और विद्रधि को पृथक नहीं माना है वे पुरुषों को भी रक्त गुल्म होना लिख सकते हैं। वस्तुतः शास्त्रकारों ने पुरुषों के लिए रक्त गुल्म का निषेध किया है क्योंकि पुरुषों के गर्भाशय और बीजकोष न होने से रक्त गुल्म पुरुषों को नहीं होता है। भगवान धन्वन्तरि और आत्रेय के मतानुसार वह अन्तर्विद्रधि ही कहलाती है।

अस्तु यदि किसी कारणवश प्रारम्भ में कहे हुए पार्श्व, नाभि आदि स्थानों में रक्तपित्त आदि रोग का रक्त रुक जाय तो वह अन्तर्विद्रधि रूप बन जाता है, रक्त गुल्म नहीं होता।

अन्तर्विद्रधि और गुल्म, दोनों के स्थान एक होने से दोनों के निर्णयार्थ भगवान् धन्वन्तरि सुश्रुत संहिता में लिखते हैं कि-

'मांस शोणित वाहुल्यात् पाकं गच्छति विद्रधिः।
मांस शोणित हीनत्वाद् गुल्म पाकं न गच्छति॥'

अर्थात् शोणित की प्रधानता के हेतु से विद्रधि का पाक हो जाता है तथा रक्त मांस का हीनयोग होने से गुल्म का पाक नहीं होता।

इस रोग में ज्वर, प्यास, दाह, बेचैनी, देह का रंग लाल-पीला हो जाना, भोजन के पचने के समय अधिक शूल होना, स्वेद, खट्टी डकार, अन्न का विदाह हो जाना आदि की प्रतीति (पैत्तिक गुल्म के सदृश) तथा मासिक धर्म न आना, स्तनों के अग्रभाग काले हो जाना, उबाक, मुंह का पीलापन, आहार आदि के भाव अभाव, योनि में से दुर्गन्धयुक्त स्राव होना, तोड़ने समान पीड़ा, गर्भ समान गुल्म का फड़कना आदि लक्षण गर्भ धारण के समान प्रतीत होते हैं। परन्तु सगर्भा के शरीर में बालक के हाथ पैर आदि अङ्ग जैसे फड़कते हैं, ऐसा नहीं होता। बहुत समय के बाद कचित् सारे गुल्म रूप पिण्ड का स्पन्दन होने का भास होता है, साथ में शूल समान वेदना भी रहती है। ऐसी वेदना (शूल) गर्भ होने पर नहीं होती है। केवल इतना ही गर्भ और गुल्म में भेद रहता है।

निर्णय—

१—गर्भ धारण के ५-७ मास होने पर उसके स्थान के हटाने पर गर्भ नहीं रहता और रक्तगुल्म बांयी दाहिनी ओर कुछ हट जाता है। फिर स्त्री को चित्त लेटा, गुल्म को मूल स्थान से इतर स्थान पर हटा फिर दबाकर रक्खें। पश्चात् स्त्री को सावधानीपूर्वक बैठी करने से दबा हुआ गुल्म अपने स्थान पर आजाता है।

२—आठ-आठ अंगुल के चौकोर सफेद कपड़े को गेरू के जल में भिगो समान परिमाण में निचोड़ एक टुकड़े को गुल्म पर और दूसरे को उदर पर फैलावें। गर्भ होने पर दोनों कपड़े सम समय में सूख जाते हैं। गुल्म होने पर गुल्म पर रक्खा हुआ कपड़ा देर से सूखता है।

३—ध्वनि वाहक यन्त्र (Stethescope) से सुनने से गर्भ होने पर उसके हृदय के स्पन्दन की आवाज सुनने में आती है। गुल्म होने पर आवाज नहीं आती।

४—गर्भाशय और बीजकोष में गुल्म (अर्बुद) होने पर अर्बुद गति और स्थान के अनुसार रोग लक्षण भी कुछ प्रकाशित होते हैं।

चिकित्सा उपयोगी स्मरणीय—.

ज्वरे तुल्यर्त्तु दोषत्वं प्रमेहे तुल्य दूष्यता।
रक्त गुल्मे पुराणत्वं सुख साध्यस्य लक्षणम् ॥

अर्थात् ज्वर में (रोग) ऋतु और दोष की समानता, प्रमेह में प्रकृति और वात आदि दूष्यों की समानता तथा रक्तगुल्म का पुरानापन अर्थात् १० मास व्यतीत होना, ये सुखसाध्यत्व के लक्षण हैं। आचार्यों ने रक्त गुल्म की चिकित्सा दश मास व्यतीत होने होने पर ही करने का आदेश दिया है। कारण (१) पिण्डत, स्पन्दन और शूल आदि कारणों से निर्णय हो जाने पर भी व्याधि महिमा की दृष्टि से १० मास व्यतीत होने पर गर्भाशय आदि अङ्गों में चिकित्सा सहन करने योग्य बल आ जाता है। कच्चा दोष पक जाता है, अन्तर्लीन दोष बाहर आकर संचित हो जाता है। इन हेतुओं से अग्निवेश, धन्वन्तरि आदि आचार्यों ने रक्त गुल्म को जीर्ण होने पर सुख साध्य माना है। आधुनिक चिकित्सक (डाक्टरी) रक्त गुल्म के निर्णय होजाने पर शीघ्र ही आपरेशन कर डालते हैं। उनकी मान्यतानुसार १० मास तक प्रतीक्षा नहीं की जाती।

रक्त गुल्म की चिकित्सा में विधानानुसार अर्थात् ६ मास के पश्चात् स्नेहन, स्वेदन देकर स्निग्ध विरेचन देना हितकर है। यदि जल्दी रक्तस्राव न हो तो योनि विरेचक औषधि देनी चाहिए।

रक्त गुल्म में पिप्पल्यादि घृत की उत्तर वस्ति दें या उष्ण पदार्थों से रक्त गुल्म का भेदन कर योनि द्वार से रक्त को निकाल कर चिकित्सा करनी चाहिए।

पञ्चानन रस, दन्त्यादि गुटिका या स्नुहीक्षीर गुटिका आदि औषधियों के प्रयोग से गुल्म नष्ट हो जाता है। रक्त गुल्म के नष्ट हो जाने के कई उदाहरण हमें (३-४ मास में बिना कष्ट स्नुहीक्षार गुटिका से) मिले हैं।

वृन्तयुक्त रक्त गुल्म (Polyp) होने पर गर्भाशय को प्रसारित कर संदश यन्त्र (Forceps) द्वारा गुल्म को बाहर निकाल, गल्म की जड़ में डोरी, या तार (Ligature) को बांध तारयुक्त आरी एक्रेजर द्वारा या कांच द्वारा सावधानी पूर्वक जड़ को काट गुल्म को अलग कर देना चाहिए।

प्रबल रोगावस्था में शस्त्र चिकित्सा का आश्रय लेना ही उचित माना गया है।

चिकित्सा—(चरकोक्त)

रौधिरस्य तु गुल्मस्य गर्भकाल व्यतिक्रमे।
स्निग्ध स्विन्न शरीराय दद्यात् स्नेहविरेचनम् ॥

रक्त गुल्म में गर्भकाल बीत जाने पर स्निग्ध, स्विन्न शरीर वाले के लिए विरेचन देवें।

पलाशक्षार पात्रे द्वे द्वे पात्रे तैल सर्पिषोः।
गुल्म शैथिल्य जननीं पक्त्वा मात्रां प्रयोजयेत्।

पलाशक्षार २ आढक, तैल तथा घी दोनों २ आढक यथाविधि पकाकर (इस सिद्ध मिश्रण की) गुल्म को शिथिल कर सकने वाली मात्रा का प्रयोग करें।

(३) नित्य प्रातःकाल चित्रकमूल, पीपलामूल, करंज की छाल, देवदारु, और भारंगी का चूर्ण ४ माशे खाकर ऊपर से ४ तोले काले तिलों का क्वाथ (गुड़ मिलाकर) सेवन कराने से रक्तगुल्म

का नाश होता है।

(४) गोरखमुण्डी के फूल और वंशलोचन को समभाग मिलाकर चूर्ण करें। फिर चूर्ण, मिश्री और शहद तीनों ६-६ माशे मिलाकर देते रहने से रक्तगुल्म, गर्भाशय विकार और गुदा सम्बन्धी दोष दूर होते हैं।

(५) रक्तपित्त नाशक क्षार को शहद घी के साथ चाटें। लहसुन, तीक्ष्णमद्य तथा मछलियां इसको (रोगी को) दिलावें। दूध गोमूत्र सहित (अथवा) क्षार सहित दशमूल की गुल्म भेदक वस्ति को रुधिर न दिखाई दे तो देवें। यथा—

रक्तपित्तहरं क्षारं लेहयेन्मधुसर्पिषा ।
लशुनं मदिरां तीक्ष्णां मत्स्यां चास्यै प्रदापयेत् ॥
वस्तिं सक्षीरगोमूत्रं सक्षारं दशमूलकम् ।
अदृश्यमाने रुधिरे दद्याद् गुल्म प्रभेदनम् ॥
—चरक

(६) अर्थात् रक्त निकलने पर मांस रस तथा भात देवें। घी तथा तैल से अभ्यंग (तथा) पीने के लिए नई सुरा को देवें। यथा—

प्रवर्त्तमाने रुधिरे दद्यान्मांसरसौदनम् ।
घृत तैलेन चाभ्यंगं पानार्थं तरुणीं सुराम् ॥
—चरक

(७) शक्ति का संरक्षण करने के लिए नागभस्म वंशलोचन और शहद के साथ देते रहें।

(८) दन्त्यादि गुटिका—दन्तीमूल, हींग, जवाखार, कड़वी तुम्बी के बीज, पीपल और गुड़ को समभाग लेकर (सिला) थूहर के दूध में १२ घण्टे खरल कर आध-आध माशे की गोली बनावें। फिर रोज सुबह १-१ गोली देते रहने से जीर्ण रक्तगुल्म के रक्त का योनि द्वार से स्राव होकर धीरे-धीरे गुल्म नष्ट हो जाता है।

(९) रक्त के बहुत अधिक निकलने पर तो रक्तपित्त नाशक (तथा) वातरोग से पीड़ित स्त्री के लिए फिर सब प्रकार की वातहर क्रिया करनी चाहिए। घी तैल का सिंचन, मुर्गों तथा तीतरों को (भोजन निमित्त) मण्डयुक्त सुरा तथा अम्ल द्रव्यों से सिद्ध घृत का पान (भोजन से पूर्व) प्रयोग करना चाहिए। रक्त के अधिक प्रवृत्त होने पर तिक्त रस प्रधान द्रव्यों से साधित अनुवासन वस्ति अथवा जीवनीय पदार्थों के द्वारा सिद्ध घृत से उत्तर वस्ति दें।

(१०) ४ तोले तिल का क्वाथ कर पुराना गुड़ २ तोले, त्रिकटु २ माशे, भुनी हींग ४ रत्ती और भारंगी का चूर्ण ३ माशे मिलाकर नित्यप्रति प्रातःकाल सेवन कराने से रक्तगुल्म का रक्त योनि द्वार से बहकर निकल जाता है। यदि मासिक धर्म बन्द हो गया हो, तो इसके क्वाथ के सेवन से पुनः जारी हो जाता है।

(११) रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह में लिखी हुई औषधियां स्नुहीक्षीर गुटिका (पपीते के साथ)—स्नुहीक्षीर गुटिका २-२ दिन में ३ समय जल के साथ देते रहें, और प्रतिदिन रोगिणी को पका पपीता एक फल १-२ या ३ समय में करीब १ सेर बजन का हो खिला देवें। इस तरह ४-६ मास तक प्रयोग करें। इस चिकित्सा से स्नेहन स्वेदन, छेदन, भेदन आदि किसी भी क्रिया के किये बिना ही अति बढ़ा हुआ गुल्म भी नष्ट हो जाता है। पपीता प्रातःकाल स्नुहीक्षीर गुटिका देने से पूर्व सेवन कराना चाहिए तथा मधुर पदार्थ सेवन करना वर्जित रखें। गुल्म कुठार रस और कुमार्यासव भी रक्तगुल्म का नाश करने में अति हितकारक सिद्ध हुए हैं।

गुल्म के सामान्य चिकित्सा सूत्र निम्न हैं—

लघ्वन्नं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम् ।
बृंहणं यद्भवेत् सर्वं तद्हितं सर्वं गुल्मिनाम् ॥
स्निग्धस्य भिषजा स्वेदः कर्त्तव्यो गुल्म शान्तये ।
स्रोतसां मार्दवं कृत्वा जित्वा मारुतमुल्वणम् ॥
भित्वा विबन्धं स्निग्धस्य स्वेदो गुल्ममपोहति ।
स्थानावसेको रक्तस्य बाहुमध्ये शिराव्यधः ॥

स्वेदोऽनुलोमनं चैव प्रशस्त सर्व गुल्मिनाम् ॥
— चक्रदत्त

गुल्म में दीपन, स्निग्ध, उष्ण, वातानुलोमन, लघु पथ्यकर पदार्थों का प्रयोग करें। स्नेहन हो जाने पर स्वेदकर स्रोतों को खोल कर कुपित वात को जीतें और विबन्ध दूर करें। स्थिर गुल्म में रक्तावसेक, बाहुमध्य में शिरावेध, स्वेदन एवं अनुलोमन करें।

रक्तज गुल्म में–रक्त का मोक्षण करें। स्नेहन, स्वेदन एरण्ड तैल के साथ विरेचन करें। पलाशक्षार के साथ घृत पान करावें। तिल का क्वाथ घृत, पुराने गुड़ तथा त्रिकटु और भारङ्गी के साथ दें। अष्टांग हृदय में रक्त गुल्म के प्रकरण में योनि विरेचन का विधान हैं तथा गुल्म प्रभेदन के लिए शस्त्र-कर्म करना चाहिए।

शास्त्रानुसार १० माह पश्चात् स्नेहन, स्वेदन कराके स्निग्ध विरेचन देना हितकर है। त्रिकटु, सुनी हींग, भारङ्गी समभाग लेकर चूर्ण २ माशा तिल क्वाथ १ छटांक के साथ पान करावें।

अथवा यवक्षार तथा त्रिकटु चूर्ण को मद्य के साथ पान कराना चाहिए।

(१२) पञ्चानन रस, प्राणवल्लभ रस, पलाश घृत आदि भी रक्त गुल्म में हितकर हैं।

(१३) यदि पलाशक्षार सिद्ध घृत से भी गुल्म का प्रभेद न हो तो फिर योनि विशोधन दें। यव-क्षार से युक्त अथवा इन दोनों से भावित कटुक मत्स्य अथवा सुअर तथा मछली दोनों के पित्तों से भली प्रकार भावित कपड़े के पिचु को योनि में लगावें।

अथवा अधोहर (विरेचन) द्रव्यों से और ऊर्ध्वहर (वमन) द्रव्यों से भावित अथवा शहद से युक्त कपड़ों को योनि में धरें। किण्व (Yeast) अथवा क्षार सहित गुड़ को योनि शोधन के लिए देवें।

(१४) रक्तस्राव अधिक होने पर—

(अ) रसतन्त्रसार में लिखी हुई औषधियां– बोलबद्धरस, उशीरासव, दूर्वादिघृत, चन्द्रकला रस, ह्रीवेरादि क्वाथ। ये सब रक्तस्राव को दूर करने वाले होते हैं। इनमें से कोई भी रक्तस्राव को बन्द करने में प्रयोग किया जा सकता है।

(ब) मौक्तिक भस्म, प्रवालपिष्टी, उशीरासव के साथ। शौक्तिक भस्म या शङ्खभस्म का सेवन कराने से रक्तस्राव और पित्त प्रकोप दोनों दूर होते हैं।

(१५) रजःप्रवर्तक वर्त्ति योनि में धारण करने से रजःस्राव होकर गुल्म दूर हो जाता है।

(१६) अन्य प्रयोग (विभिन्न)—

(क) सूतशेखर १-१ रत्ती दूध मिश्री के साथ या २ माशे अदरख के रस और ६ माशे शहद के साथ दिन में २ समय देते रहने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है। साथ में इसके अतिरिक्त वात प्रकोप और पित्त प्रकोप का शमन हो जाता है।

यदि प्रयोगों के द्वारा रक्त प्रवृत्त नहीं होता हो तो पुनः भेदन चिकित्सा करना हितकर है। भेदन दो प्रकार से किया जाता है (१) शस्त्र कर्म द्वारा आपरेशन करके गुल्म को निकाल देना अथवा (२) बाजार में वर्त्ती नं० ३ की मिलती है, इस वर्त्ती को अंगुली के सहारे गर्भाशय (Uterus) के मुख में बलपूर्वक डाल देना चाहिए। तीसरे दिन वह वर्ती मोटी होकर निकलती है तथा मुख को खोल कर सद्यः रक्त सञ्चार कर देती है। इस फलस्वरूप पुराना रुका मासिक धर्म भी खुल कर प्रारम्भ हो जाता है। यह परीक्षित प्रयोग है।

यदि गर्भाशय के मुख पर झिल्ली प्रतीत हो तो अर्क दुग्ध लगाकर इक्थ्यौल ग्लिसीन का फोया लगाना हितकर है क्योंकि इससे झिल्ली फट जाती है तथा शोथ भी शान्त हो जाता है।

यदि बीज कोष में रसार्बुद तरलमय हो तो व्रीहिमुख यन्त्र का प्रवेश (Paracentesis) कराके जल को निकाल देना चाहिए। एवं रसार्बुद की

दीवार का छेदन पिचकारी द्वारा रक्तशोधक रोपण और जन्तुघ्न द्रव (आयोडिन या इतर) का प्रवेश कराना चाहिये। यह प्रयोग जिन स्थानों पर रसार्बुद की दीवार में प्रादाहिक विकृति हो, अथवा बीज कोष को तोड़ कर अर्बुद को निकाल लेने की आवश्यकता न हो, उन स्थानों के लिए लाभदायक है।

डाक्टरी मतानुसार बीजकोषस्थ अर्बुद (रक्त-गुल्म) प्रथमावस्था में संचालन विशिष्ट है, और क्रमश: बढ़ता जाता है। ऐसा निर्णय हो जाने पर उसे औषधि अथवा शस्त्र कर्म की चिकित्सा द्वारा सत्वर समूल नष्ट कर देना चाहिए।

(क) शराब के नीचे जमा हुआ गाद (Sediment), गुड़ और पलाश की राख को मिला वर्ति बनाकर योनि-विशोधन के लिये योनि मार्ग में धारण करें।

(ख) सिंघाड़े का चूर्ण १ तोला और मिश्री १ तोला मिला कर बकरी या गौ के धारोष्ण दूध के साथ देने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

(ग) कमल केशर और नागकेशर का चूर्ण ६ माशे, मक्खन २ तोले और मिश्री १ तोला मिला कर देने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

पक्व गुल्म चिकित्सा—

भगवान् आत्रेय जी कहते हैं कि—

'तत्र धान्वन्तरीयाणामधिकारः क्रियाविधौ'

पक्व गुल्म की चिकित्सा धन्वन्तरि तन्त्र के जानने वाले शल्य विदों से आपरेशन द्वारा करानी चाहिए। प्रारम्भ में क्षार प्रधान औषधि लाभ पहुंचाती है। रोग बढ़ने पर शास्त्रानुसार शस्त्र चिकित्सा का आश्रय लेना हितकर है।

पथ्यापथ्य—

कहावत है कि 'भोजन मारे भोजन तारे' अर्थात् भोजन पर ही रोग की वृद्धि और नाश होने का प्रभाव पड़ता है। अत: पथ्यापथ्य (अत्यावश्यक) आयुर्वेदिक चिकित्सा में एक अपना अलग ही श्रेष्ठ स्थान रखता है।

पथ्य—

'लंघनं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम्।
बृंहणं यद् भवेत्सर्वं तद्हितं सर्व गुल्मिनाम्॥'

भोजन में लहसुन तीव्र मदिरा आदि का प्रयोग करना चाहिए।

रक्त गुल्म में रक्तस्राव कराना हो तब वातघ्न गुण वाले लहसुन, शराब, गुड़, तैल, मिर्च, मछली आदि उष्ण अन्नपान देवें, तथा रक्तस्राव बन्द करने के समय वातपित्त शामक भोजन देना चाहिए। यदि रक्त गुल्म की अति वृद्धि हो जाने से अधिक कृशता आगई है तो शारीरिक बल के संरक्षणार्थ विश्रान्ति, शुद्ध वायु का सेवन, मांस रस, अण्डे, दूध और लघु पौष्टिक भोजन हितावह माने जाते हैं।

अपथ्य—

'वल्लूरं मूलकं मत्स्यान् शुष्क शाकानिवैदनम्।
न खादेच्चालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च॥'

शुष्क मांस, मूली, मछली, शुष्क शाक, दाल, आलू, मधुर फल सेवन न करें।

रक्त गुल्म की रोगिणी को मासिक धर्म आने पर ३ दिन के भीतर स्नान करना, और तेज शीतल वायु का सेवन करना, मलावरोध करने वाला आहार, मधुर आहार का अधिक सेवन, शुष्क भोजन (आहार) और वातवर्धक आहार ये सब हानिकर हैं। एवं रोगिणी को अधिक निर्बलता आने पर अधिक परिश्रम, चिन्ता और शुष्क भोजन ये, सब अपथ्य माने जाते हैं।

गुल्म रोग में समय-समय पर बारम्बार विरेचन स्नेहपान, स्वेदन, लेप करना, वस्ति देना आदि हितकर हैं। पुराने साठी चावल का भात, कुलथी, मूंग, गेहूँ, बथुआ, नेनुवां आदि अरहर की पतली दाल हितकर हैं। लहसुन, आम, मनुक्का, अदरक

:: शेषांश पृष्ठ ४०४ पर ::

रक्त गुल्म चिकित्सा

[१]

श्री श्रेयान्सकुमार "बड़कुल"

रक्त गुल्म की चिकित्सा के लिए पूर्व में ही बतलाया जा चुका है कि दश मास के अनन्तर ही इसकी चिकित्सा करनी चाहिए क्योंकि जब गुल्म पर्याप्त मात्रा में बढ़ जाता है तब उसको निकालने अथवा उसका धारण करने में अन्दर से स्वाभाविक सहायता मिल जाती है। यह रोग कुछ पुराना हो जाने पर सुखसाध्य हो जाता है।

विशेषकर रोगिणी के आहार विहार पर विशेष ध्यान देना अत्यावश्यक है क्योंकि रोगिणी अपथ्य का सेवन करती है तो रोग में लाभ होना मुश्किल हो जाता है। अतः रोगिणी का आहार-विहार अनुकूल होना अत्यावश्यक है।

रक्त गुल्म में उदर के तनाव होने के कारण कब्ज की शिकायत रहती है, अतः औषधि देने के पूर्व एक अथवा दो दस्त कराने के लिए दूध में एरण्डी का तेल देना चाहिये। यह मृदु विरेचक है। अथवा सनाय, हरड़, दाख और मिश्री से तैयार किया हुआ चूर्ण गरम जल के साथ दें। तत्पश्चात् गुल्म के स्थान पर नारायण तैल को मलकर कुछ-कुछ गरम कांजी का स्वेद दें। उड़द की रोटी पर नारायण तैल चुपड़कर गुल्म के स्थान पर बांधना भी हितकर है। त्रिकटु, यवक्षार चूर्ण को यव के साथ पिलाना भी हितकर है। तिल के कल्क में पलाश क्षार एवं सेहुण्ड का दुग्ध मिलाकर रोगिणी की योनि में धारण कराना चाहिये। दशमूल क्वाथ, गोमूत्र एवं गोदुग्ध की उत्तरवस्ति देनी चाहिए।

इस प्रकार की क्रिया से रक्त प्रवृत्त होने लगता है तथा संचित पुराना आर्तव (मासिक धर्म) भी खुल जाता है तथा रक्त गुल्म में लाभ होता है। घृतकुमारी के रस में सोंठ, मिर्च, पीपल, कालीमिर्च एवं काला नमक का चूर्ण मिलाकर प्रतिदिन नियमित सेवन करने से गुल्म नष्ट हो जाता है। कुमारी तथा मुंडी का बनाया गया आसव रक्त गुल्म में लाभ पहुंचाता है।

यदि उपरोक्त औषधियों से भी रक्त गुल्म में लाभ न हो तो पलाशक्षार घृत का सेवन कराना चाहिए। इससे रक्त का स्राव होकर रक्त गुल्म में शीघ्र लाभ हो जाता है। इस प्रकार से यदि रक्त का स्राव अधिक मात्रा में हो गया हो तथा रक्त स्राव के कारण अधिक दौर्बल्यता आगई हो तो रक्तातिसार के समान चिकित्सा करनी चाहिए।

इस प्रकार की चिकित्सा के द्वारा स्त्रियों की इस भयङ्कर व्याधि को नष्ट कर उनके जीवन को निरोग एवं सुखद बनाया जा सकता है।

—श्री श्रेयान्सकुमार "बड़कुल"
जैन संस्कृत कालेज (आयुर्वेद विभाग)
मणिहारों का रास्ता, जयपुर

:: पृष्ठ ४०३ का शेषांश ::

आंवला, चीनी, गरम पानी, गाय बकरी का दूध, मट्ठा, बिजौरा नीबू, रेंडी का तेल, अंगूर, अनार, हींग, हलके पौष्टिक पदार्थ हितकारी हैं। इसके विपरीत मूत्रादि का वेग रोकना, ठण्डा पानी, वातकारक पदार्थ, विरुद्धाहार, सूखी तरकारी, अधिक पानी पीना अहितकर हैं।

—श्री वैद्य रामचन्द्र शाकल्य,
४५ शनिगली, जूनी, इन्दौर

रक्त गुल्म वाले रोगी का पहिले स्वेदन (बफारा देना या सेक करना) और स्नेहन (घी तेल आदि चिकिनी चीज पिला

चित्र ११७ स्वेदन-विधि

कर कोष्ठ को नरम करना) स्नेह युक्त विरेचन (घी-तेल आदि चिकनी चीज मिला हुआ जुलाब) जैसे-रेंडी के तेल को दूध में मिलाकर देना हितकर है। पश्चात् गरम औषधियों से भेदन करना चाहिये।

१—भारंगी, सोंठ, पीपल, काली मिर्च, हींग समान भाग लेकर चूर्ण करके ३ माशे चूर्ण प्रति दिन दोनों समय दो तोले काले तिल के काढ़े में गुड़ मिला ऊपर से पिलाना चाहिये। इससे थोड़े ही समय में रक्तस्राव होकर रक्त गुल्म दूर होजाता है। साथ ही निम्न लिखित बर्ति का प्रयोग भी करना चाहिये।

बर्ति—

(१) पलाशक्षार तथा तिल कल्क को थूहर के दूध में मिलाकर बर्ति बनालें। इस बर्ति को योनि में रखने से रक्त गुल्म का भेदन हो जाता है।

(२) कन्नेर का बीज लेकर उसके नीचे की गुठली का गूदा निकालकर उसके बराबर सीप का चूरा मिलालें और मटर बराबर गोली बनाकर फिर चूने से उसे पोत दें और धूप में सुखा कर रखलें। दिन-रात में १-१ गोली योनि में रखने से रजःस्राव होकर रक्त गुल्म नष्ट होता है।

(३) सोनकसार (बबरबेल) कायफल और मोसब्बर दोनों पीसकर जंगली बेर बराबर गोली बनालें। इसे योनि में रखने से रजःस्राव होकर रक्त गुल्म दूर होता है। इससे बहुत दिनों का रुका हुआ मासिक धर्म खुल जाता है।

अन्य औषधियां—

२—रक्तगुल्मकुठार रस—पारद, गन्धक, ताम्र, कांस्य, सुहागा, हरिताल प्रत्येक समभाग लेकर जल में मर्दन कर २ रत्ती की बटी बनावें। त्रिफला के क्वाथ के अनुपान से १-१ बटी दें तो यह रस रक्त गुल्म का नाश करता है।

३—घीक्वार के रस में जरा सा नमक, सोंठ, पीपल और काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर प्रति दिन नियम के साथ खाने से रक्त गुल्म में शीघ्र लाभ होता है।

४—अकेले मुलैठी के काढ़े या चूर्ण सेवन करने से रक्त गुल्म नष्ट हो जाता है।

५—कांकायन वटी-पुनर्नवा, पोहकरमूल, दन्ती, चित्रक, बड़ी कटेरी, निशोथ, सोंठ, वच सब १-१ पल. अमलबेंत, अजवायन, जवाखार, सफेद जीरा, धनियां, काली मिर्च, हरड़, पीपल सबका चूर्ण बना कर जंबीरी नीबू के रस में खरल कर १-१ माशे की गुटिका बनालें। २-३ गुटिका गोमूत्र के साथ खाने से त्रिदोष गुल्म, रक्त गुल्म, मन्दाग्नि, अरोचक आदि रोग दूर होते हैं। रक्त गुल्म में गरम जल के साथ खाना चाहिये।

६—पंचानन रस—पारा, नीलाथोथा, गंधक, जमालगोटा, पीपल, अमलतास का गूदा ये सब समान भाग लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्यों को चूर्ण करके संयुक्त करें (पारद इत्यादि द्रव्यों को शुद्ध करके

डालें) फिर थूहर के दूध में एक दिन खरल करके सुखा कर रखलें। मात्रा १ रत्ती भर शहद के साथ या आंवला के स्वरस अथवा इमली के स्वरस के साथ दें तो विरेचन होकर रक्त गुल्म नष्ट हो जाता है। दस्त होने पर पथ्य दही भात खिलाना चाहिये। सूखा मांस, मूली, मछली, सूखा शाक, विदलन्न, आलू और मधुर फल ये सब त्याग दें।

७-पलाशक्षार घृत—ढाक के क्षार का जल और घृत लेकर पकावें। जब पकते पकते फटे हुये दूध के समान झाग आ जाय तब घृत को नीचे अग्नि पर से उतार कर रखलें। मात्रा १ तोला प्रति दिन प्रातः सायं सेवन करें तो रक्त गुल्म का भेदन होकर नष्ट हो जाता है।

८-स्वर्जिकादि वटी—सज्जीखार ३ माशा तथा गुड़ ३ माशा दोनों मिलाकर गोली बनाकर प्रतिदिन दोनों समय सेवन करें तो रक्त गुल्म नष्ट हो जाता है।

९-अर्कासव—आक का दूध या पत्तों का रस आध सेर, थूहर का दूध पाव सेर, घृत कुमारी का रस सवा सेर, सज्जीखार ५ तोला लेकर बोतल में भर कर रखलें। पन्द्रह दिन के बाद खाली पेट सवेरे प्रति-दिन ३ माशा उष्ण पानी मिलाकर सेवन करें तो इससे सब प्रकार का गुल्म, विशेषतः रक्त गुल्म प्लीहा, उदर रोग नष्ट होते हैं।

१०—आक के फूल तेल में पकाकर सेवन करने से रजःस्राव होकर रक्त गुल्म नष्ट होता है।

रक्त गुल्म के भेदन होने पर यदि रक्त अधिक गिरने लगे और दाह, बेचैनी आदि लक्षण प्रगट हों तो शीतल जल में कपड़े भिगो कर पेड़ू पर रखें और रोगिणी अधिक कमजोर हो तो रक्त-स्राव बन्द करने के लिये रक्तप्रदर की चिकित्सा करनी चाहिये जैसे—चन्दनादि चूर्ण-तंडुल भिगो जल और मधु या गूलर के रस के साथ दें। बोलबद्ध रस गुरुच के रस तथा मधु में दें। अभ्रक भस्म शत-पुटी चौलाई की जड़ और पीपल वृक्ष की छाल को चावलों के धोवन में पीसकर छान लो। शहद में मिला कर अभ्रक भस्म चटावें और ऊपर से दही छना हुआ पानी पिलाओ रक्त बहना बन्द होगा।

—ठाकुर गोखुलानन्द सिंह वैद्यशास्त्री आयुर्वेदाचार्य
माधोपुर सिगाही (मुजफ्फरपुर)

[३]

श्री त्यागी त्रिवेणीदास चिकित्साचार्य

रक्तगुल्म चार मास से लेकर ५-१० वर्ष तक रहता है, या जब तक उसकी चिकित्सा सुचारु रूप से न की जाय। मैंने कई रुग्णा स्त्रियों को जिसमें कोई २ वर्ष से, कोई ५ वर्ष से, कोई १० वर्ष से रक्तगुल्म रोग से पीड़ित थीं उसे नीचे लिखी गई दवाएँ दीं। उस दवा से रुग्णा स्त्रियों के गर्भाशय में जो रक्तगुल्म की गांठें गोला के रूप में थीं उसे छिन्न-भिन्न कर रक्त प्रवाह छिछड़े-छिछड़े के रूप में निकलना शुरू हुआ था तथा मल की सड़ी गली गांठे निकलकर गर्भाशय साफ कर दिया और रोगिणी स्त्री ने रोग मुक्त होकर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया था वही दवा अनुभव सिद्ध प्रयोग आपकी सेवा में पेश करता हूं।

(१) क्वाथ—सोंठ, पीपरी, कालीमिर्च, भारंगी, भृङ्गराज, कालेतिल, इन्द्रायणमूल, वायबिडंग समभाग लेकर जवकुट चूर्ण बनालें और प्रति-दिन २ तोला लेवें। रात्रि को ४० तोला पानी में भिगो देवें। प्रातः क्वाथ बनावें, उसमें ५ तोला गुड़ डालें। जब १० तोला रहने पावे तब उतार लें, उसे छान लें। आधा सुबह आधा शाम को १-१ तोला तिली तैल डालकर पिया करें। २१ दिन पीवें या न्यूनाधिक रोग और रोगिणी के आधार पर

:: शेषांश पृष्ठ ४११ पर ::

गर्भाशय शोथ

श्री वैद्य रणवीरसिंह शास्त्री

आजकल महिला जगत में इस रोग का बाहुल्य दृष्टिगोचर हो रहा है। गर्भाशय शोथ का प्रभाव नारी शरीर के साथ-साथ प्रजनन शक्ति एवं उत्पन्न होने वाली भावी सन्तति पर बुरा पड़ता है अतएव इस रोग के कारण एवं चिकित्सा को अनुभवात्मक रूप में ही पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूं। आशा है इससे कुछ न कुछ पारिवारिक वैद्यजनों को लाभ होगा।

गर्भाशय शोथ के कारण—

अम्ल स्निग्ध एवं दुर्जर अन्नपानों का अधिक सेवन, आनूप मांस का सेवन, गर्भस्राव, गर्भपात, श्वेत या रक्तप्रदर, गर्भाशय व्रण, कृमि, अनियमित मैथुन, आन्तरिक या बाह्य आघात, मासिकधर्म का साफ न होना, योनि कण्डू, ऊंट घोड़े आदि की अधिक सवारी, लवण मिश्रित पदार्थों का अधिक सेवन, विषैले पदार्थों का प्रयोग, प्रसूतावस्था में अम्लशीत पर्युषित और गरिष्ट पदार्थों के प्रयोग, रति में अतृप्ति, उपदंशादि रोगों के विष का प्रभाव तथा अनियमित अव्यवस्थित आहार विहार से गर्भाशय के एक देश या सर्वांग में शोथ हो जाता है। व्रण विद्रधि आदि भी स्थानीय शोथ पैदा कर देते हैं।

गर्भाशय शोथ के लक्षण—

गर्भाशय के मुख, ग्रीवा या शरीर में शोथ होने से नारी के पेड़ू में भारीपन एवं दबाने से पीड़ा तथा कठोरता का अनुभव होता है। कई बार देखा जाता है कि ऐसी रोगिणियों के मुख और पलकों पर गुरुता और शोथ हो जाता है, शोथ होने से मासिक का स्राव भी अनियमित एवं कृच्छ्रता से कम अधिक दिनों तक होता रहता है। साधारण शोथ में गर्भस्थिति हो जाती है परन्तु स्थान के संकुचित होने से गर्भस्राव या गर्भपात का विशेष भय रहता है। यदि यह भी न हो तो गर्भकाल में पीड़ा का अनुभव होता रहता है और, गर्भस्थित बालक के शरीर का भलीभांति पोषण नहीं हो पाता। शोथ की ग्रीवा प्रदेश या मुख में अधिकता होने पर गर्भाशय छिद्र के संकुचित होने से गर्भधारण भी नहीं हो पाता। गर्भाशय शोथ में प्रायः नाभि के निम्न प्रदेश में शोथ या गुरुता का अनुभव होता रहता है। हृदय में अवसाद, मुखविरसता, हृल्लास, शरीर गुरुता, पिण्डिकोद्वेष्टन आदि लक्षण भी किसी किसी के प्रकट हो जाते हैं।

गर्भाशय शोथ के उपद्रव —

रोगिणी को अपतन्त्रक (योषापस्मार–हिस्टीरिया) के आक्रमण, गर्भधारण न होना, होने पर भी स्थान की न्यूनता से गर्भस्राव या गर्भपात, गर्भाशय के एक भाग में शोथ होने से बच्चेदानी का टेढ़ापन, मैथुन में कष्ट, आलस्य, अंग गौरव, पाचन क्रिया की अव्यवस्था एवं विकृति, शोथ के कारण मूत्राशय पर दबाव पड़ने से मूत्र का बार बार होना, नारी के मन में खिन्नता एवं मलिनता का होना, विद्रधि या कर्कटार्बुद से होने वाले शोथों में तत्तद् रोगों के उपद्रवों का होना तथा स्थानीय विकृति होती है। आहार देश काल एवं व्याधि के बलाबल से उपद्रवों की न्यूनाधिकता हुआ करती है।

शोथ के कारणों पर दृष्टि —

जिन कन्याओं एवं महिलाओं को ऋतुस्राव होने लगता है उन्हें आयुर्वेद एवं धर्मशास्त्रों की आज्ञाओं की उपेक्षा करते हुए मासिक स्राव के दिनों में शीतल जल से स्नान एवं शीतल और खट्टी वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिये। कम से कम तीन दिन तक स्नानादि वर्जित हैं, इन दिनों में किसी प्रकार के जल से स्नान नहीं करना चाहिए क्योंकि इन दिनों में गर्भाशय में संचित दूषित रक्त तदन्तर्गत मासानुमासिक

रूप से क्रमशः उत्पन्न होने वाले छालों के फूटने से उत्पन्न होता है ऐसे समय में जल सिंचन विशेषतः प्रचलित शीतल जल से स्नान मासिक स्राव करने वाली सिराओं के मुख को बन्द या संकुचित कर देता है और विकार उसी प्रदेश में अवरुद्ध होकर शोथादि नाना विकारों को उत्पन्न कर देता है। स्नान पवित्रता के लिए किया जाता है, परन्तु मर्यादा से पूर्व ही स्नान करने से वह मलिन रक्त भीतर ही रुक कर और अधिक मलिनता को उत्पन्न करके रोगिणी के शारीरिक एवं मानसिक रोगों का कारण बन जाता है।

मेरी तो यही अनुभवपूर्ण सम्मति है कि इस नई रोशनी व नई सभ्यता की नवयुवतियों और नारियों को आयुर्वेद विहित नियमों का पालन सदा ही करना चाहिये और कम से कम तीन दिन स्नान, शीतल, अमृत एवं गरिष्ठ पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये। इसी में श्रेयः और प्रेयः दोनों हैं। इस विषय को लेकर पाठकों की पुनः सेवा की जायगी।

शास्त्रीय क्रम—

गर्भाशय में शोथ—निज और आगन्तुक भेद से रोग दो प्रकार का होता है—

(१) नाना प्रकार के मिथ्या आहार विहार करने से दूषित हुए वातादि दोष गर्भाशय में विकार उत्पन्न करते हैं विशेष कर दुष्ट वायु दूषित रक्त, पित्त और कफ को रोक कर गर्भाशय में शोथ उत्पन्न कर देता है, जिससे नाना प्रकार की व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं। जिस-जिस दोष का विशेष अनुषंग या कोप हो उसी-उसी की प्रधानता से रोग का निदान एवं चिकित्सा होनी चाहिए। द्वन्द्वज शोथ में २-२ दोषों का सम्मिलित या न्यूनाधिक प्रकोप होता है।

(२) आगन्तुज गर्भाशय शोथ में आकस्मिक एवं अविचारित आघातादि से शारीरिक वातादि दोष कुपित होकर गर्भाशय में नाना प्रकार के शोथ उत्पन्न करते हैं। लेख में उल्लिखित लक्षणों से ही वातोल्बणादि लक्षणों का समन्वय, विज्ञ व्यक्तियों को कर लेना चाहिए, जिससे चिकित्साक्रम में सरलता हो।

चिकित्सा क्रम—

गर्भाशय शोथ की आन्तरिक एवं बाह्य चिकित्सा दो प्रकार की होती है—

(१) बाह्य चिकित्सा में लेप, सेक, स्वेद और उपदेह आदि से चिकित्सा होती है। मणि, मन्त्र, औषधि आदि के धारण से भी चिकित्सा होती है।

(२) आभ्यन्तरिक चिकित्सा में नानाविध औषधि अनुपानों का सेवन, वस्तिक्रिया (औषधि, क्वाथ, जल या दुग्ध मिश्रित दवाओं की उत्तरवस्ति अर्थात् डूस लगाना) औषध वर्ति या पिचु के रखने एवं स्नेह वस्तिओं से भी गर्भाशय शोथ की चिकित्सा की जाती है।

बाह्यलेपादि—

क—बहेड़े का छिलका, संहिजने की छाल, पुनर्नवा जड़, आम्बा हल्दी, खाने की हल्दी समभाग और सबके समान अरण्डी की मींगी मिलाकर लेप बनावें।

ख—करंज बीज, कालीजीरी, चोक, पोस्त के डोंड़े, इन्द्रायण की जड़, सौंठ इनको समभाग चूर्ण करलें और इन सबके समान अरण्डी की छीली हुई मिंगी पीसकर मिलावें।

ग—गूदा अमलतास, बालछड़, सत्यानाशी की जड़, हुलहुल बीज, अजवायन, हर्र का छिलका, सेंधा नमक इन सबको समभाग और इन सबके समान अरण्डी की मिंगी पीसकर मिलावें।

लेप विधि—अरण्डी की छिली मिंगी को छोड़ कर और चीजों को बारीक चलनी से छान लें और अरण्डी की मिंगी को पीस कर मिला लें, उक्त तीनों योग पृथक-पृथक् हैं। इनमें से किसी एक को १॥ तोले लेकर दो छटांक पानी में पकावें जब पकते पकते गाढ़ा हो जाय, तब ६ माशे अरण्डी का तेल मिलाकर शोथ या पीड़ा के स्थान का

निरीक्षण कर पेडू के कक्ष भाग में कोष्ण लेप करदें, ऊपर से अण्डी या बड़ के पत्ते से कसकर बांधें। यह लेप रात्रि में बांधना चाहिए और रोगानुसार तीन से ग्यारह दिन तक बांध सकते हैं। यदि लेप से खुजली या फुन्सियां होजांय तो दो दिन बन्द करके शुद्ध घृत या मक्खन का मर्दन करना चाहिए। ठीक होने पर पुनः लेप प्रारम्भ करदें।

सेक और स्वेद—

१—पुनर्नवा जड़ या पञ्चाङ्ग, संभालू पञ्चाग, मकोय पञ्चाग, अण्डी की जड़ इनका कल्क १६ गुने पानी में पकाकर १ तोले अण्डी का तेल डाल कर स्वेदन और रुई या तौलिया से सहने योग्य सेक करें।

२—दशमूल कल्क, सौंफ, सिरस छाल, अशोक छाल, सोंठ का पञ्चांग इनको २० गुने पानी में पका कर वाष्प से सेंक या स्वेद लें। रुई के फाये से या तौलिया को क्वाथ में डुबा निचोड़ कर भी सेक कर सकते हैं। वाष्प या सेक के समय ठण्डी हवा या पानी का उपयोग नहीं करना चाहिए।

३—यदि गर्भाशय में जलन आदि पैत्तिक विकार हों तो अच्छी शुद्ध मिट्टी का लेप चढ़ावें और कमल पुष्प, पद्माख, धनियां, सौंफ, खस, चन्दन, सोना गेरू का लेप करें। यह लेप नाभि से नीचे किये जाते हैं। अधिक गर्म लेप या सेक करने से मूत्र में जलन पैदा हो जाती है, अतः सावधानी वर्तनी चाहिये।

उत्तर वस्ति प्रयोग (डूस करना)—

१—पुनर्नवा मूल, सौंफ, अण्डी की जड़, मकोय, पोस्त के डोंडे, त्रिफला, दशमूल, सिरस छाल, अशोक छाल मुलहठी उक्त औषधियों में से किन्हीं तीन को कूट कर सोलह गुने पानी या दूध में औटा कर कदुष्ण (कोष्ण) उत्तर वस्ति दें। इसके प्रयोग से शीघ्र ही अन्तः विकार शान्त होकर शोथ शमन होजाता है।
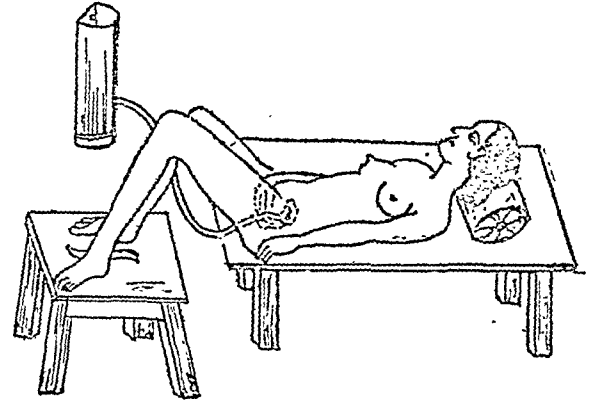
चित्र ११८

२—यदि पैत्तिक विकार दाह, रक्त प्रदर आदि उपद्रव हों तो फिटकरी, चन्दन, नीलोफर, पठानी लोध्र, खस को पानी में भिगोकर या पकाकर शीतल करके डूस दें। इससे आशातीत लाभ होता है। पेडू पर लेप—मेंहदी, पीली मिट्टी का पृथक् पृथक् प्लास्टर लगाने से लाभ होता है।

वर्ति या पिचु का प्रयोग—

मकोय के सूखे फल, पुनर्नवामूल, मुलहठी, पठानी लोध्र, इनका कपड़ छन चूर्ण करके गुड़ या मधु में बाल-कनिष्ठिका के समान बारीक वर्तिका बनालें और उसे घृताक्त कर प्रयोग करें। इसी प्रकार इस चूर्ण को शुद्ध घृत में मिलाकर पोटली या पिचु बनाकर प्रयोग करें।

उक्त औषधियों में तैल या घृत सिद्ध करके पिचु का प्रयोग कर सकते हैं।

इस कार्य के लिए अनुभवी एवं दक्ष दाई या स्त्री चिकित्सक होना आवश्यक है।

आन्तरिक औषधि व्यवस्था (पेय)—

(१) अशोकारिष्ट २-२ तोले, अर्क मकोय २-२ तोले मिलाकर दिन रात में २ बार भोजन के पश्चात् सेवन कराना शोथ के लिए हितावह है। ४२ दिन प्रयोग करना चाहिये।

(२) दशमूलारिष्ट १ भाग, अशोकारिष्ट १ भाग, द्राक्षारिष्ट १ भाग मिश्रित कर १।।-१।। तोले

भोजन के पश्चात् समभाग पानी मिलाकर डेढ़ मास सेवन करें।

(३) कुमार्यासव, वासकारिष्ट, अर्क सौंफ समभाग मिलाकर भोजन के पश्चात् २-२ तोले ४० दिन सेवन करें।

(४) पुनर्नवासव, काकमाच्यासव, अर्क सौंफ मिलाकर २-२ तोले भोजन के पश्चात् लें।

(५) अर्क मकोय, अर्क पुनर्नवा, अर्क सौंफ सबको समभाग मिलाकर २-२ तोले दिन रात में तीन बार पीयें।

(६) अर्क दशमूल पीने से प्रसूत एवं गर्भाशय शोथ रोग समूल नष्ट हो जाते हैं।

(७) कार्पासारिष्ट, लोहासव, अश्वगन्धारिष्ट एवं मण्डूराद्यरिष्ट पीने से गर्भाशय शोथ दूर होता है।

नोट—उक्त आसवारिष्ट एवं अर्कों के विभिन्न मिश्रण एवं रोग दशा के अनुरूप प्रयोग करने से सभी प्रकार के एक दोष प्रधान, द्वन्द्वज, एकांगी तथा सर्वांगीण गर्भाशय शोथ शान्त हो जाते हैं। उक्त प्रयोग कई बार के अनुभूत हैं।

क्वाथ प्रयोग—गिलोय, संहिजना, पीपलामूल, पटजटा, सांठ की जड़, निसोथ, दारुहल्दी, सौंफ, सौंठ, हल्दी, जीरा, भारङ्गी इन औषधियों को समभाग लेकर जौकुट करलें और १-१ तोले औषधि १० तोले पानी में पका, आधा शेष रहने पर १ तोले मधु मिलाकर कुनकुना-कुनकुना प्रातः सायम् सेवन करें। इसके २१ दिन के प्रयोग से समस्त प्रकार के शोथ शान्त हो जाते हैं और गर्भाशय शुद्ध हो जाता है।

अन्य प्रयोग—शोथाधिकार में आये हुए पथ्यादि क्वाथ, पुनर्नवा चूर्ण, विडंगादि चूर्ण, पुनर्नवा घृत, शुष्क मूलादि तैल एवं पंचमूलादि तैल का प्रयोग भी गर्भाशय के शोथों को दूर कर देता है।

पथ्यापथ्य—पुराने चावल, साठी एवं शाली चावल, मूंग, कुलथी, मकोय, सैंधानमक, सहजना, लौकी, तोरई, करेला, पुनर्नवा, शलजम, गेहूं, मूंग परवल आदि का सेवन गर्भाशय शोथ के लिए हितकर है।

दही, खटाई, उड़द, अरबी, पिण्डालू, पिट्ठी के पदार्थ, दिवाशयन, आनूपमांस, मैथुन एवं व्यायाम का न करना, आलस्य व प्रमाद सदा ही अपथ्य हैं।

स्त्री रोगों की चिकित्सा करने वाले वैद्यों को चाहिए कि वे अनुभव एवं बुद्धिमत्तापूर्वक गर्भाशय-शोथ की सर्वप्रकारेण चिकित्सा करें, क्योंकि हिस्टीरिया, प्रदर, हृद्रोग आदि भयंकर रोग भी इसी से उत्पन्न होते हैं और इसी शोथ से स्त्री की प्रजनन शक्ति का ह्रास हो जाता है।

—कविराज श्री रणवीरसिंह रावत शास्त्री वैद्य
इन्द्र औषधालय, नाई की मंडी, आगरा

गर्भाशय शोथ पर परीक्षित प्रयोग

गर्भाशय शोथ के लिए —

चीनी के प्याले में मकोय के रस में फिटकरी फूला एक रत्ती मिलाकर, कपास भिगोकर बत्ती या पिचु के समान तर करके गर्भाशय के मुख में, घुटनों को ऊंचा करके लेटकर दो तीन घंटा प्रतिदिन रखें इस प्रकार पांच-सात दिन में सूजन उतर जाती है। साथ में अशोकारिष्ट भी पिलावें।

इस प्रकार औषधियों के प्रयोग से एवं स्वास्थ्य-कारक व्यायाम तथा पथ्यपूर्वक रहने से गृहस्थ में आनन्द छा जाता है। कुल और यश की वृद्धि होती है।

—वैद्या यशोदादेवी शर्मा वैद्याचार्या
अहाता केदार, बाड़ा हिन्दूराव, देहली-६

गर्भाशय शोथ और शूलहर योग—

देशी शराब, घृत, हल्दी तीनों बराबर-बराबर मिलाकर पिचु बना गर्भाशय के मुख पर रखने से उपरोक्त दोष नष्ट हो जाते हैं। इसमें कुछ कष्ट अवश्य होता है। हानि कुछ नहीं होगी। जब तक सहन कर सकें उतनी ही देर रखें, बाद में निकाल दें। ऐसे ५-७ दिन करने से जो गर्भाशय के रोगों में दूषित जल संचय होता है वह बाहर होकर शोथ व शूल नष्ट हो जाते हैं।

—श्री डा० रामप्रसाद मित्तल वैद्य विशारद
स्वास्थ्य सदन, ढोढर (रतलाम)

:: पृष्ठ ४०६ का शेषांश ::

अवलम्बित है। इस क्वाथ के पश्चात् नीचे लिखे नं० २ का प्रयोग सेवन करावें।

(२) एक चना प्रमाण कपूर, शुद्ध शिंगरफ १ रत्ती, लाहौरी नमक २ रत्ती—यह १ मात्रा है। इसे एक गोली के रूप में बनालें और पका केला के के टुकड़ा इतना हो कि वह निगल सके। उसके बीच में यह दवा रखकर उसे रुग्णा स्त्री दरवाजा चौखट पर बैठकर निगल ले चबावे नहीं। यह दवा एक समय प्रातः सूर्योदय के समय ली जाय केवल इसी तरह चार दिन या ७ दिन काफी हैं।

इस प्रयोग के बीच में ही योनिपथ से रक्त-प्रवाह बहना शुरू हो जायगा इस प्रयोग के साथ साथ नं० ३ का प्रयोग भी किया जाय।

(३) इन्द्रायण की जड़ (यदि उपलब्ध न हो तो एरण्ड पत्ता की बीच वाली सलाई) करीब ६ से ८ इञ्च लम्बी और सीधी व साफ लेकर उस पर एरंड तैल चुपड़ कर गर्भाशय (कमल मुख) में रात्रि को रखवाना चाहिए। करीब ४ से ७ दिन रखी जायगी।

इन तीनों प्रयोगों के क्रमानुसार सेवन कराने से रक्तगुल्म चाहे ४-८ मास का हो या २-५-१० वर्ष का हो अवश्य सफलता दिलाने वाला प्रयोग है। इतना और भी बता देना चाहता हूँ कि न्यूनाधिक दिन रोग और रोगिणी के आधार पर अवलम्बित होगा। जैसे एक साल के अन्दर का रोग है तो उन्हें क्वाथ चौदह दिन काफी होगा फिर नं० २ की दवा चार दिन काफी होगी और २-५ वर्ष का रोग है तो २१।३० दिन काफी होंगें। इसी तरह न्यूनाधिक दवा सेवन करावें और धैर्य से काम लें।

—श्री त्यागी त्रिवेणीदास चिकित्साचार्य,
अर्बुदाचल, आबू

योनिकण्डू

श्री विश्वेश्वर दयालु वैद्यराज

मैंने इसकी अनेक रुग्णाएं देखी हैं और सफलता भी खूब प्राप्त की है। वस्तुतः यह रोग उन्हीं विचारी महिलाओं को होता है जिनके पतिदेव उपदंश एवं सुजाक से पीड़ित हुये हैं और उनका विष उनके अन्दर शेष रहा हुआ होता है वही उनके अन्दर घाव ग्रन्थि, फुन्सियां कर विषाक्त प्रवाह प्रवाहित होता रहने से योनि के बाहर की चमड़ी को दूषित कर उनमें फुन्सियां पैदा करता है। तभी उनमें जलन एवं खाज आती है और धीरे-धीरे यह बढ़कर जंघाओं तक पहुंच जाती है। योनि ओष्ठ तो इससे विशेष आघातित होते हैं।

योनि में कफ क्रुद्ध हो या गर्भाशय में शोथ एवं उससे दूषित प्रदाह हो, वस्ति द्वार पर अर्बुद हो या योनि की शिराओं का प्रसार और विशेष वातप्रकृति वाली स्त्री हो, रजस्राव के समय मैथुन कराने से, प्रथम गर्भ रहने पर और वृद्धावस्था में योनिकण्डू होती है।

योनि में खुजली, पीड़ा, रूक्षता, शुष्कता, यह लक्षण होते हैं। यह उष्णता से बढ़ती और शीत से शांत होती है।

इस रोग में स्निग्ध विरेचन दें, रक्त दोषहर और बलप्रदायी औषधि दें और विषघ्न मलहम का प्रयोग करना चाहिये।

टंकणादि चूर्ण—

सुहागाखील, पांचों नमक, वंशलोचन, शिलाजीत, सौंठ, मौथा, चित्रक, पद्माख, कमलफूल, जीवन्ती, मुलहठी, द्राक्षा, गुडूची, दोनों चन्दन का चूर्ण बनालें। मात्रा ३-३ माशा मधु से चाट ऊपर से उशवामगर्वी, शारिवा, लोध्र, निशोथ, गजपीपल ६-६ माशा ले अधकुटा कर ४० बार पानी में काथ कर शेष १० तोला रख शीतल कर मधु मिला २ खुराक सुबह शाम चूर्ण को फांक कर पीना चाहिये।

खुजली पर—जालादि घृत, कासीसादि घृत और निम्न मलहम विशेष गुणकारी होता है—

अशुद्ध हिंगुल १ तोला, कपूर, रस कपूर, सिन्दूर, फिटकरी खील, मुर्दासन, गन्धक ३-३ माशा, छोटी इलायची बीज, कत्था राल, बहरोजा, संगजराहत, यशद का फूला, सफेदा काशगरी, ६-६ माशा, सौ बार धोया हुआ मक्खन २० तो. में मिलाकर लगावें। लगाते-लगाते शान्ति प्रतीत होगी।

—श्री विश्वेश्वरदयालु वैद्यराज
सम्पादक "अनुभूत योगमाला"
बरालोकपुर (इटावा)

योनि कण्डू पर परीक्षित प्रयोग

योनि कण्डू—

नीम की निम्बोली (मिंगी) को नीम के पत्ते में पीस योनि में लेप करें। दूसरे दिन आंवला २॥ तोला, गूलर (उदुम्बर) की छाल २॥ तोला को तीन पाव पानी में उबालकर पांच सेर जल शेष रहने पर १ माशा कच्ची फिटकिरी मिला योनि डूश (वस्ति) द्वारा धोवें। चन्द दिनों तक धैर्यपूर्वक प्रयोग करें।

—डा० जती चन्द्रशेखर आयुर्वेदाचार्य
राजशेखर मैडीकल हॉल, बोलिया (म० प्र०)

योनि कण्डू—

(१) संगजराहत पिसा हुआ ५ तोला, सोना गेरू ४ माशा, फिटकरी फूला ४ माशा, प्रवाल भस्म ४ माशा, पोटाशियम परमेंग्नेट (कुंए में डालने वाली लाल दवा) १ तोला। इन सबको अच्छी प्रकार कूट पीस कर कपड़छन करलें तथा १॥ पाव मक्खन या लौनी (नवनीत) में अच्छी प्रकार मिलाकर मरहम बनालें। इसका योनि कण्डू, योनि के पास की फुंसियों एवं दाह पर प्रयोग करें।

(२) नीम की गुठली, हल्दी, बहेड़ा तीनों समान भाग लें। जल की सहायता से खरल कर उड़द के बराबर गोली बना लें। इनको प्रातः दोपहर एवं सायं को उष्ण जल के साथ लेने से योनि कंडू समाप्त होती है।

नोट—यदि उपरोक्त दोनों योगों का साथ-साथ प्रयोग किया जाय तो लाभ शीघ्र होता है।

—वैद्य श्री लक्ष्मीचन्द जमोरिया "स्नेही"
परमार्थ जैन औषधालय
नसीराबाद (अजमेर)

योनि कण्डू—

फिटकिरी का सफेद फूला १ माशा पाव भर गुन-गुने जल में घोलकर गुप्तांग को धोयें। पश्चात् निम्न तैल का पिचु योनि में धारण करायें—

नीम की छाल, आंवला, निगुण्डी के बीज, काबुली हरड़, बहेड़ा की छाल सब एक-एक छटांक लेकर २ सेर जल में पकायें। आधा सेर क्वाथ रहने पर उसमें एक सेर तिल तैल सिद्ध करें। पश्चात् राल, मौम तथा शुद्ध गूगल १-१ छटांक तथा कार्बोलिक एसिड आधा तोला मिलाकर दें। इस तैल का मर्दन अच्छी प्रकार से करें।

नोट—योनि कण्डू के अतिरिक्त अन्य अनेक रोगों में इस तैल का व्यवहार होता है जिसका विस्तृत वर्णन गुप्तसिद्ध प्रयोगांक (चतुर्थ भाग) के पृष्ठ ५११ पर दिया है।

योनि के समीप फुन्सियों में उपयोगी कर्पूरादि मरहम—

कर्पूर ६ माशा, मृदारश्रङ्ग (मुर्दासन) १ तोला, कबीला १ तोला, गन्धक शुद्ध आंवलासार १ तोला, सुहागे का फूला, मोम १ तोला, गौ दुग्ध ५ तोला, इन सबका मलहम बनालें।

प्रथम नीम के पत्ते औटाकर उस पानी से गुप्तांग को धुलवा दें। सूखने पर यह मलहम लगायें।

योनि के आसपास निकली हुई फुन्सियों में भी यह मलहम लाभ करती है।

—श्री गोवर्धनदास चागलानी
पटियाल दरवाजा, एटा।

सोम रोग

श्री हरिनारायण शर्मा वैद्य

सोम शीतल होता है। शीत स्वभाव पानी का ही होता है और वह शरीर का रक्षक होता है। इस रोग में औरत के सारे शरीर के तरल पदार्थ रस-रक्त-मूत्र-मेद (चर्बी)-मज्जा-कफ-पित्त आदि दूषित हो जाते हैं और फिर इनका मिला हुआ भाग योनि मार्ग से गिरने लगता है। इस लिए इस रोग का नाम सोम रोग रखा गया है। यह जल सफेद, निर्मल, पतला, ठंडा, गन्धरहित लवावदार और गाढ़ा भी होता है और इतना अधिक निकलता है कि स्त्री बेहद कमजोर हो जाती है। जरा देर तक भी स्त्री इसको रोक नहीं सकती।

रोग का स्वरूप –

द्वितीय कक्ष – शिर खाली पड़ जाता है। मुंह गला, तालु सूखने लगते हैं।

तृतीय कक्ष–मन्दाग्नि, मूर्च्छा, जंभाई, निष्प्रयोजन अधिक बोलना, तीव्र क्रोध, त्वचा का रूखापन, शरीरावसाद, भोगेच्छा, रिरंसुता, अरुचि, चित्त का उड़ा रहना, हर समय मन की अप्रसन्नता ये व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं।

निदान—

अधिक मैथुन, परिश्रम, शोक, चिन्ता, बहाने वाले पदार्थों का अधिक सेवन अथवा अतिसार रोग का होना, शारीरिक श्रम का अभाव, क्रोध, दिन में सोना, दही, मांस, मछली, नया अन्न, तैल, खटाई, मिर्च, तिल, गुड़ नशीली चीजें, राई, मठा, कांजी, अलसी, अल्हड़पना, अग्नि के सामने या तेज घाम में अधिक देर तक रहना, गिर जाना, चोट लगना, मासिक धर्म का बिगाड़, मलसूत्र का वेग रोकना, डर जाना, बे समय (९ मास के पहले) प्रसव, जवानी के समय पुरुषों के बीच में अधिक रहना, सिनेमा अधिक देखना, उपन्यास अधिक पढ़ना, इन आहार विहारों से सोमरोग के पैदा होने की विशेष सम्भावना रहती है। लगातार और अधिक सेवन ही रोग का कारण होता है।

विशेष अनुभव—

जिन स्त्रियों के काम की चेष्टा होने पर मैथुन द्वारा उनकी कामवासना की तृप्ति पूरी नहीं होती तो वह गरमी अन्दर ही अन्दर शरीर के रस-रक्त आदि धातुओं का जलीय अंश योनिमार्ग से बाहर निकालने लगती है। इसी का नाम सोमरोग है। अतः सम्भोगकाल में येनकेन प्रकारेण स्त्री की कामवासना की तृप्ति होना बहुत आवश्यक है। सम्प्रति काम-शास्त्र की अनभिज्ञता होने से यह रोग स्त्रियों में अधिक पाया जाता है अतः गृहस्थ होने के पहिले स्त्री पुरुष दोनों को कामशास्त्र का ज्ञान होना परमावश्यक है।

शास्त्र में मूत्र मार्ग द्वारा सोम स्राव लिखा है किन्तु मैंने अपत्यपथ से स्राव का होना पता लगाया है। क्योंकि भग में २ मार्ग होते हैं। एक मूत्र का और दूसरा अपत्यपथ। बहुत सम्भव है कि शास्त्र में मूत्र मार्ग सामान्यतः भगस्थान के अर्थ में प्रयुक्त हो।

रोग का प्रतिकार—

१—काला नमक, सफेद जीरा, मुलेठी, नील कमल की जड़ या फूल अथवा इसके अभाव में कमलगट्टे की गिरी, पठानी लोध्र, ढाक का गोंद (चीनिया गोंद) सब दवा बराबर तौल में लेकर कपड़छन चूर्ण तैयार करें। शाम सुबह ६ माशा फांककर ऊपर से मठा पीयें।

२—केला का पका फल १, आंवले का रस १ तोला, शक्कर १ तोला, मधु ६ माशा सब एक में सानकर सुबह शाम सेवन करें। यह एक मात्रा

है। आंवले के अभाव में सूखे आंवले का चूर्ण २ माशा मिलालें। द्वितीय कक्ष के लिए उत्तम है।

३—नागकेशर का चूर्ण तक्र के साथ प्रथम कक्ष को दूर करने वाला है।

४—प्रवाल भस्म ४ रत्ती सुबह शाम मधु के साथ चाटें।

५—गोक्षुरादि गुग्गुलु १ गोली सुबह शाम चावल के पानी के साथ सेवन करें (१ तोला चावल आध पाव पानी में ३ घण्टे तक भिगो दें बाद में छान लें। यही चावल का पानी कहलाता है) तीसरे कक्ष में उत्तम है।

६ - चन्द्रप्रभावटी भी गोक्षुरादि गुग्गुलु की तरह सेवन करें। पूरे कक्ष में फायदा होगा।

७—योगरत्नकर की प्रमेहाधिकारोक्त चन्द्रकला वटी शहद के साथ सुबह शाम सेवन करें। तृतीय कक्ष के लिए उत्तम है।

८—सुपारी पाक सभी कक्ष के लिए बहुत ही लाभदायक होता है।

९—पारिस पीपर के फल का चूर्ण चौथाई मिश्री मिलाकर चावल के पानी के साथ सुबह शाम प्रथम द्वितीय कक्ष में प्रयोग करें।

१०—नवायस लौह का सेवन सभी कक्ष का नाशक है।

११-पुष्यानुग चूर्ण भी इस रोग का नाशक है।

१२-कसेरु एवं सिंघाड़ा भी इस रोग को दूर करने वाला है। ये सभी औषधियां अनुभूत हैं। प्रथम कक्ष नाशक हैं।

—श्री हरिनारायण शर्मा आयुर्वेदाचार्य वैद्य,
भूतपूर्व प्राचार्य-बी. एन. मेहता
सं० महाविद्यालय, प्रतापगढ़

सोम रोग

श्री केशवदत्त मिश्र M. A., B. I. M. S.

इस व्याधि का वर्णन चरक, सुश्रुत आदि सर्वमान्य आर्ष संहिताओं में इस नाम से किसी भी स्थान पर नहीं मिलता। १७ वीं शताब्दी में केवल भावमिश्र ने अपने ग्रंथ 'भाव प्रकाश' में व्याधि में पाये जाने वाले लक्षणों का सकारण निर्देश किया है। तदनन्तर योग रत्नाकर आदि विभिन्न ग्रन्थों के संग्रहकारों ने अपनी अपनी रचनाओं में बिना किसी अनुसन्धान के भाव-मिश्र के शब्दों को अनूदित मात्र कर दिया है।

कुछ आलोचकों का मत है कि भाव मिश्र आदि अर्वाचीन ग्रन्थकारों ने केवल अपने ग्रंथों का वैशिष्ट्य प्रदर्शन करने के हेतु 'सोम' जैसे नवीन नामों की कल्पना की है। अन्यथा जिन रोगों के कारण आयुर्वेद में सन्निहित हों तथा जिनका नाम महर्षिगण सकारण निश्चित कर गये हों, उन नामों को मिटाकर महर्षियों के प्रयत्नों की अवहेलना कर तथा उनके श्रम को व्यर्थ कर उनके नाम को ही मिटा देना कहां तक उचित है।

भाव मिश्र के इन कटु आलोचकों की यह थोथी आलोचना हमें स्वीकार नहीं है। भावमिश्र जैसे संग्रहकारों तथा टीकाकारों ने आयुर्वेद की रचनात्मक प्रतिभा को ह्रासोन्मुखी देखकर उसे पतन की ओर जाने से बचाने का स्तुत्य प्रयास किया है। उनकी रचना को देखकर ग्रन्थकार की अद्वितीय प्रतिभा एवं अनुसन्धान प्रियता का परिचय कराने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

भावमिश्र ने सोम रोग के अतिरिक्त फिरङ्ग रोग का भी उल्लेख किया है जिसे उस से पूर्व भारत में सम्भवतः कोई जानता ही नहीं था। यह व्याधि पश्चिम की देन है।

फिरङ्गाख्य देशेयतोऽयं गदः स्यात्
विशेषात्ततो भाषितो ज्ञैः फिरङ्गः।
असौ गन्ध रोगः फिरङ्गो जनानाम्
प्रजातः स्वदेशे फिरङ्ग्याङ्ग सगात् ॥

ऐसी स्पष्टता के साथ इस व्याधि की सलक्षण चिकित्सा का वर्णन करना भावमिश्र की अपनी देन है। सूक्ष्म दृष्टि से भाव प्रकाश का अनुसन्धान करने पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि लेखक ने कई नवीन औषधि द्रव्यों पर रिसर्च करके उनके द्वारा आयुर्वेद के कलेवर को बढ़ाने का कार्य भी किया है। तथापि हम इतना अवश्य मानते हैं कि सोम रोग नाम से जिस लक्षण समूह का भावमिश्र ने उल्लेख किया है, इस प्रकार की व्याधि आर्ष ग्रंथों में निश्चित रूप से उपलब्ध है।

इस व्याधि में विभिन्न कारणों द्वारा शरीरस्थ 'अप्' धातु क्षुब्ध तथा स्वस्थान च्युत होकर अत्यधिक मात्रा में मूत्र पथ द्वारा स्रवित होने लगता है। रुग्णा में दौर्बल्य की आशातीत वृद्धि हो जाने से वह मूत्र वेग संधारण में नितान्त असमर्थ हो जाती है। इस व्याधि की गम्भीरता जलीयांश के क्षय पर निर्भर है। जितना अधिक जलीयांश क्षरित होगा उतने ही तज्जन्य तालुशोष, मुखशोष, त्वग-रौक्ष्य, जृम्भा आदि लक्षण जागृत हो जावेंगे। घातक दशा में निद्रानाश, मूर्च्छा, मृत्यु आदि सभी कुछ सम्भव है। मूत्र का वर्ण बिलकुल स्वच्छ, पारदर्शक, श्वेत, शीतल एवं गन्धहीन होता है। मूत्र प्रवृत्ति भी प्रारम्भिक दशा में पीड़ारहित होती है।

सोम के इस सूक्ष्म परिचय तथा चिकित्सा क्षेत्र में सम्प्राप्ति अनुभूतियों के आधार पर यह स्पष्ट है कि यह व्याधि केवल बस्ति गह्वर से सम्बन्धित न होकर शरीर के प्रमुखतम अवयवों यथा यकृत्, प्लीहा, हृदय, मस्तिष्क, आमाशय, वृक्कद्वय आदि की क्रमिक एवं घातक क्षीणता का परिणाम है।

सोम रोग को आयुर्वेद के विवादग्रस्त एवं विवेचनीय विषयों की तालिका में स्थान दिलाने में 'सोम' शब्द का भी महत्त्वपूर्ण योग है, क्योंकि कोषकारों ने सोम, चन्द्र, उदक, ओज प्रभृति अनेकार्थ में इस शब्द का खुला उपयोग किया है जिनके आधार पर तथा 'ओजः सोमात्मकं स्निग्धम् सूर्यश्चन्द्रात्मको शुक्र' इत्यादि आर्ष ग्रन्थों के उद्धरणों के बल पर कुछ विद्वानों ने ओज को तथा कुछ ने पुरुषों में प्रत्यक्ष तथा स्त्रियों में अप्रत्यक्ष रूप से रहने वाली शुक्र धातु एवं मज्जा आदि के प्रवाहण को सोम के सामञ्जस्य के लिए प्रयुक्त किया है।

कुछ लोगों ने सोम शब्द कफ वर्गीय समस्त शारीरिक घटकों का प्रतिनिधि है, ऐसा मानकर सोम रोग का सामञ्जस्य श्वेत प्रदर से करने की कुचेष्टा की है।

'सोम कफ वर्गीय शारीरिक घटकों का नाम है' ऐसा हम भी मानते हैं। परन्तु श्वेत प्रदर की प्रवृद्धावस्था का नाम सोम रोग है अथवा श्वेत प्रदर सोम रोग है, ऐसा कहना बिलकुल गलत है। क्योंकि एक तो श्वेत प्रदर स्वयमेव संदिग्ध व्याधि है। चरकादि ग्रन्थों में उसका विशेष उल्लेख नहीं मिलता।

यदि "श्लेष्मला पिच्छला योनिः कण्डु युक्तानि शीतला" इस वर्णन को आधार मानकर उसे योनिव्यापदों में स्थान दें, तब भी उचित नहीं है। हम पिच्छला योनि-व्यापद आदि के संहिताओं में प्राप्य प्रकरण को भी चरक के संशोधक, परिवर्धक तथा प्रतिसंस्कर्त्ता दृढ़बल आदि द्वारा जिनका कार्यकाल प्रथम शताब्दी था परिवर्धित ही मानते हैं।

इसके अतिरिक्त श्वेत प्रदर एक अपत्यपथ की व्याधि है। इसे मूत्रपथ की व्याधि 'सोम' के साथ एक रूपता प्रदान करना शरीर रचना विज्ञान की दृष्टि से भी नितान्त अनुचित है।

रजः प्रसेकान्नारीणां मासिमासिविशुद्धयति ।
सर्वं शरीरं दोषाश्च न प्रमेहन्त्यतः स्त्रियः ॥

यह श्लोक सुश्रुत की डल्हण कृत टीका में मिलता है, तथा किसी तन्त्रान्तर से उद्धृत है।

इस श्लोक को आधार मानकर कुछ लोगों ने "आर्तव प्रवृत्ति के कारण प्रमेह रोग स्त्रियों में नहीं होता" ऐसा मान लिया है तथा उनका मत है कि भावमिश्र ने प्रमेह से पार्थक्य सिद्ध करने के हेतु सोमरोग की कल्पना की है।

वास्तव में उपरोक्त श्लोक एक साधारण वाक्य है। इसके आधार पर "स्त्रियों में प्रदर रोग नहीं होता" ऐसा कहना अभीष्ट नहीं है।

यदि किसी कारणवश मासिक धर्म बन्द हो जाय यथा स्वाभाविक दशा में भी कन्याओं में रजोदर्शन से पूर्व, वृद्धाओं में रजोनिवृत्ति के पश्चात् एवं युवतियों में गर्भावस्था तथा दुग्ध प्रवृत्ति काल में आर्तव प्रवृत्ति बन्द हो जाती है। तब क्या उन अवस्थाओं में प्रमेह की सम्भावना को दूर किया जा सकता है। वस्तुतः आयुर्वेद के प्रामाणिक ग्रन्थकारों ने मूत्रवह संस्थान की समस्त विकृतियों को दोष दूष्यों के आधार पर वर्गीकृत करते हुए भी समष्टि रूप में उनको प्रमेह शब्द के क्षेत्र में ही समाविष्ट किया है।

प्रमेह सर्वत्र बीस ही प्रकार के माने गये हैं, पर यदि सूक्ष्म विवेचन किया जावे तो प्रमेहों की संख्या २३ से भी ऊपर जा सकती है। संहिता ग्रन्थों के आधार पर चरकोक्त लाला मेह, सान्द्रप्रसाद मेह तथा कालमेह सुश्रुत में प्राप्त नहीं होते। तथा सुश्रुत के सुरामेह, फेनमेह, लवणमेह चरक में उपलब्ध नहीं होते। इसके अतिरिक्त पूयमेह आदि का भी उल्लेख प्रमेह के साथ ही करना चाहिए। ऐसी अवस्था में चरक की "प्रमेहिणां विंशतिरेवमेहाः" यह प्रतिज्ञा भी विचारणीय है?

प्रमेह रोग में सोम का समावेश सिद्ध करने से पूर्व प्रमेह के शास्त्रोक्त लक्षण तथा निरुक्ति पर भी दृष्टिपात करना आवश्यक है। क्योंकि—

"प्रकर्षेण प्रभूतं प्रचुरं वारम्वार वा मेहति मूत्र त्यागं करोति यस्मिन् रोगे स प्रमेहः।" इस निरुक्ति के साथ माधव ने "प्रभूताविल मूत्रता" ऐसा लिखा है। सोम रोग में आविल मूत्रता प्रायः नहीं होती, इस कारण से कुछ व्यक्ति सोम को प्रमेह से भिन्न सिद्ध करना चाहते हैं। परन्तु सिद्धान्त निदान का वर्णन स्पष्ट होने से ऐसा कहना कि सोम रोग से प्रमेह भिन्न है उचित प्रतीत नहीं होता जैसे—

प्रभूतंवाविलं वापि क्वचिद्दोभय लक्षणम् ।
प्रायशश्चेत्स्रवेत् मूत्रं तदामेहं विनिर्दिशेत् ॥

वास्तव में सोम रोग कफ प्रमेह के प्रथम भेद (उदकमेह) का ही दूसरा नाम है क्योंकि उदकमेह के

"अच्छं बहु सितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम् ।
मेहत्युदकमेहेन किञ्चिदाविल पिच्छिलम् ॥

ये समस्त लक्षण सोम रोग में पाये जाते हैं। अर्वाचीन दृष्ट्याउदक मेह को शुद्ध कफज तथा वात कफज दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। इनमें से शुद्ध कफज उदक मेह जिसे पाश्चात्य विद्वान् "Diabetes Insipidus" कहते हैं, सोम रोग का सच्चा स्वरूप है। इसमें मूत्र आविल पिच्छिल न होकर जलवत् होता है, रोगी को बार बार मूत्र-त्याग की इच्छा तथा मूत्र की आशातीत वृद्धि के कारण Polyuria उसका प्रधान लक्षण है। इस रोग में मूत्र का वर्ण तथा आपेक्षिक घनत्व जल के बराबर होता है।

उदक मेह में सोम के समान ही जैसा पानी पिया जाता है, थोड़े समय बाद मूत्र पथ से वैसा ही निकल जाता है।

कारणों की दृष्टि से उदक मेह स्थाई तथा अस्थाई दो भेदों में विभक्त किया जा सकता है।

अस्थाई उदक मेह में मूत्र यन्त्र एवं वृक्कद्वय से सम्बन्धित मस्तिष्कीय वात तन्तुओं का क्रिया-शैथल्य वृक्क तन्तुओं की स्फीति का प्रधान हेतु माना गया है। ऐसी दशा में रुधिर का संवरण स्वभावतः अधिक होने के कारण मूत्राधिक्य का होना भी स्वाभाविक है। कुछ समय पश्चात् वृक्कद्वय के दूषित होजाने पर उनकी जलीयांश को आकृष्ट करने वाली शक्ति बलवती होकर जलीय तत्वों को वेग पूर्वक आकृष्ट करती है। विकृत वृक्कद्वय में आकृष्ट करने की शक्ति बढ़ी होती है, पर उनकी मूत्र संधारणात्मिका शक्ति समाप्त होजाती है। इस कारण से जलीयांश शीघ्राति-शीघ्र बस्ति में जाने लगता है।

बस्ति एक पतली झिल्ली का कोष है। जैसे जैसे मूत्र संचय बस्ति में अधिक होता जाता है, वैसे ही मूत्राशय की क्रिया भी प्रवृद्ध होती जाती है। अन्त में मूत्राशय के अवरोधक तन्तुओं में स्वभावतः शिथिलता आजाती है जो कि friquency of micturition तथा incontinuence of urine आदि लक्षणों की उत्पादिका होती है।

सोम रोग के कारणों में अति प्रसंग, प्रवृद्ध जीर्णातिसार, गर विष अति शोक एवं अविश्राम आदि का उल्लेख मिलता है। शरीर रचना विभाग के प्रत्यक्ष अनुभव से यह स्पष्ट है कि स्त्रियों के यौन सम्बन्धी अथवा प्रजनन सम्बन्धी अंगों का पुरुषों की अपेक्षा मूत्राशय आदि से अधिक मृदु सम्बन्ध होता है। अत्यधिक मैथुन से मूत्राशय क्षोभ-जनित अवरोधक तन्तु क्रिया-शैथल्य होसकता है। स्त्रियों में मूत्र संधारण में प्रधान सहायक पौरुष ग्रन्थि जैसी दृढ़ रचना का अभाव होता है। अविश्राम तथा मानसिक आघात जैसे कारणों को नवीन वैज्ञानिकों ने भी Diabetes Insipidus का हेतु माना है। अस्थाई उदकमेह ही कालान्तर में प्रवृद्ध होकर स्थाई उदक मेह बन जाता है। इसके कारणों में जीर्ण वृक्क शोथ (chronic nephritis) पीयूष ग्रंथि के अग्रिम खण्ड (Ant. pituitary body) के सत्व की न्यूनता तथा पश्चात् खण्ड (Post. lobe) की अधिक क्रिया-शीलता, तथा धमनी जठरता (Arterio-sclerosis) के कारण रक्त भार (Blood pressure) में वृद्धि हो जाना इत्यादि गिनाये जाते हैं।

जिस प्रकार सभी प्रमेह उपचार न करने से मधुमेह में परिणित होकर असाध्य होजाते हैं°। उसी प्रकार सोम रोग की जीर्णावस्था में मूत्रातिसार के साथ मूत्र पीड़ा के सहित आने लगता है। जिस प्रकार प्राङ्गोदियों (Carbohydrates) के समवर्त (Metabolism की विकृति के परिणाम-स्वरूप मधुमेही की भोजन से तृप्ति नहीं होती तथा मूत्र में जल बहुलता होती है, उसी प्रकार सोम रोग में "जृम्भातृनं भक्ष्य भोज्यान्न पेयैस्तृप्तिं प्रायो न कचिद्विन्दतीह।" इस तृप्ति के अभाव नामक लक्षण के साथ-साथ मूर्च्छा जिसे मधुमेह सन्यास (Diabetic comma) कहते हैं, अवश्य मिलता है। इसके अतिरिक्त पौष्टिक भोजन का अभाव, उपवासाधिक्य आदि कारण सोम रोग के भी हेतुओं में समाविष्ट किये जा सकते हैं।

सोम रोग के समस्त कारणों का हेतु नाड़ी संस्थान की विकृति है। मधुमेह के प्रसंग में डा० क्लाड एवं बर्नार्ड का कथन है कि मस्तिष्क में *4* th ventrical के समीप एक ऐसा Centre है जिसमें सुई चुभा देने मात्र से मूत्र में शर्करा आने लगती है तथा उससे जरा ऊपर की ओर क्षोभ करने से मूत्र परिमाण में वृद्धि हो जाती है। इस वर्णनाधार पर हम यह मानते हैं कि वृक्कद्वय से सम्बद्ध मस्तिष्कीय वात तन्तुओं का क्रिया शैथिल्य ही वृक्क तन्तुओं की स्फीति का उत्पादक होता है।

उपरोक्त विभिन्न तथ्यों पर सूक्ष्म विचार करने से सोम रोग तथा उदक मेह की एक रूपता स्वीकार करना अधिक उपयुक्त होगा। तथा उदक-

---

° सर्वएव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः।
मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति हि॥

मेहजन्य मधुमेह की तरह सोम रोग में भी ओजः क्षय की उपस्थिति स्पष्टतया पायी जाती है। अतः उदकमेह तथा सोम रोग में सर्वश्रेष्ठ सामञ्जस्य किया जाना हितावह है।

कुछ विद्वान स्त्रियों को कोमल स्वभाव वाली मानकर उनकी खबरदारी विशेषतया रखनी जरूरी होती है इस उद्देश्य से सोम रोग को पृथक् मानना अधिक उपयुक्त मानते हैं। हमें उससे कोई असहमति नहीं क्योंकि तेज के प्रसंग में सुश्रुत ने निम्न वर्णन दिया है—

तेजोऽपि आग्नेयं क्रमशः पच्यमानानां धातूनामभि निर्वृत्तम्। अन्तरस्थं स्नेह जातं वसाख्यं स्त्रीणां विशेषतो भवन्ति तेन मार्दव सौकुमार्य मृद्वल्परोमतोत्साह दृष्टि स्थिति पक्ति कांति दीप्तयोर्भवन्ति। चरकषाय तिक्त शीत रूक्ष विष्टम्भि वेग विघात व्यवाय व्यायामधिकर्षणैश्च विक्रियते॥ —सु० सू० १२

चिकित्सा—

प्रायः यह देखा गया है कि इस प्रकार के रोगों से ग्रस्त रोगी प्रारम्भिक अवस्था में परवाह कम करते हैं। अन्यथा प्रारम्भ में तो केवल भोजन व्यवस्था में कुछ साधारण से आवश्यक परिवर्तन कर देने मात्र से ही लाभ हो सकता है। रोग की पूर्ण अवस्था के आजाने पर चिकित्सा कठिन होजाती है। कदलीनां फलं पक्वं धात्री फल रसंमधु शर्करा सहितं खादेत् सोमधारणमुत्तमम्। इस आधार पर केला तथा धात्री के फल इस रोग में लाभकारी सिद्ध हुए हैं। नागकेशर तथा विदारीकन्द का चूर्ण भी मधु शर्करा से देना उत्तम है। योग रत्नाकर द्वारा निर्दिष्ट फलत्रिकादि काथ जिसके प्रधान घटक त्रिफला, पाठा, मुस्तक तथा वंशपत्र हैं मूत्राधिक्य के लिए सर्वश्रेष्ठ तथा शतशोऽनुभूत योग है।

इस प्रकार की व्याधियों की चिकित्सा में औषधियों की भरमार कदापि नहीं करना चाहिए। अवस्थानुसार त्रिवंग भस्म, नाग भस्म अथवा आनन्द भैरव रस का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार चक्रमर्द (पनवाड़) के मूल का चूर्ण भी काष्ठादि योगों से लाभकारी पाया गया है।

सोम रोग की प्रवृद्धावस्था में शर्करा की उपस्थिति तथा मूत्र का सापेक्षिक घनत्व अधिक हो जाने पर रसरत्नाकर का निम्न योग दें—

मृतं सूत मृतं वंगमर्जुनस्य त्वचाचिता।
तुल्यांश मर्दयेत्खल्वे शाल्मल्या मूलजैर्द्रवैः॥
दिनान्ते वटिका कार्या माष मात्रा प्रमेह हा।
एषा इन्दुवटी नाम्ना मधुमेह प्रशान्तये॥

इस योग की वर्तमान मात्रा २ रत्ती पर्याप्त है। उसका अनुपान लघ्वी एला, शाल्मली चूर्ण तथा मधु हैं।

सोम की प्रबल अवस्था में यदि इन्दुवटी से लाभ न हो तो बसन्तकुसुमाकर १ रत्ती तथा जम्बू मज्जा चूर्ण १ माशा मधु के साथ अवश्यमेव देना चाहिए। इस प्रयोग से निश्चित ही लाभ होता है। इसका प्रभाव भी स्थायी तथा निरापद पाया है। इस योग के साथ भैषज्य रत्नावली में वर्णित न्यग्रोधादि चूर्ण का सेवन भी यदि कराया जाय तो नैराश्य भाव को प्राप्त रोगियों में भी जीवन का संचार होने लगता है।

सोम रोग में अहिफेन मिश्रित योग सद्यः फलप्रद तथा लाभकारी पाये गये हैं। परन्तु यदि शर्करा की उपस्थिति मूत्र गत है तब भूल कर भी ऐसा नहीं करना चाहिए, अन्यथा शर्करा रुधिर में प्रविष्ट होकर शरीर में भयंकर पिडिकाऐं उत्पन्न कर देता है। यदि शर्करा न हो उस अवस्था में पुटदग्ध अहिफेन भस्म १ रत्ती की मात्रा में मधु से दे सकते है। कुछ अनुभवी चिकित्सक प्रवाल पिष्टी को २१ बार निम्बु स्वरस से आप्लावित करके ४ रत्ती की मात्रा में देना लाभकारी मानते हैं।

बहु मूत्रता के लिए तारकेश्वर रस अथवा रस पर्पटी का प्रयोग करना चाहिए। तारकेश्वर बनाते समय भस्मा की उत्कृष्टता का ध्यान रखना आवश्यक है।

मृतं सूतं मृतं वंग मृतं लोहाभ्रकं समम् ।
मर्दयेन्मधुनासार्धं रसोऽयं तारकेश्वरः ॥
माषयेकं लिहेत्क्षौद्रैः बहुमूत्रं प्रणाशयेत् ।
उदुम्बर फलं पक्वं चूर्णितं कर्ष मात्रतः ॥
स लिह्यमधुना सार्धमनुपानं सुखावहम् ।

इसके अतिरिक्त शिरीष मज्जा चूर्ण १ तोला, सोयाबीन १ तोला, घृतभृष्ट विजया चूर्ण ६ माशा, भुने हुए तिल १ छटांक, मिश्री ४ तोला । इस औषध को बनाकर पके हुए केले के साथ ६ माशा तक देना चाहिये ।

इस व्याधि की चिकित्सा में शिलाजतु सेवन कराने से भी रोगमुक्तता पायी गयी है । बहुमूत्रान्तक रस तथा कदली घृत भी अच्छा प्रभाव दिखाते हैं ।

नवीन वैज्ञानिक इस रोग में पीयूष ग्रंथि के अग्रखण्ड सत्व को जो विभिन्न नामों द्वारा प्राप्य है, अवस्थानुसार देते हैं । इनमें Pitressin सर्वश्रेष्ठ active constituent है । इसका मांसपेशीगत सूचीवेध भी किया जा सकता है। Syphilitic causes में Penicillin तथा Iodides का प्रयोग करना चाहिये । Thryroidectomy से भी लाभ पाया गया है । अन्य औषधियां भी लाक्षणिक चिकित्सा सिद्धांत से प्रयुक्त होती हैं।

—श्री केशवदत्त मिश्र साहित्यायुर्वेदाचार्य,
M. A., B. I. M. S.,
अध्यापक एवं प्रधान सम्पादक 'सुधाकर',
ऋषिकुल आयुर्वेद कालेज, हरिद्वार ।

सोम रोग

आयुर्वेदरत्न श्री स्वामी कृष्णानन्द वैद्याचार्य

यह एक स्त्रीजन्य महाव्याधि है । अत्यन्त मैथुन करने से, शोक से, विषपान से, अत्यधिक परिश्रम से शरीर का जलीय धातु क्षुभित होकर स्त्रियों के योनि मार्ग से निकलने लगता है ।

लक्षण—

मूत्र मार्ग से बड़े वेग के साथ हर समय शीत एवं अधिक मात्रा में पानी की तरह टपकता रहता है इसे रोकने पर भी रुकता नहीं। मूत्र मार्ग से निकलते समय स्त्रियों को किसी प्रकार का कष्ट मालूम नहीं होता है । यह शरीर की सौम्य धातु होने से एवं शरीर को धारण करने से इसे सोम रोग कहते हैं । इस व्याधि से स्त्री को बड़ी बैचेनी मालूम होती है । रुग्णा शरीर में व्यथा एवं दिनोंदिन दुर्बलता का अनुभव करती है । स्त्री को उठने बैठने में कष्ट अनुभव होने लगता है । शरीर में भार व पीड़ा रहने लगती है । आंखों के सामने चक्कर से आते रहते हैं । रोगिणी को भोजन से अरुचि हो जाती है एवं प्यास अधिक लगती है । बार बार पानी की इच्छा रहती है । रोगिणी के शरीर का वर्ण श्वेत एवं पीत वर्ण होजाता है । ऐसी अवस्था में अगर शीघ्र ही औषधि न की जाय तो धीरे-धीरे मृत्यु की शरण में जाना पड़ता है ।

चिकित्सा—

आयुर्वेदिक ग्रन्थों में सोमरोग के लिए कई औषधियां मिलती हैं लेकिन मैं अपनी चिकित्सा में अनेक बार जिन प्रयोगों का उपयोग कर चुका हूँ उनको ही रोगिणी बहिनों के हितार्थ प्रकाशित कर रहा हूँ—

एक तोला आंवला एक तोला पाषाणभेद इन दोनों को कूटकर २० तोला पानी में किसी स्टील या

शीशे के बर्तन में भिगो दें। ८ घण्टे पश्चात् इस को छानकर योनि का प्रक्षालन करें। इसके साथ साथ—

प्रबाल भस्म ३ रत्ती, शुक्ति पिष्टी ३ रत्ती, जवाहर मोहरा खताई पिष्टी ३ रत्ती, वैक्रांत पिष्टी १॥ रत्ती, इन चारों को मिलाकर सुबह शाम चावल के पानी में सेवन करें। (१ तोला पुराने चावल जौकुटकर ४ तोला पानी में भिगोकर)।

मोच रस १ माशा, सींगोड़ा ३ माशा, राल १ माशा, काले तिल ३ माशा, इन चारों को कूटकर १२ बजे व ४ बजे दिन में पानी के साथ सेवन करें।

इस प्रकार ऊपर लिखे योग को प्रति दिन १४ रोज तक सेवन करें तो आशातीत लाभ प्राप्त होगा।

पथ्य—

तीक्ष्ण पदार्थों से, खोवा, गुड़, तीक्ष्ण खटाई व अधिक परिश्रम, मैथुन करना वर्जित हैं। चावल, मूंग की छिलका रहित दाल व हल्के सुपाच्य पदार्थों का सेवन करें।

—श्री स्वामी कृष्णानन्द वैद्याचार्य आयुर्वेद रत्न, एम० बी० एच०, लाडनूं (राज०)

सोम रोग पर परीक्षित प्रयोग

सोम रोग—

(१) केले की पकी फली १ अदद, आंवले का रस १ तोला, शक्कर २ तोला, इन सबको एकत्र मिलाकर खाया जाय तो एक ही हफ्ते में रुग्णा ठीक हो सकती है।

(२) नाग केसर का चूर्ण मट्ठे के साथ खाय और फिर सिर्फ मट्ठा व भात का ही भोजन करें तो केवल एक हफ्ते में ही रोग ठीक हो जाता है।

—डा० पुष्पेन्द्र जाला पथिक वैद्य विशारद देवली (जोधपुर)

सोम रोग पर—

मुक्ताभस्म १ तोला, उत्तम मूंगा भस्म १ तोला, उत्तम नागभस्म १ तोला। शुक्ति भस्म और मूंगा भस्म दोनों को प्रथम बढ़िया गुलाबजल में पांच छः बार घोट लेना चाहिए उसके बाद नागेश्वर रस को मिलाकर खरल करें।

मात्रा—३-३ रत्ती की एक-एक खुराक करें और प्रातः सायं दोनों समय केले के रस में शहद डालकर या पके केले की फली के ६ माशा गूदे में रखकर खा लेना चाहिए।

पथ्य—गर्म तथा बादी करने वाले पदार्थ, तैल, खटाई, गुड़, मिर्च और सहवासादि से अवश्य बचकर रहना चाहिए।

—कविराज श्री द्वारिकाप्रसाद शास्त्री आयुर्वेदाचार्य दधिमति आयु. भवन, राजगांगपुर (सुन्दरगढ़) उड़ीसा।

सोम रोग नाशक योग—

अश्वत्थ के १४ पीले पत्ते ½ सेर जल में क्वाथ करें। ¼ सेर रहने पर १ छटांक घी का छौंक (तड़का) लगावें। फिर चीनी मिलाकर पी जावें। प्रातःकाल निहार मुख इसका प्रयोग करें और भोजन तब करें जब खूब क्षुधा चमक उठे। उससे पहले भोजन न करें। इसी प्रकार ७ दिन करें। इसका प्रयोग दिन में केवल एक ही बार करना होता है।

इसके प्रयोग से पहले ही दिन सन्तोषजनक लाभ होता है। निराश रोगियों को आशा बंध जाती है। केवल सात ही दिन में चिरजात रोग अवश्य नष्ट हो जाता है।

—प्रोफेसर श्री बन्सरीलाल साहनी आयुर्वेदाचार्य, बीडनपुरा, दिल्ली।

स्तन-रचना

श्री रामेश्वर दयाल त्रिवेदी

स्थावर जंगमोपेता समस्त सृष्टि को अधिकारी विद्वानों ने दो भागों में विभाजित किया है एक तो सजीव दूसरे निर्जीव। सजीव प्राणियों को पुनः ५ भागों में बांटा गया है। १-मत्स्य २-उभयचारी, ३-उरोसृप, ४-पक्षी और पांचवें स्तनी। मनुष्य, पशु आदि की गणना ५ वे वर्ग में की गई है क्योंकि ये अपने अपत्यों का स्तन के
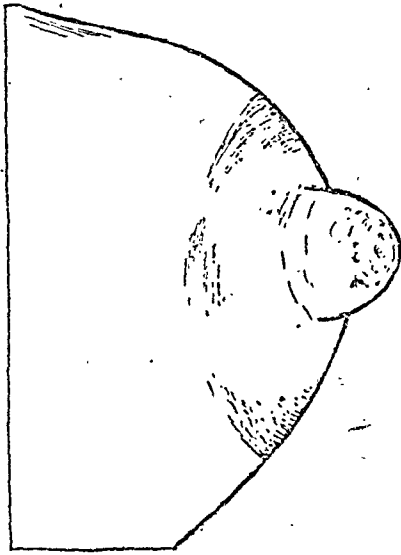
चित्र ११६ — स्वाभाविक स्तन

द्वारा दुग्धपान कराके पोषण करते हैं। प्रस्तुत लेख में हम स्तन के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।

१-स्तन के कार्य—

स्तन्यं स्तनयोरापीनजननत्वं जीवनं चेति।

(सु. सू. १५।५)

(जीवनं बालानां; तेषामेव स्त्रीक्षीररसात्म्यत्वात्-डल्हण)

स्तन्य (दुग्ध) शिशुओं का सर्वोत्तम पोषक और और बलवर्द्धक होने से जीवनरूप है। इसके प्रादुर्भाव काल में स्तनों का आकार बढ़ता है। विभिन्न पशुओं से प्राप्त दुग्ध में बालकों के लिए अपनी माता का दुग्ध ही सर्वोपरि पुष्टिकर आरोग्यकर, देहवृद्ध्यर्थ पर्याप्त एवं प्राकृतिक आहार है। यथा—

प्रकृति भूतत्वात् तत् (स्तन्यं) पुष्टिकरं आरोग्यकरं चेति। —च. शा. ८।५४

मातुरेव पिवेत् स्तन्यं तद्ध्यत्नं देह वृद्ध्ये।

—अ. हृ. उ. १।१४

मातृ दुग्ध के अभाव में शिशुओं को बकरी वा गौ का दुग्ध मात्रावत पिलाने का आदेश आचार्यों ने किया है। क्योंकि इन दुग्धों के गुण सामान्यतया मातृदुग्ध सदृश हैं—

क्षीर सात्म्यतया क्षीरमजं गव्यमथापि वा।
दद्यादास्तन्यपर्याप्तेर्बालानां वीक्ष्य मात्रया॥

सु. शा. १० । ४८

गौ या अजा का दुग्ध पान कराते समय उस दुग्ध को शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, कण्टकारी, बृहती, गोखरू एवं मिश्री के साथ देना चाहिए। उक्तं च-

'ह्रस्वेन पंचमूलेन स्थिराभ्यां वा सितायुतम्'।

अ. हृ. १३।१२०

उक्त विवेचनानुसार स्तन का प्रमुख कार्य बालकों को दुग्ध के द्वारा पोषित करना है।

२-स्तन रचना—

स्त्री के दो स्तन या दुग्ध ग्रन्थियां होती हैं। ये ग्रन्थियां कुछ अर्द्धगोलाकार होती हैं तथा वसा त्वकाकि से आवृत्त रहती हैं। ये ग्रंथियां दूसरी पशुका से छठी पशुका तक उरोस्थि के किनारे में वक्षस्थल की मध्यरेखा तक फैली रहती हैं। ग्रन्थि के मध्य में एक वेलनाकार उभार होता है जिसे चूचुक या स्तनवृन्त कहते हैं। चूचुक के शिखर पर कुछ मांसतन्तु होते हैं जिनके मर्दन से मांस संकोचन के कारण स्तन दृढ़ एवं पीन हो जाते हैं। चूचुक के परितः श्याम वर्ण का एक एक मण्डल (घेरा) होता है जिसे स्तन-मण्डल (areola) कहते हैं।

धमन्यः संवृतद्वारा कन्यानां स्तनसंश्रिताः।

तसामेव प्रजातानां गर्भिणीनां च ताः पुनः ॥
............स्वाभावादेव विवृताः जायन्तेः ।
सु० नि० १०-१६।१७

कुमारावस्था में स्त्रियों के स्तन छोटे होते हैं। युवावस्था में प्रवेश करते ही ज्यों ज्यों जननेन्द्रियां बढ़ती जाती हैं त्यों-त्यों स्तन ग्रन्थियां भी बढ़ती जाती हैं। तथा इन ग्रन्थियों का बढ़ने का क्रम गर्भावस्था से बालक को स्तनपान प्रारंभ पर्यन्त चलता रहता है।

चित्र १२०—स्तन (दुग्ध ग्रंथि)

१—चूचुक या स्तन-वृन्त (*Nipples*), २-३-४-५-६—दुग्ध निर्माण करने वाली ग्रन्थियां। नं० ५ आपस में मिलती हुई नं० ३ पर दुग्ध-हौज बना रही हैं और नं० २ द्वारा चूचुक में खुलती हैं। ७—शिरा जाल। ८—स्तन-मण्डल (*areola*)।

३—स्तन्य उत्पत्ति—

पूर्वोल्लिखितानुसार स्तन के अन्तः भाग में छोटी छोटी ग्रन्थियों का एक व्यूह सा रहता है। ग्रन्थियों का स्राव (दुग्ध) छोटी दुग्ध हारिणी प्रणालियों में एकत्र होकर बड़ी प्रणालियों में आता है। बड़ी प्रणालियां संख्या में १५ से २० तक होती हैं। इनका मुख चूचुक में खुलता है। स्तन ग्रन्थियों की क्रिया इन्हीं वातनाड़ियों के स्वाधीन है। प्रति मास स्त्री बीज से उत्पन्न हुआ एक अन्तःस्राव (ईष्ट्रिन) स्तनों को दुग्धोत्पादन के प्रयोजन से पुष्ट करता है। यही द्रव्य गर्भाशय में पहुँच उसमें गर्भावस्थोचित परिवर्तन लाता है। यदि गर्भ स्थिति न हुई हो तो इसकी क्रिया दोनों स्तनों पर लुप्त होजाती है। परिणामतया स्तन पटक जाते हैं तथा गर्भाशय से आर्तव के रूप में अपरा से भी ऐसा स्राव होता है। पोषणिका का अन्तःस्राव स्तनों को दुग्ध की प्रवृत्ति के लिए प्रेरित करता है। दुग्ध भर जाने से दुग्ध हारिणियां विवृत होकर स्तनों को और पीन बना देती हैं।

४—शुद्ध स्तन्य (दुग्ध) के लक्षण—जिस प्रकार स्त्री-स्मरण, स्पर्शादि से शुक्र का आविर्भाव होता है वैसे ही सन्तान के स्पर्श, दर्शन, चुम्बन, ग्रहण और स्मरण मात्र से वात्सल्यवशात् स्तन्य च्युरित होता है। यथा—

तदेवापत्य संस्पर्शाद्दर्शनात् स्मरणादपि।
ग्रहणाच्च शरीरस्य शुक्रवत् संप्रवर्तते ॥
स्नेहो निरन्तरस्तत्र प्रसवे हु तुरुच्यते ॥
सु० नि १०-२१।२३

प्राकृत दुग्ध की उत्पत्ति प्रसव के तीसरे दिन से होती है। प्रसव के प्रथम दो दिन दुग्ध का भिन्न स्वरूप होता है। इस दुग्ध को ऋषियों ने 'पीयूष' की संज्ञा दी है। पुरानी महिलायें इस दुग्ध को पिलाना उचित

—शेषांश पृष्ठ ४२८ पर।

स्तन रोग

श्री शेख फय्याज़ खां विशारद

(१) सूजन—स्तनों की सूजन का प्रधान कारण है कि शिशु का बीमारी के कारण दुग्धपान न कर सकना या दुग्ध से पूरित स्तन पर तनिक आघात लगना भी सूजन का कारण बन सकता है। जिस माता के दुग्धपायी शिशु के अतिरिक्त अन्य बड़ा बच्चा भी हो तो वह क्रीड़ा में माता से क्रुद्ध होकर चोट आदि भी लगा सकता है। अन्य कारण भी बन सकते हैं जिनका सम्बन्ध अन्य रोगों से हो सकता है। इसका विचार आगे किया जायगा।
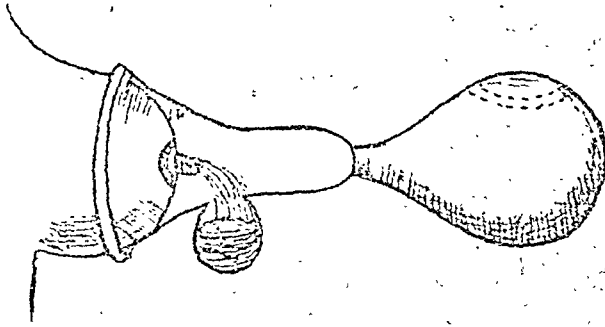
चित्र १२१

ब्रैस्ट पम्प द्वारा दूध निकालना

यदि साधारण आघात के कारण या झटका पड़ने के कारण सूजन आ गई हो तो साधारण उपचार करने से भी ठीक हो सकता है। यथा—

१—ब्रेस्ट पम्प द्वारा दुध निकालना

२—गर्म पानी से सेकन क्रिया करना

३—हाथ की नाड़ी खटकाना—यह साधारणतया प्रचलित नहीं है परन्तु कुछ अभ्यास से ठीक रीति ज्ञात हो सकती है।

जिस तरफ का स्तन सूज गया है उसके दूसरी ओर का हाथ लेकर उसके अंगूठे की प्रधान नस जोर से खटका दी जाती है और २-४ घण्टे में ही सूजन तथा उसके कारण ज्वर आदि दूर हो जाते हैं। मेरी माता और स्त्री के पास अनेक औरतें आती हैं और बिना दवा के लाभ प्राप्त करती हैं।

चित्र १२२

इसका ठीक तरीका चित्र द्वारा ज्ञात होगा। अंगूठे से दबाकर खटकाना चाहिये। इसके साथ ही बगल की प्रधान नस भी खटका सकते हैं (चित्र १२२-१२३) शीघ्र लाभ होगा।
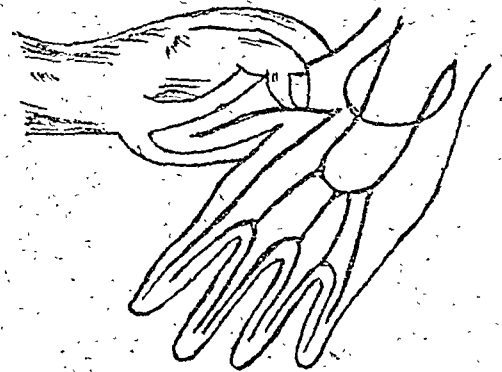
चित्र १२३

अंगूठा द्वारा नाड़ी खटकाना

यदि इसका पूर्ण अनुभव न हो तो सेकन क्रिया से और दूध निकालने से लाभ हो जाता

है। सेकने के लिए नमक गर्म करके कपड़े में ढीली सी पोटली बनाकर सेकना चाहिए। नमक के स्थान में गरम रेत से भी काम चल सकता है।

(२) पोस्त के डोंडे (अफीम पुष्प की ढोडी) पानी में उबाल कर कपड़ा गर्म पानी में तर करके निचोड़ना चाहिये और गर्म सुहाता हुआ सेक करना चाहिये। या

(३) वेलाडोना प्लास्टर लगाइए।

(४) स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण या घोड़ाचोली रस द्वारा कोष्ठ शुद्धि करना भी आवश्यक होगा।

पुरानी सूजन—वास्तविक कारण ज्ञात करिये। यदि अन्य रोग के प्रभाव से हो तो मूल कारण भी पहले दूर करने का प्रयत्न कीजिए।

पीड़ा पकने की तय्यारी करे तो पुल्टिस आदि बांधकर जल्द पकाइये। ऐसी अवस्था में शिशु को दूसरा दूध पिलाइए। मवाद निकलने पर या चीर कर मवाद निकालिए। घाव शुद्ध करने का प्रयत्न करना चाहिए। चीरते समय ध्यान रखिये कि चीरा आड़ा न दिया क्योंकि जाय नसें कट जाने से कठिनता से घाव मिलता है। नसों के समानान्तर थोड़ा सा काटकर मवाद निकालिये।

स्तन का फोड़ा—कण्ठमाला के कारण से होने वाला फोड़ा या निर्बलता, कोष्ठबद्धता, उदर में कृमि आदि से भी कई प्रकार की पीड़ा से भी फोड़ा होता है। कण्ठमाला के कारण से होने वाला फोड़ा यदि ठीक भी हो जाय तो दूसरी बार अन्य प्रसव काल में भी फिर फोड़ा निकल सकता है। एक स्त्री को मैंने देखा कि उसे ५ बार प्रत्येक प्रसव के समय यही उपद्रव हुए और बालक को मृत्यु मुख में जाना पड़ा। गांवों में अन्धविश्वास के कारण और देवताओं का दोष बताकर तन्त्र विद्या का ढोंग रचाने वाले टोटके पर विश्वास दिलाकर दोष बढ़ाते गये। एक ठाकुर की स्त्री को यही गड़बड़ी थी। उसने स्त्री को कुलच्छनी कहकर अपमानित करना भी प्रारम्भ किया था, परन्तु उचित उपचार करने पर उसे चिरायु पुत्र प्राप्त हुआ।
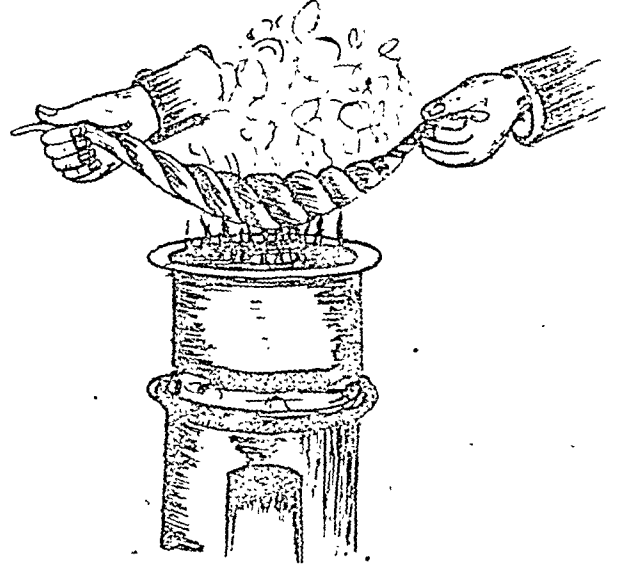
चित्र १२४—सेकने की विधि

साधारण गांठ—स्त्रियां अक्सर मामूली समझ कर ध्यान नहीं देतीं और पीड़ा के कारण दूसरा स्तन ही बच्चे को पान कराती हैं इसलिए पीड़ा-युक्त स्तन में दुग्ध केशिकाएं सूखकर स्तन बेकार हो जाता है और शिशु पोषण का कार्य एक ही स्तन को करना पड़ता है और शारीरिक कुरूपता आ जाती है।

स्तन में गहरा फोड़ा—उथला फोड़ा हो तो पीड़ा अधिक होती है और पिलपिलाहट भी होती है। गहरी गांठ या फोड़ा हो तो स्तन सूजा हुआ होता है, पिलपिलाहट नहीं होती, पीड़ा का स्थान अधिक गर्म होता है। अधिक पीड़ा के कारण बगल में भी गिल्टी (Lymphatic gland) सूज जाती हैं और ज्वर भी हो सकता है। फोड़ा पुराना पड़ने पर दबाने से भी दर्द नहीं होता परन्तु चीरा लगाने पर पीव निकलती है। यदि इन फोड़ों का रोग पुराना हो जाय तो अपने आप फूटने वाला फोड़ा (नासूर) बन जाता है और पीव के साथ दूध

भी निकलता है। घाव का मुख चौड़ा चीर कर खोलिए।

चीरने के स्थान को कृमि नाशक घोल से धोकर आइडोफार्म बोरिक या कार्बोलिक आइल या तूतिया का अर्क (Copper sulphate lotion) या सफेदा (Zinc sulph. lotion) से नित्य धोकर कसकर पट्टी बांधने से नासूर शीघ्र भर जाता है।

ज्वर और कमजोरी के लिए भी ज्वर नाशक औषधि और शक्तिदायक वस्तुऐं सेवन कराई जानी चाहिए।

स्तन वृद्धि—आवश्यकता से अधिक स्तन बढ़ जाना भी अच्छा नहीं। गर्भाशय के रोगों के कारण भी यह व्याधि हो सकती है। वेलाडोना प्लास्टर लगाना चाहिए। कोई रोग न हो तो केवल मस्ती और वासना की चाह वाली स्त्रियों को भी ऐसा हो सकता है। उन्हें व्रत आदि रखकर शरीर को संयम से रखना चाहिए।

क्रूर गांठे—स्तनों में कभी कभी क्रूर गांठे निकल आती हैं जिनमें पीड़ा हुआ करती है। यदि काटकर निकाल भी दें तो कभी कभी फिर निकल आती हैं। अधिक काल तक कुमारी रहने वाली स्त्रियों या विधवाओं के भी ३०-३५ वर्ष की अवस्था में हुआ करती हैं।

स्तन की नाड़ियों की पीड़ा—सूजन युक्त पीड़ा स्थूलकाय स्त्रियों को यौवन काल में हुआ करती है।

कारण—ऋतु की अनियमितता तथा रक्त की कमी के कारण भी हो सकती है। शोक, अधिक परिश्रम करने से भी हो सकती है। यह पीड़ा अक्सर ऋतुकाल के पहले या साथ ही आरम्भ होती है। स्तन छूने से गर्म तथा कठोर होता है। कभी कभी इसके साथ ऋतु कष्ट या हिस्टेरिया भी होते देखा गया है।

गांठे काट कर निकाली जा सकती हैं। साधारण अवस्था में तारपीन लगाकर पोटली द्वारा सेक करना ही काफी होता है। कभी असह्य वेदना हो तो 'अहिफेन सूची-वेध' देकर राई की पुल्टिस बांधनी चाहिए या लेप करना चाहिये। कोष्ठ शुद्धि का भी ध्यान रखना चाहिए। गुलकन्द आदि का प्रयोग करते रहना चाहिये। उपदंश रोग या रक्ताल्पता जो भी कारण हो उसका भी उपाय करना चाहिये। ऋतु विगाड़ के कारण से हो तो हींग तथा एलुवा दोनों ५ ग्रेन गोली बनाकर खिलावें।

बिटनी के रोग (*Sore nipple*)

कोमल स्वभाव वाली स्त्रियों को स्तन पान कराते समय पीड़ा हो जाया करती है। कुसमय दुग्ध पान कराने या बालकों के दांत निकलते समय उनके मसूढ़ों में खुजलाहट के कारण खूब दबाया करते हैं। उस काल में कोई एक या दो दांत निकलने के समय भी स्तन पर चोट लगने के कारण होता है।

स्प्रिट, कपूर आदि के घोल से धोते रहना चाहिये। जिंक आक्साइड बुरकते रहना चाहिये। बिटनी जब इस कारण से सूज जाती है तो भी दूध नहीं निकलता। बच्चे को पिलाने से पीड़ा बढ़ जाने का खतरा हो तो पम्प द्वारा दूध धीरे-धीरे निकाल देना चाहिये।

त्वचा रोग के कारण भी बिटनी पर प्रभाव हो सकता है। कार्बोलिक साबुन से धोकर कार्बोलिक मरहम या जिंक मरहम या नीम का मरहम लगाना चाहिए।

—श्री शेख फय्याज खां विशारद
भीनमाल (जालोर)

स्तन रोग

श्री डा० अनन्तराम शर्मा D. I. M. S.

स्तन परीक्षा—

दर्शन—रोगी को बिठाकर उसके स्तन पूर्णतः नग्न कर देने चाहिये। तदनन्तर सामने की ओर का परीक्षण कर बाद में स्तनपार्श्व का निरीक्षण किया जाता है।

सर्व प्रथम चूचुकों को देखा जाता है जो प्रायः एक ऊंचाई पर और देखने में एक ही जैसे होते हैं। किसी एक चूचुक का पीछे की ओर हटना (Retraction) एक प्रकार के घातक अर्बुद कारसीनोमा (Carcinoma) की प्रारम्भिक अवस्था का सूचक है। ऐसा कभी कभी बाल्यकालीन स्तन विद्रधि के परिणाम स्वरूप भी होता है। ऐसी अवस्था में रोग इतिवृत्त मिलता है। स्तनवृंत पर यदि विदार (crack) उपस्थित हो तो यह विद्रधि का सूचक है। कृष्ण भाग (Areola) के वर्ण की प्रगाढता आदि ध्यान से देखने योग्य है। सगर्भावस्था में यह रंग अधिक गाढा हो जाता है (स्तनयोः कृष्ण मुखता-सु०) यदि रुग्णा की दोनों भुजाओं को सिर से ऊपर उठाने के बाद स्तनों का परीक्षण किया जाय तो स्तनार्बुद आदि का उभार (Lump) अधिक स्पष्ट दीखता है।

स्पर्श—रुग्णा पीछे खड़े होकर शल्यक दाहिने स्तन को अपने वाम हस्त से और वाम स्तन को दाहिने हाथ से स्पर्श करता है। अंगुलियों और अंगुष्ठ के मध्य में लेकर स्तन के प्रत्येक भाग को भलीभांति टटोलना चाहिये। अन्त में अंगुलियों को चपटा कर (flat hand) स्तन को दबाकर परीक्षण करना चाहिये।

स्पर्श परीक्षण के लिए स्तन को चार भागों में विभक्त किया जाता है। यह विभाजन स्तनवृंत को केन्द्रित कर खड़ी और आड़ी रेखाओं द्वारा किया जाता है। सर्व प्रथम (१) ऊपर और अन्दर के भाग का स्पर्श कर (२) ऊपर और बाहर के भाग का परीक्षण करना चाहिये। तदनन्तर (३) नीचे और अन्दर के भाग का और बाद में (४) नीचे और बाहर के भाग का परीक्षण किया जाता है। (चित्र संख्या १२५ देखिये)।

स्तन चूचुक के स्पर्श परीक्षण में यह भी देखना होता है कि इसमें से किसी प्रकार का स्राव तो नहीं आरहा है। रक्त सहित स्राव दुग्ध नलिकाओं के पैपिलोमा या कारसीनोमा का सूचक है।

१ २ ३ ४ कक्षीय कोण स्तनवृंत

चित्र १२५

सबके बाद स्तन गात्र (Corpus mammae) का परीक्षण होता है। किसी किसी में यह द्वितीय से छठी पर्शुका तक और वक्षास्थि की बहिः सीमा से कक्षा मध्य रेखा तक फैला होता है। कक्षीय ग्रंथियों तथा कभी कभी ग्रैवेयिक ग्रंथियों का परीक्षण भी रोग निर्णायक होता है—

यदि स्तन में कोई उभार (Lump) हो तो निम्न बातें ध्यान पूर्वक देखनी चाहिये।

१—उभार का आकार (size) तथा स्तन स्वरूप (shape)
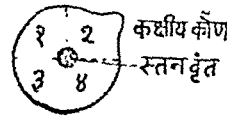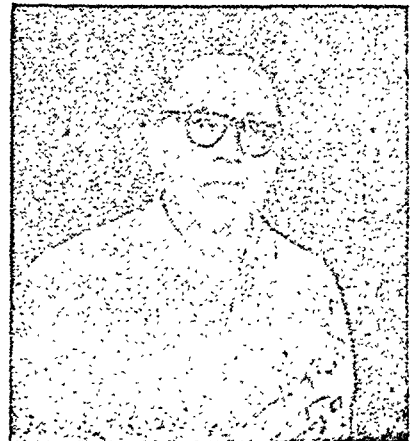
२. स्थिति—उथला है या गहरा, चूचुक के समीप है या दूर, स्तन के कौन से चतुर्थांश में है ?

३. बहिःस्तर—श्लक्ष्ण हो तो कोष्ठीय (cyst) या साधारण अर्बुद की संभावना होती है। विषम हो तो जीर्ण स्तन विद्रधि या घातक अर्बुद (Carcinoma) हो सकता है।

४. घनता—मृदु हो तो शीत विद्रधि (Cold-abscess); स्थिति स्थापकता (elastic) हो तो, कोष्ठीयार्बुद, पत्थर की तरह कठोर हो तो स्तीरस कारसिनोमा (scirrhous carcinoma) हो सकता है।

५. गति शीलता—इसमें यह देखना चाहिये कि उभार की गति स्तन के साथ है या पृथक्; इसका चूचुक से कोई सम्बन्ध है ? उरश्छादनी पेशी से तो सम्बन्धित नहीं है ?

साधारणतः ८०%स्तन के उभार घातक अर्बुद होते हैं। कार्सिनोमा को आरम्भ में जान लेना नितान्त कठिन होता है।

स्तनों की सहज विकृतियां—

स्तनवृन्त—

ऐसा बहुत कम होता है कि स्तनवृन्त(Nipples) उपस्थित ही न हों। अस्तनावस्था (Amazia) में ऐसा होता है।

स्तनवृन्तों की असाधारण संख्या-भी देखी जाती है जो पुरुषों में अधिक पाई जाती है। इस प्रकार के स्तनवृन्त कक्षा के बाहर के भाग से आरम्भ होकर वस्ति प्रदेश (groin) के बहिर्भाग तक देखने को मिलते हैं।

स्तनवृन्तों का पीछे हटना (*Retraction*)—यह अवस्था कई रोगों की परिचायक है। यदि यह स्तनसंकोच काफी समय का हो तो इसका कारण बाल्यकाल और पूर्ण यौवन प्राप्ति के मध्य में होने वाले परिवर्तनों का अभाव होता है। अथवा बाल्य काल में हुए स्तनशोथ या स्तन विद्रधि के परिणाम स्वरूप होने वाला तन्तुभवन (Fibrosis) होता है। यह घातक अर्बुद (carcinoma) का भी सूचक होता है यदि यह अवस्था नवीन हो।

स्तनवृन्त का अच्छी तरह उभरा न होना—इससे स्तन पान के समय कष्ट होता है "सुख प्रपानौ—च० शा० ८-५६" शिशुमुख संक्रमण का केन्द्र होता है। स्तनचूचुक छोटे होने से शिशु को अधिक प्रयास करना होता है जिससे व्रण होने पर स्तनशोथ, विद्रधि आदि हो जाते हैं। इसी हेतु चरक ने स्तनसम्पत् में "युक्तपिप्पलकौ" लिखा है जिसका अर्थ चक्रपाणि ने "उच्चैःस्तनवृन्तौ" किया है। (च० शा० ८-५६)

:: पृष्ठ ४२३ का शेषांश ::

नहीं समझतीं परन्तु इस दुग्ध को अवश्य पिलाना चाहिए। इससे बालक को किसी भी प्रकार की हानि नहीं होती। शुद्ध दुग्ध ही शिशु का जीवन एवं शरीरगत धातुओं को पुष्ट बनाये रखने में सात्म्य है। यह रक्तपित्त एवं नेत्र रोगों को हितकर है।

निर्दोष स्तन्यस्य लक्षणानि—

यत् क्षीरमुदके प्रक्षिप्तं एकीभवति पांडुरम्।
मधुरं चातिवर्णं च प्रसन्नं तद् विनिर्दिशेत्॥
सु० नि० १०-२५

स्तन्य परीक्षा जल में करनी चाहिए। जो दुग्ध जल में डालने से शीतल, निर्मल, पतला, शंख के सदृश आभायुक्त, जो जल में न तो उत्प्लावित होता हो और न अवसादित होता हो वही स्तन्य अविकृत पुष्टिकर एवं आरोग्यकर समझना चाहिये।

"तच्चेच्छीतलमम्लं तनुशंखावभासमप्सुन्यस्तमेकीभावं गच्छत्यफेनिलंमतन्तुमन्नोत्प्लवतेऽवसीदति तच्छुद्धमितिविद्यात्॥ सु० शा० स्था० १०-३१

—श्री रामेश्वरदयाल द्विवेदी
आयुर्वेदरत्न, शास्त्री, B. A. विशारद
श्री सरस्वती विद्यापीठ कोटा

स्तनवृन्त विदार (*cracked nipple*)—प्राय: देखी जाने वाली इस अवस्था का कारण दुग्धपान काल में इनकी अस्वच्छता है। पूययुक्त स्तन शोथ से पूर्व भी स्तनविदार देखा जाता है।

कृमिघ्न व्रण बंधन (antiseptic bandage) से स्तन विदार ठीक हो जाता है। चिकित्सा काल में स्तन से निरन्तर दूध निकलते रहने से व्रण स्थान पर दबाव नहीं पड़ता।

स्तनवृन्त में पामा, केन्सर आदि रोग भी देखे जाते हैं।

स्तनवृन्त से अप्राकृतिक स्राव—नीरोग क्षीर स्तनों का दुग्धकालीन प्राकृतिक स्राव है जिसका काश्यप संहिता में लक्षण इस प्रकार है—

अव्याहत बलांगायुररोगो बर्धतेसुखम्।
शिशुधात्र्योरनापत्तिः शुद्धक्षीरस्य लक्षणम्॥

अर्थात् शुद्ध क्षीर वह है जिसके प्रयोग से शिशु तथा धात्री में कोई विकार न हो तथा जिससे शिशु शरीर की भलीभांति वृद्धि हो। किन्तु कुछ अप्राकृतिक स्राव भी पाए हैं जो रोग परिचायक होते हैं। इनका वर्णन इस प्रकार है:—

(१) पायस स्राव (*milky discharge*)—कई बार दुग्ध काल की समाप्ति के बाद भी स्तन वृन्तों से श्वेत रंग का स्राव निकलता रहता है जो स्तन नलिकाओं के तरलार्बुद (*Galactocele*) का सूचक होता है।

(२) रक्तयुक्त स्राव—यह दुग्धनलिकाओं के घातक अर्बुद (*Carcinoma*) का सूचक है।

(३) कृष्ण या हरितवर्णस्राव—तन्तुमय तरलार्बुद (Cyst of fibro-adenosis) के कारण ऐसा होता है।

(४) सपूयस्राव (*purulent discharge*)—स्तनविद्रधि में इस प्रकार का स्राव आता है।

आयुर्वेद में इस प्रकार के अप्राकृतिक स्रावों का वर्णन स्तन्यविकारों में किया गया है। श्यामारुण वर्ण वायु से, कृष्णपीत ताम्रावभास पित्त से, अत्यर्थ शुक्ल तथा पिच्छिल कफ से और सम्मिलित लक्षण त्रिदोष के कारण होते हैं। (च. शा.)

स्तन की सहज अप्राकृतताएं—

अस्तनावस्था (*Amazia*)—इसमें एक या दोनों ही स्तन अनुपस्थित होते हैं। इस प्रकार की स्त्री को आयुर्वेद में "षण्ढी" बताया है (अनार्तवाऽस्तनी षण्ढी-माधव योनिरोग)।

स्तन बहुलता (Polymazia)—कक्षा, वंक्षण, नितम्ब आदि अंगों पर भी स्तन देखे जाते हैं। ऐसी स्त्रियां त्रिस्तनी, तुरीय स्तनी आदि कहलाती हैं। ये स्तन दुग्ध काल में सक्रिय होते हैं। इस प्रकार की अप्राकृतिक अवस्थाओं का कारण वायु माना गया है (वातादीनां च कोपेन गर्भोविकृतिमाप्नुयात् —सु०)

पुरुष स्तन वृद्धि—(Gynaecomazia)-यौवन प्राप्तिकाल (puberty) में पुरुषों में एक या दोनों स्तनों की वृद्धि देखी जाती है। कभी-कभी उनसे खीस (colostrum) की तरह का तरल भी निकलता है।

अनावश्यक स्तनों की चिकित्सा स्तनच्छेदन (excision of the breast) है।

स्तन की विस्तृत वृद्धि (Diffuse hypertrophy)—सुश्रुत ने धात्री के अवगुणों में उसका लम्बस्तनी होना भी लिखा है। चरक 'नातिलम्बौ' को स्तन सम्पत् मानते हैं। यौबन प्राप्तिकाल में लड़कियों में और प्रथम गर्भावस्था में स्तनों की विस्तृत वृद्धि देखी जाती है। कभी-कभी इनकी लम्बाई बैठने पर घुटनों तक पहुंच जाती है। स्तन्यकाल की समाप्ति के बाद गर्भिणियों का यह विकार स्वत: शान्त हो जाता है। अन्यथा शस्त्रकर्म द्वारा स्तनच्छेदन (mammactomy) या स्तनांशच्छेदन (mammaplasty) किया जाता है।

स्तनाभिघात—

स्तनों पर अभिघात का लगना अतिसाधारण बात है। स्तन चूचकों से ऊर्ध्व और अधः क्रमशः स्तनरोहित और स्तनमूल नामक मर्म हैं जिन पर अभिघात से लोहितपूर्ण कोष्ठता तथा कफपूर्ण कोष्ठता होती है (सु०)। लोहितपूर्ण कोष्ठता रक्तार्बुद (haematoma) कहलाती है। यदि दुग्धयुक्त स्तन में किसी कारण से भेदन हो जाय तो वहां नाड़ीव्रण (milk fistula) होने का भय रहता है। अभिघातजन्य वसा तन्तुक्षय (Traumatic fat necrosis) भी देखा जाता है। यदि अभिघात का निश्चित इतिवृत्त न हो तो रोग निर्णय कठिन होता है। वसातन्तु क्षय में स्तन के अन्दर कहीं भी कठिन तथा वेदनायुक्त वृद्धि हो सकती है। ऐसी अवस्था में त्वचा का रंग रक्तवर्ण हो सकता है। इस रंग में तथा कोष्ठीय जीर्ण विद्रधि और घातक अर्बुद में सापेक्ष निदान कठिन होता है।

स्तन शोथ—

माधव ने स्तन शोथ तथा पाक का वर्णन इस प्रकार किया है—

सक्षीरी वाप्यदुग्धौ वा प्राप्य दोषः स्तनौ स्त्रियाः।
प्रदूष्यमांसं रुधिरं स्तनरोगाय कल्पते ॥

अर्थात् स्त्रियों के स्तनों में चाहे वे दुग्धयुक्त हों अथवा दुग्ध रहित हों दोष कुपित होकर स्तन रोग (स्तन रोग शब्देन 'स्तन कोण' इति प्रसिद्धो रोग उच्यते-मधुकोष) उत्पन्न करते हैं। स्तन शोथ निम्न अवस्थाओं में पाया जाता है—

(१) शैशव स्तन शोथ—उभय लिंगों में यह समान है। जन्म से तीसरे या चौथे दिन यदि शिशु के स्तन को धीरे से दबाया जाय तो बिन्दु भर रंगरहित तरल निकाला जा सकता है। इसके कुछ दिन बाद थोड़ा सा दूधिया तरल स्राव निकलता है जो तृतीय सप्ताह में लुप्त हो जाता है। इसके कारण के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि जो ग्रन्थिस्राव (hormone) मातृ स्तनों को उत्तेजित करता है वही गर्भस्थशिशु की स्तन ग्रन्थियों को भी प्रभावित करता है। यह क्रियाशारीर सम्बन्धी शोथ है जिसमें संक्रमण होने पर पाकादि हो सकते हैं। यह अवस्था शैशव स्तन शोथ (Mastitis Neonatorum) कहलाती है।

(२) यौवन प्राप्ति (Puberty) काल का स्तन शोथ—लगभग १४ वर्ष के बालकों में यह अवस्था पाई जाती है। इसमें प्रायः एक स्तन वेदना और शोथ युक्त हो जाता है। परीक्षण करने पर स्तन बढ़ा हुआ, स्पर्शासहिष्णु और कठिन होता है। इस शोथ में पाक कभी नहीं होता। १४-१५ दिन में शोथ स्वतः शान्त हो जाता है किन्तु स्तनकाठिन्य कई सप्ताह बना रहता है।

(३) स्थानीय क्षोभ (Local irritation) से होने वाला स्तन शोथ - यह अवस्था उस समय उत्पन्न होती है जब स्तनों पर किन्हीं कारणों से घर्षण होता रहा हो।

(४) दुग्ध संचय (Milk engorgement) से उत्पन्न स्तन शोथ—जब बच्चा दूध पीना छोड़ देता है (Weaning time) उस समय दुग्ध संचय से शोथ की उत्पत्ति होती है। ऐसी अवस्था में दूध को निकालते रहना चाहिये अन्यथा संक्रमण सम्भव है। रुका हुआ दूध उत्तम जीवाणुवर्धक होता है।

(५) स्तन्यकालीन (Lactation) स्तन शोथ—सभी स्तन-शोथों में यह सर्व साधारण है। अन्यों से इसमें यह विशेषता है कि यह प्रायः पक जाता है। यह प्रथम स्तन्योत्पत्ति के प्रथम मास में अधिक होता है। स्तन शोथ का स्तन्योत्पत्ति से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण ही माधव ने सूतिका रोग के बाद स्तन रोग निदान का वर्णन किया है।

स्तनों के भीतरी भाग में संक्रमण निम्न दो प्रकार से पहुँचता है।

(१) पूय जनक जीवाणु जैसे स्टेफिलोकोकाई दुग्ध-नलिकाओं के (विवृत धमनी मुखेनाविश्य-श्री कण्ठ:) मार्ग से प्रविष्ट होते हैं और दूध को जमाकर उसमें वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

(२) स्ट्रेप्टोकोकाई स्तन वृन्त विदार से स्तन के अन्दर प्रविष्ट होते हैं। स्तन शोथ तथा स्तन विद्रधि का प्रधान हेतु स्तन वृन्त विदार होता है। संक्रमणयुक्त शिशु के लालास्राव से संक्रमण विदार मार्ग से स्तन के अन्दर पहुंचता है।

इन कारणों से उत्पन्न स्तन शोथ में शोथ के सम्पूर्ण लक्षण पाए जाते हैं।

वृद्ध जीवकीय तन्त्र में तृण, तुष, कीट, शूकादि की "वज्र" संज्ञा बताई है और इनके खाने से वायु प्रकोप द्वारा स्त्री के स्तनों में विकार उत्पन्न होते हैं। ज्वर, तृष्णा, अंगमर्द आदि शारीरिक लक्षणों के अतिरिक्त निम्न स्थानिक लक्षण भी होते हैं—

> शोथ शूल रुजादाहैः स्तनः प्रष्टुन शक्यते।
> स्तनकीलकमित्याहुर्भिषजस्त विचक्षणाः।

अर्थात् स्तन शोथ, शूल, वेदना और दाह से युक्त होता है तथा उसमें स्पर्शासहिष्णुता (Tenderness) होती है। यह अवस्था स्तनकीलक कहलाती है क्योंकि स्तन शोथ के कारण कील की तरह कठोर होता है। (कीलवत् कठिनोऽगेषु बाधमानो हि तिष्ठति—का. सं.)

चिकित्सा—

पूर्ण विश्राम, बच्चे को दूध पिलाना बन्द कर देना चाहिये (सम्भवन्ति महारोगा अशुद्धक्षीर सेवनात्-का. सं.)। एक तो मुख स्तन नाड़ी यन्त्र* (Breast pump) द्वारा निरन्तर दूध निकालते रहना चाहिये (तस्याः स्तनौ सततमेव च निर्दुहीत-सु०)।

* एकतोमुखी स्तननाड़ी को चित्र १२१ में देखें

तीव्र स्तन विद्रधि—

स्तन में विद्रधि के निर्माण स्थल प्रायः उपत्वचा, स्तन का मध्य भाग और स्तन का पृष्ठ भाग होते हैं। स्तन के मध्य में सबसे अधिक संख्या में विद्रधि उत्पन्न होती है।
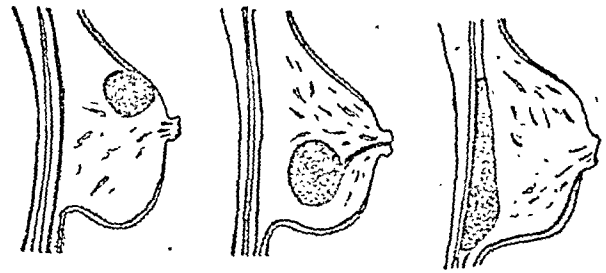
चित्र १२६ उपत्वचीय Subcutaneous

चित्र १२७ अन्तः स्तनीय Intramammary

चित्र १२८ पश्चात्स्तनीय Retromammary

तीव्र स्तन विद्रधि की अन्तः स्तनीय अवस्था दुग्धयुक्त स्तन वाली स्त्रियों में सर्वाधिक पाई जाती है (सक्षीरौ गर्भवत्याः श्री कण्ठः; सूतानां गर्भिणीनां वा सम्भवेत् श्वयथुर्घनः—वा. नि. ११-२६)। शरीर के बाह्य अंग में होने वाली विद्रधि में जो शोथ, शूल, स्पर्शासहिष्णुता आदि लक्षण होते हैं वे सभी लक्षण इसमें तीव्र होते हैं (बाह्य विद्रधि लक्षणः-वा.; लक्षणानि समानानि बाह्य विद्रधि लक्षणैः — सु. वि. १०-२६)।

उपत्वचा में होने वाली विद्रधि प्रायः स्तन के भीतरी भाग से सम्बन्धित नहीं होती। अन्तः स्तनीय विद्रधि में पूय सम्पूर्ण अंग में फैल जाता है (शीघ्रं स्तनोहि मृदुमांसतयोपनद्धः सर्वं प्रकोप मुपपावदीर्यते—च. सु. चि.)।

स्तन विद्रधि के ८० % रोगी इसी प्रकार के होते हैं। आयुर्वेद में स्तन विद्रधि नाम से इसी भेद का उल्लेख है। सर्वाधिक पाए जाने के कारण

ही मधुकोष कार ने 'स्तनरोग शब्देन स्तन कोप-इति प्रसिद्धो रोग उच्यते' लिखकर उस काल में भी इसका अधिक पाया जाना घोषित किया है। पाकोत्पत्ति होने पर लगभग स्तन का चतुर्थांश प्रभावित हो जाता है। उपेक्षा करने पर पाक और भी अधिक भाग में फैल जाता है (सर्वं प्रकोपमुपयाति—सु०) ऐसा भी हो सकता है कि पूय स्तन के अनेक स्थानों में उपस्थित हो। चिकित्सा न करने पर कोथ उत्पन्न हो जाता है।

पश्चात्स्तनीय विद्रधि में पूय स्तन के पीछे स्थित होता है। कई वार इसका वास्तविक स्तन से कोई संबंध नहीं होता। प्रायः स्तन विद्रधि के इस प्रकार के कारण पशु का क्षय आदि होते हैं। इसमें स्तन बाहर की ओर को आजाता है। यदि इसमें पूय निर्माण होजाय तो वह स्तन के चारों ओर कई स्थानों पर विशेषतः अधोभाग में प्रतीत होता है।

चिकित्सा —

रुग्णा को पूर्ण विश्राम कराना चाहिए (शयानः परिपालयेत्-सु. सू. १९-२९)। पीडितस्तन को गोफणा बंध(Sling bandage)से बांधने पर सहारा मिलता है जिससे आराम प्रतीत होता है। स्तन में स्तन्य संचय से तनाव अधिक हो जाता है अतः उसे ब्रैस्ट पंप द्वारा निरन्तर खाली करते रहना चाहिए। (सर्वास्वामाद्यवस्थासु निर्दुहीत च तत्स्तनम्—वा. चि. १३-२९, निर्दुहीत स्रावयेत्—अरुणदत्त, तस्याः स्तनौ सततमेव च निर्दुहीत—सु०)इसके साथ साथ ऐसी औषधि का प्रयोग भी करना चाहिए जिससे स्तन्य सूख जाय जैसे ताम्बुल तथा कर्पूरपत्र अथवा Stilbaestrol $\frac{1}{130}$ से $\frac{1}{30}$ ग्रेन की मात्रा में प्रयुक्त करते हैं। शोथ को दूर करने के लिये तथा पूयावरोध के लिये पैनिसिलिन, स्ट्रेप्टोमाईसिन, टैरामाईसिन आदि का प्रयोग अत्यधिक सन्तोष-जनक है।

रुग्णा को घृत पान कराकर वमन कराने से दोष निर्हरण होता है (सु०)। शोथ शान्ति के लिये भावमिश्र ने जलौकापातन का उपदेश किया है। सुश्रुत ने पच्यमान विद्रधि में भी उपनाहन निषिद्ध बताया है। ऐसी अवस्था में केवल भोजन द्वारा ही पाचन का प्रयत्न करना चाहिए।

इतने पर भी यदि विद्रधि पाकाभिमुख हो और किसी स्थान पर पूय केन्द्र बन जाय तो इसका भेदन कर पूय के निरन्तर निकलते रहने की व्यवस्था के लिये निर्हरण नाड़ी (*Drainage tube*) प्रविष्ट करदी जाती है। उपत्वगीय विद्रधि में विशेष चिकित्सा की आवश्यकता नहीं पड़ती, साधारण व्रण चिकित्सा ही पर्याप्त होती है।

अन्तः स्तनीय विद्रधि में भेदन किया जाता है। साधारणतः भेदन में चूचुक तथा उसके चारों ओर के कृष्णभाग (areola) को छोड़ देने के लिये आयुर्वेद ग्रन्थों में स्पष्ट उल्लेख मिलता है जैसे—"परिहृत्य नाड़ीः कृष्णां च चूचुकयुगं विदधीत शस्त्रम्" सु० चि० १६-४२। इस श्लोकार्ध की तुलना के लिये pye (पाई) के निम्न शब्द पठनीय हैं—

Avoiding, when possible, the areola, a short incision is made in a line radiating from the nipple into what is believed to be a dependent part of the abscess cavity.

(अर्थात् जहां तक सम्भव हो चूचुक के चारों ओर के कृष्णभाग का भेदन नहीं करना चाहिये।)

शल्य शास्त्र के अधिकृत तथा ख्याति प्राप्त लेखक श्री हैमिल्टन बैली (Hamilton Bailey) और लव (Love) कृष्णभाग को बचाकर लगाए गये भेदन को सर्वाधिक उपयोगी बताते हैं।

(An incision following the Cutaneo-alveolar margin has a high cosmetic value and permits access to the whole of the interior of the affected segment--B. &L.)

इन्होंने अपने ग्रन्थ "शार्ट प्रेक्टिस आव सर्जरी" के नवीनतम संस्करण के पृष्ठ १०६२ पर

एक रेखा चित्र भी उपस्थित किया है जो हूबहू सुश्रुत के उपरोक्त कथन को प्रमाणित करता है।

पाटेयः पालयन् स्तन्यवाहिनाः कृष्णं चूचुकौ —वाग्भट्टः
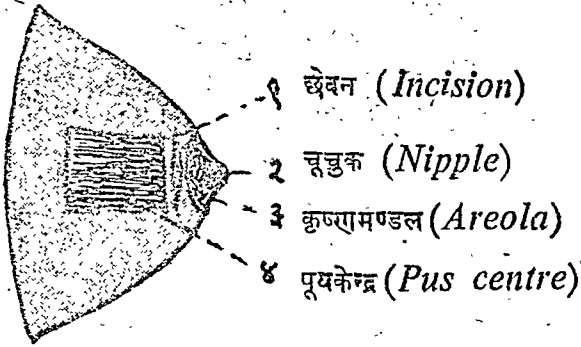
चित्र १२६

भेदन के बाद अंगुली प्रविष्ट कर सौत्रिक बन्धों को छिन्न भिन्न कर दिया जाता है। तदनन्तर विस्रावण नाड़ी का प्रयोग कर (स्राव्या विद्रधयः पंच··········स्तनरोगा विदारिकाः –सु.) व्रण बन्धन कर देना चाहिए। यह विस्रावण नाड़ी उत्तरोत्तर छोटी होती जाती है। स्तन विद्रधि के भेदन के बाद व्रण बन्धन बार बार नहीं बदला जाता। व्रण बन्धन का समय दोष, ऋतु तथा रोग की अवस्था पर निर्भर करता है।

अन्तःस्तनीय विद्रधि में पूय निर्हरण तथा व्रणरोहण के लिए एक और विधि अपनाई जाती है। यदि स्वाभाविक पूय मार्ग व्रण रोहण की दृष्टि से सन्तोषजनक न हो तो प्रतिभेदन (counter incision) किया जाता है। यह ऐसे स्थान पर किया जाता है जो पूयकेन्द्र के समीपतर हो और जिसके करने से स्वस्थ धातुयें अपेक्षाकृत कम नष्ट हों। ऐसी अवस्था में प्राकृत मार्ग का सीवन कर्म कर दिया जाता है। सुश्रुत ने "शल्यापनीय अध्याय" में इस विधि का विस्तार से उल्लेख किया है। शल्य निकालने की उत्तम विधि वह है जिसमें निकालते समय शरीर की धातुओं का नाश बिलकुल न हो या अत्यल्प हो। इस दृष्टि से नातिदूर स्थित शल्य को प्रतिलोम निकालना और दूर स्थित शल्य को दूसरी ओर भेदन कर अनुलोम निकालना चाहिये।

सर्वशल्यानां द्वावेवाहरण हेतू भवतः —प्रतिलोमोऽनुलोमश्च। तत्र प्रतिलोममर्वाचीन मानयेत्, अनुलोमं पराचीनम्। —सु० सू० २७-५

जीर्ण स्तन शोथ (*ch. Mastitis*) या विद्रधि—

तीव्र स्तन शोथ या विद्रधि से इस रोग का कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका कारण हारमोन्स का विशेषतः ओवरी या पिच्युटरी के ठीक तरह से क्रिया न करना माना जाता है। इस रोग का ठीक निर्णय करना अतीव कठिन है। इन ग्रंथियों के स्राव द्वारा स्तन मासिक धर्म के समय विशेषतः गर्भावस्था में प्रभावित होते रहते हैं। किंतु वृद्धावस्था के आरम्भ में इन स्रावों की कमी हो जाती है जिसके कारण स्तन छोटे हो जाते हैं या इनकी अस्वाभाविक वृद्धि होने लगती है। इस प्रकार स्तन के जीर्ण शोथ का कारण इन स्रावों की विकृति मानी जाती है। इसमें स्तन के अन्दर सौत्रिक-तन्तूत्पादन और दुग्ध नाड़ियों का विस्तार हो जाता है।

इसके दो प्रकार होते हैं। १—बहुकोष्ठीय (Lobular)—इसमें दोनों स्तन बढ़े हुये होते हैं। यह प्रकार युवा स्त्रियों में अधिक पाया जाता है। २—कोष्ठीय (Lobar)—इसका आकार छोटा होता है। यह एक ही स्तन में देखा जाता है और स्पर्श में कठिन होता है। इसको घातक अर्बुद से पृथक् करना अतीव कठिन होता है। ऐसा भी सम्भव है कि इन दोनों ही प्रकारों से रुग्णा को कोई कष्ट न हो।

चिकित्सा—पीड़ित स्तन को चिपकने वाले प्लास्टर (adhesive plaster) के द्वारा नीचे से स्कन्धास्थि की ओर को चिपका देना चाहिए। एक्सरे थैरापी से भी कभी कभी लाभ होता देखा गया है। हारमोन चिकित्सा भी करते हैं किन्तु इसका शुभ परिणाम संदिग्ध है। यदि इन उपायों से वेदना आदि में कोई लाभ न हो तो

स्तन का अन्तच्छेदन (Mammaplasty) किया जाता है।

दूसरे प्रकार कोष्ठीय में भेदन कर यह देखा जाता कि यह घातक अर्बुद तो नहीं। घातक अर्बुद होने पर सम्पूर्ण स्तन का छेदन (mammectomy) कर दिया जाता है।

स्तनक्षय (Tuberculosis)—

स्तन में क्षयरोग भी पाया जाता है। मुख्य रूप से इसका कारण पर्शुका में उपस्थित क्षय होता है जहां से संक्रमण स्तन तक पहुंचता है। इस हेतु से उत्पन्न स्तनशोथ पर्शुका के अनुसार लम्बाई लिए हुए होता है तथा स्पर्श में स्तन मृदु होता है। पूयोत्पादन होने पर नाडीव्रण हो जाता है। फुफ्फुसावरणकला तथा कक्षीय ग्रन्थियों से भी क्षय का संक्रमण हो सकता है।

चिकित्सा—स्थानिक तथा शारीरिक अवस्था के अनुसार चिकित्सा भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। यदि पर्शुका का क्षय कारण हो तो वहां लेखनकर्म कर व्रण चिकित्सा की जाती है। इसी प्रकार कक्षीय ग्रन्थियों के कारण होने पर उन्हें निकाल दिया जाता है। स्थानिक चिकित्सा के साथ-साथ रोगी की शारीरिक चिकित्सा भी करनी चाहिए।

स्तन का कोष्ठीय अर्बुद (Cysts)—

यह अवस्था स्तनों की तन्तुमय अप्राकृतता (Fibro-adenosis) के परिणामस्वरूप होती है। इस प्रकार के अर्बुद प्रायः संख्या में अनेक होते हैं। स्तनों में पाया जाने वाला इस प्रकार का शोथ प्रकाश पारदर्शक (translucent) होता है। १३ प्रतिशत रुग्णाओं के दोनों स्तन इस रोग से प्रभावित होते हैं। यदि एक ही अर्बुद हो तो उसका आकार ½ इञ्च से २ इञ्च तक होता है। प्रायः इसकी स्थिति स्तन के ऊर्ध्व बहिः चतुर्थांश में होती है।

चिकित्सा—तरलाचूषण (aspiration) कभी कभी लाभप्रद प्रमाणित होता है। यदि आचूषित तरल रक्त युक्त हो, या कोष्ठ शीघ्र ही पुनः भर जाता हो, अथवा आचूषण के बाद भी स्तन का उभार (lump) बना रहता हो तो यह कर्म नहीं करना चाहिए। उस अवस्था में केवल छेदन (excision) कर्म ही उपयुक्त होता है। यदि अर्बुदों की संख्या अधिक हो तो स्तनाधश्छेदन (Submammary excision) करना होता है।

स्तन का कैन्सर (Carcinoma)—

स्तन कैन्सर के किसी कारण का अभी तक पता नहीं चल सका है। अभिघात आदि का भी इस रोग से कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। कैंसर प्रायः एक ही स्तन में होता है। पुरुष स्तनों में यह रोग अत्यल्प (१·५ प्रतिशत) होता है। यद्यपि बड़ी उम्र तक कुमारी रहने वाली स्त्रियों (spinsters) में भी यह रोग होता है तथापि ४० से ५० वर्ष की उन स्त्रियों में सर्वाधिक पाया जाता है जो बच्चों

चित्र १३० दक्षिण स्तन का कैंसर
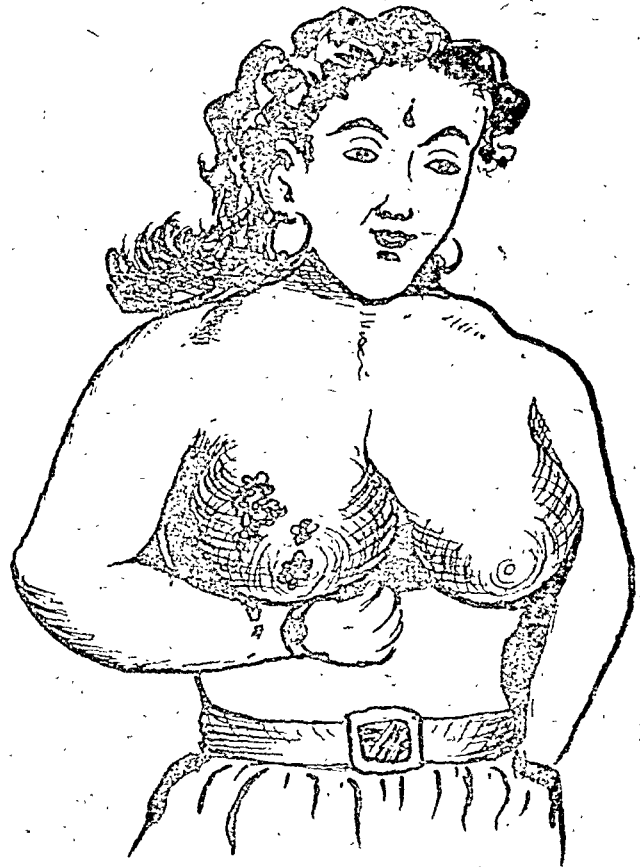
को दूध पिलाती रही हों। ४० से ५० वर्ष की आयु वाली स्त्रियों में यह रोग २% होता है। स्तन के किसी भी भाग में रोग हो सकता है किन्तु ऊर्ध्व-बहिर्भाग में सर्वाधिक (६० %) पाया जाता है।
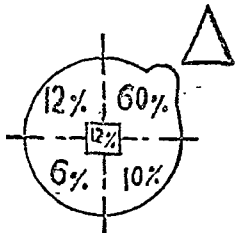
चित्र १३१
स्तन के घातक अर्बुद (Carcinoma) का स्तनांशों का प्रतिशत दर्शक चित्र

यह मन्द भाग्यता ही है कि इस रोग से पीड़ित स्त्रियां यही कहती सुनी जाती हैं कि स्नान के समय उसने अपने स्तन में उभार का अनुभव किया था किन्तु वेदना रहित होने के कारण "उसने कोई ध्यान नहीं दिया"। ऐसे रोगियों को चिकित्सा के लिए आने का विशेषज्ञों ने आठ मास का अनुपात निकाला है। प्रौढ़ा स्त्रियों को चाहिये कि जब कभी कोई उभार स्तनों में प्रतीत हो तो शीघ्र ही अपने चिकित्सक से विमर्श करें।

कैंसर से सर्वाधिक पीड़ित होने वाले अंगों में गर्भाशय के बाद स्तन ही हैं। दक्षिण स्तन की अपेक्षा वाम स्तन इस रोग से अधिक पीड़ित होता है।

चित्र १३२
स्तन कैंसर से आयु का संबंध

कैंसर के कई प्रकार देखने में आते हैं जिनमें से मुख्य मुख्य इस प्रकार हैं।
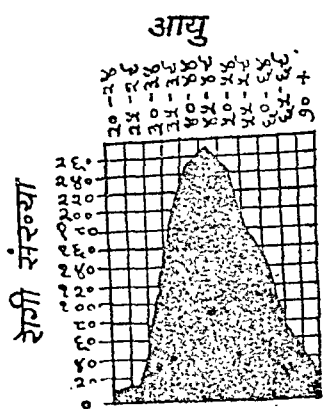
शोथ युक्त कैंसर (Mastitis carcinoma)–इस भेद से पीड़ित रोगी २ प्रतिशत होते हैं। दुग्धावस्था तथा गर्भावस्था से इस रोग का कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। इस भेद से पीड़ित होने की अनुपातिक आयु ४७ वर्ष है। प्रायः प्रभावित स्तन वेदनायुक्त होता है। यह लक्षण साधारण कैंसर (स्तन का) में नहीं पाया जाता। इसमें शोथ के सभी लक्षण पाए जाते हैं। विद्रधि और इस अवस्था में भेद न किये जा सकने के कारण भेदन (incision) कर दिया जाता है। शोथ का अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत होना, ज्वर तथा श्वेत कायाणूत्कर्ष का न होना तथा एन्टिबायोटिक्स से कोई लाभ न होना शोथ युक्त कैंसर की उपस्थिति के द्योतक हैं।

२. मैडुलरी कैंसर—१७ प्रतिशत स्तन कैंसर में यह प्रकार पाया जाता है। २५ से ३५ वर्ष की आयु वाली स्त्रियों में सबसे अधिक पाया जाता है। स्तन का उभार अधिक कठिन नहीं होता। यह अधिक घातक प्रकार नहीं है। बड़े आकार और तीव्र वृद्धि के कारण घातक होने के पूर्व ही रोगी शल्य कर्म करा लेता है।

३. कठोर (Scirrhous) कैंसर—६० प्रतिशत यही प्रकार होता है। यह प्रौढ़ तथा मध्यावस्था में में प्रायः पाया जाता है। सौत्रिक तन्तुओं के कारण उभार अधिक कठिन होता है। यह विषम होता है और प्रारम्भिक अवस्था में इसको और बाहर की त्वचा को अलग अलग चलाया जा सकता है। बाद में त्वचा और मांस पेशियों से जुड़ जाता है। स्तनवृन्त का नवीन परावर्तन और स्तन त्वचा का उभार पर झुक जाना महत्वपूर्ण लक्षण हैं। ये दोनों परिवर्तन बाद की अवस्था में होते हैं।

अचिकित्सित अवस्था में रोग लसिका वाहिनियों तथा रक्त परिभ्रमण द्वारा व्याप्त होकर घातक हो जाता है तथा व्रणोत्पादन भी उपस्थित होता है।

कठोर कैंसर से पीड़ित भाग में से कुछ हिस्सा काटा जाय तो उसमें निम्न विशेषतायें होती हैं-

१—पीड़ित भाग कच्ची नाशपाती (pear) की तरह कटता है।

२—साधारणतः दोनों कटे भाग नतोदर (concave) होते हैं।

३—कटे हुए भाग का रंग निश्चित रूप से धूसर (grey) होता है। अर्बुद के तन्तु चाक की तरह करणदार होते हैं।

४—अर्बुद में कोष (खोल) नहीं होता अतः इसको स्तन से पृथक् करना असम्भव होता है।

कैंसर का प्रसार स्थानिक, लसिका द्वारा और रक्त वाहिनियों से होता है।

५. दुग्धनलिका (Duct) का कैंसर—यह प्रायिक नहीं है। इसकी स्थिति स्तनवृन्त के समीप होती है। रक्तमिश्रित स्राव प्रायः पाया जाता है। लसिका ग्रन्थियों का शोथ सदा उपस्थित नहीं होता। यह प्रकार ३५ और ४० वर्ष की आयु वाली स्त्रियों में सर्वाधिक पाया जाता है।

रोग निर्णय—

कठोर (scirrhous) कैंसर को जीर्ण स्तन शोथ और जीर्ण स्तन विद्रधि से रोग का इतिवृत्त, लक्षण उपशय तथा अनुपशय द्वारा भी पृथक् करना कठिन होता है। प्रारम्भिक अवस्था में तो विशेषज्ञ शल्यक भी निश्चय नहीं कर पाता। रोग वृद्धि होने पर केवल अणुवीक्षण परीक्षण ही एक मात्र उपाय होता है। स्पर्श में अति कठिन, इसकी सीमित गति और कक्षीय लसिका ग्रन्थियों का शोथ कठिन कैंसर के सूचक होते हैं।

चिकित्सा—मुख्यरूप से दो प्रकार की होती है—शल्यकर्म (operation) और किरण चिकित्सा (irradiation)। इसकी हारमोन चिकित्सा भी की जाती है।

शल्यकर्म—यदि वक्ष की दीवार बहुत अधिक प्रभावित होगई हो अथवा ऊर्ध्वजत्रुग लसिका ग्रन्थियों के भी रोग द्वारा प्रभावित होने पर या रोग शरीर के अन्य भागों में भी फैल चुका हो तो शल्यकर्म नहीं किया जाता। कुछ शल्यकों का सुझाव है कि सभी रोगियों में पहिले किरण चिकित्सा का प्रयोग कर लेना चाहिए। कक्षीय जाल के रोग द्वारा प्रभावित होने पर होने वाले भुजा के आर्द्र शोथ की उपस्थिति में भी शल्य कर्म नहीं करते हैं। साधारणतः शल्यकर्म के लिए वह अवस्था उपयुक्त होती है जिसमें अर्बुद की वृद्धि शनैः शनैः हो और वह निश्चित रूप से सीमित हो।
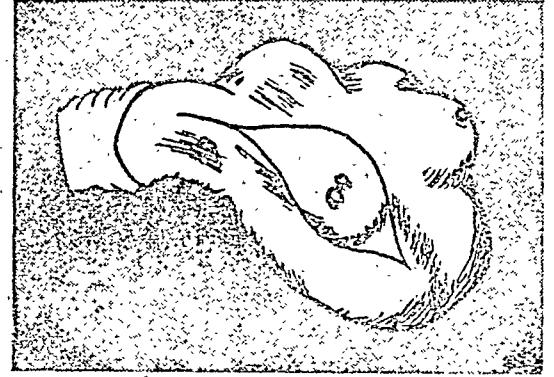
चित्र १३३—स्तनच्छेदन के लिये भेदन

चित्र १३३ में दर्शित विधि से पीड़ित स्तन के चारों ओर भेदन कर वृन्त सहित सारे स्तन को निकाल देते हैं। रोग के प्रसरणशील होने के कारण उरच्छादिनी मांसपेशी को प्रायः पूर्ण रूप से काट देते हैं। कक्षीय लसिका ग्रन्थियों को भी निकाल देते हैं क्योंकि अणुवीक्षण द्वारा परीक्षण करने पर इनमें भी रोगोत्पादक तन्तु पाए गये हैं। शल्यकर्म के बाद पुनः उसी स्थान पर रोग होने का कारण रुग्ण भाग का शेष रह जाना है।

रेडियम चिकित्सा या किरण चिकित्सा—उन सभी अवस्थाओं में इस चिकित्सा का प्रयोग किया जाता है जहां शल्यकर्म निषिद्ध बताया है। इसके अतिरिक्त रोग के पुनः होने पर रोग के दोनों अन्दर की ओर के स्तन चतुर्थांशों में उपस्थित होने पर और शल्यकर्म के लिए रोगी की अनुपयुक्त अवस्था में भी रेडियम चिकित्सा की जाती है।

:: शेषांश पृष्ठ ४३६ पर ::

नारी के स्तन सम्बन्धी रोगों की चिकित्सा

श्री वैद्य मुन्नालाल गुप्त B. I. M.

स्तनों के रोग—

स्तन शोथ, स्तन विद्रधि, स्तन व्रण, स्तन क्षत, स्तन अर्बुद, स्तन कैंसर, स्तनों में उभार का न होना, स्तनों में उभार की अधिकता, स्तनों का ढलजाना, प्रसूता के स्तनों में दूध का सूखजाना, अभाव हो जाना या अधिक बढ जाना, चूचुक की कठोरता, चूचुक का कटजाना, पक जाना प्रभृति प्रभृति।

शोथ, विद्रधि, व्रण, क्षत, कीलक—

वायु, पित्त, कफ, या दो वा तीनों दोषों के प्रकोप से या आगन्तुक कारणों से, जैसे चोट लगने से, बच्चे के द्वारा काट लेने से, किसी जन्तु के काट-लेने से अथवा ऐसे पदार्थ जो पेट में जाकर गलें नहीं जैसे-तृण, कीट, तुष, शूक, कांटा, केश, तथा अस्थि आदि अज्ञानवश सेवन कर लेती है, ऐसे कारणों से रस वाहिनियां, दुग्ध वाहिनियां, रक्त वाहिनी शिरायें या मांस, मेद, रक्त विकृत हो शोथ, दाह, स्पर्शासह्यता, स्तनों में पीड़ा खिंचाव और और फटन उत्पन्न कर दें। साथ ही अजीर्ण अरति, ग्लानि, अनिमित्त पीड़ा, अरुचि, पर्वभेद, अंगमर्द, शिरःशूल क्षवथू की रुकावट, अंग में अकड़न, कफो-त्क्लेश, ज्वर, तृषा, पतले दस्त, मूत्रावरोध, शिराओं में रक्त एकत्रित होने से कुचों से दुग्ध मिश्रित रक्त-स्राव, पीव उत्पन्न होजाय ऐसे स्तन सम्बन्धित रोगों में स्तनों के रोग की आरम्भिक अवस्था में, गरम गरम जल से धोवें, जल का सेवन करें कंघी से दूध को सूतें और निकाल दें, या ब्रैस्ट पम्प से दूध निकाल दें या किसी बड़े बच्चे से दूध पीने को कहें, उसे पिलावें। इस उपाय से शोथ नष्ट हो जाता है, यदि इस पर भी शोथ नष्ट न हो तो शोथनाशक लेप लगावें, जैसे—

इंद्रायण की जड़ का लेप या हल्दी और धतूरे के पत्तों का लेप अथवा पुनर्नवा की जड़ का लेप या मकोय की पत्ती का लेप करें। इनसे शोथ नष्ट हो जाता है।

यदि शोथ पक आया हो, उसका फोड़ना आव-श्यक हो तो कोमल कोमल ताम्रवर्ण के पीपल पत्र लेकर उन पर घी लगाकर, सेक कर, स्तनों पर बांधें या आटे की पुलटिस या अलसी की पुलटिस अथवा तुकमलंगा भिगो कर बांधें या नीम की पत्ती उबाल कर उसके पानी से धोवें और उस पर वही पत्ती पीसकर बांधे। इससे व्रण शोथ फूट जाता है और स्तनों को किसी प्रकार की कोई हानि नहीं होती और व्रण भी भर जाता है। यदि व्रण भरने में देर लगे तो निम्न मरहम लगावें—

(१) गाय का घी ८ तोला, मोमदेशी २ तोला, राल कामा २ तोला, सुहागा भुना २ तोला, कौड़ी भस्म २ तोला, सफेदा काशगिरी २ तोला, तूतिया भुना २ तोला। घी में मिलाकर यह मरहम तय्यार करें और व्रण पर लगावें। इससे व्रण शीघ्र भर जाता है।

(२) बोरिक एसिड १ तोला, जिंक ओक्सा-इड १ तोला, सल्फर पाउडर १ तोला, सल्फोना-माइड ६ माशे, कैम्फर ६ माशे, कारबोलिक एसिड २ तोला, वैसलीन १० तोला। प्रथम कारबो-लिक एसिड में कैम्फर को हल करें और चूर्ण द्रव्यों को एक में मिश्रित करें। तत्पश्चात् सबको वैसलीन में मिलाकर एक जीव करें और इस तैयार मरहम को व्रणों तथा घावों में काम में लावें। यह अनुभूत और अति उत्तम प्रयोग है। यदि नासूर होगया हो या कैन्सर का रूप धारण कर लिया हो तो—

(३) स्वर्णक्षीरी तैल का उपयोग करें। साथ ही शुद्ध गंधक रसायन का भी सेवन करें।

(४) नासूर में अरण्डपत्र के रस में भिगोया फाया लगाने से लाभ होते देखा गया है।

दूध के भारीपन को नष्ट करने के लिए—

त्रायमाणा या बनफ्शा या चिरायता, गिलोय, नीम की छाल.परवल के पत्ते,त्रिफला बराबर बराबर लेकर कूट दो तोला दवा को डेढ़पाव जल में क्वाथ करें। जब पानी एक छटांक बाकी रह जावे तब छान कर रोगिणी को पिलावें। या—

पीपल छोटी, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ का क्वाथ बनाकर पिलावें और स्तनों पर खरैटी, सोंठ, महाकरंज, और मूर्वा का लेप करें।

स्तन्य शोधक क्वाथ—

अनन्तमूल, पाढ़, देवदारू, चिरायता, मोरबेल, कुटकी, गिलोय, तगर, सौंठ, नागरमोथा और इन्द्रजौ सबको समान भाग लेकर जौ कुट चूर्ण करें, इसमें से दो तोला चूर्ण को डेढ़ पाव पानी में क्वाथ करें, जब एक छटांक पानी बाकी रहजाय तब इसे प्रसूता को पिलावें। जो काथ पीना न चाहे उसके लिये इसका महीन चूर्ण बनाकर डेढ़ डेढ़ माशे की मात्रा में गरम जल से या अर्क मुंडी से देवें। यह अति उत्तम दुग्ध और रक्त शोधक योग है।

'जिनका दुग्ध रूक्ष' हो उन्हें सौभाग्य शुण्ठी पाक का सेवन कराना चाहिए।

(१) अगर स्तनों में दुग्ध की कमी हो तो शतावरी का चूर्ण दूध के साथ सेवन करावें और भोजनोपरान्त जीरकाद्यारिष्ट पिलावें।

(२) शतावर, कसेरू, ईख, दूब, कांस की जड़, सिंघाड़ा, विदारीकन्द, मुलेहठी ये द्रव्य दुग्धवर्धक हैं।

(३) शतावरी पाक,सौभाग्यशुण्ठी पाक,विदारीकन्द पाक दूध के बढ़ाने में उत्तम हैं।

(४) सफेद जीरा दूध में भिगोकर सुखालें फिर उसमें से छः छः माशे दूध से दोनों समय सेवन करावें। चन्द रोज में ही इससे दुग्ध में वृद्धि हो जाती है।

पथ्य—गेहूं, शाली चावल, साठी चावल, तिलकुटा, कमल की जड़ का साग, चौलाई का साग, दूध, भात, बिनौले की खीर, कमल गट्टे की खीर भी दूध बढ़ाती हैं।

स्तन्य (दूध) की सामान्य शुद्धि—स्तनों पर घी या तेल लगाकर स्वेदन करें, और स्त्री को भी घी से युक्त खिचड़ी दलिया या दूध खिला पिला कर वमन करावें। वमन के लिए शहद में नमक मिलाकर जिह्वा के पिछले हिस्से में लगायें, तुरन्त वमन होती है। तीसरे दिन रोगिणी को ऐसा दवा दें जिससे पेट में रहा हुआ दोष मल द्वारा निकल जाय। इसके लिए त्रिफला का काथ या निशोथ का चूर्ण देना चाहिए, तीव्र प्रयोग न दें। यदि रोगिणी निर्बल हो तो वमन विरेचन के प्रयोग उपयुक्त नहीं होते। मात्र दुग्ध शोधक दवा दे दें जैसे—

(१) गुर्च और सतोना का छाल की काथ।
या (२) चिरायते का क्वाथ मधु से पिलावें।

यदि दुग्ध का स्वाद विरस हो तो—मुनक्का, मुलैठी, सारिवा, क्षीर काकोली का चूर्ण बनाकर ३-३ माशे की मात्रा में दूध से या जल से देवें। और स्तनों पर निम्न लेप करें।

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ और कुल्थी इन्हें जल सहित पीस स्तनों पर लेप करें। सूखने पर गरम जल से धो डालें। हाथ के अंगूठे और अंगुली की सहायता से स्तन का दूध निकाल डालें या ब्रेस्टपम्प से निकालें। जब तक दुग्ध की विरसता दूर न हो नित्य ऐसा ही करें। प्रायः दो तीन दिन में विरसता नष्ट होजाती है।

फेन युक्त दुग्ध होने पर—पाठा, सोंठ, महाकरंज, मूर्वा का चूर्ण या क्वाथ जल से या दूध से देवें। और स्तनों पर निम्न लेप करें—

अंजन, सोंठ, देवदारु, वेल की जड़, प्रियंगु इन्हें जल से पीस कर लेप करें।

या जौ, गेहूं, सरसों को पीसकर लेप करें और चिरायता सोंठ और गुर्च का क्वाथ पिलावें।

दूध के रूक्ष होने पर—जीवनीयगण की औषधियों का चूर्ण दूध से देवें या च्यवनप्राशावलेह, या घृत से युक्त पौष्टिक पाक, भोजन सेवन करें और स्तनों पर पञ्चमूल का लेप करें।

दूध के विवर्ण होने पर—मुलहठी, क्षीरकाकोली. निगुण्डी के चूर्ण को धारोष्ण दूध से या शीतल जल से सेवन करावें।

दूध के दुर्गन्धित होने पर—सारिवा, खस, मजीठ, लसोढा लालचन्दन तेजपत्र सुगंधवाला, श्वेत-चन्दन. खस को जल सहित पीस स्तनों पर लेप करें। मंजिष्ठादि काथ माणिक्य रस या गन्धक रसायन का सेवन करावें। उपदंश विकार के कारण हो तो सारिवाद्यारिष्ट का सेवन करावें साथ ही किसी उपयुक्त रस जैसे उपदंशगज केशरी, समीर-रस प्रभृति का सेवन करावें।

पिच्छलता नाशक उपाय—महाकरंज, हरड़, वच या नागकेशर, सोंठ, पाठा के चूर्ण को गरम जल से देवें या क्वाथ बना कर देवें।

चरकाचार्य ने तक्रारिष्ट के सेवन कराने की की सिफारिश की है। स्तनों पर विदारीकन्द, मुलेठी को पीसकर लेप करें।

स्तनों में उभार का अभाव या कमी—मदनोदय-मोदक या भल्लातक पाक का सेवन कराना चाहिए। स्तनों पर शतावरी तैल या चन्दनबला-लाक्षादि तैल का कम से कम २१ दिन प्रयोग करना चाहिए। तैल की मालिश दिन में दो बार कम से कम १० मिनट तक करनी चाहिए।

प्राणायाम द्वारा छाती का व्यायाम भी करना आवश्यक है। ओजबर्द्धक सभी द्रव्यों का सेवन भी हितकर होता है।

स्तनों में दूध की कमी या अभाव—का कारण रक्त की कमी होती है। रक्त की कमी का कारण प्रसवान्तर अधिक रुधिर का निकल जाना या कोई कठिन बीमारी का होना, पौष्टिक भोजन का अभाव, ऐसे भोजनों का सेवन जिससे दूध कम बने, स्थूलता, क्षीणता, अधिक ठण्डे पदार्थों का सेवन, क्रोध, चिन्ता, आनन्द, भय, विषय विशेष या यकृत् की विकृति या प्रसूति में अपनी सौन्दर्य रक्षा की अधिक भावना होने से बालकों को दूध न पिलाना इत्यादि कारणों से माता का दूध प्रायः सूख जाता है या कम उत्पन्न होता है।

:: पृष्ठ ४३६ का शेषांश ::

रेडियम की सूइयों को प्रभावित भाग तथा उसके चारों ओर स्थानीय या साधारण संज्ञाहरण उत्पन्न कर प्रविष्ट किया जाता है। प्रत्येक सूई में २ से ३ मिलिग्राम रेडियम होता है। लगभग ३० से ४० तक रेडियम सूइयां, जिनमें कुल मिलाकर ६० से १०० मिलिग्राम तक रेडियम होता है, प्रविष्ट की जाती हैं। दसवें दिन सूइयों को निकाल दिया जाता है। पहिले दिन रुग्णा को वेदना और बेचैनी होती है अतः शामक औषधियों (sedatives) की आवश्यकता होती है। सूइयों के प्रयोग में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उन पर दबाव न पड़े अन्यथा हृदयावरण अथवा हृदय के भी बिंध जाने का भय होता है। लगभग १५ दिन में रुग्णा रुग्णालय छोड़ देती है। उसका साप्ताहिक परीक्षण करते रहना चाहिए। रोग के पुनर्भवन की आशंका होने पर यही विधि अपनाई जाती है।

हारमोन चिकित्सा—बढ़े हुए रोग में यह चिकित्सा सन्तोषजनक रूप से लाभप्रद सिद्ध हुई है। एतदर्थ बड़ी मात्रा में टेस्टोस्टरोन (Testosterone) १०० मि. ग्रा. दिन में तीन बार अन्तःपेशीय देते हैं। लगभग ६००० मि. ग्रा. तक देते हैं।

—श्री डा० अनन्तदास शर्मा D. I. M. S.
शास्त्री बी. ए. आयुर्वेदाचार्य,
ऋषिकुल आयु० कालेज, हरिद्वार

दुग्ध बढ़ाने के उपाय लिखे जा चुके हैं। फिर भी प्रसूता को इसका पूर्ण ध्यान रखना चाहिए कि भोजन ऐसा हो जिससे रक्त में वृद्धि हो और दूध बढ़े और जो भी कारण हों उन्हें दूर करें।

दूध की अधिकता—जब तक कोई खास तकलीफ न हो कोई उपाय करने की आवश्यकता नहीं। भोजन में कमी कर देने मात्र से ही दूध में कमी होती देखी जाती है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बिना प्रसव के भी स्तनों में दूध उत्पन्न हो जाता है। स्तनों में दर्द होता है और मासिक धर्म होना बन्द हो जाता है। कभी कभी बालक के मर जाने पर भी स्त्री के स्तनों में बराबर दूध आता रहता है। ऐसी अवस्था में उसका बन्द करना आवश्यक होता है। अधिक दूध के उत्पन्न हो जाने से दुर्बल होने का भी भय रहता है। स्तनों में दूध की अधिक उत्पत्ति में यही भय रहता है कि दूध कहीं रुक न जाय और शोथ पैदा न हो जाय। अधिक दूध, जिसे बच्चा न पी सके, खट्टा हो जाने, शरदी से गाढ़ा हो जाने का भी भय रहता है।

यूनानी हकीमों का मत है कि ऐसी अवस्था में मसूर और काहू इन दोनों का सेवन करें और स्तनों पर ईसबगोल के लुआब का लेप करें। या सिरके में मिलाकर मेंथी और बाकला के आटे का लेप करें।

स्तन के लटक जाने या ढल जाने तथा स्तन को पुष्ट एवं कठोर करने के उपाय—अनार के छिलके, जामुन की छाल, मौलश्री की छाल, छोटी माई, लोध्र, जौ इन सब चीजों को जल सहित पीस कल्क कर तिल तैल में तैल पाक विधि से तैल तैयार करें। इस तैल की मालिश करें। तैल से पिचु भिगोकर स्तनों पर पट्टी बांधे। अथवा असगन्ध छोटी कटेरी की जड़, जीरा, लौकी की जड़ इन्हें भैंस के घी के साथ साथ मिलाकर स्तनों पर लेप करें। या प्रियंगु, वच, कुटकी, लज्जावंती, हल्दी बराबर-बराबर लेकर जल में भिगोकर पीसें, सबके बराबर गाय का घी या भैंस का घी या तैल लेकर पकावें। जब यह तैयार हो जाय तब इसको स्तनों पर लगाने में उपयोग में लावें। कम से कम २१ दिन इसका प्रयोग अवश्य करें।

—श्री वैद्य मुन्नालाल गुप्त B. I. M.
पुरानी धान मंडी, नयागंज, कानपुर

स्तन रोगों पर परीक्षित प्रयोग

स्तन पक जाने पर—

घृत कुमारी के रस में ज्वार का आटा गर्म करके स्तनों पर बांधने से स्तन का पकना व फूटना सब नष्ट होता है।

स्तन में गांठ का पड़ जाना—

ब्रह्मदंडी का पंचांग व स्याह जीरा दोनों को समान मात्रा में लेकर पीस कर महीन करलें और प्रातः सायं ४-४ माशे फांककर ऊपर से गुनगुना जल पीने से स्तन गांठ ठीक हो जाती है।

—श्री पं० चन्द्र शेखर शर्मा वैद्य
प्रधान मन्त्री–जिला वैद्य सभा, बरेली।

क्षीर वर्धक योग—

(१) सफेद जीरा को नाम मात्र गाय के घी में हलका भूनकर कपड़छन चूर्ण बनाकर रखलें। ४-४ माशा चूर्ण समभाग शक्कर के साथ मिलाकर सुबह शाम और रात में सोते समय फांकें।

(२) कपास के बीज (बिनौले) के गूदे का चूर्ण १ तोला को मिश्री और गौ दुग्ध के साथ प्रातः सायं और रात में सोते समय पियें।

—आयुर्वेदाचार्य कवि० द्वारिकाप्रसाद शास्त्री
दधिमति आयुर्वेद भवन, राजगांगपुर (सुन्दरगढ़)

स्तन्य उपधातु

श्री कृष्णप्रसाद त्रिवेदी बी. ए. आयुर्वेदाचार्य

यह अपनी समावस्था में स्तन को पुष्ट करती है तथा सन्तान के लिए जीवनप्रद है। कहा है—

स्तन्यं स्तनयोरापीनत्वजननं जीवनं चेति ॥

—सु. सू. अ. १५

अत्र जीवनं बालानां, तेषामेव स्त्री क्षीर सात्म्यत्वात् ॥

—डल्हण

नोट—प्रसवावस्था में, स्तनान्तर्गत दुग्ध ग्रन्थियों की वृद्धि होने से तथा दुग्धवाहिनियों की दुग्धपूर्णता से एवं स्तनगत भेद की वृद्धि से स्तनों की पुष्टि हुआ करती है। माता का दूध शिशुओं का सर्वोत्तम पोषक एवं बलवर्धक होने से उनका जीवन रूप ही है। आधुनिक वैज्ञानिक भी अब मानने लगे हैं कि शिशुओं के लिये शरीर वर्धनार्थ तथा उनके स्वास्थ्य और सुखी जीवन के लिये मातृ दुग्ध से बढ़कर अन्य कोई चीज नहीं है।

वृद्धि अवस्था—

स्तन्य की वृद्धि (स्तनों में दूध की विशेष वृद्धि) होने से स्तन स्थूल हो जाते हैं, बार बार दूध का स्राव होने लगता है तथा स्तनों में तनाव की सी पीड़ा होती है, या सुई चुभने जैसी पीड़ा होती है*।

नोट—दुग्धवृद्धिकर पदार्थों के सेवन करने से अथवा शिशु द्वारा चूचुकों को ठीक तरह खींचकर दुग्धपान के न करने से (कभी कभी चूचुक ठीक उभरे हुये न होने से बालक ठीक तरह खींचकर दुग्ध पान नहीं कर सकता) या शिशु की मृत्यु हो जाने आदि कारणों से स्तन्य की वृद्धि हो जाया करती है। इसमें कभी कभी उक्त तनाव की पीड़ा इतनी प्रबल हो जाती है कि स्त्री को उसके कारण ज्वर हो जाता है। ऐसा विशेषकर प्रथम प्रसव की दशा में हुआ करता है।
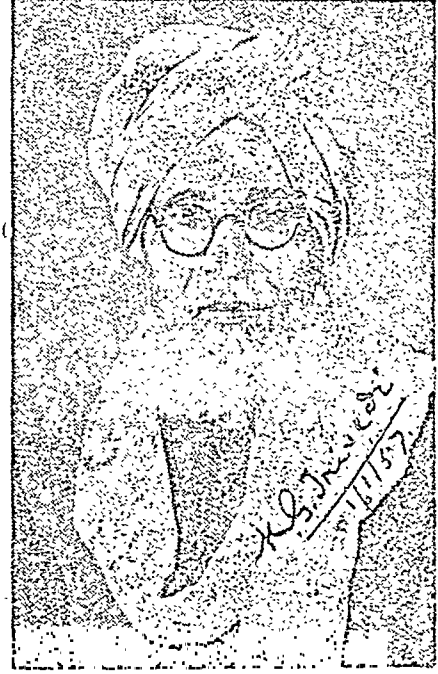
उपचार—

चुसवाकर या ब्रैस्ट पम्प (Breast pump) द्वारा अन्दर का दूध निकलवा कर प्रवृद्ध स्तन्य का संशोधन कर लेना चाहिए। तथा स्तन्यवृद्धिहर शीघ्र पाकी लघु द्रव्यों का यथोचित मात्रा में सेवन कराना चाहिए।

स्तनों पर निम्न 'स्तन्यशोषक लेप' के लगाने से विशेष लाभ होता है—

(१) काली जीरी का चूर्ण १ तोला, एलुवा और डीकामाली ६-६ माशे लेकर, सबको जल के साथ पीसकर थोड़ा गर्म कर स्तन पर लेप कर देने से स्तन्यवृद्धिजन्य वेदना दूर हो जाती है। लेप लगाने पर जब तक विकार हो तब तक उस स्तन का दूध बालक को नहीं पिलाना चाहिए। भारीपन आजाने पर ब्रैस्टपम्प से खींच लेना चाहिए। साथ ही साथ

*स्तन्यं स्तनयोरापीनत्वं मुहुर्मुहुः प्रवृत्ति तोदं च।
—सु. सू. अ. १५।

कपूर ४-४ रत्ती प्रातः सायं खिलाने से दूध की उत्पत्ति कम हो जाती है। (र. त. सा.)

बच्चा नष्ट हो जाने पर (या अन्य कारणों से) स्त्री के स्तनों में दूध एकत्रित होकर पीड़ा करने लगे तो कुमारी (ग्वारपाठा) की जड़ और हल्दी के चूर्ण को एकत्र पीसकर लेप करने से शीघ्र ही शान्त हो जाती है। अथवा इन्द्रायण की जड़ पानी में पीस कर लेप करने से भी लाभ होता है। (भा. भै. र.)

दुग्ध वृद्धि से स्तन में तनाव के कारण × ज्वर हो तो स्तनों पर गेरू को जल में पीस कर आग पर गर्म कर गाढ़ा गाढ़ा लेप दिन रात में कई बार लगाने से लाभ होता है।

स्तन्य की क्षयावस्था—

क्षयावस्था में स्तनों पर म्लानता या सिकुड़न होती, दूध की उत्पत्ति बन्द हो जाती, या दूध अत्यल्प प्रमाण में आता है।

उपचार—निदान परिवर्जन यह चिकित्सा का एक प्रधान सूत्र होने से स्तन्य नाश या स्तन्याल्पता में भी देखना होगा कि वह किस कारण विशेष से हुआ। इसके कारणों में मानसिक विकृत स्थिति, अनुपयुक्त आहार, शारीरिक दुर्बलता, स्तन प्रकोप या स्तन विद्रधि आदि स्तन विकार और स्तन चूषण में कमजोरी विशेष उल्लेखनीय हैं।

मानसिक विकृति जो कि इसका मुख्य कारण है, उसके दो प्रकार किए जा सकते हैं—एक तो किसी विशेष घटनावश मन में उत्तेजना, क्रोध, शोक, भय आदि से मन का ग्रस्त हो जाना। इसमें विशेष घटना का प्रभाव दूर हो जाने पर मन शनैः शनैः अपनी स्वस्थ दशा को प्राप्त हो जाया करता है, तथा स्तन्यनाश चिरस्थाई नहीं होता। दूसरा प्रकार वह है जिसमें आन्तरिक भावनाओं या विचारों का ही प्राबल्य होता है। जैसे अवात्सल्य (बालक के प्रति मन में प्रेम न होना),* आत्म विश्वास

×स्तन्य ज्वर (*Milk fever*)—प्रसव के अनन्तर दुग्धोत्पत्ति के समय स्तन कड़े और पीड़ा युक्त होते हैं। कभी कभी उस समय शरीर का तापमान १ या २ अंश बढ़ जाता है। आयुर्वेद में इस ज्वर की गणना सूतिका ज्वर में ही की जाती है। प्रसव के तीसरे या चौथे दिन दूध उत्पन्न होकर बन्द पयोवह स्रोतसों (*Lactiferous tubules and ducts*) में अभिघट्टन (उत्तेजना) पैदा करता है जिससे स्तनों में स्तम्भ (कठिनता, पीड़ा), हृदयद्रव (छाती में बेचैनी), तृष्णा, कुक्षि, पार्श्व और कमर में पीड़ा, अङ्गमर्द, सिर में पीड़ा आदि लक्षण होते हैं। दुग्ध का ठीक प्रवर्तन हो जाने पर ये सब लक्षण स्वयमेव बन्द हो जाते हैं। इस प्रकार का स्तन्यज्वर प्रायः कोमल और वात प्रकृति की स्त्रियों को हुआ करता है। ध्यान रहे, यह ज्वर कुछ घण्टों से अधिक देर तक नहीं रहता। यदि ज्वर लगातार अधिक देर तक बना रहे तो उसे अन्य ज्वर या योनिदोषज ज्वर जानकर तदनुसार जननेन्द्रिय की ओर विशेष ध्यानपूर्वक चिकित्सा करनी चाहिए। कहा है—

"तृतीयेऽह्निचतुर्थे वा नार्याः स्तन्यं प्रवर्तते।
पयोवहानि स्रोतांसि संवृतान्यभिघट्टयेत्॥
करोति स्तनयोः स्तम्भं पिपासां हृदयद्रवम्।
कुक्षिपार्श्वकटिशूलमङ्गमर्द शिरोरुजाम्॥
एतत्स्तन्यागमोत्थस्य ज्वरस्योक्तं स्वलक्षणम्।
स हि पीयूष संशुद्धौ क्षममात्रेण तिष्ठति॥
(काश्यप संहिता)

*जैसे शुक्र सारे शरीर में रहते हुए भी शरीर के अवयवों को काटने से कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता (तैसे ही दुग्ध भी दिखाई नहीं देता) किन्तु वही शुक्र मनोहर स्त्री के दर्शन, स्मरण, स्पर्शनादि से एवं मैथुनजन्य प्रहर्ष से सारे शरीर से शुक्राशय में जाकर शिश्न द्वारा बाहर निकलता है। उसी प्रकार आहार रस से उत्पन्न हुआ स्त्रियों का दुग्ध भी सन्तान के स्पर्श, दर्शन, ग्रहण (गोद में लेकर पकड़ने, या बच्चे के हस्त द्वारा स्तनों को पकड़ने) से और स्मरण मात्र से वात्सल्यवश सारे शरीर से स्तनों में प्राप्त होकर चूचुक द्वारा बाहर निकलता है। प्रायः स्तन्योत्पादन में माता का बच्चे में निरन्तर (सत्य स्वाभाविक) स्नेह ही कारण है। कहा है—

का अभाव, या कृत्रिम दुग्धों के रंगीले चटकदार विज्ञापनों को पढ़कर बालक को स्वयं स्तनपान कराने की इच्छा न होना, या मन में कल्पना कर लेना कि स्तन पान कराने से छाती की शोभा मारी जाती है, स्तन पान कराना एक असभ्य प्रथा है, इत्यादि। इस प्रकार के आन्तरिक भावनाओं या विचारों का प्रभाव स्थाई होने से तज्जन्य स्तन्यनाश भी स्थाई रूप का होता है।

दूसरा कारण है अनुपयुक्त आहार, आहार में जल की कमी, उपोषण, (उपवास) लंघन आदि। स्तन्य या दूध आहार रस से ही उत्पन्न होता है। इसकी उत्पत्ति में मानसिक या शारीरिक स्थिति सहायक मात्र होती है। आहार यदि प्रकृति अनुकूल न हो, अपर्याप्त हो तथा आहार के साथ या ऊपर भी जल यदि उचित प्रमाण में न पिया जाय तो स्तन्य की उत्पत्ति उचित प्रमाण में नहीं होती, न्यून होती है या बिलकुल ही नहीं होती। अत: ऐसी दशा में स्त्री को स्तन्यवर्धक आहार द्रव्यों, प्रकृत्यानुकूल गाय या भैंस का दूध, जौ, गेंहू, चावल, विविध शाक, मांस रस, पर्याप्त जल, एवं मधुराम्ल लवण रस प्रधान शरीर को बृंहण करने वाले खाद्य पदार्थों की योजना करनी चाहिये। यदि इससे भी पर्याप्त लाभ न हो तो उक्त मानसिक विकृति का निवारण करते हुए, अर्थात् मन की प्रसन्नता (सौमनस्य) के लिए क्रोध, शोकादि भावों को दूर करना, बालक के प्रति वात्सल्य भाव पैदा करना, तथा स्त्री की कुशिक्षाजनित विचार धारा को समझा बुझाकर दूर करना आदि उपायों को करते हुए उसे स्तन्यवर्धक औषधियां जैसे विदारी कन्द, शतावरी, सिंघाड़ा, तृणपंचमूलक, कपास की जड़, भूमिकुष्माण्ड, कसेरू, कमलकन्द, मुलैठी, नाड़ी शाक इत्यादि का सेवन कराना चाहिये। कहा है—

क्रोध शोकावात्सल्यादिभिश्च स्त्रिया: स्तन्य नाशो भवति ।● अथास्या: क्षीरजननार्थं सौमनस्यमुत्पाद्य यव गोधूम शालि षष्टिक मांसरस सुरा सौवीरकपिण्याक लशुन मत्स्य कशेरुक शृङ्गाटक विस विदारिकन्द मधुक शतावरी··· ········प्रभृतीनि विदध्यात्।

—सु. शा. अ. १०

तीसरा कारण जो शारीरिक दुर्बलता या अस्वास्थ्य है, उसका स्तन्योत्पत्ति में बहुत थोड़ा प्रभाव पड़ता है। दुर्बलाङ्ग स्त्री में भी यदि सौमनस्य और वात्सल्य भाव है, तो वह उचित प्रमाण में दूध पिलाकर अपने बालक को पुष्ट करती है। इसके विपरीत मोटी-तगड़ी स्त्रियां ऐसी देखी जाती हैं, जिनके मन में प्रेम न होने से या आधुनिक कुशिक्षा के चक्कर में फंस जाने से दुग्धहीन होती हैं तथा उनके बालक कृश एवं दुर्बलाङ्ग होते हैं।

स्तन्याचूषण में कमजोरी भी एक कारण स्तन्याल्पता या स्तन्य क्षीणता में होता है। जैसे पुरुष शरीर में शुक्र का उत्तम प्रवर्त्तक युवा एवं मनोनुकूल स्त्री का संग होता है* वैसे ही स्तन्य का उत्तम प्रवर्तक स्वस्थ एवं सबल बालक का स्तनपान होता है। यदि बालक शुरू से ही अस्वस्थ एवं

"विशस्तेष्वपि गात्रेषु यथा शुक्रं न दृश्यते।
सर्वं देहाश्रितत्वाच्च शुक्र लक्षणमुच्यते॥
तदेव चेष्ट युवतेर्दर्शनात् स्मरणादपि।
················प्रहर्षाच्च प्रवर्तते॥
सुप्रसन्नं मनस्तत्र हर्षणे हेतुरुच्यते॥
आहार रसयोनित्वादेवं स्तन्यमपि स्त्रिया:।
स्नेहो निरन्तरस्तत्र प्रस्रवे हेतुरुच्यते॥

—सु. नि. अ. १०

●वाग्भट जी अष्टाङ्ग संग्रह में स्तन्य नाश के कारणों को दर्शाते हुए कहते हैं—

रूक्षान्नपानकर्शन क्रोध, शोक कामादिभि: स्तन्य नाश:॥

*वाजीकरणमग्र्यं च क्षेत्रं स्त्री या प्रहर्षिणी॥

—चरक

तथा प्रवर्तनी स्त्री शुक्रस्य —शार्ङ्गधर

क्वाथ शेष रहने पर छान लें। फिर उसमें उसी वृक्ष की छाल का कल्क १० तोले और तिल तैल १ सेर मिलाकर तैल सिद्ध कर लेवें। इस तैल में रुई भिगो कर स्तनों पर रखने तथा धीरे धीरे मालिश करने से स्तन दृढ़ और पुष्ट हो जाते हैं। इस तैल में रुई को भिगोकर स्तन के चारों ओर रखकर बन्ध (bandage) बांध देना चाहिये। यह प्रयोग भैषज्य रत्नावली चक्रदत्त आदि ग्रन्थों में प्रसिद्ध है तथा हमारा अनुभूत है।

°स्तन्य दोष—स्तन्य की वृद्धि या क्षीणता के साथ ही साथ स्तन्य दोष का भी विचार करना आवश्यक है। गरिष्ठ, विषम और दोषोत्पादक आहारों से माता या धात्री के शरीर में दोष प्रकुपित होते हैं जिससे दूध भी दूषित हो जाता है। मिथ्या आहार विहार करने वाली स्त्री के दूषित वातादि दोष दूध को दूषित करते हैं जिससे बालक में शारीरिक व्याधियां उत्पन्न होती हैं।

°स्तन्य दोष का सामान्य हेतु और सम्प्राप्ति इस प्रकार है—

अजीर्ण पर भोजन, असात्म्य, विषम या विरुद्ध भोजन के अत्यन्त सेवन, लवण अम्ल कटुक्षार और प्रक्लिन्न (सड़े हुए) द्रव्यों के सेवन से, मानसिक तथा दैहिक संताप से, रात्रि जागरण, चिन्ता, मल मूत्रादि के वेगों को रोकने से, अप्राप्त वेगों को बलात् प्रवृत्त करने, गुड़ से बनी हुई खीर, कृशरा, मन्दक दही (अच्छी तरह न जमा हुआ दही), अभिष्यन्दि, ग्राम्य और आनूप पशु पक्षियों के मांस के अधिक सेवन से तथा इनका सेवन कर सोजाने से, अति मद्यपान से, कोई श्रम का कार्य करने, चोट, क्रोध व किसी रोग से उत्पन्न दुर्बलता के कारण वातादि दोष क्षीरवहा शिराओं में पहुंच कर दूध को दूषित कर देते हैं।

वात दूषित दूध में—(१) विरसता होती है जिसे पीने से शिशु शरीर की पुष्टि नहीं होती। (२) फेन संघात (झाग युक्त होना) होता है जिसे पीने से स्वर अत्यन्त दुर्बल व कृश होता है, मूत्र, खुलकर नहीं आता, मलवायु पेट में रुका रहता है तथा वातिक शिरोरोग या पीनस होजाता है। (३) रूक्षता होती है। इसके पीने से भी शिशु दुर्बल होता है।

पित्त दूषित दूध में—(४) विवर्णता होती है, जिसके पीने से शिशु का देह विकृत वर्ण वाला होता है, पसीना आता है, प्यास अधिक लगती है, मल पतला फटा हुआ आता है, देह सदा गरम रहती है, वह स्तनपान करना नहीं चाहता। (५) दुर्गन्धित होता है जिसके पीने से बच्चे को पांडु रोग या कामला होता है।

कफ दूषित दूध में—(६) अति स्निग्धता होती है, जिससे शिशु को वमन होती है, मल प्रवृत्ति के समन कुन्थन करता है, मुख से सर्वदा लार बहती रहती है, स्रोत सदा कफ लिप्त रहते हैं, निद्रा श्वास कास, कफ प्रसेक (मुख से कफ स्राव होना) और तमक श्वास पीड़ित रहता है। (७) पिचपिचापन (पैच्छिल्य) होता है, जिससे शिशु के लार बहती रहती है, मुख और नेत्र शोथ युक्त, तथा वह जड़वत् होता है, खेलता कूदता नहीं। और (८) गुरुता होती है जिससे शिशु को हृद्रोग, तथा अन्यान्य कफ रोग भी होते हैं। (देखो चरक चिकित्सा स्थान अ. ३०—इन विकारों की विस्तृत चिकित्सा भी वहीं पर देखिये)

वातजन्य स्तन्य दुष्टि में दशमूल क्वाथ का सेवन करावें। पित्तजन्य दुष्टि में गिलोय, शतावर, परवल के पत्ते, नीम की छाल, लाल चन्दन तथा सारिवा का क्वाथ पिलावें। यही क्वाथ बालक को भी थोड़े प्रमाण में पिलाने से तज्जन्य विकार नष्ट हो जाते हैं। कफज स्तन्य दुष्टि में त्रिफला, नागरमोथा, चिरायता और कुटकी इनसे सिद्ध किए गए क्वाथ का सेवन करायें।

किसी भी प्रकार की स्तन्य दुष्टि हो यदि स्त्री को भारंगी, देवदारु, वच, पाढ़ तथा अतीस का क्वाथ सेवन कराया जाय और मूंग के यूष के साथ (मांस से परहेज न हो तो मांसरस के साथ) शाली चावल आदि पथ्य भोजन दिया जाय तो शीघ्र

लाभ होता है। अथवा-पीपल, पीपलामूल, सौंठ, नागरमोथा, सुगन्धवाला, धनियां और मजीठ समभाग लेकर तथा थोड़े से दूध के साथ पत्थर पर पिट्ठी की तरह पीसकर, फिर कुछ अधिक दूध में मिला ठण्डाई की तरह छानकर प्रातःकाल पिलावें। कहा है—

पिप्पली पिप्पलीमूलं नागरं घनवालकम्।
कुस्तुम्बरूणि मंजिष्ठां सह क्षीरेण कल्कयेत्॥
पानं क्षीरविशुद्ध्यर्थं कल्कमप्रातराशिते।

—हारीत संहिता

अथवा—

त्रिफला, त्रिकटु, पाठा, मुलेठी, वच, बेर का चूर्ण, जामुन की छाल, देवदारु और सर्षप (सरसों) सब समभाग का चूर्ण २ माशे से ६ माशे की मात्रा में शहद के साथ सेवन करावें।

अदरख तथा पटोलपत्र के रस से पिप्पली चूर्ण का सेवन कराना चाहिए। अथवा—धाय के फूल इलायची, मजीठ, कालीमिर्च, जामुन की छाल तथा मुलैठी का चूर्ण उत्तम दुग्ध शोधक होता है। किन्तु उक्त किसी भी प्रयोग के साथ स्त्री को पथ्य रूप में मूंग का यूष आदि लघु अन्नपान की योजना करनी आवश्यक है। ये प्रयोग काश्यप संहिता के हैं।

यदि स्तन से दूध के साथ रक्त आने लगे तो गिलोय, नागरमोथा, सौंठ, इन्द्र जौ, कुटकी, मोरबेल, चिरायता, पाढ़ल और देवदारु समभाग महीन चूर्ण कर रखें। मात्रा—३ से ६ माशे तक चूर्ण को ५ तोले सुखोष्ण जल में थोड़ा शहद मिला पिला दें। इसी प्रकार प्रातःसायं सेवन करने से शीघ्र लाभ कम से कम ७ दिन में हो जाता है। रुग्णा को रूक्ष, बासी तथा अति तरल पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए।

—श्री कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी आयुर्वेद सूरि,
बी० ए० आयुर्वेदाचार्य
६६६ राइट टाउन, जबलपुर।

स्तन्य नाश एवं उसकी चिकित्सा

सुश्री सावित्री देवी रावत

सुश्रुत संहिता में स्तन्य (दुग्ध) की उत्पत्ति एवं लक्षण निम्न प्रकार से वर्णित हैं—

रसः प्रसादः सुमधुरः पक्वाहार निमित्तजः।
कृत्स्न देहात्स्तनौ प्राप्तः स्तन्यमित्यभिधीयते॥

भुक्त भोजन पानादि के पचने पर उत्पन्न रस का मधुर एवं स्वच्छ भाग जो सम्पूर्ण शरीर से माता के स्तनों में प्राप्त होता है उसे स्तन्य या दुग्ध कहते हैं।

इस दुग्ध का नाश किन कारणों से होता है तथा उसकी चिकित्सा क्या है? इसी विषय पर सर्व प्रथम महर्षियों एवं आयुर्वेद के आचार्यों का सिद्धान्त प्रकट किया जा रहा है। स्तन्यनाश के कारण आचार्य वाग्भट ने "अष्टांग हृदय" में संक्षेप से निम्न प्रकार लिखे हैं—

"शुक्क्रोध लंघनायासाः स्तन्यनाशस्य हेतवः"

(उत्तर स्थान)

अर्थात् बालक की माता का दुग्ध शोक, क्रोध उपवास एवं अधिक परिश्रम आदि से सूख जाता है।

दुग्धवर्धक आहार विहार—

स्तन्यस्य सीधुवर्ज्यानि मद्यान्यानूपजा रसाः।
क्षीरं क्षीरिण्योषधयः शोकादीनां विपर्ययः॥

(वाग्भट)

चित्र १३४

शीतरस, पक्वरस, गुड़, शर्करा, आक्षिक, जाम्बव आदि सीधू के भेदों को छोड़कर सब प्रकार के मद्य, जलीय मत्स्य आदि का मांस रस, दूध एवं दूध बढ़ाने वाली दुग्धप्रधान औषधियों का सेवन दुग्धवर्धक है। साथ ही दूध को सुखाने वाले शोक चिन्तादि मानसिक विकारों एवं उपवास लंघन परिश्रम आदि शारीरिक विहारों को भी छोड़ देना चाहिए। सामर्थ्य से अधिक बौद्धिक कार्य एवं शारीरिक परिश्रम रोगोत्पत्ति के कारण हैं।

योगरत्नाकर ने निम्न लिखित दुग्धवर्धक योग दिये हैं—

(१) क्षीर विदारी को दूध में पीस मिश्री मिलाकर पीने से स्तनों का दूध बढ़ जाता है।

(२) शतावरी दूध में पीसकर पीने से दूध बढ़ता है।

(३) छोटी पीपल दूध में औटाकर पीने से स्तनों के दूध को बढ़ाती है।

(४) दूध सूख जाने पर "वज्रकाञ्जिक" नामक कांजी को बनाकर यदि प्रसूता को पिलाया जाय तो उसके सारे प्रसूतिजन्य उपद्रव शान्त होकर दुग्ध की उत्पत्ति एवं वृद्धि होती है।

मेरा अनुभव—

जच्चा एवं बच्चों की चिकित्सा करने वाले सभी चिकित्सकों को प्रतिदिन अनुभव करना पड़ता है कि अमुक बालक को पैदा होने के बाद से ही ऊपर का दूध पिलाया जारहा है। किसी किसी माता का दूध एक दो महिने के बाद ही सूख जाता है और बालक को डिब्बे के दूध पर निर्भर रहना पड़ता है। माता का दूध न होने से तथा अन्य दुग्धों के सेवन से ही बालकों को नाना प्रकार के रोग पीड़ित करते हैं।

शास्त्र मर्यादा के अनुरूप ही कुछ स्तन्य नाश के कारण जनसाधारण को जानने चाहिये, उनमें से सर्वप्रथम जिन कारणों को लिखा जायगा उनकी चिकित्सा भी आगे ही प्रकट कर दी जायगी।

स्तन्यनाश के कारण व चिकित्सा—

(१) स्तनों के भीतर दुग्ध ग्रंथियों की लघुता, क्षीणता या दुग्धवह नाड़ियों की अति सूक्ष्मता के कारण स्तनों से दूध आना बन्द हो जाता है या अत्यल्प मात्रा में आता है। ऐसी अवस्था में किसी योग्य वैद्य की सम्मति से लेप उपदेह सेक आदि करते हुये शतावरी नारियल मुलहठी बिदारीकन्द आदि दुग्धोत्पादक औषधियों का चूर्ण पाक आदि गौ दुग्ध के साथ सेवन करना हितावह है। भोजन में मत्स्यादि का मांस रस दलिया पुराने चावल एवं सीधू वर्जित सब मद्यों का सेवन किया जाना श्रेयस्कर है।

(२) यदि स्तनों में श्लेष्म की प्रधानता होने से दुग्ध स्रोत अवरुद्ध हो गये हों, वात की प्रधानता से या प्रकोप से दुग्ध नाड़ियां शुष्क हो गई हों या पित्त दोष के प्रकोप से रस प्रसाद स्तन्य जल गया हो। तो ऐसी परिस्थिति में दुग्धनाश हो जाना स्वाभाविक है। इसके लिए कफ नाशक, वातनाशक एवं

पित्त विकार नाशक लेप सेक तैल घृत एवं आसवारिष्टों का प्रयोग, तत्तद दोष नाशक आहार-विहार के सेवन से दुग्ध की उत्पत्ति हो जाती है। कभी कभी ऐसे अवसर पर बिजली की मशीन से पैदा हुई विद्युत्तरङ्गों द्वारा प्रसुप्त दुग्ध नाड़ियां उत्तेजित, कार्यक्षम और सबल हो जाती हैं जिससे स्तन्यप्रवाह प्रस्फुरित होने लगता है।

(३) स्तनों पर चोट, व्रण, स्फोट, आघात आदि के होने से, दुग्ध वाहिनियों की विकृति या नाश होने से भी दुग्ध की क्षीणता एवं नाश हो जाता है। व्रण आघात आदि की बिना शस्त्र क्रिया के ही चिकित्सा होनी चाहिये। शस्त्र चिकित्सा स्तनों के दुग्ध कोषों को सदा के लिए समाप्त कर देती है। धात्री विद्या कुशल स्त्रियां स्तनों के व्रण आदि में जीरा, हरमल, ईषबगोल, तुख्म बालङ्गा, पीली मिट्टी, चन्दन, कपूर आदि उत्तम शीतल औषधियों का लेप करना ही हितावह समझती हैं जिससे दुग्ध ग्रन्थियों की बिना हानि हुए ही रोगोपशम हो जाता है।

(४) शोक, भय, क्रोध एवं मानसिक उद्वेगों के कारण जो स्तन्य नाश होता है उसमें उन उन शोकादि कारणों का प्रतिकार करते हुए मानसिक सान्त्वना देने से तथा दुग्धोत्पादक भेषज एवं आहार विहार से स्तनों में दूध की उत्पत्ति हो जाती है।

(५) कभी कभी यह भी देखा गया है कि गर्भावस्था में ही माता को रक्त की न्यूनता, ज्वरातिसार आदि विभिन्न रोगों से निर्बलता, भोजन पान आदि की कमी, अधिक रक्त का निकल जाना और अधिक मानसिक चिन्ताओं का होना भी स्तन्यनाश का कारण हो जाता है। ऐसी स्थिति में रोगानुरूप औषधोपचारों का प्रयोग करते हुए पौष्टिक एवं दुग्धोत्पादक और दुग्धवर्धक औषधि, आहार विहारों का उपयोग होना चाहिये।

(६) किसी किसी माता के शारीरिक अवयवों के पूर्ण होने पर भी मानसिक चिन्ताएं दुग्धनाश का कारण होती हैं। किसी किसी के मानसिक चिन्ताओं एवं रोगों के न होने तथा साथ ही शारीरिक पुष्टि के पूर्ण होने पर भी बालक पर स्नेहातिरेक न होने से दूध नहीं उतरता। यह परिस्थिति प्राय: प्रथम सन्तान की उत्पत्ति पर ही देखी जाती है। उस समय अज्ञानता, लज्जा एवं अनभ्यास ही स्नेहाभिवृद्धि में बाधक होते हैं।

किसी किसी माता के स्वभाव से ही पुत्र के प्रति स्नेह की कमी के कारण स्तन्यक्षय हो जाता है। ऐसी अवस्था में हार्दिक प्रेम उत्पन्न होने के उपाय यथा कथा-वार्ता, स्नेहवर्धक आलाप, बाललीलाओं का वर्णन आदि करने से माता का प्रसुप्त स्नेह जागृत हो जाता है। ऐसे अवसरों पर लज्जा, भय, शोकादि को दूर रखना चाहिए। इस प्रकार साधना करने से एवं दुग्धोत्पादक औषधियों के सेवन से अवश्य ही स्तन्योत्पत्ति हो जाती है।

(७) यदि माता के स्तनों में दुग्धग्रन्थियों का अभाव या न्यूनता हो अथवा उनका विकास ही न हुआ हो, या कुल परम्परागत विकार हो, विभिन्न सिद्ध उपाय भी जहां असफल सिद्ध हो गये हों ऐसे स्तन्यनाश का उपाय या उपचार करना व्यर्थ है।

(८) यह भी अनुभव सिद्ध है कि प्रसवावस्था में जिन स्त्रियों की अपरा या जरायु यथा समय ठीक तरह से नहीं साफ होती, उसके विषैले प्रभाव से भी स्तनों का दूध सूख जाता है।

अतएव प्रसव के समय ही सावधानी रखनी चाहिए, जिससे अपरा सुखपूर्वक निकल जाय। यदि उसका विकार रह भी जाय तो सूतिकोपचार में विहित विधि से स्नेहलवणादि का पान कराना चाहिए, अथवा किसी योग्य वैद्य की सम्मति से चिकित्सा करनी चाहिए, क्योंकि इस समय के विकार अधिक भयङ्कर होते हैं।

दुग्धोत्पादक एवं दुग्धवर्धक अनुभूत प्रयोग—

क्षीरसागर चूर्ण—विदारीकन्द श्वेत १० तोला, शतावरी नई १० तोला, जीरा सफेद ५ तोला, मुलहठी छिली हुई ५ तोला, असगन्ध नागौरी ५ तोला, अष्टवर्ग असली १० तोला, बिनौले की मिंगी ५ तोला, मिश्री ४० तोला। उपर्युक्त औषधियों को कूट छान कर ६ माशे से १ तोला तक अग्नि बलानुसार दूध से प्रातःसायं सेवन करावें। १ तोला प्रातः तथा १ तोला सोते समय रात्रि में सेवन कराने से कुछ दिनों के बाद ही आशातीत लाभ देखा गया है। औषधि प्रयोग काल में यदि क्षीरी वृक्षों की छाल, असगन्ध, लवण के कदुष्ण जल से स्तनों का सेक भी प्रातः सायं कर लिया करें तो शीघ्र ही लाभ होता है। अधिक उष्ण जल का प्रयोग हानिकारक है।

पयोधर चूर्ण—शतावरी नई चमकदार २० तोला, विदारीकन्द सफेद २० तोला, जीरा कुछ भुना १० तोला, कमलगट्टे की मिंगी ५ तोला, मिश्री ४० तोला। इस पयोधर चूर्ण को पीस छान कर १-१ तोले की मात्रा में प्रातः सायं उष्ण दूध से सेवन करावें। यह भी क्षीरसागर चूर्णवत् ही लाभ करता है।

विशेष—उक्त योगों में मिश्री से मिलाने से पूर्व शुद्ध घृत या शुद्ध बादाम के तेल में स्वल्प भर्जित कर लिया जाय तो ये दोनों योग विशेष बलबर्धक रुचिकर एवं आशुफलप्रद होते हैं। जो रोगिणी मांस मछली से परहेज नहीं करतीं उसके लिए निम्न प्रयोग भी कई बार दिया गया है—

मछली झींगा या अन्य कोई भी सूखी हो, उनका चूर्ण बारीक छना हुआ प्रति दिन मांसरस से १-१ तोला प्रातः सायं दिया जाय। इससे भी शीघ्र ही दुग्धोत्पत्ति एवं दुग्ध वृद्धि होती है।

विशेषतः दूध एवं दूध से बने पदार्थ, उड़द की धुली दाल, घृत आदि भी अग्नि बलानुसार स्तन्य वृद्धि के लिए सेवन कराने चाहिए।

स्तन्योत्पादक पथ्य—

चावल, गेहूं, उड़द, कशेरू, सिंघाड़े, लौकी, तोरई, मांसरस, मछली, दूध एवं दूध से बने पदार्थ, सीधू मद्य को छोड़कर सब प्रकार के मद्य, नारियल, हरा विदारीकन्द, हरी ताजी शतावरी, पेठा, कमलगट्टा, जीरा, दुग्ध, शर्करा, मधुर पदार्थों का भोजन पान आदि स्तन्यजनक एवं दुग्धबर्धक हैं।

चिन्ता शोकादि मानसिक बाधाओं से दूर रह कर ही माता बालक के लिए विशुद्ध जीवनीय शक्ति बढ़ाने वाले स्तन्य को उत्पन्न कर सकती है। स्नेह का उद्रेक होना भी माता के स्तन्य का उत्पादक है।

—सुश्री सावित्रीदेवी रावत शास्त्री आयुर्वेदरत्न
इन्द्र औषधालय, नाई की मण्डी, आगरा

स्तन्य-वर्धनार्थ—

जिस स्त्री का स्तन्य क्षय हो गया हो उसे उसी के दूध को विसंक्रमित कर मांसपेश्यन्तर्गत सूचीवेध करना चाहिए। विसंक्रमित करने के लिए एक पात्र में पानी उबालें तथा उस स्त्री के दुग्ध को पतले कांच की एक परीक्षण नलिका (Test-tube) में कर उस उबलते पानी में २ मिनट रखें। पश्चात् नलिका को पानी से बाहर निकाल कर पूरी तरह ठंडा होने पर अन्य इन्जैक्शनों की तरह ही लगादें। प्रथम दिन २ सी० सी०, दूसरे दिन ३ सी० सी० तथा फिर ५ सी० सी० प्रतिदिन लगायें। कभी-कभी दूध उपरोक्त विधि से गर्म करते समय जम जाता है, ऐसी स्थिति में उसमें बराबर मात्रा में परिश्रुत जल मिला लेना चाहिए। अनुभूत प्रयोग है।

—दाऊदयाल गर्ग A., M. B. S.

नारी उपदंश

श्री वैद्य माधवप्रसाद आचार्य

देश की स्वतन्त्रता के साथ प्रत्येक बाल, युवा एवं वृद्ध स्त्री पुरुषों का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वे देश के उत्थान में सहयोग दें। किन्तु यह सब तभी सम्भव है जब देश को उत्थान के मार्ग पर ले जाने वाली एवं आरोग्य सन्तानों को पैदा करने वाली माताएं स्वस्थ हों। प्रस्तुत लेख में मैं एक ऐसी निन्दनीय घातक संक्रामक व्याधि की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाह रहा हूँ जिसने न केवल स्त्री जाति को ही कमजोर बनाया है, अपितु कई परिवार मां की कमजोरी के प्रभाव से प्रभावित होकर देश की मृत्यु संख्या बढ़ाने में योग दे रहे हैं।

परिचय—

"उपसामिप्येन दंशात्क्षतः इत्युपदंशः" सामिप्य से उत्पन्न हुए व्रण को उपदंश कहते हैं। प्रायः क्षणिक सहवासजनित प्रेम के प्रसंग से उत्पन्न हुआ क्षत उपदंश नामक रोग कहलाता है। वर्तमान काल में असंख्य नर-नारी इस निन्दित व्याधि से आक्रान्त होकर कष्ट पाते हुए अपनी सन्तान में इस व्याधि का संक्रमण करते हैं।

निन्दनीय संक्रमणशील इस व्याधि के विश्व में कई नाम प्रचलित हैं। किन्तु पाश्चात्य भाषा का विचित्र नाम 'सिफिलिस' सबसे विख्यात है। शब्दार्थ की दृष्टि से आयुर्वेदीय उपदंश तथा 'सिफिलिस' की तुलना प्रसिद्ध विद्वानों ने इस प्रकार की है।

यूनानी के—"सिन" शब्द का पाश्चात्य भाषा के 'सिम' शब्द से सामिप्य है और सिम शब्द का पर्याय 'टुगेदर' अर्थात् साथ साथ होता है, तथा फिलिस शब्द का अर्थ 'प्रेम' है। सम्पूर्ण सिफिलिस शब्द का अर्थ हुआ "विषय भोगजन्य प्रेम से उत्पन्न होने वाला दारुण रोग" यही अर्थ आयुर्वेदीय उपदंश का है।

इतिहास—

आज से करीब ४२५ वर्ष पूर्व भी भावमिश्र ने स्वनिर्मित भावप्रकाश में 'फिरंगरोग' के नाम से इस औपसर्गिक निन्दित व्याधि का वर्णन किया है, तथा सुश्रुताचार्य आदि विद्वानों ने भी अपने अपने ग्रथों में उपदंश को संक्रामक माना है।

सिफिलिस शब्द का आरम्भ सर्व प्रथम डा० फैकस्टोरियम ने किया। उन्होंने आज से लगभग ४२० वर्ष पूर्व एक सिफिल नामक प्रेम काव्य लिखा। उन्होंने उसके नायक का नाम सिफिलिस कल्पित किया। वह इस जघन्य रोग से आक्रान्त हो गया।

ईसा की १६ वीं शताब्दी से सिफिलिस नाम विशेष प्रसिद्ध हुआ। इसके बाद विश्व में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाने लगा। फ्रांस वालों ने इस रोग को नेपल्स से आया समझ कर इस रोग का नाम नेपल्स रोग रक्खा। इसी प्रकार इटली वालों ने फ्रांस का दोष बतला कर फ्रेंच रोग रक्खा। पूर्तगाल वालों ने स्पेन रोग, पोलैंड वालों
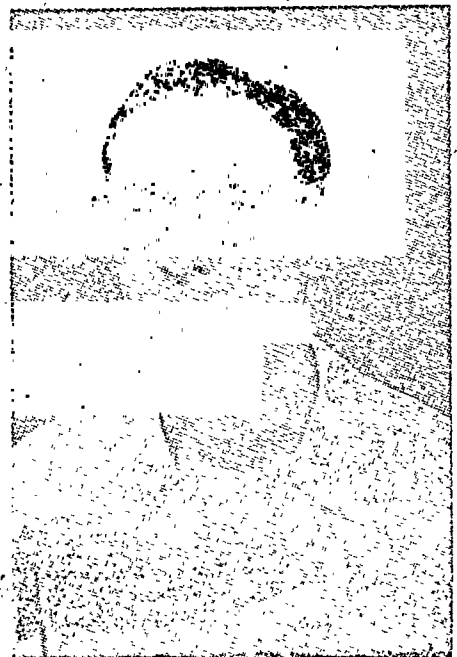
ने जर्मन रोग। रूस वालों ने पोलैंड रोग तथा एशिया वालों ने इसका नाम फिरंग रोग रक्खा। ग्रीक भाषा में 'सिफिलिस' शब्द का व्यवहार होता है। भारतवर्ष में आतशक, गर्मी आदि नामों से लौकिक भाषा में व्यवहार होता है।

नारी उपदंश–

उपदंश का संक्रमण स्त्री और पुरुषों में समान रूप से होता है, किन्तु स्त्रीजन्य उपदंश के लक्षणों में कुछ पार्थक्य होता है। पार्थक्यता के निम्न कारण हैं—

उपदंश जननेन्द्रिय की निन्दित व्याधि है। और नारी जननेन्द्रिय की स्थूल सूक्ष्म रचना पुरुष जननेन्द्रिय से भिन्न होती है इसके अतिरिक्त पुरुष जननेन्द्रिय की अपेक्षा स्त्री जननेन्द्रिय अधिक आर्द्र और मलिन रहती है। उसमें संघर्षण अधिक होने के कारण, व्रण विस्फोट तथा शोथ के लक्षण पुरुष की अपेक्षा भिन्न होते हैं। नारी की डिम्ब-ग्रन्थियों में एक विशेष कार्य क्षमता का प्रभाव होता है जो स्त्री के कुछ अंगों की रक्षा करता है। गर्भिणी की बीजग्रन्थियों तथा गर्भवाह्यावरण के स्राव में एक विशेष प्रकार का पदार्थ होता है। वह भी स्त्री के कतिपय अंगों की रक्षा करता है जिससे स्त्री के हृदय, रक्त प्रणालियां और मस्तिष्क में उपदंश के विकारों का प्रसार न्यूनतम होता है।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का शरीर कोमल व सुखमय होता है। इसलिए उपदंश के प्रसार की शीघ्रता में भिन्नता पाई जाती है। वैश्याओं के अतिरिक्त प्रायः स्त्रियां मदिरापान नहीं करतीं। यह भी भिन्नता का एक कारण है।

उत्पत्ति —

सम्भोगकाल में किसी प्रकार से स्त्रियों की भग या योनि का कोई स्थान छिल जाय या मैथुन काल में स्त्रियों के भगोष्ठ में किसी प्रकार क्षत बन जावे तो प्रधानतया इससे औपदंशिक जीवाणु शरीर के अन्दर इन क्षतों द्वारा प्रविष्ट हो जाते हैं। इन जीवाणुओं का प्रवेश व्यवाय कालिक संघर्ष से जननेन्द्रिय की श्लेष्मिक कला के सूक्ष्म क्षतों से होता है। यथोक्त क्षि. नि.

> व्रणाश्चैवात्र जायन्ते बहिःस्थे जननेन्द्रिये।
> पश्चाद्रोगाणवोरक्ते गत्वा कुर्वन्ति लक्षणम् ॥
> "स्पैरोकीटापालिडाख्यम्" परोपजीवाणुम्।
> उपदंशस्य कारणम् निगदन्ति भिषग्विद ॥

साक्षात् सम्बन्ध से अथवा वंशगत परम्परा सम्बन्ध से रोगाक्रान्त व्यक्ति से स्वस्थ व्यक्ति में संक्रमण होकर जननावयवों में व्रण प्रकाशित होकर सार्वदैहिक विकार उत्पन्न होते हैं। यह रोग वंशावली क्रम से संतति में प्रकट हो जाता है। गर्भावस्था में माता द्वारा गर्भ में उपदंश का उपसर्ग हो जाता है। कभी-कभी अक्षुण्ण त्वचा से भी रोगाणु प्रविष्ट होकर रोगोत्पत्ति कर देते हैं। चर्म पर किसी प्रकार के क्षत हो जाने पर संक्रमण प्राप्त होकर रोग की उत्पत्ति हो जाती है। यह रोग संगम और संक्रमण दोनों ही प्रकार से प्रसरणशील है।

कारण—

इस रोग का प्रधान कारण 'स्पैरोकिटा पालिडा' अथवा "ट्रिपोनिमा पैलिडम्" नामक जीवाणु है।

उपदंश जीवाणु पेचदार होते हैं तथा परोपजीवी होते हैं। इनकी मोटाई ¼ माइक्रोन[⊙] और लम्बाई ६ से १२ माइक्रोन होती है। इनके सम्पूर्ण शरीर में ६ से १० घुमाव होते हैं। दोनों सिरे नुकीले होते हैं। ये चंचल होते हैं किन्तु एक स्थान से दूसरे स्थान में स्वयं नहीं जा सकते। ये साधारण रंगों से रञ्जित नहीं होते। इनका संवर्धन आक्सिजन से होता है। ये ३० डिग्री से. तापक्रम पर बढ़ते हैं। ये अत्यन्त आक्रमणकारी होते हैं। ये प्रवेश होते ही कुछ दिनों में शरीर के अंगों में प्रसार पाकर

[⊙] १ इन्च का २५००० वाँ भाग माइक्रोन कहलाता है।

उनको आक्रान्त कर विकृत कर देते हैं। जीवाणुओं के विष का ज्ञान अभी तक नहीं हो पाया है।

संक्रमण प्रकार—

उपदंश ग्रस्त व्यक्ति के सम्पर्क से स्वस्थ स्त्रियां इस दुष्ट रोग से आक्रांत हो जाती हैं। औपदंशिक रोगियों के व्रण रक्त, लसीका तथा शुक्र के अन्दर उपदंशाणु प्रचुर परिमाण में उपस्थित रहते हैं। उनके सम्पर्क संस्पर्श से स्वस्थ स्त्रियों में इस निन्दित व्याधि का संक्रमण हो जाता है। जीवाणुओं का आक्रमण प्रथम लसिका वाहिनियों द्वारा तथा उसके बाद रक्त प्रणालियों से होता है। इन जीवाणुओं का आक्रमण शरीर के सब अवयवों पर होता है। किन्तु त्वचा, श्लैष्मिक कला, हृदय, रक्तप्रणालियां तथा केन्द्रीय नाड़ी संस्थान पर अधिक होता है।

संक्रमण मार्ग—रोगाक्रान्त व्यक्ति के साक्षात संपर्क से अथवा रोगी के व्यवहार में आये हुए वस्त्र, पात्र, माला, सहभोजन, एक शय्याच्छन्न आदि से इसका संक्रमण होता है। चुम्बन से इसका अधिक संक्रमण देखा गया है। स्त्रियों के चुम्बन, अधरोष्ठ तथा स्तन से ७० प्रतिशत संक्रमण होता है। चिकित्सक और परिचारकों के हाथों पर व्रण होने पर भी संक्रमण होजाना सम्भव है।

उपदंशाक्रांत व्यक्ति का रक्त यदि स्वस्थ व्यक्ति को दिया जाय तो उपदंश का संक्रमण हो जाता है। वेक्सीनेशन, व्रणस्राव, श्लैष्मिक कला का रस, क्षत का क्लेद आदि स्वस्थ शरीरस्थ रक्त के सम्पर्क में आ जांय तो इसका संक्रमण हो जाता है।

सहज उपदंश का संक्रमण पिता के द्वारा नहीं होता, केवल माता के द्वारा ही शिशुओं में होता है। जननी अपने रक्तगत जीवाणुओं से अपरा के द्वारा गर्भ को संक्रांत करती है। कभी-कभी योनिमार्ग संक्रांत होने पर प्रसवकाल में बच्चों में संक्रमण हो जाता है। जननी गर्भधारण के पूर्व उपदंश से पीड़ित हो या गर्भधारण के पश्चात् आक्रांत हो जाने पर उसके रक्तगत उपदंशाणु गर्भाशयिक धमनी द्वारा प्रथम अपरा में जाकर पश्चात् वहां से गर्भ में चले जाते हैं। इससे अपरा
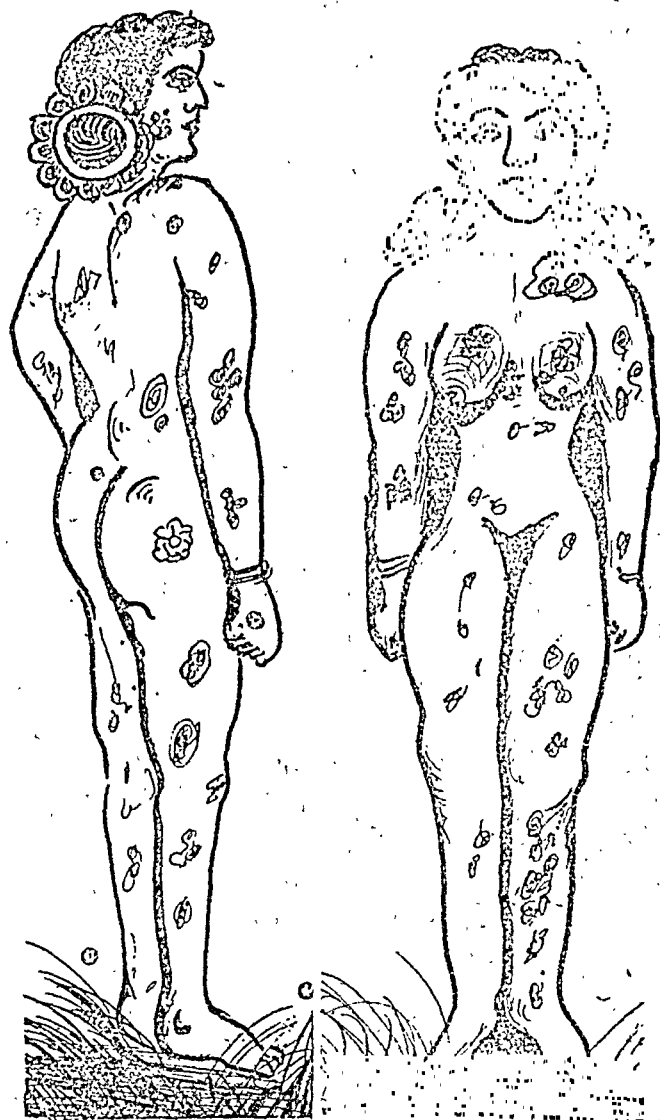
चित्र १३५

उपदंश जनित त्वक्विकार रोगिणी के शरीर में त्वचा पर क्षत हो गये हैं। प्रथम कण्डू आती है और खुजलाने पर पिड़कायें फटकर यह रूप ले चुकी हैं।

चित्र १३६

उपदंश जनित रक्त विकार सम्पूर्णाङ्ग में प्रधानतः मुख, कपाल और वक्ष प्रदेश में पीड़िकायुक्त कण्डू है। कुछ पिडिकायें पूययुक्त हैं।

की रक्त प्रणालियों में शोथ होकर रक्त भ्रमण में बाधा उत्पन्न हो जाती है। इस संक्रमण से गर्भ-स्राव, गर्भपात, मृतगर्भ तथा उपदंश से पीड़ित बालक जन्म लेते हैं।

पुरुष के द्वारा संक्रमण निम्न प्रकार से होते हैं--

पुरुष की शिश्नेन्द्रिय में उपदंश का व्रत वर्तमान हो तो मैथुन काल में स्त्री की योनि की श्लैष्मिक

चित्र १३७

बालिका का शरीर रक्तहीन मलिन तथा क्षीणतापूर्ण है। चर्म पर कण्डू चलती है। शरीर पर असंख्य पिड़कायें निकली हुई हैं। अधिकांश पिड़कायें पूययुक्त हैं।

कला में उपदंशाणु प्रविष्ट हो जाते हैं। पुरुष के शुक्र में उपस्थित उपदंशाणु गर्भाधान के समय ही गर्भ को आक्रान्त कर देते हैं। गर्भधारण के बाद शुक्रस्थ उपदंशाणु गर्भ पर संक्रमण नहीं कर सकते क्योंकि गर्भाशय का द्वार गर्भ धारण के बाद बन्द हो जाता है। इसके पश्चात् पुरुष गर्भवती स्त्री को सक्रांत कर शिशु में सहजोपदंश उत्पन्न करने के लिये परोक्ष भाव से भाग लेता है।
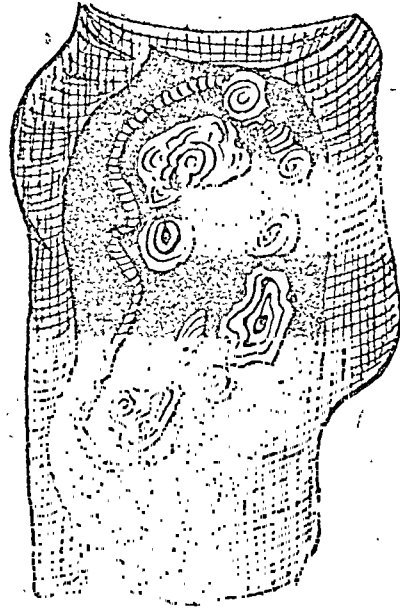
चित्र १३८

उपदंशजन्य ग्रंथिक्षत--क्षत बढ़ते जा रहे है। ग्रन्थियां जीर्णता को प्राप्त होकर उनमें पूय बहने लगता है।

उपदंश रोग के संक्रमण व उत्पत्ति में सहायक कारणों की आवश्यकता नहीं होती। उपदंश रोग से ग्रसित रोगी के साथ मैथुन करने मात्र से इस रोग की उत्पत्ति हो जाती है जैसे जलवायु, काल, ऋतु, जाति, वय, वंश, लिंग आदि की अनुकूलता और प्रतिकूलता का प्रभाव इस पर नहीं पड़ता। यह सब व्यक्तियों में सब समय संक्रमण करता है। कभी कभी अन्य संक्रामक रोगों की भांति चिर-काल तक रहने पर इसकी तीव्रता और घातकता कम हो जाती है।

उपदंश का आयुर्वेदीय सिद्धान्त—

तत्रादति मैथुनादति ब्रह्मचर्याद्वां तथा ब्रह्मचारिणी चिरोत्सृष्टां रजस्वलां, दीर्घरोमां, कर्कशरोमा, निगूढ-रोमामल्पद्वारां, महाद्वारामप्रियामकामां चौक्ष्य सलिल-ऽप्रक्षालित, योनिमऽप्रक्षालित योनि योनिरोगोपसृष्टां स्वभावतो दुष्ट योनि वियोनिं वा नारीमत्यर्थमुपसेव

मानस्य तथा कुरज दशन विषशूक निपातनादर्दनाद्धस्ताभिघाताच्चतुष्पदीगमनादचौक्ष्य सलिलप्रक्षालनादवपीड़नाच्छुक्रवेग विधारणान्मैथुनान्ते अप्रक्षालनादिति मेढ्मागम्य प्रकुपिता क्षतेऽक्षतेवारत्यथुमुपजनयन्ति तमुपदंशमित्याचक्षते । —सुश्रुत

इस प्रकार सुश्रुताचार्य ने उपदंश की उत्पत्ति बतलाकर, इसे पांच प्रकार का माना है। यथा—वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, रक्तज।

चित्र १३९

उपदंश जन्य ग्रीवा स्तम्भ।

उपदंश फिरङ्ग पर विचार—श्री भाव मिश्र जी ने स्वनिर्मित भाव प्रकाश में फिरङ्ग रोग का वर्णन निम्न प्रकार से किया है—

फिरङ्ग संज्ञके देशे वाहुल्ये नैवयद भवेत्।
तस्मात् फिरङ्ग इत्युक्तो व्याधि व्याधि विशारदैः ॥
फिरङ्गिणोङ्ग संसर्गात् फिरङ्गिण्याः प्रसर्गतः।
व्याधिरागन्तुजो ह्येष दोषाणामत्र संक्रमः ॥

फिरंगियों के सम्पर्क से यह आगन्तुज व्याधि भारत में व्याप्त हुई। इसलिये इसका नाम फिरंग रोग रक्खा। इस प्रकार श्री भावमिश्र जी ने उपदंश और फिरङ्ग में भेद बतला कर चिकित्सा में भी भिन्नता बतलाई है। सुश्रुताचार्य के मतानुसार "योनि रोगो पष्टामुसेवमानस्य" इस उक्ति से फिरङ्ग और उपदंश में कोई भेद प्रतीत नहीं होता। दोनों के पञ्चनिदान प्रायः मिलते हैं किन्तु वस्तुतः फिरङ्ग कठोर शैंकर (Hard chancre) तथा उपदंश मृदु शैंकर (Soft chancre) होता है। मृदु शैंकर बिना किसी दैहिक विकार किये सामान्य चिकित्सा करने पर ठीक हो जाता है। कठोर शैंकर के लिए पारदयुक्त औषधियों का सेवन तथा विशेष चिकित्सा की आवश्यकता रहती है। कभी कभी यही मृदु शैंकर कठोर शैंकर का रूपधारण कर लेता है इसलिये चिकित्सा में दोनों की सामीप्यता है।

चित्र १४०

उपदंशजन्य स्तन वृन्त संकोच

(*Retraction of the nipple*)

उपदंश और दाम्पत्य जीवन—दाम्पत्य सुख गाह-स्थ्य व्यापार की स्वस्थ गाड़ी है। इस गाड़ी के दोनों दम्पति चक्र हैं। यदि एक चक्र अस्वस्थ है तो गाड़ी का चलना सम्भव नहीं हो सकता, इसलिये इन दोनों चक्रों (पहियों) को गाड़ी में लगाने के पूर्व अच्छी तरह परीक्षा कर लेनी चाहिये। अर्थात् पाणिग्रहण संस्कार बिना वासरमेन की परीक्षा (Wasserman Reaction examination) किये करने पर दाम्पत्य जीवन प्रायः दुखमय हो जाता है। प्रक्षितोपदंशी स्त्री पुरुषों को विवाह करने की आज्ञा नहीं देनी चाहिये क्योंकि उप-दंशाक्रांत स्त्री पुरुषों में उपदंशाणु उपस्थित रहते हैं जिनके सम्पर्क से उपदंश उत्पन्न हो जाता है। यदि विवाह के पश्चात् उपदंश उत्पन्न हुआ हो तो मैथुन का त्याग कर देना चाहिये। यदि दम्पति उपदंश से आक्रान्त हो तो संतति नियमन करना चाहिये। प्रक्षितोपदंशी का समुक्ति उपचार करते रहने पर यदि दो वर्ष बाद कोई उपदंश के लक्षण प्रकट न हों तो उन्हें मैथुन करने की आज्ञा देना उपयुक्त है।

उपदंश के प्रकार —

उपदंश दो प्रकार का होता है—

(१) पैतृक वा सहज (२) सहवास जनित

सहजोपदंश के लक्षण—सहजोपदंश का संक्र-मण स्थानीय न होकर जन्म के पूर्व ही शरीर व्याप्त हो जाता है। कभी कभी लक्षण जन्म के तीन माह पर्यन्त व्यक्त होजाते हैं। कभी कभी लक्षणों के होने में इससे अधिक समय भी लगता है। उप-दंश जनित गर्भपात, गर्भस्राव तथा मृत गर्भ के लक्षणों का उल्लेख करना यहां असक्य है।

जन्मकालीन उपदंश से ग्रस्त शिशु अधिकांश शुष्क, क्षीण, रुग्ण, निर्बल, कद में छोटे, बन्दर की नासिका तुल्य पिचकी नासिका वाले (Saddle nose) रेखाएं पड़ी हुई, धूसर वर्णयुक्त त्वचा, उदर बढ़ा हुआ, तथा कुछ बालकों के मुख और हाथ पांवों में शोथ भी दिखाई पड़ता है। त्वचा में लाल रंग के विस्फोट निकल आते हैं। कभी कभी विस्फोट से स्राव भी होने लगता है। हाथों और पावों के नीचे पूययुक्त फफोले हो जाते हैं। शिर के बाल गिर जाते हैं। नाखून रूक्ष मोटे और अपार दर्शक हो जाते हैं।

चित्र १४१

उपदंश जन्य अर्बुद-अर्बुद कठोर है तथा अव-पीड़न करने पर पीड़ा मालूम नहीं होती।

कभी कभी नाखून गिर भी जाते हैं। मुख गला स्वरयन्त्र नासा आदि स्थानों में व्रण उत्पन्न हो जाते हैं। नासा में विकृति हो जाने के कारण श्वास लेने में कठिनाई हो जाती है। अस्थियों में कई प्रकार की विकृति हो जाती है। संधियों में आम-वात के समान पीड़ा और शोथ हो जाता है। दन्तो-त्पत्ति कभी शीघ्र तथा कभी विलम्ब से होती है और जल्दी विकृत हो जाते हैं। लसिका ग्रंथियां बढ़ जाती हैं। यकृत प्लीहा बढ़ जाते हैं। मध्य-कर्ण में शोथ होने के कारण बालक बधिर हो जाता है। स्वभाव में चिड़चिड़ापन हो जाता है। उपरोक्त लक्षणों से युक्त बालक यदि दो वर्ष पर्यन्त जीवित रहे तो ये लक्षण दूर हो जाते हैं किन्तु रोग

की वर्तमानावस्था के कारण सातवें और चौदवें वर्ष में पुनः प्रकट हो जाते हैं।

यौवने सहजोपदंश लक्षण--पन्द्रह वर्ष के बाद मुंह के समीप तथा अन्दर व्रण तथा रेखाएं बन जाती हैं। तालु उन्नत होकर छिद्र युक्त हो जाता है। नासिका बीच में पिचकी हुई या बैठी हुई होती है। संधियों में पीड़ा तथा द्रवयुक्त शोथ हो जाता है। नेत्रों के श्वेत मंडल में शोथ होकर धुंधलापन हो जाता है। दृष्टिमांद्य, कर्ण-बाधिर्य, तथा दंतपंक्ति तिर्यक हो जाती है। सहजोपदंशी का शारीरिक व मानसिक विकास पूर्ण नहीं हो पाता और इससे रोगी छोटे कद वाला, पतला, दुबला, मन्दबुद्धि, उन्मादी, अज्ञानी तथा दुखी होते हैं। उपदंश में उन्माद, खन्जता और पक्षाघात ये मुख्य लक्षण उत्पन्न होते हैं। स्त्रियों में गर्भपात, गर्भ-स्राव आदि विशेष होते हैं। इस प्रकार सहजोपदंश के जन्म से उत्तरकालीन अवस्था तक के लक्षण देखे गये। सहजोपदंशी पुनः अपनी संतान में इसका संक्रमण पहुँचा लेते हैं अतः यह निन्दित व्याधि पीढ़ियों तक उनके वंश में संचरण करती रहती है। इस प्रकार वंशज उपदंश से आक्रान्त रोगी बच भी जावे तो उसका जीवन अत्यन्त दुखदायी होता है।

सहजोपदंश—

सहवास जनित उपदंश के लक्षण—सहवास जनित उपदंश में सबसे पहले जिस स्थान में इसके जहर का स्पर्श होता है उस स्थान में क्षत के रूप में स्थानिक लक्षण प्रकाशित होते हैं। इसकी तीन अवस्थायें होती हैं—

(१) प्रथमावस्था या व्रणावस्था (२) द्वितीयावस्था या गौणावस्था (३) तृतीयावस्था, कुछ विद्वान् चतुर्थावस्था और मानते हैं किन्तु इसका तृतीय अवस्था में समावेश हो चुका है।

प्रथमावस्था—

यह भी दो प्रकार की होती है। यथा मृदुक्षत और कठोर क्षत। सहवास जनित औपदंशिक प्रथमावस्था में संक्रमण होने के बाद अधिकांश तीन सप्ताह से पांच सप्ताह तक की गुप्तावस्था के बाद स्त्रियों में भगोष्ठ, भगाञ्जलिका, भगशिश्निका और मूत्र द्वार पर मृदुक्षत उत्पन्न होते हैं। व्रणों के अतिरिक्त जननेन्द्रिय की श्लैष्मिक कला में वा चर्म के ऊपर पूय पिडिका वा दरार उत्पन्न हो जाती हैं। कभी कभी छाला भी पड़ जाता है।
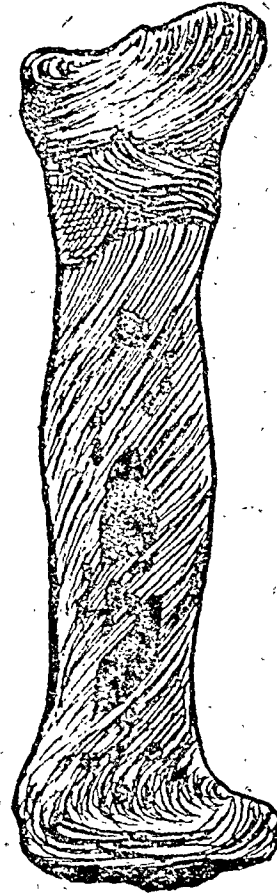
चित्र १४२

उपदंश जनित पूययुक्त अस्थि—उपदंशाणु अस्थि को विकृत कर उसमें क्षतकर चुके हैं। अस्थि के अन्दर की मज्जा का क्षय हो वह खोखली हो गई है।

क्षत के अवयव क्रमशः बढ़ जाते हैं। मूत्र स्थान रक्तवर्ण हो जाता है। क्षत प्रदेश उन्नत होकर तरल पूय से भर जाता है। पांच दिन के अन्दर क्षत मटर के समान होजाता है। क्षत गोलाकार, गम्भीर और धूसर वर्ण से युक्त होजाता है। कभी कभी त्वचा से क्षत कुछ ऊंचा भी होजाता है। जैसे जैसे यह क्षत प्रसार पाता है वैसे वैसे तन्तु लालिमा लिए हुए कठोर होते जाते हैं। इस संक्रमित व्रणसे औपदंशिक जीवाणुओं का विष लसिका वाहिनियों और रक्त प्रणालियों द्वारा शरीर में प्रविष्ट होजाता है। कभी कभी प्राथमिक क्षत के आसपास लसिका प्रणाली प्रदाह होजाता है। ऐसा होने पर सम्पूर्ण जननावयव विचित्र आकृति के हो

जाते हैं। यह अवस्था अत्यन्त दुर्दयनीय है।

मुख और ओष्ठ आक्रान्त होने पर हन्वधोवर्ती लालाग्रन्थि और चिबुकधरीय ग्रन्थि शोथ युक्त होजाती हैं।

स्त्रियों में इस प्राथमिक व्रण की तरफ कभी कभी ध्यान भी नहीं जाता क्योंकि व्रण बहुत छोटा होता है। कभी कभी वेदना रहित, कभी कभी अस्थाई होता है, कभी कभी श्लेष्म युक्त त्वचा की पर्त में छिपा रहता है। उसमें कई बार काठिन्य नहीं होता।

जननेन्द्रिय की आर्द्रता के कारण उसके बाह्य स्वरूप में भिन्नता होजाती है। कभी कभी व्रण ऐसे स्थान में पैदा होजाता है जिसका निरीक्षण नहीं किया जासकता। इसके अतिरिक्त प्राथमिक व्रण अधिक होते हैं और व्रण के स्थान से सम्बन्ध रखने वाली ग्रन्थियां कभी कभी नहीं फूलतीं। कभी कभी सामान्य व्रण होजाने पर भी उपदंश के व्रण का भय होजाता है। ऐसी स्थिति में सामान्य क्षत तथा औपदंशिक क्षत में प्रभेद कर लेना चाहिए-

सामान्य क्षत—प्रायः रतिक्रिया में की गई प्रबलता या अधिक मैथुन-मदान्धता के कारण नाखून आदि लगने पर उत्पन्न हो जाता है। यह व्रण साधारणतया २४ घंटे के अन्दर प्रकाशित हो जाता है। यह क्षत जननेन्द्रिय या उसके निकट स्थान में क्षत के रूप में आरंभ में होता है। इसमें वेदना बराबर बनी रहती है, स्थानिक पीड़ा होती है, सम्पूर्ण शरीर आक्रांत नहीं होता, गौण वा तृतीय अवस्था प्रकट नहीं होती। वंशावली क्रम से प्रकाशित नहीं होता। औपदंशिक व्रण में इस से विपरीत लक्षण पाये जाते हैं।

द्वितीयावस्था—

प्रथमावस्था के प्रकाशित होने के बाद कुछ काल तक इसके लक्षणों का प्रकट होना रुक जाता है। प्रायः प्रथमावस्था के तीन महिने बाद द्वितीयावस्था आरम्भ हो जाती है किन्तु कुछ कारणों से इस समय में न्यूनाधिक्य भी होजाता है। दुर्बल व चंचल स्वभाव वाले व्यक्तियों में शीघ्रतया तथा बलवान व स्वस्थ व्यक्तियों में विलम्ब से प्रकाशित होती है।

रोगी तेजहीन, मलिन मुख वाला और दुर्बल हो जाता है। किसी किसी को ज्वर आजाता है। ज्वर कई सप्ताह तक स्थाई भी देखा गया है। इस अवस्था में शिरः शूल होना प्रधान लक्षण है। प्रायः रात्रि में शिरपीड़ा वर्तमान रहती है। अनेक स्थलों की संधियों में ज्यादातर अंगुलियों की संधियों में ताम्र के समान वर्णवाली औपदंशिक गुटिका निकल आती है।

इस अवस्था में भग, गुदा, जंघासा, और नितम्ब आदि स्थानों में पर्याप्त मात्रा में चपटे और औपदंशिक व्रण पैदा हो जाते हैं। स्तन के नीचे गांठदार विस्फोट आर्द्र स्वरूपयुक्त दिखालाई पड़ते हैं। दोनो स्तनों में विह्वलता पैदा करने वाली पीड़ा और पीडनाक्षमता होती है। ग्रीवा, स्कन्ध तथा किसी भी स्थान पर कुछ विवर्णता उत्पन्न हो जाती है। यह विवर्णता स्थाई होती है। रक्तहीनता, खालित्य, बार बार गर्भस्राव या गर्भपात तथा मृत गर्भ जन्म

चित्र १४३

उपदंशजन्य श्लीपद–पाद के पृष्ठ प्रदेश, तथा एड़ी के चारों तरफ श्लीपदाकृति का मांस-पिण्ड हो गया है।

अधिकांश इस उपदंश में होते हैं। इस गौणावस्था में अनेक प्रकार की पिड़िकायें व अनेक प्रकार के चर्मरोग उत्पन्न होकर कई प्रकार की देह में विकृति हो जाती है। जिह्वा में एक प्रकार की औपदंशिक पीड़ा होती है। इसमें जिह्वा की श्लैष्मिक झिल्ली पर या तालु प्रदेश पर एक गोलाकार स्फोटक कठिन पिण्ड रूप में परिवर्तित होजाता है। स्त्रियों के गर्भाशय में, जनन यंत्र की शिरा में, रक्त संचालन की स्थिरता में तथा अधिकांश स्थल में पिड़िकायें उत्पन्न होजाती हैं। केवल त्वचा और श्लैष्मिक झिल्ली ही उपदंश के विष से आक्रांत हों ऐसा नहीं। रसवहा नाड़ियां तथा सौत्रिक तन्तु भी आक्रान्त हो जाते हैं। नेत्र का कृष्ण भाग, मस्तिष्क की बाह्यावरणी कला और अस्थिपरिवेष्टिनी कला (Periosteum) आदि में उपदंशीय प्रदाह होकर मूर्च्छा, आक्षेप, अस्थिध्वंश आदि विकार होजाते हैं।

तृतीयावस्था—

साधारणतया उपदंश से आक्रांत होने पर एक वर्ष के पश्चात् तृतीयावस्था उत्पन्न हो जाती है। कभी कभी दस वर्ष के बाद भी इस अवस्था के लक्षण प्रकट होते देखे गये हैं अतः इस अवस्था का काल निर्धारित नहीं किया जा सकता।

इस अवस्था में यकृत् सबसे अधिक आक्रांत होता है तथा प्रबल पाण्डु रोग की उत्पत्ति हो जाती है। त्वचा, उपत्वचा, पेशियां, यकृत् वृक्क, वृषण, आमाशय, मस्तिष्क, हृदय, रक्त प्रणालियां, और हड्डियों में अर्बुदाकृति की ग्रंथि में हो जाती हैं। ये नितम्ब, स्कन्ध, जानु, मस्तक, नासा, हथेली, उरः फलक आदि में मटर से लेकर निम्बु के तुल्य अथवा इससे भी बड़ी होती हैं।

कोमल तालू (soft palate) आक्रांत होकर उसमें छिद्र होजाता है। इस अवस्था में भग के समीप या गर्भाशय-ग्रीवा के ऊपर ग्रंथियां उत्पन्न होजाती हैं। ये ग्रन्थियां कर्कट (कैंसर) के सदृश हो जाती हैं। स्तनों में गोलाई लिये हुए कठिन ग्रन्थियां उत्पन्न होजाती हैं। सर्वाङ्ग वात और खञ्जता उत्पन्न होजाती है। प्रायः स्त्रियों में ये दोनों लक्षण कम दिखाई देते हैं।

उपसर्ग—

तृतीयावस्था में औपदंशिक उपद्रव विशेष होते हैं क्योंकि उपदंशाणु शरीर के सम्पूर्ण अङ्गों पर अपना प्रभाव जमा लेते हैं। इससे प्रधानतया औपदंशिक उन्मत्तता, खञ्जता, पक्षाघात, एकांगाघात, तीव्र शिरःशूल, गर्भस्राव, गर्भपात, मृतगर्भ
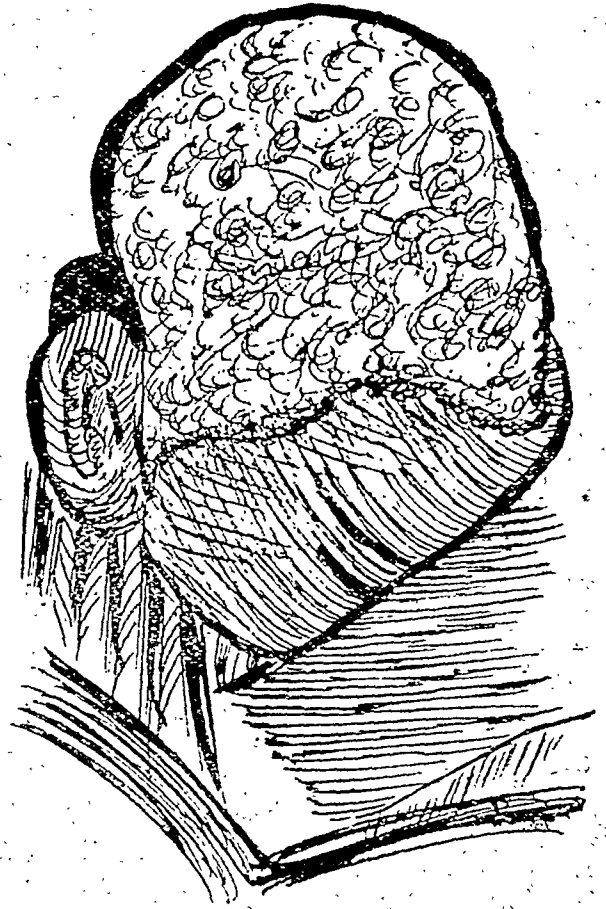
चित्र १४४

उपदंश जन्य केशहीनता-रोगिणी के कपाल और मस्तिष्क पर असंख्य सर्षपाकार पिड़कायें निकल आई हैं जिनमें से अधिकांश पूययुक्त हैं। पिड़काओं के सूखे हुए स्थान के बाल गिर गये हैं, चहरे की त्वचा में सलवटें पड़ गई हैं।

जन्म अथवा औपदंशिक रोगग्रस्त बालक का जन्म आदि उपद्रव होते हैं।

चिकित्सा—

उपदंश की चिकित्सा दो भागों में विभक्त होती है।

(१) स्थानिक चिकित्सा (२) दैहिक चिकित्सा

स्थानिक चिकित्सा—साधारणतया आद्य क्षत (प्राथमिक क्षत) को साफ रखना चाहिये। इसके लिये मृदु संकोचक कषाय रस गुण भूयिष्ट जन्तुघ्न द्रव के घोल में स्वच्छवस्त्र (लिंट) भिगोकर क्षत पर रखना चाहिये। इसके लिये एक्रीफ्लेविन, ग्लिसरीन, पारद-द्रव, जिंक सल्फेट, जात्यादिघृत आदि उपयुक्त हैं।

यदि क्षत असाद्य दिखाई पड़े अथवा उसमें पूयोत्पादन विशेष हो तो "हाइड्रोजन पर फ्लोराइड" या कार्बोलिक द्रव से परिष्कृत कर क्षत को स्वच्छवस्त्र से पोंछकर शुष्क करदें। पश्चात् आयडोफार्म का चूर्ण उस पर बुरकें। सड़े हुये पदार्थ के अलग हो जाने पर जन्तुघ्न द्रव से प्रक्षालन कर 'कैलोमल ओइन्टमेंट" आदि द्वारा पूर्वोक्त प्रकार से चिकित्सा करें।

चित्र १४५
उपदंश जन्य गलित व्रण।

दैहिक चिकित्सा—

पथ्य—उपदंश रोगाक्रांत व्यक्ति की चिकित्सा के लिये सर्व प्रथम व्यवस्था पर पूर्ण ध्यान देना चाहिए। इसके लिये पौष्टिक आहार पथ्य हैं। प्रतिदिन स्वच्छ शीतल जल से स्नान करें। स्वच्छ गाढ़े वस्त्र से शरीर को पोंछकर मोटे वस्त्रों को पहनना चाहिये। नियमित रूप से कोष्ठ शुद्धि करनी चाहिये। समय पर निद्रा, आहार और मृदु व्यायाम तथा आमोद प्रमोद करना चाहिये। सुविधानुसार जलवायु परिवर्तन करना चाहिये। इसके लिए समुद्र की यात्रा विशेष पथ्य है।

अपथ्य—मद्य और तम्बाखू का निषेध है। अधिक मानसिक वा कायिक श्रम तथा अन्य संक्रमणकारक पदार्थों का व्यवहार करना अपथ्य है।

चिकित्सा काल—रोगी को अच्छी तरह स्वस्थ होने के लिये कितने दिन तक चिकित्सा करनी चाहिये यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। साधारणतया दो वर्ष तक चिकित्सा होना आवश्यक है। चिकित्साकाल में सहवास करना निन्दित है क्योंकि इस अवस्था में उत्पन्न हुई सन्तान निश्चित हो इस निन्दित व्याधि से आक्रान्त हो जाती है।

पंचकर्म—प्रथम रोगी को स्नेहपान करावें तथा आवश्यकतानुसार स्वेदन देवें। वृद्धिगत विकारों को तीक्ष्ण विरेचन से शान्त करें। श्लेष्म प्रधान में मृदुवमन देना हितावह है। यदि रोगी दुर्बल है तो विरेचन नहीं देना चाहिये किन्तु बढ़े हुये दोषों को निरूह बस्ति द्वारा निकालें। इस प्रकार तत्काल दोषों को निकाल देने से पीड़ा और शोथ

शान्त हो जाता है।

औषधि व्यवस्था—उपदंश चिकित्सा में व्यवहरित निम्न आयुर्वेदीय योग हैं जिनको विद्वान चिकित्सा में व्यवहार करते हैं—

मल्लसिंदूर, तालसिंदूर, पारदभस्म, रस कर्पूर, त्रिपुरभैरव रस, फेनाश्मपुष्प, मंजिष्ठादि तालसिंदूर, मल्लभस्म, तुत्थभस्म, केशरादि वटी, चोपचिन्यादि चूर्ण।

पारद का उपदंश पर प्रभाव—पारद उपदंश की अमोघ औषधि है। पारद का विविध प्रकार से प्रयोग किया जा सकता है यथा प्रलेप, मर्दन, वाष्प, अन्तःसेवन, सूचीवेध आदि। वर्तमान में वैज्ञानिकों ने पारद के कई घटक निर्माण किये हैं जिनका उपदंश में अन्तः सेवन के लिये प्रयोग होता है जैसे—प्रोटोआयोडाइड, रिनआयोडाइड, बाइक्लोराइड, कैलोमल, ग्रे पाउडर आदि। प्राचीनकाल में भी पारद का अन्तः सेवन के लिये प्रयोग होता था। पारद की मात्रा ½ रत्ती से किसी भी प्रकार अधिक नहीं होनी चाहिये। यह मात्रा रोग एवं रोगी के बलानुसार घटाई जा सकती है।

विशेषतः त्वचा और रक्त में उपदंश के होने पर पारद का वाष्प प्रयोग विशेष लाभप्रद सिद्ध हुआ है। वाष्पीय प्रयोग के लिये रोगी को बिना बिछौने की शैया पर उसको ग्रीवा से भूमि तक ऊन के वस्त्रों से आच्छादित करें। पश्चात् नीचे १० से २० ग्रेन तक रस पुष्प (कैलोमल) जलावें।

केशरहित स्थानों में पारद मर्दन विशेष लाभप्रद है। मर्दन के लिये ओलियेट आफ मर्करी ½ ड्राम, वेसलीन ½ ड्राम लें। मर्दन की क्रिया एक सप्ताह से अधिक नहीं होनी चाहिये।

पारद का सेवन एक सप्ताह कराकर दूसरे सप्ताह बन्द कर देना चाहिये। पुनः तीसरे सप्ताह सेवन करना चाहिए। अधिक काल तक तथा अति मात्रा में पारद का सेवन करने से मुख पाक, आन्त्र और आमाशय में भयङ्कर शोथ एवं शूल हो जाता है। वमन रक्तातिसार मूर्च्छा और मृत्यु भी हो सकती है।

वर्तमानकालीन अहिफेनास्म—

सालवर्सन, नियोसालवर्सन आदि विशेष प्रयोग में लाए जाते हैं। उपदंश की चिकित्सा में पेनिसिलीन सबसे नई औषधि है। इससे प्रथमा व द्वितीयावस्था के उपदंशाणु शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। साधारणतया १० हजार युनिट की मात्रा का प्रति तीन घण्टा पर ८–१५ दिन तक मांस पेश्यान्तर्गत सूचीवेध देना चाहिए।*

चित्र १४६

उपदंश जन्य गलगण्ड—इसका वामपार्श्व अपेक्षाकृत अधिक फूला हुआ है। दवाने से अंगुली का गड्ढा पड़ जाता है तथा अंगुली उठाने पर वह पूर्ववत् होजाता है।

*आजकल डाइ-एमाइन पैन्सिलीन १२ लाख यूनिट का प्रति चौथे दिन प्रयोग करते हैं। इस प्रकार लगभग १४ इन्जेक्शन दिये जाते हैं।

—सम्पादक

पेनिसिलीन के साथ साथ अन्य सहायक औषधियों का प्रयोग भी आवश्यक है जैसे पारद, बिस्मथ, अहिफेनासम, पौष्टिक आहार, विटामिनों का प्रयोग आदि।

व्रत की चिकित्सा पर बाह्य प्रयोग—(१) औपदंशिक व्रत पर करञ्जाद्य घृत अथवा भूनिम्बाद्य घृत का लेप करने से उपदंश, दाह, पाक, पूयादि का स्राव और रक्तवर्णता दूर हो जाती है।

(२) रसाञ्जन और हरीतकी को समान मात्रा में पीस कर मधु मिलाकर व्रत पर प्रलेप करें। प्रलेप करने से पूर्व त्रिफला के जल से व्रत् का प्रक्षालन करें।

(३) मानव अस्थि का महीन चूर्ण बनाकर उपदंश के व्रत पर बुरकें। इससे शीघ्र व्रत का रोपण हो जाता है।

अन्तः सेवन के अनुभूत योग—

(१) शुद्ध भल्लातक ३ माशा, शुद्ध पारद ३ मा., सफेद कत्था ३ माशा, खुरासानी अजवायन ३ माशा, अजवायन ३ माशा, रसकपूर १ तोला।

निर्माण विधि—उपरोक्त सबको बंगाली पान के रस में घोटकर मूंग के आकार की गोली बनावें।

सेवन विधि—प्रातः काल एक गोली मलाई में रख कर निगल जावें। गोली निगलते समय गोली से दांतों का स्पर्श नहीं होना चाहिये अन्यथा सम्पूर्ण दांत ढीले पड़जाने की पूर्णतः संभावना है। यह प्रयोग उपदंश के लिए केवल सात दिन सेवन करने मात्र से उपदंश सम्बन्धी समस्त विकारों को शान्त करने में श्रेष्ठ सिद्ध हुआ है।

उपदंश के लिए धूम्र प्रयोग—शुद्ध पारद एक तोला, शुद्ध गंधक १ तोला, शाली चावल १ तोला, निम्बपत्र ५ तोला—इन सबको लेकर प्रथम पारद और गंधक की कज्जली बनावें, पश्चात् सबको एकत्र कर सात भाग बना लेवें।

प्रयोग विधि—प्रतिदिन एक भाग लेकर रोगी की शय्या के नीचे जलावें। रोगी को वस्त्र विहीन शय्या पर बैठा कर भूमि से ग्रीवा पर्यन्त ऊन के कपड़ों से आच्छादित करें। इस प्रकार सात दिन पर्यन्त धूमयुक्त वाष्प का प्रयोग करें। इससे उपदंश जन्य रक्त विकार, त्वक् विकार, पामा, कन्डु आदि शीघ्र शान्त हो जाते हैं।

मुखाभ्यन्तरीय उपदंशजन्य स्फोटक पर प्रयोग—तुत्थ ३ माशा, बबूल की छाल १ तोला, खजूर के पत्ते १ तोला, स्वर्ण गैरिक १ तोला।

निर्माण विधि—इन सबका षोडमांश क्वाथ बनाकर इस क्वाथ से कुल्ला करावें। कुल्ला कराने के पश्चात् स्फटिक पुष्प को चमेली के पत्तों के साथ कल्क बनाकर उसका मुंह में कवल धारण करें।

—श्री वैद्य माधव प्रसाद आचार्य,
राष्ट्रीय चिकित्सा केन्द्र, धान मण्डी, उदयपुर

उपदंश और उपचार

श्री वैद्य जयकुमार जैन

आजकल समाज में उपदंश रोग से पीड़ित मनुष्यों की संख्या दिनों दिन बढ़ती जारही है। यह एक ऐसा भयंकर रोग है कि जिसको अपने चंगुल में फंसा लेता है, उसको बड़ी मुश्किल से छोड़ता है। इस रोग से मनुष्य इतने शर्मिन्दा होते हैं कि चिकित्सकों से भी कहने में संकोच का अनुभव करते और जब रोग बढ़ जाता है, तब वे अनेक भयंकर व्याधियों से ग्रसित हो जाते हैं।

पर्याय एवं परिचय—आजकल मनुष्य उपदंश को ध्वजङ्ग, Soft chancre chancroid कहते हैं। यह एक संसर्गिक रोग है, जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक प्रायः सहवास के द्वारा ही पहुंचता है। इसमें मनुष्यों की शिश्नमणि, शिश्न चर्म, शिश्न सेवनी या मणि के भीतर मूत्र मार्ग में और स्त्रियों के लघु भगोष्ठ, भगांजलिका, भगशिश्निका और भगालिन्द पर एक बड़ा व्रण तथा आस पास कई छोटे छोटे व्रण उत्पन्न हो जाते हैं। धीरे धीरे जब रोग पुराना होजाता है तब वेदना, पीडनासह्यता, जलन, लसग्रन्थियों की अभिवृद्धि इत्यादि स्थानिक लक्षण होते हैं।

चित्र १४७
योनि पर उपदंशज अनेक व्रण एवं फुंसियां

कारण—यह अत्यधिक खट्टे, नमकीन, क्षार-युक्त भोजन, विरुद्धाहार, असात्म्य भोजन, अत्यधिक जल पीने से, चावलों के आटे के बने हुए पदार्थों के सेवन करने से, भारी भोजन, दही, दूध और आनूप मांस के सेवन से, अत्यधिक मैथुन अथवा बहुत दिनों तक ब्रह्मचर्य का पालन कर एकाएक उसका अतिक्रमण करके मैथुन करने अथवा बहुत दिनों से जिसके साथ मैथुन न किया गया हो ऐसी, ऋतुमती, लम्बे, कर्कश, घने, निगूढ़ और योनि के अन्दर रोम वाली के साथ सम्भोग करने पर, जिसकी योनि संकुचित अथवा विस्तृत हो, अप्रिय, जिसका मन मैथुन में न हो, अशुद्ध जल से योनि प्रक्षालन करने अथवा शुद्ध जल से न धोने पर, मलिन, रोगाक्रान्त, अथवा वातादि दोषों से दूषित योनि में गमन करने से, नख, दन्त शूक विष आदि के लगने पर, शिश्न के बांधने हस्त मर्दन एवं चौपायों (बकरी, कुतिया, गधी, इत्यादि) के साथ सम्भोग करने से, अस्वच्छ जल से शिश्न को धोने अथवा स्वच्छ जल से शिश्न को न धोने पर, शुक्र मूत्रादि वेगावरोध तथा शिश्न का पीडन करने से, नव प्रसूता एवं पर स्त्रियों के साथ सम्भोग करने पर, जननेन्द्रिय को बढ़ाने के लिए तीक्ष्ण प्रलेपादि करने पर और मैथुन के बाद शिश्न को स्वच्छ जल से न धोने तथा अन्य कारणों से कुपित हुए वातादि दोष लिङ्ग में आकर घाव सहित या घाव रहित सूजन उत्पन्न कर देते हैं, उसी सूजन को उपदंश कहते हैं। इस विषय पर महर्षि चरकाचार्य ने चरक चिकित्सा स्थान अध्याय ३० में लिखा है कि—

"अत्यम्ललवणक्षारविरुद्धासात्म्यभोजनात् ।
अत्यम्बुपानाद्विषमात्पिष्टान्नगुरुभोजनात् ॥
दधिक्षीरानूपमांससेवनाद् व्याधिकर्षणात् ।
कन्यानां चैव गमनादयोनिगमनादपि ॥
दीर्घरोगां चिरोत्सृष्टां तथैवच रजस्वलाम् ।
दुर्गन्धां दुष्टयोनिं च तथैव च परिस्रुताम् ॥
ईदृशीं प्रमदां मोहाद्यो गच्छेत्कामहर्षितः ।
चतुष्पदाभिगमनाच्छेफसश्चाभिघाततः ॥
अधावनाद्वा मेढ्रस्य शस्त्रदन्तनखक्षतात् ।

काष्ठप्रहारनिष्पेषार्च्छूकानां चाति सेवनात् ।।
रेतसश्च प्रतीघाताद् ध्वजभङ्ग प्रवर्तते ।।

आधुनिक विज्ञान वेत्ता उपदंश का कारण क्या मानते हैं ? इस विषय पर श्री डा. भास्कर घाणेकर जी ने स्वरचित ग्रन्थ "औपसर्गिक-रोग' में लिखा है कि—

इस रोग का कारण जीवाणु शोणित प्रिय वर्ग का दण्डाणु है जो ड्यूक्रे (Ducrey) के नाम से मशहूर है। यह डेढ़ णु (१½ माइक्रोन) लम्बा और आधा णु चौड़ा है और दो-दो या माला के स्वरूप में पाया जाता है। यह ग्राम त्यागी है और रंजन करने पर प्लेग के दण्डाणु के समान मध्य भाग की अपेक्षा दोनों सिरे अधिक गहरा रङ्ग ग्रहण करते हैं। पूर्ण पराक्रमी होने के कारण कृत्रिमतया इसका सम्वर्धन (culture) करने का कार्य बहुत कठिन है।

यह पूय जनक जीवाणु हैं। व्रणों के स्राव में, आस पास की धातुओं में और व्रण स्थान से संबन्धित उपसृष्ट लसग्रन्थियों में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त अनेक स्त्रियों की विशेषत: वैश्याओं की योनि में जो स्वच्छता की ओर ध्यान नहीं देतीं, यह पूयजीवी के तौर पर पाया जाता है।

भेद—यह रोग ५ प्रकार का होता है—

(१) वातज उपदंश (२) पित्तज उपदंश (३) कफज उपदंश (४) रक्तज उपदंश और (५) सन्निपातज उपदंश।

लक्षण—वातज उपदंश में खुरदरापन, त्वचा में दरारें, शिश्न में कड़ापन, शोथ में रूक्षता और अनेक प्रकार की वातज वेदनाऐं होती हैं। पित्त प्रधान उपदंश में बुखार, फुन्सियों का पके गूलर के समान रंग, जलन, शीघ्रता से पकना और पित्तज वेदनाऐं होती हैं। कफ प्रधान उपदंश में सूजन, खुजली, कठोरता और स्निग्ध शोथ तथा कफज वेदनाएं होती हैं। रक्तज उपदंश में काले काले छालों की उत्पत्ति, रक्त अधिक बहने की प्रवृत्ति, बुखार, जलन एवं पित्तज उपदंश के लक्षण होते हैं। सन्निपातज उपदंश में सम्पूर्ण दोषों के लक्षण प्रकट होते हैं। शिश्न का विदारण, शिश्न या शरीर में कीड़ों का उत्पन्न होना और मृत्यु तक हो जाती है। जैसा कि सुश्रुत संहिता निदानस्थान अध्याय १२ में लिखा है—

तत्र वातिके पारूष्यं त्वक् परिपुटनं स्तब्धमेढ्रता परुशोकता विविधाश्च वातवेदनाः, पैत्तिके ज्वरः श्वयथुः पक्वोदुम्बरसङ्काशस्तीव्रदाहः क्षिप्रपाकः पित्तवेदनाश्च, श्लैष्मिके श्वयथुः कण्डूमान् कठिनः स्निग्धः श्लेष्मवेदनाश्च, रक्तजे कृष्णस्फोटप्रादुर्भावोऽस्यर्थमस्टक प्रवृत्तिः पित्त लिङ्गान्यत्यर्थं ज्वरदाहौ शोषश्च याप्यश्च कदाचित् सर्वजे सर्व लिङ्गदर्शनमवदरणं च शेफसः क्रमि प्रादुर्भावो मरणंचेति।

इस रोग में मैथुन के ३-४ दिन बाद ध्वज (लिंग) पर एक गांठ उत्पन्न होती है जो २-३ दिन में लसीका से भर जाती है। इसके चारों ओर सूजन ललाई तथा १-२ दिन के बाद गांठ पक फटकर व्रण का रूप धारण कर लेती है। व्रण के किनारे गोल, चिथड़ों के समान फटे हुए कोमल और अन्त: सुषिर होते हैं। इसके अन्दर हरे रङ्ग का स्राव रहता है, जो उपसर्गी होता है। जहां जहां स्राव जाता है वहीं वहीं व्रण उत्पन्न कर देता है, इसीलिए इसके आस पास कई छोटे छोटे व्रण होते हैं। स्वच्छता के अभाव में व्रण बढ़ जाते और स्वच्छता होने पर कभी कभी स्वयं ठीक हो जाते हैं। इस रोग के व्रण गुह्य मार्ग के जिन जिन स्थानों पर होते हैं उनको मैं रोग परिचय में लिख आया हूं। परन्तु स्राव लग जाने पर नितम्ब (चूतड़), वृहद् भगोष्ठ, मूलाधार (Perineum) पर भी हो सकते हैं। प्रायः सब में व्रण स्थान से सम्बन्ध रखने वाली लसग्रंथियों की अभिवृद्धि और असह्य पीड़ा होती है तथा ग्रन्थियां आगे चलकर पकती हैं। इसको हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। (१) सादा बद (२) उग्र बद।

सादा बद—इसको इंग्लिश में Simple bubo कहते हैं। पूयजनक जीवाणुओं की द्वितीय उप-

सर्ग इसके व्रण में होता है। उपसर्ग के कारण ही लसग्रन्थियां उपसृष्ट होती हैं। इसमें उपसर्ग ग्रन्थियों के बीच में मर्यादित रहता है।

उग्र वद—इसको इंग्लिश में Virulent bubo कहते हैं। यह वद उपदंश जीवाणुओं के उपसर्ग से भी होता है। पूयजनक जीवाणु ग्रन्थियों के भीतर की अपेक्षा चारों ओर अधिक रहते हैं, जिससे ध्वज के समान या बड़ा उपदंशज व्रण वंक्षण में बन जाता है।

उपद्रव—यह रोग स्वच्छता रखने और अच्छी तरह उपचार करने पर कुछ दिनों अथवा कुछ महिनों में ठीक हो जाता है। स्वच्छता और उपचार के अभाव में व्रण शीघ्र ही बढ़ जाता है। सेवनी के व्रणों के बढ़ने से रक्त-वाहिनी गल जाती है और रक्तस्राव होने लगता है। कभी कभी शिश्न में विद्रधि, शोथ, निरुद्ध-प्रकश, परिवर्तिका इत्यादि उपद्रव हो जाते हैं। बीमारों में यहां तक देखा गया है कि कभी कभी व्रण स्थान में कोथ उत्पन्न हो जाता है जिससे शिश्न गलकर नष्ट हो जाता है।

कई चिकित्सक एवं ग्रन्थकारों ने उपदंश एवं फिरङ्ग को एक ही रोग माना है और चिकित्सा में भी कोई भेद नहीं किया है। यदि हम बौद्धिक दृष्टि से विचार करें तो हमें ज्ञात होगा कि उपदंश और फिरङ्ग में जमीन आसमान का अन्तर है। श्री डा. घाणेकर जी ने सुश्रुत की टीका में निम्न प्रकार से भेद किया है—

चित्र १४८
वृहद् भगोष्ठ पर फिरङ्ग जनित व्रण

उपदंशज व्रण	फिरङ्गज व्रण
(१) मैथुन के पश्चात् तीसरे या चौथे दिन दाना उत्पन्न होता है।	(१) मैथुन के पश्चात् प्रायः तीसरे सप्ताह में दाना उत्पन्न होता है।
(२) साधारणतया अनेक दाने होते हैं।	(२) साधारणतया एक ही दाना होता है।
(३) टटोलने से मृदु प्रतीत होता है।	(३) तरुणास्थि के समान कठिन प्रतीत होता है।
(४) इसमें दाह होता है तथा प्रचुर पूय, रक्त लसिका इत्यादि बहते हैं।	(४) दाह नहीं होता तथा उससे लसिका के अतिरिक्त कुछ भी नहीं निकलता।

(५) व्रण के किनारे साफ कटे हुए, भीतर से कुछ पोले और व्रण के तल से कुछ ऊंचे होते हैं।

(६) अत्यन्त पीड़ा युक्त।

(७) सूक्ष्म दर्शक से व्रण स्राव की परीक्षा करने पर ड्यूक्रे का जीवाणु मिलता है।

(८) अन्य स्थान पर त्वचा में सुई द्वारा व्रण-स्राव प्रविष्ट करने पर समान व्रण पैदा होता है।

(९) व्रण की ओर की जंघासे की ग्रन्थियां फूलती हैं। वह मृदु पकने वाली और अत्यन्त वेदना युक्त होती हैं।

(१०) चिकित्सा न होने से व्रण अधिक बढ़कर स्थानिक धातुओं का नाश होता है, परन्तु सार्वदैहिक लक्षण प्रायः उत्पन्न नहीं होते हैं।

(५) किनारे न साफ होते हैं न पोले होते हैं, न तल से ऊंचे होते हैं।

(६) पीड़ा रहित।

(७) ट्रेपोनिमा पैलिडम नामक पेचदार जीवाणु मिलता है।

(८) स्राव प्रविष्ट करने से समान व्रण प्रायः पैदा नहीं होता।

(९) दोनों ओर ग्रन्थियां फूलती हैं, वह कठिन, न पकने वाली और वेदना-रहित होती हैं।

(१०) चिकित्सा न करने से भी स्थानिक विकृति नहीं बढ़ती, परन्तु विष समस्त शरीर में फैलकर सार्वदैहिक लक्षण उत्पन्न होते हैं।

अतः रोग का पूर्ण निर्णय करके उपचार प्रारम्भ करना चाहिए।

उपचार—

साध्योपदंश में औषधि चिकित्सा से पूर्व शोधन चिकित्सा सर्वोत्तम मानी गई है। इस लिए इसमें सबसे पहले स्नेहन, स्वेदन देकर ध्वज (लिङ्ग) के बीच में शिरा का वेधन करें या जलौका लगावें। दोषों की प्रबलता को दूर करने के लिए वमन विरेचन सर्वोत्तम है। वमन विरेचन द्वारा दोष निकल जाते हैं तथा वेदना और सूजन शान्त होजाती है। यदि रोगी दुर्बल एवं विरेचन के अयोग्य हो तो निरूह द्वारा बढ़े हुए दोषों को निकालना चाहिए। इसके बाद जामुन, आम, चमेली, कदम्ब, सफेद खैर इनके अंकुर, सलई, बेर, बेलगिरी, ढाक, तिनिशि और वटादि दूध वाले वृक्षों की छाल तथा त्रिफला इन सब द्रव्यों के क्वाथ से उपदंशज व्रण धोना चाहिए और इसी काढ़े में तेल पकाकर उपदंशज घावों को भरने के लिए यह तेल लगाना चाहिए।

मर्जक्षार, तुत्थ, कासीस, शैलेय (शिला पुष्प), रसौत और मैनसिल इन सबको सम प्रमाण में लेकर चूर्ण बनालें। यह चूर्ण व्रणजन्य विसर्प को नष्ट करता है। लसूड़ा जिसे संस्कृत में गुन्डा कहते हैं जला भस्म करके मैनसिल और हरताल मिलालें। उपदंशजन्य विसर्प को शान्त करने में यह योग अच्छा है।

भांगरा, त्रिफला, जमालगोटा, ताम्रभस्म, लोहभस्म; यह चूर्ण उपदंश को ऐसे नष्ट करता है जैसे बिजली वृक्ष को नष्ट कर देती है।

त्रिफला को खीपड़े में जला पीस घी में मिला कर उपदंशज व्रण पर लगाने से घाव भर जाते हैं।

अन्य शास्त्रीय प्रयोग—

उपदंशकुठार वटी—नीले थोथे का फूला, छोटी हरड़, काबुली हरड़, और सुहागे का फूला, १-१ तोला और कपर्द भस्म ४ तोला मिला ३ दिन नींबू के रस में खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा—१ से ४ गोली सुबह शाम ७ दिन ठन्डे जल के साथ दें। —र. त. सा. सि. प्र. सं.।

गुण—यह वटी पुराने और नये उपदंश को दूर करती है। दृष्टिमांद्य, लाली, सन्धिवात फोड़ा फुन्सी, अतिसार, संग्रहणी, मूत्र पिंड की विकृति, रक्त विकार आदि नष्ट करती है। इसमें कभी-कभी रोगी को वबाक (वमन) आती है, उस समय नीबू चूसना चाहिए।

अमीर रस—रसकपूर, दालचिकना, सिंगरफ और सुनहरी गोटा-चारों १-१ तोला लें। रसकपूर सिंगरफ और दाल चिकने को कूटकर मूंग के समान टुकड़े करें। गोटे के सूत निकालकर बारीक टुकड़े करलें। बाद में लोहे के मोटे तवे पर ४ तोला सेंधानमक बिछाकर ऊपर से रसकपूर वाले टुकड़ों को फैलादें और गोटे से ढ़क दें तथा ८ तोला सेंधानमक से चारों ओर किनारा इस प्रकार बांधें कि इस घेरे को ऊपर रखी हुई प्याली लगती रहे। फिर चीनी मिट्टी की प्याली ढक दें। तत्पश्चात् ४ से ८ तोले या अधिक सेंधानमक और १-२ तोले कतीरा गोंद को जल में भिगो तवा और प्याली की सन्धियों को दृढ़ता से बन्द करें। फिर यन्त्र को चूल्हे पर चढ़ा बेर की लकड़ी की १२ घन्टे तक मन्द मन्द अग्नि देवें। पश्चात् स्वांग-शीतल होने पर ऊपर की प्याली में लगे हुए अमीर रस को निकाल लेवें। (र. त. सा. सि. प्र. सं.)

मात्रा—½ रत्ती से १ रत्ती तक मुनक्का में रख सुबह १ बार निगल जांय। दांतों को न लगे यह ध्यान रखें। ७ से १४ दिन तक सेवन करें।

गुण—इसके सेवन से उपदंश, सन्धिवात इत्यादि रोग दूर हो जाते हैं। भोजन में गेहूँ का फुलका, गाय का दूध और मिश्री के सिवाय कुछ भी नहीं लेना चाहिये।

उपदंश सूर्य—सफेद सोमल ६ माशे, छोटी कटेली के पंचांग का स्वरस और आंवले का रस १२-१२ तोले लें। फिर लोहे की कड़ाही में सब मिला कर लगभग ४२ दिन तक कड़वे नीम के डंडे से घुटाई करें। पश्चात् मूंग के समान गोलियां बनालें। रस कम हो जाय तो और मिला लेना चाहिए। (वृ. यो. त.)

मात्रा—इसकी १ से २ गोली सुबह घृत के साथ देनी चाहिए। उपदंश रोग को जलाने में यह सूर्य के समान तेजस्वी है। भोजन में गेहूँ का फुलका, घी और थोड़ा सेंधानमक वाली मूंग की दाल लेवें। तैल, मिर्च, खटाई, नमक आदि का त्याग करें। घी अधिक लें।

लेप करने के लिए निम्न मलहमों का उपयोग करें-

उपदंशरिपु मलहम—रसकपूर ६ माशे, कपूर ६ माशे, मुर्दासन १ तोला, सफेद कत्था ६ तोला, हीरादोखी गोंद (दम्मुल अखवैन) २ तोले, नीले-थोथे का फूला ३ माशे और पीली वैसलीन २० तोले लें। वैसलीन को गरम कर अन्य वस्तुओं का चूर्ण कपड़छन करके मिला लें। यह मलहम उपदंश, फिरङ्ग आदि रोगों को दूर करने वाला है। मलहम लगाने के पूर्व नीम के पत्तों के क्वाथ से व्रण धोलेना चाहिए। (र. त. सा. सि. प्र. सं.)

पारदादि मलहम—पारद और गन्धक १-१ तो., मुर्दासन २ तोला, कबीला ४ तोला, और नीलेथोथे का फूला ३ माशे लें। सबको खरल कर ३२ तोले धोए हुए गोघृत में मिलाकर मलहम तैयार करलें। यो. र.।

इस मलहम से उपदंश व्रण, मस्तिष्क, जांघ और सब स्थानों के दुष्ट व्रण भर जाते है।

पथ्यापथ्य—रोगी दूध, घी, दलिया, गेहूं का फुलका, मूंग की दाल, शक्कर, चावल एवं हल्के पदार्थों को सेवन कर सकता है। परन्तु दही, पेड़ा, जलेबी, कलाकन्द, बर्फी, नमक, मिर्च, खटाई, तेल, व्यायाम और मैथुन आदि ये सब प्राणों को हरने वाले हैं इसलिए इनको त्यागकर रोगमुक्त हों।

—वैद्य श्री जयकुमार जैन
श्री दिगम्बर जैन कालेज (आयुर्वेद विभाग)
मणि पथ, जयपुर

फिरङ्ग (Syphilis)

श्री वैद्य हरीराम त्रिपाठी

यह एक आगन्तुज, संसर्गिक एवं चिरस्थाई रोग है जो परस्पर मैथुन द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में प्रसरित होता है। अधिकतर फिरंग देश में यह रोग विशेषता से होता है अस्तु वैद्यों ने इसे फिरंग रोग की संज्ञा दी है। जैसा कि माधवाचार्य एवं अन्यान्य महर्षियों ने बोधित किया है।

फिरंग संज्ञके देशे बाहुल्येनैव यद्भवेत्।
तस्मात् फिरंग इत्युक्तो व्याधिर्व्याधिविशारदैः॥
गन्धरोगः फिरंगोऽयं जायते देहिनां ध्रुवम्।
फिरंगिनोऽङ्गसंसर्गात् फिरंगिण्या प्रसंगतः॥
व्याधिरागन्तुजो ह्येषः दोषाणामत्र संक्रमः।
भवेत्तल्लक्षयेत्तेषां लक्षणैर्भिषजां वरः॥

सामान्यतः फिरंग रोग वाले के संसर्ग से और फिरंगिनी स्त्री के साथ प्रसंग करने से यह फिरंग रोग पैदा होता है। आगन्तुज होने से बाह्य या आभ्यन्तर विस्फोट सा उत्पन्न होकर किञ्चिद् वेदनायुक्त व्रण होता है और व्रण होने पर रोगाणु रक्त में जाकर मिल जाते हैं। पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार कीटाणु त्वचा और श्लेष्मिक कला में प्रवेश करता है और लसीका द्वारा रक्त में मिल जाता है।

सम्प्राप्ति—जीवाणु दूषित स्थान पर एक लघु व्रण तैयार करता है। धीरे-धीरे सौत्रिक तन्तुओं की एकता सी दिखाई देने लगती है। जिसके कारण उस स्थान पर किंचिद् शोथ अण्डाकार दर्शित होने लगता है। शोथ की साम्यावस्था आने पर योनि व लिङ्ग मार्ग तंग होते प्रतीत होने लगते हैं जिसके कारण औषधि उपचार ठीक नहीं हो पाता तथा रोगोत्पत्ति का बढ़ाव दिनों-दिन होता जाता है। ऐसी दशा में कीटाणु समय पाकर वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

लक्षण—दूषित स्थान का लघु विस्फोट गोल अंडाकार, स्पर्श में कठोर मालूम पड़ता है। यह विस्फोट वेदनारहित होता है तथा गुलाबी रंग सा प्रतीत होता है। यह लिंगेन्द्रिय के दोनों ओर होता है। कभी-कभी कई फुन्सियां निकलकर एक में मिल जाया करती हैं जिससे किंचिद् ज्वर, अस्थि शोथ, अस्थि वेदना, मुख में छाले आदि पड़ जाते हैं। व्रण चिरस्थाई, वेदनारहित, शोथ, रक्ताभ हो, लिंगेन्द्रिय व योनि मार्ग उससे आक्रान्त हों तो उसे फिरंग रोग समझना चाहिए।

यदि गर्भवती स्त्रियों के यह रोग है तो उन्हें पुत्रप्राप्ति अभिलाषा आकाश कलिका उपजाना है। वस्तुतः इस रोग से पीड़ित अबलाएं गर्भवती होती भी हैं तो उनके बच्चे जीवित नहीं रहते। अक्सर उन्हें ४, ५, ६, ७, ८, ९, वे महीने में गर्भपात होता है। भाग्यवश शिशु मुख दर्शन हुआ भी तो किंचिद् समय के लिये और अन्त में हाथ मलना है। उत्पन्न हुआ बालक लघु आयु प्राप्त कर कुछ दिन मां की गोद में विहार करता और अन्त में जीवन लीला समाप्त कर कुछ ही दिन बाद चल बसता है।

चिकित्सा—

सर्व प्रथम इस रोग से पीड़ित व्यक्तियों एवं अबलाओं को चाहिये कि वे सहवास न करें क्योंकि सहवास होने से रोगोत्पत्ति में सहारा मिल जाता है। महर्षियों ने एवं पाश्चात्य प्रणाली के उद्भट विद्वानों ने रोग मुक्ति होने का सबसे उत्तम उपाय सहवास त्याग बताया है। पाश्चात्य मतानुसार इस रोग की सर्वोत्तम औषधि पेनसिलीन (Penicillin) है। प्रतिदिन ४ लाख यूनिट की मात्रा में प्रयुक्त करने से कुछ ही दिन बाद रोग काबू में होने लगता है। ८० लाख यूनिट की मात्रा तक पहुंचते ही रोग कम हो जाता है। व्रणों पर लगाने

के लिए Sulphathiosol ointment (सल्फाथाइजाल आइन्टमेंट) पोटाशियम आयोडाइड या मर्करी आयोडाइड लोशन उत्तम है। व्रण की स्वच्छता परमावश्यक है क्योंकि गन्दगी से पुनः रोगोत्पत्ति होने की सम्भावना रहती है।

आयुर्वेदवेत्ता इस रोग में परिष्कृत मल्लभस्म, चन्द्रनादिवटिका, रसकपूर, मुग्धरस आदि औषधियों का प्रयोग करके सुपाच्य भोजन का रोगी को आदेश दे, जादू सा प्रयोग दिखाते हैं। कुछ ही दिनों पारद का प्रयोग कराके रोगी को चंगा कर देते हैं।

इसमें तुत्थवटी भी रामबाण औषधि है। कुछ ही समय में रोग की सबलता घटने लगती है।

निर्माण विधि—१ तोला शुद्ध तूतिया, १६ तोला हरड़ छोटी का चूर्ण, नीबू के रस में ७ दिन तक खरल करें, फिर बाद में वटी बनालें। यह तुत्थवटी है जो फिरंग की रामबाण औषधि है।

—श्री हरीराम त्रिपाठी आयुर्वेद भास्कर,
श्री हरि आयुर्विज्ञानशाला,
महमदपुर पो० गजनेर (कानपुर)

सुजाक रोग पर परीक्षित प्रयोग

(१) कबाबचीनी १२ तोला, फिटकरी १ तोला। प्रथम कबाबचीनी को खूब बारीक पीसकर व फिटकरी को भून कर दोनों को मिला लें। फिर दो तोले की मात्रा से दूध की लस्सी के साथ सेवन करें।

(२) भुनी फिटकरी ३ माशे, मिश्री ६ माशे, गेरू ३ माशे। इन तीनों का चूर्ण कर, एक तोले गाय के ताजे दूध से दो सप्ताह सेवन करें।

(३) बड़ का दूध प्रातः काल बताशे में खाने से एक सप्ताह में यह रोग मिट जाता है।

पथ्य—तेल गुड़, खटाई व बेसन का परहेज रखें।

—श्री वैद्य शंकरसिंह आर्य वैद्य विशारद
सर्व हितकारी औषधालय,
रायपुर (मारवाड़)

:: स्त्री रोगों में बस्ति चिकित्सा ::

पश्चात् स्वेदन आदि क्रियाएं कराई गई।

एक दूसरी रुग्णा जिसको डाक्टरों ने तथा लेडी डाक्टरों ने स्पष्ट कह दिया था कि इसका गर्भाशय ही नहीं, गर्भ कहां होगा, मेरे पास जब लाई गई तो मैंने अपनी एक शिष्या को देखने को कहा। उसने बताया कि गर्भाशय तो है परन्तु अत्यन्त संकुचित और छोटा है। यह जानकर विचार हुआ कि गर्भाशय को विकसित करने का प्रयत्न करना चाहिए।

नारायण तैल के गुणों में यह आता है कि यह शुष्क द्रव्यों को भी अंकुरित करने में समर्थ है। निश्चय हुआ कि योनिमार्ग द्वारा नारायण तैल की उत्तरबस्ति का प्रयोग कराया जाय। इसे भी निराहार मुख कराया गया। प्रभु की अपार कृपा से एक मास की चिकित्सा से ही उसे सफलता मिली, प्रभु ने उसे पुत्ररत्न प्रदान किया।

यह दो उदाहरण निर्देशनार्थ अत्यन्त संक्षेप में लिखे हैं।

—श्री बन्सरीलाल साहनी आयुर्वेदाचार्य
बीडनपुरा, दिल्ली

:: पृष्ठ ४७० का शेषांश ::

स्त्री रोगों में बस्ति चिकित्सा

श्री बन्सरीलाल साहनी आयुर्वेदाचार्य

अत्यन्त कठिन साध्य रोगों में जब साधारण चिकित्सा से लाभ होता दिखाई नहीं देता, तब पञ्चकर्म की ओर ध्यान अवश्य जाता है। एक स्त्री रोगी जिसके शरीर में कितने रोग हैं यह गिनना कठिन था। प्रदर रोग अत्यन्त जीर्ण हो चुका था, जिसकी चिकित्सा का विचार भी वह छोड़ चुकी थी। पति की सारी आय तो चिकित्सा में समाप्त हो ही जाती थी, इसके अतिरिक्त पिता के घर से तथा कुछ उधार लेकर भी रोगों पर ही खर्च कर रही थी। यह तमाम धन डाक्टरों को अर्पण किया जा रहा था। किसी दूसरे शहर से बदल कर यहां आये तो श्री मोहननाथ योगी जी महाराज के आश्रम में चिकित्सा करवाने के लिए पहुंचे। उन्होंने ने भी उसे देखा। उस समय वह आप ही अपना प्रधान रोग 'सर्व शरीरगत वात वेदना' ही बता रही थी। बाबा मोहननाथ जी सिद्धहस्त चिकित्सक हैं। उन्होंने अपने अनेक बार के अनुभूत तथा सफल प्रयोगों का उस पर प्रयोग करना आरम्भ किया। परन्तु रेत की ढेरी पर घी की धारा डालने की तरह वह सब व्यर्थ हुआ। उन्हें भी आश्चर्य हुआ, कि रोगी क्या है वैद्यों की परीक्षा मात्र है। प्रसंगवश मेरे साथ भी रोगी की चर्चा चली, मैंने रुग्णा को स्वयं देखा। पहले सारा समाचार सुना। प्रत्यक्ष में वातज वेदनाएं तो वह स्वयं बता रही थी। शेष रोगों के जीर्ण होने से उनको भी वातप्रधान जानकर मैंने पञ्चकर्म कराने के लिए कह दिया। सबसे पहले स्नेहन के लिए घृतपान कराने को कहा गया परन्तु रुग्णा इसके लिए तैयार नहीं हुई। अतः यह युक्ति निकाली गई कि दशमूल-षट्पल घृत की उत्तरवस्ति दी जाये। घृत तैयार करवाया गया और उत्तरवस्ति दी गई। यह उत्तरवस्ति-वस्ति के विधान से कुछ विचित्र थी क्योंकि हम इसे सर्वथा निराहार (भूखे) ही देते थे और गर्भाशय में इसका द्वार था। इस प्रकार करने का हमारा मुख्य लक्ष्य यह था कि घृत आमाशय में पहुँच जाय और मुख द्वारा जो स्नेह-पानजनित कार्य होना चाहिए था वह इस प्रकार हो जाये। इससे भी आश्चर्यजनक लाभ हुआ। उसका अत्यन्त जीर्ण प्रदर केवल एक सप्ताह में ही शान्त हो गया। उसने स्वयं बताया था, कि मैं तो प्रदर रोग के ठीक होने का विचार ही छोड़ बैठी थी। परन्तु अब यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मेरा ऐसा भयंकर रोग भी शान्त हो गया। इसके

–शेषांश पृष्ठ ४६६ पर।
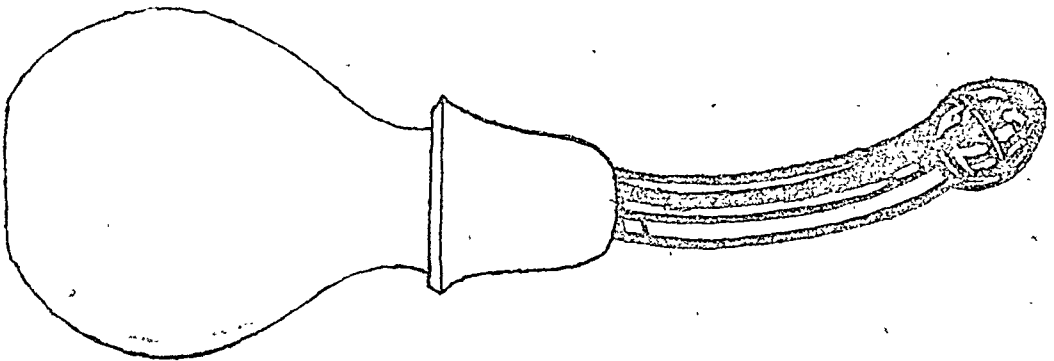
चित्र १४६

गर्भाशय-प्रक्षालन अथवा उत्तरवस्ति कर्म में प्रयुक्त होने वाला विशेष यन्त्र

स्त्री रोगों में अशोक

श्री रामेशवेदी

खून के रोग—

फूल और छाल दोनों रक्त संग्राहक हैं इसलिए रक्तप्रदर और रक्तातिसार आदि रोगों में दिये जाते हैं। रक्तप्रवाहिका में छाल का काढ़ा दिया जाता है। रक्तातिसार में फूलों का चूर्ण पानी से साथ उपयोगी है। डाक्टर वेअरिंग के अनुसार बार बार होने वाले रक्तज अर्बुदों में अशोक उपयोगी है। किसी अंग से खून आने की अवस्थाओं (रक्तपित्त) में गोविन्ददास ने अशोकारिष्ट के प्रयोग को हितकर बताया है[1]। खून बहने की

---

१. रक्तपित्त ·································।
··········· हरस्त्वशोकारिष्टसंज्ञितः ॥
—भै. र. स्त्रीरोगाधिकार १०८-१११।

चित्र १५०

अशोक
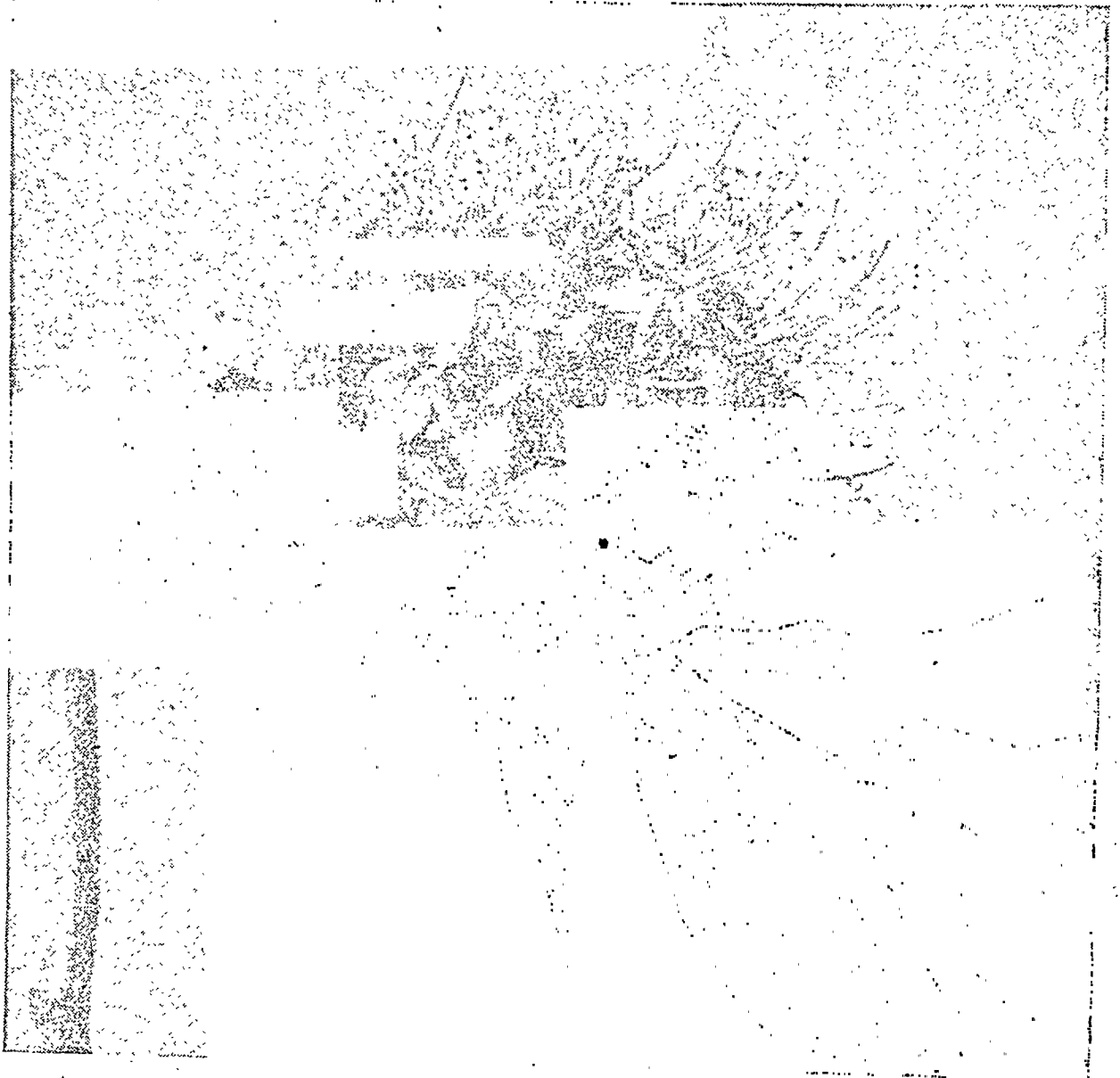
प्रवृत्ति को रोकने का गुण कैयदेव ने भी लिखा है।

योनि के रोग—

अशोक की योनि दोषों को दूर करने की क्षमता को सुश्रुत जानते थे। योनि रोगों को ठीक करने वाली दवाइयों के एक समूह रोध्रादि गण में सुश्रुत ने इसका परिगणन किया है[1]। शिथिल योनि को संकोच करने के उद्देश्य से छाल के काढ़े से योनि का प्रक्षालन करना चाहिये।

गर्भाशय के रोग--

परवर्ती धर्मग्रंथों से पता चलता है कि चैत्र शुक्ल अष्टमी को व्रत करने और अशोक की आठ पत्तियों को खाने से स्त्री की सन्तान-कामना फलवती होती है[2]। बंगाल में अशोक षष्ठी की वासन्ती पूजा के दिन पुत्रवती स्त्रियां अशोक के छः फूलों को दूध या पानी में डालकर पी लेती हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से उनके बच्चे कष्ट और शोक से बचे रहेंगे।

आजकल वैद्य लोग स्त्रियों के गर्भाशय सम्बन्धी रोगों में विशेष रूप से अशोक का प्रयोग कर रहे हैं। चरक, सुश्रुत ने इसे इन रोगों में प्रयोग नहीं किया। किसी भी निघण्टुकार ने अशोक का प्रदर-नाशक गुण नहीं जाना था।

१. रोध्र······अशोक············चेति।
एव रोध्रादिदरित्युक्तः················।
योनिदोषहरः··· ·········· ·········॥
——सु. सू. अ. ३८, १४-१५।

२. क—अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ।
चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न ते शोकमवाप्नुयः॥
—कूर्मपुराण।

ख—चैत्रे मासि सिताष्टाम्यां बुधवारे पुनर्वसौ।
अशोक कुसुमैरुद्रमर्चयित्वा विधानतः॥
अशोकास्याष्टकलिका मन्त्रेणोक्तेन भक्षयेत्।
शोकं नवाप्नुयान्मर्त्य················॥

चरक[1] व सुश्रुत[2] दोनों ने रक्त प्रदर की चिकित्सा लिखी है, परन्तु इन्होंने किसी भी जगह अशोक का उल्लेख नहीं किया। प्रदर में इसका सबसे पहिले प्रयोग करने वाले सिद्ध योग संग्रह के रचयिता वृन्द प्रतीत होते हैं। चक्रपाणि ने इसे क्वाथ और अरिष्ट दोनों के रूप में प्रयोग किया है। यह कहना कठिन है कि स्त्री रोगों में अशोक घृत का सबसे पहले उपयोग करने वाले कौन थे। भावमिश्र, चक्रपाणि और शाङ्र्गधर की संहिताओं में हमें अशोक घृत का स्त्री रोगों में प्रयोग नहीं मिलता। सम्भवतः चिकित्सासार संग्रह के कर्त्ता वंगसेन ने इसका प्रयोग आरम्भ किया था। एक अन्य अज्ञातनामा बंगाली लेखक की कृति सारकौमुदी में, भैषज्य रत्नावली तथा स्नेह-मालिका में भी इसका पाठ है।

छाल तीव्र ग्राही है। कषायस्कन्ध में चरक ने अशोक गिनाया है[3]। आयुर्वेदिक चिकित्सा में ग्राही गर्भाशय शामक के रूप में छाल बहुत दी जाती है। कहा जाता है कि गर्भाशय के अन्तः-स्तर (endometrium) और डिम्बाशय के तन्तुओं पर इसका उद्दीपन तथा बलदायक प्रभाव होता है और यह गर्भाशय के मांसपेशिक तन्तुओं पर सीधा कार्य करती है। अर्गट या पीयूषग्रन्थि (पिच्यूटरी) के समान तानिक संकोचों (tonic contractions) को पैदा किये बिना यह संकुचन (contraction) को अधिक बार तथा दीर्घ-कालिक करता हुआ गर्भाशय का उद्दीपन करता है। अत्यार्तव (menorrhagia), गर्भाशय रक्त-स्राव (metrorrhagia), प्रसवोत्तर रक्तस्राव (Post-partum haemorrhage) इत्यादि गर्भाशयिक रक्तस्राव के सभी रोगियों, जिन्हें अर्गट निर्दिष्ट किया जाता है, इसके देने से लाभ होता

१—देखिये चरक, चिकित्सा स्थान, अध्याय ३०।
२—देखिये—सुश्रुत, शारीर स्थान, अध्याय २।
३—देखिये—चरक, विमान स्थान, अध्याय ८-१६४।

है। गर्भाशय में बन जाने वाले तन्त्वर्बुदों (uterine fibroids) के कारण या अन्य कारणों से उत्पन्न होने वाली मासिक स्राव की अधिकता (menorrhagia) में विशेषतया गर्भाशय के रोगों में सामान्यतया इसका बहुत व्यवहार किया जाता है। छाल को दूध में पकाकर बनाये कषाय को कविराज आज भी बहुत विश्वासपूर्वक प्रचुरता से रक्तप्रदर[1] श्वेतप्रदर तथा गर्भाशय की निर्बलताओं में बरत रहे हैं। दो छटांक छाल को, दो छटांक दूध और आठ छटांक पानी में जलीयांश उड़ने तक पकाते हैं। प्राप्त दूध को दिन भर में दो तीन बार करके पिलाते हैं। मासिक स्राव के चौथे दिन से यह दूध देना आरम्भ करना चाहिए और जब तक खून बन्द न हो जाय देते रहना चाहिए। छाल को पानी में पकाकर बनाये काढ़े में हल्का गन्धकाम्ल मिलाकर भी इस्तेमाल किया जाता है। एक तोला अशोक छाल और एक तोला सफेद जीरे को आध सेर पानी में पकाकर दो छटांक बचालें। खांड मिलाकर सुबह पिलावें। इससे रक्तप्रदर का खून बन्द होता है। मासिक धर्म अधिक हो तो बन्द हो जाता है। फूल की सब्जी, स्वरस और काढ़ा प्रदर में दिया जाता है। दालचीनी आदि सुगन्धोद्दीपक द्रव्यों के साथ कसैली छाल का काढ़ा या अकेली छाल का काढ़ा गर्भाशय के रोगों में, विशेषकर अत्यार्तव में दिया जाता है[2]। अशोक का अधिक प्रयोग आजकल रक्तप्रदर (अत्यार्तव) में किया जा रहा है।

इण्डिजीनस ड्रग्स रिपोर्ट, मद्रास के अनुसार छाल का तरल निस्सार अत्यार्तव के रोगियों को दिया गया और पर्याप्त लाभ पहुंचता हुआ पाया गया। तरल निस्सार की मात्रा पन्द्रह बूंद से साठ बूंद है। छाल को पानी में उबाल कर बनाये काढ़े की मात्रा एक से दो शुक्ति (औंस) है। घननिस्सार दो से दस जी के बराबर दिया जाता है।

प्रदर में कई बार सहसा रक्त रोकना वांच्छनीय नहीं होता। यदि ऐसे समय अशोक का प्रयोग किया जाय तो रक्त बन्द होने से वेदना बढ़ सकती है। सामान्यतया मासिक धर्म के प्रारम्भ में इसका प्रयोग अभीष्ट नहीं होता। तीन-चार दिन बाद सेवन कराना शुरू करना चाहिये।

श्वेत प्रदर में मैंने अशोकारिष्ट का बहुत प्रयोग कराया है और रोगी इससे आश्चर्यजनक लाभ बताता है।

चरक ने दर्द को शान्त करने वाली (वेदनास्थापक) दवाओं के समूहों में अशोक का पाठ किया है[1]। आज का चिकित्सा संसार इस गुण के आधार पर अशोक को सामान्य वेदना-निवारक औषधि के रूप में प्रयोग नहीं कर रहा है। स्रोतों के अवरुद्ध हो जाने से, या वायु और आम (श्लेष्मा) के मार्गों को दूषित कर देने के परिणामस्वरूप पैदा हो जाने वाले मासिक स्राव के अवरोधों में तथा कष्टार्तव में वेदना और कष्ट को दूर करने की क्षमता इसमें विद्यमान है। मासिक स्राव की मात्रा स्वल्प हो तथा वह भी अत्यन्त वेदना के साथ आता हो और रुग्णा को काम-काज छोड़कर अनेक दिन बिस्तर में लेटने के लिए बाध्य होना पड़ता हो तो अशोकक्षीर पाक, अशोक घृत और अशोकारिष्ट के देने से बहुत अधिक लाभ दीखता है। रोग की प्रकृति और जटिलता को ध्यान में रखते हुए इन दवाओं को अकेला या एक साथ प्रयोग करने का निश्चय चिकित्सक स्वयं कर सकते हैं। तीन मास लगातार प्रयोग करने से सब कष्टदायक लक्षण लुप्त हो जाते हैं और गर्भाशय स्वस्थ सन्तान को धारण करने के योग्य बन जाता है। अशोक

१—अशोकवल्कल क्वाथं शृतं दुग्धं सुशीलतम्।
यथाबलं पिबेत्प्रातस्तीव्रसृग्दरनाशनम्।
—च० द० असृग्दर चि०

२—अशोकस्य त्वचा रक्तप्रदरविनाशिनी।
—शोढल

१—देखिये: च. सू. ४-७१

एक उत्तम गर्भाशयिक रसायन है जो गर्भाशय के समस्त विकारों को ठीक करके उसे बल देता है जिससे मासिक धर्म की सभी अनियमितताऐं ठीक हो जाती हैं और मासिक स्राव नियत समय पर आता है।

गर्भपात रोकने के लिये—

अशोक का ग्राही प्रभाव गर्भाशय पर विशेष रूप से होता है। यह गर्भाशय की मांस-पेशियों के क्षोभ को शान्त करता है और यदि स्राव अधिक होता हो तो उसे बन्द करता है। जिन स्त्रियों को गर्भस्राव या पात हो जाया करता है उन्हें लगातार अशोक घृत का तथा इसकी निर्मितियों का सेवन करने की सिफारिश की जाती है। अपनी चिकित्सा में व्हीट जर्म आयल के साथ अशोक की निर्मितियों का सेवन करता रहा हूं। गर्भपात का भय हो तो अशोक और लोध्र की छाल तथा कमलगट्टे की गिरी का चूर्ण देते हैं। इन्हीं द्रव्यों का दूध में बनाया कषाय भी पिलाते हैं। स्त्रियों के न्यायसर्ग स्राव (hormone secretion) को बढ़ाने की शक्ति अशोक छाल में मानी जाती है। यह डिम्बाशय में न्यायसर्ग (हार्मोन) की कमी को दूर करता है। अशोक बड़ा हितकर है--मन्द स्वर, आलस्य, जीवन में उल्लास के प्रति उदासीनता, यौवन के लक्षणों का देर से प्रगट होना, शरीर में यौन की परिपक्वता के लक्षणों की अपूर्णता, कामवासना का ह्रास और डिम्बाशय में डिम्ब की क्षीणता।

निर्मितियां—

आयुर्वेद फार्मेसियां आजकल अशोक की छाल से मुख्यतया दो निर्मितियां (प्रेपरेशन्स) तैयार कर रही हैं—अशोक घृत और अशोकारिष्ट। चक्रपाणि, भावमिश्र तथा शार्ङ्गधर में अशोक घृत का सम्भवत: प्रयोग नहीं किया। प्रतीत होता है कि वंगसेन द्वारा संकलित सार-कौमुदी में सर्व प्रथम अशोक घृत का उल्लेख हुआ है। यह घृत स्त्रियों के इन रोगों में प्रयोग किया जाता है-त्रिदोषज, श्वेत, नील तथा कृष्ण प्रदर; कुक्षिशूल, कमरदर्द और योनिशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, पांडु, कृशता, खांसी, दमा आदि श्वास संस्थान के रोग। इसके सेवन से स्त्रियों के विविध रोग दूर हो कर वे बलवती और पुष्टिमती बनती हैं। उनका रंग निखर जाता है और आयु दीर्घ होती है। गोविन्ददास ने इस के गुणों की प्रशंसा में लिखा है कि विष्णु ने इसे उपर्युक्त रोगों में उपयोगी पाया है।

मात्रा व सेवन विधि—आधा तोला अशोक घृत में डेढ़ माशा खांड मिलाकर प्रातः सायं दूध के साथ लें।

अशोकारिष्ट स्त्रियों का परम मित्र है। स्त्रियों के प्रदर रोगों की यह उत्तम औषधि है। गर्भाशय पर यह बलदायक औषधि के रूप में कार्य करता है। गर्भाशय की शिथिलता से उत्पन्न होने वाले अत्यार्त्तव में इसका प्रयोग किया जाता है। अत्यार्त्तव के यदि निम्नलिखित कारण हैं तो यह लाभ करता है-गर्भाशय के अन्तःस्तर (Endometrium) में विकार, डिम्ब प्रणालियों में विकार, प्रसव के पश्चात् गर्भाशय के अन्दर या बाहर हो जाने वाले व्रण। गर्भाशय या प्रजनन-संस्थान के अन्य भागों में कैन्सर उत्पन्न हो जाने के कारण अत्यार्त्तव है तो उसमें अशोकारिष्ट का सेवन लाभ नहीं पहुंचाता।

मासिक धर्म यदि कष्ट से आता है, उदर-प्रदेश में पीड़ा होती है तो सामान्यतया इसका कारण डिम्बाशय (Ovary) या डिम्ब प्रणाली में विकार का होना है। कष्टार्तव में कुछ रोगियों को तीव्र पीड़ा के साथ-साथ कमर में दर्द, सिर में दर्द, पेट की अग्नि का मन्द पड़ जाना, भोजन में अरुचि, वमन आना आदि लक्षण भी प्रगट हो जाते हैं। हलका-हलका बुखार रहने लगता है जो ९९ से १००° फार्नहाइट के बीच में रहता है।

मासिक धर्म की अनियमितता में इसका प्रयोग किया जाता है। गर्भाशय को बलवान

बना कर उसे यह गर्भ धारण करने के योग्य बनाता है।

भेद—

संस्कृत साहित्य में अशोक के चार प्रकार मिलते हैं—लाल, नीला, पीला और सफेद। मल्लीनाथ (पन्द्रहवीं शती) ने अशोक कल्प से एक श्लोक उद्धृत किया है जिसमें फूलों के रंग भेद से अशोक के लाल और सफेद दो भेद बताये हैं। श्वेत अशोक तान्त्रिक क्रियाओं में सिद्धिप्रद समझकर व्यवहृत होता था और लाल कामोद्दीपक समझा जाता था[1]। राजशेखर ने लाल, पीले और नीले अशोक का वर्णन किया है[2]। बाण (सातवीं शती) की कादम्बरी में भी हम नीले अशोक का वर्णन पाते हैं।[3]

आयुर्वेदिक तथा संस्कृत साहित्य में लाल अशोक (सेरेका इण्डिका) को ही मुख्यता दी गई है। यह सर्वत्र वास्तविक अशोक के रूप में विदित है। फूलों के वर्णन में हमने बताया है कि नये खिले फूलों का रंग पहले पीला रहता है, इसलिए हमारी सम्मति में संस्कृत कवियों के पीले अशोक को पृथक् जाति या प्रकार न मानकर लाल अशोक ही माना जाना चाहिए। हां, यह कहना कठिन है बाण और राजशेखर का नीला अशोक क्या है?

वैद्यों में पोलिएल्थिया लौंगिफोलिया (गुजराती नाम-आसोपालव) को प्रायः कर अशोक कहने की प्रथा चल पड़ी है। संस्कृत निघण्टुओं की व्याख्या में अशोक के गुजराती नामों में आसोपालव भी देखते हैं। अंग्रेजी की कुछ पुस्तकों में भी मैंने यह देखा है। वैद्य बापालाल ग शाह[4] की सम्मति में पौलिएल्थया लौंगिफोलिया के लिए गुजराती नाम आसोपालव है और अशोक को आसोपालव नाम देना भूल है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि आसोपालव को ही मल्लीनाथ ने श्वेत अशोक कहा है। इसके फूल सफेद, पीले, हरे होते हैं, मल्लीनाथ ने उन्हीं को कह दिया है। औद्भिदी के आधुनिक विद्वानों के अनुसार आसोपालव मूलतः भारत का पौधा नहीं है। श्री लंका में यह निसर्ग में स्वयं उगने वाला वृक्ष है। यहां से सदियों पहिले भारत आ गया होगा। यह वृक्ष सीधा, लम्बा और बहुत घनी शीतल छाया वाला होने से सर्वत्र पथवृक्ष की तरह बहुधा लगाया जाता है। मुगल शासकों के मकबरों पर तथा प्राचीन संरक्षित इमारतों के चारों ओर बागों में इसके वृक्ष प्रायः देखने में आते हैं। इसके पत्ते लहरदार होते हैं। असली अशोक के समान इसके फूल सुन्दर और आकर्षक नहीं होते। डल्हण ने अशोक की पहचान 'लोहितकुसुमः स्वनामख्यातः' इस प्रकार लिखी है। दूसरे कवियों ने भी जिस सुन्दर फूल की प्रशंसा अशोक नाम से की है वह आसोपालव नहीं हो सकता। बहुत से वैद्य लोग अशोक छाल के स्थान पर आसोपालव की छाल को बरतने लगे हैं। वैद्य जगत में यह नकली अशोक या बंगाली अशोक के नाम से प्रसिद्ध है। आयुर्वेद कालेजों के कुछ अध्यापकों को मैंने आसोपालव वृक्ष को देवदारु कहते सुना है। यह सर्वथा भ्रमात्मक है।

यह भी लाभ तो करता है—

स्त्री रोगों में आसोपालव के प्रयोग का अनुभव मेरे एक वैद्य मित्र ने इस प्रकार बताया है। ३५-४० वर्ष की एक सम्पन्न स्त्री को रक्तप्रदर की शिकायत उग्र रूप में थी। मैं रोज बगीचे जाकर एक डेढ़ छटांक ताजी छाल उतार लाता था। इसकी छाल लम्बी परत में आसानी से खिंच आती है। कुण्डी छोटे

१—प्रसूनकैरशोकस्तु श्वेतो रक्त इति द्विधा।
बहुसिद्धिकरः श्वेतो रक्तोऽत्र स्मरवर्धनः॥
—अशोककल्प

२—चैत्रे चित्रो रक्तनीलावशोकौ स्वर्णशोकस्तृतीयश्च पीतः। —राजशेखर

३—नीलाशोकवनायमानं कुसुमप्रकरपतितमधुकरवृन्दान्धकारैः। —कादम्बरी पूर्व भागः १६०

४—निघण्टु आदर्श (गुजराती), ३८८८०।

में आधे तोले भर तुखमलंगा के साथ खूब रगड़कर रस निचोड़ लेता था। तुखमलंगा को रात भर पानी में भिगो दिया जाता था। बकरी के धारोष्ण दूध के साथ मैंने उसे लगातार पन्द्रह दिन रस पिलाया था और मुझे अचरज हुआ कि अनेक प्रकार की पेचीदा चिकित्सा कराने पर भी जिसे आराम नहीं आ रहा था वह इस साधारण इलाज से स्वस्थ हो गई।

उपयोगी भाग—

प्रधानतया छाल चिकित्सा में काम आती है। ताजी छाल का अन्तः पृष्ठ हल्के भूरे रंग का होता है जो सूखने पर रक्ताभ तथा भूरे वर्ण में परिवर्तित हो जाता है। छाल कठोर तथा तन्तुमय और स्वाद में कड़वी होती है। यह अन्वायाम वलित होती है।

औषधि प्रयोग के लिए ली जाने वाली छाल का प्रमाप (स्टैण्डर्ड) स्थिर रखने के लिए ध्यान रखना चाहिए कि उसमें विजातीय जैव्य पदार्थ दो प्रतिशत से अधिक न हों।

अणुवीक्षणिक परीक्षा—

त्वचा (phellem), त्वचैधा (phellogen) और उपत्वचा (phelloderm) से बाह्यवल्क (periderm) बना होता है। अनुप्रस्थ छेद (tranverse section) में त्वचा कोशाओं (crok cells) के नाप २५-३०×६. २४-११.५ माइक्रोन व आयाम छेद (longitudinal section) में नाप २५–२५×८. ५–११ माइक्रोन हैं। द्वितीयक बाह्यक तन्तु (secondary cortical tissue) गहरा होता है जिसमें चूर्णातु तिग्मीय (calcium oxalate) के संचेत्र स्फट उपस्थित होते हैं। उपत्वचा (phelloderm) के अन्दर प्रस्तर कोष्ठ (stone cells) निधियां (patches) में पड़े रहते हैं। कभी-कभी ये प्रस्तर कोष्ठ इस प्रकार मिल जाते हैं कि पंक्तियां बन जाती हैं। तीन प्रकार के प्रस्तर कोष्ठ सामान्यतया विद्यमान होते हैं—रेखीय प्रतिरूप (linear type), आयत प्रतिरूप (rectengular type) और समव्यास (isodiametrical)। द्वितीयक अधोवाही (secondary phloem) की बनावट में देखा गया है कि वह अधोवाही जीवितक (phloem parenchyma), चालनी नाल (sieve tubes) और अधोवाही तन्तु (phloem fibres) से बनी होती हैं। चालिनी नालों (sieve tubes) के साथ सखिकोशाएँ (companion cells) भी होती हैं। अधोवाही तन्तु (phloem fibres) की रचना में तीन से अधिक कोष्ठों के समूह होते हैं। चूर्णातु तिग्मीय (कैल्शियम औग्जेलेट) के संचेत्रस्फट (prismatic crystals) के साथ स्फट तन्तु उपस्थित होते हैं।

रासायनिक संघठन—

कर्नल चोपड़ा (१६३३) के अनुसार छाल की सन्तोषजनक रासायनिक परीक्षा नहीं हुई है। एक्ट (१८८७) ने बताया था कि इसमें शोणद्रुवि (Haematoxylin) विद्यमान है। हूपर (फार्मोकोग्राफिया इण्डिका, १८८३) ने शल्कि (टैनीन) का अच्छा परिमाण दिखाया है। कलकत्ता के स्कूल आफ ट्रौपिकल मैडिसन के कैमिस्ट्री विभाग में विभिन्न विलयकों के साथ छाल का निस्सार लिया गया था। प्राप्त परिणाम इस प्रकार थे—

मृत्तैल दलु निस्सार (पैट्रोलियम ईथर एक्स्ट्रैक्ट) ०·३०७ प्रतिशत, दलु निस्सार (इथर एक्स्ट्रैक्ट) ०·२३५ प्रतिशत, परिशुद्ध सुषविक निस्सार (एब्सोल्यूट एल्कोहलिक एक्स्ट्रैक्ट) १४. २ प्रतिशत।

सुषविक निस्सार गरम पानी में प्रायः सारा घुल जाता था। इसमें शल्कि की एक बड़ी राशि पाई गई और सम्भवतः एक जीव द्रव्य (आर्गेनिक सब्स्टैन्स) भी इसमें था जिसमें लोह विद्यमान था। कर्नल चोपड़ा (१६३३) बताते हैं कि क्षाराभ (एल्कलायड) उड़नशील तैल इत्यादि की प्रकृति के कोई क्रियाशील तत्व नहीं प्राप्त हुए। श्री मुकर्जी (१६५३) ने दिखाया है कि छाल में थोड़े परिमाण में एक उड़नशील तैल विद्यमान है। छाल में खदिरव (catechol) भी पाया गया है।

—श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कार
गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

उलटकम्बल तथा लाङ्गली

वैद्यराज हकीम श्री दलजीतसिंह आयु० बृहस्पति

उलटकम्बल–

नाम—(सं०) पिशाच कार्पास, पीवरी (रसमाधव), (हि०) उलटकम्बल, (बं०) ओलोट कम्बल, (बम्ब०) ओलकूतम्बोल, (ले०) अँब्रोमा ऑगष्टा (Abroma angusta) (अं०) डेविल्स कॉटन (Devil's cotton)।

वक्तव्य—यद्यपि बहुमूल्य तन्तु उत्पादक रूप से यह वृक्ष चिरकाल से ज्ञात है, तथापि प्राचीन वा अर्वाचीन किसी आयुर्वेदीय एवं यूनानी निघंटु में इसका वर्णन दिखाई नहीं देता। आधुनिक ग्रन्थों में किसी किसी ने प्राचीनोक्त भारद्वाजी को इसका संस्कृत पर्याय माना है।. परन्तु 'भारद्वाजी' बन कपास को कहते हैं। बन कपास और उलटकम्बल एक वस्तु नहीं, अपितु एक दूसरे से भिन्न उद्भिज्ज हैं। वैद्यक शब्दसिन्धुकार ने रसमाधव के प्रमाण से 'पीवरी' नाम से इसका उल्लेख किया है। वे इसका गुण वर्णन इस प्रकार करते हैं—

पीवरी शोषिणीसास्यात् योनिव्यापद् विनाशनी।
रजोदोष प्रशमनी प्रदरार्शो निवारिणी॥

परन्तु उलटकम्बलवाचक पीवरी शब्द रस माधव को छोड़कर कहीं भी नहीं मिलता है। उसी ग्रंथ में द्रुमोत्पल शब्द में इसका बंगला नाम उलटकम्बल दिया है। कदाचित् ऋतुशूल में हितावह होने के कारण उन्होंने ऐसा किया है। किसी किसी ने कर्णिकार को उलटकम्बल लिखा है। श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य महोदय ने अपने द्रव्यगुण विज्ञानम् ग्रन्थ में इसका संस्कृत नाम 'पिशाचकार्पास' लिखा है। इस प्रकार अनेक खोज कर्त्ताओं ने अपनी अपनी कल्पना से इसके भिन्न भिन्न नाम लिखे हैं। परन्तु वे शास्त्र शुद्ध नहीं कहे जा सकते।

उत्पत्ति स्थान—उलट कम्बल उत्तर भारतवर्ष के बहुधा उष्ण प्रधान प्रदेशों में उत्तर प्रदेश से लेकर सिक्किम, खसिया, पहाड़ी, बंगाल और असम पर्यन्त जंगलों में होता है। दर्शनीय गम्भीर रक्तवर्ण के पुष्पों के लिए यह उद्यानों में भी आरोपित किया जाता है।

चित्र १५१

वर्णन–इसका बड़ा क्षुप वा छोटा वृक्ष होता है। शाखा कोमल और मखमली होती है। पत्ता चौड़ा, ३॥ इञ्च लम्बा, ऊपर चिकना, नीचे रोमश, दन्तयुक्त, पत्रनाल के पास कम चौड़ा और ३-७ शिरा युक्त, थल-कमल के पत्ते जैसा होता है। फूल गहरे बैंगनी रंग के नीचे की ओर झुके हुये पङ्खड़ियां ५, फल ५

स्पष्ट खण्डों अथवा कोनों वाला होता है और ऊपर की ओर कमल के फल की तरह जैसे कटा हुआ छत्राकार (Truncate) मालूम होता है। फलों के चारों ओर छोटे-छोटे पत्ते लगे होते हैं। बीज मूली के बीज जैसे तथा काले रंग के होते हैं। फल कोषों में रेशम की तरह रोमवत् रुई भरी होती है जिसके स्पर्श से त्वचा प्रदाहित होती है। वृक्ष की छाल सफेद रंग की और तन्तुयुक्त होती है। जड़ की छाल मोटी, रेशेदार और भूरी होती है। ताजी कटी होने पर इसमें से एक प्रकार का सान्द्र निर्यासवत् पदार्थ स्रवित होता है। जड़ के भीतर उज्ज्वल शुभ्र वर्ण का गूदा होता है। रस पिच्छिल होता है।

उपयुक्त अंग—जड़ और जड़ की छाल, पत्र और प्रकांड। मूल की छाल के छोटे टुकड़े बना-सुखा कर शीशी में इस प्रकार बन्द कर रखें कि भीतर हवा न जाने पावे।

कल्प तथा मात्रा—मूल की छाल का चूर्ण १०-१५ रत्ती, ताजा मूल वा पिष्टमूलत्वक् (आर्द्र) ४ से ८ माशा, मूल स्वरस ३ माशा, तरलसार की मात्रा ३॥ माशे जल से, चक्रिकाएं आदि। रजोदोष-हरी का यह एक प्रधान उपादान है। इसको रजःस्राव होने के ६-७ दिन या ४-५ दिन पहले खाना चाहिये।

रासायनिक संगठन—जड़ में एक प्रकार का (१) स्थिर तैल (२) राल या उद्यास (Resin) (३) अल्प प्रमाण (०.०१%) में एक प्रकार का क्षाराभ और (४) कुछ जल में घुलने वाले तत्व होते हैं। जड़ की छाल में निर्यास, मोम, एक प्रकार का अस्फटिकीय पदार्थ और भस्म (११%) पाया जाता है पर किसी प्रकार का मैंगेनीज नहीं पाया जाता। इसमें वोल होता है इसलिये पानी में नहीं घुलता।

इतिहास—जैसा कि मैंने पूर्व में वर्णन किया है कि यद्यपि यह वृक्ष अपने बहुमूल्य रेशों के लिए चिरकाल से ज्ञात है, तथापि इसके औषधीय गुणों की खोज सर्वप्रथम सन् १८०१ ई० में डा० एक्सबर्ग के द्वारा हुई और उन्होंने इसे कष्टार्तव के लिये उपयोगी बतलाया। तब से यह औषधि बराबर इस रोग में प्रयुक्त की जाती है और तद्-नुसार फल भी मिलता है। इसके पश्चात् इसवी १८७२ के इण्डियन मैडिकल गजट में भुवनमोहन सरकार ने इसके सद्यःनिष्कासित मूल स्वरस की रजःप्रवर्तिनी शक्ति की ओर जन साधारण का ध्यान आकर्षित किया और इसके लिये उन्होंने इसके ताजे रस की मात्रा २ माशे निर्धारित की। इसके बाद डा० किर्टन (Dr. Kirton) ने उलट-कम्बल की पिसी हुई ताजी जड़ की छाल ७॥ माशे (१ ड्राम) की मात्रा में शीतल जल के साथ प्रयोग करने की अभ्यर्थना की। डा० सरजार्ज वाट ने डिक्शनरी ऑव दी एकॉनॉमिक प्रॉडक्ट्स ऑव इण्डिया नामक बृहद् अभिधान ग्रन्थ में उलट-कम्बल के उक्त गुण के विषय में १३ चिकित्सकों के मत उद्धृत किये हैं जिनमें से ८ व्यक्तियों ने अनुकूल मत व्यक्त किये हैं। डा० मैकलिओड अमेरिकन मैडिकल साइंस में लिखते हैं कि कष्ट-रज में यह उत्कृष्ट औषधि है। इसकी ताजी जड़ की छाल कालीमिर्च के साथ पीसकर ऋतु के एक सप्ताह पूर्व से ऋतु दर्शन पर्यन्त शीतल जल के साथ प्रतिदिन सेवन करें। मैंने अनेक स्थल पर विशेषतः वेदनान्वित एवं वात प्रधान रजोरोध में इसकी उपकारिता का प्रत्यक्ष अनुभव किया है। डा० थानटन के अनुसार उलटकम्बल की महीन जड़ ९ माशे १ रत्ती (१॥ ड्राम) कालीमिर्च के साथ पीसकर पीने से रजःस्राव परिमित होता है तथा यह गर्भाशय को बल प्रदान करता है। इस स्थान में गोलमिर्च पाचक और वायुनाशक रूप से कार्य करता है। इसे ऋतुकाल में सेवन कराना चाहिये। यह अवरोधयुक्त एवं वातिक कष्टरज में उपयोगी है। डा० एवर्स कहते हैं कि यन्त्रणा-दायक कृच्छ्ररजोरोग में उलट कम्बल का प्रयोग कराकर मैं कभी विफल मनोरथ नहीं हुआ।

पश्चिम प्रदेशों में उलट-कम्बल के पौधे इस प्रकार दृष्टिगोचर नहीं होते और ऐसा ज्ञात होता है कि वे इसके गुणों से परिचित नहीं (डिमक-प्रथम खण्ड, पृ० २३३-४)

गुण-कर्म तथा उपयोग—

यह गर्भाशयोत्तेजक, आर्तवजनन और गर्भाशय की पीड़ा को शान्त करने वाला है। ऋतुस्राव अनियमित होता हो और आर्तव स्राव के समय पीड़ा होती हो तो तब मासिक के तीन दिन पूर्व, स्राव के समय में तथा दो दिन पीछे तक इसका प्रयोग करना चाहिए। इसकी ताजी जड़ का रस और सूखी जड़ दोनों का ही रसायनशाला में परीक्षण होचुका है। सुरासार के साथ मिलाने से इसका असर नष्ट हो जाता है। इसलिये इसका ताजा रस या चूर्ण ही उपयोग में लेना चाहिए। डा० कार्तिकचन्द्र बसु के मतानुसार इसकी जड़ का छिलका गर्भाशय को ठीक तरह से संकोचन एवं पुष्टि प्रदान करके मासिक धर्म को नियमित कर देता है तथा यह मासिक धर्म के समय की पीड़ा को नष्ट करने में रामबाण का काम करता है। कलकत्ते के प्रसिद्ध कविराज द्वारिकानाथ विद्यारत्न इस औषधि के सम्बन्ध में लिखते हैं कि उलटकम्बल की जड़ की छाल का चूर्ण ३॥। माशे की मात्रा में इक्कीस काली मिरच का चूर्ण मिलाकर मासिक धर्म के समय सात दिन तक सेवन करना चाहिए। भोजन में केवल दूध, भात लेना चाहिए। पति समागम का सर्वथा त्याग कर पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहिए। इस प्रकार दो चार महिने तक प्रत्येक मासिक धर्म के समय सात दिन तक योग सेवन करने से गर्भाशय के सब दोष मिट जाते हैं। प्रदर और वन्ध्यत्व की यह सर्वोत्कृष्ट औषधि है।

भारत वर्ष के प्रसिद्ध "बंगाल केमिकल वर्क्स" के विद्वानों ने भी इसके सम्बन्ध में ऐसा ही मत व्यक्त किया है।

श्री यादव जी महाराज के मत से बंगाल के वैद्य इसका पुष्कल उपयोग करते हैं। अन्य प्रान्तों के वैद्यों को भी इसका प्रयोग करना चाहिए। यह हिन्दुस्तान में सब जगह हो सकती है और अत्युपयोगी औषधि है। अतः सब प्रान्त के वैद्यों को इसको अपने यहां लगाना चाहिए।

(द्रव्यगुणविज्ञानम्)।

खोरी (R. N. Khory Vol-ii P. *102*) के अनुसार हाइड्राष्टिल, वाइबर्नम (Viburnum) और पलसाटिल्ला आदि अंगरेजी औषधियों की यह उत्तम प्रतिनिधि (बदल) है।

'नादकर्णी' लिखते हैं कि इसके ताजे पत्ते और तने का शीतल जल में तैयार किया हुआ फाण्ट (infusion) सुजाक में परमोपयोगी है। सरलतापूर्वक पृथक् हो सकने योग्य जड़ की मोटी छाल में होने वाला ताजा पिच्छिल रस १ माशा २ रत्ती (½ ड्राम) की मात्रा में नाना भांति के कृच्छ्र रजोरोग में व्यवहृत होता है। ऋतुकाल में इसके एक बार सेवन मात्र से रोग का निवारण होता है और नवोढ़ा युवतियों में गर्भस्थापन करता है। पिच्छिल रस जल में अविलेय है। इसे प्रायः ऋतु के प्रथम दिवस से निरन्तर सप्ताह पर्यन्त सेवन करते हैं। यन्त्रणापूर्व रजःस्राव की दशा में ऋतु दर्शन से दो दिन पहिले से इसका व्यवहार करते हैं। (इण्डियन मैटीरिया मैडिका)

जङ्गली जड़ी बूटी – के रचयिता कहते हैं कि हमने अनेक रुग्णाओं पर इस औषधि का प्रयोग किया है और हमें विश्वास हो गया है कि गर्भाशय के रोगों पर यह अचूक औषधि है।

इस प्रकार हमने देखा कि अनेक कविराज वैद्य और डाक्टरों ने उलटकम्बल का परीक्षण एवं प्रयोग कर इसके गुणों का वर्णन किया है। फिर भी कर्नल चोपड़ा, घोष और चटर्जी ने इसके मद्यसार और पृथक् पृथक् अवयवों का विश्लेषण करके यह परिणाम निकाला कि गर्भाशय पर, चाहे वह गर्भ से युक्त हो, चाहे विरहित, इसने कुछ भी प्रभाव नहीं दिखाया। संतोषजनक फल न होने से रोगियों पर इसका परीक्षण नहीं

किया गया। श्री चोपड़ा आदि का यह समझ कर परीक्षण न करने में थोड़ी सी उनकी भूल मालूम होती है। अनेक औषधियां अपनी प्राकृतिक अवस्था में विशिष्ट रोगों में जैसा उत्तम कार्य करती हैं वैसा उत्तम कार्य पृथक्करण करने पर नहीं करती हैं। अतएव श्री चोपड़ा को बिना पृथक्करण किये इसका परीक्षण अवश्य करना चाहिये था। पीछे अपनी सम्मति लिखनी चाहिये थी। अस्तु,

डाक्टर कार्तिकचन्द्र बोस ने इसका पृथक्करण कर यह निश्चय कर लिया है कि इस औषधि को प्राकृत अवस्था में वर्तने पर आशानुरूप पूर्ण लाभ होता है। इसमें सुरासार (अल्कोहल) मिलाने से इसके गुण नष्ट हो जाते हैं।

डाक्टर बोस ने इसमें से बिना मद्य के इसका तरलसार (एक्स्ट्रैक्ट अॅन्ट्रोमा लिक्विड) निकाला है तथा इसकी चक्रिकायें (टॅब्लेट्स) भी बनाई हैं। वह बराबर गुण करती हैं।

तरलसार की मात्रा २॥ माशे है। इसे जल में मिलाकर खाली पेट पीना चाहिये। गोलियां, चक्रिकायें प्रतिदिन जल में घोलकर चार बार एक एक करके जल के साथ खानी चाहिये। इन औषधियों को रजः स्राव होने के ६-७ दिन या ४-५ दिन पहले खाना चाहिये।

कलिहारी वा लाङ्गली

अनेक स्त्री रोगों तथा अन्य रोगों में कलिहारी का प्रयोग अति प्राचीन काल से होता आ रहा है। चरक के 'दशेमानि' वर्ग में लांगली का पाठ नहीं आया है। परन्तु विष-चिकित्सा (चि. अ. २५) एवं कुष्ठ चिकित्सा में लांगली का उल्लेख आया है। सुश्रुत के कल्प स्थान के द्वितीय अध्याय में स्थावर-विषवर्ग के विवरण में आठ प्रकार के मूल विषों के मध्य 'विद्युज्ज्वला' नाम से कलिहारी का उल्लेख दृष्टिगत होता है। सुश्रुत के श्लेष्म संशमन वर्ग (सू. अ. ३९) में लांगलकी गर्भसङ्गनिवारणार्थ तथा लांगली धारण (सु. शा. १० श्लो० १० गर्भसंगे ××× । वध्नीयाद्धिरण्यपुष्पी मूलं हस्तपादयोः। धारयेत् सुवर्चलां विशल्यां वा ॥ १० ॥) का उल्लेख मिलता है। सुश्रुत और वाग्भट (अष्टांग संग्रह और अष्टांगहृदय) में अपरापातनार्थ लांगली का प्रयोग शरीर पर बांधने, लेप करने, और पीने के रूप में किया गया मिलता है। तात्पर्य यह कि महर्षि चरक, सुश्रुत और आचार्य वाग्भट ने सूतिकागार, गर्भसंग, पुष्पावरोध, अपरापातन इत्यादि में कलिहारी का विशेष उपयोग किया है। अन्य यूनानी और नव्य पद्धति में सर्वथा इन आयुर्वेदीय विवरणों का ही भाषान्तर देखने को मिलता है जैसा कि आगे लिखा विवरण देखने से ज्ञात होगा। नीचे इसका नातिसंक्षेप विवरण किया जा रहा है।

नाम-(सं०) लांगली, कलिहारी, विशल्या

परिचय ज्ञापिका संज्ञायें—चिन्हमुखी, शक्रपुष्पिका, अग्निशिखा, लांगली (—लिका), नक्तेन्दुपुष्पिका, पुष्पसौरभा, स्वर्णपुष्पा, अग्निमुखी, अग्निजिह्वा, वह्निशिखा, वह्निवक्त्रा, प्रभाता, अग्निज्वाला, ज्वालामुखी और इन्द्रपुष्पी इत्यादि।

गुण प्रकाशिका संज्ञायें–विशल्या, गर्भपा(घा)तिनी, गर्भनुत्सारिणी, सारी, व्रणहृत् और हनन आदि (हिं०) कलि(रि)हारी, कलि(रि)यारी; (बं०) विषलांगली (—ङ्गुलिया), (द०) नाटकावच्छनाग (म०) खड्यानाग, कललावी, (गु०) दूधियाबछनाग (ते०) अडविनाभि, अग्निशिखा, लांगली, (ले०) ग्लोरिओसा सुपर्बा (Gloriosa superba lim.) (अं०) सुपर्ब लिली (superb lily)।

वक्तव्य—दक्षिण भारतीय चिकित्सकगण तथा औषधि विक्रेता यह मानते हैं कि गुणधर्म में इसकी जड़ प्रायः बच्छनाग की जड़ के समान होती है, इसलिए वहां इसे 'नाट का बच्छनाग' तथा 'अडविनाभि' आदि संज्ञाओं से अभिहित करते हैं।

इनके भौतिक लक्षणों में पर्याप्त अन्तर होने पर भी इसी कारण कभी-कभी जानबूझकर वास्तविक वत्सनाभ मूल की जगह इसका व्यवहार किया जाता है अथवा उसके साथ इसका मिश्रण किया जाता है। किसी-किसी ने इसकी बंगला संज्ञा 'ईशलांगल' लिखी है परन्तु ईशलाङ्गल ईश्वरमूल वा इसरौल है कलिहारी नहीं, जो एक भिन्न उद्भिद है। मराठी और गुजराती में इसे 'कललावी' और पंजाबी में 'कलीसर' कहते हैं। किसी-किसी ने इसकी अरबी संज्ञा 'खानिकुलकल्ब' एवं कातिलुलकल्ब लिखी है, पर उक्त संज्ञाओं का प्रयोग वस्तुतः कुचले के लिए होता है। यद्यपि करियारी (कलिहारी) हलिनी (हलाकार कन्द) आदि प्राचीन नाम इसके ही शुद्ध कलिहारी होने के प्रमाण हैं तथापि अनेक वैद्य तथा मिरजापुर के जंगलवासी केमुक वा मेऊ (loostus speciosus) को भ्रमवश बड़ी कलियारी मान बैठे हैं।

कुल—पलाण्डुकुल (Family-Liliaceae)

उत्पत्ति स्थान—समग्र भारतवर्ष विशेषतः बंगाल, ब्रह्मा और लंका के वनों एवं सम्पूर्ण भारत खण्ड के उष्णप्रदेशों और नीचे जंगलों में कलियारी बहुतायत से होती है। शोभा के लिए यह उद्यानों में भी आरोपित की जाती है। यह लता प्रायः नीचे के झाड़ीदार जंगलों में होती है।

वर्णन—यह एक सुन्दर और आकर्षक फूलों वाली लता है जो झाड़ियों या छोटे वृक्षों के ऊपर चढ़ी हुई पाई जाती है। यह चौमासे के प्रारम्भ में निकलती है और शीतकाल के पहले ही सूख जाती है। इसका भौमिक तना, जिसे भूल से जड़ समझते हैं, हलाकार, टेढ़ा, बेलनाकार, परन्तु जगहजगह कुछ संकुचित होता है। इसी से प्रतिवर्ष इसकी उत्पत्ति होती है। भौमिक तने के हलाकार होने से ही इसे संस्कृत में हलिनी (हलाकार कन्द) लिखा है। यह (कन्द) श्वेत, मृदु, माँसल और स्वाद में तिक्त होता है। अवृन्त पत्तियां ५-६ इञ्च लम्बी और अग्र पर सूत्राकार बढ़ी हुई रहती हैं। इसी तन्तुभूत अग्र से आश्रय को लपेट कर यह आगे को बढ़ती है। पुष्प में पंखड़ियां ६, लहरदार, नीचे आधार की ओर पीताभ और ऊपर लाल और फिर पूर्णतः लाल हो जाती हैं।
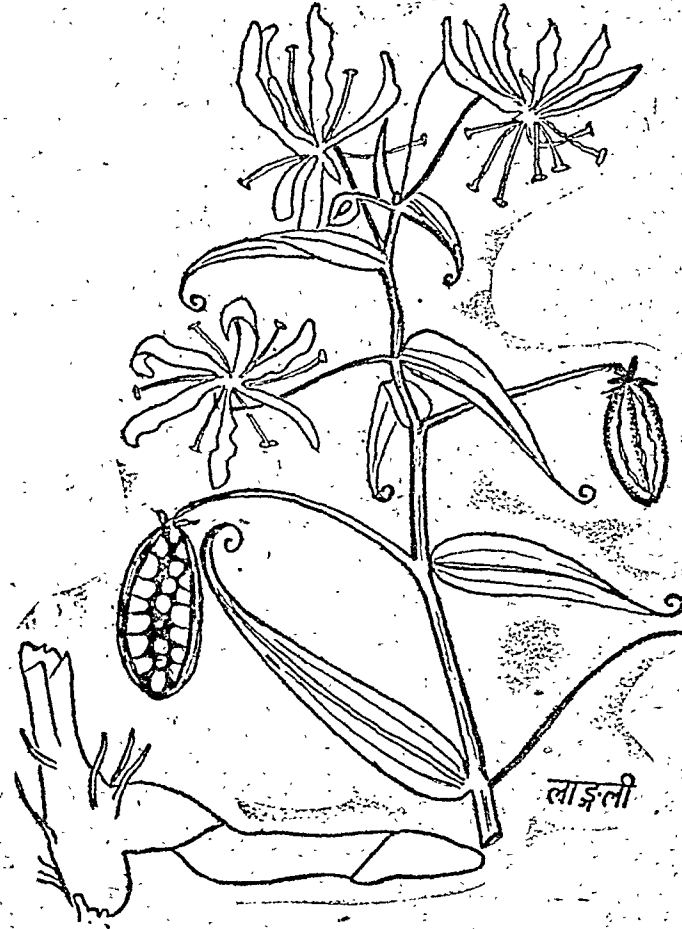
चित्र १५२

रासायनिक संगठन—वार्डेन के परीक्षणानुसार इसकी जड़ में दो प्रकार के राल, एक कषायिन (Tannin) और एक प्रकार का तिक्त सत्व जो यद्यपि वनपलाण्डु स्थित तिक्त सत्व के सर्वथा समान नहीं तो उससे मिलता-जुलता एक सत्व है, पाया जाता है। इसे सुपर्बीन (Superbine) कहते हैं। यह अत्यन्त विषाक्त होता है। हिन्दी में इसे 'लाङ्गलीन' या 'कलिकारीन' कहना चाहिये। इसे बिल्ली को खिलाने से वह मर जाती है।

उपयोगी अंग—कन्द।

मात्रा—वनौषधि दर्पणकार इसकी मात्रा १-२ रत्ती लिखते हैं और कहते हैं कि तीक्ष्ण गुण विशिष्ट होने से इसका उपयोग सावधानी पूर्वक करना चाहिये। पर मोहोदीन शरीफ इसे ६ रत्ती की मात्रा में विषाक्त नहीं मानते, प्रत्युत इसके विपरीत इसे वे परिवर्तनीय, बल्य, और नियतकालिक ज्वरनाशक (Antiperiodic) बतलाते हैं। लिखते हैं कि प्रथम मैंने इसका स्वयं प्रयोग किया। तदुपरांत दूसरों को इसका प्रयोग कराया। संभव है कि यह अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में विषाक्त हो, परन्तु जहां तक संभव था मैंने इसका परीक्षण किया और इसमें वत्सनाभ विष (Aconitia) का अभाव पाया गया। इंडियन मेटीरिया मेडिका में इस (श्वेतसार) की मात्रा २॥ से ५ रत्ती तक लिखी है। इसकी जड़ कूटकर पानी में भिगो देवें। पुनः इसको मलकर छानने से श्वेतसार प्राप्त होता है। इसके उचित मात्रा में यथाविधि सेवन करने से सुजाक में आराम होता है, ऐसा डीमक महोदय का मत है।

कल्प तथा योग—लाङ्गल्यादि गुटिका (ग० नि० कुष्ठे), लाङ्गली कल्परसायन (वा० रसायन अ० ३६), लाङ्गल्यादि लोहम्, कनकवती वटी इत्यादि।

कलिहारी शोधन—कलिहारी सात उपविषों में से एक उपविष है। इसलिए आन्तरिक प्रयोग के लिये इसे शुद्ध करके ही औषधि कार्य में लेना चाहिये। इसके शोधन की निम्न विधियां हैं—

(१) कलिहारी के छोटे छोटे टुकड़े करके दिन भर गोमूत्र में डालकर धूप में रखने से यह शुद्ध होजाती है-'लाङ्गली शुद्धमायाति दिनं गोमूत्र संस्थिता'

(२) इसके छोटे छोटे टुकड़े कर (पतले-पतले वर्क काटकर) रात्रि में किंचित नमक मिले हुए छाछ में भिगो, दिन में गरम जल से धोकर सुखा लेने से और इसी प्रकार चार पांच दिन करने से इसका विष कम हो जाता है। छाछ प्रति दिन नया डालना चाहिये।

कलिहारी के विष-लक्षण—वैद्यकोक्त पञ्च व सप्त उपविषों में से कलिहारी भी एक उपविष है। यदि इसे वे कायदे या अधिक खा लिया जाय तो दस्त लग जाते हैं और पेट में बड़े जोर की ऐंठन और मरोड़ होती है। तीव्र वमन और आक्षेप आदि लक्षण होते हैं। बीच-बीच में कभी थोड़े समय के लिए उक्त लक्षण शमन होते हुए जान पड़ते हैं। पुनः वे ही लक्षण आन उपस्थित होते हैं। शीघ्र उपाय न होने से रोगी बेहोश होकर मल टूटकर मर जाता है। अर्थात् इतने दस्त होते हैं कि उसको होश नहीं रहता और अन्त में मर जाता है। आशुमृतक परीक्षा करने पर रगों से रक्त क्षरित होने ((Extravasation of blobd) के साथ मस्तिष्क और उसकी झिल्लियों में रक्तसंचय के लक्षण पाये जाते हैं। फुफ्फुस, यकृत् तथा वृक्कद्वय में गम्भीर रक्त संचय पाया जाता है। आमाशय स्थित श्लेष्मकलाओं में शोथ के लक्षण दीख पड़ते हैं।

विष-शान्ति के उपाय—यदि कलिहारी से दस्त लगते हों तो बिना घी निकाले गाय के मठे में मिश्री मिलाकर पिलाओ। कपड़े में दही रख कर और निचोड़ कर दही का पानी निकाल दो। फिर जो गाढ़ा-गाढ़ा दही रहे, उसमें शहद और मिश्री मिलाकर खिलाओ। इन दोनों में से किसी एक उपाय से कलिहारी के विकार नाश हो जावेंगे।

गुण-कर्म—

लाङ्गली कटुका चोष्णा कफवातापहा सरा।
अपरापातनी चैव सद्यः प्रसवकारिका॥

—हाराणचन्द्र

लाङ्गली कटुरुष्णा च कफवात विनाशनी।
तिक्ता सरा च श्वयथु गर्भशल्य व्रणापहा॥

—ध० नि०

लाङ्गली कटुका तिक्ता सक्षारा पित्तला सरा।

तीक्ष्णोष्णा गर्भहा लघ्वी वस्तिशूल निवर्हणी ॥
बलासकुष्ठ शोफार्शो व्रण जन्तु विनाशनी ॥
—कै० नि०

कलिकारी कटूष्णा च कफवात निकृन्तनी ।
गर्भान्तःशल्यनिष्कासकारिणी सारिणी परा ॥
—रा० नि०

कलिहारी सराकुष्ठशोफार्शो व्रणशूलजित् ।
तीष्णोष्णा कृमिजित् लघ्वी पित्तला गर्भपातनी ।
—भाव०

हलिनी करवीरश्च कुष्ठ दुष्ट व्रणापहा ।
—राज०

कलिकारी सरा तीक्ष्णा कुष्ठ दुष्टव्रणापहा ।
—वि० ति० भा०

कलिकारी सरा तीक्ष्णा गर्भशल्य व्रणापहा ।
शुष्क गर्भं च गर्भं च पातयेल्लेप मात्रतः ॥
—शो० नि०

लाङ्गली वारिणा पिष्टा करपादप्रलेपिता ।
अपरां पातयत्याशु न संदेहोऽत्र कश्चन ।
सुधौतं लाङ्गली मूलं वारिणा परिपेषितम् ॥
नाभौ योनौ प्रलिप्तं वा सद्यः प्रसवकृन्मतम् ।
—रसतरंगिणी

कलिहारी कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, पित्त-कारक, लघु, सारक, गर्भपात करने वाली (शुष्क-गर्भ और गर्भ को दूर करने वाली) तथा कफ, वात, शोथ, व्रण (दुष्ट शूल एवं बस्तिशूल, कण्डू, कुष्ठ, अर्श और कृमियों का नाश करने वाली है। लाङ्गली पानी में पीसकर हाथ पैर पर लेप करने से तुरन्त आंवल (खेड़ी) को गिरा देती है। लांगली की जड़ भली भांति धोकर पानी में पीसकर नाभि और योनि पर लेप करने से तुरन्त प्रसव कराती है। कविराज श्यामाचरणदास लिखते हैं कि इस कन्द को पानी में पीसकर हाथ की हथेली और पैर के तलवे पर लेप करने से और इसकी गांठ को कमर में बांधने से सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है। परन्तु प्रसव होते ही उस गांठ को तुरन्त ही खोल देना चाहिये।

डा० वामन गणेश देसाई ने इसे दीपन, बल्य और वामक भी लिखा है। इससे आक्षेप और पचननलिका तथा गर्भाशय का दाह होता है। १-२ रत्ती की मात्रा में देने से भूख बढ़ती है।

उपयोग—

आयुर्वेदीय मतानुसार—

नष्टशल्य निर्हरणार्थ लाङ्गली—यदि शरीर में किसी जगह लोहा, पत्थर आदि शल्य घुस जायें, तो कलिहारी की जड़ पीसकर लेप करने से वे बाहर निकल जाते हैं यथा—

"नष्ट शल्य विनिःसरेत् लाङ्गलीमूल लेपाद्वा"।
—वा० व्रणशोथ चि०

रुके हुये गर्भ को शीघ्र निकालने के लिये कलिहारी मूल—

कलिहारी की जड़ को धागे से प्रसूता स्त्री के में रुके हुए गर्भ को शीघ्र उत्पन्न होने के लिये हाथ-पैरों बांधना चाहिये। यथा—

"हिरण्यपुष्पी मूलञ्च पाणिपादेन धारयेत्।"
—वा० शा० अ० १

गर्भसङ्गे × × वध्नीयाद्धिरण्यपुष्पीमूलं हस्तपादयोः।
धारयेत् सुवर्चलां विशल्यां वा। —सु० शा० १०
तन्तुना लाङ्गली मूलं वध्नीयाद्धस्तपादयोः।
—सु० शा०

लाङ्गली में गर्भाशय में संकोच पैदा करने की शक्ति है अर्थात् लांगली गर्भाशय संकोचक (Ecbolic, oxytocics) है। इसका गुण शरीर पर बांधने से, लेप करने से या पीने से प्रकट होता है। अपरापातनार्थ सुश्रुत में इसके मूल कल्क का प्रलेप हाथ-पैर के तलों पर करने के लिए अथवा मद्य या गोमूत्र के साथ कुष्ठ और लांगली के मूल के कल्क को पिलाने को लिखा है—

लाङ्गली मूल कल्केन वाऽस्याः पाणिपादतलमालिम्पेत् ×××, कुष्ठ लाङ्गलीमूलकल्कं वा मद्य मूत्रयोरन्यतरेण पाययेत्, × × × ×, × ×।
—सु० शा० १०-२

भाव प्रकाश में भी लिखा है—
"लाङ्गली मूल कल्केन पाणिपाद तलानि हि।
प्रलिम्पेत्........................ ॥
"सूतिका योषित् अपरा पातनाय वै।"
—मूढ़ गर्भ चि०

अष्टाङ्ग संग्रह में नाभि प्रदेश पर प्रलेप करने के लिये भी लिखा है—
लाङ्गलीमूलकल्केन वा पाणिमुदरं चालिम्पेत्।

रसरत्नसमुच्चय—में लिखा है कि कलिहारी, शतावरी, दन्तीमूल, वच्छनाग और पाषाणभेद इन सब औषधियों को बराबर-बराबर लेकर पानी में पीसकर पेड़ू और पेट के ऊपर लेप करने से मूढ़गर्भ अर्थात् टेढ़ा पड़ा हुआ गर्भ शीघ्र प्रसव हो जाता है। किसी-किसी के मत से इसमें संखिया और मिलाकर नाभि, वस्ति और योनि में लेप करने से मरा हुआ गर्भ शीघ्र निकल आता है।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—तीसरे दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष। मात्रा—यह अत्यन्त नशा उत्पन्न करती है, जिससे मृत्यु तक की नौबत आजाती है। इसलिए प्रारम्भ में आधी रत्ती फिर क्रमशः बढ़ाकर १-१ माशा दिन में दो तीन बार दे सकते हैं।

अहितकर—इसके खाने से आक्षेप और आंखों में तारीकी छा जाती है।

निवारण—शङ्खपुष्पी।

गर्भिणी स्त्री की पीडाभिवृद्धियर्थ कलिहारी की जड़ पीसकर उसके पेडू तथा भगोष्ठों एवं रोमों पर प्रलेप करते हैं। यदि आंवल न निकल सके तो इसकी जड़ पीसकर हथेलियों और तलवों पर लेप करना चाहिए अथवा उसकी बत्ती बनाकर गर्भाशय में स्थापित करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त कृष्णाजाजी और पीपर का चूर्ण मदिरा के साथ सेवन करावें। इसे पीसकर किंचित् नाभि, पेड़ और भग पर मलने से गर्भपात होता है। प्रसव पीड़ा अभिवर्द्धनार्थ भी इसका उपयोग होता है। प्रसवकाल में इसकी जड़ के रेशों को हाथ-पैर में बांधने से सुख पूर्वक शिशु-प्रसव हो जाता है। इसकी जड़ को कांजी में पीसकर गर्भवती स्त्री के पैरों पर लेप करने से शीघ्र बच्चा निकल पड़ता है।

इसकी जड़ गर्भाशय में धारण करने से वेदना शमन होती है।

नव्यमत—

नादकर्णी के अनुसार इसे ६ रत्ती की मात्रा में मधु के साथ देवें। इसकी जड़ और इसके द्वारा प्राप्त श्वेतसार का व्यवहार कुष्ठ, अर्श और उदरशूल में तथा आन्त्रस्थ कृमियों के निकालने के लिए परमोपयोगी सिद्ध होता है। चित्रकमूलत्वक् के साथ इसे गोमूत्र में पीसकर वेदनायुक्त अर्शांकुरों पर लेप करें।

रामनाथ चोपड़ा लिखते हैं कि प्राचीन संस्कृत लेखकों ने गर्भपातक रूप से इसके उपयोग का उल्लेख किया है। जनसाधारण के विश्वास के विरुद्ध, साधारण मात्रा में इसकी जड़ विषैली नहीं होती, अपितु यह परिवर्तक (रसायन) एवं बल्य गुणविशिष्ट ही प्रतीत होती है। (इं० ड्र० इं०)

यदि मासिक धर्म रुक रहा हो तो कलिहारी की जड़ या औंगे की जड़ अथवा कड़वे वृन्दावन की जड़ योनि में रखें। कलिहारी या औंगे की जड़ योनि में धारण करने से योनिशूल शान्त होता है। कलिहारी को पानी में घिसकर उसमें फाहा तर करके योनि में रखने से मासिक धर्म जारी होता है।

कलिहारी की जड़ को पानी में पीसकर अपने हाथ पर लेप करलो। जिस स्त्री को बच्चा होने में कष्ट होता हो उसके हाथ को अपने हाथ से छुआओ तुरन्त बच्चा हो जायगा। कलिहारी की जड़ को डोरे में बांधकर बच्चा जनने वाली के हाथ या पैर में बांध दो, बच्चा होते ही तुरन्त खोल दो, इससे बच्चा जनने में बड़ी आसानी होती है। इसका नाम ही 'गर्भघातिनी' है। गृहस्थों के घर में ऐसे अवसर पर इसका होना बड़ा लाभदायक है।

चिकित्सा चन्द्रोदय के लेखक लिखते हैं कि यदि गाय का अङ्ग बाहर निकल आया हो तो कलिहारी की जड़ का रस दोनों हाथों में लगाकर, दोनों हाथ उसके अङ्गों के सामने ले जाओ। यदि इस तरह अङ्ग भीतर न जाय तो दोनों हाथ उस अङ्ग पर लगा दो और फिर उन हाथों को गाय के मुँह के सामने करके दिखा दो। फिर वह भीतर ही रहेगा बाहर न निकलेगा।

(५ भा० पृ० ६५-६)।

विधिवत् शुद्ध की हुई कलिहारी को दो रत्ती की मात्रा में सेवन करने से पुरुषार्थ बढ़ता है।

वैद्यराज हकीम ठा० दलजीतसिंह आयु० बृहस्पति
रायपुर चुनार (मिर्जापुर)

स्त्री रोग तथा ब्राह्मी

श्री सोहनलाल शर्मा

गुल्म रोग—

ब्राह्मी शुष्क ६ माशा आध सेर जल में क्वाथ करें, आध पाव रहने पर ४ रत्ती सेंधानमक डाल कर प्रातः सायं रोगी को पिलायें।

गर्भपात —

ब्राह्मी ६ माशा तथा गैरिक १ माशा पाव भर जल में रगड़ छान कर प्रातः सायं रोगी को पिलायें।

हिस्टेरिया—

ब्राह्मी ६ माशा, मुनक्का (बीज निकाल कर) १० दाने, मगज बादाम १० दाने, सौंफ ६ माशा, मिर्च काली १ माशा इन सब चीजों को रगड़ कर छान कर और २ तोला खांड मिलाकर प्रातः सायं प्रयोग करें।

चित्र १५३

रजोरोध—

ब्राह्मी ६ माशा, पीपल २ माशा, हरमल बीज २ माशा, एलुवा २ माशा, गूगल २ माशा, इन सबको रगड़ कर चने बराबर गोलियां बनायें। मात्रा—२ से ४ गोली तक। गुण—रजोरोध पर लाभकारी है तथा गर्भाशय शोथ पर भी गुणकारी है।
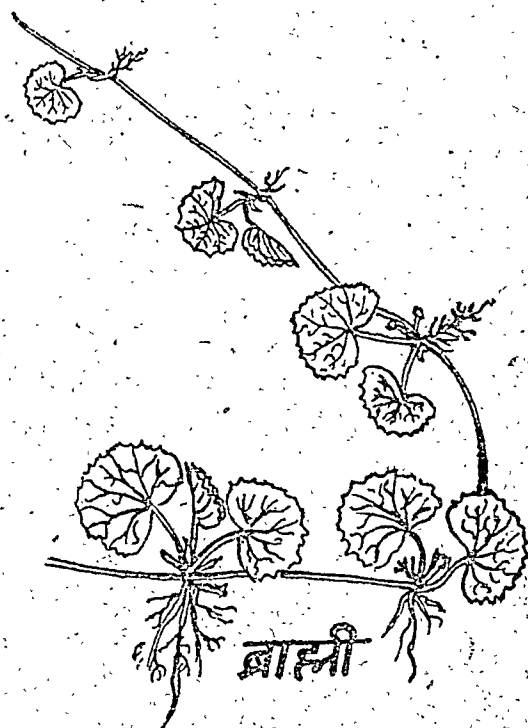
सोमरोग पर—

ब्राह्मी शुष्क १ तोला आध सेर जल में क्वाथ करें। पाव भर जल रहने पर, बकरी के आध सेर दूध में डालकर अग्नि पर रखें। जब जल जल जावे, दूध शेष रहे तो खाण्ड मिलाकर रोगी को प्रातः सायं पिलायें। सोम रोग पर लाभकारी है।

गर्भवती की कब्ज—

शुष्क ब्राह्मी, सौंफ, खाण्ड बराबर वजन मिला कर चूर्ण करें। मात्रा ६ माशा। अनुपान—ताजा गौ दूध।

प्रसूता स्त्रियों पर—

ब्राह्मी शुष्क ६ माशा आध सेर जल में क्वाथ कर पाव भर रह जाने पर इसमें एक पाव गोदुग्ध डाल कर अग्नि पर पकावें। इच्छानुसार खांड मिलाकर प्रातः सांय रोगी को पिलायें।

गुण—गर्भवती की हर प्रकार की खराबी में लाभदायक है। बच्चा टाईम से पहले नहीं होगा। जिन स्त्रियों के बालक जल्दी सूख जाते हैं तथा देर से बोलते हैं उन पर लाभकारी है और बालक बुद्धिमान् तथा दीर्घायु होगा। गर्भावस्था में इसका प्रयोग करें। गर्भाधान के वक्त वीर्य और रजः के विकार से या किसी और कारण से अगर गर्भ में बच्चा समय से ज्यादा देर तक रहे, तब भी प्रयोग करें।

—श्री वैद्य सोहनलाल शर्मा आयुर्वेदाचार्य
गवर्नमेंट आयुर्वेदिक डिस्पैन्सरी
भंगाला (अमृतसर)

कपास, लाङ्गली और लोध्र के प्रयोग

सुश्री यशोदादेवी वैद्याचार्या

स्त्री रोगों में लोध्र, कार्पासमूल और लांगली आदि प्रसिद्ध औषधियां बड़ा लाभ करती हैं। इनके कुछ प्रयोग नीचे लिखे जाते हैं—

कपास—

दुग्ध वृद्धि के लिये—कपास बीज (बिनौलों) की मींगी को जल से घोट छान कर, उस जल को दूध में मिलाकर, चावलों की खीर बना कर दें।

अथवा स्तन्य (दुग्ध) की वृद्धि के लिए-जंगली कपास की जड़ को कांजी के साथ पीस कर पिलावें।

गर्भाशय के शूल में—कपास के कोमल पत्तों और जड़ के क्वाथ में नाभि तक बैठावें। इससे गर्भाशय का शूल दूर होजाता है।

कष्टार्त्तव में—कपास की जड़ (मूल) की छाल का क्वाथ पिलावें। कष्टार्त्तव तथा सर्दी के बन्द हुए मासिक धर्म में कपास की जड़ की छाल १० तोले को सवा सेर जल में उबालें। आधा रहने पर

चित्र १५४

१ छटांक मात्रा में आधे-आधे घन्टे के बाद पिलावें। अथवा इसका घन सत्व बनालें और ३० से ६० बूंद तक दें।

मासिकधर्म के रक्ताधिक्य में—कपास के पुष्पों की भस्म खिलावें।

श्वेत प्रदर में—कपास की जड़ को चावलों के धोवन के साथ पीस कर दें।

लाङ्गली (कलिहारी)—

योनि शूल में—लांगली की जड़ योनि में रखें। योनिशूल तथा पुष्पावरोध में इन्द्रायण मूल की बत्ती भी यही कार्य करती है।

गर्भवती की पीड़ा में—या शीघ्र प्रसव के लिए लांगली की जड़ को पीस कर नाभि तथा भगोष्ठों और पेडू पर लेप करें। कलिहारी का लेप गर्भ को गिरा देता है इस बात को ध्यान में रखें।

सुख-प्रसव के लिये—लांगली की जड़ को हाथ पांव में बांधें तथा कांजी में पीस कर पैरों के नीचे लेप करें।

अपरा (आंवल) न गिरने पर—लांगली (कलिहारी) की जड़ की बत्ती बनाकर योनि में रखें अथवा इस का लेप हाथ-पांव की तलियों पर करें।

लोध्र—

स्तन पीड़ा में—लोध्र के कल्क का लेप करने से स्तन पीड़ा मिटती है।

गर्भपात में—अष्टम मास के गिरने वाले गर्भ

चित्र १५५

के उपद्रवों में लोध्र और पिप्पली के चूर्ण को शहद के साथ या दूध से दें।

रक्तप्रदर में—लोध्र का चूर्ण १ माशा, चीनी समभाग मिला कर जल के साथ दिन में ३ बार एक सप्ताह तक दें। इससे गर्भाशय की शिथिलता तथा रक्त प्रदर दूर होजाता है। लोध्र झिल्लियों की शिथिलता को दूर करता है।

—सुश्री यशोदादेवी वैद्याचार्या,
६८४६/१४ अहाता केदारा, दिल्ली-६

★

नारी-भूषणाः—

शीलं लज्जा च माधुर्यं दृढ़ताह्यार्जवस्तथा।
पवित्रता च सन्तोषं सुहृद्यं विनयः क्षमाः॥

स्त्री और व्यायाम

श्री महेश्वरीदयाल श्रीवास्तव

कमल सा मुख, सूर्य सा तेज और चन्द्र सी कान्ति ही वास्तव में सफल नारी जीवन है और यह तब ही सम्भव है जब कि स्त्री स्वस्थ हो, सुन्दर हो ? कहने को स्वास्थ्य और सौन्दर्य दो शब्द हैं, परन्तु अर्थ दोनों का एक ही है। काले गोरे, सांवले रंग का नाम या बहुमूल्य जेवर या चमकीले वस्त्र पहनी हुई स्त्री को सुन्दर नहीं कह सकते।

सच्चा सौन्दर्य अच्छे स्वास्थ्य पर ही निर्भर है। वर्ण की पवित्रता, केशों की सघनता दांतों की उज्वलता, आंखों की स्वच्छता, शरीर की सुडौलता और लचीलेपन को हम सफल सौन्दर्य कह सकते हैं। स्वास्थ्य से ही सौन्दर्य है और सौन्दर्य ही से स्वास्थ्य है अर्थात् स्वास्थ्य का दूसरा नाम सौन्दर्य है।

स्वास्थ्य का अच्छा और बुरा होना शरीर की अस्थियों की मजबूती तथा रगों में रहने वाले रक्त पर निर्भर है और रक्त का सम्बन्ध हमारे हर रोज के भोजन से है इसीलिये ऐसा भोजन करना चाहिये जिससे पाचन बिगड़ने न पावे क्योंकि पाचन शक्ति बिगड़जाने से शरीर का सारा ढांचा हिल जाता है, मुंह सूखने लगता है। ऐसी दशा में तेल, क्रीम, पाउडर आदि से काम नहीं चलता और न चूर्ण फांकने या नित्य जुलाब लेने से, बल्कि नित्य डाक्टर वैद्यों की चिकित्सा से भी काम नहीं चलता। इससे चिन्ता उदासी गम रंज सोच फिक्र कुछ भी कहिए सब एक ही चीजें हैं पैदा होकर चेहरा कुरूप हो जाता है क्योंकि इस दशा में एक प्रकार का विष पैदा हो जाता है जो रक्त में मिल कर त्वचा को बुढ़ापा प्रदान करता है। बालों की जड़ें कमजोर हो जाती हैं जिससे बाल छोटे ही रह कर झड़ने लगते हैं या समय से पहले सफेद हो जाते हैं। सारांश यह कि पाचन शक्ति की गड़बड़ी से ही अनेकों रोग जैसे उदर विकार, मासिक धर्म में गड़बड़ी, प्रदर, बांझपान, योषास्मार आदि आदि पैदा हो जाते हैं। उपरोक्त सभी रोगों का अथवा

चित्र १५६

स्वास्थ्य तथा सौन्दर्य बढ़ाने का केवल एक उपाय है वह है 'व्यायाम' जैसा कि निम्नांकित श्लोक से ज्ञात होता है—

> शरीरोपचयः कान्तिर्गात्राणां सुविभक्तता,
> दीप्ताग्नित्वमनालस्यं स्थिरत्वं लाघवं मृजा।
> श्रमक्लमपि पासोष्ण शीतादीनां सहिष्णुता,
> आरोग्यं चापि परमं व्यायामादुपजायते ॥
>
> —सुश्रुत

आयुर्वेद के मतानुसार स्त्रियां चार प्रकार की होती हैं पर व्यायाम की दृष्टि से शारीरिक कार्य करने वाली व मानसिक कार्य करने वाली ही मानी गई हैं। मेरे विचार से देहात व शहर की अनेक स्त्रियां ऐसी हैं जो नित्य अपने जीवन में अपने घरेलू कार्यों के साथ साथ अपना शारीरिक परिश्रम कर लेती हैं जिससे उनके शरीर के हर अंग का व्यायाम हो जाता है जैसे चक्की चलाना, अनाज कूटना, भोजन बनाना तथा चौका बर्तन साफ करना, खेतों

की निराई करना, घर व पशुओं की सफाई करना, बैलों की सानी करना तथा पानी भरना आदि आदि। तथा नगर की अनेकों स्त्रियां भी शारीरिक व्यायाम सम्बन्धी कार्यों में संलग्न रहती हैं। मेरी समझ से अलग से व्यायाम करने की स्त्रियों को आवश्यकता नहीं क्योंकि उनके आम के आम और गुठलियों के दाम वाली कहावत है कि घर काम भी होजाता है और व्यायाम भी।

अब रही मानसिक कार्य करने वाली स्त्रियां जो दुकानदारी का काम, सीने पिरोने का कार्य, पढ़ने लिखने तथा नौकरी आदि का कार्य ही करती हैं। उनको अवश्य व्यायाम करना चाहिये। व्यायाम में सबसे प्रथम व्यायाम चार घड़ी सवेरे उठकर टहलना अति उत्तम व्यायाम है। इसके बाद प्रातः समय ही सूर्य नमस्कार, शीर्षासन, सर्वाङ्ग आसन, अंगुष्ठपाद आसान आदि करें। व्यायाम करने की विधि, उसके लाभ व रोग से मुक्त रहने का वर्णन निम्न है। पाठक पढ़कर लाभ उठायें।

प्रातः काल का टहलना—

चार घड़ी रात उठने से आदमी स्वस्थ ही नहीं धनवान बुद्धिवान, बलवान हो जाता है। प्रातः काल के टहलने से अमृत वेला की वायु श्वास मार्ग से फुफ्फुसों में प्रवेश करती है जिससे हृदय द्वारा नये रक्त का संचार होता है। यह रक्त ही शरीर का प्रथम स्वास्थ्य घर है। यदि आप आरोग्यता चाहती हैं, यदि सदा स्वस्थ रह कर सुख से जीवन काटना चाहती हैं, यदि आप संसार में दीर्घ जीवी होकर स्वार्थ परमार्थ साधन करना चाहती हैं, यदि आप अकाल मृत्यु से बचना चाहते हैं, तो आप सदा सूर्योदय से चार घड़ी पहले ही अपने बिस्तर का मोह छोड़कर टहलने की आदत डालिये। भाव प्रकाश के पूर्व खण्ड के चौथे प्रकरण में लिखा है—

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।
तत्र दुखःस्थ शान्त्यर्थं स्मरेद्धि मधुसूदनम्॥

इतिहास से ज्ञात होता है कि बड़े बड़े राजा चार घड़ी सवेरे ही अपने बिस्तर छोड़देते थे। दिल्ली का बादशाह अकबर चार घड़ी रात रहे पलंग से उठकर अपने कर्तव्याकर्तव्य के विचारों और ईश्वर उपासना में लग जाता था। रामायण के बालकाण्ड में लिखा है—

उठे लषण निशि बिगत सुनि, अरुण शिखा धुनि कान।
गुरुते पहले जगत पति, जागे राम सुजान॥

नोट—टहलने वाले व्यक्ति को पौन या एक घन्टा समय अवश्य लगाना चाहिये।

सूर्य नमस्कार—

१—हाथों को पीछे से घुमाकर सामने पैरों के अंगूठे के पास लेजाना।

२—हाथों को जमीन पर टेक कर बांया पैर पीछे ले जाना।

३—दायां पैर पीछे ले जाकर कमर ऊंची करके पीछे दूर देखना।
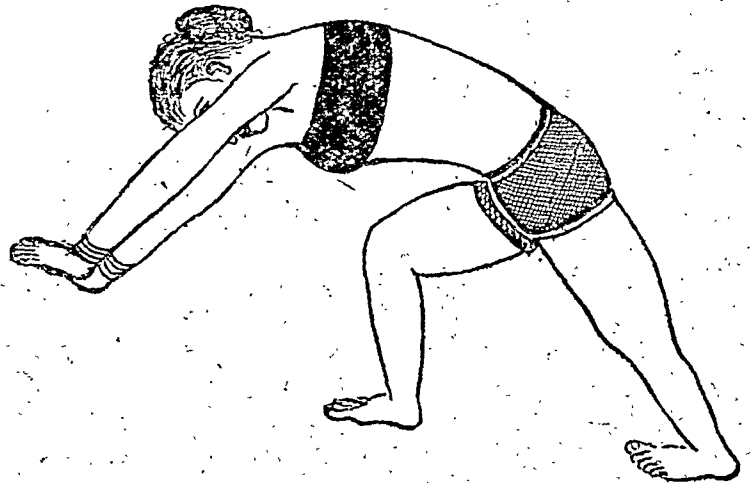
चित्र १४७ —सूर्यनमस्कार

४—कमर झुकाकर सीना आगे निकालना।

५—कुहनियां मोड़कर धड़ को जमीन के समानान्तर करना।

६—दायां पैर आगे लाना।

७—बायां पैर आगे लाना (नम्बर २की दशा)

८—सीधे खड़े होना (नम्बर १ की दशा)

सर्वाङ्गासन —

१—चित्त लेटना, हाथ जमीन पर धड़ के समानान्तर।

२—पैरों को उठाकर कमर से समकोण बनाना।

३—पैरों को पीछे ले जाकर जमीन से लगाना।

४—सीधे खड़े होना।

शीर्षासन —

१—बैठकर हाथों को कुहनियों के बल टेकना

२—सर को जमीन पर टेक कर पैरों को उठाकर जमीन पर धड़ के साथ समकोण बनाना।

३—नम्बर १ की दशा।

४—सीधे खड़े होना।

नोट—इस आसन को करने में जितना समय लगे उससे दूने समय तक शान्ति पूर्वक सीधे खड़े रहना चाहिये अन्यथा हानि का भय रहता है।
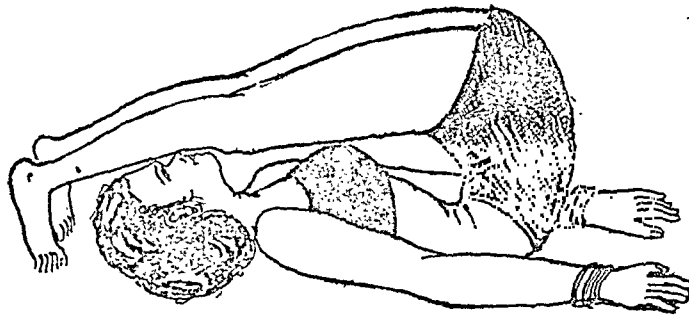
चित्र १५८ सर्वाङ्गासन

अंगुष्ठपाद आसन—

१—पैर सामने फैलाकर बैठना, हाथ जमीन पर

२—आगे झुककर हाथों से पैरों के अंगूठे छूना, सिर घुटनों से लगा हुआ।

३-सीधे खड़े होना।

चित्र १५६ अंगुष्ठपाद आसन
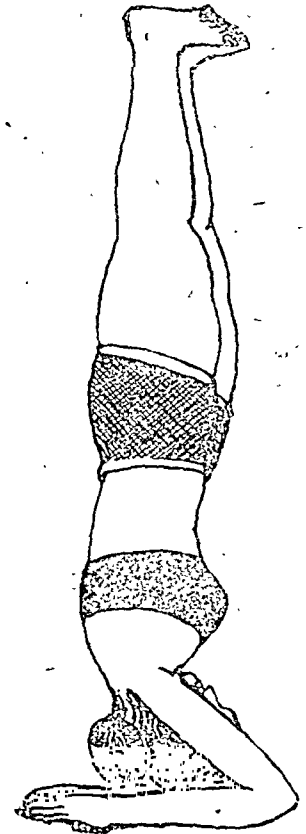
चित्र १६० शीर्षासन

इनके अतिरिक्त चक्की चलाना व कूटने आदि के कार्य शारीरिक परिश्रम हैं जिनकी विधि जनसाधारण में प्रचलित है।

व्यायाम सम्बन्धी नियम—

१—जिनको कुछ भी चिकना और ताकतवर भोजन मिलता हो उनको ही व्यायाम करना हितकारी है सूखी रोटी खाने वालों के लिए व्यायाम हितकारी नहीं।

२—व्यायाम करते समय कुछ खाना या चबाना उचित नहीं है। व्यायाम करके दूध मिश्री मिलाकर अथवा अपनी प्रकृति के अनुसार कोई स्निग्ध पदार्थ खाना आवश्यक है।

३—व्यायाम करते समय जब मुह सूखने लगे, दम फूलने लगे या शरीर के जोड़ों और कोख में पसीना आने लगे तब व्यायाम करना बन्द करदें। यह बलार्द्ध के लक्षण हैं।

४—व्यायाम करते समय लंगोट, रूमाली या जांघिया तथा चोली अवश्य बांध लें जिससे कुच ढीले न हों।

५—व्यायाम करके टहलना अच्छा है। किसी काम में लग जाना और तत्काल स्नान कर लेना ठीक नहीं।

६—बुद्धिमानों को चाहिए कि अपनी अवस्था, अपना बल, देशकाल और भोजन आदि का विचार कर व्यायाम करें।

७—जब व्यायाम से शरीर थक जाये तब पैरों में तैल की मालिश करना या उबटन लगवाना लाभदायक है।

८—घर के एकान्त कमरे में जिसके खिड़की और रोशनदान खुले हों उसी में व्यायाम करना चाहिए।

९—जिनको व्यायाम करना वैद्य द्वारा निषेध हो वे कदापि व्यायाम न करें। गर्भकाल व प्रसवकाल में भी व्यायाम उचित नहीं।

व्यायाम से लाभ—

१—व्यायाम करने से शरीर की समस्त अस्थियों व अङ्गों पर बल पड़ने से शरीर दृढ़ हो जाता है जिससे शरीर के किसी भी अङ्ग में रोग होने का भय नहीं रहता।

२—उदर व पेट के समस्त रोग व्यायाम करने से नहीं होते तथा पेट के रोगियों को व्यायाम करने से विशेष लाभ होता है। पाचन क्रिया ठीक रहती है।

३—अधिक स्थूलता को दूर करने के लिए व्यायाम से बढ़कर और कोई औषधि नहीं।

४ व्यायाम करने से रक्त संचार बढ़ता है।

५—व्यायाम करने वाले पर बुढ़ापा सहसा आक्रमण नहीं करता।

६—व्यायाम करने से शरीर में लचीलापन उत्पन्न हो जाता है जिससे शरीर का प्रत्येक अवयव अपना कार्य सुविधापूर्वक कर सकता है।

—वैद्य श्री महेश्वरीदयाल श्रीवास्तव वैद्य विशारद
स्वास्थ्य सेवासदन, गढ़ीसेनपुर
जि० सीतापुर।

नारी षट् दूषण त्याग करे—

पानं दुर्जन संसर्गः पत्यां च विरहोऽटनं।
स्वप्नोऽन्य गेह वासश्च नारी सन्दूषणानि षट्॥

सुन्दरता वरदान है अभिशाप भी है !!!

श्री जगदम्बाप्रसाद

अति सुन्दरता के कारण सीता का अपहरण किया गया जिसके कारण राम-रावण महा समर हुआ। परिणामस्वरूप रावण-वंश संहार एवं सीता का परित्याग भी हुआ। वह साध्वी सीता और परित्याग। अतिसुन्दरता के कारण अहिल्या की लज्जा का अपमान हुआ। वह वनवासिनी अहिल्या इन्द्र के कपटाचरण से कलुषित सी हुई। सुन्दरता "पर··· ········को" आकर्षित करती है। अति सुन्दरता के कारण कर्ण सा महारथी भी द्रोपदी को पाने के लिए लालायित हो उठा। वहां उसका अपमान हुआ जो कि महाभारत के संग्राम में प्रधान कारण हुआ। जयद्रथ ने भी द्रोपदी को हरण करने का प्रयत्न किया।

अति सुन्दरता के कारण पद्मिनी पर वह मुसलमान नरेश मोहित हुआ। यद्यपि उस विदुषी ने नर-संहार रोकने के लिए अपना रूप दर्पण में दिखाया पर दर्शन से पाने की इच्छा बलवती हुई परिणामस्वरूप हजारों नर-शूरों का बलिदान हुआ। अति सुन्दरता के कारण संयोगिता पर पृथ्वीराज मुग्ध हुआ फिर अपहरण और फूट। गौरी को आमन्त्रण जिसके परिणाम स्वरूप भारत परतंत्र हुआ। गोरों की प्रभुता, फिर भारत के अंग-भंग, जो हानि हुई उसकी क्षति पूर्ति युगों तक न हो सकेगी।

सुन्दरता-सुवर्णता की चोरी समाज में अनेक वार हुआ करती है। प्रतिदिन इसके उदाहरण मिला करते हैं। नारी की प्रथम और अमूल्य निधि सुन्दरता है। वह सती साध्वी को और पूर्वजन्म के संस्कार रूप में ही नारी को प्राप्त होती है। नारी का कर्त्तव्य है कि वह उसे संभाले रहे, अकाल में या आजीवन नष्ट न होने दे। उसका उपयोग, उपभोग करे, खूब उपभोग करे किन्तु संयम के साथ और विशेष यह कि उसे पतिदेव के लिए सुरक्षित रखे। समाज के समक्ष सुन्दरता का प्रदर्शन करना अभिशाप सिद्ध हो सकता है अन्यथा सुन्दरता वरदान है।
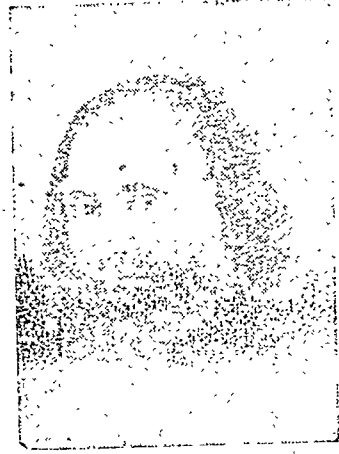
Those who have a fair wife!
must have more than two eyes !!

—श्री जगदम्बाप्रसाद, महदेवा
अरौल, (कानपुर)

वे कैसा पति चाहती हैं ?

आचार्य श्री डा० महावीर प्रसाद रंजन

वैसे तो लेख का शीर्षक कुछ अजीब सा लगता है जरूर मगर आधुनिक काल में, जनसाधारण के अन्तर में यह कुछ कुतूहल तथा उत्सुकता की सृष्टि अवश्य करेगा, ऐसी हमारी धारणा है। और सच पूछिये तो ऐसा होना नितान्त स्वाभाविक भी है।

कहावत प्रसिद्ध है कि भिन्न भिन्न लोगों की रुचियां भी भिन्न भिन्न होती हैं और यह नारी समाज पर भी समान रूप से लागू है। इस विशाल संसार के सभी देश-देशान्तरों की कुमारियां कैसा पति चाहती हैं वस्तुतः यह एक भेद की बात है। मगर, इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उनकी पसन्द पर स्थानीय वातावरण का विशेष प्रभाव पड़ता है।

विवाह योग्य अवस्था में पहुंचते ही कुमारी ललनाओं की भाव-भंगिमा में प्रत्यक्ष परिवर्तन नजर आने लगता है। यौवन के पदार्पण होते ही यौन-विकार उनके मस्तिष्क में चक्कर काटने लगता है, फलतः उनमें नारी सुलभ लज्जा, कोमलता, भावुकता तथा यौन-बुभुक्षा भी जागृत होने लगती है। और ऐसी नाजुक घड़ी में वह कुछ घबड़ाहट तथा बेचैनी भी महसूस करती है। हां, इतना तो निर्विवाद है कि अपने जीवन-साथी के चुनाव में उन पर अपने कुल, जाति तथा देश की परम्परा, संस्कृत और सभ्यता, रहन-सहन, वेश-भूषा, विचारों तथा मनोभावों का अमिट प्रभाव अवश्य पड़ता है। उनके देश की जलवायु तथा प्राकृतिक सुषमा का भी अप्रत्यक्ष रूप से कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता ही है।

विदेशों की बात छोड़िये। अपने देश को ही लीजिये। हमारी इस शस्य-श्यामला तथा नैसर्गिक सुषमा से परिपूर्ण विशाल भूखण्ड के ही निवासियों में विचारों का साम्य नहीं। हमारे विभिन्न प्रान्तों की कुमारियों के पति-निर्वाचन में परस्पर-विरोधी दृष्टिकोण एवं मनोभावों का स्पष्ट आभास मिलता है। प्रस्तुत लेख में व्यक्त भावनायें एवं आकांक्षायें प्रायः ९५ प्रतिशत कुमारियों पर सही उतरेंगी, ऐसा हमारा अनुमान है।

(क) भारत

१. आसाम—सच्चे, स्वदेश-भक्त पति।
२. बंगाल—धनी, स्वर्णाभूषण देने वाले एवं सन्तान प्रेमी।
३. बिहार—देशभक्त, दयालु एवं शिक्षित।
४. उत्तर प्रदेश—विद्वान् एवं प्रतिष्ठित।
५. पंजाब—वीर।
६. सीमा प्रान्त—वीर।
७. सिन्ध—स्वस्थ, सुन्दर, व्यवसायी।
८. राजपूताना—दृढ़-प्रतिज्ञ, साहसी, धीर-वीर।
९. मारवाड़—धर्मपरायण ईश्वर-भक्त।
१०. काश्मीर—सुन्दर, प्रतिष्ठित एवं सौन्दर्य-प्रेमी।
११. बम्बई—व्यवसाय कुशल।
१२. मद्रास—अंग्रेजी भाषा-भाषी।
१४. उत्कल—सीधे-सादे एवं भोले युवक।
१५. दक्षिण भारत—विलासी एवं सौन्दर्योपासक।

(ख) विदेश।

१. अमेरिका—वैमानिक।
२. इंग्लैण्ड—बलवान एवं समुद्र-प्रेमी।
३. फ्रांस—सुन्दर, सम्पन्न एवं विलासी युवक।
४. जर्मनी—अखण्ड प्रेम एवं विश्वास से पूर्ण।
५. स्पेन—वीर।
६. रूस—पश्चिमी यूरोप के दूषित वातावरण से घृणा करने वाले।
७. इटली—कवि।

—शेषांश पृष्ठ ५०० पर।—

सौन्दर्य रक्षा एवं सौन्दर्य-कारक चिकित्सा

श्री डा० प्रतापगिरि वेंकटसुब्बय्य शर्मा L. A. M., N. D.
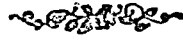
सौन्दर्य दो प्रकार का होता है—एक बाह्य दूसरा आभ्यन्तर। बाह्य सौन्दर्य से ज्यादा आभ्यन्तर सौन्दर्य की जरूरत है। इस निबन्ध में दोनों अर्थात् बाह्य और आभ्यन्तर सौन्दर्यकारक योगों का वर्णन किया गया है। आभ्यन्तर सौन्दर्य-कारक वर्णन में जो सामान्य दृष्टि से असह्य मालूम पड़ते हैं लेकिन उस वर्णन की जरूरत होने के कारण मैं उनको लिख रहा हूँ।

देह सौन्दर्यवर्धक तथा देहदौर्गन्ध्यहरण समुद्देश—

प्रागंगराग: पुरुषेणाकार्यः
स्त्रिया च संयोगमुखायरात्रौ।
तस्मादहंगंध विधानमादै
विलासिन: सर्वमुदीरयामि।

पुरुष अंग लेप पहले करना चाहिये। स्त्रियों के संयोग सुख के लिये रात्रि में अंगराग् करना जरूरी है।

स धातकी लोध्रमरिष्टपत्रं
सचंदनं दाडिमवल्कलंच।
एषोंगनानां कथितः कवीन्द्रैः
शारीर दौर्गन्ध्य हरः प्रलेपः॥

अर्थात् धाय के फूल. लोध्र, रीठे के पत्ते, चन्दन, अनार का छिलका. यह सब द्रव्य पीसकर अंग लेपन करने से शरीर की दुर्गन्ध नष्ट होती है।

हरीतकी चन्दन मुस्तनागरुसीरलोध्रोत्पलरात्रिमूलैः।
स्त्रीपुंसयोर्घमजगात्र गन्धं विनाशयत्याशु विलेपनेन्॥
(पं० सा०)

हरीतकी, चन्दन, मुस्त, नाग वल्लीदल, धात्री फल, लोध्र, उसीर, उत्पल याने कमल और हल्दी का मूल. यह सब द्रव्य पीसकर लगाने से ग्रीष्म ऋतु में पसीने से पैदा हुई दुर्गन्धि का नाश होता है।

"सदाडिमत्वक् मधु लोध्र पद्मैः।
पिष्टैः समानैः पिचुमन्दपत्रैः॥
विलिप्य गात्रंतरुणीनिदाघे।
दुर्गन्धि घर्मापचयं निहन्ति॥" पं. सा.

अनार का छिलका, दालचीनी, मधु, लोध्र, कमल, नीम के पत्ते, सब सम भाग पीसकर लगाने से ग्रीष्म ऋतु में पसीने को हरण करता है।

मुखरञ्जनम्—

वच, केशर, पिप्पली इन तीनों को पीसकर लगाने से मुख रन्जन होता है।

"मसूरं मधुना सार्धं पिष्ट्वा प्रागघर्षं एन्मुखं।
सप्त रात्र प्रयोगेन पुन्डरीकवत् प्रियम्॥"
(शि. र. र. क.)

मसूरों को मधु से पीसकर सात दिन लगाने से मुख पद्ममुख होता है।

'गोजले कथितापथ्या निशि कुष्ठ समन्वितं।
वदनस्य दुरामोदं निहन्ति परिशीलनात्॥"
(नि. का.)

हरीतकी, हल्दी, कुष्ठ इन तीनों को गोमूत्र से पीस कर लगाने से मुंह की दुर्गन्ध का नाश होता है।

मिर्च, गोरोचन इन दोनों को पीसकर लेपन करने से मुख की कान्ति पढ़ती है। (नि. का.)

अर्जुन वृक्ष की त्वचा, मंजिष्ठा, मधु, इन सब को पीसकर लेपन करने से मुख व्यंग नाश होकर मुख कमल सदृश बनता है।

केशरञ्जनम्—

"त्रिफला लोह चूर्णं तुनीली भृंगी समूलकं।
एतच्चूर्णमजामूत्रे दिनमेकं विभावयेत्॥

तेनैव मर्दयेच्छीर्षं रञ्जते भ्रमरोपमं ।"
(शार्ङ्गधर संहिता:)

त्रिफला, लोह चूर्ण, नीलि, और भृंगराज के मूल, इन सब द्रव्यों का चूर्ण बनाकर अजा मूत्र से एक रोज भावना देकर शिर में मर्दन करने से बाल भ्रमर के समान काले बनते हैं।

"त्रिफलालोहचूर्णं तु इक्षु भृंगरसस्तथा।
उष्णमुतिकया सार्धं भांडे मासे निरोधयेत्॥
तल्लेपात् रञ्जयेत् केशान्, चतुर्मासि स्थिरोभवेत्।"
(शा. सं.)

लोह चूर्ण, भृंगराज, त्रिफला, काली मिट्टी इन सबको सम भाग इक्षु रस में डालकर एक मास रख कर शिर में लगाने से बाल काले बनते हैं। तथा ४ मास पर्यन्त प्रयोग करने से बालों का गिरना बन्द हो जाता है।

इन्द्रवारुणिका वीजः तैलेनाभ्यंगमाचरेत्।
प्रत्यहं तेन जायन्ते कुंतला भृङ्गसन्निभाः॥
(शा० सं०)

इन्द्र वारुणिक के बीजों का तेल पाताल यंत्र से निकाल कर प्रतिदिन अभ्यंग करने से भृङ्गों के समान बाल बनते हैं।

असित तिल सयूतान पल्लवान भक्षयित्वा,
सषितुरुदय काले भृङ्गराजस्यनित्यं।
प्रय वतिचिर जीविन्व्याधिनिर्मोचनंय,
भ्रमर सदृश केशी गृध्रचक्षुर्मनुष्य॥
(शि० र०.र० क०)

काले तिल, आम और भृङ्गराज के पल्लवों को प्रति दिन उदय काल में भक्षण करने से समस्त व्याधि दूर होती हैं, गृध्र के समान दृष्टि तथा भ्रमर के समान केश होते हैं।

केश यूक निवारणं—

नीलोत्पलं तिलंयष्टिसर्षपा नागकेशरम्।
धात्रीवसासेमं पिष्टवा लेपाज्जूक निवारणम्॥
(शि. र. र. क.)

नील वर्ण के कमल, तिल, मधुयष्टि, सरसों, नाग केसर, आमलक, वच, इन सबको समान भाग लेकर पीसकर शिर में लगाने से जूं नष्ट होते हैं।

विडंग गंधोत्पल कल्कयोगात्
गोमूत्र सिद्धं कटु- तैलमेतत्।
अभ्यंगयोगेन शिरोरुहाणां
जूकाविलिख्य प्रचयं निहन्ति।
(शि. र. र. का) (न० का०)

वायविडङ्ग, गंधक, कमल, इनका कल्क बना कर और गौमूत्र, सरसों का तेल डालकर तैल-पाक विधि से तैल पकाकर अभ्यंग करने से जूं नष्ट होते हैं।

निशागंधक गोमूत्रं विडङ्गं कटु तैलकम्।
पारदेन समं लेपात् जूकासर्वे विनासिताः॥
(नि. का.)

हल्दी, गन्धक, गौमूत्र, विडंग, पारद और सरसों का तेल, सबको समभाग लेकर पीस कर लगाने से जूं नष्ट होते हैं।

विल्वमूलं सगोमूत्रं लेपाज्जूका विनाशनम्।
(नि. का.)

विल्व के मूल को गौ मूत्र से लगाने से जूं नष्ट होते हैं।

रोमशातनं—

शंखचूर्णस्य भागौद्वौहरितालश्च भागिकः।
मनःशिलाचार्धभागास्वर्जिकाचैकभागिका।
लेपोयंवारिपिष्टस्तु केशानुत्पाट्यदीयते।
अनया लेप युक्ताचसप्तवेलं प्रयुक्त या।
निर्मूल केशस्थानं स्यात्क्षपणस्यशिरोयथा।
(शा. सं.)

शङ्ख का चूर्ण २ भाग, हरताल १ भाग, मनः शिला ½ भाग, सर्जिकाक्षार १ भाग, इन सबको पीसकर लगाने से केश (बाल) निकल याने उखड़ जाते हैं।

"तालकंशाण युग्मंस्यात्षट् शाणं शङ्खचूर्णकम्।
द्विशाणिकं पलाशस्य क्षारदत्वा प्रमर्दयेत्॥

कदली दण्ड तोयेन रविपत्र रसेनवा ।
अस्यापिसप्तभिर्लेपैः लोम्नां शातनमुत्तमम् ॥
(शा. सं.)

हरिताल २ भाग, शंखचूर्ण ६ भाग, पलाशक्षार ४ भाग, इनको कदली दंड के रस या आक के पत्तों के रस से मर्दन करके लगाने से बाल उखड़ जाते हैं।

पोस्ता की भस्म १० माशा और जवाखार ५ माशा तथा गोदन्ती हरताल ५ माशा, इन तीनों को एकत्रित करके खूब महीन पीसें। पश्चात् केला के रस में मिला लेप करें। सूख जाने पर बाल उखाड़ डालें। जब फिर बढ़ें तब यही विधि फिर करें।

हरताल ५ टङ्क, जवाखार १ टङ्क, पोस्त की राख १ टङ्क और चूना १ टङ्क, इन सबको पानी में पीसकर जहां लगावेंगे वहां बाल नहीं रहेंगे।

चूना और हरताल सिरका में पीसकर बालों में लगावें तो बाल दूर होंगे।

पलाशभस्मान्वित तालचूर्णैःरम्भाम्बुमिश्रैरुपलिप्यभूयः।
कंदर्पगेहे मृगलोचनानां रोमाणिरोहन्ति कदापि नैव ॥"
(पं. सा.)

पलाश वृक्ष की भस्म, हरिताल का चूर्ण, इनको केले के पानी में मिलाकर लेप करने से बाल गिरते हैं और फिर कभी नहीं उगते।

रम्भाजलेसप्त दिनंविभाव्य
यस्मीहकम्बोर्मशृणं च पश्चात्।
तालेन युक्तं च विलेपनेन
रोमाणि निर्मूलयतिक्षणेन ॥
(पं० सा०)

हरितालं शंखचूर्णं कदलीदलभस्मना।
एतद्द्रव्येणयोन्दर्त्यं लोमशातनमुत्तमम् ॥
(ग. पु.)

हरिताल, शङ्ख चूर्ण, केले की भस्म. तीनों को मिलाकर लगाकर रगड़ने से बाल गिरते हैं।

"सुधा च हरितालश्च शङ्खभस्म मनःशिला।
सैन्धवं समभागंच छागमूत्रेण पेषयेत् ॥
तक्षणोद्वर्तनादेव लोमशातनमुत्तमम् ॥"
(ग० पु०)

चूना, हरिताल, शङ्खभस्म, मनःशिला और सैंधानमक समभाग लेकर छागमूत्र में पीसकर उद्वर्तन करने से याने लगाकर रगड़ने से बाल गिर जाते हैं।

दौर्गन्ध्यहर, कान्तिकर, मुखरोगहर योग–

रक्तचन्दन मंजिष्ठा लोध्रकुष्ठ प्रियंगवः।
वटाङ्कुरा मसूराश्च व्यंगघ्ना मुखकान्तिदाः ॥
मातुलुङ्ग जटासर्पिः शिलागोशकृतोरसः।
मुखकान्ति करोलेपः पिटिकाव्यङ्गकालजित् ॥
लोध्रधान्य वचालेपस्तारुण्य पिटकापहः।
तद्वद्गोरोचनायुक्तं मरिचं मुखलेपनम्।
सिद्धार्थक वचा लोध्रस्सैन्धवैश्च प्रलेपनम् ॥
व्यंगेषुचार्जुनत्वग्वामंजिष्ठा वा समाक्षिकाः।
लेपस्सनवनीतोवा श्वेताश्व खुरजामथी ॥
अर्क क्षीर हरिद्राभ्यां मर्दयित्वा विलेपनात्।
मुखकार्ष्ण्यं शमं याति चिरकालोद्भवं ध्रुवम् ॥
वटस्यपांडु पत्राणिमालती रक्त चन्दनं।
कुष्ठं कालीयकं लोध्रमेभिर्लेपं प्रयोजयेत्।
तारुण्यपिटिका व्यंगा नीलिकादि विनाशनम् ॥
(शा० सं०)

रक्त चन्दन, मंजिष्ठा, लोध्र, कुष्ठ, प्रियंगु बड़ के अंकुर और मसूर ये सब समान भाग लेकर जल से पीसकर लेप करने से मुख का व्यंग नाश करते हुए मुख की कान्ति बढ़ाते हैं।

मातुलुंग की जटा, घृत, मनःशिला, गाय के गोबर का रस, ये सब मिलाकर लेप करने से पिटक और व्यंग नाश होते हैं, मुख की कान्ति बढ़ती है।

लोध्र, धनियां, वच इन सबको समभाग लेकर पानी से पीसकर लेपन करने से वा गोरोचन और मरिच इन सबको पानी से पीसकर लेपन करने से

या श्वेत सर्षप, वच, लोध्र और सैंधानमक इन सबको पानी से पीस कर लगाने से यौवनकाल में मुख पर पैदा होने वाली पिडकाओं का नाश होता है।

अर्जुनवृक्ष की त्वचा के चूर्ण में या सफेद घोड़े के खुर की राख में मधु और नवनीत मिलाकर लगाने से मुख व्यंग का नाश होता है।

आक के दूध और हल्दी दोनों को पीसकर लगाने से चिरकालोदय मुख-काष्ण्र्य शमन होती है।

पके हुए बड़ के पत्र, मालती पत्र, रक्त-चन्दन, कूठ, दारु हरिद्रा, लोध्र, इन सबको पीसकर लेपन करने से यौवन-पिटक, नीलिका, व्यंग नाश होते हैं।

'हस्तिदन्त-मषी कृत्वाछागी-दुग्धं रसांजनम्।
रोमाण्यनेन जायन्ते, लेपात्पाणि तलेष्वपि ॥"
(शा. सं.)

हाथी के दांत का मषी बनाकर रसांजन और बकरी के दूध से मिश्रित करके लेप करने से जिस जगह बाल उखड़ कर नहीं उग रहे हैं उस जगह पर बाल पैदा होते हैं। इसका प्रभाव इतना है कि हाथ अथवा पांव के तलवे में लगाने से वहां भी बाल पैदा होते हैं।

"चतुष्पदानांत्वग्रोमनख शृंगास्थि भस्मभिः।
तैलेनसहलेपोयं रोमसंजननः परं ॥"
(शा. सं.)

चौपाये जानवरों के चर्म, बाल, वा खुर, सींग और हड्डियों की राख बनाकर तैल में मिश्रण करके लेप करने से बाल उगते हैं।

आमला तीन भाग, हरीतकी दो भाग और विभीतकी एक भाग, आम की गुठली में का मगज पांच भाग, इनमें लोह चूर्ण मिलाकर सब को लोह के पात्र में खरल करके एक रात्रि रखकर दूसरे दिन लगाने से अकाल पलित नाश होता है। (शा. सं.)

"विभीत निवगंभारी शिवा शेलुश्चकाकिनी।
एकैक तैल नश्येन पलितंनश्यति ध्रुवम् ॥"
(शा. सं.)

स्वरभेद हरण योगाः—

"शुंठिश्च शर्करा चैव तथा क्षौद्रेण संयुता।
कोकिलस्वर एव स्याद् गुटिका युक्ति मात्रतः ॥"
(ग. पु.)

शुंठी शर्करा और मधु, इन तीनों को मिला कर खाने से कोयल के समान स्वर बनता है।

"विभीतकस्य वैचूर्णं पिप्पल्याः सैंधवस्य च।
पीतं सकांजिकं हन्ति स्वरभेदं महेश्वर ॥"
(ग. पु.)

विभीतकी, पिप्पली, सैंधानमक कांजिक से पीने से स्वर भेद हरण होता है।

"अग्निमन्थो वचावास पिप्पली मधु सैन्धवं।
सप्तरात्र प्रयोगेन किन्नरैरिव गीयते ॥"
(ग. पु.)

अग्निमन्थ, वच, अडूसा, पिप्पली, सैंधानमक, मधु से मिश्रित करके सेवन करने से किन्नरों के समान गाते हैं।

अथ योनि गात्रीकरण समुद्देशः—

प्रौढाङ्गनाया नव सूतिकायाः
श्लथं वराङ्गं न सुखाय यूनाम्।
तस्मान्तरैर्भेषजतो विधेयाः
गाढाः क्रियाः मन्मथ मन्दिरस्य ॥
(पं. सा.) (नि. का.)

निशादि प्रलेप—

'निशाद्वयं पंकज केसरञ्च
निष्पीड्य देवद्रुम तुल्यभागाम्।
अनेनलिप्तं मदनातपत्रं प्रयाति
संकोच मलं युवत्याः ॥'
(पं. सा.) (नि० का०)

दोनों हल्दी, कमल केसर, देवदारु समान भाग लेकर, पीसकर लेप करने से योनि संकोच होती है।

'स धातकी पुष्प फल त्रिकेण
जंबू त्वचासार रसै युतेन।
लिप्तावराङ्गं मधुकेन तुल्यं
वृद्धापिकन्येव भवेत् पुरन्ध्री ।।'
(पं० सा०) (नि० का०)

धाय के फूल तथा त्रिफला को जामुन की त्वचा के रस में पीसकर लेप करने से वृद्धा स्त्री की योनि भी कन्या की योनि के सदृश बनती है।

इन्द्र गोप विधानं —

'साक्षक्रगोपं स्वयमेव पिष्टवा
विलिम्पति स्त्रीकुसुमेषुवेश्म ।
म्राहत्यकाठिन्यमलञ्च गाढं
भवेच्चना त्रास्ति विकल्प सत्ता ।।'
(पं० सा०) (नि० का०)

इन्द्र गोप को पीसकर योनि में लेप करने से उसकी कठिनता दूर होकर गाढ़ बनती है।

'इन्नीधरव्याधिवचोषणानाम्
तुरङ्गगन्धा द्वययामिनीनाम् ।
लेपेननार्याः स्मरवेश्म रन्ध्रम
संकोचयत्याशु हठेन योगः ।।'
(पं० सा०) (नि० का०)

कमल, त्रिकटुक, अश्वगन्ध, दोनों हल्दी, इनको पीसकर लेप करने से स्मररंध्र के संकोच जल्दी होते हैं।

'प्रक्षालितं तुबहुशः पिचुमंदतोयैः
निवत्वचातदनुर्निमित धूप कार्या।
स्त्रीणां नितम्ब कुहरम प्रविमुक्त
गंधपंच्छिलत्य दोपरहितञ्चभवेत्रगाढ़म् ।।'
(शोढलः)

नीम छाल के कषाय से प्रक्षालन करने (अनेक बार) और नीम के काष्ठ से धूप देने से योनि की दुर्गंध और पिच्छिलता नष्ट होती है और गाढ़ बनती है।

"पलाशोदुंवर फलैस्तिल तैल समन्वितैः ।
मधुना योनिमालिपेद्गाढीकरणमुत्तमम् ।।"
(शा० सं०)

पलाश, उदुम्बर के फलों को पीसकर तिल तैल और मधु मिलाकर आलेपन करने से योनि का गाढ़ीकरण होता है।

"माकन्द फल संयुक्तम् मधुकर्पूर लेपनात् ।
गतेपि यौवने स्त्रीणां निर्गाढातिजायते ।।"
(शा० सं०)

आम के फल, कपूर, इनको मधु से मिश्रित करके लेपन करने से वृद्धा भी युवती स्त्री बनती है अर्थात् उसकी योनि बहुत गाढ़ होती है।

"बदरीपत्रसंलेपात् योनिर्भिन्नाप्रशाम्यति ।"
(गरुड़पुराणे)

बेर के पत्तों को पीसकर लेप करने से भिन्न हुई योनि भी गाढ़ बनती है।

"लोध्रतुम्वी फलालेपात् योनिदार्ढ्यं करोति च ।"
(ग. पु.)

लोध्र और कद्दू के फल को मिलाकर पीसकर लेप करने से योनि दार्ढ्य बनती है।

योनिसंस्कार—

"प्रक्षालयेन्निवकषायनीरैर्निशाज्य कृष्णागुरुगुग्गुलूनां ।
धूपेन योनि निशिधूपयित्वानारीप्रमोदं विदधातिभर्तुः ।।"
(पं० सा०)

नीम के कषाय से प्रक्षालन कर हल्दी घी, कृष्ण अगर, गुग्गुलु इन चीजों से योनि को धूप देने से योनि की दुर्गन्ध नाश होती है और सुगन्ध बढ़ती है।

"जातीप्रसूनैः सितसर्षपस्य,
तैलं पचेल्लघ्वनले प्रधानं।
अभ्यंग योगेन सदैवयोनौ
सौभाग्यमाप्नोतिरतेपुरन्ध्री ।।"
(पं० सा०)

चमेली के फूल और सफेद सरसों से मन्दाग्नि पर तैल बना कर अभ्यङ्ग करने से (योनि में) योनि की सौभाग्य होती है।

"निम्बकाष्ठस्य धूपेनधूपयित्वाभगं वधूः।
सुभगस्यात्.........................॥"
(ग. पु.)

नीम की लकड़ी से धूप देने से योनि सुभग होती है।

"माहिषं नवनीतश्च कुष्ठश्चमधुयष्टिका।
सौभाग्यं भगलेपस्यात् पतिर्दासोभवेत्तथा॥"
(ग. पु.)

कुष्ठ और मधुयष्टी को भैंस के नवनीत में पीस कर लेप करने से योनि की शोभा बढ़ती है और उसका पति उसका दास बनता है।

नष्टपुष्पस्य स्त्रीणां पुनः पुष्पीकरणं—

"इन्द्रवारुणिकामूलं, योनिस्तंपुष्पयेदनु।"
(नि. का.)

इन्द्रवारुणी के मूल को योनि में रखने से नष्ट पुष्प स्त्री भी पुनः रजःस्वला होती है।

"पारावत पुरीषञ्चमधुनासंपिवेत् पुनः।
रजस्वलाभवेन्नारी मूलदेवेनभाषितं॥"
(नि. का.)

कबूतर की बीट को मधु से देने से स्त्री रजःस्वला होती है।

"तिलमूलकषायं तु ब्रह्मदंडीय मूलकम्।
पिष्टवात्रिकटुकं चूर्णम् क्वाथयुक्तं च पाययेत्॥
पुष्परोधे रक्तगुल्मे स्त्रीणां सद्यः प्रशस्यते।"
(नि. का.)

तिल के मूल और ब्रह्मदण्डीमूल के कषाय में त्रिकटुक चूर्ण मिलाकर पिलाने से पुष्पावरोध और रक्तगुल्म नष्ट होते हैं।

स्तनपाटन प्रयोगाः—

मातङ्गकृष्णा मयवाजिगंधा,
वचायुताः पर्युषितांबुमिश्रा।
हयारिपत्रीनवनीत योगात्,
कुर्वन्तिपीनमकुच कुम्भयुग्मं॥
(पं० सा)

गज पिप्पली, अश्वगन्धा, वच इनको पर्यु... जल से पीसकर हयमार के पत्तों को नवनीत मिलाकर लेप करने से कुच कुम्भ समान बढ़ते हैं।

तैलं हठात् दाडिमकल्कसिद्धं,
सिद्धार्थजलपन तो नितान्तं।
नारीस्तनैचारुतटोसुपीनो,
कुर्याद् सौयोगवरस्सदैव॥
(पं० सा०)

अनार के कल्क से सिद्ध हुआ सर्षप तेल लेप करने से स्तन मोटे और ऊंचे होते हैं।

महिषी म्लानकं कुष्ठं हयगन्धं च पिप्पली।
वचा वृद्धि करोलेपः स्तनयोःकर्णयोरपि॥
(शि० र० र० क०

कुष्ठ, अश्वगंध, पिप्पली, वचा, इन द्रव्यों पीस कर भैंस के नवनीत में मिलाकर लेप क... से स्तन-वृद्धि होती है।

वलाहस्तिवला चूर्णं माहिषं यक्षणं वचा।
कुष्ठं लेप करं पीनंकुरुतेयौवन स्त्रियम्॥
(शि० र० र० क

वला, और हस्तिबल इनके चूर्ण को भैंस लौनी (नवनीत) में मिलाकर लेप करने से यु... स्त्री के समान कुच होते हैं।

मुंडी चूर्णं कषायेण, युतंतैलं विपाचितम्।
पतितंयौवनंनश्येत्, कुम्भवत्तिष्ठतिध्रुवं॥
(शि० र० र० क

मुण्डी चूर्ण कषाय से सिद्ध हुआ तेल ल... से वृद्धा के कुच भी युवती स्त्री के समान रहते

मरिचसैन्धवकृष्णातगरं वृहती फलं ।
अपामार्गस्तिलाकुष्ठंयवामाषाश्च सर्षपाः ॥
अश्वगंधाच तच्चूर्णं मधुनासहयोजयेत् ।
अस्यसंततलेपेन मर्दनाच्च प्रजायते ॥
लिङ्ग वृद्धिस्तनोत्सेध संहतिर्भुज कर्णयोः ॥
(शा० सं०)

मरिच, सैन्धानसक, पिप्पली, तगर, वृहती फल, अपामार्ग बीज, तिल, कूठ, जौ, उडद, सरसों, अजगन्ध, इन सबको चूर्ण करके मधु से मिश्रित करके मर्दन करने से लिंग वृद्धि और स्तन वृद्धि होती है।

दन्त संस्कार विधि—

शंखमामलकं पत्रं धातक्याः कुसुमानि च ।
पिष्ट्वा तत्पयसा सार्धं सप्ताहं धारयेन्मुखे ॥
स्निग्धाः श्वेताश्चदन्ताश्च भवन्तिविमलप्रभाः ।
(ग० पु०)

शंख के चूर्ण, आमले के पत्ते, धाय के फूल, इन सब को दूध से पीसकर दांतों को रगड़ने से यानी मुंह में धारण करने से दांत चिकने, सफेद और कान्तियुक्त बनते हैं।

"यः कुष्ठ चूर्णं मधुना घृतेन पिकाक्षवी जान्वितमत्तिनित्यं ।
मासैकमात्रेण मुखं तदीयं गंधायते केतकि पुष्पतुल्यं ॥"
(गं. सा.)

कुष्ठ के चूर्ण, पिक, और अदि बीज मधु और घृत मिलाकर एक मास तक प्रति दिन सेवन करने से उस के मुंह से केवड़े का गन्ध निकलता है।

चूर्णं वचाकेसरकृष्णकानां प्रातर्दिनान्ते परिलेपितास्त्री ।
अर्ध मासेनमुखस्य वासः कर्पूरतुल्योभवति प्रकामम् ॥
(शि. र. र. क.)

वच, केशर तथा पिप्पली का चूर्ण करके सुबह और शाम को दोनों वक्त लेप करने से पन्द्रह दिन में मुंह से कपूर के समान गन्ध आती है।

सिद्धार्थ वीजं विजया विलं च क्षीरेणपिष्टं प्रविलेपनं च ।
ससाहमात्रेण मुखस्य नैल्यं, निहन्ति············॥"
शि. र. र. क.)

सरसों और भांग के बीज, इनको दूध से पीस कर एक सप्ताह तक प्रति दिन लगाने से मुंह की दुर्गन्ध का नाश होता है।

अब तक जो बाह्य और आभ्यन्तर सौन्दर्य के लिए योग लिखे गये हैं वह पुराण तन्त्र और आयुर्वेद के ग्रन्थों में से चुने गये हैं। ये सब प्राचीन पद्धति के सौंदर्यवर्धक हैं। प्राचीन काल के सौन्दर्यवर्धक योग सनातन के सौन्दर्यवर्धक द्रव्यों से हजार गुणा श्रेष्ठ हैं, पाठक महाशय इनको उपयोग करके उनसे लाभ उठायें।

—आयुर्वेदालंकार, आयुर्वेद सुधाकर, वैद्यतीर्थ, डा. प्रतापगिर वेंकटसुब्बय्य शर्मा L. A. M. N. D. आन्ध्र सरकार की आयुर्वेद निमित्त आर्थिक परामर्श दात्री समिति के सदस्य, अ० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की केन्द्रीय प्रबन्ध समिति के सदस्य, अष्टांग आयुर्वेद निलयम, पेटा, कर्नूल।

:: वे पति कैसा चाहती हैं। ::

८. ईरान—साहसी एवं भ्रमणशील।

९. अरब—साहसी, वीर, बलिष्ठ एवं पर्वताचारी।

१०. अफ्रीका—वनवासी।

११. तिब्बत—धर्मभीरु, ईश्वर-भक्त एवं विद्वान्।

१२. वर्मा—शिल्प कला कुशल।

:: पृष्ठ ४६६ का शेषांश ::

१३. चीन—दृढ़-प्रतिज्ञ, वीर, चतुर, व्यवसाय कुशल।

१४. चीन—चित्रकार।

—श्री. आचार्य डाक्टर महावीर प्रसाद रंजन, विद्यावाचस्पति, लहेरिया सराय (दरभंगा)

स्त्री सौन्दर्य और ब्यूटी प्रोडक्ट्स

श्री कविराज हरिकृष्ण सहगल

नारी !

> वह चान्द चढ़ा, रात का दामन सरका,
> पी, ऐश का यह वक्त कहां फिर बाबा।
> पर यह भी रहे ध्यान, हर एक सागर पर,
> हैं ज़ेरे ज़मीन चान्द के टुकड़े सदहा ॥
>
> (उमर खय्याम की एक रुबाई)

वैद्यराज लोलिम्बराज के शब्दों में सुनिये— कदली सी जङ्घा, पीन कुचा, चौड़ी छाती, शंख सी ग्रीवा, धनुष जैसी टेढ़ी भ्रू, चन्द्रमुखी, सुन्दर दांतों वाली स्त्री बड़े पूर्व पुण्यों से प्राप्त होती है। ऐसी स्त्री के आलिंगन मात्र से पित्तज्वर (दाह) की शान्ति होती है।

शास्त्र में लिखा है कि मोटे कुचों वाली, पतली कमर की, गम्भीर नाभि वाली, गम्भीर हृदय की, काले बालों वाली, चन्द्रमुखी, हृदय रोमावली से सुशोभित, ऐसी स्त्री जिसकी बगल में हो, वह दुख समुद्र को नष्ट कर देती है। इससे बढ़कर दाह-नाशक औषधि नहीं।

नारी जानती है कि पुरुष को कैसी नारी प्रिय होती है। यूरोप की नारी कमर को पतला करने के लिए कार्सेट पहनती हैं। ब्रह्मा की स्त्रियां ग्रीवा को पतला और लम्बा करने के लिये धातु का गोलाकार भूषण पहनती हैं। अफ्रीकन स्त्रियां नितम्बों को भारी करने के लिए महिनों कोई शारीरिक परिश्रम का काम नहीं करती।

स्त्री की सौन्दर्य प्राप्ति की इच्छा स्वभाविक है, परन्तु यह इच्छा कभी उन्माद तक पहुँच जाती है। प्रतिदिन दांतों की सफाई, नेत्रों में काजल, बालों को संभालना, उनमें फूल बांधना आदि स्वाभाविक इच्छा में आते हैं। परन्तु इस भय से कि स्तनों का सौन्दर्य नष्ट न हो बच्चे को जन्म से ही अपना दुग्ध न देना उन्माद है।

चित्र १६१

अमेरिका के पत्र न्यूयार्क टाइम्स में दि: २०-१२-५८ को एक सूचना छपी थी कि २००० वर्ष व्यतीत हो जाने पर अब संसार को मिश्र की मलिका क्लोपैटरा के सौन्दर्य का रहस्य ज्ञात हुआ है। मिश्र के खण्डरों की खुदाई से भूमि में २००० वर्ष से दबे कुछ पत्र मिले हैं। इनमें कुछ पत्र साम्राज्ञी क्लोपैटरा के चिकित्सक के भी हैं। यह चिकित्सक उस समय का ब्यूटी ऐक्सपर्ट भी था। वह लिखता है कि क्लोपैटरा सौन्दर्य के निखार के लिये कुछ प्रकार के मगजों (मगज के अर्थ मस्तिष्क और बीजों की गिरियां दोनों ही हैं) का प्रयोग करती थी। मलिका इन मगजों को जल में डालकर घन्टों स्नान किया करती थी।

इसी मिश्र देश की सुन्दरियां मुख सौन्दर्य में वृद्धि के लिए नील नदी के जल घोड़ों की वसा को, वैसलीन और क्रीम की तरह मुख पर मला करती थीं।

मिश्र का एक अंग सूडान है। नील नदी का उद्‌गम स्थान यहीं है। इस सुडान देश की युव-

तियां सौन्दर्य को निखारने और उसे देर तक बनाये रखने के लिए कछुओं का गर्म रक्त पिया करती हैं।

स्त्री में यह एक स्वाभाविक इच्छा है कि उसका सौन्दर्य निखरा हो और देर तक बना रहे। बालों में श्वेतता इस स्त्री सौन्दर्य के चलायमान होने का चिह्न है। स्त्रियां इस चिह्न से डरती हैं। वह इन श्वेत बालों को निकाल देती हैं व इन्हें काला करने का यत्न करती हैं। यूरोप के ब्यूटी एक्सपर्टों ने कई प्रकार की हेयर डाइयां बनाई हैं। इनके लगाने से इच्छानुसार बालों के रंग बदल जाते हैं तथा वह घुंघराले आदि हो जाते हैं।

बालों को लम्बा करने वाले तैल आते हैं और अब तो नकली बाल भी लगाये जाते हैं। भारत में अनेक स्त्रियां जिनके बाल छोटे हैं यह नकली बाल भी लगाती हैं तथा नकली बालों की चोटियां पहनती हैं।

चेहरे के फेस पौडर और फेस क्रीमों के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। दिल्ली में हजारों कारखाने इन्हें बनाते और विक्रय करते हैं। परन्तु दुःख की बात यह है कि इनके निर्माण में सब ऐलोपैथिक कैमिकल्स ही बरते जाते हैं। देश की स्वतंत्रता के बाद आयुर्वेदिक योगों वाले फेस पाउडरों और फेस क्रीमों को जनता के सामने आ जाना चाहिए था। आयुर्वेदिक निर्माताओं और फार्मेसियों को इस ओर ध्यान देना चाहिए था। ब्राह्मी आमला हेयर आयल से आगे बढ़कर सुन्दर सुगन्धित आयुर्वेदिक तैलों का निर्माण करना चाहिए था और आयुर्वेदिक ग्रन्थों की सहायता से आयुर्वेदिक फेस क्रीमों को बनाना चाहिए था।

स्त्रियों ने सौन्दर्य के निखार के लिए स्लीवलैस (बिना बाजू के) नंगी छातियों और नंगे पैर के जम्पर पहनने आरम्भ किए हैं। दिल्ली में स्तनों की ऐसी बाडियां बनाई गई हैं कि उन्हें पहन लेने से स्तनों के छोटे तथा ढलके होने का दोष छिप जाता है।

इन बडियों के अलावा कुछ लोशन भी हैं जिन्हें मलने से स्तन दृढ़ हो जाते हैं। स्त्रियां स्... के लिए बड़े कड़े और उन्नत स्तनों को आवश्यक समझती हैं। आज इस ब्यूटी (सौंदर्य) को बढ़ाने वाले करोड़ों रुपये के उपकरण विदेशों से आते हैं। अगर आयुर्वेदिक औषधि-निर्माता जागृत हो जायें और वह सुपारी पाक और अशोकारिष्ट निर्माण से आगे बढ़ें तो यह करोड़ों रुपया जो विदेशों में जाता है बचाया जा सकता है। हम इसके कुछ नमूने उपस्थित करते हैं।

स्तन वर्द्धन—(१) अनार के छिलकों को बारीक पीसकर सरसों के तैल में मिलाकर स्तनों पर मालिश करनी चाहिए।

वक्तव्य—उपरोक्त योग को इस विधि से न बना अगर तैल को गरम करके उसमें आम के अचार का आम डालकर साफ कर लिया जाये व वनस्पति तैलों के निर्माण का सहारा लेकर श्वेत क्रीमवत् कर लिया जाये तथा इसमें अनार के छिलकों का बारीक पौडर व घनसत्व मिला लिया जाये तो एक क्रीम व तैल बन सकता है। इसमें उचित सुगन्ध का समावेश कर बाजार में लाया जा सकता है और हम आयुर्वेद को बढ़ावा दे सकते हैं।

(२) बादाम की गिरी ५ दाना, गोंद कतीरा ६ माशा, निशास्ता ६ माशा, मिश्री १ तोला, कूटछान कर चूर्ण करें। एक-एक तोला प्रातः सायं दें।

वक्तव्य—उपरोक्त योग को मनमोहक ...लेटों के रूप में बदला जा सकता है और यह आयुर्वेदिक स्तनवर्द्धक चौकलेट अपने सुन्दर रूप और स्वाद के साथ प्रत्येक युवती के पर्स तक पहुंच सकते हैं तथा आयुर्वेदिक औषध-निर्माताओं की आमदनी में लाखों रुपये की वृद्धि हो सकती है।

इस योग के समान ही निम्न लिखित योग को भी स्वादिष्ट चौकलेटों का रूप दिया जा सकता है—

बादाम गिरी ५ दाना, कद्दू की गिरी, तरबूज
की गिरी ३-३ माशा, दूध का अर्क १२ तोला (दूध
से पौडर बनाया जा सकता है) इसमें शर्बत बनफशा
तोला मिलाकर, ऐसी दो मात्रायें प्रातः सायं
दिया करें।

खोज और आविष्कार के बिना कोई विज्ञान
जीवित नहीं रह सकता। आयुर्वेदिक औषधि निर्मा-
ताओं को शीघ्र इस ओर ध्यान देना चाहिए।
स्तन दृढ़ करने के लिए एक योग इस प्रकार है—

नसपाल १ सेर को १६ सेर पानी में पकावें
सेर शेष रहने पर छान लें, आधा सेर तिल
तैल में पकावें और स्तनों पर मलें।

अगर नसपाल का श्वेत घनसत्व बना लिया जाये
और तैल को आधुनिक विधि द्वारा अथवा उपरोक्त
देशी विधि से साफ कर लिया जाये तथा उसे कोई
...र रंग और सुगन्ध दी जाये तो निश्चय ही
आधुनिक नारियां इसका प्रयोग प्रसन्नता से करें।
और यदि उपरोक्त तरीके से बनाया जाये तो इस
तैल का रूप देखकर व गन्ध को सूंघकर पढ़ी लिखी
युवती तो क्या अनपढ़ी देहाती नारी भी स्तनों पर
मलने से इनकार कर देगी।

इस समय में ऐसी औषधि की भारी मांग है
जो मोटापे को कम कर सके। इसके लिए त्रयोदशांग
गुग्गुलु, दशांग गुग्गुलु, त्र्यूष्णादि लोह फार्मेसियां
बनाती हैं। परन्तु न जाने क्यों, इससे लाभ नहीं
होता। मोटापे से पीड़ित स्त्रियां, घृत, दूध
निशास्ता छोड़कर महीनों सब्जियों पर रहकर शरीर
...हा तो कर लेती हैं, परन्तु पुनः घृत दुग्ध
आरम्भ करने पर वही मोटापा लौट आता है।

ऐलोपैथों ने थाईराइड एक्सट्रेक्ट की गोलियां
बनाई हैं वह भी फेल हो चुकी हैं। आयुर्वेद इस
मेद धातु को कम कर सकता है। इसके लिए चिकि-
त्सकों और फार्मेसियों का सहयोग आवश्यक है।
अगर फार्मेसियां मोटापा कम करने वाले किसी
सफल योग के लिए ५-१० हजार रुपये के इनाम
का ऐलान करें तो हो सकता है वह योग मार्केट में
आ सके जो आयुर्वेद के लिए भी प्रशंसा प्राप्त करे।
जब ऐलोपैथिक फार्मेसिस्ट फार्मेसियों के लिए लाखों
रुपया देते हैं तो आयुर्वेदिक फार्मेसिस्ट भी धर्म
की दुहाई देकर मुफ्त में योग प्राप्त करने की इच्छा
को छोड़कर अवश्य खर्चा करके फार्मूले प्राप्त करने
का यत्न करें। उपरोक्त पंक्तियां लिखने से मेरा
अभिप्राय यह नहीं कि मेरे पास कोई योग है और
मैं उसे बेचना चाहता हूं। यह तो एक उसूल की
बात बताई है। आयुर्वेदिक फार्मेसिस्टों को आलस्य
त्याग कर आयुर्वेदिक ब्यूटी प्रोडक्टस का भी
निर्माण करना चाहिए।

यह लेख लिखा जारहा था कि अभी मेरी दृष्टि
से एक सौन्दर्यबर्द्धक खाद्य पदार्थ निकला
है। आयुर्वेद में कौन कौन से खाद्य पदार्थ हैं इस
पर हम बाद में विचार करेंगे, अभी आपके सामने
विदेशी कैमिस्टों की एक अजीब इश्तहारबाजी को
रखता हूँ। विदेशी कैमिस्ट और औषधि निर्माता
केवल औषधियां ही नहीं बनाते वह खाद्य पदार्थों
का उत्पादन भी करते हैं और बिटामिन बेचते हैं।

लेखक का कहना है कि बलदायक पौष्टिक
भोजन से त्वचा कोमल और साफ होजाती है,
सौन्दर्य बढ़ता है, बाल नरम और चमकीले हो
जाते हैं तथा नेत्रों में ज्योति बढ़ती है।

अगर आपकी त्वचा शुष्क और मैली रहती है
तो प्रतिदिन नारङ्गी के रस का एक गिलास पिया
करें। इसमें अम्ल रस होता है। (आयुर्वेद कहता
है कि षड्रस भोजन कीजिये। षड्रस भोजन करने
वाले को किसी नारङ्गी रस विशेष की आवश्यकता
नहीं। नारङ्गी का रस विटामिन सी के लिये है।
मुरब्बा आमला, च्यवनप्राश तथा निम्बू का अचार
भोजन में रखिये। सब ठीक रहेगा)।

विटामिन सी को सौन्दर्यबर्द्धक विटामिन कहा
जाता है। विटामिन सी के इन्जैक्शन लेना

शेषांश पृष्ठ ५०८ पर।

इच्छित सन्तति

श्री डा० ताराचन्द लोढ़ा

अक्सर आयुर्वेदिक औषधियों के विषय में लिखा मिलता है कि अमुक औषधि सेवन से बलवान, आयुष्मान, मेधावी, वीर तथा अमुक-अमुक गुणों वाला पुत्र उत्पन्न होगा। प्रश्न होता है क्या ऐसा सम्भव है? क्या लिंग परिवर्तन भी सम्भव है? दूसरे शब्दों में क्या मनचाही सन्तान सम्भव है और क्या आयुर्वेद के साथ साथ आधुनिक विज्ञान भी इसे इसी रूप में स्वीकार करता है तथा यदि यह सब सम्भव भी है तो किन किन परिस्थितियों में किन-किन साधनों से-किस तरह? आज हम जब चारों ओर दीन-हीन, मलीन, आलसी, अवगुणी, दुर्गुणी, निर्बल, आत्मघाती, देश-द्रोही एवं अकर्मण्य सन्तान देखते हैं तथा जब देश के उत्थान की आवश्यकता अनुभव करते हैं तो इस प्रश्न का सविस्तार उत्तर जानना अति आवश्यक हो जाता है। जब ऐसी (वीर, धीर, कर्मण्य) सन्तति सम्भव है तब क्यों ऐसी दीन-हीन, अकर्मण्य, देश घातक सन्तानों की भरमार हो? राम-कृष्ण, भीमार्जुन न सही क्या राणा प्रताप और शिवाजी भी पैदा नहीं हो सकते जो अपनी जाति, देश, धर्म, संस्कृति की रक्षा में समर्थ हों एवं सद् विद्याओं को समुन्नत कर सकें।

इच्छित सन्तति पैदा होना विज्ञान सम्मत बात है। उन उन परिस्थितियों, साधनों, नियमों का इस लेख में तुलनात्मक ढंग से विचार किया जावेगा, जिन पर सावधानी से नजर रखने एवं पालन से ऐसा सम्भव है। प्रत्येक के ऐसी सन्तति क्यों नहीं पैदा होती? इसका कारण सर्व साधारण में इस विषय के ज्ञान का अभाव ही नहीं पूर्णाभाव है। जिस समय सर्व साधारण को यह सब ज्ञात था उस समय निश्चय ही वर्तमान की निराशाजनक स्थिति न थी। उस समय के पुरुषों के कार्य इतिहास प्रसिद्ध हैं और इन्हीं नर पुंगव, वीर केसरी, ज्ञानी-ध्यानी, तपस्वी-पंडित, कारीगर, त्रिकालदर्शी अपनी सन्तान के बलपर ही यह देश एक कवि के शब्दों में 'जगद् गुरु, जग जन्नत व सोने की चिड़िया' कहलाया। इच्छित सन्तान के दायरे में इच्छित लिंग ही नहीं बल्कि इच्छित रूप-रंग, आकार-प्रकार, प्रकृति-प्रवृति, गुण-अवगुण, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य और चरित्र आदि भी आ जाते हैं। इस प्रश्न पर विस्तृत विचार करने पर लेख पुस्तक का रूप ले लेगा अतः अति संक्षेप में ही विचार होगा। आयुर्वेद शास्त्र में लिखा है कि—

> प्रीतिर्बलं सुखं वृत्तिविस्तारो विपुलं कुलम्।
> यशो लोकाः सुखोदर्कास्तुष्टिश्चापत्य संश्रिताः॥
>
> —चरक

इसीलिए मनुष्य सन्तान की इच्छा करता है और खासकर पुत्र की। सन्तान है क्या? इस विषय में लिखा है कि—

> अन्तःकरण तत्वस्य दम्पत्योः स्नेह संश्रयात्।
> आनन्द ग्रन्थिरेकेयमपत्यमिति बध्यते।

अर्थात् दम्पति के गाढ़ स्नेह के परिणाम में उन दोनों के अन्तःकरण को बांधने वाली अलौकिक आनन्द रूपी डोरी, सन्तति पुकारी जाती है। हम रामायण में पढ़ते हैं कि महाराज दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ कर चारों राजकुमारों की प्राप्ति की थी एवं महाभारत में पढ़ते हैं किस प्रकार अभिमन्यु ने गर्भावस्था में ही बाप द्वारा कथा सुनकर चक्र-व्यूह का तोड़ना जान लिया था एवं ये वर्णित व्यक्ति अपनी मां व अपने पिता तुल्य ही थे। इससे मालूम होता है कि सन्तान में जहां माता-पिता का शारीरिक प्रभाव पड़ता है वहां बाहिरी साधनों का, संस्कारों का, आचार व्यवहार का भी खूब ही प्रभाव पड़ता है। याने दूसरे शब्दों में सन्तान की उत्पत्ति में माता-पिता तो मुख्य कारण हैं ही एवं उनकी प्रतिच्छाया सन्तान

में अवश्य दृष्टिगोचर होती ही है किन्तु विशेषता उत्पत्ति हेतु विशेष संस्कारों एवं साधनों का प्रभाव भी प्रत्यक्ष हुए बिना नहीं रहता। महर्षि सुश्रुत स्पष्ट लिखते हैं—

आहाराचार चेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ।
स्त्री पुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोपितादृशः॥

शा. अ. २-४८

अर्थात् जिस प्रकार के आहार-आचार व चेष्टाओं को लेकर स्त्री व पुरुष सम्भोग करते हैं उसी प्रकार का पुत्र या पुत्री (संतति) भी उन्हें प्राप्त होता है। किसी और ने भी कहा है—

गर्भवती स्त्री को पुरुष, जस उपदेश सुनाय।
तस गुण आवे पुत्र में, स्मृतिपुराण अस गाय॥

दम्पत्ति यदि चाहें तो पुत्र या कन्या, काला या गोरा, हीनांग या सर्वांग पूर्ण, सुशील या कुशील, वैद्य या इञ्जीनियर, गणितज्ञ या ऐतिहासज्ञ, स्वरूपवान या कुरूप, मरियल या बली, धार्मिक या कंस-रावण जैसा पापी अर्थात् जैसा चाहे वैसा ही उत्पन्न हो। उत्तम सन्तान हेतु महर्षि सुश्रुत कहते हैं—

ध्रुवं चतुर्णां सान्निध्याद् गर्भः स्याद्विधिपूर्वकः।
ऋतु क्षेत्राम्बु बीजानां, सामग्र्याद कुरो यथा॥

अर्थात् चार पदार्थों (ऋतु–गर्भ स्थिति योग्य समय, बीज–निर्दोष शुक्र-रज, अम्बु-अन्न रस, क्षेत्र-गर्भाशय) के संयोग से (विधि पूर्वक सामीप्य से) गर्भोत्पत्ति होती है। सुश्रुत फिर कहते हैं–

एवं जाता रूपवंतः महासत्वश्चिरायुषः।
भवन्त्यृणस्य मोक्तारः सत्पुत्रः पुत्रिणोहिताः॥

—सु० शा० २-३४

अर्थात् उक्त चारों पदार्थों के संयोग से रूपवान, सत्यवान, दीर्घायु, विविध ऋणों से मुक्त करने वाला श्रेष्ठ पुत्र (सन्तान) उत्पन्न होता है।

हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इच्छित सन्तान लाभ के लिए निम्न तीन मुख्य बातें होना परमावश्यक हैं—(१) उत्तम क्षेत्र व बीज अर्थात् अति गुण सम्पन्न, स्वस्थ, सुप्रजनन की क्षमता युक्त माता पिता (२) मैथुन सम्बन्धी ज्ञान की पर्याप्त जानकारी (३) विशेष गुण व प्रकार की प्राप्ति हेतु विशेष प्रकार के साधन एवं संस्कार व उनके प्रयोग की दिशा एवं उचित परिस्थितियां। इन बातों पर संहिता ग्रंथों में पूर्णतया विवेचन यथास्थान सम्पूर्ण रूप में उपलब्ध है। विश्व को आयुर्वेद की यह एक अनुपम देन है जो अन्य पद्धतियों के पहले ही नहीं, काफी पहले, आयुर्वेदाचार्यों ने संसार को प्रदान की।

सुप्रजनन की क्षमतायुक्त माता पिता—

स्त्री के रज एवं पुरुषों के शुक्र के मेल से ही सन्तान सम्भव है। कहा है—

'शुक्र शोणित जीव संयोगे, कुक्षिगते गर्भ संज्ञा भवति।'

—चरक

कामान्मिथुन संयोगे शुद्ध शोणित शुक्रजः।
गर्भः संजायते नार्यां स जातो बाल उच्यते॥

—भावप्रकाश

इसलिए यह आवश्यक है कि सन्तानोत्पादन के इच्छुक माता पिताओं में सुप्रजनन की क्षमता हो एवं वे मन तथा शरीर से स्वस्थ हों क्योंकि जैसे माता-पिता होंगे अर्थात् जैसा खेत व बीज होगा फल भी वैसा ही होगा इसलिए माता-पिता हृष्टपुष्ट योग्य हों। हमारे चिकित्सा शास्त्रों एवं धर्मशास्त्रों के अनुसार भी इच्छित सन्तान प्राप्ति के लिये माता-पिता योग्य उम्र वाले एवं अन्यान्य आवश्यक गुणों वाले हों। निर्बल और रोगी माता-पिता कैसे उत्तम सन्तान की आशा कर सकते हैं? विवाह के समय इस बात की ओर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है कि दम्पति नीरोग एवं संक्रामक रोगरहित हों। उनके सम्बन्धियों में भी किसी को कोई ऐसा रोग न हुआ हो जिसका प्रभाव अगली सन्तान पर पड़ने की सम्भावना हो। विवाह पर ही अगली सन्तान एवं जाति का भविष्य निर्भर है। विवाह

तुल्य गोत्र में कभी न होना चाहिये। लिखा है कि—

'Who ever wishes to obtain noble breed must marry from a foreign country, just as one will obtain good fruit from a branch grafted into a foreign trunk.'

और भी देखिये—

Marry from among strangers so that thou dost not beget a weak offspring.'

पास-पास के सम्बन्धियों में विवाह से सन्तान उत्तम नहीं होती। चरक में भी स्पष्ट लिखा है—

'अतुल्य गोत्रस्य रजः क्षयान्ते······ ।'

—चरक

'असपिण्डाच या मातुर सगोत्राच या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातिनांदारकर्मणि मैथुनैः॥

—मनु०

और भी—

'अतुल्य गोत्रां वृष्णां च ·············।

और भी—

'Choice of a mate must take into account'—Ideal Birth. तुल्य-गोत्रता कुलज दोष प्रवृत्ति को बढ़ाता है। यदि माता-पिता निर्बल या मानसिक रूप से रुग्ण होंगे तो सन्तान भी मानसिक रूप से विकृत होगी एवं निर्बल व अल्पायु होगी। किसी ने ठीक लिखा है—Marriage has a beneficial influence on the duration of life and in many ways on the birth of offspring. साथ ही विवाह केवल मैथुनानन्द के लिये ही न किया जावे बल्कि मैथुन भी सन्तानार्थ ही किया जावे ताकि इच्छित सन्तान प्राप्त हो।

(२) उत्तम सन्तान चाहने वालों की विवाह की उम्र २५ वर्ष (पुरुष) व १६ वर्ष (स्त्री) बतलाई गई है। यदि उम्र इससे कम हुई तो सन्तान दुर्बल व अल्पायु होगी एवं उत्तम सन्तान की आशा कदापि नहीं की जा सकती। जब तक दोनों की जननेन्द्रियां एवं शरीर पूर्णरूप से परिपक्व न होंगे तो जो गर्भाधान होगा वह कमजोर व अल्पायु सन्तान देगा। लिखा है कि—

ऊन षोडश वर्षायाम प्राप्तः पंचविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥
जातो वा न चिरं जीवेत् जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यंत बालायां, गर्भाधानं न कारयेत् ॥

—सुश्रुत

अर्थात् १६ वर्ष की अवस्था से छोटी स्त्री में यदि पच्चीस वर्ष की अवस्था से छोटा पुरुष गर्भाधान करे तो वह गर्भ कुक्षि में ही विकार को प्राप्त होकर खण्डित हो जाता है और यदि पूरा होकर बालक जन्म लेवे भी तो दीर्घायु नहीं होता और जो जीवे भी तो दुर्बल इन्द्रियों वाला ही रहता है। इसलिये छोटी अवस्था वाली स्त्री में गर्भाधान नहीं करना चाहिये। वाग्भट्ट भी कहते हैं—

'वीर्यवंतं सुतं सूते ततो न्यूनाब्दयोः पुनः।
रोग्यल्पायुरधन्यो वा गर्भो भवति नैव वा॥

(३) वीर्य के अणुओं की परीक्षा करने पर इनमें chromosomes (पितृ सूत्र) पाये गये हैं इन पर जेन (genes) नामक अति सूक्ष्म परमाणु चिपके रहते हैं। इसी प्रकार के chromosomes रज में भी होते हैं। ये chromosomes (कृष्ण सोम) और Genes ही कुल क्रमागत संस्कारों को माता-पिता से सन्तान में ले जाते हैं। कुल में यदि कोई रोग हो, दोष हो तो ये उसको सन्तान में ले जाते हैं। इस प्रकार माता-पिता के गुणावगुण, स्वभाव आसानी से सन्तान में पहुँच जाते हैं। प्रत्येक भ्रूण अपने माता-पिता से मातृक-पैतृकजनों का एक अद्भुत संयोग प्राप्त करता है जिन्हें उसके माता-पिता ने भी अपने माता-पिता से प्राप्त किया था। इस प्रकार यह क्रम वंश परम्परागत चलता ही रहता है। भारतीय महर्षि त्रिकालदर्शी थे इसलिये इन सब बातों का विचार कर वे पहले ही संक्षेप में कह गये हैं कि—

सुरूपा यौवन स्थाया, लक्षणैर्या विभूषितम् ।
वयोरूपगुणो पेतां, तुल्य शीलांकुलान्वितम् ॥
—चरक

संक्षेप में दोनों को ही स्वस्थ, सुन्दर, सुडौल प्रसन्न चित्त, व्यसन रहित होना चाहिए । इसी कारण वंश व आनुवंशिक प्रभाव का महत्व माना गया है । माता-पितानुरूप सन्तान के विषय में हमारे यहां बच्चे-बच्चे को ज्ञान था। सूरदास बलराम के मुंह से कृष्ण को कहलवा रहे हैं—

गोरे नन्द यशोदा गोरी तुम कत श्याम शरीर······।

इनके अतिरिक्त इसका भी ध्यान रखें कि—

पिय नागर मूरख लिया, तियनागर पिय क्रूर।
मन बच उसमें जानियो, होय प्रीति अति दूर ॥

और यदि उनमें परस्पर प्रेम न हुआ तो सन्तान उत्तम नहीं होसकती क्योंकि प्रेम गुणों का वाहक माना गया है। डा० फाऊलर के अनुसार love transmitting agent है। इसके द्वारा ही गुण सन्तान में उतरते हैं। शरीरस्थ प्रत्येक ज्ञान तन्तु को प्रेम उत्तेजित करके उनमें संजीवनी शक्ति उत्पन्न कर देता है। प्रेम ही सन्तान को सुन्दर एवं शारीरिक व मानसिक शक्ति सम्पन्न बनाता है एवं समस्त दिव्य गुण प्रेम द्वारा ही बच्चे में सरलता-पूर्वक उतरते हैं। इसलिए दम्पति को एक मन-एकलक्षी-एक भावना वाले प्रज्ञापराध से रहित एवं परस्पर एकाकार की तरह होना चाहिए। संतान एक तरह से दम्पति की प्रतिरुप होती है और होना भी चाहिए—

'अङ्गादंगात् सम्भवति हृदयादधिजायते ।
आत्मा वै पुत्रनामासि··············॥'

मैथुन सम्बन्धी ज्ञान—

इच्छित सन्तान प्राप्ति हेतु इच्छुकों को निम्न जानकारी अति आवश्यक है। लिखा है कि—

शरीरे जायतेनित्यं, देहिनः सुरतस्पृहा ।
अव्यवायान्मेह मेदावृद्धिः शिथिलतातनोः ॥
—भावप्रकाश

इस श्लोक में मैथुन की आवश्यकता बतलाई गई है कि यौवनकाल में स्त्री पुरुषों के शरीर में मैथुन करने की बलवती इच्छा होती है। उसकी पूर्ति न करने से मेदवृद्धि प्रमेहादि रोग (Genito-urinary troubles) होते तथा शरीर शिथिल हो जाता या रहता है। मैथुनाभिलाषी (पर करने में असमर्थ) अविवाहित स्त्री तथा पुरुषों का अलसाया शरीर एवं अन्य प्रकार से गिरा स्वास्थ्य इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। यह इतनी वेगवती एव प्रबल लालसा या इच्छा है कि कुछ अपवादों को छोड़कर इसका रोकना असम्भव है तथा अनुचित भी है। इसकी प्रबलता तथा अप्रतिहतता के प्राचीन शास्त्रों में कितने ही ऐसे उदाहरण हैं कि वहां ज्ञानी ध्यानी, धर्मात्मा, तपस्वियों एवं सत्पुरुषों ने भी अनुचित कार्य कर डाले हैं। जैसे—राजा इन्द्र का गौतम नारी अहिल्या से सम्भोग, भगवान् विष्णु का वृन्दा से सम्भोग आदि-आदि ऐसे हजारों उदाहरण हैं। आज पत्रों में आये दिन बलात्कार एवं अपहरण की नई-नई सूचनाऐं बराबर पढ़ते रहते हैं।

प्रकृति का नियम है कि जो चीज जिस कार्य हेतु निर्मित है उससे यदि वह कार्य न लिया जावे तो वह चीज नष्ट या भ्रष्ट हो जाती है। अगर वह इच्छा इतनी बलवती न होती तो इस पृथ्वी पर ऐसे ऐसे मनुष्य हैं जो अपनी इच्छाओं का दमन कर सृष्टि वृद्धि रोक देते एवं उस माली के लहलहाते हुए बाग को उजाड़ देते। पर यह अदम्य इच्छा है एवं हठधर्मी करने वालों को नुकसानमन्द भी है। कहा भी है—

'संसारे तु धरा सारं, धरायां नगरम् मतम् ।
आगारं नगरे, तत्र सारं सारङ्ग लोचना ॥
सारङ्ग लोचनायाञ्च सुरतं सारमुच्यते ।
नातः परतरं सारं विद्यते सुखद नृणाम् ॥
सारभूतन्तु सर्वेषां परमानन्द सोदरम् ।
सुरत ये न सेवन्ते तेषां जन्मेव निष्फलम् ॥

अर्थात् संसार में पृथ्वी सार है, पृथ्वी पर नगर सार है, नगर में महल सार है और महल में मृगलोचनी कामिनी सार है। कामिनी में सुरत सार है। पुरुषों के लिए सुरत से बढ़कर और सुख नहीं है। सारे ही सार पदार्थों में परमानन्द का सहोदर विषयानन्द सार है। जो इसे सेवन नहीं करते उनका जन्म वृथा है।

प्रकृति ने स्त्री पुरुष का जोड़ा ही इसलिए बनाया है कि वे मैथुन कर्म से सन्तान उत्पन्न करें। –

(१) 'पंचविंशे ततो वर्षेपुमान् नारी तु षोड्से,
समत्वागत वीर्योतो जानीयात् कुशलोभिषक्'
—सुश्रुत

'तस्यां षोडशवर्षायां पञ्चविंशति
वर्षः पुरुषः पुत्रार्थं प्रयेतेत्'
—वाग्भट

उत्तम बीजोत्पन्न की यह मर्यादा है। अन्यथा अपरिपक्वावस्था में गर्भाधान का जो फल होता है वह ऊपर दर्शाया जा चुका है। अर्थात्–२५ पचीस वर्ष का पुरुष और षोडषी नारी का जब वीर्य और रज पूर्णता को प्राप्त हो जाय तब ही दोनों को सम्भोग की आज्ञा है। इससे कम उम्र में गर्भाधान करना राष्ट्रीय अपराध है। इसी प्रकार अधिक उम्र में भी हानिकारक एवं निषेध है—

'ऋतु वे षोडपाद्वर्षात्तथातिक्रान्त सप्ततेः।
स्त्रियं कामय मानस्य·············· ॥
नर्ते च षोडशावर्षात सप्ततयाः परतो न च।
आयुष्कामोनरः स्त्रीभिः संयोगं कर्तुमर्हति ॥
अतिवृद्धायां दीर्घरोगिन्यां मन्यन वा विकारेणोप-
सृष्टायाम गर्भाधानं नैव कुर्वीत।

सार यह है कि दीर्घ जीवन चाहने वालों को १६ वर्ष से कम एवं सत्तर वर्ष से अधिक की स्त्री से मैथुन न करना चाहिए और भी लिखा है–

ततः परंभवेद् वृद्धा सुरतोत्सव वर्जिता···।
वृद्धा मरणमादिशेत्··············
वृद्धा क्वापि न शस्यते·············।
पुतिर्मांस स्त्रियो वृद्धा···सद्यो प्राणहराणि।
बालेति गीयते नारी यावच्छोड़श वत्सरम्।
बालातु प्राणवा प्रोक्ता··············॥
सद्योमांस·········बाला स्त्री क्षीर भोजनं।
नित्यं बाला सेव्यमाना नित्यं ··वर्धयेत बलम्।

कारण यह है कि—

पंच पञ्चाशतोनारी सप्तसप्ततितः पुमान्।
द्वावेतौ न प्रसूयेतें-प्रसूयेते व्यतिक्रमात् ॥

(२) मैथुन योग्य पुरुष का वर्णन भावमिश्र ने इस प्रकार किया है—

:: पृष्ठ ५०३ का शेषांश ::

आवश्यक है। सभी खट्टे फलों में यह होता है। खट्टे फलों और भोजन में खटाई के विषय में चरक में भगवान् पुनर्वसु आत्रेय ने स्थान स्थान पर निर्देश किया है—

अगर त्वचा खुर्दरी और बाजुओं के अन्तः पृष्ठ की ओर फुन्सियां हैं तो विटामिन बी वाला भोजन कीजिये। विटामिन ए का सेवन बढ़ाइये। विटामिन बी यकृत् वृक्क, अण्डे की पीतता तथा बिना छने आटे में अधिक होता है। विटामिन ए कच्ची गाजरों, माखन और सब पीत तरकारियों और फलों में होता है। विटामिन ए से त्वचा कोमल होती है तथा आंखों के कई रोग दूर होते हैं। विटामिन बी विशेषतया श्री सौन्दर्यवर्द्धक है। रिबोफ्लेविन के प्रयोग से वृद्धावस्था के चिन्ह रुक जाते हैं। गालों और होठों पर सुर्खी लाता है। विटामिन बी. नारङ्गियों, निम्बुओं और अंगूरों में अधिक होता है। द्राक्षासव श्री सौन्दर्यवर्द्धक है। लगातार इसका प्रयोग त्वचा ओष्ठों और गालों में सौन्दर्य ला होता है। सौन्दर्य के उपासकों को चाय और काफी से बचना चाहिये।

—श्री कविराज हरिकृष्ण सहगल
बगीची अलाउद्दीन, नजर मोतिया खान, दिल्ली।

स्नातश्चन्दन लिप्तांगः सुगन्धः सुमनोऽन्वितः ।
भुक्तवृष्यः सुवसनः सुवेषः समलंकृतः ।।
ताम्बूल बदनः पत्न्यामनुरक्तोऽधिकस्मरः ।
पुत्रार्थी पुरुषो नारीमुपेयाच्छयने शुभे ।।

मैथुन योग्य स्त्री का वर्णन इस प्रकार किया है—

सुरूपा योवनास्थायालक्षणैर्या विभूषिता ।
या वश्याशिक्षिता या च सा स्त्री वृष्यतमामता ।।
नाना भुक्त्या तु लोकस्य दैवयोगाच्चयोषिताम् ।
तत्तं प्राप्यविवर्धन्तेनरंरुपादयो गुणाः ।।

—चरक

सुश्रुत इस प्रकार लिखते हैं—

पीन प्रसन्न वदनां प्रक्लिन्नात्म मुखद्विजाम् ।
नरकामां प्रियकथांस्रस्तकुक्ष्यक्षिमूर्धजाम् ।।
स्फुरद् भुज, कुच, श्रोणी नाभ्युरुजघनस्फिचम् ।
हर्षोत्सुक्यपरां चापि, विद्यादृतुमतीमिति ।।

अर्थात् जिसका मुख भरा हुआ व खिला हुआ हो, जिसका शरीर यौवन के मदमाते स्वेद से परिप्लावित हो, मुख में रस भरा हो एवं दांत चमकते हों, पुरुष से भोग की लालसा रखती हो, पुरुषों की कथाओं में अनुराग पैदा होने लगा हो, जिसकी कुक्षि, नेत्र, केश शिथिल हों, जिसकी कक्षा, कुच, श्रोणि-प्रदेश, नाभि, उरु, जघन एवं स्फिक् (नितम्ब) में स्फुरण होता हो अर्थात् जिसके समस्त शरीर में कामवासना की एक विद्युतवत् लहर दौड़ रही हो व मैथुन के लिए पूर्ण उत्सुक हो—वह मैथुन योग्य है। चरक में और भी लिखा है—

अतुल्य गोत्रां वृष्यां च प्रहृष्टां निरुपद्रवाम् ।
शुद्ध स्नातां व्रजेन्नारीमपत्यार्थी निरामयाः ।।
पुरुषस्यः गुणैर्युक्ता विहितान्यून भोजना ।
नारी ऋतुमती पुंसा संगच्छेतु सुतार्थिनी ।।

भिन्न-भिन्न पुस्तकों में इस विषय में और बहुत कुछ लिखा है । सार यह है कि जो व्यक्ति अत्यधिक भोजन कर चुका हो, अधैर्यवान हो, शरीर में कोई पीड़ा हो, बालक हो, वृद्ध हो उसे कदापि मैथुन की आज्ञा नहीं है। इसी प्रकार रजस्वला, मैथुन में अनिच्छा वाली, मैली, अप्रिय, अपने वर्ण से ऊंचे वर्ण या प्रतिष्ठा की, अपने से (पुरुष से) उम्र में बड़ी, रोगिणी, हीनांगी, गर्भवती, द्वेषिणी, योनि रोगिणी, गुरु पत्नी, सन्यासिनी, मुंहफट, दुस्साहसिणी, मन बिगड़ी, प्यासी, भय-भीत, अतिभोजी, क्षुधित, बहुमैथुनाभिलाषिणी, शरीर पर बड़े-बड़े बालों वाली, चिन्तित, अतिकामा आदि स्त्रियां मैथुन के योग्य नहीं हैं। लिखा है—

भीतो विमनाः शोकार्ता···पुरुषप्येतएव दोषा ।
नामेध्यां नाशस्तां·········व्यवायं गच्छेत् ।।

—चरक

रजस्वलां कामाञ्च···नो पेयात् प्रमादांनरः ।।

—सुश्रुत

(३) यदि रज वीर्य शुद्ध न होगा तो सन्तान उत्तम न होगी। लिखा है—

'शुद्ध शुक्रार्तवं स्वस्थं संरक्तं मिथुनं मिथः ।'

—वाग्भट्ट

शुक्रार्तव समाश्लेषो यदैव खलु जायते ।
जीवस्तदैव विशतियुक्त शुक्रार्तवान्तरम् ।

—भावमिश्र

यानी रज वीर्य का संयोग होते ही जीव प्रवेश करता है-इसी से शुद्धि का महत्व परिलक्षित होता है।

'एवं दुष्ट शुक्रः शुद्धार्तवा च······' —सुश्रुत

अर्थात्—दोषरहित वीर्यवान पुरुष व शुद्ध आर्तव वाली स्त्री ही उत्तम प्रजा उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं।

'यथा अकालाम्बु कृमिकीटादि दूषितम्, नावि रोहित सन्दुष्टं तथा शुक्रं शरीरिणाम्' —चरक

जैसे अकाल के जल एवं कृमि कीटादि से दूषित बीज से पौधा नहीं उगता वैसे ही दुष्ट शुक्र से उत्तम प्रजा उत्पन्न नहीं होती। शुद्ध शुक्र—

स्फटिकाभ द्रवं स्निग्धं, मधुरं मधुगन्धि च ।
शुक्रमिच्छन्ति, केचित्तु तैलक्षौद्रनिभं तथा ॥
—सुश्रुत

शुद्ध वीर्य स्फटिक मणि के समान श्वेत, द्रव, स्निग्ध, मधुर और मधु के समान गन्ध वाला होता है ।

शुक्रं सौम्यं सितंस्निग्धं वलपुष्टिकरं स्मृतम् ।
गर्भबीजंवपुः सारं जीवस्याश्रयमुत्तमम् ॥
—भावमिश्र

अर्थात् वीर्य सोमात्मक, श्वेतवर्ण, चिकना, वल पुष्टिकारक, गर्भ का बीज, शरीर का सारांश और जीव का उत्तम स्थान है । शुद्ध आर्तव—

शशासृक् प्रतिमं यत्तु यद्वा लाक्षारसोपमम् ।
तदार्तवं प्रशंसंतियद्वासो न विरञ्जयेत ॥
—सुश्रुत

जो आर्तव खरगोश के रक्त के समान रङ्ग में तथा घनता में होता है अथवा लाख के रस के समान होता है तथा वस्त्र पर शुष्क हुआ आर्तव धोने से धब्बा नहीं छोड़ता वह रज गर्भ धारण करने योग्य है । 'तुख्म तासीर' खराब बीज से खराब व अच्छे बीज से अच्छी तासीर होती है ।

४—रजस्वला स्त्री के साथ मनुष्य भूल कर भी मैथुन न करे । ऐसा करने से अनेकों रोग पैदा होकर मनुष्य वेकाम तक हो सकता है । स्त्री को भी इसी प्रकार की हानियां होना सम्भव है । इसलिये आर्तव स्राव जब तक बंद न होवे तब तक मैथुन का सख्त निषेध है । सुश्रुत लिखते हैं कि—

"रजस्वलां गतवतो नरस्या संयतात्मनः दृष्ट्यायुस्तेजसां हानिरधर्मश्च ततोभवेत् ।"

'दोषाध्युषित संकीर्णं मलिनानुरजः पथाम् ।'
—अष्टाङ्ग हृदय

'रजस्वलाभिगमनमलक्ष्मीमुखानाम् ।'
—चरक सूत्र

दीर्घ रोगां चिरोत्सृष्टां तथैव च रजस्वलाम् ।
इदृशी प्रमदांमोहाद्यो गच्छेत् कामहर्षतः ॥'
—चरक चिकित्सा

'रजस्वलामुपसेवमानस्य प्रकुपिता दोषा मेढ्रमार्गम्य श्वयथुं जनयेन्तितमुपदंशमित्याचक्षते'— —सुश्रुत निदान

प्रथम तो रजस्वला को गर्भ रहता ही नहीं परन्तु यदि रहे भी तो आयु कम होती, प्रसव में मर जाता या अपूर्ण अंगों वाला होता है इसलिये इन तीन दिनों में मैथुन सर्वथा त्याज्य है । नदी के प्रवाह में फैंकी हुई वस्तु ऊपर न जाकर वापिस आ जाती है वैसे ही वीर्य भी आर्तव स्राव के कारण गर्भाशय में न ठहर कर व्यर्थ नष्ट होता है । कहा है कि—

नवप्रवर्तमाने रक्ते बीजं प्रविष्टं गुणकरं भवति, यथा नद्याम् प्रतिस्रोतः प्लाविद्रव्यं प्रक्षिप्तंप्रति निवर्तते नोर्ध्वं-गच्छति तद्वदेतद् द्रष्टव्यम् । तस्मान्नियमवर्ती त्रिरात्रं परिहरेत् ॥ —सश्रुत शारीर

हमारे यहां तो मैथुन क्या रजस्वला स्त्री को छूना तक निषेध है क्योंकि आर्तवकाल में वह अशुद्ध होती है । उसके खून में एक 'आर्तवीय विष' हो जाता है । यही करण कि कोई बीज यदि आर्तव से लग जाय तो बोने से नहीं उगते, फल से लग जाय तो फल पेड़ से गिर पड़ें, चाकू पर श्वास लग जावे तो धार मारी जावे, दर्पण में मुंह देखे तो वह धुंधला पड़ जावे, आर्तव को कुत्ता चाटले तो वह पागल हो जावे, शराब की कोठरी में ऋतु-काला (रजस्वला) चली जाय तो शराब बिगड़ जाय, फूल जल्द मुर्झा जाय, पापड़ (आवाज से) बिगड़ जांय । इन सब बिगाड़ का कारण आर्तवीय विष है । एक पाश्चात्य विद्वान ने भी लिखा है कि—

The flower held in the hand of a menstruating woman will wither more rapidly than otherwise, owing to the action of this menstrual toxin-substance, which is not present excepting at this stage in the cycle. The menstrual

oxin is beleived to affect the milk in lactaing women, children sucking at such times being liable to slight digestive disturbances.

यदि यह विष बाहर न निकले तो स्त्री स्वस्थ नहीं रह सकती है। इसलिये—अप्रशस्त ऋतुकाल-चर्या अर्थात् ऋतुस्राव के दिनों में सन्तान इच्छुक रमणियां प्रथम दिन से ही निम्न कर्म न करें। यदि करेंगी और गर्भ रहा तो नतीजा इस प्रकार होगा—

दिन में सोना—इससे बालक निद्रालु व आलसी होवेगा।

अंजन लगाना—इससे बालक अंधा होसकता है।

रोना—इससे बालक के नेत्र विकृत हो जावेंगे।

स्नान करना—इससे बालक सदैव दुखी रहेगा।

अनुलेपन इससे बालक चर्म रोगी होगा।

अभ्यंग करना—इससे बालक कुष्ठ से पीड़ित होगा।

नख काटना—इससे बालक कुनखी होगा।

दौड़ना—इससे बालक अत्यधिक चञ्चल होगा।

हंसना—इससे बालक के दांत-ओष्ठ,तालु, जीभ श्याम वर्ण के होंगे।

अधिक बोलना—इससे बालक प्रलापी होगा।

कर्कश शब्द सुनना—इससे बालक बधिर होगा।

कंघी करना—बालक गंजा होगा।

वायु सेवन व परिश्रम करना—इससे बालक के पागल होने की सम्भावना है।

अतः रजस्वला स्त्री को रजःस्राव तक (१-३ दिन तक) कुशा की शैया पर सोना चाहिए। हथेली, मिट्टी के बर्तन या पत्तल में हविष्यान्न खाना चाहिए और पुरुष के दर्शन तक भी न करना चाहिए न किसी प्रकार की शुद्धि करना चाहिए और न अलंकार ही पहनें तथा तीक्ष्णोष्ण व लवणाम्ल पदार्थों का भक्षण न करें। इससे अधिक रक्तस्राव की आशंका है। इन दिनों में भोजन अल्प करें ताकि कर्षण होकर गर्भ स्थिति निश्चित हो जाय। Ideal birth के लेखक ने इस विषय में लिखा है कि—Woman who hopes to give birth to a son can have short measure of food. क्षामता या कर्षण गर्भोत्पादक है। लिखा है कि—

एवं गच्छन् स्त्रियं क्षामा मघांमूलं च वर्जयेत्।
सुस्थइन्द्रौसकृत् पुत्रं लक्षण्यं जनयेत् पुमान्॥

अर्थात् मघा और मूल नक्षत्रों को छोड़कर कृशवदना स्त्री में मैथुन करने से चन्द्रमा सदृश गौर वर्ण का पुत्र पुरुष उत्पन्न कर सकता है।

आर्तवस्राव बंद होजाने पर स्त्री को हरिद्रादि उत्सादन द्रव्य से उबटना कर माथे से (सशिरस्क) नहलवाकर श्वेत वस्त्र धारण करना चाहिए। इस प्रकार स्त्री शुद्ध हो जाती है। आर्तव स्राव का हो चुकना ही शुद्धि है। लिखा है कि—

नवे तनोच संजाते विगते जीर्ण शोणिते।
नारी भवति संशुद्धा पुंसा संसृज्यते तदा॥

अर्थात् जब जीर्ण-आर्तव नष्ट हो जाता है और गर्भाशय का नव निर्माण हो जाता है तो स्त्री संशुद्धा है तथा पुरुष सम्पर्क में आ सकती है। इसके साथ अलंकार-पुष्पमालायें पहने (पुरुष शुक्ल वस्त्र पहने व पुष्पादि धारण करे) पश्चात् मंगल कर्म व स्वस्तिवाचन करावें। बाद में यानी स्नान के पश्चात् स्त्री प्रसन्नचित्त से पति दर्शन करे। लिखा है कि—

पूर्वपश्येदृतुस्नाता यादृशं नरमंगना।
तादृश्यं जनयेत्पुत्रं भर्तारं दर्शयेदतः॥

—सुश्रुत शारीर

ऋतुस्नाना स्त्री सर्व प्रथम जिस प्रकार के पुरुष का दर्शन करती है उसी प्रकार का पुत्र उत्पन्न करती है। इसलिये प्रथम पति दर्शन करे। पति मौजूद न हो तो पुत्र को देखे या किसी देवता का दर्शन करे। यदि यह भी सम्भव न हो तो दर्पण में अपना ही मुंह देखले।

ऋतु स्नान के पश्चात् ऋतुकाल में (ऋतुकाल चतुर्थ से पन्द्रहवीं रात्रि तक) पहले से तैयार एवं

योग्य बने हुए (स्त्री और पुरुष दोनों को स्नेहन-स्वेदन, वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन करा कर पुरुष को मधुर औषधिगणों से सिद्ध घृत वा दुग्ध सेवन करावें और स्त्री को तैल युक्त पदार्थों तथा उड़दों के पदार्थों का सेवन करावें) दम्पति नियमानुसार मैथुन कर सकते हैं क्योंकि गर्भाशय पूर्णतया शुद्ध रहता है और शुद्ध स्नाता स्त्री को कामवासना अधिक होती है। कहा भी है-

ऋतुकाले तु सुरतमवश्यं कारयेन्नरः।

(५) पुत्रेच्छुक युग्म रात्रियों में (on even days) में ही विधिपूर्वक मैथुन करे। जिन्हें कन्या की इच्छा हो वे अयुग्म रात्रियों में (on odd days) विधिपूर्वक मैथुन करें। दोनों ही दशाओं में उत्तरोत्तर रात्रियां श्रेष्ठ होती हैं अर्थात् चौथी से छठी, छठी से आठवीं, आठवीं, से दशवीं और दशवीं से बारहवीं रात्रि पुत्र के लिये अधिक उत्तम हैं। इसी प्रकार कन्या प्राप्ति के लिये पांचवी, सातवी, नवीं, ग्यारहवीं उत्तरोत्तरश्रेष्ठ हैं। इस प्रकार स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतुकाल १६ रात्रियों का होता है जिसमें से तीन (प्रथमतीन) रात्रियां सर्वथा त्याज्य हैं। बाकी उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं इसे ही पुष्पकाल कहते हैं, इन्हीं रात्रियों में गर्भ रह सकता है अन्यथा अपवादों को छोड़कर नहीं क्योंकि गर्भाशय इस समय व्यात् मुख (खुला) होता है। भावमिश्र स्पष्ट कहते हैं-

तस्मिंस्तुस्य व्यात मुखं याति गर्भाशयंप्रति।
तत्रशुक्र वदाया तेनार्तवेन युतंभवेत॥

पाश्चात्य विद्वान् भी कहते हैं—

So far as the evidence goes, it would seem that in woman, the uterus becomes shorter, broader and softer during the orgasma, at the same time descending lower into the pelvis with its mouth open intermittently. Owing to the combined activity of the semen and vagina during sexual excitement it is possible for the semen to reach the uterus even when it has only been effused at the vaginal entrance.

इसके बाद यानी ऋतुकाल समाप्ति बाद गर्भाशय मुख बंद होजाता है और वीर्य गर्भाशय तक नहीं पहुँचता फलतः संतान की आशा दुराशा मात्र है। लिखा है कि—

नियतं दिवसेऽतीते संकुचत्यंबुजं यथा।
ऋतौ व्यतीते नार्यास्तु योनिः संव्रियतेतथा॥

—सुश्रुताचार्य

अर्थात् दिन के व्यतीत होने पर शाम को जैसे कमल पुष्प बंद हो जाता है उसी प्रकार से ऋतुकाल व्यतीत होने पर स्त्री की योनि का मुख बंद हो जाता है। (योनिमुख-गर्भाशय ग्रीवा मुख)

६—ऋषियों का कथन है कि-

समेकुमारः विषमे कुमारी।

तथा—

वामनाड्या भवेत्कन्या दक्षिणेपुत्र निश्चयः।
रक्ताधिके भवत्कन्या पुत्रः शुक्राधिके भवेत्॥

— बृहन्निघण्टु रत्नाकर

तत्रशुक्र बाहुल्यात पुमान् आर्तवबाहुल्यात्स्त्री।

—सुश्रुत शारीर

युग्मेषुतु पुमान प्रोक्तो दिवसेष्वन्यथा बला।
पुष्पकाले शुचिस्तस्माद्................॥

—सुश्रुत शारीर

इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ रात्रियों में कैसे कैसे पुत्र और पुत्रियां होती हैं इसका भी बड़ा रोचक वर्णन है जिसे यहां उद्धृत करने का लोभ नहीं रुक सकता है क्यों कि ऐसे बचन हमारे ज्ञान विज्ञान की महत्ता एवं पूर्व पुरुषों को उच्चतम खोज के परिचायक एवं प्रमाण हैं।

"रात्रौ चतुर्थ्यां पुत्र स्यादल्पायुर्धन वर्जितः,
पञ्चम्यां पुत्रिणी नारी षष्ठ्यां पुत्रस्तु मध्यमः।
सप्तम्याम प्रजायोषिदष्टम्यमीश्वरः सुतः,
नवम्यां सुभगानारी दशमां चतुरः पुमान्॥
एकादशयाम् धर्मा स्त्री द्वादश्यां पुरुषोत्तमः,
त्रयोदशां सुता तस्य वर्णशंकर कारिणी।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च आत्मवेदी दृढ़ व्रतः,

प्रजापतये चतुर्दश्यां गुणौघैर्जगतो पतिः ॥
राजपत्नि महाभागः राजवंश गता तथा
जायते पंच दश्यांतु बहु पुत्रा पतिव्रता ।
विद्या लक्षण सम्पूर्ण सत्यवादी जितेन्द्रियः
आश्रयः सर्वभूतानां षोडश्यां जायते पुमान् ॥"

गर्भ में पुत्र या पुत्री होने में शुक्र और आर्तव की प्रधानता को (बहुलता को) नवीन विज्ञान भी मानता है। एक पाश्चात्य पंडित Dr. Nicholos कहता है कि—

"The sex of child is determined by relative vigour of parents. The father from maturity from will superior strength of procreative functions may give the masculine and the mother from similar causes may give feminine."

पुरुष के शुक्रकीट २४ छोटे छोटे जीवों (Chromosomes) से संयुक्त होते हैं। इसी प्रकार आर्तव (स्त्री बीज) के डिम्बों में २४ छोटे छोटे जीव (Chromosomes) होते हैं पर माता के डिम्ब में केवल एक तरह के ही (केवल x एक्स) क्रोमोजोम्स (Chromosomes) होते हैं। परन्तु पुरुष के शुक्र में x क्रोमोजोम तो होते ही हैं पर वाई क्रोमोजोम भी होते हैं। अब यदि एक्स क्रोमोजोम से संयुक्त शुक्रकीट यदि एक्स क्रोमोजोम से से संयुक्त डिम्ब से मिल जाता है तो लड़की होगी और यदि वाई क्रोमोजोम से संयुक्त शुक्रकीट यदि एक्स क्रोमोजोम के संयुक्त डिम्ब से मिला तो पुत्र होगा। ये Chromosomes ही माता पिता तथा वंश परम्परा के संस्कारों से युक्त होते हैं।

आचार्य चरक ने वायु, अग्नि, भूमि और जल इन चार भूत गुणों एवं मधुरादि ६ गुणों से शुक्र की उत्पत्ति मानी है जिसके प्रस्तारण करने पर ६×४=२४ प्रकार शुक्र के बनते हैं और शोणित भी ६×४=२४ गुणों से ही उत्पन्न होता है। इस प्रकार चातुर्विंशतिक स्त्री के संभोगज शुक्र शोणित संयोग से गर्भ बनता है।

(७) याज्ञवल्क्य के मत से अमावस्या, पूर्णिमा, चतुर्दशी, षष्टमी को मैथुन करना निषेध है। अष्टांग संग्रह एवं मनु एकादशी एवं त्रयोदशी को निन्द्य मानते हैं। सुश्रुत त्रयोदशी को निन्द्य मानते हैं लिखा है कि—

'अमावस्यामष्टमीञ्च पौर्णमासी चतुर्दशीम् ।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यम घृतौस्नातकोद्विजः ॥'

इसी प्रकार संध्याकाल, प्रभात, अर्द्ध रात्रि, मध्यान्ह में मैथुन निषिद्ध है। लिखा है कि—

'उपेयात्पुरुषोनारी संध्ययोर्न च पर्वसु ।
गोसर्गे चार्द्ध रात्रे च तथा मध्यन्दिनेऽपिच ॥

ग्रीष्म वसन्त को छोड़कर (मेरी सम्मति में इनमें भी) दिवा मैथुन वर्ज्य है—

'आयुक्षयभयाद्धि ह्वान्नाह्नि सेवेत कामीनीम् ।
अवशो यदि सेवेत, तदा ग्रीष्म वसन्तयोः ॥'

और भी—

'शीतेरात्रौ दिवा ग्रीष्मे वसन्ते तु दिवा निशि ।
वर्षासु वारिद्ध्वाने शरत्सु सरसिस्मरः ॥

अर्थात् शीतकाल में रात्रि में, ग्रीष्मकाल में दिन में, बसन्त में दिन रात्रि में दोनों समय, वर्षा में बादल गरजते समय और शरद् ऋतु में सरोवर के सन्निकट मैथुन करना चाहिये।

(८) मैथुन क्रिया हमेशा एकांत में स्व-स्त्री के साथ ऐसे स्थल पर की जाती है जहां कोई अन्य पुरुष, स्त्री व बालक न हो, स्थान बड़ा सुखद, एवं रमणीय हो। यदि वहां कोई भी लज्जा पैदा होने का कारण हुआ एवं उसकी वजह से यदि मैथुन-कर्म ठीक ढंग से सम्पूर्ण रूप में न हो सका तो अपूर्णांग मैथुन से जो हानि हो सकती है वह अवश्य होगी तथा यदि किसी प्रकार का भय भी होगा तो कार्य ठीक नहीं होगा। लिखा भी है कि—

विहारं भार्याय कुर्याद्देशेऽतिशय संवृते ।
रम्ये श्राव्याङ्ग नागाने सुगन्धे सुख मारुते ॥

अर्थात् मैथुन स्थान ऐसा हो जहां दूसरा देख

न सके, जहां भय, चिन्ता न हो एवं जहां दिल बिगाड़ने वाली बातें न सुनाई पड़ें। कमरा खूब साफ, सजा हुआ एवं हवादार हो। उसमें सुन्दर सुन्दर स्त्री पुरुषों एवं स्वस्थ बालकों की तस्वीरें लगी हुई हों। अच्छे अच्छे कालीन गलीचे आदि बिछे हों, सुन्दर पलंग एवं उस पर सुन्दर श्वेत बिछौने हों। कोई गन्दी तस्वीर या भयानक दृश्य वाली तस्वीर वहां न हों, सुगन्धित पदार्थ महक रहे हों। निम्न स्थान मैथुन के अयोग्य हैं—

देशे गुरुजनासन्ने विवृतेऽतित्रपाकरे ।
श्रूयमाणेऽन्यथा हेतु वचने न रमेत ना ॥

९—हेमन्त ऋतु में बाजीकरण द्रव्य सेवन करके. शिशर, बसंत एवं शरद में बलवान पुरुष को एक सप्ताह में एक बार एवं ग्रीष्म ऋतु में अधिक से अधिक पन्द्रह दिन में एक बार स्त्री संसर्ग करना चाहिए। यह अवधि बलवानों एवं जिन्हें अच्छी खुराक मिलती हो चिन्ता फिक्र रोग शोक का काम न हो उनके लिये है। सन्तान के इच्छुकों को एक माह में एक बार से अधिक यह कार्य न करना चाहिए।

जो सन्तानार्थ मैथुन करते हैं, उनकी गिनती ब्रह्मचारियों में ही होती है एवं ब्रह्मचर्य की महिमा से कौन अभागा अपरिचित है "ब्रह्मचर्येण तपसा देवामृत्युमुपाघ्नत: ।" इस विषय में एक बड़ी रोचक घटना प्रसिद्ध है—

वशिष्ठ ऋषि की कुटिया के सामने एक नदी बहती थी और दूसरे किनारे विश्वामित्र ऋषि तपस्या करते थे। वशिष्ठ गृहस्थ थे। जब भोजन पक जाता तो वशिष्ठ की पत्नी अरुन्धती थाल परोस कर पहले विश्वामित्र को खिलाने जाती। जब वह खिलाकर लौटती तब वशिष्ठ के घर सब भोजन करते। यह नित्य का क्रम था। एक दिन वर्षा अधिक हुई एवं बाढ़ आगई तो मार्ग अवरुद्ध हो गया। अत: अरुन्धती उस पार कैसे जाय? तब वशिष्ठ ने कहा कि जाओ नदी से कह देना कि मैं सदा निराहारी विश्वामित्र को भोजन देने जा रही हूँ। तुम मुझे रास्ता दे दो। अरुन्धती ने नदी से यही कहा और उसे रास्ता मिल गया। जब विश्वामित्र भोजन कर चुके तो अरुन्धती ने उनसे भी नदी पार जाने का उपाय पूछा। विश्वामित्र ने पूछा--तब कैसे आई? अरुन्धती ने सारी बात बतादी। तब विश्वामित्र ने कहा कि जाओ और नदी से कहो कि मैं सदा ब्रह्मचारी वशिष्ठ के घर जा रही हूँ। अरुन्धती के ऐसा कहने पर नदी ने उसे रास्ता दे दिया। तब तो उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। वशिष्ठ से इसका रहस्य पूछने पर उन्होंने बताया कि जो केवल शरीर रक्षण के लिये ही भोजन करता है वह खाते हुए भी निराहारी है तथा जो सन्तानार्थ, अपना कर्त्तव्य समझकर, अनाशक्ति पूर्वक सम्भोग करता है वह ऐसा करते हुए भी ब्रह्मचारी है।

(१०) मैथुन का वर्णन करते हुए महर्षि सुश्रुत ने लिखा है कि--

'तत्र स्त्री पुन्सयोः संयोगे तेजः शरीराद्वायुरयति, ततो तेजोनिल सन्निपाताच्छुक्रं च्युतं योनिमभिप्रतिपद्यते संसृज्यते चार्तवेन, ततोऽग्निसोम संयोगात् संसृज्यमानो गर्भो गर्भाशयमनुप्रतिपद्यते ।'

अर्थात् स्त्री और पुरुष के संयोग से वायु (nervous activity) शरीरस्थ तेज प्रकट करती है। तेज व वायु दोनों के संयोग से वीर्यच्युत होकर स्त्री योनि में गिरता है जहां उसका मिलन स्त्री आर्त्तव (डिम्ब) से होता है। इस प्रकार सोमाग्नेय संयोग से गर्भाशय में गर्भ की उत्पत्ति होती है। और भी लिखा है—

ऋतौ स्त्री पुन्सयोर्योगे मकरध्वज वेगतः।
मेढ्योन्यभिसंघर्षाच्छरीरोष्मा निलाहता: ॥
पुन्स:सर्वशरीरस्थं रेतोद्रावयतेऽथ तत् ।
वायुर्मेहणमार्गेन पातयत्यङ्ग ना भगे ॥
तत संस्रुत्य व्यातमुखं याति गर्भाशयं प्रति ।
तत्र शुक्र वदाया तेनार्तवेन युतं भवेत् ॥

अर्थात् ऋतुकाल में कामदेव के वेग से स्त्री पुरुष का संयोग होने पर मेढ्र एवं योनि के अभि-संघर्ष होने से वायु से अभिहित उष्मा उत्पन्न होती है जिससे शरीर में स्थित रेतस द्रवित हो कर वायु के द्वारा लिङ्ग में होकर स्त्री की भग में गिरता है। गर्भाशय इस समय (ऋतुकाल में) व्यातमुख होता है और शुक्राणु को आसानी से ग्रहण कर लेता है। गर्भाशय में शुक्राणु आर्तव के साथ मिल प्रजोत्पत्ति में कारण होता है। गर्भोत्पत्ति के शुक्र शोणित संयोग को Fertilisation कहते हैं। -

(११) स्त्री का काम चैतन्य होने पर ही (स्वीकृति मे) मैथुन कर्म किया जावे। अकामा के साथ मैथुन मे वीर्य का नाश होता है। अतः स्त्री का पूर्ण कामाभिभूत होना आवश्यक है तभी सच्चा मैथुनकर्म सम्भव है वर्ना बलात्कार या मृतक समागम है। ऐसे मृतक समागम से स्त्री सन्तुष्ट नहीं होती फलतः गर्भ नहीं रहता, वृथा वीर्य नाश होता है।

(१२) विपरीत स्थिति में मैथुन न करें अर्थात् स्त्री ऊपर एवं पुरुष नीचे। अगर इस तरह मैथुन कर्म से गर्भ रह कर कन्या हुई तो उसकी चेष्टायें मर्द की सी होंगी और यदि पुत्र हुआ तो वह स्त्रियों की सी चेष्टा वाला होगा। इच्छित सन्तानेच्छुकों को तो भूल कर भी ऐसा कर्म नहीं करना चाहिये, न खड़े और न करवट लेटी से ही मैथुन करना चाहिये क्योंकि यह सभी प्रकार हानिप्रद हैं। इसलिये केवल उत्तानासना स्त्री के साथ ही सम्भोग करना चाहिये क्योंकि केवल एक इसी आसन में तीनों दोष यथास्थान रहते हैं। चरक ने शारीर स्थान में स्पष्ट लिखा है कि—

"नच न्युब्जां पार्श्वगतां वा संसेवेत, न्युब्जाया वातो बलवान स योनिपीड़यति पार्श्वगताया दक्षिणे पार्श्वे श्लेष्मा संच्युतोऽपिदधाति गर्भाशयं, वामे पित्त पार्श्वे, तस्याः पीडितं विदहती रक्त शुक्रं, तस्मादुत्तानासति बीजं गृहणीयात् तस्या हि यथास्थानमवतिष्ठन्ते दोषाः।"

अर्थात् पुरुष अधोमुखी या पार्श्व में लेटी स्त्री से मैथुन न करे क्योंकि न्युब्ज वा अधोमुखी स्त्री का वात दोष कुपित होकर योनि को प्रपीड़ित कर देता है, दाहिनी करवट लेटी स्त्री के अपत्य पथ को योनि से उत्सृष्ट श्लेष्मा बन्द कर देता है। बाईं करवट में पित्त कुपित होकर बीज (रज-शुक्र) को विदग्ध कर देता है। इसलिये ऊपर मुंह किए हुए सीधी पीठ के बल लेटी हुई स्त्री से सम्भोग करना चाहिए क्योंकि इस एक आसन में तीनों दोष यथास्थान रहते हैं। नीचे मुख की हुई स्त्री के भग, योनि, गर्भाशय, ग्रीवा और गर्भाशय-मुख नीचे की ओर हो जाने से शुक्राणु ऊपर गमन नहीं कर सकते। इसलिए सन्तानार्थियों के लिए यह सर्वश्रेष्ठ आसन है।

(१३) सन्तानार्थ मैथुनाभिलाषियों को शरद ऋतु में अवश्य वाजीकरण पदार्थ हर वर्ष सेवन करना चाहिए। क्योंकि वाजीकरण से वीर्य खूब पुष्ट होता है।

(१४) सन्तानोत्पादन के लिए मैथुन अत्यन्त आवश्यक है-यह स्वयंसिद्ध है। अतः उत्तम सन्तानाभिलाषियों को मैथुन की अभिलाषा होने से दोनों की उपरोक्त योग्यताओं का ध्यान कर उनके अनुसार तैयार होकर सुन्दर पलंग या शैया तैयार करवावे एवं उस पर पुरुष अपना दाहिना पांव पहले रखे एवं स्त्री बायां पांव पहिले रखे। फिर अच्छी प्रकार चरकोक्त आसन बांधकर पुरुष दाहिने स्वर में व स्त्री बायें स्वर में योग्यरीत्या मैथुन प्रारम्भ करें। दोनों मन को पवित्र रखें एवं उत्तम भावों को धारण करते हुए निम्न मन्त्र का पाठ करें तथा इस प्रकार उत्तम सन्तान की अभिलाषा करते हुए स्त्री वीर्य ग्रहण करे। इस समय दोनों को दो शरीर एक जीव हो जाना चाहिए तथा स्त्री अपना सम्पूर्ण ध्यान उस काल्पनिक गुणाकार में लगावे जैसी कि वह सन्तान चाहती है।

अहिरसि आयुरसि सर्वतः प्रतिष्ठाऽसिधतात्वा।
दधातु विधातात्वादधातु ब्रह्मवर्चसा भवेविति॥

ब्रह्मा, बृहस्पतिर्विष्णुः सोमः सूर्यस्तथाश्विनौ ।
भगोऽथ मित्रावरुणौ पुत्रं वीरं ददातु मे ॥
—चरक

जब गर्भाधान हो चुके तो स्त्री (कुछ देर बाद) उठकर अपने नेत्र, मुंहादि को शीतल जल से धो डाले । पान खावे तथा अपने मन में महान् पुरुषों का स्मरण करे। पति में पूर्ण प्रेम व श्रद्धा रखे एवं सब प्रकार से योग्य व इच्छित सन्तान की कामना करे।

(१५) मैथुन के उपरान्त शर्करा मिश्रित भक्ष्य, कुछ देर ठहरकर स्नान, पंखे की वायु और निद्रा हितकर हैं।

भक्ष्या सशर्कराः क्षीरं ससिलं रस एव च ।
स्नानं सव्यजनं स्वप्नो व्यवायान्ते हितानितु ॥
—सुश्रुत

(१६) हिकमत के ग्रन्थों में लिखा है कि सोमवार गुरुवार तथा शुक्रवार की रातें सन्तानार्थ स्त्री प्रसंग के लिए उत्तम हैं। सोमवार की रात की सन्तान प्रखर बुद्धि, सन्तोषी, मां के हक में अच्छी होती है। बृहस्पति की रात भी सब तरह से उत्तम है। इसी प्रकार शुक्र की रात भी उत्तम है। जो सन्तान होगी वह तपस्वी एवं विद्वान होगी।

परिस्थितियों साधनों एवं संस्कारों का प्रभाव—

गर्भावस्था जन्य जीवन की परिस्थितियों की प्रतिक्रियाओं से उत्पन्न उमंगें और भावनायें होने वाली सन्तान की आकृति प्रकृति व आचरण एवं कार्यों की नींव डालती हैं। यदि उन दिनों में माता पिता का जीवन उद्यमी एवं सरल होगा तो सन्तान ओजस्वी होगी। इसके विपरीत यदि माता पिता के जीवन की परिस्थिति निराशाजनक व विषादमयी हुई तो सन्तान निरुत्साही व भीरु होगी। इसलिए ही गर्भ रहने के निश्चय हो जाने के साथ ही महर्षि सुश्रुत की आज्ञा है कि—"गर्भवती स्त्री प्रथम दिन से ही लेकर अगले दिनों में नित्य प्रसन्न मन वाली, पवित्र, अलंकारों को धारण किये, श्वेत वस्त्र धारण करने वाली, शांति परायण, मंगलकारी, देव, ब्राह्मण, गुरु की सेवा करने वाली हो। मलिन विकृत या हीन अंगों का स्पर्श न करे। दुर्गन्ध एवं बुरे दृश्यों को न देखे। बेचैनी उत्पन्न करने वाली कथाएं न सुने, शुष्क, बासे, सड़े गले अन्न को न खावे। घर से बाहर निकलना, खाली घर में जाना, चैत्य, श्मशान, वृक्ष के नीचे रहना छोड़ दे। क्रोध एवं भय तथा निन्दित पदार्थों को, जोर से बोलना आदि गर्भ हानिकर भावों को छोड़ देवे। बार-बार तैल का अभ्यंग और उत्सादन लगाना छोड़ दे। शरीर से मेहनत न करे। अपथ्यों को छोड़ दे। शैया, आसन कोमल बिछे हुए परन्तु ऊंचे न हों, सहारा या आश्रयदार हों, दुखकारक न हों। मन को प्रिय, द्रव, मधुररसाधिक्य, स्निग्ध, अग्निवर्धक दीपनीय द्रव्यों से संस्कृत भोजन करे और भी—अधिक बोझा न उठावे, कूद फांद न करे, झूले नहीं, रंज अफसोस चिन्ता न करे, उल्टी, दस्त कराने वाली तेज दवा न ले। दिन को सोवे नहीं, रात को जागे नहीं। सवारी पर न बैठे, जोर से न खांसे, डरे नहीं, ऊंची नीची जगहों में चढ़े उतरे नहीं, शरीर को टेढ़ा मेढ़ा करके न बैठे। शिरा व्यधन न करावे। मल-मूत्र डकार आदि के वेगों को न रोके। वातादि दोषों से एवं चोट इत्यादि लगने से गर्भिणी के जिस-जिस अङ्ग को हानि पहुंचती है गर्भ के भी उसी-उसी अङ्ग को हानि पहुँचेगी। वीरों व विद्वानों के चरित्र सुने व मंगलकारी कार्य करे। ये सामान्य नियम हैं। इनके अलावा भी गर्भवती स्त्री गर्भहानिकर आचार विचार व्यवहार का पूरा ध्यान रखे।

महर्षि चरक ने भी गर्भहानिकर पदार्थों का वर्णन इस प्रकार किया है कि—'उकडू वा अन्य विषम आसनों से बैठने वाली, शारीरिक मल-मूत्रादि वेगों को रोकने वाली, अत्यन्त दारुण (अनुचित) व्यायाम करने वाली, अति तीक्ष्ण उष्ण पदार्थों का सेवन करने वाली स्त्री की कोख में ही गर्भ मर जाता है। गर्भाशय पर किसी

प्रकार का दबाव पड़ने से, कुएं में देखने से, अत्य-धिक ऊंचे नीचे चलने से, झटके देने वाले यानों की सवारी करने से, अप्रिय शब्दों के सुनने से, तेज आवाज (तोप, बन्दूक, बम) सुनने से गर्भ गिर सकता है। खुली जगह पर सोने वाली, रात्रि में इधर-उधर घूमने वाली गर्भिणी उन्मत्त सन्तान को जन्म देती है। लड़ाक तथा झगड़ालू स्त्री की सन्तान अपस्मारयुक्त होती है। गर्भावस्था में मैथुन कराने वाली दुर्बल और निर्लज्ज सन्तान को जन्म देती है। नित्य-शोकातुर रहने वाली की सन्तान डरपोक, कृश शरीर, अल्पायु होती है। द्रोही एवं ईर्ष्यालु गर्भिणी द्रोही एवं ईर्ष्यालु सन्तान पैदा करती है। क्रोध करने वाली गर्भिणी की सन्तान क्रूर, कपटी व परनिन्दक होती है। हर समय सोने वाली गर्भिणी की सन्तान तन्द्रालु, मूर्ख, अल्पाग्नि होती है। शराबी की सन्तान पिपासालु, मूर्ख तथा अस्थिर चित्त वाली होती है। नित्य मछली मांस खाने वाली की सन्तान निश्चल आंखों वाली होती है। गोह का मांस खाने वाली के अश्मरी-शर्नैमेहा-क्रांत होती है। सूअर का मांस खाने वाली के खुरदरे मोटे बालों वाली सन्तान होती है। नित्य मधुर रस का आहार करने वाली के प्रमेही, गूंगी अति स्थूल सन्तान होती है। नित्य अम्लरस का आहार करने वाली के रक्तपित्ती, त्वक् रोगी, नेत्र रोगी होते हैं। नित्य लवण रस का आहार करने वाली के जरा (बलि पलित व गंजी) के चिन्हों वाली होती है। नित्य कटु रस का सेवन करने वाली की सन्तान दुर्बल तथा अल्पवीर्य वाली होतीहै। नित्य तिक्तरस का आहार करने वाली के शोषरोग-युक्त सन्तान होती है। नित्य कषाय रस का सेवन करने वाली के श्यामवर्ण की, उदावर्त से पीड़ित सन्तान होती है। इसी प्रकार यदि पिता भी अपचार करे तो दुष्ट वीर्य से उत्तम सन्तान नहीं हो सकती।

भारतीय वैज्ञानिकों की सूझ-बूझ का और भी नमूना देखिये—महर्षि चरक कहते हैं कि "यदि स्त्री चाहे कि उसका पुत्र विशालकाय, गौर वर्ण मृगेन्द्रसम बलवान व पवित्र हृदय हो तो उसे शुद्ध स्नान से लेकर जौ के सत्तू मधु, घृत मिलाकर श्वेत स्वरूपवान बछड़े वाली गौ के दुग्ध में आलो-ड़ित करके रजत या कांस्यपात्र में समय-समय पर सात दिवस तक पीने को दें और प्रातः वह स्त्री शालि व जौ के भोज्य पदार्थों को दही, शहद और घी के साथ मिलाकर खावे तथा सायंकाल भी इसी प्रकार खावे एवं सफेद मकान में रहे। बिछौना, आसन, सवारी, वस्त्राभूषण सब श्वेत वर्ण के होने चाहिए। प्रतिदिन प्रातः सायं श्वेत वर्ण के पुष्ट बैल, श्वेत उत्तम घोड़ा, श्वेत चांदनी या चन्दन एवं श्वेत रंग के अर्थात् चांदी के गहने देखे। उसके समीप सदा सौम्य स्वरूप वाले, मनोनुकूल बोलने वाले व्यक्ति ही बैठें। सौम्याकृति वाले, सौम्य वचन कहने वाले, सौम्य व्यवहार एवं चेष्टा वाले स्त्री-पुरुषों को देखे। कान श्वेत वर्ण के पदार्थों का नाम सुनें, जिह्वा पर श्वेत दुग्धादि पदार्थ जाने दें। नासा श्वेत पुष्प सूंघे एवं श्वेत संगमरमर आदि का त्वचा स्पर्श करे। तात्पर्य यह है कि मन में श्वेत ही श्वेत बस जावे।

इसके विपरीत यदि स्त्री श्याम वर्ण विशालकाय पुत्र चाहे तो सारे विधान (आचार-व्यवहार, भोजन आसन, वस्त्र, अलंकार) श्याम वर्ण के करने होंगे। कृष्ण वर्ण की इच्छा हो तो कृष्ण वर्ण के करने होंगे। इस प्रकार चरक भगवान ने इच्छित सन्तान का विधान बतलाया है। आगे फिर स्पष्टीकरण किया है कि—जल तथा आकाश धातु प्रधान तेजो (अग्नि) धातु अवदास (गौरवर्ण) वर्ण कारक है। जब तेजो धातु में पृथ्वी और वायु अधिक मात्रा में संयुक्त हों तो काला वर्ण होता है। जब तेज में सब धातुएं सम हों तो श्यामवर्ण की उत्पत्ति होती है। वर्ण बहुत कुछ वीर्य पर भी निर्भर है। वीर्य में यह- विशेषता आहार से आती है परिणामतः महा-भूतों की न्यूनाधिकता हो जाती है और वह विशेष वर्ण की सन्तति की उत्पत्ति के योग्य हो जाता है। यदि वीर्य गौरवर्ण का हो तो सन्तान गौरवर्ण की

होगी, यदि वीर्य तैल के समान हो तो कृष्ण वर्ण की, यदि वीर्य मधु सदृश हो तो श्याम वर्ण की होगी। ऐसा अष्टांग संग्रहकार का मत है। निम्न-उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि गर्भकाल में छोटी से छोटी घटना, छोटे से छोटे कार्य एवं प्रत्येक आचरण का सन्तान पर पूर्ण प्रभाव पड़ता है—

(१) एक गर्भवती स्त्री ने एक खरगोश पाला था। एक दिन बिल्ली ने उसे पैरों में काट लिया था जिसकी मरहम पट्टी वह स्त्री कई दिनों तक करती रही। प्रसूत होने पर सन्तान के दोनों पैर विकृत थे। (२) एक किसान ने पालतू सूअर के कान की शिरा को खोलकर रक्त निकाला। गर्भवती देख रही थी उसके भी अपूर्ण पाली का बालक हुआ। (३) एक गर्भिणी को एक कुत्ते ने काट लिया प्रसूत होने पर उसके बच्चे की पीठ और जांघ पर कुत्ते के रङ्ग का धब्बा और बाल पाये गये। (४) एक दम्पति सुन्दर नहीं थे किंतु प्रगाढ़ प्रेमी थे। उनके बच्चे अति सुन्दर, मधुरभाषी ओजस्वी, नेत्रप्रिय हुए। इसीलिए love को transmitting agent कहा गया है। इसके विपरीत एक अति सुन्दर दम्पति के क्षीणकाय, शक्तिहीन, रोगी, मूर्ख एवं गूंगा बच्चा हुआ। पता लगाने पर मालुम हुआ कि गर्भावस्था में पत्नी पति से बड़ी विरक्त रही एवं उसने निराशापूर्ण जीवन व्यतीत किया जिसका अटूट प्रभाव सन्तान पर पड़ा। (५) स्पेन देश की एक सुन्दर राजकुमारी के शयन-कक्ष में एक हब्शी का चित्र टंगा था, वह हब्शी बड़ा बली था। कुमारी उससे प्रभावित हुई। परिणामस्वरूप उसके एक काला तगड़ा बालक पैदा हुआ। ठीक इसके विपरीत एक हब्शी दम्पति के गौर वर्ण बच्चा पैदा हुआ क्योंकि स्त्री का मन हमेशा श्वेतता की ओर आकर्षित रहता था। (६) एक आदमी ने घर में चूहे पाल रखे थे और फर्श-छत्त दीवालों पर नीले रङ्ग पर्दे लगा दिये तो चूहे के बच्चे भी नीले ही पैदा हुए।

विश्व विख्यात डार्विन कहते हैं कि पुष्प और जानवरों के सफेद रंग सरलता से उतर आते हैं। इन रंगों की सत्यता आंकने के लिए गर्भाधान में घोड़ों की आंखों पर लाल या काले रंग के पर्दे लगा देते हैं और बच्चे भी उन्हीं रङ्गों के जन्मते हैं।

(७) व्यास के नियोग का हाल कौन नहीं जानता जिसका मुँह भय से पीला उसके पाण्डु हुए, जिसने भय से या लज्जा से आंखें मींचली उसके जन्मान्ध धृतराष्ट्र हुये। जिसने प्रसन्न चित्त नियोग करवाया उस दासी के गुणज्ञ विदुर हुए। (८) एक पुरुष ने अपनी काली नौकरानी से इच्छा पूर्ण करनी चाही किन्तु वह किसी भी प्रकार सहमत नहीं हुई उसी उत्तेजित अवस्था में उन्हीं भावों से भरा वह अपनी सुन्दर पत्नी के पास गया और गर्भाधान किया तो दम्पति के सुन्दर होते हुए भी काली सन्तान हुई क्योंकि पुरुष के मानस पटल पर उस काली नौकरानी की छाप पड़ चुकी थी। (९) एक सुनहले बाल वाले अंग्रेज ने एक सुन्दर ब्राजिलियन स्त्री से विवाह किया जिससे वह अत्यन्त प्रेम करता था। दुर्भाग्य से वह मर गई और पुरुष ने अन्य अंग्रेज स्त्री से विवाह कर लिया। जब-जब वह उस अंग्रेज सुन्दरी से सहवास करता तब-तब उसे उस ब्राजीलियन स्त्री की याद जरूर आती थी। जब उस अंग्रेज स्त्री के सन्तान हुई तो हूबहू ब्राजीलियन स्त्री जैसी थी। (१०) एक दम्पति के पड़ौस में एक मधुर आलापी गवैया रहता था। दम्पति को गाना सुनने का बड़ा शौक था परन्तु उनके खुद के कण्ठ न चलते थे। जब उनके पुत्र हुआ तो बहुत कुछ गवैये की शक्ल जैसा था और बड़ा होने पर अच्छा गायक हुआ। (११) नेपोलियन जब गर्भ में था तो उसकी मां पति के साथ युद्ध क्षेत्र में रहती थी एवं युद्ध योजनाओं में भाग लिया करती थी। बड़े बड़े वीरों के चरित्रों का अध्ययन करती थी। प्रसिद्ध है कि बड़े होने पर नैपोलियन ने अपने बहादुराना कार्यों से यूरोप में तहलका मचा दिया था। (१२) अभि-

मन्यु के चक्रव्यूह भेदन सीखने की कला भी गर्भ में ही सीख जाने की बात प्रसिद्ध है। (१३) एक स्त्री गर्भावस्था में चतुर्भुजमूर्ति का हमेशा श्रद्धावश ध्यान किया करती थी फलतः उसके चतुर्भुज बालक हुआ। (१४) भगवान कृष्ण एवं प्रद्युम्न, अर्जुन एवं अभिमन्यु में इतना सामंजस्य था कि परस्पर भेद करना मुश्किल था। (१५) एक स्त्री ने मनःशक्ति द्वारा गर्भस्थ शिशु पर इच्छित परिवर्तन करने चाहे। अतः उसने बच्चे को वक्ता बनाने के लिए बड़े-बड़े प्रसिद्ध वक्ताओं के भाषण ध्यानपूर्वक सुनना आरम्भ किया और आकर उसी प्रकार भाषण देने की कोशिश करती थी। सुयोग्य वक्ताओं के लेख एवं कवितायें बड़ी रुचिपूर्वक पढ़ती एवं हर वक्त अपने लक्ष्य का विचार रखती। प्रसव होने पर बालक में वक्तृत्व शक्ति का विशेष विकास पाया गया। इसी प्रकार एक दूसरे बच्चे को कुशल चित्रकार बनाने के लिए प्रसिद्ध-प्रसिद्ध चित्रकारों के चित्र ध्यानपूर्वक देखती रही एवं स्वयं भी अभ्यास करती रही। नतीजा यह हुआ कि बच्चा बड़ा होने पर प्रसिद्ध चित्रकार हुआ।

यद्यपि यह बात निश्चित है कि समागम के समय पुरुष के शुक्र एवं स्त्री के आर्तव की प्रबलता के अनुसार गर्भ में पुत्र पुत्री बनने की प्रवृत्ति होती है तथापि वह प्रबल नहीं होती याने इतनी प्रबल नहीं होती कि प्रारम्भ में ही प्रयत्न कर (साधनों से) उसे बदला न जा सके। अर्थात् बाद के संस्कारों व प्रभावों से परिवर्तन सम्भव है। यह कार्य माता के विशिष्ट खानपान, दिनचर्या, जलवायु, अध्ययन, विशेष संस्कार एवं विशिष्ट औषधियों से शरीर में घटा-बढ़ी उत्पन्न होकर होता है। रसायन वाजीकरण एवं पुत्रप्रद औषधियों का आयुर्वेद में विस्तृत विधान है। इसी हेतु पुत्रेष्टि यज्ञ का भी विधान है (जिससे इच्छित पुत्र ही हो) जिन्हें इसकी विधि देखनी हो चरक संहिता में देखें। इसी की पुष्टि पाश्चात्य वैज्ञानिक भी करते हैं। Human embroyology का लेखक लिखता है कि—

Every mbroy starts life as a bisexual body. The differentiation into the two sexs starts in the seventh week. After seventh week the special chromosomes with some chemical substance and harmonal effect will determine the sex.

अर्थात् गर्भस्थ बच्चा द्विलैंगिक (प्रारम्भ में) होता है या यों कहिये कि छठे सप्ताह तक इसका कोई लिंग नहीं होता। सातवें सप्ताह में लिंग लक्षण प्रकट होने लगते हैं। सातवें सप्ताह बाद विशेष क्रोमोसोम, कुछ विशेष रासायनिक पदार्थ एवं ग्रन्थि-स्राव लिङ्ग का निर्णय करेंगे। यह इस युग की खोज है। आज से हजारों वर्ष पहले की आयुर्वेद की खोज देखिये—

तयोकर्मणा वेदोक्तेनं विवर्तनमुपदिश्यते '''गर्भस्य पुंसवनमस्यै दद्यात्।

अर्थात् इन दोनों अंकुरों को (पुत्रांकुर व कन्यांकुर) हम उनके स्त्रीत्व व पुँसत्व के व्यक्त होने से पूर्व, वेदोक्त कर्म का सम्यक् प्रकार से प्रयोग करके बदल भी सकते हैं। पुत्रांकुर को कन्यांकुर में एवं कन्यांकुर को पुत्रांकुर में बदला जा सकता है अर्थात् गर्भांकुर की व्यक्तता के पूर्व गर्भ-स्थिति से लेकर दो माह तक पुंसवन औषधि दी जा सकती है इसके बाद गर्भ के अङ्ग-प्रत्यंग बनने लगते हैं इसलिए लिङ्ग व्यक्त होने के पश्चात् औषधि देना व्यर्थ है—फिर तो गर्भ पुष्टिकर औषधि देनी चाहिए।

आचार्य वाग्भट्ट ने स्पष्ट लिखा है कि—

इच्छेतां यादृशं पुत्रं, तद्रूप चरितांश्चतौ।
चिंतयेतां जनपदांस्तथा चार परिच्छदौ॥

अर्थात् जिस प्रकार का पुत्र माता पिता चाहें उसी के अनुरूप चरित्र, देश, आहार, विहारादि का ध्यान करें एवं आचरण बनावें।

चतुर्थ माह में बच्चे (गर्भाशय संतान) में हृदय बन जाता है इसलिये गर्भिणी को दौहृदिनी

फड़ने लग जाते हैं। इसी समय में गर्भ के चित्त में वेदना का अनुभव होने लग जाता है। तब वह पूर्व जन्मानुभूत विषय समय की प्रार्थना करने लग जाता है इसे ही दौहृद कहते हैं। विद्वान लोग गर्भकालीन दौहृद की अवमानना या उपेक्षा करना वांछनीय नहीं समझते क्योंकि ऐसा करने से या तो गर्भ का विनाश होजाता है या उसमें विकार उत्पन्न हो जाते हैं। यदि मन का व्यापार श्रेष्ठ है तो संतान श्रेष्ठ होगी और यदि प्रज्ञापराध से विकृत है तो संतान भी विकृत होगी। इस समय मन के व्यापार का अवरोध नहीं करना चाहिए। मन के व्यापार में संस्कारों का महत्व है और यह सत्य है कि संस्कारित मानव श्रेष्ठ होगा। सार यह है कि गर्भवती की इच्छा किसी न किसी रूप में अवश्य पूरी होती रहनी चाहिए वर्ना संतान उत्तम नहीं होगी। सुश्रुत ने स्पष्ट लिखा है कि—

दौहृद विमाननात कुब्जं, कुणि, खंज······
······वीर्यवंतं चिरायुषं च पुत्र जनयति।

कभी कभी दौहृद की इच्छाओं को सुनकर आश्चर्य हुए बिना नहीं करता—सुभद्रा को चक्रव्यूह भेदन विद्या जानने की इच्छा हुई थी (उस वक्त वीरता का वातावरण था) इसी प्रकार कौशलराजा-दधिति की गर्भवती स्त्री को सूर्योदय के समय क्रीड़ा क्षेत्र में चतुरंगिणी सेना को देखने व खंग का धोवन पीने की इच्छा हुई थी (शत्रु से पराजित नृप साधु वेश में एक कुम्हार के घर छिप कर रहते थे) महाराज दिलीप की की पत्नी सुदक्षिणा को मृतिका-भक्षण का दौहृद हुआ था (चक्रवर्ती राज्य की कामना) भगवती सीता को वन सुषमा का दौहृद हुआ और राम ने उसे पूर्ण किया। वे पूर्व पुरुष समझते थे कि कहीं हमारी गलती या लापरवाही का परिणाम संतान को न भुगतना पड़े। पर आज तो दौहृद भी अजीब ही होंगे जो विलासितापूर्ण या पतन की ओर लेजाने वाले होंगे क्योंकि पुरुष समाज ने स्वयं ही निकृष्ट वातावरण बना रखा है रहन सहन भी इसी तरह का है। फिर भी वाग्भट्टाचार्य का कहना है कि—

गर्भवती की इच्छाओं को पूर्ण न करना बुरा है। अगर गर्भवती अपथ्य पदार्थ भी मांगे तो भी थोड़ा देना ही चाहिए।

दौहृद से भावी सन्तति का अन्दाजा लगजाता है कि होने वाली सन्तति किस प्रकार की होगी। सुश्रुत ने स्पष्ट लिखा है कि—

जिस गर्भवती स्त्री को राजा के दर्शन की इच्छा होती है वह धनवान एवं भाग्यशाली कुमार को जन्म देती है। जिसको दुकूल पट्ट, कौशेय वस्त्र एवं आभूषण आदि की चाह की होती है वह अलंकार प्रिय एवं सुन्दर पुत्र उत्पन्न करती है। जिसको तपस्वियों के निवास स्थान में रहने की इच्छा हो वह धर्मात्मा एवं संयमी पुत्र को उत्पन्न करती है। जिसे देव मूर्ति देखने की इच्छा होती हो वह पार्षद पुत्र उत्पन्न करती है। जिसे हिंसक पशु देखने की इच्छा हो वह हिंसाशील पुत्र जनती है। गोह का मांस खाने की इच्छा करने वाली निद्रालु एवं दौड़ने वाले पुत्र को जन्म देती है। जिसे गो मांस की इच्छा होती है वह बलवान एवं कष्ट-सहिष्णु बालक उत्पन्न करती है। जिसे भैंस के मांस से रुचि होती है वह शूर वीर रक्त नेत्र वाला पुत्र उत्पन्न करती है। जिसे वाराह मांस में रुचि हो वह निद्रालु शूरवीर पुत्र पैदा करती है। जिसकी मृग मांस में रुचि हो तो वह विक्रांत, जंघाल एवं घुमक्कड़ पुत्र जनती है। सृमर मांस की इच्छा वाली स्त्री चंचल मन वाली संतान को और तीतर मांस की इच्छा वाली डरपोक संतान को जन्म देती है। सार यह है कि गर्भवती जिस जिस पदार्थ की कामना करती है वह उन्हीं पदार्थों के समान शरीर आचार और स्वभाव वाली संतान पैदा करती है।

—श्री डा० ताराचंद लोढ़ा,
किशनगढ़ (राजस्थान)

केवल रजिस्टर्ड चिकित्सकों के लिए

धन्वन्तरि कार्यालय

विजयगढ़ (अलीगढ़)

का

सूचीपत्र
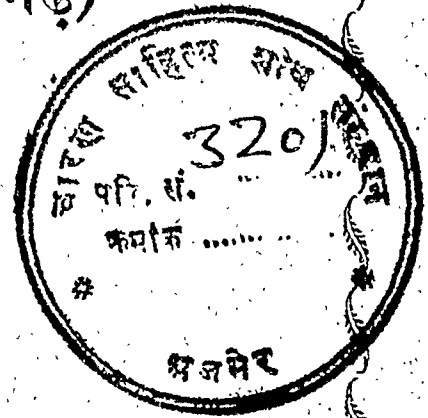
हम गत ६२ वर्षों से शास्त्रोक्त विधि से अत्युत्तम द्रव्यों द्वारा पूर्ण प्रभावशाली आयुर्वेदीय औषधियों का निर्माण कर भारत के प्रतिष्ठित चिकित्सकों को उचित मूल्य पर सप्लाई कर रहे हैं। आपसे साग्रह निवेदन है कि आप भी हमारी औषधियों का व्यवहार करें।

संस्थापित १८६८

—नियम—

१. कमीशन—

अ. १०) से कम मूल्य की दवा मंगाने पर कोई कमीशन नहीं दिया जायगा।

आ. २५) तक की दवा मंगाने पर =) प्रति रुपया कमीशन दिया जायगा।

इ. २५) से अधिक मूल्य की दवा मंगाने पर ।) प्रति रुपया कमीशन दिया जायगा।

ई. १००) से अधिक मूल्य की दवा मंगाने पर ।) प्रति रुपया कमीशन दिया जायगा तथा मालगाड़ी का किराया कार्यालय देगा।

उ. ५०) से अधिक नेट-मूल्य (कमीशन कम करके) के रस-रसायन मूल्यवान औषधियां मंगाने पर पोस्ट व्यय कार्यालय देगा।

२. आर्डर देते समय—

अ. आदेशपत्र में औषधियों का नाम, उनका नम्बर तोल पैकिङ्ग की तोल तथा मूल्य सभी बातें स्पष्ट लिखें। नीचे मूल्य का जोड़ लगावें तथा उपर्युक्त नियमानुसार जो कमीशन बनता हो उसको भी लिखें। यदि आप एजेंट हैं तो एजेंसी नम्बर भी लिखें।

आ. हर पत्र में अपना पूरा पता पास के रेलवे स्टेशन का नाम अवश्य लिखें।

इ. पार्सल पोस्ट से भेजी जाय या रेल से, सवारीगाड़ी से भेजी जाय या मालगाड़ी से यह विवरण अवश्य लिखना चहिए।

ई. आर्डर देते समय चौथाई मूल्य अथवा कम से कम ५) एडवांस मनियार्डर से अवश्य भेजें तथा आदेशपत्र में मनियार्डर का नम्बर व तारीख लिख दें।

३—दवा भेजते समय पैकिङ्ग करने में पूर्ण सावधानी रखी जाती है और प्राय: टूट-फूट नहीं होती। किंतु अगर किसी कारण कोई टूट-फूट हो जाती है तो उसका जिम्मेदार कार्यालय नहीं है।

४—पार्सल मंगाकर वी. पी. लौटाना अनुचित है। एक वार वी. पी. वापस आने पर कार्यालय पुन: उस ग्राहक को वी. पी. नहीं भेजेगा तथा खर्चा लेने का हकदार होगा। यदि बिल में कोई भूल है तो वी. पी. छुटाकर पत्र डालकर उसका सुधार करालें।

५—हमारे यहां उधार का लेना देना कतई नहीं है। बीजक का रुपया बैंक या वी. पी. से लिया जाता है।

६—हमारे यहां ८० तोले का १ सेर, ४० सेर का एक मन माना जाता है। द्रव [पतली] औषधि २ औंस की शीशी में एक छटांक मानी जाती है।

७—उत्तर प्रदेश से बाहर के ग्राहकों को अन्तर्प्रान्तीय बिक्री कर ७ प्रतिशत देना होगा। सी-फार्म आर्डर के साथ [बाद में नहीं] मिलने पर यह टैक्स नहीं लगाया जायगा।

८—ग्राहकों को पार्सल का बारदाना, पैकिंग व्यय, पोस्ट-व्यय स्टेशन पहुँचाई आदि सभी खर्च पृथक् देने होते हैं।

९—धन्वन्तरि कार्यालय के किसी विभाग का कोई भी झगड़ा अलीगढ़ की अदालत में तय होगा।

१०—नियमों में अथवा औषधियों के भावों में किसी भी समय सूचना दिये विना परिवर्तन करने का कार्यालय को पूरा अधिकार है।

अन्तर्प्रान्तीय बिक्री कर

उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों के ग्राहकों को अन्तर्प्रान्तीय बिक्री कर ७ प्रतिशत देना होगा। यदि इससे आप छुटकारा पाना चाहें तो अपने क्षेत्र के बिक्री कर कार्यालय में अपने फर्म की रजिस्ट्री करावें और वहां से सी-फार्म की कापी प्राप्त करलें। आर्डर देते समय उस कापी से एक फार्म भर कर आर्डर के साथ भेज दिया करें। आर्डर के साथ [बाद में नहीं] सी फार्म मिलने पर हम सैल-टैक्स नहीं लेंगे। सी-फार्म आर्डर के साथ न मिलने पर ७% सैल टैक्स अवश्य लगाया जायगा।

६२ वर्ष पुराना विश्वस्त व विशाल कारखाना

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़

की शास्त्रोक्त एवं पेटेंट औषधियों का

सूचीपत्र
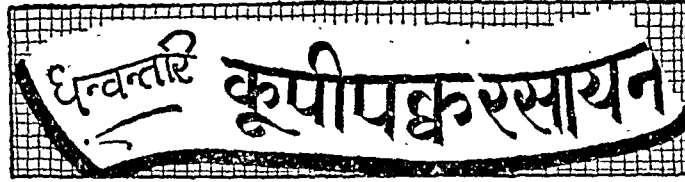
हमने कूपीपक्व रसायन बनाने में एक लम्बे समय में जो अनुभव किया है तथा इसकी बारीकियों को जितना हमने जाना है वह अन्य अनेकों नवीन फार्मेसी वाले कदापि नहीं जान सकते। हम इस विशेष अनुभव के आधार पर सर्वोत्तम रसायन निर्माण करते हैं और इसी कारण उनकी उत्तमता का दावा कर सकते हैं। अधिक न लिखते हुए आपसे परीक्षा करने का आग्रह करते हैं।

	१ मा.	३ मा.	१ तो.
सिद्ध मकरध्वज नं. १	४।-)	१२।।)	४८)
सिद्ध मकरध्वज नं. १ खूब बारीक पीसकर १-१ रत्ती की ८ पुड़िया १ शीशी में	५)	×	×
सिद्ध मकरध्वज नं. २	२।।।-)	८।-)	३३)
सिद्ध मकरध्वज नं. ३	२।)	६।।)	२५)
सिद्ध मकरध्वज नं. ४	२।)	६।।)	२५)
सिद्ध मकरध्वज नं. ५	१।।।-)	५।-)	२१)
सिद्ध मकरध्वज नं. ६	१।)	३।।=)	१४)
सिद्ध चन्द्रोदय नं. १	६।।।-)	२०-)	८०)
अनुपान मकरध्वज	×	१।।।-)	७)
रससिंदूर नं. १	१।)	३।।)	१३)
रससिंदूर नं. २	।।।-)	२।-)	६)
रससिंदूर नं. ३	।।।)	२-)	८)

	१ मा.	३ मा.	१ तो.
मल्लचन्द्रोदय	४।-)	१२।।)	४८)
मल्लसिंदूर	।।।-)	२।-)	६)
तालसिंदूर	।।।-)	२।-)	६)
ताम्रसिंदूर	।।।-)	२।-)	६)
सिलासिंदूर	।।।-)	२।-)	६)
स्वर्णवङ्ग भस्म	।=)	१)	३।।)
मृतसंजीवनी रस	।≡)	१=)	४।)
रसकर्पूर (कर्पूर भांडेश्वर)	।।।≡)	२।।-)	१०)
रसमाणिक्य	।=)	१)	३।।)
समीरपन्नग रस नं. १	२।।-)	७।।-)	३०)
समीरपन्नग रस नं. २	।।।-)	२।-)	६)
पंचसूत रस	।।।-)	२।-)	६)
स्वर्ण भूपतिरस	२।।-)	७।।-)	३०)
व्याधीहरण रस	१।)	३।।-)	१४)

★ भस्में ★

धातु उपधातु की भस्में वही उत्तम होती हैं जो अच्छी प्रकार शोधन करने के पश्चात् भस्म की गई हों तथा जो निरुत्थ हों। आयुर्वेद शास्त्र में ऐसी भस्म जो पारद, हिंगुल, हरताल, मंसिल द्वारा भस्म की गई हों और जो पुनः जीवित न हों, सर्वोत्तम मानी गई हैं। तथा जड़ी बूटियों से की ग

भस्में आयुर्वेदीय शास्त्र के अनुसार (शोधन करने के बाद) किन्तु अपनी विशेष क्रिया द्वारा बनाई जाती हैं। इसीलिए जिन्हें इस निर्माण कार्य में अधिक समय व्यतीत हो चुका है वही उत्तम भस्में बना सकते हैं। इसी प्रकार भस्मों में जितने अधिक पुट लगाये जाते हैं वह उतनी ही अधिक उपयोगी होती हैं। अन्य नवीन फार्मेसी वाले केवल वनौषधि द्वारा बहुत ही कम पुट देकर साधारण भस्में बना लेते हैं। इसीलिए वह हमारी भस्मों के समान लाभप्रद सिद्ध नहीं होती हैं।

	३ मा.	१ तो.	५ तो.	१० तो.
अभ्रक भस्म नं. १	१०–)	४०)	१६०)	×
अभ्रक भस्म नं. २	।।।–)	३–)	१५)	२८)
अभ्रक भस्म नं. ३	।≡)	१।।–)	७।।)	१४)
अकीक भस्म	१–)	४)	१६)	३५)
कपर्द [कौड़ीभस्म]	≡)	।=)	१।।।)	३)
कान्तलोह भस्म	।।–)	२–)	१०)	१६)
गोदन्ती हरताल भस्म	≡)	।=)	१।।।)	३)
जहरमोहरा भस्म	।।।–)	३)	१४)	२७)
तबकी हरताल भस्म	२।–)	६)	४०)	×
ताम्रभस्म नं. १	१।।–)	६)	२८)	×
ताम्रभस्म नं० २	।।।–)	३–)	१५)	२८)
ताम्रभस्म नं. ३	।≡)	१।।–)	७।।)	१४)
नागभस्म नं० १	।।।–)	३–)	१५)	२८)
नागभस्म नं० २	।=)	१।)	६)	११)
प्रवालभस्म नं. १	।≡)	१।।–)	७।।)	१४)
प्रवालभस्म नं. २	।।–)	२–)	१०)	१६)
प्रवालभस्म नं० ३	।।–)	२–)	१०)	१६)
प्रवालभस्म नं० ४	।।)	१।।।=)	८)	१५)
प्रवालभस्म चन्द्रपुटी	।।)	१।।।=)	८)	१५)
बंगभस्म नं. १	।।=)	२।)	१०)	१६)
बंगभस्म नं. २	।–)	१)	४।।)	६)
वैक्रान्त भस्म	२)	७।।)	३५)	×
मल्ल (संखिया) भस्म	१।।–)	६)	२८)	×
मृगशृंग भस्म (श्वेत)	≡)	।।=)	२।।।)	५)
माणिक्य भस्म	४)	१५)	७२)	×
मांडूर (कीट) भस्म नं. १ रक्तवर्ण	।)	।।।)	३।)	६)
मांडूर (कीट) भस्म नं. २ कृष्णवर्ण	≡)	।।=)	२।।।)	५)
मुक्ताभस्म नं. १	२५–)	१००)	×	×
मुक्ताभस्म नं. २	२१–)	८४)	×	×
यशदभस्म	।।)	१।।।)	८)	१५)
रौप्यभस्म नं० १	३–)	१२)	५५)	×
रौप्यभस्म नं० २	२।–)	६)	४०)	×
लौहभस्म नं० १	२–)	८)	३७।।)	×
लौहभस्म नं० २	।।)	१।।।)	८)	१५)
लौहभस्म नं० ३	।)	।।।–)	४)	७।।)
स्वर्णभस्म	५१)	२००)	×	×
स्वर्ण माक्षिक भस्म	।।)	१।।।)	८)	१६)
शङ्खभस्म	=)	।=)	१।।।)	३)
शंकर लौह भस्म	२–)	८)	३७।।)	×
शुक्ति (मोतीसीप) भस्म	≡)	।।–)	२।।)	४।।)
संगजराहत भस्म	।)	।।।–)	४)	७।।)
त्रिवंग भस्म नं. १	१।)	४।।)	२२।।)	×
त्रिवंग भस्म नं० २	।–)	१)	४।।)	६)

	३ माशा	१ तोला	५ तोला
प्रवाल पिष्टी	।।–)	२)	६)
मुक्तापिष्टी नं. १	२५–)	१००)	×
,, ,, नं. २	२०–)	८०)	×
अकीक पिष्टी	।।=)	२।)	१०)
जहर मोहरा पिष्टी	।।=)	२।)	१०)
कहरवा पिष्टी	२।।)	६)	४०)
मुक्ताशुक्ति पिष्टी	≡)	।≡)	२)
माणिक्य पिष्टी	१।।–)	६)	२८)
वैक्रान्त पिष्टी	१।।–)	६)	२८)

ये द्रव्य शास्त्रोक्त विधि से शोधित हैं। औषधि निर्माण में निःसंकोच व्यवहार कीजियेगा। इनके द्वारा निर्माण की गई औषधियां पूर्ण प्रभावशाली प्रमाणित होंगी।

	१ तोला	१० तोला	१ सेर
कज्जली नं. १	२-)	२०)	×
शु. गन्धक आंवलासार	।।)	४)	२४)
शु. बच्छनाग	।।=)	६)	×
शु. विषबीज	।।।)	७)	×
शु. जयपाल	।।।)	७)	×
शु. ताल (हरताल)	१।)	१२)	×
शु. भल्लातक	।।=)	६)	×
शु. ताम्रचूर्ण	×	२)	१५)
शु. लोह (फौलाद) चूर्ण	×	।।।-)	६)
शु. शिला	१।)	१२)	×
धान्याभ्रक	×	।।।-)	६)
शु. हिंगुल	२-)	२०)	×
पारद हिंगुलोत्थ शु.	३।।)	३४)	×
पारद विशेष शु.	७)	×	×
शु. माण्डूर	×	।-)	२)
शु. धतूरा बीज	।।)	४)	×
शु. गूगल	×	।।-)	१२)

आयुर्वेद की औषधियों में पर्पटी का स्थान बहुत ऊंचा है किन्तु इनको जितने उत्तम पारद से तैयार किया जायगा, ये उतना ही अधिक गुणप्रद होंगी। हम विशेष रीति से पारद को तैयार करके फिर पर्पटी तैयार करते हैं, इसलिये वे बहुत गुण करती हैं।

एक बार नं. १ की पर्पटी व्यवहार करके उनके चमत्कारिक प्रभाव को देखें। सभी के सुभीते के लिये दोनों प्रकार की पर्पटी तैयार कराते हैं।

	१ मा.	१ तो.	५ तो.
ताम्र पर्पटी नं० १	।।≡)	८)	३५)
ताम्र पर्पटी नं. २	।-)।।	४)	१७।।)
पंचामृत पर्पटी नं. १	।।≡)	८)	३५)
पंचामृत पर्पटी नं. २	।=)।।	४)	१७।।)
विजय पर्पटी व स्वर्ण मुक्ता घटित-	३)	३५)	×
बोल पर्पटी नं. १	।।≡)	८)	३५)
बोल पर्पटी नं. २	।-)।।	४)	१७।।)
रस पर्पटी नं. १	।।=)	७)	३२)
रस पर्पटी नं. २	।-)	३।।)	१५)
लोह पर्पटी नं. १	।।≡)	८)	३५)
लोह पर्पटी नं. २	।-)।।	४)	१७।।)
श्वेत पर्पटी	=)।।	।≡)	२)
स्वर्ण पर्पटी नं. १	३)	३२)	×
स्वर्ण पर्पटी नं. २	२)	२१)	×

नोट— नं. १ की पर्पटी विशेष शुद्ध पारद से निर्मित हैं तथा नं. २ हिंगुलोत्थ पारद द्वारा निर्मित हैं। नं. १ की पर्पटी की मात्रा कम और गुण अधिक होने से वैद्य अधिक व्यवहार में लेते हैं।

बहुमूल्य रस-रसायन गुटिका

ये औषधियां स्वयं अपनी देख रेख में सर्वोत्तम स्वर्ण वर्क, मुक्ता कस्तूरी आदि बहुमूल्य द्रव्य डालकर बनाई जाती हैं इनकी प्रामाणिकता एवं गुणों में किसी प्रकार की शंका न करें।

	१ मा.	१ तो.	५ तो.
आमवातेश्वर रस	१॥)	१६)	७५)
वृ० कस्तूरी भैरव रस	२)	२२)	१०५)
कस्तूरी भैरव रस	१॥)	१६)	७५)
कस्तूरी भूषण रस	१॥।)	२०)	९५)
वृ० काम चूरामणि रस	१।=)	१५)	७०)
कामदुधा रस (मौक्तिक-युक्त)-	१-)	१२)	५५)
कामिनी विद्रावणरस	॥।-)	९)	४०)
कुमार कल्याण रस	३॥)	४०)	१९५)
कृष्ण चतुर्मुख रस	१॥)	१७)	८०)
चतुर्मुख चिन्तामणिरस	२)	२२॥)	११०)
जयमङ्गलरस (स्वर्णयुक्त)	३-)	३६)	१७५)
प्रवाल पंचामृत रस	१।)	१४)	६८)
पुटपक्व विषमज्वरांतक लौह-	१॥)	१७)	८०)
वृ० पूर्णचन्द्ररस	२-)	२४)	११५)
वसन्त कुसुमाकर रस	३)	३३)	१६०)
वृ० वातचिन्तामणि रस	३)	३३)	१६०)
ब्राह्मी वटी (स्वर्ण मुक्तायुक्त)-	३॥)	४०)	१९५)
मृगांकपोटली रस	८-)	९६)	×

	१ मा.	१ तो.	५ तो.
मधुमेहान्तक रस		१० गोली	२≡)
मधुरान्तक वटी (मौक्तिक वटी)-	॥।-)	९)	४०)
मन्मथाभ्र रस	१।)	१४)	६८)
महाराज नृपतिवल्लभ रस-	॥।=)	१०)	४८)
महालक्ष्मी विलास रस	॥।=)	१०)	४८)
महाराज वङ्गभस्म	॥।-)	९)	४०)
योगेन्द्ररस	४-)	४८)	२३५)
रस राजरस	२॥-)	३०)	१४५)
राज मृगांक रस	३)	३३)	१६०)
वृ० लोकनाथ रस	॥)	५)	२४)
श्वास चिन्तामणिरस	१॥।)	२०)	९५)
स्वर्णवसन्त मालती नं० १	३)	३३)	१६०)
स्वर्णवसन्त मालती नं. २	१॥।-)	२१)	१००)
सर्वाङ्ग सुन्दर रस	२-)	२४)	११५)
संग्रहणी कपाटरस नं. १	३॥)	४०)	१९५)
सूतशेखर रस	१॥)	१७)	८०)
हिरण्य गर्भ पोटली रस	३)	३३)	१६०)
हेमगर्भ रस	३-)	३६)	१७५)

	१ तो.	५ तो.	२० तो.
अग्निकुमार	॥=)	३)	११)
अजीर्ण कंटक रस	॥।-)	३॥।)	१४)
अर्शान्तक वटी	१।)	६)	२२)
अग्नितुण्डी वटी	॥।-)	३॥।)	१४)

	१ तो.	५ तो.	२०तो.
आनन्द भैरव रस	१-)	५)	१९)
आनन्दोदय रस	१॥।-)	९)	३५)
आदित्य रस	१।-	६।)	२४)
आमल की रसायन	१-)	५)	१९)

	१ तोला	५ तोला	२० तोला
आरोग्य वर्द्धिनी वटी	।।।−)	३।।।)	१४)
इच्छा भेदी रस	।।।−)	३।।।)	१४)
इच्छा भेदी वटी	।।।=)	४)	१५)
उपदंश कुठार रस	।।।−)	३।।।)	१४)
उष्ण वातघ्न वटी	२−)	१०)	३९)
एकांग वीर रस	५)	२४)	९५)
एलादि वटी	।≡)	२)	७।।)
एलुआदि वटी	।≡)	२)	७।।)
कर्पूर रस	५)	२४)	९०)
कनक सुन्दर रस	।।।−)	३।।।)	१४)
कफ कुठार रस	१।)	६)	२२)
कफ केतुरस	।।।−)	३।।।)	१४)
करंजादि वटी	५० गोली		१)
कामाग्नि संदीपन मोदक	।।)	२।)	८)
कामधेनु रस	२।।)	१२)	४५)
कामदुधा रस नं० २	२−)	१०)	३८)
कांकायन गुटिका	।≡)	२)	७।।)
कीट मर्द रस	।।−)	२।।)	९)
क्रव्यादि रस	४।।)	२०)	७५)
कृमिकुठार रस	।।।≡)	४।।)	१६)
खैरसार वटी	।≡)	२)	७।।)
गंगाधर रस	२−)	१०)	३८)
गंधक वटी	।≡)	२)	७।।)
गंधक रसायन	१।।।)	८)	३०)
गर्भविनोद रस	।।।−)	३।।)	१४)
गर्भपाल रस	१।।।)	८)	३०)
गर्भचिन्तामणि रस	३।।)	१६)	६०)
गुल्मकुठार रस	१।)	६)	२२)
गुल्मकालानल रस	१।)	६)	२२)
गुड़पिप्पली	।।)	२।)	८)
गुड़मार वटी	।≡)	२)	७।।)
ग्रहणीगजेन्द्र रस	३)	१४)	५०)
ग्रहणीकपाट रस नं० २	१।)	६)	२२)
ग्रहणीकपाट रस लाल	२।।)	१२)	४५)
घोड़ाचोली रस (अश्वकंचुकी)	।।≡)	३)	११)

	१ तोला	५ तोला	२० तोला
चन्द्रप्रभा वटी	।।।)	३।।)	१४)
चन्द्रोदय वर्ती	।।।)	३।।)	१४)
चन्द्रकला रस	१।)	६)	२२)
चन्द्रांशु रस	१)	४।।)	१६)
चन्द्रामृत रस	१)	४।।)	१६)
चित्रकादि वटी	।≡)	२)	७।।)
ज्वरांकुश रस	।।।)	३।।)	१४)
जयवटी	१।।।)	८)	३०)
जलोदरारि वटी	१)	४।।)	१६)
जातीफलादि रस	१−)	४।।।)	१८)
तक्रवटी	१)	४।।)	१६)
दुर्जलजेता रस	।।।)	३।।)	१४)
दुग्धवटी नं० १	६)	२८)	१००)
दुग्धवटी नं० २	।।।)	३।।)	१४)
नवज्वरहर वटी	।।।)	३।।)	१४)
नष्टपुष्पान्तक रस	३।।)	१७)	६५)
नृपतिवल्लभ रस	१।।)	७)	२७)
नाराच रस	।।।)	३।।)	१४)
नित्यानन्द रस	१−)	५)	१८)
प्रतापलंकेश्वर रस	।।।)	३।।)	१४)
प्रदरारि रस	।।।)	३।।)	१४)
प्रदरान्तक रस	१।।−)	७।।)	२८)
प्लीहारि रस	।।।)	३।।)	१४)
प्राणेश्वर रस	३)	१४)	५५)
प्राणदा गुटिका	।।≡)	३।)	१२)
पंचामृत रस नं० १	।।।)	३।।)	१४)
पंचामृत रस नं० २	१)	४।।)	१६)
पाशुपत रस	१−)	५)	१८)
पीपल ६४ पहरा	३।।)	१७)	६५)
वृ० शंख वटी	।।।)	३।।)	१४)
वृ० वाधिका वटी	२−)	१०)	३८)
वृ० नायकादि रस	।।)	२।=)	९)
बहुमूत्रान्तक रस	१।।।−)	८।।।)	३४)
बहुशाल गुड़	।।−)	२।।)	१०)
बालामृत रस	४।।)	२२)	८५)
ब्राह्मीवटी (स्वर्ण रहित)	२−)	१०)	३८)

	१ तोला	५ तोला	२० तोला
वातगजांकुश रस	१॥।−)	८॥।)	३४)
विषमुष्टिका वटी	॥।−)	३॥।)	१४)
वेताल रस	३)	१४)	५५)
व्योषादि वटी	।≡)	२=)	८)
महामृत्युञ्जय रस (रक्त)	१−)	५)	१६)
मृत्युञ्जय रस (कृष्ण)	१−)	५)	१६)
मकरध्वज वटी (प्रमेह रोग नाशक अत्युत्तम)		५०० गोली	३०)
महागन्धक रस	॥।−)	४)	१६)
मरिच्यादि वटी	।≡)	२=)	८)
महाशूलहर रस	१।)	६)	२३)
मदनानन्द मोदक	॥)	२।)	८)
महावात विध्वंस रस	३−)	१५)	५५)
मार्कण्डेय रस	॥।−)	४)	१६)
मूत्रकृच्छ्रान्तक रस	३−)	१५)	५५)
मेहमुद्गर रस	॥।−)	४)	१६)
रक्तपित्तान्तक रस	१−)	५)	२०)
रसपीपरी	३−)	१५)	५५)
रामवाण रस	॥।=)	४।)	१६)
लशुनादि वटी	॥)	२।)	८)
लघुमालती वसन्त	३−)	१५)	५५)
लक्ष्मीविलास रस	१॥।)	८)	३०)
लक्ष्मीनारायण रस	२॥)	१२)	४५)
लाई (रस) चूर्ण	॥।−)	४)	१६)
लीलावती गुटिका	॥।)	३॥)	१४)

	१ तो.	५ तोला	२० तोला
लीलाविलास रस	१॥)	७)	२७)
लोकनाथ रस	१॥−)	७॥)	२८)
श्वासकुठार रस	॥।−)	४)	१६)
शंखवटी	॥)	२।)	८)
शंशमनी वटी	१।)	६)	२२)
शिरोवज्र रस	१)	४॥)	१६)
शीतभंजी रस-वटी	१॥।)	८)	३०)
शिलाजीत वटी	१)	४॥)	१६)
शूलवज्रिणी वटी	॥।−)	४)	१६)
शूलगजकेशरी रस	२−)	१०)	३८)
शृंगाराभ्रक रस	१॥।)	८)	३०)
स्मृतिसागर रस	३॥)	१७)	६५)
सन्निपात भैरव रस	१।)	६)	२२)
संजीवनी वटी	॥=)	३)	११)
सर्पगन्धा वटी	१)	४॥)	१६)
समीरगज केशरी	४॥)	२२)	८५)
सिद्धप्राणेश्वर रस	१)	४॥)	१६)
सूतशेखर रस	३−)	१५)	५५)
सूरण मोदक वृ०	।≡)	२=)	८)
सौभाग्य वटी	॥।−)	४।)	१६)
हिंग्वादि वटी	।≡)	२=)	८)
हृदयार्णव रस	२−)	१०)	३८)
त्रिपुर भैरव रस	१)	४॥)	१६)
त्रिभुवनकीर्ति रस	॥।=)	४।)	१६)
त्रिविक्रम रस	३−)	१५)	५५)

धन्वन्तरि लोह मण्डूर

	१ तो.	५ तो.	२० तो.
अम्लपित्तान्तक लोह	१।)	६)	२२)
चन्दनादि लोह	१॥)	७)	२७)
चन्दनादि लोह	१॥।−)	८॥।)	३४)
ताप्यादिलोह	३॥−)	१७॥)	६८)
धात्री लोह	१।)	६)	२२)

	१ तो.	५ तो.	२० तो.
नवायस लोह	॥।−)	४)	१६)
प्रदरारि लोह	१॥−)	७॥)	२८)
प्रदरान्तक लोह	१॥।=)	९)	३५)
पुनर्नवादि माण्डूर	॥=)	३)	११)
विषम ज्वरान्तक लोह	१॥−)	७॥)	२८)

	१ तो.	५ तो.	२० तो.
यकृत् हर लोह	१।)	६)	२२)
शोथोदरारि लोह	१।।।=)	६)	३५)
सर्वज्वरहर लोह	१।)	६)	२२)

	१ तो.	५ तो.	२० तो.
सप्तामृत लोह	१।)	६)	२२)
त्र्यूषणादि लोह	१।)	६)	२२)

	१ तोला	५ तोला	२० तोला
अमृतादि गुग्गुल	।≡)	२)	७।।)
कांचनाद गुग्गुल	।=)	१।।)	५।।)
किशोर गुग्गुल	।=)	१।।)	५।।)
गोक्षुरादि गुग्गुल-	।=)	१।।)	५।।)
पुनर्नवादि गुग्गुल	।=)	१।।)	५।।)
वृ० योगराज गुग्गुल	१।)	६)	२२)

	१ तो.	५ तो.	२० तो.
योगराज गुग्गुल	।=)	१।।)	५।।)
रसाभ्र गुग्गुल	१।)	६)	२२)
रास्नादि गुग्गुल	।=)	१।।)	५।।)
सिंहनाद गुग्गुल	।।)	२।)	८)
त्रयोदशांग गुग्गुल	।।)	२।)	८)
त्रिफलादि गुग्गुल	।=)	१।।=)	६)

★ अरिष्ट-आसव ★

	१ बोतल	१ पौंड	१ अद्धा	८ औंस
अमृतारिष्ट	२।।=)	२।=)	१।≡)	१।)
अर्जुनारिष्ट	२।)	२)	१।)	१—)
अरविन्दासव	३)	२।।—)	१।।=)	१।—)
अशोकारिष्ट	२।)	२)	१।)	१—)
अभयारिष्ट	२।)	२)	१।)	१—)
अश्वगन्धारिष्ट	२।।=)	२।=)	१।≡)	१।)
उसीरासव	२।)	२)	१।)	१—)
कनकासव	२।)	२)	१।)	१—)
कुमारी आसव	२।)	२)	१।)	१—)
कुटजारिष्ट	२।)	२)	१।)	१—)
खदरारिष्ट	२।।=)	२।=)	१।≡)	१।)
चन्दनासव	२।)	२)	१।)	१—)
दशमूलारिष्ट नं. १	५।।)	४।।।=)	२।।।=)	२।।)
दशमूलारिष्ट नं. २	२।।≡)	२।=)	१।≡)	१)
द्राक्षासव [बिना खिंचा]	२।)	२)	१।)	१—)

	१ बोतल	१ पौंड	१ अद्धा	८ औंस
द्राक्षारिष्ट	२।।)	२।)	१।=)	१≡)
देवदार्व्यारिष्ट	२।।=)	२।=)	१।≡)	१।)
पत्राङ्गासव	२।)	२)	१।)	१—)
पिप्पल्यासव	२।)	२)	१।)	१—)
पुनर्नवासव	२।)	२)	१।)	१—)
बल्लभारिष्ट	३।।)	३=)	१।।।=)	१।।=)
बब्बूलारिष्ट	२।)	२)	१।)	१—)
वांसारिष्ट	६)	५।)	३=)	२।।।)
बालरोगांतकारिष्ट	२।।।)	२।।)	१।।)	१।—)
रक्तशोधिकारिष्ट	२।।)	२।)	१।=)	१≡)
रोहितकारिष्ट	२।।)	२।)	१।=)	१≡)
लोहासव	२।)	२)	१।)	१—)
सारस्वतारिष्ट नं. १	×	×	×	६।।)
सारस्वतारिष्ट नं. २	३)	२।।—)	१।।=)	१।—)
सारिवाद्यासव	३)	२।।—)	१।।=)	१।—)

अर्क

	१ बो.	१ पौं.	१ अद्धा	८ औं.
अर्क उसबा	२॥)	२।)	१।=)	१≡)
दशमूल अर्क	२॥)	२।)	१।=)	१≡)
द्राक्षादि अर्क	२॥)	२।)	१।=)	१≡)
महामंजिष्ठादि अर्क	२॥)	२।)	१।=)	१≡)
रास्नादि अर्क	२॥)	२।)	१।=)	१≡)
सुदर्शन अर्क	२॥)	२।)	१।=)	१≡)
अर्क सौंफ	१॥।)	१॥-)	१)	॥।-)
अर्क अजमाइन	२।)	२)	१।)	१-)
अर्क पोदीना	२॥।)	२॥)	१॥)	१।-)

क्वाथ

दशमूल क्वाथ	१ मन ६०)		१ सेर १॥-)
			२ तो. की १०० पुड़िया ६)
दार्व्यादि क्वाथ			१ सेर २॥।=)
			१० तोले की पुड़िया ।=)
देवदार्व्यादि क्वाथ	१ सेर २)	,,	।-)
द्राक्षादि क्वाथ	१ सेर २)	१०तो.कीपु.	।-)
बलादि क्वाथ	१ सेर २)	,,	।-)
महामंजिष्ठादि क्वाथ	१ सेर २॥।=)	,,	।=)
महारास्नादि क्वाथ	१ सेर २॥।=)	,,	।=)
त्रिफलादि क्वाथ	१ सेर २)	,,	।-)

चूर्ण

	१ सेर	५ तोला	५ तो. शी. में
अग्निमुख चूर्ण	१२)	॥।=)	॥।≡)
अविपत्ति कर चूर्ण	१२)	॥।=)	॥।≡)
अजीर्णपानक चूर्ण	१४)	१)	१-)
अग्निवल्लभ क्षार चूर्ण	१७)	१≡)	१।)
उदरभास्कर चूर्ण	१२)	॥।=)	॥।≡)
एलादि चूर्ण	१२)	॥।=)	॥।≡)
कपित्थाष्टक चूर्ण	६)	॥≡)	॥।)
कामदेव चूर्ण	६)	॥≡)	॥।)
कुमकुमादि चूर्ण	८)	॥=)	॥≡)
गंगाधार चूर्ण	८)	॥=)	॥≡)
चन्दनादि चूर्ण	८)	॥=)	॥≡)
ज्वरभैरव चूर्ण	८)	॥=)	॥≡)
जातीफलादि चूर्ण	१६)	१=)	१≡)
तालीसादि चूर्ण	१२)	॥।=)	॥।≡)
दशन संस्कार चूर्ण	१२)	॥।=)	॥।≡)
धातुस्रावहर चूर्ण	१६)	१=)	१≡)
नारायण चूर्ण	८)	॥=)	॥≡)
निम्बादि चूर्ण	८)	॥=)	॥≡)
प्रदरान्तक चूर्ण	८)	॥=)	॥≡)
पंचसकार चूर्ण	८)	॥=)	॥≡)
प्रदरारि चूर्ण	८)	॥=)	॥≡)
पुष्यानुग चूर्ण	६)	॥≡)	॥।)
यवानी खांडव चूर्ण	६)	॥≡)	॥।)
लवंगादि चूर्ण	१४)	१)	१-)
लवण भास्कर चूर्ण	८)	॥=)	॥≡)
स्वप्न प्रमेह हर चूर्ण	१६)	१=)	१≡)
सारस्वत चूर्ण	८)	॥=)	॥≡)
सामुद्रादि चूर्ण	१०)	॥।)	॥।-)
शृंग्यादिचूर्ण	१२)	॥।=)	॥।≡)
सितोपलादि चूर्ण [असली-वंशलोचन से बना]	२०)	१।=)	१॥)
सुदर्शन चूर्ण	८)	॥=)	॥≡)
हिंग्वाष्टक चूर्ण	१२)	॥।=)	॥।≡)
त्रिफलादि चूर्ण	७)	॥-)	॥=)

	१ पौंड	४ औंस	२ औंस
आंवला तैल	६)	१॥-)	॥।-)
इरमेदादि तैल	८)	२-)	१-)
कर्पूरादि तैल	१०)	२॥-)	१।-)
कट्फलादि तैल	६)	१॥-)	॥।-)
कन्दर्प सुन्दर तैल	१०)	२॥-)	१।-)
काशीसादि तैल	७॥)	२)	१-)
किरातादि तैल	६)	१॥-)	॥।-)
कुमारी तैल	६)	१॥-)	॥।-)
ग्रहणी मिहिर तैल	७॥)	२)	१-)
गुडूच्यादि तैल	७॥)	२)	१-)
चन्दनादि तैल	७॥)	२)	१-)
चन्दन बलालाक्षादि तैल-	७॥)	२)	१-)
जात्यादि तैल	७)	१॥।=)	१)
दशमूल तैल	७)	१॥।=)	१)
दार्व्यादि तैल	६)	१॥-)	॥।-)
महानारायण तैल	७)	१॥।=)	१)
पिपल्यादि तैल	६)	१॥-)	॥।-)
पिण्ड तैल	७)	१॥।=)	१)
पुनर्नवादि तैल	७)	१॥।=)	१)

	१ पौंड	४ औंस	२ औंस
ब्राह्मी तैल	८)	२-)	१-)
विल्व तैल	८)	२-)	१-)
विषगर्भ तैल	६)	१॥-)	॥।-)
भृंगराज तैल	७)	१॥।=)	१)
महाविषगर्भ तैल	७)	१॥।=)	१)
बैरोजा का तैल	८)	२-)	१-)
महामरिच्यादि तैल	६)	१॥-)	॥।-)
महामाष तैल	६)	१॥-)	॥।-)
मोंम का तैल	१२)	३-)	१॥-)
राल का तैल	६)	२।-)	१=)
लाक्षादि तैल	७)	१॥।=)	१)
शुष्क मूलादि तैल	७)	१॥।=)	१)
षट्बिन्दु तैल	७)	१॥।=)	१)
हिमसागर तैल	७)	१॥।=)	१)
क्षार तैल	१०)	२॥-)	१।-)

नोट—२ औंस व ४ औंस की शीशियों को यदि कार्ड बक्स में पैक करके लेना चाहें तो ४ औंस पैक के =) प्रति पैक तथा २ औंस पैक के -)॥ प्रति पैक अधिक देना होगा।

	१ पौंड	४ औंस	२ औंस
अर्जुन घृत	८)	२-)	१-)
अशोक घृत	८)	२-)	१-)
अग्नि घृत	८)	२-)	१-)
कदली घृत	१०)	२॥-)	१।-)
कामदेव घृत	१०)	२॥-)	१।-)

	१ पौंड	४ औंस	२ औंस
दूर्बादि घृत	८)	२-)	१-)
धात्री घृत	८)	२-)	१-)
पंचतिक्त घृत	८)	२-)	१-)
फल घृत	८)	२-)	१-)
ब्राह्मी घृत	८)	२-)	१-)

	१ पौंड	४ औंस	२ औंस		१ पौंड	४ औंस	२ औंस
बिन्दु घृत	१०)	२॥–)	१।–)	शृङ्गीगुण घृत	८)	२–)	१–)
महात्रिफादि घृत	६)	२।–)	१≡)	सारस्वत घृत	८)	२–)	१–)

धन्वन्तरि क्षार - सत्व - द्राव

	१ सेर	१० तोला	१ तोला		१ सेर	१० तोला	१ तोला
वज्रक्षार	२०)	३)	।–)	आंकक्षार	२०)	३)	।–)
अपामार्ग	२०)	३)	।–)	केतकी क्षार	२०)	३)	।–)
वांसा क्षार	३०)	४)	।≡)	चना [चणक] क्षार	३०)	४)	।≡)
कटेरी क्षार	३०)	४)	।≡)	यवक्षार	१४)	२)	।)
कदली क्षार	२५)	३॥)	।=)	गिलोय सत्व	२८)	४)	।≡)
इमली क्षार	२०)	३)	।–)	भीमसैनी कपूर	+	+	४)
तिलक्षार	३०)	४)	।≡)	नेत्र बिन्दु	८ औंस १०)	आधा औंस	॥–)
मूली क्षार	३०)	४)	।≡)	शंख द्राव	८ औंस १६)	आधा औंस	१–)
ढाक क्षार	२०)	३)	।–)				

अवलेह

च्यवनप्राश अवलेह १ सेर ६) १ पाव शी. में १॥–)
२ पाव शीशी में ३–)

	१ सेर	१ पाव शीशी में
कुटजावलेह	८)	२=)
कण्टकारी अवलेह	८)	२=)
कुशावलेह	८)	२=)
वांसावलेह	८)	२=)
ब्राह्मरसायन	१०॥)	२॥।)
आर्द्रक खण्ड	८)	२=)

विषमुष्टिकावलेह (वात रोग नाशक) ५ तोला ६)

	१ सेर	१० तोला
कन्दर्प सुन्दर पाक	१०)	१॥)
बादाम पाक	१४)	२)
मूसली पाक	१४)	२)
सुपारी पाक	१०)	१॥)
सौभाग्यसुण्ठी पाक	१०)	१॥)

मधुकाद्यावलेह (स्त्रियों को उपयोगी) १५ तोला ३॥)

मलहम

	१ पौंड	१० तोला
जात्यादि मलहम	८)	२=)
पारदादि मलहम	६)	२।=)
निम्बादि मलहम	१०)	२॥=)

	१ पौंड	१० तोला
दशांग लेप	६)	१॥=)
अग्निदग्धव्रणहर मलहम	६)	१॥=)

बहुमूल्य-द्रव्य

कस्तूरी काश्मीरी उत्तम—	१ तोला ६०)	गौलोचन	१ तोला ४०)
केशर काश्मीरी मोंगरा	१ तोला १८)	चांदी के वर्क	१ तोला ६)
केशर चूरा	१ तोला ८)	स्वर्ण वर्क—बाजार भाव	
अम्बर	१ तोला ३६)		

भस्म निर्माणार्थ

अकीकदाना	५ तोला २)	नीलम खड़	१ तोला ३)
अकीक खड़	५ तोला १)	पिरोजा खड़	१ तोला २)
कहरवा	१ तोला २॥)		
जहरा मोहरा खताई	१ तोला १)		
खर्पर खपरिया	१ तोला २)		
वैक्रान्त खड़	१ तोला २)		
माणिक्य याकूत	१ तोला २)		
पुखराज खड़	१ तोला ३)		

नोट—बहुमूल्य द्रव्य एवं भस्म निर्माणार्थ शीर्षक के अन्तर्गत दिए द्रव्यों के भाव नेट हैं इन पर किसी प्रकार का कमीशनादि नहीं दिया जायगा इन। भावों में घट-बढ़ होना भी सम्भव है। आर्डर सप्लाई के समय जो भाव होगा वह लगाया जायगा।

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ द्वारा निर्मित

अनुभूत एवं सफल

हमारी ये पेटेन्ट औषधियां ६२ वर्ष से भारत भर के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध वैद्यराजों, कविराजों और धर्मार्थ औषधालयों द्वारा व्यवहार हो रही हैं अतः इनकी उत्तमता के विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये।

(अर्थात् निराशबन्धु)

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में सबसे अधिक प्रसिद्ध एवं आशुलाभप्रद महौषधि सिद्ध मकरध्वज ★ नं. १ अर्थात् चन्द्रोदय है। इसी अनुपम रसायन द्वारा इन गोलियों का निर्माण होता है। इसके अति-

★ सिद्ध मकरध्वज नं० १ हम गत ६७ वर्षों से निर्माण कर रहे हैं। तथा अपनी विशेष प्रतिक्रिया द्वारा सर्वोत्तम मकरध्वज का निर्माण करते हैं। इसका तथा अन्य कूपीपक्व औषधियों का विस्तृत वर्णन सेवन विधि "कूपीपक्व रसायन" पुस्तक मंगाकर पढ़िये। मूल्य —)

मिश्र अन्य मूल्यवान एवं प्रभावशाली द्रव्यों को इसमें डाला जाता है। ये गोलियां भोजन को पचाकर रस रक्त आदि सप्त धातुएं क्रमशः सुधारती हुई शुद्ध वीर्य का निर्माण करतीं और शरीर में नव-जीवन व नव स्फुर्ति भर देती हैं। जो व्यक्ति चन्द्रोदय के गुणों को जानते हैं वे इसके प्रभाव में संदेह नहीं कर सकते। वीर्य विकार के साथ होने वाली खांसी जुकाम सर्दी, कमर का दर्द, मन्दाग्नि स्मरणशक्ति का नाश आदि व्याधियां भी दूर होती हैं। क्षुधा बढ़ती है, शरीर हृष्ट-पुष्ट और निरोग बनता है। जो व्यक्ति अनेक औषधियां सेवन कर निराश हो गये हैं उन निराश पुरुषों को यह औषधि बन्धु तुल्य सुख देती है इसीलिये इसका दूसरा नाम "निराश बन्धु" है।

४० वर्ष की आयु के बाद मनुष्य को अपने में एक प्रकार की कमी व शिथिलता का अनुभव होता है। यह रोग-प्रतिरोधक शक्ति (जो हरेक मनुष्य में स्वाभाविक रूप से होती है) में कमी आ जाने के फलस्वरूप होती है। मकरध्वज वटी इस शक्ति को पुनः उत्तेजित करती है और मनुष्य को सबल व स्वस्थ बनाये रखती है। मूल्य—१ शीशी [४१ गोलियों की] २॥=), छोटी शीशी २१ गोलियों की १।≡) १२ शीशी या अधिक एक साथ मंगाने पर रियायती थोक भाव १२ शीशी (४१ गोलियों वाली) का २१॥) नेट।

कुमारकल्याण घुटी

(बालकों के लिए सर्वोत्तम व मीठी घुटी)

हमने बड़े परिश्रम से आयुर्वेद में वर्णित और बालकों की रक्षा करने वाली दिव्य औषधियों से घुटी तैयार की है। इसके सेवन करने वाले बालक कभी बीमार नहीं होते किंतु पुष्ट हो जाते हैं, यह बालकों को बलवान बनाने की बड़ी उत्तम औषधि है। रोगी बालक के लिए तो संजीवनी है। इसके सेवन से बालकों के समस्त रोग जैसे ज्वर, हरे पीले दस्त, अजीर्ण, पेट का दर्द, अफरा, दस्त में कीड़े पड़ जाना, दस्त साफ न होना, सर्दी, कफ, खांसी, पसली चलना, दूध पलटना, सोते में चौंक पड़ना, दांत निकलने के रोग आदि सब दूर हो जाते हैं। शरीर मोटा ताजा और बलवान हो जाता है। पीने में मीठी होने से बच्चे आसानी से पीलेते हैं। मूल्य एक शीशी (आधा औंस) ।=), ४ औंस की शीशी सुन्दर कार्ड बक्स में २)

कुमार रक्षक तैल—इस तैल को बच्चे के सम्पूर्ण शरीर पर धीरे-धीरे रोजाना मालिश करें। आध घण्टे बाद स्नान करायें। बच्चे में स्फूर्ति बढ़ेगी, मांस पेशियां सुदृढ़ हो जांयगी, हड्डियों को ताकत पहुंचेगी, यह तेल इसी अभिप्राय से सर्वोत्तम निर्माण किया गया है। मूल्य—१ शीशी (४ औंस) १॥), छोटी शीशी [२ औंस] ॥।=)

ज्वरारि—कुनीन रहित विशुद्ध आयुर्वेदिक, ज्वर-जूड़ी को शीघ्र नष्ट करने वाली सस्ती एवं सर्वोत्तम महौषधि है। जूड़ी और उसके उपद्रव को नष्ट करती है। मूल्य—१० मात्रा की शीशी १), २० मात्रा की बड़ी शीशी १॥), ५० मात्रा की पूरी बोतल ३।)

कासारि—हर प्रकार की खांसी को दूर करने वाली सर्वत्र प्रशंसित अद्वितीय औषधि। बांसा पत्र क्वाथ एवं पिप्पली आदि कासनाशक आयुर्वेदिक द्रव्यों से निर्मित शर्बत है। अन्य औषधियों के साथ इसको अनुपान रूप में देना भी उपयोगी है। सूखी व तर दोनों प्रकार की खांसी को नष्ट करने वाली सस्ती दवा है। मूल्य—२० मात्रा की शीशी १), ५ मात्रा की शीशी ।=), १ पौंड ३॥)

श्वेतकुष्ठहर सैट—इसमें श्वेतकुष्ठ हर अवलेह, वटी व घृत तीन औषधियां हैं। इन तीन औषधियों के विधिवत् सेवन करने से श्वेतकुष्ठ अवश्य नष्ट होता है। धैर्य के साथ इन औषधियों को अधिक

दिन व्यवहार कीजिये अवश्य लाभ होगा।
मूल्य—१५ दिन की तीनों औषधियों का ५)

रक्तदोषहर सैट—इसमें धन्वन्तरि आयुर्वेदीय सालसा परेला, तालकेश्वर रस, इन्द्रवारुणादि क्वाथ—ये तीन औषधियां हैं। इसके सेवन से सभी प्रकार के रक्तविकार जनित विकार तथा चर्मरोग नष्ट होकर शरीर सुडौल बनता है। मूल्य—१५ दिन की तीनों दवाओं का ६), पोस्ट व्यय ४॥)

अर्शातक सैट—इसमें बटी, मलहम तथा चूर्ण तीन औषधियां हैं। इसके प्रयोग से दोनों प्रकार के अर्श अवश्य नष्ट होते हैं। अर्श से आने वाला रक्त २-१ दिन में बन्द हो जाता है। मूल्य—१५ दिन की तीनों दवाओं का ३)

वातरोगहर सैट—इसमें वातरोगहर तैल, रस एवं अवलेह–तीन औषधियां हैं। इन तीन औषधियों के व्यवहार से जोड़ों का दर्द, सूजन, अङ्ग विशेष की पीड़ा, पक्षाघात आदि समस्त वात-व्याधियों में लाभ होता है। ये तीन औषधियां अति मूल्यवान एलोपैथिक औषधियों को भी मात करती हैं। १५ दिन सेवन योग्य तीनों औषधियों का मूल्य १०)

कामिनीगर्भरक्षक—

बार-बार गर्भस्राव हो जाना, बच्चों का छोटी आयु में ही मर जाना, इन भयङ्कर व्याधियों से अनेक सुकुमार स्त्रियां आजकल पीड़ित हैं। यदि आप कामिनीगर्भरक्षक को गर्भ के प्रथम माह से नवम माह तक सेवन करावें तो न गर्भपात होगा और न गर्भस्राव। बच्चा स्वस्थ,सुन्दर और सुडौल उत्पन्न होगा। मूल्य—२ औंस की १ शीशी २)

शिरोविरेचनीय सुरमा—

जिनको बार-बार जुखाम हो जाता है, या पुराना शिर दर्द हो, जुखाम रुकने से उत्पन्न शिर में दर्द हो इस सुरमा को सलाई से हलका हलका नेत्रों में आंजे। थोड़ी देर में आंख व नाक से बलगम निकलना प्रारम्भ हो जायगा और सभी कष्ट दूर होंगे। पुराने शिर दर्द में पथ्यादि क्वाथ व शिरोवज्ररस भी साथ में सेवन कराने से शीघ्र लाभ होगा। मूल्य १ माशे की शीशी ।-)

वातारि वटी—

वातरोग नाशक सफल और सस्ती दवा है। १-१ गोली प्रातः सायं गरम जल या रास्नादि क्वाथ के साथ लेने से सभी प्रकार की वातव्याधियां नष्ट होती हैं। मू. १ शीशी [५१ गोली] २) मात्र

करंजादि वटी—

'करंज' मलेरिया के लिये सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसके संयोग से बनी ये गोलियां प्राकृतिक ज्वर (मलेरिया) के लिए उत्तम प्रमाणित हुई हैं। सस्ती भी हैं। १ शीशी (५० गोली) १)

कासहर वटी—

हर प्रकार की खांसी के लिए सस्ती व उत्तम गोलियां हैं। दिन में ५-७ बार अथवा जिस समय खांसी अधिक आ रही हो १-१ गोली मुंह में डाल रस चूसें, गला व श्वास-नली साफ होती है। कफ बन्द हो जाता है। मूल्य १ शीशी (१ तोला) ।-)

निम्बादि मलहम—

नीम रक्त-शोधक व चर्मरोग नाशक है। इसी के प्रयोग से बनी यह मलहम फोड़ा फुन्सी व घावों के लिये अत्युत्तम है। निम्ब क्वाथ से घाव या फोड़ों को साफ कर इस मलहम को लगाने से वे शीघ्र ही भरते हैं। नासूर तक को भरने की इसमें शक्ति है। मूल्य १ शीशी आध औंस ।-), २० तोले का एक पैक ५)

वल्लभ रसायन—

किसी भी रोग से किसी भी प्रकार का रक्तस्राव होता हो यह विशेष लाभ करता है। रक्त को बन्द करने के लिये अव्यर्थ औषधि है। मूल्य १ शीशी (४ औंस) १)

रक्तवल्लभ रसायन—

इससे ज्वर के साथ होने वाला रक्त स्राव बन्द होता है। ज्वर को दूर करने और रक्त को बन्द करने के लिये उत्तम है। १ शीशी (आध औंस) १)

सरलभेदी वटी—

कब्ज रोग तो आजकल इतना फैला हुआ है कि प्रत्येक घर में छोटे बच्चों, जवानों, बूढ़ों सभी को शिकायत बनी रहती है कि दस्त साफ नहीं होता जिसके कारण भूख भी नहीं लगती, तबियत भी उदास रहती है। कब्ज रहते-रहते फिर अनेक रोग आदमी को आ घेरते हैं, वास्तव में रोगों का घर पेट नित्य साफ न होना ही है। जिस मनुष्य को नित्य प्रातः दस्त साफ हो जाता है उसे कोई रोग नहीं हो पाता। हमने यह दवा उन लोगों के लिए बनाई है जिनको नित्य ही कब्ज की शिकायत रहती हो और कई-कई बार दस्त जाना पड़ता हो। इसका रात्रि में सेवन करने से नित्य प्रातः दस्त साफ होता है। तबियत साफ हो जाती है तथा कार्य करने में उत्साह बढ़ता है। मू. १ शीशी (३१ गोली) १)

गोपाल चूर्ण—

जिनकी प्रकृति पित्त की हो उन्हें इसके सेवन से दस्त साफ होता है। जिनको मलावरोध हो उन्हें इसमें से तीन माशे रात को सोते समय गुनगुने जल के साथ या गरम दूध के साथ फंका देने से सुबह दस्त हो जाता है। १ शीशी (२ औंस) ॥=)

मृदुविरेचन चूर्ण—

यह मृदु विरेचक है। जिन्हें मलावरोध रहता हो और अनेक औषधियों से न गया हो उन्हें भोजनोपरान्त तीन-तीन माशे गुनगुने पानी से फंकायें। यदि पेट में खुरचन सी मालूम पड़े तो थोड़ी सौंफ चबालें। इसके १५ दिन सेवन से मलावरोध नष्ट होजाता है। मूल्य – १ शीशी ॥=)

आंवनिस्सारक वटी—

प्रातःकाल गुनगुने जल के साथ एक से तीन गोली तक सेवन कराने से गुदा के द्वारा आंव निकलने लगती है। जिन रोगियों को आंव का विकार हो या आमवात का रोग हो उन्हें इसके सेवन से विशेष लाभ होता है। आंव निकालने के लिए यह एक ही वस्तु है। यदि पेट में दर्द (ऐंठा) करे तब चिन्ता नहीं करें क्योंकि आंव निकलते समय प्रायः ऐसा हो जाता है। मू. १ शी. (१ तोला) १)

मुंह के छालों की दवा—

गर्मी, मलावरोध अथवा किसी भी कारण से मुंह में छाले हो जांय, इसको छालों पर बुरक कर मुंह नीचे करदें, लार गिरने लगेगी। दिन-रात में छाले नष्ट हो जांयगे। मूल्य—१ शीशी [आधाऔंस] ॥=)

कर्णामृत तैल—

कान में सांय-सांय का शब्द होना, दर्द होना, कान से मवाद बहना आदि कर्ण रोगों के लिए उत्तम तैल है। कान को पिचकारी से स्वच्छ करने के बाद इस तैल की २-३ बूंद दिन में तीन बार डालें। १ शीशी [आध औंस] ॥=)

बालापस्मार वटी—

बालक बेहोश हो जाता है, हाथ-पैर ऐंठ जाते हैं, मुख से लार (झाग) देने लगता है, दांती बन्द हो जाती है। बालक की ऐसी हालत में यह दवा अक्सीर प्रमाणित होती है। १ शी. २)

मधुमेहान्तक रस—

मधुमेह की यह प्रभावशाली उत्तम महौषधि है; बहुमूत्र व सोमरोग में भी विशेष लाभप्रद है। वैद्यों एवं मधुमेह रोगियों से अनुरोध है कि वे इसका व्यवहार कर हमारे परिश्रम को सफल करें। मूल्य १० गोली २=)

पायरिया मंजन—

पायरिया रोग बहुत प्रचलित है, यह अन्य अनेक रोगों को भी पैदा करता है। अतएव हर व्यक्ति को चाहिए कि इस रोग की थोड़ी भी उपेक्षा न करें। इस मंजन के नित्य व्यवहार करने से दांत

चमकीले होते हैं और दांतों से खून जाना, मवाद जाना, टीस मारना, पानी लगना आदि सभी कष्ट दूर होते हैं। १ शीशी ।।)

नयनामृत सुरमा—

नेत्र रोगों के लिए उपयोगी सुरमा है। चांदी या कांच की सलाई से दिन में एक बार लगाने से धुंधला दीखना, पानी निकलना, खुजली चलना आदि कष्ट शीघ्र नष्ट होते हैं। मूल्य ३ माशे की १ शीशी ।।)

अग्निसंदीपन चूर्ण—

अग्नि को उत्तेजित करने वाला, मीठा व स्वादिष्ट चूर्ण है। भोजन के बाद ३-३ माशे लीजिये, कब्ज दूर होगा तथा रुचि बढ़ेगी। १ शीशी [२ औंस] ।।)

मनोरम चूर्ण—

स्वादिष्ट, शीतल व पाचक चूर्ण। एक बार चख लेने पर शीशी समाप्त होने तक आप खाते ही रहेंगे। गुण और स्वाद दोनों में लाजबाव है। एक शीशी [२ औंस] ।।), छोटी शीशी [१ औंस] ।-)

अग्निवल्लभ क्षार—

सम्पूर्ण चिकित्सा सार यही है कि जठराग्नि की रक्षा की जाय, चाहे सैकड़ों दोष कुपित क्यों न हों, हजारों रोग शरीर में क्यों न भरे पड़े हों परन्तु उनकी चिन्ता न करके एक जठराग्नि की रक्षा करता हुआ मनुष्य अपने जीवन की रक्षा करे। जब जठराग्नि द्वारा आहार पच जाता है तब ही रस-रक्तादि शारीरिक धातु बनकर शरीर को बलवान बनाते हैं। लेकिन आज जिधर देखिये उधर यही शिकायत सुनने में आती है कि हमारी अग्नि कमजोर है, खाना हजम नहीं होता, दस्त साफ नहीं उतरता, भूख नहीं लगती इत्यादि-इत्यादि। अग्निवल्लभक्षार के सेवन से अग्नि प्रज्वलित होती है। खाया हुआ खाना हजम होता है, भूख न लगना, दस्त साफ न होना, खट्टी डकारों का आना, पेट में दर्द तथा भारीपन होना, तबियत मचलाना, अपान वायु का बिगड़ना इत्यादि सामयिक शिकायतें दूर होती हैं। परदेश में रहकर सेवन करने वालों को जल दोष नहीं सताता, गृहस्थों के लिए संग्रह करने योग्य महौषधि है क्योंकि जब किसी तरह की शिकायत देखो चट अग्निवल्लभ क्षार सेवन करने से उसी समय तबियत साफ होजाती है। १ शीशी (२ औंस) का मूल्य १)

ग्रहणी रिपु—

हमने इसे बड़े परिश्रम से बनाया है। यह ग्रहणी रोग के लिए अव्यर्थ है। हजारों रोगियों पर परीक्षा कर हमने इसे वैद्यों के सामने रक्खा है। एक बार परीक्षा कर देखिये। पुराने दस्तों के लिये चुनी हुई एक ही औषधि है। पाचन शक्ति को बढ़ाने के लिये इसके समान दूसरी औषधि नहीं है। १ शीशी आध औंस ३।।)

खाजरिपु—

खाज बहुत ही परेशान करने वाला तथा घृणित रोग है। अनेक रोगियों पर भली प्रकार परीक्षा करने के बाद 'खाजरिपु' नामक तैल को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। अब तो इसे व्यवहार करने वाले इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। गीली तथा सूखी दोनों प्रकार की खाज के लिये यह अक्सीर प्रमाणित हुआ है। मूल्य १ शीशी १) छोटी शीशी ।।-)

दाद की दवा—

यह दाद की अक्सीर दवा है। दाद को साफ करके किसी मोटे वस्त्र से खुजला कर दवा की मालिश करें। स्नान करने के बाद रोजाना वस्त्र से अच्छी प्रकार पोंछ लिया करें। १ शीशी ।।)

अण्डवृद्धिहर लेप—

इतना बड़ा कपड़ा लें जो बढ़े हुए फोते को ढंक सके और उस पर यह लेप लगा कर आग के कोयलों पर सेंक कर सुहाता-सुहाता फोते पर चिपकावें। दिन-रात में एक बार लगावें, २-१ बार रूई के फाहे से सेंक दिया करें। इस लेप के कुछ दिनों के व्यवहार से फोते प्राकृतिक दशा को प्राप्त होते हैं। एक शीशी आध औंस १)

स्वादिष्ट चटनी—

अति स्वादिष्ट और पाचक चटनी है। यह सड़े गले द्रव्यों से निर्मित बाजारू सस्ते गीले चूर्ण के समान नहीं। सर्वोत्तम और शीघ्र प्रभावकारी द्रव्यों से निर्मित है। एक बार परीक्षा करने पर ही इसके गुणों से आप परिचित हो सकेंगे। मूल्य १ शीशी (१ औंस की) ।।।)

नेत्रबिन्दु—

दुखती आंखों के लिए अत्युपयोगी प्रसिद्ध महौषधि मूल्य १/२ औंस ।।।=), ¼ औंस ।।)

प्रदरहरसेट—

१. स्त्री सुधा—स्त्रियों के लिये सर्वश्रेष्ठ प्रसिद्ध शीघ्र लाभकारी औषधि। मूल्य १ बोतल ३।।) १ शीशी १।।)

२—मधुकाद्यावलेह—स्त्रीसुधा के साथ-साथ इसे भी व्यवहार करने से शीघ्र लाभ प्राप्त होता है। मूल्य १ शीशी ३।।)

रजप्रवर्तक वटी शीशी १)

हिस्टेरियाहर सैट—१५ दिन की तीनों दवाओं का मूल्य ७)

धन्वन्तरि तैल (कामदीपक तिला)-मुरदारनसों पर मालिस के लिये १ शीशी २।।)

धन्वन्तरि पोटली—सिकाई करने के लिये १ डिब्बा २।।)

निर्बलता नाशक सैट—मकरध्वज वटी, तैल व पोटली तीनों दवायें २० दिन व्यवहार करने योग्य—मूल्य ६)

शिलाजीत

सर्वोत्तम शिलाजीत—स्वयं निकाला हुआ अत्युत्तम तथा पूर्ण विश्वस्त शिलाजीत मंगाकर रोगियों को व्यवहार करावें तथा औषधि निर्माणार्थ काम में लावें। मूल्य-१ सेर ६५) ५ तोला ४।)

असली शहद

औषधियों के अनुपान रूप में व्यवहार करने के लिये हमने शुद्ध अत्युत्तम असली शहद ग्राहकों को सप्लाई करने का प्रबन्ध कर लिया है। यह निम्न पैकिङ्ग में आप प्राप्त कर सकते हैं।

१ पौंड का पैकिंग	३।)
१० तोला का ,,	१)
५ तोला का ,,	।।=)

पैकिंग चौड़े मुंह की ढक्कनदार सुन्दर शीशियों में किया गया है।

वैद्यों के लिये आवश्यक

रोगी रजिस्टर—

हर वैद्य के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने रोगियों का विवरण नियमित रूप से लिखें। यह चिकित्सक की अपनी सुविधा तथा कानूनी दृष्टि दोनों प्रकार से आवश्यक है। २०० पृष्ठों के ग्लेज कागज के सजिल्द 'रोगी रजिस्टर' हमने तैयार किये हैं जिनमें आवश्यक कालम (खाने) दिए हैं। मूल्य ३।।)

रोगी प्रमाणपत्र पुस्तिका—

रोगियों को अवकाश प्राप्ति के लिए प्रमाणपत्र देने के फार्म ग्लेज कागज पर दो रङ्गों में तैयार किये हैं। ५० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १) मात्र। अंग्रेजी में बढ़िया कागज पर बड़े साइज में दो रङ्ग में छपे ४० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १।)

स्वस्थ प्रमाणपत्र पुस्तिका—

सरकारी कर्मचारी बीमार होने के कारण अवकाश लेते हैं। स्वस्थ होने पर अपने कार्य पर पहुँचने पर उन्हें 'वे स्वस्थ हैं' इस विषय का प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना होता है। वैद्य इस पुस्तिका को मंगाकर स्वस्थ-प्रमाणपत्र आसानी से दे सकेंगे। ५० प्रमाणपत्र की पुस्तिका का मूल्य १), अंग्रेजी में बढ़िया कागज पर

बड़े साइज में दो रङ्ग में छपे ४० प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १।)

रोगी व्यवस्थापत्र-

रोगी के लक्षण, तारीख औषधि आदि इन फार्मों पर लिख कर रोगी को दे दीजिये। वे रोगी रोजाना या जब औषधि लेने आयेंगे आपको यह फार्म दिखा देंगे। इससे उनका पहिला पूरा हाल आपके सामने आजायगा। बड़े काम के फार्म हैं। साइज २०×३०=३२ पेजी. मूल्य।≈) प्रति सैकड़ा।

आघात प्रमाणपत्र--

चोट लग जाने पर चिकित्सक को प्रमाणपत्र देना होता है। इस फार्म पर आप यह प्रमाणपत्र सुगमता से दे सकेंगे। फुलस्केप साइज के २४ प्रमाणपत्रों की पुस्तिका का मूल्य १।)।

तापमापक तालिका (टेम्परेचर चार्ट)--

रोगियों का तापमान अंकित करने से बड़ी सुविधा रहती है। इस चार्ट पर दिन में ४ समय का तापमान १२ दिन तक अंकित किया जा सकेगा। अन्य निदान विषयक आंकड़े भी लिखे जा सकते हैं। मूल्य ७५ चार्ट का १) मात्र।

शारीरिक चित्र

ये चित्र अनेक रङ्गों में आफसैट प्रेस से बहुत ही आकर्षक तैयार कराये गये हैं। इन चित्रों का साइज एक समान २० इञ्च चौड़ाई तथा ३० इञ्च लम्बाई है। ऊपर नीचे लकड़ी लगी है, कपड़े पर मढ़े हैं तथा चिकित्सालय में टांगने पर उसकी शोभा बढ़ाने वाले हैं। सभी अवयवों का विवरण हिन्दी में लिखा गया है।

नं० १ अस्थि-पञ्जर—

इस चित्र में सिर से लेकर पैर तक की सभी अस्थियों को बड़े सुन्दर ढङ्ग से दर्शाया गया है। हाथ की, अंगुलियों की, पैर की, रीढ़ की, छाती की, सभी अस्थियां स्पष्ट समझ में आ सकती हैं। मूल्य ५)

नं० २ रक्तपरिभ्रमण—

इस चित्र में शुद्ध-अशुद्ध रक्त की धमनी एवं शिरायें अपने प्राकृतिक रङ्गों में दर्शाई हैं। भ्रूण में रक्त-भ्रमण का पृथक् चित्रण किया गया है। एक हाथ और एक पैर में शिरायें दर्शाई हैं। मूल्य ५)

नं० ३ वातनाड़ी संस्थान—

इस चित्र में सम्पूर्ण वात-नाड़ी मण्डल (Nervous System) का सुन्दर व स्पष्ट चित्रण किया गया है। ऊर्ध्वग-वातनाड़ी तथा सुषुम्ना और मस्तिष्क के सम्बन्ध का चित्रण पृथक् किया है। चित्र अपने ढङ्ग का निराला है। मूल्य ५)

नं० ४ नेत्र रचना एवं दृष्टि-विकृति—

इस चित्र में पृथक्-पृथक् ६ चित्र हैं। १-दक्षिण चक्षु-इसमें चक्षु के बाह्य अवयव दर्शाये गये हैं। २-पटलों और कोष्ठों को दिखाने के लिए चक्षु का क्षितिजकाट ३-चक्षु से सम्बन्धित नाड़ी। ४-नेत्र चालिनी पेशियां ५-दृष्टिभेद (दर्शनसामर्थ्य)। ६-साधारण स्वस्थ नेत्र एवं दृष्टि विकृति। इन चित्रों से नेत्र विषयक सम्पूर्ण विवरण स्पष्ट समझ में आएगा। मूल्य ५)

चारों चित्र एक-साथ मंगाने पर मू० केवल १६)

नोट—सादा-बिना कपड़ा-लकड़ी लगे चित्र शीशा में मढ़ाने के लिए १ चित्र ४), चारों एक साथ मंगाने पर १२)

उपयोगी सामग्री

आजकल वैज्ञानिक युग में अनेक ऐसे यन्त्रादि चल पड़े हैं जिनके व्यवहार से चिकित्सा में बड़ी सुविधा होती है तथा इन उपकरणों के बिना चिकित्सक अधूरा और निकम्मा समझा जाता है। चिकित्सकों को इन वस्तुओं को मंगाकर व्यवहार में लाकर लाभ उठाना चाहिये।

१—आंख धोने का ग्लास मूल्य ।।।)

२—गले व जबान देखने की जीबी--(Tongue Depressure) मू. १।।।)

३—दूध निकालने का यन्त्र—इस यन्त्र द्वारा स्तनों में दूध आसानी से निकाल सकते हैं। मू० २)

४—डूस-कोटा आदि धोने में इससे सुविधा रहती है। मू० रबड़ की नली व टोंटनी आदि से पूर्ण २ पिंट का ५), ४ पिंट का ७॥)

५—कान धोने की पिचकारी—धातु की १ औंस ४॥), २ औंस की ६), ४ औंस की ७॥)

६—कान देखने का आला—कान में फुन्सी है, सूजन है या किसी अनाज का दाना पड़ गया है यह देखने के लिए है मूल्य १२)

७—इन्जैक्शन सिरिंज (कम्पलीट)-सम्पूर्ण कांच की २ सी० सी० २॥), ५ सी० सी० ४), १० सी० सी० ६), २० सी० सी० ८)। रेकार्ड सिरिंज २ सी० सी० ५॥), ५ सी० सी० ८), १० C.C. १०) सुई-१ नग ।≈) मात्र।

८-थर्मामीटर (तापमापक यन्त्र)-जापानी २॥), जील का सर्वोत्तम ६॥)

९—एनीमा सिरिंज (बस्ति-यन्त्र)—इस यन्त्र से जल या औषधि- द्रव्य गुदा में आसानी से चढ़ाया जा सकता है। मूल्य रबड़ का जर्मनी ११), भारतीय उत्तम ५)

१०-रबड़ के दस्ताने—चीड़-फाड़ करते समय, संक्रमण से रोगी को और अपने को बचाने के लिए मूल्य १ जोड़ी ३॥)

११-गरम पानी की थैली—इस थैली में गरम पानी भरकर सुगमता से सिकाई की जा सकती है। मूल्य ५)

१२-बरफ की थैली—इस थैली में बरफ भर कर रखने से सुविधा रहती है, रोगी को इसकी ठंडक पहुँचती है किन्तु उससे वह भीगता नहीं है। मूल्य २॥)

१३-दवा नापने का ग्लास—(Meassure Glass) २ ड्राम का (बूंद नापने के काम में आता है) ॥≡), १ औंस का ॥≈) २ औंस का १), ४ औंस का १।)

१४—स्टेथस्कोप (वक्षपरीक्षा यन्त्र)—मूल्य ८), सर्वोत्तम चीन का बना २०)

१५-खरल चीनी का गोल—ये खरल दवा मिलाने घोटने के लिए उपयोगी हैं। मूल्य २॥ इञ्ची १॥), ३ इञ्ची २), ४ इञ्ची २॥), तथा ५ इञ्ची ३॥)

१६-सुजाक की पिचकारी—इस पिचकारी से इन्द्री के अन्दर दवा पहुंचाकर आसानी से सफाई कर सकते हैं। मूल्य मनुष्य के लिए ॥) जनानी ॥=)

१७-मूत्र कराने की नली (कैथीटर)-इस नली की सहायता से रुका हुआ मूत्र आसानी से निकाला जा सकता है। मूल्य ॥।) स्त्रियों के लिए धातु का कैथीटर १।)

१८-मोतीभला देखने का शीशा (प्लास्टिक का फ्रेम) इस शीशा के द्वारा मोतीभला के दाने बड़े-बड़े दीख पड़ते हैं। मू० छोटा शीशा २), बड़ा शीशा २॥।), उससे बड़ा ३)

१९-स्प्रिट लैम्प—कांच की मूल्य २), धातु की २ औंस की ३॥)

२०—आंख में दवा डालने की पिचकारी १ दर्जन ॥।)

२१-नपुंसकता निवारक यन्त्र—(Organ Developing instrument) इसके व्यवहार करने से इन्द्री की शिथिलता दूर होती है। मूल्य १४)

२२-कांटे (scales)—अंग्रेजी बैलेंस की तरह के कीमती दवाओं को सही व आसानी से तोलने के लिये। मूल्य ८)

२३-सिरिंज केस निकिल के—सिरिंज सुरक्षित रखने के लिये मू. १ केस २ C. C. की सिरिंज के लिए २), ५ C. C. के लिए २॥)

२४-ग्लेसरीन की पिचकारी—गुदा में ग्लेसरीन चढ़ाने के लिए प्लास्टिक की उत्तम क्वालिटी की पिचकारी। मूल्य १ औंस २॥) २ औंस ४)

२५-दांत निकालने का जमूड़ा-(Tooth forceps universal) इससे दांत मजबूती से पकड़ कर उखाड़ा जा सकता है। मूल्य ६)

२६-मलहम मिलाने की छुरी-स्पेचुला (Spetula) मूल्य १।)

२७-मलहम मिलाने की प्लेट—मूल्य १)
२८-थर्मामीटर केस-धातु के निकल किये, क्लिप सहित १।।)
२९-सन्तति-निरोध (Birth control) के लिए—
रिंग पैसरी (रबड़ की) मूल्य ।।।)
हौज-पैसरी (Hodge passery) मूल्य ।।।=)
चैक-पैसरी (Check passery) जापानी ।।।=)
फ्रेंच लैदर (पुरुषों के लिए) मूल्य ।।।)
जापानी १)
३०-आमाशय-प्रक्षालनी नलिका (Stomach tube) रबड़ की, साथ में पीप लगा है। मूल्य ६।।)
३१-कैंची-चीमटी आदि—
चीमटी-५ इञ्ची १) ४ इञ्ची ।।।=)
दांतों में दवा लगाने की चीमटी २)
चाकू सीधा १) चाकू फोल्डिङ्ग १-)
कैची सीधी १)
३२-आंख में दवा डालने की शीशी-बूंद-बूंद दवा आसानी से डाली जा सकती है। मूल्य १।)
३३-किडनी ट्रे (Kidney tray)—कान धोने के समय कान के नीचे लगाने के लिए। ६ इञ्ची १।), ८ इञ्ची २।।)
३४-ड्रेसिंग ड्रम-साइज ६-६ इञ्ची मूल्य २०)
३५-विसंक्रमण पात्र—सिरिंज आदि के लिए मूल्य १२)

पत्थर के खरल

१. कसौटी पत्थर के खरल—

चिकित्सकों एवं औषधि निर्माताओं की असुविधा को दूर करने के लिए हमने अपने बिक्री विभाग में कसौटी पत्थर के किश्तीनुमा खरल बड़ी संख्या में संग्रह कर लिये हैं। सामान्य औषधियां घोटने के लिए काले पत्थर के उपयोगी खरल हैं। मूल्य निम्नांकित हैं। आवश्यकतानुसार आर्डर दीजिये।

खरल का साइज	मूल्य	खरल का साइज	मूल्य
३ इञ्ची	१)	१० इञ्ची	१०)
४ इञ्ची	१।)	११ इञ्ची	१४)
५ इञ्ची	२।)	१२ इञ्ची	१८)
६ इञ्ची	३।)	१३ इञ्ची	२४)
७ इञ्ची	४।।)	१४ इञ्ची	२८)
८ इञ्ची	६।)	१५ इञ्ची	३५)
९ इञ्ची	७।।)	१६ इञ्ची	४०)

२. तामड़ा पत्थर के खरल—

तामड़ा पत्थर मजबूत कड़ा पत्थर होता है तथा बहुत कम घिसता है। पिष्टी एवं भस्मों के निर्माण के लिये उपयोगी है।

५ इञ्ची	८)	७ इञ्ची	१२)
९ इञ्ची	१८)	११ इञ्ची	२४)
१३ इञ्ची	३२)	१५ इञ्ची	४५)

नोट-१—पत्थर के खरल वजनी होते हैं, अतएव रेल पार्सल से ही मंगाने में सुविधा और व्यय में बचत होगी। ५-६ इञ्ची तक के खरल पोस्ट से भी भेजे जा सकते हैं।

२—आर्डर के साथ आधा मूल्य एडवांस में मनि-यार्डर से अवश्य भेजें।

औषधि-पेटी

प्रत्येक चिकित्सक के लिए यह आवश्यक है कि चिकित्सार्थ या अन्य आवश्यक कार्य निमित्त जाते समय यात्रा में औषधियां साथ रखे। चिकित्सक को हर स्थान पर रोगी मिल जाते हैं उस समय औषधियां पास न रहने पर बड़ी असुविधा होती है। इस लिये औषधि-पेटी चिकित्सकों के लिए अत्यन्त आवश्यक है। हमने केवल एक प्रकार की सुन्दर टिकाऊ औषधि-पेटी तैयार कराई है यह लकड़ी की बनी है ऊपर मजबूत बाइडिङ्ग क्लोथ लगाया गया है। विवरण निम्न प्रकार है:—

नाप—ऊंचाई ७। इंच, लम्बाई ९।। इञ्च, चौड़ा ४।। इञ्च।

शीशियां—२ ड्राम की २४, ४ ड्राम की १८ तथा ड्राम की ८ शीशी-कुल ५० शीशियां मयकार्क

वजन-मय शीशियों के लगभग १॥ सेर। लकड़ी की पार्सल में पैक करने पर ३ सेर।

पाकेट-एक पाकेट लगी है। जिसमें कागज रखे जा सकते हैं। दूसरी ओर सिरिंज व थर्मामीटर रखने के लिए स्थान बना है।

मूल्य—कार्क एवं शीशी सहित औषधि-पेटी का १८), पोस्ट-व्यय ३॥) पृथक्।

—असली विश्वस्त गिलोय सत्व—

स्वयं अपनी देख-रेख में निकाला गया विश्वस्त गिलोय सत्व हमसे मंगाकर व्यवहार कीजियेगा। इसमें सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है। मूल्य १ सेर २८)

आयुर्वेद का सर्वोत्तम मासिक पत्र

धन्वन्तरि हिन्दी में प्रकाशित सर्वोत्तम मासिक पत्र है इसे सभी एक स्वर से स्वीकार करते हैं। इसके प्रतिवर्ष प्रकाशित होने वाले विशेषांक अपने विषय के सर्वोत्तम एवं सर्वाङ्गपूर्ण होते हैं सभी वैद्यों को इसका ग्राहक अवश्य बनना चाहिए।

ग्राहक बनने के नियम

१–धन्वन्तरि का वार्षिक मूल्य ५॥) है। एक वर्ष से कम के लिए ग्राहक नहीं बनाये जाते हैं।

२—धन्वन्तरि का वर्ष जनवरी से प्रारम्भ होता है तथा दिसम्बर में समाप्त होता है।

३—धन्वन्तरि के ग्राहक वर्ष के प्रारम्भ अर्थात् जनवरी से बनाये जाते हैं। वर्ष में जब भी चाहें ग्राहक बन सकते हैं, लेकिन जनवरी से उस समय तक के प्रकाशित अङ्क भेजकर नवीन ग्राहक को भी जनवरी से ही ग्राहक बना लिया जाता है।

४—प्रतिवर्ष एक विशाल-सचित्र विशेषांक प्रकाशित किया जाता है। यह विशेषांक ग्राहक को उक्त वार्षिक मूल्य ५॥) के अन्तर्गत ही मिलता है।

५-धन्वन्तरि के प्रकाशन में हमको बहुत घाटा रहता है। अतः इसके वार्षिक मूल्य में हम किसी को किसी प्रकार की रियायत नहीं करते। अतएव कमीशन या रियायत के विषय में लिखना व्यर्थ होगा।

६—वार्षिक मूल्य पहिले ही मनियार्डर से भेजना चाहिये, या जनवरी से उस समय तक के प्रकाशित अङ्क और विशेषांक वार्षिक मूल्य ५॥) वी. पी. से भेजने की आज्ञा देनी चाहिये।

के

उपयोगी विशेषांक

धन्वन्तरि के विशेषांकों की प्रशंसा करना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। इन विशेषांकों की धूम सर्वत्र और सभी विद्वानों तथा ग्राहकों ने इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कई विशेषांकों का

पुन- मुद्रण होना ही इनकी उपयोगिता प्रमाणित करता है। अब तक लगभग ५० विशेषांक प्रकाशित किये जा चुके हैं किन्तु अब निम्न विशेषांक ही शेष हैं और इनके भी शीघ्र समाप्त हो जाने की आशा है। अतएव शीघ्र ही आप इनकी १-१ प्रति मंगा लीजियेगा।

काय-चिकित्सांक—आचार्य पं. रघुवीरप्रसाद जी त्रिवेदी के सफल सम्पादकत्व में प्रकाशित यह अनमोल विशेषांक है। ५४४ पृष्ठ में १२५ चित्रों सहित विभिन्न रोगों की सफल चिकित्सा विधि; उसके विषय में आयुर्वेद के सिद्धान्त, एवं चिकित्सासूत्र बड़ी सुन्दरता से वर्णित हैं। इस विशेषांक के निर्माण में भारत के चोटी के विद्वानों ने अपना सहयोग देकर इसे अति उत्तम बना दिया है। यह आयुर्वेद विद्यार्थियों के लिये, आयुर्वेद के आचार्यों के लिए तथा आयुर्वेद विद्वानों के लिए अनेक उलझी गुत्थियों को सुलझाने में सहायक तथा उच्चकोटि का ग्रन्थ बन गया है। राजसंस्करण की थोड़ी प्रति शेष हैं। मूल्य ८॥)

माधव निदानांक—इसमें सम्पूर्ण माधव निदान सरल हिन्दी टीका सहित प्रकाशित है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में तत्-सम्बन्धित एलोपैथिक समन्वयात्मक विवेचन दिया है। विषय को स्पष्ट करने के लिये विशेष वक्तव्य एवं चित्र दिए हैं। इस टीका की सभी विद्वानों ने प्रशंसा की है तथा विद्यार्थियों के लिए उपयोगी बतलाया है। पृष्ठ संख्या ६४४, चित्र १५५। मूल्य केवल ८॥)

चरक चिकित्सांक—पृष्ठ संख्या ७०४। इस विशेषांक में चरक संहिता चिकित्सा स्थान सटीक प्रकाशित किया गया है। स्थान-स्थान पर विशेष वक्तव्य द्वारा विषय को बड़ी सरलता के साथ समझाया है। विशेष वक्तव्यों की संख्या ५०८ है जिससे आप समझ सकते हैं कि विषय को सुबोध बनाने में बड़ा परिश्रम किया गया है। प्रारम्भिक १०० पृष्ठों में विविध विद्वानों के सारपूर्ण लेखों द्वारा चरक चिकित्सा की विशेषतायें, चरक-संहिता का इतिहास आदि अनेक ज्ञातव्य विषयों पर खोजपूर्ण विवेचन किया गया है। शुद्ध प्रमाणिक मूलपाठ एवं भाषानुवाद, सारभूत व्याख्या व वक्तव्य, आधुनिक मत से यत्र तत्र समन्वय आदि पढ़ने से वैद्यों एवं विद्यार्थियों को बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त होगा। ग्लेजकागज पर छपे सुन्दर राजसंस्करण का मू ८॥)

बालरोगाङ्क (द्वितीय संस्करण)—इसके विशेष सम्पादक श्री बा० हरिदास जी ने इस विशेषांक को सुन्दर तथा उपयोगी बनाने में कठिन परिश्रम किया था। बाल-रोगों के विस्तृत लक्षण, अनुभवपूर्ण चिकित्सा, सफल प्रयोगों का विशाल संग्रह इस विशेषांक में है। मन्थर ज्वर, उदर कृमि, रोहिणी (डिफ्थीरिया), बालशोष [सूखा रोग], शीतला [माता], खसरा [रोमान्तिका], डब्बा [पसली चलना], बालग्रह आदि रोगों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। मूल्य ६)

पुरुष रोगाङ्क [द्वितीय संस्करण]—लगभग १७ वर्ष पूर्व अमृतधारा के आविष्कारक कविविनोद पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा वैद्य के सम्पादकत्व में यह विशेषांक प्रकाशित हुआ था। इस विशेषांक में पुरुषों के विशेष रोगों पर अनुभव पूर्ण लेख, सफल चिकित्सा एवं प्रयोगादि वर्णित हैं। नपुंसकता, प्रमेह, मधुमेह, स्वप्नदोष, अण्डवृद्धि आदि रोगों का विस्तृत वैज्ञानिक विवेचन अधिकारी लेखकों द्वारा लिखित प्रकाशित है। इस समय जनता में यह रोग अधिक प्रचलित है, अतएव चिकित्सकों को यह विशेषांक अवश्य पढ़ना चाहिए। इसमें सैकड़ों अनुभवपूर्ण प्रयोग हैं, जिनको आप सफलता-पूर्वक अपने रोगियों को व्यवहार करा सकेंगे। इसकी १-१ लाइन पठनीय है। गागर में सागर भर दिया है। मूल्य ६)

गुप्तसिद्ध प्रयोगांक [द्वितीय संस्करण] प्रथम भाग—इसमें अनुभवी एवं ख्याति प्राप्त २१६ चिकित्सकों के ५०० सफल एवं सरल प्रयोगों का अभूतपूर्व संग्रह प्रकाशित किया गया है। इसका १-१ प्रयोग अनुभव की कसौटी पर कसा गया है। प्रयोगों को रोगों की किस अवस्था में किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए इसका स्पष्ट उल्लेख किया है। पूज्यपाद आचार्य यादव जी त्रिक्रम जी, स्वामी जयरामदास जी, श्री पं. जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, पं. गोवर्धन शर्मा छांगाणी, पं. रघुवरदयाल जी भट्ट आदि ख्याति प्राप्त एवं अनुभवी विद्वानों के

उत्तमोत्तम प्रयोगरत्न इसमें प्रकाशित हैं। हरेक छोटे-बड़े रोग पर २-४ सफल प्रयोग आप इसमें प्राप्त कर सकेंगे। हर चिकित्सक को सदैव पास रखने योग्य ग्रन्थ है। मू. ६)

गुप्तसिद्ध प्रयोगांक [द्वितीय भाग] समाप्त

गुप्तसिद्ध प्रयोगांक [तृतीय भाग]—इसमें ७१ प्रसिद्ध एवं अनुभवी चिकित्सकों के लगभग २०० प्रयोगों का अभूतपूर्व संग्रह है। मूल्य २)

गुप्तसिद्ध प्रयोगांक चतुर्थभाग [राजसंस्करण]-इस विशेषांक ने आयुर्वेद जगत में बड़ी ख्याति प्राप्त की है तथा धन्वन्तरि के विशेषांकों की कीर्ति में चार चांद लगा दिए हैं। इसमें २५१ अनुभवी वैद्यराजों के १२०८ उत्तमोत्तम, सरल, पूर्ण परीक्षित प्रयोगों का अभूतपूर्व संग्रह है। इस विशेषांक की प्रशंसा आयुर्वेद महारथियों से लेकर सामान्य पठित समाज ने मुक्त कण्ठ से की है। प्रयोगों की अन्य पुस्तकों तथा इस विशेषांक में एक मौलिक अन्तर है। जहां पुस्तकें एक लेखक द्वारा ही इधर-उधर के प्रयोगों को संग्रह कर तैयार की जाती हैं, वहां इसमें भारत के प्रसिद्ध एवं सफल २५१ चिकित्सकों के हृदय में छिपे हुये प्रयोगरत्न बड़े आग्रह से प्राप्त कर उनके फोटो व परिचय सहित प्रकाशित किए गये हैं। मल्य ८॥)

भैषज्य कल्पनांक—सम्पादक आचार्य श्री पं० रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी A. M. S. ने ३६२ पृष्ठों में वह साहित्य दिया है जो आप अन्यत्र १००० पृष्ठों में भी प्राप्त नहीं कर सकेंगे। १७२ परिभाषायें, १८ मूषायें, १० पुट, ३६ यन्त्र, २०० कषाय, ११० चूर्ण, २८ गुग्गुलु, १२ पाकावलेह, ३४ पानक, १२६ आसवारिष्ट, ७६ घृत, ३४ तैल के योग निर्माण विधि, गुण आदि वर्णित हैं। इस विशेषांक के १३ प्रकरणों में ४६ लेखों का शृङ्खलाबद्ध एवं वैज्ञानिक रूपेण समावेश किया गया है। ६८ चित्रों द्वारा विषय को सुबोध बनाया गया है। यह विशेषांक वैद्य, निर्माणशालाओं के व्यवस्थापकों के लिए अवश्य संग्रहणीय है। मूल्य ४)

भैषज्य कल्पनांक परिशिष्टांक—इसमें धातु-शोधन मारण भस्मीकरण, परीक्षा आदि भलीभांति समझाई गई हैं। मल्य १) मात्र।

संक्रामक रोगांक—पृष्ठ संख्या ३२०। इसका सम्पादन कविराज मदनगोपाल A. M. S., M. L. A. ने बड़े परिश्रम से किया है। इस विशेषांक को पढ़ने पर चिकित्सकों को संक्रामक रोगों से बचने के उपाय, रोगी की सफल चिकित्सा विधि, शास्त्रीय विवेचन सभी कुछ ज्ञान प्राप्त हो जावेगा। आप हैजा, प्लेग, चेचक, मलेरिया प्रभृति भीषण रोग का प्रतिकार सफलतापूर्वक करते हुए सफल एवं प्रसिद्ध चिकित्सक बन जाने की क्षमता प्राप्त करेंगे। मू० ४)

कल्प एवं पंचकर्म चिकित्सांक-पृष्ठ संख्या ३०४। इसका सम्पादन तिब्बिया कालेज के प्रोफेसर कविराज उपेन्द्रनाथदास जी ने बड़े परिश्रम से किया है। 'पंचकर्म' एवं 'कल्प' आयुर्वेद की प्राचीन एवं सर्वोपरि चिकित्सा विधियां हैं। इस विशेषांक में अनुभवी व्यक्तियों द्वारा इन कल्प तथा पंचकर्म विधियों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। श्री० पं० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी B. A. आयुर्वेदाचार्य का ६० पृष्ठ का 'पंचकर्म' शीर्षक लेख अत्यधिक उपयोगी एवं मननीय है। २२० पृष्ठों में विविध कल्पों का विस्तृत वर्णन है। मू० ४) मात्र।

यकृत्प्लीहा रोगांक—यकृत और प्लीहा मानव शरीर के महत्व पूर्ण अङ्ग हैं। इनमें विकृति होने से मनुष्य को भीषण कष्टों का सामना करना पड़ता है। इसके विविध रोगों के यदि आप सफल चिकित्सक बनना चाहते हैं तो आपको इस विशेषांक की एक प्रति अवश्य मंगा लेनी चाहिए। पृष्ठ १६४, अनेक चित्रों से सुसज्जित मू. २) मात्र।

चिकित्सा समन्वयांक [प्रथम भाग]—इसके सम्पादक हैं पं० ताराशंकर जी मिश्र आयुर्वेदाचार्य। इसमें आयुर्वेद एलोपैथी का समन्वय किस प्रकार हो सकता है उससे लाभ क्या है तथा हानि क्या है यह सभी विषय अधिकारी लेखकों के द्वारा वर्णित हैं। इसके पश्चात् ज्वर (पित्तज्वर, वातज्वर, श्लेष्मज्वर, इन्फ्लुएञ्जा, बैरी-बैरी, कालाज्वर, विषमज्वर आदि) अतिसार, अर्श, कृमिरोग, विसूचिका, अम्लपित्त, पाण्डुरोग, कामला, वमन, यकृद्दाल्युदर तथा प्लीहोदर, जलोदर, फुफ्फुस,

राजयक्ष्मा, क्षय, कास, तमक श्वास, श्वसनक ज्वर, हृद्रोग, मदात्यय, उन्माद, अपस्मार, मृगी, अतत्वाभिनिवेश, प्रज्ञापराध रोगों की आयुर्वेद एवं एलोपैथी की मिश्रित चिकित्सा से किस प्रकार सफलतापूर्वक चिकित्सा की जा सकती है वर्णित है। इस विशेषांक के निर्माण में डा० प्राणजीवन मेहता, पूज्य यादव जी महाराज, पं० सत्यनारायण जी, पं० शिवशर्मा जी, कविराज सतीन्द्रनाथ वसु, कविराज हरिनारायण शर्मा, श्री. अत्रिदेव गुप्त आयुर्वेदालंकार आदि ५५ विद्वानों ने सहयोग दिया है। पृष्ठ संख्या ३६४, अनेकों रङ्गीन एवं सादे चित्र मूल्य ४)

चिकित्सा समन्वयांक [द्वितीय भाग]—इसमें १५२ पृष्ठों में आक्षेपक, धनुस्तम्भ, अर्दित, उरुस्तम्भ, अश्मरी और शर्करा, फिरङ्ग, नपुंसकता, शीतपित्त, रक्तपित्त, कुष्ठ, आर्तवादर्शन, श्वेतप्रदर, उन्माद, फक्करोग, बालापस्मार, डिफ्थीरिया आदि कष्टसाध्य रोगों की मिश्रित सफल चिकित्सा विधि वर्णित है। मूल्य २)

प्रसूति विज्ञानांक—प्रसूतितन्त्र पर यह सर्वाङ्गपूर्ण साहित्य है। सम्पादक श्री० पं० रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी A. M. S. हैं। इसमें ५०४ पृष्ठ तथा १२५ चित्र हैं। प्रसूत एवं प्रसूता को होने वाली सम्पूर्ण व्याधियों के विषय में क्रमबद्ध सुन्दर सुविस्तृत विवरण दिया है। वैद्यों गृहस्थियों तथा विद्यार्थियों सभी के लिए पठनीय साहित्य है। इसकी प्रशंसा सभी विद्वानों ने की है। मूल्य ८॥)

धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ द्वारा प्रकाशित

बृ० पाकसंग्रह—

लेखक श्री पं० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य। श्री. त्रिवेदी जी की संकलन योग्यता से जो पाठक परिचित हैं वे तो इस पुस्तक को अत्युपयोगी समझेंगे ही, इस पुस्तक में ४०० से अधिक पाकों का संग्रह प्रकाशित है। पाक की निर्माण विधि, मात्रा, सेवन विधि, गुण आदि दिये हैं। प्रयोग कहां से प्राप्त किया यह भी सप्रमाण दिया है। रोगी रोगमुक्ति के पश्चात् रोगजन्य निर्बलता निवारणार्थ कोई एसी वस्तु पाने का अभिलाषी होता है जो औषधि होते हुए भी रुचिकर हो तथा निर्बलता एवं रोग निवारण कर सके। ऐसे समय में चिकित्सकों को उस रोग में उपयोगी पाक-निर्माण कर उसे देना चाहिए। प्रायः सभी रोगों पर २-४ प्रयोग इस पुस्तक में आपको मिलेंगे। गृहस्थ स्वयं पाक निर्माण कर स्वादिष्ट भोजन के साथ रोग निवारण कर सकते हैं। पुस्तक हर प्रकार से सुन्दर एवं उपयोगी है। मूल्य सजिल्द का ३॥)

सूर्यरस्मि-चिकित्सा [नवीन संस्करण]—

सूर्यरश्मि-चिकित्सा को अंग्रेजी में क्रोमोपैथी (chromopathy) कहते हैं। अंग्रेज इस चिकित्सा के आविष्कर्त्ता अमेरिका के डाक्टरों को मानते हैं। पर वास्तव में यह चिकित्सा अति प्राचीन है और हमारे शास्त्रों में यहां तक कि वेदों में भी इसका उल्लेख मिलता है। इस चिकित्सा में सूर्य की किरणों से ही समस्त रोग दूर करने का विधान है। पुस्तक बड़े परिश्रम से लिखी गई है। इसको पढ़कर पाठक देखेंगे कि सूर्य कितना शक्तिशाली है। उसकी किरणें हमारे शरीर को कितनी लाभदायक हैं और इसके द्वारा रोग किस प्रकार बात की बात में दूर किये जा सकते हैं। पुस्तक अपने विषय की पहिली ही है। अनेक रङ्गीन चित्र दिये गये हैं। मूल्य ।॥)

उपदंश विज्ञान [द्वितीय संस्करण]—

लेखक-श्री कविराज पं० बालकराम जी शुक्ल आयुर्वेदाचार्य। इस पुस्तक में उपदंश (गरमी-चांदी) रोग का वैज्ञानिक कारण, निदान लक्षण चिकित्सा का वर्णन किया है। पुस्तक के कुछ शीर्षक ये हैं—उपदंश परिचय, प्राच्य पाश्चात्य का साम्यवाद, संक्रमण निदान, सिफलिस के भेद,

उपदंश प्राथमिक कील, लिंगार्श औपसर्गिक सकल रोग, उपदंशज विकृतियां, मस्तिष्क-विकार, फिरंग चिकित्सा, पारद प्रयोग पथ्यापथ्य आदि उपदंश सम्बन्धी सभी विषय इसमें वर्णित हैं कोई भी आवश्यक विषय छूटने नहीं पाया है। मू० १)

प्रयोग पुष्पावली—

संक्षिप्त रूपेण अनेकों सामान्य एवं आश्चर्यजनक वस्तुयें निर्माण करने की विधियां इस पुस्तक में प्रकाशित हैं। प्रारम्भ में प्रकाशित सफल प्रयोगों से ही पाठक इस पुस्तक का मूल्य वसूल समझें। ये प्रयोग बहुत समय से परीक्षित और सफल प्रमाणित हो चुके हैं। अनेक उद्योग-धन्धों का संकेत इसमें मिलेगा जिससे पाठक बहुत लाभ उठा सकते हैं। समष्टि रूप में पुस्तक बेकार मनुष्य को व्यवसाय की ओर झुकाने वाली है। गृहस्थियों के लिए नवीन और उपयोगी बातों का भण्डार है जिससे वे अपने दैनिक कार्यों में पर्याप्त लाभ उठा सकते हैं। पहिले दो संस्करण शीघ्र समाप्त हो जाना इसकी उत्तमता का प्रमाण है। पृष्ठ संख्या ११२ मूल्य १।)

रसायन संहिता [भाषा टीका सहित]

आयुर्वेद साहित्य के अनमोल रत्न अपनी अलौकिक प्रतिभा के साथ-साथ अन्धकार के आवरण से ढके हुए हैं। अमूल्य पुस्तकें यत्र-तत्र पड़ी हुई हैं जिनके प्रकाशन की आवश्यकता है। यह पुस्तक एक ऐसा ही रत्न है। अनुभवी और विचारशील लेखक महोदय ने हिमालय पर्यटन के परिश्रम से इसकी खोज की है। उन्हीं के प्रशंसनीय प्रयत्न से यह पुस्तक वैद्य समुदाय की सेवा में उपस्थित कर सके हैं। इसके अनेक अव्यर्थ प्रयोग, सत्व प्रस्तुत विधि, उपधातु का शोधन-मारण प्रभृति अनेक विषय दिये गये हैं। मूल्य १)

कुचिमार तन्त्र (भाषा टीका)—

श्रीमद्कुचिमार मुनि प्रणीत प्रस्तुत पुस्तक प्राचीन और अत्यन्त गोपनीय है। इसमें इन्द्रिय वृद्धि, स्थूलीकरण, कामोद्दीपन, लेप, वाजीकरण द्रावण, स्तम्भन, संकोचन व केशपात, गर्भाधान सहज प्रसव आदि पर अनेक योग भली-भांति बताये गये हैं। इस नवीन संस्करण में प्रमेह नपुंसकता मधुमेह आदि रोगों पर स्वानुभूत प्रयोगों का एक छोटा सा संग्रह भी दिया है। मू. ॥)

दशमूल सचित्र—

लेखक—लाला रूपलाल जी वैश्य बूटी-विशेषज्ञ। दशमूल किसे कहते हैं ? किन-किन औषधियों से बना है। उन औषधियों की आकृति कैसी है ? यह बिरले ही जानते हैं। इस पुस्तक में दशमूल की दस औषधियों का सचित्र वर्णन है। साथ ही उनके पर्याय नाम गुण और प्रयोग भी बताये गये हैं। तथा दशमूल पंचमूल से बनने वाले अनेक योगों की विधियां भी दी गई हैं। चित्र इतने स्पष्ट हैं कि देखते ही झट पहिचान सकते हैं। मू० ॥)

दन्त-विज्ञान (द्वितीय संस्करण)—

यह भिषग्रत्न स्वर्गीय श्री गोपीनाथ जी गुप्त की सारपूर्ण रचना है। इसमें दांतों की रचना, आन्तरिक दशा, रक्षा के उपाय, अनेक दन्त-रोगों के भेद वर्णन और सरल चमत्कारी उपचार दिए गए हैं, चार चित्र युक्त। मू० ।=) मात्र।

न्यूमोनियां प्रकाश (द्वितीय संस्करण)—

आयुर्वेद मनीषी स्वर्गीय पं० देवकरण जी वाजपेयी की यह वही उत्तम रचना है जिस पर धन्वन्तरि पदक मिला था और निखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन से सम्मान और पदक प्राप्त कर चुकी है। न्यूमोनियां की शास्त्रीय व्युत्पत्ति, कारण निदान, परिणाम चिकित्सा आदि सभी बातें एक ही पुस्तक में भली-भांति वर्णित हैं। मू. ।=)

प्राकृतिक ज्वर—

लेखक—स्वर्गीय लाला राधाबल्लभ जी वैद्यराज-मलेरिया [फसली बुखार] का पूर्ण विवेचन है। आयुर्वेदीय मत से मलेरिया कैसे होता है उसके दूर करने के आयुर्वेदीय प्रयोग, क्विनाइन से हानियां आदि विषयों पर पूर्ण प्रकाश डाला है। पुस्तक स्वानुभव के आधार पर लिखी होने के कारण महत्वपूर्ण है। मू० ।)

वैद्यराज जी की जीवनी—

स्वर्गीय श्री लाला राधावल्लभ जी की जीवनी बड़ी ओजस्विनी भाषा में लिखी है। इसके पढ़ने से आलसी पुरुष भी उद्योगी और परिश्रमी बनने की इच्छा करता है। मू० ≡)

वेदों में वैद्यक ज्ञान—

लेखक—स्वर्गीय राधावल्लभ जी वैद्यराज। वेद के मन्त्र जिनमें आयुर्वेदीय विषयों का वर्णन है तथा जिनसे आयुर्वेद की प्राचीनता प्रमाणित होती है शब्दार्थ तथा भावार्थ सहित दिये हैं। मूल्य ≡)

कूपीपक्व रसायन—

लेखक-वैद्य देवीशरण जी गर्ग प्र० सम्पादक धन्वन्तरि-धन्वन्तरि कार्यालय में निर्माण होने वाले कूपीपक्व रसायनों के गुण, मात्रा, अनुपान सेवन विधि आदि विस्तृत रूप से वर्णित हैं। मूल्य प्रचारार्थ ‑) मात्र

चन्द्रोदय-मकरध्वज (तृतीय संस्करण)—

लेखक—स्वर्गीय लाला राधावल्लभ जी वैद्यराज। इस पुस्तक में पारद शुद्धि, गन्धक शुद्धि, पारद के संस्कार, मकरध्वज बनाने की विधि, अष्टी बनाने की विधि, मकरध्वज के गुण तथा भिन्न-भिन्न रोगों में अनुभव सभी बातें स्वानुभव के आधार पर वर्णित हैं। मू० ।) मात्र

भस्म-पर्पटी—

लेखक—वैद्य देवीशरण जी गर्ग प्र० सम्पादक धन्वन्तरि—इसमें धन्वन्तरि कार्यालय में निर्माण होने वाली सम्पूर्ण भस्मों और पर्पटियों का विस्तृत रूप से वर्णन है। रोग के लक्षणानुसार औषधियों को किस प्रकार सफलता के साथ व्यवहार किया जा सकता है यह आप इस पुस्तिका से जान सकेंगे। मू० ‑)

रस-रसायन गुटिका गूगल—

धन्वन्तरि के प्रधान सम्पादक एवं अनुभवी चिकित्सक वैद्य देवीशरण जी गर्ग ने इस पुस्तक में धन्वन्तरि कार्यालय में निर्मित रस-रसायन गुटिका गूगल के गुण, मात्रा, अनुपान, व्यवहार विधि बड़े ही उपयोगी ढङ्ग से लिखी है। चिकित्सकों के लिए यह पुस्तक विशेष उपयोगी बनी है, क्योंकि लेखक ने अपने २० वर्ष के चिकित्सानुभव का निचोड़ इसमें रख दिया है। मू० चार आना मात्र।

रक्त (Blood)

इसमें धन्वन्तरि कार्यालय के संस्थापक श्री वैद्यराज राधावल्लभ जी ने रक्त की बनावट, उपयोगिता एवं रक्त सम्बन्धी सभी मोटी-मोटी बातें आयुर्वेद एवं एलोपैथी उभय-पद्धतियों से सरल हिन्दी भाषा में समझाकर लिखी हैं। नवीन संस्करण मूल्य ।)

इन्फ्ल्युएञ्जा (फ्लु)

लेखक—श्री पं० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी बी. ए. आयुर्वेदाचार्य। इसमें इन्फ्ल्युएञ्जा रोग का विस्तृत विवेचन तथा सफल-चिकित्सा विधि वर्णित है। फ्लू और इसके सभी उपद्रवों की आयुर्वेदीय चिकित्सा है। मू० ॥) मात्र

अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें

❖ आयुर्वेदीय ग्रंथरत्न ❖

अष्टांगहृदय [सम्पूर्ण]—विद्योतनी भाषा टीका, वक्तव्य, परिशिष्ट एवं विस्तृत भूमिका सहित टीकाकार श्री अत्रिदेव गुप्त। मू० १६), कृष्णलाल भारतीय की टीका २०), पं. शिवशर्मा की टीका १५)

अष्टांग संग्रह—[सूत्रस्थान] हिन्दी टीका; व्याख्याकार ग. बधन शर्मा छांगाणी मू० ८)

काश्यप-संहिता—टीकाकार श्री सत्यपाल भिषगाचार्य विद्योतिनी भाषा टीका, विस्तृत संस्कृत हिन्दी उपोद्‌घात सहित। ग्रंथ का मुख्य विषय

"कौमारभृत्य" अष्टांगायुर्वेद का अपरिहार्य अंग है, यह विषय पूर्ण विस्तृत और प्रामाणिक रूप से इस पुस्तक में वर्णित है। मू० १६)

कौमारभृत्य [नव्य बालरोग सहित]—बालरोगों पर प्राच्य एवं पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के आधार पर लिखित विशाल ग्रन्थ मू० ६)

गंगपति निदान—लेखक जैन यति गंगाराम जी। अनुवादकर्त्ता आयुर्वेदाचाय श्री नरेन्द्रनाथ जी शास्त्री। मू० ६)

चरक संहिता [सम्पूर्ण]—श्री जयदेव विद्यालंकार द्वारा सरल विस्तृत भाषा टीका युक्त दो जिल्दों में, (चतुर्थ संस्करण) मू० २५)

चरक संहिता—[सम्पूर्ण] तीन भागों में टीकाकार श्री अत्रिदेव गुप्त। मू० २४)

चक्रदत्त—भावार्थ संदीपनी विस्तृत भाषा टीका तथा विषद टिप्पणी सहित। परिशिष्ट में पंचलक्षणी निदान, डाक्टरी मूत्र परीक्षा, पथ्यापथ्य सहित। मू० १०)

द्रव्य-गुण विज्ञान—[पूर्वार्ध]—छात्रोपयोगी संस्करण। लेखक—आयुर्वेद मार्तण्ड वैद्य यादव जी त्रिक्रम जी आचार्य। द्रव्य, गुण, रस वीर्य विपाक, प्रभाव, कर्म का विज्ञानात्मक विवेचन। मूल्य ४॥), प्रियव्रत शर्मा लिखित प्रथम भाग ५॥), द्वितीय-तृतीय भाग १२॥)

भावप्रकाश [सम्पूर्ण]—भाषा टीका सहित। दो जिल्दों में शारीरिक भाग पर प्राच्य पाश्चात्य मतों का समन्वयात्मक वर्णन, निघण्टु भाग पर विशिष्ट विवरण तथा चिकित्सा प्रकरण प्रत्येक रोग पर प्राच्य-पाश्चात्य मतों का (समन्वयात्मक) विशेष टिप्पणी से सुशोभित है। मूल्य २०), श्री लालचन्द्र कृत २०), कान्तिनारायण मिश्र का २०)

भावप्रकाश निघण्टु—भाषा टीका एवं वृहद् परिशिष्ट सहित लेखक—पं. गंगासहाय मूल्य ७), हरीतक्यादि वर्ग ले० विश्वनाथ द्विवेदी मू० ७)

माधव निदान [भाषा टीकायुक्त]—पूर्वार्द्ध-मधुकोष संस्कृत टीका, विद्योतनी भाषा टीका तथा वैज्ञानिक विमर्श टिप्पणी युक्त-यह माधवनिदान बड़ा ही उपयोगी बन गया है। दो भाग मूल्य १३)

माधव निदान—मूलपाठ, मूलपाठ की सरल हिन्दी व्याख्या, मधुकोष संस्कृत व्याख्या और उसका सरल अनुवाद। वक्तव्य एवं टिप्पणीयुक्त यह ग्रन्थ विद्यार्थियों के लिए अवश्य पठनीय है। पं० पूर्णानन्द शास्त्री पृष्ठ १०१८ दो भागों में मूल्य १२)

माधव निदान—सर्वांग सुन्दरी भाषा टीका सहित सजिल्द मूल्य ४॥)

माधव निदान—टीकाकार ब्रह्मशंकर शास्त्री, मधुकोष संस्कृत व्याख्या तथा मनोरमा हिन्दी टीका सहित। पृष्ठ संख्या ४१२ मूल्य ६)

रसायनसार—श्री पं० श्यामसुन्दराचार्य के बीसियों वर्षों के परिश्रम से प्राप्त प्रत्यक्षानुभव के आधार पर लिखित अपूर्व रसग्रंथ। मूल्य ८)

रसेन्द्रसार संग्रह—वैज्ञानिक रस चन्द्रिका भाषा टीका परिशिष्ट में नवीन रोगों पर रसों का प्रभाव, मानपरिभाषा, मूषा तथा पुट प्रकरण अनुपान विधि तथा औषधि बनाने के नियमादि। मूल्य ६)

रसेन्द्रसार संग्रह [तीन भागों में]—आयुर्वेद वृहस्पति पं० घनानन्द जी पन्त द्वारा संस्कृत टीका और हिन्दी भाषा सहित वैद्यों, विद्यार्थियों के लिये उपयोगी है। पृष्ठ संख्या ११५० मूल्य ११)

रसरत्न समुच्चय—नवीन सुरत्नोज्वला विस्तृत भाषा टीका एवं परिशिष्ट सहित। मूल्य १०)

रसतरंगिणी—चतुर्थ संस्करण। भाषा टीका सहित। रस निर्माण धातु उपधातुओं का शोधन मारण युक्त यह अनुपम ग्रंथ है। मूल्य १०)

रसराज महोदधि—पांचों भाग—वस्तुतः यह आयुर्वेदीय रसों का सागर ही है, प्राचीन ग्रन्थ है तथा सरल भाषा में लिखा, उपयोगी रसग्रन्थ है। नवीन सजिल्द संस्करण। मूल्य १०)

योगरत्नाकर—कायचिकित्सा विषयक उपलब्ध ग्रन्थों में यह सर्वोत्कृष्ट रचना है, चिकित्सक के लिये ज्ञातव्य सभी आवश्यक विषयों का संग्रह किया गया है। माधवोक्त क्रम से सभी रोगों का निदान व चिकित्सा का वर्णन है। मू. १८)

सौश्रुती—लेखक-रमानाथ द्विवेदी-अष्टांग आयुर्वेद के शल्यतन्त्र पर लिखित प्राच्यपाश्चात्य समन्वय से युक्त। मूल्य ८॥)

शार्ङ्गधर संहिता—वैज्ञानिक विमर्शोपेत सुबोधिनी हिन्दी टीका, लक्ष्मी नामक टिप्पणी, पथ्यापथ्य एवं विविध परिशिष्ट सहित। मूल्य ६)

सुश्रुत संहिता [सम्पूर्ण]—सरल हिन्दी टीका सहित टीकाकार श्री अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार। सरल भाषा में यह अनुवाद सभी वैद्यों तथा विद्यार्थियों के लिये पठनीय है। पक्की कपड़े की जिल्द मू० १५)

सुश्रुत संहिता-सूत्रस्थान-टीकाकार श्री युत घाणेकर। अब तक सभी टीकाओं में उत्कृष्ट टीका, मू० ६), इसीका शारीरस्थान मू० ८) डा० जे० डी. शर्मा [शरीर स्थान] ५), कवि. अम्बिकादत्त [सूत्र निदान स्थान] ७)

हारीत संहिता—ऋपि प्रणीत प्राचीन संहिता। भाषा टीका सहित, टीकाकार शिवसहाय जी सूद। पृष्ठ ५१२, मू० ८॥)

हरिहर संहिता—वैद्यराज हरिनाथ सांख्याचार्य, नवीन औपधियों का भी समावेश है। सरल भाषा टीका सहित ८)

वैद्यसहचर—लेखक पं० विश्वनाथ द्विवेदी आयुर्वेदाचार्य। चतुर्थ संस्करण। इसे वैद्यों का सहचर ही समझें। इसमें लेखक ने अपने जीवन का सम्पूर्ण चिकित्सानुभव रख दिया है। मू० ३)

चिकित्सा रत्न—रामरतन गंगेले। एक सामान्य चिकित्सक के लिए सब प्रकार की संक्षिप्त उपयोगी सामग्री से युक्त सजिल्द मू. ५॥)

चिकित्सा तत्व प्रदीप—एक चिकित्सक के लिए अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ-प्रथम भा ६), द्वितीय भाग ८)

वनौषधि चन्द्रोदय—[१० भाग]-प्रत्येक वनस्पति के पर्याय, परिचय, गुण कर्मादि विवेचन युक्त श्री चन्द्रराज भण्डारी कृत। मू. ४०)

एलोपैथिक पुस्तकें हिन्दी में

अभिनव शवच्छेद विज्ञान—लेखक हरस्वरूप कुलश्रेष्ठ नवीन मतानुसार शवच्छेद [Dissection] विषयक विशाल ग्रन्थ है। विषय का स्पष्ट ज्ञान कराने के लिए अनेक चित्र साथ में दिये गये हैं। मू. १५)

अभिनव विकृति विज्ञान—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी A. M. S.—विकृति विज्ञान [pathology] विषय का हिन्दी भाषा में विशाल ग्रन्थ। अनेक चित्र साथ में दिये हैं। प्रत्येक रोग का विकास किस प्रकार होता है एवं उस समय शरीर के किस अंग में क्या क्या परिवर्तन होते हैं स्पष्ट रूप से समझाया गया है। अन्त में हिन्दी एवं इंगलिश शब्दों की विशाल सूची दी गई है। विद्यार्थियों के लिये उपादेय है। मू. २२)

एलोपैथिक पेटेंट चिकित्सा—लेखक डा० अयोध्यानाथ पाण्डेय। अकारादि क्रमानुसार प्रत्येक रोग पर प्रयोग की जाने वाली पेटेंट औषधियां दी हैं तथा प्रत्येक पेटेंट औषधि किस-किस रोग पर प्रयुक्त हो सकती है यह भी दिया है। मू. ११॥)

अभिनव नेत्रचिकित्सा विज्ञान—लेखक पं. विश्वनाथ द्विवेदी शास्त्री B. A., आयुर्वेदाचार्य—प्राच्य एवं पाश्चात्य दोनों का समन्वय करते हुए नेत्र चिकित्सा विषय पर हिन्दी में विशाल ग्रंथ है। मू. १०)

शल्य प्रदीपिका—लेखक डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा—शल्य [सर्जरी] विषयक हिन्दी में लिखी हुई है। प्रत्येक प्रकार के शल्य कर्म को विस्तार से

लिखा गया है। अनेक चित्र दिये गये हैं। मू० १२॥)

एलोपैथिक सार व सिद्ध प्रयोग संग्रह—लेखक डा० ओंकारदत्त शर्मा-पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान की उत्तम औषधियों का संग्रह कर उनके गुण धर्म आदि का विवेचन किया है। साथ में आयुर्वेद के योग भी दिये हैं। मू० १०)

बालरोग चिकित्सा—लेखक डा० रमानाथ द्विवेदी एम. ए., ए. एम. एस.-प्राच्य एवं पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान का विस्तार से समन्वय करते हुए विशद वर्णन युक्त मू० ५)

अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान—लेखक प्रियव्रत शर्मा। यह पुस्तक हिन्दी में अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। मू० ७॥)

धात्री विज्ञान - डा० शिवदयाल गुप्त A. M. S.। प्रारम्भ में नारी जननेन्द्रिय रचना एवं क्रिया शरीर, गर्भिणी परिचर्या नवजात शिशु परिचर्या एवं बाल्य कालीन रोगों का संक्षेप में वर्णन किया है। अनेक सम्बन्धित चित्र दिये हैं। मू० २॥)

गर्भस्थ शिशु की कहानी—लेखक डा० लक्ष्मीशंकर गुरू। प्रसूति विषयक हिन्दी में उत्तम एवं संक्षिप्त पुस्तक। सम्बन्धित चित्र भी दिये हैं। मू० २)

जन्म निरोध—लेखक ए० ए० खाँ M. Sc.। आज के युग में देश में जन संख्या का बढ़ना एक विकट समस्या है। प्रस्तुत पुस्तक में जन्म निरोध के लिए अनेक प्रकार की भौतिक, रासायनिक, यान्त्रिक एवं शस्त्र कर्मीय विधियां दी गई हैं। पुस्तक अत्यन्त उपादेय है। मू० ६)

सामान्य शल्य विज्ञान सचित्र—लेखक डा० शिवदयाल गुप्त A. M.S.। शल्य [सर्जरी] विषयक हिन्दी भाषा में विशाल ग्रंथ। प्रत्येक विषय को आवश्यकीय चित्रों द्वारा समझाया गया है। पुस्तक अध्यापकों, विद्यार्थियों एवं चिकित्सकों के लिए अत्यन्त उपादेय है। मू० १२)

आदर्श एलोपैथिक मेटेरिया मैडिका—एलोपैथी विज्ञान के अनुसार प्रत्येक शरीर-विभाग पर काम करने वाली विशेष औषधियों की प्रकृति, गुणधर्म उपयोग, मात्रा, रोगनिदान के अनुसार इसमें वर्णित है। मू० ११)

हिन्दी माडर्न मैडीकल ट्रीटमैंट-[आधुनिक चिकित्सा] लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर श्री एम. एल. गुजराल M. B., M. R. C. P. [लंदन] द्वारा लिखित एलोपैथी चिकित्सा का हिन्दी में सर्वोत्तम प्रामाणिक ग्रन्थ है। चिकित्सकों के लिए अत्युपयोगी है। मू० २०)

पेटेंट प्रेस्क्राइबर या पेटेंट चिकित्सा—प्रत्येक रोग पर व्यवहार होने वाली एलोपैथिक पेटेंट औषधियों का तथा इञ्जेक्शनों का विवरण सुन्दर ढंग से दिया है। मू० ६)

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान—[प्रथम भाग] श्री डा० आशानन्द जी पञ्चरत्न M. B., B. S. आयुर्वेदाचार्य। यह चिकित्सा विज्ञान की सुन्दर रचना है। इसमें १६ अध्यायों में रोगों का वर्णन तथा उनकी सफल एलोपैथी एवं आयुर्वेदिक चिकित्सा बड़ी खूबी के साथ दी है। इसकी वर्णन शैली तुलनात्मक दृष्टि से ही महत्व की नहीं वरन् सफल चिकित्सा दृष्टि से भी यह ग्रन्थ चिकित्सकों को उपादेय है। कपड़े की सुन्दर जिल्द—मू० १०) मात्र।

आयुर्वेद एण्ड एलोपैथिक गाइड—लेखक आयुर्वेदाचार्य पं० रामकुमार द्विवेदी। हिन्दी में प्राच्य पाश्चात्य विज्ञान का विस्तृत ज्ञान देने वाली बेजोड़ पुस्तक है। हर विषय को सरलतापूर्वक समझाया गया है। मू० १०)

वर्मा एलोपैथिक गाइड—[पञ्चम संस्करण]-लेखक डा० रामनाथ वर्मा। हिन्दी. एलोपैथिक चिकित्सा की सर्वोत्तम पुस्तक, चार संस्करण केवल ४ वर्ष में निकल जाना ही इसकी उपयोगिता का प्रमाण है। मू० १०)

वर्मा एलोपैथिक निघण्टु—डा० वर्मा जी की द्वितीय कृति। इसमें २००० से अधिक पेटेंट तथा

साधारण औषधियों के वर्णन के अतिरिक्त सैंकड़ों नुस्खे तथा अन्य उपयोगी बातों पर प्रकाश डाला गया है। मू० १२)

वर्मा एलोपैथिक चिकित्सा—एलोपैथिक गाइड और निघण्टु के ख्यात प्राप्त लेखक की ही यह कृति है। पुस्तक उपयोगी और पठनीय है। इसमें सभी रोगों की परिभाषा, लक्षण, कारण, चिकित्सा, प्रयोगादि डाक्टरी मतानुसार वर्णित हैं। मू० १२)

एलोपैथिक योगरत्नाकर—श्री वर्मा जी की उपयोगी पुस्तक। इसमें एलोपैथिक मिक्चर तथा प्रयोगों का विशाल संग्रह है। पृष्ठ ७४१ मू० १३)

एलोपैथिक चिकित्सा—[तृतीय संस्करण] लेखक डा० सुरेशप्रसाद शर्मा-इसमें प्रायः सभी रोगों का वर्णन लक्षण निदान आदि संक्षेप में वर्णन करके उन रोगों की चिकित्सा विस्तृत रूप से दी है। योग आधुनिकतम अनुसन्धानों को मथकर और अनुभव सिद्ध लिखे गये हैं। ८२५ पृष्ठों के विशालकाय सजिल्द ग्रंथ का मू० १०)

एलोपैथिक पाकेट गाइड—एलोपैथिक चिकित्सा का सूक्ष्म रूप यह पाकेट गाइड है। इसे आप जेब में रखकर चिकित्सार्थ जा सकते हैं, जो आपका हर समय साथी का काम देती है। मू० ३)

एलोपैथिक पेटेन्ट मैडीशन—लेखक डा० अयोध्यानाथ पांडेय। कौन पेटेन्ट औषधि किस कम्पनी की तथा किन द्रव्यों से निर्मित हुई है किस रोग में प्रयुक्त होती है, लिखा गया है। दूसरे अध्याय में रोगानुसार औषधियों का चुनाव किया गया है। मू. ३॥)

एलोपैथिक मैटेरिया मैडिका—[पाश्चात्य द्रव्य गुण विज्ञान] लेखक-कविराज रामसुशीलसिंह शास्त्री A. M. S.। यह पुस्तक अपने विषय की सर्व श्रेष्ठ पुस्तक है। लेखक ने विषयको आयुर्वेद चिकित्सकों तथा विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी ढङ्ग से प्रस्तुत किया है। मू० सजिल्द का १६)

एलोपैथिक मैटेरिया मैडिका—लेखक डा० शिवदयाल जी गुप्त ए. एम. एस.। इस पुस्तक में अब तक की सम्पूर्ण औषधियां जो एलोपैथी में समाविष्ट हो चुकी हैं सभी दी हैं। सरल सुबोध भाषा, वैज्ञानिक क्रम से विषय का स्पष्टीकरण, औषधियों के सम्बन्ध में आधुनिकतम सूचना, भिन्न-भिन्न औषधियों से सम्बन्धित तथा चिकित्सा में प्रयुक्त योगों का निर्देश पुस्तक की विशेषता है। हिन्दी में सबसे महान् और विशाल अद्वितीय यह पुस्तक जिसमें १३०० पृष्ठ हैं। मू. १२)

एलोपैथिक सफल औषधियां—एलोपैथी की नवीनतम अत्यन्त प्रसिद्ध खास-खास औषधियों का गुण धर्म विवेचन है। जो आजकल बाजार में वरदान सिद्ध हो रही हैं। सभी सल्फाग्रुप आदि औषधियों के वर्णन सहित मू. ३॥) मात्र।

नेत्ररोग विज्ञान—कृष्णगोपाल धर्मा० औष० द्वारा प्रकाशित अपने विषय की हिन्दी में सर्वश्रेष्ठ पुस्तक। सैंकड़ों चित्रों सहित, मू. १५)

सचित्र नेत्रविज्ञान—लेखक डा० शिवदयाल पृष्ठ संख्या ५६८ चित्र संख्या १३० मू. ८)

मल-मूत्र रक्तादि परीक्षा—लेखक डा० शिवदयाल गुप्त, अपने विषय की सर्वाङ्गपूर्ण सचित्र और वैद्यों के बड़े काम की पुस्तक है। मू. ३)

मिक्श्चर-छठासंस्करण—प्रथम २६ पृष्ठों में मिक्श्चर बनाने के नियम, औषधियों की तोल नाप, व्यवस्थापत्रों में लिखे जाने वाले संकेतों की व्याख्या आदि ज्ञातव्य बातें दी हैं। बाद में उपयोगी इन्जेक्शनों का भी संकेत किया है। अन्त में देशी दवाओं के अंग्रेजी नाम दिये हैं। २१७ पृष्ठों की यह पुस्तक चिकित्सकों के लिए अत्युपयोगी है। मू. २॥)

एनीमा और कैथीटर	।=)
एनीमा टीचर	।)
कम्पाउण्डरी शिक्षा	२॥)
कपिङ्गग्लास मैन्युअल	≡)

मलेरिया [एलोपैथिक]	२।)
कैथीटर गाइड	।)
तापमान [थर्मामीटर]	।)
थर्मामीटर मास्टर	।)
स्टेथिस्कोप तथा नाड़ी परीक्षा	।।।)
स्टेथिस्कोप शिक्षक	।।।=)
स्टेथिस्कोप	१)
एलोपैथिक मिक्चर	२)
एलोपैथिक सार संग्रह	७)
एनाटोमी [शरीर ज्ञान संग्रह]	५)
मलेरिया कालाजार	१।।।)
पैनसिलीन व स्ट्रेप्टोमाइसिन विज्ञान तथा मूत्र परीक्षा	१।)
मैडीसन [चिकित्सा ज्ञान संग्रह]	५)

इञ्जेक्शन विषयक पुस्तकें

इंजेक्शन—लेखक डा. सुरेशप्रसाद शर्मा—अपने विषय की हिन्दी में सचित्र सर्वोत्कृष्ट पुस्तक है। थोड़े समय में ही ५ संस्करण हो जाना ही इसकी उत्कृष्टता का प्रमाण है। इसमें प्रारम्भ में सिरिंजों के प्रकार, इन्जेक्शन लगाने के प्रकार तथा उनके लगाने की विधि रङ्गीन एवं सादे चित्रों सहित पूरी तरह समझाई गई है बाद में प्रत्येक इन्जेक्शन का वर्णन, उसकी मात्रा, उसके गुण, प्रयोग करने में क्या सावधानी बरतनी चाहिए आदि सभी बातें विस्तार से लिखी गई हैं, अन्त में अकारादि क्रम से समस्त इन्जेक्शनों की सूची तथा पृष्ठ संख्या दी गई है। चिकित्सकों के लिए पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। सजिल्द मूल्य १०)

इञ्जेक्शन—लेखक श्री डा० शिवनाथ खन्ना।। यह पुस्तक नई प्रकाशित हुई है तथा इसमें आधुनिकतम इञ्जैक्शनों का वर्णन है। पुस्तक अपने विषय की सर्वोत्तम है। मू० १०)

इन्जेक्शन तत्वप्रदीप—ले. डा. गणपतिसिंह वर्मा। सभी इन्जेक्शनों का वर्णन है तथा उनके भेद तथा लगाने की विधि सरलतया से दी है। मू. ५)

इन्जेक्शन विज्ञानांक—[दो भाग] [धन्वन्तरि के विशेषांक] सभी प्रकार के आयुर्वेदिक व एलोपैथिक इन्जेक्शनों का संकलन है तथा इन्जेक्शन सम्बन्धी सभी विशाल साहित्य उपलब्ध हैं। मू० दो भाग का ४)

सूचीवेध विज्ञान—लेखक डा. रमेशचन्द्र वर्मा D. I. M. S. यह पुस्तक भी एलोपैथिक इन्जैक्शनों की उपयोगी विस्तृत साहित्य पूर्ण है। पैनसिलीन, विटामिन आदि का भी विस्तृत वर्णन है। पक्के कपड़े की जिल्द मूल्य ७।।)

सूचीवेध विज्ञान—लेखक श्री राजकुमार द्विवेदी। इस छोटी पुस्तिका में आपको बहुत कुछ सामग्री मिलेगी। गागर में सागर भर दिया है। मू० १।।) मात्र।

होमियो इन्जैक्शन चिकित्सा—प्रारम्भ में इन्जैक्शनों के भेद तथा उनके लगाने की विधि आदि का सचित्र वर्णन किया है। तत्पश्चात् होमियोपैथिक औषधियों के गुणादि का वर्णन किया है। मू० १।।।)

आयुर्वेदिक इन्जैक्शन चिकित्सा—ले० डा० श्यामसुन्दर शर्मा। पुस्तक दो खण्ड में विभाजित है। प्रथम खण्ड में इन्जैक्शन लगाने की विधि आदि का वर्णन किया है। द्वितीय खण्ड में औषधियों का वर्णन किया गया है। मू० २।।)

आयुर्वेदिक सफल सूचीवेध [इन्जैक्शन]—लेखक वैद्य प्रकाशचन्द्र जैन। इस पुस्तक में आयुर्वेदिक द्रव्यों एवं जड़ी-बूटियों के इन्जैक्शनों का वर्णन किया गया है। पुस्तक स्वानुभव के आधार पर लिखी अत्यन्त उपयोगी है। मू० ५)

यूनानी पुस्तकें

जर्राही प्रकाश [चारों भाग]—इसमें घाव और व्रण से सम्बन्धित जर्राहों के लिए उर्दू, संस्कृत व

डाक्टरी आदि अनेक ग्रंथों का सार भाग संग्रह किया गया है। पृष्ठ २२८ मू० ३॥)

यूनानी चिकित्सा सार—इसमें यूनानी मत से सर्व रोगों का निदान व चिकित्सादि दी गई है। वैद्यराज दलजीतसिंह जी ने यह ग्रन्थ वैद्यों के लिए हिन्दी भाषा में लिखा है जिसमें यूनानी चिकित्सा पद्धति का सभी कुछ दे दिया गया है। यह ग्रन्थ अनेक अरबी फारसी पुस्तकों का सार है। छपाई सुन्दर है मूल्य ४॥)

यूनानी चिकित्सा विधि—इसके लेखक श्री मंसाराम जी शुक्ल हकीम वाइस प्रिंसीपल यूनानी तिबिया कालेज देहली हैं। इसमें देहली के प्रसिद्ध यूनानी खानदानी हकीमों के अनुभूत प्रयोगों का निचोड़ है जिसके कारण यूनानी हकीमों की चिकित्सा देहली में खूब चमकी और आज तक नाम है। मूल्य ५)

यूनानी चिकित्सा सागर—श्री मंसाराम जी शुक्ल द्वारा लिखी हुई हिन्दी भाषा में यूनानी का विशाल ग्रन्थ है जो 'रसतन्त्रसार' के ढङ्ग पर लिखा गया है। इसमें पुराने व आधुनिक सभी हकीमों के १००० अनुभूत परीक्षित प्रयोग हैं, औषधियों के नाम हिन्दी में अनुवाद करके दिये गये हैं। जिनके नाम नहीं मिले हैं ऐसी २५० औषधियों का वर्णन परिशिष्ट में दिया गया है। ५१६ पृष्ठ पक्की सुन्दर कपड़े की जिल्द का मूल्य २०)

यूनानी-चिकित्सा विज्ञान—यूनानी चिकित्सा विज्ञान का हिन्दी में अनुपम ग्रन्थ। इस पुस्तक के दो भाग किये हैं प्रस्तुत भाग में यूनानी चिकित्सा और निदान के मूलभूत सिद्धान्तों का विषद विवेचन है। इसमें रोग लक्षण निदान भेद तथा परीक्षा की सामान्य विधियां हैं। ६६६ पृष्ठों के इस ग्रन्थ का मूल्य ८॥) है।

यूनानी सिद्धयोग संग्रह—यह यूनानी सिद्ध योगों का संग्रह है। सभी योग सुलभ सफल परीक्षित और सहज में बनने वाले हैं, प्रत्येक वैद्य के काम की चीज है। इसके संग्रहकार हैं वैद्यराज दलजीत सिंह जी आयुर्वेद बृहस्पति। मू० २॥)

यूनानी वैद्यक के आधारभूत सिद्धांत [कुल्लियात]—श्री बाबू दलजीतसिंह जी व उनके भाई रामसुशील सिंह जी ने इस छोटे से ग्रन्थ में इस बात को दिखाने का प्रयत्न किया है कि आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा पद्धतियों में कितना सादृश तथा कितना असादृश्य है। इसका निर्माण दोनों का समन्वय हो सकता हैं इस आधार पर किया है। मू० १।)

शफाउल अमराज—शिफाउल अमराज मये मुअय्यन उल-इलाज नामक यूनानी ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद है। इसका क्रम ठीक भावप्रकाश जैसा है। रोग का निदान और उसके नीचे चिकित्सा क्रम दिया है। यह दो भागों में है। प्रथम व द्वितीय भाग का मू० ४)

यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान—लेखक हकीम ठा० दलजीत सिंह-पूर्वार्ध में द्रव्य गुण कर्म आदि का विवेचन किया है। उत्तरार्ध में ५३० यूनानी द्रव्यों के पर्याय, उत्पत्ति स्थान वर्णन, रासायनिक संगठन, प्रकृति और गुण के पूर्ण विवेचन से युक्त विशाल ग्रंथ मू० २२)

करावादीन कादरी—अनुवादक पं. जगन्नाथ प्रसाद हैड मुदर्रिस-पहला भाग चौथा भाग मू० ४)

यूनानी शब्दकोष—यूनानी दवाओं के हिन्दी पर्याय इसमें मिलेंगे, इससे दवा लेने में बड़ी सहूलियत होगी। मू० ।=)

सरल सिद्ध प्रयोगों की पुस्तकें

अनुभूत योग प्रकाश—डा. गणपति सिंह वर्मा द्वारा १५ वर्ष के परिश्रम से प्राप्त अनुभूत प्रयोगों का संग्रह है। प्राय: सभी रोगों पर आपको सफल प्रयोग इस पुस्तक में मिलेंगे पृष्ठ ४४५। मू. ६।)

अनुभूति—इसमें आयुर्वेदिक सफल प्रयोग तथा लेखक के स्वानुभवपूर्ण १८६ प्रयोगों का अति उपयोगी संग्रह है। मू० २)

सिद्ध भैषज्य मणिमाला—सिद्धभैषज मणिमाला संस्कृत का प्रसिद्ध सिद्धयोगसंग्रह है जिसके प्रयोगों की ख्याति पर्याप्त है किन्तु पुस्तक संस्कृत में होने से सामान्य चिकित्सकों को कठिनाई होती थी इसको दूर करने के लिए यह चिकित्सा भाग का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। मू० २॥)

गुप्तयोगरत्नावली- डा० नरेन्द्रसिंह नेगी द्वारा लिखित- इसमें भिन्न-भिन्न रोगों पर अनेक अनुभूत योगों का वर्णन है। मू० २॥)

गुप्तसिद्ध प्रयोगांक [प्रथम भाग]—द्वितीय संस्करण- यह वह विशेषांक है जिसके प्रकाशन से धन्वन्तरि ग्राहक संख्या उसी वर्ष दूनी हो गई थी। इसमें २१६ वैद्यों के ५०० अनुभूत प्रयोग हैं इसमें हर छोटे-बड़े रोगों पर २-४ प्रयोग आपको अवश्य मिलेंगे। मू० केवल ६)

गुप्तसिद्ध प्रयोगांक [द्वितीय भाग]—यह धन्वन्तरि का लघु विशेषांक है। २५० प्रयोगों का उत्तम संग्रह है। मू० २)

गुप्तसिद्ध प्रयोगांक [तृतीय भाग]—द्वितीय भाग के समान ही इसमें भी उत्तमोत्तम योगों का संग्रह किया गया है। मू० २)

गुप्तसिद्ध प्रयोगांक [चतुर्थ भाग]–सन् ५८ का धन्वन्तरि का विशेषांक है। १३०८ प्रयोगों का संग्रह है। उत्तम ग्लेज कागज पर जिल्द बंधा हुआ—मूल्य ८॥)

पैसे-पैसे के चुटकले—सस्ते तथा सफल प्रयोगों का संग्रह–मू. ३)

राजकीय औषधियोग संग्रह—उत्तर प्रदेश के सरकारी आयुर्वेदिक औषधालयों में व्यवहार आने वाली ४०० से ऊपर औषधियों के प्रयोग, निर्माण-विधि, गुण, सेवन विधि आदि श्री रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी जी द्वारा लिखित उपयोगी ग्रंथ। पुस्तक विद्यार्थियों तथा विद्वानों के लिए पठनीय है। मू० ७)

सिद्ध मृत्युञ्जय योग–इस पुस्तक में ५३ सफल प्रयोगों का वर्णन है। प्रयोग मात्रा सेवनविधि गुण आदि देकर यह स्पष्ट लिख दिया है कि प्रयोग किस प्रकार प्राप्त हुआ तथा कहां सफलता के साथ व्यवहृत हुआ है। चिकित्सकों के लिए उपयोगी है। मू० १)

औषध स्वावलम्बन—कवि. विद्यानारायण शास्त्री- तुलसी, पान, आर्द्रक आदि सुगमता से प्राप्य औषधियों का प्रारम्भ में संक्षिप्त वर्णन देते हुए बाद में यह समझाया गया है कि वह औषधि किन-किन रोगों में किस प्रकार कार्य कर सकती है। मू. २)

सिद्ध प्रयोग–[दो भाग] पं विशेश्वरदयालु वैद्यराज– इस पुस्तक में अनेक सिद्ध योगों का रोगानुसार वर्गीकरण करते हुए संग्रह किया गया है। मूल्य प्रथम भाग १) द्वितीय भाग ॥)

वैद्य जीवनम्–श्री लोलम्बराज कृत संस्कृत में प्रयोगों का संग्रह है। सरल हिन्दी में टीका की गई है– टीकाकार—पं० किशोरीदत्त शास्त्री–मू. ॥=)
टीकाकार—पं. कालिकाचरण पांडेय एम० ए० मू. १)

वैद्य बाबा का बस्ता—जैसा कि नाम से ही प्रगट है श्री बंसरीलाल जी साहनी द्वारा रोगानुसार वर्गीकरण करते हुए लगभग ६५० प्रयोगों का संग्रह है। पुस्तक का आकार डायरी के समान है इससे पुस्तक की उपादेयता और बढ़ गई है। सजिल्द मू. १।)

नित्योपयोगी चूर्ण संग्रह—नित्य उपयोग में आने वाले १३१ चूर्णों का संग्रह विभिन्न ग्रन्थों से किया गया है। उनके बनाने की विधि मात्रा, अनुपान एवं गुणों का वर्णन किया है। मू. १।)

नित्योपयोगी क्वाथ संग्रह—क्वाथ चिकित्सा आयुर्वेद की प्राचीन, अल्प व्यय साध्य एवं आशुफलप्रद चिकित्सा है। इस पुस्तक में १६६ क्वाथों का संग्रह प्रकाशित किया है। मूल्य १।)

अनुभूत योग चिन्तामणि—डा. गणपति सिंह वर्मा राजवैद्य—वर्गानुसार रोगों का वर्णन कर तत्पश्चात उपयोगी नुस्खे दिए गये हैं जो कि

सस्ते, सुलभ एवं आशुफलप्रद हैं। अल्प काल में ही पांच संस्करणों का हो जाना ही इसकी उत्तमता का प्रमाण है। मू० प्रथम भाग ४।), द्वितीय भाग ४)

सिद्धभैषज्य संग्रह—चूर्ण वटी तैल अवलेह आदि वर्गानुसार अनेक सिद्ध औषधियों का विवेचन किया गया है। अन्त में ज्वर अतिसार आदि रोगों पर प्रयुक्त की जाने वाली औषधियों की विस्तृत सूची दी है। सजिल्द मू. ८)

देहाती अनुभूत योग संग्रह—[दो भाग] अनुवादक अमोलकचन्द्र शुक्ल-देहाती वस्तुओं से उत्तमोत्तम प्रयोगों को बनाने की विधियां वर्णन की गई हैं। दोनों भागों में मिलाकर लगभग ६५० प्रयोग दिये हैं। सजिल्द मू. प्रथम भाग ६) द्वितीय भाग ७)

डाक्टरी नुस्खे - डा. राधावल्लभ पाठक-अनेक अचूक डाक्टरी नुसखों का संग्रह इस छोटी सी पुस्तक में किया गया है। सजिल्द मू. ५)

अनुभूत योग चर्चा—लेखक बंसरीलाल साहनी-प्रथम भाग में २०८ प्रयोगों तथा द्वितीय भाग में ४४३ प्रयोगों का संग्रह है। इस पुस्तक में अति सरल प्रयोगों का कष्टसाध्य रोगों पर सफल प्रयोग वर्णित है, पुस्तक हर चिकित्सक के लिए अवश्य पठनीय, बड़े काम की बन गई है। सभी को अवश्य मंगाना चाहिये। मू. प्रथम भाग २।।) द्वितीय भाग ३।।)

अनुभूत योग—दो भागों में लगभग १५० प्रयोगों की निर्माण विधि, मात्रा, अनुपान एवं उनके गुणों का विस्तृत विवेचन किया गया है। मूल्य प्रत्येक भाग १)

सिद्धयोग संग्रह—आयुर्वेद मार्तण्ड श्री यादव जी त्रिक्रम जी आचार्य के द्वारा अनुभूत सफल प्रयोगों का संग्रह, हर चिकित्सक के लिए उपयोगी पुस्तक है। इसके सभी प्रयोग पूर्ण परीक्षित और सद्यः लाभदायक हैं। मू० २।।)

रसतन्त्रसार सिद्धप्रयोग संग्रह—संशोधित अष्टम संस्करण। इस ग्रन्थ में रसरसायन, गुटिका, आसव, अरिष्ट, पाक, अवलेह, लेप-सेक मलहम अजंनादि सभी प्रकार की आयुर्वेदिक औषधियों के सहस्त्रशः अनुभूत एवं शास्त्रीय प्रयोग हैं। सभी वैद्यों के लिए उपयोगी विशाल ग्रन्थ है। मूल्य प्रथम भाग ६), द्वितीय भाग ६)

होमियो-बायोकैमिक पुस्तकें

आर्गेनन—यह होमियोपैथी की मूल पुस्तक है जिसमें इस पैथी के मूल प्रवर्तक महात्मा सैमुएल हैनिमैन के २९१ मूल सूत्र हैं। इस पुस्तक में इन्हीं पर डा० सुरेशप्रसाद शर्मा ने व्याख्या की है। व्याख्या इतनी सुन्दर और सरल है कि हिन्दी जानने वाले इन सूत्रों का मन्तव्य भली-भांति समझ सकते हैं बिना इस पुस्तक के होम्योपैथी को जानना दुराशा मात्र है। ३८८ पृष्ठों की सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मू० ४)

इन्जैक्शन चिकित्सा होमियो—ले. डा. सुरेशप्रसाद शर्मा। इसमें होम्योपैथी इन्जैक्शनों का वर्णन है, साथ ही होम्योपैथी औषधियों से इन्जैक्शन बनाना आदि भली-भांति बताया गया है। मू० १।।)

ज्वर चिकित्सा—नाम से ही विदित है। इस पुस्तक पर उत्तर प्रदेशीय सरकार से लेखक पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं। इसमें सभी प्रकार के ज्वरों की एलोपैथिक, होम्योपैथिक आयुर्वेदिक एवं यूनानी मत से चिकित्सा वर्णित है। म० २)

पशु चिकित्सा होमियो—यह आयुर्वेदिक तथा होम्योपैथिक दोनों से सम्बन्धित पशु चिकित्सा पर बहुत उपयोगी साहित्य है। सभी पशुओं के रोगों पर विस्तार पूर्वक विचार किया गया है। मू० २=) मात्र।

प्रिसमेटेरिया मेडिका [कम्परेटिव]-डा. सुरेशप्रसाद प्रिंसहोमियो पैथिक कालेज के प्रिंसिपल द्वारा प्रणीत यह होम्योपैथिक मेटेरिया मेडिका है।

औरों से इसमें बहुत कुछ विशेषता है। थेरापयुटिक ही नहीं इसमें फार्माकोपिया भी सम्मिलित की गई है। प्रत्येक प्रमुख औषधियों के मूल द्रव्य, प्रस्तुत विधि, वृद्धि, उपशय प्रमुख एवं साधारण लक्षणों आदि सभी विषयों का वर्णन किया गया है। चिकित्सकों तथा प्रारम्भिक विद्यार्थियों के लिए यह बहुत ही उपादेय है साधारण हिन्दी ज्ञाता भी इसको समझ सकते हैं। १३७२ पृष्ठों वाले इस विशाल ग्रन्थ का मू० केवल ६) है।

भैषज्यसार—होम्योपैथी का पाकेट गुटिका। इसमें रोगों में दवाओं का प्रयोग व मात्रा दी गई है। मू० २)

भारतीय औषधावली तथा होमियो पेटेन्ट मैडीशन डा० सुरेशप्रसाद ने इस पुस्तक में उन औषधियों को लिया है जो भारतीय औषधियों से तैयार होती हैं, साथ ही बाद में कुछ होम्योपैथिक पेटेन्ट औषधियों को वह किस रोग में दी जाती है दिया है। मू० १।।)

रिलेशन-शिप—इस छोटी सी पुस्तक में डा० श्यामसुन्दर शर्मा ने औषधियों का पारस्परिक-सम्बन्ध ज्ञान दर्शाया है नित्य व्यवहारिक औषधियों का सहायक अनुसरणीय प्रतिषेधक तथा विपरीत औषधियों का संग्रह किया गया है। मू० २)

सरल होमियो चिकित्सा—इसमें सभी स्त्री पुरुषों के स्वास्थ्य नियमों को बताया है तथा उनसे विपरीत होने वाले सभी रोगों की होम्योपैथी चिकित्सा दी गई है। रोग वर्णन तथा चिकित्सा दोनों ही अत्यन्त सरल और समझाकर लिखे गये हैं। मूल्य ४।।)

रोगनिदान चिकित्सा—इस छोटी पुस्तक में १०० पृष्ठों में रोगी की परीक्षा विधि तथा ५० पृष्ठों में होम्योपैथी एवं आयुर्वेदिक चिकित्सा बताई गई है। मूल्य २)

स्त्री रोग चिकित्सा—डा० सुरेशप्रसाद शर्मा लिखित स्त्री जननेन्द्रिय के समान समस्त रोग गर्भाधान प्रसवरोग, प्रसूति रोग तथा स्त्रियों को होने वाले अन्य रोगों का निदान व चिकित्सा है। मू. ४।।)

लेडी डाक्टर—गर्भाधान व प्रसव सम्बन्धी ज्ञान तथा उससे सम्बन्धित होमियोपैथिक चिकित्सा वर्णित है। मू० १।)

होमियोपैथिक मेटेरिया मैडिका—जिन्हें मोटे-मोटे ग्रंथ पढ़ने का समय नहीं है उनके लिए यह मेटेरिया मैडिका बहुत उपयुक्त है। सभी आवश्यक विषय का वर्णन है। गागर में सागर वाली कहावत चरितार्थ है। चिकित्सक के काम की वस्तु है। सजिल्द पुस्तक ४०० पृष्ठ मू० ३।।)

होमियो मेटेरिया मैडिका—डा० श्योसहाय भार्गव द्वारा रचित। लेखक ने वर्णन करने में व्यर्थ के शब्दों को बढ़ाया नहीं है, सभी आवश्यक विषय हैं। कोई छूटने नहीं पाया है। किसी मैटेरिया मैडिका से कम महत्व की नहीं है। है। ५६१ पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक मू० ५)

होमियो चिकित्सा विज्ञान—[Practice of Medicines] लेखक डा० श्यामसुन्दर शर्मा। होमियोपैथी पर लिखी गई चिकित्सा पुस्तकों में यह पुस्तक सर्वोपरि है। प्रत्येक रोग का खण्ड-खण्ड रूप में परिचय, कारण, शारीरिक विकृति, उपद्रव, परिणाम और आनुषङ्गिक चिकित्सा के साथ आरोग्य चिकित्सा का वर्णन है। डाक्टर तथा साधारण गृहस्थों सभी के लिए उपयोगी पुस्तक है। सजिल्द मू. ३।।)

कालरा या हैजा—इस भयंकर महाव्याधि पर सुन्दर सामग्री प्रस्तुत है। इसकी प्रत्येक अवस्था पर औषधियों का सुन्दर विवेचन है। म० २)

वायोकैमिक चिकित्सा—वायोकैमिक चिकित्सा सिद्धांत के सम्बन्ध में आवश्यक बातें तथा बारहों औषधियों के वृहद् मुख्य लक्षण और किन-किन रोगों में उनका व्यवहार होता है सरल ढंग से समझाया गया है। पृष्ठ ४३६ म० ४)

वायोकैमिक रहस्य—[सप्तम संस्करण] वायोकैमिक क्या है। इस विषय पर यह पुस्तक सभी

आवश्यक अंगों की जानकारी देती है तथा बारहों दवाओं का भिन्न-भिन्न रोगों पर सफल वर्णन किया गया है। सजिल्द पुस्तक मू० २।।।)

वायोकैमिक मिक्श्चर—बारहों क्षारों का रोगों में मिक्श्चर रूप व्यवहार करना यह पुस्तक बताती है। मू. ।।।)

वायोकैमिक पाकेट गाइड—वायोकैमिक विषय का पाकेट में रहने वाला गुटका, फिर भी बड़े काम का है। मू० १)

होमियो पारिवारिक चिकित्सा—लेखक डा० सुरेशप्रसाद शर्मा। प्रत्येक रोग के लक्षण एवं उनकी होमियोपैथिक चिकित्सा विस्तृत रूप से दी है। आधुनिक वैज्ञानिक विवेचन भी साथ में दिया गया है। पृष्ठ लगभग १६०० मू० ६)

घाव की चिकित्सा	श्यामसुन्दर शर्मा	१)
निमोनिया चिकित्सा	डा० वी. एन. टण्डन	।।)
,, ,,	डा० सुरेशप्रसाद	।।।)
होमियो थाइसिस चिकित्सा	,, ,,	।।।)
होमियोपैथिक पुराने नुस्खे	डा० श्यामसुन्दर	१)
होमियो टायफाइड चिकित्सा	डा० सुरेशप्रसाद	।।।)
होमियो पाकेट गाइड	,, ,,	१)
ग्रह चिकित्सा	,, ,,	२।)
,, ,,	डा० वी. एन. टण्डन	१।।)
भैषज्य रहस्य	,, ,,	४)
सरल होमियो पारिवारिक चिकित्सा	डा० श्योसहाय भार्गव	५)
होमियो फार्मेकोपिया	डा० वी. एन. टण्डन	२)

प्राकृतिक चिकित्सा की पुस्तकें

रोगों की सरल चिकित्सा—[तीसरा परिवर्धित संस्करण] लेखक श्री विट्ठलदास मोदी। दस हजार से अधिक रोगियों पर किये गये अनुभव के आधार पर लिखी गई हिन्दी की यह प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी श्रेष्ठ पुस्तक है। अब तक इसकी पन्द्रह हजार प्रतियां बिक चुकी हैं। पृष्ठ संख्या ३५०, बढ़िया पक्की सजिल्द मू० ४)

बच्चों का स्वास्थ्य और उनके रोग—बच्चों के पालन-पोषण की विधि के साथ-साथ उसके रोगी होने पर उन्हें रोग मुक्त करने की विधि इस पुस्तक में विस्तार से दी गई है जो हर माता को आसानी से बच्चों की चिकित्सिका बना देगी। मू० केवल ३)

रोगों की नई चिकित्सा—ले० लूई कूने। यद्यपि ाकृतिक चिकित्सा का बहुत पहले आविर्भाव हो चुका था पर हिंदुस्तानी में प्राकृतिक चिकित्सा कूने की पुस्तक "न्यू साइंस आफ हीलिंग" के साथ ही आयी। कूने की इस पुस्तक का ही 'रोगों की नई चिकित्सा' भावात्मक अनुवाद है। पृष्ठ संख्या २६०, बढ़िया छपाई, दुरंगा कवर। मूल्य केवल २)

प्राकृतिक जीवन की ओर—मिट्टी, पानी, धूप, हवा और भोजन की सहायता से नये पुराने सब रोगों को दूर करने तथा स्वास्थ्य बढ़िया बनाने की विधि सिखाने वाली एक जर्मन पुस्तक का अनुवाद। मूल्य २।।)

जीने की कला—यह पुस्तक आपका मानसिक बल बढ़ायेगी, चिन्ताओं से मुक्त करेगी तथा आपके सामने वे सारे रहस्य खोलकर रख देगी जिसके कारण मनुष्य बनता है। मूल्य १।)

स्वास्थ्य कैसे पाया ?—इस पुस्तक को उन्नत बनाने और लोगों को रोगों से मुक्ति पाने की आत्मकथाएं पढ़कर स्वस्थ रहने का सही तरीका जानें मूल्य १।।)

उपवास से लाभ—उपवास की महिमा, उपवास करने की विधि और रोगों के निवारण में उपवास का स्थान बताने वाली पुस्तक मूल्य १।।)

उठो !—इस पुस्तक को पढ़ें और दुःख परेशानी और मुसीबतों से छुटकारा पाकर जीवन को सरल बनायें। मू० १)

आदर्श आहार—भोजन से स्वास्थ्य का क्या सम्बन्ध है और भोजन द्वारा रोग का निवारण कैसे किया जा सकता है बताने वाला एक ज्ञान कोष। मूल्य १)

सर्दी-जुकाम-खांसी—इन रोगों के कारण, उनको दूर करने की सरल घरेलू विधि और उनसे बचने का रास्ता बताने वाली एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक। मू० ।।।)

योगासन—ले० आत्मानन्द। योगासन हिन्दुस्तान के ऋषियों द्वारा संस्कृत प्राचीन तम प्रणाली है। योगासन की विधियां और योगासन इस सचित्र "योगासन" द्वारा सीखिये और योगासनों द्वारा रोग निवारण की कला की जानकारी प्राप्त कीजिये। मूल्य केवल २)

दुग्ध कल्प—दूध शरीर को निर्मल तो करता ही है रग-रग नस-नस को धोकर शरीर को पुष्ट बना देता है और रोग इसके कल्प से चले जाते हैं इसकी विधि इस पुस्तक में पढ़ें और लाभ उठाएं। मूल्य १)

दूध चिकित्सा-दूध में क्या गुण हैं। इससे इलाज किस प्रकार किया जाता है। दूध से बनी विभिन्न वस्तुओं का हमारे स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ता है--आदि उपयोगी वर्णन इस पुस्तक में पढ़िये। सजिल्द मूल्य ४)

स्वास्थ्य के लिए शाक तरकारियां [चतुर्थ संस्करण]—शाक तरकारियां जो हम रोजाना खाते हैं इनका मनुष्य के स्वास्थ्य और सौंदर्य से क्या सम्बन्ध है कौन कौन सी शाक तरकारियां कब और कैसे खानी चाहिये आदि सभी बातें इस छोटी सी पुस्तक में दी है। मूल्य २)

फलाहार चिकित्सा—लेखक कवि. महेन्द्रनाथ पांडेय फल खाने के सम्बन्ध में इस पुस्तक में काफी विस्तार से लिया गया है। किस फल में कौन कौन विटामिन कितनी मात्रा में होता है। किस फल को किस फल के साथ खाना चाहिए। आदि सभी बातें विस्तार से हैं। मूल्य २॥।)

स्वास्थ्य जल और चिकित्सा—[छठा संस्करण] लेखक केदारनाथ गुप्त M. A.—इसमें जल चिकित्सा के सारे सिद्धान्तों को बड़ी सरल भाषा में प्रतिपादन किया गया है। पानी के द्वारा समस्त रोगों की चिकित्सा कैसे करानी चाहिए यह इस पुस्तक में पढ़िये। मू. २)

दैनन्दिन रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा-लेखक कुलरंजन मुखर्जी—इस पुस्तक में ज्वर, प्रतिश्याय, अतिसार प्रवाहिका फोड़ा-फुंसी, घाव, सिर दर्द हैजा, चेचक आदि रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा दी गई है। मू. ४) मात्र

पुराने रोगों की गृह चिकित्सा—लेखक डा. कुलरञ्जन मुखर्जी-इस पुस्तक में अजीर्ण, संग्रहणी, श्वास यक्ष्मा, कैंसर, मधुमेह, दाद, उन्माद, रक्तचाप अश्मरी, नपुंसकता, अण्डवृद्धि आदि सभी जीर्ण रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा दी गई है। मू० ४)

प्राकृतिक शिशु चिकित्सा—लेखक डा. सुरेशप्रसाद शर्मा—शिशुओं के विभिन्न रोग किस कारण से होते हैं तथा इनका नाम मात्र व्यय में किस प्रकार उपचार किया जाय। बच्चों को निरोग रखने के उपाय एवं विविध प्रकार के स्नान इस पुस्तक में दिये हैं। मू. २)

देहाती प्राकृतिक चिकित्सा—इस पुस्तक में नेत्र, कर्ण नासिका, दन्तरोग, मुख तथा कण्ठ रोग, श्वास-कास, अजीर्ण विशूचिका, प्रवाहिका, अतिसार संग्रहणी, वृक्कशूल, मूत्रावरोध, दाद, श्वित्र नपुंसकता आदि सभी रोगों में उपयोगी अनेक प्रयोग दिये गये हैं। मू. सजिल्द ५)

कपड़ा और तन्दुरुस्ती	डा. युगलकिशोर चौधरी		।।–)
घरेलू कुदरती इलाज	केदारनाथ गुप्त		१)
जल चिकित्सा [पानी का इलाज]	डा. युगलकिशोर चौधरी		१)
दमा श्वास खांसी	,,	,,	।=)
दुग्ध कल्प व दुग्ध चिकित्सा	,,	,,	१।)
नेत्र रक्षा व नेत्र रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा	,,	,,	।।।)

प्राकृतिक चिकित्सा पथ प्रदर्शक ,,	,,	।=)
,, ,, सूर्योदय ,,	,,	१।)
,, ,, प्रश्नोत्तरी ,,	,,	।।)
,, ,, सागर ,,	,,	।।।)
प्राकृतिक चिकित्सा	पं. चन्द्रशेखर	१)
बच्चों का पालन और चिकित्सा	युगलकिशोर चौधरी	।।।)
मलेरिया मोतीझला न्यूमो.	युगलकिशोर चौधरी	।।।)
भिन्न-भिन्न रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा	,,	।।।)
स्नान चिकित्सा	,,	।।)
स्त्री रोग चिकित्सा	,,	।।।)
सूर्य-रश्मि चिकित्सा	वैद्य बांकेलाल गुप्त	।।।)

बिजली की मशीन

※ नवीन प्रकार की टिकाऊ व प्रभावशाली ※

धन्वन्तरि कार्यालय
विजयगढ़ [अलीगढ़]

अभी तक जो बिजली की मशीन हम सप्लाई कर रहे थे वे दिल्ली से तैयार कराकर मंगाते थे। उनमें यह कमी थी कि थोड़ा सा झटका लग जानेसे कनैक्सन अस्त-व्यस्त हो जाते थे तथा जल्दी बेकार हो जाती थीं। अब हमने स्वयं अपने यहां नवीन ढंग से मशीन तैयार करना प्रारम्भ कर दिया है।

इस मशीन की विशेषताएं—

१—इसके मुख्य पुर्जे बिजली फैक्टरी कलकत्ता से निर्माण कराकर मंगाए जाते हैं, अतएव-

२—यह मशीन अधिक टिकाऊ तथा पूर्ण विश्वस्त है।

३—इसमें चार सैल (टार्च में पड़ने वाले) डाले जाते हैं अतएव यह मशीन अधिक ताकत की है।

४—यह मशीन २ सैल से भी काम में ली जा सकती है, ४ सैल की ताकत रोगी सहन न करे तो २ सैल से व्यवहार कर सकते हैं।

५—यह मशीन सुन्दर आकर्षक तथा अनेक कष्टसाध्य रोगों में शीघ्र लाभ करने वाली है। मूल्य ३५)

धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

पुस्तकों का विस्तृत सूची-पत्र

पत्र डालकर मंगालें जिसमें लगभग ८०० पुस्तकों का विवरण दिया हुआ है।

धन्वन्तरि के ग्राहकों को आवश्यकतानुसार औषधियां पुस्तकें, खरल, चित्रादि, हमारे यहां से मंगाकर हमारी सहायता करनी चाहिए।

क्या आप रोगी हैं ?

यदि आप या आपके मित्र रोगी हैं और चिकित्सा कराते-कराते परेशान हो गए हैं तो अपने रोग का पूरा हाल लिख कर पत्र द्वारा भेजियेगा। धन्वन्तरि के प्रधान सम्पादक श्री. वैद्य देवीशरण गर्ग वैद्योपाध्याय अनुभवी और सफल चिकित्सक हैं। आपके पत्र को ध्यान से पढ़ेंगे और विचार कर औषधि-व्यवस्था मुफ्त करा देंगे। यदि आप चाहेंगे तो आपके रोगानुकूल औषधियां भी भेज दी जांयगी और आप शीघ्र अपने रोग से छुटकारा पा जांयगे। इस प्रकार पत्र द्वारा औषधियां प्राप्त कर सैकड़ों-हजारों रोगियों ने लाभ उठाया, है आप भी वैद्य जी के अनुभव से लाभ उठाइये।

१) फायल बनाने का शुल्क

भेजने पर आपके नाम की पृथक् फायल बनाकर आपका पत्र-व्यवहार पृथक् रखा जायगा, जिससे कि पुनः दवा मंगाने पर आपके पूर्व पत्रादि वैद्य जी के समक्ष रखने में, तथा आपके पत्र का उत्तर देने में आसानी और शीघ्रता हो सकेगी। अपने रोग की दशा लिखकर भेजते समय ही १) मनियार्डर से भेजना चाहिए। फायल का नम्बर आपको सूचित कर दिया जायगा तथा बाद में आप अपनी फायल का नम्बर लिख दिया करें तो बड़ी सुविधा रहेगी।

नोट—रोग लक्षण संक्षिप्त लिखते हुए पत्र लिखें, अधिक गाथा लिख कर पत्र लम्बा न करें। समयाभाव से लम्बा पत्र पढ़ने तथा उत्तर देने में असमर्थ रहेंगे।

पता—व्यवस्थापक—चिकित्सा विभाग

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

धन्वन्तरि के विशेषाङ्क

धन्वन्तरि के विशेषांक किस कोटि के होते हैं यह आप अपने हाथ के इस नारीरोगांक से भली प्रकार समझ सकते हैं। अपनी विशालता, उपयोगिता के कारण इन विशेषांकों की मांग बहुत रहती है तथा वे शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं। कई विशेषांकों का पुनर्मुद्रण हमारी इस बात का प्रमाण है। इस समय तक धन्वन्तरि के लगभग ६० विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें से बहुत कम शेष रह गये हैं। जो शेष रहे हैं उनका भी शीघ्र समाप्त होजाना अनिवार्य है। जो विशेषांक इस समय शेष हैं उनका विवरण विशेषांक के अन्त में लगी सूची में दिया गया है। यदि आप इस उपयोगी एवं सस्ते साहित्य को प्राप्त करना चाहते हैं तो समाप्त होने से पहिले ही मंगा लीजियेगा। समाप्त हो जाने पर यह अलभ्य साहित्य पुनः प्रकाशित कर सकेंगे इसकी हमको आशा नहीं।

मुद्रक—
वैद्य देवीशरण गर्ग
धन्वन्तरि प्रेस विजयगढ़

प्रकाशक
वैद्य देवीशरण गर्ग
धन्वन्तरि कार्यालय
विजयगढ़

भाग ३४
अङ्क—२-३
फरवरी-मार्च १९६०

रजिष्ट्रेशन ऑफन्यूजपेपर्स (सेंट्रल) रूल्स, १९५६ के नियम ८ के अन्तर्गत 'धन्वन्तरि' नामक मासिक पत्र का विवरण

१. प्रकाशक का स्थान	—	विजयगढ़ जिला अलीगढ़
२. प्रकाशन का काल	—	मासिक
३. मुद्रक का नाम	—	वैद्य देवीशरण गर्ग
राष्ट्रीयता	—	भारतीय
पता	—	विजयगढ़ (अलीगढ़)
४. प्रकाशक का नाम	—	वैद्य देवीशरण गर्ग
राष्ट्रीयता एवं पता	—	उपरोक्त
५. सम्पादक का नाम	—	वैद्य देवीशरण गर्ग
राष्ट्रीयता एवं पता	—	उपरोक्त
६. पत्र के मालिक नाम	—	वैद्य देवीशरण गर्ग विजयगढ़ (अलीगढ़)

मैं वैद्य देवीशरण गर्ग यह घोषित करता हूं कि ऊपर दिया गया विवरण जहां तक मैं जानता हूं तथा मेरा विश्वास है, सत्य है।

१-३-६० ह० वैद्य देवीशरण गर्ग (प्रकाशक)

धन्वन्तरि
वर्ष ३४
अङ्क ४
नारी रोगाङ्क परिशिष्ट
अप्रैल
१९६०

मुद्रक—वैद्य देवीशरण गर्ग, धन्वन्तरि प्रेस, विजयगढ़

सन्तति नियमन अङ्क

"संतति निरोध" पर श्री० डा० परमानन्दन जी आचार्य का एक विस्तृत निबंध प्राप्त हुआ है जिसमें इस विषय के हर पहलू पर विस्तृत विचार किया गया है। इस लम्बे लेख को नारी-रोगांक में प्रकाशित करना सम्भव नहीं था तथा यह 'नारी रोगों' की गणना में भी नहीं आता अतएव इसे नारी-रोगांक के परिशिष्ट रूप में इस अंक को प्रकाशित करना उचित प्रतीत हुआ। आशा है पाठक इस लेख से अवश्य लाभान्वित होंगे। अन्य कतिपय उपयोगी लेख भी इस अङ्क में प्रकाशित किए गए हैं।

प्रधान सम्पादक
वैद्य देवीशरण गर्ग

सहायक सम्पादक
ज्वालाप्रसाद अग्रवाल बी. एस सी.
दाऊदयाल गर्ग ए., एम. बी. एस.

वर्ष ३४
अङ्क ४

वार्षिक मूल्य ५-५० न० पै०
इस अङ्क का मूल्य एक रुपया

अप्रैल
१९६०
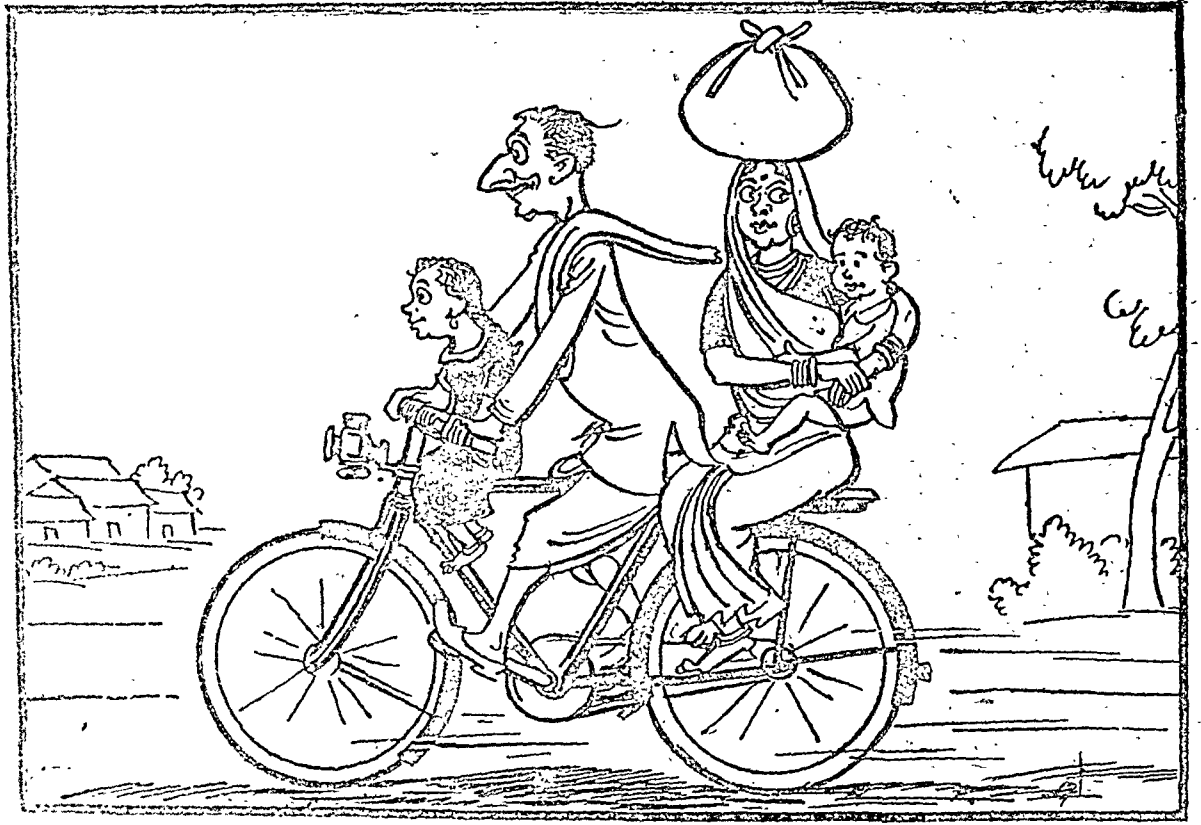
यहां तक तो ठीक है यदि इससे अधिक बच्चे
हुए तो यह आनन्द जाता रहेगा ।

गर्भ निरोध की समस्या और उसका समाधान

आचार्य श्री परमानन्दन शास्त्री

भारत जैसे जनसंख्याबहुल तथा आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए देश में जनसंख्या में वृद्धि की वर्तमान समस्या एक प्रबल समस्या है और इसके निराकरण के लिए भारतीय जन-नेताओं ने परिवार नियोजन तथा गर्भ-निरोध को राष्ट्रीय विकास कार्यक्रम के अधीन रखा है।

आंकड़ा विशेषज्ञों के अनुसार भारत की आबादी १८७१ में १६ करोड़ की बताई जाती है जो पिछले ८० वर्षों में बढ़कर ३६ करोड़ की होगई है। प्रतिवर्ष ५० लाख से भी अधिक व्यक्तियों की वृद्धि भारत जैसे गरीब देश में एक गम्भीर समस्या अवश्य मानी जानी चाहिए।

प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान श्री जी. सी. विपिल के शब्दों में किसी राष्ट्र की वास्तविक संपदा उसके जमीन और पानी में, खानों और जङ्गलों में, पशुधन में तथा चांदी-सोने और मुहरों में नहीं है अपितु वह स्वस्थ और सुखी औरत मर्द तथा बच्चों में भरी पड़ी है।

चिन्तित पिता और रक्तहीन माता से परिपोषित ये अभागे बच्चे अगर किसी तरह जिन्दा रह भी जाते हैं तो बीमार, निरक्षर, बेकार, भूखे, नंगे तथा आरम्भ से ही गिरहकट-लुच्चे तथा लफंगों के गिरोह में वृद्धि करते देखे जाते हैं।

भारत सरकार की सतर्कता—

भारत की इस जनसंख्या की समस्या की ओर भारत सरकार का ध्यान बराबर आकृष्ट हो रहा है। यदि बढ़ती हुई जनसंख्या की ओर उचित ध्यान नहीं दिया गया तो भारत की आर्थिक उन्नति में काफी बाधा पड़ेगी। इसलिए जनसंख्या को राष्ट्रीय आर्थिक स्तर के अनुरूप बनाये रखने के लिए जन्मदर को अवश्य ही घटाना पड़ेगा। भारत सरकार की इस प्रकार की जनसंख्या नीति का मुख्य उद्देश्य लोगों के जीवन स्तर को ऊंचा करना है जिससे परिवार स्वस्थ एवं प्रसन्न रहे, अनावश्यक बच्चों की संख्या कम हो तथा आवश्यक बच्चों की संख्या बढ़े ताकि उनका लालन पालन स्नेह और प्यार के वातावरण में होसके।

इसलिए भारत सरकार ने परिवार नियोजन पर एक चतुर्मुखी कार्य-कारी कार्यक्रम चलाया और दूसरी पंचवर्षीय योजना में राज्यों में १७ लाख रुपये की व्यवस्था सहित कुल ४९७ लाख रुपयों की व्यवस्था की गई। सेवाएं, प्रशिक्षण, शिक्षा एवं अनुसन्धान ये ४ इस योजना की मुख्य गतिविधियां हैं। इन पर होने वाले खर्च के आंकड़े भी भारत सरकार की नवीनतम विज्ञप्ति में इस प्रकार बताये गये हैं—

सेवा —१७२.२५ लाख रुपये
प्रशिक्षण —१५.७५ लाख रुपये
शिक्षा —५०.०० लाख रुपये
अनुसन्धान —५०.०० लाख रुपये

यही नहीं, उक्त कार्यक्रम को सक्रिय रूप से चलाने के लिये केन्द्र में एक उच्चाधिकारी केन्द्रीय परिवार नियोजन बोर्ड, एक स्थाई समिति तथा एक परिवार नियोजन निर्देशक हैं। यह योजना प्रत्येक राज्य में एक परिवार नियोजन बोर्ड और परिवार नियोजन अधिकारी की व्यवस्था करती है।

जम्मू तथा कश्मीर राज्य के अतिरिक्त सभी राज्यों में १९५८-५९ की अवधि में ही परिवार नियोजन बोर्ड संघठित किये जा चुके हैं। आन्ध्र, बम्बई, केरल, मद्रास, मैसूर, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल में पूर्णकालिक परिवार नियोजन अफसर की नियुक्ति भी उक्त अवधि में ही की जा चुकी है। शेष राज्यों में परिवार नियोजन के कार्यों की देखभाल मातृत्व एवं बाल-स्वास्थ्य अधिकारियों द्वारा की जाती है। अनुदानों के उपयोग तथा निदानशालाओं के कार्य पर पर्याप्त निगरानी रखने के लिए प्रादेशिक परिवार नियोजन अधिकारियों के दो पद भी स्वीकृत किये जा चुके हैं।

भारत सरकार ने पिछले तीन वित्तीय वर्षों में जो बजट व्यवस्था और खर्च किये हैं उनका विवरण भी इस प्रकार है कि निदान शालाओं की मद में १९५६-५७ में बजट १२ लाख रुपये तथा खर्च ३ लाख ५ हजार रुपये, १९५७-५८ में बजट १५ लाख ७ हजार रुपये तथा अनुवर्तित खर्च १५ लाख २९ हजार रुपये एवं १९५८-५९ में बजट २६ लाख १५ हजार रुपये तथा अनुमानित खर्च ३० नवम्बर तक ही १९ लाख १ हजार रुपये हुए। इसी प्रकार उन्हीं अवधियों में प्रशिक्षण तथा शिक्षा में यथाक्रम ६ लाख, ६७ हजार, ५ लाख २३ हजार, २ लाख २२ हजार, ८ लाख ५० हजार तथा २ लाख ७४ हजार रुपये, अनुसन्धान में यथाक्रम ६ लाख, ३ लाख ६६ हजार, ३ लाख ५६ हजार, ६ लाख ७० हजार, ८ लाख ६५ हजार, २ लाख ४४ हजार तथा संगठन में यथाक्रम ३ लाख, ६३ हजार, १ लाख १४ हजार, ७५ हजार, २ लाख ७० हजार, ३८ हजार हैं।

यही नहीं, शैक्षणिक संस्थाओं को निदानशालाएं खोलने के लिये डाक्टरों तथा चिकित्सीय सहायकों के लिए शतप्रतिशत वित्तीय सहायता देने की व्यवस्था है। ग्राम और निदानशालाओं में गर्भ-निरोधी दवायें १००) से कम मासिक आयवालों को निःशुल्क, २००) तक मासिक आय वालों को आधे मूल्य पर तथा उससे अधिक आय वालों को खरीद दर पर दी जाती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में आय का कोई भेद रखे बिना ही 'शीथ' और 'फोम टेबलेट' मुफ्त दी जाती हैं। इस योजना में ढाई हजार निदानशालाएं खोलने का विचार है और प्रत्येक शाला द्वारा नगर क्षेत्र में ५० हजार जनसंख्या की तथा ग्राम क्षेत्रों में ६६ हजार जनसंख्या की सेवा की व्यवस्था रहेगी।

परिवार नियोजन संबन्धी शिक्षा व्यवस्था में अब तक ४ लाख ६० हजार विज्ञप्तियां, ८० हजार पुस्तिकायें तथा ७० हजार पत्रक प्रकाशित हो चुके हैं। फिल्मों और स्लाइडों का निर्माण भी किया जा चुका है। आकाशवाणी से भी परिवार नियोजन संबन्धी कार्यक्रम प्रसारित किये जाते हैं। वैज्ञानिक पत्रिकायें प्रकाशित करने के लिये अनुदान भी स्वीकृत किये जा चुके हैं।

अनुसन्धान के सम्बन्ध में जनांकन, चिकित्सीय तथा जैविक अनुसन्धान तथा गर्भ-रोधकों के विकास एवं परीक्षण के लिए व्यवस्था की गयी है। १९५८-५९ की अवधि में एक जनांकन प्रशिक्षण तथा अनुसन्धान केन्द्र तथा एक गर्भ-निरोधक परीक्षण ऐकक बम्बई में स्थापित किये गये हैं। गर्भरोधक परीक्षण ऐकक भारतीय कैंसर अनुसन्धान केन्द्र (बम्बई), अखिल भारतीय स्वास्थ्य विज्ञान तथा लोक स्वास्थ्य संस्था (कलकत्ता), केन्द्रीय औषधि अनुसन्धान संस्था (लखनऊ), जीवाणु संस्था (कलकत्ता), उपस्नातक चिकित्सीय शिक्षा एवं अनुसन्धान संस्था (कलकत्ता) और लखनऊ विश्वविद्यालय के औषधि विज्ञान

विभाग में गर्भरोधकों की जांच पड़ताल हो रही है और अनेक गर्भरोधकों की जांच हो भी चुकी है। मौखिक गर्भरोधकों पर अनुसन्धान प्रगति पर है। तीन जनांकन अनुसन्धान केन्द्र दिल्ली, कलकत्ता और त्रिवेन्द्रम में चालू हो चुके हैं। चिकित्सीय एवं जैविक अनुसन्धान कार्य भारतीय चिकित्सा अनुसन्धान परिषद् द्वारा किया जारहा है। देश में अपेक्षित गर्भरोधकों के उत्पादन के लिये भी प्रयत्न किये जा रहे हैं।

सरकारी भावी कार्यक्रम—

१६५६-६० के लिये भारत सरकार ने इस सम्बन्ध में जो कार्यक्रम तैयार किया है उसके मुख्य अङ्ग यह हैं—

१—प्रशिक्षित कार्यकर्त्ताओं के एक बड़े दल की व्यवस्था

२—अध्यापन कार्यक्रम का विस्तार जिसमें परिवार नियोजन शिक्षा के नेतृत्व करने वालों, परिवार नियोजन अभिनवन शिविरों एवं शिक्षा संक्रान्त वस्तुओं के उत्पादन की व्यवस्था भी सम्मिलित है।

३—सभी प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों तथा चिकित्सा संस्थाओं द्वारा धीरे-धीरे गर्भरोधकों का वितरण

४—निरीक्षण संघठनों को सुदृढ़ करना

५—परिवार नियोजन निदानशालाओं को खोलना और उन्हें चलाना

गर्भ नियन्त्रण एवं राष्ट्रीय आवश्यकता—

पाश्चात्य विचार धारा से सोचने विचारने वाले राष्ट्र हितचिन्तकों का यह सुस्पष्ट विचार है कि भारत को आर्थिक स्तर उन्नत करना है तो सन्तान वृद्धि पर अंकुश लगाना ही होगा। पण्डित नेहरू तो इस पर अत्यधिक जोर डालते ही हैं। अखिल भारतीय महिला सम्मेलन भी बराबर आवाज उठाने लगा है।

परिवार के कल्याण की दृष्टि से उत्तम भरण पोषण के लिये भी यह नितांत आवश्यक प्रतीत होता है कि उतने ही बच्चे पैदा किये जाँय जितनों का भरण पोषण आसानी से और ठीक ढंग से किया जा सके। दाम्पत्य सुखों के उपयोग के लिये भी यह आवश्यक है कि गर्भ-नियन्त्रण किया जाय।

स्वास्थ्य की दृष्टि से भी गर्भ-नियन्त्रण आवश्यक माना जाता है क्योंकि जल्दी जल्दी गर्भाधान का कुपरिणाम यह निकलता है कि माता को स्वास्थ्य लाभ करने के लिये उपयुक्त समय ही नहीं मिल पाता और अत्यधिक कमजोरी और शारीरिक शैथिल्य के कारण अनेकों शारीरिक तथा मानसिक रोगों का शिकार बनना पड़ जाता है। कई एक विख्यात चिकित्साविदों का तो यहां तक कहना है कि महिलाओं के पागलपन का एक मुख्य कारण जल्दी जल्दी गर्भाधान भी पाया गया है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य की दृष्टि से पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली के कई एक विशेषज्ञों का कहना है कि निम्नलिखित स्त्रियों में गर्भाधान पर स्थायी प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिए—

(१) शारीरिक रोग—खासकर-राजयक्ष्मा, प्रमेह, हृदय और गुर्दे के रोग, सुषुम्ना की गड़बड़ी, कतिपय पथरी और थायराइड ग्रन्थियों के रोग, रक्त विकार तथा संसर्गज व्याधि

(२) स्नायविक रोग—पागलपन, (खासकर वंशानुगतिक पागलपन) तथा आघातिक मस्तिष्क दुर्बलता जनित रोग, मृगी आदि में।

(३) यौन व्याधि—गर्मी, सुजाक के रोग में-क्योंकि परीक्षणों से यह ज्ञात हो चुका है कि यौन व्याधि से पीड़ितों की सन्तानें अधिकतर लंगड़ी-लूली, अन्धी-कानी, कूबड़ी, मस्तिष्क विकृति आदि से युक्त पैदा होती हैं। यदि ये बचपन में मरने से किसी प्रकार बच गयीं तो आगे चलकर चोर, उचक्के तथा अनेक प्रकार के जरापम पेशे में संलग्न हुआ करती हैं।

(४) स्त्रियों के प्रजनन रोग—जरायु की विकृति, बारम्बार गर्भपात, जननेन्द्रिय विदारण तथा उदर

के निचले भाग में शल्य क्रिया हुई रहने पर। इसके अतिरिक्त वारम्वर यदि सुख प्रसव में बाधा उपस्थित हो तो भी गर्भ नियन्त्रण आवश्यक है।

(५) कुसंस्कार में--बुरी तरह शराब पीने, जुआ खेलने तथा नैतिक अनाचारों में संलग्न माता-पिता के संस्कार बच्चों पर भी प्रतिफलित हुआ करते हैं अतः ऐसे लोगों के लिये गर्भ नियन्त्रण आवश्यक है।

(६) इनके अतिरिक्त सभी प्रकार की वात व्याधियों में तथा लगातार कई बच्चों के एक से रोग द्वारा ग्रसित होने पर भी गर्भ पर नियन्त्रण आवश्यक होता है।

गर्भ-निरोध और उसके उपाय—

ऋतुकाल में प्रकृति द्वारा विशोधित गर्भाशय में डिम्ब ग्रन्थि से परिपक्वावस्था प्राप्त डिम्ब जब डिम्बप्रणाली द्वारा प्रवेश करता है और सम्भोग द्वारा पुरुष लिंग से निकल कर शुक्रकीट योनि मार्ग से गर्भाशय की ओर अन्धाधुन्ध दौड़ता हुआ उक्त गर्भाशयप्रविष्ट डिम्ब से जा मिलता है तो शुक्रकीट के स्पर्श मात्र से डिम्ब बड़े उग्ररूप से सचेतन बन जाता है और उसमें अनेकों परिवर्तन होने लगते हैं और निषेचन क्रिया के सम्पन्न होते ही डिम्ब शुक्र कीट को अपने भीतर रखकर एक आवरण में लिपट जाता है जिसे गर्भाधान कहते हैं। और इसी को नहीं होने देना संक्षेप में गर्भ निरोध कहा जाता है।

आधुनिक विद्वानों ने इस गर्भनिरोध के २७ मुख्य उपाय बतलाये हैं —

(१) रबड़ की खोली—फ्रेन्च कैप
(२) उक्त खोली के साथ मलहम का प्रयोग
(३) स्त्रियों द्वारा गर्भकवच (Passary) धारण
(४) गर्भकवच के साथ मलहम का प्रयोग
(५) स्त्री पुरुष दोनों के द्वारा कवच और खोली धारण
(६) पुरुष-खोली के साथ पिघलने वाली गोली
(७) तैल युक्त स्पञ्ज
(८) कृमिनाशक मलहम
(९) पिघलने वाली गोलियां
(१०) योनिमार्ग में फेनदा गोली या विचूर्ण
(११) योनिमार्गीय मलहम
(१२) सम्भोगोत्तर प्रक्षालन
(१३) सुरक्षितकाल सम्भोग
(१४) अपूर्ण सम्भोग
(१५) धारक सम्भोग
(१६) विलम्ब सम्भोग
(१७) अन्तरस्खलन सम्भोग
(१८) बहिर्योनि सम्भोग
(१९) संयम गर्भनिरोध
(२०) अप्राकृतिक विधियां
(२१) स्त्रियों का स्खलन टालना
(२२) सम्भोगोत्तर मूत्र त्याग
(२३) पूर्व सम्भोग योनि प्रक्षालन
(२४) स्तनपान कालीन निरोध
(२५) मौखिक भेषज
(२६) शुक्र प्रणाली शल्य कर्म तथा
(२७) डिम्ब प्रणाली शल्य कर्म

१. रबड़ की खोली—रबड़ या तरल लैटेक्स–जो दूध की मलाई तथा अन्य रासायनिक द्रव्यों के संमिश्रण से बनता है से बनी—एक प्रकार की थैली होती है जिसे साधारण बोल चाल की भाषा में एफ. एल., फ्रेंच कैप या शीथ कहते हैं। इसे उन्नत लिंग पर चढ़ाया जाता है और ऊपर की चूसनी जैसी वस्तु को ऊपर रहने दिया जाता है जिसमें पुरुष का स्खलित वीर्य एकत्रित हो जाता है। यह इतना पतला होता है कि स्त्री या पुरुष को रतिज सुख में कोई बाधा नहीं होती है। (चित्र सं० १)

यह खोली सस्ती या अविश्वसनीय दूकानों से नहीं खरीदी जानी चाहिए और प्रयोग से पूर्व स्वच्छ पानी से धोकर देख लेना चाहिये कि वहां पर छिद्र तो नहीं है और प्रयोग के बाद भी साफ पानी या साबुन के जल से धोकर सुखाकर पाउडर लगाकर रखना चाहिए।

२. मलहम—लैक्टिक एसिड, बोरिक एसिड, साइट्रिक एसिड या क्वनीन सलफेट आदि से युक्त

अनेकों मलहम आजकल शुक्रकीटनाशक मलहम के रूप में बाजार में मिल जाते हैं। इन्हें अंगुली से या एक ट्यूब द्वारा स्त्री योनि मार्ग में लेपन कर लिया करती है। इससे त्वरित शुक्रकीट मर जाया करते हैं और गर्भ को खतरा नहीं रहजाता है।
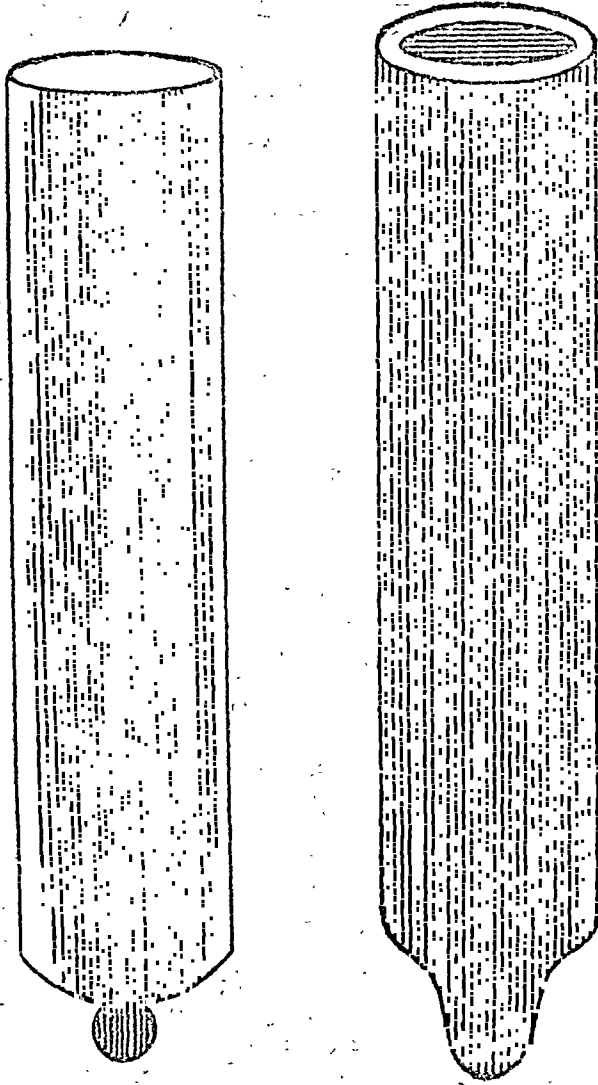
१--रबड़ की खोली (French leather)

२—गर्भ कवच (Check passary)

३. गर्भ कवच—एफ. एल. (फ्रेंचकैप) की भांति ही रबड़ या लैटेक्स का बना टोपीनुमा या कवच जिसे चेकपैसरी कहा जाता है-बाजार में उपलब्ध होती है। स्त्री इसे योनि की ग्रीवा के मुख पर धारण करती है जिससे स्खलित शुक्रकीट गर्भाशय में प्रवेश नहीं कर सके। इससे रति सुख में कोई अन्तर नहीं आता है। (चित्र सं० २)
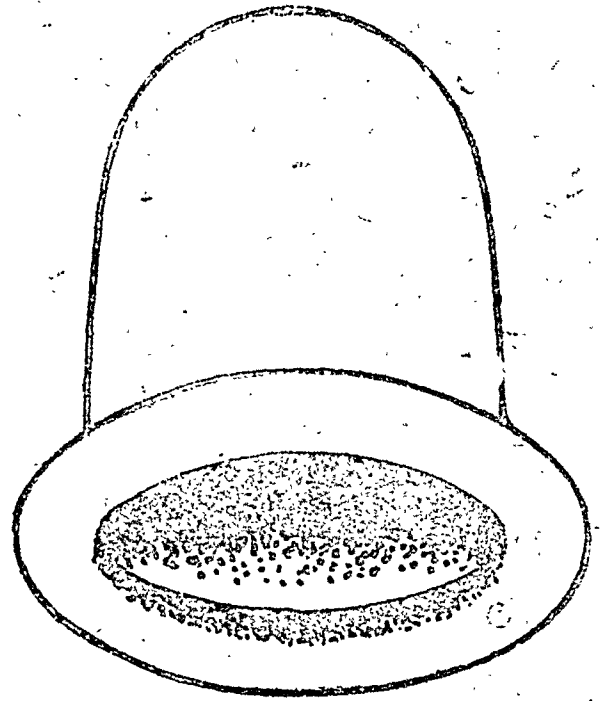
यह कवच भी बाजार में मिलता है किन्तु इनकी अपनी साइज संख्या रहा करती है और गर्भाशय ग्रीवा के मुख के चौड़ेपन के हिसाब से संख्या कर यह जान लेनी चाहिए। यह रति प्रारंभ से पहले ही लगाकर रखनी चाहिए और खोल की भांति इसका भी परीक्षण-परिष्कार किया जाना चाहिए। मोटी स्त्रियों को इसे बैठाने का उपकरण भी बाजार में मिल जाता है। किन्तु नवयुवतियों को अंगुली के सहारे ही लगाना पड़ता है।

४. गर्भ कवच के साथ मलहम-इस कवच को लगाने के बाद योनि मार्ग में शुक्रकीटनाशक मलहम का लेप कर देने से शुक्रकीट नष्ट हो जाया करते हैं।

५. स्त्री द्वारा कवच धारण तथा पुरुष द्वारा खोली धारण करने से गर्भधान की कुछ भी संभावना नहीं रह जाती है और गर्भ निरोध पूर्ण सफल रहता है।

६. कोको या बटर या जिलेटीन में कई एक शुक्रकीटनाशक द्रव्य मिलाकर बनाई गई गोली भी बाजार में मिलती है जिसे संभोग से पूर्व

योनिपथ में चढ़ा दिया जाता है जो शरीर के तापमान पर पिघल कर गर्भाशय की ग्रीवा तक में फैल जाता है जिसमें फंसकर चरित शुक्रकीट निष्क्रिय या मृत हो जाते हैं।

७. तैलयुक्त स्पंज—नरम स्पंज या रवड़ को काट कर बनाया गया एक प्रकार का स्पंज होता है। इसको जैतून, सरसों या तिल के तेल से तर करके संभोग से पूर्व योनिमार्ग में प्रवेश करा दिया जाता है। नरम होने के कारण भीतर घुसने में आसानी होती है और गर्भाशय मुख पर रुककर यह गर्भाधान को रोक दिया करता है।

८. कृमिनाशक मलहम—लैक्टिक एसिड आदि के बने मलहम का प्रयोग ऊपर (२ में) बताया जा चुका है। बिना खोली या कवच के भी इसका प्रयोग किया जाता है। (चित्र सं० ३)

३—ट्यूब द्वारा शुक्राणु नाशक मलहम प्रयोग करने की विधि १. शुक्राणुनाशक मलहम २. ट्यूब की नलिका ३. योनि ४. ट्यूब
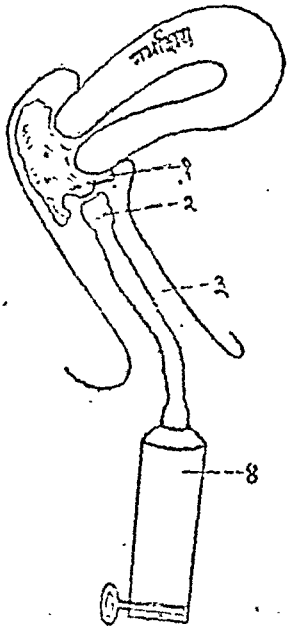
९. पिघलने वाली गोलियां—ऊपर (६ में) जिन पिघलने वाली गोलियों की चर्चा की गयी है उनका पृथक् प्रयोग भी गर्भनिरोध के लिये बताया गया है।

१०. फेनदा गोली या विचूर्ण—गर्भ निरोध के लिए फेनदा गोली (फोम टेबलेट) भी बाजार में मिलती है। इसे संभोग के पूर्व एक बार पानी में डुबो कर योनिमार्ग में घुसेड़ दी जाती है और वह वहां के रसों के मिश्रण से फेन या झाग
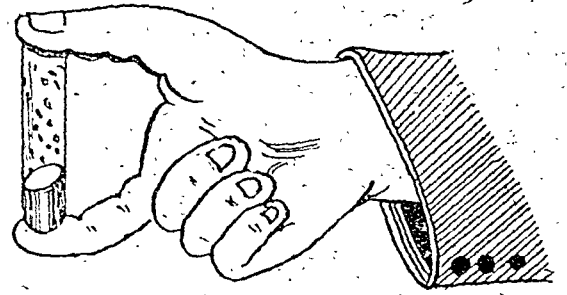
४—फेनदा गोली (Foaming tablets) की परीक्षा विधि।

तैयार कर देती है। इससे शुक्रकीट नष्ट हो जाया करते हैं। इसका फेनदार विचूर्ण भी बाजार में मिलता है जिसे छिड़कने से ही उक्त कार्य सिद्ध होता है। यह अपेक्षाकृत सस्ता भी पड़ता है। फेनदा गोलियां ठीक कार्य करेंगी या नहीं यह जानने के लिए निम्न प्रकार से परीक्षा करनी चाहिए—

एक टैस्ट ट्यूब में इतना जल लें कि गोली इसमें डूब जाय। अब गोली डालकर चित्र नं० ४ के अनुसार अंगूठे से बन्द करलें। तत्काल झाग निकलते दिखाई दें तो उसे ठीक समझें।

११. इस कोटि में नमक मिलाये हुए वेसलिन या विदेशी क्रीम तथा जेली को लिया जायगा जो सस्ता होने पर भी लैक्टिक एसिड आदि से बने मलहम की तरह शुक्रकीट का मार्गरोधक तथा नाशकर है। चावल के मांड में नमक मिलाकर गाढ़ाकर साधारण तरल अवस्था में प्रयोग करना सबसे सस्ता पड़ता है और अपेक्षाकृत कम हानिप्रद भी है।

१२. संभोगानन्तर फिटकरी, नमक, सिरका, लैक्टिक एसिड, बोरिक एसिड आदि का घोल तैयार कर डूश द्वारा अविलम्ब योनिप्रक्षालन करने से भी शुक्रकीट बाहर ही नष्ट होजाते हैं। ऐसे सामान बाजार में भी अनेकों प्रकार के मिल जाते हैं जिनका प्रयोग आसानी से किया जा सकता है।

१३. सुरक्षित काल संयोग—आधारभूत तापमान के अध्ययन द्वारा किंवा क्रमबद्ध उपचार (रिदूम

५—योनि-प्रक्षालन विधि

मेथड) द्वारा गर्भाधान योग्य मुख्य काल का निर्धारण कर उसका परित्याग करते हुए संभोग करना गर्भनिरोधज्ञ प्राकृतिक उपाय वैज्ञानिकों ने ढूंढ़ निकाला है।

तापमान अध्ययन में विशेष प्रशिक्षण की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। केवल थर्मामीटर पढ़ कर नियमित रूप से ताप को लिखने का ज्ञान होना चाहिए। इसके प्रयोग की विधि यह है कि रात को सोते समय थर्मामीटर धो-भाड़कर सिरहाने रख लेना चाहिए और सवेरे आंख खुलते ही बिना उठे बैठे ही धीरे से थर्मामीटर निकाल कर मुंह का तापमान ५ मिनट तक लगाकर देखे। इस प्रकार लगातार ३-४ मास तक करने से चार्ट पर यह अंकित हो जाता है कि ऋतुस्राव के बाद किसी दिन शरीर का तापमान सहसा गिर जाता है और तब पुन: ताप बढ़ने लगता है। ताप का सहसा गिर जाना डिम्बाशयिक परिपुष्ट डिम्ब के डिम्बप्रणाली में प्रवेश का सूचक है। इसके बाद २४ से ३६ घंटे तक का समय गर्भाधान के योग्य रहा करता है अत: उस अवधि में संयम से काम लेने से गर्भनिरोध आसान हुआ करता है।

प्रसिद्ध डाक्टर फिशवेल का विचार है कि प्रकृति के इस हिसाब से गर्भनिरोध करने वाली हर ५ स्त्रियों में से चार का डिम्ब परिपक्वता दिवस ठीक ठीक निकल आया करता है।

जापान के प्रसिद्ध डाक्टर ओजिनो तथा आस्ट्रिया के प्रसिद्ध डाक्टर क्लास के नवीन अनुसन्धानों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि मासिक स्राव होने के १४ वें और १६ वें दिन के बीच कभी भी डिम्ब डिम्बाशय में परिपुष्ट होकर डिम्ब-प्रणाली में आता है।
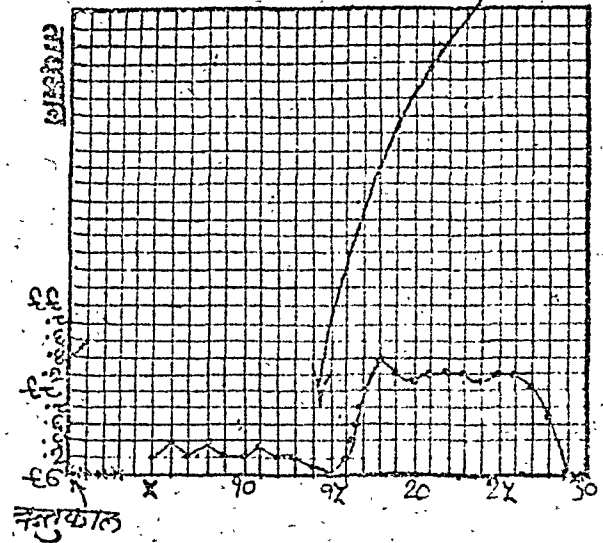
६—बीजागम के समय तापवृद्धि-दर्शक ग्राफ

बताया गया है कि परिपक्व डिम्ब के डिम्बाशय से निकलते समय कई एक स्त्रियों के पेडू में दर्द होने लगता है, किसी किसी के योनि मार्ग से एक प्रकार का स्राव प्रारम्भ हो जाता है और कई एक स्त्रियों के स्तनों में तनाव का अनुभव होता है। जिस दिन यह अनुभव हुआ करता हो उससे एक दिन पूर्व से दो दिन बाद तक अर्थात् केवल तीन दिन ही संयम से रहने पर मेरे अनुसन्धानानुसार गर्भ-निरोध होगा ही। किन्तु जिन्हें यह लक्षण स्पष्ट ज्ञात नहीं हो सके उनके लिए नियमित ऋतुकालान्तर रहने पर अगले ऋतु आरम्भ दिन की संख्या को आधा कर उसमें एक न्यून कर जो दिन पड़ेगा वह अगली तिथि में घटाकर डिम्ब-परिपक्वता दिवस निकाला जा सकता है। जैसे-जो स्त्री प्रति २८ दिनों पर रजस्वला होती है उसका दिवस २८÷२=१४—१=१३ को विपरीत क्रम से गिनने पर वर्तमान ऋतुस्राव दिवस के १५ वें दिन पड़ेगा। रात्रि दिवा गणना

क्रम से १४ वें दिन भी पड़ सकता है और २७ दिनों के चन्द्र चार मास मानकर १३॥-॥=१३-१=१२ अर्थात् १३ वें दिन भी आ सकता है। इस तरह ऐसी स्त्री के लिए सम्भावित ३ दिवस तथा बाद के ३ दिन कुल ६ दिन संयम से रहने से गर्भ-निरोध निश्चित सा रहेगा। इस क्रम से विचार करने पर २४ दिनों पर ऋतुस्राव वाली को डिम्ब परिपक्वता दिवस ६ से ११ तक तथा ३६ दिनों पर ऋतु वाली महिला के लिए १८ से २० वें दिन तक उक्त दिवस आता है और इस हिसाब से गर्भ संभावना दिनों का निर्णय कर उनमें संयम रखने से गर्भ निरोध आसान तथा निश्चितप्राय होता है।

किन्तु जो यह हिसाब नहीं लगा सकते हों और जिनका ऋतुस्राव निश्चित अवधि में नहीं हुआ करता हो उनके लिए मोटा हिसाब यह है कि मासिकस्राव से आरम्भ कर ८ दिन तथा उसके पूर्ण के ८ दिन ये १६ दिन बहुधा गर्भाधान के अयोग्य रहा करते हैं, ऐसा पाश्चात्य रिदूम मेथड के समर्थकों का मत है। इस दृष्टि से २८ दिनों के ऋतु चक्र का एक चित्र स्पष्टार्थ यहां उद्धृत किया जाता है।
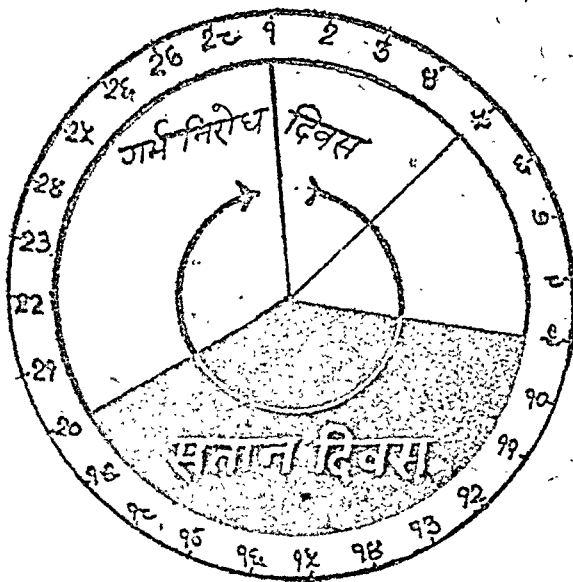
८—सुरक्षित काल दर्शक चक्र

१४–अपूर्ण संभोग—यह संभोग वह है जिसमें काम रस का चरम प्रकर्ष (organism) होने नहीं दिया गया। इससे भी गर्भ नियन्त्रण होसकता है।

१५—धारक सम्भोग में स्खलन तक सम्भोग नहीं कर केवल कुछ समय तक निश्चल भाव से रख कर स्खलन टाल देना और गर्भ नियन्त्रण को अपने वश में रखना आसान रहता है। इसके लिए दोनों का विषयान्तर में मनः संयोजन अत्यन्त आसान उपाय है।

१६–बिलम्ब संभोग में स्त्री को प्रथम ही इस प्रकार द्रवित किया जाता है जिससे वह स्खलन तक संभोग में अनिच्छातिरेक प्रकट करे। इससे भी गर्भ नियन्त्रण आसान रहता है।

१७—अन्तर स्खलन संभोग में स्खलन का समय आने पर लिंग को योनि से बाहर निकालने का विधान काफी प्रचलित है। स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिप्रद रहने पर भी यह पहले के डाक्टरों द्वारा प्रयुक्त कराया जाता रहा है।

१८—बहिर्योनि संभोग में स्थान रति के साथ ही रति क्रीड़ा के उत्तरार्ध में अधोरत का प्रयोग करना काम सुखानुभव में बाधक नहीं हुआ करता है। किन्तु, ऐसा चण्डवेगा नायिकाओं में ही काम शास्त्र के अनुसार संभव है और उन नायिकाओं के साथ भी सुलभ है जिनमें अधोरत भी प्रचलित रहा करता है।

१९—संयम गर्भ निरोध वह पद्धति है जिसमें पति-पत्नी साथ रहने पर भी गर्भाधान अपेक्षित रहने पर ही सम्भोग करें। यह पद्धति महात्मा गांधी भी उचित बता चुके हैं।

२०—अप्राकृतिक विधियां—सम्भोग के बाद तुरन्त ही बिस्तरे पर उकड़ू बैठकर जोरों से खांस कर शुक्रकीट को अधोगामी बनाना एक ऐसा विधान है जो जावा की स्त्रियां अपनाये हुई हैं। भारत में इसके लिए रुई का पलीता नाक में डाल कर बारम्बार छींक लाना व्यवहृत होता है।

पश्चिमी औरतों में कई एक ऐसे आसन भी प्रचलित हैं जिनसे गर्भाशय का मुख विपरीत कर लिया जाता है और उसके बाद सम्भोग कर गर्भ-नियन्त्रण किया जाता है। कई एक कामशास्त्रों का कहना है कि जावा की स्त्रियों में भी यह विधि प्रचलित है।

यह भी बताया जाता है कि इंग्लैंड, अमेरिका आदि देशों में कतिपय तरल पदार्थों को पिचकारी द्वारा गर्भाशय में भर दिया जाता है। अमेरिका में यह पदार्थ थौलिन, जर्मनी में अर्गट, फ्रांस में एपियाल, इटली में रूता, दक्षिण यूरुप में बेलाडोना, मैक्सिको में तूतिया का पानी, अरब, ईरान में मुसब्बर तथा जावा में कुनैन प्रयुक्त होता है।

२१—स्त्रियों का स्खलन टालना—भी एक पद्धति है जिसे कुछ एक प्रकार की स्त्रियों में प्रचलित पाया गया है।

२२—सम्भोगोत्तर मूत्र त्याग—सम्भोग के बाद तुरन्त मूत्र त्याग करने से मूत्र जलकण जल से शुक्रकीट नष्ट हो जाते हैं। कुछ क्षेत्रों में स्खलन के बाद पुरुष भी योनि में ही मूत्र त्याग करते देखे गये हैं। इसके लिये बियर या सोडावाटर पीकर सम्भोग करने का प्रचलन है।

२३—शुक्रकीटनाशक द्रव्यों के द्वारा पूर्व सम्भोग योनि-प्रक्षालन गर्भ निरोधकर माना जाता है।

२४—कुछ लोगों की यह धारणा है कि जब तक मां बच्चों को स्तनपान कराती रहती है तब तक गर्भाधान नहीं होता है। अतः चिरकाल तक स्त्रियां दूध पिला-पिलाकर गर्भ निरोध का प्रयास करती हैं।

२५—भौखिक भेषज—प्रायः सभी देशों में गर्भनिरोध की दवायें खाने को मिलती हैं। आयुर्वेद में भी इसके बहुत से योग मिलते हैं जिनका उल्लेख बाद में होगा।

२६— शुक्रप्रणाली शल्य कर्म—डाक्टर से शल्य कर्म कराकर लिंग से शुक्रनलिका का सम्बन्ध विछिन्न करने के लिए प्रणाली को एक जगह से काटकर बांध दिया जाता है जिससे शुक्रकीट का बाहर आना रुक जाता है। इससे पुरुष के रति आनन्द में कुछ भी कमी नहीं आती और सदा के लिए गर्भ की संभावना जाती रहती है।

२७—डिम्ब प्रणाली के शस्त्र कर्म में स्त्री की दोनों डिम्ब प्रणालियों को काटकर गर्भाशय से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया जाता है। इससे डिम्ब गर्भाशय तक नहीं पहुंच पाते और फलतः निसेचन रुक जाता है।

इन उपायों के वर्गीकरण—

उपर्युक्त उपायों के वैज्ञानिक वर्गीकरण करने पर मुख्यतः यह तीन भेदों में आजायेंगे जिन्हें हम यान्त्रिक, रासायनिक तथा केवलौपचारिक कहेंगे।

यान्त्रिक में खोली पुरुष के लिये और कवच स्त्री के लिये बताया गया है जिसके अनेक उपकरण बाजार में मिलते हैं। खोली में भी एफ० एल० खोली सारी शिश्न पर प्रहर्षण अवस्था में अंगुलियों और अंगूठों की सहायता से चढ़ाया जाता है जिसके चूचुकवान और चूचुकहीन ये दो प्रकार मिलते हैं। चूचुकवान का चूचुकांश ऊपर रहता है जिसमें शिश्न नहीं घुसाना चाहिये। वह शुक्र बटोरने के लिए रिक्त छोड़ देना चाहिये। किंतु चूचुकहीन खोली में ऊपर का लगभग चौथाई इंच भाग खाली छोड़ना चाहिये अन्यथा खोली फटकर शुक्र बाहर निकलने का भय रहेगा। इसके अतिरिक्त अमेरिकन टिप नाम से प्रसिद्ध एक और भी खोली बाजार में मिल जाती है। यह केवल शिश्न मुण्ड को ही आच्छादित करती है इसलिए स्खलनान्तर प्रहर्षण ह्रास का अनुभव होते ही योनि से बाहर कर लेना चाहिये।

स्त्री के लिए जिस कवच का प्रयोग ऊपर बताया जा चुका है वह भी साधारणतया चित्त लेटे हुए जंघा विस्फारित कर अथवा बायां पैर खाट के पावे आदि पर रखकर खड़े-खड़े लगाया जाता है। यह संभोग काल से बहुत पहले ही लगाना

चाहिये और साधारणतः रात भर लगा रहने दिया जाना चाहिये।

इसके अतिरिक्त गोल्डपिन तथा ग्रेफेनवर्गरिंग नामक कवच धातु के बने मिलते हैं जिन्हें लगवा कर महिनों के लिए छुट्टी मिल जाती है। गोल्ड-डालर. ड्यूरापैक्स, थ्रीनाइट्स, थ्रीकडेट्स, थ्री मर्केटियर्स आदि कई एक छापों के ये सामान उत्तम होते हैं जो बाजार में भी उपलब्ध हो जाते हैं।

रासायनिक उपायों में घोलों से योनि प्रक्षालन तथा शुक्रकीटनाशक लेपों का प्रयोग बताया जाता है जिसमें प्रैसेपिटन, वोल्पार पेस्ट, ड्यूराक्रीम, कोरामेक्स, कपूरक्रीम, आर्थोगाइनोल आदि लेप प्रामाणिक दूकानों में मिल जाते हैं।

केवलोपचारिक में उपर्युक्त भेदों में से उन भेदों को लेना चाहिये जो उपर्युक्त दोनों भेदों में नहीं आते हों।

इन उपायों की अव्यवहारिकता—

यदि स्पष्टवादिता दोष नहीं हो तो ये सभी उपाय काम सुख के प्राकृतिक आस्वादन में बाधक हैं और हानिकारक भी हैं। कामशास्त्र की परिभाषा में मृदु वेग व्यक्तियों एवं शारीर क्रिया विज्ञान की परिभाषा में दुर्बल स्नायु के व्यक्तियों में या जिनका शिश्न प्रहर्षण काफी संतोषजनक नहीं होता है, उनके लिए एफ. एल. खोली का प्रयोग सम्भव नहीं। साथ ही मोटे या गर्दभ लिंग पुरुष के लिए भी इसका उपयोग आसान नहीं है। और यह सब होने पर भी नैसर्गिक काम सुख में बाधा तो पहुंचती ही है। स्त्री के भग की अन्तःऊतियों (Aissues) को भी विकृतघर्षण-जनित क्षति पहुंचती है। सस्ती या रबड़ की खोलियों के अधिक उपयोग से कैंसर जैसे भीषण रोग के आक्रमण की शंका रहती है और श्वेत प्रदर की शिकायत तो ऐसे व्यक्तियों की स्त्रियों में अत्यधिक पायी जाती है।

गर्भकवच लगाने में भी कठिनाई यह होती है कि विभिन्न मापों के 'डायफ्रेम' तथा 'सर्वाइकल कवच' बाजार में मिलते हैं जिनके चुनाव के लिए डाक्टरी सहायता आवश्यक होती है और लगाते समय यह भी देखना आसान नहीं कि गर्भाशय के मुंह पर ठीक से लगा है या नहीं। साथ ही अधिक समय तक कवच धारण किये रहने से योनि मार्ग में प्रदाह और शोथ भी देखा जाता है और रबड़ तथा योनिद्रव के संयोग से योनि दुर्गन्धपूर्ण होजाती है और नाना प्रकार के योनि रोगों की सम्भावना बनी रहती है। इतना ही नहीं, यदि कवच उतारने के समय डोरी वाले कवचों को यदि कुछ भी अधिक जोर से खींचा जायगा तो गर्भाशय ग्रीवा के भी बाहर आ जाने का भय रहता है। 'सर्विकल कवच के प्रयोग में यदि थोड़ा सा भी न्यूनाधिक्य हुआ तो वह गर्भाशय ग्रीवा में स्थिर नहीं रह पाता है और रतिकाल में शिश्न संवर्षण भी साधारण ढीले कवच को उलट-पलट दिया करता है। 'डायाफ्रेम' कवच के प्रयोग में भी घेरे का नियन्त्रक तार यदि बाहर निकल गया तो गर्भ नियन्त्रण तो दूर ही रहा पुरुष के नग्न शिश्न को भी हानि पहुंचने का भय है। योनि मार्ग में कड़ी और घुंडीदार वस्तु में शिश्न शीर्ष से रति कालीन बारम्बार आघात से जो पति पत्नी को आनन्दातिरेकप्रद प्रहर्षण का अनुभव होता है और जो रतिसुख का मूल है, वह खोली या कवच के प्रयोग से सर्वदा बाधित रहता है जो एक दूसरी सर्वोपरि बाधा है।

गोल्ड पिन तथा ग्रेफेनबर्ग रिंग के प्रयोग में योनि प्रदाह तथा श्वेत प्रदर का पतला स्राव देखा जाता है। कवच लगाये रहने पर चलने-फिरने तथा बैठने में भी जो कष्ट का अनुभव होता है, वह एक अलग बात है।

रासायनिक द्रव्यों के प्रयोग से हानि—गर्भ निरोध के पण्डितों का कहना है कि आधुनिक गर्भ निरोधक लेपों में प्रैसेपिटिन का प्रयोग अधिक उत्तम है। किन्तु, व्यवहारिक क्षेत्रों में यह देखा गया है कि इसके प्रयोग से भी योनिमार्ग में जलन और पीड़ा होने लगती है। क्योंकि रासायनिक द्रव्यों में यह एक

विशेषता पाई जाती है कि वह खास-खास व्यक्तियों के लिये अनुकूल नहीं पड़ता है। ऐसी स्थिति में दूसरे लेपों का प्रयोग आधुनिक वैज्ञानिक बताया करते हैं। किन्तु लवण या क्षारत्व गुण विशिष्ट द्रव्यों से ही अधिकतर ये लेप तैयार किये गये होते हैं जो योनि पत्र की ऊतियों के प्रतिकूल पड़ने के कारण प्रदाह एवं सूजन के कारण बन जाते हैं। ऐसी स्थिति में इनका प्रयोग शारीरिक स्वास्थ्य के लिए हानिकर ही माना जाना चाहिए।

वन्ध्याकरण—ऊपर जो शुक्र डिम्ब प्रणाली शल्यकर्म (२६–२७) का उल्लेख किया गया है, वह बन्ध्याकारक विधान है जिससे जीवन पर्यन्त सन्तानोत्पादन क्षमता समाप्त होती है।

आधुनिक शल्य विज्ञान शब्दावली में शुक्र प्रणाली शल्यकर्म को 'वासेक्टामी' (Vasectomy) कहते हैं। इसमें शिश्न के ऊपर आधे इंच पर स्थानिक संज्ञाहरण सूचीवेध द्वारा ऊतकों को मूर्च्छित कर शुक्रवहा नाड़ी (ductus deferens) तथा निषेचन नाड़ी का संबन्ध विच्छेद कर दिया जाता है। इससे शुक्रस्राव अल्पतम मात्रा में ही सही, होता अवश्य है किन्तु उसमें शुक्रकीट न रहने से गर्भ का भय नहीं रह जाता है।

यह शल्य कर्म बहुत ही आसान होता है और शिश्न के दोनों ऊपरी पार्श्वों में केवल आध इंच ही चर्म काटना पड़ता है।

इसी प्रकार डिम्ब प्रणाली का शल्यकर्म आधुनिक शब्दावली में सालिपंजैक्टोमी (Salpingectomy) कहा जाता है जिसमें मेरुदण्डन्यचेतन सूचीवेध के बाद उदर के निचले भाग में लगभग ३ इंच खड़ा चर्म काटकर दोनों डिम्बप्रणालियों का थोड़ा थोड़ा भाग काट कर डिम्ब को गर्भाशय में जाने का द्वार सदा के लिये बन्द कर दिया जाता है। सन्तान उत्पन्न होने के बाद कुछ दिन तक जननेन्द्रियां बढ़ी रहती हैं जिससे उस काल में शल्यकर्म अधिक आसान रहा करता है।

स्थायी को अस्थायी बनाने का प्रयास—आधुनिक शल्यविज्ञान इस प्रयास में है कि इस स्थायी बन्ध्याकरण को पुनः शल्य कर्म द्वारा सन्तानोत्पादन क्षमता में परिवर्तित कर दिया जाय। वेसिकोप्लास्टी
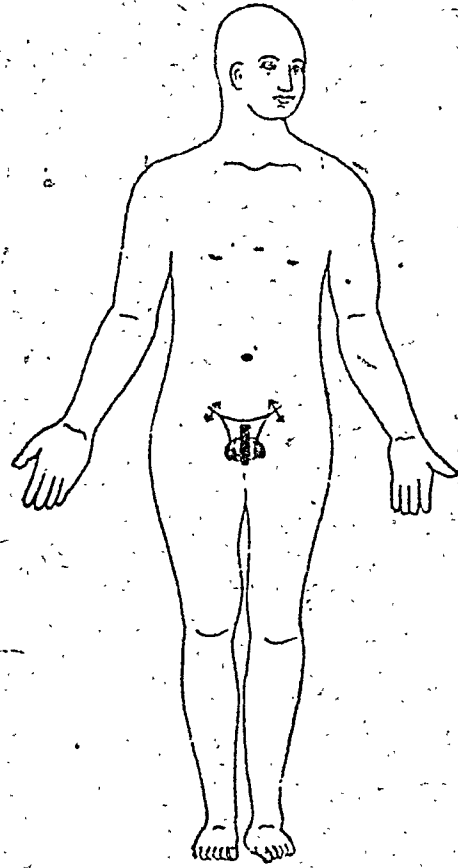
८—शुक्रवाहक नलिका छेदन (Vasectomy)

(Vesicoplasty) तथा सालिपंगोप्लास्टी (Salpingoplasty) द्वारा यह कार्य यद्यपि साधित हो सकता है किन्तु यह सुखसाध्य नहीं और निश्चित प्राय भी नहीं। इसलिये इसका प्रचार बहुत कम हो रहा है।

शुक्राणु सह्यता साधन—

इंगलैण्ड के प्रमुख यौन शास्त्र विशेषज्ञ डाक्टर नारमन हेयर ने कुछ वर्ष हुए स्त्रियों को शुक्राणुसह्य बनाकर गर्भ नियन्त्रण का प्रयास किया था। स्वस्थ पुरुष का शुक्र लेकर उसका पतला घोल उष्ण कर स्त्रियों को सूचीप्रवेश विधान से प्रति सप्ताह देकर उन्होंने काफी सफलता भी पायी थी। किन्तु अभी तक यह सार्वजनिक रूप से व्यवहार का विषय नहीं बन सका है।
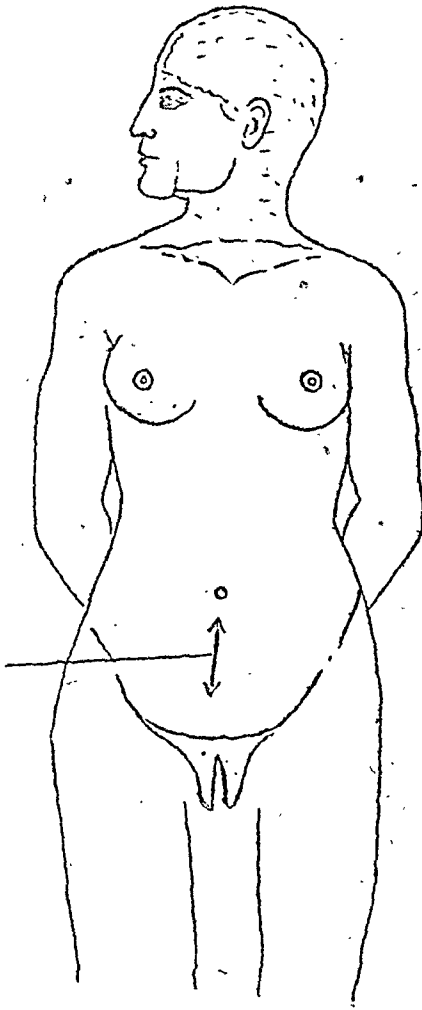
९—बीजवाहिनी नलिका छेदन (Salpingectomy)

वात्स्यायनानुसारी प्रक्रिया—

काम विज्ञान के आचार्य वात्स्यायन ने यद्यपि गर्भ निरोध की कोई खास प्रक्रिया नहीं बतायी है किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने गर्भनिरोध के प्रश्न को अछूता नहीं छोड़ा। उपविष्ट आसन तथा विपरीत रति के प्रकार गर्भ निरोध में अत्यधिक सहायक होते हैं यह प्रायः सभी काम शास्त्री जानते ही हैं। एकपद्मासन, युग्म पद्मासन, मेहुरित आसन तथा उपदण्ड आसन को कामशास्त्री लोग गर्भ-निरोध में सहायक मानते हैं। और अग्रउपविष्टासन, पार्श्व-उपविष्ट आसन, शुद्ध अग्रासन तथा शुद्ध पद्मासन विशेषतः गर्भ निरोध में सहायक हुआ करते हैं। इन आसनों का प्रकार भेद यहां स्पष्ट करना उचित नहीं। किन्तु यह तो कहा ही जायगा कि जिन काम शास्त्रियों ने इन आसनों की सर्जना की थी उनके ध्यान में गर्भ निरोध की समस्या अवश्य रही।

इस रहस्य को हृदयंगम करने के लिये मैं यहां मैथिल ज्योतिरीश्वराचार्य के नाड़ी समुद्देश से ४ श्लोक उद्धृत करूंगा।

मनो भवागार मुखे तु नाड्यः
तिस्रो भवन्ति प्रमदा जनानाम्।
समीरणा चान्द्रमसीचगौरी
विशेषमासामुपवर्णयामि ॥१॥
प्रधानभूता मदनातपत्रे
समीरणा नाम विशेष नाड़ी।
तस्यामुखे यत् पतितंनृवीर्यं
तन्निष्फलं स्यादित चन्द्रमौलिः ॥२॥
या चापरा चान्द्रमसी च नाड़ी
कन्दर्पगेहे भवति प्रधाना।
सासुन्दरीं योषितमेवसूते
साध्याभवेदल्प रतोत्सवेषु ॥३॥
गौरीतिनाड़ी यदुपस्थगर्ते
प्रधान भूता भवति स्वभावात्।
पुत्रं प्रसूते बहुधांगनासा
कष्टोपभोग्या सुरते प्रदिष्टा ॥४॥
(पंचसायक, पंचम सायक)

अर्थात्—स्त्रियों के योनि मुख में तीन नाड़ियां समीरणा, चान्द्रमसी और गौरी—हुआ करती हैं। उनका विशेष बता रहा हूँ।

भग में समीरणा नाम की विशेष नाड़ी यदि प्रधान हो तो उसके मुख में गिरा हुआ वीर्य निष्फल हुआ करता है, यह चन्द्रमौलि का मत है।

और दूसरी जो नाड़ी चान्द्रमसी होती है वह योनि में प्रधान हो तो वह नारी सुन्दरी कन्यायें ही जनमाती है और थोड़े से ही रति से प्रसन्न हो जाया करती है।

और जिसकी योनि में स्वभावतः गौरी नाड़ी प्रधान भूत रहा करती है वह स्त्री बहुधा पुत्र ही

पैदा करती है और वह सुरत में कष्ट से उपभोग्य कही गयी है।
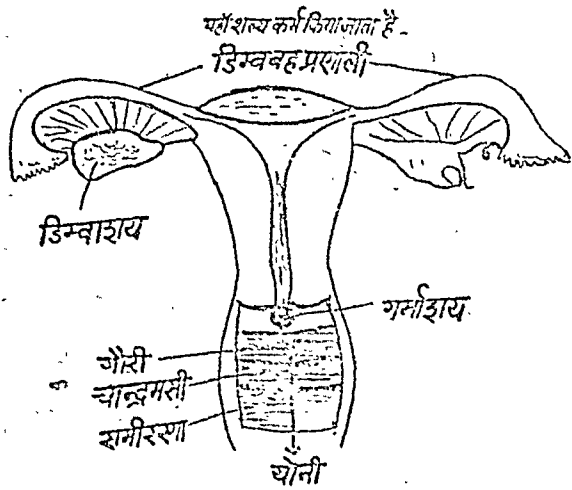
१०–वात्स्यायनोक्त शल्य कर्म

वैज्ञानिक विश्लेषण—

आचार्य ज्योतिरीश्वर के उक्त नाड़ी समुद्देश का वैज्ञानिक विश्लेषण करना उतना आसान नहीं। किन्तु शारीरिक चित्र वा शारीर विज्ञान के अनुसार योनि पथ में तीन प्रकोष्ठ का होना भी सिद्ध है और उसका प्रत्येक का अपना महत्व है। कहना न होगा कि उक्त ४ श्लोकों में प्रधान भूता तथा स्वभावात् लिखने का कुछ विशेष अभिप्राय था जिसका तात्पर्य था कि जिसके योनिपथ में समीरणा आदि नाड़ियां स्वभावतः प्रधान हों, उनका फल भी उसके अनुसार ही होगा।

मेरे अनुसन्धानों के आधार पर 'प्रधान भूतत्व' इन नाड़ियों का क्षरण विशेष से है और समीरणा नाड़ी यदि प्रधान रूप से क्षरित होती है तो उसमें शन्यंश लवण विशेष प्रधान रहता है जिसके संपर्क से शुक्रकीट नष्ट होजाया करते हैं तथा उनमें गर्भाशय तक पहुंचने की शक्ति ही नहीं रह जाती है। आचार्य चन्द्रमौलि का यह अनुसन्धानात्मक मत आचार्य ज्योतिरीश्वर को भी मान्य था नहीं तो वे कदापि इस मत का उल्लेख नहीं करते।

इसी प्रकार चान्द्रमसी नाड़ी में सोम तत्व की प्रधानता रहा करती है। इसलिये प्रधानतः उसका क्षरण होने पर उस स्राव में सोमतत्व की विशेषता स्त्री लिङ्ग सूत्रों (female sex chromosomes) की परिपुष्टि होने से स्त्री सन्तान का होना और गौरी नाड़ी में सूर्य तत्व की प्रधानता रहने से प्रधानतः गौरी के क्षरण में स्राव में सूर्यतत्व की विशेषता रहने से पुरुष लिङ्ग सूत्रों (male sex chromosomes) की परिपुष्टि होकर पुरुष सन्तान का होना भी उपपन्न होगा।

इस वैज्ञानिक तथ्य को हृदयंगम नहीं कर कुछ एक कामशास्त्री तथा सन्ततिनिरोध के समर्थक आधुनिक वैज्ञानिक इस बात पर जोर डालते हुए देखे गये हैं कि जहां तक हो सके योनिमार्ग में शुक्रपात से बचना चाहिए।

किन्तु, मैथिल कामशास्त्री आचार्य ज्योतिरीश्वर ने जहां एक ओर पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी, हस्तिनी चारों नायिकाओं के वशीकरण का मन्त्र भी दिया है, वहां बन्ध्याकरण समुद्देश भी एक प्रकरण लिखा है। अपने योगों में वे 'निश्चितम्' 'अवश्यं' तथा 'नियतं' शब्द का प्रयोग कर अव्यर्थता पर जोर देते देखे गये हैं। गर्भनिरोध विषयक पुस्तकों में इन योगों का उपन्यास नहीं रहने से मैं यहां उनका उल्लेख आवश्यक मानता हूँ।

आचार्य ज्योतिरीश्वर के योग —

आचार्य ज्योतिरीश्वर ने तीन योग बताये हैं। प्रथम योग इस प्रकार का है—

'पलाश क्षीर द्रुमयोः फलानि
पुष्पाण्यथो शालमलिपादपस्य।
मद्येन मासार्धं दिनं निपीय
रक्षा भवेन्निश्चितमेव नारी ॥८१॥

—पंच सायक, तृतीय सायक

अर्थात् पलाश और क्षीर द्रुम के फल और सेमल के फूल को मद्य के साथ १५ दिनों तक पान करने से नारी निश्चित ही बन्ध्या हो जायगी।

इस योग में क्षीर द्रुम से क्षीर और सेमल से श्वेत फूल वाला सेमल लेना मैं उचित मानता हूं और मात्रा ।) भर से ॥) भर तक मधु से लेनी चाहिए।

दूसरा योग भी इस प्रकार है—

'फलं कदम्बस्य च माक्षिकानि
तुषोदकेन त्रिदिनं निपीय ।
स्नानावसाने नियमेन चापि
वन्ध्यामवश्यं कुरुते हठेन ॥८२॥'
—पंच सायक तृतीय सायक

अर्थात्—कदम्ब के फल मधु के साथ, तुषोदक के अनुपान से ३ दिन सेवन कर स्नान के अन्त में नियमपूर्वक रहने से नारी अवश्य ही वन्ध्या हो जाती है।

इस योग में कदम्ब फल का चूर्ण ।।) भर १ तोले मधु के साथ चाटकर २ तोले तुषोदक पीना चाहिये। यह योग रजःस्राव आरम्भ से सेवन करने और चौथी रात मैथुन से परहेज रखने से फल देगा।

तीसरा योग उनका यह है—

'कर्षद्वयं राक्षसवृक्षवीजं
सप्ताह मात्रं सित शालि वारा।
रतौनिपीतं मृगशावकाक्ष्या
वन्ध्यात्वमेतन्नियतं करोति ॥८३॥'
—पंच सायक तृतीय सायक

अर्थात्—राक्षस वृक्ष का बीज चूर्ण दो कर्ष मात्रा में सफेद चावल के ओदन के साथ रति के बाद एक सप्ताह सेवन करने से नारी का वन्ध्यापन निश्चित रहता है।

आचार्य ज्योतिरीश्वर और शारीर विज्ञान—

आचार्य ज्योतिरीश्वर का उक्त सिद्धान्त शारीर विज्ञान से भी परिपुष्ट होता है। भारतीय शारीर विज्ञान के सर्वमान्य विद्वान भगवान सुश्रुत भी योनि में तीन प्रकोष्ठ मानते हैं। आचार्य सुश्रुत का स्पष्ट कहना है कि—

शंखनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्त्ता परिकीर्त्तिता।
तस्यास्तृतीये त्वावर्त्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता ॥४३॥
—सु० शा० अ० ५

अर्थात्—योनि शंख की नाभि के आकार की होती है। वह तीन आवर्तों वाली कही गयी है। उसके तीसरे आवर्त में सटी गर्भशय्या (गर्भाशय) रहती है।

यही नहीं सुश्रुत ने स्त्रियों में पुरुष से अधिक जिन २० पेशियों का निर्देश किया है उनमें—'गर्भच्छिद्रसंश्रितास्तिस्रः'' (गर्भ मार्ग स्थित ३ पेशियां) बतायी हैं। प्रसिद्ध टीकाकार डल्हण उक्त पद की टीका करते हुए स्पष्ट लिखते हैं कि—

'गर्भच्छिद्र संश्रितास्तिस्रः इति—गर्भमार्गमाश्रितास्तिस्रः, आवर्त्तत्रयरूपेण, तृतीये चावर्त्ते, मत्स्यमुखाकारा गर्भशय्या। तासां शुक्रार्त्तव प्रवेशिन्यस्तिस्रः पेश्यः।''
—सु० शा० अ० ५ पर डल्हण टीका

यहां यह स्मरणीय है कि सुश्रुत के 'आवर्त्ते' तथा डल्हण के भी 'आवर्त्ते' पद में औपश्लेषिक आधार में सप्तमी मानकर मैंने उपर्युक्त अर्थ किया है जो शारीर चित्र से भी सुस्पष्ट है।

साथ ही डल्हण ने उन पेशियों को 'शुक्रार्त्तव प्रवेशिनी' बताते हुए यह स्पष्ट संकेत कर दिया है कि इन पेशियों का काम शुक्र तथा शोणित को गर्भाशय में प्रवेश कराना है जो मेरे उल्लेखित स्राव विशेष के सहारे अधिक आसान हुआ करता है।

कहना न होगा कि इस स्राव का सम्बन्ध भुक्त औषधि और आत्मिक वासना विशेष से हुआ करता है। इसलिए भारतीय आचार्यों ने औषधि भक्षण तथा मानसिक शक्ति प्रयोग का गर्भ निरोधक के रूप में प्रयोग किया था।

योगरत्नाकर के दो योग—

यहां मैं इस अवसर पर योगरत्नाकर के दो योगों को लिखूंगा जिसमें एक सुश्रुत प्रतिसंस्कर्ता नागार्जुन के नाम से संबद्ध है। योग इस प्रकार है—

तण्डुलीयक मूलानि पिष्ट्वा तण्डुल वारिणा।
ऋत्वन्तेतुत्र्यहं पीत्वा वन्ध्याः कुर्वन्तियोषितः ॥४॥
—योगरत्नाकर पृ० ४१७

अर्थात्—चौलाई की जड़ २ चावल के धोवन के साथ पीसकर ऋतु के अन्त में तीन दिनों तक पीने से स्त्रियां वन्ध्या हो जाती हैं।

ग्राह्यं कृष्ण चतुर्दश्यां धुत्तूरस्य च मूलकम् ।
कटीवद्ध्वा रमेत् कान्तं न गर्भ संभवेत्क्वचित् ।।७।।

मुक्तेनलभते गर्भं पुरानागार्जुनोदितम् ।
तन्मूल चूर्णं योनिस्थं न गर्भः संभवेत् क्वचित् ।।८।।

—योगरत्नाकर पृ० ४१७

अर्थात्—कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि को धतूरे की जड़ उखाड़ कर रखे। यदि स्त्री उसे कटि में बांधकर पति के साथ रमण करे तो कभी भी गर्भ नहीं रहेगा। जड़ी खोल देने पर गर्भ रह जाता है, ऐसा पहले नागार्जुन ने कहा है। उक्त जड़ का चूर्ण योनि में रखने से भी गर्भ नहीं रहेगा।

निःसन्देह, नागार्जुन का परम्परा प्राप्त यह योग इस बात का प्रबल प्रमाण है कि आज से दो हजार वर्ष से भी पहले भारत में गर्भ-निरोधकर प्रयोग प्रचलित थे।

यही नहीं वाग्भट्टाचार्य कृत रस रत्न समुच्चय से भी प्राचीन ग्रन्थ रसरत्नाकर में श्री सिद्धनित्यनाथ का एक योग इस प्रकार का उपलब्ध है कि—

यावन्त्यवला चम्पकं [ऋतवन्ते] वारिणा पिबति ।
न भवति कुसुमं तस्या नियतं तावन्ति वर्षाणि ।।

—रसरत्नाकर

अर्थात्—स्त्री जितना चम्पक फूल (ऋतु के अन्त में) जल से निगल जायगी, उतने वर्षों तक उसे मासिक स्राव बन्द रहेगा।

आचार्य चरक और गर्भनिरोध—

आयुर्वेद के विद्वानों को यह भी आज अज्ञात नहीं कि चरक और सुश्रुत की संहिता को छोड़कर प्रायः सभी की सभी आयुर्वेदिक आर्ष संहिताएं आज लुप्त हैं। औपधेनकतन्त्र, औरभ्रतन्त्र, पौष्कलावत तन्त्र, गोपुरतन्त्र, वैतरण तन्त्र, भोगतन्त्र, भाल्लुकि तन्त्र, कपिल तन्त्र, गौतम तन्त्र—शल्य विज्ञान के ये सभी ग्रन्थ आज नाम शेष हो चुके हैं। प्रसूति विज्ञान से सम्बद्ध पर्वतक संहिता और भण्डक संहिता भी आज लुप्त है। इसलिए उनके आधार पर कुछ कहना सम्भव नहीं और कान्त वीर्य संहिता, पाराशर संहिता, मार्कण्डेय संहिता और सुभूति गौतम संहिता के आधार पर भी कुछ निश्चयपूर्वक कहने को हम समर्थ नहीं। फिर आचार्य चरक ने ही सभी आयुर्वेद सिद्धान्तों का विस्तृत उल्लेख किया है यह भी सविस्तार प्रमाणित करना कष्टसाध्य कर्म है। किन्तु आचार्य चरक के मुख्यतः काय चिकित्सा प्रधान रहने पर भी कुछ ऐसी बातें उनकी कही हुई हैं जिनके आधार पर उनका भी मत इस सम्बन्ध में जाना जा सकता है। यहां कुछ एक पंक्तियां इसी उद्देश्य से लिखी जा रही हैं।

आचार्य चरक के अनुसार—स्त्री पुरुष दोनों का मन ही गर्भ की उत्पत्ति का कारण है। आचार्य चरक का स्पष्ट कथन है कि—

"अस्ति खलु सत्त्वमुपपादुकंयज्जीवस्पृक्शरीरेणाभिसंबध्नाति।"

अर्थात्—मन गर्भ का उपपादुक अर्थात उत्पत्ति का कारण है। वह जीवात्मा के साथ सम्बद्ध होकर शरीर के साथ अभिसंबन्ध करता है। और इसकी पुष्टि में कुक्षि में गर्भ की उत्पत्ति की आनुपूर्विक व्याख्या करते हुये आचार्य चरक बताते हैं कि—

"गते तु पुराणे रजसि नवे चावस्थिते पुनः शुद्धस्नातां स्त्रियमव्यापन्न योनि शोणित गर्भाशयामृतुमती माचक्ष्महे तया सह तथा भूतया यदा पुमानव्यापन्न बीजो मिश्री भावं गच्छति तस्य हर्षोदीरितः परः शरीर धात्वात्मा शुक्रभूतोऽङ्गादङ्गात् संभवति। स तथा हर्ष भूतेनात्मनो दीरितश्चाधिष्ठितश्च बीजरूपो धातु पुरुषः शरीरादभिनिष्पत्योचितेन यथा गर्भाशयमनुप्रविश्यार्तवेनाभि संसर्गमेति। तत्र पूर्वचेतना धातुः सत्त्वकरणो गुण ग्रहणाय प्रवर्तते। स हि हेतुः कारणं निमित्तयक्षरं कर्त्तामन्ता वेदिता वोद्धा द्रष्टा धाता ब्रह्मा विश्वकर्मा विश्वरूपः पुरुषः प्रभवोऽव्ययो नित्यो गुणी ग्रहणं प्राधान्य मव्यक्तं जीवोज्ञः प्रकुलश्चेतनावान् प्रभुर्भूतात्मा चेन्द्रियात्मा चान्तरात्मा चेति। स गुणोपादानकालेऽन्तरिक्षं पूर्वतरमन्येभ्यो गुणेभ्य उपादत्ते यथा प्रलयात्यये सिसृ-

क्षुर्भूतान्यक्षरभूतः सत्त्वोपादानः पूर्वतरमाकाशं सृजति ततः क्रमेण व्यक्ततरागुणान् धातून् वाय्वादिकांश्चतुरः। तथा देह ग्रहणेऽपि प्रवर्त्तमानः पूर्वतरमाकाशमेवोपादत्ते ततः क्रमेण व्यक्ततरगुणान्धातून् वाय्वादींश्चतुरः। सर्वमेवतु खल्वेतत् गुणोपादानमणुनाकालेन भवति।"

[चरक शारीर ४ अ०]

अर्थात्--पुराना रज निकल जाने पर पुनः नूतन रज सम्बन्धित होता है। उसके बाद शुद्ध स्नाता और अदुष्ट योनि, शोणित, गर्भाशय विशिष्टा स्त्री को ऋतुमती कहते हैं। इस प्रकार की ऋतुमती स्त्री के साथ अदुष्ट शुक्र वाले पुरुष का संगम होने पर श्रेष्ठ शारीर धातु रूप आत्मा हर्ष वेग से उद्रिक्त होकर शुक्र रूप से प्रत्येक अङ्ग से क्षरित होता है। इस हर्षोद्रिक्त बीज शक्ति सम्पन्न शुक्र पुरुष शरीर से क्षरित होकर योनि-पथ द्वारा गर्भाशय में प्रवेश करता है और आर्त्तव शोणित के साथ मिलता है। इस मिलित शुक्र शोणित में प्रथम ही मनः संसृष्ट चेतना धातु आकाश आदि के गुण के ग्रहण के लिये अधिष्ठान करता है। यह चेतना धातु ही हेतु, कारण, निमित्त. अक्षय, कर्त्ता, मन्ता, बोधयिता, बोद्धा, द्रष्टा, धाता, ब्रह्मा, विश्वकर्मा, विश्वरूप, पुरुष, प्रभव, अव्यय, नित्य, गुणी, ग्रहण, प्राधान्य, चेतना, अव्यक्त और अन्तरात्मा है। गर्भाशयगत यही धातु गुणग्रहणकाल में अन्यान्य गुणों के ग्रहण से पहले आकाश के गुण को ग्रहण किया करता है। प्रलय के अवसान में ब्रह्मा जिस प्रकार जीव-सृष्टि की अभिलाषा से सर्वप्रथम आकाश की सृष्टि करते हैं और उसके बाद क्रमशः व्यक्ततर वायु आदि भूत-चतुष्टय की सृष्टि किया करते हैं, उसी प्रकार देह ग्रहण में प्रवृत्त होकर पुरुष प्रथम आकाश का ग्रहण कर बाद में क्रमशः व्यक्ततर वायु प्रभृति धातु-चतुष्टय को ग्रहण किया करता है। यह सारा ही गुणों अर्थात् आकाश आदि भूतपञ्चक का ग्रहण अत्यन्त अल्पकाल में हुआ करता है और इसी पृष्ठ भूमि पर आचार्य चरक ने सन्तानवती स्त्री के बहुत विलम्ब से पुनः गर्भाधान का कारण भी इस प्रकार बताया है कि—

"योनि प्रदोषान्मनसोऽभितापाद्
शुक्रासृगाहार विहार दोषात्।
अकाल योगाद्बलसंक्षयाच्च
गर्भंचिराद् विन्दति सप्रजापि॥"

[चरक शारीर० २ अ०]

अर्थात्-योनि के अति दुष्ट होने, मनस्ताप से, शुक्र शोणित आहार-विहार के दोष से, अकाल संगम से और बलक्षय से, सन्तानवती स्त्री भी पुनः गर्भधारण अधिक विलम्ब से करती हैं।

आचार्य चरक के अनुसार गर्भाशयगत रजोवहा शिराओं का रक्त बहन करने लगना रक्तप्रदर कहाता है जिसमें आचार्य ने तण्डलीयक मूल को तण्डुलोदक से देना लिखा है जो योग रत्नाकर के मत से बन्ध्याकरण योग है। आचार्य चरक का कहना है कि—

"तण्डुलीयक मूलं तु सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना।
रसांजनं च लाक्षां च छागेन पयसा पिवेत्॥"

[चरक चिकित्सा ३०]

अर्थात्—चौलाई को मधु और चावल के धोवन के साथ अथवा रसांजन और लाक्षा को बकरी के दुग्ध के साथ लेना चाहिए। कहना न होगा कि आचार्य चरक के सिद्धान्तानुसार ऐसी दवाओं का प्रयोग करना गर्भनिरोध के लिये उचित होगा जिससे रजोवहाशिराओं का भी अति शोधन हो या रूक्ष और उष्ण द्रव्य का मुख्यतः सेवन किया जाय जिससे योनि नाड़ियों का स्राव असंन्तुलित होकर गर्भ स्थापन में बाधा आ सके।

गर्भ निरोध का इतिहास—

गर्भ निरोध का इतिहास भी कुछ कम आकर्षक नहीं है। प्रायः प्रत्येक वैज्ञानिक ने इस सम्बन्ध में लिखते समय कुछ न कुछ इतिहास अवश्य ही लिखा है। डाक्टर मेरी सी० स्ट्रयूस, डी० एस-सी व पी० एच-डी. (लन्दन) ने कोन्ट्रासेप्सन, इट्स थ्योरी, प्रेक्टिस एण्ड हिस्ट्री नामक ग्रन्थ में तथा

नार्मल एक्टा हाइम्स, पी-एच. डी० ने मेडिकल हिस्ट्री आफ कन्ट्रासेप्सन नामक ग्रन्थ में इसके इतिहास पर सुन्दर प्रकाश डाला है।

मिस्रदेश के 'पेपिरस' में सबसे पुरानी औषधि इस सम्बन्ध में मिलती है जिसे १५ सौ बी. सी. (आज से ३५ सौ वर्ष पूर्व) का माना जाता है। इसमें बब्बूल के कोपलों को मधु में मिला योनि पथ में पिचु के रूप में धारण करने का विधान है। यह यौन ऊष्मा से गलकर दुग्धाम्ल (Lactic acid) के रूप में परिणत होता है जो आज भी अत्यधिक वैज्ञानिक प्रमाणित है।

विद्वानों का यह भी कहना है कि तालमुद के लेखकों को स्पंज के प्रयोग से गर्भ-निरोध की जानकारी थी। प्राचीन मिस्री नुस्खों में भी योनि में में कछुए की बीट का धारण, मधु और यवक्षार से योनि लेपन आदि कई एक योग गर्भनिरोध के बताये हैं।

प्रसिद्ध हकीम जलालुद्दीन सभूती ने बधिया भेड़े का मूत्र पान करना बन्ध्याकर बताया है और काली मुर्गी के पित्ते का लेप कर पुरुष संभोग करे तो उस बार गर्भ नहीं रहेगा, ऐसा किताब तिब्बी वाल हिकमते में आया है।

"Sterilization by the crussing or mangling of the testes was known to the ancients and according to Lecene is described in the Hippocratic writings as follows----

It was performed in infancy. The child was immersed in a bath and the testes were forcibly compressed between the fingers until they were disorganized. Another plan consisted in intercepting the blood--supply to the testicles by the twisting the spermatic cord, when the testis, the ancient writer remarks, is not long in degenerating into a, scirrhus or sarcocelle.

.........It is said that sterilization by destructive compression of the testis was also practised by certain Australian tribes. A marrried man, we are told, was permitted to have only one child and as soon as it was born, his testes were distroyed by crussing. The reason given was that of restricting the population."

(The infancy of Medicine by Adanmchkenzie, pp, 383)

उपरोक्त आदममैकेंजी के उद्धरण के बाद इस संबध में कुछ विशेष लिखना अनावश्यक सा है। किन्तु इतना लिखना भी अनावश्यक नहीं होगा कि ल्यूक्रेटियस (Lucrehus) ने मासिक रक्त पर चलना बन्ध्याकरण के लिये बताया है और भारत में खासकर मिथिला में मृतवत्सा वा बन्ध्या नारी को ऋतुस्राव के दिन चौराहे पर स्नान इस उद्देश्य से कराया जाता है कि जो गर्भिणी नारी इस कदर्भ में छू जायगी, वह मृतवत्सा हो जायगी और रजस्वला छू जायगी तो वह बन्ध्या हो जायगी तथा स्नान करने वाली स्त्री का दोष दूर हो जायगा।

बाइबिल में गर्भ निरोध—

आइडियल फैमीली प्लानिङ्ग नामक ग्रंथ में श्री अबुल हसनत ने बाइबिल में गर्भ निरोध की बात होने की चर्चा की है। उनका कहना है कि—

"In the old testament of the Bible mention is made of' Coitus interruptus' in the story of Onam. And Onam knew that the seed would not be his, and it came to pass whenever he went in unto his brother's wife that he used to spill it on the ground, lest he should give seed to his brother."

--Ideal family planing, pp. 15.

अर्थात्—ओल्ड टेस्टामेंट में ओनाम की कथा में विच्छिन्न संभोग (गर्भ-निरोध का एक प्रकार) की चर्चा है।

मुसलमानी साहित्य में गर्भ निरोध —

श्री अबुल हसनत ने मुसलमानी साहित्य में

भी गर्भ निरोध की चर्चा करते हुये कहा है कि–

"For promotion of conception and cure of sterility, wearing of amulets talismans is widely in vogue among the superstitious masses and the devoutly religiously-minded people.........Islamic literature on medical methods includes: earth mixed with secretions of women to be taken by woman twice a month, head of a bat to be kept under women's head at the time of union, leaves of Na'na to be carried on person at the time, urinating on the urine of a wolf, wearing amulets and talismans with verses from sacred books or combination of Arabic letters; etc. etc." --Ibid, pp. 73--4.

वेद में गर्भ निरोध—

वैदिक वाङ्मय में भी गर्भ निरोध का प्रयोग मिलता है। वेदों की ११३१ शाखाओं में यद्यपि कुछ एक ही शाखाएं उपलब्ध हैं फिर भी ऐसे प्रमाण उपलब्ध होते हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक युग में भी गर्भ निरोध किया जाता था।

अथर्ववेद में इस के लिये अश्वतरी मूत्र को पत्थर से रगड़कर भात में मिलाकर खिलाने या आभूषणों में उसका लेप कर पहनाने का प्रयोग मिलता है। मन्त्र इस प्रकार है—

"इमायास्ते शतं हिरा: सहस्रं धमनीरुत:।
तासां ते सर्वासामहमश्मना बिलमप्यधाम् ॥"

[अथर्व० ७ कां० ३ अ० ३६ सू०]

अर्थात्—हे नारी! तेरी सौ हिरें (शिरायें) और हजारों धमनियां जो हैं उन सभी का बिल (मुख) मैंने पत्थर से बन्द कर दिया है।

गर्भाशय का निम्नीकरण—

अथर्ववेद में गर्भाशय के निम्नीकरण का भी संकेत मिलता है। मन्त्र इस प्रकार है :—

"परं योनेरवरं ते कृणोमिमात्वा प्रजाभिभून्मोतसूनुः।
अस्वंत्वा प्रजसं कृणोम्यश्मानं ते अपिधानं कृणोमि ॥३॥

—अथर्व० कां० ७ अ० ३६ सू० ३६

अर्थात्—हे नारी! तुम्हारी योनि के पर भाग (गर्भाशय) को अवर बनाता हूं। तुम्हें बेटा या बेटी कुछ भी नहीं होगा। तुम्हें प्रजारहिता अश्वतरी की भांति बनाता हूं। तुम्हारे गर्भाशय को पत्थर से ढक रहा हूँ।

प्रसिद्ध वेद व्याख्याकार आचार्य सायण ने अवरं कृणोमि का अर्थ योनि प्रदेश से नीचे वा बाहर करता हूँ किया है। किन्तु, इसके आधार पर यह भी अनुभव करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि वैदिक काल में शल्यकर्म द्वारा भी गर्भ निरोध किया जाता था।

विहार की अपनी परम्परा—

अथर्व वेद के परिशीलकों से अब यह बात भी छिपी नहीं रही कि गर्भ निरोध के विषय में विहार की अपनी परम्परा रही है।

अथर्ववेद ने असित, कश्यप और गय की भग बन्धन पद्धतियों का नामोल्लेख किया है जिसमें बाल्मीककृत रामायण के अनुसार कश्यप वैशाली क्षेत्र के तथा गय जिसकी पीठ पर गया बसायी गयी थी, मगध के ही थे। मन्त्र इस प्रकार है—

असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गमस्य च।
अन्त:कोशमिव जामयोऽपिनह्यामि ते भगम् ॥४॥

(अथर्व० १ का० ३ अ० १४ सू०)

अर्थात्—हे नारी तेरे भग को असित की पद्धति से, कश्यप की पद्धति से और गय की पद्धति से बांधता हूँ।

यह तो साधिकार कहना कठिन है कि इन पद्धतियों का क्या रूप था। आधुनिक 'सेलिपंजेक्टेमी' वा आवेरीएक्टोमी (ovariectomy), ओवरियो-हिस्टेरेक्टोमी (ovario-hysterectomy), वा ओफोरो-सेलिंपजेक्टोमी (oophoro-salpingectomy) से उन पद्धतियों को कितना

साम्य या वैषम्य था, यह भी साधिकार कहना कठिन है। किन्तु वैदिक काम विज्ञान संबन्धी सन्दर्भों के परिशीलन से इतना तो अवश्य ही कहा जायगा कि शल्य कर्म द्वारा प्रजनन शक्ति का अन्त उस समय में भी किया ही जाता था। और इस बिना पर यह भी निःसंकोच कहा ही जायगा कि स्त्री प्रजननांग की शिराओं और धमनियों का भी शल्य कर्म किया ही जाता था।

अपने इस बद्धमूल विचार की पुष्टि में मैं यहां केवल ३ सन्दर्भ अथर्वेद से उद्धृत करूंगा।

वृषणाच्छेदन या वासेक्टोमी—

अथर्ववेद में वृष्ण्य नाड़ी द्वय (Seminal vesicles) का स्पष्ट निर्देश मिलता है जिन्हें 'शम्या' द्वारा भेदन कर अप्रजस्करण (Stirlization) किया जाता था। अथर्ववेद का मन्त्र इस प्रकार है कि—

ये ते नाड्यौ देवकृते ययोस्तिष्ठति वृष्ण्यम्।
ते ते भिनद्मि शम्ययामुष्या अधिमुष्कयोः ॥४॥
(अथर्व ६ का० १३ अ० १३८ सू०)

अर्थात्—विधाता की बनायी जो तेरी दो नाड़ियां हैं, जिनमें प्रजनन क्षमता रहा करती है और जो मुष्क (अण्डकोष) में संलग्न रहा करती हैं, उन्हें इस शम्य (मन्त्र विशेष) से भिन्न करता हूँ—काटता हूँ।

आचार्य सायण ने शम्या का अर्थ लकुट किया है। निःसन्देह, यह शल्यकर्म वासेक्टोमी है जिसमें प्रजनन कीट का स्राव बन्द किया जाता है।

शिश्न लघूकरण—

अथर्ववेद में अप्रजस बनाने एवं गर्भ निरोध के लिए शिश्न लघूकरण का भी प्रयोग मिलता है, जो आधुनिक प्रजनन विज्ञान के पण्डितों के लिए अज्ञात ही है। मन्त्र इस प्रकार है—

यथाशेयो अपामातै स्त्रीषु चासदनावयाः।
अवस्थस्य क्लीबतः शांकुरस्य नितोदिनः ॥
यदाततमवततू तनु यदुत्ततं नितत तनु ॥३॥
—अथर्व का० ७ अ० ८ सु० ६५

अर्थात्—जिस तरह शिश्न अपगत हो जाय, असत् और अनावय हो जाय, वैसा करो। स्त्री के नीचे संभोग के लिए पड़े शंकु के समान खड़े शिश्न वाले और नितोदी पुरुष के लम्बे शिश्न को छोटा तथा खड़े शिश्न को शिथिल करो।

प्रसिद्ध टीकाकार सायण ने बताया है कि संगम स्थल पर अभिमन्त्रित पत्थर रख देने से वैसा होता है। किन्तु, जो भी हो, शिश्न लघूकरण का भी अपना अलग उद्देश्य अवश्य है और अवस्थ (विपरीत रतासक्त) एवं नितोदी (नीचे से धक्का लगाने वाले) पुरुष का शिश्न शिथिलीकरण भी प्रजनन-शास्त्रीय कुछ गंभीर रहस्य अवश्य अभिप्रेत करता है।

औषधि द्वारा यौन परिवर्तन—

सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि अथर्व वेद औषधि खिलाकर यौन परिवर्तन किये जाने का भी स्पष्ट उल्लेख करता है। मन्त्र इस प्रकार है—

त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमाभिश्रुतास्योषधे।
इमंमे अद्य पुरुषं क्लीबमोपशिनं कृधि ॥१॥
—अथर्व का० ६ अ० १३ सू० १३८

अर्थात्—हे औषधे! तू लताओं में सर्वश्रेष्ठ तथा अमोघ वीर्या के रूप में प्रख्यात हो। इस पुरुष को निर्वीर्य (क्लीब) और 'ओपसिन' (स्त्री व्यंजन युक्त) बना दे।

कहना न होगा कि वैदिक साहित्य में इस प्रकार के और भी अनेकानेक प्रमाण हैं जिनके बूते पर यह मुक्त कण्ठ कहा जा सकता है कि वैदिक काल में भी गर्भ निरोध का कम प्रचार नहीं था।

वैवाहिक मन्त्र—

दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि।"

अर्थात्—इस पत्नी में दश ही पुत्र पैदा करना और ग्यारहवें पति का परिवर्धन करना। यह निःस-

[illegible] परिवार नियोजन का प्रबल प्रमाण है इस सम्बन्ध में यहां अधिक लिखना अवसरोचित नहीं होगा।

याज्ञवल्क्य की यौगिक पद्धति —

गोंडलमुनि याज्ञवल्क्य की भी अपनी गर्भ-निरोध पद्धति थी जिसकी स्पष्ट चर्चा हम उपनिषद् ग्रन्थों में पाते हैं। वृहदारण्यक उपनिषद् के आधार पर हम याज्ञवल्क्य की इस पद्धति को बहुत आसानी से समझ सकते हैं। यहां इस सम्बन्ध में संक्षेप में विचार करना भी अवसरोचित ही होगा।

पुरुष की प्रतिष्ठा नारी में—वृहदारण्यक के अनुसार पुरुष की प्रतिष्ठा नारी में ही है और पत्नी संभोग भी एक प्रमुख योग है। इस आधार पर यह भी कहा ही जायगा कि जिस प्रकार सकाम योग और निष्काम योग ये दो प्रकार के योग हुआ करते हैं उसी प्रकार सकाम (सन्तानोत्पत्ति के लिए) और निष्काम(विशुद्ध रत्यानन्द प्राप्ति के लिए ये दो प्रकार के मैथुन भी होंगे ही और द्वितीय कोटि का मुख्य प्रकार गर्भनिरोध से सम्बन्ध रहेगा ही। वृहदारण्यक का कथन है कि—

स ह प्रजापतिरीक्षांचक्रे, हन्तास्मै प्रतिष्ठां कल्पयानीति, स स्त्रियं ससृजे, तां सृष्ट्वाऽध उपास्त: तस्मात् स्त्रियमध उपासीत। (वृह. ६।४।२)

अर्थात्—उस प्रजापति ने देखा—इस (पुरुष) के लिये प्रतिष्ठा की कल्पना (सृजन) करूं। उसने स्त्री का सृजन किया। उसकी सृष्टि कर नीचे उपासना की, इसलिए स्त्री को नीचे रखकर ही उपासना करनी चाहिए।

काम योग से पुरुष की उत्पत्ति—

वृहदारण्यक के अनुसार पुरुष की उत्पत्ति काम योग के परिणाम स्वरूप हुआ करती है। वृहदारण्यक लिखता है कि—

योषा वा अग्निर्गौतम तस्या ! उपस्थ एव समित्, लोमानि धूमो, योनिरर्चि: यदन्त: करोतितेऽङ्गारा: अभिनन्दा विस्फुलिङ्गा:। तस्मिन्नेत स्मिन्नग्नौ देवो रेतो जुहति, तस्या आहुत्यै पुरुष: संभवति॥ (वृह. ६।२।१३)

अर्थात् (प्रवाहण राजा गौतम से कहते हैं कि) ऐ गौतम ! स्त्री ही अग्नि है। उसका उपस्थ (स्त्री व्यञ्जन, गुप्तांग) ही समिधा है, रोएं ही धूम हैं, योनि ज्वाला है, जो भीतर में किया जाता है वे अंगार हैं, उससे होने वाला आनन्द विशेष स्फुलिंग हैं। वैसे इस अग्नि में देवता लोग रेतस् (वीर्य) का होम करते हैं। उसी आहुति से पुरुष उत्पन्न होता है।

यह संभोगयज्ञवाद न केवल वृहदारण्यक में ही है अपितु छान्दोग्य उपनिषद् (५।८ १) में भी इसी आशय का एक मन्त्र उपलब्ध होता है। साथ ही वृहदारण्यक में यह भी बताया गया है कि संभोग को उद्दालक, आरुणी, नाकमौद्गल्य, तथा कुमार हारित बाजपेय यज्ञ के समान फलप्रद मानते थे।

काम ही ब्रह्म—वृहदारण्यक के अनुसार काम-शक्ति ही ब्रह्म है और ऋगवेद के अनुसार कामेच्छा वा काम प्रवृत्ति का जन्मान्तरीय कारण भी हुआ करता है। वृहदारण्यक कहता है कि—

यो रेतसि तिष्ठन् रेतसोऽन्तरो यं रेतोनवेद यस्य रेत: शरीरम् यो रेतोऽन्तरो यमयत्येषत आत्मा अन्तर्याम्यमृतोऽदृष्टो द्रष्टाऽश्रुत: श्रोताऽमतो मन्ताऽविज्ञातो विज्ञाता। नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा नान्योऽतोऽस्तिश्रोता नान्योऽतोऽस्ति मन्ता नान्योऽतोऽस्ति विज्ञातैष त आत्मान्तर्याम्यमृतोऽतोऽन्यदार्त्तं, ततोरोद्दालक आरुणि रूपरराम॥ (वृह० ३।७।२३)

अर्थात्—जो रेतस् (शुक्र-शोणित) में रहता हुआ रेतस् से अलग है, जिसे रेतस् नहीं जानता है, जिसका रेतस् शरीर है, जो रेतस् से भिन्न रह कर उसका यमन (नियन्त्रण) करता है, वही यह तेरी आत्मा, अन्तर्यामी, अमृत, अदृष्ट, द्रष्टा, अश्रुत श्रोता, अमत मन्ता, अविज्ञात विज्ञाता है। इससे अन्य कोई द्रष्टा नहीं है, इससे अन्य कोई श्रोता नहीं है, इससे अन्य कोई मन्ता नहीं है, इससे

अन्य कोई विज्ञाता नहीं है। यही तेरी आत्मा अन्तर्यामी और अमृत है। इससे अन्य ऋत है। इसके बाद उद्दालक आरुणि उपरत हो गया।

ऋगवेद का मन्त्र इस प्रकार है कि—

तदस्य मारुधतः काम आगनृश्त आजातो असुतः कुतश्चितं। (ऋगवेद, १।१७६।४)

अर्थात्—यद्यपि मैं जप और संयम में नियुक्त हूँ तथापि इसी कारण या किसी भी कारण से मुझे काम भाव आगया है।

इसमें अगस्त्य द्वारा 'असुतः' पद का प्रयोग एक अर्थ विशेष अभिप्रेत करता है जिस पर विशेष विवेचन यहां सर्वथा अप्रासंगिक होगा। मगर यह तो कहा ही जायगा कि वैदिक ऋषिगण भी काम भाव को अधिकाधिक महत्व दिया ही करते थे।

मैं अब यहां योगी याज्ञवल्क्योक्त गर्भ निरोध पर प्रकाश डालूंगा जिसके बारे में बृहदारण्यक उपनिषद् में दो मन्त्र स्पष्ट संकेत कर रहे हैं। मन्त्र इस प्रकार है—

अथ योनिच्छेत् न गर्भं दधीतेति, तस्यामर्थं निष्ठाय, मुखेन मुखं संधाय, अभि प्राण्यापान्यात्–इन्द्रियेण ते रेतसा रेत आददइति। अरेता एव भवति ॥ (बृह० ६।४।१०)

अर्थात्—अब जिसके बारे में यह इच्छा करे कि यह गर्भ धारण नहीं करे, यह उसमें (उसकी योनि में) अर्थ (शिश्न) को स्थिर प्रवेशित कर मुंह से मुंह मिलाकर अभि प्राण्यापान्य करे—मैं अपने रेतस इन्द्रिय (शिश्न) से तेरे रेत का आदान (ग्रहण) करता हूं। ऐसा कहने पर वह स्त्री अरेता (गर्भ ग्रहण अयोग्या) ही हो जाती है। और निश्चित गर्भ धारण की पद्धति बताते हुए अगला मन्त्र यह है कि—

"अथ याभिच्छेद् दधीतेति, तस्यामर्थं निष्ठाय, मुखेन मुखं संधाय, अपान्याभिप्राण्यात् इन्द्रियेणतेरेतसा रेत आदधामीति। गर्भिण्येव भवति ॥"

(बृह० ६।४।११)

अर्थात्—और जिस स्त्री के बारे में यह इच्छा करे कि यह गर्भधारण करले, उसमें (उसकी योनि में) अर्थ (शिश्न) को स्थिर प्रवेशित कर, मुंह से मुंह मिलाकर 'अपान्याभिप्राण्य' करे। मैं अपने रेतस् इन्द्रिय द्वारा तुझमें रेतस् का आधान करता हूँ। वह अवश्य गर्भवती होती है।

अप्रज्ञात पद्धति—बृहदारण्यक की उक्त पद्धति में 'अभिप्राण्यापन्य' कारण तथा 'अपान्याभिप्राण्य' करण अप्रज्ञात पद्धति बन गयी है। क्योंकि टीकाकारों ने जो इसका अर्थ किया है, वह समस्या को सुलझाने की अपेक्षा उलझाता ही अधिक है।

उदाहरण के लिए विहार के वर्त्तमान युग की सर्वश्रेष्ठ टीका गूढ़ार्थ दीपिका (हिन्दी) के टीकाकार श्री विश्वक सेनाचार्य ने अभिप्राण्यापान्यात् का अर्थ इस प्रकार किया है कि 'अभिप्राण्य–अच्छी तरह श्वास ग्रहण करके। अपान्यात् (श्वास) परित्याग करदें। और अपान्याभिप्राण्यात् का अर्थ भी इस प्रकार किया है कि अपान्य–श्वास परित्याग करके। अभिप्राण्यात्–अच्छी तरह श्वास ग्रहण करें।

काम विज्ञान की वैज्ञानिकता के समर्थक भारतीय विज्ञानविदों को इस पद्धति की विशुद्धता अवश्य ही धूमिल दीखेगी क्योंकि 'अरेताकरण' में श्वास का परित्याग किये जाने पर शुक्रकीट विफलीकरण का कोई संगत तर्क नहीं मिलता और सगर्भीकरण में श्वास को ऊपर तानना यौगिक तथा वामाचारी पद्धति के अनुसार विपरीतार्थकर ही बन जायगा और इस पद्धति की इतिहास परम्परा पर शास्त्रीय दृष्टि से विचार करने पर यह भी प्रमाणित होता है कि परवर्त्ती विद्वानों की भी एक बहुत बड़ी परम्परा रही है जिन्होंने अपने अपने विचारानुसार छोटे बड़े अनेकानेक ग्रंथ इस विज्ञान के बारे में लिखे जो हम भारतीयों के दुर्भाग्य से केवल नाम शेष ही हो चुके हैं। केवल महर्षि वात्स्यायन के अनुसार ही आरुणि उद्दालक के, जिनके बारे में बृहदारण्यक लिख चुका

है कि 'ततोद्दालके आरुणिरुपरराम' (बृह० ३।७।२३). पुत्र श्वेतकेतु ने ५०० अध्यायों में कामशास्त्र संक्षेप में लिखा था।

वात्स्यायन जी लिखते हैं कि —

प्रजापतिर्हि प्रजा सृष्ट्वा तासां स्थिति निवन्धनं त्रिवर्गस्य साधनमध्यायानां शत सहस्रेणाग्ने प्रोवाच ।५। तस्यैक देशं स्वायंभुवो मनुर्धर्माधिकारिकं पृथक् चकार ।६। बृहस्पतिरर्थाधिकारिकम् ।७। महादेवानुचरश्च नन्दी सहस्रेणाध्यायानां पृथक् कामसूत्रे प्रोवाच ।८। तदेव तु पंचभिरध्याय शतै रोद्दालकि: श्वेत केतु: संचिक्षेप ।९। तदेव तु पुनरध्यर्धेनाध्याय शतेन साधारण—साम्प्रयोगिक, कन्या सम्प्रयुक्तक, भार्याधिकारिक, पारदारिक, वैशिकोपनिषदिकै: सप्तभिरधिकरणै: बाभ्रव्य: पाञ्चाल: संचिक्षेप ।१०।

तस्य षष्ठं वैशिकमधिकरणं पाटलिपुत्रिकाणां गणिकानां नियोगाद् दत्तक: पृथक् चकार ।११।

तत्प्रसंगाचारायण: साधारणमधिकरणं पृथक् प्रोवाच ।१२।

सुवर्ण नाभ: साम्प्रयोगिकम् ।१३।
घोटकमुख: कन्या सम्प्रयुक्तकम् ।१४।
गोनर्दीयो भार्याधिकारिकम् १५।
गणिका पुत्र: पारदारिकम् ।१६।
कुचुमार औपनिषदिकम् ।''

(कामसूत्र अवतरण प्रकरण)

अर्थात्—मनुष्यों को उत्पन्न करने के पश्चात् ब्रह्मा ने मनुष्य को सुव्यवस्थित एवं क्रम-बद्ध बनाने में सहायक तथा धर्म, अर्थ और काम सिद्धि का साधन एक लाख अध्यायों में एक शास्त्र रचा था। स्वायंभुव मनु ने उसके एक देश धर्माधिकारिक को अलग कर दिया। बृहस्पति ने अर्थाधिकारिक को (अलग किया)। महादेव के अनुचर नन्दी ने एक हजार अध्यायों में पृथक् कामसूत्र रचा। इसी काम-सूत्र को औद्दालकि श्वेतकेतु ने पांच सौ अध्यायों में संक्षिप्त कर दिया है और औद्दालकि श्वेतकेतु के काम सूत्रों को पांचाल देशवासी बाभ्रव्य ने १।। सौ अध्यायों में साधारण, सांप्रयोगिक, कन्या संप्रयुक्तक, भार्याधिकारिक, पारदारिक, वैशिक और औपनिषदक—इन सात अधिकरणों में संक्षिप्त कर दिया। उसके छठे वैशिक अधिकरण को दत्तक ने पाटलिपुत्र (पटना) की वैश्याओं के अनुरोध पर अलग कर दिया। उन्हीं की पद्धति पर चारायण ने साधारण नामक अधिकरण लिखा। सुवर्ण-नाभ ने सांप्रयोगिक अधिकरण लिखा। घोटकमुख ने कन्या सम्प्रयुक्तक अधिकरण लिखा। गोनर्दीय ने भार्याधिकारिक अधिकरण लिखा। गणिका पुत्र ने पारदारिक अधिकरण लिखा। कुचुमार ने औपनिषदक अधिकरण लिखा। और—

उक्त आचार्य परंपरा में दत्तक ने जो वस्तुतः दत्तिल थे और बाल शास्त्र संक्षेप के रूप में जिनका नाट्य सम्बन्धी सुन्दर आर्ष ग्रंथ आज भी उपलब्ध है, काम सूत्र संक्षेप नामक अत्युपयोगी ग्रन्थ का निर्माण किया होगा जो आज सर्वथा लुप्त हो चुका है। आचार्य चरक ने भार्याधिकारिक नामक जो काम विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थ लिखा था, वह भी चरक संहिता, पातंजल योग दर्शन, पातञ्जल व्याकरण महाभाष्य के समान ही आकार ग्रन्थ रहा होगा। बृहदारण्यानुसारी काम विज्ञान के इन औद्दालक, बाभ्रव्य, दत्तक, चारायण, सुवर्णनाभ, घोटक मुख, गोनर्दीय, गणिका पुत्र, कुचुमार आदि वात्स्यायनोक्त आचार्यों एवं वात्स्यायन, कोक्कोक, वीरभद्र, पुरूरवा, भरत, दण्डी, जयदेव, दैवज्ञसूर्य, शामराज, ज्योतिरीश्वर, मीननाथ, दामोदर, वीरणाराध्य, बादरायण, चन्द्रमौलि, मूलदेव, रन्तिदेव, क्षेमेन्द्र, ईश्वर आदि महान् ग्रन्थ निर्माताओं का विराट् साहित्य बिना परिशीलन किये उक्त 'अभिप्रायप्रधान्यात्' तथा 'अभिप्राणापान्यात्' का साधिकार विश्लेषण करना आसान नहीं और उचित भी नहीं। किन्तु पिछले दो दशाब्दियों के अध्ययन अनुशीलन के आधार पर मैं इस स्थिति में आ पहुंचा हूं कि उसको अपने

ढङ्ग से विश्लेषण कर सकूंगा और इसी बूते पर मैं उसका स्पष्टीकरण करना भी चाहूंगा।

देवयान और पितृयान मार्ग—प्राण विद्या के पण्डितों से यह बात भी कभी छिपी नहीं थी कि प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान—इन पंच प्राणों में गति के अनुसार प्राण, अपान और व्यान—इन त्रिप्राणों की ही मुख्य प्रधानता रही है और प्राण ऊर्ध्वगति, अपान अधोगति तथा व्यान तिर्यग्गति का प्रतीक माना गया है। इसलिए अपान वायु को जो शुक्रोत्सर्ग का मूल प्रेरक माना जाता है, प्राणाभिमुखीकरण से मनुष्य ऊर्ध्वरेता बनेगा जिसका संकेत 'अरेता एवं भवति' से बृहदारण्यक में किया गया है। कामयान में इस सूर्यमण्डल भेदन की भी अपनी पृथक् प्रणाली है जिसका अधिकारी बिरला ही हो सकता है। इसी प्रकार प्राण को अपानाभिमुखीकरण गर्भाधान के लिये शास्त्रीय यौगिक अनुलोम पद्धति है जिससे चन्द्रमण्डल भेदन हुआ करता है और सन्तानोत्पादन होने की अवश्य सम्भावना होने के कारण बृहदारण्यक ने 'गर्भिण्येव भवति' से उसका भी संकेत किया है। यही प्रकारद्वय यथाक्रम देवयान और पितृयान मार्ग है जिसमें प्रथम मार्ग का पथिक भोगी होते हुए भी 'योग युक्त' और द्वितीय मार्ग का पथिक योग मुक्त रहते हुए भी 'भोगी' माना जाता है।

यहां यह भी कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि उक्त 'अभिप्राण्यापान्यन' तथा 'अपान्याभिप्राण्यन' का वाममार्गीय योगाचार में परंपरा से प्रचार है और जिसकी साधना विशुद्ध हठ योगीय होते हुए भी यान्त्रिक है और जिसमें ६ मास से डेढ़ वर्ष तक का समय साधना में लगा करता है।

गर्भ नियन्त्रण के कतिपय योग—

अब मैं यहां गर्भनिरोधकर कतिपय योग उपस्थित करूंगा जिनका उल्लेख शास्त्रों में है और व्यवहार में भी जिनका अस्तित्व है और है प्रायोगिक सफलता भी।

१—भावमिश्र ने एक योग इस प्रकार दिया है—

पिप्पली विडङ्गटङ्कण समचूर्णं या पिवेत् पयसा।
ऋतु समये नहि तस्या गर्भः संजायते क्वापि॥
(भावप्रकाश)

अर्थात्—पीपर, बायबिडङ्ग, सोहागा—इन तीनों का समान भाग चूर्ण ऋतुकाल में दूध के साथ जो पीती है, उसे कभी भी गर्भ नहीं रहता।

मात्रा—चार आने भर। विडङ्ग का कृमिघ्न (antibiotic) होना और सुहागे का क्षार होने के कारण पिप्पली के योग से रक्त को शुक्राणु सह बनाने का चमत्कार भी विचारणीय है। सोहागा यहां चौकिया आग पर फूला बनाकर लेना चाहिए। पानी के साथ सेवन करने पर भी यही परिणाम होंगे।

२—कापालिक योग—कबूतर की बीट १ मासा चीनी के साथ तीन दिन तक सेवन करने से स्त्री बन्ध्या होती है।

३—इसीको रात में कांच के बरतन में पानी में डाल दें। प्रातः पान कराने से भी यही फल होता है।

४—तालीशादि चूर्ण—

तालीशगैरिके पीते विडाल पद मात्र के।
शीताम्बुना चतुर्थेऽह्नि बन्ध्या नारी प्रजायते॥

अर्थात्—तालीश पत्र और गेरू चवन्नी भर चौथे दिन शीतल जल से पीने पर स्त्री बन्ध्या हो जाती है।

यहां गेरू से सोना गेरू लेना चाहिए। इसका शोधन गोदुग्ध की भावना देकर किया जाता है।

५—आजीवन गर्भाभावकर—सैंधव लवण का चूर्ण ४ आना भर की मात्रा में मैथुन के समय भग में रखने से गर्भ नहीं रहता है।

६—सुगम गर्भाभावकर—सैंधव लवण का चूर्ण ४ आना भर की मात्रा में मैथुन के समय भग में रखने से गर्भ नहीं रहता है।

७—माजूफल चूर्ण भी इसी प्रकार योनि में रख कर मैथुन करने से गर्भ नहीं रहता है।

८—मैथुन समय में मेढ़क की हड्डी कटि में धारण करने से गर्भ नहीं रहता है। यह तावीज के रूप में चांदी में मढ़ाकर धारण करने का विधान है।

९—डुण्डुभ सर्प की हड्डी या दांत इसी प्रकार कटि में पुरुष के धारण करने पर शुक्र गर्भकर नहीं रह जाता है। यह कापालिक योग है।

१०—प्रतिदिन खाली पेट साबुत लौंग १ नग निगल कर एक ग्लास ठंडा पानी पीने से गर्भ नहीं रहता है। इसका व्यवहार छोड़ देने पर मासिक होने के बाद गर्भ रह जाता है।

११—चमत्कारिक योग—चमेली की एक कली साबुत निगल जाने से एक वर्ष तक गर्भ नहीं रहेगा।

१२—कुक्कुचठैला (बन्ध्या कर्कोटकी) का फूल भी कली की स्थिति में ही निगल जाने से गर्भाभावकर होता है। यह भी कापालिक योग है।

१३—वन की एक अण्डी का गूदा साबुत निगल जाने से एक वर्ष तक गर्भ नियन्त्रण होता है।

१४—श्वेत गुंजा का गूदा एक दाल साबुत खाली पेट में शीतल जल से निगल जाने से १० महीने तक गर्भ नहीं रहता है।

१५—बाह्य प्रयोग—चूहे की बीट महीन चूर्ण कर मधु के साथ योनि में लेप करने से गर्भ नहीं ठहरेगा। यह योग श्यामसुन्दराचार्य, काशी का है।

१६—कान का मैल काले पश्मीना में बांधकर स्त्री गले में बांधे। जब तक बंधा रहेगा, गर्भ नहीं ठहरेगा। (आयुर्वेद गौरव)

१७—तिल तैल लिङ्ग में मलकर मैथुन करने से गर्भ नहीं रहता है। (औषधि संग्रह कल्पवल्ली)

१८—बच्चे के अगले दूध वाले दांत को टूटने पर संभाल कर रखे। इसे चांदी के तावीज में मढ़ाकर बांधने से गर्भ नहीं रहता है। यह कापालिक योग है।

१९—ढाक का बीज पानी में पीसकर ऋतुमती स्त्री ३ दिनों तक पीवे तो गर्भ नहीं रहेगा।

२०—खीरी का बीज भी एक सप्ताह तक पीसकर पीने से गर्भ नहीं रहता।

२१—बदरी वृक्षस्थ लाख २ आना भर २ तोले तेल के साथ पीने से गर्भ नहीं रहता है।

२२—बांस की छाल और फिटकिरी दो तोले का क्वाथ बनाकर तीन दिनों तक ऋतुकाल में पीने से गर्भ नहीं रहता है।

२३—हरिद्रा एक माशा पीस कर शीतल जल से ऋतुकाल में तथा स्नानोत्तर तीन दिनों तक सेवन करने से गर्भ धारण की संभावना उस मास भर नहीं रहती है।

२४—बन्ध्या ताल वृक्ष की जटा को पानी में भिगोकर उसका जल ऋतुकाल में पीने से गर्भ नहीं रहता है। यह कापालिक योग है।

२५—तीन वर्ष पुराने गुड़ के शीरा ऋतुकाल में सेवन करने से नारी बन्ध्या होती है। ऐसा अनंगरङ्ग में बताया गया है।

२६—कोका पण्डित की पद्धति—कोका पंडित का कहना है कि काम प्रहर्षातिशय काल में मूत्राशय की जड़ में अंगुली से दबाकर ध्यान दूसरी ओर आकृष्ट करने एवं जोरों से सांस ऊपर चढ़ाने से स्खलन रुक जाता है और इस प्रकार गर्भ से बचा जा सकता है। यह प्रथा आज भी रूमानिया और फ्रान्स में प्रचलित बतायी जाती है। बताया गया है कि वहां की स्त्रियां जब यह समझ लेती हैं कि पुरुष स्खलित होने वाला है तो वे अंडकोष के आगे लिंग की जड़ में मूत्राशय और उत्तेजन ग्रन्थि के सामने अंगुली से दबा देती हैं जिससे वीर्य के साथ मूत्र भी मिलकर बाहर चला आता है जिससे मूत्र लवण के संपर्क में आकर शुक्रकीट नष्ट होजाते हैं और स्त्रियां गर्भाधान से बच जाती हैं।

यह पद्धति उन देशों में अधिक असूल हुआ करती है जहां बीयर पीकर संभोग करने का प्रचलन है।

प्रयोगों की असफलता—

कुछ एक विद्वान यह शिकायत करते हैं कि खाने की कोई भी औषधि औसतन अधिकाधिक सफल नहीं पाई जाती। किन्तु उन्हें यह समझना चाहिए कि सभी व्यक्तियों में एक ही प्रयोग का प्रयोग करना ठीक उसी प्रकार का उपहासास्पद प्रयोग है कि यदि सभी उम्र के लोगों को एक ही साइज के रेडीमेट कपड़े पहना कर सबको सुवेष बनाने का स्वप्न देखा जाय। उन्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि यदि एक ही योग से कार्य साधन अभीष्ट रहता तो अनेकानेक योग शास्त्रकार नहीं बताते।

इसलिये जो लोग इन प्रयोगों को जांचने का प्रयास करें वे इनकी औपादानिक बारीकियों का अध्ययन कर उचित मात्रा में प्रयोग करें तो कभी भी असफलता नहीं मिलेगी।

उपसंहार—

भारतीय वाङ्मय में गर्भनिरोध के अनेकानेक गुप्त प्रयोग भरे पड़े हैं और अरबों करोड़ों वर्षों की जनपरिवार में बिहार में ही हजारों योग मिलेंगे जिसमें से कुछ एक आसानी से प्रयोग किये जा सकते हैं और वे शतप्रतिशत अव्यर्थ भी सिद्ध होंगे।

हम भारत सरकार तथा राज्य सरकारों से निवेदन करना भी नहीं भूलेंगे कि यदि समस्या का उचित समाधान वास्तविक रूप में अपेक्षित है तो भारतीय पद्धति का प्रचार किया जाय और वैद्यों से सहयोग लेने का सत्प्रयास किया जाय। केवल एलोपैथी के पंडितों के सहारे इसका समाधान कुत्ते की दुम पकड़ कर वैतरणी पार करने के प्रयास के समान है।

—आचार्य श्री परमानन्दन शास्त्री विद्यावाचस्पति,
इण्टर नेशनल आयुर्वेदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट
गोबिन्दिया बिल्डिङ्ग, अमरूदी मछुआ टोली,
पटना-४

☆
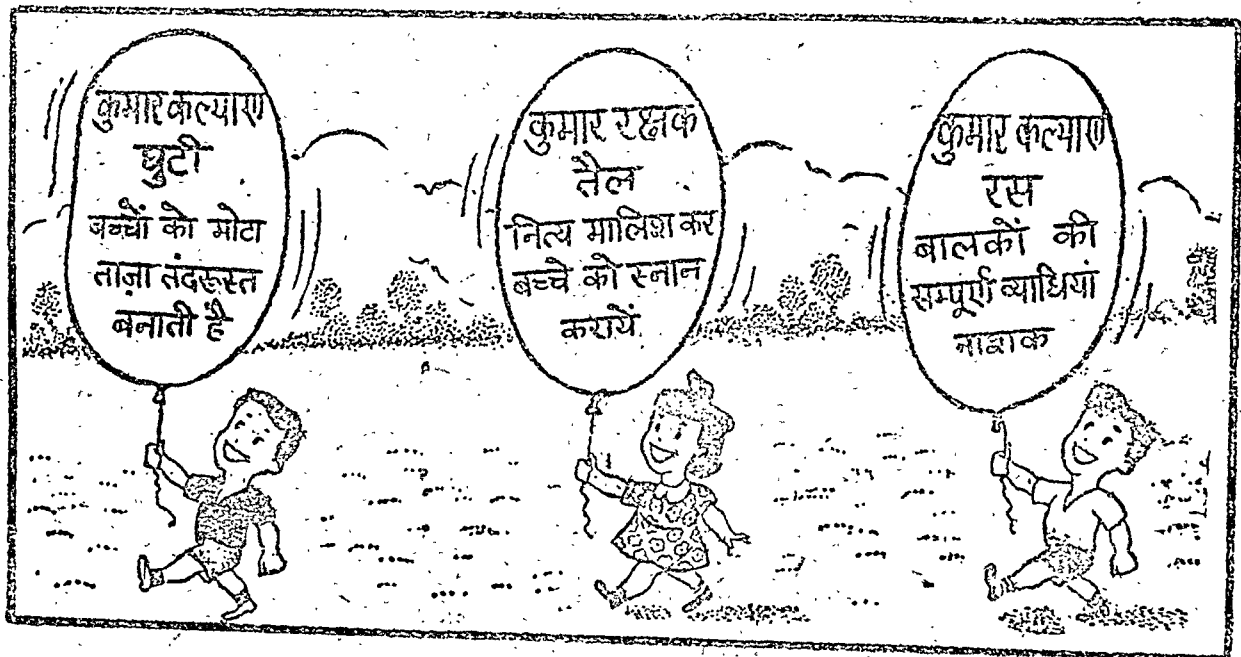
सन्तति-निरोध के विविध उपाय एवं उनकी उपयोगिता

श्री महावीर प्रसाद जोशी आयुर्वेदाचार्य

प्रत्येक विवाहित दम्पति के मन में सन्तान की कामना बराबर पनपती रहती है, यही सृष्टि का नियम है, इसी में प्रकृति की प्रेरणा अन्तर्हित है। यही कारण है कि प्राचीन समय में अधिक सन्तान वालों को भाग्यशाली माना जाता था। उस समय खान पान, आचार विचार एवं आहार विहार सात्त्विक होने से सभी का स्वास्थ्य अच्छा रहता था, सन्तोषपूर्ण जीवन होने के कारण बालकों के पालन पोषण में भी किसी तरह असुविधा नहीं होती थी, आवश्यकताएँ अधिक न होने के कारण आर्थिक समस्या भी नहीं उलझती थी, इसलिए सन्तान वृद्धि के ही आशीर्वाद मांगे जाते थे। किन्तु आज परिस्थिति दूसरी है, न तो माताओं का स्वास्थ्य ही अधिक सन्तानोत्पादन में समर्थ है और न पिताओं में ही पालन-पोषण के अर्थ की व्यवस्था करने की सामर्थ्य है अतः सन्तति नियमन की आवश्यकता है, अन्यथा जनसंख्या इतनी तेजी से बढ़ती जा रही है कि जीवन की समस्या कठिन हो जायगी। इसी कारण से आज संसार के सभी बुद्धिमान व्यक्ति चिन्तित हो उठे हैं कि यदि जनन की प्रगति इसी क्रम से चालू रही तो तीस वर्षों में खाने और रहने के प्रश्न का समाधान असम्भव हो जायगा क्योंकि भारतवर्ष में ही प्रतिवर्ष ५० लाख के करीब व्यक्ति बढ़ते हैं, जब कि यहां जीवन की सफलता के आर्थिक एवं प्राकृतिक साधन बहुत सीमित हैं। आज भी हमारे लोक प्रिय शासक प्रतिदिन के प्रयत्नों से अन्न आदि का उत्पादन बढ़ाकर भी खाद्य स्थिति ठीक से व्यवस्थित नहीं कर पा रहे हैं, जिससे राष्ट्र न केवल सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़ रहा है, प्रत्युत नैतिक दृष्टि से भी बराबर पतन की ओर ही पग बढ़ा रहा है। क्योंकि सीमित वस्तु के उपभोग के लिये जब एक की जगह चार अधिकारी उपस्थित होते हैं तो दरिद्रता, बेकारी और अस्वास्थ्य का ही प्रसार होता है। देश की स्थिति दिनों दिन विकट होती जा रही है। करोड़ों मन अन्न विदेशों से मंगाकर भी हमारे पेट खाली रहते हैं। इस समस्या के समाधान के लिए आज के राजनैतिक एवं वैज्ञानिक एक ही प्रस्ताव कर रहे हैं कि प्रजनन को नियन्त्रित किया जाय। इसके बिना कोई भी उपाय सम्भव नहीं दिखाई देता है।

यद्यपि प्रजनन प्रकृति का प्राण है, सारे संसार की स्थिति प्रजनन पर ही निर्भर है, क्योंकि प्रजनन ही प्रकृति का एक सोत्र उद्देश्य है। जगत के जीव मात्र में नर और मादा का जोर परस्पर आकर्षण है, सम्मोहन है. वह पूर्णतः प्रजनन की ही सफलता के लिये है। विश्व की विभूतियों में माधुर्य एवं लालित्य का जो सृजन है. उसका प्रयोजन एक मात्र प्रजनन ही है। इसलिये प्रत्येक विवाहित स्त्री-पुरुष को प्रजनन में उत्सुकता स्वाभाविक रूप से बनी रहती है। स्त्री का तो जीवन ही सन्तान के बिना अपूर्ण बना रहता है, क्योंकि मातृत्व ही स्त्री जीवन का सार है। आंचल के दूध के बिना नारी जीवन अधूरा है, पंगु है। इसके बिना स्त्री का मानसिक विकास सन्तुलित रूप से नहीं होता है जिससे एक असन्तोष बराबर बना रहता है। गृहस्थ जीवन के सारे सुख प्राप्त होने पर भी चित्त को तृप्ति नहीं मिलती, वासना अपूर्ण रहती है जिसकी पूर्ति के लिये वन्ध्या स्त्रियां कर्त्तव्याकर्त्तव्य बुद्धि को भी छोड़ बैठती हैं, यह सब प्रकृति का ही तो प्रभाव है, प्रबल प्रेरणा है। इसलिये ही संसार के महा कवियों ने उनको धन्य बताया है, जिनकी गोद में शिशु

खिलाने का अवसर प्राप्त होता है, जिनके आंगन बालकों की दौड़ से आन्दोलित हैं, जिनके घर कुमारों की-किलकारियों से मुखर बने रहते हैं। क्योंकि शिशु के बिना जीवन में आसक्ति और उत्साह नहीं रहता है, जिससे उद्देश्यहीन मानव संसार की दौड़ में अग्रसर होने का प्रयत्न नहीं करता, मन पर आलस्य का अंधेरा सा छाया रहता है। किसी तरह उन्नति कामना जागृत ही नहीं होती, इससे सिद्ध होता है कि शिशु संसार का सार है, सर्वोत्तम विभूति हैं।

महाकवि कालिदास ने तो सन्तान मात्र के लिये ही गृहस्थ-जीवन को अपनाना उचित माना है। रघुवंश के वर्णन में उन्होंने स्पष्ट लिखा है-'प्रजायै गृह मेधिनाम्' अर्थात् दिलीप के पूर्वज सन्तान प्राप्ति के लिये ही गृहस्थ बनते थे, वासनाओं की पूर्ति के लिये नहीं। यदि आज भी इस सिद्धान्त को अपनाया जाय तो परिवार नियोजन के इस वितण्डावाद की कुछ भी आवश्यकता नहीं रहती। क्योंकि संयम इस समस्या का सर्वोत्तम और प्राकृतिक समाधान है, बाकी सब तो वैज्ञानिकों के दिमाग की उपज हैं अतएव अप्राकृतिक हैं और मानव मन में किसी न किसी तरह से एक प्रकार का असन्तोष एवं अतृप्ति पैदा करते हैं। किन्तु संसार विलास वासनाओं में फंसा हुआ है, वासना पूर्ति ही विवाह का एक मात्र लक्ष्य माना जाता है, सन्तान होना उनके लक्ष्य पूर्ति में एक तरह से बाधक है, इसलिये ही वह चाहते हैं कि सन्तान का उत्पादन न हो और उनकी विलास साधना अविवाहित सी चलती रहे, क्योंकि सन्तान वृद्धि में उनकी वासनापूर्ति में तो बाधा पड़ती ही है, अपितु बालकों के पालन-पोषण की शक्ति भी तो उनमें नहीं है।

आज का युवक सन्तान के पालन को झंझट एवं भार समझता है। इसी में उसकी कमर टूट जाती है, जीवन की इच्छाएं अतृप्त रह जाती हैं, यौवन अकाल, कवलित हो जाता है जिससे शारीरिक एवं मानसिक रूप से असन्तुष्ट जीवन बिताते हुए जनन-नियन्त्रण की आवश्यकता का अनुभव करता है। इसमें उसकी सहधर्मिणी का भी पूर्ण समर्थन रहता है। यद्यपि मातृत्व स्त्री जीवन का पूरक है, अतः मातृत्व की भूख उनके हृदय में निरन्तर छिपी रहती है; किन्तु लगातार के गर्भाधान और प्रजनन के कारण वह अपने शरीर और मन के स्वास्थ्य को सुरक्षित नहीं रख सकती हैं। अतः खराब स्वास्थ्य के कारण छोटे छोटे शिशुओं का पालन भार बन जाता है और वह स्वयं इस आफत से छुटकारा चाहने लगती है। साथ ही ऐसी युवतियों की भी कमी नहीं है, जो अपने सौन्दर्य एवं कामनापूर्ति की बाधा रूप संतान को प्रारम्भ से ही अनावश्यक समझती हैं, पर यह तो उनका अविवेक है। हां, सन्तान के पालन-पोषण के एवं महिलाओं के स्वास्थ्य की दृष्टि से यह अतीव आवश्यक है कि उनकी संख्या सीमित रहे। दो शिशुओं के जन्म के बीच का अन्तर बढ़ जाय, जिससे शिशु और माता दोनों जब तक स्वस्थ एवं समर्थ न हो जांय तब तक दूसरा शिशु न आवे। यद्यपि पहले शिशु के १॥ वर्ष बाद ही साधारणतया स्त्री में दूसरे गर्भधारण की क्षमता आ जाती है और प्रायः सर्वत्र इस ही अन्तर से बच्चों का जन्म होता रहता है, किन्तु यह अन्तर बहुत ही कम है, इससे शिशु और उसकी मां दोनों का ही स्वास्थ्य खराब बना रहता है। अतः यह अन्तर तीन या चार वर्ष का हो सके ऐसा प्रयत्न किया जाना चाहिये और बालक भी उतने ही उचित हैं, जितनों का पालन पोषण और शिक्षा का प्रबन्ध माता पिता ठीक तरह से कर सकें। अपने समाज एवं देश की स्थिति को देखते हुये तीन चार बच्चों से अधिक की संभाल एक साथ होनी कठिन है। अतः समाज की मांग है कि इससे अधिक होने वाले प्रजनन को रोका जाय और वैज्ञानिक एवं राजनीतिज्ञ विद्वान तो इसके लिये तैयार ही बैठे हैं। क्योंकि उनके मन में एक प्रबल

निर्माषिका है कि नियन्त्रण के बिना इस ही शती के अन्त तक संसार की आबादी दुगुनी हो जायगी। जिससे खाने पीने का तो प्रश्न ही नहीं है, रहने को जमीन भी मिलनी कठिन हो जायगी।

कुछ मास पहले दिल्ली में अन्तर्राष्ट्रीय परिवार नियोजन का छठा सम्मेलन हुआ था। २७ देशों के प्रतिनिधि बनकर अनुपम प्रतिभाशाली, चतुर चिकित्सक, विचक्षण वैज्ञानिक एवं निपुण राजनीतिज्ञ बहुत बड़ी संख्या में एकत्रित हुये थे। उन्होंने एक मत से उद्घोषित किया है कि 'परिवार नियोजन का प्रचार प्रबल रूप से करना आवश्यक है, अन्यथा जीवन का स्तर बराबर गिरता जावेगा।' जब संसार की यह स्थिति है तब भारत का तो कहना ही क्या है। यहां तो इस समय भी खाने पीने एवं रहने की समस्या का समाधान दिखाई नहीं देता, तब जनसंख्या की गति यदि बराबर इसी तरह बढ़ती रही तो क्या होगा, यह भगवान ही जाने।

अतः भारत सरकार भी परिवार नियोजन के लिये सचेष्ट है। स्थान स्थान पर केन्द्र खोले जारहे हैं जहां सुशिक्षिता महिलायें जनता को इसकी आवश्यकता एवं उपाय बताती रहती हैं, किन्तु फिर भी जितनी होनी चाहिए उतनी सफलता नहीं मिल रही है। क्योंकि देश की साधारण जनता अशिक्षित है, वह न तो इसकी आवश्यकता समझती है और न अटपटे उपायों का ही अवलम्बन करती है तथा इस भगवान की देन का विरोध करने में पाप समझती है इसलिए हिचकिचाती है। हां, कुछ शिक्षित समाज अवश्य इसमें प्रगति कर रहा है। किन्तु उनकी संख्या इतनी कम है कि इस प्रचार की सफलता दृष्टिगोचर नहीं होती है।

'धन्वन्तरि' सम्पादक महोदय ने 'नारी-रोगांक' के द्वारा इस विचार का प्रचार करने का यत्न किया है। उनके आग्रह से हम यहां सन्ततिनिरोध के कतिपय उपायों का विवेचन कर रहे हैं। आशा है विज्ञ पाठक इससे लाभ उठावेंगे।

जनन-नियन्त्रण के लिये यों तो बहुत पहले से ही लोग प्रयत्न कर रहे हैं, जिससे बहुत तरह की विधियां प्रचलित होती रहती हैं, किन्तु उनमें से बहुत सी अप्राकृतिक हैं, कुछ हानिकर हैं एवं कुछ असामयिक हो गई हैं। मैं यहां सन्तति-निरोध की केवल उन्हीं विधियों का निर्देश करूंगा जोकि प्रामाणिक रूप से आज व्यवहारिक मानी गई हैं। जैसे—

(१) सुरक्षित काल
(२) स्पंज और तेल
(३) पुरुषों के लिये शीथ
(४) पैसरी
(५) डूशिंग
(६) सहवास कालीन शारीरिक श्रम
(७) शल्यक्रिया

सुरक्षित काल—

प्राचीन एवं अर्वाचीन सभी विद्वान मानते हैं कि स्त्रियों के गर्भाधान के लिये समय करीब करीब निश्चित सा रहता है जिसमें स्त्री की धारणा शक्ति अधिक होजाती है, और शुक्राणु के मिलने पर गर्भाधान की संभावना विशेष रूप से रहती है, अतः इसे गर्भाधान काल कहा जाता है, और इसके अतिरिक्त जो मासिक-धर्मों के समीप का समय अवशिष्ट रहता है, उसमें गर्भाधान की सम्भावना नहीं रहती अतः इसे आजकल 'सुरक्षितकाल' कहा जा सकता है। आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित है कि स्त्री के गर्भाशय का मुख मासिक धर्म से सोलह दिनों तक खुला रहता है, अर्थात् गर्भाशय-प्रणाली में स्त्री बीज तब तक प्रभावशाली रहता है, अतः उस समय शुक्राणु प्राप्ति ही गर्भाधान में सहायक होती है, उसके बाद गर्भाशय का मुख बन्द हो जाता है या स्त्री-बीज शक्तिहीन हो जाता है जिससे यह वास होने पर भी गर्भ स्थिति की आशङ्का नहीं रहती है। इसलिये सतरहवें दिन से सत्ताइसवें दिन तक सुरक्षित काल माना जा सकता है, किन्तु आधुनिक विद्वानों ने इसमें अनुभवपूर्वक अनुसन्धान किया

है कि मासिक-धर्म के अन्तिम ३-४ दिनों में स्त्री की धारक शक्ति फिर उर्वरा हो जाती है, अतः २४ वें दिन के बाद सन्तति-निरोध की इच्छा रखने वालों के लिये सहवास त्याज्य है। इनके दृष्टिकोण में मासिक धर्म के प्रारम्भ से ७-८ दिन तक और सोलहवें दिन से २३ वें दिन तक स्त्री गर्भाधान के अयोग्य रहती है। नौवें दिन के बाद एक सप्ताह और अन्तिम तीन चार दिन ही गर्भाधान के उपयुक्त समय माना जाता है। अतः इससे अतिरिक्त समय 'सुरक्षित-काल' माना गया है। यह काल-निर्णय उन स्त्रियों के लिये बताया गया है, जिनके मासिक धर्म का अन्तर अठ्ठाइस दिन रहते हैं। किन्तु जिनका अन्तर इससे अधिक या कम दिन का होता है, उनके सुरक्षित काल में अन्तर आजाता है। इसके लिये हम एक कुञ्जी बता देते हैं जिससे किसी का भी सुरक्षित काल जाना जा सकता है। जैसे किसी का मासिक धर्म २४ दिन का नियत है तो उसका गर्भ-स्थिति समय ६ वें दिन से १३ वें दिन तक समझना चाहिए। प्रारम्भिक ५ दिन तथा १४ वें दिन से २१ वें दिन तक सुरक्षित काल है। अन्तिम ३ दिनों में भी सम्भावना हो सकती है। यह २४ दिनों के मासिकधर्म का विवरण है। जिसको २५ दिनों का मासिक निश्चित है उसको पिछली व्यवस्था से १ दिन अधिक समझना चाहिए। अर्थात् ७ वें दिन से १४ वें दिन तक गर्भकाल तथा प्रारम्भिक ६ दिन और १५ वें दिन से २२ वें दिन तक सुरक्षितकाल एवं अन्तिम तीन दिन त्याज्य हैं। २६ दिनों के मासिक के लिये ८ वें दिन से १५ वें दिन तक गर्भ काल एवं प्रारम्भिक ७ दिन और १६ वें दिन से २३ वें दिन तक सुरक्षित काल है। इस तरह प्रत्येक दिन के लिए सर्वत्र १-१ दिन बढ़ाते रहना चाहिए। यह विशेष भेद वाली स्त्रियों के लिये बताया गया है पर साधारणतया २७-२८ दिन का ही मासिक नियत होता है। सुरक्षित काल के विषय में प्राचीन और अर्वाचीन विद्वानों में इस तरह मतभेद हैं। किन्तु साधारण स्त्रियों में मासिक धर्म के सोलहवें दिन के बाद का एक सप्ताह दोनों ही मतों से सुरक्षितकाल है। अतः सन्तति-निरोध की इच्छा रखने वालों के लिये यह समय बाधाहीन है किन्तु इस विषय के बहुत से विशेषज्ञ तो सुरक्षित काल के विचार को अनावश्यक एवं महत्वहीन मानते हैं। उनका कहना है कि यह निश्चित उपाय नहीं है क्योंकि इस काल में भी गर्भाधान असम्भव नहीं है। डा. मेरी स्टोप्स जो जनन-नियमन की मानी हुई विदुषी है, एवं जिसने इस विषय में बहुत प्रयोग किये हैं और बहुत कुछ लिखा है—का तो विचार है कि बहुत सी स्त्रियां अनुर्वरा होती ही नहीं है सदा ही उनमें गर्भाधान की सामर्थ्य रहती है अतः सुरक्षाकाल की विधि उपादेय नहीं है। इसमें एक दोष यह भी है कि उत्तेजना के समय त्याग और नियत समय पर बिना इच्छा के भी सहवास करना स्वाभाविक नहीं है, किन्तु पूर्ण पर पक्ष का विचार करने के बाद अन्य यांत्रिक विधियों की अपेक्षा यह कम उपादेय नहीं मालूम देती है। क्योंकि इस विधि में किसी तरह की कृत्रिमता का आश्रय नहीं लेना पड़ता है। अतः सन्तोषजनक होती है। हां मन को अवश्य संयत रखना पड़ता है। यद्यपि यह प्रणाली पूर्ण रूप से सफल नहीं है किन्तु पर्याप्त लाभ देने वाली है। अपवाद रूप में गर्भाधान होजाता है, अतः जहां सन्तति-निरोध अत्यन्त आवश्यक नहीं हो, वहां इससे बहुत कुछ सफलता मिल सकती है। साथ ही यह भी बात है कि इस प्रणाली को गरीब अमीर छोटे बड़े सभी काम में ला सकते हैं। साधारण जानकारी के बाद किसी को भी इसे अपनाने में कठिनता नहीं होती है। सर्व-साधारण की इस उपयोगिता के कारण गर्भ-निरोध का यह प्रकार विशेष प्रचार के योग्य है।

स्पंज और तेल—

स्पंज का प्रयोग सन्तति-निरोध के लिये अच्छा उपाय माना गया है। इस काम के लिये बढ़िया स्पंज लेना चाहिये। साधारणतया जो स्पंज मिलते हैं वह छोटे और अनुपयोगी होते हैं, अतः विशेष रूप से निर्मित 'रेशल' स्पंज का ही प्रयोग करना

[illegible] है। यह बहुत अच्छा मोटा और बड़ा बना हुआ होता है। यदि यह सुलभ न हो तो बढ़िया रबड़ से बने हुए स्पंज का टुकड़ा अंगूठे जितना मोटा लेना चाहिये। प्राकृतिक समुद्री स्पंज साफ न हो सकने के कारण अव्यवहार्य है। यद्यपि रबड़ का स्पंज भी कठिनता से साफ होता है पर नमक के गर्म पानी में डालने से इसकी शुद्धि हो जाती है। अतः रबड़ का बढ़िया स्पंज ही उपादेय है। स्पंज के
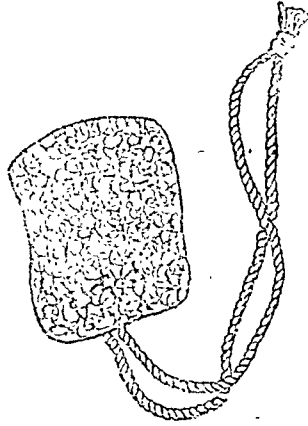
११—स्पंज

साथ कुनैन, फिटकड़ी, सिरका आदि रासायनिक द्रव्यों का उपयोग किया जाता है। किन्तु इसके साथ तेल का प्रयोग आजकल अधिक उत्तम माना जाता है। सुलभ होने पर जैतून का तेल विशेष अच्छा है, अन्यथा तिल का तेल भी पूरा लाभ देता है, जो कि छोटी-बड़ी सभी जगह सुगमता से प्राप्य है।

स्पंज और तेल का प्रयोग यान्त्रिक विधियों में सबसे सरल और हानि रहित है। अन्य विधियों का ज्ञान सर्व साधारण के लिये सुलभ नहीं है और इस विधि को कोई भी स्त्री बिना प्रयास के सीख सकती है। अतः भारत जैसे गरीब देश में अन्य कीमती यांत्रिक विधियों के स्थान पर इसका उपयोग अधिक लाभदायक है।

प्रयोग में लाने से पहले नमक के गर्म पानी में शुद्ध करने के बाद तेल में डाल दें। थोड़ी देर बाद इतना निचोड़ दें कि तेल का टपकना बन्द होजाय। बाद में सहवास के समय या कुछ देर पहले स्त्री पंजों के बल बैठ कर स्पंज को जननेन्द्रिय मार्ग में चढ़ालें। धीरे धीरे यह इस तरह लगा लेना चाहिए कि यह गर्भाशय के मुख को ठीक तरह से ढक ले। और वहां चिपक जाय। इससे स्त्री को किसी तरह की असुविधा नहीं होती है, सहवास में भी अप्राकृतिकता नहीं मालूम देती है। सहवास के बाद इसका तत्काल निकालना आवश्यक नहीं है, प्रातःकाल स्नान के समय निकाल कर नमक के गर्मजल में साफ कर लेना चाहिए। 'रेशल' स्पंज के तो एक फीता बंधा होता है, जिसे खींचने से वह अनायास निकल आता है, किन्तु अन्य स्पंज को निकालने में भी किसी तरह की असुविधा नहीं होती है।

यद्यपि स्पंज का प्रयोग शहर के साधारण गृहस्थों में भी निर्दोष रूप से किया जा सकता है, किन्तु गांवों में रहने वाली बहुत बड़ी आबादी के लिये इसका प्रयोग भी अशक्य है, क्योंकि उनको न तो यह सुलभ ही है और न जानकारी ही मिलनी सहज है। अतः उनके लिये तेल के साथ रूई का प्रयोग हितकारी होगा। रूई का गोला सा बना तेल में भिगोकर स्पंज की तरह ही गर्भाशय के मुख पर लगा लेना चाहिए। इससे भी वही सफलता मिलती है जो स्पंज और तेल से मिलती है। तेल और रूई प्रत्येक घर में सरलता से प्राप्त हो सकती है और लगाने में भी किसी तरह की कठिनता नहीं। साथ ही शुद्धि सफाई का भी झंझट नहीं है। सहवास से पहले
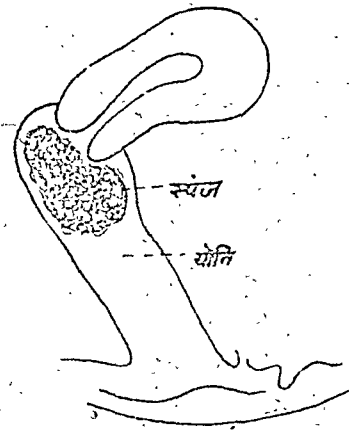
२—स्पंज गर्भाशय मुख पर स्थित है

लगा लेना चाहिये और प्रातः स्नान के समय निकाल कर फैंक देना चाहिये। स्पंज और तेल या रूई और तेल गर्भरोधक सरल विधियों में सर्वोत्तम है। यदि सुरक्षित काल के साथ इसका प्रयोग किया जाय तो पूर्ण सफलता मिल सकती है, किसी तरह की अतृप्ति या असन्तोष का मन पर कोई प्रभाव नहीं होगा और एक बहुत बड़ी समस्या का समाधान भी हो जायगा।

शीथ (पुरुषों के लिये) —

गर्भ-निरोध के लिये जितनी यांत्रिक विधियां प्रचलित हैं वह सब केवल स्त्रियों के ही व्यवहार की होती हैं। एक मात्र 'शीथ' का ही प्रयोग है जो पुरुष के लिये व्यवहार्य है। इसे 'फ्रेन्च लेदर' या 'फ्रेन्च लेटर' भी कहते हैं। यह बढ़िया पतले रबड़ की बनी हुई थैली सी होती है। इसका प्रयोग बहुत पहले से हो रहा है। किन्तु पहले रबड़ अच्छा न होने के कारण जल्दी फट जाता था, अतः इसका प्रयोग मँहगा बहुत पड़ता था। किन्तु अब 'लेटैक्स' नाम से बहुत बढ़िया शीथ मिलती है जिसको प्रयोग में लेने के बाद धोकर पाउडर लगा कर छोड़ देने से पर्याप्त समय तक काम में लिया जा सकता है।

इसकी प्रयोग विधि बहुत सरल है। इस थैली को सहवास से पहले पुरुष जननेन्द्रिय पर खोली की तरह चढ़ा लिया जाता है जिससे स्खलित शुक्र इस थैली में रह जाता है। अतः शुक्राणु का स्त्री बीज के साथ सम्पर्क ही नहीं हो पाता है अतः गर्भधारण की कोई सम्भावना नहीं रहती है। इस विधि का इस समय पर्याप्त प्रचार हो रहा है, क्योंकि यह प्रयोग में सरल है और ठीक से काम में लेने पर सफलता भी बराबर देती है। साधारणतया सहवास क्रिया में भी किसी तरह की बाधा नहीं मालूम देती। किन्तु बहुत दिनों तक लगातार काम में लेने से कुछ अस्वाभाविकता एवं असन्तोष का अनुभव होता है।

इसका एक छोटा रूप 'अमेरिकन टिप' नाम से और भी मिलता है, परन्तु उसकी सफलता विश्वसनीय नहीं है। क्योंकि वह पुरुष जननेन्द्रिय के अग्रभाग मात्र को आवृत्त करता है अतः सहवास के समय उसके निकलने का भय बना रहता है। इस कारण से उसका प्रयोग उपयोगी नहीं माना जाता है।

मेल शीथ की तरह फीमेल शीथ भी बाजार में मिलती है, जो स्त्रियों के गर्भाशय मुख के अतिरिक्त जननेन्द्रिय मार्ग के कुछ भाग को भी आवृत कर लेती है अतः गर्भ निरोध के लिये पुरुष शीथ से अधिक विश्वसनीय है। किन्तु अस्वाभाविकता विशेष मात्रा में होने के कारण इसका प्रचार नहीं है।

३—विभिन्न प्रकार के शीथ
(खुला शीथ, अमेरिकन टिप तथा मुड़ा हुआ शीथ)

चेक पैसरी (Check Passary) —

यान्त्रिक विधियों में चेक पैसरी को बहुत से विशेषज्ञों ने सर्वोत्तम विधि माना है। यह बढ़िया रबड़ की बनी हुई एक टोपी सी आती है, जो गर्भाशय की ग्रीवा पर फिट करदी जाती है, जिससे किसी तरह भी गर्भाधान की शङ्का नहीं रहती और न आनन्दानुभव में ही कुछ बाधा पड़ती है। स्त्री को अस्वाभाविकता का एवं किसी चीज के लगी होने का कुछ भी अनुभव नहीं होता। एक बार लगा लेने के बाद दो-तीन दिन तक इसे निकालने की आवश्यकता नहीं होती है। दो तीन दिनों के बाद स्नान के समय निकाल कर सफाई करने के बाद फिर लगाई जा सकती है।
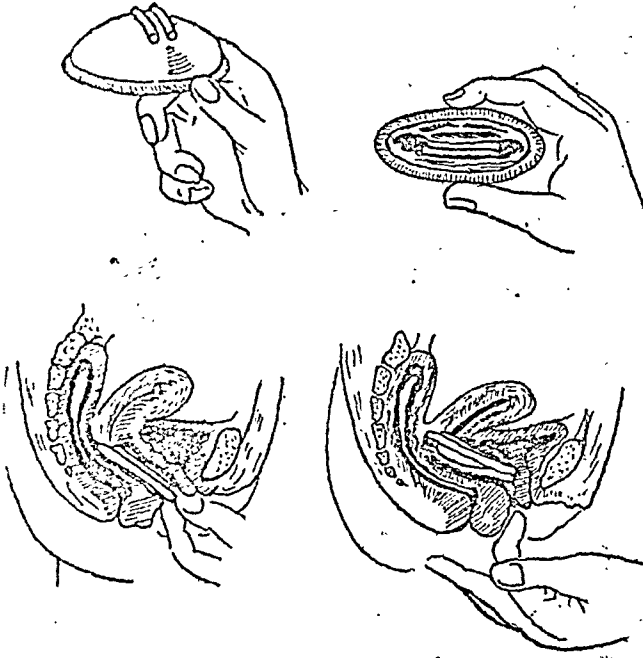
४—पैसरी लगाने की विधि (चार अवस्थायें)—

प्रथम—शुक्राणुनाशक पेस्ट को पैसरी पर लगा देते हैं।

द्वितीय—चित्र में दिखाये अनुसार पैसरी को मोडते हैं।

तृतीय—पैसरी की प्रवेश विधि

चतुर्थ—पैसरी अपनी सही स्थिति में आ चुकी है।

इसके लगाने की विधि कुछ कठिन अवश्य है, किन्तु चतुर स्त्रियां साधारण जानकारी के बाद एडी के बल बैठकर अपनी दो अंगुलियों से गर्भाशय ग्रीवा पर ठीक से चढ़ा सकती हैं। किन्तु सर्वसाधारण को कुछ दिन किसी चतुर नर्स से लगवाकर सीख लेना चाहिये। निकालने की विधि भी जान लेने की आवश्यकता रहती है। यह चेक पैसरी छोटी बड़ी चार प्रकार की आती हैं अतः किसी लेडी डाक्टर या होशियार नर्स को दिखाकर अपने योग्य नम्बर निश्चित कर लेना चाहिए ताकि फिट होने में किसी तरह की बाधा न रहे। इसका प्रयोग ठीक से सीख लेने के बाद अधिक से अधिक समय तक काम में लेने पर भी स्त्री-पुरुषों को किसी भी तरह की त्रुटि नहीं मालूम देती है और गर्भ निरोध निश्चित रूप से हो जाता है। आर्थिक दृष्टिकोण से भी यह विशेष उपयोगी है। क्योंकि एक पैसरी ६-१० महिनों तक भी खराब नहीं हो सकती है। हां, किसी किसी को परिस्थितिवश दो-तीन महीनों में ही खराब हो जाती है। पर साधारणतया यह पर्याप्त समय तक काम देने वाली होती है। सहवास के तुरन्त बाद ही मेल शीथ की तरह धोने का झंझट भी इसमें नहीं है। अतः यह पूर्ण सफल एवं स्वाभाविक विधि मानी गयी है। रबड़ के अतिरिक्त सोना, चांदी आदि धातुओं से निर्मित पैसरी भी मिलती हैं। स्पंज युक्त भी एक पैसरी मिलती है तथा अन्य भी रिंग आदि कई तरह की यांत्रिक वस्तु उपलब्ध होती हैं, पर उनको आज के वैज्ञानिकों एवं विशेषज्ञों ने हानिकारिक घोषित कर दिया है अतः उनका वर्णन यहां अभीष्ट नहीं है।
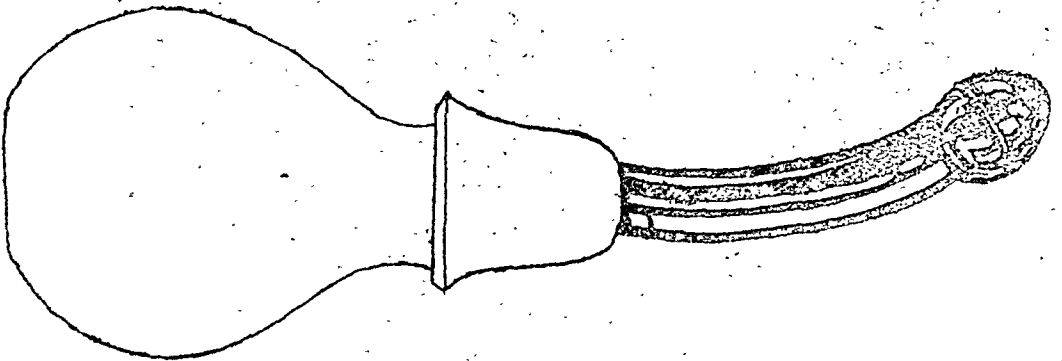
५—योनि प्रक्षालन यंत्र (whirling spray Douche)

डूशिङ्ग—

सहवास क्रिया के बाद उत्तर बस्ति यन्त्र के द्वारा जननेन्द्रिय पथ के पानी से शुद्ध करने को डूशिंग कहते हैं। बहुत से विशेषज्ञ गर्भनिरोध के लिये इसकी बहुत प्रशंसा करते हैं। कई तो यहां तक कहते हैं कि अन्य यान्त्रिक विधियों के साथ भी इसका प्रयोग होना चाहिए जिससे सफलता निश्चित रूप से मिलती रहे। डूश करने के लिये पानी में फिटकड़ी, नमक, कुनैन आदि कई रासायनिक द्रव्य मिलाये जा सकते हैं, जो शुक्राणु को नष्ट करने में समर्थ हों। इससे लाभ तो अवश्य मिलता है किन्तु सहवास के बाद डूश करना बहुत असुविधाजनक एवं अस्वाभाविक मालूम देता है तथा साधारण परिवारों में डूश करने का स्थान मिलना भी कठिन रहता है। इसकी सम्मति देने वाले विशेषज्ञ तो योरुप के सम्बद्ध देशों के रहने
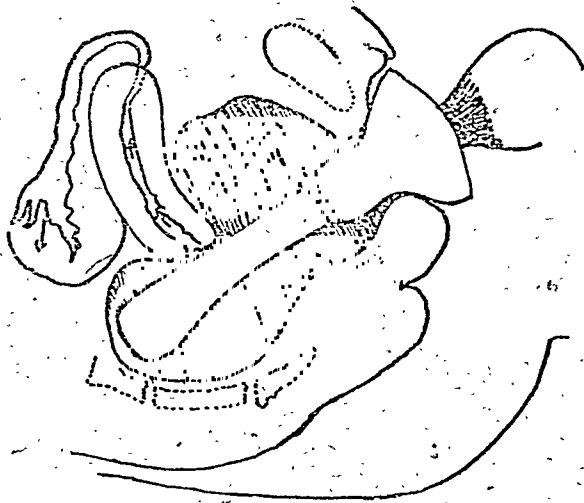
६—योनि प्रक्षालान यंत्र (चित्र ५ में दिखाया गया) की योनि में स्थिति

वाले हैं, जहां शयनागार के साथ ही स्नानगृह सम्बद्ध रहता है. किन्तु भारत में सीमित परिवारों के अतिरिक्त यह सुविधा असम्भव है। इसलिये यह विधि सर्व साधारण के उपयोग की नहीं है। जिनके पास डूश लगाने की सुविधा है उनको भी हम निरन्तर प्रयोग करने की सम्मति नहीं दे सकते, क्योंकि इसके लगातार प्रयोग से जनन पथ को भी हानि पहुंचने की आशङ्का रहती है। डूश लगाने के कई तरह के यन्त्र बाजार में सरलता से मिल जाते हैं।

शारीरिक श्रम—

सहवास के बाद में स्त्री के द्वारा किया गया शारीरिक श्रम भी गर्भनिरोध विधियों में माना गया है। इसके लिए उछलना, कूदना, उठ बैठ करना, ऊखल मूसल से धान कूटना, छींक लेना, पेट को सिकोड़ना, फैलाना और तेज चलना या भागना, मलमूत्र का त्याग करना, इत्यादि शारीरिक श्रम करने से जनन मार्ग में एकत्रित शुक्र बाहर निकल जाता है अतः निरोध की सम्भावना है, किन्तु सहवास के तुरन्त बाद यह सब करना न तो सम्भव ही है और न स्वाभाविक ही और बराबर इसका प्रयोग करना तो बहुत ही कठिन है। अतः डूशिंग की तरह यह विधि भी व्यवहार्य नहीं है। यदि किसी को इसके प्रयोग में असुविधा न मालूम दे तो लाभदायक अवश्य है।

शस्त्र क्रिया —

सन्ततिनिरोध के हानिरहित एवं निश्चित सफलता देने वाले कुछ उपाय हम ऊपर बता चुके हैं, किन्तु निरन्तर प्रयोग करने वाले अधिक दिन होने पर उनसे ऊब जाते हैं और झंझट सा अनुभव करने लगते हैं। अतः विशेषज्ञों ने एक शस्त्र क्रिया का आविष्कार किया है जिससे सांप भी मर जाता है और लाठी भी नहीं टूटती है। अर्थात् किसी तरह की आशङ्का नहीं रहती है और सहवास क्रिया में बाधा भी नहीं आती है। शस्त्र क्रिया पुरुषों और स्त्रियों दोनों के हो सकती है। पुरुषों की शस्त्र क्रिया तो बहुत ही साधारण है, इसमें न तो किसी बड़े आयोजन की आवश्यकता है और न आराम की ही। आपरेशन कराकर भी आफिस कार्य करने में कुछ भी असुविधा नहीं होती है। पुरुषों के वृषण देश में दोनों तरफ

शुक्राणुवाहिनी पतली सी नली होती है। थोड़ी चमड़ी हटाकर उस नली का आधा इन्च टुकड़ा काटकर टांके दे दिये जाते हैं। मामूली ड्रेसिंग के बाद बीमार को घर भेज दिया जाता है। विशेष शारीरिक श्रम के अतिरिक्त कहीं उसके जाने में रुकावट नहीं की जाती। एक सप्ताह के बाद टांके काट दिये जाते हैं। आपरेशन की सारी क्रिया में आधे घण्टे से अधिक समय नहीं लगता है और न किसी तरह का कष्ट ही होता है, इस तरह यह आपरेशन बड़ी सरलता से हो सकता है और गृहस्थ जीवन में भी कोई त्रुटि नहीं मालूम होती है, प्रत्युत शुक्राणुओं के न निकलने से क्षीणता कम होती है। दुबले पतले आदमी तो इस आपरेशन के बाद कुछ मोटे भी हो जाते हैं। बहुत से लोगों की इसके प्रति यह शङ्का कि इससे पुरुषत्व में कमी आ जाती है सर्वथा निर्मूल है। सहवास क्रिया में कुछ भी कमी नहीं आती है, शुक्राणुरहित पतले द्रव का स्खलन भी होता है अतः सर्वथा त्रुटिहीन है।

इस आपरेशन के बाद भी ५-६ मास तक शुक्राणु जीवित मिल सकते हैं अतः ६ मास साव-धान रहने की आवश्यकता है। इससे पुरुष सन्ता-नोत्पादन में सर्वथा असमर्थ हो जाता है, अतः शस्त्र क्रिया में पहले सारी बातें खूब सोच समझ लेनी चाहिये। सहधर्मिणी से भी सम्मति ले लेनी चाहिये। बहुत से डाक्टर तो सहधर्मिणी की लिखित स्वीकृति के बिना यह शस्त्र क्रिया करते ही नहीं हैं। क्योंकि यदि दैवयोग से पहले की सन्तान नष्ट हो जाय तो जीवन भर पछताना पड़ता है। क्योंकि फिर कोई भी उपाय सम्भव नहीं है। हां, पांच-छः बच्चों के माता-पिता को तो अव श्य ही यह शस्त्रकर्म करा लेना चाहिये। एक बाधा इसमें और भी है कि कभी कभी हजार में एक आधी जगह दैव योग से काटी हुई नली अपने आप जुड़ जाती है और गर्भ स्थिति सम्भव हो जाती है जिससे निरपराध पत्नी पर अकारण ही शङ्का हो सकती है। पर यह बहुत कम देखा जाता है।

इस तरह की शस्त्र क्रिया स्त्रियों के भी हो सकती है। उसके भी स्त्रीबीजवाहिनी प्रणाली काटी जा सकती है, पर यह क्रिया पेट खोल कर ही की जा सकती है, इसलिये अपेक्षाकृत अधिक कठिन एवं व्ययसाध्य है। हां, प्रसव के दो सप्ताह बाद बिना पेट खोले भी यह की जा सकती है, पर उस अवस्था में शस्त्रक्रिया के साधन मिलने कठिन हो जाते हैं। इस तरह कष्ट साध्य होने पर भी लोग स्त्रियों के ही शस्त्र क्रिया कराने को तैयार रहते हैं। इसका कारण है हमारे समाज में स्त्री की स्थिति। दैव योग से यदि स्त्री की मृत्यु हो जाय तो पुरुष दूसरे विवाह में सफल हो सकता है। किन्तु पुरुष की शस्त्र क्रिया होने पर इस तरह की सम्भावना नहीं रहती। इसलिये कठिन होने पर भी स्त्रियों के आपरेशन का प्रचलन अधिक हो रहा है। सन्तति निरोध की सफल और निरापद विधियां यहां बताई गई हैं। इनके अतिरिक्त भी विधियां हैं जैसे—

अपूर्ण सहवास,
विशेष आसन,
बहिर्योनि सहवास,
विलम्बीय सहवास,
धारक सहवास,
सहवास में स्त्री की तटस्थता।

इत्यादि विविध विधियां बहुत समय से अप-नाई जाती हैं, पर ये न तो निश्चित रूप से फल दायिनी हैं और न स्वाभाविक ही इनसे स्वास्थ्य पर धीरे-धीरे बुरा प्रभाव भी पड़ता है। अतः हेय होने के कारण इन पर यहां विचार नहीं किया गया है।

—श्री पं० महावीरप्रसादजोशी आयुर्वेदाचार्य,
श्री मोहता दातव्य औषधालय,
सादुलपुर।

आपरेशन द्वारा संतति निरोध

लैफिटनेंट कर्नल बा० एल० रना

जब तक ऐसी गोली नहीं निकल आती, जिसके खा लेने से सन्तति निरोध में शत-प्रतिशत सफलता मिले, तब तक इसके लिए आपरेशन ही सबसे सफल उपाय रहेगा। पिछले तीन साल के आंकड़ों से पता चलता है कि लोगों में संतति निरोध के लिए आपरेशन कराने की प्रवृत्ति बराबर बढ़ी है।

गर्भाधान से बचने के लिये पति और पत्नी में से जो भी चाहे आपरेशन करा सकता है। संतति निरोध के लिये स्त्री या पुरुष का आपरेशन कोई नई चीज नहीं। स्त्री का इस तरह का पहला आपरेशन १८६१ में फ्रांस के एक डाक्टर क्रिमेल ने किया था और पुरुष का १८६७ में स्वीडन के डा० एच० लेनान्डर ने। इस आपरेशन से संतान उत्पन्न करने की अयोग्यता के सिवाय और कोई हानि नहीं होती। न कोई नस-नाड़ी काटी जाती है और न ताकत में कोई कमी होती है। हारमोनों पर भी आपरेशन का कुछ असर नहीं पड़ता।

कुछ लोगों में आपरेशन के बाद जो मानसिक असंतुलन पाया गया है, वह आपरेशन के कारण नहीं बल्कि आपरेशन के व्यर्थ भय या हीनता के कारण हो सकता है। पति और पत्नी दोनों को आपरेशन की कोई जरूरत नहीं। एक का आपरेशन करा लेना ही पर्याप्त है। इस आपरेशन के कारण व्यभिचार की वृद्धि होने का कोई प्रमाण नहीं है। आपरेशन के बाद कामवासना के बढ़ने का कारण यह हो सकता है कि इसके बाद स्त्री या पुरुष के मन से गर्भ रहने का भय जाता रहता है और निर्भीकता से कामेच्छा बढ़ सकती है।

अभी तक स्त्री और पुरुष दोनों के ये आपरेशन ऐसे हैं, जिनका फिर निराकरण नहीं हो सकता, यानी फिर संतानोत्पति के योग्य बनना सम्भव नहीं है। किन्तु इनके निराकरण के लिए फिर आपरेशन करने सम्बन्धी अनुसंधान किए जा रहे हैं। लेकिन सफलता बहुत कम मामलों में मिली है। भारत और विदेशों में पुरुषों के आपरेशन के निराकरण के बारे में खोज चल रही है।

दोनों आपरेशनों में पुरुषों का आपरेशन आसान है। आदमी को एक दिन भी बिस्तर पर लेटने की जरूरत नहीं होती। बस आपरेशन के कुछ देर बाद तक भार उठाने और मोटर या साइकिल चलाने की मनाही होती है। दो एक दिन आराम करके फिर अपना सब काम धंधा भली प्रकार कर सकता है।

स्त्रियों का आपरेशन चूंकि पेडू में होता है, इसलिये कुछ बड़ा है। इसमें भी अधिक दिनों तक अस्पताल में रहने की जरूरत नहीं होती। बिजली से औरत का आपरेशन करने की सरल विधि को भी आजमाया गया है।

केन्द्रीय परिवार आयोजन मंडल ने आपरेशन को परिवार आयोजन कार्यक्रम में स्थान देने की सिफारिश की है। लेकिन उसका यह भी कहना है कि यह आपरेशन सारी बातों को देखकर और पति-पत्नी की इच्छा से योग्य डाक्टर के हाथों ऐसे अस्पतालों में ही होना चाहिए जहां इसकी पूरी सुविधायें हों। केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद, चिकित्सा परिषद और भारतीय मेडीकल एसोसिएशन ने भी आपरेशन का समर्थन किया है।

केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय ने नई दिल्ली के सफदरजंग अस्पताल में संततिनिरोध आपरेशन करने वाले डाक्टरों आदि की संख्या बढ़ाई है। स्वराष्ट्र मंत्रालय ने आपरेशन कराने वाले सरकारी कर्मचारियों को ६ दिन तक की विशेष छुट्टी देने का नियम कर दिया है। बहुत से राज्यों में भी आपरेशन कराने के लिये सुविधायें

दी जा रही हैं। लेकिन इन सबका मतलब यह नहीं कि सरकार अंधाधुंध इस आपरेशन कराने के पक्ष में है। यह आपरेशन टीके की तरह नहीं कि जब चाहा लगवा लिया।

सावधानी —

आपरेशन कराने से पहले बहुत-सी बातों पर विचार कर लेना बहुत आवश्यक है। आपरेशन कराने से पहले पति और पत्नी को इसके बारे में पूरी तरह सोचने का अवसर मिलना चाहिए। दोनों को पता होना चाहिए कि आपरेशन करा लेने के बाद फिर कुछ नहीं होसकता। आपरेशन की सलाह देने से पहले पति और पत्नी की मानसिक अवस्था और स्वास्थ्य तथा बच्चों के स्वास्थ्य और परिवार की आय आदि सभी बातों को ध्यान में रखना जरूरी है। जिस दम्पति का आपरेशन किया जाए उनके कम से कम तीन बच्चे जीवित होने चाहिए। पति की अवस्था ३५ और पत्नी की ३० से कम नहीं होनी चाहिए। अधिक बच्चे हों या बीमारी आदि के कारण इससे कम अवस्था के मां-बापों को भी आपरेशन कराने की सलाह दी जा सकती है। इसके लिये किसी तरह की जोर-जबरस्ती नहीं होनी चाहिए। आपरेशन पति और पत्नी दोनों की इच्छा से होना चाहिए।

अन्य देशों में —

कुछ देशों में आपरेशन कराने का कानून नहीं है। कनाडा के अलबर्टा राज्य में (१६२८) और ब्रिटिश कोलम्बिया में (१६३३) पागलखानों में भर्ती पागलों का आपरेशन कर देने का कानून है। स्विटजरलैंड (१६२८), डेनमार्क (१६२६), नार्वे (१६३४), स्वीडन (१६३५) और फिनलैंड (१६३५) में संततिनिरोध के आपरेशन करने के कानून हैं। अमरीका के भी २७ राज्यों में इसी तरह के कानून हैं। कहीं-कहीं पर पागलों का आपरेशन करना जरूरी कर दिया गया है। वैसे किसी भी सामाजिक कार्य के लिये कानून की शरण लेना अच्छा नहीं। जनता प्रायः इसका विरोध करती है। पागलों, कोढ़ियों या वंशानुगत किसी भयानक रोग के रोगियों का आपरेशन भी अनिवार्य नहीं होना चाहिए। अनिवार्य कानून बन जाने से लोग इस तरह के रोगों को छिपाएंगे और जो रोगी अब सामने आ जाते हैं, वे समाज के अन्दर ही छिपकर रहेंगे, जिसके कहीं अधिक बुरे परिणाम होंगे।

वंशानुगत या खानदानी बीमारियों की समस्या तो बड़ी पेचीदा है क्योंकि अभी तक वंशानुगति के बारे में बहुत कम ज्ञान है और इसके सिद्धान्त अभी स्थिर नहीं हो सके हैं। जीवशास्त्रीय दृष्टि से गुण-दोष तीन प्रकार के होते हैं : केवल वंशानुगत, वंशानुगत और बाहरी प्रभावों से प्रभावित होने वाले तथा केवल बाहरी वातावरण से बनने बिगड़ने वाले।

वातावरण बहुत से खानदानी दोषों को दबा सकता है और गुणों को विकसित कर सकता है। परिवार में कई वंशानुगत बुराइयों को संतति निरोध के द्वारा आगे बढ़ने से रोका जा सकता है और इससे पारिवारिक सुख भी प्राप्त हो सकता है। यदि किसी स्त्री या पुरुष में कोई गम्भीर खानदानी दोष हो तो उसकी वृद्धि को रोकने के लिए आपरेशन अच्छा उपाय है। यह ठीक है कि किसी भी समाज के लाखों करोड़ों नर-नारियों में दोनों का सर्वथा उन्मूलन सम्भव नहीं, फिर भी इन्हें कुछ तो कम किया ही जा सकता है। आपरेशन कराना मनुष्य की स्वेच्छा पर छोड़ देना चाहिए और साथ ही इसके द्वारा जनसंख्या और वंशानुगत बुराइयों पर कुछ न कुछ अंकुश रखना ही चाहिए।

दैनिक "हिन्दुस्तान"
(२२।१२।५६) से

संततिनिरोध पर परीक्षित प्रयोग

सन्ततिनिरोधक तैल—

तिल तैल ६ तोला, वायविडङ्ग, सैंधानमक, सौभाग्य भस्म, निर्मली बीज, —प्रत्येक६-६ माशा

निर्माण विधि—पहले तिल तैल को किसी बर्तन में डालकर अग्नि पर पकावें, फिर शेष औषधि डाल अग्नि पर पकावें। फिर छानकर शीशी में रखें। गुण—सम्भोग से पूर्व इस तैल को प्रयोग में लावें, याने योनि या लिङ्ग पर लगावें, फिर किसी किस्म की कोई गर्भधारण की शक्ति नहीं रहती है। यह प्रयोग परीक्षित है। जनता के लाभ के लिए भेजा जा रहा है।

—श्री वैद्य सोहनलाल शर्मा वत्स आयुर्वेदाचार्य
गवर्नमेंट आयुर्वेदिक डिस्पें० कोठा गुरू
(वठिंडा)

ऋतु नाश करने वाला योग—

(१) टेसू का फूल १ तोला महीन पीसकर गाय के मट्ठे से ४ दिन पीने से स्त्री गर्भवती नहीं होती।

—श्री चन्द्रशेखर शर्मा वैद्य
प्रधान मन्त्री–जिला वैद्य सभा, बरेली।

गर्भ निरोधक योग —

(१) हाथी की लीद :१ तोला, काला सुरमा १ तोला, पारा ६ माशा।

तीनों को खरल करके मासिक धर्म के दिनों में ३ दिनों तक १-२ माशे की पोटली बांधकर योनि में रक्खें और १-२ माशा की पुड़िया २ दिन तक पानी से फांकें स्त्री को गर्भ नहीं रहेगा। स्त्री बन्ध्या हो जायगी।

(२) ससैंधवं सर्षप तैल मिश्रं
निधाय रण्डा निज योनि मध्ये।
नरेण सार्धं रति मातनोति
ना सा न गर्भं लभते कदाचित्॥

सैंधव नमक को सरसों के तैल में मिला पोटली बनाकर योनि में रखकर स्त्री पुरुष भोग करें तो गर्भ नहीं रहेगा। परन्तु यह उपचार प्रति भोग के समय करने योग्य है।

(३) चमेली की जड़ और गुल चोनियां का जीरा बराबर पीसकर छाया में सुखालें और स्त्री ऋतु के आरम्भ से तीन दिन तक ३-३ माशा खाकर ऊपर से ठण्डा पानी पीले तो कभी भी गर्भवती नहीं होगी।

—श्री डा० बलवीरदत्त शास्त्री B. I. M. S.
प्रहलादपुर पो० गोवर्धनपुर (मुजफ्फरनगर)

गर्भस्थ शिशु

बालक, बालिका जानने की पहिचान का नया अन्वेषण

वैद्यराज श्री पं० सुन्दरलाल जैन

प्राचीन आयुर्वेद शास्त्रों में गर्भस्थ बालक, बालिका के जानने का विधान निम्न प्रकार से वर्णन किया गया है—

तत्र यस्या दक्षिणे स्तने प्राक् पयोदर्शनं भवति दक्षिणाक्षि महत्वं च, पूर्वं च दक्षिणं सक्थ्युत्कर्षात बाहुल्याच्च पुन्नामेषयेषु द्रव्येषु दौहृदमभिध्यायति स्वप्नेषु चोपलभते पद्मोत्पल कुमुदाम्रातकादीनि पुन्नामन्येव प्रसन्नमुखवर्णा च भवति तां ब्रूयात् पुत्रमियं जनयिष्यतीति तद्विपर्यये कन्यां यस्याः पार्श्वद्वयमुन्नतं पुरस्तान्निर्गतमुदरं प्रागभिहित लक्षणं च तस्या नपुंसकमिति विद्यात्। यस्या मध्ये निम्नं द्रोणीभूतमुदरं सा युग्मं प्रसूयत् इति। —सु० शा० ३-४४

जिस स्त्री के दक्षिण स्तन में प्रथम दूध दिखाई देवे, दक्षिण आंख में भारीपन होवे, चलते समय जो पहले दाहिना पैर उठाकर चलती होवे, जिसका दौहृद (इच्छा) अधिक तरह पुल्लिंगी द्रव्य होवे, स्वप्न में पद्म (कमल) आम आदि पुंनामक द्रव्यों को देखती है, जिसके मुख का वर्ण प्रसन्न होवे, वह पुत्र को जन्म (उत्पन्न) करेगी।

इसके विपरीत लक्षण वाली स्त्री कन्या उत्पन्न करेगी। जिसके दोनों पार्श्वभाग ऊंचे होवें, पेट का अग्रभाग सपाट हो और पूर्वोक्त लक्षण होवें, उसका गर्भ नपुंसक समझना चाहिए। जिसका उदर बीच में दबा हुआ द्रोणी के आकार का प्रतीत होवे, वह युग्म (दो) बच्चों को उत्पन्न करेगी ऐसा जानना चाहिये।

इस सूत्र में गर्भ लिंग सूचक जो लक्षण वर्णन किये गये हैं, उनका गर्भलिङ्ग के साथ कार्य कारण भाव की दृष्टि से (Physiologically) कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिये ये लक्षण प्रत्येक गर्भवती स्त्री में नहीं मिल सकते और यदि मिल जांय तो भी सम्पूर्ण गर्भावस्था में एक से नहीं मिल सकते। अतः इनके ऊपर पूर्ण रूप से विश्वास नहीं किया जा सकता। ये लक्षण अधिकतर दौहृद की जाति के हैं जो श्रद्धालु गर्भवती स्त्री में कभी-कभी मिल सकते हैं और जिनकी उत्पत्ति का तत्व दौहृदोत्पत्ति के समान हो सकता है।

आधुनिक काल में भी गर्भ लिंग निर्णय के सम्बन्ध में कुछ अन्वेषण अवश्य किये गये हैं, परन्तु अभी तक इसमें विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई है। तथापि निम्न तीन नियम जो गर्भ तथा तज्जन्य शरीर परिवर्तन पर निर्भर होते हैं, मार्ग दर्शक हो सकते हैं—

(१) स्त्री गर्भ की अपेक्षा पुरुष गर्भ का भार अधिक होता है। यह फर्क प्रथम प्रसवा (Primipara) स्त्री की अपेक्षा बहुप्रसवा (Multipara) स्त्री में अधिक होता है।

(२) स्त्री गर्भ की अपेक्षा पुरुष गर्भ के हृदय की गति कुछ कम होती है।

(३) सगर्भावस्था में स्त्री के शरीर से मूत्र द्वारा न्यासर्ग (Harmone-प्रणालीहीन ग्रंथियों से उत्पन्न होने वाले पदार्थ) अधिक मात्रा में उत्सर्गित होते हैं। उनकी राशि के अनुसार भी स्त्री या पुरुष का निर्णय (Harmone diagnosis) करने की कोशिश की जाती है। गर्भलिङ्ग निर्णय में जिस प्रकार की कठिनाई उपस्थित होती है, वैसी कठिनाई युग्म निर्णय में नहीं होती। युग्म का निदान निम्न ४ पद्धतियों से किया जाता है।

१—परिधि मापन - इसका उल्लेख द्रोणीभूत

(पानी भरने के लिये लकड़ी या पत्थर का जो बड़ा पात्र बनाया जाता है वह द्रोणी कहलाता है, यहां पर द्रोणी से पेट के अधिक बड़े होने का अभिप्राय है।) शब्द से किया गया है।

(२) स्पर्शन—उदर विभाग पर टटोलने से दो गर्भों के दो सिर, कभी दोनों नीचे की ओर, कभी एक नीचे और एक ऊपर की ओर, दो पीठ और शाखाओं की अधिकता प्रतीत होती है। तथा दोनों के बीच में प्रणाली रहती है, इसी के उपलक्ष में इस सूत्र में "मध्ये निम्नम्" शब्द प्रयोग किया गया है।

(३) श्रवण—चतुर्थ मास के बाद गर्भवती स्त्री के उदर पर कान लगाने से या श्रवण-नलिका द्वारा गर्भ हृदय के स्पन्दन सुनायी देते हैं। उदर में दो गर्भ होने से दो हृदय के स्पन्दन सुनाई दे सकते हैं।

इसलिये यदि दो सुनने वाले माता के उदर विभाग के दो स्वतन्त्र स्थानों पर एक समय में दो स्वतन्त्र हृदयों को सुनकर उनकी स्पन्दन संख्या गिन सकें और यदि प्रत्येक हृदय की गति संख्या से भिन्न प्रतीत होवे तो युग्म का निदान हो जाता है। युग्म निदान का यह मार्ग बहुत विश्वसनीय और सरल प्रतीत होता है।

(४) क्ष किरण (Radiography)—क्ष किरणों के द्वारा देखने से या चित्र देखने से या चित्र खींचने से भी युग्म निदान हो जाता है। जब दोनों गर्भ दोनों पार्श्वों में रहते हैं तब निदान में विशेष कठिनाई नहीं होती। परन्तु जब एक पीछे और दूसरा आगे की ओर होता है, तब निदान में कठिनाई प्रतीत होती है।

नवीन अन्वेषण—

सोवियत-संघ की चिकित्सा-विज्ञान अकादमी के सदस्य प्रोफेसर ए० एफ० तुरकी फ्रिनिक ने भ्रूण की योनि के निश्चय के संबंध में जो अनुसंधान किया है वह अपने ढंग का बिलकुल पहला प्रयास है। इसका उद्देश्य है गर्भवती मां के रुधिर का चित्र लेकर वस्तुगत अध्ययन के द्वारा यह पता लगाना कि गर्भ का बच्चा नर है या मादा।

इस संबंध का एक लेख सोवियत भूमि ८ अगस्त १९५९ के अंक में प्रोफेसर ए० लिवोव ने प्रकाशित किया है।

(सोवियत भेषज सं० ५. १९५९ पृ० २८–३५ से)

हम इस नई और दिलचस्प विधि को भारतीय डाक्टरों के सामने प्रस्तुत करते हैं। हमें आशा है कि हमने इस काम को जहां तक किया है, वे इसे और आगे ले जायंगे और काफी निश्चयात्मक ढंग से इस बात का पता लगायगें कि गर्भवती मां के रक्त में कितने शीघ्र योनि निश्चय करने वाले परिवर्तन प्रगट होने लगते हैं। वाई० ए० वेरेश्चागिन ने ६० बिना गर्भ वाली स्वस्थ स्त्रियों और १२० गर्भवती स्त्रियों की श्वेत रुधिर केशिकायों की लैंगिक विशिष्टताओं का तथा भ्रूण की योनि के अनुसार नाभकीय लैंगिक विशिष्टताओं वाली केशिकाओं की संख्या में होने वाले नियमित परिवर्तनों का अध्ययन किया।

जब रुधिर का "पैपेनहीम केस्टेन" के साथ अध्ययन किया गया, तो उसके न्यूट्रोफिल्स में कुछ परिनाभकीय रचनाएं प्राप्त हुई जिन्हें "लैंगिक क्रोमैटिन" 'प्लान कान्प्लेक्स ढांचे' 'नाभकीय पुछल्ला" आदि नामों से पुकारा जाता है। इन नाभकीय परिशोषिकाओं को उनके आकार के अनुसार चार वर्गों में विभाजित किया गया है। (देखें चित्र १ से ८ तक)

योनि का निश्चय करने वाली रक्त की विशिष्टताओं का एक स्पष्ट चित्र प्राप्त करने लिये ५००

चित्र १
वर्ग अ के आकार क्लब जैसी उंगलियों की तरह है।

चित्र २
वर्ग ब की रूपरेखा बूंद जैसी है।

—शेषांश पृष्ठ ६४७ पर।

नाल परिवर्तन

वैद्य त्यागी त्रिवेणीदास चिकित्साचार्य

नाल परिवर्तन के लिये अनेकों जड़ी बूटियां हैं, जिनके सेवन से लड़का ही पैदा होता है। इससे पहले चाहें लड़कियां ही पैदा होती रही हों। इस विषय के कितने ही विज्ञापन देखे जाते हैं जिनमें कई एक को तो केवल एक दिन में २ बार सेवन करना होता है। कुछ को ३ दिन सेवन करना होता है, और कई एक को १-२ मास तक सेवन करना होता है। नाल परिवर्तन का सीधा सादा अर्थ है कि जिन स्त्रियों को पहले लड़कियां ही लड़कियां पैदा होती रहती हों, या लड़के ही लड़के पैदा होते रहते हों उस स्त्री को यदि नाल परिवर्तन कराने वाली दवा दी जाय तो यह दवा गर्भाधान के अन्दर ही अन्दर लड़के से लड़की या लड़की से लड़का के रूप में नाल परिवर्तन कर देती है। यहां पर ऐसे विश्वस्त योग पाठकों के समक्ष रख रहा हूं जिनके सेवन कराने से शर्तिया नाल परिवर्तन होजाता है।

पुंसवन योग नं० १—गर्भाधान हो जाने के बाद दूसरे मास की समाप्ति के (६० दिन) पश्चात् ६१-६२-६३ यह तीन दिन और ८१-८२-८३ यह ३ दिन स्त्री को ३-३ माशे भंग के बीज साबित ही प्रातः निराहार पेट गाय के दूध के साथ निगलवाना चाहिये। उपरोक्त लिखे क्रमानुसार ६ दिन दवा का सेवन कराया जाता है। इस प्रकार दवा के सेवन के साथ साथ ३-३ माशा भंग के बीज को पानी में पीसकर गुह्यांग में लेप भी कराया जाता है। इस प्रकार दवा का सेवन और लेप करने से अवश्य नाल परिवर्तन हो जाता है और स्त्री को सुन्दर बलिष्ट पुत्र की प्राप्ति हो जाती है। यह मेरा निजी अनुभव किया हुआ योग है।

पुंसवन योग नं० २—शास्त्रों में शिवलिंगी बीज को सन्तानदाता माना है। इसकी आकृति बिलकुल पुरुष के गुह्यांग के समान होती है और उच्च श्रेणी की गर्भस्थापक औषधि मानी जाती है। दूसरी है भगलिंगी जिसकी आकृति ठीक स्त्री के गुह्यांग योनि के समान होती है और यह भी गर्भस्थापक औषधि मानी जाती है। शिवलिंगी पुत्र स्थापक और भगलिंगी कन्या स्थापक है इन दोनों में यही अन्तर है। प्रयोग काल में जिस स्त्री को कन्याएें उत्पन्न होती हो उसे शिवलिंगी के बीज और जिसे लड़के ही उत्पन्न होते हों उसे भगलिंगी के बीजों का उपयोग करावें। विधि निम्न प्रकार है—

गर्भाधान हुए दो मास व्यतीत हो जांय तब उस स्त्री को १ मास तक निरन्तर प्रतिदिन प्रातः काल निराहार पेट १ माशा भंग के बीज साबित पानी से निगलवा दिया करें, और सायंकाल में भोजन के २ घण्टे पहले शिवलिंगी के बीज ४ नग साबित पानी से निगलवाया करें। यह क्रिया पूरे १ मास तक करना उचित है। इस क्रम से स्त्री की मनोकामना ईश्वर कृपा से अवश्य ही पूरी होजायगी। इस योग में सन्देह की गुंजाइश नहीं।

पुंसवन योग नं० ३—मयूरपंख में जो आकार चंद्रिका के रूप में है, उस चांद को कैंची से अत्यन्त सूक्ष्म कतरकर फिर खरल में घोटकर पाउडर बनालें और उसे गुड़ में लपेट गोली बनालें। गर्भ के दूसरे मास के आरम्भ में जब कि स्त्री का दाहिना स्वर चल रहा हो तब वह गोली गाय के दूध से देवें। गाय एसी हो कि जिसने बछड़ा का जन्म दिया हो और उसका बछड़ा जीवित हो। बछड़ी वाली गाय का दूध कन्या प्राप्ति में प्रयोग करें और बांया स्वर में गोली का सेवन करावें। जिस दिन गोली खाई हो उस दिन वह स्त्री दूध के सिवाय और कुछ

न खाय। संध्या समय पुत्र कामना वाली स्त्री शिवलिंगी के बीज नौ दाने दूध से निगल जाय और कन्या कामना वाली स्त्री नौ दाने भगलिंगी के बीज दूध से निगल जाय। २ घण्टे के पश्चात् दूध भात ले सकती है। निःसन्देह स्त्री की कामना पूर्ण होगी।

मुझे आशा है कि उपरोक्त प्रयोगों से पाठकवृन्द लाभान्वित होंगे।

—श्री वैद्य त्यागी त्रिवेणीदास चिकित्साचार्य
चम्पा गुफा, आबू।

:: गर्भस्थ शिशु ::
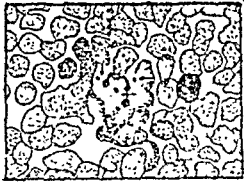
चित्र नं० ३

वर्ग स-छड़ी अंकुश तथा रस्सी की शक्लों के हैं।

चित्र नं० ४

वर्ग द-१-१.५ माइक्रोन लम्बी बारीक रस्सी से एक केन्द्रक से लटकते हुए टेनिस के बल्ले (बीच बीच में खाली गोले हैं) की शक्ल के हैं।

न्यूट्रोफिल्स की गणना की गयी जिनमें से हर वर्ग को लैंगिक स्वरूप वाली केशिकाओं की पूर्ण संख्या तथा अ और ब (अ+ब) केशिकाओं की संख्या और भ (अ+ब) के भाग फल दिखाये गये हैं।

६० अगर्भवती स्त्रियों को जांच करने के बाद अन्वेषक ने निम्नलिखित संख्याओं का पता लगाया। अ-६.४, ब-४७.१, स-६.०, द-०-०, अ+ब ५३.५, भ=अ+ब=८.६१।

स-इसके अतिरिक्त जिन १२० गर्भवती स्त्रियों का परीक्षण किया था, उसमें से ६६ ने लड़के और ५१

:: पृष्ठ ६४५ का शेषांश ::

ने लड़कियां पैदा की। जिन ५१ स्त्रियों ने लड़कियों को जन्म दिया था उनके औसत भागफल निम्न लिखित थे। अ-५.४ ब-५८.० स-७.१ द-०.२ अ+ब ६?.४, भागफल अ+ब=८.७६।

इससे यह नतीजा निकलता है कि यदि किसी गर्भवती मां के गर्भ में मादा भ्रूण हो तो ब केशिकाओं की संख्या २१ प्रतिशत बढ़ जाती है। इसका अर्थ यह भी हुआ कि मा के रक्त की रचना स्पष्ट रूप से मादा अधिक हो जाती है। नर भ्रूण होने पर औसत भागफल निम्नलिखित है। अ-५.२, ब-८.१, स-११.२, द-०.७, अ+ब-१३.३, भ=अ+ब=१.१८

इस प्रकार हम देखते हैं कि ६० अगर्भवती स्त्रियों को ब केशिकाओं की तुलना में यहां ब केशिकाओं की संख्या ८ गुना कम और स केशिकाओं की दुनी हो गई। भागफल भी घटकर १.१८ होगया जिसका यह अर्थ हुआ कि मां के रक्त में नर विशिष्टताओं की अधिकता होगयी।

१२० परीक्षणों में से ११६ में इस बात का ठीक पता लगा लिया गया कि गर्भ में लड़का था या लड़की।

—श्री पं० सुन्दरलाल जैन वैद्यरत्न आयुर्वेदालंकार
इटारसी।

(१) निदान चिकित्सा हस्तामलक (प्रथम खण्ड)—

यह पुस्तक 'आयुर्वेदीय-क्रियाशारीर' आदि पुस्तकों के सुप्रसिद्ध लेखक वैद्य रणजितराय देसाई की लिखी हुई, तथा वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन से प्रकाशित है। पुस्तक की भाषा-शैली एवं छपाई आदि प्रशंसनीय हैं। पृष्ठ ६६० तथा सजिल्द मूल्य ५. ५० न. पै. है।

पुस्तक के प्रस्तुत प्रथम खंड में कुल ९ अध्याय हैं। प्रथम में—काय चिकित्सा का प्राधान्य बतलाते हुए, कायाग्नि का महत्व, दोषों का महत्व, व्याधि स्वरूप आदि का वर्णन; दूसरे में—रोग भेदों की असंख्यता, जीवाणु कारणवाद आदि; तीसरे में—दोषों के नानात्मज रोगों का विस्तृत वर्णन; चौथे में—रक्त प्रकोपज एवं धातुज रोगों का वर्णन पांचवे में—आदि बल, जन्म बल इत्यादि से प्रवृत्त रोगों का; छठे में—रोग भेदों के प्रकार, साध्यासाध्य आदि का; सातवें में—रोगपरीक्षा के लिए उपयुक्त प्रत्यक्षादि प्रमाणों का; आठवें में—रोगपरीक्षा के परीक्षणीय नियम, प्रकृति अनुसार पुरुषों के लक्षण, कोष्ठ परीक्षा आदि तथा; नौं वे में—दोष और दूष्यों का आपेक्षित विवेचन एवं स्रोतों के विषय में भी उपयुक्त ज्ञातव्य बातें लिखी गई हैं।

इस प्रकार रोग परीक्षा के लिये अत्यावश्यक ज्ञेय विषयों का विस्तृत विवेचन बड़े सुन्दर ढंग से इस पुस्तक में किया गया है। आयुर्वेद के छात्रों, अध्यापकों एवं चिकित्सकों के लिये यह विशेष उपयोगी है। लेखन शैली विशुद्ध तथा क्लिष्ट विषय को समझने में सरलता पहुंचाती है। पुस्तक पठनीय एवं मननीय है। आशा है पुस्तक पूर्णतया प्रकाशित हो जाने पर प्राचीन आयुर्वेद के सिद्धांतों का आधुनिक पाश्चात्य मत से समीकरण करने में विशेष सहायक होगी। आधुनिक विज्ञान पर लोगों की अधिक श्रद्धा होने से आजकल ऐसी ही पुस्तकों के प्रकाशन की विशेष आवश्यकता है।

(२) भेल संहिता—

इस प्राचीन संहिता ग्रन्थ के संस्कर्ता श्री गिरिजादयालु शुक्ल साहित्यायुर्वेदाचार्य जी हैं। आपने प्राचीन प्रति में जो स्थान स्थान पर श्लोक नष्ट भ्रष्ट होगये थे उनका उचित संशोधन कर दिया है तथा यथास्थान ग्रन्थ के सन्दर्भ को दर्शाने के लिये चरकादि अन्य संहिता ग्रन्थों के पाठों को उद्धृत कर विद्यार्थियों के अध्ययन में सुलभता करदी है। किन्तु साथ ही साथ यदि हिन्दी में भावार्थ दे दिया जाता तो संस्कृत से अनभिज्ञ छात्रों के लिये और भी सुगमता हो जाती, तथा ग्रन्थ का प्रचार भी खूब होता। तथापि संस्कर्ता का यह प्रयत्न स्तुत्य एवं सराहनीय है।

पुस्तक २७५ पृष्ठों की सुपुष्ट जिल्द वाली चौखम्बा विद्याभवन चौक वाराणसी से प्रकाशित है। मूल्य १०) अत्यधिक रखा गया है। प्रचार की दृष्टि से ऐसी पुस्तकों का मूल्य स्वल्प होना आवश्यक है।

(३) गर्भाशय तथा शिशु परिपालन—

लेखक—डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा M. B. B. S. प्रकाशक—चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी। मूल्य सजिल्द ४. ५० ५ रु०, पृष्ठ संख्या २६४।

पुस्तक के प्राक्कथन में बाल मृत्यु के कारणों का

उचित मार्गदर्शन कराया गया है। इसके अतिरिक्त पुस्तक के ७ परिच्छेदों में-गर्भ की वृद्धि, गर्भवती के आहार आदि एवं गर्भपात तथा प्रसवकाल की अवधि, प्रसव की प्रक्रियायें आदि का विवेचन प्रचुर चित्रों के द्वारा किया गया है।

जन्मोत्तर शिशुरक्षा के उपाय, परिपालन, शिशु की वृद्धि एवं उसकी आवश्यकतायें एवं शिशु के अतिसार आदि रोगों का संक्षिप्त वर्णन उत्तम प्रकार से किया गया है। पुस्तक में जो कुछ वर्णन है सब आधुनिक पाश्चात्य प्रणाली का है तथापि पुस्तक उपादेय और संग्रहणीय है।

(४) सचित्र इन्जेक्शन विज्ञान—

इस पुस्तक के दो खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में रोगी परीक्षा, वैद्य के लक्षण आदि सामान्य बातों के साथ ही साथ इन्जेक्शन के यन्त्रों का तथा औषधि का विशुद्धीकरण (स्टेरलाईजेशन), प्राचीन मतानुसार इन्जेक्शन के गुण और भेद, उत्तरबस्ति आदि बस्तियों का भेद सहित समुचित वर्णन, इन्जेक्शन के भिन्न भिन्न प्रकार एवं उनकी विधि आदि का उपयुक्त सचित्र वर्णन किया गया है।

द्वितीय खण्ड में—इन्जेक्शन में काम आने वाली अनेक औषधियों के भेदों का विस्तृत विवेचन, जीवाणु विषयक आवश्यक वर्णन तथा विटामिनों की चर्चा की गई है।

उक्त दोनों खण्डों में इन्जेक्शन चिकित्सा के प्रारम्भिक ज्ञान की प्राप्ति के लिये आवश्यकीय समस्त विषय परिपूर्ण रूप से समझाया गया है। लेखक ने अपने प्रयास में विशेष सफलता प्राप्त कर ली है। पुस्तक के लेखक श्री वैद्य चुन्नीलाल जी पालीवाल हैं, और प्रकाशक बरालोकपुर-इटावा के प्रसिद्ध वैद्यराज श्री विश्वेश्वरदयालु जी हैं।

प्रथम खण्ड लगभग २०० पृष्ठों का अजिल्द मूल्य २) तथा द्वितीय खण्ड (पृष्ठ ३३२) मूल्य ३) है।

(५) अग्निदग्ध चिकित्सासार—

लेखक—कविराज सीताराम जी ध्यानी आयुर्वेदाचार्य, इन्चार्ज राजकीय चिकित्सालय छिनका—वाम्पा पो. छिनका (गढ़वाल) यू. पी.

इस पुस्तक में दग्धक्रिया (दाग देना, दहनकर्म, Cauterization) का विशद विवरण दिया गया है। लेखक-परम्परागत इस विषय का अनुभवी चिकित्सक होने से उन्होंने गम्भीर एवं दुस्साध्य व्याधियों की प्राचीन एवं अर्वाचीन सफल चिकित्सा पद्धतियों के भेषज प्रयोगों के साथ ही साथ दग्ध चिकित्सा पर उत्तम प्रकाश डालकर इस दिशा में समुचित मार्गदर्शन कराया है। आयुर्वेद की यह एक महत्वपूर्ण चिकित्सा पद्धति है, किन्तु आधुनिक काल में इसका लोप होता जा रहा है। ऐसे अवसर पर इस पुस्तक को प्रकाशित कर लेखक ने चिकित्सकों एवं जनता का विशेष उपकार किया है। दग्धकर्म में उपयोगी यन्त्रोपयन्त्रों का भी सचित्र वर्णन किया गया है। पुस्तक उपादेय एवं संग्रहणीय है।

पृष्ठ संख्या १६० अजिल्द मूल्य २) रु०।

चिकित्सा चन्द्रशेखर (प्रथम भाग), अनुभव-भण्डार और कुकर कास विज्ञान—

उक्त पुस्तकों के लेखक और प्रकाशक वैद्य श्री चन्द्रशेखर जी जैन शास्त्री, लाखा भवन, पुरानी चरहाई (जबलपुर) हैं।

(६) चिकित्सा चन्द्रशेखर—इसमें चन्द्रशेखर जी ने गागर में सागर भर देने का प्रयत्न किया है। वैद्यक ग्रन्थों एवं धन्वन्तरि आदि सामयिक पत्रों से चुनिन्दा, सरल तथा शीघ्र प्रभावकारी प्रयोगों को एवं चिकित्सा सम्बन्धी अन्यान्य बातों को अपने अनुभव की पुट लगाकर इसमें सुग्रन्थित किया गया है। पथ्यापथ्य, नाड़ी परीक्षा, मलमूत्र परीक्षा, शब्द, स्पर्श, नेत्र आदि द्वारा रोग परीक्षा, त्रिदोष, अरिष्ट, अनुपान आदि का संक्षिप्त विवरण इत्यादि चिकित्सकों एवं सर्व साधारण के

जानने योग्य बातों का उल्लेख किया गया है। पुस्तक संग्रहणीय है। किन्तु मूल्य ५) अत्यधिक रखा गया है। पुस्तक सजिल्द, पृष्ठ संख्या २०७ है।

(७) अनुभव भण्डार—

इस पुस्तक में लेखक ने शोथ, श्वास, कास, जीर्ण ज्वर आदि कुछ रोगों पर अपनी अनुभव-पूर्ण चिकित्सा एवं कई विकारों पर चुनिन्दे चुटकुले देकर वैद्यों की महान सेवा की है। पृष्ठ संख्या १०७, सजिल्द मूल्य २)

(८) कुकर-कास विज्ञान—

इसमें बालकों की सूखी या काली खांसी (हूपिंग कफ) के विषय में ज्ञातव्य बातों का बड़े अच्छे ढङ्ग से सङ्कलन किया गया है। यह लेखक द्वारा प्रकाशित आयुर्वेद चिकित्सक नामक मासिक पत्र का एक महत्वपूर्ण विशेषांक है। पृष्ठ ११२, सजिल्द मूल्य २)

(९) वैद्य निर्देशिका—

यह जनपद जौनपुर के वैद्यों की नाम-धाम सूचक (डायरेक्टरी) है। इसमें वहां के वैद्यों के संक्षिप्त सचित्र परिचय के साथ ही साथ प्रायः प्रत्येक वैद्य के स्वानुभवपूर्ण प्रयोगों को संकलित कर देने से यह पुस्तिका सर्व साधारण के लिये उपयोगी हो गयी है। छोटे बड़े कुल २७३ प्रयोग इसमें दिये गये हैं।

इसके लेखक श्री वैद्य वासुदेव मिश्र जी वैद्य तथा प्रकाशक आयुर्वेदाचार्य श्री सुदर्शन देव जी ए. एम. एस. मन्त्री वैद्य सभा, जौनपुर यू० पी० हैं। पृष्ठ ६२ और मूल्य १) है।

(१०) सरल चिकित्सा विज्ञान—

अपने नामानुसार यह पुस्तिका नहीं है। रोगों के सर्व साधारण प्रचलित प्रयोगों के नाम मात्र संकलित कर दिये गये हैं। कहीं आयुर्वेदीय तथा कहीं ऐलोपैथिक पेटेन्ट प्रयोगों के नाम मात्र यत्र-तत्र लिख दिये गये हैं।

छोटी सी ६८ पृष्ठ की न्यूज प्रिन्ट पर छपी हुई है। इसका मूल्य ३।) रक्खा गया है। लेखक और प्रकाशक डा० गुरुप्रसाद खन्ना जी हैं। तथा प्रकाशक—जनता मैडीकल हाल डाकखाने के पास, बिजनौर हैं।

(११) संक्षिप्त देवी भागवतांक (कल्याण)—

भारत के समस्त धार्मिक पत्रों में कल्याण अपना अद्वितीय, विशिष्ट स्थान रखता है। यह स्वल्प मूल्यों में सुन्दर से सुन्दर, आर्य संस्कृति के उद्‌बोधक, आकर्षक एवं भावपूर्ण लेखों से सुशोभित सामिग्री प्रकाशित कर गत ३४ वर्षों से हिन्दी साहित्य की अपूर्व सेवा कर रहा है। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष विशाल विशेषांकों के रूप में भिन्न-भिन्न आर्ष ग्रन्थों को प्रकाशित कर जनता जनार्दन की भेंट किया करता है।

इसका आलोच्य विशेषांक महर्षि वेद व्यास जी रचित देवी भागवत नामक महापुराण है। इस संक्षिप्त संस्करण में आदि शक्ति, महामाया से सम्बन्धित पौराणिक इतिहास सामिग्री पूर्णतया संकलित की गई है। कथानक रोचक एवं शिक्षाप्रद हैं। शक्ति उपासकों के लिये तो यह हृदय का हार ही है, तथा सर्वसाधारण के लिये आध्यात्मिक शक्ति संवर्धनार्थ महान उपादेय ग्रन्थ है। हम इसका हृदय से स्वागत करते हैं। इसमें सुविस्तृत पाठ्य सामिग्री के साथ ही साथ २९ बहुरंगे सुन्दर चित्र, तथा उनके इकरंगे, दुरंगे, यन्त्र चित्र एवं रेखा चित्र यथास्थान दिये गये हैं। प्रारम्भिक ३५ पृष्ठों में ग्रन्थों का महात्म्य एवं परिचयात्मक सामिग्री दी गई है। इसका कागज, गेट-अप, छपाई आदि सदैव की भाँति मनोहर एवं दोषरहित हैं। हिन्दू मात्र के लिये यह अपूर्व ग्रन्थ रत्न संग्रहणीय, एवं मननीय है।

पृष्ठ-संख्या ७००, मूल्य कल्याण के शेष ११ अङ्कों सहित ७.५० रु० मात्र है, प्राप्ति-स्थान गीता प्रेस, पो० गीता प्रेस गोरखपुर।

समाचार एवं सूचनाएँ

पंजाब आयुर्वेद सम्मेलन—

१८वां पंजाब आयुर्वेद सम्मेलन बी० डी० हाई स्कूल अम्बाला छावनी में ६ तथा १० अप्रेल १९६० को मनाया गया। पञ्जाब प्रान्त के ७५० प्रतिनिधियों ने सम्मेलन में बड़े उत्साह से भाग लिया तथा वैद्य शिरोमणि शिव शर्मा जी बम्बई, पं० वामन राव दीनानाथ जी प्रधान मन्त्री अखिल भारतीय आयुर्वेद काँग्रेस, श्री स्वामी चेतनानन्द जी चिदाकाशी प्रधान सम्पादक आयुर्वेद महा सम्मेलन पत्रिका, पं० रामप्रसाद जी भूतपूर्व डायरेक्टर पटियाला, पं० ठाकुर दत्त जी शर्मा अमृतधारा, पं० अमरनाथ जी औदिच्य देहरादून, राय साहब सूफी, लछमनप्रसाद जी सूफी, मस्ताना जोगी प्रोफेसर हकीम अनजाम खां साहब देहली, श्री १०८ श्री सत्यदेव जी वाशिष्ठ गुरुकुल झज्झर, हकीम बिहारीलाल, हकीम केहरसिंह कुराली, हकीम हरबचनलाल जी प्रधान आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी तिब्बी कमेटी जिला अम्बाला, हकीम शेरसिंह मोगे वाले तथा प्रोफेसर मदनमोहन चोपड़ा पटियाला आदि महानुभावों ने सम्मेलन की शोभा बढ़ाई। मुख्य संयोजक ज्ञानचन्द शर्मा वैद्य तथा प्रधान मन्त्री प्रेम सागर वैद्य अम्बाला, छावनी ने ५ मास तक लगातार परिश्रम करके एक एक शहर और कस्बे में घूमकर सम्मेलन का प्रचार किया।

६ अप्रेल १९६० प्रातः ८॥ बजे बड़े समारोह के साथ पं० रामप्रसाद जी आयुर्वेदरत्न पटियाला ने ध्वजारोहण किया। ६॥ बजे पं० ठाकुरदत्त जी अमृतधारा वालों ने आयुर्वेदिक औषधियां निर्माण करने वाली फार्मेसियों की प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। दोपहर २॥ बजे श्रीमती प्रकाश कौर, डिप्टी हैल्थ मिनिस्टर पञ्जाब द्वारा सम्मेलन का उद्घाटन किया गया।

पं० शिव शर्मा जी ने बताया कि लङ्का सरकार ने आयुर्वेद के लिये अलग मन्त्रालय बना दिया है तथा विदेशों से काफी बड़े रूप में देशी औषधियों की मांग बराबर बढ़ती जा रही है।

आपने पञ्जाब सरकार से कहा कि बम्बई राज्य ने देशी चिकित्सकों को बीमा कम्पनियों में पूर्ण समान अधिकार दे रखे हैं। ऐसा ही पंजाब सरकार को करना चाहिए। डिप्टी मिनिस्टर प्रकाश कौर ने उद्घाटन करते हुये कहा कि सरकार देशी चिकित्सा पद्धति को फलता फूलता देखना चाहती है। मैं और सरकार हर तरह से अधिक से अधिक इस विज्ञान की हर मुमकिन सहायता कर रहे हैं और करेंगे। अन्त में सम्मेलन के प्रधान वैद्य श्री मुन्शीराम जी आयुर्वेदाचार्य भटिन्डा ने अपना भाषण पढ़ा और आयुर्वेद की महानता से जनता को परिचित कराया।

रात्रि ८ से ११ बजे तक पं० कुलानन्द जी आयुर्वेदाचार्य की अध्यक्षता में अनुभूत योग परिषद् का कार्य चला।

१० अप्रेल १९६०। प्रातः ८ से १२ बजे तक रोगियों का निरीक्षण किया गया। २॥ बजे दोपहर प्रोफेसर मदनमोहन चोपड़ा गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालिज पटियाला की अध्यक्षता में शिक्षा-विज्ञान परिषद् का उद्घाटन पं० शिव शर्मा जी ने किया जिसमें प्रोफेसर अनजाम खां साहब ने रक्तचाप पर भाषण दिया। प्रोफेसर मदनमोहन चोपड़ा ने अपने अध्यक्षीय भाषण में पञ्जाब सरकार तथा भारत सरकार से अनुरोध किया कि आयुर्वेदिक कालिजों का पाठ्यक्रम तथा डिग्री एक समान की जानी चाहिये। हकीम हरबचनलाल ने भाषण देते हुए सरकार से मांग की कि पञ्जाब डिग्री बिल की जिस धारा पर विचार

किया जा रहा है और जिससे देशी चिकित्सकों के अधिकारों को छीनने की कोशिश की जा रही है, उसे स्थगित किया जाय। पं० वामन राव दीनानाथ जी ने भाषण देते हुये भारत सरकार से देशी चिकित्सा पर विशेष ध्यान तथा सहायता प्रदान करने की मांग की। आपने सरकार से अनुरोध किया कि आयुर्वेदिक अनुसन्धानशालाएं खोली जांय तथा हर प्रकार से आयुर्वेदिक स्नातकों को दूसरी प्रणाली के स्नातकों को बराबर का दर्जा दिया जाय।

सम्मेलन में निम्न प्रस्ताव पास किये गए—

(१) पञ्जाब मैडीकल डिग्री बिल की जिस धारा पर पञ्जाब सरकार विचार कर रही है वह सर्वथा असत्य, अन्यायमुक्त, अवैधानिक, पक्षपातपूर्ण तथा प्रजातन्त्रों के सिद्धान्तों के सर्वथा विपरीत है अतः इसे फौरन स्थगित किया जाय।

(२) देशी रजिस्टर्ड चिकित्सकों को दूसरी पैथी के चिकित्सकों के समान विद्यार्थियों का मैडीकल निरीक्षण, स्टेट एम्पलाईज बीमा स्कीम तथा लेबर वैल्फ बीमा स्कीम तथा बीमा कम्पनियों के अन्तर्गत मैडीकल एक्जामिनेशन का पूर्ण अधिकार दिया जाय।

(३) पञ्जाब तथा भारत में देशी मैडीकल कालिजों का पाठ्यक्रम तथा डिग्री एक समान किया जाय।

(४) पञ्जाब में सरकारी आयुर्वेदिक और यूनानी औषधालयों में काम करने वाले चिकित्सकों और कम्पाउण्डरों का वेतन स्तर Minimum wages Act के अनुसार शीघ्रातिशीघ्र निर्धारित किया जाय।

(५) श्री मस्तनाथ आयुर्वेद महाविद्यालय अस्थल बोहर रोहतक को सरकार फौरन अपने हाथ में लेकर अपनी संरक्षता में चलाये।

(६) देशी चिकित्सा पद्धति की उन्नति के लिए उतना ही धन पंचवर्षीय योजना में निर्धारित किया जाय जितना कि ऐलोपैथिक पद्धति के लिये किया जाता है।

—श्री पं० ज्ञानचन्द शर्मा
मुख्य संयोजक।

× × ×

तहसील सम्मेलन हाथरस—

तहसील आयुर्वेद-सम्मेलन, हाथरस का सन् १९६० वर्षीय नव निर्वाचन दिनांक २७-२-६०, में निम्न प्रकार सर्व सम्मति से सम्पन्न हुआ—

प्रधान—वैद्य श्री सुरेशचन्द्र जी शर्मा आयुर्वेद शिरोमणि, हाथरस

उपप्रधान—श्री राधावल्लभ शर्मा वैद्यशास्त्री, ,,

उपप्रधान—श्री कुंवरपाल जी शर्मा आयुर्वेदभूषण, ,,

प्रधान मन्त्री—श्री ओमप्रकाश उपाध्याय, साहित्यायुर्वेदरत्न, ,,

उप-मन्त्री—श्री हरीशंकर शर्मा आयुर्वेद विशारद, ,,

संगठन-मंत्री—श्री विभूतिभूषण जी शर्मा बी० एस-सी० आयुर्वेदरत्न, ,,

प्रचारमन्त्री—श्री रामगोपाल शर्मा वैद्यराज, ,,

कोषाध्यक्ष—श्री महादेव शर्मा बी० आई० एम० एस,- मुरसान

पुस्तकाध्यक्ष—श्री हरिनारायण जी शर्मा आयुर्वेद शास्त्री, हाथरस

निरीक्षक—श्री शिवदत्त जी शर्मा आयु. वाचस्पति, ,,

इसके अतिरिक्त १२ सदस्यों की एक कार्य कारिणी समिति का निर्माण किया गया।

—मन्त्री
तहसील आयु० सम्मेलन हाथरस

× × ×

बरनाला समाचार—

२६ मार्च—पंजाब के विभिन्न क्षेत्रों के वैद्यों का सम्मेलन श्री आयुर्वेद विद्यालय बरनाला की अध्य-

न्नता में अपूर्व समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ जिसमें लगभग ३०० प्रतिष्ठित सहानुभावों ने भाग लिया। आयुर्वेद विषयक बहुत सी कवितायें तथा भाषण हुए। इसके पश्चात् दो महत्वपूर्ण प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुए।

—श्री वैद्य बालमुकन्द मिश्र
बरनाला।

\+ \+ \+

फरीद कोट आयुर्वेद मण्डल का चुनाव

निम्न प्रकार से हुआ है -

१. प्रधान—वैद्य विधिराज शर्मा (शास्त्री)
२. उपप्रधान—ज्ञानी सोहनसिंह जी
३. उपप्रधान—सन्त हरनामदास जी
४. प्रधान मन्त्री—पूर्णचन्द जी (देवगण)
५. उपमन्त्री—श्री देशराज जी कोषाध्यक्ष
६. प्रचार मन्त्री—भगवानदास जी —मन्त्री

\+ \+ \+

धन्वन्तरि आयु. मण्डल विलासपुर का निर्वाचन

श्री धन्वन्तरि आयुर्वेद मण्डल विलासपुर का मासिक सम्मेलन वैद्य विशनसिंह जी की प्रधानता में ५-३-६० को मण्डी निहालसिंह वाला में संपन्न हुआ। वार्षिक रिपोर्ट के बाद वर्ष १९६० के लिये चुनाव हुआ। निम्नलिखित पदाधिकारी चुने गए—

१. प्रधान—वैद्य विशनसिंह जी
२. उ० प्र०—वैद्य कर्मचन्द (पत्तो हीरासिंह)
३. प्र० मन्त्री—पं० हरिवंशलाल जोशी आयु. विशारद हिम्मतपुरा
४. उ० मन्त्री—पं० अवतारचन्द शर्मा विलासपुर
५. कोषाध्यक्ष—वैद्य सन्त शरदूलसिंह जी विलासपुर
६. संगठन मन्त्री—वैद्य झंडासिंह जी (खोटे)।

नोट—पदाधिकारियों के अतिरिक्त वैद्य (१) जीवनसिंह (रामा) (२) वैद्य रघुवंशसिंह जी सन्धु कार्यकारिणी के सदस्य चुने गये।

—मन्त्री

तहसील वैद्य सभा बहरोड़ का निर्वाचन —

ता० २४-२-६० को तहसील वैद्य सभा बहरोड़ का चुनाव बहरोड़ में निम्न प्रकार हुआ —

१. अध्यक्ष—श्री वैद्य रूपनारायण जी त्रिवेदी बहरोड़
२. उपाध्यक्ष—श्री सोमदत्त जी वैद्य जागुवास
३. मन्त्री —श्री मधुसूदनलाल मिश्र R. M. P. A. S. U. बड़ौद
४. उपमन्त्री—श्री हितैषचन्द जी शर्मा गंडाला
५. प्रचार मन्त्री—श्री कर्मवीर जी शाहजहांपुर
६. कोषाध्यक्ष—वैद्य श्री बनवारीदास महन्त खेड़की
७. निरीक्षक—श्री मूलचन्द जी वैद्य बड़ौद

—मन्त्री
तहसील वैद्य सभा, बहरोड़

\+ \+ \+

पत्रकार सम्मेलन

काशी मण्डल वैद्य सभा की ओर से श्री लक्ष्मीकांत पाण्डेय आयुर्वेदाचार्य एम. ए. सम्पादक नागार्जुन कलकत्ता के सभापतित्व में पत्रकार सम्मेलन हुआ। इसमें कविराज व्रजमोहन दीक्षित, श्री ताराशङ्कर वैद्य, श्री विश्वनाथ पांडे, श्री त्रिवेणीप्रसाद बरनवाल, श्री व्रजमोहन मेहता और श्री श्रीकृष्ण श्रीवास्तव के भाषण हुये। स्वीकृत प्रस्ताव निम्न हैं—

प्रस्ताव संख्या १—यह सम्मेलन आयुर्वेदीय पत्रों से अनुरोध करता है कि वे आयुर्वेद जीवियों के संगठन के दृष्टिकोण को प्रमुखता दें तथा पारस्परिक विवादों को समाप्त करने का प्रयत्न करें।

प्रस्ताव संख्या २—यह आयुर्वेदीय पत्रकार सम्मेलन आयुर्वेदीय पत्रों से अनुरोध करता है कि वे जनसाधारण के योग्य प्रकाशन पर भी ध्यान दें।

आयुर्वेदीय स्नातक सम्मेलन

काशी मण्डल वैद्य सभा की ओर से आयुर्वेदीय स्नातक सम्मेलन १२-४-६० को श्री वैद्य प्रियव्रत शर्मा ए. एम. एस., एम. ए. साहित्याचार्य,

राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय पटना के सभापतित्व में हुआ। इसका शुभारम्भ अखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन के मन्त्री वैद्य वामनराव दीनानाथ पूना ने किया। श्री कैलाशनाथ जेतली जी द्वारा धन्वन्तरि पूजन के पश्चात् श्री कविराज ब्रजमोहन दीक्षित, श्री ताराशङ्कर वैद्य, श्री त्रिवेणीप्रसाद बरनवाल, श्री श्यामसुन्दर जी, श्री काशी नाथ पांडेय, श्री रामावतार उपाध्याय, श्री हरिशङ्कर राय, श्री कौशलकिशोर सिंह, श्री विश्वनाथ शर्मा एवं श्रीमती शुभवती देवी पांडेय के भाषण हुए। सर्व सम्मति से निम्न प्रस्ताव स्वीकृत किये गये।

प्रस्ताव संख्या १—यह सम्मेलन केन्द्रीय सरकार से अनुरोध करता है कि वह आयुर्वेदीय स्नातकों की व्यावहारिक कठिनाइयों यथा मान्यता, अधिकारों, शस्त्रकर्म एवं औषधि प्रयोग आदि को दूर कर उन्हें मैडीकल ग्रेजुएटों के समान स्तर पर शीघ्र करने की व्यवस्था करे।

प्रस्ताव संख्या २—यह सम्मेलन निश्चित करता है कि आयुर्वेद महाविद्यालय में संस्कृत ज्ञान सम्पन्न छात्र ही प्रविष्ट किये जांय। संस्कृत ज्ञान की न्यूनता वाले छात्रों के लिये मध्यमा स्तर तक के संस्कृत अध्यापन की व्यवस्था आयुर्वेद महाविद्यालयों में ही करने की भी व्यवस्था की जाय।

प्रस्ताव संख्या ३—यह स्नातक सम्मेलन निश्चित करता है कि आयुर्वेद महाविद्यालयों में आयुर्वेद के अध्यापन की व्यवस्था पूर्ण सुचारु रूप से की जाय। स्नातकों से भी अनुरोध है कि वे आयुर्वेद में अधिकतम निष्ठा रक्खें।

प्रस्ताव संख्या ४—यह सम्मेलन केन्द्रीय सरकार एवं राज्य सरकारों से अनुरोध करता है कि वे आयुर्वेदीय स्नातकोत्तर प्रशिक्षण एवं अनुसन्धान केन्द्रों की अधिक से अधिक संख्या में सम्पन्न और सुचारु व्यवस्था करें।

प्रस्ताव संख्या ५—यह सम्मेलन गम्भीरतापूर्वक अनुभव करता है कि आयुर्वेद महाविद्यालयों में छात्रों के असन्तोष का मूल कारण आयुर्वेदीय स्नातकों के न्यून अधिकार, वेतन स्तर एवं सम्मान हैं, इसी कारण छात्रों की प्रवेश संख्या में भी भयानक न्यूनता आरही है। इसलिये सम्मेलन केन्द्रीय शासन एवं राज्य सरकारों से अनुरोध करता है कि वे आयुर्वेदीय स्नातकों के स्तर में उन्नति करें।

प्रस्ताव संख्या ६—यह सम्मेलन अनुभव करता है कि आयुर्वेद महाविद्यालयों में पाठ्यक्रम, प्रवेश योग्यता एवं उपाधि की विविधता आयुर्वेद के लिये घातक है। इसलिये सम्मेलन शिक्षा संस्थाओं के संचालकों से अनुरोध करता है कि वे इस समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर उपर्युक्त विविधताओं को समाप्त कर समानता लाने की व्यवस्था शीघ्र करें।

—श्री ताराशङ्कर वैद्य
प्रधान मन्त्री, काशी मण्डल वैद्य सभा
वाराणसी।

+ + +

यू० पी० सरकार द्वारा
कविराज श्री श्रीनिवास शास्त्री पुरुष्कृत—

श्री विशुद्धानन्द सरस्वती मारवाड़ी अस्पताल ११८ अमहर्स्ट स्ट्रीट कलकत्ता ६ के ख्यातनामा चिकित्सक कवि० श्री श्रीनिवास शास्त्री उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरष्कृत हुए हैं। शास्त्री जी ने नवीन शैली का विशाल उपन्यास "चन्द्रमहीपति" संस्कृत भाषा में लिखा है। इसी पर उत्तर प्रदेश शासन ने २०००) का पुरस्कार दिया है जो १९५९-६० में दिये गये पुरस्कारों में सर्वोच्च है। यह हम सभी आयुर्वेदज्ञों के लिए बहुत गौरव की बात है।

+ + +

आयुर्वेदिक व यूनानी औषधियों का इतिहास—

पोलैण्ड के नई दिल्ली स्थित राजदूत की पत्नी डा. एलिजवेथ कात्स-सूखो आयुर्वेदिक और यूनानी औषधियों का इतिहास तैयार कर रही हैं।

श्रीमती कारस-सूखा एलोपैथ डाक्टर हैं परन्तु भारतीय जड़ी-बूटियों में उन्होंने अनेक उपयोगी दवाइयां पाई हैं। उन्होंने अपने अनुभव से प्रेरित होकर यह इतिहास का कार्य आरम्भ किया है। पुस्तक पहले अंग्रेजी में छपेगी।

दैनिक "हिन्दुस्तान"
१७।३।६० से

\+ + +

आयु. विद्या. बरनाला का पारित प्रस्ताव—

श्री आयुर्वेद विद्यालय बरनाला के दसवें वार्षिकोत्सव पर निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुआ। पंजाब के मुख्य मन्त्री श्री प्रतापसिंह कैरों ने पंजाब एवं पैप्सू का विलीनीकरण करने के समय विशुद्ध, स्वतंत्र आयुर्वेद विभाग स्थापित कर आयुर्वेद जगत की मूलभूत मांगों को पूर्ण कर वैद्य समाज को अपना ऋणी बना लिया है। साथ ही वैद्य समाज के सुयोग्य सहयोगी श्री कान्तिनारायण मिश्र आयुर्वेदाचार्य A. L. I. M.(मद्रास) को इस विभाग का स्थाई निर्देशक नियुक्त कर आयुर्वेद चिकित्सा का मार्ग प्रशस्त बना दिया है। भविष्य में आयुर्वेद विकास के लिए तृतीय पंचवर्षीय योजना में एक करोड़ ७२ लाख रुपये की धन राशि स्वीकृत कर के वैद्य समाज के साथ उचित न्याय किया है। इस सद्व्यवहार के लिये मुख्य मन्त्री सरदार प्रतापसिंह कैरों विशेष बधाई के पात्र हैं।

—महा मन्त्री कांग्रेस सेवादल, बरनाला।

\+ + ÷

मस्तनाथ आयु० कालेज के अधिकारियों से प्रतिनिधि-मण्डल मिला—

आज दिनांक ५।३।६० शनिवार को पंजाब आयुर्वेद महाविद्यालयों (जालन्धर, पटियाला, रोहतक) के छात्रों का एक प्रतिनिधि मण्डल श्री मस्तनाथ मठ के महन्त (प्रधान प्रबन्धक कमेटी श्री मस्तनाथ आयुर्वेद महाविद्यालय) से श्री मस्तनाथ आयुर्वेदिक कालिज के भविष्य के बारे में मिला। इस प्रतिनिधि मण्डल ने प्रबन्धक कमेटी के सदस्यों से सविनय प्रार्थना की कि इस आयुर्वेद महाविद्यालय को मैडिकल कालिज में न बदला जावे तथा सदा के लिये चलाया जावे एवं इसकी पूरी सहायता की जावे तथा पंजाब में आयुर्वेद को उन्नत किया जावे। उन्होंने उत्तर दिया कि हम सरकार को एक बार लिखित रूप में मैडीकल कालिज के लिये धन, भवन तथा भूमि दे चुके हैं परन्तु हम आयुर्वेद के प्रेमी हैं इसको चलाना चाहते हैं परन्तु इन दोनों विद्यालयों का नियन्त्रण तथा संचालन सरकार स्वयं करे महन्त जी ने यह भी विश्वास दिलाया कि यदि सरकार एक साथ दोनों कालिजों को चलावे तो हम आयुर्वेद महाविद्यालय (अस्थल बोहर) के लिए एक लाख रुपया भूमि तथा हर प्रकार की सहायता करने को तैयार हैं।

अन्त में हम पंजाब आयुर्वेद महाविद्यालयों के छात्र सरकार तथा अधिकारी वर्ग से प्रार्थना करते हैं कि शीघ्रातिशीघ्र इनको अपने हाथ में लेकर आयुर्वेद में तथा देश सेवा के लिये छात्रों का उद्धार करें।

—मन्त्री, छात्र संघ आयुर्वेद महाविद्यालय
अस्थल बोहर (रोहतक)

\+ + +

'द्रव्य रस वर्णनम्' शीर्षक निबंध—

आज अकस्मात आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका सितम्बर १९५८ के अङ्क में पत्रिका के संस्कृत विभाग सम्पादक कविराज श्री नेत्रपाल जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य के नाम से "द्रव्य रस वर्णनम्" शीर्षक लेख पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। वर्णित विषय की अधिकारपूर्ण विवेचना भाषाधिकार, सुसंस्कृत एवं प्रांजल शैली देख कर मुग्ध होना पड़ा

किन्तु सुदूरभूत में स्मृति दौड़ाने पर विद्यार्थी जीवन के वे क्षण सहसा स्मृतिपटल पर अंकित हुए बिना न रहे जब लक्ष्मणदास आयुर्वेद महाविद्यालय के प्रधानाचार्य, अखिल भारतवर्षीय

वैद्य महासम्मेलन के सभापति (बीकानेर सम्मेलन) पू० गुरुवर पण्डित नारायण दत्त जी महाराज के पादपद्मों में बैठ कर इस विषय का सर्वाङ्गीण गहन विवेचन स्वतः उन्हीं के द्वारा सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। शङ्का समाधान के लिए "द्रव्य गुणादि विवेचनात्मकम्" अभिभाषणम् (बीकानेर वैद्य महासम्मेलन अध्यक्षीय भाषण) शीर्षक पुस्तक देखना आवश्यक हुआ।

खेद के साथ कहना पड़ता है कि उक्त निबन्ध सम्पादक लेखक महोदय ने पुस्तक के पृष्ठ १६ से शब्दशः प्रतिलिपि कर अपने नाम से प्रकाशित किया है। विद्वता प्रकाशित करने की यह मनोवृति कितनी अशोभनीय है इस विषय में विद्वान महानुभावों को बताने की आवश्यकता नहीं। किसी विशिष्ट विषय के साहित्य प्रकाशन का उद्देश्य तत्सम्बन्धित वर्ग की ज्ञानविवृद्धि ही यदि होता है तो मिथ्या कीर्ति प्राप्त करने के लोभ का परित्याग कर मूल लेखक के नाम से ही यदि प्रस्तुत लेख प्रकाशित किया जाता तो क्या हानि थी।

हरिद्वार वैद्य महासम्मेलन के अध्यक्ष पद से भाषण देते समय आयुर्वेद दिवाकर स्व० वैद्य यादव जी त्रिकम जी ने इस विषय का अधिकार-पूर्ण यथातथ्य तथा विशद ज्ञान प्राप्त करने के लिए पू० गुरुदेव के उक्त अभिभाषण को ही पढ़ने की सम्मति प्रदान की थी अस्तु उनकी सम्मति को दृष्टिगत रखते हुए ही यदि पं० नारायण दत्त जी के नाम से उनके सम्पूर्ण भाषण को प्रकाशित किया जाता तो उद्देश्य साफल्य के साथ ही साथ आयुर्वेद के इस मनीषी को भी एक सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित की जा सकती थी तथा सत्साहित्य के प्रकाशन और रचना के अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह भी किया जा सकता था।

—श्री नारायण औषधालय
फीरोजाबाद उ० प्र०

\+ \+ \+

विद्वज्जन लिखें—

मुझे अभी यात्रा में एक ग्राम में पीतपुष्प-शाल्मली वृक्ष पहली बार देखने में आया। रक्तपुष्प शाल्मली वृक्ष तो अधिकाधिक देखने और व्यवहार में आते हैं।

इस वृक्ष के पुष्प, मूल, गुण आदि का व्यवहार आपको या धन्वन्तरि पाठकों को ज्ञात हों तो धन्वन्तरि पत्र द्वारा प्रकाशित करें।

\+ \+ \+

भूल सुधार—

जनवरी सन् १९६० के अंक में पृष्ठ २० पर पाण्डु, जलोदर, क्षय, कास के प्रयोग में भूल से धाय के फूल १६ सेर छप गया है। इसे पाठक कृपया १६ तोला पढ़ें।

\+ \+ \+

एलोपैथी चिकित्सा को चुनौती—

लश्कर—हाल में यहां के आयुर्वेदिक प्रणाली के चिकित्सक श्री ओमप्रकाश शर्मा नई सड़क लश्कर ने मध्य प्रदेश की स्वास्थ्य मंत्राणी को एक पत्र लिखा है जिसमें उन्होंने दावा किया है कि अर्श रोग को बिना चीरफाड़ के जड़ से दूर करने के सम्बन्ध में वह आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली की ओर से संसार के एलोपैथिक चिकित्सकों को चुनौती देने को तैयार हैं। उक्त रोग के अनेक रोगियों को सरकारी एलोपैथिक डाक्टरों की उपस्थिति में पूर्ण स्वस्थ कर चुके हैं और अपने उक्त आयुर्वेदिक आविष्कार की सफलता की प्रदर्शनी ग्वालियर मध्यप्रदेश भारत या संसार के किसी भी एलोपैथिक मेडिकल कालेज में करके दिखाने को तैयार हैं।

उन्होंने यह भी लिखा है कि भारत विदेशों से इस रोग की एलोपैथिक दवाएँ बहुत बड़ी धनराशि खर्च करके प्रतिवर्ष मंगाता रहता है उनकी आविष्कृत आयुर्वेदीय दवा प्रभाव की दृष्टि से बहुत हीन कोटि की होती हैं। यदि शासन का उचित सहयोग प्राप्त हो तो उनकी उक्त दवा विदेशों में भेजी जाकर

वहाँ के बहुसंख्यक रोगियों की बवासीर को जड से निमूल करके न केवल विश्व में भारत का गौरव ही बढा सकती है बल्कि विदेशों से बहुत सी धनराशि भी अर्जित करके ला सकती है ऐसी पूर्ण आशा है। देखें शासन इस ओर क्या कदम उठाता है।

—श्री सुरेन्द्र बहादुर शास्त्री
सदस्य देशी औषधि परिषद, मध्य प्रदेश

× × ×

शोक समाचार

दिनांक ६-३-६० ई० को हुई जिला वैद्य सभा की अन्तरंग ने आगरा नगर के प्रसिद्ध डाक्टर श्री जी. एन. व्यास तथा ख्याति प्राप्त हकीम मोहम्मद इसहाक के निधन पर सर्व सम्मति से शोक प्रस्ताव पारित किया तथा दो मिनट मौन रहकर दिवङ्गत आत्माओं को शान्ति तथा उनके सन्तप्त परिवार के प्रति समवेदना प्रकट की।

प्रधान मन्त्री—वैद्यसभा (आगरा)

× × ×

मराठवाडा के सुप्रसिद्ध व लोकप्रिय वैद्यराज विठ्ठल गणेश शास्त्री आयुर्वेदालङ्कार (राजवैद्य) धनसांगवी (औरङ्गाबाद मराठवाडा) यकृद्दाल्युदर के दीर्घकालीन विकार के पश्चात् मंगलवार दि० १ मार्च १९६० को रात्रि ११।। बजे को स्वर्ग सिधार गये। एक विद्वान व वयोवृद्ध व ज्ञानवृद्ध होते हुये भी शुद्धायुर्वेदीय पंथ के थे। नित्य आधे से अधिक रोगियों को विना मूल्य औषधोपचार मिलते थे। यह उनकी चिकित्सा का वैशिष्ट्य था। उनकी मृत्यु से जनता व आयुर्वेद पर बहुत बड़ा आघात हुआ है। शास्त्री जी की श्मशान यात्रा में अनेक पक्ष व दर्जे के लोग उपस्थित थे। शास्त्री जी लौकिकता की दृष्टि से चिरायु हैं। परमात्मा शास्त्री जी की आत्मा को चिर शांति देवे।

× × ×

'श्री भोला' आयुर्वेदिक औषधालय सीली (खाटली गढ़वाल) के प्रधान चिकित्सक श्री भोलादत्त जी गौनियाल 'भक्त जी' का देहान्त ४ फरवरी सायं १० बजे हृदय की कमजोरी एवं अकस्मात ४ दिन के साधारण ज्वर से ५८ वर्ष की अवस्था में हो गया। आप वैद्यक शास्त्र के शिरोमणि थे, आपके चिकित्सा कार्य से अलमोड़ा तक की जनता लाभ उठाती थी। प्रभू से प्रार्थना है कि वह दिवंगत आत्मा को शान्ति एवं दुखी परिवार को धैर्य प्रदान करें।

वाराणसी में मेडिकल कालेज ही क्यों ?

श्री पं० ताराशंकर मिश्र आयुर्वेदाचार्य

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में छात्रों के उग्र आन्दोलन के किसी प्रकार शान्त होने के बाद अधिकारियों ने यह निर्णय किया कि यहाँ के आयुर्वेद महाविद्यालय को मेडिकल कालेज के रूप में परिवर्तित कर दिया जाय जिससे निकले स्नातकों को एम. बी. बी. एस. की उपाधि दी जाय। छात्रों को नाम के लिये स्वल्पमात्र आयुर्वेद भी पढ़ाया जाय। वर्तमान कालेज के स्नातकों को, यदि वे चाहें तो, २ वर्ष का अतिरिक्त पाठ्यक्रम उत्तीर्ण करने के बाद एम० बी० बी० एस० की उपाधि दे दी जाय।

आयुर्वेद के लिये घातक—

आज शान्त मस्तिष्क से विचार किया जाय तो पता चलेगा कि यह निर्णय आयुर्वेद, वाराणसी एवं समस्त देश के लिये अत्यन्त घातक है। आयुर्वेद के लिये इससे दुखद वार्त्ता क्या होगी कि उसका

सबसे बड़ा स्तम्भ धराशायी ही नहीं बल्कि उसके विपरीत दिशा में एक गढ़ के रूप में परिवर्त्तित हो जाय। अन्यान्य उच्चकोटि के आयुर्वेद कालेजों पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा? इसका स्पष्ट संकेत अस्थल बोहर (पंजाब) के विशाल आयुर्वेद कालेज को भी मेडिकल कालेज के रूप में परिवर्त्तित करने के निर्णय से विदित हो जायगा। ग्वालियर और इन्दौर के आयुर्वेद कालेजों में भी हड़ताल चल चुकी है। वहाँ सिर पर मेडिकल कालेज है ही। पता नहीं हड़ताल का क्या परिणाम हो? अन्यान्य कालेजों के छात्रों में भी असन्तोष है। कुल मिलाकर छात्रों के असन्तोष के मूल कारण को बिना विचार किये ही आयुर्वेद महाविद्यालयों को मेडिकल कालेजों के रूप में बदल देने का परिणाम आयुर्वेद पर क्या पड़ेगा? इसे किसी विवेकशील को स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं।

वाराणसी के लिये घातक—

वाराणसी नगरी धन्वन्तरि की राजधानी है। आयुर्वेद का मुख्य केन्द्र है। स्व० अर्जुन जी, त्र्यम्बक शास्त्री, रघुजी, छन्नू जी, उमाचरण जी, राधाकृष्ण जी, गोपाल जी, चुन्नीलाल, धर्मदास जी, प्रभृति वैद्यों की कर्मभूमि है। आयुर्वेद की चिकित्सा के लिये आज भी देश के कोने-कोने से रोगी यहाँ आते हैं। मेडिकल कालेज हो जाने के बाद क्या काशी का यह गौरव अक्षुण्ण रह सकेगा? मेडिकल कालेज प्रान्त एवं देश में बहुत से हैं। साधन सम्पन्न हैं, और भी खुलते जा रहे हैं। एलोपैथी चिकित्सा और शिक्षा के लिये जनता का आकर्षण उन कालेजों की ओर ही जाना स्वाभविक है। काशी के मेडिकल कालेज में कोई विशेषता रहेगी और वहाँ आकर्षण विशेष होगा? यह सोचना ठीक नहीं। दूसरी ओर युग-युग से चली आई वाराणसी की विशेषता और परम्परा को समाप्त कर देना अनुचित होगा।

देश के लिए घातक—

स्वतन्त्र भारत में आयुर्वेद की ऐसी दुर्दशा होगी? इसकी कल्पना भी नहीं थी। आयुर्वेद की अपनी निजी विशेषताएँ हैं। उसका गौरवपूर्ण इतिहास है। आजतक उसी ने नवजीवन की रक्षा की है। आज भी उसके द्वारा कम सेवा नहीं हो रही है। यह सब उसकी सुदृढ़ मौलिकता का परिचायक है। जड़ से रोगों को समाप्त करने की क्षमता, संशोधन-संशमन चिकित्सा, रसायन और वाजीकरण इत्यादि उसकी विशेषताएं अन्य चिकित्सा विज्ञान में नहीं मिलेंगी। उसका द्रव्यगुण, स्वस्थवृत्त, सद्वृत्त और त्रिदोष सिद्धान्त भी अन्यत्र नहीं मिलेगा। आत्मा-इन्द्रिय-मन का चिकित्सा सूत्र भी अन्यत्र नहीं मिलेगा। एलोपैथी में तत्काल वेदनाशमन और शल्य चिकित्सा के कारण थोड़ी उत्तमता अवश्य प्रतीत होती है। पर आयुर्वेद की उपर्युक्त विशेषताओं के समाप्त होने पर भारत के स्वास्थ्य की स्थिति दयनीय होगी। भारतीय संस्कृति और साहित्य की ओर समुचित ध्यान न देने से छात्रों के, अध्यापकों के और जनता के मानसिक स्तर का भयानक ह्रास हो रहा है। गाम्भीर्य, औदार्य, सत्य, स्नेह आदि स्वाभाविक गुण नष्ट होते जा रहे हैं। आयुर्वेद के अध्ययन से इन बुराइयों से बचा जा सकता है। भारतीय साहित्य में केवल आयुर्वेद ही ऐसा है जिसका सम्पर्क जन जीवन से प्रत्यक्ष है। अपनी व्यावहारिक उपयोगिता के कारण यह जन जीवन को प्रभावित कर सकता है। उसे नष्ट कर भारतीय जनता को मानव के स्वाभाविक गुणों की ओर, स्वाभाविक स्वास्थ्य की ओर और कुल मिला सच्ची भारतीयता की ओर ले जाने की क्षमता अन्य किसी चिकित्सा पद्धति में नहीं है। आयुर्वेद को समाप्त कर एलोपैथी के विकास से भारत को कितनी बड़ी हानि होगी? इसे गम्भीरतापूर्वक ठण्ढे दिल से सोचना चाहिए। थोड़ी देर के लिये मेडिकल कालेज के स्वप्न के समान सुखद काल्पनिक पर्दे को आंख के सामने से हटा कर बुद्धि-पूर्वक विचार करने की आवश्यकता है।

मूल कारण—

अब विचारणीय यह है कि अन्ततः एक आयु-

वद महाविद्यालय को मेडिकल कालेज में परिणत करने का कारण ही क्या? छात्रों का आन्दोलन, यही न। और कुछ हो तो वह सामने नहीं आया। छात्रों को लड़कों को समझाया न जा सका। इसलिये अधिकारियों ने, वृद्धों ने आयुर्वेद कालेज ही समाप्त कर दिया। समस्या का अच्छा समाधान सोचा। जड़ ही काट दी। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी! छात्रों के आन्दोलन से उत्पन्न शिक्षा-शास्त्रियों की यह प्रतिक्रिया शोभनीय नहीं कही जा सकती। होना यह चाहिए था कि आन्दोलन का मूल कारण समाप्त किया जाय। जो वस्तुतः है धन और सम्मान का अभाव। छात्र मेडिकल कालेज के स्तर की प्रवेश योग्यता इण्टर या मध्यमा लेकर आते थे, मेडिकल कालेज के स्तर की शिक्षा प्राप्त करते थे। पर उन्हें स्नातक बनने पर वेतन मेडिकल कालेज के स्नातक से बहुत ही कम अर्थात् एक क्लर्क या एक सेनीटरी इन्सपेक्टर के बराबर लगभग १२०) मिलता है। और, अधिकार के नाम पर जो कुछ मिलता है वह कुछ नहीं है। बस! इसी मूल कारण को लेकर छात्रों का आन्दोलन था। जड़ यही थी जिसकी शाखायें कुछ अलग भी प्रतीत हो रही थीं। प्रिन्सिपल बदलो, एलोपैथी अधिक पढ़ाओ आदि मांगों का भी यही रहस्य है कि बिना इस मांग को पूर्ण हुए एलोपैथों के समान वेतन और अधिकार मिलना सम्भव नहीं। यह कटु सत्य है कि आयुर्वेदाध्यापकों की परिस्थितिवश कुछ कमजोरियाँ भी कारण थीं। पर वे नगण्य या महत्वहीन थीं। कुल मिलाकर छात्रों की वेतन और अधिकार सम्बन्धी मूल मांग ही आयुर्वेदीय छात्रों के आये दिन होने वाले आन्दोलनों का मूल कारण है। और, यह मांग अनुचित नहीं कही जा सकती। एक श्रमिक भी अपनी उचित मांग की पूर्त्ति की आशा रखता है। बहुत अंशों तक वह पूरी भी होती है तो फिर आयुर्वेदीय छात्रों ने अपने अधिकार के लिये, सम्मान के लिये आन्दोलन किया तो क्या अपराध किया? विश्वविद्यालय के अधिकारी और अध्यापक अपने स्नातकों का अधिकार और सम्मान न बढ़ा सके। परिणामतः आन्दोलन भी मानव के स्वाभाविक गुणों से दबा न सके। छात्रों की प्रबल मांग को मानकर उन्होंने एक प्रिन्सीपल की नियुक्ति कर दी। पर उसके माध्यम से आयुर्वेद महाविद्यालय को मैडीकल कालेज के रूप में परिणत करने का निर्णय करना क्या शोभनीय है? उचित है? भूखा पुत्र रोटी मांगे और असमर्थ पिता पत्थर मारकर उसकी, उसके वर्ग की और एक विज्ञान की हत्या ही कर डाले? क्या यही न्याय और कर्त्तव्य की इतिश्री है?

होना क्या चाहिये?

विश्वविद्यालय के आयुर्वेदीय स्नातकों के लिये द्विवर्षीय अतिरिक्त पाठ्यक्रम उनकी पांच वर्ष की शिक्षा का घोर अपमान है। तथा कथित मैडीकल कालेज में नगण्य आयुर्वेद रखने की बात करना आयुर्वेद जगत और भूतपूर्व अथ च भावी आयुर्वेद प्रेमी दानदाताओं को अच्छी नहीं लगेगी। संस्कृत विद्यालय में आयुर्वेद महाविद्यालय खुले, यह एक अच्छी बात है पर हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेद महाविद्यालय को मैडीकल कालेज बना देने से होने वाली हानि की पूर्ति न होगी। महामना मालवीय जी का संकल्प दानदाताओं का उद्देश्य इससे पूरा न हो। मैडीकल कालेज से भी यह न होगा।

यदि आयुर्वेद महाविद्यालय को आयुर्वेद विद्यालय ही रहने दिया जाय और उसमें अ वेद के पूर्ण अध्ययन के साथ ही आधुनिक शालाक्य का उत्तम अध्ययन कराया जाय मालवीय जी का संकल्प भी पूरा होगा और व। णसी नगरी को मैडीकल कालेज से भी अच्छ वस्तु मिलेगी। इसके स्नातकों को मैडीकल काले के स्नातकों के समान वेतन दिया जाय। अधिकार भी समान देने की बात सोची जाय। इस प्रक जनता को जहां आयुर्वेदीय

शेषांश पृ.

विद्वान लेखकों से निवेदन

निश्चय हुआ है कि इस वर्ष "ग्रहणी-रोगांक" के नाम से धन्वन्तरि का एक लघु-विशेषांक निकाला जाय। इसके सम्पादन का भार मुझ पर है। धन्वन्तरि अब तक विद्वान लेखकों के सहयोग ही से निकलता रहा है। उन्हीं से उसे विद्वान-मान्य सामग्री मिलती रही है। आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि इस विशेषांक के लिये भी उनका पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा ताकि वह रोगार्त जनता की अपने नाम के अनुरूप योग्य सेवा कर सके। विनय है कि विद्वद्-जन इस अंक के लिये जो भी सामग्री भेजें, वह कागज के एक ओर प्रत्येक विषय पर अलग-अलग अन्तरशीर्षक डालकर स्वानुभूत, सारगर्भित और प्रमाणित हो। कृपा होगी, यदि अनावश्यक विस्तार में न जाया जाय, क्योंकि विशेषांक आकार में एक साधारण अङ्क से बड़ा न होगा—

विषय सूची—

(१) "ग्रहणी" का परिचय—शास्त्रीय दृष्टि से
(२) "ग्रहणी" का अग्नि से सम्बन्ध
(३) अग्नि (पाचक पित्त) और पाचक अम्ल
(४) "ग्रहणी" का यकृत्, प्लीहा, पेनक्रियाज और आंत्र से सम्बन्ध
(५) ग्रहणीरोग में विकृति विज्ञान
(६) ग्रहणी रोग और मल परीक्षा
(७) अन्यान्य रोगों में ग्रहणी रोग की सम्भावना
(८) ग्रहणी रोग से निम्न रोगों की प्रभेद प्रदर्शक सारिणी—चिर प्रवाहिका, अम्लपित्त, चिरकारी आमातिसार, श्वेतातिसार, आन्त्रक्षय आदि
(९) ग्रहणी रोग होने के कारण, उसके पूर्वरूप, रूप, उपद्रव, साध्यासाध्यत्व, अरिष्ट लक्षण, उपशय और अनुपशय।
(१०) ग्रहणीरोग से अन्यान्य रोग
(११) ग्रहणी रोग की चिकित्सा के मूल सिद्धांत
(१२) दधिकल्प, तक्र कल्प, दुग्ध कल्प और आम्रकल्प
(१३) ग्रहणीरोग में प्रयोज्य औषधियां, उपयोगी द्रव्य, उनके गुणागुण स्वानुभव सहित
(१४) अपने अनुभव में आये रोगी-चिकित्सा का वृत्त
(१५) पथ्यापथ्य।

विनय है कि विद्वान लेखक उपर्युक्त शीर्षकों पर इस अङ्क के लिये यथासाध्य शीघ्र सारगर्भित व अनुभव पूर्ण लेख निम्न पते पर भेजने का कष्ट करें ताकि यह अङ्क लघु होने पर भी अपने ढंग का अद्वितीय हो।

—श्री वैद्य मुन्नालाल गुप्त,
[विशेष सम्पादक ग्रहणी रोगांक,]
५६।१३२ पुरानी दाल मण्डी, कानपुर

:: पृष्ठ ५९६ का शेषांश ::

सुविधा मिलेगी वहीं दूसरी ओर एलोपैथी की पूरी सर्जरी भी मिलेगी। स्नातकों को एलोपैथों के समान वेतन मिलेगा। आयुर्वेद जगत को भी सन्तोष होगा। कुल मिलाकर मैडीकल कालेज से बढ़कर वस्तु सामने आयेगी।

क्या अधिकारी अपने बढ़ते हुए पग को कुछ रोककर इस ओर भी कुछ विचार करेंगे।

—वैद्य श्री ताराशङ्कर मिश्र आयुर्वेदा.
प्रधाना. अर्जुन आयुर्वेद महाविद्यालय,
वाराणसी।

मेरी ओर क्या देखते हो ?
मैं कितना स्वस्थ, सुन्दर एवं सुडौल हूँ। मेरे दाँत भी बिना कष्ट के निकल आये। मुझे कोई रोग नहीं सताता। आप शायद नहीं जानते। इसमें एक रहस्य है। पहले मैं भी अन्य बच्चों की भाँति रोगी, दुबला-पतला और कमज़ोर था। मेरा सौभाग्य कि मेरे गृह-चिकित्सक ने मेरी माता को मुझे — "कुमार कल्याण घुट्टी" सेवन कराने की सम्मति दी। कुछ दिन के सेवन से ही मेरी काया पलट होगई।
आपसे मेरा निवेदन है कि यदि आप भी मेरी तरह अपने बच्चे को सुन्दर सुडौल देखना चाहते हैं तो उसे नियमित "कुमार कल्याण घुट्टी" सेवन कराइये। यह हमारे वृद्धिगत शरीर के लिये आवश्यक केलशियम की पूर्ति करती है। पाचन संस्थान को सुधार कर दूध पचा देती है। दाँत-निकलने में सहायता देती है तथा कोई रोग नहीं होने देती।
कुमार कल्याण घुट्टी के एकमात्र निर्माता :—
धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़) यू. पी.
ESTD
R.S.TOMAR.